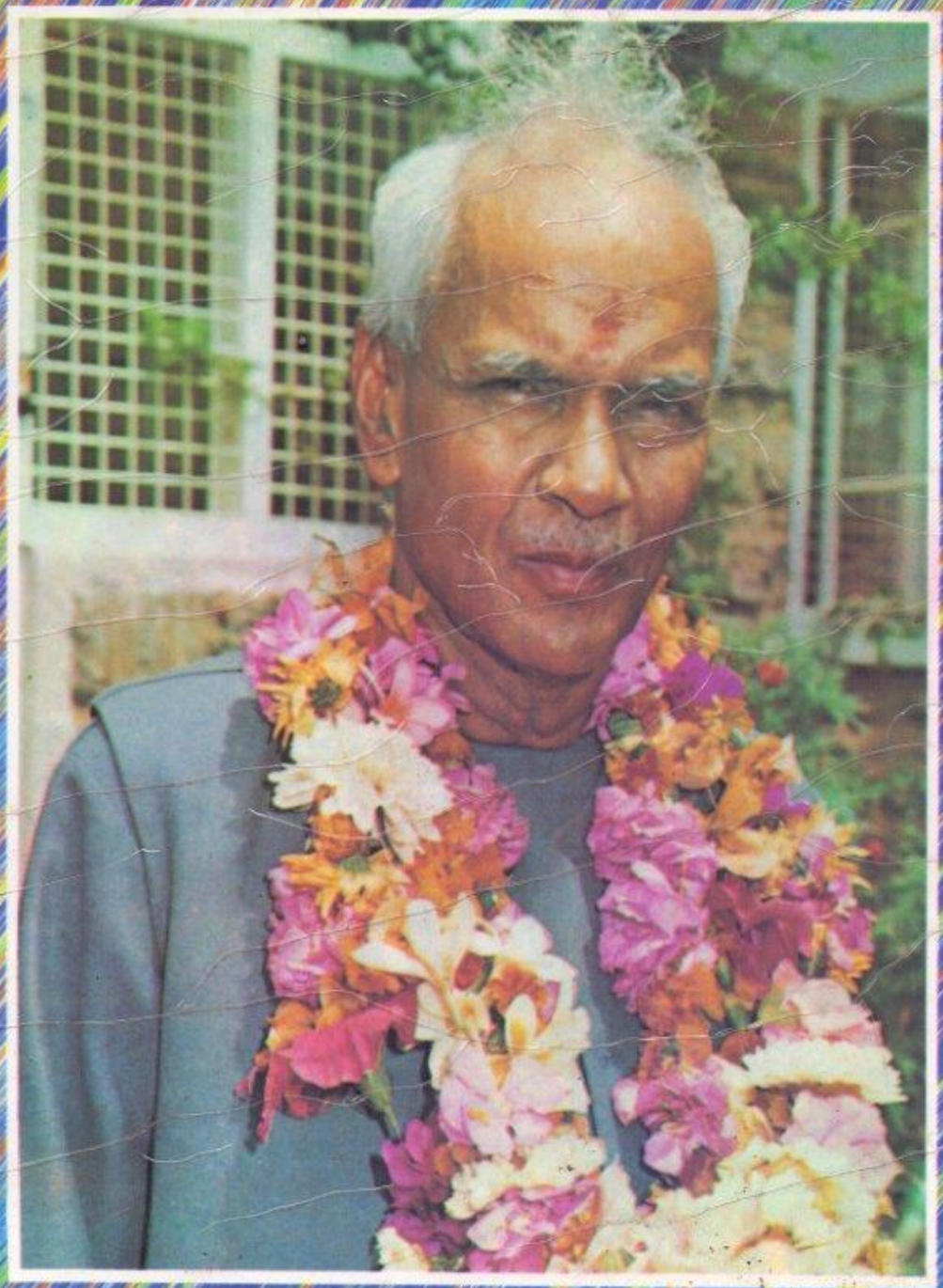
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

प्रसुप्ति से जागृति की ओर



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसुप्ति से जागृति की ओर

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❒
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

❒
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❑
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❑
मूल्य १२५)

❒
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करणं मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतः स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्ह भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी । उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं । यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी ।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ । गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी । धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है । १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है । १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया । कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं । संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था । तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं । हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया । परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं ।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ । तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था । तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए । स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये । एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी । ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये ।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे । इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण कें आधार पर प्रस्तुतीकरण तक । इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

अध्यात्म एक सुव्यवस्थित, विधि–विधानों पर आधारित विज्ञान है । भौतिकी की तरह ही उसके भी हर स्वरूप को गणितीय आधार पर समझा जाना चाहिए । अध्यात्म तत्व ज्ञान कहता है कि यदि मनुष्य को प्रसुप्त से जागृति की स्थिति में लाना है तो उसे सर्वप्रथम आत्मशोधन–अवांछनीयताओं के निष्कासन की प्रक्रिया सीखनी–समझनी होगी । अध्यात्म विभूतियाँ ऐसे ही नहीं मिल जातीं । जब तक आत्म शोधन का तप एवं आत्म क्षेत्र में उच्चस्तरीय विशिष्टताओं के समावेश की योग साधना संपन्न नहीं की जाती, मनुष्य का कायाकल्प संभव नहीं है । जैसा वह आया है–वैसा ही अनगढ़ता की स्थिति में कषाय कल्मषों से भरा वह चला जाएगा । तप व योग यदि ये दो पक्ष समझ में आ सकें तो आंतरिक कायाकल्प की भावसाधना संपन्न हो जाती है जो व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय देवोपम स्तर का बना देती है । यही है प्रसुप्ति से जागृति का तत्त्व दर्शन ।

इस वाङ्मय में ब्रह्मवर्चस में संपन्न हुई व सतत होती रहने वाली अति फलदायी चांद्रायण साधना से लेकर प्राणप्रत्यावर्तन व अन्य ऐसी साधनाओं का वर्णन है जो वस्तुतः व्यक्तित्त्व का कायाकल्प कर देती हैं । कायाकल्प का शाब्दिक अर्थ है वृद्धावस्था को नव यौवन में बदल देना किन्तु वास्तविकता में अर्थ है अन्तराल का–व्यक्तित्व का–चिंतन–चरित्र–दृष्टिकोण का आमूलचूल परिष्कार, आदतों–पूर्वाभ्यासों का निष्कासन तथा श्रेष्ठताओं का जीवन में समावेश । बहिरंग में इसकी फलश्रुति मानवी स्वास्थ्य–आभावलय में परिवर्तन से लेकर अनेकानेक रूपों में देखने को मिलती है । श्रेष्ठ व्यवहार–आकर्षक चुम्बकीय व्यक्तित्त्व सब इसी कायाकल्प की ही तो फलश्रुतियाँ हैं ।

वाङ्मय के साधना संबंधी इस महत्त्वपूर्ण खण्ड में उन्हीं सब पहलुओं को स्पर्श किया गया है जो व्यक्तित्त्व परिष्कार की प्रक्रिया संपन्न करते हैं । इसके बहिरंग स्वरूप कई प्रकार के हो सकते हैं जिनमें एक चान्द्रायण साधना है । यह एक व्रत भी है, तप भी व कल्प भी । संयम साधना–प्रज्ञा उपासना व भविष्य निर्माण की आराधना–इन तीन पक्षों पर यह साधना टिकी हुई है । रसना पर नियंत्रण मनुष्य के अनगढ़ विचारों व कामुक चिन्तन पर भी नियंत्रण स्थापित कर देता है । इसके लिए आहार संयम के अनेकानेक तरीके बताए गये हैं जिनमें चान्द्रायण कल्प सर्वश्रेष्ठ है । उसमें चन्द्रमा की कला के साथ आहार क्रमशः घटाया व फिर क्रमशः बढ़ाया जाता है । साथ ही साथ आन्तरिक परिशोधन हेतु प्रायश्चित प्रक्रिया भी अनिवार्य मानी जाती है । जहाँ रंगाई साधना है वहाँ धुलाई को प्रायश्चित–तप कहते हैं । बिना धुलाई के रंगाई किस काम की ।

चांद्रायण तप एवं कल्प साधना में प्रमुख है अपने उस जीवन में किये गये पापों–दुरित कर्मों का स्मरण और उन्हें छोड़ने के लिए प्रबल तड़पन अन्दर से उत्पन्न कर दुराव की सारी गाँठें निकाल बाहर करना–भीतर बाहर से एक हो जाना । यह कार्य पापों के प्रकटीकरण–स्वीकारोक्ति के रूप में एक सच्चे मार्गदर्शक के सम्मुख किया जा सकता है ताकि सही अर्थों में धुलाई संपन्न हो सके । परम पूज्य गुरुदेव ने चांद्रायण तप को गायत्री तपोभूमि, मथुरा एवं शांतिकुंज, हरिद्वार दोनों ही अपनी साधना स्थलियों में अत्यधिक महत्व देकर अनेकानेक व्यक्तियों को आत्मपरिष्कार की–आत्मोत्कर्ष की तप तितीक्षा अपनाते हुए योग साधना के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पथ पर चलने की प्रेरणा दी । ऐसे अनेकानेक सत्र चले भी एवं अभी भी भिन्न–भिन्न रूपों में चलते हैं । चांद्रायण में आहार कल्प व औषधि कल्प भी कराया जाता है, उसका विस्तार इस खण्ड में देखा जा सकता है । कल्प साधना के वैज्ञानिक आधार भी इसमें समझाए गये हैं ताकि व्यक्ति वस्तुतः प्रसुप्ति से जागृति के तत्त्वज्ञान को–अपने आपे को बलिष्ठ करने की विधा के मर्म को समझ सके, जीवन में उतार सके । कल्प साधकों का ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में परीक्षण एवं तदनुसार सूक्ष्मतम साधना–पद्धतियों का निर्धारण इसमें पूर्णतः वर्णित है ।

इसके अतिरिक्त अंतरंग को जगाने वाली अनेकानेक योग साधनाएँ जो पातंजलि योगदर्शन के उपक्रम में नहीं वर्णित हैं, यहाँ बतायी गयी हैं । इनमें योगत्रयी के रूप में लययोग, नाद योग, ग्रंथियोग तथा शक्तियोग, प्राणयोग, सूर्य योग, विश्वयोग आदि ऐसी ध्यान धारणाएँ वर्णित हैं जिनमें से किसी को भी अपनाकर अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत कर उर्ध्वगमन की प्रक्रिया संपन्न की जा सकती है । इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष फलदायिनी योगसाधनाएँ तथा आत्मजागरण योग, सम्यकत्त्व योग, भूतसाधना उपवास साधन व क्रियायोग भी वर्णित हैं । स्वरयोग से दिव्यज्ञान कैसे अर्जित किया जा सकता है, इन पर भी पूरा एक अध्याय है ।

सभी साधनाओं के मूल में एक ही है कि श्रेष्ठ गुरु व श्रेष्ठ वातावरण हो तो ही वे सफल भी होती हैं । साधना से सिद्धि की उक्ति को भी चरितार्थ करती हैं । गुरु वह जो सद्गुरु के रूप में एक सच्चे मार्गदर्शक की तरह जीवन में प्रवेश करे एवं शिष्य की आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त करे । जो व्यक्ति की आंतरिक स्थिति को समझकर सही साधना उसे बता सके व उसके चेतनात्मक विकास में योगदान दे सके, उसे कैसे पहचाना जाय, यह पूज्यवर ने इसमें लिखा है । हर ऐसी प्रसुप्ति से जागृति की ओर लाने वाली साधना श्रेष्ठ वातावरण भी चाहती है । सुसंस्कारिता, साधनामय वातावरण, ढर्रे के चिन्तन को बदल कर चिन्तन की पृष्ठभूमि बदल देता है । पूज्यवर ने न केवल गायत्री तीर्थ की स्थापना के रूप में ऐसा वातावरण विनिर्मित किया, इस वाङ्मय के माध्यम से मार्गदर्शन भी दिया है कि कैसे कोई ऐसे स्थानों पर साधना कर स्वयं को लाभान्वित कर सकता है ।



–ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय सूची

१. ब्रह्मवर्चस् की अतिफलदायी चान्द्रायण साधना

अध्यात्म क्षेत्र की उच्चस्तरीय सफलताओं का सुनिश्चित राजमार्ग १.१

उपवास १.७

चान्द्रायण तप की शास्त्रीय परम्परा १.६

एक महीने की निर्धारित साधना क्रम में इन पाँचों का समन्वय है १.१०

परम पवित्रदायक चान्द्रायण तप १.११

चान्द्रायण का सामान्य व्रत निधान १.१२

पाप पर से पर्दा हटाया जाय १.१३

चान्द्रायण में केश कटाने का संस्कार १.१४

प्रायश्चित का अति महत्त्वपूर्ण पथ छतिपूर्ति १.१५

चान्द्रायण व्रत और गौ सम्पर्क १.१७

प्रभावशाली साधना की पृष्ठभूमि १.१९

चान्द्रायण व्रत द्वारा शरीर-शोधन १.२१

चान्द्रायण काल की पुरश्चरण साधना १.२४

चान्द्रायण साधना एक कायाकल्प उपचार १.२८

चान्द्रायण से शक्ति अभिवर्धन १.३१

साधना से सफलता के दो अनिवार्य अवलम्बन—'तप और प्रायश्चित' १.३३

कर्मफल की सुनिश्चितता: एक महत्त्वपूर्ण तथ्य १.३६

हम निष्पाप बनें ? १.३९

दुष्कृतों के अवरोधों को हटाने की साहसिकता उभरे १.४२

आत्मिक प्रगति के लिये कल्मषों का परिशोधन १.४४

अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन करना होगा १.४६

हठीले कुसंस्कारों का निराकरण चान्द्रायण से १.५०

प्रायश्चित्य-अन्तराल का परिष्कार १.५६

प्रायश्चित के तीन चरण हैं १.५८

आन्तरिक परिशोधन हेतु प्रायश्चित प्रक्रिया की अनिवार्यता १.५९

साधना के अवरोध दुष्कर्मों का निराकरण-प्रायश्चित १.६३

पापों का प्रतिफल और प्रायश्चित—शास्त्र अभिमत १.६९

आत्मशोधन और प्रायश्चित प्रक्रिया १.७२

कुसंस्कार धोते चलें-अगला जन्म पछतावा न बने १.७३

प्रायश्चित एक समग्र मनश्चिकित्सा १.७६

किये हुये पापों का प्रायश्चित १.८१

प्रायश्चित का पूर्वार्द्ध-पश्चात्ताप १.८३

क्षतिपूर्ति-पूर्णाहुति १.८७

प्रायश्चित और उत्कर्ष के लिये ज्ञान-यज्ञ का प्रज्वलन १.९१

२. प्राण प्रत्यावर्तन एवं कल्पसाधना

प्रत्यावर्तन का दार्शनिक पक्ष २.१

प्राण प्रत्यावर्तन अनुदान का उद्देश्य और स्वरूप २.३

प्राण-प्रत्यावर्तन की साधना-प्रक्रिया २.१०

प्रत्यावर्तन का साधना पक्ष २.१५

पंचकोषों की साधना सिद्धि २.२१

आशातीत सफलता सम्पन्न प्रत्यावर्तन साधना २.२४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदा के लिये अपनाया जाने वाला सतत् साधना क्रम २.२६
प्रत्यावर्तन साधना सम्बन्धी कुछ विशेष स्पष्टीकरण २.३२
प्रसुप्ति का महान जागरण में प्रत्यावर्तन २.३५
आत्मशोधन की प्रायश्चित प्रक्रिया २.३६
कल्प-साधना की पृष्ठभूमि और विधि-व्यवस्था २.४३
कल्प-साधना का उद्देश्य और स्वरूप २.५८
आध्यात्मिक कायाकल्प की साधना का तत्वदर्शन २.५२
आन्तरिक परिष्कार का स्वर्ण-सुयोग २.५६
अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और निरन्तर आत्म-दर्शन २.६०
कल्प-चिकित्सा की पात्रता के सम्बन्ध में महर्षि चरक का मत २.६५
विभिन्न प्रकार के कल्प प्रयोग २.६५
कल्पकाल की त्रिविध अनिवार्य साधनायें २.७६
कल्पकाल की अतिफलदायी ऐच्छिक साधनायें २.८२
अन्तराल के मर्मस्थल का प्रभावी परिशोधन २.८४
कल्प के पूर्व कुछ अनिवार्य ज्ञातव्य २.८७
प्रशिक्षण में समग्र उत्कर्ष के बीजांकुर २.८८
तीर्थसेवन और कल्प-साधना का सार्थक समन्वय २.९१
भावी जीवन पंचशीलों के साथ जुड़े २.९३
व्यक्तित्व विकास २.९३
परिवार निर्माण २.९४
समाज निर्माण २.९५
कल्प-साधकों के भावी निर्धारण २.९७
प्रत्यावर्तित जीवन की समग्र साधन-शिक्षा २.१००
प्रत्यावर्तन की पात्रता विकसित की जाय २.१०७

३. व्यक्तित्व परिष्कार की अध्यात्मोपचार प्रक्रिया

समस्त व्याधियों का निराकरण—आध्यात्म उपचार से ३.१
वेदों में मानसिक चिकित्सा ३.४
यक्ष्मा रोग से पीड़ित व्यक्ति की चिकित्सा ३.६
जीव कोषों के मन और मानसोपचार ३.६
चिकित्सक का ही नहीं पुरोहित का भी परामर्श मानें ३.१२
व्याधि निवारण के लिये धर्मानुष्ठानों का उपचार ३.१६
आत्म-निरीक्षण से मानसोपचार ३.२१
विश्वास-निरीक्षण से मानसोपचार ३.२१
विश्वास चिकित्सा या फेथ क्योर ३.२४
अध्यात्म-चिकित्सा बनाम मानसोपचार ३.२५
आध्यात्मिक चिकित्सा-विज्ञान की कसौटी पर ३.२६
व्यक्तित्व को प्रखर और भविष्य को उज्ज्वल बनाने की साधना ३.३३

४. आत्मोत्कर्ष का राजमार्ग—तप-तितीक्षा

तपश्चर्या—समृद्धियों और विभूतियों की जननी ४.१
तपश्चर्या का तत्वदर्शन ४.६
तपश्चर्या का उद्देश्य ४.१३
सर्वतोमुखी सुदृढ़ता की उपलब्धि तपसाधना से ४.१६
शक्तियों का केन्द्र-तप ही है ४.२३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तपसाधना अतीव लाभदायक प्रक्रिया ४.२८
तपश्चर्या से प्रसुप्त शक्तियों का जागरण ४.३१
तप द्वारा प्राणशक्ति का अभिवर्धन ४.३७
आत्मशुद्धि की श्रेष्ठ तपश्चर्या ४.४१
कल्प-साधना तपश्चर्या का स्वरूप एवं प्रतिफल ४.४७
शक्तियों, सिद्धियों और विभूतियों का उद्गम तप साधना ४.५२
कल्प-साधना में संयमशीलता की अनिवार्यता ४.५७
मौनं सर्वार्थ साधनम् ४.६३
एकान्त सेवन की तपश्चर्या ४.६५
कष्ट साध्य तपश्चर्या व्यर्थ है ४.६६
वर्तमान की तपसाधना भविष्य निर्माण के लिये ४.७३
आत्मिक प्रगति के लिये तप-तितीक्षा की आवश्यकता ४.७६
तितीक्षा हमें सुदृढ़ बनाती है ४.७८
तप तितीक्षायें, जो व्यक्तित्व को प्रखर बनाती हैं ४.७९
मौन साधना की महिमा ४.८२
शरीर को देव मन्दिर बनायें ४.८३
ऋतु प्रभाव के सहन का अभ्यास डालें ४.८५
शीत की शक्ति को समझें और उससे लाभ उठायें ४.८७
प्रतिकूल मौसम से भी मोर्चा लीजिये ४.९२
प्रकृति प्रवाह के साथ तालमेल बिठना भी साधना का उद्देश्य ४.९४
चान्द्रायण-कल्पकाल की आहार साधना ४.९५
साधना के उपयुक्त सतोगुणी आहार ४.९६
आहार में सात्विकता की आवश्यकता ४.१०१
अनुष्ठान में सात्विक आहार की आवश्यकता ४.१०३
आहार तपश्चर्या के चमत्कारी परिणाम ४.१०५
आहार एवं औषधि कल्प के मूल सिद्धान्त एवं व्यावहारिक स्वरूप ४.१०८
आहार सम्बन्धी कुछ भ्रान्तियाँ एवं उनका निवारण ४.१०९
प्रतिभायें यह तथ्य समझें-समझायें ४.१११
तपश्चर्या द्वारा दिव्य सामर्थ्यों का उन्नयन ४.११२

५. कल्प साधना का सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार

प्रौढ़ साधकों के उपयुक्त प्रखर साधना ५.१
अध्यात्म उपचारों की वैज्ञानिक साक्षी एवं ब्रह्मवर्चस् के प्रयास ५.२
त्रिविध प्रशिक्षण की त्रिवेणी ५.४
अध्यात्मक की वैज्ञानिक शोध और अनास्था संकट का निवारण ५.८
कल्प उपचार का सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार ५.१

६. गायत्री योग साधना

सर्वसुलभ गायत्री योग ६.१
गायत्री के द्वादश योग ६.२
प्रणव योग अथवा ब्रह्मयोग ६.४
कुण्डलिनी का परिचय ६.५
षटचक्रों का जागरण ६.८
चक्रों का बेधन ६.११
विश्व योग ६.१३
गायत्री-पंजर ६.१४
ध्यान योग ६.१८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूर्य योग ६.१६
शक्ति योग ६.२२
प्राण योग ६.२६
आठ प्राणायाम ६.२८
सहज योग ६.३०
स्थिति प्रज्ञा अवस्था ६.३३
सहज समाधि ६.३६
भक्ति योग ६.३८
ज्ञान योग ६.४२
लय योग ६.४५
नाद योग ६.४६
ग्रन्थि योग ६.५२
आत्म जागरण से सिद्धियाँ ६.५५
गायत्री द्वारा अन्य योग साधनायें ६.५६

७. स्वरयोग से दिव्यज्ञान

स्वरयोग का रहस्य ७.१
स्वर सम्बन्धी कुछ आवश्यक जानकारी ७.४
स्वर बदलना ७.६
स्वर-संयम से दीर्घ जीवन ७.७
स्वर को बदलने की सरल रीति ७.६
स्वास्थ्य का प्राणायाम ७.६
वीर्य रक्षक प्राणायाम् ७.१०
स्वर परिवर्तन के हानि-लाभ ७.११
तत्व ज्ञान से दिव्य दृष्टि ७.१३
स्वरयोग की साधना—प्राणविद्या का अभिन्न अंग ७.१६

८. प्रत्यक्ष फलदायिनी योग साधनायें

आत्म जागरण योग ८.१
आत्म जागरण योग की साधना ८.३
सम्यक्त्व योग ८.४
सम्यक्त्व योग की साधना ८.६
आत्म निरीक्षण योग ८.६
आत्म-चिन्तन की साधना ८.७
भूत साधना से आत्मविजय ८.८
मनोनिग्रह की साधना ८.१०
रस साधना ८.११
गन्ध साधना ८.११
स्पर्श साधना ८.१२
उपवास साधना ८.१२
आत्म नियन्त्रण के लिये—व्रत ८.१४
सूर्य नमस्कार ८.१६
प्राणाकर्षण प्राणायाम ८.१७
क्रिया योग ८.१८
मौन व्रत ८.१६
सारस्वत योग ८.२०
जप योग ८.२१
सेवाधर्म एक योग साधना ८.२२
संन्यास योग ८.२५
सत्ययोग की साधना ८.२७
श्रम योग की साधना ८.२८
पर्यवेक्षण योग की साधना, ध्यान धारणा ८.३०

९. सीस दीये गुरु मिले तो भी सस्ता जान

सद्गुरु की प्राप्ति—एक दिव्य वरदान ९.१
गुरु-शिष्य के अन्तर्सम्बन्धों पर टिकी संस्कृति चेतना ९.५
गुरुतत्व की गरिमा एवं समर्पण की महत्ता ९.८
सद्गुरु भीतर से जगायें ९.११
दत्तात्रेय के २४ गुरु ९.१५
खोज करने पर ही सद्गुरु मिलते हैं ९.१६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति और सफलता के लिए समर्थ सहयोग की आवश्यकता ६.२८
साधना की सफलता में मार्गदर्शक की महत्ता ६.२९
दिव्य-शक्तियों के हस्तान्तरण की प्रक्रिया ६.३३
शक्तिपात और उसका आधार ६.३६
शक्तिपात आध्यात्मिक भी सांसारिक भी ६.३८
प्राण-संचार और शक्तिपात ६.३९
मार्गदर्शक की आवश्यकता ६.४०
शक्तिपात के सत्पात्र ६.४०
शक्तिपात की क्रमिक पद्धति ६.४१
प्राण-प्रवाह का प्रत्यक्ष अनुभव ६.४२
ग्रहण सरल है प्रेषण कठिन ६.४२
दीक्षा की महान परम्परा ६.४४
आत्मिक प्रगति का मूल आधार-'श्रद्धा' अर्थात् श्रेष्ठता से प्यार ६.४८
साधन का मूल है--जाग्रत भाव संवेदना ६.५८
श्रद्धा जगाती है सिद्धपीठों के संस्कारों को ६.६०

१०. साधना की सफलता अभीष्ट वातावरण में

साधना की सफलता में वातावरण की महत्ता १०.१
वातावरण की महिमा गायी ऋषियों और मनीषियों ने १०.६
दिव्य भूमि, दिव्य वातावरण १०.१३
उच्चस्तरीय प्रयोजन के लिये उपयुक्त वातावरण १०.१५
व्यक्तित्व को परिष्कृत कर सकने वाला वातावरण १०.१६
युग तीर्थ में साधना का विशेष महत्त्व १०.२३



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मवर्चस की अतिफलदायी चान्द्रायण साधना

अध्यात्म क्षेत्र की उच्चस्तरीय सफलताओं का सुनिश्चित राजमार्ग

भौतिक क्षेत्र की सफलताएँ योग्यता, पुरुषार्थ एवं साधनों पर निर्भर हैं। आमतौर से परिस्थितियाँ तदनुरूप ही बनती हैं। अपवाद तो कभी-कभी ही होते हैं। बिना योग्यता, बिना पुरुषार्थ एवं बिना साधनों के भी किसी को कारूँ का गड़ा खजाना हाथ लग जाय, छप्पर फाड़कर नरसी के आँगन में हुण्डी बरसने लगे तो इसे कोई नियम नहीं, चमत्कार ही कहा जायगा। वैसी आशा लगाकर बैठे रहने वाले, सफलताओं का मूल्य चुकाने की आवश्यकता न समझने वाले व्यवहार जगत में सनकी माने और उपहासास्पद समझे जाते हैं। नियति-विधान का उल्लंघन करके, उचित मूल्य पर उचित वस्तुएँ खरीदने की परम्परा को झुठलाने वाली पगडण्डियाँ ढूँढ़ने वाले पाने के स्थान पर खोते ही खोते रहते हैं। लम्बा मार्ग चलकर लक्ष्य तक पहुँचने की तैयारी करना ही बुद्धिमत्ता है, यथार्थवादिता इसी में है। बिना पंखों के कल्पना लोक में उड़ान उड़ने वाले बहिरंग जीवन में, व्यवहार क्षेत्र में कदाचित् कभी कोई सफल हुए हों।

अध्यात्म-क्षेत्र सूक्ष्म, अदृश्य, अविज्ञात जैसा लगता भर है। वस्तुतः वह भी अपने स्थान पर भौतिक जगत की तरह सुस्थिर और सुव्यवस्थित है। आँखों से न दीख पड़ने पर भी उसकी सत्ता सन्देह से परे है। शरीर दीखता है, प्राण नहीं। प्राण की नाप-तौल न तो इन्द्रिय शक्ति से हो सकती है और न किसी यंत्र-उपकरण से, फिर भी उसकी सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। मरणोत्तर जीवन का अस्तित्व भी ऐसा ही है, जिसका यांत्रिक पर्यवेक्षण नहीं हो सकता। इतने पर भी वह पुरातन की तरह आधुनिक निर्धारणों से ही अपने अस्तित्व का परिचय देता है। विचारों की इच्छा-शक्ति, साहस आदि अदृश्य प्रसंगों की विशिष्टता एवं परिणति से कोई इन्कार नहीं कर सकता। यह अदृश्य जगत के अनेकानेक प्रमाणों में से कुछ हैं। यह क्षेत्र अव्यवस्थित नहीं है। अणुओं और तरंगों से विनिर्मित पदार्थ जगत की तरह ही उसका भी सुनिश्चित और व्यापक अस्तित्व है, उसकी भी गतिविधियाँ चलती और प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अस्तु उसके भी अपने सुनिश्चित नियम, विधान और अनुशासन होने का तथ्य भी स्वीकारना होगा। अन्धेरगर्दी, अराजकता, मनमानी, अदृश्य जगत में भी न चलती है और न टिकती-ठहरती है। अतः अदृश्य जगत के सम्बन्ध में भी यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि वहाँ किसी नियम-अनुबन्ध की आशा नहीं है। 'अँधेर नगरी बेबूझ राजा' की युक्ति सुनी तो जाती है, पर देखी कहीं नहीं गई। हर क्षेत्र के अपने-अपने नियम, विधान, अनुशासन हैं। अध्यात्म क्षेत्र भी उसका अपवाद नहीं हो सकता। सृष्टा की इस समूची कृति में कहीं भी अव्यवस्था नहीं है। यहाँ तक कि भूकम्प-तूफान जैसी अप्रत्याशित यदा-कदा होने वाली घटनाएँ भी प्रकृति के सुनिश्चित नियमों के अन्तर्गत ही होती हैं, भले ही उन्हें हम अभी पूरी तरह न समझ पाये हों।

अध्यात्म क्षेत्र का तत्वज्ञान, विधान, स्वरूप और प्रतिफल समझने वालों को इस तथ्य को हृदयंगम करना ही होगा कि इस क्षेत्र के सुनिश्चित निर्धारण और अनुशासन सृष्टा ने बनाये और सुरक्षित रखे हैं। उन्हीं को समझाने-अपनाने से काम चलेगा। अँधेरे में ढेला फेंकते रहने वाले अपना परिश्रम निरर्थक गँवाते हैं। निशाना साधने में सफलता उन्हें नहीं मिल पाती। अन्धविश्वासों और मूढ़-मान्यताओं के आधार पर तथ्यों को सही मान लेने की भ्रान्ति किसी भी विवेकशील को नहीं अपनानी चाहिए। आहार क्षेत्र में मसालों का प्रचलन, जलाने, भूनने का रिवाज सर्वत्र प्रचलित है। नमक और शक्कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बिना ग्रास गले से उतरते ही नहीं, फिर भी नमक (सोडियम क्लोराइड) एक सीधा विष है और उसका प्रभाव आरोग्य के लिए विघातक हो सकता है—इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता है। सिगरेट, चाय से लेकर शराब तक के अनेकानेक नशे होठों से बुरी तरह सट गये हैं। लोक प्रचलन क्षेत्र में इनकी धूम है, फिर भी उनके औचित्य का समर्थन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। सामाजिक क्षेत्र में रंगभेद, वर्णभेद, लिंगभेद आदि के नाम पर चलने वाली विषमता न जाने कब से चली आ रही है और न जाने कब तक चलती रहेगी ? खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं-इसे कौन नहीं जानता, फिर भी यह कुप्रचलन शिक्षितों और अशिक्षितों को समान रूप से अपनाते हुए आये दिन दीखते हैं। ऐसी अनेकानेक मूढ़-मान्यताओं में एक यह भी है कि अदृश्य जगत का कोई विधान-अनुशासन नहीं है। उसमें कोई भी चमत्कार किसी भी विडम्बना के सहारे, कुछ भी लाभ अर्जित कर सकने में समर्थ हो सकता है। इस भ्रान्ति ने अध्यात्म क्षेत्र में एक प्रकार की अराजकता उत्पन्न कर दी है। लोगों ने मनमानी कल्पनायें की हैं, मनमाने अर्थ लगाये हैं और मनमाने हथकण्डे अपनाये हैं। किसी को भी कुछ भी कर बैठने की छूट है। रस्सा किसी के हाथ-पैरों से बँधा है, विचार खूंटे से कहीं और बँधे होते हैं। इस छूट के रहते हुए भी प्रतिफल के सम्बन्ध में सभी अनुशासन से बँधे हैं। करता कोई कुछ भी रहे, परिणाम के सम्बन्ध में नियति-व्यवस्था पर ही आश्रित रहना पड़ेगा। कुछ करने वाले को कुछ भी परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए। सुनिश्चित परिणामों की आशा करने वालों को गणितीय सिद्धान्त समझने ही नहीं अपनाने भी होंगे।

अध्यात्म क्षेत्र की आश्चर्यजनक, अवास्तविक और भयावह मान्यता यह है कि, कुछ जन्त्र-मन्त्र की टन्ट-घन्ट करने से देवताओं को जाल में जकड़ा और मनमर्जी की मनोकामनायें पूरी करने के लिए विवश किया जा सकता है। इस भ्रम जाल ने मनुष्य जाति को बेतरह भटकाया है। ठोकरों पर ठोकर, असफलताओं पर असफलता प्राप्त करते रहने पर भी न जाने यह मान्यता क्यों नहीं हटती कि बिना मूल्य या कम मूल्य में उच्चस्तरीय सम्पदायें, सफलतायें प्राप्त कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है ? देवताओं को न जाने क्यों लोगों ने इतना हेय स्तर मान लिया है कि किसी की पात्रता, प्रामाणिकता परखे बिना मात्र पूजा-उपचार के अथवा ऐसे ही गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने के बदले माँगे हुए वरदान बरसाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। यदि वस्तुतः ऐसा होता तो उसे अदृश्य जगत की अराजकता, अन्धेरगर्दी के अतिरिक्त और क्या नाम दिया जाता। जहाँ पात्रता, पराक्रम की कोई आवश्यकता न समझी जाय, मात्र छलभरी मनुहार ही अपनाने भर से उल्लू सीधा होता रहे तो उसे क्या कहा और समझा जाय, यह विज्ञजनों का विचारणीय विषय है।

पूजा की जादुई क्षमता, गिड़गिड़ाने भर से मनचाही सम्पदा किस आधार पर सही मानी जाती है, इसका कोई तुक किसी भी प्रकार नहीं बैठता। देव-प्रतिमाओं की दर्शन-झाँकी करते-फिरते और उन पर फूल-पत्ते चढ़ाने वाले न जाने उस नगण्य से क्रिया, कौतुक के बदले क्या-क्या मनौती माँगते हैं ? तथाकथित संत, महात्माओं के दर्शन भर करने के लिए आतुर लोग तत्वदर्शन से सर्वथा अपरिचित प्रतीत होते हैं। वे आँखों से छवि देखने भर को ही दर्शन मान बैठे हैं और इतने भर से अपनी भक्ति-भावना का परिचय प्रस्तुत करते और मनचाहे वरदान पाने की अपेक्षा करते हैं। इस मान्यता के पीछे क्या सिद्धांत काम करता होगा, यह खोज करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। दर्शन-झाँकी करने भर से दैवी अनुग्रह बरसने लगे तो इसका अर्थ यह होगा कि आत्म-परिष्कार, जीवन-शोधन, तप-साधन जैसे कष्टसाध्य प्रतिपादन करने और वैसा कराने के लिए कहने वाले नितान्त मूर्ख हैं। जो काम चुटकी बजाते बिना किसी श्रम-त्याग के, उथली विडम्बनायें अपनाने भर से पूरा हो सकता है, उसके लिए कोई कष्टसाध्य रीति-नीति अपनाने के झंझट में क्यों पड़ेगा ?

मनुहार करने भर से दैवी अनुकम्पा बरसने लगने की मान्यता बाल-बुद्धि की परिचायक है। लेने वाले के हिस्से में ही सारी चतुरता नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आई, कुछ तो परख देने वाले में भी होती है। अपनी सुयोग्य कन्या कोई किसी भी ऐरे-गैरे याचक के पल्ले बाँधने और माँगने वालों की मनोकामना पूरी करने के लिए तैयार नहीं होता है। फिर दैवी अनुकम्पा का क्षेत्र ही क्यों ऐसा माना जाय कि वहाँ माँगने या पूजा-अर्चना की भोंड़ी लकीर पीट देने से ही मनमानी सफलता पाने का अधिकार मिल गया। यदि दैवी शक्तियाँ वस्तुतः ऐसे ही अनुबूझ हों तो उन्हें भी विवेक शून्य कहा जायगा और अध्यात्म क्षेत्र में अनुशासनहीनता फैलाने, नियम-मर्यादा समाप्त करने का दोषी ठहराया जायगा।

भौतिक जगत में सस्ते में बहुमूल्य पाने का नियम नहीं है। यहाँ सब कुछ प्रामाणिकता और पुरुषार्थ के आधार पर खरीदा जाता है। विज्ञजनों को अध्यात्म जगत में भी इसी विधान प्रचलन की आशा करनी चाहिए। जेबकटी, लूटमार, अनैतिकों को और जादुई कौतुक बाल-बुद्धि को आकर्षित कर सकते हैं। विज्ञजन इसे अनुचित मानते और लाभ कम घाटा अधिक देखकर मुँह मोड़ लेते हैं। जिन्हें वस्तुतः अध्यात्म जगत का स्वरूप समझने में रुचि हो उन्हें उसके नियम-निर्धारणों को भी समझना चाहिए। विज्ञान ने यही किया है और श्रेय लिया है। पुरातन अध्यात्म का स्वरूप भी ऐसा ही था। उसमें तत्वदर्शन का महत्त्व समझा जाता था, ब्रह्म-विद्या के नीति-नियमों को अपनाया जाता था, अभीष्ट प्रगति के लिये तद्नुरूप साधना का मूल्य चुकाया जाता था। आज तो सब कुछ उल्टा ही उल्टा दीखता है। भ्रम-जंजाल सघन अंधकार की तरह इतना गहन है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता। लूटमार के लिए आतुर लोग अपने को भक्त कहते और भक्ति के प्रतिफल का दावेदार मानते हैं। मनोकामना पूर्ण न होने पर गाली देने से लेकर अश्रद्धा व्यक्त करने में उग्र रूप धारण करते देखे जाते हैं। प्रचलित मान्यताओं को क्या कहा जाय ? उनके प्रचलन का क्या आधार खोजा जाय ? और उन्हें अपनाने वालों को बुद्धिमान, अबुद्धिमान क्या कहा जाय ? कुछ कहते नहीं बनता। समझ कुछ काम ही नहीं करती।

कौन क्या सोचता, क्या कहता और क्या करता है ? इस उलझन को सिर ओढ़ने की अपेक्षा उचित यही है कि हम तथ्यों को समझें और सुनिश्चित राजमार्ग पर चलें । उचित मूल्य चुकायें और बहुमूल्य सफलतायें पायें। इन हेय प्रचलित मान्यताओं का आश्रय लेने और महत्त्व देने से कुछ बनेगा नहीं। हमें तथ्यान्वेषी होना चाहिए और यथार्थ को अपनाने में अपनी स्वतन्त्र चेतना का अवलम्बन करना चाहिए। लोग क्या कहते और क्या करते हैं, इस जंजाल में उलझने का अर्थ, अन्धी भेड़ों के पीछे चल पड़ना और अन्ततः अपने को भी उसी गर्त में गिराकर वैसी ही दुर्गति करा लेना होगा। ऐसे प्रसंगों में स्वतन्त्र निर्णय लेना और अपना पथ आप चुनना चाहिए। ऐसा साहस उभारने में कवीन्द्र-रवीन्द्र का यह उद्बोधन अपनाये जाने योग्य है, जिसमें उन्होंने भाव भरे स्वर में गाया था—**'एकला चलो रे।'**

अध्यात्म तत्वज्ञान का प्रथम निर्धारण है—आत्म-शोधन, आत्म-परिष्कार अर्थात् संचित मल, आवरण, विक्षेपों का, कषाय-कल्मषों का, संचित कुसंस्कारों का निराकरण, उन्मूलन। इसे रंगाई से पूर्व की धुलाई, बुवाई से पूर्व की जुताई कह सकते हैं। हम समस्याओं, चिंताओं, विपत्तियों के घटाटोप, दृष्टिकोण की विकृति, आदर्तों की विपन्नता तथा गतिविधियों में घुसी हुई अवांछनीयता के कारण जीवन-आकाश पर छाते, उपल वृष्टि से वर्तमान को संकटग्रस्त तथा भविष्य को अन्धकारपूर्ण बनाते हैं। इस विपत्ति का निराकरण आत्म-शोधन के बिना और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता है। नाली में जमी सड़ी कीचड़ न हटे तो उस उद्गम से जन्मते कृमि-कीटकों को हटाते रहने पर भी पिण्ड छूटने वाला नहीं है। तप-साधना का उद्देश्य संचित कुसंस्कारों के विरुद्ध अनुनय-विनय, सहन-सिखावन को निरर्थक समझते हुए तेजस्वी विद्रोह खड़ा कर देना है।

अध्यात्म क्षेत्र की सम्पदायें भौतिक क्षेत्र से असंख्य गुनी बड़ी हैं। शरीर में प्राण का महत्त्व अत्यधिक है और सम्पदाओं की तुलना में विभूतियों का महत्त्व अत्यधिक है। बड़प्पन अपनी जगह और मानवता अपनी जगह। वैभव और वर्चस की कोई तुलना नहीं। अभ्यास न रहने, उदाहरण न दीखने, अनुभवजन्य प्रेरणा न मिलने से अध्यात्म की गरिमा एक प्रकार से अविज्ञात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं, लुप्त प्रायः भी हो चली है। पूजा और मनोकामना का तालमेल बिठाने वाली विडम्बना ने हर किसी को सस्ती लूटमार के भ्रम-जंजाल में फाँस दिया है। ऐसी दशा में अध्यात्म-विभूतियों को विज्ञान की उपलब्धियों की तुलना में विशिष्ट और वरिष्ठ सिद्ध कर सकना कैसे बन पड़े ? यदि यह समझा और समझाया जा सके कि बलिष्ठता, सुन्दरता, कुशलता, शिक्षा, प्रतिभा, पदवी की तुलना में ओजस्, तेजस्, वर्चस् से सम्पन्न व्यक्तित्व की क्षमता अत्यधिक है, तो लोग अपनी समूची जीवन-सम्पदा पेट प्रजनन के कुचक्र में ही समाप्त न करें, वरन् आत्मा को बलिष्ठता प्रदान करने और अध्यात्म जगत के साथ जुड़े हुए देवत्व का सम्पादन करने की दिशा धारा भी अपनाने लगें।

उदाहरण न मिलने पर सन्देह और अविश्वास रहना स्वाभाविक है। इसकी व्यापकता मिटाने का एक ही उपाय है कि भूतकाल के ऋषि-मनीषियों की, भक्तजनों की दुहाई देते रहने की अपेक्षा ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करें, जिनके आधार पर आत्मक्षेत्र की गरिमा और उपलब्धियों का प्रत्यक्ष प्रतिफल देखने को मिल सके। यह तभी सम्भव है जब अध्यात्म क्षेत्र का स्वरूप, विधान एवं अनुशासन सही रूप में समझने और अपनाने का सरंजाम जुटे, आधार बने। इसके लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा और समझना होगा। अध्यात्म की प्रेरणायें-इस क्षेत्र के अनुयायियों को आत्मचिंतन, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास के लिए बाध्य करती हैं। आत्म सत्ता का परिष्कृत स्वरूप ही इस योग्य बनता है कि सूक्ष्म लोक की अधिष्ठात्री देव-चेतना के साथ आदान-प्रदान सम्भव हो सके। देव-अनुग्रह की बात इससे कम में बनती ही नहीं। पूजा, उपचारों के अनेकानेक विधि-विधान उच्चस्तरीय सत्ता को लुभाने-फुसलाने के लिए विनिर्मित नहीं किए गये हैं वरन् उनका निर्धारण इसलिए हुआ है कि साधक को अपने अन्तराल में भाव-श्रद्धा, मनःसंस्थान में दूरदर्शी विवेकवान प्रज्ञा तथा प्रखर पुरुषार्थ से भरी-पूरी निष्ठा का उत्पादन-अभिवर्धन सम्भव हो सके।

वेदान्त के 'अहमात्मा ब्रह्म', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'तत्वमसि', 'शिवोऽहम्', 'सच्चिदानन्दोऽहम्' आदि सूत्रों में आत्मा के परिष्कृत स्वरूप को ही परमात्मा माना है। आत्मा का परमात्मा में विलय-परिवर्तन ही ईश्वर-प्राप्ति, ब्रह्म निर्वाण, जीवन मुक्ति आदि नामों से प्रतिपादित किया गया है। समूची ब्रह्म-विद्या का सार-संक्षेप इतना ही है कि जीवन को, व्यक्तित्व को उत्कृष्ट आदर्शवादिता से ओत-प्रोत बनाने वाले चिंतन एवं आचरण का आश्रय लिया जाय। इसके लिए कुछ व्यायाम, उपचार, प्रयोगों की सहायता ली जाती है, उन्हीं को तप-साधना एवं योगाभ्यास कहते हैं। यह समझने में भारी भूल हुई है कि यह बरगलाने वाले प्रयोग हैं। अपनी तराजू से ही परमात्मा को तौलना गलती है। प्रशंसा, रिश्वत, चापलूसी जैसे प्रयोग घटिया स्तर वालों को ही प्रभावित करते हैं। व्यक्तिगत साँठ-गाँठ के डोरे उन्हीं पर डाले जा सकते हैं। ब्रह्म सत्ता का स्तर इससे कहीं अधिक ऊँचा है। वहाँ पक्षपात करने-कराने की चतुरता किसी भी प्रकार पहुँचती नहीं। पात्रता और प्रामाणिकता के अनुरूप बड़े अनुदान-वरदान देने, बड़े उत्तरदायित्व सौंपने की नीति की ही वहाँ मान्यता है, न्यायाधीश यही करते हैं। चुनाव और नियुक्ति करने वाले अधिकारियों तक में जब प्रतियोगिता जीतने वालों को विजयी घोषित करने की नीति अपनाई जाती है, तो देवसत्ता के उत्कृष्ट स्तर को देखते हुए किसी को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि यहाँ चतुरता की दाल गलती है और खिलवाड़ जैसे पूजा-उपचार के सहारे महत्त्वपूर्ण अनुदान-वरदान झटकने में सफलता मिल जायेगी।

भ्रान्तियों का निराकरण हो सके तो यथार्थवादी रीति-नीति अपनाने का अवसर मिले। सही राह पर चला जाय तो अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो। ब्रह्मविद्या का सार संक्षेप इतना ही है कि साधक अपनी संचित कुसंस्कारिता से जूझे और उनके स्थान पर भावना, विचारणा एवं कार्यपद्धति में उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए भागीरथी संकल्प अपनाये और पवनपुत्र जैसा समुद्र लाँघने का पराक्रम कर दिखाये।

देवता के परिकार में ही सिद्ध पुरुष भी आते हैं। सिद्ध पुरुषों के अनुग्रह, आशीर्वाद, वरदान से भी ऐसे ही लाभों की आशा-अपेक्षा की जाती है, जैसी कि देवताओं से। यहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचारणीय प्रश्न एक ही है कि ऋषि-कल्प लोग ऐसे वरदान देने में समर्थ हैं तो वह शक्ति उन्हें कहाँ से मिली ? किस प्रकार उपलब्ध होती है ? उत्तर एक ही है—आत्म-परिष्कार की तप व साधना से। इस प्रकार देव-अनुग्रह कोई अनायास उपलब्ध होने वाला भाग्योदय नहीं रह जाता वरन् प्रयत्न एवं पुरुषार्थ की कीमत पर खरीदा हुआ वैभव ही सिद्ध होता है। वे कुछ पाने के अधिकारी तभी बने जब तदनुरूप पात्रता सिद्ध करने में खरे सिद्ध हुए। विचारणीय यह है कि पात्रता के सिद्धांत पर अटूट विश्वास रखने वाले, स्वयं को उस योग्य बनाने के लिए गलाने-तपाने वाले क्या इतने मूर्ख हो सकते हैं, जो अपनी ऐसी कठिन कमाई को उन चतुर लोगों पर बिखेरते फिरें जिनमें न तो कोई पात्रता है और न मनोकामनाओं में कोई आदर्शवादिता। कष्ट-पीड़ितों की सहायता एक बात है, उसे सहृदयतापरक मानवोचित गुण कहा जा सकता है और इस प्रकार के सहयोग को परोपकार कहा जा सकता है। उसका औचित्य भी है, किन्तु जिसके सिर पर रावण जैसी वितृष्णा पूरी करने का भूत सवार है और जो विलास, वैभव एवं अहंकार की पूर्ति के लिए ऋषियों, सिद्ध पुरुषों का तप वरदान के रूप में माँगते हैं, उनकी माँग को क्यों कर न्यायोचित माना जायेगा और क्यों उसकी पूर्ति के लिए कोई विवेकवान्, अध्यात्मवादी सत्ता सहमत होगी। जो अन्यथा सोचते हैं, वे भूल करते हैं और स्वार्थान्ध होकर औचित्य की परम्परा को ताक पर रख देते हैं। अपनी आत्म-सत्ता को देव-अनुग्रह के लिए उपयुक्त सिद्ध न कर सकने वाले लोग प्रायः निराश रहते हैं और अध्यात्म बदनाम होता है। देवता हों या सिद्ध पुरुष, वे प्रामाणिक व्यक्तियों को देते मात्र एक ही शर्त पर हैं कि वे उसका उपयोग विलास में नहीं वरन् लोकमंगल के उच्चस्तरीय प्रयोजन तक ही सीमित रखें।

इस पुस्तक में अध्यात्म-विज्ञान की विधि-व्यवस्था, ब्रह्मविद्या को सार-संक्षेप में समझाने का प्रयत्न किया गया है ताकि तथ्यों को समझ लेने के उपरांत इस क्षेत्र का महत्त्व समझने वाले, प्रवेश करने के इच्छुक और कुछ कहने योग्य उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले साहसी प्रगति पथ पर चल सकें और वह प्राप्त कर सकें जो यथार्थवादियों को उपलब्ध होता रहा है, होता रहेगा।

'आत्म-शोधन को तप कहते हैं और आत्म-क्षेत्र में उच्चस्तरीय विशिष्टताओं के समावेश को योग-साधना। इन्हीं दो कदमों को क्रमिक गति से बढ़ाते हुए जीवन लक्ष्य तक पहुँचाने वाले राजमार्ग पर यात्रा-प्रवास निर्बाध रूप से सम्पन्न होता है। यही है कल्प-साधना का तत्वज्ञान और विधि-विधान।' कायाकल्प का प्रचलित अर्थ है-वृद्धावस्था को नवयौवन में बदल देना। यह अलंकारिक मान्यता है। उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन के चक्र में उभार और अवसान दोनों का समान महत्त्व है। दीर्घायुष्य सम्भव है, पर प्रवाह को उलट देना कठिन। वृद्धावस्था के उपरान्त यौवन, यौवन के बाद बचपन, बचपन के बाद भ्रूण स्थिति को प्राप्त कर सकना कठिन है। नियति को ऐसा परिवर्तन स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं किया जा सकता। मनुष्य की इच्छा भले ही कुछ भी क्यों न रहे। इस आधार पर वृद्धावस्था को कष्टसाध्य न होने देने और निरोग दीर्घायुष्य का आनन्द लेते रहने की सम्भावना को ही 'कल्प' मान लेना चाहिए और दूसरों की तुलना में अपने को अधिक सौभाग्यशाली मानकर सन्तोष करना चाहिए।

आत्मशोधन को, तपश्चर्या को साधना का प्रधान अंग माना गया है, क्योंकि उससे संचित कषाय-कल्मषों का निराकरण होता है और संस्कारों को फलित होने का अवसर मिलता है। संचित दुष्कर्म ही साधना की सफलता में प्रधान रूप से बाधक होते हैं। यदि उनका निवारण-निराकरण किसी उपाय से सम्भव हो सके तो अभीष्ट सफलता सहज ही मिलती चली जायेगी। यही बात संचित पुण्य-कर्मों के बहुत देर में फल देने वाली व्यवस्था में जल्दी भी हो सकती है। द्रुतगामी वाहनों पर सवार होकर पैदल चलने से देर में सम्पन्न होने वाली यात्रा अपेक्षाकृत कहीं जल्दी पूरी की जा सकती है। हमारे वर्तमान प्रयत्न ही सब कुछ नहीं होते उनमें संचित-सत्संग्रहों का भी योगदान होता है। उनका योगदान मिलने से सफलताओं का परिणाम स्वल्प प्रयत्न से भी इतना अधिक हो सकता है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़े।

तपश्चर्या द्वारा संचित-संग्रहों में से अशुभ का निराकरण और शुभ, सुखद कर्मों के शीघ्र परिपाक होने का उद्देश्य पूरा होता है। तपश्चर्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शब्द तपं से बना है। तप कहते हैं गर्मी को, ऊष्मा को गर्मी के लिए अग्नि शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। अग्नि से दो काम होते हैं-एक जलाना, नष्ट करना और दूसरे शक्ति सामर्थ्य को असंख्य गुना बढ़ा देना। धातुओं में मिली हुई विकृतियाँ, उन्हें भट्टी में डालने से नष्ट हो जाती हैं। कूड़े-कचरे को आग लगा देने से उसकी सड़न व दुर्गन्ध से छुटकारा मिल जाता है। इसके अतिरिक्त यह गर्मी ही शक्ति बनकर भी काम करती है। ठण्डी बारूद को विस्फोटक बनाने का काम चिनगारी ही करती है। पानी को वह द्रुतगति से घसीटती चली जाती है। तेल को शक्ति में परिणित करने का काम भी आग ही करती है। बिजली भी आग का ही एक स्वरूप है। अणु विस्फोट से निकलने वाले विकिरण भी अग्नि ही होते हैं। शरीर को जीवित रखने और अवयवों के संचालन में जठराग्नि ही काम करती है। सूर्य से लेकर चूल्हे तक का ही सर्वत्र साम्राज्य छाया हुआ है। पदार्थ में हलचल और प्राणी में चिन्तन की जो सामर्थ्य काम करती दीखती है, उसे अग्नि के ही भेद-उपभेदों के अन्तर्गत गिना जा सकता है। अध्यात्म क्षेत्र में उसके उत्पन्न करने की पद्धति का नाम तप है। तपस्वी ही ओजस्वी, तेजस्वी और मनस्वी कहलाते हैं। यह सभी शब्द 'शक्ति मन्त्रों' के प्रतीक हैं। प्रकाश अग्नि का ही गुण है। प्रकाश को जीवन के अर्थ से भी प्रयुक्त किया जाता है और ब्रह्म को ज्योति के रूप में ध्यान करने तथा उसका विवेचन-वर्णन करने की परम्परा है।

न केवल अध्यात्म क्षेत्र में वरन् भौतिक जीवन में भी यही सिद्धान्त काम करता है। रक्त विकार जैसे रोगों को दूर करने के लिए कुशल वैद्य पेट की संफाई करने के उपरान्त अन्य रक्त-शोधक उपचार करते हैं। काया-कल्प चिकित्सा में बलवर्धक औषधियों का नहीं, संचित मलों का निष्कासन करने वाले उपायों को ही प्रधान रूप से कार्यान्वित किया जाता है। वमन, विवेचन, स्वेदन आदि क्रियाओं द्वारा मल निष्कासन का ही प्रयास किया जाता है। इसमें जितनी सफलता मिलती जाती है, उसी अनुपात से जरा-जीर्ण रोगग्रस्त व्यक्ति भी आरोग्य लाभ करता और बलिष्ठ बनता चला जाता है। काया-कल्प चिकित्सा का विज्ञान इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

दोष-दुर्गुणों के रहते चिरस्थाई प्रगति के पथ पर चल सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं हुआ है। फूटे बर्तन में दूध दुहने से पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पशु पालने और दुहने का श्रम निरर्थक चला जाता है। कषाय-कल्मषों से, दोष, दुर्गुणों से लड़ने के लिए जो संघर्ष, पुरुषार्थ करना पड़ता है, उसी के विधि-विधानों को तप-साधन कहते हैं। तपश्चर्या का तत्वदर्शन आत्मशोधन की इसी आवश्यकता को पूरी करने के लिए गढ़ा गया है। उसका उद्देश्य देवताओं के सम्मुख दृढ़वादिता अपनाकर मनोकामना पूरी करने का दुराग्रह ठानना नहीं, वरन् आत्मशोधन के सहारे अपनी पात्रता का सम्वर्धन करना है। गड्ढा जितना गहरा होता है, पात्र जितना बड़ा होता है उसी अनुपात से वर्षा का जल उसमें जमा होता चलता है।

आन्तरिक सत्पात्रता का सम्वर्धन करने के लिए तप-साधना को ही उपाय-उपचार बताया है। चिड़िया की छाती की गर्मी पाकर ही अण्डे पकते हैं। पौधों को विकसित होने और फूलने-फलने में गर्मी का कितना बड़ा योगदान होता है, इसे किसान और माली भली-भाँति जानते हैं। जप का समान्तर शब्द तप है। बोल-चाल की भाषा में प्रायः जप-तप दोनों को मिलाकर बोलने का रिवाज है। ब्रह्मवर्चस अभियान में तप-साधना को प्रमुखता दी गई है। 'वर्चस' शब्द ही तप का पर्यायवाची है। उपासनाओं के साथ कई प्रकार की छोटी-बड़ी तप-साधनाओं की शृंखला जोड़ी गई है। उसकी आधार शिला चान्द्रायण व्रत पर रखी गई समझी जा सकती है। यह संचित कुसंस्कारों के परिशोधन और प्रसुप्त दिव्य शक्तियों के जागरण के लिए शरीर और मन के सुविस्तृत क्षेत्र में अनुकूल वातावरण उत्पन्न करता है। भागीरथ ने गंगा अवतरण के लिए कई प्रकार के उपासना-उपचार किये थे। गंगा आराधना और शिव-अभ्यर्थना की साधना वे लम्बे समय तक करते रहे और अपने उद्देश्य में सफल होकर रहे, पर यह सफलता तभी हाथ लगी जब उपासना-उपचार के साथ तपश्चर्या की अग्नि शक्ति का उसमें समावेश हो सका। यदि वे मात्र पूजा-आराधना ही करते रहते और तप के कष्टसाध्य झंझट से बचकर रहना चाहते तो उन्हें उससे अधिक कुछ भी न मिलता जो शिव मन्दिरों और गंगा-मन्दिरों के पुजारियों को नगण्य-सा प्रतिफल उपलब्ध होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मवर्चस साधना में सन्निहित चांद्रायण तपश्चर्या का अभ्यास एक प्रकार से प्रखरता के उत्पादन का जीवन-दर्शन है। उसे अपनाने वाला न केवल आत्मिक क्षेत्र की सफलताओं का अधिकारी बनता है, वरन् भौतिक क्षेत्र में भी, लोक-व्यवहार में भी उसकी सफलतायें दूसरों की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी हो सकती हैं। इसलिए वह न केवल आत्मिक प्रगति के इच्छुकों के लिए वरन् भौतिक समर्थता प्राप्त करने के उत्सुकजनों के लिए भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

उपयुक्त मार्ग यही है कि साधना विज्ञान को सही रीति से अपनाया जाय। उचित मूल्य चुकाकर महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने के सिद्धान्त पर विश्वास किया जाय। उपासनात्मक प्रक्रिया अपनाने के साथ या उससे भी पहले आत्मशोधन की महत्ता और आवश्यकता समझी जाय। प्रगति के प्रयासों में उसे अनिवार्य रूप में सम्मिलित रखा जाय। योग और तप दोनों एक-दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। इन्हें धुलाई और रंगाई की उपमा दी जा सकती है। तप को धुलाई और योग को रंगाई कहा जा सकता है। मैले-कुचैले, चिकनाई और गन्दगी से सने कपड़े पर कोई भी रंग नहीं चढ़ता और रंग का पैसा एवं रंगाई का श्रम निरर्थक चला जाता है। इसी प्रकार साधना मार्ग पर चलते हुए आत्मिक प्रगति के साथ जुड़ी हुई अति महत्त्वपूर्ण सफलतायें जिन्हें सिद्धियों या विभूतियों के नाम से जाना जाता है—प्राप्त कर सकना तभी सम्भव हो सकता है, जब आत्मशोधन और आत्म-विकास की दोनों ही प्रक्रियायें समानान्तर चलती रहें।

अपनी अवाँछनीय आदतों और मान्यताओं को उलटने के लिए अन्तःक्षेत्र में जमी कुसंस्कारिता से संघर्ष करना पड़ता है और आदर्श पालन के लिए कष्ट, कठिनाई को जान-बूझकर आमन्त्रित करना और हँसते-हँसते सहना होता है। इसी स्तर के हल्के-भारी क्रिया-कलापों को तपस्या कहते हैं। व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, अभ्यस्त सुविधाओं का परित्याग, मितव्यता एवं सादगी का वरण, सत्कार्यों के लिए श्रमदान एवं साधनों का अंशदान इसी वर्ग में आते हैं। परमार्थ के लिए किए जाने वाले सभी पुण्य-प्रयास इसी श्रेणी में गिने जा सकते हैं। स्वयं कष्ट सहकर उस बचत का लाभ दूसरों को देने से समस्त उपचारों को तपश्चर्या की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है।

ब्रह्मवर्चस साधना में पंचकोशीय योग साधना, उच्चस्तरीय गायत्री उपासना और चांद्रायण व्रत का समावेश रखा गया है। एक महीने की अवधि में की जाने वाली इस साधना में चांद्रायण व्रत के अतिरिक्त सवालक्ष का पुरश्चरण, पंचकोशों के अनावरण की पाँच साधनायें और कुण्डलिनी जागरण का प्रारम्भिक चरण भी पूरा कराया जाता है।

चांद्रायण व्रत की पुण्य-प्रक्रिया के पाँच प्रमुख भाग हैं—(१) महीने भर तक आहार घटाने-बढाने वाला उपवास (२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण (३) आंतरिक परिवर्तन कर सकने वाले वातावरण में निवास और अनुशासन का प्रतिपालन (४) अन्तःकरण को परिष्कृत करने वाला योगाभ्यास युक्त तपसाधना और (५) दुष्कर्मों की क्षतिपूर्ति और पुण्यवर्धन की परमार्थ परायणता। इन पाँच प्रक्रियाओं को पूरा करने से चांद्रायण व्रत सम्पन्न होता है। केवल एक महीने का उपवास ही चांद्रायण नहीं है। एक महीने की निर्धारित ब्रह्मवर्चस साधना में इन पाँचों का समन्वय है।

उपवास

पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक महीने का उपवास रहता है। पूर्णिमा को पूरा भोजन करके उसका चौदहवाँ अंश प्रतिदिन घटाया जाता है। इसके बाद पूर्ण आहार का चौदहवाँ भाग बढाते हुए पूर्णिमा को पूर्ण आहार तक पहुँचना होता हैं। अनभ्यस्त लोगों को शिशु चांद्रायण कराया जाता है और मनस्वी लोगों को अति दुर्बल शरीर और कमजोर मनः स्थिति के लोगों को यह चांद्रायण कठिन पड़ता है, इसलिए इस अवधि में शाक और दूध या छाछ बढ़ाते रहकर सन्तुलन बनाये रहने की सुविधा रखी गई है। हविष्यान्न की एक रोटी को प्रसाद चरु माना गया है, इससे भी कुछ आधार बना रहता है। हविष्यान्न में प्रयुक्त होने वाले जौ, गौमूत्र में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भिगोकर सुखाये और संस्कारित किये जाते हैं। इस प्रकार की विशिष्ट विधि से बने हुए आहार पर ही अपने चौबीस पुरश्चरण पूरे हुए थे। लगभग उसी स्तर के आहार का समावेश ब्रह्मवर्चस साधना सत्र में गायत्री की उच्चस्तरीय साधना करने वालों को मिलता रहे, इसका विशेष प्रबन्ध रखा जाता है।

साधना की अवधि में मात्र गंगाजल पीना होता है। गंगा अति निकट है, वहीं से अपने पीने के लिए सभी साधक स्वयं गंगाजल लाते हैं और उसी से प्यास बुझाते हैं। युवाओं के लिए नित्य गंगा-स्नान में भी कोई कठिनाई नहीं पड़ती। वृद्धों को शीतऋतु में गंगाजल गरम करके स्नान की भी सुविधा रहती है। नित्य प्रातःकाल पंचगव्यों का पान करना होता है। इसके उपरान्त ही अन्य कोई पेय या भोजन मुख में जा सकता है। हविष्यान्न (तिल, जौ और चावल) से बनी एक रोटी-प्रसाद चरु के रूप में तथा अमृत कल्प में आध्यात्मिक अष्ट वर्ग सम्मिलित रहता है। यह आहार स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए शारीरिक काया-कल्प जैसा प्रयोग है। पंचगव्य सेवन, गौमूत्र से संस्कारिता हविष्यान्न का आहार आदि के माध्यम से गौ सम्पर्क भी सधता रहता है।

दूसरे प्रकरण में गुप्त पापों का प्रकटीकरण मात्र ब्रह्मवर्चस के कुलपति के सम्मुख ही किया जाता है। इस प्रकार चित्त की भीतरी परतों पर जमी हुई दुराव की जटिल ग्रन्थियों को खोला जाता है। मानसिक रोगों के निराकरण का, चित्त में दबी हुई कुसंस्कारों की परतों को कुरेदने-खरादने का यह बहुत ही उत्तम उपचार है। जो किया जा चुका उसके परिमार्जन के लिए भी इसी प्रकटीकरण का अंग है। शीर्ष संस्कार इसी प्रयोजन के लिए है। पूर्ण मुण्डन तो नहीं कराया जाता, पर बाल थोड़े छोटे अवश्य हो जाते हैं। जिसका तात्पर्य है, संचित दुष्ट विचारों का परित्याग। बच्चों का मुण्डन संस्कार भी जन्म-जन्मान्तरों की पशु-प्रवृत्तियों को मस्तिष्क में से हटाने के उद्देश्य से ही किया जाता है। बाल छाँटने के अतिरिक्त गौमूत्र, गौमय आदि मन्त्र विधान सहित शीर्ष-संस्कार किया जाता है। साधक अनुभव करता है कि इस धर्मकृत्य के साथ-साथ उसके मनःसंस्थान में भी अति महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहा है।

चांद्रायण में तीर्थ सेवन का भी महत्त्व है। तीर्थ सेवन का उद्देश्य उच्च वातावरण में निवास करना ही इसका उद्देश्य है। वातावरण का मनुष्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। व्यक्तित्व के परिवर्तन प्रयास में वातावरण का परिवर्तन आवश्यक माना गया है। ब्रह्मवर्चस साधना सत्रों में वातावरण के प्रभाव की वैसी समुचित व्यवस्था की गई है। संरक्षण, परिमार्जन और अभिवर्धन के तीनों उद्देश्य पूरे करने वाली त्रिवेणी यहाँ विद्यमान है। दिनचर्या में स्वाध्याय, सत्संग; मनन और चिन्तन के चारों तत्व गुथे हुए हैं। शारीरिक और मानसिक संयम के लिए अनुशासन की कठोर विधि-व्यवस्था का पालन करना पड़ता है। प्रवचन और परामर्श का दैनिक लाभ भी मिलता रहता है। साधकों को अपनी दिनचर्या इतनी अनुशासित और व्यवस्थित रखनी पड़ती है कि उस क्रम के अनुरूप जीवन ढल जाय तो भविष्य में अपने आप को सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक बनने वाली संभावनायें और उसके अनुरूप ढाँचा अपने आप बनने लगता है। अपने व्यक्तित्व में इस प्रकार के अभिनव क्रान्तिकारी परिवर्तन के रूप में वातावरण का प्रभाव केवल रहने के समय तक ही नहीं अपितु निरन्तर अनुभव होता रहता है।

अन्तःकरण और व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाने के लिए व्यक्तित्व को दैवी-संस्कारों से संस्कारित करने के लिए चांद्रायण व्रत के साथ-साथ योगाभ्यास और तप-साधना भी करनी पड़ती है। इस अवधि में सवालक्ष का एक गायत्री पुरश्चरण और पंचमुखी गायत्री का—पंचकोशों के अनावरण का योगाभ्यास भी सम्मिलित है। सवालक्ष का पुरश्चरण और पाँच कोशों के अनावरण की साधना अनिवार्य रूप से करनी होती है। गायत्री यज्ञ में भी नित्य-नियमित रूप से सम्मिलित होना होता है। जप और ध्यान के अतिरिक्त त्राटक, सूर्यवेधन, प्राणायाम, खेचरी मुद्रा, सोहम्-साधना एवं शक्तिचालिनी प्रतिक्रिया भी योग साधना में समाविष्ट है। इन साधनाओं का चेतना के क्षेत्र के पाँच प्राणों का और काया क्षेत्र के पाँच तत्वों का परिष्कार होने के साथ जीवन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिनव प्राण संचार होता है। शास्त्रों में इन साधनाओं के समुच्चय को पंजीकरण योगाभ्यास तथा पंचाग्नि तपश्चर्या कहा है। सर्व साधारण के सध सकने जितना दबाव ही इस एक महीने के साधन क्रम में सम्मिलित किया गया है। गायत्री की पंचमुखी साधना में पंचकोशों के अनावरण को ग्रन्थिवेधन का रहस्य विधान इन्हीं पाँचों साधनाओं के अन्तर्गत आ जाता है।

चांद्रायण तप में दुष्कर्मों से समाज को हुई क्षति पूर्ति का विधान भी है। शास्त्रीय भाषा में इसे इष्टापूर्ति कहा गया है। पापों की क्षति पूर्ति एवं पुण्य-सम्पदा की अभिवृद्धि के लिए चांद्रायण व्रत की पूर्णाहुति के रूप में कुछ अवांछनीयताओं का परित्याग और कुछ परमार्थों को अपनाने का संकल्प करना होता है। संग्रह का अंशदान, तीर्थयात्रा के रूप में धर्म प्रचार का श्रमदान, पुण्य-प्रयोजनों में सहकार, सत्सृजन में योगदान जैसे कुछ ऐसे कदम उठाने के लिए परामर्श दिया जाता है, जिनके सहारे अन्तःकरण पर परिवर्तन को व्यवहार में उतारने की छाप प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगे। चांद्रायण तपश्चर्या का उद्देश्य आन्तरिक काया-कल्प है। यह कल्पना क्षेत्र तक ही सीमित न रह जाय, वरन् व्यवहार में भी परिलक्षित होने लगे—इसके लिए कुछ क्रियात्मक कदम उठाने के लिए वैसा परामर्श मिलता है, जो प्रस्तुत परिस्थितियों में सरलतापूर्वक शक्य हो सके। उपलब्ध सुसंस्कार परिपक्वता के लिए, दूसरों के सम्मुख परिवर्तन का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये कुछ साहसिक कदम उठाने पड़ते हैं। यही चांद्रायण की पूर्णाहुति है।

चांद्रायण व्रत की यह साधना कहीं भी की जा सकती है। किन्तु गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सप्त ऋषियों की तपस्थली का वातावरण इसके लिए सर्वोत्तम है। शान्तिकुंज, गायत्री नगर के आरण्यक को प्राणवान गायत्री तीर्थ बनाये रखने के लिए नित्य यज्ञ, नियमित जप, अखण्ड दीप एवं ब्रह्म संपर्क की दिव्य धाराओं से जोड़कर रखा गया है। दिव्य माता-पिता और गुरु का सान्निध्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपस्थिति जैसा लगता है। इन सब विशेषताओं के रहते हुए चांद्रायण व्रत की साधना ब्रह्मवर्चस साधकों के लिए निश्चिततः प्रभावशाली सिद्ध होगी—ऐसा विश्वास है। प्रसुप्त के जागरण; दिव्य सामर्थ्यों के प्रकटीकरण के लिए ऐसी उच्चस्तरीय साधना की अनिवार्यता एवं महत्ता को अध्यात्म पथ के हर पथिक को समझना चाहिए।

चांद्रायण को कल्प भी कहते हैं। कल्प का वास्तविक तात्पर्य है-अन्तराल का, व्यक्तित्व का, चिंतन का, चरित्र का, दृष्टिकोण का, स्तर का उपयुक्त परिवर्तन-परिष्कार का। यह नितान्त सम्भव है। ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, अंगुलिमाल, बिल्वमंगल, अजामिल आदि अगणित व्यक्ति अवांछनीय कैंचुल को बदलकर देखते-दिखाते पशु से मनुष्य और मनुष्य से देवता बने हैं। सामान्य परिस्थितियों में जन्मे और पले व्यक्ति मूर्धन्य महामानवों में गिने गये हैं। यही वास्तव में कायाकल्प है। इस स्तर की उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए क्या सोचना और क्या करना चाहिए ? इसी की व्याख्या-विवेचना एवं अनुभवपूर्ण क्रिया पद्धति को भली-भाँति यहाँ प्रतिपादित किया गया है। जो समझने, अपनाने का प्रयत्न करेंगे, वे लाभान्वित होकर रहेंगे, ऐसा विश्वास है।

चान्द्रायण तप की शास्त्रीय परम्परा

उपवासपूर्वक सवालक्ष गायत्री अनुष्ठान प्रायः लोग अपने-अपने घरों पर भी करते रहते हैं। उपवास में आमतौर पर आधे पेट से अधिक भोजन नहीं किया जाता। पेटू लोगों की बात अलग है। जो उपवास जैसी तपश्चर्या को भी मात्र आहार परिवर्तन भर समझते हैं और पेट पर अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक बोझ लादते हैं। चान्द्रायण में कुछ मिलाकर आधे पेट भोजन का प्रबन्ध तो हो ही जाता है। ऐसी दशा में चान्द्रायण साधना का वैसा स्वरूप नहीं रह जाता, जैसा कि शास्त्रकारों ने उसका असाधारण माहात्म्य वर्णन किया है।

जिस विशेषता के कारण देखने में साधारण किन्तु परिणाम में महान चान्द्रायण तपश्चर्या का शास्त्रों में माहात्म्य बताया गया है, वह है "आत्मिक काया-कल्प"। इसी के निमित अनेकानेक नियम, संयमों एवं विधि-विधानों का निर्धारण हुआ है। उपवास और जप तो उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रक्रिया के दृश्यमान एवं शारीरिक क्रिया-प्रक्रिया के रूप में सम्पन्न होने वाले उपचार भर है।

वस्तुतः चान्द्रायण को अध्यात्म कल्प उपचार समझा जाना चाहिए और उसके साथ उन सभी प्रयोजनों का महत्त्व समझा जाना चाहिए जो उसके साथ चिन्तन और भावना के रूप में अविच्छिन्न रूप में जुड़े हुए हैं। यदि उस पर ध्यान न दिया जाय और केवल शरीरचर्या वाली प्रक्रिया चलती रहे तो समझना चाहिए कि शास्त्र निर्धारण का एक बहुत छोटा ही अंश पूरा हुआ।

साधना विधानों के अन्तर्गत आने वाले अगणित क्रिया-कलाप जिनमें चान्द्रायण भी सम्मिलित है, एक ही उद्देश्य है—दैव जीवन की दृष्टि से हेय समझी जाने वाली मान्यताओं एवं आदतों का निराकरण तथा सदाशयता को स्वभाव में सम्मिलित करने का अभ्यास। पशु-प्रवृत्तियों को देव-प्रवृत्तियों में बदलने का जो पुरुषार्थ किया जाता है उसी को साधना कहते हैं।

चान्द्रायण साधना में भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग की विविध क्रिया-प्रक्रियाओं का समन्वय है। गायत्री उपासना एवं ध्यान धारणा को भक्तियोग, स्वाध्याय-सत्संग को स्थूल और चिन्तन-मनन को सूक्ष्म ज्ञानयोग तथा व्रतोपवास के अनुशासन को कर्मयोग कहा जाता है। इस समन्वय में तीनों शरीरों को परिष्कृत करने वाली तीन प्रकार की विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत समूचे व्यक्तित्व की गलाई-ढलाई होने लगती है। इस समग्र समन्वय की कार्य पद्धति से ही चान्द्रायण का तात्विक प्रयोजन पूर्ण होता है। मात्र उपवास या जप का उपक्रम चलता रहे और जीवन के हर क्षेत्र को उत्कृष्टता की दिशा में धकेलने वाले अन्याय अनुबन्धों की उपेक्षा होती रहे तो समझना चाहिए कि बाह्य कलेवर की ही व्यवस्था बनाई गई है। उसमें प्राण संचार करने वाली आध्यात्मिक प्रखरता उत्पन्न करने में समर्थ भावनात्मक तपश्चर्याओं का समावेश नहीं किया गया। सर्वविदित है कि कलेवर कितना ही सुन्दर क्यों न हो, उसमें प्राण नहीं होगा तो अभीष्ट हलचल उत्पन्न होने और परिणति का लाभ मिलने जैसा अवसर ही उत्पन्न न होगा।

गायत्री उपासना में २४ हजार मंत्र जप के लघु अनुष्ठान की दृष्टि से जो महत्त्व नवरात्रि साधनाओं का है, सवालक्ष मंत्र जप में वही महत्त्व चन्द्रायण व्रत का है। चन्द्रायण का अर्थ, एक प्रकार से चन्द्रमा की कला के घटने-बढ़ने के अनुपात से अपना आहार क्रम घटाना-बढ़ाना होता है। अतएव यह प्रतिपदा से पूर्णिमा तक किया जाता है। आश्विन, श्रावण, चैत्र यह तीन महीने उसके लिए बहुत उत्तम माने गये हैं। सुविधानुसार अँग्रेजी तिथियों के अनुसार भी कभी भी चान्द्रायण व्रत किये जा सकते हैं।

धर्मशास्त्र में पाप-निवृत्ति और पुण्य-प्रवृत्ति के दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उपयुक्त साधन चांद्रायण व्रत बताया गया है। इस पुण्य-प्रक्रिया के पाँच प्रमुख भाग यह हैं—(१) एक महीने तथा आहार के घटने-बढ़ने वाला उपवास। (२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण। (३) आन्तरिक परिवर्तन कर सकने वाले वातावरण में निवास और अनुशासन का प्रतिपालन। (४) अन्तःकरण को परिष्कृत करने वाला योगाभ्यास युक्त तप साधन। (५) दुष्कर्मों की क्षति-पूर्ति और पुण्य-वर्धन की परमार्थ परायणता। इन्हें पूरा करने से चान्द्रायण तप सम्पन्न होता है। मात्र एक महीने का उपवास ही चन्द्रायण नहीं है।

एक महीने की निर्धारित साधना क्रम में इन पाँचों का समन्वय है

(१) पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक महीने का उपवास रहता है। पूर्णिमा को पूर्ण आहार करके उसका चौदहवाँ अंश कृष्ण पक्ष में हर दिन घटाया जाता है। शुक्ल पक्ष में उसी क्रम से बढ़ाते रहते हैं। अनभ्यस्त लोगों को 'शिशु' चान्द्रायण कराया जाता है और मनस्वी लोगों को यति चान्द्रायण। यह स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए शारीरिक काया-कल्प जैसा प्रयोग है। इससे रोगों की जड़ें कटती हैं। परम सात्विक हविष्यान्न ही पेट में जाने से विचार परिष्कार और सद्भाव संवर्धन का उद्देश्य बड़ी अच्छी तरह पूरा होता है। पंचगव्य सेवन, गौ-मूत्र से संस्कारिता हविष्यान्न का आहार आदि के माध्यम से गौ सम्पर्क भी सधता रहता है। प्यास बुझाने के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए मात्र गंगाजल पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण मात्र ब्रह्मवर्चस् के कुलपति के सम्मुख करके चित्त की भीतरी पर्तों पर जमी हुई दुराव की जटिल ग्रंथियों को खोला जाता है। मानसिक रोगों के निराकरण का यह बहुत ही उत्तम उपचार है। जो किया जा चुका उसके परिमार्जन के लिए क्या करना चाहिए ? यह परामर्श प्राप्त करना भी इसी प्रकटीकरण का अंग है।

शीर्ष-संस्कार इसी प्रयोजन के लिए है। पूर्ण मुण्डन तो नहीं कराया जाता, पर बाल थोड़े छोटे अवश्य हो जाते हैं, जिसका तात्पर्य है, संचित दुष्ट विचारों का परित्याग। बच्चों का मुण्डन-संस्कार भी जन्म-जन्मान्तरों की पशु-प्रवृत्तियों को मस्तिष्क में से हटाने के उद्देश्य से ही किया जाता है। बाल छाँटने के अतिरिक्त गौमूत्र, गोमय आदि मंत्र विधान सहित शीर्ष संस्कार किया जाता है। साधक अनुभव करता है कि इस धर्म कृत्य के साथ-साथ उसके मनः संस्थान में अति महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहा है।

(३) वातावरण का मनुष्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के परिवर्तन प्रयास में वातावरण का परिवर्तन आवश्यक माना गया है। ब्रह्मवर्चस आरण्यक में वैसी समुचित सुविधा उपलब्ध है। परिमार्जन, संरक्षण और अभिवर्धन के तीनों उद्देश्य पूरे करने वाली त्रिवेणी यहाँ विद्यमान है। दिनचर्या में स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन के चारों तत्व गुँथे हुए हैं। शारीरिक और मानसिक संयम अनुशासन की कठोर विधि व्यवस्था का पालन करना पड़ता है। प्रवचन और परामर्श का दैनिक लाभ मिलता है। दिनचर्या इतनी अनुशासित और व्यवस्थित रहती है कि उस ढर्रे में ढल जाने वाला भविष्य में अपने आप को सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक ढाँचे में ही ढाल लेता है। वातावरण का प्रभाव अभिनव परिवर्तन के रूप में निरन्तर अनुभव होता रहता है। इस तरह का वातावरण अन्यत्र मिले तो वहाँ भी करने में कुछ हर्ज नहीं।

(४) अन्तःकरण में दैवी-संस्कारों की जड़ जमाने वाले योगाभ्यास और तप-साधन चान्द्रायण के साथ-साथ ही करने होते हैं। सवालक्ष गायत्री पुरश्चरण अनिवार्य रूप से आवश्यक है। गायत्री यज्ञ नित्य नहीं तो अन्तिम दिन अवश्य सम्पन्न किया जाना चाहिए।

(५) पापों की क्षति-पूर्ति एवं पुण्य-सम्पदा की अभिवृद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत की पूर्णाहुति के रूप में कुछ अवांछनीयताओं का परित्याग और कुछ परमार्थों को अपनाने का संकल्प करना होता है। संग्रह का अंशदान तीर्थयात्रा के रूप में, धर्म प्रचार का श्रम दान, पुण्य-प्रयोजनों में सहकार, सत्सृजन में योगदान जैसे कुछ कदम ऐसे उठाने के लिए परामर्श दिया जाता है, जिनके सहारे अन्तःकरण पर परिवर्तन को व्यवहार में उतारने की छाप प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगे। आन्तरिक काया-कल्प चान्द्रायण तपश्चर्या का उद्देश्य है। यह कल्पना क्षेत्र तक ही सीमित बनकर न रह जाय वरन् व्यवहार में भी परिलक्षित होने लगे। इसके लिए कुछ क्रियात्मक कदम उठाने के लिए वैसा परामर्श मिलता है, जो प्रस्तुत परिस्थितियों में सफलता-पूर्वक शक्य हो सके। उपलब्ध सुसंस्कार परिपक्वता के लिए दूसरों के सम्मुख परिवर्तन का परिमाण प्रस्तुत करने के लिए कुछ साहसिक कदम उठाने पड़ते हैं। यही चान्द्रायण की पूर्णाहुति है।

शास्त्रों, पुराणों में चान्द्रायण तप की महत्ता स्थान-स्थान पर प्रतिपादित की गई है। जीवन में हुई भूलों के कारण अन्तःकरण में छाये मूल-अवसाद के परिमार्जन की दृष्टि से उसे अमोघ साधन माना गया था। वह प्रतिपादन इस प्रकार है।

परम पवित्रतादायक चान्द्रायण तप

धर्म-शास्त्रों में प्रायश्चितों के अनेकों विधि-विधान बताये गये हैं। उन सबमें उपवास की तपश्चर्या को प्रधानता दी गई है। गीता में 'उपवास से विषयों की निवृत्ति' होना बताया गया है। लिप्सा और लालसा, लोभ और मोह, वासना और तृष्णा यही हैं; वे आन्तरिक विष बीज जिनके कारण अनेक प्रकार के दुष्कर्म बन पड़ते हैं। इन्हीं आन्तरिक दुष्ट-उभारों को विषय कहा गया है। विषयों की निवृत्ति के लिए उपवास का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठोर अनुशासन अपनाना पड़ता है और उसके उपरान्त आहार में सात्विकता का समावेश करना पड़ता है। मन की प्रवृत्तियों के निर्माण में अन्न ही बीज रूप होता है। आहार की सात्विकता से मन को शान्त और सुसंस्कारी बनाने में सफलता मिलती है। यह सारी प्रक्रिया उपवास मर्यादा के अन्तर्गत आती है। प्रायश्चित विधान का प्रथम चरण यही है। किन्तु बात इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती।

प्रायश्चित्त के अगले चरण और भी हैं जिनमें पाप का प्रकटीकरण—दूसरों को पहुँचाई गई क्षति की पूर्ति इनमें से प्रमुख है। जो किया गया था उसकी भविष्य में पुनरावृत्ति न करने की प्रतिज्ञा भी इसी विधान के अन्तर्गत आती है। यह सब तो हुआ दण्ड-प्रकरण। यह प्रायश्चित्त का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है, श्रेष्ठता का, साधना का समन्वय जिससे हटाये हुये कुसंस्कारों का रिक्त हुआ स्थान श्रेष्ठ संस्कार ग्रहण कर सके। इस पुण्य-विधान को रचनात्मक प्रयोजन में लगाया जा सके। मात्र पाप बन्द कर देना या उनका दण्ड भुगत लेना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् जो प्रयत्न दुष्कर्मों की हानिकारक प्रक्रिया के लिए चल रहा था, वही उलट कर श्रेष्ठता सम्पादन में लग पड़े, तब समझना चाहिए कि प्रायश्चित प्रक्रिया पूर्ण हुई।

प्रायश्चित्त विधान में चान्द्रायण तपश्चर्या को प्रमुखता दी गई है। उसके दो पक्ष हैं—एक परिशोधन दूसरा अभिवर्धन। इस साधना में संचित पाप-प्रवृत्तियों और कुसंस्कारों का जहाँ शमन होता है, वहाँ आत्मोत्कर्ष के लिए प्रबल प्रयत्नों का भी साथ ही नियोजन होता है। अवांछनीयता का ध्वंस और उपयोगिता का सृजन यह दोनों ही कृत्य चान्द्रायण साधना से होते हैं इसलिए उसे दण्ड-विधान नहीं, वरन् तप-साधन की संज्ञा दी गई है। पाप-निवारण भी उसका महत्त्वपूर्ण अंग है।

चान्द्रायण का सामान्य व्रत विधान

शास्त्रों में प्रायश्चित् प्रकरण में कई प्रकार के विधानों का वर्णन है।

कृच्छ, अतिकृच्छ, तप्तकृच्छ, सौम्यकृच्छ, पादकृच्छ, महाकृच्छ, कृच्छातिकृच्छ, सान्तापन, कृच्छसान्तापन, महासान्तापन, प्राजापत्य, पराक, ब्रह्मकूर्य आदि विधानों का उल्लेख है। इनमें चान्द्रायण व्रतों को तप में सर्वप्रमुख माना गया है।

उसकी क्रिया-प्रक्रिया सर्वविदित है। मोटे नियम इस प्रकार हैं—

एकैकं ह्रासयेत्पिण्ड कृष्णे, शुक्ले च वर्द्धयेत्।
इन्दुक्षयेन पुंजीत एव चान्दायणो विधि।।

— वशिष्ठ

पूर्णमासी को पूर्ण भोजन करके एक-एक ग्रास घटाता जाय। चन्द्रमा न दीखने पर अमावस्या और प्रतिपदा को निराहार रहे। पीछे एक-एक ग्रास बढ़ाकर शुक्ल पक्ष के १४ दिनों में पूर्ण आहार तक पहुँच जाय।

ग्रास से तात्पर्य मुर्गी के अंडे जितना तथा मुँह में जितना आहार एक बार में आ सके उतना है—

कुक्कुटाण्ड प्रमाणं स्याद् यावद् वास्य मुखे विशेत्।
एत ग्रासं विजानीयुः शुद्धयर्थे काय शोधनम्।।

—अत्रि

"मुर्गी के अण्डे के बराबर या जितना सुविधापूर्वक मुख में आ सकता हो उतना बड़ा ग्रास चान्द्रायण में ग्रहण करना चाहिए।"

ग्रास-परिमाण के झंझट में पहुँचने की अपेक्षा यह उत्तम है कि, पूर्णिमा वाले आहार का चौदहवाँ अंश कृष्ण पक्ष में घटाता जाय और शुक्ल पक्ष में उसी अनुपात से हर दिनों बढ़ाते चला जाय।

नदी संगम तीर्थेषु, शुचेदिशे अरण्यके।
ब्रह्मचारी सदा शान्तोजित क्रोधो जितेन्द्रियः।।
अचिन्त्य चिंतनं व्यक्त्वा सत्हितमित भाषणम्।
सन्ध्ययोस्तु जपेन्नित्यं गायत्री ध्यान पूर्वकम्।।

—आपस्तंब

नदी संगम, तीर्थ, पवित्र स्थान पर, वन प्रदेश में निवास, ब्रह्मचर्य पालन, शान्ति चित्त, जितेन्द्रिय, क्रोध रहित, अचिन्त्य चिंतन का परित्याग, सत्य हित और स्वल्प भाषण, दोनों समय ध्यानपूर्वक गायत्री का जप, यह नित्य नियम रखे।

अरण्ये नियतो जप्त्वा त्रिर्वेवेदस संहिताम्।
शुध्येत व मिताशित्वा प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"निर्जन वन में संयमपूर्वक रहे, अल्प भोजन करे, किसी पुण्य नदी के उद्गम पर तीन बार सम्पूर्ण वेद का पारायण करे, तब भी मनुष्य शुद्ध हो जाता है।"

सावित्रीञ्च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः

—सम्वर्त

अहोरात्र्यन्तु गायत्र्या जपं कृत्या विशुध्यति।

—आपस्तंब

नित्य पवित्र होकर गायत्री का जप करे। दिन-रात उसी उपासना में लगा रहे। उसमें परिशोधन होता है।

सावित्री तुजपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः।

—मनु०

"पवित्र होकर यथा शक्ति गायत्री का जप करता रहे।

नित्य स्नायी मिताहारो गुरुदेव द्विजार्चकः।
पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः।।
व्रीहिण्याष्टिक मुद्गाश्च गोधूम सतीला यवाः।
चरुभैक्ष्यं सक्तु वणाः शार्वाघृत दधि पयः।।

—अग्नि पुराण

नित्य स्नान करे, भूख से कम खाये, गुरु, देव, ब्रह्म परायणों का अभिवादन करे, पवित्र रहे, जप करे, हवन करे।

जौ, चावल, मूँग, गेहूँ, तिल, हविष्यान्न, सत्तू, शाक, दूध, दही, घृत पर निर्वाह करे।

चान्द्रायण के चार भेद हैं—(१) पिपीलिका (२) यव मध्य (३) यति (४) शिशु। इन चारों के अन्य नियम समान हैं, पर आहार सम्बन्धी कठोरता, न्यूनाधिक है। यति तपश्चर्या अधिक कठिन है और शिशु व्रत साधन में शरीर और मन की स्थिति को देखते हुए सरलता रखी गई है।

पाप पर से पर्दा हटाया जाय

पापों के प्रकटीकरण की प्रक्रिया का एक स्वरूप तो मुण्डन कराने—बाल कटवाने के रूप में प्रतीक चिन्ह की तरह है। दूसरा चरण है प्रकटीकरण। यह मात्र किसी सत्पात्र के सम्मुख ही हो सकता है। सार्वजनिक घोषणा कर सकने का किसी में साहस हो तो और भी उत्तम। पर इस प्रकटीकरण में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यभिचार जैसी प्रक्रियाओं में साथी का नाम, पता आदि प्रकट न किया जाय।

पापों पर पड़े हुए पर्दे को उठाने और प्रकटीकरण की विधा पूरी करने के लिए शास्त्र निर्देश इस प्रकार है—

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहि स्तेनाधर्मेण मुच्यते।।

—मनुस्मृति

जैसे-जैसे मनुष्य अपना अधर्म लोगों में ज्यों का त्यों प्रकट करता है, वैसे वैसे ही वह अधर्म से उसी प्रकार मुक्त होता है जैसे केंचुली से साँप।

समत्वे सति राजेन्द्र तयोः सुकृत पापेयाः।
गुह्तिस्य भवेद् वृद्धि कीर्तितस्य भवेत् क्षयः।।

—महाभारत

हे राजेन्द्र! जब पुण्य-पाप दोनों समान होते हैं, तब जिसको गुप्त रखा जाता है, उसकी वृद्धि होती है और जिसका वर्णन कर दिया जाता है उसका क्षय हो जाता है।

तस्मात् प्रकाशयेद् पापं स्वधर्म सततं चरेत्।
क्लोवा दुःखी च कुष्ठी च सप्त जन्मानि वै नरः।।

—पाराशर स्मृति

पाप को छिपाने से मनुष्य, सात जन्मों तक कोढ़ी दुःखी, नपुसंक होता है। इसलिए पाप को प्रकट कर देना ही उत्तम है।

आचक्षाणे नतत्पापमेतत्कर्म्मास्मिशाधिमाम्।

वह अपने किये हुए पाप को भी मुँह से कहता हुआ दौड़े कि मैं ऐसे कर्म को करने वाला हूँ मुझे दण्डाज्ञा प्रदान कीजिए।

कृत्वा पापं न गूहेत् गुह्यमानं विवर्द्धते।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भयो निवेदयेत।।
ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम्।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः।।

—पाराशर स्मृति

पाप कर्म बन पड़ने पर उसे छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से वह बहुत बढ़ता है। पाप छोटा हो या बड़ा उसे किसी धर्मज्ञ से प्रकट अवश्य कर देना चाहिए। इस प्रकार उसे प्रकट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कर देने से पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे चिकित्सा करा लेने पर रोग नष्ट हो जाते हैं।

रहस्यं प्रकाश्यं च।
प्रायश्चित्तेन्दु शेखर
पापं नश्यति कीर्तनात्। —धर्म सिन्धु

रहस्य के पर्दे को उठा देना चाहिए। पाप के प्रकटीकरण से वे धुल जाते हैं।

तस्मात् पापं न गुरुवेत् गुहमानं विवर्धयेत्।
कृत्वातत् साधुरवमेयंतेतत् शमयन्त्युत।।

—महा० अनु०

अतः अपने पाप को न छिपावें, छिपाया हुआ पाप बढ़ता है। यदि कभी पाप बन गया हो तो उसे साधु-पुरुषों से कह देना चाहिए। वे उसकी शान्ति कर देते हैं।

तद् यदिह पुरुषस्य पाप कृतम्भवति तदा निष्करोति यदि हेन दपि रहसीव वुर्वन्मन्यतेय हैनदाविरेव करोति। तस्याद्वाव पापं न कुर्यात्।

—जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण

जब मनुष्य में दिव्य वाणी प्रकट होती है, तब वह अपने पाप प्रकट करती है। मनुष्य ने जो पाप नितान्त गोपनीय रखे थे उन्हें भी वह प्रकट कर देती है।

दुष्कर्मों के कितने ही बुरे प्रभाव अन्तः क्षेत्र पर पड़ते हैं। वे कुकृत्य चेतना की गहराई में पहुँचकर कुसंस्कारों के रूप में जड़ जमा कर बैठ जाते हैं और धुन की तरह उस क्षेत्र की गरिमा को नष्ट करते चले जाते हैं। उनके दुष्परिणाम समय-समय पर आधि-व्याधि और आकस्मिक दुर्घटनाओं के रूप में सामने आते रहते हैं।

मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार अन्तः भूमि को क्षत-विक्षत करने वाला सबसे बड़ा कारण है दुराव। दुष्कर्मों के करते समय भी सामने वाले से छल करना पड़ता है। वस्तुस्थिति जान लेने पर तो आक्रमण सफल ही न हो सकेगा। इसके उपरान्त राज दण्ड तथा समाज दण्ड से बचने के लिए उन कुकृत्यों को छिपाकर रखा जाता है किसी पर प्रकट नहीं होने दिया जाता। यह दुराव हजम तो होता नहीं। पारा खा लेने पर वह पचता नहीं, वह फूट-फूटकर शरीर में से फोड़े और घाव बनकर निकलता रहता है। ठीक इसी प्रकार कुकृत्यों का दुराव भी अनेकों प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोग उत्पन्न करता और आजीवन कष्ट देता रहता है। अन्तर्द्वन्द तब तक चलता ही रहता है, जब तक उसका प्रकटीकरण और प्रायश्चित करके परिशोधन न कर दिया जाय।

परिशोधन-प्रक्रिया में प्रकटीकरण भी एक उपचार है। जो कुकृत्य बन पड़े हैं, उनका प्रकटीकरण आवश्यक है। पर वह होना उन्हीं के सामने चाहिए जो इतना उदार हो कि चिकित्सक की करुणा से अपराधों को धैर्यपूर्वक सुन सके और घृणा धारण किये बिना उन्हें अपने भीतर पचा सके। प्रकट करने वाले की निन्दा न होने दें। उसे उस प्रकटीकरण के कारण लोकनिन्दा के द्वारा होने वाली क्षति न पहुँचने दें, वरन् उसे स्नेहपूर्वक सत्परामर्श देकर सुधरने में सहायता करें। ऐसे व्यक्ति जब तक न मिलें तब तक प्रकटीकरण नहीं ही करना उचित है। ईसाई धर्म में मरने से पूर्व 'पाप स्वीकृति का वर्णन'—कनफेक्शन आवश्यक धर्मकृत्य माना जाता है। समय रहते पादरी को बुलाया जाता है। एकान्त में मरणासन्न व्यक्ति जीवन भर के अपने सारे पापों को विस्तारपूर्वक बताता है और जी हलका करता है। पादरी को पिता कहते हैं। उसमें परम करुणा रहती है। वह धैर्य और शान्तिपूर्वक उसे सुनता है और ईश्वर से क्षमा की प्रार्थना करता है। न उसके मन में घृणा होती है और न औरों पर प्रकट करने की क्षुद्रता का परिचय देना ही उसकी गरिमा के उपयुक्त होता है।

चान्द्रायण में केश कटाने का संस्कार

चान्द्रायण व्रत लेते समय सिर के केश कटाने का, मुण्डन कराने का विधान है। इतना न बन पड़े तो बाल बनाने का तो कृत्य किसी न किसी रूप में करना ही होता है। इसमें मस्तिष्क में भरे हुए पुराने विचारों को बदलने की प्रतीक प्रतिज्ञा है। यहाँ बालों को विचारों का प्रतीक माना गया है। इसलिए उन्हें बालकों के मुण्डन संस्कार की तरह ही चान्द्रायण व्रत में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी आवश्यक माना गया है। बालकों का मुण्डन कराने के पीछे उद्देश्य यह है कि पिछले कुसंस्कार जो मस्तिष्क के भीतर भरे हुए हैं, उनका उन्मूलन आवश्यक है तभी मनुष्यता की गौरव-गरिमा उपलब्ध हो सकती है। इस परिवर्तन का प्रतीक बालों का कटाना माना गया है। तीर्थ में जाकर भी मुण्डन कराने का तात्पर्य यह है कि वहाँ पहुँचने के उपरान्त कुसंस्कारों की जो अवधारणा मस्तिष्क में थी वह बदल दी। इसी प्रकार मृत्यु-शोक के सन्तापदायी विचारों से छुटकारा पाने के लिए श्राद्ध के समय मुण्डन कराया जाता है।

चान्द्रायण व्रत के समय मुण्डन का विधान है। वैसा जो न कर सके उन्हें प्रतीक रूप में सिर के बालों को हलके तो करा ही लेना चाहिए। इसके दो उद्देश्य हैं—एक पशु-प्रवृत्तियों के परित्याग की दुर्बुद्धि को निरस्त करने की प्रतीक प्रतिज्ञा है। दूसरे पापों की स्वीकृति एवं घोषणा में। इसमें समाज में प्रतिष्ठा बनाये रहने और पाप छिपाये रहने का दुहरे पाप से निवृत्ति पाने का संकल्प है।

सर्वविदित है कि मुण्डन-संस्कार में बालों को गोमूत्र, गोबर एवं पंचगव्य से धोया, सींचा जाता है। चान्द्रायण व्रत के समय भी जब बाल बनवाये जाते हैं तो मस्तिष्क का संस्कार पंचगव्य से ही किया जाता है। मुण्डन से पूर्व यह गोरस सिंचय किया जाय या पीछे यह सुविधा के ऊपर निर्भर है, पर किसी न किसी रूप में उसे किया जाना आवश्यक है।

बाल कटाने के सम्बन्ध में चान्द्रायण व्रत कर्ता के लिए शास्त्र निर्देश इस प्रकार है—

शिरसां कृन्तनं युद्धे मुण्डनं तद्वदेव हि।
वेदेऽपि स्थिरमेतद्धि समानं समुदायहृतम्॥

—योगिनो तन्त्र

सिर छेदन और सिर मुण्डन एक कार्य है, वेद में यह दोनों कार्य ही समान कहे गये हैं।

श्मश्रु केशान् वापयेत् भ्रुवोअपि लोमशिखावर्जम नखाननिकृत्य।

—वशिष्ठ

व्रत के आरम्भ में दाढ़ी, मूँछ और सिर के बालों को कटा लें। भौंह आदि और शिखा न कटाई जाय।

सर्वानकेशान् समुधृत्यच्छेदयेत् अंगुल त्रयम्।

—यम

आकेशान्तान्नखाग्राच्च तपस्तप्यत उत्तमम्।

—बौद्धायन

यत्किंचित क्रियते पापं सर्व केशेषु तिष्ठति।

पारासर

केशश्मश्रु लोमनखान् वापयित्वाततः शुचिः।

—पारासर

अर्थात् श्चन्दायणं तस्योक्तो विधिः वपनं व्रतं चरेत्।

—स्कन्द

इन समस्त अभिवचनों में चान्द्रायण व्रत कर्ता के लिए पूर्ण मुण्डन की इच्छा न हो तो बाल कटाने, उनकी लम्बाई घटाने की आवश्यकता तो रहती ही है।

प्रायश्चित का अति महत्वपूर्ण पथ क्षति पूर्ति

पापों में तीन वर्ग के पापों की प्रधानता होती है—

(१) निरपराध सताना, आक्रमण, (२) व्यभिचार बलात्कार, (३) आर्थिक शोषण, अपहरण, चोरी, बेईमानी।

पाप कर्मों का प्रायश्चित करने में पश्चाताप वर्ग की पूर्ति, व्रत उपवास से—शारीरिक कष्ट सहने से, तितीक्षा-कृत्यों से होती है। किन्तु क्षति पूर्ति का प्रश्न फिर भी सामने रहता है। इसके लिए पुण्य कर्म करने होते हैं, ताकि पाप के रूप में जो खाई खोदी गई थी वह पट सके। पुण्य-पाप का पलड़ा बराबर हो सके। दुष्प्रवृत्तियों को सत्प्रवृत्तियों से ही पाटा जा सकता है। इसलिए दुष्कर्म करके जो व्यक्ति-विशेष को हानि पहुँचाई गई—समाज में भ्रष्ट अनुकरण की परम्परा चलाई गई—वातावरण में विषाक्त-प्रवाह फैलाया गया, उसको निरस्त तभी किया जा सकता है, जब सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन करने वाले पुण्य-कर्म करके उसकी पूर्ति की जाय। समाज को सुखी और समुन्नत बनाने वाली सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन आवश्यक माना जाय। इसके लिए समय, श्रम एवं मनोयोग लगाया जाय। धर्म-प्रचार की पदयात्रा करके लोक-प्रेरणा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देने वाले तीर्थ यात्रा जैसे पुण्य कर्म किये जाँय। जो घटना घट चुकी वह अनहोनी तो नहीं हो सकती। आक्रामक कुकर्मों की क्षति-पूर्ति इसी में है कि लगभग उतने ही वजन के सत्कर्म सम्पन्न किये जायँ।

व्यभिचारजन्य पापों का प्रायश्चित्त यही है कि नारी को हेय स्थिति से उबारने के लिए उसे समर्थ एवं सुयोग्य बनाने के लिए जितना प्रयास पुरुषार्थ बन पड़े, उसे लगाने के लिए सच्चे मन से प्रयत्न किया जाय।

आर्थिक अपराधों का प्रायश्चित यह है कि अनीति उपार्जित धन उसके मालिक को लौटा दिया जाय अथवा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के श्रेष्ठ कार्मों में उसे लगा दिया जाय। इस अर्थ दान को प्रायश्चित विधान का आवश्यक अंग इसलिए माना गया है कि अधिकांश पाप अर्थ लोभ से किये जाते हैं और उतने न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भौतिक लाभ उठाने का उद्देश्य रहता है। यह अनीति उपार्जित धन अपने लिए और अपने परिवार वालों के लिए समयानुसार भयंकर विपत्तियाँ ही उत्पन्न करता है। भले ही तत्काल उससे कोई कमाई होने और सुविधा मिलने जैसा लाभ ही प्रतीत क्यों न होता है।

जो कमाया गया है उसे बगल में दाबकर रखा जा। अनीति उपार्जित सुविधाओं का परित्याग न किया जाय। मात्र घड़ियाल के आँसू बहाकर, उपवास जैसी लकीर पीट दी जाय तो उतने भर से कुछ बनेगा नहीं। व्रत, उपवास तो अनीति अपनाने से आत्मा पर चढ़ी कषाय-कल्मषों की परत धोने भर के लिए है। क्षति-पूर्ति का प्रश्न तो फिर भी जहाँ का तहाँ रहता है। जो अनीति बरती है उसकी हानि को भरपाई कर सकना वर्तमान परिस्थितियों में जितना अधिक से अधिक सम्भव हो उसके लिए उदार साहस जुटाना चाहिए। घटनाओं की क्षति-पूर्ति अर्थ दण्ड सहने से भी हो सकती है। रेल दुर्घटना आदि होने पर मरने वालों के घर वालों को सरकार अनुदान देती है। उसमें क्षति-पूर्ति के लिए आर्थिक प्रावधान को भी एक उपाय माना गया है। प्रायश्चित विधानों में क्षति-पूर्ति की दृष्टि से दान को महत्व दिया गया है। दानों में गौ दान, अन्न दान, उपयोगी निर्माण आदि के कितने ही उपाय सुझाये गये हैं। वे जिससे जितने बन पड़ें उन्हें वे उतनी मात्रा में करने चाहिए। कुछ भी न बन पड़े तो श्रम दान, सत्कर्मों में योगदान तो किसी न किसी रूप में हर किसी के लिए सम्भव हो सकता है। शास्त्र कहता है—

सर्वस्व दानं विधित्सर्व पाप विशोधनम्।

—कुर्म पुराण

अनीति से संग्रह किये हुए धन को दान कर देने पर ही पाप का निवारण होता है।

दत्वै वापहृतं द्रव्यं धनिकस्याभ्यु पापतः।
प्रायश्चित ततः कुर्यात् कलुषस्य पापनुत्तये।।

—विष्णु स्मृति

जिसका जो पैसा चुराया हो उसे वापिस करे और उस चोर कर्म का प्रायश्चित करे।

वापिसी सम्भव न हो या आवश्यक न हो तो अनीति उपार्जित साधनों का बड़े से बड़ा अंश श्रेष्ठ सत्कर्मों में लगा देना चाहिए।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार-'उपवास स्तथ दान उभौ अन्योन्याश्रित।'

प्रायश्चित में उपवास की तरह दान भी आवश्यक है। दोनों एक-दूसरे के साथ परस्पर जुड़े हुए हैं।

प्राज्ञः प्रतिग्रहं कृत्वा तद्धनं सद्गतिं नयेत् यज्ञाद्वा पतितोद्धार पुण्यात् न्याय रक्षणेवापी कूप तड़ागेषु ब्रह्मकर्म समत्सृजेत्। —अरुण स्मृति

अनुचित धन जमा हो तो उसे यज्ञ, पतिद्वार, पुण्य कर्म, न्याय रक्षण, वावड़ी, कुआँ, तालाब आदि का निर्माण एवं ब्रह्म कर्मों में लगा दें। अनुचित धन की सद्गति इसी प्रकार होती है।

तेनोदपानं कर्त्तयं रोपणीयस्तथा वटः। —शाता०

सच्छास्त्र पुस्तकं दद्यात् विप्राय स दक्षिणम्।

—पाराशर

वापी कूप तडागादि देता यतनानि च।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु व्रत पूर्ण समाचरित्।। —यम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोपि पाप विशुद्धयर्थ चरेच्चान्द्रायण व्रतम्।
व्रतान्ते पुस्तकं दधात् धेनु वत्स समन्वितम्।।

—शातायन

सुवर्ण दानं गोदानं भूमिदानं तथैवच।
नाशयन्त्याशु पापानि अन्तजन्म कृतान्यपि।।

—सम्वर्त

इन अभिवचनों में सत्साहित्य वितरण—विद्यादान—वृक्षारोपण—कुआ, तालाब, देवालय आदि का निर्माण—यज्ञ, दुःखियों की सेवा—अन्याय पीड़ितों के लिए संघर्ष आदि अनेक शुभ कर्मों में क्षति की पूर्ति के रूप में अधिक से अधिक उदारता पूर्वक दान देने का विधान है। इस दान शृंखला में गौ-दान को विशेष महत्त्व दिया गया है। गौ की गरिमा को शास्त्रों में अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसलिए गौ दान की महिमा बताते हुए प्रायश्चित व्रतों के साथ उसे भी जोड़कर रखा गया है। यथा—

गोदानं च तथा तेषु कर्त्तव्यं पाप शोधनम्।

—वृद्ध सूर्यारुण

'यत्र यावत् संख्यया' प्राजापत्या न्यावर्तनीयानि भवन्ति तत्र तावत् संख्यया गोदान्यावर्तनीयानि।

—सूर्यारूपा

जिस प्रायश्चित में जितने प्राजापत्यादि व्रतों की संख्या का निर्धारण हो उनमें उतनी ही गौओं के दान का भी समावेश समझा जाना चाहिए।

गावो देयाश्च ऋषिभिः अभिशेक युताः सतः।

—वृहस्पति

गोदाने वत्स युक्ता गौ सुशीला पयस्विनी।
पृथिवीं तेन दत्तास्यादीदृशीं गान्ददातियः।।
तेनाग्नयो हुताः सम्यक् पितर स्तेन तर्पिताः।
देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवान्हिकम्।।

—अत्रि

स दधात् दुग्ध धेनुञ्च ब्राह्मणाय यथाविधि।

—शाता०

तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्ध यर्थ च विल्विषं।

—अंगिरा

इन सभी अभिवचनों में गौ दान को चान्द्रायण व्रत के साथ जोड़ा गया है। यह धन से न बन पड़े तो श्रम से तो हो ही सकता है। दिलीप और उनकी पत्नी ने महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में रहकर गौ चराने का व्रत लिया था। गौ सम्पर्क में जो प्रभाव रहता है, उससे भी सात्विकता की वृद्धि और पापों की निवृत्ति में बहुत योगदान मिलता है।

चान्द्रायण व्रत और गौ सम्पर्क

चान्द्रायण व्रत के साथ गौ सम्पर्क जुड़ा हुआ है। इस तपश्चर्या के अनेक कार्य ऐसे हैं, जिनमें गौ को किसी न किसी प्रकार साथ लेकर चलना पड़ता है।

मुख में कोई अन्य वस्तु जाने देने से पहले चान्द्रायण व्रत कर्ता को 'पंच गव्य' ग्रहण करना होता है। इसके उपरान्त ही अन्य कोई वस्तु मुँह में जानी चाहिए। पंच गव्य गाय के दूध, दही, घृत, गौ मूत्र, गोमय के सम्मिश्रण को कहते हैं। उसमें तुलसी पत्र और गंगाजल भी मिलाया जाता है।

गव्यं पीत्वा विशुध्यति। —अत्रि

तत्राप्यशक्तो चैकेन पंच गव्यं पिवेततः।

—आपस्तंव

पंच गव्येन शुध्यति। —आपस्तंव

शुध्यते पंच गव्येन पीत्वा तोयमकामतः।

—सम्वर्त

मृत्तिका शोधनं स्नानं पंच गव्यं विशोधनम्।

—अंगिरा

गो मूत्रं, गोमयं, क्षीरं, दधि, घृत कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पंच गव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम्।।

—सम्वर्त

पतितं प्रेक्षितं वापि पंच गव्येन शुध्यति। —अत्रि

शृणु पाण्डव तत्वेन, सर्व पाप प्रणाशनम्।
पापिनोन्येन शुद्धयन्ति तत्ते वक्ष्यामि सर्वशः।।
यथावत्कर्तु कामोयस्तस्य यं प्रथमंतु यः।
शोधयेत्तु शरीरं स्वं पंचगव्ये पवित्रतः।।

—वृद्ध गौतम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह चान्द्रायण व्रत समस्त पापों का शमन करने वाला है। कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। उसे आरम्भ करते हुए शरीर को पंच गव्य से पवित्र बनाना चाहिए।

इन सब विधानों के सन्दर्भ में शास्त्रों के अनेकों अभिवचन उपलब्ध हैं। चान्द्रायण व्रत कर्ता के लिए नित्य सर्व प्रथम पंच गव्य लेने का विधान है—

चान्द्रायण व्रत कर्त्ता के आहार में हविष्यान्न की प्रधानता रहनी चाहिए। हविष्यान्न जौ, तिल, चावल के सम्मिश्रण को कहते हैं। इनमें से जौ को गौ मूत्र के साथ विशेष रूप में संस्कारित किया हुआ होना चाहिए। गौ मूत्र में जौ भिगोये जाँय। वे उस संस्कार को ग्रहण कर लें तब उन्हें सुखाकर पीसा जाय और दलिया या रोटी बनाई जाय। इस प्रकार भोजन में गौ सम्पर्क आवश्यक हुआ।

गोमूत्र यावकाहारो मासार्धेन विशुद्धयति। —अत्रि

गो मूत्र यावकहारो। —सम्वर्त

गो मूत्र यावकाहारः। — अत्रि

गो मूत्रेणनु संमिश्रं यावकं घृतपचितम्। —अत्रि

गो मूत्रेणनु संमिश्रं यावकं चोपजायते। —अंगिरा

गो मूत्र यावकाहारे स्त्रिरात्रेणैव शुध्यति। —शातायन

गो मूत्र यावकाहारः षड्-रात्रेण शुध्यति। —आपस्तंव

गो मूत्र यावकाहरि मासेनैकेन शुध्यति। —पाराशर

गो मूत्र यावकाहरिस्त्रि रात्रेण विशुध्यति। —स्कन्द

गो मूत्रेण समायुक्तं यावकं चोपभेजयेत्। —वशिष्ठ

चान्द्रायण की पूर्णाहुति में गौ दान का विधान है। उसे भी प्रायश्चित प्रक्रिया का एक अंग माना गया है। जिनके लिए गौ दान सम्भव न हो वे गौ ग्रास (गाय का चारा) भी दान कर सकते हैं अथवा शरीर से गौ सेवा का श्रम कर सकते हैं। इस प्रकार चान्द्रायण व्रत के साथ गौ सम्पर्क अविच्छिन्न रूप से जुड़ा रखा गया है।

धर्म-प्रचार की पदयात्रा-तीर्थयात्रा

पाप निवृत्ति और पुण्य वृद्धि के दोनों प्रयोजनों की पूर्ति के लिए तीर्थयात्रा को शास्त्रकारों ने प्रायश्चित को तप-साधना में सम्मिलित किया है। तीर्थयात्रा का मूल उद्देश्य है धर्म प्रचार के लिए की गई पदयात्रा। दूर-दूर क्षेत्रों में जन-सम्पर्क साधने और धर्म धारणा को लोक-मानस में हृदयगम करने का श्रमदान तीर्थयात्रा कहलाता है। श्रेष्ठ सत्पुरुषों के सान्निध्य में प्रेरणाप्रद वातावरण में—रहकर आत्मोत्कर्ष का अभ्यास करना भी तीर्थ कहलाता है। यों गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने के लिए किये गये प्रबल प्रयासों को भी तीर्थ कहा गया है। तीर्थ का तात्पर्य है तरना। अपने साथ-साथ दूसरों को तारने वाले प्रयासों को तीर्थ कहते हैं। प्रायश्चित विधान में तीर्थयात्रा की आवश्यकता बताई गई है।

आज की तथाकथित तीर्थयात्रा मात्र देवालयों के दर्शन और नदी, सरोवरों के स्नान आदि तक सीमित रहती है। यह पर्यटन मात्र है। इतने भर से तीर्थयात्रा का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन के लिए किया गया पैदल परिभ्रमण ही तीर्थयात्रा कहलाता है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के लिए श्रेष्ठ उपचार भी है। धर्म प्रचार के लिए जन-सम्पर्क साधने का पैदल परिभ्रमण जन-समाज को उपयुक्त प्रेरणाएँ प्रदान करता है। साथ ही उससे श्रमदान से कर्त्ता की सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन भी होता चलता है। ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रखकर तीर्थयात्रा को ऐसा परमार्थ कहा गया है, जिसे कर सकना प्रत्येक श्रमदान करने में समर्थ व्यक्ति के लिए सम्भव हो सकता है। तीर्थयात्रा का स्वरूप और माहात्म्य शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है—

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।

यथोक्त फलद तीर्थ भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्।।

पापी मनुष्यों के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शान्ति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्यों के लिए तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धायुक्तं समाहितः।

कृतपापो विशुद्धश्चेत् किं पुनः शुद्ध कर्मकृत्।।

जो तीर्थों का सेवन करने वाला, धैर्यवान् श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित है, वह पहले का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करने वाला है, उसकी तो बात ही क्या है ?

तीर्थनि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।

सर्वद्वन्द्वसद्दा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।

जो यथोक्त विधि से तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वों को सहन करने वाले हैं, वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं।

यावत् स्वस्थोअस्ति में देहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः।

तावत् स्वश्रेयसां हेतुः तीर्थयात्रां करोम्यहम्।।

जब तक मेरा शरीर स्वस्थ है, जब तक आँख, कान आदि इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, तब तक श्रेय प्राप्ति के लिए तीर्थयात्रा करते रहने का निश्चय करता हूँ।

जायन्ते च क्रियन्ते च जलष्वेव जलौकसः।

न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्ध मनोमलाः।।

जल में निवास करने वाले जीव जल में ही जन्मते और मरते हैं, पर उनका मानसिक मल नहीं धूलता इससे वे स्वर्ग को नहीं जाते।

क्रिया कर्मेण महता तपसा नियमेन च।

दानेन तीर्थयात्राभिश्चिरकालं विवेकतः।।

दुष्टकृतैः क्षयमापन्ने परमार्थ विचारणे।

काकतालीय योगेन बुद्धिर्जन्तोः प्रवर्तते।।

बहुत दिनों तक यज्ञ दानादि करने कराने से, कठिन तपस्या, नियम, तीर्थयात्रा आदि द्वारा विवेक बढ़ता है और इनके द्वारा बुरे कर्मों का नाश हो जाने पर काकतालीय न्याय से मनुष्य में परमार्थ बुद्धि प्रस्फुटित हो जाती है।

मनो वाक् काय शुद्धानां राजस्तीर्थ पदे-पदे।

तथा मलिन चित्तानां गंगायि कीटकाधिका।।

हे राजन् ! मन, वाणी और काया से शुद्ध हुए मनुष्यों के लिए पग-पग पर तीर्थ है, किन्तु मलिन चित्त वालों के लिए गंगा भी एक तलैया है।

यानमर्द्ध फलं हन्ति तदर्द्ध छत्र पादुके।

वाणिज्यं त्रीस्तथा भागान् सर्व हनि प्रतिग्रहः।।

—स्कन्द पुराण

सवारी तीर्थयात्रा का आधा फल अपहरण कर लेती है, उसका आधा छत्र तथा पादुका अपहरण कर लेता है, व्यापार पुण्य का तीन चतुर्थांश अपहरण करता है तथा प्रतिग्रह तीर्थ के सारे पुण्य को नष्ट कर देता है।

सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम्।

तीर्थं तु फलदं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।।

तीर्थानुगमने पद्भ्यां तपः परमिहोच्यते।

तदेव कृत्वा यानेन स्नानमात्र फलं लभेत्।।।

सभी वर्णों तथा सभी आश्रमों के लोगों को तीर्थ फलदायक होता है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए। जो पैरों से पैदल चलकर तीर्थ जाते हैं, वे परम तप करते हैं, जो सवारी से यात्रा करते हैं, उन्हें स्नान मात्र का ही फल मिलता है।

प्रभावशाली साधना की पृष्ठभूमि

साधना क्षेत्र में प्रगति करने की वास्तविक इच्छा करने वालों के लिए **शरीर और मन का शोधन** आवश्यक है। धुले कपड़े पर ही ठीक तरह रंग चढ़ता है। तेल से चिकना, कालिख से गन्दा बना हुआ वस्त्र कीमती रंगों से भी ठीक तरह रंगा न जा सकेगा। यही नियम अध्यात्म मार्ग में भी चरितार्थ होता है। अन्नमयकोश, मनोमयकोश, प्राणमयकोश, विज्ञानमयकोश, आनन्दमयकोश के अनावरण की पञ्चकोशी उच्चस्तरीय गायत्री उपासना का प्रशिक्षण गत तीन वर्षों से किया जा रहा है। इस आधार पर अनेकों साधकों ने आशाजनक प्रगति की है। उन्हें घर में रहते हुए एक-दो घण्टा नित्य लगाकर की जा सकने वाली इस साधना से ऐसे उत्साहवर्धक अनुभव हुए हैं, जैसे—गिरि-गुफाओं में दीर्घकाल से रहने वाले योगी जनों को भी नहीं हो पाते। किन्तु साथ ही ऐसे भी अनेक साधक हैं जिन्हें मन को एकाग्र करने की समस्या का हल भी अभी तक नहीं मिला है। लकीर पीटने की तरह वे कुछ करते तो रहते हैं पर न तो उन्हें प्रकाश मिलता है और न आनन्द ही आता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एक ही विधि-विधान को अपनाने वाले साधकों की प्रगति में इस प्रकार का आकाश-पाताल का अन्तर होने का कारण उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति ही होती है। एक ही रोग के कई रोगियों को एक ही दवा दी जाय तो सब पर समान असर नहीं होता। रोगियों की शारीरिक स्थिति, पथ्य-कुपथ्य, रहन-सहन, संकल्प-विकल्प के आधार पर रोग के अच्छे होने न होने में बहुत अन्तर बना रहता है। यही बात साधना क्षेत्र में भी लागू होती है। उपासना विधि एक-सी रहने पर भी प्रगति में बहुत भारी अन्तर पाया जाता है।

अस्वस्थता आध्यात्मिक प्रगति में एक भारी बाधा है। रोगी शरीर में रहने वाला मन भी रोगी हो जाता है। रोग के कारण शरीर में होते रहने वाले कष्टों की तरह विक्षुब्ध मन में भी अनेक प्रकार के उद्वेग उठते रहते हैं। उछलते हुए पानी में सूर्य का प्रतिविम्ब दीख नहीं पाता, उसी प्रकार अशान्त मन में स्थिरता, एकाग्रता और स्थिर नहीं रह पाती। ऐसी दशा में साधनात्मक आनन्द एवं प्रगति से वञ्चित रहना पड़े तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

शरीर के समस्त रोगों की जड़ अपच है। पाचन-यन्त्र में गड़बड़ी आने से पेट में सड़न उत्पन्न होती, वायु का प्रकोप बढ़ता है और रक्त में अशुद्धता भर जाती है। यह अशुद्धता जिस अंग में जड़ जमा लेती है, वहीं रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। बीमारी किसी भी अंग में क्यों न हो, उसका नाम रूप कुछ भी क्यों न हो वस्तुतः वह अपच की ही प्रतिक्रिया होती है। बिगड़े हुए पाचन-यन्त्र का सुधार करने में संसार की समस्त चिकित्सा-प्रणालियों की अपेक्षा प्राकृतिक चिकित्सा ही आज अधिक सफल हो रही है। चान्द्रायण व्रत प्राकृतिक चिकित्सा सिद्धान्त का अत्यन्त उत्कृष्ट स्वरूप है। उसमें मनोविज्ञान और अध्यात्म का भी समावेश होने से न केवल शरीर का वरन् मन एवं अन्तःकरण का भी परिशोधन होता है।

चान्द्रायण व्रत की पद्धति को हम और भी अधिक वैज्ञानिक बना रहे हैं। उपवास के साथ-साथ ऐनेमा, मिट्टी की पट्टी, वाष्प-स्नान, कटि-स्नान, सूर्य किरण-चिकित्सा, मृत्तिका-लेपन आदि पञ्चकर्मों द्वारा पेट ही नहीं वरन् शरीर के अन्य अंगों का भी शोधन होता है और देखा यह गया है कि एक वर्ष तक किसी सुयोग्य चिकित्सक की औषधि चिकित्सा करने की अपेक्षा एक महीने के चान्द्रायण व्रत से कहीं अधिक लाभ होता है। शान्तिकुंज में वर्षों से यह प्रयोग चल रहा है। हजारों व्यक्ति वैज्ञानिक पद्धति का चान्द्रायण कर चुके हैं, उन्हें जितना लाभ हुआ है उसे देखते हुए इसे आरोग्य की दृष्टि से एवं जादू ही कहा जा सकता है।

इन्द्रियों पर संयम चान्द्रायण-व्रत में अनिवार्य है। अस्वादन, ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करने से मन की चञ्चलता दूर होती है। आत्म-निरीक्षण करते हुए अपने गुण-कर्म-स्वभाव में घुसी हुई त्रुटियों को देखना-समझना, भूलों पर पछताना, उनके लिए आत्म-प्रतारणा एवं प्रायश्चित्त करना मन की शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। चान्द्रायण व्रत में पूरे एक महीने यही मानसिक क्रिया करनी पड़ती है। जो पाप बने हैं उनसे हुई सामाजिक क्षति-पूर्ति के लिए कोई पुण्य प्रयत्न सोचना पड़ता है, जिससे उत्साह एवं सन्तोष से पाप का दुःख एवं असन्तोष दूर हो सके। इस प्रक्रिया को अपनाने से मनोभूमि की शुद्धि अवश्यंभावी है। चान्द्रायण व्रत करने वाले का मन भी शरीर की भाँति ही निरोग बनता है। अशुद्ध मन में अनेकों मानसिक बीमारियाँ एवं विकृतियाँ भरी रहती हैं, जिनके कारण लोग प्रायः मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं और आधे पागल जैसे बने रहते हैं। चान्द्रायण व्रत करने के उपरान्त प्राप्त होने वाली मानसिक निरोगिता से अनेक व्यक्तियों के स्वभाव एवं दृष्टिकोण बदलते देखे गये हैं। सिरदर्द, जुकाम, अनिद्रा, दुःस्वप्न, चिड़चिड़ापन, आवेश, उत्तेजना, चिन्ता, भय, निराशा, घबराहट आदि अनेक मानसिक रोगों की सरल एवं प्रभावशाली चिकित्सा चान्द्रायण व्रत के अतिरिक्त दूसरी हो नहीं सकती।

विशेष प्रकार की मानसिक दुर्बलताओं को निवारण करने के लिए मनोविज्ञान चिकित्सा के सिद्धान्तों का आश्रय लेकर हम चान्द्रायण व्रत की अवधि में दूसरी प्रकार के उपचारों का भी समावेश करते रहते हैं। इसलिए वह न केवल एक आध्यात्मिक तप मात्र रहता है वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर-शोधन के साथ-साथ मनोविकारों के समाधान का एक श्रेष्ठ उपचार भी बन जाता है। पिछले दिनों इस प्रकार के सैकड़ों प्रयोगों में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त हमारा सुनिश्चित विश्वास यह हो गया है कि आत्मिक प्रगति के लिए, आन्तरिक भूमिका की आवश्यक तैयारी के लिए चान्द्रायण व्रत जितना आवश्यक है उतना ही वह शारीरिक और मानसिक दोषों को सुधारते हुए लौकिक-जीवन में सुख-शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से भी उपयोगी है।

उच्चस्तरीय गायत्री उपासना का आवश्यक लाभ उठाने के लिये अधिक नहीं तो एक चान्द्रायण व्रत करने का अवसर निकालना चाहिए। यों उसे पूरी जानकारी के उपरान्त अपने घरों पर भी किया जा सकता है। पर अच्छा यही है कि अपने स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की समग्र परिशुद्धि की दृष्टि से किसी अनुभवी व्यक्ति के सान्निध्य में ही उसे किया जाय। अच्छा होगा कि चान्द्रायण व्रत सम्बन्धी पेचीदगियों को पूरी तरह समझ लेने के उपरान्त ही किसी को चान्द्रायण करने की बात सोचनी चाहिए। लाभ की बात सोचकर अविधिपूर्वक कदम उठाने लगने की जल्दबाजी कई बार अहितकर भी सिद्ध होती है। चान्द्रायण व्रत के साथ-साथ किया गया गायत्री अनुष्ठान सोने में सुगन्ध का काम करता है।

चान्द्रायण व्रत द्वारा शरीर-शोधन

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना में चान्द्रायण व्रत का महत्व विशेषरूप से माना गया है। यों साधारण अनुष्ठानों में भी किसी-न-किसी रूप में उपवास तो करना ही होता है। फल, दूध पर जो लोग नहीं रह सकते, वे शाकाहार से काम चलाते हैं। जो अन्न लेते हैं वे भी अस्वाद व्रत निबाहते हैं या फिर इतना भी न बन पड़े तो एक समय एक अन्न और एक शाक लेकर आधा उपवास तो कर ही लेते हैं। उपवास भी अनुष्ठान के साथ चलने वाले आवश्यक नियमों में से एक माना गया है। चान्द्रायण व्रत इसका और भी परिष्कृत रूप है। उसमें रहने वाली अन्य अगणित विशेषताओं के कारण ऋषियों ने इस महाव्रत को 'तप' कहा है। तपश्चर्या के साथ की गई गायत्री उपासना का विशेष परिणाम होना ही चाहिए। शास्त्रकारों ने वर्तमान युग की स्थिति को देखते हुए अन्य युगों की कठोर-तपश्चर्याओं का निषेध करते हुए वर्तमान काल के उपयुक्त तपों में चान्द्रायण को ही सर्वश्रेष्ठ माना है।

शरीर-शोधन की दृष्टि से चान्द्रायण व्रत एक बहुत ही प्रखर वैज्ञानिक पद्धति है। प्राकृतिक-चिकित्सा-विज्ञान के प्रमुख सिद्धान्तों का उसमें भली प्रकार समावेश हो गया है। चिकित्सा-पद्धतियों में सबसे निर्दोष और रोगों की जड़ को काट डालने वाली प्राकृतिक-चिकित्सा ही है। उस पद्धति में उपवास और ऐनेमा यह दो प्रधान आधार हैं। उपवास न पाचन यन्त्रों को विश्राम मिलने से उन्हें पुनः नवजीवन प्राप्त करके तत्परतापूर्वक अपना काम करने की क्षमता उपलब्ध करने का अवसर मिलता है। ऐनेमा से मलाशय में भरी हुई सड़न और सूखी मल ग्रन्थियों की सफाई करके उदर को निर्मल बनाने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। पेट में भरी हुई अम्लता, सड़न, दूषित वायु एवं विषाक्तता ही शरीर के विभिन्न अंगों में दीख पड़ने वाले, अगणित रोगों की एक मात्र कारण होती है। प्राकृतिक चिकित्सा में पेट की सफाई करके उसे निर्मल बनाने और उपवास द्वारा विश्राम देकर उसे पुनः सशक्त बनाने का जो प्रयत्न किया जाता है, उससे निस्सन्देह अनेक नये-पुराने रोगों की निवृत्ति में जादू की तरह लाभ होता है। यों कटि-स्नान, मिट्टी की पट्टी, सूर्य स्नान, मालिस आदि उपचार भी प्राकृतिक-चिकित्सा में काम आते हैं, पर उन सबका लाभ उपरोक्त दो प्रधान प्रयोगों की तुलना में नाम-मात्र का ही है। तीन-चौथाई लाभ तो उपवास और ऐनमा के दो प्रयोगों में ही हो जाता है। अन्य सब उपचार मिलकर एक-चौथाई लाभ भी मुश्किल में पहुँचा पाते हैं।

उपवास हर व्यक्ति से एक जैसा नहीं कराया जा सकता। उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को ध्यान में रखकर यह निर्णय करना पड़ता है, कि उपवास कितने दिन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और किस प्रकार कराया जाय ? सब रोगियों को एक लाठी से नहीं हाँका जा सकता। यदि इस निर्णय में गलती हो तो उसका उल्टा प्रभाव भी हो सकता है। कई बार लम्बे उपवास यदि अवैज्ञानिक विधि से किए जायँ तो पेट में पड़ा हुआ मल गाँठें बनकर आँतों में अटक जाता है और मनुष्य के लिये एक नया संकट उत्पन्न कर देता है। रूढ़िवादी लोग बिना पानी पिये उपवास करते हैं और उससे अपने स्वास्थ्य के लिए खतरा खड़ा कर लेते हैं। औषधि-सेवन की तरह उपवास भी एक विज्ञान है। इसलिए उसका प्रयोग भी अन्धा-धुन्ध नहीं वरन् वैज्ञानिक आधार पर ही करना चाहिए। लम्बे उपवास शरीर-शोधन के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं पर वह उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि उसे शरीर-विज्ञान के नियमोपनियमों को ध्यान में रखते हुए किया गया है या नहीं ?

चान्द्रायण व्रत एक ऐसी वैज्ञानिक-पद्धति है, जिसमें उपवास सम्बन्धी सभी नियमों और सावधानियों का भली प्रकार ध्यान रखा गया है। धीरे-धीरे भोजन की मात्रा घटाने और धीरे-धीरे बढ़ाने से स्वास्थ्य को झटका नहीं लगता और किसी खतरे की सम्भावना नहीं रहती। फिर भी अमावस्या से चार-पाँच दिन पहले और पीछे करीब दस दिन की अवधि ऐसी होती है, जिसमें आहार बहुत स्वल्प रह जाता है और उल्टी, अनिद्रा, दाह, पेशाब पीला होना, पेट में जलन, आँखों के आगे अँधेरा, शरीर में कप-कपी जैसे उपद्रव खड़े होने लगते हैं। उस स्थिति में दुराग्रह से काम लेना उचित नहीं होता वरन् फलों का रस, शाकों का रस, दूध, छाछ आदि प्रवाही पदार्थ देने की अतिरिक्त व्यवस्था कर देना उचित रहता है। अन्य दिनों में भी आहार घटने के साथ-साथ इन प्रवाही वस्तुओं की संतुलित मात्रा देनी आरम्भ कर देनी चाहिए।

शास्त्रों में चान्द्रायण-व्रत के समय एनेमा देने का विधान भले ही न हो पर आज के दुर्बल स्वास्थ्यों को देखते हुए उसकी भी अनिवार्य आवश्यकता है। आहार घटने पर पेट में दबाव कम रह जाता है और टट्टी उतरने में अड़चन पड़ती है। ऐसी दशा में बीच के दस दिनों में एक दिन छोड़कर या नित्य प्रति ऐनेमा का प्रयोग करते रहना चाहिए। आदि के दस दिन और अन्त के दस दिनों में शौच साधारण रीति से होने लगता है पर उन दिनों भी पेट की सफाई की दृष्टि से सप्ताह में दो बार एनेमा देकर आँतों को स्वच्छ बनाने का प्रयत्न जारी रखना चाहिए।

पुरानी-पद्धति के अनुसार पूर्णिमा के दिन आहार में जितना अन्न खाया गया हो, उसे तौलकर उसी का पन्द्रहवाँ अंश प्रतिदिन घटाना चाहिए। इस विचार में प्रधानतया अन्न का ही उल्लेख है। पर प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से लम्बे उपवासों में फल, शाक, दूध, दही जैसी वस्तुओं का ही प्रयोग होना चाहिए। अन्न खाना हो तो वह स्वल्प मात्रा में ही रहे। प्राचीनकाल में कुछ भी नियम रहा हो आज मनुष्यों की जो शारीरिक स्थिति है और प्राकृतिक-चिकित्सा शास्त्र जिन तथ्यों का प्रतिपादन करता है, उन्हें देखते हुए यह उचित है कि शाक, फल, दूध, दही का आहार लिया जाय और उन्हीं को क्रमशः घटाया जाय। इस घटोत्तरी की अवधि में जल का अंश कम न होने पावे वरन् कुछ बढ़ ही जाय, इसका ध्यान रखना चाहिए। जल के साथ नीबू नमक या नीबू शहद की मिलावट बार-बार की जाती रहे तो इससे उपवास की सफलता में सहायता ही मिलती है।

अन्धा-धुन्ध चान्द्रायण व्रत जिसमें अन्नाहार को पन्द्रहवाँ भाग घटाते-बढ़ाते चलना ही नियम माना जाता है, जल का प्रयोग कम ही होता है और मल-शोधन पर कोई ध्यान नहीं जाता, अवैज्ञानिक है उससे उल्टी हानि होने का, पाचन-प्रणाली बिगड़ जाने का खतरा रहता है। इसलिए आत्म-कल्याण उपासना एवं तपश्चर्या की दृष्टि से भी जिन्हें यह साधना करनी हो, उन्हें भी आरोग्य-शास्त्र की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए ही उसे सम्पन्न करना चाहिए और इस वृष्टि से नियमों में कुछ हेर-फेर हो तो बिना किसी ननुनच के उसे कर ही लेना चाहिए।

प्राकृतिक-चिकित्सा के द्वारा अपने और अपने परिवार की स्वास्थ्य-रक्षा का प्रयोग हम चिरकाल से करते रहे हैं। गत दो-तीन वर्षों से गायत्री-तपोभूमि पर उसका अन्य रोगियों पर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोग चल रहा है। इन दिनों तीन-चार सौ रोगियों की चिकित्सा करने का अवसर मिला है। इस अवधि में वैज्ञानिक विधि से चान्द्रायण व्रत कराते हुए जितना लाभ रोगियों को दिया गया है, उसे देखते हुए हमारी सुनिश्चित धारणा यह बन गई है कि शरीर-शोधन की यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद्धति है। अलग-अलग प्रकार के रोगों में एक ही चिकित्सा करने की यह एक अनुपम प्रणाली सिद्ध हुई है। गलित कुष्ठ, हृदय की धड़कन, रक्त पित्त, अनिद्रा, रक्तचाप, शिरशूल, वायु, गोला, पथरी, गुर्दे का दर्द, जैसे कठिन रोगों में चान्द्रायण व्रत के माध्यम से की हुई चिकित्सा द्वारा आशाजनक लाभ पहुँचा है। सामान्य रोगों में होने वाले लाभों को तो आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है।

इस महाव्रत के साथ-साथ व्रत करने वाले के शारीरिक कष्टों को देखते हुए कटि-स्नान, मेहन-स्नान, मालिस, मिट्टी का उपचार, सूर्य, किरणों का प्रयोग आदि अन्य विधानों को भी काम में लाया जाय और जहाँ आवश्यकता हो निर्दोष जड़ी-बूटियों का भी सेवन कराया जाय तो उससे रोगों की निवृत्ति एवं शरीर-शोधन की प्रक्रिया और भी प्रभावशाली हो जाती है। तब चान्द्रायण साधारण व्रत उपवास न रहकर शरीर-शोधन का एक प्रभावशाली माध्यम भी बन जाता है। आहार के घटाने-बढ़ाने के क्रम में दूध, कल्प, छाछ कल्प, फल कल्प, शाक कल्प आदि विविध प्रकार के कल्प भी कराये जा सकते हैं और उससे चान्द्रायण व्रत सोने में सुगन्ध बन सकता है। ऐसा हमने अपने इन तीन वर्षों के अनुभव से सुनिश्चित निष्कर्ष निकाला है।

जिन्हें प्रत्यक्षः कोई भी रोग नहीं दीखता किन्तु शारीरिक प्रगति मन्द हो रही है। दुर्बलता घेरे रहती है, उस आयु में जितनी सशक्तता रहनी चाहिए वह नहीं दिखाई देती, थोड़े ही श्रम में अधिक थकान आती है तो समझना चाहिए कि चिकित्सक की दृष्टि में कोई रोग विशेष भले ही न हो पर प्रगति का द्वार अवरुद्ध करने वाली अशक्तता अवश्य बनी हुई है। इसी कारण असमय में बुढ़ापा आ घेरता है और इन्द्रियाँ समय से पहले जबाव देने लगती हैं। आँखों से कम दीखना, दाँतों का कमजोर होना, स्मरण-शक्ति की कमी, खुलकर भूख न लगना, दस्त साफ न होना, बुरे सपने दीखना, कामोत्तेजना की शिथिलता आदि अशक्तता के चिन्ह जिनमें मौजूद हैं, उन्हें निरोग नहीं कहा जा सकता है। इन लक्षणों वाले व्यक्तियों के भीतरी अवयव शिथिल पड़े होते हैं, रक्त समुचित मात्रा में नहीं बनता और चेहरे मुर्झाये हुए बने रहते हैं, आलस्य घेरे रहता है और थोड़ा-सा श्रम करने में बुरी तरह थकान अनुभव होने लगती है। ऐसे शरीरों को जीवित होते हुए भी अर्ध-मृतक माना जाता है। आधी-चौथाई शक्ति का उत्पादन होने से वे काम भी एक बलिष्ठ मनुष्य की तुलना से आधा चौथाई ही कर पाते हैं।

ऐसे लोगों के लिए भी शरीर-शोधन की दृष्टि से चान्द्रायण व्रत बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विधिपूर्वक किया हुआ उपवास काया-कल्प की तरह उपयोगी सिद्ध होता है। अज्ञातवास की एक वर्ष साधना के समय सन् ६१ में हमने शाकाहार पर उपवास किया था, उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गई। उस अवधि में घी तो दर्शन को भी न था, दूध भी कभी-कभी ही मिला था, फिर भी उससे २० पौण्ड वजन बढ़ गया और शरीर में नई स्फूर्ति एवं कान्ति आदि दीखने लगी। यों छोटे-बड़े उपवास हम समय-समय पर जीवन भर करते रहे हैं पर उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण न था। आरोग्य-शास्त्र के नियमों को ध्यान में रखकर एक वर्ष का उपवास हमारे जीवन में एक काया-कल्प जैसा वरदान सिद्ध हुआ है। इसलिए भी और तीन वर्षों में प्राकृतिक चिकित्सा विधि से अनेक रोगियों की चिकित्सा में सफलता प्राप्त करने में उपलब्ध हुए अनुभवों के आधार पर भी हमें यह प्रतीत हुआ कि उपवास शरीर-शोधन का एक श्रेष्ठ उपाय है। आरम्भ में कुछ वजन जरूर घट जाता है पर पीछे उसकी पूर्ति तेजी से होती है। बीमारियों और विभिन्न अंगों की दुर्बलता आदि से छुटकारा पाने के लिए उपवास का सहारा लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उपावासों में एक मध्यम वृत्ति का सुसंयमित विधान चान्द्रायण व्रत का भी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चान्द्रायण व्रत में ध्यान रखने योग्य कुछ बातें ऐसी हैं, जिन्हें बहुत-ही ध्यानपूर्वक समझ लेना चाहिए। एक यह है कि प्राचीन सिद्धान्त का आधुनिक परिस्थितियों के साथ ताल-मेल मिलाते हुए चला जाय। पन्द्रह दिन आहार घटाने और पन्द्रह दिन बढ़ाने वाला सिद्धान्त सही है। इस आहार में फल, शाक, दूध, छाछ जैसी वस्तुओं की प्रधानता रहनी चाहिए। अन्न रखना हो तो उसकी मात्रा स्वल्प ही रहे। जल खूब लिया जाय। जल में नीबू, शहद, ग्लूकोज जैसी वस्तुयें मिलाते रहना चाहिए। स्थिति के अनुसार पेट की सफाई के लिए ऐनेमा जरूर लेते रहना चाहिए ताकि उपवास के दिनों पेट में गर्मी बढ़ने से मल सूखकर उसकी गाँठें न बनने पायें। व्रत के दिनों में शारीरिक श्रम कम से कम करना चाहिए ताकि संचित शक्ति का अनावश्यक व्यय न हो। टहलना और मालिश इन दो व्यायामों की व्यवस्था बनी रहे तो पर्याप्त है। उपवास के दिनों शरीर में कुछ कमजोरी सी प्रतीत होती है। अन्न भी एक नशा होता है वह न मिले तो देह में हल्का-हल्कापन लगता है। उससे घबराना न चाहिए। जो उपवासकर्ता उस छोटी-सी कठिनाई से डरते, घबराते हैं, वे अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण इस महाव्रत का लाभ खो बैठते हैं।

उपवास काल में कई बार 'उखाड़' होते हैं। पेट की कब्ज के भार में कितने ही रोग दबे पड़े रहते हैं, जैसे-जैसे पेट हल्का होता जाता है, वैसे ही वैसे वे दबे हुए विकार उखड़कर ऊपर आते हैं और मितली, सिरदर्द मुँह में कड़ुआपन, अनिद्रा आदि कई विकार अनायास ही उठ खड़े होते हैं। उनके लिए क्या, कैसा उपचार करना चाहिए ? इसका निर्णय शारीरिक और मानसिक स्थिति को देखकर किया जा सकता है। ऐसी दशा में अनुभवी परामर्शदाता की आवश्यकता रहती है। वह न मिले तो भी सामान्य-ज्ञान के आधार पर उन स्वल्प कालीन उभार विकृतियों का समाधान किया जा सकता है। कोई निर्दोष जड़ी-बूटी औषधि के रूप में भी उस समय ली जा सकती है।

चान्द्रायण व्रत करने और कराने वाले को शरीर-शास्त्र की और उपवास की प्रतिक्रियाओं का समुचित ज्ञान रहे तो इसके सहारे इस महाव्रत का परिपूर्ण लाभ उठाया जा सकता है। अपने तथा दूसरे अनुभवी लोगों के ज्ञान के आधार पर इस सम्बन्ध की प्रत्येक बारीकी का दिग्दर्शन कराने वाले एक विशद् ग्रन्थ की आवश्यकता पड़ेगी। अवकाश मिलते ही उसे प्रस्तुत करेंगे। अभी तो इन लेखों में बताई हुई जानकारी के आधार पर भी एक सीमा तक काम चल सकता है।

शान्तिकुंज में एक-एक महीने के चान्द्रायण व्रत शिविर समय-समय पर होते रहते हैं। आगे जब संजीवनी विद्या के मासिक शिविर आरम्भ होंगे, तब साथ ही उन लोगों का भी कार्यक्रम चलता रहेगा जो चान्द्रायण व्रत के साथ गायत्री अनुष्ठान करते हुए अपने शारीरिक और मानसिक रोगों का निवारण करना चाहेंगे। इस प्रकार यह व्रतशील, तपस्वी शारीरिक और मानसिक आरोग्य प्राप्ति की साधना करते हुए जीवन जीने की विद्या के महत्त्वपूर्ण ज्ञान का लाभ भी प्राप्त करते रह सकेंगे।

चान्द्रायण काल की पुरश्चरण साधना

चान्द्रायण अवधि में उपवास, भूमि शयन, शरीर सेवा में स्वावलम्बन जैसी कई तप-तितीक्षाएँ करनी पड़ती हैं। साथ ही इन्हीं दिनों सवालक्ष गायत्री पुरश्चरण करना होता है। पुरश्चरण के विधि-विधान गायत्री महाविज्ञान में विस्तारपूर्वक लिखे जा चुके हैं। उनका विस्तार विवरण इन थोड़ी पंक्तियों में सम्भव नहीं। फिर वे कई प्रकार के भी हैं। उनमें से किस प्रक्रिया के साथ उसे सम्पन्न किया जाय यह व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति एवं परिस्थिति का विवेचन-विश्लेषण करने के उपरान्त ही निर्धारण किया जाता है। अनुष्ठान के सामान्य नियम तो सर्वविदित हैं ही, किन्तु चान्द्रायण काल की साधना विशेष उद्देश्य से की जाती है और उच्चस्तरीय भी होती है। इसलिए उसका अन्तिम स्वरूप निर्धारित करने के लिए साधक के साथ विचार-विनिमय आवश्यक होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामान्यतया इतना जान लेने से काम चल सकता है कि चान्द्रायण साधक को हर दिन ४२ माला जप करके एक महीने में सवालक्ष अनुष्ठान पूरा करना होता है। इसमें प्रायः चार घण्टे लगते हैं। जो दो या तीन बार में भी पूरे किये जा सकते हैं। प्रयत्न यह होता है कि भोजन से पूर्व अधिकांश संख्या पूरी हो सके।

जप जिव्हा से होता है अस्तु वह शारीरिक श्रम प्रधान है। माला की गणना भी शरीर से ही होती है। साधना में मन को भी काम देना होता है। उसे एकाग्र होने के लिए साधना पड़ता है। यह कार्य ध्यान धारणा को जप के साथ लेकर चलने से ही सम्पन्न होता है। इससे एकाग्रता का सहज अभ्यास होता है और मन भागने की जो आम शिकायत रहती है, उसका समाधान होने लगता है। एकाग्रता की शक्ति का अध्यात्म शास्त्र में अत्यधिक महत्त्व बनाया गया है। यह उपलब्धि ध्यान धारणा की है। मात्र जप भर करने में तो जिव्हा का उपयोग होता है और उसे परिष्कृत करने का लाभ मिलता है। सम्बन्धित चक्र उपत्यिकाओं के जागरण में भी सहायता मिलती है, पर एकाग्रता का लाभ नहीं मिल पाता। मन की चंचलता बनी ही रहती है। इसका एक ही उपाय है मंत्राराधन के साथ-साथ ध्यान धारणा जोड़े रहना। मन मस्तिष्क को काम मिलता रहे तो वह अनावश्यक उछल-कूद में क्यों दौड़े ? जप के साथ ध्यान धारणा चलती रहे तो उस अवधि में एकाग्रता का लाभ भी मिलता रहेगा, साथ में मनःसंस्थान को हेय प्रयोजनों में निरत रहने के स्थान पर उच्चस्तरीय तथ्यों के साथ तादात्म्य होने का अभ्यास भी बढ़ता रहेगा।

आद्य शक्ति, ऋतम्भरा, महाप्रज्ञा गायत्री ही है। उसे ब्रह्मविद्या भी कहा गया है। वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता के रूप में उसकी शक्ति, सामर्थ्य और प्रेरणाओं से सभी अवगत हैं। गायत्री महाशक्ति की सवालक्ष पुरश्चरण जैसी उच्चस्तरीय साधना को विधिवत् किया जा सके तो उसके प्रतिफल वैसे ही हो सकते हैं जैसे कि सप्त ऋषियों को प्राप्त हुए थे। गायत्री के ऋषि विश्वामित्र ने नई दुनिया बसाने—नया जमाना लाने की हरिश्चन्द्र के सहयोग से एक विश्व योजना बनाई थी यह बल एवं साधन उन्हें आद्य शक्ति की आराधना से ही प्राप्त हुआ था। विश्वामित्र ने अपनी तप सम्पदा राम लक्ष्मण को बला, अतिबला विद्या के नाम से प्रदान की थी। यह गायत्री और सावित्री के ही दो उपनाम हैं, इन्हीं के बल पर वे असुर विनाश और धर्म राज्य संस्थापन के उभय प्रयोजनों में सफल हुए थे। चौबीस अवतार गायत्री के चौबीस अक्षरों के रहस्यों को ही प्रकट करते हैं। दत्तात्रेय के चौबीस गुरुओं के नाम से गायत्री के चौबीस अक्षरों की ही गरिमा का विवेचन किया गया है।

गायत्री की असीम शक्ति की अनुकम्पा प्राचीन काल के देवमानवों को कुकृत्य करती रही है। अभी भी ऐसे व्यक्तित्व जीवित हैं जिनकी क्षमता असंख्यों को उठाने, बढ़ाने, उबारने; सँभालने में चमत्कार प्रस्तुत करती है।

गायत्री साधना में मन्त्र विद्या के साथ जुड़े हुए अन्यान्य उपक्रमों को जोड़ देने से वह ब्राह्मी शक्ति के रूप में प्रकट होती है। अग्नि की सामर्थ्य तो सर्वविदित है पर उसे प्रज्वलित देखने में सूखे ईंधन की आवश्यकता तो रहेगी ही। साधक की तत्परता, तन्मयता ईंधन का काम देती है। शरीर से तप करना होता है और मन को इष्ट में समर्पित किये रहना होता है। यही ध्यान-धारणा है। इस ध्यान-धारणा के बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी दोनों ही पक्षों का संक्षिप्त विवेचन इन पंक्तियों में किया जा रहा है। चान्द्रायण काल की प्रज्ञायोग साधना के क्रमिक विस्तार अगले साधकों में प्रकाशित होते रहेंगे।

ध्यान एक प्रकार का दिव्य दर्शन है। उसके साकार-निराकार दोनों पक्ष हैं। गायत्री माता को साकार और सविता देव में अरुणोदय स्वरूप से तादात्म्य को निराकार ध्यान कहते हैं। यह दो ध्यान बहिर्मुखी हैं। इनमें बाहर से भीतर के प्रवेश के लिए आकर्षण किया जाता है। गायत्री माता का अमृतोपम पयपान अथवा सविता देव का ऊर्जा अनुदान—यह दोनों ही बाहर से भीतर प्रवेश करने वाले आधार हैं।

माता का दूध पीकर जिस प्रकार बालक प्रसन्न, पुष्ट होता है, उसी प्रकार साधक को प्रज्ञापुत्र होने और सीता के लवकुश, शकुन्तला के भरत, गंगा के भीष्म, कुन्ती के अर्जुन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंजनी के हनुमान बनने की मान्यता परिपुष्ट करनी होती है। यह आस्था जितनी प्रगाढ़ होती है, उसी के अनुरूप न केवल भावनात्मक अनुभूति वरन् उपलब्धियों की प्रतीति भी होती है।

सविता का ध्यान सार्वभौम है। नेत्र बन्द करके प्रभातकालीन स्वर्णिम सूर्य का ध्यान। उसकी सुनहरी किरणों का साधक के कण-कण में प्रवेश। उस प्रवेश से स्थूल शरीर में निष्ठा, सूक्ष्म शरीर में प्रज्ञा और कारण शरीर में श्रद्धा का उद्भव। आलोक से समूची आत्मसत्ता प्रकाशवान। ऊर्जा से काया का कण-कण अनुप्राणित। अपने स्वरूप की प्रकाश-पुंज, अग्नि-पिण्ड जैसी अनुभूति। उस अनुदान से पवित्रता एवं प्रखरता की अभिवृद्धि। इसे निराकार ध्यान भी कहा जाता है। मानवी छवि का समावेश न होने से सूर्य के साकार होते हुए भी उसका ध्यान निराकार गिना जाता है। वह सार्वभौम एवं सार्वजनीन भी है।

भीतर से बाहर उभरने वाले—अन्तर्मुखी ध्यानों में आज्ञा चक्र, हृदय चक्र और मूलाधार चक्र के जागरण को प्रमुखता दी जाती है। यों हठयोग के अन्तर्गत छै चक्रों का वर्णन है। किन्तु प्रज्ञा योग में त्रिपदा गायत्री के तीन केन्द्रों को ज्योतिर्मय बनाने से काम चल जाता है।

आज्ञा चक्र को तृतीय नेत्र कहते हैं। इसके आलोक में मस्तिष्कीय क्षेत्र में सन्निहित मन, बुद्धि और चित्त को उत्कृष्टता की दिशा में उभारा जाता है। मन, संकल्प, बुद्धि के निर्धारण एवं चित्त के विश्वास सजग होते हैं और अधोगामी प्रवाह को उलटकर ऊर्ध्वगमन के लिए सहमत होते हैं, तो तीनों का स्तर कहीं से कहीं पहुँचने लगता है। दूरदर्शी विवेकशीलता उभरती है तो व्यक्तित्व के वर्तमान स्वरूप तथा भावी कार्यक्रम में भारी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है। साथ ही यह भी अन्तःप्रेरणा के आधार पर सूझता है कि उस उत्क्रान्ति के लिए किस प्रकार क्या किया जाना चाहिए ? अतीन्द्रिय क्षमताओं का केन्द्र भी आज्ञा चक्र है। अदृश्य दर्शन, दूर श्रवण, भविष्य कथन, विचार संचालन, प्राण प्रत्यावर्तन, आकर्षण, विकर्षण जैसी सिद्धियों का भण्डार आज्ञाचक्र ही है। इस तीसरे नेत्र में जब ज्योति का अवतरण होता है, तो अदृश्य जगत में प्रवेश करके बहुत कुछ जानने, देखने, कुरेदने और उखाड़ने, समेटने को मिल जाता है, जो साधारणतया अविज्ञात ही बना रहता है। शिवजी का, दुर्गा का तृतीय नेत्र किस प्रकार समय-समय पर आग उगलता रहा है, उसे कथा-पुराणों का पठन श्रवण करने वाले ही जानते हैं किन्तु आज्ञा चक्र के ज्योतिर्मय होते-होते सामान्य साधक भी यह अनुभव करने लगते हैं कि उन्हें कुछ विशेष सूझ-बूझ उपलब्ध हो रही है। ऐसी विशेष, जैसी आमतौर से सर्वसाधारण को उपलब्ध ही नहीं होती।

हृदय चक्र को ब्रह्म चक्र या सूर्य चक्र भी कहते हैं, यह दोनों पसलियों के मध्य हैं। योगीजन आत्म-साक्षात्कार यही करते हैं। ईश्वर की प्रकाश ज्योति भी यही प्रकट होती है। जिस अंगुष्ठ मात्र ब्रह्म ज्योति का स्वरूप एवं माहात्म्य उपनिषदों में स्थान-स्थान पर वर्णन किया गया है, उसका निवास इसी केन्द्र में है। यह बुझा हुआ दीपक जब जलता है तो तथाकथित 'अलादीन के चिराग' जैसा बहुत कुछ अद्भुत दीखने लगता है। अर्जुन को जिस ज्ञान चक्षु के खुलने पर विराट् ब्रह्म के दर्शन हुए थे वह आज्ञा चक्र का नहीं हृदय चक्र का प्रसंग है।

यहाँ हृदय शब्द का अर्थ, रक्त-संचार में प्रयुक्त होने वाला पम्प नहीं समझना चाहिए वरन् उस अन्तःकरण का, अन्तरात्मा का केन्द्र समझना चाहिए, जिसमें सहृदयता भरी रहती है। सहृदयता का अर्थ है—भाव संवेदना, कोमलता, करुणा, पवित्रता, श्रद्धा, आत्मीयता, उदारता। यह मस्तिष्कीय सामर्थ्य से सर्वथा भिन्न एवं नितान्त उच्चस्तरीय दिव्य क्षमता है, जिसे देवत्व की प्रतीक, प्रतिनिधि, जन्मदात्री, अधिष्ठात्री कहा जा सकता है। मान्यताएँ, आस्थाएँ, आकांक्षाएँ इसी केन्द्र में निवास करती हैं। आत्मा और परमात्मा के मिलन की सुहाग शैय्या इसी अन्तःपुर में बिछी हुई बताई गई है। व्यक्तित्व की जड़ें इसी क्षेत्र में गहराई तक घुसी होती हैं। प्रेरणाओं का उद्गम यही है। इसके जागरण से आध्यात्मिक क्षेत्र की उन विभूतियों को हस्तगत करने का अवसर मिलता है, जिन्हें ऋद्धियों के नाम से जाना जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीसरा चक्र है मूलाधार। इसे नाभिचक्र, प्राणचक्र, प्रसुप्त सर्प कुण्डलिनी केन्द्र भी कहते हैं। इसके स्थान निर्धारण में मलमूत्र छिद्रों के मध्य केन्द्र की चर्चा होती रहती है। वस्तुतः सुषुम्ना का अन्तिम सिरा उस स्थान से काफी ऊँचा पड़ता है और वह लगभग नाभि की सीध में जा पहुँचता है। मूलाधार का ध्यान करने में जननेन्द्रिय का बार-बार स्मरण आने से कामोत्तेजना उत्पन्न होती है और ऊर्ध्वगमन में अवरोध व्यतिरेक उत्पन्न होता है। इसलिए वहाँ तक पहुँचने के लिए नीचे से ऊपर चलने की अपेक्षा बगल के दरवाजे से प्रवेश करना अधिक उत्तम है। यहाँ मूलाधार और नाभिचक्र की एकता का दिग्दर्शन कराया जा रहा है। प्रज्ञा योग में मूलाधार को नाभिचक्र अथवा प्राणचक्र के नाम से पुकारा जाता है।

कुण्डलिनी, षटचक्र, मेरुदण्ड, महासर्प, सहस्रार की चर्चा आकर्षक प्रतिपादनों एवं विवरणों के साथ कही-सुनी हो जाती है। उस समूचे प्रसंग को नाभिचक्र से सम्बन्धित समझा जाना चाहिए। इस विज्ञान को प्राण विज्ञान कहना चाहिए। प्राण को जीवन्त ऊर्जा माना गया है। संक्षेप में इसे प्रतिभा कह सकते हैं। साहस, पराक्रम, जीवट, उल्लास, उमंग जैसी सचेतन विद्युत धाराएँ इसी केन्द्र से उभरती, उफनती रहती हैं। बलिष्ठता, समर्थता, प्रखरता जैसी विशेषताएँ इसी उद्गम का द्वार खोल देने पर उमगने, उछलने लगती है। इसी का उथला-सा परिचय कामुकता की सरसता और प्राणवान प्रजनन की क्षमता में देखा जा सकता है। दाम्पत्य जीवन और सुप्रजनन की सफलता से इस केन्द्र का सीधा सम्बन्ध है।

औषधि विज्ञान की तरह साधना विज्ञान का भी एक स्वतन्त्र शास्त्र है। चिकित्सा उपचार में रोगियों को स्थिति का विशेष रूप से ध्यान रखना होता है, उसी प्रकार श्रेयार्थियों के लिये भी अनुभवी मार्गदर्शन अमुक साधना अथवा कई योग प्रयोजनों का सम्मिश्रण करके ऐसा निर्धारण करते हैं, जो अभावों की पूर्ति एवं उलझनों से निवृत्ति करा सकने में समर्थ हो सके। मेरुदण्ड में प्रवाहित विविध शक्ति धाराओं—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना में से किसे किस शरीर को प्रधानता देनी है, किसे किस क्षेत्र में प्रवेश करना है, वे इन्हीं तीनों के साथ अपना तादात्म्य बिठाते हैं। इन्हीं तीनों को तीन लोकों में प्रवेश पाने के तीन राजमार्ग कहते हैं। भूलोक इड़ा से, भुवः लोक पिंगला से और स्व लोक सुषुम्ना से सम्बन्धित माना गया है। इन तीनों का समग्र स्वरूप त्रिपदा गायत्री के रूप में बनता है।

गायत्री मन्त्र प्रधान है, उसमें शब्द शक्ति का अवलम्बन लेकर तीन शरीरों में सन्निहित तीन शक्ति स्रोतों के साथ सम्बन्ध बनाया जाता है। मन्त्र योग के समस्त उपचार शब्द शक्ति पर आधारित हैं, जिसमें निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त तीनों लोकों व पिण्ड के सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों के मध्य गठबन्धन की प्रक्रिया सम्पादित होती है। विज्ञान के छात्र जानते हैं कि ऊर्जा के अनेक विभाजनों में ताप, ध्वनि और प्रकाश की तरंगों को प्रमुखता दी गयी है। इन तीनों का रूपान्तरण विभिन्न स्तर के परमाणुओं और जीवकोषों में होता रहता है। पदार्थ जगत में पाँच तत्वों का और चेतन जगत में पाँच प्राणों का आधिपत्य है। इन दोनों ही क्षेत्रों में गतिविधियाँ जिस ऊर्जा के बलबूते चलती रहती हैं—उनमें से एक अति महत्त्वपूर्ण है— 'ध्वनि'। इसी को अध्यात्म तत्वज्ञानी ॐकार के रूप में अधिग्रहण करते हैं। ॐकार से भूः भुवः, स्वः तीन व्याहृतियाँ और इनमें से प्रत्येक से तीन-तीन शब्द निस्सृत होने पर नौ शब्द वाली—चौबीस अक्षरों वाली गायत्री का महामन्त्र बन जाता है। सामान्यतया इसे हंसवाहिनी, आदिशक्ति के रूप में—सविता के भर्गो 'ब्रह्मवर्चस्' में तथा महाप्रज्ञा की ध्यान धारणा में अपनाया और हृदयंगम किया जाता है। इतने पर भी यह मानकर चलना चाहिए कि गायत्री का तत्वज्ञान और प्रयोग विधान जिस धारा से प्रभावित होता है, वह ब्रह्म विद्या 'शब्द' परक है। मन्त्रयोग का रहस्य यही है। उसकी समस्त विधि व्यवस्था 'शब्द शास्त्र' के अन्तर्गत समझी-समझाई जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध बनाने के लिए साधनात्मक प्रयोजनों में शब्द शक्ति का ही प्रयोग करना पड़ता है। जप, स्तवन, कथा, मन्त्रोपचार, पाठ-कीर्तन, प्रवचन, आशीर्वाद, अभिचार आदि में शब्द का ही किसी न किसी रूप में प्रयोग होता है। नादयोग के माध्यम से ईश्वरीय सन्देश सुनने एवं अदृश्य जगत में चल रही हलचलों की जानकारी प्राप्त करने की बात बनती है। विज्ञान ने प्रकृति के अन्तराल से ऐसी ध्वनि तरंगें ढूँढ़ निकाली हैं, जो अब तक के समस्त आविष्कारों की तुलना में अधिक सामर्थ्यवान शक्ति स्रोत उपलब्ध हुआ है। चेतना जगत तथा पदार्थ जगत के दोनों ही क्षेत्रों में उच्चस्तरीय अनुकूलताएँ उत्पन्न करने तथा अभीष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए शब्द शक्ति का जो विशेष विनियोग उपचार किया जाता है, उसी को 'मन' कहते हैं। आज यन्त्रों की धूम है। उनकी उपयोगिता तथा समर्थता का परिचय सभी को है। भूतकाल में ठीक इसी तरह मन्त्र शक्ति का प्रयोग होता रहा है और उसकी प्रभाव शक्ति आज के अति महत्त्वपूर्ण यन्त्रों की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं थी।

मन्त्र विद्या को—उच्चस्तरीय शब्द-विज्ञान कह सकते हैं। मन्त्रों के अक्षरों का गठन-गुंथन आत्म-विज्ञान के पारंगतों ने इस प्रकार किया है कि उनसे साधक की काया में सन्निहित अनेक रहस्य भरे शक्ति-संस्थानों का उभार-अभिवर्धन होता चला जाता है। गायत्री महाविद्या में उस उच्चस्तरीय रहस्यमय शक्ति का ऐसा समावेश है, जिसका सिद्धान्त एवं प्रयोग करने वाला सिद्ध पुरुष स्तर की चमत्कारी सिद्धियों का परिचय दे सकता है।

मन्त्र विद्या द्वारा शब्द शक्ति के माध्यम से उत्पन्न की गई ऊर्जा इतनी प्रचण्ड होती है कि उसके चमत्कार असामान्य स्तर के होते हैं। इस सन्दर्भ में शाप, वरदानों का लम्बा इतिहास पढ़कर तथ्यों को जाना जा सकता है। मन्त्र साधना द्वारा निजी जीवन के भौतिक एवं आत्मिक पक्षों में असाधारण प्रगति सम्भव हो सकती है। इतना ही नहीं दूसरों का भी उस माध्यम से हित साधन हो सकता है। नियति के रहस्यों को भी उस आधार पर जाना जा सकता है और आवश्यकतानुसार विश्व-प्रवाह का अदृश्य वातावरण में हेर-फेर कर सकना भी सम्भव हो सकता है।

गायत्री मन्त्र एक शब्द गुच्छक है। उसका प्रयोग जप, उच्चारण के माध्यम से विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होता है। इसी कारण जप के साथ-साथ ध्यान आवश्यक माना गया है, ताकि शरीर की तत्परता और मन की तन्मयता का दुहरा अभ्यास होता रहे। एकाग्रता सम्पादन का उपाय भी यही है। मन भागता हो तो उसे बार-बार पकड़कर निर्धारित धारणा में नियोजित करते रहना चाहिए। वन्य पशु की तरह मन को साधना भी कष्टसाध्य, श्रम साध्य एवं समय साध्य है। उसमें विलम्ब लगता हो, सफलताक्रम धीमा हो तो भी हताश होने की आवश्यकता नहीं। धैर्यपूर्वक प्रयास जारी रखने से आज नहीं तो कल सफलता मिलकर ही रहती है। उपरोक्त तीनों अन्तर्मुखी ध्यानों में से कोई किया जाय या दो बहिर्मुखी ध्यानों में से एक अपनाया जाय। इसका निर्धारण मनोभूमि के गम्भीर पर्यवेक्षण से ही निश्चित किया जा सकता है। उपरोक्त पाँचों ध्यानों में से चान्द्रायण पुरश्चरण में चुनना एक ही पड़ता है।

चान्द्रायण साधना एक काया कल्प उपचार

संचित पाप कर्मों का प्रतिफल रोग, शोक, विक्षोभ, हानि, विपत्ति आदि के रूप में उपस्थित होता है। यह विपत्तियाँ भुगतनी पड़ें इसका आधार मनुष्यों का भ्रष्ट-चिन्तन एवं दुष्ट आचरण ही होता है। पाप कर्म के बीज सर्वप्रथम दुष्प्रवृत्ति बनकर अंकुर की तरह पौधे उगते हैं। इसके बाद वे पेड़-पौधे बनकर फलने-फूलने लगते हैं। जब तक वे फलने योग्य नहीं होते, तब तक उनका स्वरूप पतन-पराभव के रूप में दृष्टिगोचर होने वाले दुराचरण जैसा होता है। पीछे जब वे यदि पुष्ट-परिपक्व हो जाते हैं तो आधि-व्याधि, विपत्ति, हानि, भर्त्सना के रूप में कष्ट देने लगते हैं। दुष्कर्मों के अकाट्य प्रतिफल से बचने का दैवी विपत्ति एवं समाज प्रताड़ना के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिरिक्त दूसरा मार्ग प्रायश्चित का है। इस तप-साधना का आश्रय लेकर मनुष्य आत्म-शोधन और आत्म-परिष्कार का दुहरा प्रयोजन एक साथ पूरा कर सकता है।

प्रगति पथ पर चलने के लिए आन्तरिक अवरोधों से पीछा छुड़ाना और आत्मबल पर आश्रित अनुकूलताओं को अर्जित करने की आवश्यकता पड़ती है। यही है आत्मिक पुरुषार्थ का एकमात्र स्वरूप। यात्री को एक पैर उठाना दूसरा बढ़ाना पड़ता है। उठाने का तात्पर्य है, कुसंस्कारों को छोड़ना। इसके लिए तप करना। बढ़ाने का अर्थ है—सत्यप्रवृत्तियों को स्वभाव एवं आचरण में सम्मिलित करना। कच्ची धातुओं को बहुमूल्य उपकरण के रूप में परिवर्तित करने के लिए प्रचण्ड ताप की भट्टी द्वारा गलाई-ढलाई करनी पड़ती है। गलाई को तप और ढलाई को योग कहते हैं। चान्द्रायण में तप और योग दोनों का समावेश है। उसकी समूची प्रक्रिया में पग-पग पर परिशोधन और परिष्कार के उभयपक्षीय तत्व पूरी तरह गुँथे हुए हैं।

उपवास सुसंस्कारी अन्न से काय शोधन होता है और मनःक्षेत्र में प्रज्ञा का आलोक बढ़ता है। शरीर-कल्प के यही दो आधार हैं। आत्मिक काया-कल्प के लिए भी शरीर की तप-तितीक्षा के आधार पर परिशोधन होता है। उपवास पर आधारित आहार-चिकित्सा को कायिक निरोगता का मूलभूत आधार माना जा सकता है। पेट का भार हल्का रहने और सुसंस्कारी आहार से गुण, कर्म, स्वभाव पर उपयोगी प्रभाव पड़ने का प्रत्यक्ष लाभ स्वास्थ्य सुधार के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का अभ्यास करने से अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों से सहज ही छुटकारा मिलता है। अन्धकार हटना और प्रकाश बढ़ना एक ही बात है। कुसंस्कार घटेंगे तो आन्तरिक प्रखरता अनायास ही बढ़ती चली जायेगी। इसके अतिरिक्त उन दिनों आन्तरिक परिवर्तन के लिए भावात्मक प्रयत्न होते रहें और साथ-साथ योगाभ्यास सम्मत कोई अतिरिक्त प्रयत्न भी चलते हैं। यह अभ्युदय उत्कर्ष की सशक्त प्रक्रिया है।

प्रायश्चित्त में तीन पक्ष है। एक—व्रत उपवास जैसी तितीक्षा। दूसरा—संचित कुसंस्कारों को उखाड़ने और उस स्थान पर उच्चस्तरीय शालीनता को स्थापित करने का अन्तर्मुखी पुरुषार्थ। तीसरा—खोदी हुई खाई को पाटने वाली क्षति-पूर्ति के लिए पुण्य परमार्श का उदार साहस। इन तीनों के संयुक्त समावेश में प्रायश्चित की पूर्ण प्रक्रिया सधती है। मात्र आहार में कटौती करने भर से तो चान्द्रायण का एक छोटा भाग ही सधता है।

चान्द्रायण को एक प्रकार से आयुर्वेदोक्त काया-कल्प उपचार के समान समूचे व्यक्तित्व को संशोधन, सम्वर्धन करने वाली प्रक्रिया कह सकते हैं। इसे आत्मिक कल्प कह सकते हैं। इतने पर भी कल्प के भौतिक सिद्धान्त दोनों में ही एक जैसे हैं। एकान्त सेवन—आहार संयम तथा निर्धारित चिन्तन। यही तीन आधार चान्द्रायण के भी हैं। रोगी अपने रोग का स्वरूप ही नहीं इतिहास भी चिकित्सक को बताता है, उसी निदान के आधार पर उपचार की व्यवस्था बनाता है। चान्द्रायण में मार्गदर्शन को अपने संचित पाप-कर्मों का विस्तृत वर्णन—स्वभावगत दोष-दुर्गुणों का परिचय एवं भौतिक, आत्मिक अवरोधों का विवरण प्रस्तुत करना पड़ता है। इन दोनों पक्षों पर गम्भीर विचार करने के उपरान्त ही हर व्यक्ति के लिए कुछ विशेष परामर्श दिये जाते हैं। उपाय, उपचार बताये जाते हैं। चान्द्रायण के सामान्य नियम उपचार तो एक जैसे हैं किन्तु साथ ही हर साधक को स्थिति के अनुरूप उसे कुछ अतिरिक्त उपाय साधन भी बताये जाते हैं। इन निर्धारणों को कौतुक कौतूहल एवं बेगार जैसी चिन्ह पूजा नहीं बनाया जाता। लकीर पीटने की आधी, अधूरी, लंगड़ी-लूली प्रक्रिया अपनाने भर से इतना बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं होता। उसमें गम्भीर होना पड़ता है और निर्धारित अनुशासन का कठोरतापूर्वक परिपालन करना पड़ता है।

चान्द्रायण तप घर के व्यस्त—अभ्यस्त वातावरण में नहीं हो सकता है। उपवासपूर्वक अनुष्ठान तो आये दिन होते रहते हैं। चान्द्रायण उससे आगे की चीज है। उसके लिए तद्नुरूप तीर्थ जैसा पवित्र वातावरण—उपयुक्त साधन एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि कृत्य मार्गदर्शन चाहिए। यह आवश्यकता शान्ति-कुंज, गायत्री नगर में जैसी अच्छी तरह सम्पन्न हो सकती है वैसी सुविधा कहीं अन्यत्र मिल सकना कठिन है। पूर्ण चान्द्रायण एक महीने का—पूर्णिमा से पूर्णिमा तक होता है और लघु (शिशु) चान्द्रायण दस दिन का। दोनों में समय का ही अन्तर है विधान अनुशासन दोनों में एक जैसे हैं। सबसे महत्त्व की बात यह है कि शरीरगत अनुबंधों की निर्धारित दिनचर्या अपनाये रहने के अतिरिक्त मानसिक स्थिति ऐसी बनानी पड़ती है, मानो किसी अन्य लोक में उन दिनों रहा जा रहा है। इन दिनों सांसारिक, चिन्तन एक प्रकार से विस्मृत ही कर देना चाहिए और मात्र अध्यात्म लोक की आवश्यकताओं तथा अन्तःक्षेत्र की समस्याओं को हल करने में ही चित्त को पूरी तरह केन्द्रित रखना चाहिए। भौतिक जीवन की समस्याएँ इतनी विकट होती हैं कि उन्हें सुलझाने वाले साधन जुटाने में प्रायः समूची जीवन अवधि खप जाती है। फिर आत्मिक जीवन तो और भी अधिक व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण है। उसकी गुत्थियाँ सुलझाने और प्रगति के सरंजाम जुटाने के नये सिरे से नये दृष्टिकोण तथा नया साहस जुटाना होता है। इतने बड़े काम के लिए निर्धारित साधना काल स्वल्प ही है। उसमें से भौतिक, चिन्तन एवं प्रयास के लिए तनिक भी कटौती नहीं करनी चाहिए। समय तथा मनोयोग के निर्धारित प्रयोजन में ही जुटाये रहना चाहिए, उसे अन्य किसी कार्य में रत्ती भर भी अस्त-व्यस्त नहीं करना चाहिए।

चान्द्रायण साधना को 'व्रत'—'तप' एवं 'कल्प' के नाम से जाना जाता है। 'व्रत' अर्थात् संयम, अनुशासन निर्धारण एवं 'परिपालन।' तप अर्थात् संचित कुसंस्कारों के संघर्ष और शालीनता के अवधारणा का अभ्यास पुरुषार्थ। 'कल्प' अर्थात् पिछली हेय स्थिति को उलटकर उसके स्थान पर उत्कृष्टता का प्रतिष्ठापन। यह तीनों ही प्रयास परस्पर मिलते हैं, तो ज्ञान और कर्म की गंगा यमुना मिलने से एक नई धारा भक्ति भावना की—दिव्य जीवन की सरस्वती के रूप में उद्भूत होती है। इस समन्वय में त्रिवेणी संगम बनता है। उसका अवगाहन करने वाले इस धरती पर स्वर्ग का आनन्द लेते हैं। जीवन मुक्त बनते हैं और मनुष्य रूप में देवता कहलाते हैं। इसी परमलक्ष्य की पूर्ति करना चान्द्रायण का आधारभूत उद्देश्य है।

चान्द्रायण के तीन पक्ष हैं—(१) संयम साधना, (२) प्रज्ञा उपासना, (३) भविष्य निर्धारण की आराधना। संयम साधना से उपवास प्रमुख है। इस अवधि में सामान्य आहार की तुलना में आधा ही लिया जाता है। जो खाया जाय वह पूर्ण सात्विक एवं सुसंस्कारी हो इसका ध्यान रखा जाता है। संयम को ही तप कहते हैं। सामान्य जीवन में यह तप चार प्रकार अपनाया जाता है। (१) इन्द्रिय संयम-के लिए ब्रह्मचर्य, मौन अस्वाद आदि की तितीक्षा, (२) अर्थ संयम-के लिए मितव्ययता। परिश्रमशीलता अपनाकर सादा जीवन उच्च विचार का अभ्यास। औसत भारतीय स्तर के निर्वाह का अभ्यास। (३) समय संयम—एक घड़ी भी आलस्य, प्रमाद में बर्बाद न होने देना। दिनचर्या बनाकर उसके परिपालन में तत्परता बरतना (४) विचार संयम चिन्तन की अस्त-व्यस्त उड़ानें भरने से रोकना। सौंपे हुए काम में ही मनोयोग नियोजित रखना। चान्द्रायण में यह चारों ही संयम साधनाएँ दिनचर्या के रूप में निर्धारित करनी होती हैं। तपस्वी सच्चे अर्थों में सामर्थ्यवान बनता है। उसकी ऊर्जा से प्रखरता, परिपक्वता बढ़ती है। तपस्वी ही शरीरगत तेजस्, मनोगत तेजस् एवं अन्तःकरण वर्चस् से सुसम्पन्न बनते हैं। इसी आत्मबल के सहारे ऋद्धि-सिद्धियों का द्वार खुलता है।

प्रज्ञा उपासना में गायत्री पुरश्चरण मुख्य है। ढाई घण्टा नित्य का समय इसके लिए नियत है। इस बीच निर्धारित जप संख्या पूरी की जाय। साथ ही प्रभातकालीन सूर्य किरणों में तीनों शरीर में प्रवेश करने का ध्यान किया जाय। अनुभव किया जाय कि गायत्री के प्राण सविता देवता का दिव्य आलोक जीवन सत्ता के कण-कण में प्रवेश करके तीन अनुदान प्रदान करता है। स्थूल शरीर को—सत्कर्म। सूक्ष्म शरीर को—सद्ज्ञान। कारण शरीर को सद्भाव। इन्हीं तीनों को क्रमशः निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा भी कहते हैं। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के अन्तर्गत इन्हीं दिव्य अनुदानों का विवेचन किया जाता है और तृप्ति, तुष्टि, शान्ति की त्रिविध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभूतियों के सहारे देवोपम जीवन जी सकने का लाभ समझाया जाता है। जिनको यह दिव्य सम्पदा जितनी मात्रा में उपलब्ध होती है, वह उसी अनुपात से आत्म-सन्तोष, जन-सहयोग एवं दैवी अनुग्रह का प्रतिफल हाथों-हाथ प्राप्त करता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा ही गायत्री है। प्रज्ञा—अर्थात् दूरदर्शी विवेकशीलता। यही है मनुष्य का आराध्य इष्ट। इस दिशा में होने वाली प्रगति से इसी जीवन में स्वर्ग और मुक्ति के रसास्वादन का लाभ मिलता है।

भविष्य निर्धारण को आराधना के निमित्त इस अवधि में स्वाध्याय सत्संग और चिन्तन-मनन के चार प्रयोजनों में निरत रहना पड़ता है। नित्य कर्म उपासना के अतिरिक्त जो भी समय खाली मिले, उसमें उन्हीं चार प्रयोजन में मन को लगाये रहना पड़ता है। इन चारों का लक्ष्य एक ही है—आत्म-परिष्कार। उज्जवल भविष्य का योजनाबद्ध निर्धारण। इसके लिए आत्म निरीक्षण—आत्मसुधार—आत्मनिर्माण एवं आत्म-विकास के चार प्रसंगों पर गम्भीरतापूर्वक समुद्र मंथन जैसा आत्मचिन्तन करते रहना होता है। ताकि ईश्वर प्रदत्त अलभ्य उपहार मनुष्य जन्म का सही उपयोग सम्भव हो सके। इसके लिए शरीर-निर्वाह एवं परिवार-पोषण की तरह ही परमार्थ प्रयोजनों को महत्त्व देना होता है। आत्मकल्याण और लोकमंगल की समन्वित जीवनचर्या का निर्धारण एवं अभ्यास ही आराधना है।

परमात्मा को आदर्शों का समुच्चय मानकर उसके साथ तादात्म्य होना उपासना है। जीवन को अधिकाधिक पवित्र एवं प्रखर बनाने वाली सुसंस्कारिता की अवधारणा साधना है। लोकमंगल का परमार्थ और उसके सहारे अपनी सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन ही आराधना है। उपासना परमात्मा की—साधना अन्तरात्मा की और आराधना विश्वात्मा की की जाती है। चान्द्रायण काल में बहिर्मुखी माया प्रपंच से अवकाश प्राप्त किया जाता है और उस अवधि में अन्तर्मुखी रहकर अन्तर्जगत का पर्यवेक्षण किया जाता है। इस दिशा परिवर्तन के लिए नियोजित आत्म-साधना जितनी भावपूर्ण एवं गम्भीर होगी उतना ही चान्द्रायण का प्रत्यक्ष वरदान उपलब्ध होगा।

चान्द्रायण से शक्ति अभिवर्धन

चान्द्रायण तप का एक निषेध पक्ष है—कष्ट सहन, जिसमें आहार घटाने-बढ़ाने की तितीक्षा प्रमुख है। दोषों के प्रकटीकरण में भी पश्चात्ताप करने और लज्जित होने का मानसिक कष्ट है। क्षति-पूर्ति के लिए दान-पुण्य करना, अर्थ दण्ड है। तीर्थयात्रा आदि सत्कार्यों के लिए श्रमदान जैसे परमार्थों में भी कष्ट सहने और त्याग करने की ही बात है। यह सारा समुच्चय आत्म-प्रताड़ना परिकर का है। परिशोधन की प्रक्रिया निषेधात्मक होने के कारण कष्ट सहने की ही हो सकती है।

दूसरा विधायक पक्ष है—योग, जिसमें परित्याग की रिक्तता पूर्ण करनी पड़ती है। यह उपार्जन है। आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना योग है। योग से हर किसी का परिमाण बढ़ता है। विस्तार, मूल्य और सामर्थ्य में वृद्धि होती है। परित्याग से जो घाटा पड़ा था, उसकी कमी योग की कमाई द्वारा पूरी हो जाती है। शौच जाने से पेट खाली होता है। इस कारण लगने वाली भूख की पूर्ति भोजन से करनी पड़ती है; तभी उस युग्म उपक्रम से शरीर यात्रा का पहिया आगे लुढ़कता है।

ब्रह्मवर्चस साधना का यह भूमि शोधन पथ चान्द्रायण तप से पूरा होता है। इसके उपरान्त बीज बोने और खाद, पानी लगाने की अभिवर्धन उद्देश्य के लिए की जाने वाली प्रक्रिया योग साधना द्वारा सम्पन्न होती है।

ब्रह्मवर्चस योगाभ्यास पंचमुखी गायत्री की पंचकोशी साधना है। पाँच प्राणों से चेतना का और पाँच तत्वों से काया का निर्माण हुआ है। इन दोनों प्रवाहों के मध्यवर्ती दिव्य शक्ति स्रोतों को पंचकोश कहते हैं। योगशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश यह पाँच शक्तिशाली आवरण आत्मा पर चढ़े हैं। इन्हें सुरक्षा कवच, वाहन, आयुध आदि भी कहा जा सकता है। यह रहस्यमय रत्न भण्डार हैं, जिनमें सिद्धियों और विभूतियों के मणिमुक्तक प्रचुर परिमाण में भरे पड़े हैं। चाबी न होने पर तिजोरी में भरी धनराशि भी अपने किसी काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं आती और अधिपति को भी अभावग्रस्त रहना पड़ता है। इसी प्रकार इन दिव्य कोशों का द्वार बन्द रहने पर—आवरण चढ़ा रहने पर मनुष्य को दुःखी, दरिद्रों की तरह गया-गुजरा जीवनयापन करना पड़ता है।

उच्चस्तरीय गायत्री उपासना को पंचकोशों की अनावरण साधना कहते हैं। इसी योगाभ्यास को हठयोग की पद्धति के अन्तर्गत चक्रोधन एवं कुण्डलिनी जागरण साधना कहते हैं। षटचक्रों का नाम सभी ने सुना है। भ्रू-मध्य आग से मस्तिष्क प्रारम्भ होता है और वह मेरुदण्ड में होकर जननेन्द्रिय क्षेत्र तक चला जाता है। यह समूचा परिधि ब्रह्मलोक या ब्रह्मरंध्र कहलाता है। इसमें सात शक्ति-संस्थान हैं। इनमें से छः मध्यवर्ती सक्रिय स्रोत षटचक्र हैं। एक इन सबका अधिपति नियन्त्रक है; जिसे महाचक्र, सहस्रसार चक्र कहते हैं। इस प्रकार यह पूरा परिकर गिना जाय तो सप्तचक्र बन जाते हैं। इन्हीं का पिण्ड—ब्रह्माण्ड में अवस्थित सप्त ऋषि, सूर्य के सप्त अश्व, सप्त लोक, सप्त सिन्धु, सप्तमेरु सप्त द्वीप, सप्त तीर्थ आदि अलकांरिक निरूपणों के साथ अध्यात्म शास्त्रों में वर्णन मिलता है।

सप्त चक्रों की भी एक विवेचना यह है कि नीचे का मूलाधार और ऊपर का सहस्रार यह दोनों क्रमशः प्रकृति और पुरुष के शक्ति और शिव के, रयि और प्राण के, धरती और स्वर्ग के प्रतीक हैं। पृथक्ता की स्थिति में यह दोनों बहुत ही स्वल्प काम कर पाते हैं। मूलाधार प्रायः प्रजनन का ताना-बाना बुनता रहता है और शरीर को ऊर्जा, साहस, उत्साह आदि प्रदान करता है। सहस्रार की अर्धमूर्छित स्थिति में अचेतन और चेतन दोनों मिलकर कायिक गतिविधियों का संचालन और चिन्तन वर्ग के प्रयोजन पूरे करते रहते हैं। यह इन दोनों का निर्वाह मात्र के लिए चलते रहने वाला स्वल्प कार्य है। यदि उन दोनों की तन्द्रा छुड़ा दी जा सके और वे समर्थ सक्रिय हो उठें तो फिर समझना चाहिए कि अनन्त शक्तियों के—सिद्धियों के स्रोत खुल पड़ेंगे और मनुष्य साधारण से असाधारण बन जायगा। ऋषि, देवता और अवतारी मनुष्य इसी स्तर के होते हैं, उनकी आन्तरिक मूर्छता जागृति में परिणिति हो गई होती है। कुम्भकरण का पौराणिक उपाख्यान इसी स्थिति की झाँकी कराता है। जब भी वह दैत्य जागता था, अपनी सामर्थ्य का हाहाकारी परिचय प्रस्तुत करता था। मूलाधार की सामर्थ्य को सर्पिणी कहते हैं और सहस्रार को महासर्प कहा गया है। इन्हीं शक्तियों को सावित्री और गायत्री नाम से परब्रह्म की दो पत्नियाँ कहा गया है। इन दोनों के मिलन को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं। बिजली के अलग-अलग पड़े तार जब भी मिलते हैं तो चिनगारी छूटती है और शक्तिधारा प्रवाहित होती है। इसी स्थिति को कुण्डलिनी जागरण कहते हैं। यह सौभाग्य सुअवसर जिन्हें प्राप्त होता है, वे भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों से सुसम्पन्न पाये जाते हैं। वे आत्मोत्कर्ष का परम लक्ष्य प्राप्त करते—और अपूर्ण से पूर्ण बनते हैं। ईश्वर प्राप्ति इसी स्थिति का नाम है।

सहस्रार को महासर्प कहा गया है। विष्णु की शेष शैया भी वही है। शिव के अंग में वही लिपटा है। समुद्र मंथन में रस्सी का काम वही करता है। सर्पिणी के रूप में कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन प्रायः होता रहता है। वह अधोमुखी निद्रित स्थिति में पड़ी रहती है। जागृत होने पर ऊपर उठती और अग्नि शिखा के रूप में देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक तक पहुँचती है। यह अलकांरिक वर्णन इस बात का है कि जननेन्द्रिय मूल में पड़ी हुई यह महाशक्ति जब ऊर्ध्वगामी बनती है तो मेरुदण्ड मार्ग से ब्रह्मरंध्र तक जा पहुँचती है और उस क्षेत्र में सन्निहित अगणित दिव्यताओं को अनायास ही जागृत करती है। इसी स्थिति में अतीन्द्रिय, क्षमताओं का जागरण होता है। समुद्र मंथन से चौदह रत्न निकलने के उपाख्यान में मूलाधार के कुण्डगह्वर को समुद्र, मेरुदण्ड को सुमेरु पर्वत, सूर्यवेधन, प्राणायाम के इड़ा, पिंगला संघर्ष को मंथन माना जाता है। समुद्र मंथन कुण्डलिनी जागरण का महा पुरुषार्थ है, जिसमें चेतना के देव पक्ष और काया के दैत्य पक्ष को मिल-जुलकर साधनारत होना होता है। इसका सत्परिणाम समुद्र मंथन से निकले १४ प्रसिद्ध रत्नों की तरह साधक को दिव्य विभूतियों के रूप में प्राप्त होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूलाधार और सहस्रार को नीचे, ऊपर वाले महाचक्रों को यदि कुण्डलिनी जागरण साधना के विशेष वर्ग में गिन लिया जाय तो शेष मध्यवर्ती पाँच चक्र ही रह जाते हैं। इन्हें पाँच कोश या पाँच चक्र कह सकते हैं। कोश व्याख्या में इन्हें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कहते हैं। चक्र वर्णन में इन्हीं को स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र कहा जाता है। यह एक ही तथ्य का दो रूप में वर्णन-विवेचन मात्र है। वस्तुतः है एक ही। चक्रों का ज़ागरण या कोशों का अनावरण एक ही बात है। संख्या की दृष्टि से पाँच, छः या सात की गणना से किसी को भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। गायत्री माता के पाँच मुखों की उच्चस्तरीय साधना परम शान्तिदायिनी और महान् शक्तिशालिनी साधना है। इसी प्रक्रिया को ब्रह्मवर्चस का योगाभ्यास साधना पक्ष समझा जाना चाहिए।

साधना से सफलता के दो अनिवार्य अवलम्बन—'तप और प्रायश्चित'

साधना से कायाकल्प के विस्तार में जाने से पूर्व साधना से सिद्धि के सिद्धान्त को भली-भाँति हृदयंगम करना होगा। शास्त्रकारों, आप्त पुरुषों, मनीषियों, तपस्वी-साधकों ने एक स्वर में इस तथ्य को माना है कि मानवी सत्ता में दैवी विभूतियों का अजस्र भण्डागार छिपा पड़ा है, उसे जगाने के लिए साधनापरक पुरुषार्थ किया जा सके तो अविज्ञात प्रसुप्त को प्रत्यक्ष होने का अवसर मिल सकता है। इससे अनभिज्ञ मानव अनपढ़-आदिम का सा जीवन जीता किसी तरह अपने दिन पूरे करता रहता है।

अप्रत्यक्ष के प्रकटीकरण के लक्ष्य को ध्यान में रखकर किये गये प्रयासों को 'साधना' कहते हैं। इसके दो प्रयोजन हैं। एक अन्तराल की प्रसुप्त विभूतियों का जागरण, दूसरा अनन्त ब्रह्माण्ड में संव्याप्त ब्राह्मी चेतना का अनुग्रह-अवतरण। जागरण हुए बिना अनुग्रह मिल सकना सम्भव नहीं। सूखी चट्टान पर पानी कहाँ बरसता है ? दोनों ही प्रयोजन देखने में भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु हैं अविछिन्न, एक-दूसरे के पूरक। बीज में वृक्ष बनने की समर्थता सन्निहित है, पर वह अनायास ही प्रकट नहीं होती, उसके लिए उपयुक्त भूमि में बीजों का बोना, उसके लिए खाद, पानी का प्रबन्ध करना पड़ता है। इतना बन पड़ने पर ही अंकुर उत्पन्न होता है। यह आत्म-जागरण का प्रयास हुआ। बीज जमीन से खुराक खींचने लगता है, यह उसका अपना पुरुषार्थ है। आत्म-साधना इसी को कहते हैं कि बीज अंकुरित हो, जड़ पकड़े, जमीन से खुराक खींचे और पत्तों के माध्यम से हवा से साँस खींचने लगे।

ब्राह्मी-चेतना का अनुग्रह है, बाहरी सहायता उपलब्ध करना। पौधा हवा से साँस खींचता है। यह हवा उसकी अपनी कमाई नहीं पहले से ही मौजूद है। पत्तों के साँस लेने में सक्षम होते ही वह अभीष्ट मात्रा में मिलने लगती है। सभी जानते हैं कि पेड़ों की चुम्बकीय शक्ति बादलों को बरसने के लिए बाध्य करती है। हरे-भरे, फूले-फले वृक्ष को देखकर, उसे जी भर कर निहारने, छाया, सुगन्ध, शोभा का, फल-फूलों का लाभ लेने के लिए कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य सभी उसके समीप दौड़ते हैं। यह बाहरी अनुग्रह हुआ। पौधे की तरह जब आत्म-सत्ता अन्तःसाधना से अपनी प्रसुप्त गरिमा को प्रकट करती है, तो लोक-लोकान्तर से दिव्य वरदान भी बादलों की तरह बरसने लगते हैं। सत्प्रवृत्तियों के देवता प्रसन्न होकर आकाश से फूल बरसाते हैं। इस मान्यता में इसी रहस्य का उद्घाटन है कि साधना के फलस्वरूप भीतर के उभार और ऊपर के अनुग्रह का दुहरा लाभ मिलता है।

देवता पूजा से प्रसन्न होकर मनोकामनाएँ पूर्ण करने और वैभव बरसाने लगते हैं। इस भ्रम-जंजाल से यथार्थ प्रेमी को अपना पीछा छुड़ा लेना चाहिए। दैवी शक्तियाँ इतनी ओछी नहीं है कि मनुष्य उन्हें वाग्जाल में फँसा सके और छुट-पुट पूजा, उपचारों से अपने भक्त होने का विश्वास दिला सके। जादू की छड़ी घुमाने से उत्पन्न होने वाले चमत्कारों की तरह जो तरह-तरह के भ्रम-जंजाल बुनते रहते हैं, उन्हें निराश ही रहना पड़ता है। कोई देवता कबूतर की तरह जाल में नहीं फँसता। कोई देवी मछली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की तरह आटे की गोली नहीं निगलती, कोई मन्त्र आलादीन का जादुई चिराग नहीं है। अध्यात्म-विज्ञान का एक ही मान्यता प्राप्त सिद्धान्त है-साधना से सिद्धि। जिसने कुछ महत्त्वपूर्ण पाया है, उनने इसी तथ्य को हृदयंगम किया है और पात्रता विकसित करने वाले साधनात्मक पुरुषार्थ के सहारे अपनी समर्थता को बढ़ाया है।

साधनात्मक प्रयोग, उपचार, क्रिया-कृत्य आरम्भ करने के साथ-साथ सर्वप्रथम एक समस्या का समाधान करना होता है कि प्रगति पथ के अवरोधों को कैसे हटाया जाय ? अवरुद्ध-द्वार कैसे खोला जाय ? आत्मिक प्रगति में सिद्धियों की उपलब्धि में सबसे प्रमुख बाधक अपने कुसंस्कार ही होते हैं। दृश्यमान दुष्कर्म अपना बिस्तर समेटकर अदृश्य संस्कारों का रूप बनकर, अचेत की गहरी परतों में जा घुसते हैं और वहीं से अनेक प्रकार के संकटों का सृजन करते रहते हैं। आग जहाँ रखी जाती है वहीं जलाना आरम्भ कर देती है। तेजाब का स्वभाव ही गलाना है, वह जहाँ भी रखा जायगा, सामर्थ्यानुसार अपने प्रभाव का परिचय देता रहेगा। अन्तःक्षेत्र में प्रतिष्ठित दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्ति का समन्वय कुसंस्कार है। यही है जो न साधना को सिद्ध होने देता है और न उस निमित्त श्रद्धा जमने,- मन लगने तथा गम्भीर प्रयत्न करने देता है। उथले प्रयत्नों का गहरा प्रतिफल कैसे मिले ? कुसंस्कार ही हैं जो यमदूत की तरह पग-पग पर त्रास देते हैं, व्यक्तित्व को हेय बनाते हैं, रुग्णता एवं उद्विग्नता के अभिशाप थोपते हैं। सम्पर्क क्षेत्र में असहयोग, विग्रह, विद्वेष का वातावरण बनाते हैं। सर्वविदित है कि दुर्गुणी भीतर से जलता और बाहर से पिटता है।

नरक लोक में यमदूतों द्वारा दिये जाने वाले त्रासों का वर्णन कथा-पुराणों में सुनने को मिलता रहता है। कषाय-कल्मषों से आच्छादित अन्तःकरण ही नरक है। अपने ही दुर्गुण दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, अपनी ही दुर्बुद्धि अचिन्त्य-चिंतन में निरत रहकर कुमार्ग पर धकेलती है। दुष्प्रवृत्तियाँ ही उलटकर विपत्तियों की तरह बरसती हैं। यमदूत और कुछ नहीं अपने ही कुसंस्कारों द्वारा उत्पन्न किए गये भूत-प्रेत हैं, जो क्रिया की प्रतिक्रिया का परिचय देते हैं और अनाचारी को तोड़-मरोड़कर रख देते हैं। नरक और यमत्रास मनुष्य की आत्म-सत्ता में ही सृष्टा ने सुनियोजित रीति से गूँथ दिये हैं।

साधना की प्रगति में सर्वप्रथम साधक को इसी मोर्चे पर जूझना पड़ता है। साधना को संग्राम कहा गया है। यही अर्जुन का महाभारत है। इसे लड़े बिना कोई चारा नहीं, कृष्ण का आग्रह इसी निमित्त था। जब वह तैयार हो गया तो वह रथ चलाने, घोड़े हाँकने, रास्ता बताने और विजय दिलाने के लिए वचनबद्ध हो गये। साधना यहीं से आरम्भ होती है। साधक को अन्तराल के धर्म-क्षेत्र में और व्यवहार के कर्म क्षेत्र में उच्च उद्देश्यों के लिए अग्रगामी होना पड़ता है। गाण्डीव उठाने और 'करिष्ये वचन तव' का संकल्प करने के उपरान्त ही सामान्य-सा पाण्डुपुत्र भगवान का अनन्य सहचर महान् अर्जुन बनता है। यही है, साधना से सिद्धि की पृष्ठभूमि।

भीतरी प्रगति और बाहरी उपलब्धि के लिए साधना मार्ग पर अग्रसर होना होता है। यह मंजिल अपने ही पैरों चलकर पूरी करनी पड़ती है। मार्ग में सहायक, सहयोगी भी मिलते हैं और लक्ष्य तक पहुँचने पर अभीष्ट उपहार भी उपलब्ध होते हैं किन्तु ऐसा नहीं होता कि अपने पैरों को कष्ट देने से बचा लिया जाय और किसी दूसरे के कन्धे पर बैठकर यह यात्रा पूरी कर ली जाय। दैवी शक्तियों के वरदान-अनुदान प्राप्त होने की परम्परा तो है, पर वह लाभ विजेताओं को मिलता है। छात्रवृत्ति या उपाधि उत्तीर्ण छात्रों को मिलती है। शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व ही यह दोनों अनुदान हस्तगत हो सके हों-ऐसा देखा, सुना नहीं गया। साधना का साहस करने से पूर्व सिद्ध पुरुषों के अनुदान, आशीर्वाद अथवा देवसत्ताओं के सिद्धि वरदान मिलने लगें, ऐसी अपेक्षा करना व्यर्थ है।

आत्मिक प्रगति पर चलने के लिए भी इसी प्रकार दो कदम उठाते हुए बढ़ना होता है जैसा कि आये दिन सभी चला करते हैं। पैर दो हैं, चलने वाले इन्हीं को लेफ्ट-राइट करते हुए आगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ाते हैं। अध्यात्म तक पहुँचने के लिए जो कदम बढ़ाने पड़ते हैं- उनमें से एक का नाम है-परिशोधन, दूसरे का नाम-परिष्कार। परिशोधन अर्थात् संचित कषाय-कल्मषों का, कुसंस्कारों का, दुष्कर्मों के प्रारब्ध संचय का निराकरण। परिष्कार अर्थात् श्रेष्ठता का जागरण, अभिवर्धन, सुसंस्कारिता का जीवनचर्या में अधिकाधिक समावेश। यह दो उपक्रम ही वे दो कदम हैं, जिन्हें बढ़ाते हुए आत्मिक क्षेत्र की सफलता सम्भव होती है।

यही राजमार्ग सबके के लिए हैं। इसमें पगडण्डी वाला 'शार्टकट' ढूँढ़ना व्यर्थ है। चुटकी बजाते जो ऋद्धि-सिद्धियों की बात सोचते हैं, कुछ ओछे-तिरछे उपचारों के सहारे भौतिक सफलताओं की तुलना में असंख्य गुनी अधिक महत्त्वपूर्ण आत्मिक सफलता का सपना देखते हैं-वे यथार्थ से कोसों दूर हैं। मनमोदक खाने वाले, स्वप्नदर्शी व्यर्थ, ही मृग-तृष्णाओं में भटकते रहते हैं। बड़ी उपलब्धियों का बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। हर साधक को सिद्धावस्था तक पहुँचने के लिए आत्म-शोधन और आत्म-परिष्कार के अवलम्बन अनिवार्य रूप से अपनाने होते हैं।

परिशोधन को तपश्चर्या कहते हैं और परिष्कार को योग-साधना। तप की गर्मी से कुसंस्कार जलते हैं और प्रसुप्त सुसंस्कार जगते-उभरते हैं। योग से परब्रह्म के साथ एकात्म स्थापित करने का अवसर मिलता है— बल्ब तब प्रकाशवान होता है, जब तारों के माध्यम से वह बिजली के उत्पादन केन्द्र के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। परमात्मा बिजलीघर है और आत्मा बल्ब। तार मिलने पर ही करेण्ट चालू होता है, आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने से ही साधक को दिव्य चेतना का, विभूतियाँ बढ़ने का प्रमाण-परिचय मिलने लगता है। योग अर्थात् आत्मा को परमात्मा से जोड़ने वाली भावनात्मक प्रक्रिया। तप अर्थात् संचित कुसंस्कारों, दुष्कर्मों का दहन-प्रायश्चित। तप अर्थात् ऊर्जा का उद्भव जिसके सहारे सत्प्रयोजन का पराक्रम जगे और उत्कृष्टता अवधारण का साहस उभरे।

कपड़ा रंगने से पहले उसे भली प्रकार धोना पड़ता है। बीज बोने से पूर्व भूमि तैयार करनी होती है। कारतूस चलाने का समय आता है, जब अच्छी बन्दूक हाथ लग जाती है। पूजा से पूर्व स्नान करने, धुले वस्त्र पहनने, बुहारी लगाने की आवश्यकता होती है। भोजन करने से पूर्व हाथ धोते हैं। इन्जेक्शन लगाने से पूर्व सुई को गरम पानी में उबालते हैं। इन उदाहरणों में परिशोधन की प्राथमिकता है। यही बात आत्मिक प्रगति के सम्बन्ध में भी है। ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त करने से पूर्व उस दिव्य आवरण के लिए अन्तःकरण को बुहारने, धोने, लीपने-पोतने की आवश्यकता पड़ती है। अवतरण बाद में होता है। दिवाली आने से पूर्व ही लक्ष्मी-पूजन के लिए घरों की रँगाई-पुताई होती है। दूल्हा बारात लेकर आये, उससे पूर्व भी ऐसी ही सफाई-सजावट होती है। दैवी अनुकम्पा जीवन में उतरे, इससे पूर्व उसे भी कुसंस्कारों से मुक्त करना पड़ता है। तपश्चर्या की प्राथमिकता है। योग-साधना का कदम इससे आगे का है। राजयोग में यम-नियम पालने की मनोभूमि बनने पर ध्यान धारणा के अगले कदम उठते हैं।

उपासना का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए आवश्यक है, आत्मशोधन की प्रक्रिया पूर्ण की जाय। यह प्रक्रिया प्रायश्चित्त विधान से ही पूर्ण होती है। हठयोग में शरीर-शोधन के लिए नेति, धोति, वस्ति, न्यौली, बजोली, कपालभाति क्रियायें करने का विधान है। राजयोग में यह शोधन-कार्य यम-नियमों के रूप में करना पड़ता है। भोजन बनाने से पूर्व चौका, चूल्हा, बर्तन आदि की सफाई कर ली जाती है। आत्मिक प्रगति के लिए भी आवश्यक है कि अपनी गतिविधियों का परिमार्जन किया जाय। गुण, कर्म, स्वभाव को सुधारा जाय और पिछले जमा हुए कूड़े-करकट का ढेर उठाकर साफ किया जाय। आयुर्वेद के काया-कल्प विधान में स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन आदि कृत्यों द्वारा पहले मल शोधन किया जाता है, तब उपचार आरम्भ होता है। आत्म-साधना के सम्बन्ध में भी आत्म-शोधन की प्रक्रिया काम में लाई जाती है।

परिशोधन प्रयोजन के लिए तपश्चर्याओं के अनेकानेक विधि-विधान हैं। उन सब में सर्वसुलभ एवं अनेक दृष्टियों से सत्परिणाम उत्पन्न करने वाली साधना, आध्यात्मिक काया-कल्प की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काया-कल्प चिकित्सा में शरीर में भरे हुए मल-विकारों की पूरी तरह सफाई की जाती है तथा ऐसे उपचार अपनाये जाते हैं, जिससे नये रक्त का नाड़ियों में संचार होने लगे, पाचन तन्त्र नई स्फूर्ति के साथ काम करने लगे, माँसपेशियाँ फिर से कड़ी हो जायँ और नाड़ियों में प्राण-प्रवाह नयी चेतना के साथ बह निकले। चान्द्रायण तपश्चर्या को भी इसी स्तर का माना गया है। उसका मुख्य प्रयोजन परिशोधन होते हुए भी लगे हाथों परिष्कार का दुहरा सिलसिला भी चल पड़ता है।

कर्मफल की सुनिश्चितता एक महत्त्वपूर्ण तथ्य

कर्मफल अथवा कर्म-परिपाक से कालान्तर में मिलने वाले परिणाम एक ऐसी सच्चाई का रहस्योद्घाटन करते हैं, जिसे इच्छा या अनिच्छा से सबको स्वीकार करना होगा। यह मानकर चलना चाहिए कि समूची सृष्टि एक सुनियोजित व्यवस्था की शृंखला में जकड़ी हुई है। अनुशासन के उल्लंघन की किसी को भी विशेषाधिकार के नाते छूट नहीं। क्रिया की प्रतिक्रिया का नियम हरेक पर, स्थान-स्थान पर लागू होता है और उसकी परिणति का दर्शन पग-पग पर होता है।

भूतकाल के कृत्यों के आधार पर ही वर्तमान बनता है और वर्तमान का जैसा भी स्वरूप है, उसके अनुरूप भविष्य बनता चला जाता है। जो विद्या किशोरावस्था में कमाई जाती है एवं स्वास्थ्य-सम्पदा जवानी में अर्जित होती है, वह बाद में बलिष्ठता एवं सम्पन्नता के रूप में सामने आती है। यौवन का सदुपयोग-दुरुपयोग बुढ़ापे के जल्दी या देर में आने, देर तक जीने या जल्दी मृत्यु की गोद में चले जाने के रूप में परिणित होता है। वृद्धावस्था की मनःस्थिति संस्कार बनकर मरणोत्तर जीवन में साथ जाती है और पुनर्जन्म के रूप में अपनी परिणिति प्रकट करती है।

यही प्रक्रिया संसार की समस्त गतिविधियों में दृष्टिगोचर होती है, जीवन के हर क्षेत्र में अपने प्रभाव का परिचय देती है। आज की परिस्थितियों के सम्बन्ध में पिछले आलस्य या उत्साह को श्रेय दिया जा सकता है। सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे देर-सबेर में अपनी परिणित प्रस्तुत किये बिना रहते ही नहीं। वर्तमान का जैसा भी स्वरूप है उसमें कृत्य की ही प्रधान भूमिका रहती है।

कुछ कर्म तत्काल फल देते हैं, कुछ की परिणिति में विलम्ब लगता है। व्यायामशाला, पाठशाला, उद्योगशाला के साथ सम्बन्ध जोड़ने के सत्परिणाम सर्वविदित हैं, पर वे उसी दिन नहीं मिल जाते, जिस दिन प्रयास आरम्भ किया जाता है। कुछ काम अवश्य ऐसे होते हैं, जो हाथों हाथ फल देते हैं। मदिरा पीते ही नशा आता है। जहर खाते ही मृत्यु होती है। गाली देते ही घूँसा तनता है। दिनभर परिश्रम करने पर ही शाम को मजूरी मिलती है। टिकिट खरीदते ही सिनेमा का मनोरंजन चल पड़ता है। ऐसे भी अनेक काम हैं, पर सभी ऐसे नहीं होते। कुछ काम निश्चय ही ऐसे होते हैं, जो देर लगा देते हैं। असंयमी लोग जवानी में खोखले बनते रहते हैं। उस समय कुछ पता नहीं चलता किन्तु दस-बीस वर्ष भी बीतने नहीं पाते कि काया की जर्जरता अनेक रोगों से घिर जाती है।

समय साध्य परिणितियों को देखकर अनेक को कर्मफल पर अविश्वास होने लगता है। वे सोचते हैं कि आज का प्रतिफल हाथों-हाथ नहीं मिला तो वह कदाचित् भविष्य में भी कभी नहीं मिलेगा। अच्छे काम करने वाले प्रायः इसी कारण निराश होते और बुरे काम करने वाले अधिकांश निर्भय-निरंकुश बनते हैं। तत्काल फल न मिलने की व्यवस्था भगवान ने मनुष्य की दूरदर्शिता, विवेकशीलता को जाँचने के लिए ही बनाई है। अन्यथा वह ऐसा भी कर सकता था कि झूँठ बोलते ही मुँह में छाले भर जायें। चोरी करने वाले के हाथ में दर्द होने लगे। व्यभिचारी तत्काल नपुंसक बन जाय। यदि ऐसा रहा होता तो आग में हाथ डालने से बचने की तरह लोग पाप-कर्मों से भी बचे रहते और दीपक जलाते ही रोशनी की तरह पुण्य-फल का हाथों-हाथ चमत्कार देखते। पर ईश्वर को क्या कहा जाय, उसकी भी तो अपनी मर्जी और व्यवस्था है। सम्भवतः मनुष्य की दूरदर्शिता विकसित करने एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परखने के लिए ही इतनी गुंजायश रखी है कि वह सत्कर्मों और दुष्कर्मों का प्रतिफल विलम्ब से मिलने पर भी अपनी समझदारी के आधार पर भविष्य को ध्यान में रखते हुए आज की गतिविधियों को अनुपयुक्तता से बचाएँ और सत्साहस को अपनाने में जो अवरोध आते हैं, उन्हें भी धैर्यपूर्वक सहन करें। वस्तुतः कर्म फलित होने में देर लगती है। हथेली पर सरसों उगाई जा सकती है, बोने से दस दिन में ही जिनके अंकुर छः इन्च ऊँचे उग आते हैं। किन्तु जिनका जीवन लम्बा है, जो चिरस्थाई हैं, उनके बढ़ने और प्रौढ़ होने में देर लगती है। नारियल की गुठली बो देने पर भी एक वर्ष में अंकुर फोड़ती है और वर्षों में धीरे-धीरे बढ़ती है। बरगद का वृक्ष भी देर लगाता है, जबकि अरण्ड का पेड़ कुछ ही महीनों में बढ़ने और फल देने लगता है। हाथी जैसे दीर्घजीवी पशु, गिद्ध जैसे पक्षी, ह्वेल जैसे जलचर अपना बचपन बहुत दिन में पूरा करते हैं, जबकि खरगोश जैसे छोटे प्राणी एक वर्ष में ही बच्चे पैदा करने लगते हैं। मक्खी, मच्छरों का बचपन और यौवन बहुत ही जल्दी आता है, पर वे मरते भी उतनी ही जल्दी हैं। शारीरिक और मानसिक परिश्रम का, आहार-विहार का, व्यवहार-शिष्टाचार का प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता रहता है। उसकी उपलब्धियाँ सामयिक होती हैं चिरस्थायी नहीं। स्थायित्व नैतिक कृत्यों में होता है, उनके साथ भाव संवेदनाएँ और आस्थाएँ जुड़ी होती हैं। जड़ें अन्तरंग की गहराई में धँसी रहती हैं इसलिए उनके भले या बुरे प्रतिफल भी देर में मिलते हैं और लम्बी अवधि तक ठहरते हैं। इन कर्मों के फलित होने में प्रायः जन्म-जन्मान्तरों जितना समय लग जाता है।

अन्तःकरण की संरचना दैवी तत्वों से हुई है, उसमें स्नेह, सौजन्य, सद्भाव, सच्चाई जैसी सत्प्रवृत्तियाँ ही भरी पड़ी हैं। जीवन-यापन की रीति-नीति उत्कृष्टता के आधार पर बनाने की प्रेरणा इस क्षेत्र से अनायास ही मिलती रहती है।

इस क्षेत्र में जब निकृष्टता प्रवेश करती है तो सहज ही उसकी प्रतिक्रिया होती है। रक्त में जब बाहरी विजातीय तत्व प्रवेश करते हैं तो श्वेत कण उन्हें मार भगाने में प्राण-पण से संघर्ष छेड़ते हैं और परास्त करने में कुछ उठा नहीं रखते। ठीक इसी प्रकार अन्तःकरण की दैवी चेतना भी आसुरी दुष्प्रवृत्तियों को जीव-सत्ता में प्रवेश करने और जड़ जमाने की छूट नहीं देना चाहती। फलतः दोनों के बीच संघर्ष छिड़ जाता है। यही अन्तर्द्वन्द्व है, जिसके बने रहते आंतरिक जीवन अशांत ही बना रहता है और उस विक्षोभ की अनेक दुःखदायी प्रतिक्रियाएँ फूट-फूटकर बाहर आती रहती हैं।

दो साँड़ लड़ते हैं तो लड़ाई की जगह को तहस-नहस करके रख देते हैं। खेत में लड़ें तो समझना चाहिए कि उतनी फसल चौपट ही हो गई। दुष्प्रवृत्तियाँ जब भी, जहाँ भी अवसर पाती हैं, वहीं घुसपैठ करने, जड़ जमाने में चूकती नहीं। घुन की तरह मनुष्य को खोखला करती हैं और चिन्गारी की तरह चुपचाप सुलगती हुई अन्त में सर्वनाशी ज्वाला बनकर प्रकट होती हैं। ठीक इसी प्रकार दुष्प्रवृत्तियाँ आत्म-सत्ता पर आधिपत्य जमाने के लिए कुचक्र रचती रहती हैं। किन्तु अन्तरात्मा को यह स्थिति सह्य नहीं। अस्तु वह विरोध पर अड़ी ही रहती है। फलतः संघर्ष चलता ही रहता है और उसके दुष्परिणाम अनेकानेक शोक-संतापों के रूप में सामने आते रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक इस स्थिति को 'दो व्यक्तित्व' कहते हैं। एक ही शरीर में दो भले-बुरे शांति, सहयोगपूर्वक रह नहीं सकते। कुत्ते-बिल्ली की, साँप-नेवले की दोस्ती कैसे निभे ? एक म्यान में दो तलवारें ठूँसने पर म्यान फटेगी ही। शरीर में ज्वर या भूत घुस पड़े तो दुर्दशा होती है इसे सभी जानते हैं। नशेबाजों की दयनीय स्थिति देखते ही बनती है। यह परस्पर विरोधी शक्तियों का एक स्थान पर जमा होना ही है, जिसमें विग्रह की स्वाभाविकता टाली नहीं जा सकती।

आत्मा को कितना ही कुचला जाय, वह न मरने वाली है और न हार मानती है। अनसुनी, उपेक्षित पड़ी रहने पर भी अन्तरात्मा की विरोधी आवाज उठती ही रहती है। दुष्कर्म करते समय जी धड़कता और पैर काँपते हैं। यह स्थिति कितनी ही दुर्बल क्यों न कर दी जाय, उसका अस्तित्व बना ही रहेगा और झंझट तब तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलता ही रहेगा, जब तक दुष्प्रवृत्तियाँ उस घुसपैठ से अपना पैर वापिस न लौटा लें।

अन्तर्द्वन्द्व जीवन की शक्ति और सुव्यवस्था को नष्ट करते हैं, प्रगति पथ अवरुद्ध करते हैं और भविष्य को अन्धकारमय बनाते हैं। पापों की परिणति से किसी भी बहाने बचा नहीं जा सकता। यह शारीरिक संविधान की सामान्य प्रक्रिया पद्धति हुई। इसके अति...क्त समाजगत, प्रकृतिगत एवं ईश्वरीय व्यवस्था के और भी ऐसे कितने ही आधार हैं, जिनके कारण कुमार्गगामी को अपने दुष्कृत्यों के दण्ड अनेक प्रकार भुगतने के लिए विवश होना पड़ता है।

राजदण्ड की व्यवस्था इसीलिए है कि दुष्कर्मों की आवश्यक रोकथाम की जा सके और अनीति बरतने वालों को उनकी करतूतों का मजा चखाया जा सके। पुलिस, कचहरी, जेल, फाँसी आदि की शासकीय दण्ड व्यवस्था का अस्तित्व मौजूद है। चतुरता बरतने पर भी लोग उसकी पकड़ में आ जाते हैं और आर्थिक, शारीरिक और मानसिक दण्ड भुगतते हैं, बदनामी सहते और नागरिक अधिकारों से वंचित होते हैं।

इतने पर भी पीछा नहीं छूटता। शारीरिक 'व्याधि' और मानसिक 'आधि' उन्हें घेरती हैं और तिल-तिल करके रेतने-काटने जैसा कष्ट देती हैं। शरीर पर मन का अधिकार है। अचेतन मन के नियंत्रण में आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, श्वांस-प्रश्वांस, रक्तसंचार, ग्रहण-विसर्जन आदि अनेक स्वसंचालित समझी जाने वाली गतिविधियाँ चलती हैं। चेतन मन की शक्ति से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ काम करती हैं। प्राण निकलते ही शरीर सड़ने और नष्ट होने लगता है। चेतना का केन्द्र संस्थान मस्तिष्क है। मन के रूप में ही हम चेतना का अस्तित्व देखते एवं क्रिया-कलाप का अनुभव करते हैं। यह संस्थान-मनोविकारों से पाप, ताप एवं कषाय-कल्मषों से विकृत होता है तो उसका प्रभाव शारीरिक आरोग्य पर पड़ता है और मानसिक संतुलन पर भी। नवीनतम् वैज्ञानिक शोधों का निष्कर्ष यह है कि बीमारियों का केन्द्र पेट या रक्त में न होकर मस्तिष्क में रहता है। मन गड़बड़ाता है तो शरीर का ढाँचा लड़खड़ाने लगता है। बीमारियों की नई शोध होती है और उनके लिए आये दिन एक से एक प्रभावशाली उपचार ढूँढ़े जाने की घोषणाएँ होती हैं। अस्पताल तेजी से बढ़ रहे हैं और चिकित्सकों की बाढ़ आ रही है। आधुनिकतम उपचार भी खोजे जा रहे हैं, इतने पर भी स्वास्थ्य समस्या का कोई उपयुक्त समाधान निकल नहीं रहा है। तात्कालिक चमत्कार की तरह दवाएँ अपना जादू दिखाती तो हैं, पर दूसरे ही क्षण रोग बदलकर नई आकृति में फिर खड़े होते हैं। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी, जब तक कि मानसिक विकृतियों के फलस्वरूप नष्ट होने और अगणित रोग उत्पन्न होने के तथ्य को स्वीकार नहीं कर लिया जाता।

न केवल शारीरिक वरन् मानसिक रोगों की भी इन दिनों बाढ़ आई हुई है। सिरदर्द, आधाशीशी, जुकाम, अनिद्रा, उन्माद, बेहोशी के दौरे आदि तो प्रत्यक्ष और प्रकट मस्तिष्कीय रोग हैं। चिन्ता, भय, निराशा, आशंका, आत्महीनता जैसे अवसाद और क्रोध, अधीरता, चंचलता, उद्दण्डता, ईर्ष्या, द्वेष, आक्रमण जैसे आवेश मनःसंस्थान को ज्वार-भाटों की तरह असंतुलित बनाये रहते हैं। फलतः मानसिक क्षमता का अधिकांश भाग निरर्थक चला जाता है एवं अनर्थ बुनने में लगा रहता है। अपराधी दुष्प्रवृत्तियों से लेकर आत्म-हत्या तक की अगणित उत्तेजनाएँ विकृत मस्तिष्क के उपार्जन ही तो हैं। तरह-तरह की सनकों से कितने ही लोग सनकते रहते हैं और अपने तथा दूसरों के लिए संकट खड़े करते हैं। दुर्व्यसनों और बुरी आदतों से ग्रसित व्यक्ति अपना, साथियों का कितना अहित करते हैं, यह सर्वविदित है। पागलों की संख्या तो संसार में तेजी के साथ बढ़ ही रही है। मनोविकार ग्रसित, अर्धविक्षिप्त लोगों की गणना की जाय तो आधी जनसंख्या इसी चपेट में आई हुई दिखाई पड़ेगी। शारीरिक रोगों का विस्तार भी तेजी से हो रहा है। दुर्बलता और रुग्णता से सर्वथा अछूते व्यक्ति बहुत ही स्वल्प मात्रा में मिलेंगे। जिन्हें शारीरिक एवं मानसिक रोगों से सर्वथा मुक्त, पूर्ण निरोग कहा जा सके ऐसे लोगों को ढूँढ़ निकालना इन दिनों अतीव कठिन है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रंगाई से पूर्व धुलाई आवश्यक है। यदि कपड़ा मैला-कुचैला है तो रंग ठीक नहीं चढ़ेगा। इस प्रयास में परिणाम, समय और रंग सभी नष्ट होंगे। कपड़े को ठीक तरह धो लेने के उपरान्त उसकी रंगाई करने पर अभीष्ट उद्देश्य पूरा होता है। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक प्रगति के लिए की गई साधना का समुचित प्रतिफल प्राप्त करने के लिए उन अवरोधों का समाधान किया जाना चाहिए, जो दुष्कर्मों के फलस्वरूप आत्मोत्कर्ष के मार्ग में पग-पग पर कठिनाई उत्पन्न करते हैं। दीवार बीच में हो तो उसके पीछे खड़ा हुआ मित्र अति समीप रहने पर भी मिल नहीं पाता। कषाय-कल्मषों की दीवार ही हमें अपने इष्ट से मिलने में प्रधान अवरोध खड़ा करती है।

आज की अपनी दुःखद परिस्थितियों के लिए भूतकाल की भूलों पर दृष्टिपात किया जा सकता है। इसी प्रकार सुखी, समुन्नत होने के सम्बन्ध में भी पिछले प्रयासों को श्रेय दिया जा सकता है। इस पर्यवेक्षण से सीधा निष्कर्ष यही निकलता है कि अशुभ विगत को धैर्यपूर्वक सहन करें या फिर उसका प्रायश्चित्त करके परिशोधन की बात सोचें। शुभ पूर्व कृत्यों पर संतोष अनुभव करें और उस सत्यप्रवृत्ति को आगे बढ़ायें। यह नीति निर्धारण की बात हुई। अब देखना यह है कि यदि आधि-व्याधियों के रूप में अशुभ कर्मों की काली छाया सिर पर घिर गई है तो उसके निवारण का कोई उपाय है क्या ?

जो कर्मफल पर विश्वास न भी करते हों उन्हें भी मानवी अन्तःकरण की संरचना पर ध्यान देना चाहिए और समझना चाहिए कि वहाँ किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं। पूजा-प्रार्थना से भी दुष्कर्मों का प्रतिफल टलने वाला नहीं है। देव-दर्शन, तीर्थ स्नान आदि से इतना ही हो सकता है कि भावनाएँ बदलें, भविष्य के दुष्कृत्यों की रोकथाम बन पड़े, अधिक बिगड़ने वाले भविष्य की सम्भावना रुके। पर जो किया जा चुका, उसका प्रतिफल सामने आना ही है। उसके उपचारार्थ शास्त्रीय परम्परा और मनःसंस्थान की संरचना को देखते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि खोदी हुई खाई को पाटा जाय। प्रायश्चित्त के लिए भी वैसा ही साहस जुटाया जाय जैसा कि दुष्कर्म करते समय मर्यादा उल्लंघन के लिए अपनाया गया था। यही एकमात्र उपचार है, जिससे दुष्कर्मों की उन दुःखद प्रतिक्रियाओं का समाधान हो सकता है जो शारीरिक रोगों, मानसिक विक्षोभों, विग्रहों, विपत्तियों, प्रतिकूलताओं के रूप में सामने उपस्थित होकर जीवन को दूभर बनाये दे रही हैं। यह विषाक्तता यदि लदी रही तो भविष्य के पूरी तरह अन्धकारमय होने की भी आशंका है। अस्तु प्रायश्चित्त को अपनाकर, सामाजिक दुःख-कष्ट भोगकर वर्तमान और भविष्य को सुखद बनाना ही दूरदर्शिता है। कर्मफल के इस अकाट्य तथ्य को दृष्टिगत रखकर ही चान्द्रायण कल्प-साधना में साधकों के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था की गई है।

हम निष्पाप बनें ?

अध्यात्म-विज्ञान विशारदों ने जीवन लक्ष्य की सिद्धि के लिए एवं कर्मफल से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं, वे दो बातों पर निर्भर करते हैं। एक है, स्वार्थपूर्ण, संकीर्ण, तुच्छ, स्वकीय मर्यादाओं से अपने आपको मुक्त करना। दूसरा आधार है अपनी भावनाओं को विकसित कर असीम के प्रति अनुराग, प्राणीमात्र के प्रति दया, प्रेम, आत्मीयता, विराट की अनुभूति का विस्तार करना। एक निषेधात्मक है तो दूसरा रचनात्मक। दोनों को मिलाकर ही सिद्धि का पूर्णांक बनता है। दूसरे शब्दों में एक क्रियात्मक है तो दूसरा भावात्मक। भाव और क्रिया के समन्वय से ही जीवन में किसी उद्देश्य की सफलता प्राप्त की जा सकती है।

धार्मिकों ने जीवन साधना के प्रथम निषेधात्मक पहलू को पापों, दुष्कर्मों से मुक्त होना कहा है। सभी धर्मों, समाज-व्यवस्थाओं में लक्ष्य की सिद्धि के लिए पापमुक्त होना प्राथमिक आवश्यकता के रूप में माना है। पाप की निवृत्ति ही जीवन सिद्धि का आधार है। उपनिषदकार ने भी प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहा है—

"विश्वानि दुरितानि परासुव"—समस्त पापों से हमें मुक्त कर। निष्पाप होकर ही "शुद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपापविद्ध'' प्रभु का साक्षात्कार किया जा सकता है।

जीवन की चरम परिणति, उसका उद्देश्य, लक्ष्य है ईश्वर या असीम आत्मा, परमात्मा, विराट की उपलब्धि करना। विराट की उपलब्धि के मार्ग का अवरोध, बन्धन, बाधायें, ही पाप हैं। पाप की सीमा, मर्यादाओं, षड़यन्त्रों से निकलकर ही ईश्वर से तादात्म्य सम्भव है। पाप ही हमें अपने चरम लक्ष्य से दूर रखता है। विराट के दर्शन से हमें रोकता है।

स्वकीयता, स्वार्थपरता निजी हितों के संकीर्ण तुच्छ घेरे में आबद्ध हो जाना ही पाप है। अपने जीवन और उद्देश्य को स्थूल मानकर उनकी सफलता के लिए अपनाये जाने वाले क्रिया-कलाप ही पाप हैं। अमर्यादित इच्छा, आकांक्षाएँ, अपरिमित वासनायें, राग-द्वेष, घृणा और इनसे प्रेरित दुष्कर्म ही पाप का स्वरूप है।

पाप अनेकों प्रकार से, दृश्य-अदृश्य रूप में अपनी गतिविधि चालू रखता है और हमारे जीवन को अपनी कर्मशाला बनाये रखता है। मनुष्य जाने-अनजाने रोजाना ही अनगिनत पाप करता रहता है। मुख्यतया पाप दो तरह से काम करता है। पाप की सत्ता दो भागों में बाँटी जा सकती है।—एक मानसिक दूसरी क्रियात्मक।

मानसिक पापों में स्वार्थपरता, लोभ, परद्रोह, अहंकार और तज्जन्य अन्य मानसिक विकृतियाँ आती हैं। इन मानसिक दोषों से प्रेरित होकर किए जाने वाले दुष्कृत्य, दुराचार, दुर्भाषण आदि क्रियात्मक पाप हैं। मानसिक संस्थान की प्रेरणानुसार ही मनुष्य बोलता है, वैसा ही करता है। पाप की जड़ें अदृश्य रूप में मनुष्य के मनः संस्थान में रहती हैं। तो उसकी शाखा-प्रशाखायें जीवन के बाह्य पटल पर क्रियात्मक क्षेत्र में। वस्तुतः पाप की सत्ता तो एक ही होती है उसके कार्य करने के दो तरीके हैं।

स्वार्थपरता, स्वकेन्द्रित वृत्ति अर्थात् मैं, मेरा, मेरे लिए का दृष्टिकोण सर्वप्रथम पाप है। इसे ही शास्त्रों में लोभ कहा गया है। लोभ की प्रेरणा से मनुष्य में नाना कामना, अमर्यादित आकांक्षाओं का उदय होता है और उससे मनुष्य के बुद्धि, विवेक नष्ट हो जाते हैं। अपनी कामना और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह जो भी आवश्यक समझता है करता है। लोग अपने लाभ और स्वार्थ की पूर्ति के लिए झूँठ बोलते हैं, धोखा देते हैं, चोरी करते हैं। दुष्कृत्य, दुराचरण का आश्रय लेते हैं। होने वाली धोखादेही, चोरी, मिलावट, शोषण, चोर बाजारी आदि बुराइयाँ मनुष्य की उक्त पाप वृत्ति का ही परिणाम है। कदाचित् स्वार्थपरता, स्वकीयता अपने लाभ की बात मनुष्य में न हो तो उक्त दुष्कृत्य दुराचार समाप्त हो जायँ। इसलिए लोभ की वृत्ति को नीतिकार ने पाप का कारण बताते हुए लिखा है—

''लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात्कामः प्रजायते।
लोभान्मोहम्य शोकश्च, लोभः पापस्य कारणम्।।''

"लोभ से क्रोध पैदा होता है, लोभ से कामनायें बढ़ती हैं। लोभ से मोह और शोक पैदा होते हैं, लोभ समस्त पापों का कारण है।''

वस्तुतः लोभ से मनुष्य में विभिन्न कामनायें, इच्छायें जाग्रत होती हैं। कामनाओं में विक्षेप पड़ने पर मनुष्य क्रोध करता है। लोभ की प्रेरणा से संग्रहीत वस्तुओं में मनुष्य की आसक्ति, मोह बढ़ जाता है और उन वस्तुओं के नष्ट होने, खो जाने, चले जाने, पर मनुष्य दुःखी होता है, शोक करता है।

लोभ स्वार्थपरता से प्रेरित कामनायें, मनुष्य का किस तरह विनाश कर देती हैं ? इसे बताते हुए गीताकार ने लिखा है—

''कामात् क्रोधोभिजायते, क्रोधात् भवति सम्मोह,
सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः। स्मृति भृंशात,
बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति।''

"कामना में विक्षेप पड़ने से मनुष्य में क्रोध का आवेग पैदा होता है। क्रोध एक तरह का सम्मोहन है, जो स्मृति को नष्ट कर देता है। स्मृति के नष्ट होने पर बुद्धि, विवेक नहीं रहते और बुद्धि के नाश हो जाने पर मनुष्य उल्टे सीधे काम करता है और उसी से उसका विनाश हो जाता है।''

जीवन के भौतिक पहलू, संसार और इसके पदार्थों को ही जीवन मानकर चलने वाला व्यक्ति असुर कहा गया है। असुरों का दम्भ, मान, मद, अहंकार सुप्रसिद्ध है। लोभ, स्वार्थपरता के संकीर्ण दृष्टिकोण की तरह ही अहंभाव मनुष्य का सबसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ा पाप है। अहंकारी व्यक्ति की विचार प्रणाली होती है, "ईश्वरोऽहं अहं भोगी, सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।" मैं ऐश्वर्य सम्पन्न हूँ, मैं भोगों को भोगने वाला हूँ, मैं सर्वसमर्थ, सुखी शक्तिशाली हूँ। अहंकारग्रस्त व्यक्ति संसार में स्वयं को ही देखता है। उसके जीवन में "मैं" की सत्ता ही बलवान होती है। अपने "मैं" को तुष्ट रखने के लिए वह दूसरों पर अत्याचार, करने में नहीं चूकता। अहंकार स्वेच्छाचार का ही पर्यायवाची है। अहं रावण है, हिरणकशिपु है—यह कंस है—जो नाना अत्याचार दुराचार करने में नहीं चूकता और अन्त में स्वयं भी नष्ट हो जाता है। स्वार्थ और अहंकार दोनों अपने समक्ष किसी को फलता-फूलता नहीं देखना चाहते। इस तरह के लोग अनायास ही दूसरों से बैर, विरोध, द्रोह कर बैठते हैं। दूसरों के प्रति दुर्भावना, विरोध, बैर हो जाने पर अहंकारी व्यक्ति पूरी तरह उसे नष्ट होता देखना चाहता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य कोई भी कुकर्म, अन्याय, जुल्म करने में नहीं चूकता।

लेकिन मनुष्य जहाँ दूसरे से द्रोह, बैर, विरोध करता है वहाँ उसका स्वयं का व्यक्तित्व भी सदोष बन जाता है। उसका 'अहं' दूषित हो जाता है। जल्दबाजी, उद्विग्नता, बढ़ जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा और कठोर बन जाता है। परद्रोह की भावना ईर्ष्या, द्वेष के रूप में पल्लवित होकर मनुष्य के अन्तर, बाह्य जीवन को दूषित बना देती है। उसके व्यवहार, बोल-चाल, आदि में वही विष टपकने लगता है, जिसके कारण मनुष्य अपने निकटस्थ व्यक्तियों से भी दुर्व्यवहार कर बैठता है। इस तरह द्रोह की भावना अनेक पापों को जन्म देती है।

लोभ, स्वार्थपरता अहंकार आदि से ग्रस्त होकर मनुष्य के विचारों और क्रिया पद्धति में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। वह गलत सोचता है, दुर्वचन बोलता है और दुष्कृत्य करता है, जिससे दूसरे प्राणियों को दुःख, कष्ट भी पहुँचता है। कायिक, वाचिक, मानसिक दृष्टि से दूसरों को तनिक भी कष्ट पहुँचाना शास्त्रकारों ने पाप माना है।

अक्सर लोग क्रुद्ध होने पर अथवा अपने भोग, स्वार्थ के लिए या मनोरंजन के लिए दूसरे प्राणियों को पीड़ा पहुँचाते हैं। उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं या उन्हें नष्ट करते हैं। दूसरे प्राणियों को किसी भी रूप में पहुँचाई जाने वाली पीड़ा कष्ट उनका अहित भयंकर पाप माना गया है। नीतिकारों ने इसे हिंसा नाम दिया है। हिंसक कृत्यों को करने वाले, कराने वाले, उनका समर्थन करने वाले शास्त्रकारों ने तीनों ही पाप के भागी माने हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मानव-समुदाय में ही उसका धारण, पोषण अभिवर्द्धन होता है। अतः जिन कृत्यों-आचरणों से समाज व्यवस्था को हानि पहुँचे, वे सभी पाप माने गये हैं। खासतौर से स्वेच्छाचार, मनमानी करना पाप है। समाज के नियमानुसार मनुष्य की वासना सम्बन्धी वृत्तियों की तुष्टि के लिए विवाह परम्परायें, पत्नीव्रत आदि का विधान है। किन्तु मनुष्य जब इस मर्यादा का उल्लंघन कर मनमाने ढंग से व्यभिचार का आश्रय लेता है तो वह पाप बन जाता है। सामाजिक व्यवस्था को पोषण देने वाले सर्वजन हिताय् नियमों की अवहेलना ही पाप है, जिसे व्यभिचार, स्वेच्छाचार कहा जाता है। रहन-सहन का फूहड़पन, निर्लज्जता अश्लीलता आदि का आचरण पाप है।

इस तरह मनुष्य स्वार्थपरता, लोभ, अहंकार, परद्रोह, हिंसा, व्यभिचार आदि पापों का मानसिक और क्रियात्मक रूप में आचरण करता रहता है। ये पाप प्रवृत्तियाँ हमारे अन्तर-बाह्य जीवन को दुर्विचार, दुर्भावनाओं और दुष्कृत्यों के जंजाल में जकड़ लेती हैं और हमें जीवन के परम लक्ष्य से वंचित रखती हैं। पापों के घनीभूत होते रहने से दिनों-दिन लक्ष्य की दूरी बढ़ती ही जाती है। तब हम पाप में ही जीते हैं, पाप में ही मरते हैं और फिर पाप में ही जीवन धारण करते हैं। पाप के पर्दे की ओट में लुंज-पुंज मनुष्य दूसरी ओर अपने शाश्वत सत्य, जीवन केन्द्र, विश्वात्मा के दर्शन नहीं कर पाता।

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, जीवन सिद्धि के लिए, विराट की अनुभूति और विश्वात्मा के दर्शनों के लिए हमें निष्पाप होना पड़ेगा, तभी उस **"शुद्ध अपाप विद्धं"** को पा सकेंगे। जीवन शोधन की यह शर्त पूरी किए बिना हमें लक्ष्य की प्राप्ति न होगी। अपने आन्तरिक और बाह्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन को पापमुक्त बनाना पड़ेगा। निष्पाप होना होगा तभी जीवन की सिद्धि का लक्ष्य मिल सकेगा। आर्ये हम सब प्रभु से प्रार्थना करें।

"अग्नेनय सुपथा राये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जु हुराण मेनो भूमिष्ठान्ते नम उक्ति विधेन।"

"हे ज्योतिर्मय ! हमें सुपथ पर ले चलो, हम आपकी बारम्बार स्तुति करते हैं। आप हमारे सर्व कर्मों को भली प्रकार जानते हैं। हमें कुटिल कर्मों—पापों से दूर रखकर सत्पथ पर चलावें जिससे हम सुख-समृद्धि के भागी बनें।"

दुष्कृतों के अवरोधों को हटाने की साहसिकता उभरे

साधना क्षेत्र में इस भ्रांति को मिटा देना चाहिए कि संचित दुष्कर्मों को अपने ही स्थान पर छोड़कर आत्मिक प्रगति की जा सकती है। ऐसी उड़ान न तो सम्भव है और न विधि-विधान के अनुकूल ही। कक्षायें उत्तीर्ण करते हुए ही विद्यार्थी स्नातक की उपाधि पाते और अफसर बनते हैं। छलांगें भी कई क्षेत्रों में लगती हैं और लोग जीवट भरे काम करते सफल होते दिखाई देते हैं। परन्तु आत्मिक क्षेत्र में ऐसी सुविधा नहीं है। संचित दुष्कर्मों से विनिर्मित प्रारब्ध न केवल विपत्तियों, असफलताओं का त्रास देता है, वरन् उच्चस्तरीय प्रगति के पथ पर चलने में भी अनेक विघ्न उपस्थित करता है। रास्ते को रोके खड़ी इन चट्टानों को हटाने-सरकाने के लिए साहसपूर्ण पराक्रम अन्तः से उभरकर आता है और स्वयं को कष्ट देते हुए भी मन को शांत व काया को स्वस्थ बनाता है। यही है प्रायश्चित्त प्रक्रिया, जिसे कल्प साधना में प्रमुखता और वरीयता दी गई है।

कर्मफल की सम्भावना सुनिश्चित है, उसे विश्व-व्यवस्था का एक अनिवार्य एवं अविच्छिन्न अंग ही समझा जाना चाहिए। इन संचयों को स्वयं ही भुगतना होता है। देव-दर्शन, नदी-स्नान, पूजा-उपचार, कथा-वार्ता एवं छुट-पुट कर्मकाण्डों का प्रयोजन इतना ही है कि उनसे परिशोधन-परिमार्जन की ओर ध्यान मुड़े, महत्व समझने का अवसर मिले और वह साहस उभरे जिससे कर्मफल भुगतने का दूसरा विकल्प प्रायश्चित्त स्वेच्छापूर्वक बन पड़े। प्रायश्चित्त के लिए किये जाने वाले व्रत-उपवासों के सामयिक प्रतिफल भी होते हैं, किन्तु वास्तविक एवं चिरस्थायी लाभ देने वाला तथ्य यह है कि दुष्कृत्यों के प्रति घृणा उभरे, भविष्य में वैसा न करने का संकल्प मचले, साथ ही जो किया गया है उसकी क्षति-पूर्ति करने की सदाशयता की खाई पाटने के लिए उत्साह भरा साहस उत्पन्न करे।

यह सारा संसार कर्म व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। भगवान् ने दुनियाँ बनाई और उसके सुसंचालन के लिए कर्म-विधान रच दिया। जो जैसा करता है, वह वैसा भोगता है, सिद्धान्त अकाट्य है। लोग भ्रम में इसलिए पड़ते हैं कि कई बार कर्मों का तत्काल फल नहीं मिलता। उसमें विलम्ब हो जाता है। यदि शुभ-अशुभ कर्मों का फल तत्काल मिल जाया करता तो दूरदर्शिता, विवेकशीलता की आवश्यकता ही न पड़ती। आग छूने से हाथ जल जाता है इस प्रत्यक्ष तथ्य के कारण कोई आग में हाथ डालने की मूर्खता नहीं करता। किन्तु सुकृत्यों और दुष्कृत्यों का परिणाम तत्काल नहीं मिलता। उसके परिपाक में देरी हो जाती है। इतने में ही बाल-बुद्धि के लोग अधीर हो जाते हैं। पुण्य के सम्बन्ध में निराशा और पाप के सम्बन्ध में निर्भय हो जाते हैं। जो करणीय है उसे छोड़ बैठते हैं और जो नहीं करना चाहिए उसे करने लगते हैं। यही है वह माया, जिसके बन्धन में जकड़े हुए, लोक दिग्भ्रान्त होते, भूल-भुलैयों में उलझते तथा भटकावों में खिन्न, उद्विग्न बने दिखाई पड़ते हैं।

आज का जमाया हुआ दूध कल दही बनता है, आज का बोया बीज बहुत समय में वृक्ष बनता है, आज का अध्ययन, व्यायाम आज ही कहाँ फल देता है ? परिणाम में देर लगने पर बालक निराश हो सकते हैं, पर विचारशील लोग अपनी निष्ठा विचलित नहीं होने देते और आशा, विश्वास के साथ काम करते रहते हैं। असंयम बरतने पर उसी दिन शरीर रुग्ण नहीं हो जाता। जिस दिन चोरी की जाय, उसी दिन जेल भुगतनी पड़े ऐसा कहाँ होता है ? तो भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझदारी सुझाती है कि कल नहीं परसों परिणाम मिलकर ही रहेगा। पर लोग भ्रमग्रस्त होकर, कर्मफल के सम्बन्ध में विश्वास छोड़ बैठते हैं। इसी इन्कारी को वास्तविक नास्तिकता कहना चाहिए।

दुष्कर्मों का प्रतिफल कई रूपों में भुगतना पड़ता है। लोक-निन्दा होती है। ऐसे व्यक्ति दूसरों की आँखों में अप्रामाणिक-अविश्वस्त ठहरते हैं। उन्हें किसी का सघन विश्वास एवं सच्चा-सहयोग नहीं मिलता है। श्रद्धा और सम्मान तो उसी को मिलता है, जिसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध होती है। जन-विश्वास एवं सहयोग के आधार पर कोई व्यक्ति प्रगति करता और सफल होता है। संदिग्ध चरित्र वाले व्यक्तियों को इस लाभ से वंचित रहना पड़ता है और वे मित्र विहीन एकाकी-नीरस जीवन जीते हैं। घनिष्ठता का लाभ तो उन्हें स्वजनों से भी नहीं मिलता। वे भी सदा आशंका की दृष्टि से देखते हैं और दिखावे का सहयोग दे पाते हैं। आत्म-प्रताड़ना का दुरूह दुःख ऐसे ही लोगों को सहना पड़ता है। दूसरों को झुठलाया जा सकता है, पर अपनी ही आत्मा को कैसे बहकाया जाय ? वह दुष्कर्मों से स्वयं खिन्न रहती है। आत्म-धिक्कार से आत्मबल निरन्तर गिरता जाता है।

समाज तिरस्कार, असहयोग, विरोध, उपेक्षा ये प्रत्यक्ष हानियाँ हैं। जिनके ऊपर घृणा और तिरस्कार बरसता है, उसकी अन्तरात्मा को पत्थर बरसने से भी अधिक अन्तःपीड़ा सहनी पड़ती है। धन छिन जाना उतनी बड़ी हानि नहीं है, जितना कि विश्वास, सम्मान और सहयोग चला जाना। दुष्कर्मों का यह सामाजिक दण्ड हर कुमार्गगामी को भुगतना पड़ता है। पाप और पारा छिपता नहीं। वह फूट-फूटकर देर-सबेर में बाहर निकलता ही है। सत्कर्म छिप सकते हैं, दुष्कर्म नहीं। हींग की गन्ध कई थैलियों में बन्द करके रखने पर भी फैलती है और दुष्कर्मों की गन्ध हवा में इस तरह उड़ती है कि किसी के छिपाये नहीं छिपती। समाज दण्ड असहयोग-बहिष्कार के रूप में तो बरसता ही है, कई बार वह प्रतिशोध और प्रत्याक्रमण के रूप में भी सामने आता है। लोग अनीति के विरुद्ध उबल पड़ते हैं तो दुरात्मा का कचूमर ही निकालकर रख देते हैं। आये दिन ऐसी घटनाऐं घटती रहती हैं, जिनमें अनीति करने वाले को प्रकारान्तर से दण्ड भुगतना ही पड़ा।

न केवल अध्यात्म क्षेत्र में वरन् भौतिक जीवन में भी यही सिद्धान्त काम करता है। रक्त विकार जैसे रोगों को दूर करने के लिए कुशल वैद्य पेट की सफाई करने के उपरान्त अन्य रक्त-शोधक उपचार करते हैं। कायाकल्प चिकित्सा में बलवर्धक औषधियों का नहीं, संचित मलों का निष्कासन करने वाले उपायों को ही प्रधान रूप से कार्यान्वित किया जाता है, वमन, विरेचिन, स्वेदन आदि क्रियाओं द्वारा मल निष्कासन का ही प्रयास किया जाता है। इसमें जितनी सफलता मिलती जाती है, उसी अनुपात से जरा जीर्ण, रोगग्रस्त व्यक्ति भी आरोग्य लाभ करता है और बलिष्ठ बनता चला जाता है। काया-कल्प चिकित्सा का विज्ञान इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

दोष, दुर्गुणों के रहते चिरस्थाई प्रगति के पथ पर चल सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं हुआ है। फूटे बर्तन में दूध दुहने से पल्ले कुछ नहीं पड़ता, पशु पालने और दुहने का श्रम निरर्थक चला जाता है। कषाय-कल्मषों से, दोष-दुर्गुणों से लड़ने के लिए जो संघर्ष, पुरुषार्थ करना पड़ता है, उसी के विधि-विधानों को तप-साधना कहते हैं। अपना शोधन जितना अधिक सम्भव हो सके, समझना चाहिए कल्प-साधना की तप प्रक्रिया में उतनी ही प्रगति पथ की यात्रा पूरी कर ली गई। इसके अभाव में कठोर अनुष्ठान भी अधूरे रह जाते हैं। असफलता के कारण, कर्मफल के न मिल पाने के कारण ऐसे व्यक्ति निराश होते हुए भी देखे जाते हैं, पर कालान्तर में शोधन पूरा होते ही, उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होती है। आयुर्वेद के प्रख्यात ग्रन्थ 'माधव निदान' के प्रणेता माधवाचार्य अपने साधना काल में वृन्दावन में रहकर समग्र तन्मयता के साथ गायत्री महापुरुश्चरणों में संलग्न थे। उन्होंने पूर्ण विधि-विधान के साथ लगातार ११ वर्षों तक अपनी साधना जारी रखी। इतने पर भी उन्हें सिद्धि का कोई लक्षण प्रकट होते दिखाई न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ा। इस असफलता से उन्हें निराशा भी हुई और खिन्नता भी। सो उसे आगे और चलाने का विचार छोड़कर काशी चले गये।

काशी के गंगा तट पर वे बड़ी दुःखी मनःस्थिति में बैठे हुए थे कि उधर से एक अघोरी कापालिक आ निकला। साधक की वेशभूषा और छाई खिन्नता जानने के लिए वह रुक गया और कारण पूछने लगा। माधवाचार्य ने अपनी व्यथा कह सुनाई। कापालिक ने आश्वासन दिया कि उसे भैरव की सिद्धि का विधान आता है। एक वर्ष तक उसे नियमित रूप से करने पर सिद्धि निश्चित है। माधवाचार्य सहमत हो गये और कापालिक के बताये हुए विधान के साथ मणिकर्णिका घाट की श्मशान भूमि की परिधि में रहकर साधना करने लगे। बीच-बीच में कई डरावनी और लुभावनी परीक्षायें होती रहीं। उनका धैर्य और साहस सुदृढ़ बना रहा, एक वर्ष पूरा होते-होते भैरव प्रकट हुए और वरदान माँगने की बात कहने लगे।

माधवाचार्य ने आँख खोलकर चारों ओर देखा पर बोलने वाला कहीं दिखाई न पड़ा। उन्होंने कहा-'यहाँ आये दिन भूत-पलीत ऐसी ही छेड़खानी करने आया करते हैं और ऐसी ही चित्र-विचित्र वाणियाँ बोलते हैं। यदि आप सचमुच ही भैरव हैं तो सामने प्रकट हों। आपके दर्शन करके चित्त का समाधान कर लूँ तो वरदान माँगू।' इसका उत्तर इतना ही मिला, "आप गायत्री के उपासक रहे हैं। आपके मुख-मण्डल पर इतना ब्रह्मतेज छाया हुआ है कि सामने प्रकट होकर अपने को संकट में डालने की हिम्मत नहीं है। जो माँगना हो ऐसे ही माँग लो।"

माधवाचार्य असमंजस में पड़ गये 'यदि गायत्री पुरुश्चरणों से इतना ही ब्रह्मतेज उत्पन्न होता है तो उसकी कोई अनुभूति मुझे क्यों नहीं हुई ? सिद्धि का आभास क्यों नहीं हुआ ? यह प्रश्न बड़ा रहस्यमय था, जो भैरव के सम्वाद से ही उपजा था। उन्होंने समाधान भी उन्हीं से पूछा और कहा— 'देव ! यदि आप प्रकट नहीं हो सकते और गायत्री उपासक को इतना तेजस्वी पाते हैं तो कृपा कर यह बता दें कि मेरी इतनी निष्ठा भरी उपासना निष्फल कैसे हो गई ? इतना समाधान करा देना भी आपका वरदान जैसा ही होगा। जब आप गायत्री तेज के सम्मुख होने तक का साहस नहीं कर सकते तो फिर आपसे अन्य वरदान क्या माँगू ?'

भैरव ने उनकी इच्छा पूर्ति की और, पिछले ग्यारह जन्मों के दृश्य दिखाये, जिनमें अनेक पाप कृत्यों का समावेश था। भैरव ने कहा—'आपके एक-एक जप गायत्री पुरुश्चरण से एक-एक जन्म के पाप कर्मों का परिशोधन हुआ है। ग्यारह जन्मों के संचित पाप निर्मित प्रारब्धों के दुष्परिणाम इन ग्यारह वर्षों की तप साधना से नष्ट हुए हैं। अब आप नये सिरे से फिर उसी उपासना को करें। संचित प्रारब्ध की निवृत्ति हो जाने से आपको आगे के प्रयासों में सफलता मिलेगी।'

माधवाचार्य फिर वृन्दावन लौट गये और बारहवाँ पुरश्चरण करने लगे। अब की बार उन्हें आरम्भ से ही साधना की सफलता के लक्षण प्रकट होने लगे और बारहवाँ वर्ष पूरा होने पर इष्टदेव का साक्षात्कार हुआ, उन्हीं के अनुग्रह से वह प्रज्ञा प्रकट हुई, जिसके सहारे माधव निदान जैसा महान् ग्रन्थ लिखकर अपना यश अमर करने और असंख्यों का हित साधन कर सकने की उपलब्धि मिली और जीवन का लक्ष्य पूरा कर सकने में सफल हुये।

इस गाथा से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि साधना की सिद्धि में प्रधान बाधा क्या है ? संचित दुष्कर्म ही उस मार्ग की सफलता में प्रधान रूप से बाधक होते हैं। यदि उनके निराकरण का उपाय सम्भव हो सके तो अभीष्ट सफलता सहज ही मिलती चली जायेगी।

आत्मिक प्रगति के लिये कल्मषों का परिशोधन

जीवन के हर पक्ष को समुन्नत बनाने में दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग और सत्यप्रवृत्तियों का अभिवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक है। उच्चस्तरीय साधनाओं की सफलता के साथ तो यह तथ्य अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है कि साधक पवित्र जीवन जिये। इसके लिए परिमार्जन-परिष्कार की दिशा में साहसिक कदम बढ़ाये जाने चाहिए। भूतकाल का परिमार्जन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावी पवित्र निर्धारण की प्रक्रिया प्रायश्चित्त द्वारा ही सम्भव होती है। अस्तु, आत्मिक प्रगति के लिए प्रायश्चित्त रूपी धुलाई आवश्यक है ताकि जीवन सत्ता पर साधना द्वारा उपयुक्त रंगाई ठीक तरह हो सके।

कर्मफल की अनिवार्यता समझी जानी चाहिए और उज्जवल भविष्य की आकांक्षा यदि वास्तविक हो तो उसके लिए भविष्य की श्रेष्ठता-परक गतिविधियों का निर्धारण किया जाना चाहिए।

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वादग्नौ धास्यन्ति धावतः।
तत्र पापक्षयात्पापा नराः कर्मानुरुपतः।।

—शिव पुराण

धातुओं के मैल को हटाने के लिये जैसे उन्हें तीक्ष्ण अग्नि में रखते हैं, उसी तरह पापी प्राणियों को पाप-नाश के उद्देश्य से ही अपने कर्मों के अनुसार ही नरकों में गिराया जाता है।

यौनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्ये ऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।

—गरुड़ पुराण

जिसने श्रवण-मनन द्वारा जैसा मनोभाव प्राप्त किया है, उसी के आधार पर अपने-अपने कर्मों के अनुसार कितने ही जीवात्मा देह धारणार्थ विभिन्न योनियों को प्राप्त होते हैं और अनेकों जीवात्मा अपने कर्मानुसार वृक्ष-लता, पर्वत आदि स्थानों पर पदार्थों के रूप को ग्रहण कर लेते हैं।

ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता स्वरूपानुभवेन हि।
अतस्ते पुत्र दत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिणः।।

—महाभारत

"ज्ञानी मनुष्य तो अपने सच्चे स्वरूप को समझकर और तदनुसार आचरण करके सदा ही मुक्त होते हैं। उनको पुत्रों द्वारा दिये गये पिण्डों की आकांक्षा कभी नहीं होती।"

यमनियमविधूतकल्मषाणामनुदिनमध्युतसक्तमानसानाम्।
अपगतमदमानमत्सराणां त्यज भट दूरतरेण मानवानाम्।।

—विष्णु पुराण

जिनके पाप समूह यम, नियमों के पालन से नष्ट हो गये हैं। जिन्होंने मत्सर और अहंकार छोड़ दिया है; उन सच्चे भगवद् भक्तों को हे यमराज ! नरक में मत ले जाना।

योग वशिष्ठ में शारीरिक रोगों को व्याधि और मानसिक कष्टों को आधि कहा है। यह दोनों ही प्रकार के दण्ड उभय क्षेत्रों में अनाचरण बरतने के परिणाम हैं। आन्तरिक विकृतियों को हटा देने पर इन दोनों ही विपत्तियों से छुटकारा मिल सकता है। इस तथ्य का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

देहदुःखं विदुर्व्याधिमाध्यख्यं वासनामयम्।
मौर्ख्यमूले हि ते विद्यात्तत्त्वज्ञाने परिक्षयः।।
भृशं स्फुरन्तीष्विच्छासु मौर्ख्ये चेतस्यनिर्जिते।
दुरान्नाभ्यवहारेण दुर्देशाक्रमणेन च।।
क्षीणत्वाद्वा प्रपूर्णत्वान्नाडीनां रन्ध्रसंततौ।
प्राणे विधुरतां याते काये तु विकलीकृते।।
दौस्थित्यकारणं दोषाद्व्याधिर्देहे प्रवर्तते।।

—योग वशिष्ठ

दुःख के दो कारण हैं, एक आधि दूसरा व्याधि। मनोविकारों से आधि और शरीरगत विकृतियों से व्याधि उत्पन्न होती है। दोनों मूर्खता से उत्पन्न होती हैं और तात्विक दृष्टि उत्पन्न होने से समाप्त भी हो जाती हैं।

अनुचित इच्छाओं से, मूर्खताओं से, कुधान्य खाने से, मर्यादाएँ उल्लंघन करने से, शरीर एवं मन क्षीण होते हैं और नस-नस में मलीनता भर जाती है। इससे प्राण विकल रहते हैं और शरीर व्याधियों से भर जाता है।

इन मलीनताओं का परिशोधन करने के लिए प्रायश्चित किया जाता है। इसमें जहाँ उपवास आदि की तितीक्षा आवश्यक मानी गई है, वहाँ व्यक्ति एवं समाज को पहुँचाई गई क्षति को पूरा करने के लिए इष्टापूर्ति अर्थात् पुण्य परमार्थ द्वारा खोदे गये गड्ढे को भरना भी आवश्यक माना गया है।

पातकी च तदर्धेन शुध्यते वृत्तवान्यदि।
उपपातकिनः सर्वे तदर्धेनैव सुव्रताः।।

—लिंग पुराण

पातकी पुरुष उसकी आधी प्रायश्चित्त की विधि से भी शुद्ध हो जाता है अगर वह पुरुष चरित्रवान् होता है। हे सुव्रतो ! जो उपपातक करने वाले हैं, वे उसके भी आधे प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाया करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्रहीता हि गृहीतस्य दानाद्वै तपसा तथा।
पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत्।।

जो धन अनीतिपूर्वक लिया है, उसे दान द्वारा लौटा देना चाहिए और तपश्चर्या द्वारा उस कुकर्म का प्रायश्चित करना चाहिए। ऐसा न करने पर वह संचित पाप रौरव नरक में धकेलता है।

अग्निहोत्रं तपः सत्यंवेदानांचैवसाधनम्।
आतिथ्यंवैश्वदेवंचइष्टमित्यभिधीयते।।
वापीकूपतडागानिदेवत यतनानिच।
अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्तमित्याभिधीयते।।

—मार्कण्डेय पुराण

अग्नि होत्र, तप, सत्य, वेदाध्ययन तथा अतिथि सत्कार यज्ञ कर्म 'इष्ट' कर्म कहे जाते हैं। कुँआ, बाबड़ी, मन्दिर, अन्न, वस्त्र आदि का दान यह पूर्ति कर्म है। इष्ट और पूर्ति कर्म सदा करते रहने चाहिए।

साधना विज्ञान में भी शारीरिक, मानसिक मलीनताओं के निष्कासन पर जोर दिया गया है। आयुर्वेद में विकारग्रस्त शरीरों के मलशोधन की प्रक्रिया के उपरान्त चिकित्सा का समुचित प्रतिफल मिलने की बात कही गई है। हठयोगी नेति, धोति, वस्ति, न्योलि, बज्रौली, कपाल भाति, आदि क्रियाओं द्वारा मलशोधन करते हैं। आयुर्वेद में वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्व, आदि शोधन कर्म करके संचित मलों का निष्कासन किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में यही कार्य उपवास एवं ऐनिमा के द्वारा किया जाता है। राजयोग में यम, नियमों का विधान है। कुण्डलिनी योग में नाड़ी शोधन की अनिवार्यता है। यों उसका वाहन विधान प्राणायामों की विशेष प्रक्रिया पर आधारित है, पर उसका मूल उद्देश्य शारीरिक और मानसिक क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों का निराकरण ही है—

नादाभिव्यक्ति रारोग्यं जीयते नाडी शोधनात्।

—हठयोग प्र०

नाड़ी-शोधन से आरोग्य की प्राप्ति होती है और नादानुसंधान की अभिव्यक्ति ठीक तरह होती है।

द्वासाप्तति सहस्राणां नाडीनां मलशोधने।
कुतः प्रक्षालनोयायः कुण्डल्यभ्यसनाहते।।

—हठयोग,

नाड़ियों में भरे मल का प्रक्षालन ही कुण्डलिनी जागरण का आधार है।

नाडी शुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत्।

—घेरण्ड संहिता

नाड़ी-शोधन के लिए प्राणायाम का अभ्यास करें।

सूर्यवेधन अनुलोम-विलोम प्राणायाम को नाड़ी-शोधन के लिए मल शोधन के लिए प्रतीक अभ्यास के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। उससे श्वसन संस्थान की शुद्धि एवं शरीर में अन्यत्र भरे मलों के निष्कासन में सहायता मिलती है, पर उतने से ही सब कुछ सम्भव नहीं हो जाता। यह साधन संकेत यह बताता है कि आत्मिक प्रगति के लिए जितनी साधन सम्पदा संग्रह करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है उतनी ही संचित कुसंस्कारों का निराकरण करने के लिए प्रायश्चित्त प्रक्रिया की भी। प्रायश्चित्त विधान वस्तु मल-शोधन, नाड़ी शोधन का ही जीवन व्यवहार में प्रयुक्त होने वाला अति महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन करना होगा

अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन की आवश्यकता सामान्य जीवन में सर्वत्र समझी जाती है, पर आत्मिक प्रगति का प्रसंग जब आता है तो उस ओर से एक प्रकार मुँह ही मोड़ लिया जाता है। इस उपेक्षा का ही कारण है कि प्रगति के लिए किये गये प्रयास प्रायः निरर्थक चले जाते हैं और यह शिकायत बनी रहती है कि आत्मिक क्षेत्र की सफलताएँ प्राप्त करने के लिए जो उपाय बताये गये, वे सारगर्भित नहीं थे। अधिकांश साधकों को ऐसी ही असमंजस की स्थिति में फँसा और निराशा से खिन्न मनःस्थिति की ओर जाता देखा जाता है। आरम्भिक उत्साह को बहुत समय तक स्थिर रखने वाले कोई विरले ही दीखते हैं। इसमें अधीरता तो एक कारण है ही, पर उस कठिनाई की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जिसके कारण साधनाएँ अपने प्रभाव का कोई परिचय प्रस्तुत नहीं करतीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और आशा का कुसुम असमय में ही मुरझाने लगता है।

तथ्यों को खोजने पर एक भयंकर भूल सामने आती है कि अभिवर्धन से पूर्व परिशोधन के सिद्धान्त की उपेक्षा कर दी जाती है। सरलतापूर्वक जल्दी उपार्जन के लोभ में ऐसी आतुरता अपनाई जाती है, जिसके अत्युत्साह में परिशोधन की प्रक्रिया पूरी करने के लिए ठहरना बन ही नहीं पड़ता। फलतः एकाकी प्रयास अधूरे रहते हैं, सफलता के लिए समग्र प्रयास चाहिए। आधी-अधूरी प्रक्रिया हर काम में असफलता उत्पन्न करती है तो फिर आत्मिक क्षेत्र ही उसका अपवाद कैसे रह सकता है ? साधनाओं की असफलता का मूल कारण यह अधूरापन ही होता है, जिसमें परिशोधन जैसी आरम्भिक आवश्यकता को पूरा किये बिना ही आगे की छलाँग लगा दी गई।

दुष्कर्मों के कारण चित्त पर जमे हुए कुसंस्कारों की मोटी परतें आत्मिक प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा हैं। उन्हें हटाने को 'परिशोधन' कहते हैं। उपासना का महत्त्व कृषि कर्म करने-उद्यान लगाने जैसा है, जिसके लिए बीजारोपण से भी पूर्व भूमि शोधन की आवश्यकता है। अच्छी तरह जोतना, भूमि के कंकड़, पत्थर हटाना, खरपतवार उखाड़ना, नमी रखना, खाद देना जैसे कई काम करके भूमि को इस योग्य बनाया जाता है कि उसमें बोया हुआ बीज ठीक तरह उग सके। अंकुरों को बढ़ने और फलने-फूलने की स्थिति तक पहुँचने के लिए उपयुक्त भूमि की आवश्यकता होती है। यदि उसके बनाने में आनाकानी की गई है और जल्दी फसल कमाने के लोभ में भूमि-साधना का श्रम निरर्थक समझा गया है तो उसे भूल ही कहा जायगा। जो आरम्भ में तो श्रम बचाने की बुद्धिमत्ता समझा गया था, पर पीछे उसमें बीज भी गँवा बैठने की निराशा ही हाथ लगती है।

आत्मिक प्रगति की साधना का पूर्वार्ध है—आत्मशोधन और उत्तरार्ध है—आत्म विकास। उपासनाएँ आत्म-विकास का प्रयोजन पूरा करती हैं। इसके लिए योगाभ्यास वर्ग के अनेकानेक विधि-विधानों का प्रचलन है। अपनी रुचि, आवश्यकता और परम्परा के अनुसार उनमें साधक चुनाव करते हैं और प्रगति का उपक्रम आरम्भ करते हैं यह उत्तरार्ध है। यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि उत्तरार्ध से लाभ पाने के नये आधार और दृश्य सामने आते हैं और कुछ पाने की आशा तो बँधती है, पर पूर्वार्ध की उपेक्षा करके यह छलांग प्रायः असफल ही होती देखी गई है। पूर्ण असफल न भी हों तो भी उसका प्रतिफल इतना स्वल्प दिखाई देता है, जो आरम्भ में सोचे या बताये गये माहात्म्य की तुलना में बहुत ही कम होता है और साधक का मन उदास कर देता है।

होना यह चाहिए था कि विकास प्रयासों का उत्तरार्ध अपनाने के साथ-साथ पूर्वार्ध का परिशोधन पक्ष भी ध्यान में रखा गया होता। इसे तप-साधना कहते हैं। इसके हलके भारी अनेकों प्रकार हैं। उन्हें अपनाने से मनोभूमि की कुसंस्कारिता हटती है और उर्वरता उत्पन्न होती है। यही भूमि-शोधन है, जिसमें अंकुर उपजाने जैसे उत्साहवर्धक दृश्य तो तत्काल सामने नहीं आते, पर दूरदर्शिता के सहारे निकट भविष्य में अभीष्ट सफलता मिलने का आश्वासन अवश्य मिलता है। अस्तु साधना की सनातन परम्परा में आत्मशोधन की तपश्चर्या की भी उतनी ही आवश्यकता और महत्ता बताई गई है, जितनी कि उपलब्धियों की झलक दिखाने वाली योग साधनाओं की। अदूरदर्शिता की भूमि की उखाड़-पछाड़ बेकार लगती है और अंकुर उपजाना या पौध लगाना प्रत्यक्ष लाभदायक दीखता है। इतने पर भी तथ्य तो तथ्य ही रहेंगे। शोधन की उपेक्षा करके उपार्जन की उतावली अन्ततः निराशाजनक ही सिद्ध होती है।

उपासना विधानों का प्रचलन इन दिनों तेजी पर है। बताने वाले ऐसे गुरुओं की बाढ़-सी आई हुई है, जो बहुत ही सरल पूजा प्रक्रिया बताकर लम्बे-चौड़े लाभ मिलने का आश्वासन देकर पहली ही बार में अनेकों को आकर्षित कर लेते हैं। उनका आरम्भ कर देने वाले लोगों की भी कमी नहीं रहती क्योंकि वे बहुत ही सरल होते हैं। इतने सरल जिससे शारीरिक-मानसिक या अन्य किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ता। ऐसे ही बाल-क्रीड़ा की तरह उस पूजा-पत्री को पूरा कर देना चुटकी बजाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसा खेल मात्र होता है। इतना कुछ करने पर भी देवता को प्रसन्न करके और उससे तरह-तरह के वरदान पाने का लाभ यदि मिलता है तो उसे कौन छोड़े ? लाटरी खुलने के लाभ की कल्पना करके जब एक रुपये का टिकट खरीदने वाले लाखों मिल सकते हैं तो अत्यन्त सरल पूजा विधि के सहारे प्रचुर लाभ पाने का लोभ कौन संवरण कर सकेगा ? स्पष्ट है कि चमत्कारी फल श्रुति बताने वाले को अपनी बताई विधि को अपनाने वालों की कमी नहीं मिलती। किन्तु बताये हुए लाभ न मिलने पर जो निराशा होती है, वह अनास्था में बदलती जाती है। ऐसी दशा में सस्तेपन का प्रलोभन बताने वाले के लिए उपासना पद्धति के लिए, साधक के लिए, लोक मान्यता के लिए अहितकर ही सिद्ध होता है।

उपयुक्त मार्ग यही है कि साधना विज्ञान को सही रीति से अपनाया जाय। उचित मूल्य चुकाकर महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने के सिद्धान्त पर विश्वास किया जाय। उपासनात्मक प्रक्रिया अपनाने के साथ या उससे भी पहले आत्मशोधन की महत्ता और आवश्यकता समझी जाय। प्रगति के प्रयासों में उसे अनिवार्य रूप में सम्मिलित रखा जाय। योग और तप दोनों एक-दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। इन्हें धुलाई और रंगाई की उपमा दी जा सकती है। तप को धुलाई और योग को रंगाई कहा जा सकता है। मैले, कुचैले, चिकनाई और गन्दगी से सने कपड़े पर कोई भी रंग नहीं चढ़ता और रंग का पैसा एवं रंगाई का श्रम निरर्थक चला जाता है। इसी प्रकार साधना मार्ग पर चलते हुए आत्मिक प्रगति के साथ जुड़ी हुई अति महत्त्वपूर्ण सफलताएँ जिन्हें सिद्धियों या विभूतियों के नाम से जाना जाता है—प्राप्त कर सकना तभी संम्भव हो सकता है, जब आत्मशोधन और आत्म विकास की दोनों ही प्रक्रियाएँ समानान्तर चलती रहें।

उपासना को योग पक्ष कहते हैं। उसकी विधि-व्यवस्था में जप, ध्यान, प्राणायाम, नाद, मुद्रा, बन्ध, प्रत्याहार, समाधि आदि प्रौढ़ स्तर को और पूजा-पाठ, स्नान, देवदर्शन, कथा, कीर्तन जैसे बाल स्तर को अनेकानेक उपचारों का समावेश है। आत्मा को परमात्मा से जोड़ने वाली क्षुद्रता को महानता के साथ सम्बद्ध करने वाली, व्यवहार में आदर्श भर देने वाली और जीवात्मा को परमात्मा बना देने वाली यह समस्त गतिविधियाँ योग कहलाती हैं। योग का अर्थ है—जोड़ना, अपूर्ण को पूर्ण के साथ जोड़ना। योग साधना को—उपासना-प्रक्रिया को आत्मिक प्रगति का उत्तरार्ध कहते है।

परिशोधन को तपश्चर्या कहते हैं—इस प्रकरण में अपनी अवांछनीय आदतों और मान्यताओं को उलटने के लिए अन्तःक्षेत्र में जमी कुसंस्कारिता से संघर्ष करना पड़ता है और आदर्श पालन के लिए कष्ट कठिनाई को जान-बूझकर आमन्त्रित करना और हँसते-हँसते सहना होता है। इसी स्तर के हलके भारी क्रिया-कलापों को तपश्चर्या कहते हैं। व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, अभ्यस्त सुविधाओं का परित्याग, मितव्ययता एवं सादगी का वरण, सत्कार्यों के लिए श्रमदान एवं साधनों का अंशदान इसी वर्ग में आते हैं। परमार्थ के लिए किये जाने वाले सभी पुण्य-प्रयास इसी श्रेणी में गिने जा सकते हैं। स्वयं कष्ट सहकर उस बचत का लाभ दूसरों को देने के समस्त उपचारों को तपश्चर्या की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है।

साधना की प्रौढ़ता में उन दोनों वर्गों का समावेश आवश्यक है। नित्य कर्म की बात दूसरी है, उसमें योग और तप के सिद्धान्तों का समावेश अनिवार्य नहीं है। आवश्यकता तो हर किसी के लिए है और बनी ही रहेगी। कौन कितना कर सकता है ? किसके लिए कितना साहस कर सकना कितना सरल या कठिन पड़ता है, इस आधार पर नित्य कर्म के रूप में उपासना का नित्य नियम बनाना दूसरी बात है। इसे उच्चस्तरीय साधना क्रम में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार शौच, स्नान, दन्त मन्जन, कपड़े धोना, कमरा बुहारना, फर्नीचर झाड़ना, बर्तन माँजना, स्वच्छता बनाये रहने और गन्दगी न जमने से होने वाली हानि से बचने के लिए आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार मनःक्षेत्र में भीतर से उठने वाली गन्दगी और अनुपयुक्त वातावरण से अवांछनीय छाप को निरन्तर हटाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने के लिए इतनी उपासना तो हर किसी के लिए आवश्यक है, जिसे नित्य नियम कहा गया है और संध्यावन्दन नाम दिया गया है। इसका इतना ही लाभ है कि मलीनताएँ जमते रहने से जिस अशुभ की आशंका थी उससे बचा जा सकता है। आत्मिक प्रगति के लिए जो विशिष्ट पुरुषार्थ करने पड़ते हैं, वे साधना कहे जाते हैं। उनमें प्रौढ़ता रहती है। प्रखरता की आवश्यकता पड़ती है। समग्र साधना को योग और तप का समन्वय कह सकते हैं। उसका मार्ग भी कष्ट-साध्य है और महत्त्व भी असाधारण है।

नित्य कर्म, नित्य नियम हर किसी के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। उसे बाल, वृद्ध, रुग्ण, अशक्त हर किसी को किसी न किसी रूप में करना ही चाहिए। शुद्धतापूर्वक, नियत स्थान और नियत समय पर, निर्धारित विधि से न बन पड़े तो भी ईश्वर स्मरण का कोई सरल तरीका अपनी स्थिति के अनुरूप हर किसी को निकाल लेना चाहिए। मौन मानसिक जप किसी भी स्थिति में हो सकता है। भगवान की ध्यान-धारणा किसी भी समय की जा सकती है। नियमितता बन पड़े तो सर्वोत्तम, अन्यथा जिसके लिए जितना, जिस प्रकार सम्भव हो सके संध्या-वन्दन का नित्य कर्म किसी न किसी प्रकार पूरा कर ही लेना चाहिए। आस्तिकता के प्रतिफल महान हैं। उस बीज को सींचते रहने के लिए थोड़ा-बहुत समय निकालते रहना हर दृष्टि से बुद्धिमत्तापूर्ण है। उस थोड़े का भी बहुत लाभ है। तथ्यों पर विचार करते हुए परिजनों में से प्रत्येक को कहा गया है कि वे अपने घरों में आस्तिकता का वातावरण बनाने के लिए इतनी परम्परा तो अपने घर में चला ही डालें कि नित्य नियम जितना उपासना का उपक्रम चल ही पड़े। गायत्री माता के चित्र को नमन वन्दन करके तब भोजन करने की परम्परा चल पड़े तो उस छोटे बीजारोपण में भी आस्तिकता का कल्प वृक्ष कभी प्रौढ़ बन जाने की आशा बनी रहेगी।

साधना का उच्चस्तरीय आधार अगला है। जिसके लिए इन दिनों विशेष रूप से प्रयत्न किया जा रहा है। यों चेतना को परिष्कृत करके भौतिक सम्पत्तियों की तुलना से लाखों गुनी अधिक महत्त्वपूर्ण विभूतियों के उपार्जन के लिए बहुत समय से समझाया और उकसाया जाता रहा है, पर अब उसके लिए अधिक आग्रह किया जा रहा है। उसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाने और साधन जुटाने में भी कमी नहीं रखी जा रही है। यह प्रयास उस आत्म विकास की उस प्रौढ़ प्रक्रिया के सन्दर्भ में है, जिसे उच्चस्तरीय साधना की संज्ञा दी जा सकती है।

ब्रह्मवर्चस नाम यों एक नवनिर्मित आश्रम को भी दे दिया गया है और एक साधना पद्धति का नामकरण भी यही किया गया है। किन्तु वस्तुतः यह एक अभियान है, जिसका उद्देश्य मनुष्य के भीतर दबी हुई विशेषताओं एवं विभूतियों को उभारना है। लघु की विभु—तुच्छ को महान्-पुरुष को पुरुषोत्तम-नर को नारायण बनाने की योजना एवं सम्भावना इसमें सन्निहित है। मनुष्य को वर्तमान स्थिति में नहीं रहना है, उसे अपने गौरव के अनुरूप ऊँचा उठना है यही देवत्व का उदय है। अपने विश्व और समाज की यह दुर्गति नहीं रहनी चाहिए, उससे सद्भावना पर सहकारिता के सहारे प्रगति और समृद्धि की सुख-शान्ति भरी परिस्थितियाँ उत्पन्न होनी चाहिए। यही है धरती पर स्वर्ग का अवतरण। युग परिवर्तन और युग निर्माण का स्वरूप एवं तथ्य क्या है ? इसका संक्षिप्त उत्तर मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण कहा जा सकता है। यह महान् प्रयोजन अत्यन्त व्यापक, विस्तृत, कठिन और साधना साध्य है। इसके लिए शक्ति चाहिए। कल-कारखाने और छोटे-छोटे उत्पादन निर्माणों में किसी न किसी प्रकार की शक्ति नियोजित करनी पड़ती है तभी वे चल पाते हैं। फिर युग परिवर्तन, युग निर्माण जैसे महान् कार्य के लिए भी शक्ति चाहिए ही। यह आत्मशक्ति ही हो सकती है। निर्माण एवं परिवर्तन जब विचारणाओं, भावनाओं और आस्थाओं के चेतना क्षेत्र का करना है तो शक्ति भी उसी स्तर की चाहिए। आत्म-शक्ति ही युग-शक्ति है। इसी को बड़े परिमाण में जुटाने के लिए ब्रह्मवर्चस अभियान का स्थानीय शुभारम्भ है। इसका विश्वव्यापी विस्तार होना आवश्यक भी है और महाकाल की इच्छानुरूप होने के कारण सुनिश्चित भी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मवर्चस साधना में व्यक्ति का वर्चस्व और समाज का भविष्य समान रूप से समुन्नत बनते हैं। वस्तुतः यह अभियान एक साथ दोनों प्रयोजन पूरे करता है। व्यक्ति में महानता और समाज में सुसम्पन्नता का एक साथ उद्‌भव करना अपना उद्‌देश्य है। वस्तुतः दोनों एक ही हैं। व्यक्तियों का समुदाय ही समाज है। व्यक्ति की शालीनता समाज की सुसम्पन्नता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रयास में स्वार्थ और परमार्थ का समान रूप से समन्वय है। ब्रह्मवर्चस की उच्चस्तरीय साधना का मार्ग अपनाने वाला अपने आपको आत्म-शक्ति से समृद्ध करता है, फलतः उसे स्वर्ग, मुक्ति, सुख-शान्ति, सिद्धि, विभूति, सद्‌गति नाम दिये जा सकते हैं। चन्दन का वृक्ष बढ़ता है, उसकी दूर-दूर तक सुगन्ध फैलती है। बादल उठते हैं तो प्राणियों और वनस्पतियों की प्यास बुझती है। धरती हरी-भरी दीखती है। इसी प्रकार व्यक्ति की-उत्कृष्टता की—समाज की सम्पन्नता और वातावरण की बसन्ती अनुकूलता के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ब्रह्मवर्चस अभियान का तत्वज्ञान और साधना-विधान, समान और प्रौढ़ बनाने का प्रयत्न किया गया है। उसमें उपासना के योगाभ्यास पक्ष से सम्बन्धित उत्तरार्ध का भी परिपूर्ण समावेश है। विषय की गम्भीरता उसके विस्तार व्यवहार को देखते हुए उसे संक्षिप्त एवं सांकेतिक ही कहा जा सकता है। सर्वसाधारण को प्राथमिक जानकारी देने की दृष्टि से इतना ही पर्याप्त समझा गया। जिन्हें विशेष रुचि है, उनकी विशेषता बढ़ाने एवं विशेष मार्गदर्शन प्रस्तुत करने के लिए आवश्यकतानुसार मौखिक अथवा लेखनीबद्ध मार्गदर्शन उपलब्ध होता रहेगा।

पूर्वार्ध पहले बताया जाना चाहिए था। योग से भी पहले तप की महत्ता का वर्णन और प्रशिक्षण चलना चाहिए था, पर लाभ का प्रलोभन समझ में आने के उपरान्त ही उसके लिए प्रयत्न करने की जो लोक-परम्परा चल रही है, उसी को अपनाने के लिए हमें भी बाध्य होना पड़ा। पहले कष्टसाध्य आधार बताते तब कहीं उसके लाभों की झाँकी मिलती तो अधिकांश का साहस ही समाप्त हो जाता। इसलिए पहले क्या-पीछे क्या के अन्तर को विशेष महत्त्व न दिया जाय तो एक शब्द में इतना ही कहा जा सकता है कि योग और तप अविच्छिन्न हैं। दोनों कदम समन्वित तालमेल के साथ बढ़ाते चलने पर ही लक्ष्य तक पहुँचने की ही बात बनती है। तप का उद्‌देश्य परिशोधन है। मिट्टी मिले कच्चे लोहे को फौलाद बनने के अग्नि-संस्कार को लोहे का तप कहा जा सकता है, जिसके आधार पर उसके साथ जुड़ी हुई मलीनता जलकर अलग होती है और शुद्ध स्वरूप निखरता है। प्रायश्चित्त की तपश्चर्या इसी प्रयोजन के लिए आवश्यक समझी गई है।

हठीले कुसंस्कारों का निराकरण चान्द्रायण से

दूध, शाक, फल आदि बहुत देर तक स्थिर नहीं रखे जा सकते इसलिए अधिक मात्रा में होने पर उन्हें बेचकर रुपया बना लेते हैं। यह रुपया सुरक्षित रहता है। आवश्यकतानुसार उसके बदले दूध, शाक, फल अथवा दूसरी वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। इसी प्रकार दुष्कर्म घटनाक्रम के रूप में विस्तृत एवं सामयिक होने के कारण उन्हें पीछे अपना प्रभाव प्रकट करने के लिए अन्ततः चेतना 'संस्कारों' के रूप में सुरक्षित रख लेती है। यह संस्कार ही व्यक्तित्व का मूलभूत आधार होते हैं। इन्हीं के आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव की विशिष्टताएँ पूर्व संचित पूँजी के रूप में साथ रहती हैं। यों सामयिक कमाई भी इसमें जुड़ती रहती और संचित संस्कार सम्पदा के प्रभाव को न्यूनाधिक करती रहती है।

मनुष्य जीवन की प्रमुख समस्याओं के कारण बाह्य परिस्थितियों में ढूँढने की प्रचलित परम्परा को अपूर्ण ठहराया और अमान्य किया जा रहा है। व्यक्तित्व के अन्तराल में जमी हुई हठीली संस्कार-सम्पदा ही कठपुतली की तरह मनुष्य को तरह-तरह के नाच-नाचने और क्रीड़ा-कौतुक करने लिए विवश करती रहती है। इतना ही नहीं वह परिस्थितियाँ भी इतनी जटिलता उत्पन्न कर देती है, जो टाले नहीं टलती। कारण कि उनकी जड़-अचेतन की गहन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परतों में होती है। जड़ न कटे तो टहनी तोड़ने से भी वृक्ष के अस्तित्व पर क्या असर पड़ने वाला है।

इन दिनों शारीरिक रोगों की अभिवृद्धि 'दिन दूनी रात चौगुनी' होती जा रही है। चिकित्सकों, चिकित्सालयों एवं नित नई औषधियों में आँधी-तूफान की तरह बढ़ोत्तरी हो रही है। इतने पर भी उसके नियन्त्रण के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते। इस असमंजस का समाधान एक ही है कि मनःक्षेत्र में घुसती, पनपती उन कुत्साओं-कुण्ठाओं का पर्यवेक्षण, निराकरण किया जाय जो न केवल शारीरिक रोगों, मानसिक उद्वेगों के लिए जिम्मेदार हैं वरन् व्यावहारिक जीवन में भी अनेकानेक विग्रह संकट आये दिन खड़े करती रहती हैं। मनःस्थिति परिस्थिति के लिए उत्तरदायी है। इस तथ्य को समझ लेने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव हो सकेगा कि संकटों का आत्यान्तिक, समाधान क्या हो सकता है ?

मनोविज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि शारीरिक रोगों का प्रमुख कारण मनःक्षेत्र में जमे हुए हठीले कुसंस्कार प्रधान कारण होते हैं। हठीले इस अर्थ में कि उन्हें धारण किये हुए व्यक्ति यह भलीभाँति समझता है कि उसने अनुपयुक्तताएँ अपना रखी हैं और उन्हें छोड़ ही देना चाहिए। इतने पर भी वे स्वभाव के साथ बुरी तरह गुंथ गई आदतों के रूप में इस प्रकार परिपक्व बन गई होती हैं कि उन्हें हटाने के सामान्य उपायों से कोई ठोस परिणाम निकलता दिखाई नहीं पड़ता। समझदारी का तकाजा एक ओर—आदतों का हठीलापन दूसरी ओर—इन दोनों की तुलना की जाय तो कुसंस्कारों का हठीलापन ही भारी पड़ता है।

सभी जानते हैं कि मनुष्य ही है, जो मानसिक असन्तुलन उत्पन्न करता और उनके विक्षोभों के फलस्वरूप शरीर के विभिन्न अवयवों की सामान्य कार्य पद्धति में अवरोध उत्पन्न करता है। फलतः बीमारियाँ उसे आ घेरती हैं।

रोगों की जड़ शरीर में हो तो कायचिकित्सा में सहज सुधार होना चाहिए। पोषण की पूर्ति आहार से होनी चाहिए और विषाणुओं को औषधि के आधार पर हटाने में सफलता मिलनी चाहिए। किन्तु देखा जाता है जीर्ण रोगियों की काया में रोग इस प्रकार बुरी तरह रम जाते हैं कि उपचारों की पूरी-पूरी व्यवस्था करने पर भी हटने का नाम नहीं लेते। एक के बाद दूसरे चिकित्सक और नुस्खे बदलते रहने पर भी रुग्णता से पीछा नहीं छूटता। इलाज के दबाव में बीमारियाँ रंग-रूप बदलती रहती हैं पर जड़ न कटने से टूटे हुए नई कोपलों की तरह उगते रहते हैं। जड़ों को खुराक मिलती रहे तो टहनियाँ तोड़ने से भी पेड़ सूखता नहीं है।

रोगों के दो वर्ग हैं, एक आधि, दूसरा व्याधि। 'व्याधि' शारीरिक रोगों को और 'आधि' मानसिक रोगों को कहते हैं। ज्वर, खाँसी, दमा, दर्द, अपच, मधुमेह, रक्तचाप आदि को शारीरिक रोगों में गिना जाता है और उन्माद, सनक, मूर्खता, विस्मृति विसंगतियाँ, उलझनों आदि की मानसिक रोगों में गणना होती है। मस्तिष्कीय रोगों की चिकित्सा पागलखाने के डॉक्टर करते हैं और मनःचिकित्सिक पूछताछ करके अन्तरंग में जमी कुण्ठाओं को उगलवाने और सत्परामर्श देने के उपायों का सहारा लेते हैं। शरीर विज्ञानी औषधि उपचार, शल्यक्रम आदि के द्वारा करते हैं। इनमें आंशिक सफलता भी मिलती है, पर प्रयत्न फिर भी अधूरा ही रह जाता है और वैसा लाभ नहीं मिलता जैसा अभीष्ट है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए मन की उस गहराई तक जाना होगा, जहाँ से कि शरीर और मन को प्रभावित करने वाले प्रवाहों को उभारने और काम करने की प्रेरणा मिलती हैं। कुएँ में जो पानी भरा दीखता है वह उसकी तली में जल फेंकने वाले स्रोतों से आता है। इसी प्रकार मस्तिष्कीय अस्त-व्यस्तताएँ चेतना की मूल प्रवृत्ति के मर्मस्थल में से उभरती हैं। इस परत को आस्था केन्द्र कहते हैं। मनुष्य के गहन अन्तराल में कुछ आस्थाएँ जमी होती हैं। व्यक्तित्व का मूल स्रोत उन्हीं में सन्निहित रहता है।

अन्तःकरण की आस्थाएँ ही हैं, जो मनुष्य को ऊपर उठने एवं नीचा गिरने की प्रेरणा देती हैं। उसी की प्रतिक्रिया व्यक्तित्व को समुन्नत एवं पतित बनाकर रख देती है। इसी आन्तरिक उत्थान-पतन के आधार पर मनुष्य स्वर्गीय एवं नारकीय दृष्टिकोण विनिर्मित करता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तद्नुसार अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक कष्टों को सहन करना पड़ता है। इतना ही नहीं जीवन के अन्य क्षेत्र भी ऐसी विषम परिस्थितियों से भर जाते हैं, जिनमें रहने वाला अपने को पग-पग पर असफल, उपेक्षित, तिरस्कृत, दरिद्र एवं दुर्भाग्यग्रस्त अनुभव करता है।

डॉ० ब्राउन, डॉ० पीले, मैगडूगल, हेडफील्ड और डॉ० चार्ल्स जुंग आदि अनेक प्रसिद्ध मनोविज्ञानशास्त्रियों ने यह माना है कि फोड़े-फुन्सी से लेकर टी० बी० और कैन्सर तक की बीमारियों के पीछे कोई न कोई दूषित संस्कार ही कारण होते हैं। मनुष्य बाहर से ईश्वर परायण, सत्यभाषी, मधुर व्यवहार करने वाला दिखाई देता है, पर सच बात यह होती है कि उसके अन्तर्मन में नैतिकता को जब दबाकर दिखाने के लिए कुछ किया जाता है तो उसका मन भीतर ही भीतर अन्तर्द्वन्द्व करता है जिस अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप ही उसमें रोग पैदा होते हैं। कई बार यह संस्कार बहुत पुराने हो जाते हैं, तब बीमारी फूटती है, पर यह निश्चित है कि बीमारियों का पदार्पण बाहर से नहीं, व्यक्ति के मन से होता है।

इस कथन की पुष्टि में मैकडोनल्ड अमेरिका का उदाहरण देते हुए कहते है—अमेरिका के बीमारों में आधे ऐसे होते हैं जिनमें ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, क्रोध, धोखेबाजी आदि भाव प्रभुत्व जमाये होते हैं। जो इस प्रकार मानसिक रोगी होते हैं; वे अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण नहीं कर सकते, उनका व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है, उसी से वे उल्टे काम करते और बीमारियों को बढ़ाते हैं। आगे दुश्चिन्ता की व्याख्या करते हुए मैकडोनल्ड लिखते हैं—"मानसिक चिन्ताओं द्वारा रक्त के अन्दर 'एड्रेनलोना' नामक हार्मोन की अधिकता हो जाती है, उसी से श्वांस फूलना, कम्पन, चक्कर, आना बेचैनी, दिल धड़कना, पसीना आना और दुःस्वप्न बनते हैं। दौरे और बड़ी बीमारियाँ भी किसी न किसी मानसिक ग्रन्थि के ही परिणाम होते हैं, जिसे डॉक्टर नहीं जानता पर आधि-व्याधियाँ होती मन की ही कुचक्र हैं।

इस सम्बन्ध में भारतीय मत बहुत स्पष्ट है। यहाँ जीवन को इतनी गहराई से देखा गया है कि आधि-व्याधियों के मानसिक कारण पाप-ताप के संस्कार रूप में स्पष्ट झलकने लगते हैं। योग वशिष्ठ में कहा गया है—

चित्त विधुरते देहः संक्षोभमनयात्यलम्।।

—६/१/८१/३०

चित्त में गड़बड़ होने से शरीर में गड़बड़ होती है।

इदं प्राप्तमिदं नेति जाड्याद्वा घनमोहदाः।
आधयः सम्प्रवर्तन्ते वर्षासु मिहिका इव।।

६/१/८१/१६

अन्तर्द्वन्द्व और अज्ञान से मोह में डालने वाले मानसिक रोग पैदा होते हैं, उनसे फिर शारीरिक रोग इस तरह पैदा हो जाते हैं जैसे बरसात के दिनों में मेंढ़क अनायास दिखाई देने लगते हैं।

दुष्काल व्यवहारेण दुष्क्रिया स्फुरणेन च।
दुर्जना संगदोषेण दुर्भावोद्भावनेन च।।
क्षीणत्वाद्वा प्रपूर्णत्वान्नडीनां रन्ध्रसन्ततौ।
प्राणे विधुरतां याते काये तु विकलीकृतं।।

६/१/८१/१८/१६

दौस्वित्यकारणं दोषाद् व्याधिर्देहे प्रवर्तते।

अनुचित समय पर अनुचित काम करने से, बुरे लोगों के पास बैठने से मनुष्य मन में पाप और बुरी भावनाओं को स्थान देने लगता है। ऐसा होने पर नाड़ियाँ अपना सामान्य कार्यप्रणाली बन्द कर देती हैं। कुछ नाड़ियों की शक्ति नष्ट हो जाती है। कुछ अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं, जिससे प्राण का प्रवाह उल्टा-पुल्टा हो जाता है। प्राण संचार में गतिरोध उत्पन्न होने पर ही शरीर की स्थिति बिगड़ती और उसमें तरह-तरह के रोग पैदा हो जाते हैं।

आगे चलकर योग वशिष्ठ में इस प्रसंग को और भी अच्छी तरह खुलासा किया गया है।

संक्षोभात्साम्युत्सर्ज्य वहन्ति प्राणवायवः।।
असमं वहति प्राणे नाड्योयांति विसंस्थितिम्।।
कुजीर्णत्वमजीर्णत्वमतिमति जीर्णत्वमेव वा।
दोषा यंत्र प्रपात्यन्नं प्राणसंचारदुष्क्रमात्।।
कश्चिन्नाड्यः प्रपूर्णत्वं यांतिकांश्चिच्चरिक्तताम्
तथान्नानि नयत्यन्तः प्राणवातः स्वमाश्रयम्।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यान्यन्नानि निरोधेन तिष्ठन्त्यन्तः शरीरके।।
तान्यव व्याधितां यान्ति परिणामस्वभावतः।
एवमाधेर्भवेद व्याधिस्तस्याभावाच्च नश्यति।।

—६/१/८१/३२ से ३८ तक

अर्थात्—चित्त में उत्पन्न हुए विकार से ही शरीर में दोष पैदा होते हैं। शरीर में क्षोभ या दोष उत्पन्न होने से प्राणों के प्रसार में विषमता आती है और प्राणों की गति में विकार होने से नाड़ियों के परस्पर सम्बन्ध में खराबी आ जाती है। कुछ नाड़ियों की शक्ति का तो स्राव हो जाता है और कुछ में जमाव हो जाता है।

प्राणों की गति में खराबी से अन्न अच्छी तरह नहीं पचता है। प्राणों के सूक्ष्म यन्त्रों में अन्न के स्थूल कण पहुँच जाते हैं और जमा होकर सड़ने लगते हैं। उसी से रोग उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार आधि (मानसिक रोग) से ही व्याधि (शारीरिक रोग) उत्पन्न होते हैं। उन्हें ठीक करने के लिए मनुष्य को औषधि की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी यह कि मनुष्य अपने बुरे स्वभाव और मनोविकारों को ठीक कर ले।

साधारणतया समझाने-बुझाने की पद्धति ही सुधार परिवर्तन के लिए काम में लाई जाती है, पर देखा यह गया है कि भीतरी परतों पर जमे हुए कुसंस्कार इतने गहरे होते हैं कि उन पर समझाने-बुझाने का प्रभाव बहुत ही थोड़ा पड़ता है। देखा जाता है कि नशेबाजी जैसी आदतों से ग्रसित व्यक्ति दूसरे अन्य समझदारों की तरह ही उस बुरी आदत की हानि स्वीकार करते हैं। दुःखी भी रहते हैं और छोड़ना भी चाहते हैं, पर उस आन्तरिक साहस का अभाव ही रहता है, जिसकी चोट से उस अभ्यस्त कुसंस्कारिता को निरस्त किया जा सके। इस विवशता से कैसे छूटा जाय ? इसका उपयुक्त उपाय सूझ ही नहीं पड़ता। लगता रहता है कि कोई दैवी दुर्भाग्य ऐसा पीछे पड़ा है जो विपत्ति से उबरने का कोई आधार ही खड़ा नहीं होने देता। पग-पग पर अवरोध ही खड़े करता और संकट पटकता भी वहीं दीखता है। यह दुर्भाग्य और कोई नहीं, अपने अन्तरंग पर छाये हुए कषाय-कल्मष कुसंस्कार ही हैं, जो अभ्यास और स्वभाव का अंग बन जाने के कारण छुड़ाये नहीं छूटते और पटक-पटककर मारते हैं। नरक के यमदूतों जैसा त्रास देते हैं। इस विपन्नता को उलटने का समर्थ उपचार आन्तरिक परिशोधन ही है। इस अन्तस् के कायाकल्प के लिए जितने भी उपाय खोजे गए हैं, उनमें तत्वदर्शियों ने अपने अनुभवों के आधार पर चान्द्रायण तपश्चर्या को पर्व सुलभ अत्यन्त प्रभावशाली पाया है।

कुकृत्यों की रोकथाम, शासकीय एवं सामाजिक नियन्त्रण के आधार पर बहुत कुछ काबू में रखी जा सकती है। मानसिक दुश्चिन्तन को दूरदर्शी विवेकशीलता के सहारे घटाया या हटाया जा सकता है। पर इतने से भी कुछ काम चलने वाला नहीं है क्योंकि प्रेरणाओं का उद्गम स्रोत तो अन्तःकरण में उठने वाली दुर्भावना, आदर्शों के प्रति अनास्थाएँ ही होती हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष में उसी की चित्र-विचित्र भूमिकाएँ अनेकानेक कुकर्मों एवं दुर्घटनाओं के रूप में सामने आती रहती हैं। वास्तविक उपचार इसी क्षेत्र का होना चाहिए।

शरीर की रुग्णता, मन की उद्विग्नता, आर्थिक दरिद्रता, व्यक्तित्व का पिछड़ापन, पारिवारिक मनोमालिन्य, सम्पर्क क्षेत्र का विग्रह, साथियों की अवमानना जैसे संकटों के कारण तो सामयिक भी होते हैं और उनके लिए दोषी कईयों को ठहराया जा सकता है किन्तु वास्तविकता तलाश करने पर प्रतीत होता है कि यह समस्त संकट एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। वे एक ही गनमती के पिटारे से निकले हैं। विषवृक्ष की जड़ कटनी चाहिए। पत्ते तोड़ने, टहनी मरोड़ने से कुछ काम चलने वाला नहीं है। न चिकित्सक के काबू में रोग आने वाले हैं और न उपदेशक, मनोवैज्ञानिक, मानसिक विक्षोभों का समाधान कर सकते हैं क्योंकि जिस उद्गम स्रोत में निकलते हैं, वहाँ उभार उफनता ही रहा तो बाहरी रोकथाम से क्या बनेगा ? एक छेद रोकते-रोकते दूसरा फूट पड़ेगा। मेड़ बँधने और टूटते रहने का सिलसिला तब तक चलता ही रहेगा जब तक कि उफान उत्पन्न करने वाला स्रोत बन्द नहीं हो जाता है।

शरीर और मन के रोगों की रोकथाम के लिए कई प्रकार के उपचार, उपकरण एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकते हैं किन्तु अन्तःकरण की गहराई में पहुँचकर वहाँ कुछ उलट-पुलट करती हो तो फिर अध्यात्म-चिन्तन एवं साधनात्मक उपचार ही एकमात्र अवलम्बन बनकर रह जाते हैं। योग भावना को उत्कृष्टता के साथ जोड़ता है और तप कुसंस्कारिता को गलाकर सुसंस्कारिता में ढालने वाली भट्टी का प्रयोजन पूर्ण करता है।

इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति जिन साधना उपचारों से हो सकती है उनमें चान्द्रायण सर्वोपरि है। उसकी निर्धारित कार्य पद्धति का प्रभाव आरोग्य रक्षा, मनोरोग चिकित्सा के रूप में ही नहीं एक कदम आगे बढ़कर अन्तराल की गहरी परतों में जमी हुई कुसंस्कारिता को उखाड़ फेंकने की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। एकांगी साधनाएँ तो कितनी ही प्रचलित हैं पर जिनमें परिशोधन और प्रगति परिष्कार के दोनों प्रयोजन सिद्ध होते हैं, जो एक होते हुए भी अनेक प्रयोजन सिद्ध कर सके ऐसी अध्यात्म चिकित्सा चान्द्रायण की प्रायश्चित्त-प्रक्रिया के अतिरिक्त दूसरी परिलक्षित नहीं, वस्तुतः वह कुसंस्कारों का बोझ ही है जो कठपुतली की तरह मनुष्य को त्रस्त किये रहती है, जब तक उसे बाहर न निकाल लिया जाय तब तक वह संकट दूर नहीं होता। आँख में तिनका और कान में मच्छर घुस जाय तो बेचैनी उत्पन्न होगी और वह तब तक बनी ही रहेगी, जब तक कि उन्हें निकाल न दिया जाय। पाप-कृत्यों के बारे में भी यही बात है, वे बन पड़ें तो उन्हें प्रायश्चित्त के द्वारा निकाल बाहर करना ही एक मात्र उपाय है।

प्रमुख प्रश्न उन दुष्कर्मों का है जो भूतकाल में बन पड़े हैं और जिनके लिए आत्मा कचोटती और धिक्कारती है। वस्तुतः यह आत्म-प्रताड़ना ही शारीरिक, मानसिक रोगों को उत्पन्न करती रहती है। उसी उद्विग्नता में मन चंचल बना रहता है। न उपासना में मन लगता है और न सत्कर्मों में। इस काँटे को निकालना ही चाहिए। भोजन के साथ मक्खी पेट में चली गई तो उल्टी कर देना ही एकमात्र उपाय है। भूतकाल में बन पडे पापों का प्रायश्चित्त करके ही उनका शमन, समाधान किया जा सकता है।

प्रायश्चित्त के चार चरण हैं—प्रथम दो पूर्वार्ध हैं, अन्तिम दो उत्तरार्ध—

(१) जीवन भर के दुष्कर्मों की सूची बनाकर उनके द्वारा दूसरों को पहुँची हानि का स्वरूप समझना।

(२) दुष्कर्मों का चिंतन कर आत्म-विश्लेषण करना, उन्हें न दोहराने का संकल्प एवं विज्ञजनों के समक्ष उनका प्रकटीकरण करते हुए प्रायश्चित्त का संकल्प लेना।

(३) पश्चाताप के प्रतीक रूप में व्रत, उपवास, जप, अनुष्ठान आदि कृत्य करना।

(४) व्यक्ति अथवा समाज को जो हानि पहुँची हो, उसकी क्षति-पूर्ति करने के लिए यथा सम्भव अधिकतम् प्रयत्न करना।

पाप कर्म इसलिए बनते और बढ़ते रहते हैं कि कर्त्ता उनके द्वारा होने वाली हानियों पर ध्यान नहीं देता। उन्हें अन्य लोगों द्वारा अपनाई जाने वाली सामान्य क्रिया-प्रक्रिया मान लेता है। बाद में वे अभ्यास बन जाते हैं। धन, अधिकार, आतंक के उपयोग से उसे कई लाभ मिलने लगते हैं तो उनका आकर्षण और भी अधिक बढ़ जाता है। कुमार्ग से विरत होने का यही मार्ग है। कि उस मार्ग पर चलने वाले को उसकी हानियाँ स्वयं दृष्टिगोचर हों और प्रतीत हो कि इस दिशा में चलकर वह अब तक अपना तथा दूसरों का कितना अहित कर चुका। यही गतिविधियाँ जारी रहीं तो और भी कितनी हानि हो सकती है ?

दुष्कर्मों, दुष्प्रवृत्तियों और दुर्भावनाओं से दूसरों का अहित और अपना हित होने की बात सोची जाती है, पर वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। कुमार्ग की कँटीली राह पर चलने से अपने ही पैर काँटों में बिंधते, अपने ही अंग छिलते और कपड़े फटते हैं। झाड़ियों को भी कुछ हानि होगी, पर इससे क्या ? घाटे में तो अपने को ही रहना पड़ा। अपना मस्तिष्क विकृत होने से प्रगति के रचनात्मक कार्यों में लग सकने वाली शक्ति नष्ट हुई। अनावश्यक गर्मी के बढ़ने से यह बहुमूल्य यंत्र विकृत हुआ। शारीरिक और मानसिक रोगों की बाढ़ आई, मनःस्थिति गड़बड़ाने से क्रिया-कलाप उल्टे हुए और विपरीत परिस्थितियों की बाढ़ आ गई। हर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टि से यह अपना ही अहित है। अस्तु, बुद्धिमत्ता इसी में है कि सन्मार्ग पर चला जाय, सत्यप्रवृत्तियों को अपनाया जाय और अन्तःकरण को सद्भावनाओं से भरा-पूरा रखा जाय।

इस प्रकार के चिंतन से ही वह विरोधी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है, जिसके कारण दुष्कर्मों के प्रति भीतर से घृणा उपजती है, पश्चात्ताप होता है। यही वे आधार हैं जिनके सहारे भविष्य में वैसा न होने की आशा की जा सकती है। अन्यथा, कारणवश उपजा सदाचरण का उत्साह, श्मशान-वैराग्य की तरह हो जायेगा और फिर उसी पुराने ढर्रे पर गाड़ी के पहिये लुढ़कने लगेंगे। प्रथम चरण में पश्चात्ताप की उपयोगिता इसी दृष्टि से है कि अन्तःकरण में अनाचार विरोधी प्रतिक्रिया इतने उग्र रूप से उभरे कि भविष्य में उसी प्रकार के अनाचरण की गुंजायश ही शेष न रह जाय।

दूसरा चरण मन की गाँठें खोल देने का है। इसमें दूसरों का नहीं अपना ही लाभ है। अनैतिक दुराव के कारण मन की भीतरी परतों में एक विशेष प्रकार की मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियाँ बनती हैं। उनसे केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोग भी उठ खड़े होते हैं।

प्रकटीकरण के साथ-साथ उन दुष्कर्मों के प्रति लज्जित और दुःखी होने की वृत्ति का उभरना 'पश्चात्ताप' है। पश्चात्ताप में भविष्य में वैसा न करने का संकल्प भी रहता है अन्यथा 'कह देने और करने लगने' से तो बात ही क्या बनेगी ? निश्चय किया जाना चाहिए कि जिस प्रकार के पाप बन पड़े हैं वैसे अथवा अन्य प्रकार के दुष्कर्मों का साहसपूर्वक परित्याग किया जा रहा है। भविष्य में पवित्र और परिष्कृत जीवन ही जीना है। ऊपर से ही लीपापोती न की जा रही हो। अन्यथा पाप की जड़ें जहाँ की तहाँ बनी रहेंगी। वे अवसर पाते ही फिर फलेंगी-फूलेंगी और पुनरावृत्ति होती रहेगी।

पश्चात्ताप का स्वरूप है-सच्चे मन से दुःखी होना। भूल की भयंकरता का अनुभव करना और भविष्य में इस प्रकार के आचरण न करने के लिए संकल्प करना और उसे कठोरतापूर्वक निवाहना। इतना कर चुकने पर ही प्रायश्चित्त की यथार्थता सामने आती है। पाप के प्रकटीकरण से कई लाभ होते हैं। मन के भीतर जो दुराव की गाँठें बँधी रहती हैं वे खुलती हैं। मनोविज्ञान शास्त्र का सुनिश्चित मत है कि मनोविकारों के, दुष्कर्मों के दुराव से मानसिक ग्रन्थियाँ बनती हैं और वे अनेक शारीरिक और मानसिक रोगों के रूप में उभरती हैं। मनः चिकित्साशास्त्री, मानसिक रोगियों से उसके जीवन के घटनाक्रम को विस्तारपूर्वक बताने के लिए प्रोत्साहन करते हैं। इसमें अप्रकट दुरावों का यदि प्रकटीकरण हो गया तो रोग का निराकरण सरल हो जाता है।

योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः।।

—मनुस्मृति

जो अपनी वस्तुस्थिति को छिपाता है, जैसा कुछ है, उससे भिन्न प्रकार को प्रकट करता है वह चोर, आत्महत्यारा और पापी कहलाता है।

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत्।।
तेहि पापे कृते वैद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम्।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः।।

—पाराशर स्मृति

पाप कर्म बन पड़ने पर उसे छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से वह बहुत बढ़ता है। पाप छोटा हो या बड़ा उसे किसी धर्मज्ञ से प्रकट अवश्य कर देना चाहिए। इस प्रकार उसे प्रकट कर देने से पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे—चिकित्सा करा लेने पर रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रकटीकरण की महत्ता बताते हुए शास्त्र कहता है—

तस्मात् पापं गूहेत गुह्यमानं विवर्धयेत्।
कृत्वा तत् साधुष्वख्यमेयं ते तत शमयन्त्युत।।

-महा० अनु०

अतः अपने पाप को न छिपायें। छिपाया हुआ पाप बढ़ता है। यदि कभी पाप बन गया हो तो उसे साधु पुरुषों से कह देना चाहिए वे उसकी शांति कर देते हैं।

प्रकटीकरण के उपरान्त प्रतीकात्मक दण्ड व्यवस्था का चरण है। यह सांकेतिक है। बच्चे के गलती करने पर उसे कान पकड़ने, कोने में खड़ा होने, बैठक आदि करने के हल्के दण्ड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिये जाते हैं, यह लाक्षणिक हैं। उनका महत्त्व इतना भर है कि इस प्रताड़ना की स्मृति, गलती की भयंकरता और उसकी पुनरावृत्ति न करने की आवश्यकता की छाप अन्तःचेतना पर अधिक अच्छी तरह छोड़ सके, वास्तविक समाधान तो कान पकड़ने पर कहाँ होता है ? चोरी करना, कान पकड़ना, चोरी करना कान पकड़ना-यदि यही क्रम चलने लगे तो बात उपहासास्पद बन जायगी। यदि बच्चा किसी की कापी चुरा लाया है, तो कान पकड़ने भर से उसका प्रायश्चित्त नहीं हुआ, वह तो स्मृति को झकझोरना भर है। जिसकी कापी चुराई गई थी, उसकी क्षति-पूर्ति इतने भर से कहाँ हुई ? उसकी तो कापी वापिस मिलनी चाहिए, जो हानि हुई उसकी भरपाई का प्रबन्ध होना चाहिए। प्रायश्चित्त का असली भाग वही है, जिसमें ऋण मोचन किया जाता है।

अनैतिक दुरावों के प्रकटीकरण में खतरा भी है कि ओछे व्यक्ति उन जानकारियों का अनुचित प्रयोग करने बदनामी करने तथा हानि पहुँचाने के लिए कर सकते हैं। अस्तु, निस्संदेह इस प्रकटीकरण के लिए ऐसे सत्यपात्रों को ही चुनना चाहिए, जिसकी उदारता एवं दूरदर्शिता असंदिग्ध हो। चिकित्सक के आगे रोगी को अपने यौन रोगों की वस्तुस्थिति बतानी पड़ती है। उदार चिकित्सक उन कारणों को प्रकट करते नहीं फिरते, जिनकी वजह से वह रोग उत्पन्न हुए। उनका दृष्टिकोण रोगी की कष्ट निवृत्ति भर होता है। ऐसे ही उदार चेतना एवं उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकने में समर्थ व्यक्ति ही इस योग्य होते हैं, जिनके सामने मन की दुराव ग्रन्थियाँ खोली जा सकें।

ईसाई धर्म में प्रवेश करने वाले को 'वपतिस्मा' लेना पड़ता है। उस संस्कार के समय मनुष्य को अब तक के अपने पाप पादरी के सम्मुख एकान्त में कहने होते हैं। उस धर्म में मृत्यु के समय भी यही करने की धर्म परम्परा है। मरणासन्न के पास पादरी पहुँचता है। उस समय अन्य सभी लोग चले जाते हैं। मात्र पादरी और मरणासन्न व्यक्ति ही रहते हैं। वह व्यक्ति अपने पापों को पादरी के सामने प्रकट करता है। इस प्रकार उसके मन पर चढ़ा भार हल्का हो जाता है। पादरी शांति-सद्गति की प्रार्थना करता और रोगी को आश्वस्त करके महाप्रयाण के लिए विदा करता है। वपतिस्मा और मरणकाल में इस स्वीकारोक्ति को-'कन्फैशन' को अत्यन्त पवित्र और आवश्यक माना गया है। मनःशास्त्र के अनुसार यह प्रथा नितान्त श्रेयस्कर ठहराई गई है।

प्रायश्चित्त प्रकटीकरण का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। अनैतिक कृत्यों के दुराव को कभी किसी के सामने प्रकट न किया जाय तो मनःक्षेत्र में वह उर्वरता उत्पन्न न हो सकेगी जिनसे आध्यात्मिक सद्गुणों का अभिवर्धन सम्भव होता है।

प्रायश्चित्य—अन्तराल का परिष्कार

आध्यात्मिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा संचित दुष्कर्मों से उत्पन्न कुछ कुसंस्कारों की होती है। उन्हें हटाये बिना गाड़ी आगे बढ़ती ही नहीं। कुकर्मों का दण्ड, दुःख-दारिद्रिय शोक-संताप के रूप में मिलना निश्चित है। साधना प्रयत्नों को यह संचित असुरता उसी प्रकार अस्त-व्यस्त, नष्ट-भ्रष्ट करती रहती है जैसे कि पूतना सूर्पणखा, ताड़का, त्रिजटा, सुरसा आदि ने दैवी प्रयत्नों को नष्ट करने में कुछ कमी न रखी थी। इन्हें निरस्त करने की संभावना साधना उपासना द्वारा बनती है। पर दुष्कृत्यों को यह स्वीकार नहीं, अतएव वे कोई न कोई कारण ऐसा बना देते हैं, जिससे साधना में विघ्न पड़ते रहें और वह सही रीति से सम्पन्न न हो सकें। इस विघ्न को हटाने के लिए साधना काल में, आत्म-शोधन का, कुसंस्कार परिमार्जन का प्रयत्न करना होता है।

चान्द्रायण या कल्प-साधना में अपने आप को अध्यात्म-दर्शन एवं ईश्वर सान्निध्य के लिए तत्पर करना होता है। यह एक प्रकार से अपने आप को रंगना है। रंगाई से पूर्व कपड़े को धोया जाता है। बीज बोने से पूर्व जमीन की जुताई होती है। भोजन करने से पूर्व बर्तन मांज लेते हैं। पूजा-उपकरणों को भी प्रयोग से पूर्व मांजना पड़ता है। शरीर का स्नान और शुद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्त्र धारण भी इसी भावना का प्रतीक है कि मलीनता से निवृत्त होकर जप, यज्ञ, पूजन आदि पुण्य प्रयोजनों के लिए कदम बढ़ाया जाय।

पाप को पुण्य से काटा जाता है। लोहे को काटने के लिए लोहा, विष को मारने के लिए विष, काँटा निकालने के लिए काँटे का प्रयोग करना होता है। तपश्चर्या की आग में अपने को इसी हेतु तपाना पड़ता है। मलीनता चाहे किसी भी क्षेत्र की हो माँजे, रगड़े, पीटे और तपाये बिना दूर हो नहीं सकती। साधक को भी इस प्रक्रिया से अनिवार्य रूप से गुजरना पड़ता है।

धातुयें भट्टी में डालकर शोधी जाती हैं। रसायन बनाने के लिए अग्नि संस्कार की विधि प्रयुक्त होती है। तपाने पर ईंटों से लेकर मृत्तिका पात्रों तक को मजबूत बनाया जाता है। तपश्चर्या से अन्तरात्मा को मलरहित बनाया जाता है। कुण्डलिनी योग में नाड़ी-शोधन विधान की अनिवार्यता है। राजयोग में यम-नियमों का विधान है। प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास एनीमा का प्रयोग होता है। यह परिशोधन आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रायश्चित्त रूप में सम्पन्न किया जाता है।

वाल्मीकि, अशोक, अंगुलिमाल, विल्वमंगल, अम्बपाली आदि ने आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रायश्चित्त, परिशोधन सम्पन्न किया था। उनने क्षति-पूर्ति के लिए अपनी संचित सम्पदा पुण्य अर्जन के लिए विसर्जित कर दी। साथ ही शरीर श्रम और मनोयोग द्वारा लोकहित में निरत रहकर पुण्य अर्जित करते रहे। धृतराष्ट्र, गान्धारी बच्चों को सुसंस्कारी न बना सकने और प्रायश्चित्त करने के लिए हिमालय में तप-साधना के लिए गये थे।

आयुर्वेदीय कायाकल्प उपचार में शरीर में भरे हुए विकारों को सर्वप्रथम पंचकर्म द्वारा निकाल बाहर किया जाता है। इसके बाद ही उपचार प्रारम्भ होता है। वमन, विरेचन, नस्य, स्वेदन, स्नेहन यह पंच कर्म कहलाते हैं। इनमें मलशोधन करने के उपरान्त ही प्रयोग की सफलता बन पड़ती है। आध्यात्मिक कल्प-साधना के लिए भी प्रकारान्तर से इसी प्रयोग को प्रमुखता देनी पड़ती है।

संचित-कुकर्मों का परिशोधन, प्रायश्चित्त प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव होता है। जितनी खाई खोदी है उतनी ही मिट्टी डालकर गड्ढा भरना पड़ता है। यह कार्य पंचगव्य पान, तीर्थ, पर्यटन, दान-पुण्य, व्रत-उपवास, तप-साधना आदि के द्वारा किया जाता है। इसमें कुछ प्रतीक हैं, कुछ निर्धारण, स्नान, पान, उपवास आदि को प्रतीक कहा गया है। उस आधार पर पश्चात्ताप एवं आत्म-प्रताड़ना द्वारा भविष्य में न करने का संकल्प प्रकट होता है।

इतना हो जाने पर भी वह खाई नहीं पटती, जिसके द्वारा व्यक्ति को पीड़ा पहुँचाई गई, पतन के गर्त में गिराया गया अथवा भ्रष्ट परम्परा प्रचलित करने, समाज प्रवाह में विषाक्तता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया। इसके लिए समाज का हित करने वाले परमार्थ कार्य उतने ही वजन के करने होते हैं जितना कि पाप कर्मों का भार था। यह कार्य क्षमा-याचना या छुट-पुट पूजा-उपचारों से सम्भव नहीं हो सकता। कार्य अपना फल दिये बिना रहते नहीं। नियति का यही विधान है। पश्चात्ताप क्षमा-याचना, मात्र भूल स्वीकारने और भविष्य में न करने जैसी मनःस्थिति का बोधक है। इतने भर से भर पाई नहीं होती। प्रायश्चित्त को इष्टापूर्ति तथा क्षति पूर्ति भी कहते हैं। उसके पाप का परिमार्जन पुण्य से करना पड़ता है।

दोष-दुर्गुणों के रहते चिरस्थायी प्रगति के पथ पर चल सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं हुआ है। फूटे बर्तन में दूध दुहने से पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। इसलिए छेदों को बन्द करना आवश्यक है। बर्तन का पेंदा जब गल जाता है तो उसे हटाकर उतना ही बड़ा नया पेंदा लगाना पड़ता है। अन्तःकरण को दुष्कृत्यों से जितना गला दिया है, उसके स्थान पर पुण्य सम्पदा की, श्रद्धा-सद्भावना की उतनी ही साधना जुटानी पड़ती है। मकान के आस-पास सौन्दर्य अभीष्ट है तो केवल मात्र सफाई पर्याप्त नहीं। फूल-पौधे उगाने और हरितिमा बढ़ाने से ही यह प्रयोजन पूर्ण नहीं होगा इस आरोपण को भविष्य में सींचना होता है।

न केवल आत्मिक प्रगति के लिए वरन् कुकर्म जन्य कुसंस्कारों की भयावह परिस्थितियों से पीछा छुड़ाने के लिए भी प्रायश्चित्त परिमार्जन आवश्यक है। शारीरिक एवं मानसिक रोगों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण मात्र आहार-विहार का विपर्यय ही नहीं होता। जलवायु का प्रदूषण एवं विषाणुओं के आक्रमण से ही आधि-व्याधियों की उत्पत्ति नहीं होती वरन् उनका एक बड़ा कारण है, मनःक्षेत्र की गहराई में जमी हुई विष ग्रंथियाँ। मस्तिष्कीय चेतना ही समूचे शरीर का संचालन करती है। इसी प्रवाह से विष ग्रंथियों का प्रभाव अंग-अवयवों में पहुँचता है और उन्हें रोगी बनाता रहता है। औषधि उपचार से उनमें कोई सुधार नहीं होता क्योंकि मूल कारण तो मनःक्षेत्र में बैठा हुआ है। जड़ यथावत् जमी रहे तो मात्र पत्ते तोड़ने से क्या बने ? विषैले रक्त के कारण उत्पन्न होने वाले फोड़े-फुन्सियों का निराकरण मात्र मरहम लगाने के ऊपरी उपचार से कैसे संभव हो ? उपाय गहराई में उतरकर करना होता है।

इन दिनों अधिकांश शारीरिक, मानसिक रोग अन्तःक्षेत्र में जमी हुई, कुकर्मों से उत्पन्न हुई विष ग्रन्थियाँ ही उत्पन्न करती हैं। डॉक्टर और दवायें बदलते रहने पर भी कोई लाभ नहीं होता। इसका उपचार जड़ उखाड़ने से ही बन पड़ता है। यह कार्य प्रायश्चित्त विधान अपनाने पर ही होता है। मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक क्षेत्रों की विकृतियों और विपत्तियों से भी एक बड़ा कारण अन्तःक्षेत्र में जमे हुए कषाय-कल्मष ही होते हैं। उन्हें उखाड़ देने पर ही कर्मफल या भाग्य-विधान का कुचक्र टूटता है। पाप का प्रतिफल दुःख है। उसकी निवृत्ति के लिए पुण्य संचय का उपचार ही काम देता है।

कथा है कि एक चोर किसी साधु से आत्म-कल्याण, साधना से सिद्धि, ईश्वर दर्शन आदि बातें करता और उपाय पूछता। साधु उसे फिर कभी बताने की बात कहकर टालते रहते। एक दिन चोर जिद्द करके बैठ गया कि आज तो पूछकर ही हटूँगा।

साधु ने पहाड़ की चोटी पर सिर पर तीन पत्थर रखकर साथ चलने के लिए कहा और बताया उपाय वहाँ पहुँचने पर बताया जायगा। चोर तीन पत्थर सिर पर रखकर साधु के पीछे-पीछे चल दिया। कुछ दूर चलने पर उस बोझ से वह हैरान हो गया। स्थिति देखकर साधु ने एक पत्थर फेंक देने की स्वीकृति दे दी। उसे कुछ देर तो राहत मिली पर पीछे वैसी ही थकान और कठिनाई अनुभव होने लगी। इस पर दूसरा पत्थर भी उतरवा दिया गया। कुछ आगे चलने पर चोर बिल्कुल निढाल हो गया। पत्थर लेकर चढ़ना असम्भव, तब तीसरा पत्थर भी फेंका गया। अब चलना सरल हो गया और दोनों चोटी पर पहुँचे।

साधु ने बताया कि आत्मिक उन्नति पहाड़ की चोटी पर चढ़ने के समान है, वहाँ तक पहुँचना दुष्कर्मों और कुसंस्कारों के पत्थर लदे होने पर कठिन है। उन्हें उतारने पर ही साधना विधान सफल हो सकते हैं। तुम दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ो और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाओ, इसके उपरान्त जो भी साधना करोगे निश्चित रूप से सफल होगी। इसके बिना मात्र पूजा-अर्चना की लकीर पीटने वालों की तरह तुम्हें भी निराश रहना पड़ेगा। चोर तथ्य को समझ गया और पापों का प्रायश्चित्त करते हुए साधना से सिद्धि प्राप्त करने में सफल हुआ।

प्रायश्चित के तीन चरण हैं

(१) इस जन्म में जो भी कुकृत्य बन पड़े हों उनका विस्तृत विवरण मार्गदर्शन के सम्मुख प्रकट करना। कारण, निदान जानने पर ही कोई चिकित्सक सही उपचार बता पाता है। पाप कितना बड़ा या छोटा था, किन परिस्थितियों में बन पड़ा, कितने समय तक चलता रहा, उसे स्वेच्छा से किया गया या दबाव, प्रलोभन, भय के वातावरण में, यह विवरण बता देने पर दुराव और अन्तर्द्वन्द्व की विष ग्रंथियाँ खुलती हैं।

यह विवरण ऐसे व्यक्ति के सम्मुख प्रकट किया जाय, जो उस कथन का अनुचित प्रयोग न करे वरन् उदार चिकित्सक की तरह मात्र उपचार की ही बात सोचे और निराकरण का वैसा उपाय बताये जिसे कर सकना साधक के लिए शक्य हो।

(२) पश्चात्ताप एवं प्रतिकार—इसके लिए व्रत, उपवास पंचगव्य, मुंडन, जप, अनुष्ठान आदि उपचारों का विधान है। इससे कुकृत्यों पर पश्चात्ताप और भविष्य में वैसा न करने का संकल्प प्रकट परिपक्व होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) कुकृत्यों द्वारा जो पाप बन पड़ा, उसके बदले में पुण्य अर्जित करने के लिए इतना परमार्थ करना जो खाई पाट सकने जितने स्तर का हो। जिस व्यक्ति की हानि की है, उसका संतोष करना उचित होते हुए भी प्रायः वह सम्भव नहीं होता। इसलिए लोकहित के निमित्त किए गये परमार्थ से ही वह समाधान करना होता है।

श्रम और धन परस्पर सम्बद्ध हैं, दोनों एक ही तथ्य की परिणिति हैं। श्रम सेवा एवं धन दान दोनों को ही परमार्थ का अंग माना गया है। परमार्थ के लिए समयदान, श्रमदान के कितने ही निर्धारण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किये जा सकते हैं। प्राचीन काल में तीर्थ यात्रायें इसी प्रयोजन के लिए होती थीं। धर्म-प्रचार की पद यात्रा को तीर्थ यात्रा कहते हैं। इसके लिए विस्तृत क्षेत्र में जन सम्पर्क साधने और लोक मानस को परिष्कृत करने वाले कितने ही कार्यक्रम बन सकते हैं। समीपवर्ती क्षेत्र में भी यह प्रयास किए जा सकते हैं। कार्यक्रमों का निर्धारण भी इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर किया जा सकता है।

शरीर दण्ड के रूप में तीर्थयात्रा, श्रमदान, समयदान, प्रायश्चित्त प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण भाग रहे हैं। नव जागरण के लिए, जन सम्पर्क साधने के लिए, अपने गाँव नगर तथा क्षेत्र में घर-घर जाने के लिए नियमित समय लगाना तीर्थ यात्रा की सबसे छोटी एवं सरल साधना है। यह क्रम कोई भी सरलतापूर्वक अपना सकता है। मुख्य उद्देश्य शरीर को कष्ट देना है। सो पद-यात्रायें अधिक उपयुक्त रहीं।

लम्बा प्रवास चक्र बनाकर साथियों सहित साइकिलों पर निकलने, मार्ग में मिलने वालों को युग चेतना से अवगत कराने, दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखते चलने की तथा रात्रि में जहाँ ठहरना हो, वहाँ कथा-कीर्तन द्वारा अनुप्राणित करना भी तीर्थ यात्रा का बड़ा प्रयोग है। प्रायश्चित्त स्वरूप इसके लिए संकल्पपूर्वक कुछ समय निकाला जा सकता है। घर से हरिद्वार तक एक रास्ते पहुँचना और दूसरे रास्ते लौटना भी तीर्थयात्रा का एक प्रयोग है। अपने-अपने क्षेत्रों में भी ऐसी यात्रा, पद यात्रायें की जा सकती हैं।

अर्थ दण्ड के रूप में दूसरा उपाय है, धनदान, अंशदान। जिनके पास संचित सम्पदा है वे इसका एक उपयुक्त भाग उदारतापूर्वक विसर्जित कर सकते हैं। जिनकी स्थिति वैसी नहीं है वे दैनिक आजीविका में से एक निश्चित अंश इस निमित्त लम्बे समय तक लगाते रह सकतें हैं। आवश्यक नहीं कि जितना पाप कमाया है उतना ही पुण्य किया जाय। आगे के लिए भी तो कुछ इस स्तर की पूँजी जमा करनी चाहिए। भविष्य को उज्जवल बनाने में पुण्य परमार्थ के अतिरिक्त और कोई साथी सहयोगी नहीं हो सकता। पुण्य अर्जित करने के लिए कुछ उदारता दिखानी हो तो उसके पीछे दूरदर्शी विवेकशीलता का भी समावेश रहना चाहिए। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि एक तो उदार परमार्थ परायणता ऐसे ही अनेक कारणों से समाप्त हो चली। यदि कहीं किसी रूप में जीवित है तो उसे अनुपयुक्त प्रयोजनों के लिए खर्च करके अवांछनीयता की ही अभिवृद्धि की जाती है।

उदारता का सही उपयोग दो ही प्रयोजनों के लिए होता है—

(१) विपत्ति निवारणार्थ—संकटग्रस्तों की सहायता के लिए (२) यज्ञार्थ—सद्ज्ञान संवर्धन के लिए। सद्ज्ञान संवर्धन के क्षेत्र में प्रज्ञा अभियान की पात्रता, उपयोगिता, आवश्यकता कितनी उच्चस्तरीय है, इसे समझ सकना किसी भी विवेकशील, उदारचेता के लिए कठिन नहीं होना चाहिए।

आन्तरिक परिशोधन हेतु प्रायश्चित्त प्रक्रिया की अनिवार्यता

अध्यात्म साधना में अपने आप को ईश्वर के रंग में रंगना होता है। तभी दोनों का वर्ण एक जैसा बनता है। इसके लिए सर्वप्रथम धुलाई करनी पड़ती है। कपड़े को बिना धोये रंगा जाय तो काम न चलेगा। वह तेल, कीचड़ में डूबा हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो रंगने के लिए किया गया परिश्रम भी व्यर्थ चला जायगा। रंगाई को साधना और धुलाई को प्रायश्चित्त कहते हैं।

मैले, कुचैले गन्दे कपड़े जिन्हें किसी का मन देखने, छूने, पहनने को नहीं करता, उन्हें शुद्ध, आकर्षक और पहनने योग्य स्थिति में बदल देना धोबी का काम है। हेय स्थिति को श्रेय में बदल देने का चमत्कार धोबी का हाथ ही कर दिखाता है। यह कार्य प्रायश्चित्त प्रक्रिया का है, वह मनुष्यों की गिरी-गन्दी जीवन स्थिति का काया-कल्प जैसा परिवर्तन करती है और देखते-देखते उच्च भूमिका में पहुँचा देती है।

धोबी कपड़े को गरम पानी में डालता है, उसका मैल फुलाता है, साबुन से गन्दगी को काटता है, पीटता है, धोता है, सुखाता है। इसके बाद कलफ लगाकर इस्त्री कर देता है। इतने क्रिया-कलाप में होकर गुजर जाने पर गन्दा, पुराना, मैला कपड़ा नये से भी अधिक आकर्षक बन जाता है। प्रायश्चित्त में ठीक यही सब करना होता है।

अपनी गुण, कर्म, स्वभाव की मलीनताओं को समझना, इस जीवन में किये हुए पापों को स्मरण करना, उनके लिए दुःखी होना और यह सब छोड़ने के लिए प्रबल तड़पन का उत्पन्न होना—यही गरम पानी में कपड़े को डालना है।

दबे हुए, छिपे हुए मैल को फुलाकर स्पष्ट कर देना। अपनी जो बुराईयाँ, पाप-कृतियाँ छिपाकर रखी थीं, उन्हें प्रकट कर देना। मन में दुराव की कोई गाँठ न रखना, भीतर-बाहर से एक-सा हो जाना-यह मैल का फुलाना है। आज की स्थिति में सर्वसाधारण के सम्मुख अपने दुश्चरित्र प्रकट कर सकने का साहस न होता हो तो कम से कम एक शोधक, मार्गदर्शक के सम्मुख तो सब कुछ कह ही देना चाहिए। पाप का प्रकटीकरण पाप को हल्का करता है और चित्त पर से भारीपन का बोझ उतारता है।

साबुन लगाना भावी जीवन की रीति-नीति निर्धारण करना है। प्रायश्चित्त की सार्थकता तभी है, जब पिछली गतिविधियों को बदलकर श्रेष्ठता के पथ पर चलने का निश्चय हो। यह निश्चय ही साबुन है। स्थूल साबुन ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जिसे इस योग्य समझा जाय, जिसके सामने पाप प्रकट किए जायँ और जिनके परामर्श से प्रायश्चित्त विधान का निश्चय किया जाय।

लकड़ी से पिटाई, पानी में धुलाई प्रायश्चित्त की तपश्चर्या है, जिसे पिछली भूलों के दण्डस्वरूप स्वेच्छापूर्वक किया जाता है। शारीरिक और मानसिक सुविधाओं से कुछ समय के लिए अपने को वंचित कर देना, यही तप कहलाता है। किस कर्म के लिए, किस स्थिति के व्यक्ति को क्या तपश्चर्या करनी चाहिए, यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है। इसका निर्णय किसी तत्वज्ञानी से ही कराना चाहिए। भिन्न-भिन्न स्थिति के व्यक्तियों के लिए ही दुष्कर्म की गरिमा भारी-हल्की होती है, दण्ड के लिए भी शारीरिक, मानसिक स्थिति का ध्यान रखना पड़ता है। यह निर्णय स्वयं नहीं करना चाहिए वरन् किसी तत्वज्ञानी से ही कराना चाहिए।

कलफ करना, इस्त्री करना यह है कि जो क्षति समाज को पहुँचायी है, उसकी पूर्ति के लिए दान, त्याग जैसा कार्य या अपनी जैसी स्थिति हो उसके अनुसार पुण्य-परमार्थ के कार्य किये जायँ। इससे उस ऋण से मुक्ति मिलती है, जो अनीति द्वारा अपहरण करके अपने सिर पर एकत्रित किया था, जो कभी न कभी ब्याज समेत चुकाना ही पड़ता है। अच्छा यही है कि उसे ईमानदारी और स्वेच्छापूर्वक इसी जन्म में चुका दिया जाय। कलफ लगाना यही है।

लोहा करने का अर्थ है—भावी जीवन की रीति-नीति का व्यवस्थापूर्वक निर्धारण। इसमें सोचने का ढंग, दृष्टिकोण बदलना और कार्य पद्धति का हेर-फेर यह दोनों ही बातें सम्मिलित हैं। शरीर की क्रियायें बदलें, मन बदलें तो भी काम नहीं चलेगा और मन बदल जाय, शरीर वही हेय कर्म करता रहे तो भी वह बिडम्बना ही है। दोनों की परिवर्तित स्थिति भावी जीवन की रीति-नीति निर्धारित करती है और जिस पर चलने का सुदृढ़ निश्चय किया जाता है, उसी की सार्थकता है। प्रायश्चित्त का आरम्भिक जीवन शोधन की तड़प से आरम्भ होता है। मध्य में शोधनात्मक क्रिया से कृत्य करना पड़ता है और अन्त में भावी जीवन की रीति-नीति निर्धारित करने के रूप में उसकी पूर्णाहुति करनी पड़ती है। सर्वांगीण प्रायश्चित्त की यही समग्र प्रक्रिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुष्कर्मों से अपने अन्तःकरण को, विचार संस्थान को तथा कार्यक्रमों को जिस प्रकार दुष्प्रवृत्तियों से भर दिया गया था, उसी साहस और प्रयास के साथ इन तीनों संस्थानों के परिमार्जन, परिशोधन एवं परिष्कार की प्रक्रिया को प्रायश्चित्त कहा कहा गया है। पाप-कर्मों से समाज को क्षति पहुँचती है, सामान्य मर्यादा प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न होता है, लोक परम्परायें नष्ट होती हैं, अनेक को कुमार्ग पर चलने के लिए अनुकरण का उत्साह मिलता है। उन्हें क्षति पहुँचती है, वे विलाप करते हैं और उससे वातावरण विक्षुब्ध होकर सार्वजनिक सुख-शान्ति के लिए संकट उत्पन्न होता है। ऐसे-ऐसे अनेक कारण हैं, जिन्हें देखते हुए समझा जा सकता है कि जिसे पाप कर्म द्वारा क्षति पहुँचाई गई, अकेले उसी की हानि नहीं हुई, प्रकारान्तर से सारे समाज को क्षति पहुँची है। विराट् ब्रह्म को, विश्व मानव को ही परमात्मा कहा गया है। अतः यह एक प्रकार से सीधा परमात्मा पर आक्रमण करना, उसे आघात पहुँचाना और रुष्ट करना हुआ। अपराध भले ही व्यक्ति या समाज के प्रति किये गये हों, उनका आघात सीधे ईश्वर के शरीर पर पड़ता है और उसे तिलमिलाने वाले कभी सुखी नहीं रहते।

अवांछनीयताओं का तत्काल परिशोधन होता रहे, गन्दगी जमा न होने पाये-यह उचित है। देर तक जमा रहने के उपरान्त गन्दगी की सड़न अधिकाधिक बढ़ती जाती है। शरीर में जमा हुआ विजातीय द्रव्य जितने अधिक समय तक ठहरेगा, उसी अनुपात से विष बढ़ता जायेगा और सामान्य रोगों की अपेक्षा उससे असाध्य बीमारियाँ उपजेंगी। पुराना कर्जा ब्याज समेत कई गुना हो जाता है। मनोमालिन्य बहुत समय तक टिका रहे तो वह द्वेष-प्रतिशोध का रूप धारण कर लेता है। संचित पाप कर्मों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उनका प्रतिफल भुगतने में जितनी देर होगी, उतनी ही प्रतिक्रिया भयंकर होगी। नया अपच जुलाब की एक गोली से साफ हो जाता है किन्तु यदि कई दिन तक मल रुका रहे तो उसकी पत्थर जैसी कठोर गाँठें बनकर ऐसे भयंकर उदर शूल का कारण बनती हैं, जिसके लिए पेट फाड़कर गाँठें निकालने के अतिरिक्त और कोई चारा ही शेष नहीं रह जाता। गन्दगी को जितनी जल्दी हटाया जा सके उतना ही उत्तम है।

इस जन्म के विदित और विस्मृत पापों से लेकर जन्म-जन्मान्तरों तक के पापों का निराकरण आवश्यक है। उन्हें निकालना और निरस्त करना अत्यन्त अनिवार्य कार्य है। विष खा जाने की गलती का परिमार्जन इसी प्रकार हो सकता है कि पेट और आँतों की धुलाई करके वमन-विरेचन द्वारा उसे जल्दी से जल्दी बाहर किया जाय। प्राण-संकट उसी से टल सकता है। प्रायश्चित्त ही परिशोधन का एक मात्र उपाय है।

साधना विज्ञान में शारीरिक, मानसिक मलीनताओं के निष्कासन पर जोर दिया गया है। आयुर्वेद में विकारग्रस्त शरीरों के मल-शोधन की प्रक्रिया के उपरान्त चिकित्सा का समुचित प्रतिफल मिलने की बात कही गई है। हठयोगी नेति, धोति, वस्ति, न्यौली, कपालभाति आदि क्रियाओं द्वारा मल शोधन करते हैं। आयुर्वेद में वमन, विरेचन, स्वेदन, स्नेहन, नस्य आदि शोधन कर्मों से संचित मलों का निष्कासन किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में यही कार्य उपवास और एनीमा के द्वारा किया जाता है। राजयोग में यम-नियमों का विधान है। कुण्डलिनी योग में नाड़ी-शोधन की अनिवार्यता है। यों उसका बाह्य विधान प्राणायामों की विशेष प्रक्रिया पर आधारित है, पर उसका मूल उद्देश्य शारीरिक और मानसिक क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों का निराकरण ही है।

लोहे को काटने के लिए लोहा, विष को मारने के लिए विष, काँटे को निकालने के लिए काँटा प्रयुक्त करना पड़ता है। दुष्कर्मों के संचय को सत्कर्मों से निरस्त किया जाता है। आग में गरम करने से धातुओं की शुद्धि होती है। रसायन बनाने के लिए अग्नि-संस्कार की विधि प्रयुक्त होती है। तपाने में ईंटों से लेकर मृतिका पात्र तक मजबूत होते हैं। पानी गरम करने से शक्तिशाली भाप बनती है। तपश्चर्या की आग में संचित दुष्कर्मों और कुसंस्कारों का परिशोधन होता है। स्वेच्छापूर्वक दण्ड स्वीकार करने की शालीनता अपना लेने में पकड़े जाने पर दण्ड पाने की अपेक्षा मनुष्य की अधिक बुद्धिमानी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे खोई हुई प्रतिष्ठा को फिर से पाया जा सकता है। भूल को स्वीकार करने और सुधारने वाले व्यक्ति दया के पात्र समझे जाते हैं। उलट पड़ने से सुधार होता भी द्रुतगति से है। वाल्मीकि, अशोक, अंगुलिमाल, अजामिल, बिल्वमंगल आदि जब उलट गये तो उनका कुकर्मों में प्रयुक्त होने वाला दुःसाहस सत्साहस में बदल गया और वे ध्वंस की अपेक्षा सृजन की भूमिका सम्पन्न करने लगे। प्रायश्चित्त इसी स्तर का प्रयोग है।

प्रायश्चित्त विधानों के अगणित उल्लेख कथा पुराणों में भरे पड़े हैं। शंख और लिखित दो भाई थे। एक ने दूसरे के बगीचे से बिना पूछे फल खा लिये। यह चोरी हुई। उनने राजा के पास जाकर आग्रहपूर्वक दण्ड-व्यवस्था कराई और उसे भुगता। बिल्वमंगल ने कुदृष्टि रखने वाली आँखों को ही नष्ट कर लिया, इस पर वे सूरदास बने। सती ने शिवजी का आदेश नहीं माना और वे बिना बुलाए पितृ-गृह चली गईं। भूल समझ में आने पर उनने आत्मदाह कर लिया। धृतराष्ट्र और गान्धारी ने अपनी यह भूल स्वीकार की कि उनने अपने पुत्रों को अनीति से रोकने में आवश्यक कड़ाई नहीं बरती और महाभारत का विनाश उत्पन्न हो गया। दोनों ने प्रायश्चित्त करने की ठानी और वे मरणपर्यन्त वनवास में रहकर तपश्चर्या करते रहे। कुन्ती ने भी अपनी भूलें स्वीकार कीं और वे भी धृतराष्ट्र, गान्धारी की सेवा करने के लिए उन्हीं के साथ वन गईं। भूलें मात्र कौरवों की ही नहीं थीं, उसमें जुआ खेलने और पत्नी को दाँव पर लगाने जैसे अनेक दोष पाण्डवों के भी थे। अस्तु, कुन्ती को भी हिमालय में शीत से गलकर प्राण त्यागने का प्रायश्चित्त विधान अपनाना पड़ा।

भीष्म शरशैय्या पर पड़े थे—उन्होंने मृत्यु को टाल दिया और उसी कष्टकर स्थिति को देर तक सहन करते रहे ताकि अनीति समर्थन के पाप का प्रायश्चित्त सम्भव हो सके। बाल्मीकि पहले डाकू थे पीछे ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चले। इस परिवर्तन बेला में उनने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए तप-साधना को आवश्यक समझा। वर्णन है कि वे अविचल साधना में बैठ गए। उनके शरीर पर दीमक ने घर बना लिया। ब्रह्माजी ने आकर दीमक छुड़ाई और पाप मुक्ति का वरदान दिया। इसी घटना के आधार पर उनका नाम बाल्मीकि पड़ा। बाल्मीकि संस्कृत में दीमक को कहते हैं।

ऐसी ही कथा सुकन्या की है। उसने महर्षि च्यवन के तप-संलग्न शरीर पर जमी हुई मिट्टी को मात्र टीला समझा और उसमें चमकती आँखों को कोई अद्भुत वस्तु समझने के कारण आँख वाले छेदों में लकड़ी डाली तो आँखें फूट गयीं और रक्त बहने लगा। सुकन्या को जब इस अनर्थ का पता लगा कि उसकी भूल से कितनी बड़ी दुर्घटना हो गयी, इसका अनुमान लगाया तो निश्चय किया कि वह ऋषि की सेवा आजीवन करेगी और अपनी आँखों का ही नहीं, पूरे शरीर का लाभ उन्हें देगी। आग्रहपूर्वक सुकन्या च्यवन ऋषि की पत्नी बनी और उसके इस प्रयश्चित्त तप से न केवल च्यवन ऋषि को आरोग्य प्राप्त हुआ वरन् सुकन्या का यश भी अमर हो गया।

अंगुलिमाल ने चोरी, डाके से मुख मोड़कर बुद्ध की शरणागति प्राप्त की। साथ ही प्रायश्चित्त रूप दुष्कृत्यों से कमाया धन धर्म-प्रचार के लिए समर्पित कर दिया। आम्रपाली भी इसी राह पर चली, भक्ति मार्ग पर चलने के निश्चय के साथ ही उसने न केवल वेश्यावृत्ति छोड़ी वरन् उस आधार पर कमाई हुई विपुल सम्पदा भी बौद्ध विहारों के लिए दान कर दी। ऐसा ही प्रसंग पिंगला वेश्या का है। उसने भी भक्तिमार्ग अपनाने के साथ-साथ जीवन-परिवर्तन की वास्तविकता सिद्ध करने के रूप में प्रायश्चित्त किया था और अपना उपार्जन सत्कर्म में लगाया था। सम्राट् अशोक ने भी यही किया था। उन्हें चण्ड कहा जाता था। चण्ड अर्थात् क्रोधी। जब मुड़े, बदले तो उन्होंने साधु की तरह निर्वाह रीति अपनाई और अपनी समस्त राज्य-सम्पदा बौद्ध धर्म के प्रचार कार्य में लगा दी। कुमारिल भट्ट ने प्रायश्चित्त स्वरूप ही अपने शरीर को अग्नि धूम्र में नष्ट किया था।

इतने कठोर प्रायश्चित तो इन दिनों नहीं बन सकते। फिर बने भी तो आत्म त्रास की वैसी उपयोगिता अब नहीं मानी जाती जैसी कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्वकाल में मानी जाती थी। कल्प-साधना में जहाँ पापों के प्रायश्चित की प्रखरता है, वहाँ आरोग्य लाभ, स्वास्थ्य-सन्तुलन, दृष्टिकोण का परिवर्तन, भविष्य निर्धारण एवं आत्मिक प्रगति का पथ-प्रशस्त होने जैसे अनेक अतिरिक्त लाभ भी हैं। इसलिए उच्चस्तरीय साधना मार्ग पर चलने वालों को इस कठोर परन्तु फलदायी साधना के लिए परामर्श दिया जाता है।

साधना के अवरोध दुष्कर्मों का निसकरण प्रायश्चित

उपासना का प्रथम चरण है—आत्म-शोधन। कोई भी धर्म-कृत्य करने से पूर्व पवित्रीकरण, आचमन, प्राणायाम न्याय आदि कृत्य करने होते हैं। इनका उद्देश्य आत्मिक पवित्रता की आवश्यकता को प्राथमिकता देने के तथ्य पर ध्यान आकर्षित करना है। गन्दे नाले में थोड़ा-सा गंगाजल डाल देने पर उसकी शुद्धि नहीं होती है। अन्तरंग और बहिरंग जीवन में निकृष्टता भरी रहे तो उपासना साधना का लक्ष्य पूरा न हो सकेगा। आत्म-परिष्कार कपड़े की धुलाई और साधना रँगाई है। बिना धुले कपड़े पर ठीक तरह रंग कहाँ चढ़ता है ? आत्म-शोधन के बिना उच्चकोटि की साधनाएँ भी निष्फल चली जाती हैं। अतएव सर्वप्रथम वर्तमान और भावी जीवन को पवित्र, परिष्कृत बनाने की योजना बनानी चाहिए और पिछले पापों के कारण आत्मिक प्रगति पथ पर अवरोधों की तरह अड़े रहने वाले दुष्कृतों का परिमार्जन प्रायश्चित प्रक्रिया द्वारा करना चाहिए।

यही साधना की सुव्यवस्थित प्रक्रिया है। प्रारम्भ आत्म-शोधन एवं आत्म-परिष्कार से होना चाहिए। साथ ही गायत्री की सामान्य साधना तथा उच्चस्तरीय साधना का नियोजन करना चाहिए। उज्जवल चरित्र ही वह भूमि है जिस पर साधना के बीज उगते और पल्लवित होते हैं। अच्छी बन्दूक ही कारतूसों का लक्ष्य पूरा करती है। घटिया व्यक्तित्व, घटिया बन्दूक की तरह है, जिनमें बढ़िया उपासना के बढ़िया कारतूस भी समुचित प्रतिफल उत्पन्न नहीं कर सकते।

ब्रह्मवर्चस की उच्चस्तरीय उपासनाओं में पंचकोशों का अनावरण तथा कुण्डलिनी जागरण मुख्य है, इनकी तैयारी करते समय सर्वप्रथम पाप-परिमार्जन और आत्म-शोधन के लिए साहसपूर्वक कदम बढ़ाने चाहिए। इस आधार पर खड़ी की गई साधना तपश्चर्या के सफल होने में कोई अड़चन शेष नहीं रह जाती।

आस्तिकता—साधना विज्ञान का प्राण है। आस्तिकता को कर्मफल के प्रति अटूट विश्वास ही कह सकते हैं। धार्मिक कर्मकाण्डों और पूजा विधानों का महत्त्व इसी दृष्टि से है कि मनुष्य ईश्वर के प्रति—उसकी कर्म व्यवस्था के प्रति गहरी आस्था बनाये रखे। चिन्तन का स्तर उत्कृष्ट रखे और क्रिया-कलाप में आदर्शवादिता के समावेश का अधिकाधिक प्रयत्न करे। धर्म और अध्यात्म का ढाँचा इसीलिए खड़ा किया गया है। आज तो इन चरित्र-निर्माण और सामाजिक सहयोग के आधार भूत तन्त्र का उपयोग ठीक उल्टे प्रयोजनों में हो रहा है। सत्कर्मों से जो फल मिलता है उसे छुट-पुट कर्मकाण्डों से ही सम्भव बनाकर उस दिशा में कष्ट सहने और त्याग करने की उमंग को ही मटियामेट किया जा रहा है। इसी प्रकार दुष्कर्मों के प्रति निर्भयता उत्पन्न करने के लिए सस्ते पापनाशक उपायों का प्रतिपादन किया जा रहा है। यह आस्तिकता के नाम पर प्रच्छन्न नास्तिकता का प्रतिपादन है। धर्म और अध्यात्म की आत्मा को जीवित रखने के लिए इन प्रचलित भ्रान्तियों को निरस्त ही किया जाना चाहिए।

कर्मफल की सुनिश्चितता के सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने पग-पग पर जन-साधारण को प्रशिक्षित और सचेत किया है। स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि दुराचरण से बचा जाय और सदाचरण की मर्यादाओं का पालन करने में तत्परता का परिचय दिया जाय। कर्मफल सुनिश्चित है। फलित होने में थोड़ा विलम्ब हो जाय तो भी उस सम्बन्ध में अनास्था अपनाने की आवश्यकता नहीं है। 'कर्म रेख मिटनी नहीं' उक्ति का तात्पर्य इतना ही है भले या बुरे कर्मों की प्रतिक्रिया सम्मुख आने में किसी प्रकार का सन्देह करने की गुंजायश नहीं है। शास्त्रकार कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयन्तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयन्तस्माद्विमुच्यते।।

—चाणक्य

जीव आप ही कर्म करता है, उसका फल भी आप ही भोगता है, आप ही संसार में भ्रमण करता है और आप ही उससे मुक्त भी होता है इसमें उसका कोई साझी नहीं।

न तेऽत्र प्राणिनः संति ये न यांति यमक्षयम्।
अवश्यं हि कृतं भोक्तव्यं तद्विधारितम्।।

—भाष्य

यहाँ पर ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं, जो यमराज के घर में नहीं जाते हैं, अर्थात् एक बार तो वहाँ सभी प्राणियों को जाना ही पड़ता है। उनका जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह अवश्य ही उन्हें भोगना ही पड़ता है।

कर्मफल अकाट्य है, पर उनका परिमार्जन स्वेच्छापूर्वक किये गये प्रायश्चित से हो सकता है। इसमें सदाशयता, साहसिकता तो है ही सरलता भी है। चोर को राजदण्ड कड़ा मिलता है। पर यदि वह अपने दोष स्वीकार करने और चुराई वस्तु लौटाने का साहस कर सके तो राजदण्ड की अपेक्षा कम त्याग करने में काम चल जायगा, साथ ही निन्दा और घृणा के स्थान पर दूसरों का सद्भाव, सम्मान भी मिल सकेगा। जो पाप बन पड़ा वह छोड़े हुए तीर की तरह वापिस लौट नहीं सकता। किन्तु यह उपाय पीछे भी सम्भव रहता है कि प्रायश्चित करके उस दण्ड भार को काफी हल्का कर लिया जाय। इसका एक लाभ तो प्रत्यक्ष ही है कि अन्तःकरण पर चढ़ा हुआ दुराव और आत्म-धिक्कार का भार हल्का हो जाता है। पाप-कृत्यों के फलस्वरूप उत्पन्न आत्म-ग्लानि और आत्म-प्रताड़ना से छुटकारा पा सकना प्रायश्चित के अतिरिक्त और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। भारतीय धर्म शास्त्रों में पाप-निवारण का एकमात्र उपाय प्रायश्चित ही है।

आंगिरस स्मृति-४/१ में प्रायश्चित की विवेचना करते हुए कहा है—

"प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपो निश्चय संयोगात् प्रायश्चितमिति स्मृतम्।।

'प्रायः' का अर्थ 'तप' है और 'चित्त' का अर्थ निश्चय' है। तप और निश्चय के संयोग से प्रायश्चित होता है। इसका प्रारम्भ सर्वप्रथम पाप परिमार्जन और आत्म-शोधन के लिए साहसपूर्वक कदम बढ़ाने से होता है, साथ ही इसमें गायत्री की सामान्य साधना तथा उच्चस्तरीय साधना का नियोजन किये रहना पड़ता है। इस आधार पर खड़ी की गई साधना तपश्चर्या के सफल होने में फिर कोई अड़चन शेष नहीं रह जाती। शास्त्रों में प्रायश्चित के चार चरण बताये गये हैं—(१) पश्चात्ताप (२) पाप का प्रकटीकरण (३) दण्डस्वरूप व्रत उपवास जप-तप अनुष्ठान आदि कृत्य करना और (४) क्षतिपूर्ति या ऋणमोचन। यह चारों चरण मिला देने से ही प्रायश्चित का एक समग्र स्वरूप बनता है।

प्रायश्चित का प्रथम चरण है-पश्चात्ताप। दुष्कर्मों के फलस्वरूप अपनी आत्मा को—अनीति पीड़ित को—तथा परोक्ष रूप में जो क्षति पहुँचती है, उस पर विचार करने से हर विवेकशील के मन में दुःख होता है। यह दुःख ही पश्चात्ताप है। यदि ऐसा दुःख नहीं उपजा। उल्टे पाप के समर्थन की धृष्टता बरती जाती रही—अनुचित को उचित सिद्ध किया जाता रहा तो समझना चाहिए ऊपर से ही लीपापोती की जा रही है। पाप की जड़ें जहाँ की तहाँ हैं। वे अवसर पाते ही फिर फलेंगी-फूलेंगी और पुनरावृत्ति होती रहेगी।

पश्चात्ताप का स्वरूप है, सच्चे मन से दुःखी होना। भूल की भयंकरता का अनुभव करना और भविष्य में इस प्रकार के आचरण न करने के लिए सच्चा संकल्प करना और उसे कठोरतापूर्वक निवाहना। इतना कर चुकने पर ही प्रायश्चित की यथार्थता सामने आती है।

प्रायश्चित का अगला चरण है—पाप का प्रकटीकरण। इससे कई लाभ होते हैं। मन के भीतर जो दुराव की गाँठें बँधी रहती हैं, वे खुलती हैं। मनोविज्ञान शास्त्र का सुनिश्चित मत है कि मनोविकारों के—दुष्कर्मों के—दुराव से मानसिक ग्रन्थियाँ बनती हैं और वे अनेकों शारीरिक और मानसिक रोगों के रूप में उभरती रहती हैं। मनःचिकित्सा शास्त्री, मानसिक रोगियों से उसके पिछले जीवन के घटना-क्रम को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विस्तारपूर्वक बताने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसमें अप्रकट दुरावों का यदि प्रकटीकरण हो गया तो रोग का निराकरण सरल हो जाता है। आरोग्य शास्त्र की नवीनतम् शोधों ने बताया है कि रोग का कष्ट तो शरीर को अनुभव होता है, पर उसकी जड़ें मानसिक विकृतियों के रूप में जमी रहती हैं। चिकित्सा में औषधि उपचार का जितना महत्त्व है, उससे कहीं अधिक मानसिक परिशोधन का है। मनः शुद्धि के बिना आहार-विहार ठीक रखने पर भी स्वास्थ्य रक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। रोगों की जड़ें काटने के लिए मानसिक चिकित्सा के रूप में आन्तरिक अन्तःशुद्धि भी आवश्यक है। यह कार्य पिछले किये हुए—दुष्कर्मों की जड़ें काटने के रूप में प्रायश्चित की 'प्रकटीकरण' प्रक्रिया के सहारे ही सम्भव हो सकते हैं।

ईसाई धर्म में दो अवसरों पर 'पापों का प्रकटीकरण' आवश्यक माना गया है। एक ईसाई धर्म की दीक्षा—'बपतिस्मा' लेते समय। दूसरे मरण काल के पूर्व। मृत्यु की सम्भावना निश्चित होने पर पादरी बुलाया जाता है रोगी और पादरी दो ही होते हैं। एकान्त में वह जीवन के प्रमुख पाप-कर्मों को प्रकट करता है। पादरी उनके समाधान की प्रार्थना करता है। 'बपतिस्मा' और मरणकाल में इस स्वीकारोक्ति को—"कन्फेशन" को उस धर्म में अत्यन्त पवित्र माना गया है। इस प्रकार जी हल्का करके मरने का निश्चित रूप से सत्परिणाम होगा और उससे आत्मा को शान्ति सद्गति मिलेगी। हिन्दू धर्म में भी श्रावणी पर्व पर हेमाद्रि संकल्प के साथ इसी प्रकार का प्रकटीकरण हर साल करते रहने का विधान है। इसके अतिरिक्त जब कभी पाप बने, तभी उसके प्रकटीकरण एवं प्रायश्चित का विधान सम्पन्न करने की परम्परा है। उन्हें जितने समय तक छिपाये रखा जाता है, उतना ही चक्रवृद्धि दर से उसका भार बढ़ता चला जाता है। शास्त्रों में कहा गया है-

'आसम्वत्सरं प्रायश्चित्ताकरणे पापद्वैगुण्यम्।'

अर्थात्, एक वर्ष तक किसी पाप कर्म का प्रायश्चित न किया जाय तो पाप दुगुना हो जाता है। अतः पाप का प्रायश्चित यथा-समय अवश्य करना चाहिए।

'प्रकटीकरण' में पुरातन काल में कोई कठिनाई नहीं थी। उन दिनों सभी लोग सद्भाव सम्पन्न थे। प्रकटकर्त्ता के भूतकालीन पाप की तुलना में वर्तमान की प्रकटीकरण सद्भावना को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे और जो हो चुका उस पर धूल डालकर आगे का सद्भाव सम्पन्न मार्ग-दर्शन करते थे। आज स्थिति ठीक उल्टी है। मीठी बातें करके तरह-तरह के आश्वासन देकर—पूछ तो लेते हैं, फिर उन बातों के आधार पर उससे घृणा करते, निन्दा फैलाते, हानि पहुँचाते हैं। पत्नियाँ अपने पिछले जीवन की घटनाएँ पतियों को सद्भावनापूर्वक बता देने के उपरान्त कितने अधिक घाटे में रहती हैं ? इसके असंख्यों उदाहरण सामने आते रहते हैं। वे पछताती हैं और सोचती हैं कि इस कहने की अपेक्षा न कहना अधिक श्रेयस्कर रहता। आज का सामान्य मनुष्य इतना ही ओछा है कि उसके सामने नंगे होने में जोखिम ही जोखिम है। अस्तु, अप्रकटीकरण के लिए सत्पात्र तलाश करना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए तथाकथित मित्र नहीं सद्भाव सम्पन्न उदार हृदय तत्वदर्शी ही उपयुक्त हो सकते हैं। सुधार सद्भावना—उदार, क्षमाशीलता और चिकित्सक जैसी उदार सहृदयता जिनके भीतर हो मात्र वे ही पाप प्रकटीकरण के अधिकारी हो सकते हैं। वे ही पिछली दुःखद घटनाओं की उचित समीक्षा कर सकते हैं। उन्हीं से प्रायश्चित्त का स्वरूप निर्धारित करने में भी सहायता मिल सकती है।

प्राचीन काल में पाप-विवरण अधिक लोगों को बताये जाते थे, ताकि उन सबको बताने वाले की दुर्बलता का ध्यान रहे। भविष्य में वैसी पुनरावृत्ति न होने पाये इसके लिए कड़ी दृष्टि रखें। संदिग्ध चरित्र वाले पर सहज ही अन्य लोग सतर्कता की दृष्टि रखते हैं। वह व्यक्ति स्वयं भी दूसरों की सतर्कता का ध्यान रखते हुए पकड़े जाने का डर करता है। छिपे पाप तो तब चलते हैं, जब बाहर से मनुष्य विश्वस्त बना रहता है और भीतर से अप्रामाणिकता बरतता रहता है। इस स्थिति का अन्त वास्तविकता के व्यापक क्षेत्र में प्रकट हो जाने पर ही हो सकता है। इसलिए प्राचीनकाल में पाप का प्रकटीकरण अधिकाधिक लोगों की जानकारी में होता था। आज की स्थिति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घटना-क्रम तो उच्चस्तरीय मनीषियों को ही प्रायश्चित पूछने के लिए बताये जायँ किन्तु स्वभाव की दुर्बलता और बन पड़े पापों की मोटी जानकारी अधिक विश्वस्त लोगों को बनी रहे तो इससे दूसरों को सतर्कता और अपने में पकड़े जाने की आशंका बनी रहेगी। मन की ग्रन्थियाँ खुलना और उससे शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वास्थ्य का सुधार तो उससे निश्चित ही है। प्रकटीकरण की महत्ता बताते हुए शास्त्र कहता है—

तस्मात् पापं गूहेत गुह्यमानं विवर्धयेत्।
कृत्वा तत् साधुष्वख्यमेयं ते तत् शमयन्त्युत।।

—महा० अनु०

अतः अपने पाप को छिपायें न, छिपाया हुआ पाप बढ़ता है, यदि कभी पाप बन गया हो तो उसे साधु पुरुषों से कह देना चाहिए वे उसकी शान्ति कर देते हैं।

"तद् यदिह पुरुषस्य पापं कृतम्भवति तदाविष्करोति यदि हैनदपि रहसीव कुर्वन्मन्यतेऽथैन दाविरेव करोति। तस्माद्धाव पापं न कुर्यात्।" —जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण

जब मनुष्य में दिव्य वाणी प्रकट होती है तब वह अपने पाप प्रकटती है। मनुष्य ने जो पाप नितान्त गोपनीय रखे थे, उन्हें भी वह प्रकट कर देता है।

प्रकटीकरण के उपरान्त तीसरा चरण प्रतीकात्मक दण्ड व्यवस्था एवं तप-तितीक्षा का आता है। यह सांकेतिक है। बच्चे के गलती करने पर उसे कान पकड़ने, कौने में खड़ा होने, बैठक करने आदि के हल्के दण्ड दिये जाते हैं यह लाक्षणिक हैं। उनका महत्त्व इतना भर है कि इस प्रताड़ना की स्मृति-गलती की भयंकरता और उसकी पुनरावृत्ति न करने की आवश्यकता की छाप अन्तःचेतना पर अधिक अच्छी तरह छोड़ सके। वास्तविक समाधान तो कान पकड़ने पर कहाँ होता है ? चोरी करना कान पकड़ना—चोरी करना कान पकड़ना, यदि यही क्रम चलने लगे तो बात उपहासास्पद बन जायगी। यदि बच्चा किसी की कापी चुरा लाया है तो कान पकड़ने भर से उसका प्रायश्चित नहीं हुआ वह तो स्मृति को झकझोरना भर है। जिसकी कापी चुराई गई थी, उसकी क्षतिपूर्ति इतने भर से कहाँ हुई ? उसकी तो कापी वापिस मिलनी चाहिए। जो हानि हुई उसकी भरपाई का प्रबन्ध होना चाहिए, प्रायश्चित का असली भाग वही है, जिसमें ऋण मोचन किया जाता है।

प्रायश्चित का ही तीसरा चरण है—तप, तितीक्षा। इसमें अपने को शारीरिक, मानसिक यत्किंचित कष्ट देकर स्मृति पटल पर दुर्घटना का स्वरूप और दुष्परिणाम अंकित किया जाता है। इससे भावी पुनरावृत्ति की आशंका बहुत हद तक घट जाती है। ऐसी तितीक्षाओं में कई तरह के व्रत-उपवास सम्मिलित हैं। चान्द्रायण, कृच्छ चान्द्रायण, सन्तापन व्रत, पञ्चगव्य प्राशन, अस्वाद व्रत आदि इसी प्रकार के हैं। मौन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, शीतसहन, ग्रीष्मसहन जैसी तितीक्षाएँ भी अमुक समय तक करने का विधान बनाया जाता है। केश मुण्डन, तीर्थ स्नान जैसे उपचार भी ऐसे ही हैं, जिनमें शारीरिक, मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं। इस सन्दर्भ में शास्त्रकारों के अनेकों परामर्श, उपचार भरे पड़े हैं—

प्रतिग्रह को भी पातकों की श्रेणी में गिना गया है। प्रतिग्रह का अर्थ है-मुफ्त का माल। जिसका बदला न चुकाया गया हो, ऐसे समस्त अनुदान प्रतिग्रह हैं। बाप-दादों के उत्तराधिकार से मिला धन-जुआ, सट्टा, लॉटरी, हरामखोरी का उपार्जन इसी श्रेणी का है। चोरी, रिश्वत, मुनाफाखोरी, कर चोरी, बेईमानी आदि से कमाया हुआ भी प्रतिग्रह है। ईमानदारी, औचित्य और परिश्रम का समुचित समावेश करने पर जो कुछ मिलता है, वही फलता-फूलता है अन्यथा मुफ्त का धन पाप बनकर सिर पर छाया रहता है और व्यक्तित्व के परिष्कार एवं आत्मोत्कर्ष के मार्ग में भारी अवरोध उत्पन्न करता है। साधु-ब्राह्मणों को मिलने वाली दान-दक्षिणा तभी उचित है, जब वे लोग उसका प्रतिदान लोकसेवा के रूप में-उपलब्धि की तुलना में अत्यधिक करते रहें। अन्यथा भजन करने के बहाने दान-दक्षिणा बटोरते रहना—मुफ्त में खाते रहना—पाप बन-कर रहेगा और उस स्थिति में की गई साधना निष्फल चली जायगी। साथ ही अन्तरात्मा भी पाप भार से लदता, बोझिल होता चला जायगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधु-ब्राह्मणों में से किसी ने यदि मुफ्त का धन—प्रतिग्रह लिया हो। बदले में समुचित सेवा, श्रम न किया हो तो उसका भी प्रायश्चित किया जाना चाहिए।

प्रति ग्रहेण विप्राणां ब्रह्म तेजः प्रणस्यति।
अतः प्रतिग्रहे कृत्वा प्रायश्चित्ते समाचरेत्।

—अरुण स्मृति

प्रतिग्रह लेने वाले का ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है। ऐसा ग्रहण करने वाले को प्रायश्चित करना चाहिए।

सद्वृत्तात्कारणाद् विप्राः प्रायश्चित्त भयात् खग।
प्रतिग्रहे कृते चैव प्रायश्चितं समाचरेत्।।

—अरुण स्मृति

सद्वृत्तियों के उपार्जन में लगा हुआ व्यक्ति भी इस भय से प्रतिग्रह न ले कि उसका प्रायश्चित करना पड़ेगा। यदि कभी ले ही लिया गया हो तो उसका प्रायश्चित करना चाहिए।

यह बात मात्र ब्राह्मण, साधु के दान-दक्षिणा लेने तक सीमित नहीं है। वरन् उन सब पर लागू होती है, जो बिना परिश्रम का धन ग्रहण करते हैं। न्यायपूर्वक समुचित परिश्रम के साथ कमाये हुए धन के अतिरिक्त अन्य सभी उपार्जनों को प्रतिग्रह माना गया है, भले ही वे उत्तराधिकार रूप में ही प्राप्त क्यों न हुए हों ? जिन्हें इस प्रकार की उपलब्धियाँ हस्तगत हुई हों उन्हें उनका जितना सम्भव हो उतना लोकहित के लिए वापिस लौटाने से अपनी सदाशयता का परिचय देना चाहिए। यही बात दूसरों से मिले स्नेह, सहयोग आदि के सम्बन्ध में भी है। यह धन भले ही न हो, पर अनुदान तो है ही। हर अनुदान ऋण रूप में मिलता है और सृष्टि क्रम के अनुसार उसे वापिस लौटाने का स्मरण रखा जाना चाहिए। यह स्मृति उपकारी के प्रति मन में सघन कृतज्ञता भरे रहने के रूप में तो होनी ही चाहिए। प्रतिदान चुकाने की बात सोचते रहना भी आवश्यक है।

प्रायश्चित का चौथा और अन्तिम चरण है—ऋण विमोचन अर्थात् जो लिया है उसे वापिस लौटाना। बैंक से धन लेकर कोई खजाञ्ची भाग खड़ा हो, तो मात्र कान पकड़ने, गिड़गिड़ाने, क्षमा माँगने, उपवास करने से काम नहीं चलेगा। इतना तो करना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त जो धन लिया गया था, उसमें से जो बचा हो उसे तो तत्काल वापिस जमा करना ही चाहिए। बैंक अफसरों और पुलिस का रुख उदार बनाने—कड़े दण्ड से बचने के लिए यह वापिसी आवश्यक है। जो कमाया वह हजम—गिड़गिड़ाहट कर छुटकारा। ऐसा कहाँ होता है ? पातकों के दण्ड से—निवृत्त होने में भी ऐसी धाँधली नहीं चल सकती कि व्रत, उपवास, मौन आदि के, प्रतीकों से छुटकारा मिल जाय और अवांछनीय लाभ की क्षतिपूर्ति कराने वाली बात गोल कर दी जाय। वापिसी ही प्रायश्चित का प्राण है। उसका जितना पूरा-अधूरा अंश सम्भव हो उसके लिए साहस जुटाया ही जाना चाहिए।

यहाँ यह स्मरणीय है कि सारा समाज एक शरीर है। उसके किसी भी अंग को क्षति पहुँचाई गई हो पूरे शरीर की हानि मानी जायगी। आवश्यक नहीं कि हानि जिस रूप में पहुँचाई गई हो उसे उसी रूप में वापिस लौटाई जाय। लोकहित के किसी भी श्रेष्ठ काम में उस 'वापिसी' को लगाया जा सकता है। जिसका लिया उसे उसी रूप में वापिस कर सकना कई बार तो सर्वथा अशक्य और अव्यावहारिक भी होता है। रास्ते में पैसा पड़ा मिला—किसी की जेब कटी—अब उसी व्यक्ति को ढूँढ़ निकालना कैसे सम्भव हो सकता है ? किसी का शील नष्ट किया अब उसे उसकी क्षति कैसे पूरी की जाय ? कई बार तो इसमें उल्टी नई समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं। जो लोग साथी, सहयोगी रहे वे भी लपेट में आते हैं और सद्भावना उत्पन्न करने का उद्देश्य भयंकर विग्रह का रूप धारण कर सकता है।

अनीति से उपार्जित उपलब्धियों को जिस-जिस रूप में लोक-मंगल के सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के किसी श्रेष्ठ काम में लगा दिया जाना चाहिए। अशोक, अँगुलिमाल अम्बपाली आदि ने अपना अनीति उपार्जन बौद्ध धर्म के प्रसार-विस्तार में समर्पित कर दिया था। जिसकी जो हानि की उसी को तलाश करना और उसी रूप में वापिस करना उनके लिए सम्भव भी न था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन या श्रम के रूप में अनीति मार्ग से उपार्जित की गई समस्त उपलब्धियों की वापिसी की बात सोची जा सकती है। प्रायश्चित प्रकरण में अनेक प्रकार के दानों का उल्लेख हुआ है। उस समय साधु-ब्राह्मण दान और उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग की प्रामाणिक ऐजेन्सी थे। उन पर अविश्वास करने का कोई कारण भी न था। ऐसी दशा में साधु-ब्राह्मण को प्रायश्चित दान देने का उल्लेख है, आज तो वैसी स्थिति नहीं रही। सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन कर सकने वाले श्रेष्ठ कर्मों में ही ऐसे प्रायश्चित दान नियोजित किये जाने चाहिए।

धन का स्थानापन्न श्रम भी हो सकता है। वस्तुतः श्रम ही धन है। यों धन से श्रम भी खरीदा जा सकता है पर मूल आधार श्रम है। व्यक्ति की यही मौलिक सम्पदा और यह सभी को समान रूप से उपलब्ध है। अस्तु, प्रायश्चित प्रयोजनों में धन लौटाने की ही 'तरह श्रम के द्वारा उसकी क्षतिपूर्ति करने का भी विधान है। पाप-कर्मों के द्वारा समाज की नैतिक, आर्थिक एवं अन्य प्रकार की क्षति हुई है, उसकी भरपाई सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन से उतना ही श्रम लगाकर की जा सकती है। दूसरों के गिराने के लिए जो खाई खोदी गई थी; उसे पाटने के लिए—समतल बनाने वाला श्रम नये सिरे से लगाने पर ही सन्तुलन बनेगा और प्रायश्चित सम्भव होगा।

प्रायश्चित की आवश्यकता और उसके लिए उठाये जाने योग्य चरण क्या होने चाहिए ? इसकी चर्चा तत्वदर्शियों ने इस प्रकार की है—

अकृत्वा विहितं कर्म्म कृत्वा निन्दितमेव च।
दोषमाप्नोतिः पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम्।।
प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः क्वचित्
यद्ब्रयुर्ब्रह्मिणाः शान्ताः विद्वांसस्तत्समाचरेत्।।

—कूर्म पुराण

निन्दित हेय कुकर्म करने पर मनुष्य को पाप लगता है। उसका शोधन प्रायश्चित द्वारा करना चाहिए।

श्रेष्ठ विद्वान् और तपस्वी ब्रह्मवेत्ताओं से प्रायश्चित पूछना चाहिए और तदनुसार व्यवस्था करनी चाहिए।

आसम्वत्सरं प्रायश्चित्ताकरणे पाद्वैगुण्यम्।

(प्रायाश्चित्तेन्दु० शे०)

इनके अनुसार एक वर्ष तक पाप का प्रायश्चित न किया जाय तो पाप दुगुना हो जाता है। अतः पाप का प्रायश्चित यथासमय करना चाहिए।

तपसा कर्मणा चैव प्रदानेन भारत।
पुनाति पापं पुरुषं पुनश्चेत्र प्रवर्तते।।

—महाभारत शान्ति पर्व

भरतनन्दन मनुष्य तप से यज्ञ आदि सत्कर्मों से तथा दान के द्वारा पाप को धो-बहाकर अपने आपको पवित्र कर लेता है।

धनंजय कृतं पापं कल्याणे नोपहन्यते।
ख्यापनेनानुतापेन दानेनतपसापि वा।।

—महा० शान्ति पर्व

ह धनंजय ! किया हुआ पाप कहने से, दान करने से और तपस्या से नष्ट हो जाता है।

प्रायश्चित प्रकरण में अनेक प्रकार के दानों का उल्लेख हुआ है। पर धन का स्थानापन्न श्रम भी हो सकता है।

श्रम के द्वारा प्रायश्चित करना हर किसी के लिए सम्भव है। सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में लगाया हुआ समय इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। साथ ही धन के रूप में भी जो लौटाया जा सकना सम्भव है उसके लिए पूरी ईमानदारी से प्रयत्न करना चाहिए।

इस दृष्टि से धर्म-प्रचार के लिए की गई पदयात्रा, तीर्थयात्रा सर्वश्रेष्ठ है। जन-मानस में सत्प्रवृत्तियों की प्रेरणा भरना ही प्राचीन काल में तीर्थयात्रा का उद्देश्य रहा है। उसे महत्व भी इसीलिए मिला और माहात्म्य भी इसी आधार पर बताया गया है। आज की स्थिति में सर्वत्र सद्भावनाओं का ही दुर्भिक्ष पड़ा हुआ है। उसी अभाव के कारण सम्पदा और शिक्षा कुशलता एवं अन्यान्य क्षमताएँ भी सुख-शान्ति बढ़ाने के स्थान पर विपत्ति बढ़ा रही हैं। सद्भाव विस्तार के लिए जन-मानस का परिष्कार आवश्यक है। यह कार्य धर्म-प्रचार के लिए नियोजित की जाने वाली तीर्थयात्रा, पदयात्रा के लिए निकलने वाली टोलियाँ, मण्डलियाँ जितनी अच्छी तरह कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती हैं उतना और किसी प्रकार सम्भव नहीं। प्रायश्चित के ऋण विमोचन चरण को पूरा करने के लिए अन्यान्य सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन प्रयत्नों के साथ-साथ तीर्थयात्रा पर निकलने की बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिए।

पापों का प्रतिफल और प्रायश्चित-शास्त्र अभिमत

सत्कर्मों और दुष्कर्मों का प्रतिफल तत्काल न सही यों देर-सबेर में अवश्य मिलता है। इस संदर्भ में किसी को भी भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि जो किया गया है उसकी परिणति से बचकर रहा जा सकता है। राजदण्ड, समाज भर्त्सना से तो मनुष्य अपनी चतुरता के आधार पर बच भी सकता है, किन्तु ईश्वर के यहाँ ऐसी अन्धेरगर्दी तनिक भी नहीं है। आज नहीं तो कल कृत कर्मों की परिणति सामने आने ही वाली है। इसलिए शास्त्रानुशासन यही है कि दुष्कृत्यों का प्रायश्चित किया जाय और पुण्य-परमार्थ का अनुपात बढ़ाया जाय। यह दोनों ही प्रयोजन आध्यात्मिक कल्प-साधना से सिद्ध होते हैं।

इस संदर्भ में शास्त्र अभिप्राय स्पष्ट है। नीतिकार कहते हैं कि संचित पापकर्म अनेकानेक संकटों को आमंत्रित करते हैं।

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।
दारिद्रयदुःखरोगानि बन्धन व्यसनानि च।।

—चाणक्य

अर्थात् "मनुष्यों को अपने अपराध रूपी वृक्ष से दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति आदि फल मिलते हैं।"

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

पाप से व्याधि, वृद्धत्व, दीनता, दुःख और भयंकर शोक की प्राप्ति होती है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणु मन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम्।।

अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करने के लिए किसी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनि को प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावर भाव (वृक्षादियोनि) को प्राप्त होते हैं।

आधियेणाधिभवः क्षीयन्ते व्याधयोऽप्यलम्।
शुद्धया पुण्यया साधो क्रियया साधुसेवया।।
मनः प्रयाति नैर्मल्यं निक्रमेणेव काञ्चनम्।
आनन्दो वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राघव।।
सत्वशुद्धया वहन्त्येते क्रमेण प्राणवायवः।
जरयन्ति तथान्नानि व्याधिस्तेन विनश्यति।।

—योग वशिष्ठ

वशिष्ठ ने कहा—हे राघव ! पूर्व संचित दुष्कर्मों के क्षीण हो जाने पर आधि-व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। श्रेष्ठ कार्यों से और सज्जनों की सेवा से मन उसी प्रकार निर्मल हो जाता है, जैसे—कसौटी पर कसा गया सुवर्ण। मन के शुद्ध हो जाने पर आनन्द की प्राप्ति होती है। अन्तःकरण की शुद्धि से प्राण सशक्त होते हैं, जिससे अन्नों का पाचन समुचित रूप से होने लगता है परिणामस्वरूप व्याधियाँ विनष्ट हो जाती है।

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पाण्डुः कुष्ठी प्रजायते कुष्ठी गोवधकारी
बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते।
गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहा जलोदराः।।
प्रतिमाभंगकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते।
विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते।
औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते।

—शातातपस्मृति

अर्थात् ब्रह्म हत्या करने वाला, नरक भोगने के अन्त में श्वेत कुष्ठी, गौहत्यारा, गलितकुष्ठी, बालकों की हत्या करने वाला मृत-संतान वाला, गर्भपात कराने वाला, यकृत्, तिल्ली एवं जलोदर का रोगी, मूर्ति खण्डित करने वाला, अप्रतिष्ठित विद्या और पुस्तकें चुराने वाला, गूंगा, औषधियों को चुराने वाला आधाशीशी का रोगी होता है।

'तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनि वा वैश्योनि वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन्।'

—छांदोग्य ५-१०-७

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'अच्छे आचरण वाला उत्तम योनि प्राप्त करते हैं और नीच कर्म करने वाले नीच योनियों में जन्मते हैं।'

'पुण्यो पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।'

अर्थात्—निश्चय ही यह जीव पुण्य कर्म से पुण्यशील होता है। पुण्य योनि में जन्म पाता है और पाप-कर्म से पापशील होता है, पाप योनि में जन्म ग्रहण करता है।

'साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति।'

अर्थात् 'अच्छे कर्म करने वाला अच्छा होता है। सुखी एवं सदाचारी कुल में जन्म पाता है और पाप करने वाला पापात्मा होता है, पाप योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख उठाता है।'

ऐसा प्रतीत होता है कि दृष्टा ऋषिगण भूत, वर्तमान, भविष्य का भली-भाँति विश्लेषण कर सकने में समर्थ थे। आरण्यकों में बार-बार यही पाठ पढ़ाये जाते थे तथा इन्हीं सूत्रों का मनन स्वाध्याय होता था ताकि व्यक्ति पाप-प्रतिफल भय से अनीति की ओर उन्मुख न हो। महाभारत ग्रन्थ में रचनाकार ने स्पष्ट कहा है—

जातिमृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः।
संसारे पच्यमानश्च दोषैरात्मकृतैर्नरः।।

—महाभारत वनपर्व

"मनुष्य अपने ही किए हुए अपराधों के कारण जन्म-मृत्यु और जरा सम्बन्धी दुःखों से सदा पीड़ित हो बारम्बार संसार में पचता रहता है।"

जन्तुस्तुकर्मभिस्तैस्तैः स्वकृते प्रेत्य दुःखितः।
तदुःखप्रतिघातार्थमपुण्यां योनिमाप्नुते।।

"प्रत्येक जीव अपने किए हुए कर्मों से ही मृत्यु के पश्चात् दुःख भोगता है और उस दुःख का भोग करने के लिए ही वह पाप योनि में जन्म लेता है।"

मरणोत्तर जीवन, लोक-परलोक सम्बन्धी ऐसी स्पष्ट व्याख्या किसी धर्मग्रन्थ में नहीं मिलती। यदि व्यक्ति मात्र इतना ही जान लें, इस सत्य को हृदयंगम कर लें तो न कहीं व्याधि रहे, न जरा। दुःख, शोक, भावनात्मक संक्षोभ सभी पापों की ही परिणति हैं, जो रोगों का रूप लेती व प्रकट होती रहती है।

जलोदरं यकृत प्लीहा शूलरोगव्रणानि च।
स्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रमोहनगलग्रहाः।।
रक्तार्बुद विसर्पादिभाउपपापोद् भवा गदाः।
दण्डापता नकश्चित्रवपुः कम्पविचर्चिकाः।।
वाल्मीकपुण्डरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः।
अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद् भवन्ति हि।।

—शातातप स्मृति

जलोदर, तिल्ली, यकृत, शूल, व्रण, श्वांस, अजीर्ण, ज्वर, जुकाम, भ्रम, मोह, जलग्रह, रक्तार्बुद, विसर्प आदि रोग उप-पातकों के कारण होते हैं।

दण्ड पतानक, चित्रवपु, कम्प, विशूचिका, पुण्डरीक आदि रोग सामान्य पापों के कारण होते हैं।

पूर्वजन्म कृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः।।
कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्रकृच्छ्राश्मराकासा अतीसारभगन्दरौ।।
दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम्।
इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः।।

—शातातपस्मृति

पूर्व जन्म में किया हुआ पाप नरक के परिक्षय हो जाने पर मनुष्यों को किसी व्याधि के रूप में उत्पन्न होकर सताता है और उसका उपशमन जपादि द्वारा होता है। कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ, पथरी, अतिसार, भगन्दर, दुष्टव्रण, गण्डमाला, पक्षाघात और नेत्रहीनता इत्यादि रोग महापातकों के कारण ही होते हैं।

पादन्यासकृतंदुःख कण्टकोत्थंप्रयच्छति।
तत्प्रभूततरस्थूलशंकुकीलकसम्भवम् ।।
दुःखंयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम्।
अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम्।।

—मार्कण्डेय पुराण (कर्मफल)

पैर में काँटा लगने पर तो एक ही जगह पीड़ा होती है पर पाप कर्मों के फल से तो शरीर और मन में निरन्तर शूल उत्पन्न होते रहते हैं।

स्वमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ भास्यन्ति धातवः।
तत्र पापक्षयात्पाप नराः कर्मानुरूपतः।।

—शिव पुराण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धातुओं के मैल को हटाने के लिए जैसे उन्हें तीक्ष्ण अग्नि में रखते हैं, उसी तरह पापी प्राणियों को पाप-नाश के उद्देश्य से ही अपने कर्मों के अनुसार ही नरकों में गिराया जाता है।

शरीर जैः कर्म दोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षि मृगतां मानसै रन्य जातिताम्।।
इह दुश्चरितैः केचित्केचित् पूर्व कृतैस्तिथा।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो करा रूप विपर्ययम्।।

"शारीरिक पाप कर्मों से योनियों में जन्म होता है। वाणी पापों से पशु-पक्षी बनना पड़ता है। मानसिक दोष करने वाले मनुष्य योनि से बहिष्कृत हो जाते हैं। इस जन्म के अथवा पूर्व जन्म के किये हुए पापों से मनुष्य अपनी स्वाभाविकता खोकर विद्रूप बनते हैं।" (मनुस्मृति)

दुष्कृत्यों का फल हरेक को अवश्यम्भावी मिलता है, इस तथ्य को भली भाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए। किया हुआ कर्म किसी को नहीं छोड़ता। इसका न कभी क्षय होता है, न क्षमादान की कोई व्यवस्था है। किसी न किसी रूप में मनुष्य को इसे भुगतना ही होता है। समय अवश्य लग जाय पर कर्मफल एक अकाट्य एवं सुनिश्चित सत्य है।

नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ताखलु यथा कालं ततः समभिपद्यते।।

(महा० शान्ति० अ० २६८)

"अधर्म किसी भी कारण की अपेक्षा से कर्त्ता को नहीं छोड़ता, निश्चय रूप से करने वाला समयानुसार किये कर्म के फल को प्राप्त होता है।"

कृतकर्म क्षयोनास्ति कल्पकोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।

(शिव० कोटि रुद्र० अ० २३)

"किये हुए कर्म का सौ करोड़ कल्प तक भी क्षय नहीं होता, किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ेगा।"

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
भर्तः पर्यागते काले कर्त्ता नोस्त यत्र संशयः।।

(वाल्मी० युद्ध० स० १११)

"पाप कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है। हे पते ! समय आने पर कर्त्ता फल पाता है इसमें संशय नहीं है।"

यदा चरति कल्याणि शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
तदेव लभते भदे कर्त्ता कर्मजमात्मनः।।
अवश्यं लभते कर्त्ता फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्य्यागते काले द्रुमः पुष्पामिवार्तपम।।

(वाल्मी० अरण्य० स०२६)

हे कल्याणी ! जो कुछ भी शुभ-अशुभ करता है, करने वाला वही अपने किये कर्मों के फल को प्राप्त होता है।

करने वाला अपने पाप कर्मों का फल घोर काल आने पर अवश्य प्राप्त करता है। जैसे मौसम आने पर वृक्ष फलों को प्राप्त होते हैं।

यथा धेनु सहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
एवं पूर्व कृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति।।
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च।
तत्कालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम्।।

(महा० अनु० अ० ७)

जैसे हजारों गौ में से बछड़ा अपनी माँ को ढूँढ लेता है, ऐसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्त्ता को प्राप्त होता है। बिना प्रेरणा के ही जैसे फूल और फल अपने समय का उल्लंघन नहीं करते, वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म समय का उल्लघंन नहीं करता।

हर साधक के लिए शास्त्रों का स्पष्ट निर्देश है कि वे पहले अपने कुकृत्यों-ज्ञात एवं अविज्ञात से मुक्ति पायें, स्वयं को हल्का करें। तदुपरान्त ही उच्चस्तरीय साधना की बात सोचें। पेट में कब्ज हो तो सभी प्रकार के व्यायाम-आसन, प्राणायाम निरर्थक हैं। इससे पूर्व मल निष्कासन प्रक्रिया अनिवार्य है। 'कन्फेशन' प्रक्रिया की तरह यदि वचन कर लिया जाय तो उससे अन्तरात्मा हल्की होती है। तप, तितीक्षा का मार्ग अपनाकर आंतरिक कल्प की सम्भावनाएँ प्रबल बन जाती हैं। इस तथ्य के पीछे किसी भी प्रकार की भ्रान्ति हो तो उसका साधकों को पहले ही निवारण कर मार्गदर्शक से अपना प्रायश्चित विधान पूछ लेना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मशोधन और प्रायश्चित प्रक्रिया

आत्मिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा कुसंस्कारों की है। इन्हीं की प्रेरणा से मनुष्य कुकर्म करते हैं। यह विश्वकर्म और कर्मफल के अकाट्य सिद्धान्त की धुरी पर परिभ्रमण कर रहा है। प्राणी कर्म करते और उसका फल भोगते हैं। सत्कर्म सुख-शान्ति लाते हैं और दुष्कर्मों का प्रतिफल शोक-सन्तापों के रूप में सामने आता है। कर्मों को फलित होने में थोड़ा-बहुत समय लग जाता है, इसी से भ्रमित होकर लोग यह सोचने लगते हैं कि अपनी चतुरता के सहारे शासन, समाज और भगवान को चकमा दे सकने में वे सफल हो गये।

कर्मफल पर अविश्वास करना ही विश्व-व्यवस्था पर, ईश्वर पर अविश्वास करना है। इसी को नास्तिकता कहते हैं। तत्काल कर्मफल नहीं मिलते, इसी से लोग पाप-कर्मों को करने में निर्भय बनते और सत्कर्मों में उपेक्षा उदासीनता बरतते हैं। यही है वह प्रमुख अवरोध जिस चट्टान से टकराकर आत्मिक प्रगति चूर-चूर होती रहती है। उपासना की कमाई इन्हीं कुसंस्कारों और कुकर्मों के गर्त में गिरकर नष्ट हो जाती है।

साधना के मार्ग पर चलने का साहस करने वालों को चरित्र-निष्ठ और समाज-निष्ठ बनना पड़ता है। उर्वर भूमि में ही बीज उगते हैं। खाद, पानी के सहारे ही पौधे बढ़ते और फलते-फूलते हैं। साधना के बीज अंकुर निर्मल चरित्र और उदार व्यवहार का पोषण प्राप्त कर सकें तो ही वे समुन्नत और फलित होते हैं। निकृष्ट चिन्तन और घृणित कर्तृत्व बना रहे तो किसी भी पूजा-पाठ से दैवी अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता। उपासना कपड़े को रंगने के समान है। इससे पूर्व धुलाई होनी चाहिए। मैले कपड़े पर रंग कहाँ चढ़ता है ? दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्ति अपनाये रहने पर साधना फलवती नहीं होती। साधक को जितना श्रम उपासनात्मक उपचारों में करना पड़ता है, उससे अधिक प्रयत्न आत्म-परिष्कार के लिए आत्मशोधन के लिए करना पड़ता है।

आत्मोत्कर्ष के लिए आत्मशोधन की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। इसके लिए वर्तमान और भावी जीवन को चरित्र-निष्ठ एवं समाज-निष्ठ बनाने की-पवित्र और परिष्कृत रखने की सुव्यवस्थित योजना बनानी पड़ती है। लोक मंगल के लिए सत्प्रवृत्तियों का विकास-विस्तार करने के लिए उदार अनुदान प्रस्तुत करने पड़ते हैं। साधु, ब्राह्मण की परम्परा को जितना सम्भव हो उतना जीवन क्रम में उतारना पड़ता है। भौतिक महत्वाकांक्षाओं को जितना घटाया जा सके और अपनी क्षमता का जितना अधिक उपयोग परमार्थ प्रयोजनों में किया जा सके समझना चाहिए कि साधना के फलित होने का उतना ही सुनिश्चित आधार उपलब्ध हो गया। उपासना के विधि-विधान भले ही गायत्री की उच्चस्तरीय साधना जैसे ही क्यों न हों। भले ही पंच-कोशों को ज्योतिर्मय बनाने की-कुण्डलिनी जागरण की—महान् साधनाओं का सुअवसर मिल रहा हो—हर हालत में व्यावहारिक जीवन का परिष्कार-परिशोधन तो अनिवार्य रहेगा ही।

वर्तमान और भावी गतिविधियों का परिष्कृत निर्धारण साधना का अविच्छिन्न अंग माना जाना चाहिए और जितना महत्त्व विधि-विधानों को, साधनात्मक कर्मकाण्डों को दिया जाता है, उतनी ही जीवन क्रम के सर्वांगीण परिष्कार की क्रमबद्ध योजना बनानी चाहिए और निश्चयात्मक बुद्धि से उसी सन्मार्ग पर अनवरत गति से बढ़ना चाहिए।

यहाँ एक तथ्य और भी विचारणीय है कि अभ्यस्त कुसंस्कारों और इस जीवन में किये गये दुष्कर्मों का परिशोधन भी किया जाय। जो अवांछनीय बन पड़ा हो उसके निराकरण के लिए उसका बदला चुकाया जाना आवश्यक है। इसे धर्मशास्त्रों में प्रायश्चित्त प्रक्रिया कहा गया है। गायत्री की उच्चस्तरीय साधना आरम्भ करते हुए—पंच कोशों के परिष्कार एवं कुण्डलिनी जागरण की महान् साहसिकता का परिचय देते हुए सर्वप्रथम पाप परिमार्जन की प्रायश्चित प्रक्रिया सम्पन्न की जानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधक को अब तक के जीवन में बन पड़े पाप कर्मों की सूची तैयार करनी चाहिए। उनका प्रायश्चित क्या हो सकता है ? इसके लिए किसी तत्वदर्शी मनीषी से परामर्श करना चाहिए। ब्रह्मवर्चस साधना के शिक्षार्थियों को इस सन्दर्भ में हमारा परामर्श, मार्ग दर्शन प्राप्त हो सकता है। प्रायश्चित का प्रथम चरण जी खोलकर बिना लाग-लपेट और दुराव के दुष्कर्मों के समय की मनः स्थिति एवं परिस्थिति का विवरण बताना चाहिए। यह विवरण थोड़ा बड़ा हो जाय तो हर्ज नहीं। संक्षेप में घटना तो बताई जा सकती है पर पाप के वजन का मूल्यांकन करने के लिए इसकी पृष्ठभूमि समझाई जानी आवश्यक है। जी खोलकर अपने दुष्कर्मों को किसी ऐसे व्यक्ति के सम्मुख कहा जा सकता है, जिससे उसके प्रकटीकरण की—प्रतिष्ठा नष्ट किये जाने या किसी प्रकार की हानि पहुँचाये जाने की आशंका न हो। इस प्रकार के प्रकटीकरण से मन की गाँठें खुलती हैं। चित्त हलका होता है और मनःसंस्थान में अड़े हुए अवरोध टूटते हैं।

प्रकटीकरण के साथ-साथ उन दुष्कर्मों के प्रति लज्जित और दुःखी होने की वृत्ति का उभरना 'पश्चात्ताप' है। पश्चात्ताप में भविष्य में वैसा न करने का संकल्प भी रहता है। अन्यथा 'कह देने और फिर करने लगने' से तो बात ही क्या बनेगी ? निश्चय किया जाना चाहिए कि जिस प्रकार के पाप बन पड़े हैं वैसे अथवा अन्य प्रकार के दुष्कर्मों का साहसपूर्वक परित्याग किया जा रहा है। भविष्य में पवित्र और परिष्कृत जीवन ही जीना है।

जो दुष्कर्म बन पड़े हैं, उनका बदला चुकाया जाना आवश्यक है। इसी को प्रायश्चित कहते हैं। कर्म का फल अनिवार्य रूप से भुगता जाना है। मात्र क्षमा प्रार्थना—गंगा स्नान, व्रत उपवास जैसे छुट-पुट कर्मकाण्डों को प्रायश्चित का प्रतीक कह सकते हैं—आधार नहीं। प्रतीकों से प्रेरणा मिलती है। भार तो उतारने और चुकाने से ही उतरता है। शासन या समाज की ओर से पापों के दण्ड दिये जाते हैं। यदि उन्हें स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया जाय और दण्ड भुगतने का साहस दिखाया जाय तो उसे सच्चाई का प्रमाण और सच्चा प्रायश्चित कहा जायगा। गड्ढा खोद कर दूसरों को गिराने का उपक्रम किया गया तो उसे भरने का, समतल बनाने का नया परिश्रम करने से ही प्रायश्चित होगा। प्रत्येक पापकर्म की एक शृंखला होती है। तालाब में उठने वाली लहरें पूरी सतह तक दौड़ती हैं। पापों की शृंखला पूरे समाज को परोक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रायश्चित का स्वरूप यही है कि जितने वजन की समाज को हानि पहुँचाई है उतने ही मूल्य का लाभ दिया जाय। पाप के समतुल्य पुण्य कर्म किये जायँ। इसमें जो समय, श्रम, धन आदि लगा, इसमें जो हानि उठानी पड़ी, उसे पाप का दण्ड कहा जा सकता है। पुण्य को समतुल्य करने पर ही पाप कटते हैं।

ब्रह्मवर्चस सत्र के साधकों को अपने दुष्कर्मों का विस्तारपूर्वक विवरण देना पड़ता है। यह जानकारी तीसरे तक प्रकट न होगी। यह निश्चित आश्वासन सूत्र संचालक देते हैं। अस्तु, लाग-लपेट की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रायश्चितों में ऐसे विधान चुनने होते हैं जिससे अपराधी को क्षति उठाने का दण्ड तो मिल जाय पर वह निरर्थक न जाय।

कुसंस्कार धोते चलें-अगला जन्म पछतावा न बने

ऑपरेशन थियेटर (ऑपरेशन का कमरा) डॉक्टरों और नर्सों से खचाखच भरा था। असाधारण ऑपरेशन होने को था। मस्तिष्क का ऑपरेशन यों इन दिनों एक सामान्य बात हो चली है। पर इस ऑपरेशन का सम्बन्ध मनुष्य जीवन के एक असाधारण सत्य के रहस्योद्घाटन से था, उसी को देखने के लिये डाक्टरों की टीम जमा हुई थी।

रहस्य यह था कि जीवन मन की जिन अज्ञात (अनकॉसस) प्रेरणाओं से प्रभावित और क्रियाशील होता है, वह पूर्व-जन्मों में मस्तिष्क में टेप किये हुए संस्कार होते हैं और अब विज्ञान उस दिशा में तेजी से अग्रसर हो रहा है। जब मस्तिष्क रूपी टेपरिकॉर्डर और टेलिविजन सैट के आधार पर यह विश्लेषण करना सम्भव हो जायेगा कि इस मनुष्य ने पिछले जन्मों में क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्म किये हैं। इसके अदृश्य विचार और भावनायें किस तरह रही हैं और उनके फलस्वरूप आगे वह किस प्रकार के अपराध या भलाई के कार्य करेगा ? अमुक बीमारी, अमुक दिन, अमुक प्रकार की दुर्घटना होगी और उसके परिणाम यहाँ तक हो सकते हैं। विज्ञान ऐसी भी जानकारियाँ प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि वह सब मस्तिष्क में पहले से तैयार रहता है।

यह ऑपरेशन अमरीका के विश्वप्रसिद्ध शल्य चिकित्सक डॉ० विल्डर पेनफील्ड द्वारा किया जाने वाला था। डॉ० पेनफील्ड ने मस्तिष्क के अग्र भाग में २५ वर्ग इंच के लगभग और १/१० इंच मोटे एक ऐसे क्षेत्र का पता लगाया है, जो काले रंग की दो अन्धकारपूर्ण पट्टियों के रूप में विद्यमान है। यह पट्टियाँ 'टेम्पोरल कॉर्टेक्स' कही जाती हैं और कनपटी के नीचे मस्तिष्क को चारों ओर से छल्लानुमा घेरे हुए हैं। यही वह पट्टी है, जिसमें मानसिक विद्युत का प्रवेश होते ही अच्छी-बुरी स्मृतियाँ उभरती हैं। डॉ० पेनफील्ड का कथन है कि इस पट्टी में विलक्षण स्मृतियों के टेपरिकॉर्ड भरे हुए हैं। उनमें यदि विद्युत् आवेश प्रवाहित किया जाय तो इतनी-सी पट्टी ही उस व्यक्ति के ज्ञात-अज्ञात सारे रहस्यों को उगल सकती है, जिसे भयवश, लोक-लाज या संकोचवश भी मनुष्य व्यक्त नहीं कर पाता या जो कई जन्मों से संस्कार रूप से उसमें विद्यमान रहता है।

यह पट्टियाँ किसी केन्द्रक तत्व (न्यूक्लिक एलेमेन्ट) से बनी हैं और जो इनमें लहरें उठती हैं, तो उनसे प्रभावित नलिकाविहीन नसों (डक्टलैस ग्लैण्ड्स) से एक तरह के हारमोन्स निकलते हैं (हारमोन्स एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ है) जो भिन्न-भिन्न आवेश अर्थात् क्रोध, घृणा, काम-वासना, भय, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, दया, करुणा, उदारता, सहिष्णुता आदि भावों के समय विष या अमृत की तरह स्रवित होता और सम्पूर्ण शरीर की मशीनरी को प्रभावित करता है। अब मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक सभी यह मानने लगे हैं कि इन 'हारमोन्स' के कारण ही मनुष्य स्वस्थ या रोगी बनता है। यदि व्यक्ति में अच्छे गुण होते हैं, तो उससे अमृतपूर्ण हारमोन्स स्रवित होकर शरीर में हल्कापन, स्निग्धता, शक्ति और प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं, जबकि बुरे विचारों का प्रभाव ठीक इससे विपरीत होता है। आयुर्वेद का 'पूर्वजन्म कृतं पापं व्याधिरूपेण पीडति:' इसी सिद्धान्त का शास्त्रीय रूप है। उत्तरकांड में तुलसीदास जी द्वारा वर्णित मानस रोग इसी तथ्य की पुष्टि और यह बताते हैं कि मनुष्य को इस जीवन में प्राप्त दुःख या सुख सब मनोभावों के परिणाम होते हैं। अच्छे भावों अर्थात् श्रद्धा, विश्वास, मैत्री, दया, क्षमा, सन्तोष आदि से जीवन-शक्ति बढ़ती है, तो दम्भ, पाखण्ड, अश्लीलता, विश्वासघात, हिंसा, विद्वेष आदि से वात, पित्त, कफ, सन्निपात, दाद, कंडु, कुष्ट, उदर-वृद्धि, डमरुआ, नेहरुआ ज्वर आदि पैदा करते हैं।

यह संस्कार इस जीवन के हों तभी मनुष्य रोगी बने, यह आवश्यक नहीं। शास्त्रकार कहते हैं कि संस्कार जन्म-जन्मान्तरों तक मनुष्य का पीछा करते हैं—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्कामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।

—गीता १५/८

अर्थात् जिस प्रकार वायु जहाँ से गुजरती है, वहाँ की गन्ध भी साथ ले जाती है वैसे ही देह का स्वामी जीवात्मा भी पहले जिस शरीर को त्यागता है, उसके इन मन सहित सभी इन्द्रियों के संस्कारों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें चला जाता है।

फिर यह विभिन्न संस्कारों वाला मन ही अच्छे-बुरे शरीर, रोगी, निरोग शरीर की रचना करता है—

मानसेदं शरीरं हि वासनार्थं प्रकल्पितम्।
क्रमिकोश प्रकारेण स्वात्मकोश इव स्वयम्।।

—योगवशिष्ठ ४/१९/१६

करोति देहं संकल्पात्कुम्भकारो घट यथा।।

—योगवशिष्ठ ४/१५/७

जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने रहने के लिये अपने आप ही कोश तैयार कर लेता है वैसे ही मन ने भी अपने संकल्प से शरीर को इस प्रकार बनाया हैं, जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्या थी कि संस्कार जन्म-जन्मान्तरों से संग्रहीत कर्मफल हो सकते हैं, इसका कोई प्रमाण शास्त्रों में नहीं था। पदार्थ को गौण मानने वाले ऋषियों ने उसका अध्ययन और ज्ञान प्राप्त न किया हो, यह बात नहीं। सम्पूर्ण सावित्री विद्या पदार्थ विज्ञान ही के नाम और वर्गीकरण का भेद भर है। चेतना को अति समर्थ और मुख्य मानने के कारण इस विज्ञान को भी आध्यात्मिक बना दिया गया, उसे प्रमाणित करने के लिये यन्त्र निर्माण की आवश्यकता नहीं समझी गई। वस्तुतः करना चाहते तो वह कुछ कर सकते थे, जो आज अमरीका और रूस भी नहीं कर सके। भौतिक विज्ञान की आज की उपलब्धियाँ इन तथ्यों को अक्षरशः सत्य सिद्ध करती हैं।

अमरीका में गिरिजाघरों के सलाहकार डा० पीले की तरह डॉ० सी० डबल्यू० लेब ने अपने अधिकांश रोगियों का औषधोपचार आत्म-विश्लेषण पद्धति पर करने का नियम बनाया। वे रोगी के अन्तरंग में प्रवेश कर उसका भूत जानने का प्रयास करते। उसके कर्मों का अच्छी तरह पता चल जाने के बाद वे औषधि से उतना काम नहीं लेते थे, जितना आंतरिक सुधार की ओर ध्यान देते। एक बार उनके पास एक मृगी का ऐसा मरीज आया, जो बहुत उपचार करने पर भी अच्छा न हो सका। नियमानुसार श्री लेब ने उसे अपने घर बुलाया। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि आप अपने पिछले जीवन का पूरा इतिहास बता सकते हैं क्या ? उस व्यक्ति ने बताया कि उसे नन्हें जीवों के शिकार का शौक रहा है। उसने केवल माँसाहार के लिये ही नहीं, शौकिया सैकड़ों जीव-जन्तु मारे हैं। अब तो यह सब छोड़ चुका था, पर मरे हुए जीवों की तड़पन का दृश्य उसके मस्तिष्क में घूमता रहता और वही धीरे-धीरे मृगी के रूप में बदल गया।

डॉ० लेब ने उस रोगी को बताया कि अब वह प्रतिदिन अपनी कमाई का आधा भाग छोटे-छोटे जीवों को खिलाया करे। आधे का आधा निर्धनों, विधवाओं, छोटे बच्चों के स्कूलों को दान कर दिया करे। एक चौथाई अपने लिये रखकर अपना भरण-पोषण किया करे। उन्होंने प्रायश्चित के कुछ तरीके भी बताये और खान-पान में सुधार करने को भी कहा। इस तरह उस रोगी के स्वास्थ्य में बिना किसी उपचार के कुछ ही दिन में सुधार हो चला। जिसे बड़े-बड़े डॉक्टर असाध्य घोषित कर चुके हों, उसका इस तरह आध्यात्मिक पद्धति से तन्दुरुस्त हो जाना सचमुच एक आश्चर्य था, जिसने डॉ० पेनफील्ड जैसे विज्ञान बुद्धि एवम् तर्कशील व्यक्ति को भी उस दिशा में सोचने व प्रयोग करने को प्रेरित किया। डा० पेनफील्ड की उपलब्धियाँ अपना विशिष्ट महत्त्व रखती हैं और यह प्रमाणित करती हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसे अज्ञात खजाने हैं, जहाँ पूर्व जन्मों के असंख्य संस्कार माइक्रोप्रिन्ट की तरह टेप किये हुए हैं। समय पड़ने पर उन्हें खोला और पढ़ा भी जा सकता है। हमारे यहाँ के योगी केवल यह पहचान आकृति देखकर व्यक्ति के मुख-मण्डल से निकलने वाली अणु-आभा देखकर कर लिया करते हैं, जिस प्रकार अमरीका की महान् अणु आभा वैज्ञानिका श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट।

मस्तिष्क एक ऐसा क्षेत्र है, जिसे पीड़ा का अनुभव नहीं होता। इसलिये उसका ऑपरेशन करते समय बेहोशी आवश्यक नहीं, श्री पेनफील्ड ने रोगी का टेम्पोरल कॉरटेक्स खोल दिया। उसके एक हिस्से में हल्के करेन्ट वाला विद्युत तार स्पर्श कराया और फिर क्या था—रोगी एक बढ़िया गीत गाने लगा। गीत किसी ऐसी भाषा का था, जो रोगी नहीं जानता था। बाद में पता चला कि वह जर्मन के किसी प्रान्त में बोली जाने वाली आदिवासी भाषा का कृमबद्ध गीत था। तार वहाँ से हटाते ही उसने गीत गुनगुनाना बन्द कर दिया।

डॉ० पेनफील्ड ने एक अन्य प्रयोग से यह भी दिखा दिया कि मनुष्य साधारणतया जो देख या सुन लेता है, भले ही उधर उसका ध्यान न रहा हो, पर वह भी मस्तिष्क में टेप हो जाता है और जब कभी वह व्यक्ति उस दिशा की बात सोचता है, तो वह दृश्य और शब्द भी अनायास ही मस्तिष्क में गूँज उठते हैं। ईश्वराभ्यासी आध्यात्मिक उपासक और योगी आत्माओं को स्वप्न में भूत, भविष्य के स्पष्ट दृश्य दीख जाते हैं। वह आत्म-चेतना की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक एकाग्रता और इस अज्ञात पट्टी द्वारा उभार के फलस्वरूप होते हैं। आज के युग में जीन्स (गुण-सूत्रों) को छाँटना सरल हो गया है पर कर्मफल की रेखाओं का मनुष्य जीवन के आदिकाल से समय जोड़ना, उसके अनेक जन्मों का विश्लेषण करना, यह उससे बहुत कठिन काम है तथापि वह दिन दूर नहीं, जब लोग डॉक्टरों और वैज्ञानिकों से अपने कोई भी पाप न छिपा पाया करेंगे। तब चिकित्सा की पद्धतियाँ भी आजकल की तरह दवा—दारू की न होकर मानसिक और आध्यात्मिक हुआ करेंगी। जो अपने मानसिक और आत्मिक स्तर को सुधार सकता है, वही रोग-शोक उत्पन्न करने वाले पूर्वजन्मों के कुसंस्कारों का प्रच्छालन कर स्वस्थ और नीरोग रह सकता है। बेचारी दवाइयाँ न कभी रोग का निदान रहीं और न रहेंगी। अन्ततः आध्यात्मिक उपचार ही मनुष्य का साथ देंगे। डॉ० पेनफील्ड की शोधों का यही सार है।

प्रायश्चित एक समग्र मनश्चिकित्सा

"जो जैसा करता है, वह वैसा ही भोगता है।" यह सिद्धान्त सर्वविदित है। आग छूने से हाथ जल जाता है, यह तथ्य ज्ञात होते हुए भी कोई भी आग में हाथ डालने की मूर्खता नहीं करता, फिर भी सुकृतों और दुष्कृतों का परिणाम तुरन्त न मिलने के कारण बाल बुद्धि के लोग पुण्य के सम्बन्ध में निराश और पाप के विषय में निर्भय हो जाते हैं।

पाप से बचे रहने के लिये अभी तक दुर्गति का भय दिखाने की परम्परा रही है, जिसे अब अन्धविश्वास माना जाने लगा है। किन्तु वैज्ञानिक तथ्य इसकी पुष्टि करते हैं। उनका प्रतिपादन है कि गुप्त पापों एवं दुष्कर्मों के प्रभाव से जो मानसिक ग्रन्थियाँ बनती हैं, वे शरीर मन तथा अन्तःकरण को रोगग्रस्त कर देती हैं। मन तथा आस्थाओं की विकृति से उत्पन्न होने वाली व्याधियों की गम्भीरता और बहुलता आज का चिकित्सक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही स्वीकारने लगे हैं।

श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट को अपने ग्रन्थ "एटम-एण्ड सोल" से विश्व प्रसिद्धि मिली थी। इस पाश्चात्य मनीषी महिला ने असंख्य रोगियों को पापों के प्रकटीकरण एवं प्रायश्चित्त द्वारा अच्छा किया है। उनके अनुसार मन की दुराव-ग्रन्थियाँ खोल देने पर मनुष्य अपने आपको हल्का अनुभव करता है।

इस तथ्य को भारतीय अध्यात्मवेत्ता सदा से जानते थे। इसीलिये वे पापों की प्रतिक्रिया से समाज एवं मनुष्य की रक्षा हेतु जगह-जगह चेतावनी भी देते हैं एवं मार्ग भी सुझाते हैं। प्रायश्चित हेतु प्रकटीकरण, तप-तितीक्षा एवं ऋण विमोचन के रूप में समाज में सन्तुलन बनाये रखने की व्यवस्था हिन्दू धर्म की महानता की परिचायक है। भारतीय अध्यात्म दर्शन के अनुसार श्रम एवं सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन द्वारा प्रायश्चित्त हर किसी के लिये संभव है। इसी माध्यम से ऋषि-मनीषी पुरातन काल से अभी तक मानव का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य समुन्नत बनाये रखने में सफल हुए।

आस्तिकता, श्रद्धा एवं कर्मफल की महत्ता का प्रतिपादन आर्ष-ग्रन्थों में तो होता ही रहा है, भारतीय जन-मानस में भी ये सिद्धान्त एकाकार हो गये हैं। यही कारण रहा है कि ये व्याधियाँ जिन्हें सायकोसोमेटिक एवं स्पिरिचुअल व्याधि नाम दिया गया है, अनास्था प्रधान देशों में अधिक है। बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं दिशा-हीन रूखे बुद्धिवाद ने इस अग्नि में और घृत डाला है। वस्तुतः मानव का भ्रमग्रस्त होकर कर्मफल के सम्बन्ध में अविश्वास कर बैठना ही 'नास्तिकता' है।

आध्यात्मिक मनश्चिकित्सा को 'लोंगोथेरेपी' का नाम देते हुए कैलिफोर्निया के चिकित्सक द्वय डॉ० मार्टिन रोशमान एवं डा० इरविंग ओयल ने लॉस ऐंजेल्स शहर में एक विशाल क्लीनिक की स्थापना की है। वे यह मानते हैं कि अवांछनीयता का निराकरण बिना प्रायश्चित एवं कुकर्मों से साक्षात्कार के सम्भव नहीं हैं। सहस्रों रोगी उनके यहाँ आते हैं एवं भारतीय अध्यात्म की चिरसनातन मान्यताओं पर आधारित इस पद्धति से लाभान्वित होकर जाते देखे जा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'लोंगोथेरेपी' के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए प्रख्यात "मनश्चिकित्सक डॉ० विक्टर फ्रैंकेल कहते हैं कि आज का विश्व "मानसिक महामारी" में पीड़ित है और इसका प्रमुख कारण है, भौतिकतावादी संस्कृति में विद्यमान एक महाशून्य जिसे केवल ऐसा सन्त, ऋषि या प्रीस्ट ही भर सकता है, जो व्यक्ति के अन्तःकरण का परिष्कार करने की सामर्थ्य भी रखता हो। आज के रोगों की दार्शनिक समस्याओं का निदान एवं उपचार मनश्चिकित्सक या कायचिकित्सक. के बलबूते की बात नहीं है। इसी कारण से इन रोगियों की मानसिक ग्रन्थियाँ और उलझती चली जाती हैं, जिनका प्रभाव उसके शरीर एवं मन दोनों के सन्तुलन पर पड़ता है।"

लगातार पेट में दर्द रहने एवं निर्देशानुसार गर्भाशय निकाल देने पर भी श्रीमती नैन्सी, जो लॉस ऐंजेल्स की ही निवासी हैं, को आराम नहीं मिला। तब वे इन चिकित्सकों के पास पहुँची जो यह मानते थे कि तन का हर रोग मन की गुत्थी से पैदा होता है और उसे दूर करने के लिये दवाएँ ही काफी नहीं, मन को सुलझाना जरूरी है। परम्परागत ध्यान पद्धति द्वारा उन्हें अपने गुप्त पाप से साक्षात्कार करने को कहा गया। एक अर्ध विकसित भ्रूण उनके कल्पना चित्र में अक्सर आता और कहता कि "मैं तुम्हारी कोख से जन्म लेना चाहता था, लेकिन तुम मेरी माँ नहीं बनना चाहती थी। मैं ही तुम्हें यन्त्रणा दे रहा हूँ। अपने पाप को पहचान श्रीमती नैन्सी ने प्रायश्चित किया एवं यह मानसिक तनाव दिमाग से निकलते ही वे स्वस्थ हो गयीं।

इसी तरह रसौली (एक प्रकार की उभरी हुई गाँठ की बीमारी) की मरीज एक स्त्री एक बार श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट के पास गई और अपने रोग की चिकित्सा के लिए कोई औषधि देने की प्रार्थना करने लगीं। श्रीमती ट्रस्ट अमेरिका की विश्वविख्यात सन्त हैं, जिन्होंने धर्म और अध्यात्म को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न ही नहीं किया, अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों से सैकड़ों पीड़ित और पतित लोगों का भला भी किया है। उनके प्रवचन और आध्यात्मिक गवेषणायें सुनने के लिए बड़े-बड़े वैज्ञानिक तक पहुँचते थे।

ट्रस्ट ने उस महिला को बहुत ध्यान से देखा और कहने लगीं—आप नहीं समझ सकतीं पर जिन्हें प्रकाश की गति और अवस्था का ज्ञान होता है वे यदि कुछ न भी बतायें तो भी, किसी के भी अन्तरंग की बात जान लेते हैं। आपके शरीर में मुझे कुछ काले रंग के अणु दिखाई देते हैं, जो इस बात के प्रतीक हैं कि आपके जीवन में कहीं कोई त्रुटि, विकृति या ऐसी अनैतिक प्रवृत्तियाँ हैं, जो आप दूसरों से छिपाती रहती हैं। आप प्रायश्चित्त का साहस कर सकें तो हम विश्वास दिलाते हैं कि आपका यह छोटे से छोटा रोग तो क्या भविष्य में सम्भावित कठिन रोगों का निवारण भी उससे हो सकता है।

उस महिला की तरह सैकड़ों लोगों के जीवन विकारग्रस्त होते हैं। मन में दूषित— काम, क्रोध, लोभ, मद-मत्सर आदि विकार उठते रहते हैं, उनसे प्रेरित जीवन से जो पाप सम्भव हैं, उन्हें लोग एक सामाय ढर्रे की तरह अपना लेते हैं। काम-वासना से पीड़ित व्यक्ति किसी भी नारी को देखकर उत्तेजित हो उठता है, क्रोधी व्यक्ति हर किसी को दुश्मन की तरह देखता है और वैसा ही कटु व्यवहार करता है, लोभी व्यक्ति ही चोरी से लेकर रिश्वत, छल-कपट और मिलावट तक करते हैं, भले ही उससे समाज का कितना ही अहित क्यों न हो ? जब उससे यह कहा जाता है कि पाप और विकारों का कर्म भोग भोगना पड़ेगा। यह पाप ही आधि-व्याधि, रोग और बीमारियों के रूप में फूटते हैं। इन्हें अभी सुधार लो, अभी प्रायश्चित्त कर पाप के बोझ से मन को हल्का कर लो तब वह इन विचारों को दकियानूसी पिछड़ापन कहता है और तर्क देता है कि विकास के लिए संघर्ष अनौचित्य प्राकृतिक सत्य है, प्रकृति यही सब कर रही है मनुष्य क्यों न करें ? वह कर्मफल के सिद्धान्त को मानने को तैयार नहीं होता। विकारों को वह विकार न मानकर शारीरिक आवश्यकतायें मानता और उनकी किसी भी उपाय से पूर्ति— धर्म। इन मान्यताओं के कारण ही आज न केवल सामाजिक व्यवस्थायें विशृंखलित हुईं वरन् लोगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के जीवन रोग—शोक से भरते चले जा रहे हैं। पाप और मनोविकार सचमुच रोग और भविष्य के लिए अन्धकार उत्पन्न करते हैं यह बात अब न केवल तर्कसंगत रही, वरन् विज्ञान सम्मत भी हो गई।

श्रीमती ट्रस्ट के समझाने से उस महिला पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने अपने जीवन के सारे दोष स्वीकार किये और बताया कि उसे क्रोध बहुत आता है, इसी दुर्भाव के कारण वह अनेकों पाप कर चुकी है। उसने कई बार चोरी की है और झूँठ-मूँठ कहकर लोगों को लड़ाया भी। उसने अपने सारे ऐब स्वीकार कर लिए इसके बाद ट्रस्ट के कहने से उसने कुछ दिन उपवास किया, उससे उसकी गाँठ भी अच्छी हो गई और मन की अशान्ति भी दूर हो गई। श्रीमती ट्रस्ट ने इसी तरह एक नवजात शिशु के रोग उसकी माँ से प्रायश्चित्त कराकर ठीक किये। उन्होंने ऐसे सैकड़ों व्यक्तियों से निष्कासन तप कराकर उन्हें शरीर और मन से शुद्ध बनाया, वह सब उपरोक्त वैज्ञानिक सत्य का ही प्रतिफल था।

अपराध यदि व्यक्त है, किसी की चोरी की गयी, किसी की हत्या हुई, मिलावट के अपराध में पकड़ा गया, रिश्वत में मिले नोटों में किसी अधिकारी के हस्ताक्षर थे उसने आकर पकड़ लिया। ऐसे अपराधी जेल भेज दिये जाते हैं, किसी-किसी को शारीरिक दण्ड देकर छोड़ दिया जाता है और मान लिया जाता है कि उससे अपराधी का दोष परिमार्जन हो गया।

भारतीय मान्यतायें इससे भिन्न हैं। शाश्वत जीवन की कल्पना और अकर्म के फल भोग के लिए बार-बार जीव-शरीरों में आने वाली अमर चेतना यदि स्वतः अपने पापों का, अपराधों का परिष्कार नहीं कर लेती तो वह निरन्तर अधोगति की ओर अग्रसर होती चली जाती है और नरक के पतन के गड्ढे में जा गिरती है। कूकर, शूकर योनियों में जन्म, सर्प और भेड़िये के शरीर में आना आत्म-चेतन के गुप्त मन की वह प्रेरणायें होती हैं, जो उसे शारीरिक और मानसिक पाप करने की प्रेरणा देती रहती हैं। शास्त्रकार ने उसका उपाय बताते हुए लिखा है—

एतैर्द्विजातीयः शोध्या व्रतैरविष्कृतैनसः।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधते।।

—मनुस्मृति ११/२२६

प्रकट पाप की शान्ति के लिए द्विजों को पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रत करना चाहिए और गुप्त पाप की शान्ति के लिए मन्त्रों का जप और होम करें।

पाप कैसा भी हो उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति स्वयं ही होता है। एक बार डॉ० सिगमंड फ्रायड से किसी ने पूछा—स्वप्न कौन दिखाता है, तो फ्रायड ने छूटते ही उत्तर दिया—मनुष्य का मन। उन सज्जन का अभिप्राय यह था कि मनुष्य सामाजिक जीवन की अनेक परिस्थितियों से घिरा होता है, कोई उसे डाँट देता है तो गुस्सा हो जाता है, कोई कामुक प्रदर्शन करता है तो मन में काम वासना के विकार उठ खड़े होते हैं, खाने-पीने का भी प्रभाव पड़ता है यह सब मिलकर स्वप्न में प्रभाव डालते हैं इसलिए स्वप्न का कारण व्यक्ति के मन को समुचित दृष्टि में एकपक्षीय निर्णय था किन्तु विचारक फ्रायड उस मत के नहीं थे। यद्यपि काम जैसे नाजक विज्ञान का भी वे शालीन विश्लेषण नहीं कर पाये तथापि पाप के प्रति उनका विवेचन भारतीय विचारकों के विवेचन से मेल खाता है पाप और अपराध किसी और कारण से नहीं, व्यक्ति की अपनी मानसिक कमजोरी से होते हैं और उनका दण्ड भुगते बिना वह उस मानसिक दुर्बलता से बच नहीं सकता। यह कहना गलत है कि इन्द्रिय-लिप्सायें और महत्वाकांक्षायें व्यक्ति की प्राकृतिक प्रेरणायें हैं पाप नहीं। मनोविज्ञान अभी उस स्थिति में तो नहीं पहुँच सका, जिससे इस जन्म के अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार ही अगले जन्म होने की बात साबित हो पर गुप्त मन के विकारों के दुष्परिणाम अब स्पष्ट हो चुके हैं। २२ दिसम्बर, १९५८ को लन्दन से प्रकाशित होने वाले "संडे टाइम्स" में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सदस्य श्री मांटगुमरी हाइड ने जो कि अमरीका के अपराधी समाज का अध्ययन करने गये थे—एक लेख छापा, उसमें लिखा था—आज संयुक्त राज्य अमेरिका में जो सबसे अधिक वस्तु परेशान किये है, वह है बाल अपराध की समस्या। वहाँ २० वर्ष से कम आयु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बच्चे चाहे जब चाहे जिसे गोली मार देते हैं। लॉस ऐजिल्स में एक लड़के ने एक लड़की को केवल इसलिए गोली मार दी क्योंकि वह एक ऐसी लड़की के चेहरे से मिलती-जुलती थी जो उसके एक प्रतिद्वन्द्वी लड़के के घर की थी। उस लड़की को देखते ही उसे कुढ़न हुई और उसने गोली मार दी। ओहिया की एक बाल अपराध अनुसंधान समिति ने ५४ बाल अपराधियों के स्वभाव का परीक्षण कर, पाया कि ५३ अपराधी ऐसे थे, जिन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे अज्ञात प्रेरणा से अपराध किया। इन अपराधों का कारण माता-पिता की भावुक अस्थिरता को, पारिवारिक असंगठन और मनोमालिन्य को दिया जाता है किन्तु हर जगह ऐसा नहीं होता। बच्चों के जन्मजात संस्कारों का अपना महत्त्व होता है और उसकी वैज्ञानिकता से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। ऐसे अपराधों के व्यापक अध्ययन और अमेरिकन सुधार (करेक्शन) संघ में ३५ वर्षों तक निरन्तर काम करने वाले महामन्त्री श्री एडवर्ड कॉस ने भी यही निष्कर्ष निकाला और कहा—अपराध वृद्धि का कोई सरल उत्तर दे सकना कठिन है। अधिक से अधिक उसके लिए माता-पिता और परिवार को ही दोष दिया जा सकता है पर कुछ अप्रकट भी है, उसका मूल्य और महत्त्व कम नहीं आंका जाना चाहिये।

मन एक प्रकार की विद्युत है, जिस प्रकार संसार के सभी पदार्थ नष्ट नहीं होते केवल रूपान्तरित होते हैं मन भी नष्ट नहीं होते। मनुष्य अपने व्यक्ति जीवन में जो भी विचार और कर्म करता है वह सब संस्कार रूप से मन में जमते और अपनी गाँठ मजबूत बनाते चले जाते हैं। ऊपर से देखने पर मनुष्य वही रहता है पर शारीरिक परिवर्तन के समान ही उसके मानसिक संस्कार परिवर्तन भी प्रौढ़ होते चले जाते हैं और यदि उनका समय रहते निदान नहीं कर लिया जाता तो वे काले अणुओं के रूप में जीवात्मा के साथ चले जाते हैं, वही कुसंस्कार अगले जन्मों में मनोविकार, अपराध भावना आदि के रूप में फूट पड़ते हैं और मनुष्य जीवन को अज्ञात गन्दगी की ओर बढ़ा ले जाते हैं ऊपर से देखने पर मनुष्य कितना ही अच्छा क्यों न दिखाई देता हो उसकी असलियत उसके मन में छिपी रहती है। वही व्यक्ति के संस्कारों में अज्ञात कल्पना और विचारों के रूप में स्वप्नों म अभिव्यक्त होती रहती है। वास्तव में इन संस्कारों का विश्लेषण ही सच्चा मनोविज्ञान हो सकता है। केवल मात्र किसी के बाह्य स्वभाव का अध्ययन मनोविज्ञान नहीं।

हिटलर युवावस्था में साहसी, धीर और वीर प्रकृति का व्यक्ति था किन्तु अपनी महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित होकर जब उसने हिंसा बरतनी शुरू की, हजारों निरीह व्यक्तियों को उसने मौत के घाट उतार दिया तो दूसरों का कितना अनर्थ हुआ, इससे अधिक उसने अपना पतन कर लिया। १९४५ में जबकि उसे आत्मरक्षार्थ एक बंकर में भूमिगत होना पड़ा, तब उसकी स्थिति यह थी कि वह अपने बड़े से बड़े विश्वासपात्र को भी सन्देह से देखता। वह इतना भयभीत रहता था कि ताजी हवा लेने के लिए बंकर से ऊपर भी नहीं आता था। मार्शल गोरिंग को उसने जर्मन सेना का प्रधान सेनापति अपना वफादार जानकर नियुक्त किया था, उसने विद्रोह किया भी नहीं था पर उसने ग्रीस से उसके देशद्रोही होने की बात कही। ग्रीस सारी स्थिति जानता था पर भयवश खुद भी सच्ची बात नहीं कर सकता था। हिटलर का मानसिक सन्ताप इतना अधिक बढ़ गया कि उसके पैर में लकवा मार गया। दो दिन पूर्व तक उसके बाल काले थे पर एक दिन में ही उसके बाल सफेद कैसे पड़ गये इस बात पर स्वयं उसकी प्रेमिका इवा और गोबेल्स की पत्नी भी चकित हो उठी थीं। अन्ततः अपनी मानसिक स्थिति नियन्त्रण से बाहर पाई तो हिटलर को आत्म-हत्या ही उससे बचने का एकमात्र उपाय सूझा और उसने आत्महत्या कर ली।

मन के कुसंस्कारों को छुपाना पाप का भी पाप है। इसलिए भारतीय आचार्यों ने निष्कासन तप का सिद्धान्त बनाया था। लोगों को चान्द्रायण आदि कराते समय उनसे सारे पाप कबूल कराये जाते थे। देखने में प्रायश्चित्तकर्त्ता को अपना स्वाभिमान-सा नष्ट होता दीखता है, उससे औरों की हँसी का डर भी रहता है किन्तु भूलें स्वीकार कर लेने से मन में जो गाँठें पड़ सकती थीं पड़ने से बच जाती हैं और मनुष्य एक व्यवस्थित जीवन के लिए शुद्ध, संस्कारी जीवन के लिए तैयार हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

१६ जुलाई १९६० का बम्बई का एक समाचार है—३५ वर्ष पूर्व सिन्ध हैदराबाद में देश विभाजन के समय मजिस्ट्रेट बी० ए० गहानी की अदालत में एक केस आया—गहानी ने यह बात स्वयं ही तब बताई जब वे बम्बई के मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट थे। केस एक वृद्ध के खिलाफ था—सुनवाई की तारीख के दिन श्री गहानी फैसला तैयार नहीं कर सके थे। वृद्ध बीमार था इसलिए वह स्वयं नहीं आ पाया था, तारीख बढ़ाने के लिए लड़के को भेज दिया लड़के को तारीख बढ़ाने की प्रार्थना नहीं करनी पड़ी। मजिस्ट्रेट ने तारीख बढ़ाने की घोषणा करा दी। वृद्ध ने उसका अर्थ यह लगाया कि फैसला उसके विपरीत गया होगा तभी तारीख बढ़ाई गई। इस सदमे से उसकी मृत्यु हो गई। अगली तारीख में जब मजिस्ट्रेट ने उसे निर्दोष घोषित किया, तब लड़के ने बताया कि वह तो उसी दिन मर गये। इससे मजिस्ट्रेट के मन में अपने छिपाव का मनस्ताप रहने लगा। २५ वर्ष तक इस मनोव्यथा की स्थिति में रहने के बाद जब बोझ असह्य हो चला तो उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपनी भूल स्वीकार की, उन्हें तभी अपनी मनोव्यथा से मुक्ति मिली। भले ही अकर्तव्य के लिए उन्हें उपहास और फटकार ही क्यों न मिली हो। इसके साथ ही यदि उपवास या व्रत आदि कर लिया जाता तो दोष और भी शान्त हो जाता। अरब के प्रसिद्ध हकीम श्री इब्न-सीना ने अपनी पुस्तक "कानून" में एक दिलचस्प उदाहरण दिया है जो **"पूर्व जन्म कृतं पापं व्याधिरूपेण तिष्ठति"** वाली भारतीय मान्यता का समर्थन करता है। गजनी का महमूद इब्नसीना को अपने पास रखना चाहता था। पर जब इब्नसीना ने इनकार कर दिया तो उसने बल प्रयोग करना चाहा। इब्नसीना हर्केनियाँ भाग गये। वहाँ का शासक बीमार था जिसे कोई भी अच्छा नहीं कर सका था। इब्नसीना उसे देखने गये। नब्ज पकड़कर बोले—आप अनेक शहरों के नाम बोलिये। एक खास शहर का नाम लेने पर रोगी की नब्ज फड़की। फिर एक ऐसा आदमी बुलाया गया, जो उस शहर की हर गली को जानता हो। इस बार गलियों के नाम पुकारे गये। एक विशेष गली का नाम लेने पर फिर वैसी ही नब्ज फड़की। इस तरह इब्नसीना ने उस युवती का पता लगा लिया जिसे शाह ने देखा था और उसे ब्याहता बनाना चाहता था, पर उसे जानता नहीं था। मन के अज्ञात सागर में कहाँ के किस जन्म के संस्कार भरे पड़े हैं, यह इस उदाहरण से स्पष्ट है, हमारे शरीर की हर ज्ञात-अज्ञात क्रिया पूर्व कृत कर्म और विचारणा के आधार पर चलती है इसलिए जीवन की शुद्धता सुख-शान्ति का आधार ही यही है कि मन शुद्ध हो, सात्त्विक विचारों वाला संकल्पशील हो।

रवायम्भु मुनि ने तथा अन्य महर्षियों ने भी बड़े पापों के बड़े प्रायश्चित्त और छोटे-छोटे पाप-कर्मों के छोटे प्रायश्चित बतलाये हैं।

पश्चात्तापः पापकृतां निष्कृतः परा।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम्।।
पश्चात्तापेनैव शुद्धिःप्रायश्चित्तं करोति सः।
यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम्।।
प्रायश्चित्तमधीकृत्य विधिवद्भिर्भय पुमान्।
स याति सुगतिं प्रायः पश्चात्तापी न संशयः।।

—शिवपुराण

पश्चात्ताप ही पापों की परम निष्कृति है। विद्वज्जनों ने पश्चात्ताप से सब प्रकार के पापों की शुद्धि होना कथन किया है। पश्चात्ताप करने से पापों का शोधन न हो, उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये। विद्वानों ने इससे सब पापों का शोधन होना कहा है। विधिपूर्वक अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त करने पर भी मनुष्य पापरहित नहीं हो पाता। परन्तु पश्चात्ताप करने वाले को सुगति की प्राप्ति होती है।

विकर्मणा तप्यमानः पापाद् विपरिमुच्यते।
न तत् कुर्यां पुनरिति द्वितीयात् परिमुच्यते।।

—महाभारत वन पर्व

जो मनुष्य पापकर्म बन जाने पर सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करता है, वह उस पाप से छूट जाता तथा फिर कभी ऐसा कर्म नहीं करूँगा' ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेने पर भविष्य में होने वाले दूसरे पाप से भी बच जाता है। वस्तुतः शारीरिक एवं मानसिक आधि-व्याधियाँ अपने ही कुविचारों एवं दुष्कृत्यों की प्रतिक्रिया मात्र हैं। मन के अचेतन परतों में कुविचारों एवं दुर्भावों के सूक्ष्म-संस्कार अंकित होते रहते हैं तथा कालान्तर में रोग-शोकों के रूप में फूट-फूट कर बाहर निकलते हैं। प्रायश्चित्त प्रक्रिया को अपनाने से ही इनसे छुटकारा मिल पाना संभव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किए हुए पापों का प्रायश्चित्त

मनुष्य को विवेक बुद्धि इसलिए मिली है कि नीति और सदाचार की मर्यादाओं का पालन करते हुए सज्जनता के मार्ग पर चले। मनुष्य जीवन के गौरवास्पद पद का उत्तरदायित्व यही है कि वह अपनी गतिविधियों को आदर्श और अनुकरणीय रखे। इसमें यदि चूक होती है तो उसे अपराध ही कहा जायगा। अपराधियों का परिमार्जन दण्ड से होता है।

पाप कर्म बन पड़े तो उनके परिमार्जन के लिए राजदण्ड एवं समाज दण्ड का विधान है। दुष्टता करने पर समाज में निन्दा-भर्त्सना होती है। असहयोग, बहिष्कार उठता है। प्रतिरोध की प्रताड़ना भी सहनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त शासकीय दण्ड विधान की पकड़ में आ जाने पर उसे जेल, जुर्माने आदि की सजा भुगतनी पड़ती है। चतुरता के आधार पर कोई समाज-दण्ड और राजदण्ड से बच भी जाय तो उसके लिए ईश्वरीय दण्ड मौजूद है। आधि दैवक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में ईश्वर प्रदत्त प्रताड़नाएँ मनुष्य पर बरसती हैं और पाप परिष्कार का पथ-प्रशस्त करती हैं। आत्मदण्ड तो अपराधी को निरन्तर ही मिलता रहता है। छिपा लेने पर पाप का छल, दुराव, मानसिक ग्रन्थियाँ बनाता है और उससे तरह-तरह की शारीरिक और मानसिक व्यथा, बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। आत्म-धिक्कार या आत्म-प्रताड़ना में अन्तःकरण निरन्तर जलता रहता है। पापी की अन्तः चेतना निरन्तर उद्विग्न रहती है और उसे क्षण भर के लिए भी शान्ति-सन्तोष का लाभ मिल सकना सम्भव नहीं होता।

जीवन में बन पड़े पाप-कर्मों का स्वेच्छा-पूर्वक दण्ड स्वीकार करना आध्यात्मिक ईमानदारी और साहसिकता का चिन्ह माना गया। इसे प्रायश्चित्त विधान कहते हैं। समाज की क्षति-पूर्ति करना ही उसका उद्देश्य है। कोई खजानची बैंक का गबन करके भागे और वारण्ट निकलने पर राजदण्ड से बचना चाहे तो पहला कार्य यही है कि जो राशि हाथ में है, उसे वापिस जमा किया जाय और जो खर्च हो गया है; उसे किश्तों में या अन्य प्रकार वापिस देने का रास्ता खोजा जाय। इतना किये बिना राज दण्ड से बचना सम्भव नहीं हो सकता। निजी रूप से अपने पापों के दण्ड से छुटकारा पाने के लिए इसी स्तर का प्रायश्चित्त करना पड़ता है। क्षतिपूर्ति उसका मुख्य सिद्धान्त है। सड़क पर गड्ढा खोदकर उसमें दूसरों के गिरने का सरंजाम किया है तो उसका प्रायश्चित्त यहीं से आरम्भ होगा कि उस गड्ढे को पाटकर जमीन को एक स्तर किया जाय। हमें किये हुए पापों का स्मरण करना चाहिये। उनके लिए लज्जित और दुःखी होकर पश्चात्ताप करना चाहिए, पर बात इतने से ही नहीं बन जाती। क्षति-पूर्ति के लिए प्रायश्चित करना भी आवश्यक है। जो अनीतिपूर्वक लिया है, उसे वापिस किया जाय और जो आक्रमण, आघात किये हैं। उनका सन्तुलन बनाने के लिए उसी स्तर परमार्थ जुटाये जायें।

सोचा जाता है कि छुटपुट पूजा-पाठ गंगा, स्नान, उपवास जैसे क्रिया कृत्य कर लेने अथवा क्षमा मांग लेने से पाप-कर्मों के दण्ड से निवृत्ति मिल सकती है। यह विश्व-व्यवस्था के प्रतिकूल है। यदि ऐसा ही विधान रहा तो फिर किसी भी पाप-कर्म कर्त्ता को इन्हीं छुटपुट उपचारों से दण्ड व्यवस्था को झुठलाने का अवसर मिल जाता। तब किसी को भी पाप-कर्म करने में संकोच न करना पड़ता। जब क्षमा माँगने के तनिक से उपचार कर लेने से ही छुटकारा मिल सकता है तो निर्भय होकर प्रचुर परिमाण में पाप करने का सामाजिक लाभ उठाने के आकर्षण को कोई क्यों छोड़ेगा ? ऐसी दशा में तो हर कोई अनाचार की नीति अपनाने में ही लाभ सोचेगा। राजदण्ड, समाज दण्ड से चतुरता के बलबूते लोग प्रायः बच निकलते हैं। आत्म दण्ड और ईश्वरीय दण्ड से बच निकलने के भी यदि उपाय मिल गये तब तो फिर दुष्कर्मों को पूरी छूट ही मिल गई समझनी चाहिए।

प्रायश्चित ही एक मात्र वह विधान है, जिसे अपनाकर हम अपनी आदर्शवादिता में निष्ठा होने का प्रमाण देते हैं। दुष्कर्म करने में जितना साहस किया गया था उतना ही शौर्य उसका दण्ड भुगतने के लिए स्वेच्छापूर्वक आगे आने के रूप में प्रदर्शित करना चाहिए। प्रायश्चित्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऐसी ही आध्यात्मिक साहसिकता है। इसमें ईमानदारी, सच्चाई और बहादुरी के वे सभी पक्ष जुड़े हुए हैं, जिनके आधार पर किसी के आत्मिक परिवर्तन परिष्कार एवं कायाकल्प को वास्तविक माना जा सकता है।

आवश्यक नहीं कि जिस व्यक्ति को क्षति पहुँचाई हो उसकी उसी रूप में पूर्ति की जाय। संभव है वह व्यक्ति अब न रहा हो जिसे कष्ट पहुँचाया गया अथवा पतित किया गया था। सम्भव है जो लिया गया था, उसे उसी रूप में वापिस करना अब न बन पड़े। संभव है उसे अब उस वस्तु की आवश्यकता ही न रही हो जो अनीतिपूर्वक हथियाई गई थी। किसी को पहुँचाई गई चोट अच्छी हो गई तो अब उसी चोट को फिर से ठीक करने के लिए क्या किया जाय ? उद्देश्य यह समझना है कि क्षतिपूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि जिसका जो अपहरण, उत्पीड़न किया गया है, उसे उसी व्यक्ति को उसी रूप में लौटाना होगा। वापिस की बात सोचते हुए हमें यह मानकर चलना होगा कि समाज एक पूरा शरीर है और व्यक्ति उसके घटक मात्र हैं। व्यक्ति विशेष को पहुँचाई गई हानि वस्तुतः पूरे समाज की हानि है। ताल में कहीं भी ढेला फेंका जाय उसकी लहरें पूरे तालाब में फैलती हैं। पाप और पुण्य की प्रतिक्रिया भी पूरे समाज को हानि या लाभ पहुँचाती है। शरीर के किसी भी अंग को चोट पहुँचाई जाय दुखी सारा शरीर होता है। अपमान का प्रहार किसी भी अंग पर हो मानहानि पूरे शरीर की मानी जाती है। ठीक इसी प्रकार पाप कर्म करके किसी व्यक्ति को पीड़ा अथवा पतन के गर्त में धकेला गया हो वह पूरे समाज का ही अहित हुआ माना जायगा। मनुष्य परस्पर एक-दूसरे के साथ आत्मिक स्तर पर जुड़े हुए हैं। शरीर में भी तो असंख्य जीवाणु हैं पर उनकी स्वस्थता, रुग्णता पूरे शरीर की स्थिति के अनुरूप बनी रहती है। इसी प्रकार हमारे पाप- पुण्यों का प्रभाव भी समस्त विश्व पर पड़ता है। मृतक श्राद्ध में स्वर्गीय आत्मा से शान्ति पहुँचाने के लिए दान-पुण्य किन्हीं अन्य व्यक्तियों को किया जाता है। वह सद्भाव प्रदर्शन इस आकाश-सागर में विचरण करते हुए उस दिवंगत प्राणी तक भी पहुँचता है और उसका भी हित साधन करता है। ठीक उसी प्रकार हमारे पाप पूरे समाज का स्तर गिराते हैं और पुण्यों की प्रतिक्रिया भी व्यापक क्षेत्र में होती है। एक जगह जली अँगीठी रख देने पर पूरा कमरा गरम हो जाता है। एक जगह किये गये सत्कर्म-दुष्कर्म भी व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।

प्रायश्चित्त के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए हमें अब तक के अपने कायिक, वांचिक, मानसिक पापों की क्षतिपूर्ति करने के लिए परमार्थ की पुण्य-परम्पराओं का अवलम्बन करना चाहिए। अनीति उपार्जन धन यदि खर्च हो और उसके लौटाने की सुविधा न हो तो फिर समय रूपी सम्पत्ति को लोकमंगल के लिए लगाया जा सकता है। पैसे के बदले श्रम और श्रम के बदले पैसा मिलने की प्रथा प्रचलित है। धन अपहरण का बदला सेवा-कार्यों में उतने ही मूल्य का समय देकर प्रायश्चित्त हो सकता है। इसी प्रकार यदि किसी को शारीरिक, मानसिक कष्ट पहुँचाया गया है तो किन्हीं शुभ कार्यों में धन देकर भी उसकी क्षतिपूर्ति हो सकती है। किन्हीं को दुराचरण के गर्त में धकेला हो तो अन्यों को सदाचरण की दिशा में मोड़कर उसके लिए आवश्यक सुविधाएँ देकर अपने द्वारा किये गये दुराचरणों का प्रायश्चित्त-परिमार्जन हो सकता है।

अपने देश में दुराचार का पाप का अर्थ प्रायः व्यभिचार भर मान लिया जाता है जबकि मानवीय सदाचार की सभी मर्यादाओं का उल्लंघन पाप-कर्मों की श्रेणी में आता है। मन, वाणी और कर्म से किसी भी स्तर की अपनाई गई अवांछनीयता पाप कर्मों की श्रेणी में ही आती है। लेखा-जोखा लेने पर उसका परिमाण बढ़ा-चढ़ा और बहुत भारी ही प्रतीत होगा। इसका प्रायश्चित्त हम भावी जीवन को परमार्थ परायण बनाकर ही कर सकते हैं। पुण्य कमायें तो उस उपार्जन से पिछले पापों का ऋण चुके, भार उतरे। आत्मिक प्रगति के मार्ग में कषाय-कल्मषों के अवरोध ही सबसे बड़े अवरोध हैं। इन्हें हटाये बिना आत्मोत्कर्ष का रथ रुका ही पड़ा रहता है। अंगारे के ऊपर जमी हुई राख की परत उसकी चमक और उष्णता को दबाये

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहती है। उस परत के हटते ही अंगारा अपने पूर्व रूप में आ जाता है। कषाय-कल्मषों की शारीरिक, मानसिक पापों की परत यदि हटाई जा सके तो स्वच्छ अन्तःकरण से आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर-साक्षात्कार का लाभ मिल सकता है। दर्पण को शुद्ध बनाकर ही तो उसमें स्पष्ट मुँह देखा जा सकता है। दिव्य दर्शन के लिए वह आन्तरिक पवित्रता आवश्यक है, जो मात्र कल्पना या छुट-पुट कर्मकाण्डों में नहीं वरन् पापों का प्रायश्चित्त करने की समर्थ साधना द्वारा ही उपलब्ध होती है।

भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए भी तो पुण्य-परमार्थ की पूँजी संचित होनी चाहिए। पाप भार से निवृत्ति और पुण्य-सम्पदा का संचय यह दोनों ही कार्य आत्मिक प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक हैं। इनकी व्यवस्था परमार्थ-परायण जीवनक्रम अपनाने से ही सम्भव हो सकती है। भावी जीवन की योजना, हमें इसी स्तर की बनानी चाहिए जिससे सेवा कार्य को सुनिश्चित आदर्श के रूप में और लोक सेवी कार्यक्रमों को व्यवस्थित प्रक्रिया के रूप में दृढ़ निश्चय और प्रगाढ़ आस्था के साथ अपनाया जाय।

प्रायश्चित्त का पूर्वार्द्ध-पश्चात्ताप

चान्द्रायण साधना का पूर्वार्द्ध है-पश्चात्ताप और उत्तरार्द्ध है क्षतिपूर्ति। दोनों को मिला देने पर ही प्रायश्चित्त की वह समग्र प्रक्रिया पूर्ण होती है जिसके आधार पर इस जन्म के एवं पूर्व जन्मों के संचित क्रियमाण दुष्कृत्यों का निराकरण होता है। उपवास भी उस चतुर्विध तपश्चर्या का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, पर इतने भर से ही समग्र उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। जीवन निर्वाह में भोजन महत्त्वपूर्ण तो है, पर उसके अतिरिक्त भी जल, साँस तथा विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। उपवास को भोजन माना जाय तो चान्द्रायण के साथ जुड़े हुए अन्य अंग-अनुशासनों को भी कम महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए।

मनुष्य के किए हुए दुष्कर्म ही सांसारिक सुख और आत्मिक प्रगति में प्रमुख बाधा बनकर खड़े रहते हैं। पैर में काँटा लग जाने पर सारे शरीर को कष्ट होता है और नींद नहीं आती। जब तक उसे निकाल बाहर न किया जाय तब तक चैन नहीं पड़ता। विषैला पदार्थ खा लेने पर पेट में जलन होती है, भारी कष्ट होता है और मृत्यु संकट सामने आ खड़ा होता है। वमन-विरेचन द्वारा उसे विभिन्न नाच-नाचने, क्रीड़ा-कौतुक करने के लिए विवश करती रहती है। इतना ही नहीं वह परिस्थितियाँ भी इतनी जटिल उत्पन्न कर देती है जो टाले नहीं टलती। कारण कि इनकी जड़ें अचेतन की गहन परतों में होती हैं। जड़ न कटे तो टहनी तोड़ने से ही वृक्ष के अस्तित्व पर क्या असर पड़ने वाला है।

इन दिनों शारीरिक रोगों की अभिवृद्धि दिन दूनी, रात चौगुनी होती जा रही है। चिकित्सकों, चिकित्सालयों एवं नित नई औषधियों में आँधी-तूफान की तरह बढ़ोत्तरी हो रही है, इतने पर भी उसके नियंत्रण के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते। इस असमंजस का समाधान एक ही है कि मनःक्षेत्र में घुसती-पनपती उन कुत्साओं-कुण्ठाओं का पर्यवेक्षण, निराकरण किया जाय जो न केवल शारीरिक रोगों-मानसिक उद्वेगों के लिए जिम्मेदार हैं, वरन् व्यावहारिक जीवन में भी अनेकानेक विग्रह संकट आये दिन खड़े करती है। मनःस्थिति परिस्थिति के लिए उत्तरदायी है इस तथ्य को समझ लेने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव हो सकेगा कि संकटों का आत्यन्तिक समाधान क्या हो सकता है ?

मनोविज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि शारीरिक रोगों का प्रमुख कारण मनःक्षेत्र में जमे हुए हठीले कुसंस्कार ही होते हैं—हठीले इस अर्थ में कि उन्हें धारण किया हुआ व्यक्ति यह भली-भाँति समझता है कि उसने जो अनुपयुक्तताएँ अपना रखी हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए। इतने पर भी वे स्वभाव के साथ बुरी तरह गुंथ गईं, आदतों के रूप में इस प्रकार परिपक्व बन गई होती हैं कि उन्हें हटाने के सामान्य उपायों से कोई ठोस परिणाम निकलता दिखाई नहीं पड़ता। समझदारी का तकाजा एक ओर, आदतों का हठीलापन दूसरी ओर। यदि इन दोनों की तुलना की जाय तो कुसंस्कारों का हठीलापन ही भारी पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी जानते हैं कि मनुष्य ही है जो मानसिक असंतुलन उत्पन्न करता है और उनके विक्षोभों के फलस्वरूप शरीर के विभिन्न अवयवों की सामान्य कार्य पद्धति में अवरोध उत्पन्न करता है। फलतः बीमारियाँ उसे आ घेरती हैं।

शरीर यात्रा में रक्त-संचार का कितना ही महत्त्व क्यों न हो वस्तुतः उसका नियन्त्रण केन्द्र मस्तिष्क में रहता है। हृदय पोषण देता है यह सही है, उसमें प्रोत्साहन एवं नियमन की क्षमता नहीं, यह कार्य मस्तिष्क का है। उसी के ज्ञान तन्तु मेरुदण्ड के माध्यम से समस्त शरीर में फैलते हैं और निर्देश देकर सारे काम कराते हैं। मस्तिष्क में नींद आने लगे तो अंग-अंग सहज ही शिथिल होते चले जाते हैं। आकुंचन-प्रकुंचन, निमेष-उन्मेष, श्वांस-प्रश्वांस क्रियायें अचेतन-संस्थान के इशारे पर चलती हैं। जीवनी शक्ति भोजन से नहीं वरन् मनोगत साहसिकता और प्रसन्नता के आधार पर मिलती और पनपती है। यदि इस केन्द्र में गड़बड़ी चले तो उसका प्रभाव शरीर के विभिन्न अवयवों पर पड़े बिना रह नहीं सकता।

रोगों की जड़ शरीर में हो तो काय चिकित्सा से सहज सुधार होना चाहिए। पोषण की पूर्ति आहार से होनी चाहिए और विषाणुओं को औषधि के आधार पर हटाने में सफलता मिलनी चाहिए। किन्तु देखा जाता है कि जीर्ण रोगियों की काया में रोग बुरी तरह रम जाते हैं कि उपचारों की पूरी-पूरी व्यवस्था करने पर भी हटने का नाम नहीं लेते। एक के बाद दूसरे चिकित्सक के नुस्खे बदलते रहने पर भी रुग्णता से पीछा नहीं छूटता। इलाज के दबाव में बीमारियाँ रूप-रंग बदलती रहती हैं व जड़ें न कटने से टूटे हुए वृक्ष फिर से नई कोपलों की तरह उगते हैं। जड़ों को खुराक मिलती रहे तो टहनियाँ तोड़ने से भी पेड़ सूखता नहीं है।

रोगों के दो वर्ग हैं—एक आधि दूसरा व्याधि। व्याधि शारीरिक रोगों को और आधि मानसिक रोगों को कहते हैं। ज्वर, खाँसी, दमा, दर्द, अपच, मधुमेह, रक्तचाप आदि को शारीरिक रोगों में गिना जाता है और उन्माद, सनक, मूर्खता, विस्मृति, विसंगतियाँ, उलझन आदि की मानसिक रोगों में गणना होती है। मस्तिष्कीय रोगों की चिकित्सा पागलखाने के डॉक्टर करते हैं और मनःचिकित्सक पूछताछ करके अंतरंग में जमी कुण्ठाओंको उगलवाने और सत्परामर्श देने के उपायों का सहारा लेते हैं। शरीर विज्ञानी उपचार औषध, शल्य कर्म. आदि के द्वारा करते हैं। इनमें आंशिक सफलता भी मिलती है, पर प्रयत्न फिर भी अधूरा ही रह जाता है। वैसा लाभ नहीं मिलता जैसा अभीष्ट है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए मन की उस गहराई तक जाना होगा, जहाँ तक कि शरीर और मन को प्रभावित करने वाले प्रवाहों को उभारने और काम करने की प्रेरणा मिलती है। कुएँ में जो पानी भरा दीखता है, वह उसकी तली में जल फेंकने वाले स्रोतों से आता है। इसी प्रकार मस्तिष्कीय अस्त-व्यस्ततायें चेतना की मूल प्रवृत्ति के मर्मस्थल में से उभरती हैं। मनुष्य के गहन अन्तराल में कुछ आस्थायें जैसी होती हैं। व्यक्तित्व का मूल स्रोत उन्हीं में सन्निहित है।

पौराणिक प्रतिपादन है, कि देवता स्वर्ग में ऊर्ध्वलोक में रहते हैं और दानव भूमि से नीचे पाताल में पतितावस्था में रहते हैं। देवताओं का स्वर्ग लोक आकाश में ऊँचाई पर है। इन्हें उत्कृष्टता और निकृष्टता का लोक कह सकते हैं। लोकों का वर्णन किया गया तो इस प्रकार है मानो ये कोई देश, क्षेत्र हों, पर वस्तुतः वे मनोभूमियों पर हैं और उन्हें दृष्टिकोण भी कहा जा सकता है। स्वर्ग में सुख-सम्पदायें भरी पड़ी हैं और नरक में यातनाएँ ही यातनाएँ हैं। यह यातनाएँ मरने के बाद ही मिलती हों ऐसी बात नहीं है। उनका अनुभव इसी जीवन में, इसी शरीर में भी किया जाता है। शारीरिक व्याधियाँ और मानसिक आधियों को इसी रूप में लिया जा सकता है।

अन्तःकरण की आस्थाएँ ही हैं जो मनुष्य को ऊपर उठने एवं नीचे गिरने की प्रेरणा देती हैं। उसी की प्रतिक्रिया व्यक्तित्व को समुन्नत एवं पतित बनाकर रख देती है। इसी आन्तरिक उत्थान-पतन के आधार पर मनुष्य स्वर्गीय एवं नारकीय दृष्टिकोण विनिर्मित करता है और तदनुसार अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक कष्टों को सहन करना पड़ता है। इतना ही नहीं जीवन के अन्य क्षेत्र भी ऐसी विषम परिस्थितियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भर जाते हैं जिनमें रहने वाला अपने को पग-पग पर असफल, उपेक्षित, तिरस्कृत, दरिद्र और दुर्भाग्यग्रस्त अनुभव करता है।

डॉ० ब्राउन, डॉ० पीले मैगडूगल, हेडफील्ड और डॉ० जुंग आदि अनेक प्रसिद्ध मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने यह माना है कि फोड़े-फुन्सी से लेकर टी० बी० और कैन्सर तक की बीमारियों के पीछे कोई दूषित संस्कार ही कारण होते हैं। मनुष्य बाहर से ईश्वर परायण, सत्यभाषी, मधुर-व्यवहार करने वाला दिखाई देता है पर सच बात यह होती है, कि यदि अन्तर्मन की नैतिकता को दबाकर केवल दिखावे के लिए कुछ किया जाता है तो उसका मन भीतर ही भीतर अन्तर्द्वन्द्व करता है। उस अर्न्तद्वन्द्व के फलस्वरूप ही उसमें रोग पैदा होते हैं। कई बार यह संस्कार बहुत पुराने हो जाते हैं, तब बीमारी फूटती है। पर यह निश्चय है कि बीमारियों का पदार्पण बाहर से नहीं व्यक्ति के मन से ही होता है।

इस कथन की पुष्टि में श्री मैकडोनल्ड अमेरिका का उदाहरण देते हुए कहते हैं-'अमेरिका के बीमारों में आधे ऐसे होते हैं, जिनमें ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, क्रोध, धोखेबाजी आदि भाव प्रभुत्व जमाये होते हैं। जो इस प्रकार मानसिक रोगी होते हैं, वे अपनी भावनाओं का नियंत्रण नहीं कर सकते, उनका व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है, उसी से वे उल्टे काम करते और बीमारियों को बढ़ाते हैं। आगे दुश्चिन्ता की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए श्री मैकडोनल्ड लिखते हैं-"मानसिक चिन्ताओं द्वारा रक्त के अन्दर 'एड्रेनलीन' नामक हारमोन की अधिकता हो जाती है, उसी से श्वांस फूलना, कम्पन, चक्कर आना, बेचैनी, दिल धड़कना, पसीना आना और दुःस्वप्न बनते हैं। दौरे और बड़ी बीमारियाँ भी किसी न किसी मानसिक ग्रन्थि के ही परिणाम हो सकते हैं, जिसे डॉक्टर नहीं जानता, कई बार मनुष्य भी नहीं जानता, पर व्याधियाँ होती मन का कुचक्र ही हैं।"

इस सम्बन्ध में भारतीय मत बहुत स्पष्ट है। यहाँ जीवन को इतनी गहराई से देखा गया है कि आधि-व्याधि के मानसिक कारण पाप-ताप के संस्कार रूप में स्पष्ट झलकने लगते हैं। योग-वाशिष्ट में ऋषि कहते हैं-

यित्ते विधुरते देहः संक्षोभमनुयात्यलम्।

-६ / १ / ८१ / ३०

चित्त में गड़बड़ होने से शरीर में गड़बड़ होती है।

इदं प्राप्तमिदं नेयि जाड्याद्धा घनमोहदाः।
आधयः सम्प्रवर्तन्ते वर्षासु मिहिका इव।।

-६ / १ / ८१ / १६

अन्तर्द्वन्द्व और अज्ञान से मोह में डालने वाले मानसिक रोग पैदा होते हैं, फिर शारीरिक रोग इस तरह पैदा हो जाते हैं, जैसे बरसात के दिनों में मेंढ़क अनायास दिखाई देने लगते हैं।

दुष्काल व्यवहारेण दुष्क्रिया स्फुरणेन च।
दुर्जना संगदोषेण दुर्भावोद्भावनेन च।
क्षीणत्वाद्वा प्रपूर्णत्वन्नाडीनां रन्ध्रसन्ततौ।
प्राणे विधुरतां याते काये तु विकलीकृते।

-६/१/८१/१६

दौस्थित्यकारणं दोषाद्व्याधिर्देहे प्रवर्तते।

अनुचित समय पर अनुचित काम करने से, बुरे लोगों के पास बैठने से मनुष्य मन में पाप और बुरी भावनाओं को स्थान देने लगता है। ऐसा होने पर नाड़ियाँ अपनी सामान्य कार्य-प्रणाली बन्द कर देती है। कुछ नाड़ियों की शक्ति नष्ट हो जाती है, कुछ अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं, जिससे प्राण का बहाव उलटा-पुलटा हो जाता है। प्राण-संचार में गतिरोध उत्पन्न होने पर ही शरीर की स्थिति बिगड़ती और उसमें तरह-तरह के रोग पैदा हो जाते हैं।

आगे चलकर योग वाशिष्ठ ग्रन्थ में इस प्रसंग का और भी अच्छी तरह खुलासा किया गया है-

संक्षोभात्साम्युत्सर्ज्य वहन्ति प्राणवायवः।

-६/१/८१/३२

असमं वहति प्राणे नाड्योयान्ति विसंस्थितिम्।

-६/१/८१/३३

काश्चिन्नाड्यः प्रपूर्णत्वं यान्तिकाश्चिच्चरिक्तताम्।

-६/१/८१/३४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुजीर्णत्वमजीर्णत्व मतिजीर्णत्वमेव वा।
दोषा यैव प्रपात्यन्नं प्राणसंचारदुष्क्रमात्।।
-६/१/८१/३५

तथान्नानि नत्यन्तः प्राणवातः स्वामाश्रयम्।
-६/१/८१/३६

यान्यन्नानि निरोधेन तिष्ठन्त्यन्तः शरीर के।
-६/१/८१/३७

तान्येव व्याधितां यान्ति परिणामस्वभवतः।
-६/१/८१/३८

एवमाधेर्मवेव्याधिस्तस्याभावाच्च नश्यति।।
-६/१/८१/३६

अर्थात् चित्त में उत्पन्न हुए विकार से ही शरीर में दोष पैदा होते हैं। शरीर में क्षोभ या दोष उत्पन्न होने से प्राणों के प्रसार में विषमता आती है और प्राणों की गति में विकार होने से नाड़ियों के परस्पर सम्बन्धों में खराबी आ जाती है। कुछ नाड़ियों की शक्ति का तो स्राव हो जाता है, कुछ में जमाव हो जाता है।

प्राणों की गति में खराबी से अन्न अच्छी तरह नहीं पचता। कभी कम कभी अधिक पचता है। शरीर के सूक्ष्म यंत्रों में अन्न के स्थूल कण पहुँच जाते और जमा होकर सड़ने लगते हैं, उसी से रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार आधि (मानसिक रोग) से ही व्याधि (शारीरिक रोग) उत्पन्न होते हैं। उन्हें ठीक करने के लिए मनुष्य को औषधि की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी यह कि मनुष्य अपने बुरे स्वभाव और मनोविकारों को ठीक कर ले।

साधारणतया समझाने-बुझाने की पद्धति ही सुधार परिवर्तन के लिए काम में लायी जाती है, पर देखा यह गया है कि भीतरी परतों पर जमे हुए कुसंस्कार इतने गहरे होते हैं कि उन पर समझाने-बुझाने का प्रभाव बहुत ही थोड़ा पड़ता है। नशेबाजी जैसी आदतों से ग्रसित व्यक्ति दूसरे अन्य समझदारों की तरह ही उस बुरी आदत की हानि स्वीकार करते हैं। दुःखी भी रहते हैं और छोड़ना भी चाहते हैं, पर उस आंतरिक साहस का अभाव भी रहता है, जिसकी चोट से उस अभ्यस्त कुसंस्कारिता को निरस्तर किया जा सके। इस विवशता से कैसे छूटा जाय ? इसका उपयुक्त उपाय सूझ ही नहीं पड़ता। लगता रहता है कि कोई दैवी दुर्भाग्य ऐसा पीछे पड़ा है जो विपत्ति से उबरने का कोई आधार ही खड़ा नहीं होने देता। पग-पग पर अवरोध ही खड़े करता और संकट पटकता भी वही दीखता है। यह दुर्भाग्य और कोई नहीं, अपने अंतरंग पर छाये हुए कषाय-कल्मष कुसंस्कार ही हैं, जो अभ्यास और स्वभाव का अंग बन जाने के कारण छुड़ाये नहीं छूटते और पटक-पटककर मारते हैं। नरक के यमदूतों जैसा त्रास देते हैं। इस विषमता को उलटने का समर्थ उपचार आंतरिक परिशोधन ही है। इस अन्तस कायाकल्प के लिए जितने भी उपाय खोजे गये हैं, उनमें तत्वदर्शियों ने अपने अनुभवों के आधार पर साधना तपश्चर्या को अत्यन्त प्रभावशाली पाया है। इनमें चान्द्रयण साधना को तो और भी अधिक महत्त्व दिया गया है। दुष्कृत्यों के निवारण की सर्वश्रेष्ठ पद्धति अध्यात्म चिकित्सा ही है, यह तथ्य भली-भाँति समझ लिया जाय।

कुकृत्यों को शासकीय एवं सामाजिक नियंत्रण के आधार पर बहुत कुछ काबू में रखा जा सकता है। मानसिक दुश्चिन्तन को दूरदर्शी विवेकशीलता के सहारे घटाया या हटाया जा सकता है, पर इतने से भी कुछ काम चलने वाला नहीं है क्योंकि प्रेरणाओं का उद्गम स्रोत तो अन्तःकरण में उठने वाली दुर्भावनाएँ, आदर्शों, के प्रति अनास्थाएँ ही होती हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष में उसी की चित्र-विचित्र भूमिकाएँ अनेकानेक कुकर्मों एवं दुर्घटनाओं के रूप में सामने आती रहती हैं। वास्तविक उपचार इसी क्षेत्र का होना चाहिए।

शरीर की रुग्णता, मन की उद्विग्नता, आर्थिक दरिद्रता, व्यक्तित्व का पिछड़ापन, पारिवारिक मनोमालिन्य सम्पर्क क्षेत्र का विग्रह, साथियों की अवमानना जैसे संकटों के कारण तो सामयिक भी होते हैं और उनके लिए दोषी कइयों को ठहराया जा सकता है किन्तु वास्तविकता तलाशने पर प्रतीत होता है कि यह समस्त संकट एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, वे एक ही भानुमती के पिटारे से निकले हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विष वृक्ष की जड़ें कटनी ही चाहिए, टहनी मरोड़ने भर से कुछ काम चलने वाला नहीं है। न तो चिकित्सक के काबू में रोग आने वाले हैं और न उपदेशक, मनोवैज्ञानिक मानसिक विक्षोभों का समाधान कर सकते हैं। क्योंकि वे जिस उद्गम स्रोत से निकलते हैं, वहाँ उभार उफनता ही रहा तो बाहरी रोकथाम से क्या बनेगा, एक छेद रोकते-रोकते दूसरा फूट पड़ेगा, मेंड़ बाँधते और टूटते रहने का सिलसिला तब तक चलता ही रहेगा, जब तक कि उफान उत्पन्न करने वाला स्रोत बन्द नहीं हो जाता।

शरीर और मन के रोगों की रोकथाम के लिए कई प्रकार के उपचार, उपकरण एवं विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकते हैं किन्तु अन्तःस्थल की गहराई में पहुँचकर वहाँ कुछ उलट-पुलट करनी हो तो फिर अध्यात्म चिंतन एवं साधनात्मक उपचार ही एकमात्र अवलम्बन रह जाता है। 'योग' भावनाओं को उत्कृष्टता के साथ जोड़ता है और 'तप' कुसंस्कारिता को गलाकर सुसंस्कारिता में ढालने वाली भट्टी का प्रयोजन पूर्ण करता है।

इन आवश्यकताओं की पूर्ति जिस साधना उपचारों से हो सकती है, उनमें कल्प-साधना सर्वोपरि है। उसकी निर्धारित कार्य-पद्धति का प्रभाव आरोग्य रक्षा, मनोयोग चिकित्सा के रूप में ही नहीं, एक कदम आगे बढ़कर अन्तराल की गहरी परतों में जमी हुई कुसंस्कारिता को उखाड़ फेंकने की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। एकांगी साधनाएँ तो कितनी ही प्रचलित हैं, जिनमें परिशोधन और प्रगति परिष्कार के दोनों प्रयोजन सिद्ध होते हैं। जो एक होते हुए भी अनेक प्रयोजन सिद्ध कर सके ऐसी अध्यात्म चिकित्सा प्रस्तुत कल्प साधना के अतिरिक्त दूसरी कोई परिलक्षित नहीं होती।

क्षतिपूर्ति-पूर्णाहुति

क्षतिपूर्ति को शास्त्रकारों ने इष्टापूर्ति का नाम दिया है और उसे चान्द्रायण कल्प-साधना के साथ एक अनिवार्य अंग के रूप में जोड़ा है।

क्षतिपूर्ति दो माध्यमों से होती है। (१) समयदान, श्रमदान (२) साधनदान, अर्थदान। श्रमदान के रूप में धर्म प्रचार की पदयात्रा को तीर्थ-यात्रा कहकर उसकी आवश्यकता बताई गई है। तीर्थयात्रा मात्र देव प्रतिमाओं के दर्शन, नदी, सरोवरों के स्नान को नहीं कहते। उच्चस्तरीय उद्देश्य के निमित्त परिभ्रमण करना, जनसम्पर्क और सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण, अभिवर्धन के लिए प्रबल प्रयास करना ही तीर्थयात्रा का प्रमुख उद्देश्य है। आज उसका स्वरूप जो भी बन गया हो, पर शास्त्र मर्यादा में तीर्थयात्रा में पदयात्रा का ही उद्देश्य था। छोटे-छोटे विराम, विश्राम के रूप में ऐतिहासिक पुण्य-स्थानों में कुछ समय ठहरना और वहाँ की पुरातन परम्परा का सान्निध्य प्राप्त करना उचित तो है, पर पर्याप्त नहीं। सच्ची तीर्थयात्रा लकीर पीटने, पर्यटन का मनोरंजन करने जैसी उथली नहीं हो सकती, उसके साथ कारगर परमार्थ प्रयत्नों को जुड़े हुए होना ही चाहिए।

श्रमदान में श्रेष्ठ कार्यों के लिए शारीरिक श्रम किया जाता है। मिलजुल कर कितने ही सामूहिक प्रयत्न सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए, रचनात्मक-सुधारात्मक प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने के लिए किये जाने चाहिए। इन दिनों तो उनकी नितान्त आवश्यकता है। सामूहिक श्रमदान से रीछ-वानरों का पुल बाँधना, ग्वाल-बालों का गोवर्धन उठाना प्रख्यात है। ऐसे-ऐसे अनेक कार्यक्रम प्रज्ञा-अभियान के अन्तर्गत जुड़े हुए हैं। इनमें से कुछ सामूहिक रूप से करने के लिए हैं अथवा हजारों किसान द्वारा किये गये वृक्षारोपण प्रयास की तरह एकाकी भी किए जा सकते हैं। शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, प्रतिभापरक, प्रभाव क्षेत्र में प्रेरणादायक स्तर के अनेक प्रकार के श्रमदान हैं। अपने शरीर, मन, कौशल एवं प्रभाव के द्वारा स्वयं कुछ महत्त्वपूर्ण काम करना एवं दूसरों से करा लेना-यह सभी प्रयास श्रमदान की परिधि में आते हैं। इन प्रयोजनों के लिए कहीं भी जाना, किसी से भी सम्पर्क साधना तीर्थ यात्रा के पुण्य फल में सम्मिलित है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षतिपूर्ति का दूसरा प्रकार है—साधन दान। उपार्जित सम्पदा का कोई महत्त्वपूर्ण अंग सत्प्रयोजनों में लगा देना अंशदान है। साधनदान को अंशदान कहा गया है, धनदान नहीं। अंशदान का अर्थ होता है—अपने संचय में से किसी अनुपात में त्याग किया जाना। पेट भरने लायक दो रुपया रोज कमाने वाले द्वारा एक समय भूखा रहकर एक रुपया बचाना और उसे परमार्थ में लगा देना आधा अंशदान हुआ। दस लाख की पूँजी वाले का दस रुपया लगाना अनुपात की दृष्टि से एक लाखवाँ भाग हुआ। इस दृष्टि से अंशदान हजार गुना अधिक पुण्य फलदायक है।

अध्यात्म क्षेत्र में साधनदान में धनराशि के विस्तार की कोई गणना महत्ता नहीं। परखा यह जाता है कि परिस्थितियों की तुलना में किसकी उदारता का स्तर कितना बढ़ा-चढ़ा है ? किसने कितनी कृपणता त्यागी और कितनी उदार, परमार्थ परायणता अपनाने में किस अनुपात में त्याग करने का साहस दिखाया ?

परमार्थ प्रयोजनों में कभी अन्नदान, वस्त्रदान, औषधिदान, निर्धनों एवं कष्ट-पीड़ितों की सुविधा के लिए किया जाता था। साथ ही यह भी ध्यान में रखा जाता था कि पीड़ा और पतन का एक मात्र कारण मनुष्य का पिछड़ा-पतनोन्मुख व्यक्तित्व ही है। उसे ऊँचा उठाने में संलग्न सद्ज्ञान की प्रेरणा एवं सत्कर्म की धर्मधारणा का महत्त्व जड़ सींचने के समान है। तात्कालिक एवं सांसारिक कष्ट दूर करने के लिए अस्पताल और सुख-सुविधा सम्वर्धन के लिए उद्यान, तालाब बनाने जैसे कार्य मात्र शरीर क्षेत्र की पदार्थ परक सुख-सुविधाएँ ही बढ़ाते हैं। चींटी को आटा, गाय को चारा, कौए को पिण्ड खिलाना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संतोष उपार्जन करने का एक हल्का-फुल्का तरीका है। अन्यथा उपयोगिता की दृष्टि से उनका कोई महत्त्व नहीं। वे प्राणी अपने पुरुषार्थ से अपना गुजारा बड़े मजे में कर लेते हैं। बिना आवश्यकता वाले पर दान थोपना ऐसा ही है जैसा कि करोड़पति मठाधीशों अथवा स्वर्ण जटित देवालयों पर दान-दक्षिणा का भार लादकर उन्हें किसी और अपव्यय के लिए उत्तेजित करना।

आज की स्थिति में सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाला, समस्त समस्याओं का समाधान करने वाला एक ही प्रयोजन है-प्रज्ञा विस्तार, सद्भाव सम्वर्धन की पृष्ठभूमि बनाना और अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिए युग चेतना के दीपक जलाना। प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत ऐसे अनेक प्रयोजन हैं, जिन्हें निश्चित रूप से ब्रह्मदान कहा जा सकता है। ब्रह्मदान को अन्य समस्त दानों की तुलना में सहस्र गुना अधिक पुण्य फलदायक बताया गया है। इन दिनों किसी प्रायश्चित्त कर्त्ता को अंशदान करना हो तो उसे जनमानस के परिष्कार, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन, आलोक वितरण को ही प्रमुखता देनी चाहिए।

देव दक्षिणा जिसे पूर्णाहुति इष्टापूर्ति का अंग माना जाता है, को इस प्रकार साधक सम्पादित करते रह सकते हैं—

आत्मनिर्माण के दो चरण

(१) साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा का दिनचर्या में समावेश और निर्वाह। (२) परिवार में सुसंस्कारिता के प्रचलन। श्रमशीलता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, सज्जनता एवं उदार सहकारिता का परिजनों को अभ्यास कराना।

लोक निर्माण के दो प्रयास

(१) अंशदान अर्थात् आजीविका का एक अंश प्रज्ञा प्रसार के लिए नियमित रूप से निकालना। न्यूनतम दस पैसा नित्य और महीने में एक दिन की कमाई।

(२) समयदान अर्थात् न्यूनतम एक घण्टा नित्य और सामान्यतया इसके अतिरिक्त अवकाश के दिन भी प्रज्ञा अभियान को अपने क्षेत्र में विस्तृत करना तथा रचनात्मक सत्प्रवृत्ति संवर्धन के लिए नियोजित करना।

साधना में नियमित गायत्री उपासना न्यूनतम एक माला का जप तथा प्रातःकालीन सूर्य की प्रकाश किरणों के आत्मसत्ता में अवतरण का ध्यान, गुरुवार या रविवार को आधे दिन का उपवास अथवा अस्वाद व्रत। महीने में एक दिन चौबीस आहुतियों का हवन।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्याय में नित्य-नियमित रूप से प्रज्ञा साहित्य न्यूनतम आधा घण्टा पढ़ना। युग-सृजन के माध्यम से मानवता की सेवा के लिए यथा सम्भव प्रयत्न।

परिवार निर्माण के लिए स्वयं आगे रहकर अन्य परिजनों को साथ लेना और पंचशीलों को कार्यान्वित करने के लिए समय-समय पर योजनाबद्ध प्रयास करते रहना है।

इस प्रकार इस जन्म के विस्तृत एवं पूर्व जन्म के संचित पापों से निवृत्ति का श्रेष्ठतम मार्ग देव दक्षिणा ही हो सकता है।

पापों के विषय में भी जनमानस की अनेकानेक भ्रान्तियाँ हैं। मात्र प्रत्यक्ष ही नहीं, दृष्टिगोचर न होने वाले परोक्ष दुष्कृत्य भी पाप माने जाते हैं। पाप शारीरिक भी होते हैं, मानसिक और आर्थिक भी। लोग चोरी, डकैती जैसे शरीरजन्य पापों को ही पाप मानते हैं क्योंकि कानून में जिन्हें अपराध माना गया है लोक प्रचलन में भी उनकी भर्त्सना होती है। आर्थिक पापों में न केवल ठगी, मिलावट आदि की गणना है वरन् अनुचित माध्यमों से कमाना और उसका अनावश्यक संग्रह एवं अवांछनीय अपव्यय करना भी आर्थिक पापों में गिना जाता है। मानसिक पापों में अनुपयुक्त चिंतन ही नहीं वरन् दूसरों को अनैतिक परामर्श देना, अनुचित कामों का समर्थन-सहयोग करना भी इसी श्रेणी में आता है। राग-द्वेष की, लोभ-मोह की, वासना-तृष्णा की अमर्यादित स्थिति भी अध्यात्म निर्धारण के अनुसार पाप-कर्मों में ही सम्मिलित होती है। इन सभी के दुष्परिणाम होते हैं। अस्तु **प्रायश्चित्त की** बात सोचते समय, क्षति पहुँचाने का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते समय न केवल बहुचर्चित अपराधों पर विचार करना चाहिए वरन् यह भी देखना चाहिए कि मानसिक, आर्थिक अपराध कितने और किस स्तर के बन पड़े ? यों जीवन सम्पदा ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिए दी थी, उसे भुलाकर उस अमानत को निकृष्ट प्रयोजनों से विभिन्न कामों में खर्च करना भी 'अमानत में खयानत' जैसा पाप है। शास्त्रकारों ने इसे आत्महत्या एवं ब्रह्महत्या का नाम दिया है। आत्मकल्याण का मार्ग अवरुद्ध रखे रहना स्पष्टतः जीवन देवता का, भगवान का तिरस्कार, अपमान है। इसे भी हल्का पाप नहीं मानना चाहिए।

पाप-कर्मों का प्रायश्चित्त एवं पश्चात्ताप वर्ग की पूर्ति व्रत उपवास से, शारीरिक कष्ट सहने से, तितिक्षा कृत्यों से होती है। किन्तु क्षति पूर्ति का प्रश्न फिर भी सामने रहता है। इसके लिए पुण्य कर्म करने होते हैं, ताकि पाप के रूप में जो खाई खोदी गई थी, वह पट सके, पुण्य-पाप का पलड़ा बराबर हो सके। दुष्प्रवृत्तियों को सत्प्रवृत्तियों से ही पाटा जा सकता है। इसलिए दुष्कर्म करके जो व्यक्ति विशेष को हानि पहुँचाई गई, समाज में भ्रष्ट अनुकरण की परम्परा चलाई गई, वातावरण में विषाक्त प्रवाह फैलाया गया उसको निरस्त तभी किया जा सकता है, जब सत्प्रयोजनों को संवर्धित करने वाले पुण्य कर्म करके उसकी पूर्ति की जाय, समाज को सुखी और समुन्नत बनाने वाली सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन आवश्यक माना जाय। इसके लिए समय, श्रम एवं मनोयोग लगाया जाय।

व्यभिचारजन्य पापों का प्रायश्चित्त यही है कि नारी को हेय स्थिति से उबारने के लिए उसे समर्थ और सुयोग्य बनाने के लिए जितना पुरुषार्थ बन पड़े उसे लगाने के लिए सच्चे मन से प्रयत्न किया जाय।

आर्थिक अपराधों का प्रायश्चित्त यह है कि अनीति उपार्जित धन उसके मालिक को लौटा दिया जाय अथवा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के श्रेष्ठ कार्यों में उसे लगा दिया जाय।

घटनाओं की क्षतिपूर्ति अर्थ दण्ड सहने से भी हो सकती है। रेल दुर्घटना आदि होने पर मरने वालों के घर वालों को सरकार अनुदान देती है। उसमें क्षतिपूर्ति के लिए आर्थिक प्रावधान को भी एक उपाय माना गया है। प्रायश्चित्त विधानों में क्षतिपूर्ति की दृष्टि से दान को महत्त्व दिया गया है। शास्त्र कहता है—

सर्वस्वदानं विधिः सर्वपापविशोधनम्।

—कूर्म पुराण

अनीति से संग्रह किए हुए धन को दान कर देने पर ही पाप का निवारण होता है।

दत्त्वैवापहृतं द्रव्यं धनिकस्याभ्युपापतः।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्यात् कलुषस्य पापनुत्तपे।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

—विष्णु स्मृति

जिसका जो पैसा चुराया हो, उसे वापिस करे और उस चोर कर्म का प्राश्यचित्त करे।

वापिसी सम्भव न हो या आवश्यक न हो तो अनीति उपार्जित साधनों का बड़े से बड़ा अंश श्रेष्ठ-सत्कर्मों में लगा देना चाहिए।

आचार्य वृहस्पति के अनुसार—

उपवासस्तथादानं उभौ अन्योन्याश्रितः।

अर्थात्—प्रायश्चित्त में उपवास की तरह दान भी आवश्यक है। दोनों एक-दूसरे के साथ परस्पर जुड़े हुए हैं।

प्राज्ञ-प्रतिग्रहं कृत्वा तद्धनं सद्गतिं नयेत् यज्ञाद्वा पतितोद्धार पुण्यात् न्यायरक्षणेवापीकूप तड़ागेषु ब्रह्मकर्म समत्सृजेत्। —अरुण स्मृति

अनुचित धन जमा हो तो उसे यज्ञ, पतितोद्धार, पुण्य कर्म, न्याय रक्षार्थ, बावड़ी, कुआँ, तालाब आदि का निर्माण एवं ब्रह्म कर्मों में लगा दें। अनुचित धन की सद्गति इस प्रकार होती है।

तेनोदपानं कर्त्तव्यं रोपणीयस्तथावटः। —शाततप

तालाब खुदवाकर बरगद का पेड़ लगा देना चाहिए।

सच्छास्त्रपुस्तकम् दद्यात् विप्राय सदक्षिणाम्।

—पाराशर

ब्राह्मणों को दक्षिणा सहित श्रेष्ठ ग्रन्थ देना चाहिए।

वापीकूपतड़ागादि देवतायतनानि च।

पतितान्युद्धरेयस्तु व्रतपूर्ण समाचरेत्।। —यम

बावड़ी, कुआँ, तालाब, देवमंदिर और जीर्णोद्धार आदि कार्य को व्रतपूर्ण स्थिति में करें।

सोऽपि पापविशुद्धार्थं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्।

व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात् धेनुं वत्ससमन्वित्।।

—शात्तायन

पापों की शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत करे और व्रत के अन्त में श्रेष्ठ ग्रन्थ और बछड़े सहित गौ दान करे।

सुवर्ण गोदानं भूमिदानं तथैव च।

नाशयन्त्याशु पापानि अन्यजन्मकृतान्यपि।।

—सम्वर्त

सुवर्ण का दान, गौदान एवं भूमिदान शीघ्र ही पूर्व जन्म के पापों को नष्ट कर देते हैं।

इन अभिवचनों में सत्साहित्य वितरण, विद्यादान, वृक्षारोपण, कुआँ, तालाब, देवालय आदि का निर्माण-यज्ञ, दुःखियों की सेवा, अन्याय पीड़ितों के लिए संघर्ष आदि अनेक शुभ कर्मों में क्षति की पूर्ति के रूप में अधिक से अधिक उदारतापूर्वक दान देने का विधान है। इस दान श्रृंखला में गौदान को विशेष महत्त्व दिया गया है।

पाप निवृत्ति और पुण्य वृद्धि के दोनों प्रयोजनों की पूर्ति के लिए तीर्थयात्रा को शास्त्रकारों ने प्रायश्चित्त तप-साधना में सम्मिलित किया है। तीर्थयात्रा का मूल उद्देश्य है धर्म प्रचार के लिए पदयात्रा। दूर-दूर क्षेत्रों में जन सम्पर्क साधने और धर्म धारणा को लोक-मानस में हृदयंगम कराने का श्रमदान तीर्थयात्रा कहलाता है। श्रेष्ठ सत्पुरुषों के सान्निध्य में प्रेरणाप्रद वातावरण में रहकर आत्मोत्कर्ष का अभ्यास करना भी तीर्थ कहलाता है। यों गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने के लिए किये गये प्रबल प्रयासों को भी तीर्थ कहते हैं। प्रायश्चित विधान में इसी प्रकार की सार्थक तीर्थयात्रा की आवश्यकता बताई गई है।

आज की तथाकथित तीर्थयात्रा मात्र देवालयों के दर्शन और नदी सरोवरों के स्नान आदि तक सीमित रहती है। यह पर्यटन मात्र है। इतने भर से तीर्थयात्रा का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन के लिए किया पैदल परिभ्रमण ही तीर्थयात्रा कहलाता है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिए श्रेष्ठ उपचार भी है। धर्म प्रचार के लिए जन-सम्पर्क साधने का पैदल परिभ्रमण जन समाज को उपयुक्त प्रेरणायें प्रदान करता है। साथ ही उससे श्रमदान कर्त्ता की सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन ही होता चलता है। ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रखकर तीर्थयात्रा को ऐसा परमार्थ कहा गया है, जिसे कर सकना प्रत्येक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति के लिए सम्भव हो सकता है। तीर्थयात्रा का स्वरूप और माहात्म्य शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है—

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्त फलदं तीर्थ भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्।।

पापी मनुष्यों के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शांति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्यों के लिए तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धायुक्तं समाहितः।
कृतपापों विशुद्धश्चे किं पुनः शुद्ध कर्मकृत।।

जो तीर्थों का सेवन करने वाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्र चित्त है, वह पहले का पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करने वाला है, उसकी तो बात ही क्या है ?

तीर्थानि च यथाक्तेन विधिनां संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।

जो यथोक्त विधि से तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वों को सहन करने वाले हैं, वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं।

यावत् स्वस्थाऽस्ति मे देहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः।
तावत् स्वश्रेयसां हेतुः तीर्थयात्रां करोम्यहम्।।

जब तक मेरा शरीर स्वस्थ है, जब तक आँख, कान आदि इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, तब तक श्रेय प्राप्ति के लिए तीर्थयात्रा करते रहने का निश्य करता हूँ।

क्रिया कर्मेण महता तपसा नियमेन च।
दानेन तीर्थयात्राभिश्चिरकालं विवेकतः।।
दुष्टकृतैः क्षयमापन्ने परमार्थ विचारणे।
काकतालीय योगेन बुद्धिर्जन्तो प्रवर्तते।।

बहुत दिनों तक यज्ञ-दानादि करने से, कठिन तपस्या, नियमपालन, तीर्थयात्रा आदि से विवेक बढ़ता है और इनके द्वारा बुरे कर्मों का नाश हो जाने पर, काकतालीय न्याय से मनुष्य में परमार्थ बुद्धि प्रस्फुटित हो जाती है।

इतना भर हो सके तो यह सोचा जा सकता है कि प्रगति की दिशा में कुछ कदम चल पड़े। सतत् अभ्यास से चिंतन एवं कृत्य भी उसी रंग में रंगने लगते है। अपना आपा विस्तृत नजर आता है और उदार आत्मीयता का विस्तार होने लगता है।

प्रायश्चित के रूप में कल्प-साधना की पूर्णाहुति में इस प्रकार की क्षतिपूर्ति के लिए जो सम्भव हो, वह करना चाहिए। मात्र भोजन में थोड़ी कटौती करने और कुछ घण्टों की पूजा-उपासना को ही कल्प तपश्चर्या की इतिश्री नहीं मान लेना चाहिए।

प्रायश्चित और उत्कर्ष के लिए ज्ञान-यज्ञ का प्रज्वलन

परिशोधन के लिए तप, प्रगति-परिष्कार के लिए पुण्य का सुयोग बिठाना पड़ता है। तीर्थसेवन में भी यही करना पड़ता है। तीर्थयात्रा, पदयात्रा में जहाँ संयम बरतने, साधु जीवन अपनाने की आवश्यकता पड़ती है, वहाँ सद्ज्ञान की धर्मधारणा जन-जन को हृदयंगम कराते हुए प्रयास क्रम में क्रमशः आगे बढ़ना होता है। इस उद्देश्य के लिए प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत दो-दो की साइकिल टोलियाँ प्रव्रज्या पर निकलने की उपयोगिता बतायी है और युग शिल्पियों को इस प्रक्रिया में जुटने के लिए कहा है। दीवारों पर आदर्श वाक्य-लेखन जहाँ अवसर हो वहीं ढपली पर युग-संगीतों का गायन, रात्रि को ज्ञान गोष्ठी—विचार-विनिमय क्रम चलता रह सकता है। साइकिलों को भारवाहन के रूप में पदयात्रा का एक सहायक वाहन उपकरण भर माना गया है। उसका उपयोग आवश्यक सामान लादने तथा सुविधानुसार सवारी बैठने का उपक्रम चलाते रहा जा सकता है। अपने घर से हरिद्वार तक की तीर्थयात्रा इसी प्रकार की जा सकती है। एक रास्ते जाने दूसरे से आने में भिन्न-भिन्न मार्गों गाँवों के निवासियों से सम्पर्क बनता है। इन दिनों इसी आधार पर तीर्थयात्री टोलियाँ चलनी चाहिए। सत्रों में सम्मिलित होने वाले इसी प्रकार आया-जाया करें तो उनकी सत्र-साधना में तीर्थ-सेवन के तत्व और भी अच्छी तरह बढ़ी-चढ़ी मात्रा में मिल जाया करेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई लोगों को अनेकानेक तीर्थों को देखने की इच्छा होती है और वे उसी निमित्त खर्चीली और कष्टसाध्य यात्रा करते भी हैं। स्पष्ट है कि इस भगदड़ में पर्यटन तक का आनन्द तो आती नहीं फिर तीर्थ जैसा कोई कारण आधार न रहने पर उसका पुण्य फल तो मिलता ही कहाँ है ? प्रस्तुत लकीर पीटने वाली चिन्ह-पूजा में आँखों से ही मन्दिरों का आकार-प्रकार देख लेने भर का लाभ है। इस ललक को पूरा करने की भी शान्ति-कुंज में व्यवस्था की गई है। इसमें भारत के सभी महत्त्वपूर्ण तीर्थ-देवालयों के बड़े साइज के असली फोटो चित्र स्थापित किये गये हैं। साथ ही उनके साथ मन्दिरों जैसी सज्जा भी बिठा दी गई है। भाव-श्रद्धा के साथ इनका दर्शन-नमन करने का वही पुण्यफल प्राप्त हो सकता है, जो उन-उन स्थानों में जाकर उन इमारतों, प्रतिमाओं को देखने से मिलता। स्पष्ट है कि प्रतीकों की अपनी कोई शक्ति नहीं वे भक्त की श्रद्धा के अनुरूप ही अपनी सामर्थ्य का परिचय देते हैं। मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली, एकलव्य के मिट्टी से बने गुरु कितने सच्चे और कितने समर्थ थे—यह सर्वविदित है। यह सार्थता उन भक्तों ने अपनी श्रद्धा का प्रतिरोपण करने से प्रकट की थी। अश्रद्धालुओं के लिए तो तब भी पाषाण खण्ड मात्र थे और अब भी उन प्रतिमाओं का वास्तविक मूल्य नगण्य जितना है। इस श्रद्धा के बल पर ही गणेश जी धरती पर 'राम-नाम' लिखकर उसकी परिक्रमा कर लेने पर समस्त ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करने वाले देवताओं की तुलना में वरिष्ठ सिद्ध हुए थे। तीर्थ-स्थानों के दर्शनों पर निकलने वाले यात्रियों का प्रयोजन यदि वस्तुतः तीर्थ दर्शन में विश्वास हो तो उसकी पूर्ति गायत्री तीर्थ में प्रतिष्ठित "तीर्थ मंडल कक्ष" का भावनापूर्वक दर्शन-नमन करते रहने से भी पूरी हो सकती है।

हिमालय को देवात्मा माना गया है। जड़ होते हुए भी अपनी आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण उसे प्रत्यक्ष देवता माना गया है। इसी प्रकार गंगा की पवित्रता प्रख्यात है। उसे तरण-तारिणी कहा जाता है। हिमालय की छाया और गंगा की गोद में साधना की उच्चस्तरीय सफलता मिलने की फलश्रुति कही-सुनी जाती है। इन दोनों का भी गायत्री शोध में एक समन्वित देवालय बनाया गया है। यह दर्शनीय है। आदि उद्गम पर भागीरथ को और अन्त समापन पर परशुराम को प्रहरी माना जाता है। उनके प्रतीक भी इस देवात्मा हिमालय कक्ष में प्रतिष्ठित हैं। इन्हें देखकर समूचे हिमालय में परिभ्रमण की—उसके दिव्य दर्शन की—भावना को एक सीमा तक पूरा किया जा सकता है। प्रतीकों की दुनिया में भावुक जनों की श्रद्धा को ही प्राण माना गया है। उसे शान्ति कुंज में अवस्थित प्रतीकों के साथ यदि जोड़ा जा सके तो समग्र हिमालय, सम्पूर्ण गंगा उनके आंचल में अवस्थित तीर्थों का दर्शन एक ही स्थान पर गणेशजी की तरह घर बैठे किया जा सकता है। गायत्री के गर्भ में सभी देवताओं का, सभी मन्त्रों का निवास है। प्रयत्न यह किया गया है कि गायत्री तीर्थ, शान्ति कुंज में उपरोक्त सभी महान प्रतीकों के दिव्य-दर्शन एक साथ उपलब्ध हो सकें। इस दर्शन का कितना पुण्यफल मिलेगा। ? इसका उत्तर एक शब्द में दिया जा सकता है कि साधक की जितनी गहरी—उथली श्रद्धा होगी, उतना इस दृष्टि से सम्पूर्ण तीर्थयात्रा का लाभ मिल सकने वाला सुयोग भी कल्प-साधकों को सहज उपलब्ध होता है। इस प्रकार दर्शन-झाँकी से सम्बन्धित तीर्थ-प्रयोजन की यहाँ बिना किसी खर्च या कष्ट के भली प्रकार पूर्ति हो जाती है।

प्रायश्चित प्रकरण में जहाँ तक तितीक्षा का सम्बन्ध है वह चान्द्रायण व्रत के समान ही आहार कल्प के माध्यम से भली प्रकार पूर्ति हो जाती है। आधे पेट रहने का जो सिद्धान्त चान्द्रायण में है, उसी की पूर्ति दूसरे तरीके से कल्प-प्रक्रिया में भी हो जाती है। अनुष्ठान, जप, तप का जो विधान प्रायश्चितों के अवसर पर करना होता है, उससे कम नहीं कुछ अधिक ही इस साधना में समाविष्ट किया गया है। जप-ध्यान-उपवास के अतिरिक्त अनुष्ठानों में दशांश या शतांश आहुतियों का भी नियम है। कल्पकाल में हुए अनुष्ठान के अनुपात से शतांश नहीं दशांश आहुतियाँ भी इस एक महीने के नित्य हवन-क्रम के साथ सम्पन्न हो जाती हैं।

आत्मिक प्रगति के प्रमुख अवरोध संचित दुष्कर्मों का निष्कासन प्रायश्चित्त प्रक्रिया से ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भव है। उसका पूर्वार्ध दुर्घटनाओं का किसी अनुभवी अध्यात्म चिकित्सक के सम्मुख नमन-प्रकटीकरण एवं आत्म-प्रताड़ना के रूप में व्रत-अनुष्ठान की कष्ट-सहन तप-साधना से पूर्ण हो जाता है। कल्प-साधना के दिनों ही यह दोनों प्रकरण पूरे हो चुके होते हैं। उत्तरार्ध में उस क्षति को पूरा करना होता है, जो अनीति आचरण के द्वारा अवांछनीय परम्पराओं के प्रचलन के रूप में फैलायी गई होती है। पाप-कर्मों में कुछ ऐसे भी होते हैं, जिन्हें शोषण-अत्याचार तो नहीं कह सकते, पर उनके कारण उपयोगी मर्यादाओं का उल्लंघन एवं अवांछनीयता का छूत रोगों की तरह विस्तार होता है। एक से दूसरे तक दुष्प्रभाव पहुँचता है और प्रकारान्तर से समूचे समाज को दुःखद दुष्प्रवृत्तियों के गर्त में धकेलता है। उदाहरण के लिए, व्यभिचार और रिश्वत दो ऐसे पाप हैं, जिनका सहयोगपूर्वक ही आदान-प्रदान होता है। अत्याचार होना ही पाप की परिभाषा होती तो इन्हें पाप न गिना जाता, पर चूँकि उनसे भ्रष्टाचार की छूत फैलती है और मर्यादाओं का व्यतिक्रम होता है, अतएव वे पाप माने गये हैं। समर्थ होते भी दान, जुआ, दहेज, लॉटरी उत्तराधिकार आदि के रूप में लिया हुआ धन भी बिना परिश्रम के होने के कारण हेय माना गया है। व्यक्तिगत आत्महत्या के रूप में आलस्य, प्रमाद, नशा दुर्व्यसन, अपव्यय आदि को भी पातक माना गया है। चोरी, हत्या, ठगी आदि तो आक्रामक उत्पीड़क होने के कारण प्रत्यक्ष पाप हैं ही। इन सबसे व्यक्ति विशेष को भी हानि पहुँचती है, पर सबसे बड़ा अनाचार समूचे समाज में दुर्बुद्धि का, दुष्प्रवृत्तियों का विस्तार होना है। पाप-पुण्य का तत्व-दर्शन यही है कि उससे मानवी श्रेष्ठता या निकृष्टता पर क्या प्रभाव पड़ा ? यों आक्रामक अनीति भी कम निन्दनीय नहीं है, पर उससे भी बड़ी बात समग्र शालीनता है। उस पर पड़ने वाले प्रभाव को ही प्रमुख माना जाता है। हत्या तो कई बार न्यायाधीश भी अपराधी को मृत्यु-दण्ड देकर करा देते हैं।

कल्पसाधना के साधक अपने पाप-कर्मों का प्रकटीकरण करते हैं। उनमें से कुछ की घटनाएँ विशिष्ट होने के कारण उन्हें विशेष परामर्श दिये जाते हैं। ऐसे अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी को एक ही सुझाव दिया जाता है कि वे सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के निमित्त जितना अधिक सम्भव हो उतना समयदान, साधनदान प्रस्तुत करें और प्रायश्चित्त को उत्तरार्ध प्रक्रिया भी पूर्ण करें।

इन दिनों आपत्तिकाल जैसी स्थिति है। सर्वत्र आस्था संकट छाया हुआ है। दुर्बुद्धि ने भ्रष्टता और दुष्टता को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। बौद्धिक, वैज्ञानिक, आर्थिक प्रगति कम नहीं हुई है, फिर भी दुर्बुद्धि की बहुलता ने हर क्षेत्र को कठिनाइयों, समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं से भर दिया है। ऐसी दशा में दुर्घटनाग्रस्तों को अस्पताल भिजवाने की तरह इन दिनों लोकमानस के परिष्कार की एक ही बात सोचनी चाहिए। उस एक में ही समस्त समस्याओं का समाधान सन्निहित है। प्रज्ञा अभियान इसी प्रयास का नाम है। विचार-क्रान्ति, ज्ञानयज्ञ आदि नाम इसी के हैं। प्रायश्चित्त की दृष्टि से भी इस सामयिक आवश्यकता की पूर्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं जन-कल्याण और उज्जवल भविष्य का निर्धारण भी इसी के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, इसलिए उसे उच्चस्तरीय पुण्य-परमार्थ भी कह सकते हैं।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत यों अनेकों कार्यक्रम आते हैं जिनसे व्यक्ति, परिवार और समाज के नव-निर्माण में सहायता मिलती है। उनमें से कितने ही सुधारात्मक भी हैं, जिन्हें नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। इन सबका यदि एक केन्द्र बिन्दु ढूँढ़ना हो तो उसे स्वाध्याय-मण्डलों का संस्थापन और संचालन कह सकते हैं। यह हर स्थिति के व्यक्ति के लिए नितान्त सरल है। साथ ही उस बीजारोपण का अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होना भी हथेली पर सरसों जमने की तरह हाथों-हाथ देखा जा सकता है। प्रज्ञा साहित्य जिनने पढ़ा है, वे जानते हैं कि उनकी बाजारू किताबों से कोई तुलना नहीं। इसे तत्व-दर्शन का, नीतिशास्त्र का, सामाजिक आदर्शवादिता का सार-संक्षेप एवं मधु-संचय कह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं। जिसने इसे एक बार पढ़ा अनुप्राणित एवं चमत्कृत होकर रहा है। यह आलोक जहाँ भी जला है, प्रकाश फैलाये बिना नहीं रहा। यह लपटें जहाँ भी उठी हैं, उष्मा और आभा का तत्काल अनुभव हुआ है। इसके पठन-पाठन की सुनियोजित प्रक्रिया को अग्रगामी एवं व्यापक बनाने की दृष्टि से ही इन दिनों सर्वत्र स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना की जा रही है। इस युगान्तरीय चेतना में अपना समय एवं धन जितना भी लग सके प्रायश्चित्त एवं पुण्य अर्जन की उभयपक्षीय आवश्यकताओं की दृष्टि से जी खोलकर लगाया जाना चाहिए। ऐसे ही दान बीजारोपण कहे जाते हैं। मक्का के एक दाने से एक पौधा उत्पन्न होता है। एक पौधे पर पाँच भुट्टे आते हैं। एक भुट्टे में प्रायः पाँच सौ दाने होते हैं। इस प्रकार एक बीज की परिणति ढाई हजार बीजों के रूप में तीन महीने के भीतर ही हो जाती है। लगभग इसी स्तर का प्रयास स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना को भी कहा जा सकता है। इन छोटे मण्डलों में प्रत्येक को तीस स्वाध्यायशीलों का एक सर्किल बनाना होता है। नियमित रूप से बिना मूल्य प्राणवान साहित्य मिलते रहने से इस मण्डली के जीवन क्रम स्तर में जो उत्साहवर्धक परिवर्तन होता है, उसका आभास पाने भर से हर किसी को उनकी उपयोगिता एवं गरिमा का विश्वास होता चला जाता है।

स्वाध्याय मण्डलों की रूपरेखा अत्यन्त सरल है। एक भावनाशील व्यक्ति आगे बढ़े। अपने जैसी प्रकृति के अन्य चार भी ढूँढ़े। यह पाँच नैष्ठिक सदस्यों का एक स्वाध्याय मण्डल बना। इन पाँचों को अपने-अपने सम्पर्क क्षेत्र के पाँच-पाँच व्यक्ति ऐसे तलाश करने होते हैं, जिनका रुझान धर्म एवं विवेक की ओर हो। वे अपने से सम्बन्धित लोगों को नियमित स्वाध्याय के लिए सहमत करें साथ ही ऐसा प्रबन्ध करें कि पाँचों सदस्य अपने सम्बन्धित पाँच-पाँच स्वाध्यायशाली तक प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप में देने और वापस लेने का क्रम चलाते रहें। संक्षेप में यही है वह स्वाध्याय मण्डल योजना जिसे प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत सर्वोपरि प्रमुखता दी जा रही है। कल्प-साधक अपने पाप नाश एवं पुण्य-संवर्धन की दृष्टि से इस प्रयास में पूरी तत्परता के साथ संलग्न हों।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राण प्रत्यावर्तन एवं कल्प साधना

प्रत्यावर्तन का दार्शनक पक्ष

प्राण प्रत्यावर्तन अर्थात् प्राण चेतना का आदान-प्रदान। यह आदान-प्रदान किसके साथ ? इसका उत्तर यही हो सकता है—लघु का महान के साथ—आत्मा का परमात्मा के साथ—प्राण का महाप्राण के साथ।

आत्मा वस्तुतः महान परमात्मा का एक छोटा घटक है। बीज रूप से उसमें वे समस्त सभावनाएँ और क्षमताएँ विद्यमान हैं जो उसकी मूल सत्ता में हैं। वृक्ष की समस्त विशेषताएँ बीज में भरी रहती हैं—छोटे से दाने के अन्दर पूरे पेड का स्वरूप और क्रियाकलाप अन्तर्हित रहता है। अवसर पाते ही यह बीज विकासोन्मुख होता है और उसकी विभूतियाँ अव्यक्त से व्यक्त होती हैं। यों देखने में बीज की सत्ता और वृक्ष की स्वरूप सत्ता एक दूसरे से सर्वथा भिन्न स्तर की मालूम पड़ती हैं। बीज का मूल्य कानी कौडी और पेड़ की कीमत मुहर, अशर्फी होती है, अन्तर स्पष्ट है। पर कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षण ऐसे भी आते हैं जब बीज के भीतर एक विचित्र हलचल उत्पन्न होती है। वह अपना दाने जैसा अकिंचन स्वरूप खोता है और गल-बदल कर अंकुर—फिर पौधा फिर वृक्ष बनने के लिए विचित्र प्रकार के क्रिया-कलाप अपनाता है। यह परिवर्तन का काल थोडा ही होता है। बीज को डालने और अंकुर का रूप धारण करने की काया-कल्प जैसी प्रक्रिया कुछ ही दिनों की होती है। इसके बाद बीज की सत्ता समाप्त हो जाती है और वृक्ष का अस्तित्व अपने ढंग से काम करने लगता है। इसी हलचल भरी उथल-पुथल को प्रत्यावर्तन कह सकते हैं।

प्राण उस इकाई का नाम है जो मनुष्य के काय-कलेश्वर के अन्तर्गत काम करती है और चेतना की क्रिया का रूप धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करती है। जीव सत्ता चेतनायुक्त है। उसमें प्रेरणाओं का आलोक ज्योतिर्मय है। मस्तिष्क सहित शरीर काय-कलेवर की सरचना इस प्रकार हुई है कि वह निर्धारित क्रिया-कलापों को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सके। दोनों के संयोग से ही जीवन-यात्रा चलती है। जीव की आकांक्षा और शरीर की क्रियाशीलता का समन्वय ही जीवन की विभिन्न हलचलों के रूप मे दृष्टिगोचर होता है। जीव चेतना और शरीर जड। दोनों का सम्मिश्रण जिस स्तर पर—जिस केन्द्र बिन्दु पर होता है उसे 'प्राण' कहते हैं। और भी स्पष्ट करें तो चेतना और क्रिया की सम्मिश्रित स्थिति को—जड और चेतन के मिलन केन्द्र को प्राण तत्व कह सकते हैं। मोटे रूप से जीवधारी की भौतिक सत्ता को प्राण रूप में ही देखा और समझा जा सकता है। सरल विश्लेषण की दृष्टि से जीवन तत्व का दूसरा नाम प्राण भी दिया जा सकता है। इसी सत्ता की प्रधानता देखते हुए जीवधारी को 'प्राणी' कहते हैं। प्राण जब अपना काम बन्द कर देता है तो जीव तथा शरीर की सत्ताएँ यथावत् विद्यमान रहते हुए भी मृत्यु हो जाती है और कहा जाता है प्राण निकल गये।

व्यक्ति के भीतर जो लघु एवं असीम प्राण है वह समिष्ट में समाये हुए असीम महाप्राण का एक लघु अश है जैसा कि परमात्मा का एक घटक आत्मा है। बिन्दु वस्तुतः सिन्धु का ही एक घटक है। बादल समुद्र से जल लाकर भूमि पर बरसाते हैं। जमीन पर गिरते ही वह इस उधेड-बुन में लग जाते हैं कि किस प्रकार वह सिन्धु तक पहुँचे। भूमिगत तुच्छ नलिकाओं में होती हुई—नदी सरोवरों को पार करती हुई वह अन्ततः इस प्रयास में सफल हो ही जाती है कि समुद्र से अपनी सत्ता मिलाकर असीम और अनन्त स्तर के आनन्द का उपभोग करे। जीव की स्थिति भी यही है, वह ब्रह्म का एक घटक है। तुच्छता एवं ससीमता में बेचैनी रहना स्वाभाविक है—समस्त संभावों और असन्तोषों का समाधान असीमता की स्थिति आने पर ही मिल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सकता है। इसी प्रयास में जीवधारी लगा रहता है पर सही मार्ग मिलने से भटकाव की स्थिति उलझनें भरी भूल-भुलैया में घुमाती है।

प्राण प्रत्यावर्तन का तात्पर्य है—काय-कलेवर में काम करने वाली असीम प्राणसत्ता का अनन्त असीम में संव्याप्त महाप्राण की महत्ता के साथ आदान-प्रदान। लघु का महान ये समापन और महान का लघु पर आधिपत्य। महाप्राण को दूसरे शब्दों में अति मानुष्य या अतीन्द्रिय आलोक कह सकते हैं। लघुप्राण जब महाप्राण की सत्ता में अपना समर्पण करता है तो स्वभावतः महाप्राण को उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए अपना कदम बढ़ाना पड़ता है। जीव जिस कदर परमेश्वर में घुलता है उसी अनुपात से ईश्वर का आलोक जीवधारी में जगमगाने लगता है। इसलिए पूर्णता की प्राप्ति और ईश्वर की उपलब्धि दोनों को ही एक तथ्य के दो पहलू माना जाता है। जितने अंश में हम अपनी स्वार्थ संकीर्णता का परित्याग करते हैं ठीक उसी अनुपात में महान की महत्ता का आच्छादन हमें घेर लेता है।

आत्मा और परमात्मा के बीच का सम्बन्ध सूत्र भावनात्मक चुम्बकत्व के आधार पर जुड़ता है। दो चेतनाओं के बीच की कड़ी यही है। हम उत्कृष्टतम भावनाओं को अपने अन्तःकरण में स्थान देकर ही परमात्म सत्ता को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं और उसके साथ आवद्ध हो सकते हैं। आमतौर से हमारा भावना स्तर मृत न सही तो मूर्छित स्थिति में ही पड़ा रहता है। पेट और प्रजनन—वासना और तृष्णा—लोभ और मोह—स्वार्थ और अहंकार की सड़ी कीचड से एक कदम आगे अपना चिन्तन और कर्तृत्व बढ़ता ही नहीं। ऐसी दशा में अन्तःकरण को पोषण मिल ही नहीं पाता और वह भूख-प्यास से संत्रस्त मृतप्रायः स्थिति में ही पड़ा रहता है। शरीर की, बुद्धि की, सम्पत्ति की, सत्ता की दृष्टि से कितने ही व्यक्ति बढे-चढे एवं सफल श्रेयाधिकारी पाये जाते हैं। भावना की दृष्टि से जिनमें अभीष्ट कोमलता जीवन्त रह रही हो ऐसे कोई विरले ही दीखते हैं। यंत्रवत जीवन जीने वालों को इसकी कुछ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। शरीरगत सुदृढ़ता और बुद्धिगत कुशलता से ही उन्हें सांसारिक सुविधायें मिल जाती हैं। उत्कृष्टता, आनन्द का न उन्हें अनुभव होता है और न उस तरह के वातावरण का प्रोत्साहन मिलता है ऐसी दशा में भाव भूमिका का मृत-प्रायःस्थिति में पड़ा रहना स्वाभाविक है।

कहना न होगा कि परमात्मा असीम शक्ति शान्ति का केन्द्र है उसके साथ सम्बद्ध होकर हम समस्त सीमाओं को लाँघकर असीम और समस्त अभावों को परास्त कर अनन्त वैभववान बन सकते हैं। ऋषि और देवदूत वस्तुतः इसी स्तर के होते हैं। जन्मजात रूप से वे भी अन्य सब की भाँति सामान्य ही होते हैं पर भावना को विकसित करके अपनी क्षुद्रता को असीम में जोड़ देते हैं। जुडी हुई दो वस्तुयें एक ही हो जाती हैं। ईश्वर के साथ जुड़ा हुआ जीव—महाप्राण के साथ जुड़ा प्राण लगभग एक ही समतुल्य हो जाते हैं। आत्मिक विकास की दिशा में बढ़ते हुए जीवसत्ता सिद्धियों और विभूतियों की दिव्य सम्पदाओं से लद जाती है।

विवेकसंगत और शास्त्र-सम्मत साधना पद्धतियाँ एक ही प्रयोजन पूरा करती हैं कि अन्तःकरण की प्रसुप्त उच्च भावनाओं को जगायें। उन्हें दिशा दें और इतना आत्मबल उत्पन्न करें जिसके सहारे लोभ और मोह के बन्धनों को तोड़ते हुए मनुष्य उत्कृष्ट चिन्तन को हृदयंगम और आदर्श कर्तृत्व को क्रियान्वित करने के लिए आन्तरिक और बाह्य अवरोधों को तोडता हुआ कटिबद्ध हो सके। उपासना के अनेकों विधि विधान प्रचलित हैं पर उनका एकमात्र उद्देश्य यही है। कर्मकाण्डों, साधना उपक्रमों की बाल पोथी के साथ भावनात्मक उत्कर्ष की उच्चस्तरीय शिक्षा व्यवस्था की जाती है। सीढियों के सहारे ऊपर चढ़ते हैं—केवल मुगदरों के सहारे पहलवान बनते हैं—पुस्तकों के सहारे विद्या प्राप्त करते हैं। ठीक इसी प्रकार साधना विधानों के सहारे भावनात्मक उत्कर्ष का प्रयोजन पूरा किया जाता है। जिन साधनाओं में भावोत्कर्ष का तथ्य अछूता छोड दिया जाता है और शारीरिक क्रिया-कलाप अथवा वस्तुओं का हेरफेर भर जुड़ा रहता है वे प्रायः बाल क्रीड़ा बनकर ही रह जाती हैं। उनसे कोई महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राण का महाप्राण के साथ आदान-प्रदान सम्भव हो सके, आत्मा और परमात्मा के परस्पर मिलन की अनुभूति होने लगे, यही है प्रत्यावर्तन प्रक्रिया जिसकी व्यवस्था इन दिनों शान्ति-कुन्ज हरिद्वार में चल रही है और उपयुक्त साधकों को क्रमशः थोड़ी-थोड़ी संख्या में बुलाया जा रहा है। यह प्रत्यावर्तन साधना क्रम यदि सही रीति से सम्पन्न हो सके तो तत्काल उसका प्रतिफल देखा जा सकता है। जीवन का जो कुछ भी भला-बुरा स्वरूप है वह मनुष्य के चिन्तन और कर्तृत्व की प्रतिक्रिया मात्र है। उत्थान और पतन की अन्तःस्थिति का प्रतिबिम्ब मात्र कहना चाहिए। विक्षोभ और उल्लास का तात्विक विवेचन किया जाय तो उन्हें चेतना के श्वासोच्छास भर कह सकते हैं और आन्तरिक स्तर में हेरफेर सम्भव हो सके तो परिस्थितियों के बदलने में एक क्षण भर की भी देर नहीं लगती। इतिहास के पृष्ठ ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं कि मनुष्य की अन्तःनिष्ठा एवं आकांक्षा प्रवाह में परिवर्तन हुआ तो बाह्य जीवन का सारा ढाँचा ही उलट गया। भीतरी परिवर्तन का बाह्य जीवन पर परिवर्तन प्रभाव देखने को न मिले, ऐसा हो ही नहीं सकता। आज का दुःखी कल सुखी बन सकता है, आज का पतित कल प्रातः स्मरणीय और अभिवंदनीय बन सकता है, आज का उलझन भरा व्यक्ति कल समुन्नत और सन्तोषजनक स्थिति का आनन्द ले सकता है। यह परिवर्तन सांसारिक घटनाक्रम के हेर फेर से नहीं हो सकता जैसा कि आम लोग समझते हैं। इसके लिए एकमात्र अन्तःचेतना के स्तर में ही उलट-पुलट होनी चाहिए।

शास्त्रीय साधनायें इसी प्रयोजन को पूरा करती हैं देखने में उनमें भी तपश्चर्या, योग साधना, एवं विधि-विधानों का ही बाह्य कलवेर होता है पर उनके साथ-साथ भावोत्कर्ष की ध्यान धारणा अत्यन्त सघन रूप में जुड़ी रखी जाती है और यह प्रत्यन किया जाता है कि प्रत्येक साधना विधान की लकीर पीटने के लिए नहीं—शारीरिक हलचल मात्र के रूप में नहीं वरन् भाव भरी मनःस्थिति में सम्पन्न किया जाय।

प्राण प्रत्यावर्तन सत्रों में यों छः घन्टे तथा दस प्रकार के विभिन्न साधना विधान सम्पन्न करने पड़ते हैं पर उनके साथ-साथ यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम करा दिया जाता है कि क्रियाकृत्य को ही सब कुछ न मान बैठें। उसके भीतर गहराई तक प्रवेश कर और जिस साधना के साथ भावना जुड़ी हुई है उसे आत्मसात् करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करें। प्रयत्न इतना गहरा होना चाहिए कि क्रिया-प्रतिक्रया अनुभूति के रूप में परिणित, प्रतिबिम्बित होने लगे। इस प्रकार भावोत्कर्ष का प्रयोजन सरलतापूर्वक सम्पन्न होता चला जाता है। इस अन्तःस्फुरण को व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार उतारा जा सकता और पिछले ढर्रे को बदलकर उपलब्ध आलोक के आधार पर किस प्रकार किस दिशा में क्या परितर्वन किया जा सकता है। तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं तो आध्यात्मिक जीवन का एक स्पष्ट ढाँचा सामने आ खड़ा होता है कहना न होगा कि इस परिष्कृत प्रक्रिया में जब जिस क्षण भी प्राण प्रतिष्ठा होती है उसी क्षण मनुष्य की क्षुद्रता महानता में परिवर्तित हुई दीखने लगती है। इस स्थिति में वह अपने लिए और दूसरों के लिए एक अनुपम वरदान बनकर सामने आता है। उसकी पिछली उलझन भरी जीवनचर्या और मोदित प्रगतिशीलता की जब तुलना की जाती है, तो यह स्पष्ट अनुभव होता है कि वस्तुतः व्यक्तित्व में भारी हेरफेर हुआ है और प्राण प्रत्यावर्तन ने एक तथ्यपूर्ण यथार्थता का रूप धारण किया। लघु से महान् बनने के उपरान्त गुण, कर्म, स्वभाव में और तदनुरूप परिस्थितियों में जो अन्तर होना चाहिए वह जब प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता तो यह सन्देह करने का कोई कारण न रह जायगा कि साधना में सिद्धि न जाने मिलती है या नहीं।

प्राण प्रत्यावर्तन अनुदान का उद्देश्य और स्वरूप

जन्म देकर ही जननी निवृत्त नहीं हो जाती, वरन उन उत्तरदायित्वों को भी निभाती है जो शिशु-शावकों के प्रति उसके कन्धों पर सहज ही आ जाते हैं। मानव जननी उदर में नौ मास रखकर भ्रूण कलल को अपने ही रस रक्त से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सींचती है। पिता द्वारा विनिसृत एक शुक्राणु पर लगभग तीन सेर का कलेवर माता के शरीर में से निकलकर चढ़ता है। माता अपने सर्वश्रेष्ठ सार तत्व से इस कलल का सिंचन, अभिवर्धन, परिपोषण करती है। न केवल शरीरगत् रासायनिक द्रव वरन् चेतनात्मक गुण, कर्म, स्वभाव की, ज्ञान तथा भावना की वह पूँजी भी उदरस्थ शिशु को अनुदान में मिलती है जो उसने चिर कालीन—प्रयत्नों से संचित की होती है। माता का यह अनुदान यदि न मिले तो पिता का प्रजनन प्रयास सर्वथा निष्फल ही रहेगा।

जन्म देकर ही मानव माता निवृत्त नहीं हो जाती वरन् स्वरूप कुछ बदल जाने पर भी उत्तरदायित्व प्रकारान्तर से यथावत् बना रहता है। गर्भस्थ भ्रूण को वह नालतन्तु के माध्यम से रस रक्त पहुँचाती थी। अब वह प्रक्रिया स्तनपान द्वारा चलती है। लाल वर्ण रक्त का ही समानान्तर प्रतिनिधि दूध होता है। माता की छाती से निकलने वाले रक्त में मातृ सत्ता का प्रायः समग्र प्रतिनिधित्व सन्निहित रहता है। जननी के शरीर में जो रासायनिक सम्पदा है और चेतना में जो ज्ञान गरिमा है उसका सार तत्व माता अपने वक्षस्थल से निसृत दुग्ध माध्यम से बालक को पिलाकर सींचती है। यह अनुदान नवजात शिशु को तब तक अनवरत रूप से मिलता रहता है जब तक कि उसका पाचनतन्त्र अन्य खाद्यसामग्री ग्रहण करने और पचाने में समर्थ नहीं हो जाता है।

यह सूक्ष्म प्रक्रिया की बात हुई। स्थूल प्रक्रिया भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। लालन-पालन, भरण-पोषण से सम्बन्धित अगणित एवं विविधविधि क्रिया-कलाप उसे निरन्तर पूरे करते रहने पड़ते हैं। उसकी ममता और सतर्कता ही अबोध शिशु को जीवित रहने और सुव्यवस्थित रीति से विकसित होने का अवसर देती है। स्पष्ट है कि स्नेह, सुरक्षा और सुव्यवस्था का समुचित प्रबन्ध न हो तो बालक के लिए निरोग एवं दीर्घजीवी रह सकना प्रायः अशक्य ही बन सकता है। मानव शिशु जन्मजात रूप से स्वावलम्बी नहीं होता। उसे पग-पग पर माता की सहायता विशेष रूप से और पिता आदि अभिभावकों की साधारण रीति से निरन्तर अपेक्षित होती है।

अध्यात्म जगत में यही भूमिका अपने शिष्य के प्रति गुरु को निबाहनी पड़ती है। पौधा भले ही भूमि से, बीज से, खाद-पानी से जन्मता-पलता हो पर माली की भूमिका उसके जीवन विकास में कम नहीं होती। शीत, आतप से बचाने, समानुसार खाद-पानी के साधन जुटाने, पशुओं द्वारा उदरस्थ कर लिये जाने से बचाने, काट-छाँट कर सुन्दर, शोभायमान बनाने में माली की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण होती है कि उसके बिना अति कठोर स्तर के पेड़-पौधे ही स्वाबलम्बी हो सकते हैं। काट-छाँट के बिना वे भी जंगली स्तर के ही रहेंगे। क्रमबद्ध शोभा सौरभ तो उनमें कदाचित ही रह पाये। व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित और व्यवस्थित बनाने में गुरु की भूमिका भी कुशल माली जैसी होती है। प्राचीनकाल में भारत का हर नागरिक देवोपम जीवन जीता था। यहाँ का हर नागरिक भूदेव कहलाता था। भारतभूमि तेतीस कोटि देवताओं की—देव नागरिकों की स्वर्गादपि गरीयसी क्रीड़ा-स्थली थी। इसका अधिकांश श्रेय उन गुरुजनों को था जो छात्रों को अपने गुरुकुल के दिव्य वातावरण में रखकर उन्हें सुरक्षित ही नहीं, सुसंस्कृत भी बनाते थे।

यह सब भौतिक शरीर का—भौतिक जीवन का क्रिया-कलाप हुआ। व्यक्ति की अध्यात्म सत्ता एवं महत्ता का अपना अद्भुत क्षेत्र है। उसमें भी माता की और गुरु की भूमिका का निर्वाह तत्वदर्शी गुरु को करना पड़ता है। एकाकी जीवधारी जीवन लक्ष्य तक पहुँचने का साहस क्वचित कदाचित् ही कर पाते हैं। साधारणतया उन्हें वैसा ही सहयोग अपेक्षित होता है जैसा नर शिशुओं को माता का एवम् बहुमूल्य वृक्ष पादपों को कुशल माली का।

प्राचीनकाल में गुरु की गरिमा अत्यधिक उच्च स्तर की थी। उसे 'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुरेव महेश्वर।' गुरुरेव पर ब्रह्म के पद पर श्रद्धापूर्वक आसीन किया जाता था और गुरु गोविन्द की तुलना करने वाले भावनाशील श्रद्धालु, गुरु गौरव को प्राथमिकता देते थे। इसका आधार भी है और कारण भी। नर कीटक को नर—नर पशु को—नारायण एवं पुरुषोत्तम स्थिति तक पहुँचा देने का योजनाबद्ध

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयास करने वाला—अणु को विभु संज्ञा प्रदान करने वाला—आत्मा को परमात्मा के सदृश बना सकने वाली कलाकार—मानवी कल्पना को जिस भी सम्मान से सम्मानित किया जाय, कम है। गुरु ऐसा ही कलाकार है जो तप साधना की अति कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाकर अपने को ऐसी प्रचण्ड अग्नि के रूप में विकसित करता है जिसके सम्पर्क में आने वाला सहज ही तत्सम बन जाय। इसके लिए उसे आत्म-निग्रह की, आत्मसम्वर्धन की अग्निपरीक्षा में होकर जन्म-जन्मान्तर तक आत्म-शोध करना पड़ता है। तब कहीं वह इस स्थिति में बनता है कि अपनी बहुमूल्य सञ्चित सम्पदा परम निस्वार्थ भाव से अधिकारी शिष्य को प्रदान करके उसे अपनी समकक्षता का गौरव उपलब्ध करा सके। परमार्थ का यह चरम बिन्दु है।

गुरु वर्ग के कई स्तर हैं। शिशु का संरक्षण शिक्षण करने वाले अभिभावक गुरुजन हैं। अक्षर ज्ञान देने वाले अध्यापक भी गुरु ही कहे जाते हैं। उपनयन प्रभृति संस्कार कराने वाले—पुरोहित भी मन्त्रदीक्षा गुरु हैं। विभिन्न कला-कौशल सिखाने वाले कला गुरु कहलाते हैं। शिक्षार्थी को अनेकों विषय पढ़ने पड़ते हैं और मनुष्य पग-पग पर अनेक माध्यमों से ज्ञान एवं अनुभव संचय करता रहता है इन सजीव एवं निर्जीव पिण्ड घटकों की भी गुरु संज्ञा मिलती है। भगवान दत्तात्रय ने चौबीस गुरु बनाये थे। इनमें चील, कौआ, कुत्ता, मकड़ी प्रभृति निम्न स्तरीय जीव-जन्तु भी सम्मिलित थे। जिससे कुछ सीखा जाय वह गुरु—जो सीखे वह शिष्य। यह मोटी परिभाषा सर्वत्र प्रचलित है। इस आधार पर हर व्यक्ति के ज्ञात-अविज्ञात, पूजित-अपूजित अनेकों गुरु होते हैं। इस लेख में चर्चा उपरोक्त स्तर के गुरुजनों की नहीं हो रही क्योंकि वे एक छोटी सीमा तक ही किसी को कुछ सिखा सकने में समर्थ होते हैं। उनका बुद्धि कौशल जिस स्तर का है वे उतना ही मार्गदर्शन कर सकते है। मार्गदर्शन करना भर उनका उत्तरदायित्व है। वे इस कर्त्तव्य से बँधे नहीं हैं कि उनके छात्र समुचित प्रगति कर ही सकें। इसकी कोई अतिरिक्त क्षमता भी उनमें नहीं होती। मेधावी छात्र अपनी कुशलता से जितना सीख सकें और अपने पुरुषार्थ से जितना बढ़ सकें उतनी ही सफलता उनके हाथ रहती है। सीखने और सिखाने की प्रक्रिया इसी परिधि तक सीमित रहती और समाप्त होती है। इससे अधिक की आशा न कोई गुरु अपने शिष्य से करता है और न किसी शिष्य को इससे अधिक अपेक्षा उस भौतिक गुरु से रहती है।

यहाँ चर्चा उपरोक्त स्तर के गुरु वर्ग की नहीं हो रही वरन् उनका विवेचन किया जा रहा है जो कीट और भृंग का उदाहरण प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हैं। जलती अग्नि में जो वस्तु डाली जाती है वह जल्दी या देर में उसी के सदृश अग्नि रूप हो जाती है। यही परम गुरु का कौशल अनुदान है। इसी को अग्नि दीक्षा कहते हैं। इसके लिए आत्मबल-सम्पन्न गुरु चाहिए। साथ ही शिष्य के लिए आत्मोत्सर्ग का माजा जैसा प्रबल वात्सल्य भी होना चाहिए। विद्वता मात्र से यह कार्य नहीं हो सकता। इसके लिए प्रचण्ड साधनों द्वारा उपार्जित आत्मबल सम्पदा की प्रचुर पूँजी का प्रचुर संग्रह आवश्यक है।

युग परिवर्तन की इस पर्व बेला में अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति के लिए ऐसी आत्मबल-सम्पन्न विभूतियों की आवश्यकता पड़ेगी जो भौतिक साधनों से नहीं, अपने आत्मबल से जनमानस के विपन्न प्रवाह को उलट सकने का साहस कर सकें। यह कार्य न तो व्यायामशालायें—पाठशालायें पूरा कर सकती हैं और न शस्त्र सज्जा से—अर्थ साधनों से पूरा हो सकता है। इसके लिए ऐसे अग्रगामी लोकनायकों की आवश्यकता पड़ेगी जो मनस्वी और तपस्वी बनने में अपना गर्व गौरव अनुभव करें और जिनकी महत्वाकांक्षाएँ भौतिक बड़प्पन से हटकर आत्मिक महत्ता पर केन्द्रीयभूत हो सकें। भौतिक लाभों के लिए लालायित—लोभ-मोह के बन्धनों में आबद्ध व्यक्ति इस स्तर के लाभ से लाभान्वित कदाचित ही हो सकें।

मनुष्य में देवत्व के उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण की यह पुण्य बेला है। इसमें महामानवों को महत्वपूर्ण भूमिका निबाहनी पड़ेगी। वे ही अग्रगामी बनेंगे और असंख्यों को अपने पीछे अनुगमन की प्रेरणा देंगे। इतिहास के आकाश में ऐसे ही महामानव उज्ज्वल नक्षत्रों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तरह अनन्त काल तक चमकते हैं। इन्हीं का निर्माण इन दिनों अभीष्ट है। महाकाल ने उन्हीं का आव्हान किया है, युग की आत्मा ने उन्हीं को पुकारा है। ऐसी सत्ताएँ इस समय मौजूद हैं। दुर्भाग्य ने उन पर मलीनता का आवरण आच्छादित कर दिया है। अन्धकार में वे अपना कर्तव्य देख-समझ नहीं पा रहे हैं और साहसिकता के अभाव में उस दिशा में कदम बढ़ा नहीं पा रहे हैं जिसके लिए उनमें समुचित पात्रता पहले से ही मौजूद है।

शान्तिकुन्ज में चलने वाली प्राण प्रत्यावर्तन शृंखला का यही प्रयोजन है। इसे भूतकालीन उस ऋषि प्रक्रिया की पुनरावृत्ति कहा जा सकता है जिसमें आत्म सम्पदा से सुसम्पन्न पुरोहित अपने शिष्य यजमानों को क्रमबद्ध प्रक्रिया के अनुसार ऊँचा उठाते और आगे बढ़ाते थे। शरीर को जन्म देने वाली माता जिस प्रकार अपना उत्कृष्ट जीवन रस निचोड़कर नगण्य से भ्रूण कलल को एक समर्थ मानव बनाती है ठीक उसी प्रकार का उत्तरदायित्व व्यक्ति की आत्मिक प्रगति में समर्थ गुरुजन वहन करते हैं। माता का सहज वात्सल्य इस प्रकार का अनुदान देने के लिए उसे बाध्य करता है। नारी सुलभ प्रजनन सामर्थ्य जब परिपक्व हो जाती है तो प्रकृति उसे इसके लिए उकसाती है। कामेच्छा इसी प्रकृत प्रेरणा का नाम है। तपस्वियों में भी एक समय ऐसी ही शुभेच्छा उत्पन्न होती है, वे भी एक समय प्रौढ़ता परिपक्वता की स्थिति में होते हैं और उन दिनों उनकी मस्ती देखते ही बनती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा और तप, तेजस् की प्रखरता वैयक्तिक कलेवरों को तोड़-फोड़कर असीम में अपना उपार्जन उत्सर्ग करने के लिए लालायित हो उठती है। शान्तिकुन्ज में चल रहे प्राण प्रत्यावर्तन प्रयास के पीछे मिशन के सूत्र संचालकों की ऐसी ही अन्तःस्थिति को आँका जाना चाहिए। उनकी इन दिनों की योग्यता एवं परिपक्वता को देखते हुए मार्गदर्शक ने प्राण प्रत्यावर्तन के लिए सामयिक निर्देश उचित ही दिया है।

हम अपनी उपार्जित शक्ति का महत्वपूर्ण अंश अपने आत्मीय जनों से विनिसृत करेंगे। साथ ही इस बीजारोपण से उत्पन्न अंकुर को भविष्य में भी सींचने-सँभालने का प्रयत्न करेंगे। माता के गर्भ में बालक कुछ समय रहता है। प्रत्यावर्तन की अवधि उसी प्रकार की है। गर्भस्थ शिशु को माता से जिस स्तर का अनुदान मिलता है उससे हलका नहीं वरन् भारी ही यहाँ भी मिलेगा।

प्रसव के उपरान्त माता नवजात शिशु के प्रति अपने कर्तव्य का अन्त नहीं मान लेती वरन् उसके द्वारा उत्पन्न की गई मलीनता और अव्यवस्था को धोती-सँभालती रहती है साथ ही उसके परिष्कार परिपोषण के साधन जुटाती रहती है। प्रत्यार्वतन प्रक्रिया के माध्यम से विनिर्मित शिशुओं का भी इसी प्रकार ध्यान रखा जायेगा।

इतना महान् अनुदान प्राप्त करने वाले बड़भागियों को हर दृष्टि से सौभाग्यशाली ही माना जायेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिन्हें इस स्तर की वस्तु मिले, उनके ऊपर जो भी कुछ कर्तव्य उत्तरदायित्व आते हैं, पात्रता विकसित करने के लिए उन्हें भी कुछ साहस करना पड़ता है। हमने स्वयं इसी प्रकार का मूल्य चुकाया है। जिन्हें उच्च स्तरीय आलोक मिलेगा वे स्वयं ही देवोपम रीति-नीति अपनाने में आकुलता अनुभव करेंगे। पशु जीवन जी सकना उनके लिए सम्भव ही नहीं रहेगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि पात्रता के अनुरूप न्यूनाधिक अनुदान भी इन सत्रों में सम्मिलित होने वाले को मिलेगा। प्रभु प्रयोजनों के लिए जो जितना आत्म-समर्पण कर सकेगा वह उसी स्तर की ज्योति से भी अपने को आलोकित अनुभव करेगा।

प्राण प्रत्यावर्तन के लिए उपयुक्त पात्रता का ध्यान रखा जायगा कि वे कौन हैं जो आत्मबल का अनुदान उसी प्रयोजन के लिए चाहते हैं जिसके लिए कि वह अनादि काल से मिलता रहा है। ऋषियों को ईश्वर का अजस्र अनुदान प्राप्त हुआ, वे परमसिद्ध पुरुष थे, अपने अनुग्रह से उन्होंने अगणित प्राणियों का कल्याण किया पर अपने लिए कुछ नहीं माँगा। आत्म-परिष्कार, आत्म-सन्तोष ही क्या कम है जो निरर्थक भौतिक जाल-जंजाल के लिए इससे आगे भी तृष्णा सँजोये रखी जाय। सन्त अपरिग्रही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं, अपने लिये निर्वाह के स्वल्प साधन ही उन्हें पर्याप्त प्रतीत होते हैं। न अहंता की लिप्सा उन्हें व्याकुल करती है न लोभ-मोह से—वासना, तृष्णा से उनका अन्तःकरण विक्षुब्ध रहता है। ऐसे शान्त, सन्तुष्ट, विवेकवान और दूरदर्शी अन्तरात्मा पर ही परमात्मा की प्रचण्ड धारा अवतीर्ण होती है। स्वर्ग में गंगा का—अवतरण शिवजी की जटाओं में हुआ था, हमारी अन्तःस्थिति शिवजी की जटाओं जैसी पवित्र और निर्मल होनी चाहिए।

उदाहरणस्वरूप हमने भौतिक कामनाएँ छोडीं और महानता पर अपने को उत्सर्ग किया। यही वह प्रथमचरण था जिससे मुग्ध होकर हमारे मार्गदर्शक दौड़ते हुए चले आये और अपना आन्तरिक रस तत्व गोवत्स की तरह निचोड़कर पिला दिया। यही राजमार्ग उन लोगों के लिए खुला पडा है जो कुछ महत्वपूर्ण विभूतियाँ उपलब्धियाँ चाहते हैं। महान् व्यक्ति वैभव रहित नहीं होते। सिद्धियाँ—विभूतियों की छाया मात्र होती हैं। महामानव अपने वैभव का उपयोग नहीं करते, यह उनकी महानता एवं उदारता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वे निर्धन, निर्बल या निस्तेज रहते हैं। स्वार्थ से मुँह मोडकर परमार्थ की ओर कदम बढ़ाते हैं। वैभव पीछे-पीछे दौडता है। छाया की ओर मुँह करके दौड़ने वालों से प्रकाश पीछे छूटता जाता है और छाया भी हाथ नहीं आती, किन्तु जब प्रकाश की ओर कदम बढ़ाये जाते हैं तो छाया अनायास ही अनुगामिनी बन जाती है। परमार्थ परायण, श्रेयानुगामी, अपनी तप साधना—त्याग, बलिदान से आरम्भ करते हैं किन्तु पाते इतना अधिक हैं कि स्वयं धन्य बनते हैं और अपने युग के इतिहास को चिरस्मरणीय अभिनन्दनीय बनाते हैं।

घोषित किया जा चुका है कि प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया कुल मिलाकर छः दिन की रहेगी। प्रथम दिन आगन्तुकों के परिचय का है। इसी दिन वे अपनी भौतिक और आत्मिक समस्याओं का विवरण प्रस्तुत कर देंगे। साथ ही वर्तमान जीवन के सभी पापकर्मों को भी बता देंगे। यह पहला दिन है। इस आधार पर उन्हें परिष्कृत जीवन की दिशा में अग्रसर होने का परामर्श एवं सहयोग दिया जा सकेगा। इसके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ। यह पाँच दिन विशुद्ध प्राण प्रत्यावर्तन के हैं। इनमें साधकों को अधिकांश समय मौन, एकान्त सेवन, ढीला शरीर और खाली मन रहना होगा। शौच, स्नान जैसे अनिवार्य कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों एवं चिन्ताओं से सर्वथा मुक्त रहा जायगा। भोजन यथासमय उपलब्ध होता रहेगा। ध्यान और चिन्तन की एक विशेष शैली नियत निर्धारित है जो उसी समय बताई जायगी। मुख्यतया शरीर और मन की स्थिरता और शान्ति को स्थिर रखने पर ही ध्यान दिया जायगा। एक दूसरे से शक्ति का हस्तान्तरण होते समय ऐसी स्थिरता आवश्यक है। रक्तदान के समय, इंजेक्शन लगने के क्षणों में—आपरेशन की घड़ियों में रोगी को हिलने-डुलने नहीं दिया जाता, उसे निश्चल रहना पडता है। उथल-पुथल करने से तो सारा प्रयत्न ही गड़ाबडा जाता है। इन चार दिनों में साधक मनःस्थिति को कैसे स्थिर रखे, इसी एक प्रयास में उसे तत्पर कैसे रहना है, यह बता-सिखा दिया जाता है।

कहा जा चुका है कि प्रत्यावर्तन में जादू, चमत्कार, आदि का कौतूहल जैसा कुछ प्रत्यक्ष अनुभव शरीर को या इन्द्रियों को नहीं होना है। यह प्रकरण विशुद्ध आध्यात्मिक है अस्तु अन्तःकरण यह निरन्तर अनुभव करेगा कि उस पर रखे हुए मल आवरण और विक्षेप के भार हल्के हो रहे हैं। स्वच्छता और निर्मलता का, प्रकाश और प्रसन्नता का समावेश हो रहा है। यह धुलाई प्रकरण की अनुभूति है। इन्हीं दिनों रगाई भी चलेगी। इस सन्दर्भ में लगेगा कि अपने भीतर कुछ नया भरा जा रहा है। गर्भवती को तुरन्त अनुभव होता है कि वह भारी हो चली, उस पर भार लद गया। अपनी जिनी सत्ता में किसी अतिरिक्त सत्ता का समावेश हो चला। एकाकीपन की समाप्ति और युग्म की अनुभूति विवाह संस्कार के साथ जुड़ी रहती है। प्राण प्रत्यावर्तन के दिनों में भी ऐसा ही लगता है कि जीवन में कोई अतिरिक्त सत्ता जुड और गठ गई है। एकाकीपन का स्थान युग्म संवेदना ने ले लिया है। यह रंगाई है। रंगाई और धुलाई की अनुभूतियाँ इन चार दिनों में ज्वार-भाटे की तरह अन्तःकरण के गहन स्तल में उथल-पुथल करती रहेंगी। यद्यपि शरीर और मन को यथा-सम्भव अधिक से अधिक शान्त और स्थिर रखने का प्रयास बराबर किया और कराया जाता रहेगा। हलचलों का केन्द्र गहनतम अन्तराल ही रहेगा। इसके लिए यह आवश्यक भी है शरीर और मन को ऊपरी सतहों की उथल-पुथल से बचाने के लिए पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक घण्टे सामूहिक शिक्षण और कुछ समय व्यक्तिगत सम्पर्क का क्रम चलेगा। प्रत्यक्ष सम्पर्क इतना ही होगा। यों परोक्ष सम्पर्क मार्गदर्शक सत्ता इन पूरे दिनों ही बनाये रहेंगे। बैटरी चार्ज करने की घड़ियों में बिजली की धारा का लगातार संचरण रहता है। वह क्रम यहाँ भी चलेगा। छः दिन इसी क्रम से व्यतीत होंगे।

इन छः दिनों में धुलाई की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता। टट्टी में सने बच्चे को गोदी में कोई नहीं उठाता। भगवान की शरण में जाने से पूर्व मनुष्य को स्वच्छ बनना पड़ता है। पाप पंक में लिपटा हुआ मन किसी प्रकार अब तक की मलीनताओं के भार से छुटकारा पाये और भविष्य में निर्मल बना रहने के लिए क्या रीति-रीति अपनाये, इसके लिए आवश्यक स्थिर विवेक और प्रखर साहस इन्हीं दिनों उत्पन्न किया जायगा ताकि आत्मबल का अभिवर्धन भविष्य में बिना किसी अवरोध के होता रहे और जीवन लक्ष्य तक इसी जन्म में पहुँचा जा सके।

ऐसी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राण प्रत्यावर्तन की हैं। जिनने सचमुच ही आत्मिक प्रगति का महत्व और स्वरूप समझ लिया हो और उसी दिशा में चलना हो तथा अपने परमप्रिय स्वजनों को चलाना चाहते हों, उन्हें इसका लाभ उठाना चाहिए।

प्राण प्रत्यावर्तन की महत्ता असाधारण है। यह कोई प्रशिक्षण नहीं वरन् प्राण ऊर्जा का आदान प्रदान है। प्रशिक्षण उसे कहते हैं जो कान या आँख के माध्यम से ग्रहण किया जाता है, मस्तिष्क जिससे प्रभाव ग्रहण करता है। उसे विचार-विनिमय भी कह सकते हैं। प्रत्यावर्तन इससे कहीं ऊँची चीज है। वह अन्तःकरण से दी जाती है और सीधी अन्तःकरण में प्रवेश करती है। इसके लिए लेखनी या वाणी का प्रयोग नहीं करना पड़ता और कानों को, नेत्रों को उसे ग्रहण करने का कष्ट उठाना पड़ता है। पत्र-व्यवहार की भी इस स्तर पर पहुँचने के बाद आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रत्यावर्तन वस्तुतः अपनी शक्ति को दूसरे में सीधे प्रविष्ट करा देने की प्रक्रिया है।

डाक्टर इन्जेक्शन लगाते हैं और मुख में औषधि खाने, पेट में पचाने के उपरान्त रक्त में मिलने की लम्बी प्रक्रिया को सरल कर देते हैं। इंजेक्शन द्वारा प्रवेश की गई दवा क्षण भर में समस्त शरीर की नस-नाड़ियों में फैलती और रक्त में मिलती है। इसे चिकित्सा क्षेत्र का प्रत्यावर्तन कहते हैं। किसी दुर्बल रोगी को बाहर का रक्त देना पड़ता है तो इसे भी उसी संज्ञा में गिन सकते हैं। गर्भाधान क्रिया भी इसी श्रेणी में आती है। कोई धनी अपना धन किसी को देकर उसे भी अपने समान ही धनवान बना सकता है। यह सम्पत्तिपरक प्रत्यावर्तन है। अपनी उपलब्धियाँ दूसरों को हस्तान्तरित की जा सकती हैं। विवेकानन्द, शिवाजी, चन्द्रगुप्त आदि कितने ही महापुरुष इसी प्रकार का लाभ प्राप्त करके आगे बढ़े हैं, स्वयं की कथा-गाथा भी ठीक ऐसी ही है। साधना का जो प्रतिफल हो सकता था उसे सहस्रों गुना अनुदान प्रत्यावर्तन के रूप में मिला है, यह भी सर्वथा सत्य है।

अधिकतर लोगों के लिए स्वल्पकालीन मौन सत्संग ही, निकटवर्ती सान्निध्य ही इतना पर्याप्त होगा कि उसे पचाने में बहुत समय लगेगा। हमारे मार्ग-दर्शक ने पिछले अज्ञातवास के समय केवल चार दिन अपने पास रखा। इसके बाद अभ्यास के लिए अन्यत्र भेज दिया, सन् १९७२ का भी यह सामीप्य चार दिन का ही था। इसके बाद अन्यत्र रहना पड़ा। दो बार में चार-चार दिन का अवसर मिला, कुल आठ दिन का। अभी एक दिन और बाकी है। माता नौ मास पेट में रखती है। गुरु यदि सच्चा गुरु हो तो उसके उदर में नौ दिन रहने से ही जीवन का काया-कल्प हो सकता है। इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि समर्थ समीपता अधिक लम्बी हो यह आवश्यक नहीं। थोड़े समय में भी बहुत प्रयोजन पूरा हो सकता है। समीप से मतलब शान्ति कुन्ज की इमारत में एकान्त साधना के लिए निवास। साधना का स्वरूप होगा—एकान्त सेवन-एकांकी निवास—मौन—मस्तिष्क विचार रहित—शरीर क्रिया रहित। शल्य क्रिया के समय रोगी को निश्चेष्ट रहना पड़ता है। उसे हिलने-डुलने नहीं दिया जाता। यह प्रत्यावर्तन साधना क्रम भी लगभग उसी स्तर का होगा। दुर्बल रोगी के शरीर में जिस प्रकार नस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ग्लूकोज या नया रक्त प्रवेश करके उसे सामर्थ्य प्रदान की जाती है उसी प्रकार का यह साधना उपचार भी होगा।

प्राण प्रत्यावर्तन में समय पर जोर देना व्यर्थ हैं। महत्ता समय की नहीं, वस्तु की उत्कृष्टता की है। एक-एक पैसा करके एक महीने भर तक निरन्तर देते रहा जाय तो मुश्किल से हजार रुपये दिये जा सकेंगे। इसके विपरीत पाँच मिनट में भी दस लाख का चैक दिया जा सकता है। समय का आग्रह नहीं किया जाना चाहिए। अनुदान की उत्कृष्टता परखी जानी चाहिए।

जिन्हें अधिक समय साधना करनी है उन्हें तीन दिन उस मिट्टी की तरह बने रहना होगा जिस पर पानी बरसता रहता है और वह उसे पीकर गीली होती रहती है। बालक नाचिकेता आचार्य यम के दरवाजे पर तीन दिन भूखा पड़ा रहा था और पंचाग्नि विद्यायें सीखकर आया था। इस साधना में किसी के शरीर को भूखा नहीं रखा जायगा। पर आत्मिक क्षुधा जागृत ही रखनी चाहिए। आत्म-कल्याण की उत्कृष्ट अभिलाषा न हो तो कुछ काम बनने वाला नहीं है। नाचिकेता जैसी पेट की नहीं आत्मिक क्षुधा लेकर जो आवेंगे वे उपरोक्त साधनों से तृप्त होकर जायेंगे। इस साधना प्रक्रिया के साथ एक और भी अति महत्वपूर्ण प्रकरण जुड़ा हुआ है। वह है—इस जीवन में जान-बूझकर हुए पापों का प्रायश्चित पूर्व जन्मों के संग्रहीत पाप जो प्रारब्ध बन चुके हैं उन्हें सरलतापूर्वक भोगा जा सके, ऐसा मार्ग निकाला जायेगा और इस जन्म में बन पड़े दुष्कृत्यों का प्रायश्चित द्वारा निराकरण किया जायगा।

कहा जा चुका है कि कर्मफल अनिवार्य है। वे न क्षमा माँगने से छूटते हैं और न किसी मन्त्र-तन्त्र से इनकी निवृत्ति संभव है। बालि को छिपकर मारने का कार्यक्रम भगवान राम को कृष्ण जन्म में भुगतना पड़ा। बालि ने बहेलिया बनकर उनके पैर में तीर मारा और प्राण-हरण किया, श्रवणकुमार को तीर मारने के फलस्वरूप दशरथ जी को उसी तरह पुत्र शोक में बिलख-बिलखकर मरना पड़ा। पुत्र होते हुए भी भगवान राम अपने पिता का वह कर्मफल भोग मिटा न सके। भारतीय धर्मशास्त्रों में सर्वत्र पाप के फल से बचने के लिए 'प्रायश्चित' विधान का वर्णन किया है। ईश्वरीय विधान द्वारा दण्ड मिले इससे अच्छा यही है कि साहसपूर्वक अपनी भूल को प्रकट करके उसके लिए निर्धारित दण्ड भुगत लें। दूसरों को जो क्षति पहुँचाई है उसकी पूर्ति समाज में सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाकर की जा सकती है। पापों की तुलना में पुण्य का पलड़ा बराबर करके भी उद्धार पाया जा सकता है। भगवान् परशुराम ने अत्याचारी राजाओं के सिर काट दिये तो उन्हें प्रायश्चित करना पड़ा कि जितनी हत्यायें की हों उतने ही उद्यान लगायें। वे वध प्रक्रिया की अपेक्षा हजार गुने समय तक—उस सृजन काल में संलग्न रहकर पाप का प्रायश्चित्य करते रहे।

आत्मशोधन के लिए जहाँ भावी जीवन की गतिविधियाँ शुद्ध करने की आवश्यकता है वहाँ भूतकाल में हुई भूलों के लिए प्रायश्चित्य करना भी आवश्यक है। इस अन्तःशुद्धि की प्रक्रिया को अपनाये बिना साधना का समुचित लाभ न मिल सकेगा। अस्तु इसी विधि में आत्मलाभ के लिए आने वाले आगन्तुकों से इनके इस जन्म की भूलें सुनकर तदनुरूप प्रायश्चित्य भी बता दिया जायेगा। जीवन-मुक्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है क्योंकि पिछले जन्मों के कर्म इस जन्म में प्रारब्ध बनकर भुगतने पड़े और जन्म लेना पड़ा। यदि इस जन्म के पाप यथावत् बने रहे, उनका प्रायश्चित्य निराकरण न हुआ तो अगले जन्म के लिए वे प्रारब्ध बन जायेंगे और उन्हें भुगतने के लिए न जाने किस स्थिति का जन्म लेना पड़ेगा। यदि इस स्थिति में अनुपयुक्त वातावरण मिला तो फिर अधःपतन का पथ और भी प्रशस्त होता जायेगा और क्रमशः अधिक पतित स्थिति के गर्त में गिरना पड़ेगा। इस विपत्ति से बचने के लिए यही उपयुक्त है कि इन्हीं दिनों इस जन्म के पापों का प्रायश्चित्य करके भविष्य के लिए निश्चिन्त हो जाया जाय। जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए ही नहीं—साधना का रंग पवित्र अन्तःकरण ही बढ़ सकने वाली बात को ध्यान में रखते हुए भी यह किया जाना नितान्त आवश्यक है। यह भली-भाँति स्मरण रखना चाहिए कि तप साधना का प्रयोजन जहाँ आत्मशक्ति का विकास करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है वहाँ पापों का प्रायश्चित्य भी है। इसे अलग रखकर केवल पूजा-उपासना भर से किसी बड़ी आत्मिक सफलता की आशा नहीं की जा सकती है।

प्राण-प्रत्यावर्तन की साधना-प्रक्रिया

शान्तिकुन्ज हरिद्वार में चलने वाले प्राण-प्रत्यावर्तन सत्रों का साधना क्रम इस प्रयोजन के लिए है कि प्राण का महाप्राण के साथ प्रत्यावर्तन, आदान-प्रदान सम्भव हो सके।

प्राण अर्थात् व्यष्टि व्यक्ति की परिधि में अवरुद्ध चेतना। महाप्राण अर्थात् समष्टि की अनन्त सीमा में सुविस्तृत ब्रह्म सत्ता। दोनों का एक-दूसरे में आदान-प्रदान हो। आत्मा अपने को परमात्मा में समर्पित करके और परमात्मा अपने आनंद अनुग्रह को भावभरी आत्मीयता के साथ आत्मा पर बरसा दे। आत्मा अपनी क्षुद्रता का, स्वार्थ भरी संकीर्णता का परमात्मा में विसर्जन करे और परमात्मा उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करके अपनी आनन्द विभूतियों के आभूषणों से उसे सुसज्जित कर दे। व्यक्तिगत क्षुद्रता की बूँद को जिन्होंने सामूहिकता के विशाल सागर में घुलाया है वे ही तो महामानव, देवदूत और ऋषिकल्प कहलाने के अधिकारी हुए हैं। अभावग्रस्त दुख-दैन्य की तुच्छता का अनन्त और असीम के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लेना और विराट् के ब्रह्मलोक से टपकने वाले अमृत का रसास्वादन करना, यही है आध्यात्मिकता का सार, ब्रह्मविद्या का उद्देश्य और प्राण प्रत्यावर्तन साधना क्रम का प्रयोजन।

प्रस्तुत योजना के अनुसार यह साधना क्रम चार दिन चलता है। यों एक दिन पूर्व अपने, व्यक्तिगत परामर्श करने, चार दिनों की कार्य पद्धति के समझने के लिए तथा एक दिन अन्त में हरिद्वार, ऋषिकेश आदि जाना हो अथवा कुछ विशेष परामर्श करना हो तो उसके लिए है। इन आगे-पीछे दो दिनों को भी गिन लें तो कुल मिलाकर छः दिन के लिए साधक लोग यहाँ आते हैं। अपनी एकान्त कोठरी में एकाकी रहते हैं। चार दिनों में प्रतिदिन छः घण्टे साधना करनी पड़ती है। एक घण्टा मध्यान्ह बौद्धिक प्रवचन द्वारा आत्मबोध की शिक्षा दी जाती है और सायंकाल एक घण्टा भाव गीतों द्वारा अन्तःकरण में उच्चस्तरीय उत्कृष्टता को उमगाया है। छः घण्टे साधना, २ घण्टे प्रशिक्षण इस प्रकार आठ घण्टे नियमित और अनुशासित कार्य-क्रम रहता है। दिनचर्या ऐसी सुगठित है कि फौजी अनुशासन का पालन करने वाले ही उसमें फिट बैठते हैं। अस्त-व्यस्तता के आदी लोगों को अड़चन पड़ती है इसलिए उन्हें पहले ही ठोक-बजा लिया जाता है कि यदि साधना रत तपस्वी के उत्तरदायित्व निभा सकें तो ही यहाँ रहें।

धोती-कुर्ता की पोशाक निश्चित है। पैन्ट-पाजामा नहीं चलता। साधना वाले चार दिनों में प्रत्येक साधक को शान्तिकुन्ज की सीमा-मर्यादा में ही रहना पड़ता है, बाहर निकलने की छूट नहीं है। सीता जी की सुरक्षा के लिए जिस प्रकार लक्ष्मणरेखा खींची गई थी लगभग वैसी शान्तिकुन्ज की सीमाएँ प्रतिबन्ध रेखा बन जाती हैं।

साधना उपक्रम में उत्कृष्ट भावनाओं का सघन समावेश प्रत्यावर्तन साधना की अपनी विशेषता है। इन दिनों हर साधक को अन्तर्मुखी रहना पड़ता है। घर ग्रहस्थी और काम धन्धों की चिन्ता करने से मन को मुक्त रखने तथा अनावश्यक चर्चाएँ तथा हलचलें न करने के लिये कहा जाता है ताकि आत्म-चिन्तन, आत्मसुधार, आत्म-निर्माण एवम् आत्मविकास की दृष्टि से बनाया गया कार्यक्रम शान्तिपूर्वक, सुचारु रूप से चल सके। उपासना को केवल लकीर पीटने की तरह मात्र कर्मकाण्ड स्तर पर पूरा नहीं किया जाता वरन् उनके साथ जिस भावोत्कर्ष का सम्बन्ध है उसे अधिकाधिक प्रखर बनाने पर जोर दिया जाता है। यही कारण है कि साधकों की मनःस्थिति इन दिनों उच्चस्तरीय भाव-भूमिका में अवस्थित रहती है और वे किसी शान्ति लोक में निवास करने का अद्भुत जीवन में पहली बार मिला अनुभव करते हैं।

उपासना पद्धति में शिथिलीकरण मुद्रा, उन्मनी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, गायत्री जप, सोऽहम् साधना, बिन्दुयोग, आत्माराधना, तत्वबोध, नादयोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के दस साधना क्रमों का समावेश है। उनके चमत्कारी लाभ भी असीम हैं। इन्हें अपनाकर भौतिक सिद्धियों और आत्मिक विभूतियों का पथ प्रशस्त होना स्वाभाविक है। यह आगे का प्रशिक्षण है। चार दिवसीय साधना पद्धति का अन्तःकरण की भाव भूमिका को उच्चस्तरीय बना देना ही प्रधान लक्ष्य है। यह पूरा होने पर प्रगति पथ के अन्य समस्त अवरोध स्वतः दूर हो जाते हैं।

आत्मशोधन की प्रक्रिया विगत जीवन के पापों को स्मरण करने और बताने, प्रायश्चित्य करने और भविष्य में पुनः भूलों को न दुहराने का निश्चय करने से आरम्भ होती है। प्रत्यावर्तन का यह प्राथमिक और आवश्यक चरण है। पहले दिन जब साधक आते हैं तो उनसे यह सब पूछ लिया जाता है। साथ ही व्यक्तिगत समस्याओं पर भी उसी दिन आदान-प्रदान परामर्श कर लिया जाता है। यह दो कार्य प्रथम दिन ही पूरे हो जाते हैं ताकि चार दिन बिना इस स्तर का परामर्श किये हुए आवश्यक साधन क्रम पर मन एकाग्र रखा जा सके।

साधना क्रम को सामान्य शौच, स्नान, भोजन, विश्राम के अतिरिक्त छः घण्टे का रखा गया है। शारीरिक श्रम आठ घण्टा, मानसिक श्रम सात घन्टा और आध्यात्मिक श्रम ६ घण्टे की सन्तुलित मर्यादा निर्धारित है, उसी के अनुरूप साधन की अवधि नियत की गई है। यों मध्यान्ह कालीन एक घण्टे का प्रवचन और सायंकाल एक घण्टे का भाव-गान भी जोड़ लिया जाय तो यह अवधि आठ घण्टे भी गिनी जा सकती है। हर साधक को हर दिन पन्द्रह मिनट व्यक्तिगत परामर्श के लिए एकान्त अवसर मिलता है सो भी इसके अतिरिक्त होने से उसे सवा आठ घण्टे भी गिना जा सकता है। शेष समय यों सामान्य दिनचर्या के लिए है, पर उसमें सतोगुणी उच्चस्तरीय हलकी-फुलकी स्वेच्छाचर्या को ही जोड़कर रखा गया है।

सामान्य दिनचर्या इस प्रकार विभाजित है। (१) प्रातः ४ बजे उठना। (२) ४ से ५ शौच स्नान (३) ५ से ६।। तक साधना का प्रथम सोपान (४) ६।। से ७ बजे जलपान (५) ७ से ७।। तक वस्त्र धोना, सफाई व्यायाम (७) ७।। से १०।। साधना का द्वितीय सोपान (८) १० से १०।। भोजन (९) १०।। से १।। विश्राम स्वाध्याय मनन चिन्तन (१०) १।। से २।।। प्रवचन (११) २।।। से ३ जलपान (१२) ३ से ५ साधना का तृतीय सोपान (१३) ५ से ५।। शौच आदि (१४) ५।। से ६ में भोजन (१५) ६ से ७ टहलना (१६) ७ से ६ भाव संगीत (१७) ६ से ४ तक शयन।

मध्यान्ह १०।। से १।। और सायं ५ से ७ की अवधि में हर दिन व्यक्तिगत परामर्श के लिए प्रत्येक साधक को एकान्त समय मिलता रहता है। साधना के लिए जो तीन सोपान निर्धारित हैं उनमें १० सूत्री क्रिया-कलापों का समावेश है उनकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है—

(१) प्रातः पाँच से सवा पाँच पन्द्रह मिनिट शरीर को ढीला करना—शिथिलीकरण मुद्रा—शवासन माड़ी समूह तथा माँसपेशियों पर से तनाव को घटाकर ऐसी सुखद स्थिर स्थिति में शरीर को पहुँचाना ताकि ध्यान धारणा में कोई विघ्न न आवे।

(२) प्रातः सवा पाँच बजे से साढ़े पाँच। पन्द्रह मिनट। मस्तिष्क को हर प्रकार के विचारों से पूर्णतया खाली करने के लिए शून्यता की भावना। नीचे अनन्त नील जल राशि का और ऊपर नील आकाश की अनुभूति—संसार में से अन्य सब वस्तुओं को समाप्त होने की प्रलयकालीन जैसी मान्यता। इस सन्दर्भ में प्रलयकाल की स्थिति दर्शाने वाले चित्र बाजार में मिलते हैं जिनमें कमल पत्र तैरते हुए बाल भगवान को दर्शाया गया होता है। इसी के अनुरूप अपने को बाल भगवान के रूप में मानना संसार में कहीं कोई वस्तु या व्यक्ति शेष न रहने की मान्यता से मन को किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर आकर्षित होने या भागने का मार्ग अवरुद्ध करना। इस ध्यान से मन खाली हो जाता है और ध्यान पर चित्त को एकाग्र करना सरल हो जाता है।

(३) प्रातः साढ़े पाँच से साढ़े छः एक घण्टा खेचरी मुद्रा। जिव्हा को उलटकर तालू से लगाना और ब्रह्म रन्ध्र से अमृत टपकने एवं उसका रसास्वादन होने की अनुभूति। उल्लास और आनन्द पर चित्तवृत्तियों का केन्द्रीयकरण। दिव्य लोकों में उभरने वाले उच्चस्तरीय अनुदानों और परामर्श प्रोत्साहनों की ध्यान धारणा। भौतिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जगत में पाये जाने वाले विषयानन्द से भिन्न स्तर के ब्रह्मानन्द का अनुभव स्फुरण।

यह तीन साधनाएँ डेढ़ घन्टे में करने के उपरान्त एक घन्टे का अवकाश प्रभातकालीन—मध्यान्ह के पूर्व भाग में चलने वाली साधनाएँ ढाई घन्टे की हैं। वे चार भागों में विभक्त हैं। इन्हें क्रमांक के अनुसार ४, ५, ६, ७ नम्बर दिये गये हैं।

(४) साढ़े सात से आठ बजे तक आधा घन्टा गायत्री मन्त्र की पाँच मालाओं का जप। जप के साथ गायत्री माता के साथ अपने सम्पर्क सम्बन्ध का ध्यान। आये समय अपने को टट्टी जैसी मलीनताओं से सने एक बालक की स्थिति में देखना और गोदी लेने के आग्रह को माता द्वारा ठुकराया जाना। तदुपरांत माता द्वारा नहलाया और धोया-पोंछा जाना और गोद में लेकर प्यार किया जाना। माता की उपेक्षा और अकृपा का कारण अपनी गन्दगी के रूप में अनुभव करना। स्नान कराने, धोये, पोंछे जाने के रूप में अपनी दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों को समझना। विश्वास करना कि ईश्वरीय अनुदान की प्राप्ति के लिए अश्लीलताओं से मुक्ति पाना आवश्यक है।

जप के उपरान्त जल कलश से सूर्य को अर्पित जल को अपने प्राण का प्रतीक मानना और उसे महाप्राण के प्रतिनिधि सूर्य के चरणों में समर्पण उत्सर्ग करने की भावना। सूर्यार्घदान गायत्री जप की भावभरी पूर्णाहुति है। उसे समुचित संवेदना एवं अनुभूति के साथ धीरे-धीरे सूर्य के सम्मुख उपस्थित होकर सम्पन्न करना। यज्ञ में जिस प्रकार बूँद-बूँद घी अग्निकुण्ड में टपकाकर उसकी वसो धारा प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है वही स्तर दैनिक साधना में सूर्यार्घदान का अनुभव करना।

(५) आठ से पौने नौ तक पौन घन्टा बिन्दुयोग—त्राटक साधना। प्रकाश दीप का पाँच सैकिण्ड खुली आँख से देखना। आँखें बन्द करना और उस प्रकाश को भूमध्य भाग में ज्योतिर्मय देखना। यह क्रम बार-बार पन्द्रह मिनट तक करना। इसके उपरान्त अधखुले नेत्रों से ध्यान मुद्रा में अवस्थित होकर यह अनुभव करना कि भूमध्य भाग के तृतीय नेत्र स्थान पर प्रकाश विद्यमान है और उसकी आभा शरीर और मस्तिष्क के अंग-प्रत्यंग को आलोकित कर रही है।

शरीर के अन्तर्गत हृदय, फुफ्फुस, आमाशय, आँतें, यकृत, वृक्क, रक्त, माँस, अस्थि, त्वचा आदि अवयवों तथा नेत्र, कान, जिव्हा, नाक, जननेन्द्रिय आदि इन्द्रियों में प्रकाश का आलोक भरा-पूरा देखना। मस्तिष्क के भीतर यही प्रकाश, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के अन्तःकरण चतुष्टय में समाविष्ट देखना। कण-कण और रोम-रोम में प्रकाश स्वरूप दिव्य सत्ता को अपने में ओत-प्रोत इस साधना द्वारा अनुभव किया जाता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रेरणा को इस बिन्दुयोग या प्रत्यक्ष अनुभूति का स्वरूप दिया जाता है।

बिजली के बल्ब के भीतर 'फिलामेंट' का जरा सा तार जलता है। उसकी रोशनी गैस के भरे काय कलेवर में चमकती है और फिर वह बल्ब घर-आँगन में रोशनी फैलाता है। ठीक उसी प्रकार भूमध्य भाग में अवस्थित आज्ञा चक्र में प्रकाश की उपस्थिति में उसका समस्त काय पिण्ड में आच्छादित होना और इसके उपरान्त उसका प्रेरक प्रकाश बाह्य जगत में विकीर्ण होना, यही है इस बिन्दुयोग की—त्राटक साधना की—ज्योति अवतरण की साधना। यह ज्योति मात्र रोशनी नहीं वरन् दिव्य आलोक की प्रतिनिधि है। इसके माध्यम से शिव की जटाओं पर आकाश से उतरने वाली ज्ञान-गंगा का—मस्तक पर स्थापित चन्द्रमा जैसी अनुभूतियों का अवसर और आभास मिलता है। यह मात्र कल्पनायें नहीं हैं। साधक अनुभव करते हैं कि उनका—व्यक्तित्व ज्वलन्त ज्योति के आवेशों को भरता हुआ चला जा रहा है।

(६) पौने नौ से साढ़े नौ तक सोऽहम् साधना का अजपा जाप उपक्रम है। मेरुदण्ड को सीधा रखकर सिद्धासन पर बैठना और हाथों को ध्यान मुद्रा में रखना होता है। गहरी साँसें ली जाती हैं और साँस के भीतर प्रवेश करते समय 'सो' की ध्वनि को सुनने का तथा साँस के बाहर निकलते समय 'हम्' की ध्वनि संवेदना का ध्यान किया जाता है। आरम्भ में तो यह ध्यान मान्यता एवं कल्पना के प्रतीक के ही रूप में होता है पर कुछ ही समय उपरान्त यह अनुभूति होने लगती है कि वस्तुतः स्थिति यही है। स्वर ब्रह्म का अन्तःनिनाद सोऽहम् के श्वासोच्छास अनुबंधों के साथ स्वसंतुलित रूप में निनादित हो रहा है। यह अनुभूति मन की एकाग्रता का और आत्मा में परमात्मा का प्रत्यक्ष कराती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भ में पन्द्रह मिनट इस प्राणयोग में सो और हम् की ध्वनि का अनुसन्धान करना पड़ता है, पीछे भाव भूमिका में उतारा जाता है। श्वाँस के साथ-साथ महाप्राण इस निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में से एकत्रित होकर साधक के काय कलेवर में प्रवेश करता है और श्वाँस छोड़ने के साथ जीव भाव का हेय अहंकार पलायन करता हुआ बाहर निकलता है। वायु का कण-कण तक प्रवेश होता है, उसी के सहारे महाप्राण—परमेश्वर का ब्रह्म तेजस् अपनी काया कलेवर में प्रवेश करके अपना चिरस्थायी आधिपत्य जमा लेता है। दोष दुर्गुणों से भरी अहन्ता अपना कब्जा छोड़ देती है। यह प्रकारान्तर से आत्मसमर्पण की धारणा है। तुच्छता की महानता में परिणिति है। चाहे तो प्राण प्रत्यावर्तन शब्द से व्यक्त होने वाली भावनाओं को इस साधनाक्रम में प्रकट प्रस्फुटित होती हुई विशेष रूप से देख सकते हैं। यों अन्य साधनाओं का भी प्रकारान्तर से अभिप्राय यही है। इस योगाभ्यास को करते हुए यह अनुभूति निरन्तर होती रहती है, ब्रह्मतेज के प्रचण्ड प्रवाह का अपने भीतर प्रवेश हो रहा है। यह शरीर उसी का उपनिवेश बन रहा है।

(७) साढ़े नौ बजे से दस तक आधा घन्टे नादयोग की साधना। नाद ब्रह्म की प्रत्यक्ष अनुभूति कराने वाले वेणुवाद की ध्वनि साधकों को अपने कक्ष में ही उपलब्ध होती है। उसे भावपूर्वक सुना जाता है और आन्तरिक उल्लास को उभारते हुए इस प्रकार लहराया जा रहा है मानो बीन पर मुग्ध होकर सर्प लहरा रहा हो और तन-बदन की सुध-बुध भूल गया हो। बाद्य की ताल पर नर्तकी की विविध विधि थिरकनें इस स्तर की लहराती हैं मानो उनके पैर उसी ताल में अपने को घुलाये दे रहे हैं। हाथों की मुद्राऐं, मुखाकृतियाँ, भाव-भंगिमाएँ, कन्धे और प्रत्येक अवयव का स्पन्दन तालबद्ध होकर लहराता है। इसी का नाम तो नृत्य कौशल है। नादयोग का मूल प्रयोजन सुसुप्त और मूर्छित पड़ी अन्तःचेतना को सजग, सजीव एवं स्फूर्तिवान बनाने वाली स्तर की थिरकन का रसास्वादन कराता है।

कृष्ण की बाँसुरी सुनकर गोपियों का रास प्रसंग के लिए दौड़ पड़ना अलंकारिक रूप में पुराणों में वर्णित है। वस्तुतः वह परमात्मा की स्वर लहरी पर उच्चस्तरीय आत्माओं का कठपुतली नृत्य है। रास का मर्म यही है कि ब्रह्म प्रेरणा के अनुरूप भावनाओं और क्रियाओं की गोपियाँ समर्पण का भाव नृत्य करने लगें और लोकापवाद एवं लोक प्रशंसा की बात को ताक पर उठाकर रख दें। स्पष्टतः ब्रह्म परायण—परमार्थ पथ के पथिक—लोक सम्पदाओं की ओर आकर्षित नहीं होते अतएव भौतिक वैभव भी इतनी मात्रा में इकट्ठा नहीं होने पाता जिसकी भेड़चाल चलने वाला विवेकहीन जनसमूह अथवा सम्बद्ध परिवार का परिकर प्रशंसा कर सके। आमतौर से दुनियादारी की दृष्टि में परमार्थ परायणता, व्यंग, उपहास और कई बात विरोध का कारण बनती हैं। गोपियाँ इस स्थिति की उपेक्षा करके अपने प्रियतम के साथ द्वैत को अद्वैत में बदलने जाती हैं और उसी भाव एकता में स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करती हैं।

नादयोग के साधना उपक्रम में इसी आत्मविभोर स्थिति का रसास्वादन है। प्रस्तुत अति मनोरम ध्वनिप्रवाह के साथ-साथ अपने आपे को घुला देने पर सहज ही अन्तःचेतना में एक अजीब सी सिहरन और थिरकन उत्पन्न होती है और उस रसानुभूति से मन पीछे हटता ही नहीं। साधक के लिए जिस भाव तन्मयता की आवश्यकता होती है उसका प्रारम्भिक अभ्यास इस नादानुसन्धान साधना के माध्यम से सरलता और सफलतापूर्वक होने लगता है।

(८) मध्यान्होत्तर तीन से पौने चार तक—पैंतालीस मिनट आत्मब्रह्म की उपासना को हैं। इसे वेदान्त की उच्चस्तरीय साधना कह सकते हैं। अयमात्मा ब्रह्म—प्रज्ञान् ब्रह्म—तत्व मसि—सोऽहम्—शिवोहम्—सच्चिदानन्दोहम् आदि वेदान्त उद्घोषों में यह प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्म चेतना का सबसे स्पष्ट सबसे अधिक—सबसे समीप और सबसे सरल आभास अपने भीतर ही हो सकता है। आत्मा में ही परमात्मा की श्रेष्ठतम झाँकी हो सकती है। अपने स्वरूप को समझ लेना ही आत्मबोध है। 'आत्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्म' की साधना का प्रयोजन साधक को इसी लक्ष्य तक पहुँचाता है।

बड़े आकार के दर्पण में अपने समकक्ष आकृति को ध्यान और भाव मुद्रा में देखने से यह साधना सम्पन्न होती है। अपना आपा ही अपने उत्थान-पतन का एकमात्र उत्तरदायी है। उसकी गतिविधियाँ जिस स्तर की भूतकाल में रही हैं उसी के अनुरूप आज की अपनी स्थिति है। उद्धार और उत्थान का कभी सौभाग्य मिला तो उसके लिए भी एकमात्र अवलम्ब अपना आपा ही होगा। दूसरों का सहयोग इसी चुम्बकत्व से आकर्षित होकर यत्किंचित मात्रा में सहयोग करने के लिए उपलब्ध होगा। अपने शत्रु और मित्र—पतन में धकेलने वाले और उत्थान के साधन सँजोने वाले हम स्वयं ही हैं। इस तथ्य को जितना गहराई तक समझा जा सकेगा आत्मबोध की विभूति उतनी ही मात्रा में हस्तगत होगी।

दर्पण में अपनी मुखाकृति आरम्भ में इस दृष्टि से देखी जाती है कि उसी की भूलों और दुष्टताओं के कारण अपने को दुर्दशाग्रस्त रहना पड़ा, यदि उसकी रीति-नीति उपयुक्त रही होती तो निस्संदेह आज अपना स्तर महामानवों जैसी उच्च स्थिति में कब का पहुँच गया होता। अभावों और दुर्भाग्यों के लिए उसकी भर्त्सना की जा सकती है जिसे दर्पण में अपने सामने बैठा देखते हैं।

अपनी आकृति का दूसरा पक्ष दीख जाना चाहिए। ईश्वर की सर्वोत्तम कलाकृति यही है। समस्त देव सत्ताओं का निवास बीज रूप से इसी के भीतर विद्यमान है। आत्म-कल्याण का जीवन-लक्ष्य पूरा कर सकने की भरपूर सामर्थ्य इसी सत्ता के भीतर पड़ी है। यदि यह सही रीति-नीति अपना लें तो जीवन के शेष दिन भी इतने हैं कि उनमें लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है। इसके बदलते ही सारी परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। अपना इष्ट देव यही है। सद्गुरु की भूमिका निभा सकने वाला इसके अतिरिक्त और कोई नहीं। यही अपने आप को बदलकर आत्मा के परमात्मा में बदल जाने वाले शास्त्रीय प्रतिपादन को अक्षरशः सत्य सिद्ध कर सकता है। इसलिए भावभरा अनुरोध और आग्रह इसी से किया जा सकता है। वन्दन और स्तवन इसी का करना उचित है ताकि अनुग्रह से अपना बेड़ा पार हो सके और नरक को क्षण भर में स्वर्ग के रूप में परिवर्तित देखा जा सके।

आत्मदेव की उपासना का दर्पण के माध्यम से जो उपक्रम किया जाता है उसमें 'आत्मज्ञान' की आत्मबोध की वे सभी सम्भावनाऐं विद्यमान हैं जिन्हें आत्म-कल्याण का एकमात्र साधन तत्वदर्शी मनीषियों ने, ब्रह्म विद्या ने प्रत्येक प्रशिक्षण के साथ बताया-समझाया है।

(६) पौने चार से साढ़े चार तक पौन घण्टा तत्व बोध साधना। यथार्थ का ज्ञान। शरीर और आत्मा का—प्रकृति और पुरुष के पृथक्करण का दर्शन। चेतना का माया में अत्यधिक घुल जाना इसी का नाम बन्धन है। समस्त प्रवृत्तियाँ और दुष्प्रवृत्तियाँ यहाँ से उत्पन्न होती हैं। समुद्र जल में पानी और नमक घुल जाता है फिर वह किसी काम का नहीं रहता। कोई उसे पीता नहीं। पर यदि पानी और नमक अलग कर दिये जायँ तो पानी भी काम का हो जायगा और नमक को भी उपयोग में लाया जा सकेगा। ठीक इसी प्रकार आत्मा के शुद्ध स्वरूप और उसके काय-कलेवर को अलग करके देखा जाय तो दोनों का यथार्थ स्वरूप, पारस्परिक सम्बन्ध, कर्तव्य एवं स्वार्थ का पृथक्करण हो सकता है। इसी विवेक दृष्टि को ऋतम्भरा प्रज्ञा-भूमा—आदि नामों से पुकारा गया है। तत्वदर्शन, दिव्यदृष्टि, आत्म-साक्षात्कार आदि नाम भी इसी स्थिति के हैं। ज्ञान का यह स्तर प्राप्त होने पर भव बन्धनों से छूटना और मनुष्य का देव भूमिका में विकसित होना सरल हो जाता है। जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इसी उपलब्धि को प्रवेशद्वार कहा जाता है।

तत्वबोध साधना के लिए शरीर और आत्मा को पृथक् करके उनकी विलग स्थिति का ध्यान किया जाता है। शरीर में से आत्मा निकल गया। आत्मा किसी ऊँचे स्थान पर बैठा है और वहाँ से मृत शरीर की दुर्दशा देख रहा है। कुत्ते, कौए, गिद्ध, सियार उसकी बोटियाँ खींच-खींचकर खा रहे हैं। सड़े हुए माँस में कीड़े कुलबुला रहे हैं। दुर्गन्ध उड़ रही है, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। लाश को जलाया, गाड़ा या बहाया जा रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। मृत स्थिति से लेकर पूर्णतया समाप्ति होने के बीच का सारा घटनाक्रम आँख के आगे से गुजर रहा है। आत्मा अलग बैठा यह सब देखता है कि इसी उपकण परिधान को उसने अपना स्वरूप मानकर भूल नहीं की ? लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनन्त योनियों में भटकने के बाद तो एकमात्र अवसर मिला था उसे इस शरीर की वासना और मन की तृष्णा के लिए बर्बाद नहीं कर दिया गया ? उन्हीं की माँग पर आत्म-कल्याण का लक्ष्य विस्मृत करके क्या भयानक भूल नहीं की गई ? विचारवान होते हुए भी क्या अपने स्वार्थ और लाभ तक को समझने से वंचित नहीं रह गया ? शरीर और आत्मा के पृथक्करण का ध्यान जितनी गहराई में जाता है उसी अनुपात से उसे यह भी सोचना पड़ता है कि बची हुए जीवन-सम्पदा का विभाजन किस प्रकार बुद्धिमत्तापूर्वक किया जाय कि शरीर तथा मन को आवश्यक भोजन मिलता रहे और बचा हुआ अंश आत्मकल्याण का वास्तविक स्वार्थ साधन करने के लिए नियोजित किया जा सके।

इस आधार पर इसी अवधि में यह भी योजना बनाई जाय कि इस शरीर और मन की उनकी वास्तविक और न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करते हुए बची हुई क्षमता को किस प्रकार आत्मकल्याण के प्रयोजनों में नियोजित किया जाय।

कहना न होगा कि मृत्यु को यथार्थता समझना ही जीवन की यथार्थता को समझना है। दोनों के लिए कर्त्तव्यों की सीमा निर्धारित कर देने से जीवन के सदुपयोग की श्रेष्ठतम क्रिया-पद्धति निर्धारित हो जाती है। मृत्यु को शिव का स्वरूप माना गया है और महाकाल के रूप में ब्रह्मा और विष्णु को—उत्पादन और अभिवर्धन के रूप में मरण के अन्तिम पटापेक्ष को निरन्तर समझने और तदनुकूल रीति-नीति निर्धारित करने का निर्देश दिया गया है। तत्व बोध की साधना इसी प्रयोजन को पूरा करती है।

(१०) साढ़े चार से पाँच तक पुनः नाद योग साधना। पुनः आनन्दी चिन्तन में लहराना। निषेधात्मक छिद्रान्वेषी, अभाव चिन्तक दृष्टिकोण का परित्याग करके जब मनुष्य विधेयात्मक, गुण ग्राही, सौन्दर्यान्वेषी उपलब्धियों पर गर्व एवं सन्तोष करने की विचारणा बदलता है तो विषादों से छुटकारा पाकर असीम आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। दृष्टिकोण के परिवर्तन के साथ जुड़े हुए सन्तोष, आनन्द एवं उल्लास की अनुभूति यह नाद योग है।

प्रातःकाल की नाद साधना एवं सायंकाल की नाद साधना यों बाह्यदृष्टि से एक जैसी हैं दोनों में मधुर ध्वनि प्रवाह के साथ अन्तःकरण में नृत्य जैसी थिरकन उत्पन्न करने का भाव है। पर चिन्तन में अन्तर है। प्रातःकाल भगवान के सन्देशों और संकेतों के साथ आत्मचेतना को अनुगामिनी बनने का उल्लास था और सायंकाल में दृष्टिकोण के परिष्कार के साथ-साथ सर्वत्र अनन्त सौन्दर्य एवं सन्तोषोत्पादक वातावरण की अनुभूति का आनन्द। इस प्रकार प्रातःकालीन नाद साधना के साथ जुड़े हुए आनन्द को अन्तरंग और सायंकालीन को बहिरंग कह सकते हैं। दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं।

इस प्रकार दससूत्री साधना पद्धति के साथ बहिरंग क्रिया-कलाप को, साधना उपक्रम को, भाव स्तर को उत्कृष्टतम स्थिति तक पहुँचाने का आधार समझा जा सकता है। चार दिन में इसका ऐसा अभ्यास हो जाता है कि भावी जीवन में इस क्रिया-पद्धति को एक घन्टा रोज की संक्षिप्त एवं समन्वयात्मक साधना पद्धति के आधार पर गतिशील रखा जा सकता है। चार दिन में पूर्णता तक तो कैसे पहुँचा जा सकता है, पर भविष्य में बिना भूल भटकाव के बिना अवरोध- व्यवधान के इस साधना क्रम को जारी रखा जा सकता है और पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। प्रत्यावर्तन साधनाक्रम की यह रूपरेखा जितनी सरल है उतनी महत्वपूर्ण भी। जिन्हें इस उपक्रम का लाभ मिल रहा है, निश्चित रूप से वे सर्वतोमुखी प्रगति के पथ पर द्रुत गति से अग्रसर हो सकेंगे।

प्रत्यावर्तन का साधना पक्ष

गायत्री महामन्त्र का दार्शनिक और साधनात्मक पक्ष कितना प्रखर है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इन चौबीस अक्षरों में जिन तथ्यों और प्रेरणाओं का समावेश है उस आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर इस महामन्त्र को संसार का सबसे महत्वपूर्ण तत्व दर्शन—सबसे छोटा किन्तु सबसे महान सार्वभौम धर्मशास्त्र कहा जा सकता है। इन अक्षरों पर जितना विचार किया जाय उतने ही बहुमूल्य मणि-मुक्तक हस्तगत होते हैं। इसमें भरी शिक्षाएँ देश, काल, धर्म, जाति से ऊपर हैं। इसमें विश्वमानव के लिए आत्मिक एवं भौतिक रीति-नीति अपनाने का उच्चस्तरीय ऐसा मार्गदर्शन किया गया है जिसे अपनाने पर अभाव और अशान्ति का कहीं कोई कारण शेष रह नहीं सकता।

गायत्री मंत्र का दूसरा पक्ष शक्ति साधना है। भौतिक शक्तियाँ विद्युत, भाप, अणुऊर्जा आदि के यन्त्र उपकरणों द्वारा प्राप्त की जाती हैं और उनसे विविध विधि सुविधा साधन उपलब्ध किये जाते हैं। आत्मिक शक्तियों के समस्त स्रोत मानवी काय-कलेवर में विद्यमान हैं। चेतन की क्षमता जड़ की तुलना में असंख्य गुनी अधिक है। चेतन्य शक्तियों ने ही जड़ जगत को बनाया है और वे ही उसका नियन्त्रण करती हैं। रेलगाड़ी कितने ही मूल्य की क्यों न हो वह चेतन ड्राइवर के बिना निरर्थक ही बनी रहेगी। विश्व में संव्याप्त चेना सत्ता के औजार उपकरणों को ही जड़ जगत में काम करने वाले शक्ति प्रवाहों में गिना जा सकता है। अनन्त अन्तरिक्ष में बिखरी हुई चेतन ब्रह्म सत्ता से सम्पर्क कैसे बनाया जाय और उन विभूतियों से व्यक्ति को—विश्व को-कैसे लाभान्वित किया जाय, इसके समस्त रहस्य और उपकरण मनुष्य के काय-कलेवर में भरे पड़े हैं। इन महान् सम्बन्ध सूत्रों को उपयोग करने के विधि-विधान को ही साधना विज्ञान कहते हैं।

चेतनात्मक ब्रह्म सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने और उससे उपयोगी विभूतियाँ उपलब्ध करने की विद्या ही साधनात्मक योग प्रक्रिया है। इसी को ब्रह्म विद्या कहते हैं। दिव्य चेतना के अभीष्ट अवतरण का विज्ञान ही साधना उपक्रम है। इसके लिए यों अन्य विधि-विधान भी प्रचलित हैं पर सर्वोत्तम सर्व-सुलभ और समुचित फलप्रद साधना गायत्री महामन्त्र के शक्ति पक्ष की ही है।

गायत्री उपासना के दो पक्ष हैं, सामान्य और असामान्य। सामान्य उपासनाओं में सर्वसाधारण के लिए सुगम पड़ने वाले, दैनिक नित्यकर्म में प्रयुक्त होने वाले तथा नवरात्रि आदि पर्वों पर किये जाने वाले छोटे बड़े अनुष्ठान आते हैं। उच्चस्तरीय असामान्य साधनाओं में वे उपक्रम आते हैं जिन्हें गायत्री महाविज्ञान के तृतीय खण्ड में गायत्री योगसाधना संदर्भ में बताया-समझाया गया है।

उच्चस्तरीय गायत्री साधना को पञ्चकोशी साधना कहते हैं। गायत्री माता की कुछ मूर्तियाँ तथा तस्वीरें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें उनके पाँच मुख दिखाये गये हैं। अलंकारिक रूप में उन्हें पंचकोश कह सकते हैं। मानवी सत्ता का एक ही काय-कलेवर इन्द्रियगम्य है। इसे अन्नमय कोश कहते हैं। इसके भीतर क्रमशः अधिक सूक्ष्म होते चले गये कलेवरों की परतें भी हैं। केले के तने में, प्याज की गाँठ में एक के भीतर एक परत होते हैं। मानवी सत्ता में भी ऐसी ही परतें हैं इनमें एक अन्नमय कोश देखा जा सकता है। शेष चार प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश सूक्ष्म अदृश्य हैं। शरीर के अन्तर्गत बाहुबल और मनोबल आते हैं। श्रम-पुरुषार्थ एवं बुद्धिबल से हम कितना कुछ उपार्जन उपयोग करते हैं यह स्पष्ट है। संसार की साधना सम्पदायें इसी एक कोश की उपलब्धियाँ हैं। शेष चार सूक्ष्म कोश—दृश्यमान स्थूल कोश की तुलना में असख्य गुना अधिक बलिष्ठ हैं। उनमें जो अदृश्य क्षमताएँ भरी पड़ी हैं उनका लेखा-जोखा ले सकना सामान्य बुद्धि के लिए प्रायः असम्भव ही है। योगियों, सिद्धपुरुषों, ब्रह्मज्ञानियों, तत्ववेत्ताओं, महामानवों की अलौकिक क्षमताओं का यदा-कदा विवरण सुना देखा जाता है, जो नहीं सुना देखा गया वह और भी अधिक विस्तृत एवं रहस्यपूर्ण है। इस समस्त अलौकिकता को अदृश्य कोशों का जागरण प्रतिफल ही कह सकते हैं। इन दिव्य आवरणों में ज्ञान और विज्ञान के अनिर्वचनीय शक्ति स्रोत दबे पड़े हैं। उनका प्रयोग उपयोग जाना जा सके तो मनुष्य निश्चित रूप से सामान्य भूमिका का अतिक्रमण करके असामान्य बन सकता है।

पञ्चकोशों का अनावरण जागरण-गायत्री महामन्त्र की उच्चस्तरीय पञ्चकोश साधना से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धित है। इसके लिए सरल विधि-विधान प्राण प्रत्यावर्तन सत्र की साधना पद्धति में समन्वित किया गया है। चार दिन के सत्र में इसकी भूमिका इस प्रकार अभ्यस्त करा दी जाती है कि उसे भविष्य में नियमित साधना का अंग बना लिया जाय तो क्रमशः आत्मोत्कर्ष की—आत्मबल वर्धन की दिशा में क्रमिक किन्तु तीव्र प्रगति की जा सकती है। विशिष्ट प्रगति करने वाले इसी मार्ग पर चलते हुए कुण्डलिनी जागरण जैसी महान् उपलब्धियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं।

मानवीय काय-कलेवर में षट्चक्रों का अस्तित्व है। इन्हें सिद्धियों और विभूतियों के रक्त भण्डार कहा जाता है। देव सत्ताओं के द्वारा महत्वपूर्ण आदान-प्रदान इन्हीं केन्द्रों द्वारा होता है। कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया—षट्चक्र वेधन के साथ जुड़ी हुई है। इस चक्र वेधन प्रक्रिया को पंचकोश अनावरण का ही दूसरा विधान कह सकते हैं। षटचक्रों के नाम (१) आज्ञाचक्र (२) विशुद्धाख्यचक्र (३) अनाहतचक्र (४) मणिपूरचक्र (५) स्वाधिष्टानचक्र (६) मूलाधारचक्र हैं। इनके अतिरिक्त मूर्धन्यचक्र है ब्रह्म रंध्र स्थित सहस्त्रारचक्र। इसे जोड़ें तो वे छः न रहकर सात हो जाते हैं। वस्तुतः कुण्डलिनी का अग्निकुण्ड मूलाधार चक्र भी सहस्त्रार कमल के स्तर का ही है। इन दोनों को काया का उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव भी कह सकते हैं। सर्वविदित है कि पृथ्वी पर जो अन्तग्राही ब्रह्माण्डीय— आदान-प्रदान होता है उसके यह दोनों ध्रुव ही आधार हैं। बिजली के प्लग में दो पिनें होती हैं, इन्हें स्विच के छिद्रों में ठूँस देने पर करैन्ट चालू हो जाता है। ठीक इसी प्रकार पृथ्वी और ब्रह्माण्ड के बीच भौतिक शक्तियों का महत्वपूर्ण आदान-प्रदान इन ध्रुव केन्द्रों द्वारा ही होता है। सूक्ष्म शरीर में अवस्थित यह मूलाधार चक्र दक्षिणी ध्रुव की और सहस्त्रार चक्र उत्तरी ध्रुव की भूमिका सम्पन्न करता है। महासर्पिणी और महासर्प का निवास इन्हीं दोनों में है। उनका मिलन, संयोग मनुष्य को अतिमानव बना देता है।

यहाँ कुण्डलिनी जागरण तथा षट्चक्र वेधन प्रक्रिया का वर्णन अप्रासंगिक होगा। कहा इतना भर जा रहा है कि यदि मूलाधार के तथा सहस्त्रार के दो ध्रुवों को अतिरिक्त स्थिति में मान लिया जाय तो शेष पाँच ही रह जाते हैं। इन पाँचों चक्रों को पाँच कोशों का प्रतीक कह सकते हैं। दोनों को परस्पर अविछिन्न रूप से सम्बद्ध कहा जा सकता है। (१) अन्नमय कोश—आज्ञाचक्र (२) प्राणमय कोश—विशुध्दाख्य चक्र (३) मनोमय कोश—अनाहत चक्र (४) विज्ञानमय कोश—मणिपूर चक्र (५) आनन्दमय कोश—स्वाधिष्ठान चक्र। इस प्रकार कोश और चक्र परस्पर सम्बद्ध ही समझे जा सकते हैं।

प्रत्यावर्तन सत्र में जो साधना क्रम निर्धारित है उसे पंचकोश जागरण भूमिका कह सकते हैं और उसी दिशा में चलते रहने से षट्चक्र प्रस्फुरण, कुण्डलिनी जागरण, त्रिविध ग्रन्थि वेधन, जीवन मुक्ति, भाव समाधि आदि अनेकानेक योग सिद्धियों की उपलब्धि का अनुदान मिलना संभव मान सकते हैं।

प्रत्यावर्तन साधना को प्रकारान्तर से पंचकोशों के जागरण की उच्चस्तरीय गायत्री साधना कह सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त होने वाले समस्त साधन सूत्र इसमें क्रमबद्ध रूप से भली प्रकार जोड़ दिये गये हैं। उच्चस्तरीय शिक्षा के प्रथम अध्याय के रूप में इसे अपेक्षाकृत सुगम रखा गया है। क्रमिक उन्नति के साथ अगले दिनों और भी अधिक कठिन, साथ ही अधिक समर्थ साधनाओं का मार्गदर्शन भी अधिकारी साधक यथासमय प्राप्त कर सकते हैं।

अन्नमय कोश के परिष्कार के लिए वह विशेष आहार है जो इस साधना सत्र में सम्मिलित होने वाले साधकों को मिलता है। अन्न शुद्धियों के लिए जो कुछ संभव है वह सब कुछ किया जाता है। गंगाजल से ही भोजन बनता है और वही पिया जाता है। बनाने तथा परोसने में जिन व्यक्तियों का सम्पर्क रहता है उससे वह सहज ही संस्कारवान् हो जाता है। पञ्चगव्य का सेवन प्रायश्चित्य की दृष्टि से आवश्यक ही माना गया है। इस स्तर की जो भी व्यवस्थाएँ बन पड़ी हैं, इस प्रकार बनाई गई हैं जिनसे मन का सहज ही उच्चस्तर की दिशा में घसीटने वाले हविष्यान्न का लाभ साधकों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्ध होता रहे और उनके अन्नमय कोश में समाधानकारक परिवर्तन प्रस्तुत हो सके।

प्राणमय कोश की जागृति के लिए प्राणयोम का सरल किन्तु प्रभावी आधार सोऽहम् महामन्त्र का अजपा जाप रखा गया है। प्राण को महाप्राण में संयुक्त करने की यह उपयुक्त प्रक्रिया है। अनन्त अन्तरिक्ष में जिस श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया द्वारा चैतन्य विद्युत महाप्राण को खींचा जाता है उसके लिए यों दस प्राणायाम अन्य भी हैं पर उनमें सर्वश्रेष्ठ सोऽहम् के प्राणयोग को ही माना गया है। वह बिना जोखिम और बिना झंझट का भी है। पाँचों प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत सजग, समर्थ बनाये जा सकते हैं और पाँच उपप्राण—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनन्जय—भी इस साधना से परिष्कृत, समुन्नत होते हैं। आज की स्थिति में सर्वसाधारण के शारीरिक मानसिक स्तर को देखते हुए प्राणयोग का सर्वसुलभ माध्यम सोऽहम् का अजपा जाप ही निर्धारित किया जा सकता है।

मनोमय कोश की जागृति के लिए मनोनिग्रह के साधना, क्रम अपनाने पड़ते हैं। इसके लिए बिन्दुयोग—पाठक—प्रकाश ज्योति का आज्ञाचक्र में अवतरण सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। मन का निवास मस्तिष्क में है और मस्तिष्क का नियन्त्रण आज्ञाचक्र से होता है। शिव और दुर्गा के चित्रों में जो तीसरा नेत्र चित्रित है वह इस महा केन्द्र में अवस्थित शक्ति सत्ता का परिचय देता है। भगवान शिव ने उपद्रवकारी मनजिस—मनोज—कामदेव को इसी दिव्य नेत्र का अनावरण करके भस्म किया था। मन की उछलकूद—कुमार्गगामिता को निरस्त नियन्त्रित करने के लिए आज्ञाचक्र को ज्योतिर्मय बनाना ऐसा साधना-चक्र है जिससे मनोनिग्रह की समस्या इस स्तर के अन्य सभी साधनों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह हल हो जाती है।

बिन्दुयोग की साधना इसी प्रयोजन के लिए है और साधक प्रत्यक्ष अनुभव करता है कि उसका मनःक्षेत्र किसी ऐसे दिव्य प्रकाश से भर गया जिससे मनोगत कुत्साओं एवं उच्छृंखलताओं को हतप्रभ ही होना पड़ेगा। मनोजय की दिशा में बिन्दुयोग से—त्राटक ज्योति अवतरण की ध्यान धारणा से कितनी सहायता मिलती है उसे अनुभव के आधार पर सहज ही जाना जा सकता है।

विज्ञानमय कोश की जाग्रति के लिए मध्यान्होत्तर दो साधनाऐं हैं (१) आत्मबोध और (२) तत्वबोध। जीवन तथ्य की गरिमा, गम्भीरता तथा यथार्थता को समझना—अनुभव करना ही विज्ञान है। दर्पण के माध्यम से अपने गर्हित और एक महत्तम स्तर का विचार विश्लेषण किया जाता है और आत्मसत्ता को उच्चस्तरीय स्थिति तक पहुँचाने लिए उभारा-उभगाया जाता है। आत्मदेव को इष्टदेव में परिणत करने की आत्मबोध साधना ब्रह्मविद्या के उस महान प्रयोजन को पूरा करती है जिसमें भूमा, ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं आत्मजागृति के आधार पर भव बन्धन कटने और जीवन लक्ष्य प्राप्त होने की प्रेरणा दी गई है। तत्व ज्ञान में शरीर और मन के पृथक्करण का धारण है। वैराग्य, सन्यास, परमहंस गति, स्थितिप्रज्ञ अवस्था का उदय होता है। आत्मबोध और तत्वबोध की उभयपक्षीय चेतना का उद्भव जिस अन्तःकरण में होगा उसे विज्ञानमय कोश का सफल साधक ठहराया जा सकेगा।

प्रत्यावर्तन-साधना क्रम में अभ्यंतरमय कोश की जागृति के लिए दो साधनाएँ (१) खेचरी मुद्रा—जिव्हा को तालू से सटाकर ब्रह्मरन्ध से टपकने वाले अमृत बिन्दुओं का रसास्वादन। (२) नादयोग और नादानुसंधान। इसके माध्यम से मन मयूर को नृत्य करने का—वेणुनाद पर चलने वाले रास उल्लास का अनुभव कराते हैं और अन्तःकरण को आनन्द उल्लास भरी भूमिका का रसास्वादन होता है।

साधना के तीन स्तर हैं—आरम्भिक, माध्यमिक, उच्चस्तरीय। इन्हें प्राइमरी स्कूल, हाईस्कूल और कालेज कह सकते हैं। प्राइमरी स्कूल की त्रैत साधना है जिनमें पंचतत्वों से बना प्रतिमास्वरूप भगवान, पूजा रत पंचतत्वों से बना शरीर। पञ्चतत्वों की पूजा सामग्री इस प्रकार यह पार्थिव पूजा प्रारम्भिक साधना कही जाती है। देवालयों में कर्मकाण्ड उपचारों में यही प्रक्रिया काम करती है। कथा, कीर्तन, परिक्रमा, यात्रा, स्नान, तर्पण, प्रभृति विविध विधि क्रिया-कलाप इसी स्तर के हैं। यह बाल कक्षा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वैत में ध्यान की प्रधानता है। भक्त और भगवान का परस्पर भावनाओं का आदान-प्रदान, सानिध्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य अनुभव इसी भूमिका से किया जाता है। इसे हाईस्कूल स्तर की द्वैत साधना कह सकते हैं।

अन्तिम उच्चस्तरीय साधना अद्वैत की है। इसे कालेज कक्षा कह सकते हैं। इससे ब्रह्म और जीव का परस्पर समर्पण होता है। जीव अपनी सत्ता ब्रह्म में होमता है और ब्रह्म अपनी विभूतियाँ जीव पर उँड़ेलता है। इस आदान-प्रदान में दोनों की ही तृप्ति होती है। इसे आत्मा और परमात्मा का विवाह बन्धन—ब्रह्म सम्बन्ध कह सकते हैं। प्रत्यावर्तन सत्र की प्रायः सभी साधनाएँ इसी समर्पण योग की पृष्ठभूमि विनिर्मित करती हैं। इसलिए उसे उच्चतम स्तर की वेदान्तोक्त अद्वैत साधना कह सकते हैं। उक्त साधना क्रम को संक्षिप्त में फिर एक बार यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में चर्चा में एवं विवेचन विश्लेषण को समझने में अधिक सुविधा होगी।

(१) प्रातः ५ से ५। तक शिथिलीकरण मुद्रा शवासन—शरीर को बिना तनाव का बनाना, अधिकाधिक शिथिल करना—मृतक जैसी स्थिति में शरीर में ढीलापन लगना।

(२) ५। से ५।।—उन्मनी मुद्रा—मन को विचाररहित खाली कर देना। प्रलय काल जैसी—नीचे नील जल ऊपर नील आकाश के बीच अपने को एकाकी बालक के तरह कमल पत्र पर पड़े हुए बहते जाने की भावना करना। संसार में वस्तुओं और व्यक्तियों का सर्वथा अभाव अनुभव करना—सर्वथा नीरवता का ज्ञान करना।

(३) ५।। से ६।। तक खेचरी मुद्रा—जिव्हा को तालू पर उलटकर ब्रह्मरन्ध्र से टपकने वाले आनन्द और उल्लास को उभयस्तर की अमृत बिन्दुओं का रसास्वादन करना। आनन्द अर्थात् संतोष हर्ष। उल्लास अर्थात् ऊर्ध्व गमन के लिए उमंग, उत्साह।

(४) ७।। से ८ तक आधा घण्टा गायत्री मन्त्र का पांच मालाओं का जप। जप काल में आधे समय मल-मूत्र सनी मलीनता के कारण माता का अपनी गोद में न लेना। स्नान कराया जाना और पोंछा जाना। तदुपरान्त माता की गोद में प्रश्रय और प्यार-दुलार मिलना। जप के अन्त में सूर्यार्घ देते हुये अपनी उपलब्धियों को जल रूप मानकर ब्रह्मवर्चस के प्रतीक भगवान आदित्य के चरणों में समर्पित विसर्जित करना।

(५) ८ से ८।।। तक पौन घंटा सोऽहम् साधना—आरम्भ के पन्द्रह मिनटों में श्वाँस के साथ साथ 'सो' की तथा श्वास निकलते समय 'हम्' की ध्यान की भावना करना। उसके उपरान्त श्वाँस के रूप में महाप्राण का शरीर के रोम-रोम में प्रवेश और 'हम्' के रूप में निकृष्ट स्तर की अहंता का बहिष्कार।

(६) ८।।। से ६।। तक पौन घंटा—बिन्दुयोग-त्राटक। प्रकाशबत्ती पर दृष्टि जमाना। आँखें बन्द करना और भूमध्य भाग आज्ञाचक्र में प्रकाशज्योति का ध्यान जमाना। उस प्रकाश का शरीर के प्रत्येक अवयव एवं मन के प्रत्येक स्तर में प्रवेश अनुभव करना और अपनी सत्ता के कण-कण में दैवी प्रकाश की ज्योति जगमगाती अनुभव करना।

(७) ६।। से १० तक आधा घंटा नादयोग का पूर्वार्ध भगवान की वंशी जैसी पुकार प्रेरणा में अपने लिए आव्हान का आमन्त्रण मानना और रास नृत्य की तरह ईश्वरीय संकेतों पर थिरकने की भाव-विभोर स्थिति में पहुँचना।

(८) ३ से ३।।। तक पौन घंटा आत्मबोध। दर्पण में अपनी छवि देखते हुए अब तक वे अवरोधों के लिए अपने को उत्तरदायी मानते हुए भर्त्सना करना और भविष्य में सत्यपथ गमन के लिए अनुरोध, अनुग्रह करना। इसी कलेवर में शैतान और भगवान की परस्पर विरोधी सत्ताएँ अवस्थित देखना। दोनों में से एक को चुनना। आत्मसत्ता के भीतर समाये हुए इष्टदेव का अभिवन्दन और प्रत्यक्ष करना। भविष्य में उसे देवस्तर का बनने का विश्वास करना। उसी उज्ज्वल स्वरूप को ईश्वर प्राप्ति का प्रत्यक्षीकरण मानना और उस स्तर के लिये अभी से श्रद्धांजलि समर्पित करना।

(९) ३।।। से ४।। तक पौन घंटा। तत्व बोध। शरीर और आत्मा का पृथक्करण। अपने शरीर का मृतक स्थिति में कुत्ते, कौओं, कीड़ों द्वारा खाया जाना, जलाया, गाढ़ा जाना देखना। अपने को किसी ऊँचे स्थान पर बैठकर यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सब दृश्य देखने की स्थिति में रखना। शरीर और मन को आत्मा का वाहन उपकरण मात्र समझना। उनके स्वार्थ और अपने स्वार्थ में अन्तर करना। उपलब्ध क्षमता में से कितना अंश इन वाहनों के लिए रखना और कितना आत्मकल्याण के लिये रखा जाना चाहिए, इसका निर्णय करना।

(१०) ४।। से ५ तक आधा घण्टा। नाद-योग का उत्तरार्ध। इस बार उच्च दृष्टिकोण अपनाकर संसार में मनुष्यों में बिखरे हुए उत्कृष्टता के तत्व का अनुभव करना और विधेयात्मक दृष्टिकोण के—अनासक्त मनःस्थिति के फलस्वरूप मिलने वाले स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति में संगीत ध्वनि के साथ-साथ हर्षोल्लास भरे भाव नृत्य में संलग्न होने की अनुभूति करना।

इन दसों साधनाओं पर ध्यान देने से प्रतीत होगा कि इन का भाव पक्ष तत्व दर्शन के सारभूत सिद्धान्तों का एक संतुलित समन्वय है। उसके ब्रह्मविद्या के चार आधार हैं—(१) आत्मचिन्तन (२) आत्मसुधार (३) आत्म-निर्माण (४) आत्मविकास। इन चारों ही प्रयोजनों को यह साधना पद्धति बहुत ही सुन्दर, समुचित एवं संतुलित रूप में सम्पन्न करती है। साधनाएँ उपक्रम के माध्यम से उस भाव अभ्यास की यह रूपरेखा है जिसके आधार पर प्राण का महाप्राण एवं आत्मा का परमात्मा- के रूप में विकसित हो सकना कठिन नहीं रहता, सरल हो जाता है।

इसी प्रकार साधना सत्र में सम्मिलित होने वाले साधकों को जिस दिनचर्या का पालन करना पड़ता है उसे भी जीवन-क्रम की संतुलित व्यवस्था की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रशिक्षण ही कह सकते हैं। प्रातःकाल ब्रह्म मुहुर्त में ४ बजे उठना, शौच स्नान से ५ बजे तक निवृत्ति हो जाना, एक ऐसा क्रम है जो अभ्यास में आने पर एक घंटे में शरीर की स्वच्छता से निवृत्त होकर आवश्यक कार्यों में जुटा जा सकता है और ऐसे ही आलस-प्रमाद में जो समय नष्ट होता रहता है उसे बचाया जा सकता है। भोजन, विश्राम आदि की नियोजित दिनचर्या बनाई जाय, अपने काम स्वयं किये जायँ। कपड़े धोने, सफाई सम्बन्धी अन्य काम स्वयं निपटाने की आदतें रखें। रात्रि को समय पर सो जाया जाय तो इस नियमित व्यवस्था को अपनाकर हर मनुष्य अधिक काम कर सकता है, अधिक व्यवस्थित एवं निश्चिन्त रह सकता है। घर परिवार के तथा साथी सहचर लोग प्रसन्न सन्तुष्ट रह सकते हैं। साथ ही अधिक मात्रा में अधिक अच्छे स्तर का उपार्जन हो सकता है। नियमित दिनचर्या जीवन की सफलता का अति महत्वपूर्ण सूत्र है। जो लोग यह समझते हैं कि अधिक काम करने की वजह से अव्यवस्थित रहना पड़ता है वे भारी भूल करते हैं। अव्यवस्था से काम का स्तर गिरता है, समय की बर्बादी होती है और लाभ को बढ़ाती नहीं घटाती है। व्यस्त किन्तु नियमित जीवनचर्या अपनाने वाले ही कुछ महत्वपूर्ण प्रगति कर सके हैं यह ध्यान रखना चाहिए।

प्रत्यावर्तन सत्र में हर काम समय पर करने, हर वस्तु को सँभालकर रखने और अपने हर कार्य में स्वच्छता व्यवस्था प्रदर्शित करने का विशेष रूप से निर्देश देते रहते हैं। देखने में यह बहुत सी छोटी बातें हैं। पर इन छोटी आदतों पर भी व्यक्तित्व का आधार निर्भर रहता है। तिनके-तनके जोड़कर ही पक्षी अपने सुन्दर एवं सुदृढ़ घोंसला बनाता है। मनुष्य का प्रतिभाशाली और समुन्नत व्यक्तित्व भी समय के सदुपयोग और नियमित क्रम-व्यवस्था पर ही निर्भर रहता है।

सत्र के दिनों में एकाकी निवास, एकान्त चर्या-आश्रम की मर्यादा के भीतर ही रहना घूमना, अनावश्यक बकवास न करना, केवल नितान्त आवश्यक कार्यों के लिए ही वाणी खोलना आदि छोटे बड़े नियम प्रतिबन्ध ऐसे हैं जो मोटी दृष्टि से साधारण जैसे भले ही प्रतीत हों पर उनमें एक क्रम व्यवस्था की शिक्षा है जिसके आधार पर घर जाकर भावी जीवन के लिए नियमित और व्यवस्थित योजना बनाकर रहा और चला जा सकता है। यह छोटे-छोटे सूत्र मिलकर समुन्नत जीवन की नींव के सुदृढ़ पाषाण बन सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंच कोषों की साधना पंचदेवों की सिद्धि

प्रत्यार्वतन सत्र की साधनायें साधक की सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त करती हैं। उनमें व्यक्ति और समाज के समग्र उत्कर्ष की सम्भावना सन्निहित है।

बंहिर्मुखी प्रवृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाने के लिए सत्र के चार दिनों में भरपूर प्रयत्न किया जाता है। मनुष्य जीवन भर बहिरंग समस्याओं में ही उलझा रहता है। बाहर ही सुख खोजता है, पदार्थों और परिस्थितियों की अनुकूलता के लिए व्याकुल रहता है और प्रसन्नता के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। फलतः कस्तूरी के मृग की तरह उसे असफलता ही मिलती है। एक कामना पूरी नहीं हो पाती कि दूसरी उससे भी प्रबल उग्रता के साथ उठ खड़ी होती है। एक कौने में अनुकूलता आती है तो दूसरे में और भी अधिक प्रतिकूलता उभर पड़ती है। एक धागा जुड़ता है तो दो टूटते हैं। ऐसे ही अशान्ति और अतृप्ति की सुरसा का मुँह भरने का प्रयास करने में हाथ मलता हुआ प्राणी इस संसार से विदा हो लेता है, पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पाप और पश्चांताप की गठरी सिर पर लादकर ही उसे भगवान के दरबार में उपस्थिति होना पड़ता है।

इस तथ्य को कोई बिरले ही जानते हैं कि प्रगति की सभी सम्भावनायें भीतर हैं। शक्ति के समस्त स्रोत अन्तरंग में छिपे पडे हैं। सुख और शान्ति परिष्कृत दृष्टिकोण पर निर्भर है। समस्याओं के उत्पन्न करने और सुलझाने के समस्त केन्द्र अन्तकःकरण में हैं। बाह्य जीवन की अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ अपने आन्तरिक स्तर की भली-बुरी प्रतिक्रिया मात्र हैं। जिसने इस महा सत्य को समझा है वह बाह्य प्रयत्नों तक सीमित न रहकर अपनी अन्तःसत्ता को समझने, सुधारने, बनाने और विकसित करने में ही संलग्न रहता है। इस दुहरे प्रयास के बिना उत्कर्ष की स्थिरता का समग्र समाधान किसी को भी कभी भी मिल नहीं सकता।

आदत बाहर ही देखने, बाहर ही खोजने की पड़ी है। दूसरे भी यही करते हैं अस्तु अपना स्वभाव एवं दृष्टिकोण भी वैसा हीं बन जाता है। दूसरों की तरह चलने वाली भेड़चाल भी किसी शान्तिमय समाधान तक नहीं पहुँचने देती। प्रत्यावर्तन सत्र के चार दिनों में इस भूल को सुधारने का प्रबल प्रयत्न किया जाता है। आश्रम से बाहर न जाओ, साधना कक्ष से बाहर अकारण न भटकने, अनावश्यक वार्तालाप न करने के प्रतिबन्ध इसीलिए हैं। साधना में छः घन्टे लगते हैं और दो घन्टे प्रवचन सुनने को मिलते हैं। पन्द्रह मिनट व्यक्तिगत परामर्श के हैं। इस प्रकार बाधित सवा आठ घण्टे की प्रक्रिया साधक को अनिवार्य रूप से आत्मचिन्तन में लगाये रहती है। निद्रा और नित्य कर्म के अतिरिक्त जो शेष समय बच जाता है उसमें भी मनन और चिन्तन की प्रक्रिया में ही संलग्न रहना पड़ता है। बाहर की बातें न सोचने की मनाही इसीलिए की गई है कि आत्मचिन्तन में बाधा न पड़े। चार दिन तक संन्यासी जैसी मनःस्थिति में—ज्ञान और वैराग्य की भूमिका में—रहने का निर्देश इसीलिए किया गया है कि अन्तर्मुखी स्थिति बनाने का अवसर जो प्रायः कभी भी नहीं मिलता, वह यहाँ मिल सके।

छोटे स्तर की पूजा, उपासना भी प्रायः बहिर्मुखी होती है। उसमें भगवान को अपने से बाहर मानकर स्तवन-पूजन किया जाता है और उसे किसी तीर्थ या लोक में मानकर वहाँ तक पहुँचाने का ताना-बाना बुनना पड़ता है। स्तवन पूजन की मनुहार से उसे द्रवित, प्रसन्न करने की बात सोची जाती है। यह बालकक्षा विस्मृति को स्मृति में—इसी की समीपता में—लाने की दृष्टि से ही कुछ उपयोगी होती है अन्यथा भगवान को प्राप्त तो भीतर ही करना पड़ता है। मिलन के लिए यही एकमात्र स्थान है। इससे बाहर तो दिव्य प्रकाश की अनुभूति कभी किसी को होती भी नहीं है। जीवन लक्ष्य को उपलब्ध करा सकने वाले समस्त स्रोत अन्तःलोक में ही उद्भूत होते हैं। आत्म परिष्कार की विद्या का नाम ही अध्यात्म विद्या अथवा ब्रह्म विद्या है। श्रेय साधन के लिए इस क्षेत्र में गहराई तक उतरने के अतिरिक्त और कोई गति है ही नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्यावर्तन के साधक को बहिरंग जीवन में अब तक हुए पापों का ब्यौरा देना होता है और उस पर पश्चाताप करते हुए विश्व मानव को पहुँचाई गई क्षतिपूर्ति का प्रायश्चित्य करना पड़ता है। इसमें भावी जीवनक्रम की शुद्धता बनाये रखने का संकल्प भी सम्मिलित है। यही प्रक्रिया अन्तरंग जीवन के लिए लागू होती है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव में घँसे हुए दोष-दुर्गुणों पर—कषाय कल्मषों पर—मल, आवरण और विक्षेपों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए आत्म-समीक्षा पर उतारू होना पड़ता है और जो अवांछनीयताएँ भावनाओं में—मान्यताओं में—आकांक्षाओं में भर गई हैं उन्हें भी निरस्त करने के लिए साहसिक कदम बढ़ाना पड़ता है। बहिरंग और अंतरंग जीवन को अधिकतम पवित्र और प्रखर बनाने की यह चेष्टा हेय स्तर के नर कीटक को नर-नारायण स्तर तक पहुँचा देने में समर्थ होती है। अंगारा तभी तक ठण्डा और काला दीखता है जब तक उस पर राख की परत जमी रहती है। जैसे यह परत हटी कि अंगारा अपने असली रूप में उष्णता एवं चमक से भरा पूरा दीखने लगता है। आत्मा की महत्ता को जिन दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों ने अवरुद्ध कर रखा है यदि उन्हें हटा दिया जाय तो फिर सफल जीवन जीने में कोई व्यवधान शेष नहीं रहता और न स्वर्ग, मुक्ति एवं ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य पूरा करने में कोई अड़चन शेष रहती है।

परिष्कृत जीवन अपने लिए—अपने परिवार के लिए—समस्त संसार के लिए कितना मंगलमय होता है, इसे हर कोई प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। मान्यताओं, आकांक्षाओं, आदर्तों को बदल देने पर जीवन का बाह्य स्वरूप सहज ही बदल जाता है। मनुष्य में देवत्य उदय होने का परिणाम धरती पर स्वर्ग के अवतरण की प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। उपासना और साधना का प्रयोजन इसी स्थिति को प्राप्त कराना है। आत्मा का परिष्कृत स्वरूप ही परमात्मा है। उसे प्राप्त करने के लिए आत्म-शोधन और आत्म-विकास के दोनों पंखों से उड़ना होता है—दोनों पैरों से चलना होता है। प्रायश्चित्य प्रक्रिया से लेकर ६ घण्टे की साधना दो घण्टे का प्रवचन—पन्द्रह मिनट का परामर्श विशुद्ध रूप से इस एक ही प्रयोजन के लिए है। यदि यह पूरा हो सके तो नरक से स्वर्ग में पहुँचना—बन्धन से मुक्त होना अविलम्ब सम्भव हो जाता है। अवांछनीय गतिविधियों में उलझी हुई अन्तःचेतना जब अपना चिन्तन और कर्तृत्व बदलने के लिये सहमत हो जाती है तो मनुष्य का कायाकल्प महामानव के, भूसुर के—रूप में हुआ तत्काल दीख पड़ने लगता है। जीवन-लक्ष्य की पूर्ति इसी को कहते हैं। अपनी आत्मा जिसे सबमें दीखने लगी—जिसने स्वार्थपरता और संकीर्णता की जंजीरें तोड़कर समस्त विश्व को परमात्मा का रूप माना और उसे समुन्नत बनाने के लिए आत्म-समर्पण का साहस किया, उसके लिए ईश्वरीय अनुकम्पा दूर कहाँ रहती है ? वह तो स्वयं ईश्वर बन जाता है।

व्यक्ति निर्माण की दृष्टि से प्रत्यावर्तन साधना को अत्यन्त सफल प्रक्रिया कहा जा सकता है। प्रस्तुत मार्गदर्शन को जो जितनी मात्रा में अपना सकेगा वह उसी अनुपात से अपने देवत्य की ज्योतिर्मयी आभा जाज्वल्यमान अनुभव करेगा। दूसरों का स्नेह, सहयोग और सद्भाव उसी अनुपात में उस पर बरसेगा। प्रगति की बहुमुखी सम्भावनाओं का उतना ही द्वार खुला हुआ प्रत्यक्ष दिखाई देगा।

कहना न होगा कि उस प्रकार की श्रेय साधना में निरत-उच्चस्तरीय चिन्तन और कर्तृत्व के अभ्यस्त व्यक्ति किसी भी राष्ट्र की बहुमूल्य सम्पदा सिद्ध हो सकते हैं। चरित्रगत, कर्मठ और आदर्शवादी लोग ही समाज को समुन्नत बनाते हैं। विश्वशान्ति में उन्हीं की भूमिका प्रमुख होती है। प्रत्यावर्तन साधना की सफलता का सामाजिक परिणाम अत्यन्त सुखद होगा। उनके हाथ में जो भी काम होगा उसे उच्चस्तरीय कर्मयोग भावना से पूरा करेंगे। फलतः व्यक्ति के सदाशयता पूर्ण अनुदान से समाज को—विश्व को—अत्यन्त—सुखद परिणामों से लाभान्वित होने का अवसर मिलेगा।

आत्मा परमात्मा का अंश है। उसमें बीज रूप से वे सभी शक्तियाँ और सम्भावनाएँ भरी हुई हैं जो परमात्मा में विद्यमान हैं। स्थूल शरीर की पवित्रता के सत्परिणामों की चर्चा ऊपर हो चुकी है। उनसे व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में सुखद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवर्तन होना नितान्त स्वाभाविक है। उससे आगे सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर का प्रसंग आता है। वे दोनों ही कलेवर स्थूल शरीर की तुलना असंख्य गुनी ऐसी क्षमताएँ दबाये पड़े हैं जिन्हें अतीन्द्रिय, अलौकिक एवं अतिमानवी कहा जा सकता है। सिद्धयोगी, देवपुरुष एवं ऋषिकल्प व्यक्तित्व किसी भी क्षेत्र में कुछ भी काम करते हुए पाये जा सकते हैं। इनकी अन्तःचेतना इतनी प्रचण्ड होती है कि वे न केवल अपना कल्याण करते हैं वरन् दूसरे असंख्यों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से महान कल्याण करते हैं।

सूक्ष्म शरीर के पाँच कलेवर हैं जिन्हें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश कहते हैं। मूलाधार और सहस्रार को छोड़कर पाँच चक्र भी इन्हीं से सम्बद्ध हैं। इन्हें पाँच आणविक विद्युत भण्डार कहा जा सकता है। इन्हें अन्तरिक्ष में संव्याप्त असंख्य शक्ति धाराओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले शक्तिशाली इलेक्ट्रोनिक्स संयंत्र कह सकते हैं। आत्मा और परमात्मा के बीच अगणित आदान-प्रदान इन्हीं पाँच कोशों के द्वारा होते हैं। इन पर अधिकार करने वाला व्यक्ति अशक्ति और तुच्छता का उल्लंघन करके, असम्भव को सम्भव बनाने वाले—अमृतपायी—देवताओं की पंक्ति में जा विराजता है।

प्रत्यावर्तन सत्र में सूक्ष्म शरीर को परिष्कृत एवं बलिष्ठ बनाने की पाँच साधनाएँ हैं। इन्हें पाँच कोशों की—पाँच चक्रों की समग्र साधना कह सकते हैं। चार दिनों में उसी महायात्रा के सम्बन्ध में आवश्यक परिचय एवं अभ्यास करा दिया जाता है ताकि क्रमशः उस मार्ग पर कदम बढ़ाते हुए अध्यात्म सम्पदाओं से सम्पन्न बना जा सके। चार दिन में साधना की पूरी मंजिल पार करके पूर्णता के लक्ष्य तक जा पहुँचना और सिद्धयोगी बन सकना तो असम्भव है, उसके लिए समय और सतत् श्रम चाहिए। इन थोड़े से दिनों में शिक्षण और अनुभव की इतनी आवश्यकता पूरी हो जाती है कि प्रगति प्रयाण की शान्ति सुव्यवस्था एवं सफलता के साथ द्रुतगति से आगे बढ़ाया जा सके।

प्रत्यावर्तन साधना-क्रम में पाँच योगों का समावेश है (१) लययोग (२) बिन्दुयोग (३) प्राण योग (४) ऋजुयोग (५) नादयोग। इस एक ही साधना क्रम में पाँच योग साधनाएँ जुड़ी-गुँथी हुई हैं। इन्हें पंचकोशों के अनावरण का प्रयोजन पूरा करने वाली पंचकोशी उच्चस्तरीय गायत्री साधना कह सकते हैं। प्रातः खेचरी मुद्रा वाला प्रथम साधना सोपान लययोग है। दूसरे सोपान में सोऽहम् साधना प्राणयोग के अन्तर्गत आती है। आज्ञाचक्र में ज्योति आवरण बिन्दुयोग है। नादयोग के दो प्रयोग ब्रह्म सम्बन्ध और मनोनिग्रह का प्रयोजन दो बार में पूरा करते हैं। तीसरे सोपान में आत्मबोध और तत्वबोध की साधना ऋजुयोग के दो पक्ष हैं। लययोग से आनन्दमय कोश—बिन्दुयोग से अन्नमय कोश, प्राणयोग से प्राणमय कोश, नादयोग से मनोमय कोश और ऋजुयोग से विज्ञानमय कोश की जागृति होती है। इसी साधना में पाँच चक्र भी जागृत होते चले जाते हैं।

इनमें से प्रत्येक योग की अपनी सिद्धियाँ हैं। खेचरी मुद्रा से अमृतत्व की—देवतत्व की प्राप्ति—देव सत्ताओं के साथ आदान-प्रदान, बिन्दुयोग से अदृश्य दर्शन, व्यक्तित्व में विद्युतीय प्रवाह का अभिवर्धन। प्राणयोग से स्थिरता, सुदृढ़ता, साहसिकता एवं तेजस्विता की वृद्धि अभय एवं पराक्रम में कौशल। नादयोग से दिव्य श्रवण, वायरलैस जैसा चेतन स्तर, उपयोगी सूझ का उठना। ऋजुयोग से आत्म-साक्षात्कार, स्वर्ग एवं मुक्ति की प्राप्ति। सिद्धियों के यह संकेत भर हैं। वस्तुतः उनका सीमा-बेधन नहीं किया जा सकता, वे कितने प्रकार एवं कितने स्तर की हो सकती हैं। यह साधक की मनःस्थिति पर निर्भर है। दर्पण पर साधना करने के छोटे से विधान को ही लें। उसमें छायापुरुष सिद्धि की समस्त संभावनाएँ विद्यमान हैं। अपने ही स्तर का एक नया सूक्ष्म व्यक्तित्व उत्पन्न कर लेना छायापुरुष कहलाता है। पाँचकोशों में पाँच छायापुरुष तक सिद्ध कर लेने की गुंजायश है। वे विश्वस्त एवं समर्थ सेवक का कार्य करने में निरन्तर जुटे रह सकते हैं। बिन्दुयोग से मैस्मरेजम, हिप्नोटिज्म जैसी सफलताएँ मिल जाती हैं। प्राणयोग के सहारे प्राण चिकित्सा से कठिन रोगों को सरलतापूर्वक दूर करने में सफलता मिल सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्यावर्तन में सूर्यार्घदान तथा माता के गोदी में न लेनें के पीछे जो भावनाएँ हैं वे अध्यात्म मार्ग में सहज ही बहुत ऊँचे तक पहुँचा देती हैं। गायत्री महामन्त्र की अन्यान्य शक्तियों एवं सिद्धियों के बारे में तो कुछ कहना ही कठिन है। वस्तुतः भारतीय साधना-विज्ञान का वह प्राण है। मन्त्रयोग की धुरी गायत्री साधना को ही कहा जा सकता है। प्रत्यावर्तन को तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो उसे गायत्री के पाँच सुखों के अलंकार चित्र में चित्रित पाँच कोशों की पञ्चयोग सम्मिश्रित साधना कह सकते हैं। यह जागृत कोश (१) भवानी (२) गणेश (३) ब्रह्मा (४) विष्णु (५) महेश रूपी पाँच देवता कहे जा सकते हैं। इस साधना की सफलता को प्रख्यात पाँच देवों के द्वारा प्राप्त हो सकने वाले अनुदान वरदान के रूप में देख सकते हैं।

गायत्री का देवता सविता है। सविता को महातेजस्वी परब्रह्म का प्रतीक कह सकते हैं। सूर्यार्घदान में—सूर्योपस्थान में—सविता देवता की उपासना के सूत्रों का समावेश है उससे मनुष्य तेजस्वी, मनस्वी एवं प्रचण्ड ब्रह्मतेज सम्पन्न बन सकता है।

प्रत्यावर्तन साधना के समय एकाग्रता पर जोर नहीं दिया जाता वरन् प्रत्येक साधना के साथ जुड़ी हुई विचारणा एवं भावना को सुविस्तृत करने वाला व्यापक चिन्तन करने के लिए कहा जाता है। साधना और निर्दिष्टि दिशा में चलने की उन प्रेरणाओं को हृदयंगम करने की विधि क्या हो सकती है ? इसी की विस्तृत योजनाएँ साधनाकाल में बनाते रहने के लिए कहा जाता है। भाव प्रवाह को निर्दिष्ट दिशा में लगाये रहा जाय और भावी जीवन में उन प्रेरणाओं का समावेश कैसे किया जाय, इसी की योजनाएँ बनाते रहने के लिए कहा जाता है। इन साधना सत्रों में साधक को विशेष दिशाओं में चिन्तन करने का—विचारणाओं को दिशा विशेष में नियोजित किये रहने का अभ्यास कराया जाता है। एकाग्रता इस सत्र में आवश्यक नहीं मानी गई है।

एकाग्रता का भाव, समाधि का स्तर कारण शरीर को जागृत करने की साधनाएँ हैं। उसी में कुण्डलिनी जागरण की समग्र प्रक्रिया जुड़ी रहती है। यह उन लोगों के लिये सुरक्षित है जो प्रत्यावर्तन के माध्यम से सूक्ष्म शरीर को परिष्कृत करने की दूसरी मन्जिल पूरी कर लेंगे। सामान्य गायत्री उपासना को प्राथमिक कक्षा कह सकते हैं। प्रत्यावर्तन साधना का हाईस्कूल कक्षा, मंत्र दीक्षा और प्राणदीक्षा इन्हीं दो स्तरों का नाम है। इस साधना के साधक अपने को प्राणदीक्षा से दीक्षित अनुभव कर सकते हैं। कालिजं-कक्षा, अग्निदीक्षा कहलाती है। उसमें साधक ब्रह्मभूत होता है अपने को स्थितिप्रज्ञ की—जीवन मुक्त की ब्रह्म सायुज्य की स्थिति में अनुभव करता है। इस स्तर की साधनाएँ प्राण प्रत्यावर्तन के सफल साधक समयानुसार प्राप्त कर सकते हैं। क्रमिक प्रगति के साथ-साथ अग्रगामी उपलब्धियों का पथ स्वयमेव प्रशस्त होता चला जाता है।

आशातीत सफलता सम्पन्न प्रत्यावर्तन साधना

मानवी सत्ता को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) अस्थि माँस का—पंचतत्वों का बना पिण्ड जिसे स्थूल शरीर कहते हैं, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा इसके द्वारा विविध विधि क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। (२) मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार द्वारा विनिर्मित—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की तन्मात्राओं से बना हुआ अनुभूतियों, इच्छाओं और प्रेणाओं का आधार सूक्ष्म शरीर जिसे मस्तिष्क में अवस्थित ज्ञान संस्थान कहा जाता है (३) आस्थाओं, मान्यताओं और आकांक्षाओं का उद्गम जीवन का दिशा निर्देशक कारण शरीर जिसे अन्तरात्मा अथवा अन्तःकरण भी कहते हैं। संक्षेप में इन तीनों को क्रमशः क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति और इच्छा शक्ति का उद्गम कह सकते हैं। इन तीनों का समन्वित रूप ही मानवी सत्ता है।

इन तीनों की महत्ता और सामर्थ्य एक-दूसरे से अधिक एवं आगे हैं। स्थूल शरीर द्वारा सम्भव श्रम का मूल्य स्वल्प है। उसका कार्य पशुओं एवं मशीनों से भी लिया जा सकता है। शारीरिक श्रम द्वारा वस्तुओं का उत्पादन अभिवर्धन एवं उपयोग हो सकता है। इसकी कमाई स्वल्प है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूक्ष्म शरीर—मन, मस्तिष्क द्वारा हम वैज्ञानिक डाक्टर कलाकार, व्यवसायी, नेता विद्वान आदि विशिष्ट व्यक्ति बनते हैं। बौद्धिक क्षमता द्वारा धन ही नहीं यश, पद आदि भी प्राप्त करते हैं। विनोद, मनोरंजन प्रसन्नता, तृप्ति की सरस अनुभूतियाँ भी इसी शरीर द्वारा उपलब्ध होती हैं। वासना और तृष्णा का उद्‌भव उसी में होता है और तरह-तरह की महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने वाला ताना-बाना इसी में बुना जाता है। बुद्धिमान, दूरदर्शी, कुशल, चतुर और प्रतिभा-सम्पन्न इसी क्षेत्र को विकसित करके बना जाता है।

सबसे ऊँचा और शक्तिशाली स्तर है कारण शरीर। इसमें आस्थाओं, मान्यताओं, विश्वासों की गहरी परतें जमी होती हैं। संवेदनाएँ और आकांक्षाएँ यहीं उत्पन्न होती हैं। शौर्य, साहस एवं आदर्शवादी प्रेरणाओं का उभार उसी क्षेत्र में आता है। अपने स्वरूप का निर्धारण जीवनयापन की रीति-नीति, अभिरुचियाँ और आकांक्षाओं की दिशा का निर्धारण यहीं से होता है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि इसी केन्द्रबिन्दु से मस्तिष्क और शरीर को अपनी हलचलें आरम्भ करने की दिशा मिलती है। यह सबसे सूक्ष्म, गहरा और सामर्थ्यवान स्तर है। व्यक्तित्व का निर्धारण और निखार यहीं से सम्भव होता है। पतित या समुन्नत बनने की सारी प्रक्रिया इसी स्थान पर सम्पन्न होती है।

आमतौर से हम शरीर पर ही अधिक ध्यान देते हैं। खाने, सोने से लेकर तरह-तरह के इन्द्रिय उपभोग से इसी पिण्ड का परितोष किया जाता है। रंग, रूप, स्वर, व्यवहार का आकर्षण इसी में होता है। रुग्णता और स्वस्थता यहीं से उत्पन्न होती है। धन तथा दूसरे उपार्जन इसी से होते हैं। इसलिए प्रायः सभी लोग शरीर को भोजन, वस्त्र व्यायाम, शृंगार, सज्जा, चिकित्सा, सुविधा आदि से सन्तुष्ट करते हैं। निम्न वर्ग के लोगों की गतिविधियाँ इसी शरीर तक केन्द्रित रहती हैं। उनके लिए खाओ, पियो और मौज उड़ाओ का आकर्षण ही पर्याप्त होता है।

जिनका चेतना स्तर मध्यवर्ती विकास तक पहुँच चुका है, उनको मस्तिष्कीय विकास का महत्व समझ में आता है। ये शिक्षा प्राप्त करने, कुशल और बुद्धिमान बनने में लाग देखते हैं और ज्ञान सम्पादन में अधिक रुचि लेते हैं, अधिक प्रयत्न करते हैं। स्कूली शिक्षा से लेकर स्वाध्याय, सत्संग, पर्यटन एवं ज्ञान संचय के अन्याय प्रयोजनों में संलग्न रहते हैं। सम्मान पाने, नेतृत्व करने, यशस्वी होने, सम्पन्न बनने, अवरोधों को निरस्त करने और उपभोग की सरसता चखने जैसी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का ताना-बाना यहीं बुना जाता है। इसके लिए मस्तिष्क को अधिक विकसित करने के जो भी विनोदात्मक, उपभोगात्मक एवं संवर्धनात्मक साधन उलब्ध हो सकते हैं, उन्हें निरन्तर जुटाया जाता रहता है।

तीसरे सर्वोच्च साथ ही सबसे शक्तिशाली स्तर कारण शरीर का स्वरूप समझना और उसे परिष्कृत करने का प्रयत्न करना मात्र उच्च भूमिका में विकसित व्यक्तियों के लिए ही सम्भव होता है। इस स्तर की गरिमा एवं उपयोगिता भी समझ में नहीं आती और न प्रत्यक्ष कोई प्रतिफल ही दीखता है। भाव संवेदनाएँ, आस्थाएँ, समूचे व्यक्तित्व को दिशा देती हैं, उसका स्वरूप निखारती हैं और शरीर एवं मस्तिष्क को अमुक कार्यों में संलग्न होने के लिये—अमुक चिन्तन में निमग्न होने की प्रेरणा देती हैं, इसे समझना और अनुभव करना हर किसी के बल-बूते का नहीं है। अस्तु यह स्तर अविकसित, अछूता ही पड़ा रहता है। परिस्थितिवश उसका जैसा भी कुछ भला-बुरा निर्माण हो गया उसी लीक पर जीवन शकट चलता-लुढ़कता रहता है। स्वभाव बदलता नहीं, आदत सुधरती नहीं, जैसी बातें अक्सर सुनी जाती हैं, जिनका अर्थ होता है आस्था स्तर की गहराई में उतरकर वहाँ सुधार परिष्कार करना अशक्य है। बात बहुत अंशों में है भी ऐसी ही। जब आस्था स्तर के बारे में कुछ जाना-समझा ही नहीं गया है, उसका प्रतिफल एवं उपयोग भी सोचने में नहीं आया है तो उस सन्दर्भ में कुशलता भी कैसे पाई जाय ? आदतों से मजबूर, स्वभाव संस्कार का गुलाम बना मनुष्य ऐसे ही भोंड़ा, घिनौना, असंबद्ध, असंस्कृत एवं अस्त-व्यस्त असफल जीवन जीकर यों ही मौत के मुँह में चला जाता है। व्यक्तित्व के—अस्तित्व के—इस मूल उद्‌गम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान सत्ता को यदि समझा गया होता तो लगता कि अतीन्द्रिय, चमत्कारी, दैवी सिद्धि शक्तियों की अद्‌भुत चर्चाएँ सुनी जातीं हैं, वे और कुछ नहीं केवल हमारे कारण शरीर के विकासोन्मुख उभार हैं। अब इनका थोड़ा-थोड़ा विवेचन वैज्ञानिक क्षेत्रों में मैटाफिजिक्सपैरा साइकोलौजी, साइकोमैटरी, ह्यूमन मिस्टी आदि के रूप में होने लगा है। अचेतन मन की अतीन्द्रिय शक्ति के सम्बन्ध में जो रहस्मय परतें विज्ञान द्वारा खोली जा रही हैं और मानवी सत्ता को अद्‌भुत अप्रत्याशित संभावनाओं से सम्पन्न कहा जा रहा है वह वस्तुतः कारण शरीर का ही उथला-सा शोध प्रयास है। अगले दिनों यह समझा और स्वीकारा जायेगा कि व्यक्तित्व का उद्‌गम जिन भाव संवेदनाओं और आस्थाओं पर अवलम्बित है वस्तुतः वही मानवी सत्ता का मूल आधार है। इसे विकसित करने पर शारीरिक कायाकल्प—मानसिक प्रत्यावर्तन एव अति सूक्ष्म मर्म-स्थल में अनुभव किये जाने वाले स्वर्ग और मुक्ति जैसे दिव्य वरदानों से लाभान्वित हुआ जा सकता है। लघु से महान—नर से नारायण एवं आत्मा से परमात्मा बना जा सकता है। संसार के महामानवों का शारीरिक, मानसिक स्तर सामान्य रहा है। वे धनवान, विद्वान या साधन-सम्पन्न भी नहीं थे। उनकी विशेषताओं एवं सफलताओं का केन्द्र आस्था संस्थान का परिष्कृत स्तर ही रहा है। यही है वह मर्मस्थल जिसकी स्थिति के अनुरूप मनुष्य दीन-दुर्बल बना रहता है—असुर या पिशाच बनता है—दिव्य जीवन के प्रकाश में अन्तः एवम् बाह्य जगत को ज्योतिर्गमय बनाता है।

शरीर शास्त्र, मनः शास्त्र की उथली गहरी जानकारियाँ प्रायः सभी लोगों को होती हैं पर आत्मसत्ता के उत्थान-पतन का आधार एवम् उपाय कदाचित ही कोई जानते हैं। यों अध्यात्म विज्ञान की—ब्रह्मविद्या की संरचना इसी प्रयोजन के लिए हुई थी और योग तथा तप की बहुमुखी साधनात्मक प्रक्रिया इसी प्रयोजन के लिए गढ़ी गई थी। पर अब तो उसका स्वरूप भी विकृत हो गया और जो लाभ उस विज्ञान द्वारा कारण शरीर के विकास के लिए मिल सकता थे, वह अब सम्भव नहीं रहा। वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का अपना दर्शन है और अपना प्रयोग। कभी उसे ठीक तरह समझा गया था और प्रयोग का सुव्यवस्थित आधार मौजूद था। उस आधार पर अनुभवी तत्वदर्शी अपने छात्र शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन करते थे। उन्हें साधना संलग्न करते थे और अपनी निज की आत्म-शक्ति का अनुदान देकर उनकी सफलता सुनिश्चित बनाते थे। भारतीय साधना विज्ञान की धुरी यही थी। हठ योग द्वारा शरीर का—राजयोग से मस्तिष्क का और ब्रह्म योग द्वारा अन्तःकरण का परिशोधन किया जाता था। इन्हीं का सरल एवम् व्यवहारिक रूप कर्म योग—ज्ञान योग एवम् भक्ति योग था। साधनात्मक विशिष्ट तपश्चर्यायें एवम् व्यावहारिक जीवन की परिष्कृत रीति-नीति यही थी योग एवम् तप की मूल आधार, जिसे सही रूप में अपनाकर किसी समय भारतीय मनीषियों ने इस देश की धरती पर स्वर्ग का, सतयुग का अवतरण किया था और मनुष्य में देवत्व का उदय सम्भव कर दिखाया था।

भारत की प्राचीन गरिमा उसके अध्यात्मक वैभव के साथ जुड़ी हुई है। आरोग्य, शिक्षा, उत्पादन, व्यवसाय, शासन, आचार, कला-कौशल, शिल्प-विज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने असाधारण प्रगति की थी और अपनी उपलब्धियों से समस्त संसार को लाभान्वित करने के उनने प्रबल प्रयास किये थे। पर उस भौतिक प्रगति में असाधारण सफलता प्राप्त करने का उसका सदुपयोग कर सकने का श्रेय उनके आत्मिक उत्कर्ष को ही दिया जायेगा कारण कि उनका चिन्तन एवम् कर्तृत्व इसी आधार पर विकसित हुआ था। यह एक सनातन, शाश्वत एवम् अकाट्य तथ्य है कि अन्तरात्मा का गहन स्तर ही व्यक्तित्व को दिशा देता एवम् समर्थ बनाता है। अति महत्वपूर्ण—अतिमानव कहे जाने वाले व्यक्ति अपने इसी स्तर को दिशा विशेष में परिपुष्ट करके आगे बढ़े हैं, जिसका अन्तस्—अहम् खोखला होगा, वह प्रचुर साधन सम्पन्न होते हुए भी व्यक्तित्व की दृष्टि से ओछा, बौना एवं गया गुजरा ही बना रहेगा। ऐसे मनुष्य भौतिक सफलताएँ, सम्पदाएँ प्राप्त करलें तो भी उनका सदुपयोग नहीं कर पाते। संग्रह, व्यसन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपव्यय जैसे दुर्गुण बढ़ने से—ईर्ष्यालुओं एवम् शत्रुओं से घिर जाने के कारण वे सामान्य व्यक्तियों से भी अधिक चिन्तित, उद्विग्न पाये जाते हैं। व्यक्तित्वरहित स्थिति में कन्धे पर लद पड़ा वैभव किसी के लिए भी मात्र अभिशाप सिद्ध होगा, उससे अपने लिये और दूसरों के लिए विपत्तियाँ ही खड़ी होंगी।

व्यक्ति की सर्वांगीण प्रगति एवम् सुख-शान्ति के लिए उसका अन्तरात्मा—कारण शरीर—परिष्कृत, परिपुष्ट होना चाहिए। समाज के स्वस्थ, सुदृढ़ और सर्वतोमुखी विकास के लिए सुसंस्कारी व्यक्तियों का बाहुल्य होना चाहिए। इस आवश्यकता को पूरा किये बिना प्रगति के भौतिक प्रयास असफल ही नहीं होंगे उलटे अधिकाधिक विग्रह उत्पन्न करेंगे। उत्थान और पतन व्यक्ति और समाज का एक साथ होता है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। समय प्रगति एवं सुख-शान्ति के लिए व्यक्तियों को परिष्कृत बनाये बिना कोई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हाथ नहीं लगेंगी।

उपरोक्त तथ्यों पर विचार करने एवम् प्रयोगात्मक अनुभव करने का शान्ति कुन्ज में संस्थापक को कुछ कहने लायक अवसर मिला है। उसके जीवन का अधिकांश समय इसी क्षेत्र में प्रयोग, परीक्षण, अनुभव, अभ्यास करते हुए बीते हैं। अन्तःकरण को प्रभावित करने वाले अध्यात्म विज्ञान के दार्शनिक एवम् प्रयोग पक्ष को विवेचनात्मक दृष्टि से पढ़ा-परखा है। इन दिनों इस क्षेत्र में अन्धाधुन्ध अंधविश्वास, गुरुडम एवम् अवांछनीय प्रतिपादनों का जो घटाटोप घुस पड़ा है, उसे भी उसने दुःखी मन से देखा, परखा और छाँटा है। एक शब्द में यों कहा जा सकता है कि अध्यात्म को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने, परखने का उसका प्रयास ऐसा रहा है, जिसे अप्रामाणिक, अवैज्ञानिक एवम् सन्देहास्पद नहीं कहा जा सकता। उसके उपार्जन का लाभ यदि सर्वसाधारण को दिया जाय तो कम से कम इतना तो निश्चित है कि किसी को कोई हानि नहीं होगी। पात्रता और प्रयत्नशीलता के अनुरूप उससे लाभ ही मिलेगा।

कारण शरीर को—अन्तरात्मा को सुविकसित बनाने की दिशा में कहीं भी—कुछ भी प्रयत्न न होने का खेदजनक ही कहा जा सकता है। विशेषतया भारतभूमि जो सदा-सर्वदा से समस्त संसार को प्रकाश देती रही वही अब अपनी इस महत्वपूर्ण विशेषता को खो बैठे तो इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। इससे भी बड़ी दुर्घटना यह है कि अध्यात्म के स्थान पर प्रतिगामी पलायनवादी, पराबलम्बन शोषण अंधविश्वास आ विराजे और उपासना क्षेत्र को दयनीय दुर्गति का शिकार बनना पड़े। इन विडम्बनाओं को निरस्त करने के लिए आवश्यक समझा गया कि अध्यात्म के शाश्वत सत्य और तथ्य को जन साधारण के सम्मुख रखा जाय और उनके प्रयोग परीक्षण को कसौटी पर कसकर खरा-खोटा सिद्ध होने दिया जाय।

इस विचार मंथन ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि शांतिकुन्ज में एक ऐसी प्रशिक्षण व्यवस्था चलाई जाय, जिसमें अध्यात्म मार्ग में रुचि रखने वालों को उस महाविज्ञान का स्वरूप समझने एवम् प्रयोगात्मक अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिले। यह प्रयोग अब से लगभग २४ वर्ष पूर्व आरम्भ किया गया था, उसे प्राण प्रत्यावर्तन साधना सत्र के नाम से प्रस्तुत किया गया था। पाँच-पाँच दिन के शिविर लगाये गये और यथासम्भव अधिकारी व्यक्तियों को ही उसमें प्रवेश दिया गया था। यों कौतूहलवश उथले दर्जे के लोग भी उसमें कुछ तो घुस ही पड़े। तीर्थ-स्थानों में पर्यटन करने वाले और मनोकामनाओं की पूर्ति का आशीर्वाद माँगने वाले भी रोके नहीं जा सके। छद्म वेष में वे भी धक्का-मुक्की करके इस वैज्ञानिक प्रयोग प्रयोजन में धँस पड़े। फिर भी सन्तोष इसी बात का है कि उन्हें यथासम्भव निरस्त किया गया और उनकी संख्या इतनी नहीं बढ़ पाई कि मूल प्रयोग ही नष्ट हो जाता।

प्राण प्रत्यावर्तन सत्र पाँच-पाँच दिन के लिये लगाये गये थे, उनमें कुल मिलाकर दो हजार के करीब व्यक्तियों ने शिक्षण प्राप्त किया। शान्ति कुन्ज में उसका प्रयोग प्रारम्भ क्रियात्मक रूप में समझाया गया और कहा गया कि इस चिन्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं साधन को अपने-अपने घरों पर देर तक चालू रखें। उसके परिणामों के बारे में सूचित करते रहें। यह प्रयोग पिछले दिनों छोटे किन्तु व्यवस्थित रूप में चलता रहा है। उसके जो परिणाम सामने आये हैं, उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि यह प्रशिक्षण तीन चौथाई परिणाम में बहुत ही सफल रहा। उसे उत्साहवर्धक और आशातीत भी कहा जा सकता है। असफलता अथवा स्वल्प प्रगति के भी परिणाम सामने आये हैं पर वे इतने कम हैं कि उनके आधार पर प्रयोग को असफल नहीं कहा जा सकता।

जून ७३ की अखण्ड-ज्योति का पूरा अंक प्राण प्रत्यावर्तन साधन प्रक्रिया के परिचय रूप में प्रकाशित किया गया था। उसमें न केवल सिद्धान्तों का वर्णन था वरन् साधन पद्धति का स्वरूप एवम् विवेचन भी सर्वसाधारण के सामने रखा गया था ताकि जो लोग हरिद्वार नहीं आ सकें तो उस आधार पर स्वयं ही साधना कर सकें और जो आ सकते हैं, वे तथ्यों की पूर्व जानकारी प्राप्त करके आवें ताकि यहाँ उन्हें कुछ भी अनजाना न लगे और अभ्यास में सरलता प्रतीत हो।

प्रत्यावर्तन सत्र में वस्तुतः गायत्री की पंचमुखी—पंचकोशी उच्चस्तरीय साधना पद्धति सिखाई जाती है। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश यह पाँच आवरण आत्मा पर चढ़े हुए हैं, इनका अनावरण होने पर आत्मसाक्षात्कार हो सकता है। कोश का एक अर्थ भण्डार या खजाना भी हो सकता है। पाँच शक्ति स्रोत हमारे अन्तःक्षेत्र में अनन्त सम्भावनाओं को छिपाये हुए पड़े हैं। इन्हीं को पंचमुखी गायत्री के रूप में चित्रित किया गया है। नचिकेता और यम के उपनिषद् संवाद में जिस पंच अग्नि विद्या की चर्चा की गई है, वह इन पाँच कोशों का ही शक्ति विवेचन है। षट्चक्रों में से एक आज्ञाचक्र स्वतन्त्र भी माना गया है और शेष मेरुदण्ड से सम्बन्धित पाँच चक्र इन पाँच कोशों के ही शक्ति संस्थान हैं। पुराण देवताओं में पाँच को अग्रिम पंक्ति में रखा गया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, और दुर्गा को पंचदेव कहते हैं। उनके द्वारा प्राप्त हुए वरदानों के चमत्कारी लाभों की कथा-गाथाओं का पुराणों में विशद् वर्णन है। वस्तुतः अलंकारिक रूप से यह देव-वर्णन मनुष्य के भीतर विद्यमान पाँच कोशों का ही फलवान् सत्परिणाम है। हर व्यक्ति की अपनी ही आत्मसत्ता परिपुष्ट होकर उपयोगी वरदान प्रस्तुत करती है। इसी को देव अनुकम्पा कहा जाता है। पाँच कोशों की साधना ही गायत्री की पंचमुखी उच्चस्तरीय साधना है। प्राण प्रत्यावर्तन सत्र में इसी की प्रारम्भिक जानकारी पाँच दिनों के प्रशिक्षण में कराई जाती रही है और जप योग, बिन्दु योग, लय योग, प्राण योग, ब्रह्मयोग के पाँच योगाभ्यासों के रूप में इनकी साधना का शुभारम्भ कराया जाता रहा है।

गायत्री उपासना में स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों को संलग्न करके उसे उपयोग के रूप में परिणत करना—सूर्यार्घदान के माध्यम से समर्पण योग की धारणा—प्रभातकालीन सूर्य की स्वर्णिम किरणों का तीनों शरीरों में प्रवेश और उनसे समग्र व्यक्तित्व का ज्योतिर्मय होना—खेचरी मुद्रा के माध्यम से उलटी जिव्हा को तालू से लगाकर सोमरस का पान करना—कामधेनु गौ का स्तन पान करते हुए आनन्द अमृत को चूसना—मस्तिष्क में कैलाश, मानसरोवर अवस्थित शिव की अथवा क्षीरसागर में शेष सायी विष्णु की भावना करना यह लय योग की अनुभूति है। अजपा जाप सोऽहम् साधना प्राणयोग में आती है। आत्मबोध और तत्वबोध की द्विविधि ध्यान धारणा से ब्रह्मयोग की साधना बनती है। यह सब कैसे किया जाय ? यह पाँच घण्टे प्रतिदिन की भाव साधना में प्रत्यावर्तन सत्र के छात्रों को सिखाया और कराया जाता रहा है। साथ ही प्रवचनों के माध्यम से चिन्तन एवम् कर्तृत्व के अध्यात्म दर्शन के अनुरूप कैसे ढाला जाय ? व्यावहारिक जीवन में उत्कृष्टता एवम् आदर्शवाद का समन्वय कैसे किया जाय ? इसकी विशद् एवम सुबोध चर्चा की जाती रही है। प्रत्यावर्तन सत्रों की अवधि थोड़ी ही रखी गई थी क्योंकि उस समय आवश्यक जानकारियाँ देना ही अभीष्ट था। साधना का शुभारम्भ मात्र इस अवधि में कराया गया। अभ्यास तो अपने-अपने घरों पर ही लम्बे समय तक करना था। पाँच दिन का स्वल्प समय सर्वसाधारण की व्यस्तता को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया था। उतने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी अभीष्ट उद्देश्य की भली प्रकार पूर्ति होती रही और शिक्षार्थी बहुत कुछ सीखकर तथा बहुत कुछ अनुदान पाकर गये। मात्र सिखाना ही तो इन सत्रों का प्रयोजन नहीं था। इस मार्ग पर चल सकने की आवश्यक शक्ति का अतिरिक्त आधार मिलना भी अभीष्ट था। इस दृष्टि से भी शिक्षार्थी खाली हाथ नहीं गये। सब मिलाकर यह प्रशिक्षण क्रम ऐसा बना रहा, जिसे सन्तोषजनक, उत्साहवर्धक और सफल सार्थक कहा जा सके।

बँधी हुई दिनचर्या पर सात्विक आहार-विहार, गंगा स्नान और गंगा जल पान, उच्चस्तरीय वातावरण, सद्भाव-सम्पन्न व्यक्तियों का सान्निध्य, स्नेह मैत्री और आदर्शवादी भाव भूमिका का समन्वय शान्तिकुन्ज की ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनमें रहने मात्र से अन्तःकरण में उत्कृष्टता के उभार आते हैं। फिर पाँच घण्टे की सघन साधना और प्राण भरी प्रेरणाप्रद शिक्षा व्यवस्था की गंगा-यमुना मिल जाने से उसका संवर्धन होना स्वाभाविक ही है। प्रत्यावर्तन सत्रों में आने वाले प्रायः सभी लोग इस विशेषता का लाभ लेकर गये। यहाँ बोये गये, उगाये गये बीजांकुरों को उन्होंने अपने-अपने यहाँ जाकर पोषा, सींचा और बढ़ाया। तदनुसार कितने ही शिक्षार्थियों ने अनुभव किया कि हम नव-जीवन लेकर आये पुरानी स्थिति में कायाकल्प जैसा परिवर्तन पाया।

सदा के लिये अपनाया जाने वाला सतत् साधना क्रम

चार दिन तक छः घण्टे साधना करना एक विशेष अनुष्ठान है, जिसे सामयिक ही कह सकते हैं। सदा इस रीति को अपनाये रहना असम्भव है। घर जाकर किस प्रकार साधना-क्रम चलाया जाना चाहए। इसकी एक क्रमबद्ध विधि-व्यवस्था बनाकर साधकों को दी जाती है और आशा की जाती है कि वे भविष्य में आजीवन निष्ठापूर्वक पालन करते रहेंगे।

प्रभु समर्पित जीवन जिया जाय। अनासक्त कर्मयोग परायण गतिविधियाँ ऐसी हों, जिन्हें यज्ञीय जीवन की संज्ञा दी जा सके। यही अध्यात्म-परायण व्यक्तियों की रीति-नीति होनी चाहिए। इसमें उपासना के लिए एक घण्टे का समय भी पर्याप्त है। साधना अहर्निशि होनी चाहिये। एक क्षण भी साधना विरत नहीं जाना चाहिए। प्रमाद जहाँ भी, जब भी आयेगा, शैतान को चढ़ बैठने का अवसर मिल जायेगा। चौकीदार थोड़े समय के लिए सो जाय तो चोरों को घात लगाने में दर नहीं लगती। हम तनिक भी प्रमाद बरतें तो मस्तिष्क पर दुर्भावनाओं का और शरीर पर दुष्प्रवृत्तियों का आक्रमण होते देर नहीं लगेगी। भावी साधना पद्धति इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रत्यावर्तन सत्र में साधकों को दी जाती है। क्रम प्रातः आँख खुलते ही आरम्भ हो जाता है और जब तक नींद नहीं आ जाती तब तक चालू रहता है। इस साधन-प्रक्रिया में सूत्र रूप से वे सभी साधनायें समाहित कर दी गई हैं, जिन्हें प्रत्यावर्तन के दिनों में कराया सिखाया जाता है।

प्रातःकाल आँख खुलने से लेकर बिस्तर छोड़ने तक प्रायः आधा घण्टा लग जाता है। आलस, सुस्ती, अँगड़ाई और करवट बदलने में प्रायः इतनी देर तो लग ही जाती है। इन उनीदे क्षणों में यह विचारना चाहिए कि आज अपना एक ही दिन के लिए नया जन्म हुआ है। रात्रि को मृत्यु हो जायेगी। "हर दिन नया जन्म—हर रात नई मौत" वाला सूत्र साधनात्मक जीवन जीने वालों के लिये स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। आज के दिन का श्रेष्ठतम सदुपयोग कैसे हो सकता है ? इसका क्रम विभाजन इन्हीं क्षणों में कर लिया जाना चाहिए। स्थूल शरीर (देह), सूक्ष्म शरीर (मन), कारण शरीर (भाव) यह तीन कर्मचारी हमें मिले हैं। इन्हें क्रिया-विचारणा भावना भी कह सकते हैं। यह तीनों जब किसी एक काम में पूरे सहयोग और उत्साह के साथ जुटते हैं तो वह कार्य कर्मयोग की साधना जैसा पुण्य फलदायक बन जाता है। उसकी सुन्दरता और सफलता देखते ही बनती है।

हर दिन को जीवन की बहुमूल्य सम्पदा मानकर उसके सदुपयोग की दिनचर्या बिस्तर पर पड़े-पड़े ही इस प्रकार निर्धारित कर दी जानी चाहिए कि उसमें समय की बर्बादी के लिए कहीं कोई गुन्जायश न रहे। आवश्यकतानुसार बीच-बीच

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में विश्राम की व्यवस्था भी रखी जा सकती है पर वह भी नियमित और निर्धारित होनी चाहिए। उठने से लेकर सोने तक कसा हुआ, खिंचा हुआ टाइम टेबिल बनाना चाहिए और उसे मुस्तैदी के साथ निबाहा जाना चाहिए। शरीर को जो कार्य करना है मन पूरी तरह उसमें तन्मय रहे। हर छोटा-बड़ा काम पूरे मनोयोग से किया जाय। दोनों के सहयोग से जो काम होते हैं, उन्हीं में कला-कौशल निखरता है, उन्हीं का स्तर उत्कृष्ट बनता है। काम ही ईश्वर की पूजा है। यदि अपना हर काम सुन्दर, सुव्यवस्थित सर्वांगपूर्ण और सही हो तो उसे कर्मयोग के स्तर पर ही रखा जायेगा। मन के निग्रह की असली साधना अपने दैनिक कार्यों में समग्र मनोयोग लगाने से ही सम्भव होती है। पूजा में भी यही अभ्यास काम दे जाता है। यदि हर काम आधे मन से करने की आदत होगी तो फिर पूजा ही तन्मयतापूर्वक कैसे सम्भव हो सकेगी ?

शयन कक्ष में एक भगवान का चित्र रहना चाहिए। दूसरा बड़े साइज का दर्पण रहे। भगवान को उठते ही नमस्कार करना चाहिए और सद्बुद्धि की, कर्मनिष्ठा की याचना करनी चाहिए। उसके उपरान्त दर्पण में अपने आपको देखते हुए लगभग वही ध्यान करना चाहिए, जो प्रत्यावर्तन सत्र में तीन बजे आत्मबोध की साधना करते हुए किया जाता था। आत्मदेव को सद्गुरु, परमात्मा का प्रतिनिधि, उद्धारकर्ता एवं इष्टदेव के रूप में नमन करना चाहिए और आग्रह भरा अनुरोध करना चाहिए कि अपनी गतिविधियों का स्तर उठाये ताकि लक्ष्य की ओर सुख-शान्ति पूर्वक बढ़ चलना सम्भव हो सके।

इसके उपरान्त स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होना चाहिए और एक घण्टे के लिये नियमित उपासना पर बैठना चाहिए। इस एक घण्टे के तीन भाग किये जा सकते हैं (१) पन्द्रह मिनट खेचरी मुद्रा (२) पन्द्रह मिनट बिन्दुयोग (ज्योति अवतरण) प्राणयोग (सोऽम् साधना) (३) आधा घण्टा गायत्री जप—सूर्यार्घदान।

खेचरी मुद्रा में पाँच मिनट शरीर को शिथिल करना, पाँच मिनट मन को खाली करना और पाँच मिनट जिव्हा को उलटकर तालू में लगाने और सोमरस पान करने का विधान है। इसकी पूरी विधि खेचरी मुद्रा प्रकरण में लिखी जा चुकी है। दृष्टिकोण, उद्देश्य तथा भाव-चिन्तन वही ज्यों का त्यों है, केवल समय में ही कमी की गई है। प्रत्यावर्तन के दिनों में पन्द्रह मिनट शिथिलीकरण, पन्द्रह मिनट नाल जल का ध्यान करके मन को विचाररहित बनाया जाता था। वे दोनों कार्य पाँच-पाँच मिनट के कर दिये गये हैं। जिव्हा उलटकर दुनियादारी से भिन्न स्तर की अपनी रीति-नीति अपनाने का संकल्प है। उच्च स्तरीय चिन्तन का केन्द्र मस्तिष्क—उसे टपकने वाला आनन्द (मानवी उपलब्धियों का सन्तोष), उल्लास (सत्पथ गमन की प्रबल प्रेरणा) भरा सोमरस हमें उपलब्ध होता है। जीभ उसे प्राप्त कर पाचन-यन्त्र में भेजती है और वह अमृतरस रक्त के साथ घुलकर क्रिया पद्धति के रूप में परिणत होता है, इन्हीं भावनाओं को प्रखर बनाना खेचरी मुद्रा का सार तत्व है।

आज्ञाचक्र में प्रकाश का ध्यान और उस प्रकाश का रोम-रोम में समावेश—अन्धकार का पलायन तमसो मा ज्योतिर्गमय की स्थिति—यह सब है भूमध्य भाग में प्रकाश चिन्तन का लक्ष्य। आवश्यकतानुसार दीपक, मोमबत्ती, बिजली आदि का उपयोग प्रकाश स्थापना के लिए किया जा सकता है। पीछे यह ध्यान बिना प्रकाश उपकरणों के ही होने लगता है।

सोहम् साधना में कुछ समय, साँस लेते समय सो और छोड़ते समय हम् की अनुभूति। साँस के साथ महाप्राण का काया के कण-कण और मन के प्रत्येक परत में प्रवेश तथा आधिपत्य की स्थापना। हम् के साथ लोभ, मोह भरे अहंकार का पलायन। यही है संक्षेप में सोहम् साधना, जिसका विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में हो चुका है।

उपरोक्त बिन्दुयोग और प्राणयोग की दोनों साधनाओं के लिये कुल मिलाकर पन्द्रह मिनट हैं। प्रतिदिन करना हो तो दोनों साढ़े सात-सात मिनट की जा सकती है। अन्यथा यही तरीका भी अच्छा है कि एक दिन पन्द्रह मिनट ज्योति अवतरण और दूसरे दिन सोहम् साधना करते रहा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पन्द्रह मिनट खेचरी मुद्रा, पन्द्रह मिनट प्रकाश का ध्यान तथा सोहम् साधना में लगाने से आधा घण्टा हो जाता है। शेष आधा घण्टा गायत्री की पाँच मालायें पूरी करने के लिए। गायत्री के पाँचमुख माने गये हैं। यह पाँच कोश हैं। हर कोश जागरण करने के लिये एक माला। इस प्रकार पाँच मालाओं का जप उचित है। इससे कम करने में जितना चाहिए उतना शक्ति उद्भव नहीं होता। जप के आधे भाग में अपने मलीनता ग्रस्त होने के कारण माता की गोद में न पहुँच सकने का दुर्भाग्य और शेष आधे भाग में शुद्ध होने पर उस परम शक्ति का प्यार-दुलार मिलने की यथार्थता हृदयंगम की जानी चाहिये। जप के उपरान्त सूर्यार्घ्य दान-जल कलश को सूर्य की दिशा में धार बाँधकर छोड़ना और परम तेजस्वी सविता देवता से प्रार्थना करना कि हमारे समर्पित व्यक्तित्व को भी जलधार की तरह स्वीकार करें और उसे वर्षा की अथवा ओस की बूँदें बनाकर विश्व-शान्ति के लिये अनन्त अन्तरिक्ष में बखेर दें। आधा घण्टा के इस गायत्री जप समेत प्रातःकालीन उपासना का एक घण्टा पूरा हो जाता है।

इसके उपरान्त प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक अपने को निर्धारित दिनचर्या में जुटा देना चाहिए। शरीर मन और भाव कहीं आलस्य, प्रमाद, मर्यादा व्यतिक्रम तो नहीं कर रहे हैं, इसका हर घड़ी ध्यान रखना चाहिए और जहाँ भी गड़बड़ी दिखाई पड़े तत्काल टोकना-रोकना चाहिए। आवश्यक कारण आने पर तो दिनचर्या में हेर-फेर करने ही पड़ते हैं पर उसमें आलस्य-प्रमाद के कारण व्यतिक्रम नहीं होने देना चाहिए। सन्तोष, मृदुलता और शान्ति के साथ हँसते-मुस्काते हुए अपना क्रिया-कलाप पूरा करना चाहिए और हलका-फुलका चित्त रखना चाहिए। क्रोध और खीझ के—पतन एवं अनाचार के अवसर आने पर अपने को सम्भालने-समझाने में कुछ कसर नहीं रखनी चाहिए।

रात्रि को सोते समय बिस्तर पर जाकर दिन भर के कार्मों का लेखा-जोखा लेना चाहिए और गलतियों के कारणों पर विचार करते हुए अगले दिन उन भूलों के सम्बन्ध में सतर्क रहने की अपने आप को चेतावनी देनी चाहिए।

सोने से पूर्व तत्वबोध की—पौने चार से साढ़े चार तक वाली पृथक्करण-साधना की पुनरावृत्ति करनी चाहिए। शरीर आत्मा से पृथक हो गया। मरी हुई काया चारपाई पर पड़ी है। चारों पाये चार सम्बन्धी हैं, जो उसे जलाने ले जा रहे हैं। आत्मा दूर खड़ा इस मरण को देख रहा है। सम्बद्ध व्यक्तियों एवं सम्पत्ति साधनों को छोड़कर जीवात्मा अपने कर्म भोग भोगने के लिए अन्यत्र जा रहा है। मित्र, सम्बन्धी मुख मोड़कर अपने धंधे में लगने जा रहे हैं। छोड़ी हुई सम्पत्ति को हराम में मिले मुफ्त माल की तरह पीछे वाले लोग गुलछर्रे उड़ाने में खर्च कर रहे हैं। बँटवारे के लिए परस्पर एक-दूसरे का सिर फोड़ रहे हैं। जिन वस्तुओं और व्यक्तियों को अपना समझा जाता था वह लोभ और मोह निरर्थक साबित हुआ। मृत्यु ने नंगी सच्चाई सामने रखदी और भ्रान्तियों का जाल-जंजाल टूटकर एक ओर बिखर गया। अकेले आना, अकेले जाना वाला तथ्य अक्षरशः सही सिद्ध हुआ। आँखों पर से पर्दा उठा तो, पर तब जब सब कुछ हाथ से निकल गया। इससे पूर्व यदि मृत्युप्रदत्त ज्ञान मिल सका होता तो उपलब्धियों के सदुपयोग की बात सोची जा सकती थी। अब अगले जन्म में कल के जीवन में ऐसा प्रयत्न करेंगे कि किसी वस्तु या व्यक्ति पर अधिकार जनाने की अपेक्षा उसके सदुपयोग की ही बात को ध्यान रखकर सारे क्रिया-कलाप निर्धारित किये जायँ।

जब झपकी आने लगे तब नादयोग के अनुरूप भावना करनी चाहिए कि भगवान कृष्ण जिस प्रकार रात्रि की नीरवता में वँशी बजाते थे और गोपियाँ चुपचाप अपने घर वालों को छोड़कर रासलीला में निरत होकर दौड़ पड़ती थीं; उसी प्रकार परमात्मा के आव्हान पर आत्मा अपने प्रियतम से मिलने दौड़ पड़ती है। नादयोग की सीटी रात्रि में झींगुर बजाते रहते हैं, जुगनू इशारा करते रहते हैं। अपने अन्तःकरण में भी वह नाद-निनाद भाव मान्यता के आधार पर सुना जा सकता है। इन भावनाओं के साथ भगवान के साथ लिपटकर सोने के लिए आत्मा को निद्राग्रस्त होकर परमशान्ति लाभ करने के लिए समाधिस्थ हो जाना चाहिये। रात को कभी करवट बदलें, नींद खुले तो यह प्रतीत होना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए कि भगवान हमारे साथ सो रहे हैं। इच्छानुसार भगवान का प्रतीक तकिया के अगल-बगल में रखा जा सकता है।

यही है उठने से लेकर सोने तक की उपासना एवं साधना मिश्रित क्रिया-पद्धति जिसे प्रत्यावर्तन सत्र में सम्मिलित होने वालों को घर जाकर निरन्तर अपनाये रहने के लिये कहा जाता है, इसमें प्रत्यावर्तन सत्र के दिनों की समस्त साधना पद्धति का परिपूर्ण किन्तु संक्षिप्त समावेश है।

प्रत्यावर्तन साधना सम्बन्धी कुछ विशेष स्पष्टीकरण

'प्रत्यावर्तन' सत्र को एक प्रकार से उच्चस्तरीय अध्यात्म भूमिका का प्रवेशद्वार कह सकते हैं, इस आधार पर भावी जीवन उपासना एवं साधना-उपक्रम को अपनाकर पूर्णता की दिशा में क्रमिक यात्रा जारी रखी जा सकती है और जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। चार दिन जितनी छोटी अवधि में इतना बड़ा प्रयोजन पूरा हो सकना असम्भव है। एम. ए. पास करने में सोलह वर्ष लगते हैं और हर दिन छः छः घण्टे मनोयोगपूर्वक घोर परिश्रम करना पड़ता है। बगीचा लगाकर उसे फला-फूला देखने तक माली को कई वर्षों तक धैर्यपूर्वक कठिन परिश्रम करना पड़ता है। पहलवानी की साधना भी इसी प्रकार समय साध्य है। आध्यात्मिक बचपन को पूरा करके प्रौढ़ता तक पहुँचाने जैसे महान् प्रयोजन की पूर्ति उपरोक्त सफलताओं की तुलना में कम नहीं अधिक ही महत्व की है। अस्तु स्वभावतः उसके लिए अधिक श्रम एवं अधिक मनोयोग लगाते हुए परिपूर्ण तत्परता के साथ धैर्यपूर्वक सतत् सलग्न रहना पड़ता है। हथेली पर सरसों जमाने जैसी यह बाजीगरी नहीं है। प्रत्यावर्तन इस महान् निर्माण का उच्चस्तरीय शिलान्यास मात्र है। कार्य यहाँ समाप्त नहीं हो जाता वरन् आरम्भ हो जाता है।

चार दिन एकाग्रता का नहीं, एक दिशा में चिंतन प्रवाह को बहाने का अभ्यास कराया जाता है। आमतौर से मन अनेक दिशाओं में मृग-तृष्णा ग्रसित होकर दौड़ता रहता है। मुख्य कार्य है दिशा देना। चिन्तन एक ही दिशा में चलाने का पूर्वार्ध पूरा होने पर ही एकाग्रता का उत्तरार्ध पूरा हो सकता है। अस्तु साधकों को आरम्भ में ही यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि मन जप, ध्यान क्रियाएँ आरम्भ करते ही एकाग्र हो जायेगा। फिर एकाग्रता को उतना महत्व देने की आवश्यकता भी नहीं है, जितना कि लोग देने लगे हैं।

योग साधना में एक स्तर ऐसा भी आता है, जब एकाग्रता की भी आवश्यकता पड़ती है। पर महर्षि पतंजलि ने साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले को जिस-जिस चित्तवृत्ति निरोध का निर्देश किया है, उसे चित्त निरोध नहीं, चित्तवृत्ति ही समझना चाहिए। यहाँ वृत्ति शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मन की वृत्तियाँ, दिशायें, रुचियाँ अगणित हैं, उनमें बेहिसाब उछल-कूद करने की अपेक्षा मन को एक दिशा में लगाया जाना चाहिए। दिशा निर्धारण और उस दिशा में मनोयोग को नियोजित करना ही साधना मार्ग की बहुत बड़ी मंजिल पूरी कर देना है। एकाग्रता तो बहुत बाद की और बहुत छोटी चीज है।

सूर्य की बिखरी किरणों जिस तरह आतिशी-शीशे द्वारा इकट्ठी करने पर वे केन्द्रित हो जाती हैं और आगे जलने लगती है उसी प्रकार चित्त का निरोध विकेन्द्रित बिखराव का केन्द्रीकरण करता है और उससे विशेष लाभ होता है। पर यह सफलता मानसिक कौशल स्तर की है। कई व्यक्ति कई प्रकार के शारीरिक करतब दिखाने में कुशल हो जाते हैं, उसी प्रकार एकाग्रता का मानसिक कौशल भी मेस्मरेजम, हिप्नोटिज्म जैसे कई तरह के कौशल दिखा सकता है। सरकस में काम करने वाले नटों का सारा कौशल एकाग्रता पर ही केन्द्रित है। तार पर चलने—झूले पर इधर से उधर उछलने जैसे कौशल एकग्रता की साधना के बिना ही हो नहीं सकते। बहीखाते में लम्बे मीजान सही-सही लगाते रहने वाले मुनीमों की कुशलता उनकी एकाग्रता पर ही निर्भर है। कवि, लेखक, चित्रकार एवं वैज्ञानिक आदि की सफलता भी एकाग्रता पर ही निर्भर है। इतने पर भी उन्हें योगी या आत्मिक प्रगति में सफल व्यक्ति नहीं कह सकते हैं। मन का केन्द्रीयकरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयोगी तो हर क्षेत्र में है पर अध्यात्म लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अनिवार्य नहीं है। मीरा, सूर, कबीर, चैतन्य आदि की साधनाओं में विरह की व्याकुलता है। गोपी कृष्ण-विरह में उसी रसानुभूति को उच्च स्तरीय लययोग साधना बताया गया है, यद्यपि एकाग्रता का उसमें सर्वथा अभाव है। अपने स्तर का भाव भरा उद्वेग ही भक्तियोग की परिभाषा में योगाभ्यास का उच्च चरण माना गया है। प्रत्यावर्तन साधकों को अपनी मनोभूमि इसी स्तर की रखने के लिए कहा गया है। वे एकाग्रता को महत्व न दें वरन् यह देखें कि जिस साधना के साथ जिस भाव में प्रभाव को जोड़कर रखा गया है, चिन्तन उसी दिशा में बहने लगा या नहीं। यदि प्रवाह की दिशा ठीक हो तो समझना चाहिए कि अभीष्ट प्रगति में आशाजनक सफलता मिल रही है।

वस्तुतः इन चार दिनों में पूर्व चिन्तन की दिशा उलटनी पड़ती है और जीवन-क्रम को परिष्कृत मार्ग पर चलाने के लिए अन्तःकरण को तैयार करना पड़ता है। इतनी बड़ी भूमिका प्रखर चिन्तन के आधार पर ही संभव हो सकती है। प्रत्यावर्तन के दिनों में यही करना पड़ता है। इन दिनों में अपनी विचार पद्धति और क्रिया पद्धति दोनों का ही पुनर्निर्माण व पुर्निर्धारण करना पड़ता है। इसलिए अवांछनीय रीति-नीति को हटाने और उच्चस्तरीय क्रिया-कलाप को प्रतिष्ठापित करने के लिए इन दिनों युद्धस्तरीय पराक्रम करना पड़ता है, जिसकी तुलना समुद्र-मन्थन से— महाभारत संग्राम से की जा सके। ऐसी दशा में एकाग्रता के लिए न तो निर्देश दिया गया है और न उसकी आशा की गई है। आगे चलकर जब एकाग्रता आवश्यक होगी तब उसकी कुञ्जियाँ साधकों को यथासमय मिल जायेंगी और वह कठिन प्रतीत होने वाला कार्य अत्यन्त सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जायेगा।

प्रत्यावर्तन में प्रयुक्त होने वाले प्रायः सभी साधना उपक्रमों के साथ प्रचण्ड चिन्तन जुड़ा हुआ है। साधकों को उसी दिशा में अपने मनोयोग को नियोजित करना पड़ता है और इस प्रयास में लगाना पड़ता है कि किस प्रकार अब तक की मूढ़ताओं, भ्रान्तियों और अवांछनीयताओं को चिन्तन और कर्तृत्व के क्षेत्र में से बहिष्कृत करके उनकी जगह उच्चस्तरीय परिवर्तन लाया जा सकता है। वस्तुतः चार दिनों इसी उखाड़-पछाड़ में—ध्वंस-निर्माण में लगना पड़ता है। सरकारी पंचवर्षीय योजनाओं के संचालक सिंचाई, सड़क, शिक्षा, बिजली, व्यवसाय आदि की बहुमुखी प्रगति के लिए सुविस्तृत योजनाएँ बनाते हैं और उनके लिए क्या किया जाना चाहिए—किस प्रकार किया जाना चाहिए ? इसका ढाँचा खड़ा करते हैं। समझना चाहिए कि परिष्कृत जीवन-क्रम का भावी निर्धारण करने के लिए इन चार दिनों में सुविस्तृत योजना बनाई जानी है और साधक को योजनाध्यक्ष की भूमिका निभानी है। यह कार्य समाधिस्थ या एक बिन्दु पर ध्यान एकाग्र करने से नहीं वरन् सुविस्तृत बहुमुखी गहन चिन्तन से ही पूरा हो सकता है। अस्तु वही करने के लिए कहा भी जाता है।

खेचरी मुद्रा में जीभ को उलटने की—और शरीर को शिथिल करके शिथिलीकरण की, गायत्री उपासना में गन्दे बच्चे को गोद में न लिये जाने वाले स्पष्टीकरण की, लघुप्राण को महाप्राण में परिवर्तन करने वाली सोहम् साधना की, अन्धकार का निराकरण करके दिव्य प्रकाश से रोम-रोम भर देने वाले बिन्दुयोग की, दिव्य संकेतों पर थिरकने की भावभरी मनःस्थिति उत्पन्न करने वाले नादयोग की, आत्मबोध और तत्वबोध के आधार पर अपनी मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं।

साधक इन सब तथ्यों को न केवल हृदयंगम करता है वरन् यह रूपरेखा भी बनाता है कि इन प्रेरणाओं के आधार पर भावी जीवन-चर्या की कार्य-पद्धति क्या होनी चाहिए ? और आज की हेय स्थिति को उलटकर कल की परिष्कृत स्थिति में पहुँचने की संक्रांति का अवतरण किस दूरदर्शिता और साहसिकता के साथ सम्पन्न होना चाहिए। साधक को इसी उहापोह में पूरी तरह निमग्न रहने के लिए कहा जाता है। यह दिशा-प्रवाह लगातार जारी रखें। निर्दिष्ट तथ्य पर अधिकाधिक व्यापक चिन्तन किया जाय तो उसका कुछ निष्कर्ष निकल सकता है। इसलिए हर साधना उपक्रम को माध्यम बनाकर समुद्र-मन्थन जैसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःस्थिति रखने के लिए हर साधक को कहा जाता है। सोते-जागते उन्हें विचारों में डूबे रहने और परिवर्तन के लिए आवश्यक मार्ग ढूँढ़ निकालने के लिए लगा रहा जाय तो समझना चाहिए कि अभीष्ट योग साधना का एक महत्वपूर्ण पक्ष पूरा हो गया।

इसमें दुहरा लाभ है। एक दिशा में लगातार पूरी गहराई के साथ सोचने का अभ्यास ही चित्तवृत्ति निरोध माना गया है, इसका अभ्यास होना बहुत बड़ी बात है। इसके अतिरिक्त अध्यात्म की सफलता कल्पना लोक में उड़ते रहने में नहीं—व्यावहारिक जीवनक्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के साथ जुड़ी हुई है। इस दिशा में यदि कुछ ठोस आधार खड़ा किया जा सके तो समझना चाहिए प्रत्यावर्तन साधना के ध्यान पक्ष के साथ जुड़ा हुआ मूल प्रयोजन पूरी तरह सम्पन्न हो गया। चित्त की एकाग्रता इन दिनों न अभीष्ट है और न आवश्यक। इसलिए इस संदर्भ में किसी से कुछ पूछा भी नहीं जाता।

कई बाल बुद्धि के लिए अध्यात्म को 'जादू' भर मानते हैं। थोड़ी-सी पूजा उपासना से लम्बी-चौड़ी मनोकामनाओं की पूर्ति, किसी देव दानव के दर्शन, कोई रोशनी चमकाना, शब्द सुनना, शरीर काँपना, भावावेशी उद्वेगों का आना जैसे कौतुक-कौतूहलों की आशा करते हैं और यदि कुछ ऐसा अजूबा दीख सके तो समझते हैं कि साधना सफल हुई। वस्तुतः बालबुद्धि प्रबुद्ध साधकों के लिए नितान्त उपेक्षणीय और उपहासास्पद है। ऐसे अजूबे कोई मैस्मरेजम विज्ञान का ज्ञाता किसी को भी क्षण भर में दिखा सकता है अथवा हिप्नोटिज्म का जानकार संवेदनाओं के आधार पर इस तरह के कौतुक-कौतूहल स्वयं भी देख सकता है। कई योग ज्ञाता नौसिखिये साधकों को ऐसे ही कुछ अजूबे दिखाकर उनमें बाल-उत्साह पैदा कर देते हैं पर उनसे बनता कुछ नहीं। मैस्मरेजम के प्रभाव से कोई अनुभव करने लगे कि वह सिंह पर सवारी किये घूम रहा है तो इससे वस्तुतः कुछ भी लाभ न होगा वरन् उलटी एक नई भ्रान्ति बढ़ जायेगी। वह व्यक्ति कभी असली सिंह का सामना होने पर चढ़ने का प्रयास कर सकता है क्योंकि उसने मैस्मरेजम के प्रभाव से अपने को सिंह पर सवारी करने में असफल होते देख भी लिया था। इस भ्रमग्रस्तता में वह यदि असली सिंह पर चढ़ने का प्रयास करने लगे तो बेमौत मारा जायगा। कई साधक अपने गुरुओं द्वारा ऐसे ही भ्रम-जंजाल में फँसा दिये जाते हैं। वे ईश्वर दर्शन से लेकर तरह-तरह के चमत्कारी अनुभव उन दिनों तो कर लेते हैं पर पीछे देखते हैं कि जीवनक्रम की जटिलताओं में रत्ती भर भी सुधार नहीं हुआ। ऐसी दशा में उन्हें यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि अजूबे देखे गये थे, बे सिर-पैर की भ्रान्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं थे। उन्हें कुछ समय के लिए दृष्टिबन्ध की तान्त्रिक उलझनों में उलझा भर दिया गया था।

प्रत्यावर्तन सत्र के बारे में भी कई बालबुद्धि लोग ऐसे ही किसी अजूबे की—कौतुक-कौतुहल की आशा कर सकते हैं पर उसे निराशा में ही परिणित किया जाता है। इतना ही नहीं उनकी इस भ्रमग्रस्तता का उन्मूलन भी किया जाता है कि अध्यात्म को चमत्कारी होना चाहिए। मान्यता, विचारणा भावना और प्रक्रिया में परिवर्तन होना ही वस्तुतः सबसे बड़ा चमत्कार है। इसी आधार पर मनुष्य को देवता और आत्मा को परमात्मा बनने का अवसर मिलता है। आध्यात्मिक प्रगति की यथार्थता इसी केन्द्र पर केन्द्रित है।

आध्यात्मिक प्रगति की कसौटियाँ दो हैं—(१) स्वार्थमुक्ति इन्हें किसने कितना प्राप्त कर लिया इसी आधार पर यह जाना जा सकता है कि किसने कितनी सफलता प्राप्त की। स्वर्ग कोई स्थान नहीं वरन् लोक कहते हैं दृष्टिकोण को। स्वर्ग सोचने का एक तरीका है, नरक-चिन्तन की एक पद्धति। मरने के बाद स्वर्ग में जाने की बात सोचना आवश्यक है। यथार्थता यह है कि कोई भी कभी भी—अपने दृष्टिकोण में अभीष्ट परिवर्तन करके तत्काल स्वर्गलोक में प्रवेश कर सकता है और स्वर्गीय सुख-शान्ति का तत्काल रसास्वादन कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने अभावों और दूसरे के दोष, दुर्गुणों का चिन्तन करते रहने से चिन्तन में नरक प्रवेश करता है और उससे क्रोध एवं विक्षोभ उत्पन्न होता है। उद्धत अहंकार को प्रत्यक्ष असुर कहा जा सकता है। जिसके कारण अपने को दूसरों से "बड़ा" सिद्ध करने की 'उत' सूझती रहती है। खर्चीली साज-सज्जा के आडम्बर इसी आधार पर खड़े किये जाते हैं और दूसरों को सताने-गिराने में इस पैशाचिकता के कारण प्रसन्नता होती है। इस मनःस्थिति में उलझे हुए लोगों को पग-पग पर जिन विक्षोभों का, मनोविकारों का, शोक-संतापों का सामना करना पड़ता है, उसे नारकीय यातना कह सकते हैं। ऐसे ही लोग वासनाओं, तृष्णाओं, ऐषणाओं में डूबे रहते हैं और कुकर्मों में निडर होकर लगे रहते हैं। इस मार्ग पर चलने वालों को बाह्य और आन्तरिक जीवन में जो मर्मभेदी ठोकरें लगती रहती हैं, इन्हें ही प्रत्यक्ष नरक के रूप में देखा-समझा जाना चाहिए।

स्वर्ग उस दृष्टिकोण का नाम है, जिससे मनुष्य अपनी उपलब्धियों को देखता है—पिछड़े प्राणियों की तुलना में उसे जो अधिक मिला है उसके लिए संतोष अनुभव करता है। ईश्वर को धन्यवाद देता है और विविध-विधि लालसाओं में—तृष्णाओं में जलने की अपेक्षा जो मिला है, उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करने के लिए जुट जाता है। कर्तव्य कर्म करने में अपनी अविचल निष्ठा को बहुत बड़ी सम्पत्ति मानकर गौरवान्वित होता है और बड़ा कहलाने की अपेक्षा महान बनने में सन्तोष अनुभव करता है। बाह्य जगत में श्रेष्ठता और सौन्दर्य कम नहीं। उसे देखने-समझने पर कम आनन्द नहीं मिलता। अपने ऊपर समाज के अगणित अहसानों को वह देख पाता है तो निरन्तर कृतज्ञता से मन भरा रहता है। जिसे यह ज्ञान है कि दूसरों में भी ईश्वर का अंश है, वह किसी से न तो कटु वचन कहता है और न असभ्य व्यवहार करता है। उसके वचन और व्यवहार में स्नेहसिक्त आत्मीयता ही भरी रहती है। अनीति के विरुद्ध प्रबल संघर्ष करते हुए वह शालीनता को हाथ से नहीं जाने देता। यह है परिष्कृत दृष्टिकोण जिसे दूसरा नाम स्वर्गलोक भी दिया जा सकता है। इस स्तर के लोग धरती के देवता कहलाते हैं और हर स्थिति में सन्तोष एवं शान्ति का अनुभव करते हैं।

आध्यात्मिक प्रगति का दूसरा उपहार है—मुक्ति। मुक्ति किससे ? भवबन्धनों से। भवबन्धन क्या है ? लोभ-मोह, वासना-तृष्णा, स्वार्थ-संकीर्णता, अविवेकशीलता, आत्मविस्मृति। इनसे छूटने के लिए मरने की प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं। परिष्कृत, विवेकशील, दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाने और उसे कार्यान्वित करने का प्रबल दुस्साहस इकट्ठा कर लेने भर से कोई भी व्यक्ति जीवनमुक्त हो सकता है। अपनी कुसंस्कारी मान्यताओं को जिसने उखाड़ फेंका, लोग क्या कहते और क्या करते हैं ? यह देखने की अपेक्षा जिसने औचित्य और विवेक को मान्यता दी, इसी आधार पर अपना चिन्तन एवं कर्तृत्व ढाला, समझना चाहिए कि इसकी जीवनकाल में ही मुक्ति हो गई। भ्रान्तियों का निराकरण और उत्कृष्टता की समग्र स्वीकृति, इसी का नाम जीवनमुक्ति है। इस स्थिति में पहुँचे हुए व्यक्ति ही सच्चे ईश्वरभक्त कहलाते हैं और ईश्वर समतुल्य गौरव-गरिमा से सुसम्पन्न बनते हैं।

प्रत्यावर्तन सत्र के साधकों को निकट भविष्य में इसी जीवन में स्वर्ग और मुक्ति का प्रत्यक्ष आनन्द मिल सके, इसी का प्रयास किया जाता है और इस लक्ष्य के प्राप्त हो सकने की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है।

प्रसुप्ति का महान जागरण में प्रत्यावर्तन

प्रत्यक्ष दीख पड़ने वाली शक्तियों और विशेषताओं में मनुष्य जीवन में दो को ही प्रधानता मिलती रहती है। एक शारीरिक बलिष्ठता, दूसरी मानसिक प्रखरता। इन्हीं दोनों के बल पर धन, यश, गौरव, सफलता, सहयोग आदि के अनेकानेक साधन बन पड़ते हैं। व्यक्ति दुर्बल और बीमार हो तो अपनी उभयपक्षीय विशेषताएँ तो खो ही बैठता है, साथ ही सम्बन्धियों को सेवा-सहायता में जुटाये रहता है। उन्हें भी कोई उपयोगी काम नहीं करने देता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनावश्यक अपव्यय भी होता है। स्वयं भी हैरान होता है, औरों को भी हैरान करता है।

कहा जा सकता है कि बीमारियाँ मनुष्य जान-बूझकर तो बुलाता नहीं। वे तो न जाने कहाँ से दैवी विपत्ति की तरह आ धमकती हैं। हो यह भी सकता है, पर ऐसी दुर्घटनाएँ कभी यदा-कदा ही होती हैं और उसके लिए चिकित्सक और चिकित्सालय जरूरत से ज्यादा संख्या में विद्यमान हैं। आवश्यकता मात्र इस बात की है कि व्यक्ति को संयमशील, सुव्यवस्थित, चुस्त-दुरस्त भर बने रहने के लिए प्यार से धमकाकर उज्ज्वल भविष्य की संभावना बताते हुए और स्वेच्छाचार बरतने पर अपने को दीन-दयनीय बन जाने की विभीषिका को विस्तारपूर्वक समझाया और गले उतारा जाय।

इस सन्दर्भ में कठिनाई एक ही है कि मनुष्य वस्तुस्थिति समझते हुए भी अपनी आदतों से लाचार है। विशेषतया बुरी आदतें ऐसी हठीली होती हैं कि वे समझदारी के अनुरोधों को सदा अँगूठा दिखाती रहती हैं। चाहने पर भी मनुष्य कुटेबों से पीछा छुड़ाने में अपने को असमर्थ पाता है। नशेबाजी इसका बहुत मोटा उदाहरण है। जरा बारीकी में उतरा जाय तो जीभ का चटोरापन, समय की अंधी बरबादी कर देने वाला आलस, कामुक विचारों से अकारण मानसिक शक्ति का धुआँ बखेरते रहना, कटु भाषण, अहंकार का प्रदर्शन और कार्यपद्धति में अस्त-व्यस्तता का भरा रहना, ऐसी स्व-उपार्जित विपत्तियाँ हैं, जो आदमी को हर दृष्टि से बरबाद एवं चौपट करती रहती हैं। यद्यपि उन्हें साधारण मानवी स्वभाव कहकर टाल दिया जाता है।

धीमी आत्महत्या कही जा सकने वाली इन स्वनिर्मित विपत्तियों से लोग छूटते क्यों नहीं ? उन्हें छोड़ने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? करते हैं तो सफल क्यों नहीं होते ? हार क्यों मान लेते हैं ? इस व्यापक समस्या का समाधान खोजना किसी बड़े महत्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार से कम वजनदार नहीं है। कारण कि कुछेक को छोड़कर अधिकांश व्यक्ति अपने क्षमता भण्डार में अनजाने ही आग लगाते रहते हैं और दीन-हीन, उपेक्षित, तिरष्कृत होकर किसी प्रकार मौत के दिन पूरे करते हैं। कुछ ऐसा नहीं कर पाते हैं, जिससे जीवनलीला समाप्त करने पर लम्बे समय तक जीवित रहने के सम्बन्ध में ऐसा कुछ कह सकें कि उसने जन समुदाय से अधिक बढ़कर और कुछ किया ? कोल्हू में बैल की तरह पिसते-पीसते रहने के सिवाय ऐसा कुछ किया जाय जिस पर सिर उठाकर संतोष व्यक्त कर सकें या उपलब्धियों का विवरण गिना सकें।

मनुष्य अपने को सुधार पाये और ऊँचा उठा पाये, वस्तुतः यह कुछ कठिन नहीं है क्योंकि जब शरीर के अन्य अंगों को इच्छानुसार चलाते रहने का क्रम निरन्तर बना रहता है तो कोई कारण नहीं कि मन के उचक्केपन पर लगाम खींचने और ऐड़ लगाने पर सीधी राह चलने के लिए बाधित न किया जा सके। पर गाड़ी यहाँ आकर रुक जाती है कि ऐसी ऐड़ लगाये कौन ? प्रचण्ड संकल्प शक्ति का परिचय दे कौन ? मनोबल जगाने और प्रणाग्नि प्रज्ज्वलित करने का ककहरा तक कोई सीखता-सिखाता नहीं। वातावरण में भी ऐसा प्रचलन दीख नहीं पड़ता, जिसमें आदर्शवादिता की पक्षधर हिम्मत को काम करते हुए देखा जा सके। संसार भर में वस्तुतः यह ही दारिद्रय ऐसा है, जिसकी शाखा-उपशाखाओं के रूप में अनेकानेक दुर्गुणों का विषाणुओं से भी बढ़कर उत्पादन हुआ है। यदि सौ योजनाओं में से संयम और योजनाबद्ध कार्य करने की प्रतिभा को किसी प्रकार जीवित किया जा सके तो समझना चाहिए कि हमें जीवित मुर्दों को नव-जीवन से भरापूरा बना देने वाली संजीवनी बूटी हाथ लग गई।

इक्कीसवीं सदी का, नवयुग का उज्ज्वल भविष्य का, सतयुग का सरंजाम जुटाने के लिए प्राथमिक आवश्यकता यह पूरी करनी होगी कि मनुष्य में उस साहस और शौर्य-पराक्रम को जगाया जो अपने समुदाय के और वातावरण पर कब्जे जमाये बैठे अनौचित्य के साथ लड़ने के लिए सीना तानकर, कमर कसकर खड़ा हो सके। बात सरल है। जब जानवरों से लेकर अनेकानेक मनुष्यों को इच्छानुसार चलने के लिए विवश करने पर जोर लगाया जा सकता है। तो अपने आपको सही रास्ते पर चलने के लिए ललकारा-समझाया क्यों न जा सके ? जब डंडे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के जोर से अनेक टेढ़ों को सीधा किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि असंख्य उपस्थितियों को अपनी प्रवृत्ति को सही-समुचित बनाने के लिए समुन्नत न बनाया जा सके। पर इस असमंजस को क्या कहा जाय, जिसके कारण लोग अपने को समुन्नत बनाने की अपेक्षा दूसरे हर एक को सुधारने और वशवर्ती बनाने के लिए फटा बाँस पटकने में बहादुरी जताते हुए हर कहीं देखे जाते हैं। यह बात भूल ही जाते हैं कि जो अपने को मनस्वी बनाने में सफल नहीं हो सका, वह प्रगति की अनेकानेक कल्पना-जल्पना करते रहने में बेबकूफ शेखचिल्ली का उदाहरण बनने और उपहास का पात्र बनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन सकता।

मनोबल मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त ऐसा शब्द बेधी बाण है, जिसका निशाना कभी चूकता ही नहीं। जो लक्ष्य को बेधे बिना किसी भी व्यवधान से टकराकर हार मानने का नाम लेता ही नहीं। इसी को अध्यात्म-भाषा में 'प्राणाग्नि' कहते हैं और इतनी महिमा बखानते हैं कि उसे पाने वाले सच्चे अर्थों में ईश्वर का राजकुमार कहला सकें और हर क्षेत्र में तिल से ताड़, राई से पर्वत बनाकर खड़ा कर सकें। वस्तुतः ईश्वर प्रदत्त यही एक विभूति ऐसी है, जिसे कल्पवृक्ष का अलंकारिक नाम देकर भी यह कहा जा सकता है कि उसमें समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति हो सकती है। वह जिसके पास है, उसे पारसमणि का अधिष्ठाता कहा जा सकता है। वह जिनके पास है, वे अमृत पीने वालों की तरह मरने के उपरान्त भी युग-युगान्तरों तक जीवित रहते हैं।

शरीर बल, जिसमें सौन्दर्य और आकर्षण भी सम्मिलित है, प्रत्यक्ष विभूतियों में से एक है। दूसरी है बुद्धि, वैभव, जिसके सहारे संसार की अनेकानेक सम्पदाएँ—सफलताएँ हस्तगत हुई हैं। दोनों को भौतिक जीवन की ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ भी कहा जा सकता है, पर उन्हें प्राप्त करने के लिए पौष्टिक आहार और स्कूली पढ़ाई को ही सब कुछ मानते रहते हैं। जबकि वे लँगड़े की वैशाखी की तरह मात्र ऐसा सहारा है, जो थोड़ी सहायता भर करती है। अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति करने में दिखावटी सहायता ही रहती है, कोई ठोस प्रयोजन पूरा नहीं कर पाती। ठोस काम तो प्राणाग्नि के सहारे ही बनता है। संकल्प शक्ति, इच्छाशक्ति, मनस्विता आदि इसी को माना जाता है। उसी के सहारे गूँगे को वाचाल और पंगु को गिरि शिखर पर चढ़-दौड़ने की सफलता मिली है। जिसके पास मनोबल है उसके पास और कुछ भी न हो तो भी चुम्बक की तरह अनायास ही बहुत कुछ खिंचता चला आता है।

कालिदास की जन्मजात मूर्खता से सभी परिचित हैं। मानिसक स्तर को देखते हुए कोई आशा नहीं करता था कि यह कभी शिक्षित तो क्या साक्षर भी बन सकेगा या नहीं। पर विवाह के बाद पत्नी द्वारा धिक्कारे ज़ाने पर उसके अन्तराल में इतनी करारी चोट लगी कि प्रसुप्त प्राणाग्नि तिलमिला गई और उसने जहाँ पढ़ना आरम्भ किया तो महाकवि के नाम से विश्व-विख्यात बनकर ही रहा। वरदराज विद्यार्थी काल में "बैल" कहकर साथियों द्वारा चिढ़ाया जाता था। पर विद्यालय छोड़कर घर लौटते समय जब उसने एक कुएँ की जगह पर रस्सी की रगड़ पड़ने से निशान पड़े हुए देखे तो सोचा कि मोटी बुद्धि पर रगड़ डाली जाय तो मेरा भोंदूपन विद्वता में क्यों नहीं बदल सकता ? सच्ची इच्छा जगी तो वह स्कूल वापस लौट गया और ऐसी लगन से पढ़ा कि अन्ततः वरदराजाचार्य के नाम से मूर्धन्य विद्वानों में गिना गया ।

अब्राहम लिंकन रोटी की दुकान पर छोटी नौकरी करते थे पर प्रतिभा की आराधना-कामना मन ही मन करते रहने पर वे सीढ़ी दर सीढ़ी पार करते हुए वहाँ जा पहुँचे, जहाँ उन्हें अमेरिका के राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद तक जा पहुँचना था। साथी मल्लाह कोलम्बस की इतनी असंभव लगने वाली योजनाओं में सहभागी बनने पर अत्यन्त क्रुद्ध थे और उसे मारकर समुद्र में फैंक देने की योजना बना रहे थे। पर कोलम्बस के मनोबल के सामने उन्हें झुकना ही पड़ा और इतनी दूर आगे भी चलने के लिए तैयार हो गये जहाँ स्वर्ण खदान समझे जाने वाले अमेरिका पहुँचने का लक्ष्य प्राप्त हो गया। मनोबल इतनी प्रचंड शक्ति है, जिसके सामने वह संभव हो जाता है, जिसे प्राप्त करने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग कल्पना तक नहीं करते थे। वैज्ञानिक आविष्कारों का इतिहास ऐसा ही है। उन सभी उपलब्धियों के पीछे एक ही उपक्रम काम करता रहा है कि अन्वेषकों ने अपनी समूची तत्परता, तन्मयता एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत कर ली और उस नई सामर्थ्य से प्रकृति में अनादि काल से छिपे रहस्यों में से एक के बाद एक दूसरा प्रकट होता चला गया।

देखा जाता है कि क्रोध के आवेश में व्यक्ति इतना आक्रामक हो जाता है, जितना बल उसकी सामान्य स्थिति में कभी भी देखने को नहीं मिलता। प्राण जाने की आशंका उत्पन्न होने पर व्यक्ति सिर पर पाँव रखकर भागता है और दौड़ने में कीर्तिमान स्थापित करने वालों को पीछे छोड़ देता है। यह असाधारण शक्ति एकाएक कहाँ से प्रकट हो जाती है ? उसका एक ही उत्तर है कि यह आन्तरिक शिथिलता का कारणवश उत्तेजित होने का ही प्रतिफल है। इसका अर्थ यही हो सकता है कि अन्तरंग में विद्यमान शक्ति भंडार का समय आने पर पूरे उपयोग का मार्ग खुल जाना। अनेक उद्देश्यों में असाधारण रूप से सफल होने वाले व्यक्तियों ने अपना महत्व समझा और उसे सुनियोजित करके इस प्रकार स्वय को काम में लगाया कि वे प्रभाव क्षमता का समुचित परिचय दे सकने में सफल हुए।

सूर्य की किरणें छोटे-से आतिशी शीशे के माध्यम से एक छोटे बिन्दु पर केन्द्रित करते ही आग प्रकट हो जाती है। मात्र भक से जलने में समर्थ बारूद को जब कारतूस में सीमाबद्ध करके निशाना साधकर चलाया जाता है तो वह दूरवर्ती कठोर लक्ष्य को भी वेधती हुई आरपार निकल जाती है।

इण्डोनेशिया के एक प्रौढ़ ने अपनी पत्नी को तलाक- देकर दूसरा विवाह करने की ठानी। उसका बारह वर्ष का बच्चा इसे सहन न कर सका। पिता की हविश और माता की दुर्गति का अनुमान लगाकर वह अपने आपे से बाहर हो गया। उसने बैठे हुए प्रौढ़ बाप पर इतने कस कर दो घूँसे जमाये कि वह उन्हें सहन नहीं कर सका और देखते-देखते दम तोड़ दिया। निहत्थे लोग शेरों और खूँख्वार जानवरों को पछाड़ने का कीर्तिमान स्थापित करते रहे हैं। अन्धी, गूँगी और बहरी—एक प्रकार से सर्वथा अपंग महिला हेलन कीलर ने अपनी विद्वता को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। संसार के अठारह विश्वविद्यालयों ने उसे डाक्टरेट की मानद् उपाधि दी। अन्धों की ब्रेललिपि की मूल आविष्कारक उसी को मानते हैं। मानवी प्रतिभा की ध्वजा उड़ाते हुए विश्व के कौने-कौने में घूमी और प्रत्यक्ष प्रमाण की तरह अपना परिचय इस प्रकार प्रस्तुत करती रही कि मनुष्य की जीवट ही सब कुछ है। साधन तो क्या यदि शरीर भी अपंग हो तो भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मलेशिया की एक गठिया-ग्रस्त महिला चलने-फिरने में लाचार थी। मल-मूत्र त्याग जैसी शारीरिक क्रियाएँ भी उसे विवशता की स्थिति में चारपाई पर ही करनी पड़ती थीं। पर जब एक दिन घर में भयंकर आग लगी तो वह प्राण बचाने को इस प्रकार दौड़ी कि उसने सुरक्षित स्थान पर ही पहुँचकर दम लिया। लोग चकित थे कि इतने लम्बे समय से अपंग की स्थिति में पडी हुई महिला ऐसा दुस्साहस कर सकने में किस प्रकार सफल हो सकी ?

मनोबल के चमत्कारों की कथा-गाथा प्राचीन पौराणिक मिथक और आधुनिकतम शोधकर्ता समान रूप से प्रतिपादित करते रहे हैं। दोनों ने ही उसकी असामान्य शक्ति को एक प्रकार से मान्यता दी है। विश्व-विख्यात विज्ञान वेत्ताओं में मूर्धन्य अलवर्ट आइन्स्टीन बचपन में मूढ़मति थे। स्कूल के बच्चों में सबसे अधिक फिसड्डी। उनके मास्टर ने एक दिन बालकों के अभिभावकों से कहा—इसे स्कूल से उठा ले जाइये। यह गधा पड़ने में कभी भी सफल न हो सकेगा। अभिभावक सिर पीटते हुए बच्चे को घर वापस ले गये और दुर्भाग्य पर रोना रोते हुए अक्सर कहा करते थे कि ऐसी संतान पैदा करने की अपेक्षा तो हम लोगों ने एक पिल्ला पाल लिया होता तो अच्छा रहता। बच्चा बात को समझ रहा था। उसने अन्तर को जगाया और क्रिया-कलाप को व्यवस्थित किया। प्रगति दौडती चली गई और समय आया कि वही वज्रमूर्ख एक दिन नोबुल पुरस्कार विजेता, अणु-शक्ति के आविष्कारक सापेक्षवाद के प्रणेता आदि नामों से प्रख्यात हुआ और अपनी बिरादरी में सर्वोच्च पद तक जा पहुँचा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कोई जादू-चमत्कार नहीं है, न देवी-देवताओं का वरदान, न भाग्यवाद और न संयोग-अपवाद। कोई भी व्यक्ति यदि अपनी पर उतर आये और निजी जीवन में व्यस्तता-तन्मयता और व्यवहार क्षेत्र में दूरदर्शिता पर आधारित व्यावहारिक बुद्धि अपना ले तो किसी को भी ऐसे ही उत्कर्ष का श्रेय अपने क्षेत्र में निश्चित रूप से मिल सकता है। कुंभकरण के बारे में जनश्रुति है कि वर्ष भर सोता रहता था। एक दिन जगता था उस दिन असीम भोजन कर उतने से हैरत में डालने वाले पुरुषार्थ कर दिखाता था। उसका आकार भी सामान्य जनों की अपेक्षा अनेक गुना बड़ा था। क्या वस्तुतः ऐसा कोई व्यक्ति रहा होगा, इसे तथ्यान्वेषी लोग स्वीकार नहीं कर सकते, पर अलंकारिक रूप से इस कथन में समाहित तथ्य सोलहों आने सच हैं। सामान्य जन लुहार की धौंकनी की तरह साँस लेते हैं और किसी तरह जीवन काटते रहते हैं। उनकी इच्छाएँ, मान्यताएँ, क्रियाएँ—कामुकता और अर्थलोलुपता के इर्द-गिर्द मँडराती रहती हैं और उसी अपने बुने मकड़जाल में उलझाते-सुलझाते अपनी जीवनचर्या को समाप्त कर लेते हैं। इनके व्यक्तित्व की मक्खी-मच्छरों, कीड़े-मकोड़ों से बढ़कर तुलना नहीं की जा सकती। पर जाग्रत आत्माएँ ऐसी होती हैं, जो अपने साहस और सुनियोजन के बल पर इतना कुछ कर गुजरती हैं कि सामान्यजन उसे भाग्योदय जैसे नाम देकर अपनी हीनता पर पर्दा डालते रहते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि असीम शक्ति का भण्डारागार मनुष्य अपने प्रसुप्त से जग पड़ने और उपलब्ध साधनों के श्रेष्ठतम् सदुपयोग के लिए कटिबद्ध हो जाय तो उस स्तर का हर व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र में कुंभकरण के अलंकारिक वर्णन को सही सिद्ध कर सकता है।

आत्मशोधन की प्रायश्चित प्रक्रिया

आत्म-विश्लेषण, आत्मशोधन और आत्मपरिष्कार की प्रत्यावर्तन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है—अपने पिछले जीवन की समीक्षा। इसमें जहाँ सत्कर्मों पर प्रसन्नता और सन्तोष का अनुभव होना चाहिए, वहाँ यह भी आवश्यक है कि अपने पापों और दुष्कर्मों पर भी गहरी दृष्टि डाली जाय और उनका पश्चाताप—प्रायश्चित् किया जाय।

अध्यात्म दर्शन की सुदृढ़ मान्यता है कि कर्मों का फल अवश्यम्भावी है। उस विधान से कोई भी यहाँ तक कि ईश्वर भी नहीं बच सका है। परमात्मा ने यह सृष्टि-क्रम और नियम व्यवस्था के अनुसार बनाया है। यहाँ सब कुछ एक विधान, अनुशासन के अनुरूप चल रहा है। वे नियम परमात्मा ने बनाये हैं, पर अपने को भी उन्हीं में आबद्ध कर लिया है। भले ही मर्यादाओं का उल्लंघन करने की क्षमता उसमें हो, पर वह वैसा करता अपने लिए भी नहीं है, अन्यथा उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता की अव्यवस्था सर्वत्र फैल जायेगी। विधान निर्माता ही विधान तोड़ें तो फिर दूसरों को वैसा करने से कैसे रोका जा सकेगा ?

भगवान राम ने छिपकर बाली को तीर मारा, जब राम का अवतार कृष्ण रूप में हुआ तो बालि ने बहेलिया बनकर तीर से कृष्ण का प्राण ले लिया। राम के पिता दशरथ ने श्रवणकुमार को तीर मारा। उसके पिता ने शाप दिया कि इस वधकर्ता को भी मेरी ही तरह पुत्रशोक में बिलखकर मरना पड़ेगा। वैसा ही हुआ भी। रामचन्द्र जी अपने पिता की सहायता न कर सके, दशरथ पुत्रशोक में बिलख-बिलख कर मरे। सुभद्रा ने जब कृष्ण को उलाहना दिया कि तुम मेरे पुत्र—अपने भानजे अभिमन्यु की भगवान होते हुए भी रक्षा न कर सके तो उन्होंने यही कहा प्रारब्ध बहुत कठिन है, उसे मिटाना मेरे बस की बात भी नहीं है।

अज्ञानान्धकार के युग में ये भ्रान्तियाँ फैलाई अवश्य गई हैं कि अमुक नदी-स्नान, तीर्थयात्रा, देवदर्शन, पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन अथवा कर्म-काण्ड से पापों का दण्ड भुगतने से छुटकारा मिल जाता है, पर वैसा वस्तुतः है नहीं। उस कथन का अभिप्राय इतना ही हो सकता है कि पाप वृत्तियों-दुष्कर्मों की ओर बहाने वाली ललक घट या मिट जाय। कर्मदण्ड से बचने का एक ही उपाय है कि समय रहते उसका प्रायश्चित्य कर लिया जाय। प्रायश्चित्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का अर्थ भी कोई छुट-पुट कर्मकाण्ड नहीं वरन् समाज को जो क्षति पहुँचाई है उसकी पूर्ति करना है। हमने गन्दगी फैलाई है तो हमारा ही कर्तव्य है कि उसकी सफाई करें। रास्ते में गड्ढा खोदने वाले का ही कर्तव्य है कि उसे पाटे और राहगीरों के लिए टाँग टूटने का जो खतरा उत्पन्न किया है उसे दूर करे। पश्चाताप करना भी उचित है ताकि वैसी भूलें फिर न हों। ऐसे प्रसंगों में चन्द्रायण व्रत सरीखे कुछ तप-साधन भी जुड़े रहना चाहिए।

चोरी करने वाला यदि सद्बुद्धि आने पर चुराया धन वापिस करदे और अपनी भूल पर दुःख प्रकट करे तो उससे उसके दुष्कर्म की भरपाई हो जाती है। कटुवचन बोलने पर जिसका जी दुखा है, उसे सन्तुष्ट जितना भाव भरा अनुनय-विनय करले और उसके दुखे हुए जी को हलका कर दे तो समझना चाहिए कि प्रायश्चित्य हो गया। जिसकी चोरी की थी प्रायः उसको वही माल लौटाना सम्भव नहीं रहता। समय बीत जाने पर न यह वस्तुएँ रहती हैं और न व्यक्ति, ऐसी दशा में यही मानकर चलना पड़ता है कि समस्त समाज एक इकाई है। व्यक्ति उसके घटक मात्र हैं। व्यक्तियों को पहुँचाई गई अवांछनीय क्षति प्रकारान्तर से समाज की ही क्षति है। अस्तु समाज को अतिरिक्त सुख पहुँचाकर उस पापकर्म की क्षतिपूर्ति की जा सकती है। पाप का बदला पुण्य से चुकाया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जितने वजन के पाए हुए हैं, प्रयत्न यह होना चाहिए कि उतने ही वजन के अतिरिक्त पुण्यकर्म किये जायँ और पाप-पुण्य का पलड़ा बराबर किया जाय। इस प्रक्रिया का अवलम्बन लेने से पापकर्मों के कारण अन्तरात्मा पर जो अतिरिक्त भार पड़ गया था, उसे हलका किया जा सकता है।

प्रत्यावर्तन-सत्र के हर साधक को समझाया जाता है कि उसे अपने सभी पाप स्मरण करने चाहिए और उन्हें पेट में गाँठ-बाँधकर रखने की अपेक्षा कम से कम एक व्यक्ति को—इस सत्र के संचालक को विस्तारपूर्वक घटनाक्रम के साथ बता देना चाहिए। इससे साधक का जी हलका होगा और प्रायश्चित्य करने की रीति-नीति का परामर्श मिलेगा।

मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार दुरित-दुरावों की मानसिक ग्रन्थियाँ बनती हैं और वे कालान्तर में शारीरिक-मानसिक रोगों के रूप में फूटती हैं, व्यक्तित्व को विकृत करती हैं। अस्तु वे मानसिक रोगियों को अपना जीवनक्रम बिना दुराव चिकित्सक के सामने विस्तारपूर्वक वर्णन करने को कहते हैं। इस प्रकार रोगी जब सब कुछ भला-बुरा कह सकता है तो उसका जी हलका हो जाता है। अन्तःचेतना पर पड़ा हुआ दबाव घट जाता है। फलस्वरूप रोगी का मानसिक कष्ट घट जाता है।

इस मनोविज्ञान चिकित्सा-पद्धति में अध्यात्म चिकित्सा-विज्ञान इतना और जोड़ता है कि मात्र कह देना ही काफी नहीं वरन् समाज को पहुँचाई क्षति की पूर्ति भी करनी चाहिए। अन्यथा वाणी से कह देने पर जी तो हलका हो जायेगा पर किये गये पाप का अन्तःकरण पर लदा हुआ बोझ हलका न हो सकेगा। उसका प्रायश्चित्य क्षतिपूर्ति के साहसिक कदम बढ़ाने से ही हो सकता है।

प्रत्यावर्तन सत्र में आने वालों को अपने अन्तःकरण के दुराव-परतों को खोलने के लिए—भूलों की भविष्य में पुनरावृत्ति न करने के लिए—तथा क्षति पूर्ति के लिए—साहसिक कदम बढ़ाने को कहा जाता है। इस प्रकार आत्म-शोधन का महत्वपूर्ण प्रयोजन पूरा होता है। यह पाप भार ही है, जो उपासना में मन नहीं लगने देता—साधना क्रम में विघ्न खड़ा होता है—चित्त का उच्चाटन करता है—श्रद्धा नहीं जमने देता। इस प्रकार उपासना की दिशा में उठाये गये कदम प्रायः लँगड़े, लूले, अधूरे-असफल रह जाते हैं। यदि आत्म-शोधन की प्रायश्चित्य प्रक्रिया पहले अपनाली जाय तो कपड़े को धोने के बाद रंगने की तरह साधना का प्रतिफल भी सन्तोषजनक होता है।

पिछले किए हुए दुष्कर्म मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि बनकर अन्तःकरण में जम जाते हैं और चुपके-चुपके यह प्रयत्न करते हैं कि कोई आकस्मिक विपत्ति बुलाकर उस भार का परिशोधन कर डालें। विपत्तियाँ अनायास तो आती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं। उन्हें बुलाने के लिए किसी नई दुर्बुद्धि का सृजन होता है। उसी के फलस्वरूप संकट उत्पन्न होता है और पिछले पाप का कठोर दण्ड मिलता है। एक पाप दूसरे पाप की प्रेरणा देता है और जब तक वह मवाद निकल नहीं जाता, एक के बाद दूसरी फुन्सियाँ उठती फूटती रहती हैं। प्रगतिशील जीवन के पथ में यह भारी बाधा है। इसे दूर करने के लिए प्रायश्चित्य की तपश्चर्या अपनाना हर दृष्टि से उपयोगी है। व्यक्ति का मनःक्षेत्र जहाँ अवांछनीय भार से हलका होता है भावी कर्मभोगों से निश्चिन्तता मिलती है, वहाँ समाज को भी लाभ होता है। प्रायश्चित्य के आधार पर किये गये पापकर्मों के बदले जो पुण्यकर्म किये गये हैं, वहाँ उत्पन्न हुई कुरूपता को सौन्दर्य में बदलने का अवसर मिलता है। शुभकर्मों की परम्परा चलने से—व्यक्ति द्वारा भूतकाल में चलाई पाप परम्परा की काट हो जाती है। इस प्रकार समाज में पतनकारी जो तत्व उत्पन्न किये गये थे, उनका निराकरण भी पुण्य रूप सत्कर्म कर देते हैं।

पंचगव्य और हविष्यान्न। (तिल, जौ, चावलों) को प्रत्यावर्तन सत्र के साधक प्रतिदिन ग्रहण करते हैं। इसमें शास्त्रीय प्रायश्चित्य परम्परा का समावेश है। विधिवत् यह संस्कारित आहार मन और शरीर के शोधन में बहुत सहायक होता है। चार दिन की तपश्चर्या साधना भी संचित मलीनता के निराकरण में सहायता करती है। शांति कुन्ज का वातावरण भी शोधन और समाधान की दृष्टि से बहुत उपयुक्त है। इस दृष्टि से कुछ बार तो यहाँ ऐसे ही हलका होता है। शेष के लिए पुण्य संवर्धन के लिए कुछ साहस करने की विशेष विधि व्यवस्था सोची जाती है।

प्रत्यावर्तन सत्र में सम्मिलित होने वाले साधक—सञ्चालक को अपने दुष्कर्मों का विवरण लिखित अथवा मौखिक रूप से इस विश्वास के साथ प्रस्तुत करते हैं कि सुनने वाले के अतिरिक्त यह विवरण अन्य किसी पर भी प्रकट न किया जायेगा। यदि लिखित है तो उसे एक दिन बाद वापिस कर दिया जायेगा। इस आत्मिक साहसिकता का प्रभाव तुरन्त चित्त में हलकापन आने के रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्रायश्चित्य के लिय प्रायः यही परामर्श दिये जाते हैं कि समाज में पुण्य परम्पराएँ प्रचलित करने के लिए उन्हें उतने या न्यूनाधिक वजन के सत्कर्म करने चाहिए जितना कि पापकर्मों का भार है। पुण्य-प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने से कर्ता के चित्त में जो सन्तोष होगा, उससे स्वभावतः वे घाव भरेंगे जो दुष्कर्मों ने अन्तःकरण में कर रखे थे और जो आत्म-ग्लानि के—आत्म-प्रताड़ना के रूप में निरन्तर कसकते और रिसते थे।

चोरी, व्यभिचार, बेईमानी, छल, क्रूरता जैसे दुष्कर्मों को पाप नाम से सहज ही जाना जाता है और उन अवांछनीय घटनाक्रमों का स्मरण भी सहज हो जाता है, ये सामाजिक पाप हैं। आत्मिक पाप इससे भी बड़े-चढ़े और भयावह हैं। हम आत्म-हत्या और ब्रह्महत्या करते रहते हैं और यह सोचते भी नहीं कि इस प्रकार के जघन्य कर्म हम निरन्तर करते जा रहे हैं।

स्पष्ट है कि आत्मा को अगणित दुःखद योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त एक मनुष्य जन्म ही उद्धार के लिए मिला है। यदि यह सुअवसर ऐसे ही पशु-प्रवृत्तियों में गँवा दिया जाता है तो फिर उन्हें कष्टभरी दुःखद योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। आत्मा को सुअवसर का लाभ उठाने से वंचित रखना और फिर उसी यन्त्रणा भरे कुचक्र दुःसह दुःख सहने के लिए धकेल देना निश्चित रूप से आत्म-हत्या है, उसका प्रायश्चित्य लगभग चौरासी लाख वर्ष पर्यन्त भोगना पड़ेगा। एक योनि में औसतन एक वर्ष तो रहना ही पड़ेगा।

ब्रह्महत्या का तात्पर्य यहाँ ईश्वर के अरमानों को चकनाचूर कर देना है। उसने अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य को जो असाधारण और अद्भुत अनुदान दिए हैं, उसका एकमात्र प्रयोजन यह है कि इनके अतिरिक्त विभूतियों का उपयोग वह उसके विश्व उद्यान को समुन्नत सुरभित बनाने के लिए करेगा। किन्तु जब हम उसे अँगूठा दिखाकर लोभ, मोह की गन्दगी चाटने में लग पड़ते हैं तो निश्चित रूप से परमात्मा के उस प्रयोजन की, अरमान् की हत्या हो जाती है, जो उसने लगभग अपनी ही जितनी क्षमता वाला काय-कलेवर हमें देते समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सँजोया था। निश्चित रूप से यह ब्रह्म के अरमानों का हनन करने वाली ब्रह्म-हत्या ही कही जा सकती है।

भले ही विषपान करके आत्महत्या न की गई हो और साधु ब्राह्मण का कत्ल करने जैसी ब्रह्म-हत्या न बन पड़ी हो पर जिस रीति-नीति के साथ जीवन प्रक्रिया चलाई जाती रही है, उसे आत्म-हत्या और ब्रह्म-हत्या का सम्मिलित दुष्कर्म ही कह सकते हैं। यह पाप कम मात्रा में नहीं हुआ। जीवन का महत्वपूर्ण भाग अब तक इसी कुचक्र में गँवाया जा चुका है। यदि उस पाप की गरिमा और उसके दण्ड पर विचार करें तो रोमाञ्चकारी विभीषिका सामने खड़ी दिखाई पड़ेगी। योनियों के कुचक्र में भ्रमण, आत्म-हत्या का और ईश्वर का चरम कोप ब्रह्म-हत्या का दण्ड होता है। इन दोनों प्रताड़नाओं से कितनी कष्टकारक व्यथाएँ सहनी पड़ सकती हैं। इसकी कल्पना की जाय तो चौरासी नरक के होने वाले उत्पीड़न की जो तस्वीरें बाजार में बिकती हैं उससे हलका नहीं भारी संकट ही सामने खड़ा दृष्टिगोचर होगा।

यह मान्यता सर्वथा मिथ्या है कि छुट-पुट पूजा-पत्री या कर्मकांडों टंट-घंट आत्मकल्याण अथवा ईश्वर अनुग्रह का लक्ष्य प्राप्त करा सकते हैं। उपासनात्मक उपचार तो रेलवे लाइन पर खड़े सिग्नल, सड़क पर लगे संकेतपट मात्र हैं जो दिशा निर्देश भर करते हैं। काम तो सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने और पुण्य कर्म करने से चलता है। पाप भी तो दुष्कर्मों से घटनाक्रम एवं क्रियाकलाप से ही बने थे। पुण्य प्रायश्चित्य भी उसी स्तर का घटनाक्रम एवं क्रिया-कलाप अपनाने से पूरा हो सकता है। यदि पूजा स्तर के पाप हुए होते तो वे पूजा स्तर के पुण्य कट सकते थे। कर्म की काट तो कर्म से ही हो सकती है। इसलिए प्रायश्चित्य द्वारा आत्मशोधन का—आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त करना पड़ता है। यहाँ वैसा ही सत् साहस दिखाने की जरूरत पड़ती है जैसा कि दुष्कर्म करते समय किसी को भी न सुनने जैसा दुस्साहस किया गया था।

समग्र प्रायश्चित्य की दृष्टि से यही उचित है कि भावी जीवन का यह एक अविच्छिन्न क्रम बनाया जाय कि ईश्वर प्रदत्त विभूतियों का एक बड़ा अंश सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन के लिए लगाया करेंगे। २४ घण्टा समय में से ८ घण्टा कमाने के, ७ घण्टा सोने के, ५ घण्टा फुटकर कार्यों के लिए रखलें तो २० घण्टे भौतिक जीवन के लिए शरीर, मन और परिवार की आवश्यकता-पूर्ति के लिये पर्याप्त होने चाहिए। शेष चार घण्टे का श्रम परमार्थ प्रयोजनों में लगाया जा सकता है। घर-परिवार के सदस्यों में एक सदस्य-परमार्थ को भी जोड़ लिया जाय तो एक कुटुम्बी पर खर्च होने वाला व्यय, लोक मंगल के लिए नियोजित हो सकता है। घर में एक बच्चा यदि और होता तो किसी प्रकार उसका भी पालन-पोषण करना ही पड़ता। यही बात परमार्थ-प्रयोजन के सम्बन्ध में सोचकर चला जाय तो कमाई का एक महत्वपूर्ण भाग उसके लिए निकाला जा सकता है।

इस युग का सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रधान परमार्थ एक ही है 'भावनात्मक नव निर्माण'। इस युग की समस्त विकृतियाँ निकृष्ट चिन्तन के कारण ही उत्पन्न हुई हैं। दुष्प्रवृत्तियाँ दुर्भावनाओं की बेल पर लगने वाली फलियाँ ही हैं। विश्व का सर्वनाश करने के लिए समुन्नत असंख्य विभीषिकायें मनुष्य के निकृष्ट चिन्तन ने ही उत्पन्न की हैं। उसका निराकरण एक ही उपाय से हो सकता है कि विचारणा का स्तर ऊँचा उठाने में अग्नि-काण्ड पर जल डालने की तरह सब ओर से ध्यान हटाकर पूरी एकाग्रता के साथ जुट जाना चाहिए। अन्नदान, जलदान, धर्मशाला, मन्दिर, कुआँ-तालाब, बगीचा लगाने जैसे कार्य पीछे भी हो सकते हैं। सम्पत्ति उपार्जन में थोड़ी-सी ढील भी रखी जा सकती है, पर आपत्ति धर्म की तरह बौद्धिक अनाचार से लड़ने में युद्धकालीन संकट की तरह सारी शक्ति झोंक दी जानी चाहिए। विचार क्रान्ति की लाल मशाल इसी प्रयोजन के लिए जल रही है। ज्ञान यज्ञ का आह्वान इसी युग पुकार का अनुसरण करने के लिए है। इन दिनों समस्त पुण्य प्रवृत्तियों क प्रवाह इसी दिशा में गतिशील होना चाहिए। प्रायश्चित्य के लिए जितना भी साहस जगे उसे पूरी तरह इसी दिशा में नियोजित कर दिया जाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब तक हुई आत्म-हत्या और ब्रह्म-हत्या का निवारण करने के लिए—आत्म-कल्याण और ईश्वर अनुग्रह का वरदान पाने के लिए हमें पुण्य-प्रयासों को सर्वोत्तम प्रकार—ज्ञान यज्ञ में निरत होना चाहिए और चोरी, व्यभिचार जैसे सामाजिक असाधारण दुष्कृत्यों के दण्ड से बचने के लिए उसी स्तर के कुछ साहसिक कदम बढ़ाने चाहिए। यह परामर्श प्रत्यावर्तन सत्र के साधकों को दिया जाता है। निश्चित रूप से इससे आत्मशोधन और आत्म-परिष्कार का प्रयोजन भली प्रकार पूरा होता है।

कल्प साधना की पृष्ठभूमि और विधि-व्यवस्था

'कल्प' का अर्थ होता है—व्यक्तित्व का उपयोगी परिवर्तन। आमतौर से चर्चा का विषय 'कायाकल्प' ही रहा है। उसी का प्रधानतम उल्लेख एवं कथनोपकथन का क्रम चलता रहता है। कारण यह कि मनुष्य अपने आपको इन दिनों शरीर भर मानता है। लाभ-हानि, प्रगति अवगति की एक ही कसौटी है—सुविधा-साधनों में वृद्धि होने न होने की सफलता-असफलता। जब शरीर ही व्यक्ति है तो उसको प्रभावित करने वाले साधन ही सब कुछ ठहरते हैं। उनका कौन कितना अर्जन उपयोग कर सकता है ? इसी आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि कौन कितना सुखी, समृद्ध एवं सफल रहा है ? किसके ऊपर अभावों का दुर्भाग्य लदा ?

जब मापदण्ड ही गड़बड़ा जाय तो मूल्यांकन में भूल होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यदि व्यक्तित्व में उपयोगी परिवर्तन को, शरीर की स्थिति में उत्साहवर्धक हेर-फेर होने की बात की हो सब कुछ माना जाता हो तो इसमें कोई भी आश्चर्य की बात नहीं है। कायाकल्प प्रचलित अर्थ है—बुढ़ापे का नवयौवन में बदल जाना अथवा दुर्बलता के स्थान पर बलिष्ठता का हस्तगत होना। इस सम्भावना की कुछ कथानकों—उदाहरणों से पुष्टि भी होती है। च्यवन ऋषि जराजीर्ण थे। सुकन्या के अनुराग पर अश्विनीकुमारों ने उन्हें कोई दिव्य औषधि दी और उन्हें युवा बना दिया। ययाति को उनके एक पुत्र ने अपना यौवन दिया था और उनकी वृद्धावस्था स्वयं ओढ़ी। बाल खिल्य एवं वैरवानस ऋषि का उदाहरण प्रख्यात है। इस मान्यता या आकांक्षा को पूरा करने के लिये मध्यकाल में भी प्रयत्न होते रहे हैं। आयुर्वेद में इनकी चर्चा स्थान-स्थान पर है। इस सन्दर्भ में वमन, विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, वस्ति की पंचकर्म प्रक्रिया प्रख्यात है। साथ ही ऐसे रसायनों के सेवन का भी उल्लेख है, जो पौष्टिकता बढ़ाते तथा सूखे मुरझाये को हरा-भरा करते हैं। परिशोधन और परिवर्धन की यह उभयपक्षीय प्रक्रिया अनेकानेक विधि-विधानों और क्रिया-प्रयोगों के साथ आयुर्वेद में लिखी है और उसकी परिणति को आयुर्वेद में 'कायाकल्प' नाम दिया गया है।

पाश्चात्य शरीरशास्त्रियों ने भी इस मानवी आकांक्षा को ध्यान में रखते हुए अनेक स्तर के प्रयोग किए हैं। इनमें मनुष्यों से मिलती-जुलती शरीर रचना वाले बन्दरों की पौरुष-ग्रन्थियों का मनुष्यों में आरोपण करना मुख्य है। इसमें सफलता भी मिली पर वह अस्थायी ही रही। लम्बी शीत निद्रा के उपरान्त थकान मिटाकर जीवकोशों को पुनः नये सिरे से काम करने का अवसर देना अभी सिद्धान्ततः ही स्वीकारा गया। उसका परीक्षण भर आरम्भ हुआ है। वह स्थिति नहीं आई जिसमें उसकी सफलता का विश्वास किया या कराया जा सके। कुछ अवसरों की शल्यक्रिया, आरोपण, परिवर्तन भी अभी प्रयोग स्तर पर ही है। उत्तेजक, पौष्टिक औषधियों के भी अनेकानेक प्रयोग हुए हैं। उनकी सफलता भी जादू-चमत्कार जैसी क्षणिक ही मिलती रही है। किसी प्रयोग के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उससे स्थायी लाभ का सुयोग मिल गया।

इसी प्रयोग प्रयास में एक और कड़ी जोड़ने का अपना प्रयत्न जरा भी नहीं है क्योंकि निर्धारित लक्ष्य मापदण्ड ही गलत है। प्रकृति का परिवर्तन चक्र सुनिश्चित है। उसमें अन्तर आने का अर्थ है—सृष्टि का मूलभूत आधार ही उलट जाना। यदि कभी वैसा हुआ तो उसका आरम्भ वर्तमान सृष्टि को समाप्त करके किसी अन्य आधार पर विश्व व्यवस्था को नये सिरे से बनाकर ही हो सकता है। ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हेर-फेर को महाप्रलय से कम नाम नहीं दिया जा सकता। उत्पादन, परिपोषण, क्षरण और परिवर्तन की धुरी पर ही पदार्थ और प्राणियों का निर्वाह क्रम चल रहा है। उत्पन्न होना, बढ़ना, ढलना और अन्ततः परिवर्तन की भट्टी में नये रूप में गलने-ढलने के लिये चले जाना। सभी की यही गति है। यहाँ स्थिरता कहीं नहीं। गति चक्र की धुरी पर सभी को भ्रमण करना पड़ता है।

खोये स्वास्थ्य को पुनः सुधार लेना, यह टूट-फूट की मरम्मत जैसा और समझ में आ सकने योग्य है। चिकित्सा उपचार के माध्यम से ऐसा हुआ भी है और वैसा होता भी रहेगा। बात इसी सीमा पर आकर रुक जाती है। उस आकांक्षा की पूर्ति में अभी कोई आशा की किरण दिखाई नहीं पड़ती, जिसमें जराजीर्ण आयु वाले फिर से नवयुवक बनने में सफल हो सकेंगे। इस सन्दर्भ में एक आधुनिक प्रयोग दृष्टव्य हैं। महामना मालवीय जी को किसी तपसी बाबा ने काया-कल्प का आश्वासन दिया और प्रयोग किया था। कोसी (उ. प्र.) के निकट उन, बाबा के आश्रम में इस प्रयोजन के लिए एक विशेष कुटी बनाई गयी थी। उसी में चालीस दिन उन्हें हवा और धूप से बचाते हुए रखा गया था और औषधियों का उपचार किया गया था। इस प्रयोग का परिणाम भी वैसा नहीं हुआ जैसी अपेक्षा की गयी थी। 'उपयुक्त उपचार का उपयुक्त प्रभाव' एक सामान्य सिद्धान्त है। उस प्रयोग के सन्दर्भ में भी वैसा तो हुआ पर कोई आश्चर्यजनक ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ जिसे कायाकल्प की प्रचलित मान्यता में सफलता मिलने जैसा कुछ कहा जा सके।

शरीर क्षेत्र में काया-कल्प इतना ही सम्भव है कि आहार-विहार में बरती जाने वाली अनियमितताओं-अवांछनीयताओं को रोकने के लिए होने वाले अस्वाभाविक क्षरण को रोका जा सके और लम्बी आयु तक निरोग रहते हुए जीवन क्रम को उत्साहवर्धक, आनन्ददायक बनाया जा सके। मानवी काया की संरचना अन्यान्य जीवधारियों की तुलना में कहीं अधिक वरिष्ठ है। जब और सभी स्वाच्छन्द प्राणी निरोगी रहकर पूर्णायुष्य प्राप्त करते हैं तो कोई कारण नहीं कि अकेला मनुष्य ही आये दिन की दुर्बलता और बीमारी का अभिशाप सहते हुए असमय बेमौत मरता रहे। इसमें आहार-विहार की मर्यादाओं का उल्लंघन, मानसिक उत्तेजनाएँ उभारने वाले आवेश तथा रीति नियमों का व्यतिक्रम ही वह कारण है जिनका समन्वय शारीरिक ही नहीं, मानसिक स्वास्थ्य को भी मटियामेट करके रख देता है। यदि इतना सुधार सम्भव हो सके, अवांछनीय आदतों का पुनर्निर्माण हो सके तो इतने भर से काया-कल्प की पृष्ठभूमि बन सकती है। चिकित्सा के नाम पर कुछ हल्के-फुल्के प्रयोग भी रही-बची कमी पूरी कर सकते हैं। इस दृष्टि से प्राकृतिक जीवनचर्या सिखाने वाले कोई सेनेटोरियम बनें और उनमें स्वास्थ्य का महत्व समझाने वाले कुछ समय निश्चिन्ततापूर्वक रहें तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि वर्षों आये दिन की आधि-व्याधि, सहते-कराहते, खीजते रहने की अपेक्षा कुछ समय की यह आरोग्य साधना कहीं अधिक सस्ती पड़ेगी। उतावले लोग विषाक्त उत्तेजनाएँ चिकित्सा के नाम पर अंग-अवयवों में भरते और जादुई लाभ लेने के लिए बालकों की तरह मचलते रहते हैं। इस विडम्बना में वे पाते कम खोते अधिक हैं। रंग-बिरंगे चिकित्सकों के चित्र-विचित्र उपचार करते रहने पर भी आमतौर से देखा गया है कि "मर्ज बढ़ता ही गया—ज्यों-ज्यों दवा की" वाली लोकोक्ति ही चरितार्थ होती रहती है। इस कुचक्र से छूटने का एक ही उपाय है प्रकृति की ओर वापसी। जो इतना भर समझकर कुछ कर सकें तो वे अपने बलबूते अथवा दूसरों के राई-रत्ती सहयोग से खोया स्वास्थ्य पा सकते हैं।

चर्चा यह थी कि शान्ति-कुन्ज के कल्प साधना सत्रों का जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गठन किया गया है उसका स्वरूप और प्रतिफल क्या है ? अध्यात्म विज्ञान के आधार पर 'कल्प' शब्द का उपयोग आन्तरिक परिवर्तन के रूप में होना चाहिए। आन्तरिक का तात्पर्य है—दृष्टिकोणपरक। मान्यता, आकांक्षा, विचारणा, कल्पना के समुच्चय को अन्तःकरण या अन्तराल कहते हैं। यही है व्यक्तित्व का आधार। सभी लोग शरीर की दृष्टि से प्रायः एक जैसे होते हैं और उनके बीच जो जमीन-आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है, वह लगता भर परिस्थितिजन्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका वास्तविक कारण मनःस्थिति का स्तर ही होता है। "मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है।" "जो जैसा चाहता है, वैसा बन जाता है", "ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं।" आदि-आदि अगणित प्रचलित उक्तियाँ एक ही तथ्य को प्रकट करती हैं कि मनःस्थिति जैसी भी होगी, परिस्थितियाँ वैसी ही बनती चली जायेंगी। किसी का स्वस्थ -अस्वस्थ, धनी-निर्धन, विज्ञमूर्ख, समुन्नत अधःपतित होना इस बात पर निर्भर है कि उसने अपनी मान्यताएँ और आदतें किस स्तर की बनाई हैं ? साधन तो आदमी जिधर भी चलता है, उसी प्रकार के मिलते जाते हैं। सहयोगी भी वैसे ही जुट जाते हैं। विपन्न परिस्थितियों में उत्पन्न अगणित व्यक्ति संसार के इतिहास में मूर्धन्य होकर चमके हैं और साधन-सम्पन्नों के अगणित वंशधर व्यसनी, अनाचारी होकर पूर्वजों के यश और धन की होली जलाते और अन्ततः दुर्गतिग्रस्त जीवन जीते देखे गये हैं। तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात करने से एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य के अन्तराल का स्तर ही उसकी प्रगति एवं दुर्गति के लिये एकमात्र उत्तरदायी है।

निदान सही होने पर उसका उपचार भी ठीक बन पड़ता है और व्याधि निवारण में देर भी नहीं लगती। शान्तिकुन्ज के कल्प साधना सत्रों में आन्तरिक परिवर्तन की विधि-व्यवस्था बनाई गयी है। एक माह की छोटी अवधि इतने महान् प्रयोजन के लिये है तो नगण्य और उपहासास्पद। फिर भी लोगों की व्यस्तता और उतावली को देखते हुए उतना ही छोटा कार्यक्रम बनाया गया है, जिससे आरम्भिक अनुभव मिल सके और भविष्य में उस मार्ग पर चलते रहने का संकल्प भरा साहस उभर सके। बिगाड़ने में कम और बनाने में अधिक समय लगता है। इस दृष्टि से जितने समय में जीवन का स्वरूप बिगाड़ा गया है, बनाने में उससे अधिक समय लगना चाहिए। पर लोगों की अधीरता को क्या कहा जाय जो हथेली पर सरसों जमने जैसा चमत्कार देखने से कम की कोई बात ही नहीं सुनना चाहते। अच्छा होता लोग ऐसे महान प्रयोजन के लिए न्यूनतम एक वर्ष की अवधि निकालें पर समय की विचित्रता में वैसा कुछ सम्भव नहीं दीखता। इसलिये 'न कुछ से कुछ' की नीति अपनायी गयी है और एक महीने का कल्प-साधना का ऐसा उपक्रम अपनाया गया, जिसमें पगडण्डियों के लालच में अपनायी गयी भूल-भुलैयों को छोड़ने और सर्वतोमुखी अभ्युदय के राजमार्ग पर चलने के लिये सम्बन्धित व्यक्तियों को सहमत किया जा सके।

कल्प-साधना में देवत्व के साथ सघन घनिष्ठता स्थापित करने वाली उपासना—मान्यताओं में—आदतों उत्साहवर्धक परिवर्तन करने वाली जीवन-साधना एवं लोक व्यवहार को आनन्द उल्लास से सराबोर कर देने वाली आराधना की त्रिविधि समन्वय है। इसे अन्तःकरण, व्यक्तित्व और व्यवहार में उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश करने वाली सुनियाजित प्रक्रिया कहा जा सकता है। मान्यताओं, आकांक्षाओं, विचारणाओं और आदतों को बदलने की कल्प प्रक्रिया उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है जैसी कि बुढ़ापे को जवानी में बदलने वाले काया-कल्प के बारे में लोक-मान्यता प्रचलित है। न तो बुढ़ापा अभिशाप है और न जवानी वरदान। दोनों ही अपनी-अपनी जगह सही हैं। दोनों का अपना समय, महत्व, उपयोग और गौरव है इसलिये शरीर का प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ परिवर्तन क्रम तो नहीं बदला जा सकता और न उसके बदलने की आवश्यकता ही है। आन्तरिक परिवर्तन की अपनी उपयोगिता है। यदि वह सही रीति से बन पड़े तो उसका लाभ काया-कल्प की तुलना में अपेक्षाकृत कहीं अधिक है।

कल्प-साधना में उन सभी तत्वों का समावेश किया गया है, जो अन्तराल के स्तर में प्राकृत उत्कृष्टता उभरती और व्यवहार में पवित्र प्रखरता का ऐसा समावेश करती है, जिसको उपलब्ध करने के उपरान्त व्यक्ति धरती से स्वर्ग में जा पहुँचने जैसा अनुभव कर सके।

कल्प-साधना के पाँच निर्धारण इस प्रकार हैं—

(१) उपासना के निमित्त साधक की स्थित के अनुरूप जप, ध्यान, पुरश्चरण, स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन-मनन। (२) साधना के निमित्त आसन-प्राणायाम, चक्र वेधन, नाद-योग, लययोग,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिन्दुयोग, प्राणयोग आदि की यथोचित्त योग साधना। (३) संचित पापकर्मों का प्रायश्चित। (४) कल्प उपवास—शाकाहार कल्प, दूध व छाछ कल्प। एक महीने तक एक ही वस्तु पर रहना आहार कल्प कहा जाता है। लौकी-तोरई, गाजर, परवल जैसे शाक खरबूजा, आम, पपीता जैसे सस्ते फल इसके लिये सर्वसुलभ हैं। दूध या छाछ कल्प भी हो सकता है। न्यूनतम अमृताशन्न है। अमृताशन्न अर्थात् खिचड़ी दूध, चावल, मूँग, आदि उबले अन्न। (५) सौम्य औषधि कल्प—इसमें तुलसी, आँवला, हरीतकी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, शतावरी जैसी हानिरहित औषधियों की एक नियमित मात्रा महीने भर में सेवन करना।

यह कल्प-साधना के प्रमुख अंग हैं। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदोक्त पंच कर्म स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, नस्य। पंच तत्व चिकित्सा के मिट्टी, पानी, हवा, अग्नि, आकाश आदि के विशेष प्रयोग। ये जब जिसके लिए जिस प्रकार उपयुक्त समझे जायेंगे, कराये जाते रहेगें।

कल्प शब्द आयुर्वेद में पुनर्यौवन प्राप्ति के लिये किये गये उपचार रूप में प्रयुक्त होता है। च्यवन, ययाति आदि द्वारा इस विधि से जरा जीर्ण स्थिति से छुटकारा पाकर नव यौवन प्राप्त किये जाने का उल्लेख मिलता है। महामना मालवीयजी ने भी किसी तपस्वी बाबा के संरक्षण में ऐसा ही उपचार कराया था और आंशिक लाभ पाया था। पाश्चात्य देशों में बन्दर की पौरुष ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में फिट करके, पशु भ्रूणों का सत्व मिलाकर इस उद्देश्य के लिए प्रयोग किये और उनके सामयिक लाभ भी पाये हैं। स्थाई परिवर्तन किसी को भी नहीं हो सका, क्योंकि यदि प्रकृति का नियत क्रम जन्म, बंधन और परिवर्तन का क्रम यथावत् रहना है तो मरण से पूर्व की स्थिति वृद्धावस्था का तो सामना सबको करना ही पड़ेगा। सृष्टि-व्यवस्था को बदल सकना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। इसलिए टूटे की मरम्मत करके कामचलाऊ बना लेने की बात तक ही शरीर कल्प की बात सोचनी चाहिए। जितनी किसी चिकित्सा पद्धति में शरीर का शोधन और नवीनीकरण का गुंजाइश है, उतनी उपरोक्त कल्प-साधना से भी विद्यमान है। सच तो यह है कि यह प्रकृति के अधिक निकट और आध्यात्मिक उपचारों से युक्त होने के कारण अधिक निर्दोष एवं अधिक चिरस्थायी है।

प्रस्तुत कल्प-साधना का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के अन्तराल का काया-कल्प करना है। दृष्टिकोण का व्यक्तित्व से सीधा सम्बन्ध है। देवतुल्य महामानवों और हेय पतित नर-पामरों की मनःस्थिति, परिस्थिति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है। व्यक्तित्वों में पिछड़ापन और अभिनन्दनीय गौरव की आश्चर्यजनक भिन्नता देखी जाती है, उसका कारण लगता तो परिस्थितियों का विपर्यय ही है पर वस्तुतः वैसा कुछ है नहीं। हर परिस्थिति में आन्तरिक गरिमा प्रगति का मार्ग बनाती हुयी, चट्टान तोड़कर बहने वाली गंगा की तरह अपना मार्ग बनाती है। इसके विपरीत समस्त सुविधा रहते हुये अमीर उमरावों की दुर्व्यसनी सन्तानों की तरह अपना और साथियों का सर्वनाश करने में सलग्न रहा जा सकता है। शरीर तो प्राण रहने, न रहने से जीते-मरते रहते हैं। किसी व्यक्तित्व का उत्थान-पतन विशुद्ध रूप से मानवी दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। दृष्टिकोण ही आकांक्षा उभारता है, वही बुद्धि विचारणा में दिशा देता है और उसी के दबाव से विवश होकर काया को कठपुतली का नाच नाचना पड़ता है। अन्तराल को ही अन्तरात्मा कहते हैं। अध्यात्म क्षेत्र का यही प्राण है। इसी क्षेत्र का परिशोधन-परिष्कार करने के लिए अध्यात्म विज्ञान का समूचा ढाँचा खड़ा है। तत्वदर्शन के ज्ञान के आधार पर चिन्तन और तपश्चर्या व्रतशीलता के सहारे चरित्र में, स्वभाव में, अभ्यास में अन्तर लाने का प्रयत्न किया जाता है। जो इस घुड़दौड़ में जितना आगे निकल जाता है, वह उतना ही वरिष्ठ कहा जाता है। जो इस प्रतिस्पर्धा में पिछड़ गया वही पतित पराजित की दयनीय स्थिति में पड़ा खीजता-खिजाता है—किसी प्रकार जिन्दगी के दिन पूरे करता है।

कल्प-साधना का मूल प्रयत्न यह है कि इस एक महीने की अवधि में अपने आप पर नियन्त्रण करने का अभ्यास स्वयं को कराया जाय, अनगढ़ ढर्रे के विरुद्ध विद्रोह किया जाय,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचित कुसंस्कारिता पर पूरे जोश-खरोश के साथ आक्रमण किया जाय और उस खरदूषण, सूर्पणखाँ के साम्राज्य को उखाड़ फैंकने की विजय श्री का वरण किया जाय। इतना ही नहीं उन्मूलन की रिक्तता को भी तुरन्त ही भरा जाय और उस स्थान पर उत्कृष्टता की पक्षधर सत-प्रवृत्तियों को अपनाया जाय। अपनाने का अर्थ है न केवल विश्वास में वरन् स्वभाव अभ्यास में भी इस रीति-नीति को पूरी तरह भर लिया जाय।

आयुर्वेदोक्त काया-कल्प के ये दो तरीके हैं—एक 'कुटी प्रवेश' और दूसरा 'सीमित सम्पर्क'। दोनों का उद्देश्य एक है। अभ्यस्त ढर्रे से कदम कटकर अपनी दुनिया नई बसाना। अभ्यस्त ढर्रे को एकाकी मनोबल के सहारे बदल डालना। बाहर के अवांछनीय प्रभाव से पूरी तरह विलग हो जाना। न कोई मिलेगा—न कोई दीखेगा—तो बाहरी प्रभाव से व्यतिरेक भी क्यों उत्पन्न होगा ? कन्दराओं में रहकर तपश्चर्याओं का—मौन एकान्त का उद्देश्य भी यही है। दूसरे सीमित सम्पर्क में इस एकात्मता, एकाग्रता से थोड़ी छूट है। उसमें शरीर को खुली हवा में सौम्य वातावरण के सम्पर्क रहने की स्वतन्त्रता है। साथ ही उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों—देवात्म क्षेत्र में धकेलने वाले माध्यमों के साथ सम्पर्क रखने की भी सुविधा है। इसमें साधनारत सत्संग के माध्यम से श्रेष्ठता के साथ प्रत्यक्षतः भी जुड़े रहने की सुविधा है, जबकि कुटी प्रवेश में पूर्णतया आत्मनिर्भर रहना पड़ता है। बुरे-भले सभी से सम्पर्क करना पड़ता है।

प्रज्ञापुत्रों के लिए नियमित एक महीने का कल्प-साधना में, यथासम्भव एकान्त सेवन का उतना अवसर दिया गया है, जिसे हजम किया जा सके। एक साधक के लिए एक कुटिया। अपने हाथों अपना भोजन पकाना। कुटी में ही यंत्र साधनो से अपने आसन पर बैठे हुए मार्ग-दर्शकों का भावभरा परामर्श सुनना। तृतीय नेत्र जगाने की आन्तरिक उन्मीलन से सम्बन्धित त्राटक के लिए अपने कमरे में उपयुक्त प्रकाश की सुविधा रहना। देखने को इष्टदेव का ही एकमात्र चित्र कमरे में रहना। निर्धारित स्वाध्याय के अतिरिक्त और कुछ न पढ़ना। निर्धारित समय के अतिरिक्त और किसी से न मिलना जैसे इस अवधि के निर्धारण ऐसे हैं, जिसमें कालकोठरी जैसी असुविधा रहते हुए भी आत्मावलम्बी आत्मकेन्द्रित रहने की बहुत कुछ सुविधा है।

उच्चस्तरीय साधनाओं के लिए मात्र पूजा-अर्चना की विधि-व्यवस्था ही पर्याप्त नहीं होती उसके फलों फूलने के लिए उच्चस्तरीय सम्पर्क में रहकर महत्वपूर्ण अभ्यास सम्पन्न करने की परम्परा है। राम को अयोध्या छोड़कर देव प्रयाग, लक्ष्मण को लक्ष्मण झूला, शत्रुघ्न को मुनि की रेती, भरत को ऋषिकेश में महाप्राण वशिष्ठ के सान्निध्य में अपनी साधना करनी पड़ती थी। अयोध्या में समस्त सुविधायें होते हुए भी अभ्यस्त ढर्रा और सम्पर्क तथा वातावरण का घेरा इतना प्रबल था कि वहाँ रहकर योग-तप आदि क्रियात्मक प्रयोगों से कदाचित ही कुछ सहायता मिलती। वस्तुस्थिति उनने समझी तो उपयुक्त वातावरण में आत्मनिर्भर साधना की पृष्ठभूमि बनाकर महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हस्तगत कर सके। यही मार्ग अन्यान्यों के लिए भी है। वानप्रस्थ में घर छोड़कर वन में अर्थात् भिन्न स्तर के उपयुक्त वातावरण में रहने का पहला कदम उठाना पडता है। अन्यथा बाह्य क्रियाकाण्ड भर चलते रहते हैं। दृष्टिकोण, स्वभाव अभ्यास में कायाकल्प जैसा परिवर्तन सम्भव ही नहीं हो पाता।

प्रज्ञापुत्रों के लिए निर्धारित एक मास की कल्प-साधना में अन्तराल के परिशोधन, परिष्कार की यथासम्भव अधिकाधिक सुविधा उत्पन्न की गई है। बड़ी बात यह है कि उसमें न केवल आत्मबल के सवर्धन की वरन् मनोबल और शरीर-शोधन के त्रिविध प्रयोजनों का भी समुचित समावेश किया गया है। आहार-कल्प और जड़ीबूटी कल्प से शरीर-शोधन का प्रयोजन बहुत कुछ सध जाता है। आसन, प्राणायाम, पुरश्चरण, तप-व्रत, तितीक्षा प्रायश्चित की साधनाएँ मनःक्षेत्र की अवांछनीयता को हटाने की भूमिका निभाती हैं। लययोग, प्राणयोग से परब्रह्म के साथ एकात्म सधता है और द्वैत से अद्वैत की ओर अन्तरात्मा की उन्मुखता, गतिशीलता में तीव्रता उत्पन्न होती है। इस त्रिविध त्रिवेणी संगम में तीर्थराज के अवगाहन का पुण्यफल मिलता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञापुञ्ज (विशिष्टों) को मनस्वी मल्लाह की भूमिका निभानी है। उन्हें न केवल प्रवाहमान प्रचण्डधारा के लिए खिलवाड़ करने, आँखमिचौनी खेलने का मजा लूटना है वरन् अपनी नाव में बिठाकर असंख्यों को पार भी करना है। अग्रदूतों को न केवल स्वयं जीवनमुक्त होना है वरन् दूसरों की भी भव-बन्धनों की बंधी जंजीरें छुड़ानी हैं। ऐसी दशा में उनका ओजस्, तेजस्, वर्चस् असाधारण स्तर का होना चाहिए। उसी का अर्जन करने के लिए यह एक महीने का कल्प-साधना है।

कल्प साधना का उद्देश्य और स्वरूप

यह एक सुविदित तथ्य है कि संचित पापकर्मों का प्रतिफल रोग, शोक, विक्षोभ, हानि एवं विपत्ति आदि के रूप में उपस्थित होता है। विपत्तियों को भुगतने का मूल आधार मनुष्य का भ्रष्ट चिन्तन एवं दुष्ट आचरण ही होता है। पापकर्म के बीज सर्वप्रथम दुष्प्रवृत्ति बनकर अंकुर की तरह उगते हैं। उसके बाद वे पेड़-पौधे बनकर फलने-फूलने योग्य जब तक नहीं होते तब तक उनका स्वरूप पतन-पराभव के रूप में दृष्टिगोचर होने वाले दुराचरण जैसा होता है। कालान्तर में जब वे परिपुष्ट हो जाते हैं तो आधि-व्याधि, विपत्ति, हानि, भर्त्सना के रूप में कष्ट देने लगते हैं। दुष्कर्मों के अवश्यसंभावी प्रतिफल से बचने का दैवी प्रकोप एवं सामाजिक प्रताड़ना के अतिरिक्त दूसरा मार्ग प्रायश्चित का है। इसका आश्रय लेकर मनुष्य आत्मशोधन और आत्म-परिष्कार का दुहरा प्रयोजन एक साथ पूरा कर सकता है।

प्रगति पथ पर चलने के लिए व्यक्ति को जो तप साधना करनी पड़ती है, उसके स्वरूप दो ही हैं। पहला है—आंतरिक अवरोधों से पीछा छुड़ाया जाय और दूसरा—आत्मबल पर आश्रित अनुकूलताओं को अर्जित किया जाय। यही है आत्मिक पुरुषार्थ का एकमात्र और वास्तविक स्वरूप। यात्री को एक पैर उठाना और दूसरा बढ़ाना पड़ता है। उठाने का तात्पर्य है—कुसंस्कारों को छोड़ा जाय, उसके लिए कठोर तप किया जाय। बढ़ाने का अर्थ है—सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव एव आचरण में घुला दिया जाय। कच्ची धातुयें अपनी सामान्य स्थिति में प्रयुक्त नहीं होतीं। उन्हें बहुमूल्य उपकरण के रूप में परिवर्तित करने के लिए प्रचण्ड ताप की भट्टी द्वारा गलाई-ढलाई करनी पड़ती है। गलाई को 'तप' और ढलाई को 'योग' कहते हैं। कल्प-साधना में तप और योग दोनों का समावेश है। इसकी समूची प्रक्रिया में पग-पग पर परिशोधन और परिष्कार के उभपक्षीय तत्व पूरी तरह गुँथे हुए हैं।

उपवास एवं सुसंस्कारी अन्न से काय शोधन होता है और मनःक्षेत्र में प्रज्ञा का आलोक बढता है। शरीर-कल्प के यही दो आधार हैं। आत्मिक कायाकल्प के लिए भी शरीर का तप तितिक्षा के आधार पर ही परिशोधन होता है। यह प्राथमिक अनिवार्यता मानी जानी चाहिए। उपवास पर आधारित आहार-चिकित्सा को कायिक निरोगता का मूल आधार माना जा सकता है। पेट का भार हल्का रहने और सहकारी न्यूनतम आहार से गुण, कर्म, स्वभाव पर उपयोगी प्रभाव पडने का प्रत्यक्ष लाभ स्वास्थ्य के सुधार के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार इन्द्रिय-सयम, अर्थ-सयम और विचार-सयम का अभ्यास करने से अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। अन्धकार हटना और प्रकाश बढ़ना एक ही बात है। कुसंस्कार घटेंगे तो आंतरिक प्रखरता स्वयमेव बढेगी। इसके अतिरिक्त उन दिनों आंतरिक परिवर्तन हेतु जो भावनात्मक प्रयत्न होते हैं और योगाभ्यास सम्मत अतिरिक्त प्रयास भी चलते हैं, वह अभ्युदय-उत्कर्ष की सशक्त प्रक्रिया है।

अन्न को वस्तुतः ब्रह्म एवं प्राण की उपमा दी गयी है। उपनिषद्कार ने अन्न ब्रह्म की उपासना करने के लिए साधकों को सहमत करने पर अनेकानेक तर्क, तथ्य एवं प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। आमतौर से आहार द्वारा क्षुधानिवृत्ति एव स्वाद तृप्ति भर की बात सोची जाती है। वास्तव में यह मान्यता सर्वथा अधूरी है। भोजन प्रकारान्तर से जीवन है। उसकी आराधना ठीक प्रकार की जा सके तो शरीर को आरोग्य, मस्तिष्क को ज्ञान-विज्ञान, अन्तःकरण को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवत्व के अनुदान, व्यक्तित्व को प्रतिभा तथा भविष्य को उज्ज्वल सम्भावनाओं से जाज्वल्यमान बनाया जा सकता है।

मन को सात्विक बनाना आत्मोत्कर्ष की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। इसीलिए कहा गया है "जैसा खाये अन्न वैसा बने मन।" यहाँ अन्न से अर्थ है साधक का आहार। आहार शुद्धि साधना का प्रथम चरण है। तमोगुणी, उत्तेजक, अनीति उपार्जित, कुसंस्कारियों द्वारा पकाया-परोसा भोजन न केवल मनोविकार ही उत्पन्न करता है, वरन् रक्त को अशुद्ध व पाचन को विकृत करके स्वास्थ्य संकट भी उत्पन्न करता है। आत्मिक प्रगति में, साधना की सफलता में तो कुधान्य का, अभक्ष्य का प्रभाव विषवत् पड़ता है। मन की चंचलता इतनी अधिक हो जाती है कि सामान्य कार्यों में भी एकाग्र हो पाना सम्भव नहीं हो पाता। फिर साधना में अभीष्ट मनोयोग तो आहार शुद्धि बिना कैसे प्राप्त हो ?

पिप्पलाद ऋषि पीपल वृक्ष के फल खाकर निर्वाह करते थे। कणाद ऋषि जंगली धान्य समेटकर उससे क्षुधा शांत करते थे। भीष्म पितामह शरशैया पर पड़े हुए धर्मोपदेश दे रहे थे, तब द्रोपदी ने पूछा—"देव, जब मुझे भरी सभा में नग्न किया जा रहा था, तब आपने कौरवों को यह उपदेश क्यों नहीं दिये ?" वे बोले—"उन दिनों मेरे शरीर में कुधान्य से उत्पन्न रक्त बह रहा था, अस्तु बुद्धि भी वैसी ही थी। अब घावों के रास्ते वह रक्त निकल गया और मेरी स्थिति सही सोचने एवं सही परामर्श देने जैसी बन गई है।" रुक्मिणी का जंगली बेर खाकर तथा पार्वती का सूखे पत्तों पर रहकर तप करना प्रसिद्ध है। उच्चस्तरीय साधनाओं में व्रत उपवास का अविच्छिन्न स्थान है। साधना में मन का सात्विक होना आवश्यक है। मन को शान्त, स्थिर एवं सात्विक बनाने के लिए उपवास पर अन्न की सात्विकता पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

कल्प-साधना वस्तुतः उपवास प्रधान है। इसका एक स्वरूप चान्द्रायण साधना के रूप में देखने को मिलता है। चान्द्रायण का सर्वविदित नियम-अनुशासन पूर्णिमा से अमावस्या तक भोजन घटाने और तदुपरांत क्रमशः बढ़ाते हुए अगली पूर्णिमा को नियत मात्रा तक ले पहुँचना है। इसमें मन का कठोर संयम जिस प्रकार सम्भव हो पाता है, वह अन्य साधनाओं में नहीं है। यह क्रम पुरातन काल के साधकों के मनोबल और उनकी शरीरगत सामर्थ्य को देखकर ठीक भी था, पर अब बदली परिस्थितियों में जहाँ मनुष्य की जीवनी शक्ति उतनी नहीं रही, पर्यावरण के परिवर्तन उसे जल्दी-जल्दी प्रभावित भी करते हैं, उतनी कठोर साधना सम्भव नहीं। फिर भी उपवास का महत्व जहाँ का तहाँ रहेगा। आरोग्य रक्षा की दृष्टि से भी अन्य श्रमिक-मजदूरों की तरह पेट को सप्ताह में एक बार छुट्टी मिलनी ही चाहिए। ऐसा न रहने पर उसकी कार्यक्षमता घटती है तथा शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होते चले जाते हैं। पूर्ण उपवास न बन पड़े तो कम से कम यह सम्भव है कि कल्प की अवधि में आधे या कम आहार पर निर्वाह कर लिया जाय। शाकाहार, फलाहार, अन्नाहार में से किसी एक का चयन कर उसे ही नियत मात्रा में नित्य लेते रहने का भी चान्द्रायण साधना में प्रावधान है। इसे एक प्रकार का मृदु चान्द्रायण कहा जा सकता है। भाँति-भाँति के सम्मिश्रणों से बचकर साधक यदि एक ही अन्न या शाक पर कल्प कर ले तो आहार शुद्धि, आन्तरिक कायाकल्प, आरोग्य प्राप्ति के सभी प्रयोजन पूरे होते हैं।

आहार इन दिनों जो लिया जाय, वह सामान्य से आधा या और भी कम हो। सात्विक हो, सुपाच्य हो। इसके लिए भाप के माध्यम से पकाये गये अन्न को वैज्ञानिक-शास्त्रीय दोनों ही मतों से श्रेष्ठ कहा जा सकता है। चिकनाई-मसाले और शक्कर, नमक आदि का आदी मन तथा शरीर उस ढर्रे को सहज ही तोड़ नहीं पाता। पर धीरे-धीरे कल्पकाल के शोधित-स्वादहीन आहार में ही ऐसी रुचि विकसित होने लगती है, मानो साधक प्रत्यक्ष औषधि ही अपनी जीवनी शक्ति बढ़ाने के लिए ग्रहण कर रहे है। सन्तुलित आहार के नाम पर विविधताएँ जुटाना व्यर्थ है। हर उपयुक्त खाद्य पदार्थ में वे सभी तत्व पाये जाते हैं, जिनकी शरीर को आवश्यकता है। निर्धारित कल्प-साधना में ही हविष्यान्न, अमृताशन, गेहूँ, ज्वार, बाजरा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मक्का, चावल आदि ऋषिधान्यों को अकेले अथवा शाक-पत्तियों के साथ भाप के माध्यम से उबाल द्वारा पकाकर दिन में दो बार नियत से आधी मात्रा में ग्रहण करने का प्रावधान है। इससे कम में वह मनोबल नहीं जुट पाता जो निष्कासन प्रक्रिया तथा नवीन निर्धारण-जीवन दृष्टि के विकास हेतु जरूरी है। आज की परिस्थितियों के अनुरूप यह साधना हर दृष्टि से साधक को आमूलचूल बदल देने वाली प्रक्रिया के लिए उसे समर्थ, शक्ति-सम्पन्न बना देने वाली मानी जानी चाहिए।

आहार साधना के अतिरिक्त तप-तितीक्षा में प्रायश्चित की चर्चा की जाती है। अपना अन्तःकरण धोये बिना विगत को भुलाये बिना साधना मात्र बाह्योपचार भर रह जाती है। 'कल्प साधना' का अर्थ ही यह है कि अन्दर से बाहर तक साधक पूरी तरह बदल जाये। पुरानी केंचुली निकाल फैंकें, नूतन चोला पहने। प्रायश्चित इसीलिए किया जाता है और उसकी महत्ता को शास्त्रों ने इसी कारण अत्यधिक माना है, उस पर पूरा जोर दिया है।

प्रायश्चित में तीन पक्ष हैं—एक-व्रत उपवास जैसी तितीक्षा, दूसरा—संचित कुसंस्कारों को उखाड़ने और उस स्थान पर उच्चस्तरीय शालीनता को स्थापित करने का अन्तर्मुखी पुरुषार्थ, तीसरा—खोदी हुई खाई को पाटने वाली क्षतिपूर्ति के लिए पुण्य पुरुषार्थ का उदार साहस। इन तीनों के संयुक्त समावेश से ही प्रायश्चित की पूर्ण प्रक्रिया सधती है। मात्र आहार करने भर से तो कल्प प्रक्रिया का एक छोटा भाग ही सधता है।

इस साधना को एक प्रकार के आयुर्वेदीय कायाकल्प उपचार के समान समूचे व्यक्तित्व का संशोधन-सम्वर्धन करने वाली प्रक्रिया कह सकते हैं। इतने पर भी कल्प के भौतिक सिद्धान्त दोनों में ही एक जैसे हैं। एकांत सेवन, आहार, संयम तथा निर्धारित चिन्तन यही आधार कल्प साधना के भी हैं। रोगी अपने रोग का स्वरूप ही नहीं, इतिहास भी चिकित्सक को बताता है। उसी निदान के आधार पर उपचार की व्यवस्था बनती है। कल्प-प्रक्रिया में मार्गदर्शक को अपने संचित पापकर्मों का विस्तृत वर्णन स्वभावगत दोष-दुर्गुणों का परिचय एवं भौतिक, आत्मिक अवरोधों का विवरण प्रस्तुत करना पड़ता है। इन दोनों पक्षों पर गम्भीर विचार करने के उपरान्त ही हर व्यक्ति को कुछ विशेष परामर्श दिये जाते हैं, उपाय-विचार बताये जाते हैं। कल्प-साधना में सामान्य उपचार तो एक जैसे हैं किन्तु साथ ही हर साधक की स्थिति के अनुरूप उसे कुछ अतिरिक्त उपाय साधन भी बताये जाते हैं। इन निर्धारणों को कौतुक-कौतूहल एवं बेगार जैसी चिन्ह पूजन नहीं बनाया जाता, लकीर पीटने भर की आधी-अधूरी, लँगड़ी-लूली प्रक्रिया अपनाने से इतना बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं होता। उसमें गम्भीर होना पड़ता है और निर्धारित अनुशासन का कठोरतापूर्वक परिपालन करना पड़ता है।

यह कल्प-साधना घर के व्यस्त-अभ्यस्त वातावरण में नहीं हो सकती। उपवासपूर्वक अनुष्ठान तो आये दिन होते रहते हैं। अन्तः के कायाकल्प की साधना उससे आगे की चीज है, इसके लिए तद्नुरूप तीर्थ जैसा पवित्र वातावरण, उपयुक्त साधन एवं ऋषि कल्प मार्गदर्शन चाहिए। यह आवश्यकता शान्तिकुन्ज गायत्री नगर में अच्छी तरह सम्पन्न हो सकती है वैसी सुविधा कहीं अन्यत्र मिल सकना कठिन है। पूर्ण कल्प साधना एक महीने की होती है और लघु 'शिशु' साधना दस दिन की। दोनों में समय का ही अन्तर है। विधान, अनुशासन दोनों में एक जैसे हैं। सबसे महत्व की बात यह है कि शरीरगत अनुबन्धों की निर्धारित दिनचर्या अपनाये रहने के अतिरिक्त मानसिक स्थिति भी बनानी पड़ती है, मानो किसी अन्य लोक में उन दिनों रहा जा रहा है। इन दिनों सांसारिक चिन्तन एक प्रकार से विस्मृत ही कर देना चाहिए और मात्र अध्यात्म लोक की आवश्यकताओं तथा अन्तःक्षेत्र की समस्याओं का हल करने में ही चित्त को पूरी तरह केन्द्रित रखना चाहिए। भौतिक जीवन की समस्याएँ इतनी विकट होती हैं कि उन्हें सुलझाने वाले साधन जुटाने में प्रायः समूची जीवन अवधि खप जाती है। फिर आत्मिक जीवन तो और भी व्यापक एवं महत्वपूर्ण है। उसकी गुत्थियाँ सुलझाने और प्रगति के सरंजाम जुटाने हेतु नये सिरे से नये दृष्टिकोण तथा नया साहस जुटाना होता है। इतने बड़े काम के लिए निर्धारित सांधना का स्वरूप यही है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसमें से भौतिक चिन्तन एवं प्रयोजनों में भी प्रयास के लिए तनिक भी कोशिश नहीं की जाय तथा मनोयोग को निर्धारित प्रयोजनों में जुटाये रखा जाय। मन को अन्य किसी कार्य में अस्त-व्यस्त नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार चान्द्रायण साधना को 'व्रत', 'तप' एवं 'कल्प' के नाम से भी जाना जाता है। 'व्रत' अर्थात् संयम, अनुशासन, निर्धारण एवं परिपालन। 'तप' अर्थात् कुसंस्कारों से संघर्ष और शालीनता के अवधारण का अभ्यास-पुरुषार्थ। 'कल्प' अर्थात् पिछली हेय स्थिति को उलटकर उस स्थान पर उत्कृष्टता का प्रतिष्ठापन। यह तीनों प्रयास परस्पर मिलते हैं तो ज्ञान और कर्म की गंगा-यमुना मिलने से एक नई धारा भक्ति भावना की दिव्य जीवन की सरस्वती के रूप में उद्भूत होती है। इस समन्वय से त्रिवेणी संगम बनता है। उसका अवगाहन करने वाले इस धरती पर स्वर्ग का आनन्द लेते हैं, जीवनमुक्त बनते हैं और मनुष्य रूप में देवता कहलाते हैं। इसी परम लक्ष्य की पूर्ति करना आन्तरिक काया कल्प-साधना का आधारभूत उद्देश्य है।

संक्षेप में कल्प-साधना के तीन पक्ष हैं—संयम-साधना, प्रज्ञा-उपासना, भविष्य निर्धारण की आराधना। संयम साधना में उपवास प्रमुख है। इस अवधि में आहार सामान्य की तुलना में आधा ही लिया जाता है। जो खाया जाए वह पूर्ण सात्विक एवं सुसस्कारी हो, इसका ध्यान रखा जाता है। संयम को ही तप कहते हैं। सामान्य जीवन में यह तप चार प्रकार का अपनाया जाता है। (१) इन्द्रिय संयम के लिए ब्रह्मचर्य, मौन, अस्वाद आदि की तितिक्षा, (२) अर्ध संयम के लिए मितव्ययता। परिश्रमशीलता अपनाकर सादा जीवन उच्च विचार का अभ्यास, औसत भारतीय स्तर के निर्वाह का अभ्यास, (३) समय संयम—एक घड़ी भी आलस्य प्रमाद में बर्बाद न होने देना। दिनचर्या बनाकर उसके परिपालन में तत्परता बरतना (४) विचार-चिन्तन को अस्त-व्यस्त उड़ानें भरने से रोकना, सौंपे हुए काम में ही मनोयोग नियोजित रखना। चान्द्रायण में यह चारों ही संयम साधनाएँ तपश्चर्या के रूप में निर्धारित करनी होती हैं। तपस्वी सच्चे अर्थों में सामर्थ्यवान् बनता है। उसकी ऊर्जा से प्रखरता, परिपक्वता बढ़ती है। तपस्वी ही शरीरगत ओजस, तेजस् एवं अन्तःकरण के वर्चस् से सुसम्पन्न बनते हैं। इसी आत्मबल के सहारे ऋद्धि-सिद्धियों का द्वार खुलता है। प्रज्ञा उपवास में गायत्री पुरश्चरण मुख्य हैं। ढाई घण्टा नित्य का समय इसके लिए नियत है। इसी बीच निर्धारित जप संख्या पूरी की जाए। साथ ही प्रभातकालीन सूर्य किरणों के तीनों शरीर में प्रवेश करने का ध्यान किया जाए। अनुभव किया जाए कि गायत्री के प्राण सविता देवता का दिव्य आलोक जीवन सत्ता के कण-कण में प्रवेश करके तीन अनुदान प्रदान करता है—स्थूल शरीर में सद्कर्म, सूक्ष्म शरीर में सद्ज्ञान, कारण शरीर में सद्भाव। इन्हीं तीनों को क्रमशः निष्ठा, प्रज्ञा और श्रद्धा भी कहते हैं। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के अन्तर्गत इन्हीं दिव्य अनुदानों का विवेचन किया जाता है और तृप्ति, तुष्टि, शांति की त्रिविध विभूतियों के सहारे देवोपम जीवन जी सकने का लाभ समझाया जाता है। जिनको यह दिव्य सम्पदा जितनी मात्रा में उपलब्ध होती है, वह उसी अनुपात में आत्म सन्तोष, जन सहयोग एवं दैवी अनुग्रह का प्रतिफल हाथों-हाथ प्राप्त करता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा ही गायत्री है। प्रज्ञा-अर्थात् दूरदर्शी विवेकशीलता, यही है मनुष्य का आराध्य। इस दिशा में होने वाली प्रगति से इसी जीवन में स्वर्ग और मुक्ति के रसास्वादन का लाभ मिलता है।

भविष्य निर्धारण की आराधना के निमित्त इस अवधि में स्वाध्याय, सत्संग और अन्तर्मुखी चिन्तन मनन के चार प्रयोजनों में निरत रहना पडता है। नित्यकर्म उपासना के अतिरिक्त जो भी समय खाली मिले, उसमें उन्हीं चार प्रयोजनों में मन को लगाये रहना पड़ता है। इन चारों का लक्ष्य एक ही है—परिष्कार एवं उज्जवल भविष्य का योजनाबद्ध निर्धारण। इसके लिए आत्मनिरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म निर्माण एवं आत्म विकास के चार प्रसंगों पर गम्भीरतापूर्वक समुद्र-मंथन जैसा आत्मचिन्तन करते रहना होता है ताकि ईश्वर प्रदत्त अलभ्य उपहार-मनुष्य जन्म का सही उपयोग सम्भव हो सके। इसके लिए शरीर निर्वाह एवं परिवार पोषण की तरह ही परमार्थ प्रयोजनों को महत्व देना होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मकल्याण और लोकमंगल की समन्वित जीवनचर्या का निर्धारण एवं सतत् अभ्यास ही आराधना है।

परमात्मा को आदर्शों का समुच्चय मानकर उसके साथ तादात्म्य होना उपासना है। जीवन को अधिकाधिक पवित्र एवं प्रखर बनाने वाली सुसंस्कारिता का अवधारण साधना है। लोक मंगल को परमार्थ और उनके सहारे अपनी सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन ही आराधना है। उपासना परमात्मा की, साधना अन्तरात्मा की ओर आराधना विश्वात्मा की की जाती है। कल्पकाल में बहिर्मुखी माया प्रपंच से अवकाश प्राप्त किया जाता है और उस अवधि में अन्तर्मुखी रहकर अन्तर्जगत का पर्यवेक्षण किया जाता है। इस दिशा में परिवर्तन के लिए नियोजित आत्मसाधना जितनी भावपूर्ण एवं गम्भीर होगी, उतना ही इस कल्प साधना का प्रत्यक्ष वरदान उपलब्ध होगा।

आध्यात्मिक कायाकल्प की साधना का तत्वदर्शन

आयुर्वेदीय शरीर कल्प की तरह आध्यात्मिक भाव-कल्प को समानान्तर समझा जाना चाहिए। एक में काया को दुर्बलता, रुग्णता, जीर्णता आदि अनपेक्षित परिस्थितियों से मुक्त किया जाता है, दूसरे में आस्था, आकांक्षा एवं अभ्यास पर चढ़ी हुई कुसंस्कारिता से त्राण पाने का प्रयत्न किया जाता है।

शरीर की प्रकृति संरचना ऐसी अद्भुत है कि यदि उस पर असंयमजन्य अस्त-व्यस्तता न लादी जाय, तो वह शतायु की न्यूनतम परिधि को पार करके सैकड़ों वर्षों जी सकता है। मरण तो प्रकृति धर्म है पर जीर्ण-शीर्ण होकर जीना-यह मनुष्य का अपना उपार्जन है। आरम्भ से ही सुपथ पर चला जाय तब तो कहना ही क्या, अन्यथा मध्यकाल में रुख बदल दिया जाय तो भी ऐसा सुधार हो सकता है, जिसे अद्भुत अप्रत्याशित कहा जा सके।

चेतना तन्त्र की संरचना भी ऐसी ही है। ईश्वर का अंग होने के कारण उसमें सभी उच्चस्तरीय विभूतियाँ भरी पड़ी हैं। पिण्ड ब्रह्माण्ड का छोटा रूप है। परमात्मा की ही छोटी प्रतिकृति आत्मा है। शरीर में वे सभी तत्व विद्यमान हैं, जो प्रकृति के अन्तराल में बड़े व्यापक रूप में पाये जाते हैं।

काय साधना से न केवल आरोग्य लाभ मिलता है, वरन् तपश्चर्या की ऊर्जा से तपा, पकाकर ऐसा भी बहुत कुछ पाया जा सकता है, जो प्रकृति की रहस्यमय परतों में खोजा-पाया जा सकता है। सिद्ध पुरुषों का प्रकृति पर आधिपत्य होता है। इसका आधारभूत कारण यह है कि काया में उन्हीं रहस्यों की बीज रूप में उपस्थिति को कृषि कार्य के साधनों से विकसित कर लिया जाता है। फलतः काया समूची माया का प्रतिनिधित्व करने लगती है। काया और प्रकृति के बीच आदान-प्रदान होने लगता है। जिस प्रकार पृथ्वी के ध्रुव केन्द्र व्यापक ब्रह्माण्ड से अपनी आवश्यक सामग्री खीचते, उपयोग करते रहते हैं, उसी प्रकार सिद्ध पुरुषों की काया न केवल ब्रह्मामण्डव्यापी माया से, प्रकृति से आदान-प्रदान करती है वरन् चेतनात्मक विशेषता के कारण कई बार उस पर आधिपत्य भी करने लगती है। तपस्वियों की आलौकिक चमत्कारी सिद्धियों का यही रहस्य है।

आत्मा के नाम से पुकारी जाने वाली ब्रह्म ऊर्जा की छोटी चिनगारी का मौलिक स्वरूप भी प्रायः वैसा ही है। पतित, पराजित तो उसे कषाय-कल्मषों का आवरण करता है। दर्पण के सामने जो वस्तु आती है उसी का प्रतिबिम्ब दीखने लगता है। मूढ़ता और दुष्टता सामने हो तो आत्मा का स्वरूप भी वैसा ही दीखने लगता है। यदि पर्दा हटा दिया जाय तो दृश्य बदलते देर न लगे। नर और नारायण की एकता के दृश्यमान होने में एक ही व्यवधान है—संचित कुसंस्कारिता। चिन्तन पर चढ़ी हुई और व्यवहार-अभ्यास में भरी हुई निकृष्टता को किसी प्रकार निरस्त किया जा सके तो आत्मा का मौलिक स्वरूप प्रकट होने में देर न लगे।

पुरुष-पुरुषोत्तम की, जीव-ब्रह्म की, नर-नारायण की एकता का प्रतिपादन काल्पनिक नहीं है। योगीजनों का प्रमाण-उदाहरण सामने है। उन्हें ईश्वर नहीं तो ईश्वरवत्, ईश्वर का प्रतिनिधि तो माना ही जाता है। इस स्थिति को प्राप्त कर सकना किसी के लिए भी सम्भव है। मनुष्य शरीर में अनेक देवदूत समय-समय पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आये हैं और ऐसे काम कर गये हैं, जिससे उन्हें अवतार की भगवान की मान्यता मिली। इस स्थिति को उपलब्ध करने में किसी दैवी वरदान की आवश्यकता नहीं पड़ती। मनुष्य अपने ही पराक्रम-पुरुषार्थ से कषाय-कल्मषों के आच्छादन तोड़ता है और चक्रव्यूह बेधकर बाहर जा निकलता है। चक्र-वेधन जैसी प्रक्रियाएँ भव-बन्धनों की जकड़न तोड़ने और चक्रव्यूह से बाहर निकलने की भावनात्मक प्रक्रिया है। इसे पूरी करने वाले योगी उस जीवन्-मुक्त स्थिति को प्राप्त करते हैं, जिसका सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य, सायुज्य नाम से वर्णन-विवेचन किया जाता है।

योग किसी शारीरिक या पदार्थपरक हलचल का नाम नहीं है, जैसा कि आमतौर से आसन-प्राणायाम या नेति-धौति आदि का जाना बताया जाता है। ये शरीर और मन के व्यायाम भर हैं, जो प्रकारान्तर से आत्म-परिष्कार में सहायक सिद्ध होते हैं। तत्वतः योग अन्तराल पर चढ़े हुए अवांछनीय आच्छादनों को हटाने और उनके स्थान पर उच्चस्तरीय परिधान पहनाने की भावनात्मक प्रक्रिया है। उसमें अभ्यस्त आदतों के रूप में स्वभाव का अग बनी हुई कुसस्कारिता की जडें काटनी पड़ती हैं और उन झाड-झखाडों के स्थान पर उच्चस्तरीय आस्थाओं को अन्तराल में उगाना-परिपुष्ट करना होता है। अन्तस्क्षेत्र का यह समुद्र-मन्थन ही योग है। खारे निषिद्ध जलाशय को मथकर किसी समय विष वारुणी को हटाया और अमृत जैसी अनेक विभूतियों को हस्तगत किया था। योग व्यक्तिगत समुद्र मंथन है, जिसकी सारी प्रक्रिया अन्तःक्षेत्र में चलती है एव उखाडने और जमाने का काया-कल्प प्रस्तुत करता है। इसी को योग साधना कहते हैं। सक्षेप में आन्तरिक परिष्कार का नाम योग और क्रिया-प्रक्रिया में संयम-अनुशासन का समावेश तप कहा जाता है। इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिए कुछ न कुछ प्रत्यक्ष प्रयोग उपचार भी चलाने पडते हैं। कल्प-साधना की क्रिया-प्रक्रिया ऐसे ही निर्धारणों से भरी पडी है। इतने पर भी इस तथ्य को समझ ही लेना चाहिए कि उपचारों की आवश्यकता इसीलिए पड़ती है कि व्यक्तित्व के अदृश्य स्तर का, अन्तराल का कल्प-परिवर्तन सम्भव हो सके। दृष्टिकोण और कर्म प्रवाह में निकृष्टता यथावत् बनी रहे और क्रिया-प्रक्रिया के रूप में चित्र-विचित्र उपचार चलता रहे तो समझना चाहिए जड़ की उपेक्षा करके पत्ते धोने जैसी बिडम्बना चल रही है।

कल्प साधकों को उपवास, जप स्वाध्याय, सत्संग जैसे दैनिक कृत्यों की पूर्ति तो शास्त्र परम्परा के अनुसार करनी ही चाहिए, पर साथ ही यह नहीं भूलना चाहिए कि यह अवधि तत्वतः अन्तर्जगत की गुत्थियों को सुलझाने के लिए किये जाने वाले मन्थन के लिए ही है। उसी को चिन्तन और मनन कहते हैं। इस क्रिया रहित प्रक्रिया को चान्द्रायण कल्प का मेरुदण्ड आधार केन्द्र कहना चाहिए।

मन्थन में रई घुमाई जाती है। उसकी रस्सी एक बार आगे चलती है, दूसरी बार पीछे लौटती है। पीछे लौटना चिन्तन है और आगे बढ़ना मनन है। चिन्तन को आत्म-समीक्षा और आत्म-सुधार कह सकते हैं। उसे तपश्चर्या की संयम अनुशासन अपनाने की पृष्ठभूमि कहना चाहिए। मनन को आत्म-निर्माण एवं आत्म-विकास की पृष्ठभूमि कहना चाहिए। क्षुद्रता को महानता के साथ जोड देना ही योग है। इस उद्देश्य के लिए कामना को भावना में, तुच्छ को महान में, सीमित को असीम में परिवर्तित करना होता है। यही योग है। उसमें आस्थाएँ, आकाक्षाएँ एव आदतें किस प्रकार उच्चस्तरीय बन सकें, इसका निर्धारण कार्यान्वयन करना होता है। प्रतिक्रम को व्यवहार में उतारने की योजनाबद्ध साहसिकता की पृष्ठभूमि मनन के माध्यम से बनती है।

साधनाकाल में आस्था एवं विचारणा के क्षेत्र में नव-निर्माण का प्रयत्न पूरी तत्परता के साथ चलना चाहिए। शरीर तप अनुशासन में संलग्न रहे। समयचर्या अनुबन्धों के शिकंजे में कसी रहे। किन्तु विचार-प्रवाह को भौतिक क्षेत्र में हटाकर अन्तर्मुखी रहने के लिए विवश करना चाहिए। इन दिनों भौतिक क्षेत्र की चिन्ता समस्याओं से उपराम ही लेना चाहिए। जो गम्भीरतापूर्वक कभी सोचा ही नहीं गया, उसे इन दिनों सोचना चाहिए। जिस क्षेत्र में कभी बुहारी तक नहीं लगी, कभी दृष्टि ही नहीं गई उसे इन दिनों साफ-सुथरा बनाने से लेकर सुन्दर सुसज्जित बनाने के लिए तत्परता एवं तन्मयता के साथ जुटे रहना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जप साधना के सीमित समय को छोड़कर प्रायः शेष सारा ही समय ऐसा है, जिसमें विचार मन्थन पर कोई रोकथाम नहीं है। शरीर कृत्यों के साथ-साथ चिन्तन-प्रवाह अपने क्षेत्र में बहता रह सकता है। हल जोतते समय किसान घर-गृहस्थी की बात सोच सकता है, तो कोई कारण नहीं कि उपवास, श्रमदान आदि करते-करते जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करते रहने पर कोई रोकथाम रहे। यों चिन्तन-मनन के लिए कल्प में एक घण्टा नित्य एक निर्धारित प्रक्रिया के रूप में निश्चित है। उस समय तो विचार-मन्थन उपरोक्त दो प्रयोजनों में निरत रहना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त भी कभी भी खाली रहने का काम करते रहने की स्थिति में भी चिन्तन-मनन का उपक्रम जारी रखा जा सकता है।

चिन्तन का विषय है—आत्मशोधन। मनन का उद्देश्य है—आत्म-परिष्कार। दौनों को एक-दूसरे का पूरक कहना चाहिए मल-त्याग के उपरान्त ही पेट खाली होता है तभी भूख लगती है और भोजन गले उतरता है। धुलाई के उपरान्त रंगाई होती है। नींव खोदने पर दीवार चुनी जाती है। साँस छोड़ने पर नई साँस मिलती है। प्रयाण से पिछला पैर उठता है और अगला बढ़ता है। आत्म-परिष्कार प्रथम और आत्म-विकास द्वितीय है। जो लोग चित्त और चरित्र से निकृष्टता हटाने की उपेक्षा करके सीधे ईश्वर तक पहुँचने के लिए योग सिद्धियों की बात करते हैं, उन्हें हवा में तैरने वाले कल्पना लोक के पखेरू ही कहा जा सकता है। ऐसे शेखचिल्ली अध्यात्म क्षेत्र में भी कम नहीं हैं, जो जिस-तिस क्रिया-प्रक्रिया को ही सब कुछ मानते हैं और श्रम प्रयास के आधार पर ही साधना की सफलता का स्वप्न देखते हैं।

शरीर कल्प में न केवल कुटी प्रवेश करने की, नियत आहार-विहार अपनाये रहने की आवश्यकता पड़ती है वरन् उन दिनों चिन्तन के लिए भी एक नियत क्षेत्र निर्धारित रहता है। उन दिनों उसी प्रकार सोचते रहना पड़ता है ताकि कायिक परिवर्तन में चिन्तन की भूमिका का भी समुचित योगदान रह सके। यदि वैसा न बन पड़े-कुटी प्रवेश की स्थिति में प्रयोग की असफलता, व्यर्थता का संदेह छाया रहे, जी घबराने लगे, उद्विग्नता छाई रहे तो समझना चाहिए कि कायाकल्प प्रयोग की सफलता संदिग्ध हो गई। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक कल्प-साधना के दिनों में मात्र भोजन में कटौती और जप पूरा करने की बेगार भुगती जाती रहे और आत्म-चिन्तन की उपेक्षा होती रहे तो समझना चाहिए कि शरीर-श्रम का जितना लाभ हो सकता है, उतना ही मिलेगा। मनोयोग के अभाव में उस उच्चस्तरीय प्रतिफल की आशा न की जा सकेगी, जो शास्त्रकारों, अनुभवी सिद्ध पुरुषों द्वारा बताई गई है।

समझा जाना चाहिए कि चिन्तन का विषय अनुशासन है—इसी को संयम कहा जाता है। इन्द्रिय-संयम, अर्थ-संयम, समय-संयम और विचार-संयम की चर्चा पिछले पृष्ठों पर हो चुकी है। अपने वर्तमान स्वभाव-अभ्यास में इन प्रसंगों में कहाँ क्या त्रुटि रहती है ? इसका निष्पक्ष निरीक्षक एवं काठोर परीक्षक की तरह जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए। आत्म-पक्षपात मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्गुण है। दूसरों के दोष ढूँढना, अपने छिपाना आम लोगों की आदत होती है। कड़ाई से आत्म-समीक्षा कर सकने की क्षमता आध्यात्मिक प्रगति का प्रथम चिन्ह है। पाप-कर्मों का प्रकटीकरण और प्रायश्चित का साहस इस बात का चिन्ह है कि इस क्षेत्र में प्रगति की आवश्यक शर्त को समझा और अपनाया जा रहा है। इसी शृंखला का अलग कदम स्वाध्याय सत्संग के द्वारा बाहरी प्रकाश-परामर्श प्राप्त करना है। उसी प्रक्रिया का सूक्ष्म रूप चिन्तन-मनन है। चिन्तन में गुण, कर्म, स्वभाव में घुसी हुई अवांछनीयताओं को बारीकी से ढूँढ निकालने का पर्यवेक्षण करना होता है। साथ ही उन्हें किस प्रकार निरस्त किया जाय—यह न केवल सोचना होता वरन् उसके लिए दिनचर्या का ऐसा ढाँचा बनाना होता है, जिसे अपनाकर उपरोक्त चारों संयमों का क्रमबद्ध अभ्यास चलता रहे। आदतों को बदलने के लिए उनकी प्रतिद्वन्द्वी आदतों को दैनिक व्यवहार में सम्मिलित करना होता है। असंयम की गुंजाइश जिन कारणों से, जिन कार्यक्रमों से बनती है उनको भी बदलना होता है। व्यवहार बदलने पर ही आदतें बदलने की बात बनती है, इसलिए

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होना यह चाहिए कि असंयमों का अभ्यास तोड़ने वाला चारों क्षेत्रों का एक निश्चित कार्यक्रम बनाया जाय और उसका परिपालन कठोरतापूर्वक आरम्भ कर दिया जाय। कल्प अवधि इन अभ्यासों के लिए प्रभात काल की तरह सौभाग्य बेला समझी जानी चाहिए। इन दिनों अन्तःप्रेरणा के आधार पर स्वेच्छा-निर्धारण से उपरोक्त चार संयमों के कठोर परिपालन की व्यवस्था बनाई जाय। साथ ही यह भी निश्चित किया जाय कि इन निर्धारणों को घर लौटने पर भी भविष्य में नियमित रूप से जारी रखा जायेगा। इस निश्चय पर उसी प्रकार आरूढ़-व्रतशील रहना चाहिए जिस प्रकार विवाह होने पर पति-पत्नी एक-दूसरे का आजीवन निर्वाह करते हैं।

अब मनन का प्रश्न आता है। उपलब्ध साधनों को आत्म-कल्याण के लिए उसी प्रकार प्रयुक्त करने का निश्चय करना चाहिए, जिस प्रकार कि शरीर-निर्वाह एवं परिवार-पोषण के लिए किया जाता है। दोनों के बीच विभाजन रेखा बननी चाहिए। जीवन व्यवसाय में आत्मा और शरीर की साझेदारी न्यायपूर्वक चलनी चाहिए। दोनों के योगदान से ही यह व्यवसाय चलता है तो लाभांश भी दोनों में विभाजित-वितरित होना चाहिए।

मनुष्य के पास कई प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सम्पदायें है। श्रम, समय, चिन्तन एवं साधन के रूप में ये चारों हर किसी के पास समान रूप से विद्यमान हैं। इन्हीं के बदले विभिन्न प्रकार की सम्पदायें, विभूतियाँ, सफलतायें अर्जित की जाती हैं। विशेष चातुर्य कौशल न सही, इन चारों की सामान्य मात्रा हर किसी को उपलब्ध है। होना यह चाहिए कि इनका विभाजन, उपयोग शरीर के लिए ही नहीं, आत्मा के लिए भी होने लगे। यह तभी सम्भव है, जब उपरोक्त क्षमताएँ मात्र शरीरचर्या में ही नियोजित न रहें, इनका लाभ शरीर सम्बन्धी ही न उठाते रहें वरन् होना यह भी चाहिए कि आत्म-कल्याण के लिए भी इनका उपयोग होता रहे। मनन का उद्देश्य यही है कि वह निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह यह फैसला करे कि जब जीवन-व्यवसाय में दोनों की पूँजी लगी हुई है—दोनों ही श्रम करते हैं तो लाभ एक पक्ष ही क्यों उठाता रहे। दूसरे को उसका उचित भाग क्यों न मिलने लगे ? जो बीत गया उसकी बात छोड़ी भी जा सकती है, पर भविष्य के लिए तो यह विभाजन रेखा बन ही जानी चाहिए कि किसे कितनी मात्रा में लाभांश उपलब्ध होता रहेगा ?

पूजा-उपचार, आत्म-जागरण भर की आवश्यकता पूरी करते हैं, उनसे आत्मिक प्रगति की समग्र आवश्यकता पूरी नहीं होती। जिस प्रकार शरीर को स्नान, दाँतों को मंजन, कपड़े को धोना, कमरे को बुहारना आवश्यक है, उसी प्रकार मनःक्षेत्र की स्वच्छता का दैनिक प्रयोजन पूरा होता है। जीवन-लक्ष्य की पूर्ति भजन से नहीं हो सकती। उसके लिए आत्मा की श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा जैसी उच्चस्तरीय आस्थाओं से अभ्यस्त कराना होता है। अभ्यास में उद्देश्य और श्रम का समन्वय होना चाहिए। शरीर को सत्प्रवृत्तियों में नियोजित करने के लिए लोकमंगल की साधना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। मनुष्य-जन्म की धरोहर इसीलिए मिली है कि ईश्वर के विश्व को सुविकसित बनाने में कुशल माली की भूमिका निभाई जाय। सृष्टा की विश्व-व्यवस्था में उत्कृष्टता बढ़ाने-बनाने में सहायक की तरह हाथ बँटाया जाय। लोक मानस भावनात्मक परिष्कार का कार्यक्रम बनाने और उनमें साधनों का महत्वपूर्ण भाग लगाते रहने से ही ईश्वर की इच्छा पूरी होती है, साथ-साथ आत्म-कल्याण का, आत्मोत्सर्ग का प्रयोजन भी पूरा होता है।

परमार्थ प्रयोजनों के दो लाभ हैं एक-दूसरे की सेवा साधना, विश्व व्यवस्था में योगदान। दूसरा उस आधार पर अपने स्वभाव-अभ्यास में उत्कृष्टता का अभिवर्धन। मात्र सोचते रहने से ही स्वभाव नहीं बनता। संस्कारों में ही शक्ति होती है और वे भावना तथा क्रियाशीलता के समन्वय से ही बनते-ढलते हैं। संस्कार ही आत्मा के साथ लिपटते-घुलते हैं और उसकी प्रगति-अवगति के निमित्त कारण बनते हैं। सुसंस्कारिता अर्जित करने के लिए सेवा-साधना में निरत होने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ, परिव्राजकों को आत्मलाभ इसीलिए मिलता है कि वे परमार्थ के माध्यम से सच्चे अर्थों में आत्म निर्माण का,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-विकास का क्रमबद्ध उद्देश्य पूरा करते हैं और उस राजमार्ग पर चलते हुए चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। प्रत्येक भगवद्भक्त को अपनी भक्ति भावना का प्रमाण-परिचय लोकमंगल की भावना में निरत रहकर देना पड़ता है। व्यस्त व्यक्ति भी यदि भावना सम्पन्न है तो उस दिशा में मुँह मोड़कर नहीं रह सकता।

मनन का एक ही विषय है कि जीवनचर्या में उस सेवा-साधना का समन्वय कितना, किस प्रकार किया जाय ? जिससे आत्म-कल्याण का जीवन लाभ मिल सके। आत्म-संतोष, आत्म-सम्मान एवं दैवी अनुग्रह अर्जित करने के लिए उपासना ही पर्याप्त नहीं, इसके लिए संयम साधना और लोकमंगल की आराधना का समन्वय करके अपना प्रयास-क्रम त्रिवेणी संगम जैसा बनाना चाहिए। कल्प अवधि में भावी जीवनचर्या का शुभारम्भ एवं प्राथमिक प्रयोग—अभ्यास करना पड़ता है। उसकी सार्थकता तो तभी बनती है जब यह परिवर्तन क्रम आजीवन बना रहे और ठीक तरह निभता रहे।

कार्यक्रम तो आवश्यकता एव स्थिति के अनुरूप बनते-बदलते रहते हैं। मूल प्रश्न यह है कि उसे सम्पन्न करने की सामर्थ्य-सामग्री कहाँ से प्राप्त हो ? कहना न होगा कि इसके लिए शरीर और परिवार की लिप्सा और तृष्णा के निमित्त जो समूची शक्ति खप जाती है, उसमें कटौती की जाय और आत्म-कल्याण के निमित्त जो कुछ भी नहीं बन पड़ता, उसकी पूर्ति उस कटौती के द्वारा की जाय। प्रकारान्तर से वही प्रक्रिया है, जिसे समयदान, अंशदान के रूप में प्रत्येक जागरूक आत्मा को सनतान परम्परा अपनाने के लिए प्रशिक्षित-उत्तेजित किया जाता है।

प्रज्ञा परिवार के प्राथमिक सदस्यों को न्यूनतम चिह्न पूजा की तरह एक घण्टा समय और दस पैसा नित्य ज्ञानयज्ञ के लिए लगाते रहने के लिए बाधित किया जाता है। जागृत आत्माओं, प्राणवान प्रज्ञापुत्रों को इससे कुछ अधिक करने का दबाव डाला जाता है। उन्हें महीने में एक दिन की आजीविका एवं अवकाश के क्षणों का महत्वपूर्ण अंश समयदान के रूप में देते रहने के लिए कहा जाता है। आत्मोत्कर्ष की दिशा में सच्ची आकांक्षा जगाने और यथार्थवादी तत्परता उभारने के लिए प्रत्यक्ष चिन्ह हैं। जिनमें ऐसा कुछ दृष्टिगोचर न हो, कृपण निष्ठुरता चट्टान की तरह अड़ी बैठी रहे, न श्रद्धा उमगें और न उदार सेवा साधना का कोई चिन्ह उभरे तो समझना चाहिए कि ऊसर भूमि में कृषि कर्म करने, उद्यान लगाने की निरर्थक बिडम्बना पल रही है।

कल्प-साधना में प्रायश्चित प्रसंग प्रमुख है। उसका छोटा अंश उपवास अनुष्ठान है, जो मात्र थोड़े से काय-कष्ट से अति सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है। बड़ा काम वह है जिसमें दुष्कर्मों द्वारा समाज को पहुँचाई गई क्षति की भरपाई करनी पड़ती है अर्थात् सम्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए श्रमदान, अंशदान के रूप में उतनी उदारता का परिचय देना पड़ता है, जिससे खोदी गई खाई का पट सकना सम्भव हो सके। मनन प्रक्रिया में दोनों ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह निर्धारण किया जाना चाहिए कि उपलब्ध समय एवं साधनों में से कितना अंश आरम्भ में एक बारगी लगाया जाना है और कितना भविष्य में किस अनुपात में नियोजित होता रहेगा ?

जीवन-व्यवसाय के लाभाश का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए कि शरीर तथा उसका सम्पर्क परिकर ही सब कुछ न निगलता, हड़पता रहे, वरन् उपलब्धियों का एक महत्वपूर्ण अंश परमार्थ प्रयोजनों के लिए नियमित रूप से लगाने लगे। अभ्यस्त कृपणता, सम्बन्धियों का व्यामोह तथा प्रचलनों का दबाव, तथाकथित मित्रों का उपहास असहयोग बोधक हो सकता है। इनके चक्रव्यूह से किस प्रकार निपटा जायेगा, इसका साहसिक निर्धारण भी मनन प्रक्रिया के साथ-साथ ही करना होता है।

आन्तरिक परिष्कार का स्वर्ण-सुयोग

उपवासपूर्वक सवालक्ष गायत्री अनुष्ठान प्रायः लोग अपने घरों पर भी करते रहते हैं। उपवास में आमतौर से आधे पेट से अधिक भोजन नहीं किया जाता। पेटू लोगों की बात अलग है, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपवास जैसी तपश्चर्या को भी मात्र आहार परिवर्तन भर समझते हैं और पेट पर अन्य दिनों की अपेक्षा भी अधिक बोझ लादते हैं। कल्प-साधना में आधे पेट भोजन का प्रबन्ध तो हो ही जाता है। ऐसी दशा में चान्द्रायण जैसा स्वरूप नहीं रह जाता जैसाकि शास्त्रकारों ने उसका असाधारण माहात्म्य वर्णन किया है। आहार-चिकित्सा की बात हो तो वह भी अन्य प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों की तरह लोग अपने-अपने काम-धन्धे के साथ-साथ करते रह सकते हैं।

जिस विशेषता के कारण देखने में साधारण किन्तु परिणाम में महान् इस तपश्चर्या का माहात्म्य बताया गया है वह है—'आत्मिक कायाकल्प', जिसके निमित्त इस सन्दर्भ में अनेकानेक नियम, संयम एवं विधि-विधानों का निर्धारण हुआ है। उपवास और जप तो उस प्रक्रिया के दृश्यमान शारीरिक क्रिया-प्रक्रिया के रूप में सम्पन्न होने वाले उपचार भर हैं।

वस्तुतः इस साधना को आध्यात्म कल्प उपचार समझा जाना चाहिए और उसके साथ प्रयोजनों का महत्व समझा जाना चाहिए, जो उसके साथ चिन्तन और भावना के रूप में अविच्छिन्न रूप में जुड़े हुए हैं। यदि उन पर ध्यान न दिया जाय और केवल शरीरचर्या चलती रहे तो समझना चाहिए कि शास्त्र निर्धारण का एक बहुत छोटा अंश ही पूरा हुआ।

समझा जाना चाहिए कि अध्यात्म तत्वज्ञान भावना एवं विचारणा के क्षेत्र पर प्रयुक्त एवं प्रभावी होता है। वहाँ प्रखरता उत्पन्न हो तो शरीर के क्रिया-कलाप अनायास ही उत्कृष्टता युक्त बन जाते हैं। भक्तियोग में भावना क्षेत्र को श्रद्धा तत्व से परिपूर्ण बनाया जाता है। योग प्रज्ञा की आराधना है। इन दोनों को उच्चस्तरीय भाव संवेदना एवं उदात्त दृष्टिकोण का उन्नयन अभ्युदय कहा जा सकता है। भक्तियोग, ज्ञानयोग के द्वारा अन्तःकरण एवं विचार-संस्थान को अधिक परिष्कृत बनाया जा सके तो कर्मयोग अनायास ही निभने लगता है। शरीर तो वाहन उपकरण भर है। उसे अन्तःप्रेरणाओं के निर्देशन में काम करना होता है। वह स्वामिभक्त सेवक की तरह सभी भले-बुरे निर्देशनों का पालन करने में सर्वथा तत्पर रहता है।

कहने को तो कर्मयोग स्थूल शरीर का, ज्ञानयोग सूक्ष्म शरीर का, भक्तियोग कारण शरीर का विषय कहा जाता है, किन्तु थोड़ा गहराई में उतरने पर प्रतीत होता है कि विभाजन की दृष्टि से बनी हुई इस त्रिविध क्रिया-प्रक्रिया का उद्गम स्रोत एक ही है—आस्था का परिष्कार। मशीन के दाँतों की तरह एक ही प्रेरणा से दूसरा घूमता है। दूसरे के दबाब से तीसरे में हलचल बन पड़ती है। आस्थाएँ ऊँची हों तो विचार-संस्थान को उनका अनुगमन करना होगा, विचारों का निर्देशन शरीर मानता है। उसे अपने कर्तव्यपालन से कभी विमुख नहीं देखा जाता। समूचे व्यक्तित्व का पवित्रीकरण-प्रखरीकरण ही अध्यात्म तत्वज्ञान एवं साधना विज्ञान का एक मात्र उद्देश्य है। उसी की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की दार्शनिक दिशा धाराओं का सृजन हुआ है।

ब्रह्मविद्या का विशाल कलेवर इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए तत्वदर्शियों ने सृजा है। इसी प्रकार साधना विधान के अन्तर्गत क्रिया-प्रक्रियाओं का उद्देश्य एक ही है—देव जीवन की दृष्टि से हेय समझी जाने वाली मान्यताओं एवं आदतों का निराकरण तथा सदाशयता को स्वभाव में सम्मिलित करने का अभ्यास। पशु-प्रवृत्तियों को बदलने के लिये जो भावना और प्रक्रिया का सम्मिलित पुरुषार्थ किया जाता है, उसी को साधना कहते हैं। साधनाकाल में अपना चिंतन तथा व्यवहार ऐसा बनाना पड़ता है, जिनके दबाव से व्यक्तित्व की गहन परतों में प्रविष्ट अभ्यस्त आदतों में अभीष्ट परिवर्तन सम्भव हो सके।

भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग की त्रिवेणी में अवगाहन करने से ही आत्मिक प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है। इन तीनों के स्वप्न देखते रहने से काम नहीं चलता। अध्ययन, श्रवण के माध्यम से मिलने वाले परामर्श इस दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं किन्तु इतने भर से पुराना ढाँचा-ढर्रा बदलता नहीं। वह गहरी परतों में अपनी जड़ें जमाये बैठा रहता है। फलतः धर्मजीवी व्यक्ति तक हेय जीवन जीते देखे गये हैं। व्यक्तित्व के परिष्कार में साधना उपचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का दबाव पड़े बिना काम नहीं चलता। धातुओं को कोई रूप देना होता तो उसमें अग्निसंस्कार की अनिवार्य आवश्यकता पड़ेगी। साधना को एक प्रकार से ढाँचे का रूपान्तर कहा जा सकता है। इसके लिए साधना तपश्चर्या को आग-भट्टी के समतुल्य माना जा सकता है।

कल्प-साधना में भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग की त्रिविध क्रिया-प्रक्रिया का समन्वय है। गायत्री उपासना एवं ध्यान-धारणा को भक्तियोग समझा जाना चाहिए। स्वाध्याय-सत्संग स्थूल और चिन्तन मनन सूक्ष्म ज्ञानयोग की पूर्ति करता है। व्रत-उपवास के अनुशासक कर्मयोग का अभ्यास कराते हैं। इस समन्वय से तीनों शरीरों को परिष्कृत करने वाली तीन प्रकार की विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत समूचे व्यक्तित्व की ढलाई-गलाई होने लगती है। इस समग्र समन्वय की कार्यपद्धति से ही कल्प-साधना का तात्विक प्रयोजन पूर्ण होता है। मात्र उपवास या जप का उपक्रम चलता रहे और हर क्षेत्र को उत्कृष्टता की दिशा में धकेलने वाले अन्याय अनुबन्धों की उपेक्षा होती रहे तो समझना चाहिए कि बाह्य कलेवर की ही व्यवस्था बनाई गई है। उसमें प्राणसंचार करने वाली आध्यात्मिक प्रखरता उत्पन्न करने में समर्थ भावनात्मक तपश्चर्याओं का समावेश नहीं किया गया है। सर्वविदित है कि कलेवर कितना ही सुन्दर क्यों न हो, उसमें प्राण नहीं होगा तो अभीष्ट हलचल उत्पन्न होने और परिणति का क्या लाभ मिलने जैसा अवसर ही उत्पन्न न होगा।

कल्प-साधना के साथ जुड़े हुये उपरोक्त तथ्यों को समझनें के उपरान्त ही वह सरंजाम जुटाना सम्भव हो सकेगा, जिसके फलस्वरूप शास्त्रवर्णित सत्य परिणामों की सम्भावना को प्रत्यक्ष होते हुए देखा जा सकेगा। समग्र व्यवस्था का परिणाम ही समग्र होता है। आवश्यक सभी साधन जुटने पर ही महत्वपूर्ण कार्यों का सूत्र संचालन होता है। रसोई बनानी हो तो आग, बर्तन, खाद्य पदार्थ, पानी आदि सभी चीजें चाहिए। इनमें से किसी एक को पकड़ बैठा जाय तो पेट भरने का सरंजाम किस प्रकार बनेगा ? बढ़ई, लुहार, दर्जी, चित्रकार, मूर्तिकार आदि को सभी उपकरण एकत्रित करने पड़ते हैं। यदि उनके हाथ में एक ही औजार हो तो कुछ कारगर निर्माण बन नहीं सकेगा। अकेली सुई लेकर दर्जी, आरी लेकर बढ़ई, हथौड़ा लेकर शिल्पी अपनी कलाकारिता का परिचय दे नहीं सकता। बात तभी बनेगी जब सभी आवश्यक उपकरण जुटाकर समग्र व्यवस्था बनाने की तैयारी चल पड़े।

कल्प में उपवास की प्रमुखता से किसी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि देवता को प्रभावित करने एवं आसमान से वरदान खींच लेने के लिए इतना-सा स्वल्प उपचार अपनाने भर से काम चल जायेगा। जितना महत्व शरीर साधना के रूप में उपवास अनुष्ठान का है, उससे कम आवश्यकता श्रद्धा एवं प्रज्ञा को प्रभावित करने वाली उस विधि-व्यवस्था का भी नहीं है, जो अन्तःकरण को मथ डालती है, चिंतन की दिशाधारा बदलती है और स्वभाव तथा अभ्यास में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित करती है।

इस साधना को कल्प-साधना कहा गया है। शरीरगत कल्पचिकित्सा की पृष्ठभूमि अनेकों को विदित है। उसी आधार पर चिंतन और चरित्र को उलट देने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाना चाहिए।

कायाकल्प के प्रयोग जिनने देखे या सुने-समझे हैं, वे जानते हैं कि रुग्ण, दुर्बल एवं अस्त-व्यस्त काया-संस्थान को नये सिरे से सुधारने, सम्भालने की प्रक्रिया 'कल्प' कहलाती है। इसमें पुराने जीवकोशों को हटाकर नये जीव कोशों का ढाँचा नये प्रकार का बन सके ऐसा प्रयत्न किया जाता है। साँप के केंचुली बदलने से इसकी उपमा दी जाती है। साँप पुरानी चमड़ी को किसी पेड़ से अटकाकर बदल देता है और जो नई निकलती है, उसका उपयोग करता है। केंचुल भारी होने पर साँप के लिए दौड़ना तो दूर चलना-फिरना तक भारी हो जाता है। किन्तु जब पुराने कलेवर का परित्याग कर दिया जाता है तो उसे नई चमड़ी तथा नई काया की तरह नई स्फूर्ति प्रदान करती है। उसकी शोभा और शक्ति दोनों ही बढ़ा देती हैं। कल्प-चिकित्सा को भी इसी प्रकार के केंचुल बदलने की उपमा देकर समझाया जाता है।

स्वर्गीय महामना मालवीय जी ने अपनी कल्प-चिकित्सा कराई थी। समग्र रूप से न बन पड़ने पर भी बहुत लाभकारी हुई थी। उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुखद परिणति का विवरण उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया था। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि आयुर्वेदशास्त्र में उस प्रक्रिया के उपलब्ध होने पर भी सामयिक परिस्थितियों में उसका उपयोग कैसे करना चाहिए, इस संदर्भ में कोई ठोस प्रयास नहीं हुए। यदि उन निर्धारणों का पुनरुद्धार सम्भव हो सका होता तो निश्चय ही मनुष्य जाति की महती सेवा बन पड़ती। जरा-जीर्ण ययाति की तरह नवयौवन प्राप्त करने का अवसर मिलता। कितने ही वयोवृद्ध अपनी वृद्धावस्था को नवयौवन में बदल सकते, अशक्तता हटाकर अभिनव सामर्थ्य प्राप्त कर सकने का सौभाग्य कितना सुखद एवं सौभाग्यशाली हो सकता है ? आज तो उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

महामना मालवीयजी ने कल्प कराया था, तब उन्हें चालीस दिन तक एकान्त पर्णकुटी में रहना पड़ा था। इतने दिनों तक उन्होंने दरवाजा नहीं खोला था ताकि जो परिवर्तन हो रहा है उसे बाहरी वातावरण प्रभावित न करने पाये। शौच, स्नान, भोजन का सारा प्रबन्ध भीतर ही होता था। वे धूप सेवन तक के लिए बाहर नहीं निकले थे। सभी नित्यकर्म उसी बन्द पर्णकूटी में होते थे। इस अवधि में आहार, शयन, औषधि, शारीरिक हलचल के सम्बन्ध में जो अनुबन्ध थे वे विधिवत् पूरे करने पड़े थे। साथ ही सोचने के लिए, कल्पना-आकांक्षा के लिए एक निश्चित सीमा बना दी गई थी कि वे न केवल शरीर को वरन् विचारों को भी उसी परिधि में अपनी दौड़ सीमित रखने के लिए विवश करें। वैसा ही किया गया था।

उपरोक्त विधान पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि ऐसे उपचारों में अभिनव निर्धारण की जीवनचर्या में पूरी तरह समाविष्ट होने का अवसर दिया जाता है। साथ ही पुरातन अभ्यासों को, बाहरी वातावरण के दबावों को उन दिनों न पड़ने देने की विशेष रूप से रोकथाम की जाती है। महान् परिवर्तन के लिए ऐसा होना स्वाभाविक है।

भ्रूण को नौ माह तक माता के गर्भ में रहना पड़ता है। अण्डे के कड़े छिलके का आच्छादन उसके भीतरी भाग को चारों ओर से घेरे रहता है। इससे दोनों प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। बाहरी दबाब से बचाव भी और भीतरी क्षेत्र में समयानुसार पकने, परिपक्व होने की सुविधा भी इस आच्छादन से मिलती है। इस संरक्षण के अभाव में न तो गर्भस्थ शिशु का विकास होगा, न अण्डा पकेगा। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि उन्हें बाहरी गर्मी मिलनी चाहिए। अण्डे के ऊपर मुर्गी अपनी छाती लगाये बैठी रहती है और उसे आवश्यक गर्मी प्रदान करके पकने की स्थिति तक पहुँचाती है। पेट के बच्चे को भी माता गर्मी की, आहार की व्यवस्था अपने शरीर अनुदान द्वारा प्रदान करती है। यह भी एक प्रकार का कायाकल्प ही हुआ। अपनी इस विशिष्ट साधना को भी आत्मिक कल्पसाधना का रूप दिया गया है। उसके लिए सर्वप्रथम उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है। ऐसा वातावरण जहाँ अनुपयुक्त वातावरण से बचाव हो सके, उपयुक्त सुविधा तथा अनुभवी मार्गदर्शन उपलब्ध हो एवं उस प्रयास को सफल बना सकने वाला सहयोग अनुदान मिल सकने की व्यवस्था हो। निश्चय ही यह व्यवस्था घर के वातावरण में रहकर सम्भव नहीं हो सकती। अभ्यस्त ढर्रा अनायास ही अपनी ओर खींचता रहता है। पुरानी आदतें तथा स्थानीय समस्याएँ नये प्रयास में मन को पूरी तरह लग सकने जितना अवसर नहीं देतीं। आदतें बदलनी हों तो वातावरण भी बदलना चाहिए। चोरों को जेलखाने में इसीलिए रखा जाता है कि पुराने सम्पर्क एवं कार्यक्षेत्र से अलग रखकर उसे नयी रीति-नीति अपनाने के लिए विवश किया जा सके। जेल प्रतिशोध, उत्पीड़न के लिए नहीं, सभ्य देशों में सुधारगृह की तरह प्रयुक्त की जाती है। यही बात योगियों के वन की गुफा, कन्दराओं में रहकर स्वेच्छापूर्वक एकान्त सेवन वाली व्यवस्था में भी सन्निहित है। वे अपने को नये ढाँचे में ढालना चाहते हैं किन्तु चारों ओर फैला हुआ वातावरण उन्हें अभ्यस्त शिकंजे की जकड़नों से बाहर नहीं निकलने देता। कठिनाई का हल न देखकर वे उतने समय के लिए एकान्त के निमित्त चले जाते हैं, जितने में अभ्यस्त ढर्रे को बदलने की मंजिल दूर तक पार न कर ली जाय। गुरुकुल आरण्यकों की शिक्षा पद्धति में भी यही विशेषता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान राम को तप-साधना के लिए अयोध्या छोड़कर हिमालय जाना पड़ा था। चारों भाई गुरु वशिष्ठ की गुफा के इर्द-गिर्द अपनी-अपनी पर्णकुटी बना रहे थे। यों अयोध्या में सुविधाजनक निवास की उनके लिए कोई कमी नहीं थी। फिर भी देखा गया कि उस क्षेत्र के साथ जुड़े हुए चिरकालीन सम्बन्ध किसी न किसी बहाने खटपट करते रहेंगे और चित्त में विक्षेप रहने से आन्तरिक परिष्कार के लिए आवश्यक सुविधा जुटेगी नहीं। अस्तु उन्हें लाभ के लिए छोटी हानि उठाने का सिद्धान्त अपनाकर वन-गमन करना पड़ा। यही परम्परा अन्य ऋषि तपस्वी अपनाते रहे हैं। उन्हें अपनी जन्मभूमि में स्थान सम्बन्धी असुविधा नहीं थी किन्तु वातावरण घर खींचकर कैसे लाया जाय ? गंगा अपने घर आने के लिए किसी प्रकार सहमत की जाय ऐसा न होकर अपने को ही उसके पास जाना पड़ता है। उच्चस्तरीय साधना के लिए जैसे वातावरण की, साधन-सुविधा की आवश्यकता है, उसके लिए अभी भी गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सप्त ऋषियों की तपोभूमि एवं उपयुक्त मार्गदर्शन सुविधाएँ गायत्री तीर्थ जैसे स्थानों में उपलब्ध हो सकती हैं।

कल्प अवधि का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन दिनों का तीर्थ-सेवन स्थान की दृष्टि से ही एकान्त न माना जाय वरन् पूर्णतया अन्तर्मुखी रहा जाय। यह समय विशुद्ध रूप से अन्तर्जगत में प्रवेश करने का है। इसमें अन्तराल की आत्मसत्ता का अति गम्भीरतापूर्वक निरीक्षण परीक्षण किया जाय। जो अवांछनीयताएँ स्वभाव को अंग बन गई हैं, उनके दुष्परिणामों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय और देखा जाय कि सामान्य-सी होने वाली ये छोटी-छोटी दुष्प्रवृत्तियाँ कितनी विघातक होती हैं। लकड़ी में घुन, कपड़े में आग, शरीर में विष की मात्रा थोड़ी होने पर भी वे जहाँ बसते हैं, वहाँ धीरे-धीरे विनाशलीला रचते रहते हैं और अन्ततः सर्वनाश करके छोड़ते हैं। इस कुसंस्कारिता की गंदगी को हर कोने में बुहार-बुहार कर इकट्ठी करना और ऐसे स्थान पर पटकने की बात सोचना चाहिए, जहाँ उसकी फिर वापसी न होने पाए। कल्पसाधना के दिनों में अन्तर्मुखी होकर यह बुहारने का काम रुचिपूर्वक किया जाना चाहिए। साथ ही शेष आधा चिन्तन इस तथ्य पर नियोजित रखना चाहिए कि जन सत्प्रवृत्तियों का संचय सम्वर्धन अभी तक नहीं किया जा सका उनकी पूर्ति के लिए दूरगामी योजना बना ली जाय और उसका शुभारम्भ इन्हीं दिनों में व्रतशील होकर कर दिया जाय।

आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास के चार चरण आत्मिक प्रगति के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। मनः संस्थान एवं भाव-संस्थान को इन दिनों पूरी तरह उसी क्षेत्र को सुव्यवस्थित एवं उज्जवल सम्भावनाओं से भरा-पूरा बनाने में निरत रखा जाना चाहिए। उपवास, अनुष्ठान एवं आहार-कल्प तो साथ-साथ चलता ही रहेगा।

अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और निरन्तर आत्म-दर्शन

आयुर्वेदीय कल्प-प्रक्रिया में सर्वप्रथम वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्य आदि के माध्यम से संचित मलों को बाहर निकाला जाता है। इस परिशोधन के उपरान्त शरीरगत मलीनताओं का भार हल्का पड़ता है, नये उपचार की पृष्ठभूमि बनती है। ऐसा न करने पर इस उपचार का लाभ शरीर को मिलने के स्थान पर जलती आग में पड़ने वाले ईन्धन की तरह भस्म हाथ लगने के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। खाई पाटकर ही पार जाया जा सकता है अन्यथा सारा प्रयत्न उस खंदक से जूझने में ही समाप्त होता रहेगा।

आध्यात्मिक कल्प-चिकित्सा के आरम्भ में दो काम करने पड़ते हैं। एक तो अपनी चिन्ताओं, समस्याओं, कठिनाइयों, कामना, अभिलाषाओं को विस्तारपूर्वक लिखकर मार्गदर्शक के सम्मुख प्रस्तुत कर देना पड़ता है, ताकि उन्हीं बातों को बताने, पूछने का ताना-बाना न बुनते रहकर जो कहना है, वह एक बार में ही कह लिया जाय। इससे भौतिक-प्रयोजनों में मन हल्का होने पर अन्तर्मुखी बनना और उद्देश्य का तारतम्य बिठाना सम्भव हो जाता है।

दूसरी बात वह उगलनी होती है, जिसमें अपने क्रियमाण दुष्कृत्यों का उल्लेख होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चान्द्रायण की तरह कल्प-साधना में भी प्रायश्चित पूरा करना होता है। यही अवरोध है जो न तो साधना को सफल होने देते हैं, न ही कष्ट कठिनाइयों से छूटने के लिए किये जा रहे प्रयासों को कारगर होने देते हैं। सृष्टा की कर्म व्यवस्था सुनिश्चित है। वह स्वसंचालित पद्धति से क्रिया की प्रतिक्रिया उत्पन्न करती रहती है। पाप-कृत्यों से कुसंस्कार बढ़ते हैं, कुसंस्कारों से स्वभाव में उद्दण्डता आती है, उद्धत-स्वभाव से आचरण में दुष्टता बढ़ती है। उसके फलस्वरूप भीतर से रोग-शोक उभरते हैं और बाहर से असहयोग, तिरस्कार एवं रोष-प्रतिशोध की प्रताड़नाएँ बरसती रहती हैं। यही है पाप-कर्मों की स्वसंचालित दण्ड-व्यवस्था जो अपने लिए स्वयं ही यमदूत उत्पन्न करती है और नशा पीकर नाली में गिरने, खाकर वमन करने, फाँसी लगाकर बेमौत मरने की तरह किये हुए दुष्कृत्यों का प्रकारान्तर से दण्ड प्रस्तुत करती है। इस जंजाल की जकड़न से ऊँचा उठने और बढ़ने की बात बनती ही नहीं। इसलिए उनका निराकरण करना ही बुद्धिमता है। आँख में पड़े हुए तिनके और पैर में धँसे हुए काँटे को निकाल देने में ही समझदारी है। पके फोड़े का मवाद जितनी जल्दी निकल जायेगा उतनी ही सुविधा रहेगी। पापों का प्रायश्चित भी एक आवश्यक कृत्य है। अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले इस भार को उतारने और हलके-फुलके प्रगति-पथ पर अग्रसर होने की दूरदर्शिता अपनाते हैं।

इसके लिए भी, अपनी स्मृति के सभी दुष्कृत्यों को विस्तारपूर्वक घटनाक्रमों तथा उनके साथ जुडी हुई परिस्थितियों के साथ मौखिक या लिखित रूप से मार्गदर्शक की जानकारी में लाते हैं। इसी आधार पर पाप-कर्मों के भारी-हल्की होने का और तदनुरूप परिशोधन प्रायश्चित की विधि-व्यवस्था का निर्धारण बन पड़ता है।

यही आध्यात्मिक वमन, विरेचन है, जिससे मानसिक सफाई का काम हलका हो जाता है। अपनी ओर से बात पूरी कर देने पर दूसरे पक्ष का ही काम शेष रहता है। क्या उपाय करना है ? क्या हल निकालना है ? इसके लिए प्रतीक्षा भी की जा सकती है। अपना पक्ष प्रस्तुत कर देने के उपरान्त साधक की मानसिक स्थिति ऐसी बन जाती है, जिसमें कल्प-साधना के मूलभूत उद्देश्य अन्तर्मुखी होकर आत्म-शोधन से लेकर आत्म-साक्षात्कार तक की लम्बी प्रक्रिया में तन्मयता एवं तत्परतापूर्वक जुटा जा सकता है।

घर से बाहर अन्यत्र जाकर किसी तीर्थ की पवित्र भूमि में मर्यादाओं की व्रतशीलता में अपने आप को बाँधकर ही इस प्रकार की तपश्चर्याएँ सही रीति से सम्पन्न होती हैं। अन्यथा उलझे वातावरण में उद्विग्न चित्त से खीजते-खिजाते किसी प्रकार चिह्न पूजा कर लेने से काम तो क्या, कोई भी साधना उपक्रम सफल नहीं होता। कुछ रोग ऐसे होते हैं, जिनमें डाक्टर से परामर्श लेते रहने और घर पर दवा खाते रहने से भी काम चल जाता है, पर कुछ अस्पताल में भर्ती होने से ही बात बनती है। बडे आपरेशन घर पर नहीं कराये जा सकते, उसके लिए आवश्यक उपकरण-साधन तथा हर योग्यता के डाक्टर, सर्जन, सहायक हर समय उपलब्ध नहीं हो सकते। यह सुविधाएँ अस्पताल में ही होती हैं। बडे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तदनुरूप ही व्यवस्था बननी चाहिए। घर पर रहकर या अन्यत्र यह साधना करनी हो, तब भी उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति की बात तो ध्यान में रखी ही जानी चाहिए। साधना-स्थल की परिस्थिति एवं साधक की मनःस्थिति दोनों ही सुविधाएँ समुचित स्तर की रहने पर ही सांसारिक एवं आध्यात्मिक प्रयोजनों की पूर्णता सधती है।

इस स्तर की साधनाओं के लिए किस प्रकार की बाह्य व्यवस्था होनी चाहिए, उसके लिए एक ऐसा उदाहरण है, जिससे कुछ प्रेरणा मिलती है और इस क्षेत्र की पुरातन परम्पराओं का पता चलता है। त्रिवेणी तट पर माघ मास में एक महीने का कल्पवास होता है। साधक वहाँ कुटी बनाकर रहते हैं। पूरा महीना सगम की रेती में ही व्यतीत करते हैं। उस परिधि से बाहर कही नहीं जाते। घर की घटनाओं में न तो दिलचस्पी लेते हैं और न आने-जाने की चिटठी-पत्रों का सिलसिला चलाते हैं। इस प्रतिबन्ध से उन्हें एकान्त का, एकाग्रता का,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मचिन्तन का लाभ मिलता है। इतना अंश ठीक है। इसके साथ ही यदि साधना का निर्धारण एवं मार्गदर्शन भी उनके स्तर एवं उद्देश्य के अनुरूप रहा होता तो सोने में सुगन्ध की बात बनती। फिर भी इससे इतना तो पता चलता ही है कि साधक को साधना के प्रति कितना गम्भीर, कितना श्रद्धालू कितना व्रतशील होना चाहिए। इस सबकी उपेक्षा करके मनमौजी सैलानियों की तरह कौतुक-कौतूहल मानकर साधना से उपचार ज्यों-त्यों करके आधे-आधे अपनाय जाएँ तो उस विडम्बना से कुछ बात बनती नहीं। उल्टे निराशाजन्य खीज ही उत्पन्न होती है।

सूरत में मोटा महाराज का आश्रम भी इसी परम्परा के अनुरूप चलता है। ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा के यात्री भी आदि से अन्त तक संकल्पित तितिक्षाओं का पालन करते हैं। वृन्दावन के 'टट्टिया आश्रम' में बाँस की टट्टी का बाड़ा बना हुआ है। साधक उस बाड़े की परिधि में ही रहते हैं। बाहर नहीं जाते। इस अनुबन्ध का मूल उद्देश्य एक ही है कि साधकों की मानसिक परिधि भी निर्धारित सीमा-मर्यादा में ही केन्द्रित रहे, बन्दर की तरह इधर-उधर उछल-कूद न मचाये। योगिराज अरविन्द ने इसी प्रकार का कुटी प्रवेश किया था। निजी साधना में तो और भी ऐसे कितने ही तपस्वी हैं, जो जीवन की निर्धारित परिधि में ही केन्द्रीभूत रहते हैं। न शरीर को इधर-उधर मचलने-भटकने देते हैं और न मन को ही आवारागर्दी में भटकने की छूट देते हैं। उच्चस्तरीय साधनाओं में यही नीति अपनाई जानी चाहिए। कल्प-साधकों की साधना अवधि एक महीने की हो या दस दिन की, उन्हें परिपूर्ण श्रद्धा के साथ उसी प्रयोजन में तन्मय होना चाहिए, शरीर एवं मन को जहाँ-तहाँ भटकने न देकर अन्तर्जगत में ही सीमाबद्ध रहने में निरत रखना चाहिए। गुफा प्रवेश की समाधि-साधना जैसा स्तर बनाकर ही इस अवधि को पूर्ण करना चाहिए। यदि अवधि बढ़ायी जा सके तो और भी अधिक लाभ मिलते हैं।

आत्म साक्षात्कार, आत्मदर्शन, आत्म बोध आदि की अध्यात्म शास्त्रों में भाव भरी चर्चा है। भगवान बुद्ध को जिस वट वृक्ष के नीचे आत्मबोध हुआ था, उसे 'बोधिवृक्ष' नाम दिया गया, देवतुल्य पूजा गया एवं उसकी टहनियाँ काटकर संसार भर के बौद्ध धर्मानुयायी ले गये और अपने-अपने यहाँ उसकी स्थापना करके वैसे ही देवात्मा बोधिवृक्ष उगाये। यहाँ चर्चा वृक्ष विशेष की नहीं हो रही है वरन् यह कहा जा रहा है कि आत्मबोध, आत्मदर्शन ही उच्चस्तरीय देव वरदान है। जिसे उसकी उपलब्धि जिस अनुपात में हो गई समझना चाहिए कि वह उतना ही बड़ा श्रेयाधिकारी बन गया।

सभी देव मानवों की अन्तःस्थिति यही रही है। इनने अपने को जाना, समझा है और आत्मगौरव को प्रमुखता देकर तद्नुरूप जीवनचर्या का निर्धारण किया है। इतने भर से आगे की सारी बात बन जाती है। सही दिशा में प्रवाह चल पड़े तो अन्ततः उसकी समाप्ति समुद्र मिलन के रूप में ही होगी। जिन्हें भव-बन्धनों का, समस्त संकटों का, हनन-पराभवों का आधारभूत कारण माना गया है, वे और कुछ नहीं मात्र आत्म-विस्मृति के रूप में, निकृष्ट दृष्टिकोण के रूप में अन्तराल पर चढ़े कुसंस्कारी कषाय-कल्मष भर हैं।

अपने आपको विस्मृत कर देने के उपरान्त फिर भटकाव ही भटकाव शेष रहता है। कस्तूरी मृग की निराशा और मृगतृष्णा की थकान की कथा-प्रसंगों में बार-बार चर्चा होती रहती है। सियारों के झुण्ड में पले सिंह-शावक का जल में परछाई देखकर आत्म-बोध होने पर पिछला स्वभाव तत्काल बदल लेने वाला दृष्टान्त सभी ने सुना है। इस उद्धरण में उपनिषद्कार का वही उद्बोधन झाँकता है, जिसमें 'आत्मावतरे ज्ञातव्य आदि की हुँकार है। गीताकार का मन्तव्य है 'उद्धरेत आत्मनात्मनं
यह आत्मदर्शन ही प्रकारान्तर से ईश्वर-दर्शन है। इसी उपलब्धि को जीवन मुक्ति कहा गया है। जीवन लक्ष्य का चरम बिन्दु यहीं पहुँचने पर समाप्त होता है।

आत्मदर्शन शब्द रहस्यवादियों के जाल-जंजाल में फँसकर कुछ ऐसा बन गया है मानो किसी जादुई दृश्य को देखने और आश्चर्यचकित रह जाने जैसे कौतुक भरी स्थिति-परिस्थिति की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चर्चा की जा रही हो। अनुमान लगता है कि आत्मा कोई अद्‌भुत आकृति की अन्तरिक्ष वासिनी है देवी होगी, जो बिजली की तरह साधक को अपनी छवि दिखाने के साथ-साथ वरदानों का पिटारा साधक पर उड़ेलकर फिर आकाश में विलुप्त हो जाती होगी। इन बाल-कल्पनाओं के लिए तो कोई क्या कहे ? पर जिन्हें तत्वदर्शन समझने का, ब्रह्म विद्या के प्रतिपादनों में प्रवेश करने का अवसर मिला है उन्हें इस तथ्य को समझने में कहीं कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि अदृश्य आत्मा का दृश्यमान स्वरूप जीवन ही है। उसी को आत्मसत्ता के रूप में व्यक्तित्व की समग्रता के रूप में देखा-समझा जा सकता है। आत्म-साधना का तात्पर्य है—जीवन साधना। निराकार आत्मा का यही साकार रूप है। आत्मदेव को सर्वोपरि देव कहा गया है। उसकी तुलना कल्पवृक्ष से की गई है और कहा गया है कि उसकी आराधना करने वाले की सभी मनोवांछाएँ पूर्ण होकर रहती हैं।

वेदान्त दर्शन में आत्मा को ब्रह्म कहा गया है। 'अयमात्मा ब्रह्म-तत्वमसि प्रज्ञान ब्रह्म-सच्चिदानन्दोऽहम्-शिवोऽहम् आदि सूत्र संकेतों में इसी तथ्य का प्रतिपादन है कि अपना परिष्कृत आप ही सुविकसित सुसंस्कृत स्थिति में पहुँचने पर परब्रह्म की, परमात्मा की भूमिका निभाने लगता है। नर-पिशाच, नर-पशु, नर-कीटक की स्थिति तभी तक रहती है, जब तक साधक को अपने आपका बोध नहीं होता।

जब 'स्व' शरीर तक सीमाबद्ध हो जाता है तब आकांक्षाएँ, विचारणाएँ, गतिविधियाँ भी काय-कलेवर की शोभा-सुविधा बढाने में ही निरत रहने लगती हैं। विलास, वैभव ही इष्ट बन जाता है। वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति के लिए ही समूची प्रतिभा नियोजित रहती है। कई बार तो यह लिप्साएँ इतनी आकुल-व्याकुल हो उठती हैं कि नीति-मर्यादा के औचित्य अनुशासन का उल्लंघन करने में तनिक भी संकोच नहीं होता।

दुनियादारी पर छाई रहने वाली इस दुर्बुद्धिजन्य दुर्गति से उबरने में वेदान्त शिक्षा ही समर्थ नौका का काम देती है। उस तत्व दर्शन को अपनाने से आत्म-बोध उभरता है। अपनी स्थिति का सही ज्ञान होता है और लगता है कि अज्ञान आच्छादन से छुटकारा पाना ही परम पुरुषार्थ है। यही जीवन लक्ष्य भी है। मुक्ति के नाम से इसी स्थिति की सुखद-सम्भावनाएँ शास्त्रकारों ने सुविस्तृत विवेचना एवं आकर्षक अलंकारिक भाव-संवेदना के साथ प्रस्तुत की है।

आत्मबोध को आत्मदर्शन का पुरुषार्थ कहा गया है। यही चरम सौभाग्य भी है। इसी एक साधना के सधने से असंख्य विपत्तियों से छुटकारा मिलता है और समस्त सिद्धियों का द्वार खुलता है। ब्रह्म विद्या की उपनिषद् चर्चा में अनेकानेक तर्कों, तथ्यों, मार्गदर्शक प्रमाणों व उपचार को प्रस्तुत करते हुए श्रेयार्थी को एक ही शिक्षा, एक ही प्रेरणा की गयी है कि वह माया-बन्धनों से मुक्त होने का प्रयत्न करे। माया अर्थात् अपने को शरीर मानने की, उसी की वासना तृष्णा में पिसने की लिप्सा शरीर सम्बन्धियों को भी इसी परिधि में गिनकर व्यक्ति गूलर के फलों की तरह इसी संकीर्णता की कीच में सडता-गलता रहता है। इसी नरक दल-दल से उबरने, उछलने की साहसिकता, दूरदर्शिता उभारने के लिए ही कई प्रकार के योगाभ्यास तप साधन किए जाते हैं। स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन, मनन के चारों प्रयोग उपचार इसी एक आवश्यकता की पूर्ति में नियोजित किए जाते हैं।

आध्यात्मिक कल्प के दिनों में साधक का समूचा-चिंतन इस एक ही तथ्य के इर्द-गिर्द भ्रमण करना चाहिए कि वह शरीर नहीं आत्मा है। वह ब्रह्म लोक का निवासी है, वही उसका घर परिवार है। यहाँ तो मेले-ठेले का प्रबन्ध करने, अपव्यय को व्यवस्था में बदलने के विशेष उद्देश्य के लिए उसकी सुरक्षा रखना उसका कर्तव्य है। इन्द्रिय-लिप्सा और मनोगत तृष्णा तो छलावा भर है। वास्तविक हित-साधन तो आत्मा की आवश्यकता पूरी करने के लिए पुरुषार्थ करने में है। इस स्तर का चिंतन निरन्तर जारी रखा जाय। शरीर से आत्मा की भिन्नता को पढने, रटने से काम नहीं चलता। उसकी अनुभूति उभरनी चाहिए। इसके लिए एक ही स्तर की दृश्यावली कल्पना क्षेत्र पर छाई रहनी चाहिए। आत्मा और शरीर की भिन्नता तथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों की अपने-अपने ढंग की आवश्यकता। दोनों के बीच दूरदर्शी ताल-मेल बिठाने वाली 'महाप्रज्ञा' की भाव-भूमि का, चान्द्रायण अवधि में इसी वेदान्त प्रतिपादित आत्मानुभूति का, अभ्यास करते रहना चाहिए। इसके लिए कोई नियत समय निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। काम करते, चलते-फिरते विभिन्न उदाहरणों को अपनाकर इस अनुभूति को उभारने परिपक्व करने का प्रयत्न करना चाहिए।

वाहन, सेवक, उपकरण, वस्त्र आदि की उपमा शरीर की और स्वामी, प्रयोक्ता की स्थिति आत्मा की समझी जाने लगे तो समझना चाहिए कि आत्मदर्शन का आलोक उभरा। इस अनुभूति के साथ ही वे तथ्य भी प्रकट होते हैं, जिनमें अपना स्थाई निवास ब्रह्मलोक में होने का प्रतिपादन है। उत्कृष्टता की भाव-भूमिका में होने की बात पर विश्वास जमता है, साथ ही इस निष्कर्ष पर पहुँचने में भी कठिनाई नहीं होता कि शरीर का उपयुक्त पोषण और आत्मा को उबारने का अवसर मिलना चाहिए। यह सब कैसे बन पड़े ? इसका निर्धारण दूरदर्शी-विवेकशीलता, महाप्रज्ञ का अवलम्बन लेने से ही शाक्य होता है।

बड़ी समस्यायें सामने आने पर उनका स्वरूप समझने, संभावनाओं का अनुमान लगाने, हल करने का उपाय खोजने, सहयोग और साधन जुटाने के सम्बन्ध में कई प्रकार से ताना-बाना बुनना पड़ता है। तब कुछ कामचलाऊ रास्ता निकलता है। चुनाव में खडे होने वाले उम्मीदवार वोट पाने के लिए अनेक उपाय सोचते हैं और अनेक उपाय अपनाते हैं। जीवन की सबसे बड़ी बाजी जीतने का इन दिनों यही आधार समझा जाना चाहिए कि आत्मबोध की न केवल झाँकी, कल्पना उभरती रहे वरन् उस स्थिति स्तर तक पहुँचे कि मान्यता की परिपक्वता अर्थात् अपने को आत्मा के रूप में शरीर से भिन्न देखने का अनुभव अभ्यास भी परिपक्व होने लगे।

आत्मोत्कर्ष की यह भाव संवेदना जिस अनुपात में उभरेगी, उतना ही यह विश्वास बढ़ेगा कि आत्मा और परमात्मा का संयुक्त समन्वय जीवन सम्पदा के रूप में प्रत्यक्ष है। उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग की योजना बनाना और कार्यान्वित करना यही वेदान्त साधना है और यही आत्मदेव की यथार्थवादी आराधना-अभ्यर्थना।

वेदान्त-चिन्तन का समुद्र मंथन चलते रहने पर उससे जिस सर्वोपरि उपहार-अनुदान की उपलब्धि होती है, उसे अमृत कहते हैं। मंथन अर्थात् आत्मबोध अर्थात् जीवन-सम्पदा की उच्चस्तरीय ईश्वरीय अनुदान के रूप में मान्यता। इसका श्रेष्ठतम सदुपयोग कैसे बन पड़े, इसके चिन्तन, मन्थन और निर्धारण को ब्रह्म विद्या का सारतत्व समझा जाना चाहिए। कल्प की अवधि में चेतना को एक ही समस्या को समझाने में जुटाये रहना चाहिए कि आत्मा की, उसके दृश्यमान प्रतिनिधि जीवन की 'आत्मदेव' की अभ्यर्थना कैसे की जाय और उस कल्प वृक्ष के नीचे बैठकर ऋद्धि-सिद्धियों का अनन्त वैभव वरदान किस प्रकार पाया जाए ?

साधक महाप्रज्ञा गायत्री का अनुष्ठान सवालक्ष का इस अवधि में करते ही हैं। अनुष्ठान में जप के साथ चिन्तन, आत्मनिर्देशन, दिशाचयन, लक्ष्य प्राप्ति की तीव्र जिज्ञासा का भाव-भरा समावेश है। इससे कम में अनुष्ठान पूर्ण हुआ माना नहीं जाना चाहिए। मात्र मुँह से जप लेना, मनके घुमा लेना, किसी तरह ४-५ घण्टे की अवधि काट लेना तो एक प्रकार से सिर पर आई बला को टालना है। चिन्तन को सुनियोजित बनाकर लक्ष्य के साथ जब तादात्म्य हुआ जाता है तो स्वय ही अपना व्यक्तित्व उस साँचे में ढलने लगता है, जो कल्प-साधना की अंतिम परिणति होना चाहिए। उपासना साकार हो या निराकार अनुष्ठान के साथ जुड़े चिन्तन पर उसकी सफलता निर्भर करती है। पूरे एक माह की अवधि में व्यक्ति अधिकाधिक अपने अन्त को बदलने में समर्थ हो सके इसके लिए निरन्तर आत्मदर्शन एवं आत्ममुखी चिन्तन को प्रधानता देनी होगी। स्वाध्याय के साथ सोद्देश्य चिन्तन प्रधान अनुष्ठान साधना के प्रतिफल अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं, साधक कृतकृत्य होता है एवं अपनी जीवन धारा को नये ही पड़ाव पर पाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्प-चिकित्सा की पात्रता के सम्बन्ध में महर्षि चरक का मत

यौवनावस्था को पुनः प्राप्त करने के लिए कल्प चिकित्सा आयुर्वेदीय औषधि प्रणाली का आन्तरिक भाग है। 'चरक-संहिता के कई अध्यायों में इस चिकित्सा का वर्णन है। सुश्रुत, वाग्भट्ट और अन्य लेखकों ने भी इसके बारे में लिखा है और इस उद्देश्य के लिए जिन औषधियों का उल्लेख किया गया है, उनको रसायन नाम से पुकारा गया है।

इस चिकित्सा से कौन अच्छा लाभ उठा सकता है ? इस विषय में 'चरक-सहिंता' में कहा गया है—

"जो सत्यवादी है, क्रोध से मुक्त है, भोग-विलास तथा मांस-भक्षण से परे है मारकाट तथा थकावट के कामों से दूर रहता है, सहनशील है, जप करता है, मन और शरीर जिसके शुद्ध हैं, सदाचारी हैं, संतुष्ट हैं, उदार और दानी है, देवताओं, गऊ, ब्राह्मणों, साधुओं, अध्यापकों तथा वृद्धों का आदर करता है, जो नीच कर्मों से बचता है, जिसका हृदय कोमल है, ज्ञानी है, जो ठीक समय पर सोता और जागता है, भोजन में दूध का प्रयोग करता है, समय की कीमत को समझता है, तर्क और अधिकार को मानता है, गर्व से दूर है, अपने धर्म में दृढ है, धार्मिक बातों को समझता है, अपने मन पर जिसका काबू है और इसे सर्वशक्तिमान के ध्यान में लगाता है, ईश्वर में जो विश्वास रखता है और जो धर्मशास्त्रों के आदेश का पालन करता है, वही मनुष्य बिना रसायन सेवन किये कल्प-चिकित्सा से लाभ उठा सकता है। अगर ऐसे गुणों वाला मनुष्य कल्प-चिकित्सा में रसायन का सेवन भी करता है तो उसे इस चिकित्सा का पूर्ण लाभ मिलता है।

विभिन्न प्रकार के कल्प प्रयोग

ब्रह्मवर्चस् की कल्प-साधना के क्रमिक रूप से शास्त्रोक्त सभी प्रकार के कल्पों को किये जाने का विधान है। प्रारम्भिक रूप में उसका एक छोटा स्वरूप भाप द्वारा पकाये गये एक ही अन्न के आहार का पूरी अवधि में सेवन तथा एक ही औषधि के निर्धारित मात्रा में नित्य प्रयोग के रूप में बनाया गया है। साधना-अनुष्ठान, स्वाध्याय, सत्संग, नित्य अग्निहोत्र कुटीवास, औषधि के क्वाथ (प्रज्ञापेय) सेवन आदि से साधकों में इस अल्पावधि में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन होते पाये जाते हैं। परम्परागत चिकित्सा पद्धति में विभिन्न प्रकार के प्रयोगों की चर्चा की जाती है, जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं—(१) वुग्धकल्प, (२) मठाकल्प, (३) अन्न कल्प-गेहूँ जौ, चावल मक्का, बाजरा, हविष्यान्न (गेहूँ + जौ + तिल), अमृताशन (चावल + दाल), मूँग एवं दलिया। इनमें से किसी एक को अकेले अथवा सम्मिश्रण के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। (४) फल कल्प-आम, खरबूजा, पपीता, छुआरा, जामुन, सन्तरा, शहतूत, फालसा, सेव, नाशपाती, अमरूद तथा शरीफा। (५) शाक कल्प-मेंथी, बथुआ, पालक, लौकी, टमाटर, तोरई, गाजर, परवल, ककड़ी, चौलाई। (६) औषधि कल्प-गिलोय, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, अश्वगंधा, शतावर, आंवला, हरीतकी, निर्गुण्डी, तुलसी, बिल्व, त्रिफला, विधारा, पलास, मुसली, शाल्मली, भृंगराज, अमलतास तथा चोपचीनी।

कल्प-चिकित्सा में बहुधा रसपर्पटी, स्वर्ण पर्पटी आदि औषधियों की चर्चा होती है। पारे और गन्धक के सम्मिश्रण से ये रसायन बनते हैं, जिनका कार्य है पाचक यन्त्रों को सबल करके परिपाक तन्त्र (एसिमिलेशन) को सुव्यवस्थित बनाना। रसायन होने के नाते इनका प्रयोग भले ही आयुर्वेद सिद्धान्तर्गत प्रतिपादित कल्प चिकित्सा में होता है, सौम्य कल्प-साधना में इनका प्रावधान नहीं बताया गया हे। काष्ठ औषधियों की गुणवत्ता अपने स्थान पर है। एक मात्र उन्हीं के प्रयोग से भी शरीर तंत्र का शोधन सम्भव है। पर्पटी का प्रयोग सभी को अनुकूल भी नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था में पाचनतन्त्र को थोडा विश्राम देकर ही खाद्य के प्रयोग से पोषण करने का सिद्धान्त ही ठीक बैठता है। साधक की प्रकृति के अनुसार निर्धारित आहार, औषधियाँ इसी कारण पथ्य का समुचित अनुपात में परिपाक करती व जीवन शक्ति बढ़ती देखी जाती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ संक्षेप में उपरोक्त छह प्रकार के कल्पों में से कुछ का विवरण दिया जा रहा है प्रत्येक में मूल सिद्धान्त एक ही है—एक आहार की—एक माह की अस्वाद साधना, कृत्रिमता से दूर प्राकृतिक जीवन क्रम की ओर चलने का अभ्यास। इससे वे साधक तो लाभान्वित् होंगे ही जो स्वस्थ हैं पर स्वयं अन्तःसामर्थ्य को और बढ़ना चाहते हैं, वे रोगी साधक भी निरोग हो सकेंगे, जिन्हें सूक्ष्म रूप से अवस्थित उन विकारों की जानकारी नहीं है जो कमजोर मनःस्थिति का, अशक्त बनाये हुए हैं।

(१) दुग्ध कल्प

—दुग्ध को एक संतुलित खाद्य माना गया है। इसमें यथेष्ठ परिणाम में मात्र प्रोटीन ही नहीं शर्करा, वसा, विभिन्न विटामिन तथा धातु बलबत्ता भी विद्यमान है। इन प्रोटीन (अमीनो एसिड्स) की विशेषता यह रहती है कि वे शरीर में पहुँचते ही पच जाते हैं प्रायः सभी 'अंश देह में अवशोषित हो नव-निर्माण में नियोजित हो जाते हैं। उनकी शर्करा (लैक्टोज) आँत में जाकर अन्य शर्कराओं के पाचन में भी मदद करती है। अन्य शर्करायें आँत में अधिक समय रहकर सड़ने लगती हैं, जबकि लैक्टोज के साथ यह बात नहीं। गाय के दूध में प्रति १०० ग्राम (प्रतिशत) ३.३ ग्रम प्रोटीन्स, ३.६ ग्राम प्रतिशत वसा, ४.८ ग्राम प्रतिशत शर्करा, ६७.६ ग्राम प्रतिशत जल तथा ६५ कैलोरी प्रति १०० ग्राम होते हैं। इसमें विटामिन बी-२.२०० मिलीग्राम प्रतिशत, कैल्सियम ०.१२ मिली ग्राम तथा फास्फोरस ०.०६ मिलीग्राम प्रतिशत होता है। सतोगुणी प्रवृत्ति के कारण इसे ही श्रेष्ठ माना गया है। वसा, शर्करा एवं कैलोरी का अनुपात भले ही भैंस या बकरी के दूध में अधिक हो, कल्प-साधना के प्रयोजनों की दृष्टिगत रखते हुए गौ दुग्ध का सेवन ही हितकारी है।

अब शोध निष्कर्ष उसी तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि अधिकांश व्याधियाँ आवश्यक तत्वों की शरीर में कमी से उत्पन्न होती हैं। कुपोषण असंतुलित आहार ग्रहण करने से होता है। विद्वानों का कथन है कि हृदय से सम्बन्ध रखने वाले कुछ स्थानीय विकारों, जन्मजात व्याधियों को छोड़कर ऐसी कोई शारीरिक व्याधि नहीं है, जो दूध के यथाविधि सेवन करने से न मिट जाय। शरीर की कमियों की पूर्ति हेतु दूध से श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं। अधिकांश व्यक्तियों की सामान्यतया पाचन शक्ति ठीक नहीं होती, इसलिए उन्हें ऐसे भोजन की आवश्यकता होती है, जो शरीर का पोषण तो भली प्रकार कर सके पर जिसके पचाने में अधिक खर्च न हो। ऐसा सबसे अंच्छा और प्राकृतिक भोजन दूध ही है। इसमें हमारी आवश्यकतानुसार सभी पोषण तत्त्व मौजूद रहते हैं। छोटे बालक बहुत समय तक दूध पर खूब स्वस्थ रहते हैं और अनेक वृद्ध भी केवल दूध का सेवन करके वर्षों तक जीवित रहते देखे गये हैं। आधुनिक ग्रन्थों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें किसी कारणवश एक व्यक्ति को ५० वर्ष और दूसरे को ५५ वर्ष केवल दूध पर रखा गया और वे स्वस्थ रहकर सब तरह के काम करते रहे। यही कारण है कि उन तमाम बीमारियों के लिए जिनको अंग्रेजी में 'न्यूनता की बीमारी' (डिफीशिऐन्सी डिसीजेज) कहते हैं दूध का सेवन ही सबसे बड़ा इलाज कहा गया है।

दूध के द्वारा चिकित्सा करने का निश्चय करने के बाद अनजान व्यक्ति विशेष भूलें कर बैठते हैं। पहली भूल तो यह है कि वह पाचन प्रणाली (मुँह से लेकर मलद्वार तक) की तैयारी किए बिना ही ठोस भोजन बन्द करके एकदम दुग्धाहार शुरू कर दें और दूध को पानी की तरह पीने लगें। दूसरी भूल यह हो सकती है कि कोई मनुष्य एक-डेढ़ सेर दूध रोज पीवे और यह समझ ले कि मैं दुग्धाहार कर रहा हूँ। कुछ लोग ऐसे भी देखे गये हैं, जो दो-तीन बार ठोस भोजन खा लेते हैं और बीच-बीच में थोडा-थोड़ा करके सेर, दो सेर या अधिक दूध भी लेते हैं। वे यह समझते हैं कि हम दुग्धाहार पर हैं अथवा दुग्ध चिकित्सा कर रहे हैं। ऐसे विचार अनजानपन के चिन्ह हैं और उनसे बचना चाहिए। जो लोग दूध को औषधि की तरह सेवन करना चाहते हैं और जिनकी इच्छा है कि इस प्रकार दुग्ध चिकित्सा से उनका कोई रोग दूर हो जायेगा या गिरे हुए स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है तो उन्हें चिकित्सकों द्वारा बतलाया सब नियमों का पूर्ण रूप से पालन करते हुए इस चिकित्सा को करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूध कच्चा, धीमी आँच पर एक उफान गरम कर ठण्डा किया हुआ कुकर में भाप से गरम किया अथवा मन्द आँच पर धीरे-धीरे गरम किया हो सकता है। दुग्धकाल में कभी-कभी कच्चे दूध का आंशिक या पूर्ण प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय पद्धति के अनुसार दूध को मिट्टी के पात्र में रखकर कपड़े से लपेटकर गीली मिट्टी में रखते हैं। यदि उनमें स्वच्छता आदि की सम्भावना न हो तो गरम कर लेना ही हितकर है। धारोष्ण का कच्चा दूध श्रेष्ठ माना गया है। जिनका पेट ठीक है, आँव अथवा पतले दस्त नहीं होते, आदतें नियमित हैं—उन्हें इसी का सेवन करना चाहिए। इसमें विटामिन 'सी' पूर्णतः सुरक्षित रहता है। एक उफान पर गरम किए दूध में विटामिन 'सी' तो कम हो जाता है पर 'ए' मलाई की तरह के नीचे पूर्णतः सुरक्षित रहता है। भाप से गरम किया दूध अधिक पोषक होता है, कब्ज नहीं करता। दुग्ध कल्प प्रयोजन हेतु उपयुक्त नहीं। यदि दही बनाकर मक्खन निकालना हो तो भी दूध को मन्द आँच परम किया जाय।

दुग्ध कल्प के कुछ साधारण नियम इस प्रकार हैं— (१) दुग्ध चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व कम से कम एक दिन उपवास अवश्य कर लिया जाय। पेट-संस्थान की पूर्ण शुद्धि होने पर पाचन शक्ति यथेष्ट मात्रा में बढ जाती है। (२) एक बार कल्प आरम्भ करने पर अपनी क्षमतानुसार २४ घण्टे की मात्रा स्वय निर्धारित कर लेना चाहिए। इस बीच पानी कम से कम लें। एक बार में ३०० ग्राम दूध से अधिक न लें। जो भी पियें, यथा सम्भव चीनी रहित हो, एवं धीरे-धीरे चम्मच से स्वाद लेकर पीयें। आजकल की स्थिति को देखते हुए २४ घण्टे में दो या तीन लीटर की मात्रा अधिकतम है। (३) पहले दिन कम से आरम्भ कर मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। केवल दिन-दिन के १२ घण्टे में पीना चाहिए। रात्रि का समय पूर्णतः उपवास युक्त हो। (४) कुछ लोगों को आरम्भ में पेट में वायु अधिक बनने से गुड-गुड़ाहट अधिक होती है, डकारें आती हैं, ऐसे में एक दिन उपवास कर लेना अधिक श्रेष्ठ। (५) कब्ज की स्थिति में शुद्ध पानी का एक एनिमा ले लेना ठीक रहता है।

किसी भी एक आहार का कल्प करने में एकरसता की स्थिति आ जाती है। ऐसे में यह जरूरी है कि मन प्रसन्न हलका-फुल्का रखा जाय। प्रसन्नता, उत्साह, चिकित्सा के प्रति श्रद्धा से जठराग्नि प्रबल होती है। हमेशा यही भावना करनी चाहिए कि "मेरा जो भी इलाज हो रहा है, उसमें अवश्य सफलता मिलेगी। कोई भी मानसिक अवरोध या पुराने संस्कार मुझे इस निश्चय से विचलित नहीं कर सकते।"

(२) मट्ठा एवं दही कल्प

दूध की तुलना में दही हल्का होता है। गर्मी के मौसम में दूध के स्थान पर दही-मट्ठे का प्रयोग अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। दुग्ध कल्प की अवधि में यदि पतले दस्त होने लगें अथवा संग्रहणी- या अमीविएसिस की पुरानी बीमारी से साधकग्रस्त हो तो दही का प्रयोग करना होता है। दमा के रोगी को मीठा दही तभी अनुकूल पड़ता है, जब दम शमन का आर्युवेदोपचार कर लिया गया हो एवं वह औषधि से नियंत्रण में हो। दही का प्रयोग करने से पूर्व उसे एक छोटी मथनी से मथ देनी चाहिए। ताकि उसके सब कण टूट जायें व वह मट्ठा का रूप ले ले। मट्ठा दही से भी अधिक सुपाच्य है। मक्खन निकालकर दही में आधे अनुपात में जल मिलाने पर छाछ बन जाती है। छाछ में शुद्धि एवं पोषण दोनों ही कार्य करने वाले होते हैं। आमाशय एवं ऊर्ध्वगामी पाचन संस्थान को इसे पचाने के लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। शरीर के सहजीवी एन्जाइम उत्पादक जीवाणु फ्लोरा जैसे ही जीवाणु इसमें भी होते हैं। ये रोगोत्पादक जीवाणुओं से आँतों की नित्य शुद्धि करते रहते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार मट्ठा (तक्र) अग्नि दीपक, कफ-वात शामक उदर-शोथ नाशक, स्वादिष्ट व खट्टा होता है। यह संग्रहणी, बवासीर पेट के रोग, मूत्रावरोध, अरुचि, वमन, वातशूल आदि को दूर करता है। विद्वानों के अनुसार मट्ठा तुरन्त बनाकर उपयोग में लिया जाय। ऐसी तक्र ही सच्चा लाभ पहुँचाता है। मदनपाल निघण्टु के अनुसार शीतकाल में संग्रहणी रोग में, अर्श, कफ, रोग, वात-व्याधि,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्रोतों के बन्द होने पर तथा मन्दाग्नि में तक्र अमृत समान है।

भाव प्रकाश निघण्टुकार ने तो वक्र की तुलना देवताओं को उपलब्ध अमृत से की है और इसे भूतल पर मनुष्यों के लिए स्वास्थ्य सम्वर्धन हेतु विधाता की अनुपम भेंट कहा है।

मट्ठा यदि मलाई सहित दही को मथकर बनाया जाय व उसमें पानी न डाला जाय तो घोल, मलायी निकालकर मथ लिया जाने पर मथित, तीन भाग दही व एक भाग पानी मिलाकर मथा जाने पर तक्र तथा अधिक भाग पानी व कुल भाग मक्खन रहित दही होने पर छाछ कहलाता है। आयुर्वेद ने तक्र को ही चिकित्सा हेतु श्रेष्ठ माना है। इसका प्रयोग वात रोग में सैंधव लवण, सौंठ, भुना जीरा डालकर पिया जाता है। पित्त रोग में शक्कर मिलाकर मीठा तक्र पीना श्रेष्ठ मानते हैं और कफ रोग में त्रिकुटाचूर्ण (सौंठ, पीपल, कालीमिर्च समभाग) के साथ।

रासायनिक दृष्टि से दही ८६.१ प्रतिशत आर्द्रता, ३.१ ग्राम प्रतिशत प्रोटीन्स, ४ ग्राम प्रतिशत वसा, ०.८ ग्राम प्रतिशत खनिज लवण, ३ ग्राम प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, ६० किलो कैलोरी प्रति १०० ग्राम, १४६ मिलीग्राम प्रतिशत कैल्शियम, ६३ मिलीग्राम प्रतिशत फास्फोरस, १०२ माइकोग्राम प्रतिशत विटामिन-ए तथा क्रमशः ०.०५, ०.१६, ०.१, ०.१ मिलीग्राम प्रतिशक की मात्रा में थॉयमिन, रिबोफ्लेबिन, नियासिन एवं विटामिन 'सी' होते हैं। छाछ में आर्द्रता बढ़कर ६७.५ प्रतिशत हो जाती है। शेष पोषक तत्वों की मात्रा में प्रति १०० ग्राम कमी तो हो जाती है पर वे अधिक पाचक, अवशोषण योग्य बन जाते हैं। तक्र में लैक्टिक एसिड एवं सिट्रिक एसिड अतिरिक्त मात्रा में होते हैं, जिनका मूल कार्य है रस ग्रन्थियों को उत्तेजित करना। रक्त शुद्धि, रक्ताभिसरण प्रक्रिया को बढ़ाकर विकारों को मूत्र मार्ग से निकालने में सभी घटकों की प्रमुख भूमिका रहती है।

छाछ-मट्ठा का प्रयोग वहाँ ठीक बैठता है जहाँ आँतों के स्वभाव एवं उनकी क्रिया पद्धति के अनुकूल इनकी आवश्यकता समझी जाय। इनमें संकोचन गुण है। अतः कोष्ठबद्धता, (कांस्टीपेशन-कब्ज) प्लीहा वृद्धि के रोगियों को यह अनुकूल नहीं बैठता। इसीलिए कल्प का निर्धारण स्वयं न कर उचित मार्गदर्शक द्वारा ही किया जाना चाहिए।

जिसके लिए अनुकूल माना जाए, उसे अन्न एवं जल बन्द कर एक दिन उपवास करा के तक्र या मट्ठा कल्प करना चाहिए। मट्ठा ताजा ही बनाया जाय एवं गाय के दही का प्रयोग हो। मट्ठे में स्वभावतः पानी इतना होता है कि उसे अलग से लेने की आवश्यकता नहीं होती। पहले व दूसरे दिन ३-४ बार में आधा-आधा लिटर तक्र सेवन किया जाय। पहले कुछ दिनों में जल की आवश्यकता हो तो ले भी सकते हैं पर यथा सम्भव कम लें। जठराग्नि के बलानुसार तक्र की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जा सकती है। फिर भी कल्प की मर्यादाओं को ध्यान में रखकर पूरी अवधि में थोड़ा कम ही लिया जाय तो शोधन-तप एवं सृजन योग दोनों ही प्रयोजन पूरे हो सकते हैं। जैसे ही कल्प समाप्त करते हैं, पथ्य क्रम धीरे-धीरे आरम्भ हो। नियमित आहार पर आने के लिए एक माह की कल्पावधि वाले साधक को न्यूनतम एक सप्ताह तो लेना ही चाहिए।

(३) अन्नाहार कल्प

कल्प साधना के प्रथम वर्ष में शुरूआत अमृताशन-दलिया कल्प से की गयी है, जिसे वाष्प द्वारा पकाया जाता है और १ माह की अवधि तक बिना स्वाद को अधिक महत्व देते हें सतत् लिया जाता है। सात्विक अन्न की महत्त अपने स्थान पर है। स्वास्थ्यवर्धक पक्ष पर अधिक विस्तृत चर्चा न भी की जाय तब भी इस कल्प-प्रक्रिया से सम्भावित शरीरगत, मनोगत, परिवर्तनों की चर्चा तो भी अभीष्ट हो जाती है। एक ही आहार को समग्र मानते हुए शास्त्रों ने उन्हें ग्रहण करने का विधान बनाया है। सच तो यह है कि शरीर के अपने पाचक रस विभिन्न खाद्यान्नों को अपने उपयुक्त परिवर्तित-परिवर्धित करते रहते हैं। दुम्बा मेढा अपने शरीर की चर्बी का सर्वाधिक अंश मात्र घास से प्राप्त कर लेता है। शरीर के पाचक रस सत् जैसी स्वत्वरहित वस्तु को भी उलट-पुलट कर शरीर के लिए उपयुक्त क्षमता वाले रक्त में बदल देते हैं। एकाहार में जो मन संयम जुड़ा है उससे कल्प

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रयोजन पूरा हो जाता है। शरीर में कोलेस्टेरॉल का घटना, आँतों का सबल होना, कब्ज-आँव की आदत जन्य कष्टकारी प्रतिक्रया से पूर्णतः मुक्ति, विकारों का निवारण तथा भूख का खुलने लगना जैसे फलदायी परिणाम आहार चिकित्सा के गिनाये जा सकते हैं, जिनका शरीरगत स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। मनोबल में वृद्धि, तनाव का शमन तथा आत्म सन्तोष ऐसी उपलब्धियाँ हैं, जिन्हें आहार-कल्प करने वाला साधक शीघ्र ही अनुभव करने लगता है। यह तो मात्र मन है जो प्रारम्भ में अड़चन डालता है एवं स्वादेन्द्रियों के लिये अभ्यस्त आहार को ग्रहण करने के लिए ठेलता रहता है। यह भी एक परीक्षा है। जो साधक अन्नाहार की एक माह कल्प वाली परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं, वे आगे और भी बड़ी तपश्चर्या करने के पात्र बन जाते हैं। मात्र एक ही औषधि, दुग्ध अथवा मट्ठे पर रहना, तब अधिक अवधि के लिए भी सम्भव है। इस आहार-कल्प को कड़ी कल्प चिकित्सा का प्रिमेडीकल टेस्ट माना जा सकता है।

गेहूँ चावल-मूँग के सम्मिश्रण से बनी खिचड़ी (अमृताशन), गेहूँ का दलिया, दाल-चावल एवं दलिया-दाल का सम्मिश्रण अथवा हविष्यान्न (गेहूँ, जौ, तिल) में से किसी एक को कल्प साधना हेतु चुना जा सकता है। गेहूँ मक्का, मूँगफली, बाजारा, चावल, चना इत्यादि से किसी एक खाद्यान्न को कल्प प्रयोग हेतु एकांकी रूप से साधक वाष्प सिद्ध कर अथवा अंकुरित कर लेते रह सकते हैं। प्रत्येक अपने आप में सम्पूर्ण हैं। प्रारम्भ में मन उचटने पर भी कुछ ही दिनों में यह आहार ऐसा सुस्वादु लगने लगता है कि स्वाद व पोषण दोनों ही प्रयोजन पूरे होते हुए शोधन-कल्प की प्रक्रिया चल पड़ती है। ध्यान यही रखना है कि उनमें किसी को भी क्षुधा तृप्ति की सीमा तक न ग्रहण कर उतना ही लिया जाय जितना निर्धारण प्रारम्भ में किया गया। यह ग्राह्य-पाचन योग्य मात्रा से कम ही हो ताकि उपवास का प्रयोजन भी पूरा हो तथा कल्प के साथ जुड़ी तप-तितिक्षा भी सम्पन्न होती चले। शांतिकुन्ज में अभी तो दाल-दलिया, अमृताशन, मूँग आदि का क्रम चलता है लेकिन बाद में भिन्नताएँ साधक की प्रकृति के अनुसार बढ़ाई जाती रहेंगी।

जिस प्रकार कच्चा भोजन स्वाभाविक आहार माना जाता है, उसी प्रकार वाष्प सिद्ध अन्नाहार एक प्रकार का विज्ञान सम्मत, पुष्टिवर्धक, स्वाभाविक, समग्र भोजन कहा जा सकता है। बिना पीसे कच्चा गेहूँ चावल, या कोई अन्य खाद्यान्न तो कोई भी खा नहीं सकता है। प्राकृतिक आहार और उसकी पाक-पद्धति में समन्वय बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि बिना आवश्यक तत्वों में कोई परिवर्तन लाये उन्हें भाप से ही पकाकर स्वाभाविक रूप में ही उन्हें ग्रहण किया जाय। अनाजों में शक्ति और स्निग्धता, प्राण और लावण्य, उसमें विद्यमान जल तत्व के कारण होते हैं। यदि उन्हें सुखाकर समाप्त कर दिया गया तो प्राण विहीन अन्न किस काम का। स्टार्च-विटामिन्स आदि के बारे में भी यही बात लागू होती है। वाष्प-प्रक्रिया से इनकी हानि न्यूनतम होती है तथा ये अवशोषण योग्य रूप में (एसीमिलेबल) में बदल जाते हैं। अंकुरित रूप में अथवा भाप से पकाकर लेने पर, अच्छी तरह चबाकर, रस एन्जाइमों से अन्न के प्राण तत्वों का संयोग करा देने पर ही आहार ग्रहण करने की प्रक्रिया पूर्ण होती है। किसी भी रूप में पेट में तो भोजन जाना ही चाहिए, इससे भर काम नहीं चलता। स्वास्थ्य सुधार, आमाशय-आँत संस्थान की क्षमता-वृद्धि के अतिरिक्त मनोविकारों के शमन तथा मनोबल वृद्धि हेतु भी ऐसे आहार का कुछ दिन लेने रहना अनिवार्य है। इससे जुड़ा उपवास शोधन तो करना ही है।

वाष्प सिद्ध प्रक्रिया द्वारा वस्तुतः हमें पाक विद्या में क्रान्ति ही लानी हे। प्रेशर, कुकर, स्टीम कुकर आदि इन दिनों खूब प्रचलित हैं। पर उनका प्रयोजन जिसके लिए था, उस कार्य में उनका उपयोग नहीं हो पा रहा। समय, श्रम, ईंधन की बचत तथा आहार की गुणवत्ता वृद्धि का यह सर्वश्रेष्ठ साधन माना जा सकता है। पूर्णान्न खिचड़ी, दो अन्न का अमृताशन, सादी खिचड़ी एवं दलिया तो साधारण-सा परिवर्तन मात्र ढर्रे में चाहते हैं। उनमें अनाज (कार्बोहाइड्रेट), मूँग (प्रोटीन) मूँगफली (फैट या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वसा) इत्यादि सभी होता है। क्षार-लवण विटामिन्स (पानी में घुलनशील) जोड़ना हो तो हरी तरकारी भी डाल सकते हैं पूणान्न खिचड़ी में ज्वार, बाजरा गेहूँ में से कोई एक अनाज १०० ग्राम (अंकुरित), अंकुरित मूँग ३० ग्राम, अंकुरित मूँगफली १० ग्राम, १० ग्राम नारियल, लगभग पाव भर पानी तथा मात्र १ चम्मच सैंधव नमक डाला जाता है थोड़ी-सी हल्दी डाली जा सकती है। इसमें सारे पोषक तत्व विद्यमान हैं। सादी खिचड़ी में १०० ग्राम चावल, ५० ग्राम अंकुरित मूँग, १० ग्राम अंकुरित मूँगफली, लगभग १/२ किलो पानी, नमक २।। ग्राम डालते हैं। पाचन-क्रिया को फिर से अपने सही रूप में लाने के लिए यह एक सर्वश्रेष्ठ आहार है। दलिया खाना हो तो मोटा दला हुआ अन्न ५० ग्राम, १५० ग्राम पानी, ३० ग्राम गुड़ की राव या शर्करा एवं ५ ग्राम नमक डालकर सुपाच्य सुस्वाद बनाया जा सकता है। इस आहार में पोषण के सभी तत्व विद्यमान हैं। रोटी की अपेक्षा यह अधिक स्वादिष्ट व सुपाच्य है। अमृताशन में समानुपात में दाल व चावल लेकर नाममात्र का सैंधव लवण तथा हल्दी डाली जाती है। अपनी आवश्यकतानुसार मात्रा निर्धारित कर कोई भी व्यक्ति मात्र इतने पर भी रह सकता है।

चावल, गेहूँ और मोटे अनाज भारत के मुख्य खाद्यान्न हैं। ये कैलोरी प्राप्ति के सस्ते से सस्ते साधन माने जाते हैं। भारत की बहुसंख्य जनता को ७० से ८० प्रतिशत कैलोरी इन्हीं से मिलती हे। पर इनके बारे में ठीक जानकारी न होने से सामान्यतया इन्हें विकृत रूप से लेकर नष्ट कर दिया जाता है। फलतः ग्रहण करते हुए भी व्यक्ति कुपोषण का शिकार बना रहता है। कुपोषण खाद्य का अभाव ही नहीं विकृति भी है—यह अच्छी तरह समझा जाना चाहिए। चावल में खाद्यान्न प्रोटीन अच्छी मात्रा में होते हैं। बिना पालिश किया चावल लिया जाय तो उसकी पोषण क्षमता अच्छी होती है—इसमें सामान्यतया १२.६ प्रतिशत आर्द्रता, ८.५ ग्राम प्रतिशत प्रोटीन्स, ०.६ ग्राम प्रतिशत वसा, ७७.४ ग्राम प्रतिशत कार्बोज, ०.६ प्रतिशत खनिज लवण, ३४६ कैलोरी प्रति १०० ग्राम होते हैं। प्रति १०० ग्राम में १० मिली ग्राम विटामिन-बी १, ४ मिलीग्राम विटामिन-बी २ तथा ०.१२ मिली ग्राम विटामिन-बी ६ होता है। गेहूँ (दले हुए) में आर्द्रता कुछ कम, प्रोटीन १८.२ ग्राम प्रतिशत, वसा १.६ ग्राम प्रतिशत, कार्बोज ७७ ग्राम प्रतिशत; ऊर्जा ३५६ कैलोरी प्रति १०० ग्राम तथा कैल्सियम, फास्फोरस व लोहा क्रमशः ३७, ३६४ व ५ मिली ग्राम की मात्रा में होते हैं। यह सन्तुलन की दृष्टि से श्रेष्ठ अनुपात है। ज्वार, बाजरा, जौ, कुटू, कंगनी, मकई, जई, रागी, मुरमुरा, साँवा, कुठकी आदि मोटे अनाजों की श्रेणी में आते हैं, जिनमें न्यूनाधिक रूप से उपरोक्त सम्मिश्रण सन्तुलि अनुपात में होता है।

दालों में चना, उड़द, लोबिया, मूँग, कुलथी, मसूर, मोठ, मटर, राजमाह, अरहर एवं सोयाबीन की गिनती होती है। इनमें चना वसा (५.३ ग्राम प्रतिश), प्रोटीन्स (१७.१ ग्राम प्रतिशत) तथा कैल्सियम, फास्फोरस लोहा (क्रमशः २०२, ३१२, १०.२ मिली ग्राम प्रतिशत) की दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न माना जाता है। मूँग में प्रोटीन का अनुपात २४ ग्राम प्रतिशत व वसा का १.३ प्रतिशत है लेकिन खनिज-लवणों तथा विटामिन-बी की दृष्टि से यह भी अपने आप में समग्र है। (कैल्सियम १२४, फास्फोरस ३२६, लोहा ७.३)। इनमें स्वाभाविक रेशे भी ४.१ ग्राम प्रतिशत की मात्रा में होते हैं, जो पाचन-प्रक्रिया में सहायक होते हैं। सभी खाद्यान्नों का विवरण देना तो सम्भव नहीं, पर जहाँ जैसा भी उपलब्ध हो उसी को स्वाभाविक रूप से लिया जा सके तो समग्र पोषण आहार अपने आप में ये खाद्यान्न भी बन सकते हैं, इस तथ्य का प्रतिपादन किया जा रहा है। अंकुरीकृत अन्न वाष्प सिद्ध होकर उन सभी उपादानों को जो शरीर का निर्माण हेतु आवश्यक है, समुचित मात्रा में पहुँचाते हैं व अपने सूक्ष्मतम रूप में अवशोषित होकर शोधन प्रक्रिया में सहायक होते हैं। इस तथ्य भर को समझ लिया जाय तो खाद्य सम्बन्धी अधिकांश समस्याएँ हल हो सकती है। जहाँ कुपोषण, खाद्य में पोषक तत्वों का अभाव एक समस्या है, वहाँ उनकी विकृति से शरीर को होने वाली हानि अपने आप में एक विडम्बना है, जिससे बहुसंख्यक लोग पीड़ित देखे जाते हैं। साधना क्षेत्र में उतरने के पूर्व खाद्य की शक्ति सामर्थ्य का उद्‌भव व उससे अपनी जीवनी शक्ति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्धि करने की विद्या समझना प्रत्येक के लिए अभीष्ट है।

(४) फलाहार कल्प

फलों में जिन्हें प्रमुख माना जाता है, वे हैं—आम, खरबूजा, पपीता, छुहारा, जामुन, सन्तरा, केला, शहतूत, फालसा, सेव, नाशपाती, अमरूद, शरीफा। यों तो गूदेदार, ठोस रसीले फलों में ओर भी कई हैं पर वे कल्प की दृष्टि से उपयुक्त नहीं। ऊपर वर्णित फलों में भी कुछ ऐसे हैं, जो अत्यधिक महँगे होने के कारण सबके द्वारा लिया जा सकना सम्भव नहीं। फल विटामिन-सी के अच्छे स्रोत हैं। इनमें कैरोटीन व बी-काम्पलेक्स भी प्रचुर मात्रा में होता है। सर्वाधिक प्रयुक्त केला कार्बोहाइड्रेट की दृष्टि से सम्पन्न है। यदि एक ही आहार पर रहना हो तो प्रकृति के निर्धारणनुसार किसी भी एक फल पर आसानी से रहकर एक माह की अवधि पूरी की जा सकती है। फल पथ्य भी है, औषधि भी। यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि फलों से मिट्रिक एवं अन्यान्य अम्ल रसों के प्रभाव से रोगाणु बच नहीं पाते। इस प्रकार ये आंत्रशोधक प्रक्रिया के साथ ही बलवर्धन भी करते हैं। ये शरीर को हितकारी जीवाणु क्लोरा को भी जन्म देते हैं। फलों की एक विशेषता है कि ये सभी क्षारधर्मी होते हैं। अम्लधर्मी खाद्य लेने और अन्यान्य विहार की त्रुटियों के कारण जो अम्ल विष उत्पन्न होता है, फलों का क्षारधर्मी रस उन्हें नष्ट कर देता है। शरीर में संचित यूरिक ऐसिड (जो गठिया, वात रोग, गुर्दे की बीमारी, हृदय रोग आदि के लिए उत्तरदायी होता है) जैसे विष को भी ये निकाल बाहर करता है। सभी फल अत्यन्त सुपाच्य होते हैं। उनका ताप मूल्य अति अल्प होता है। इसी कारण फलाहार से उपवास करना एक प्रकार की चिकित्सा कहा गया है।

कल्प की दृष्टि से चार फल ही निर्धारित हैं, उपयुक्त माने गये हैं—आम, खरबूजा पपीता एवं अमरूद। आम तो खट्ठा-मीठा मल माना गया है। यह कार्बोहाइड्रेट (११.८ ग्राम प्रतिशत), विटामिन-ए (४८०० यूनिट्स प्रति १०० ग्राम) तथा विटामिन-सी २१ मिली ग्राम प्रतिशत से युक्त है। मौसम के दिनों में ताजा डाल पर पका आम उपलब्ध हो सकता हो तो शोधन-पोषण की दृष्टि से वह एक सर्वांगपूर्ण आहार है। आम की मंजरियाँ, बौर या पुष्प भी एक प्रकार की औषधि है। इन्हें अतिसार, कफ, पित्त प्रमेह में दिया जाता है। ये प्रदर नाशक व मलरोधक माने गये हैं। पका आम वीर्यवर्धक, सुखदायक, वातनाशक, वर्ण को सुन्दर बनाने वाला, पित्त शामक, कसैला, अग्नि-कफ तथा शुक्रवर्धक है, श्लेष्मा तथा रुधिर के विकारों को दूर करता है यह दस्तावर तभी होता है, जब कृत्रिम रूप से बनाया जाता है। चूसने वाला आम हल्का, सुपाच्य, विषनाशक व बलवर्धक है, जबकि काटा हुआ आम आलस्य बढ़ाता व देर से पचता है। कल्प के लिए आम चूसे जा जा सकने वाले, ताजे, पतले रस युक्त, मीठे ही प्रयुक्त होते हैं। मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाती है। अन्तिम समय में धीरे-धीरे मात्रा कम कर दूध लेने लगते हैं। कल्पकाल में यथा सम्भव पानी नहीं लिया जाता। कमजोर व्यक्तियों को समानुपात में प्रारम्भ से दूध लेना हितकारी होता है। जिन्हें शोधन व मेदोनाश अभीष्ट है, वे बिना दूध के आम कल्प करें। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अधिक आमखाने से मंदाग्नि, विषम ज्वर, रक्त विकार, कब्ज भी पैदा हो सकता है। अतः मात्रा धीरे-धीरे ही बढ़ाकर आधा उपवास कर लेना श्रेष्ठ है ताकि पाचन-प्रक्रिया पूरी हो सके व कल्प-प्रयोजन सम्पन्न हो सके।

आम कल्प स्वस्थ व्यक्ति तो कर ही सकते हैं। संग्रहणी, श्वांस, अरुचि, अम्ल, पित्त, यकृति वृद्धि रोगियों में यह विशेष भूमिका निभाता है। क्षय, फुफ्फस-व्रण और दौर्बल्य में यह माँस-रक्त-मज्जा बढ़ाता है। आम्र-कल्प की अवधि में यदि वायु शूल अथवा कफ का प्रकोप होता दिखाई पड़े तो अदरक सैंधव लवण थोड़ी मात्रा में लेने से सामयिक कष्ट निवारण हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि शरीर शोधन सामर्थ्य से कही अधिक मात्रा में ली जा रही है। आम के रस के साथ जब लिया जाय, धारोष्ण गौ दुग्ध ही लिया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खरबूजा एक सर्वसुलभ सस्ता फल है, जिसका बहुधा कल्प किया जाता है। इसे फलराज या दशागुल भी कहते हैं। यह सात्वीकरण उत्पन्न करने वाला औषधि समान फल है, जो ग्रीष्म ऋतु में सब जगह उपलब्ध होता है। आयुर्वेद मतानुसार इसे मूत्रक, बलवर्धक, कोष्ठशोधक, वीर्यवर्धक, उन्माद नाशक तथा उदर विकार शामक बताया गया है। हृदय रोगियों के लिये यह उत्तम औषधि है। इसका कल्प भी निरापद है। स्त्रियों के गर्भाशय के अपने स्थिति से हटन पर शिराओं पर दबाब से जो सूजन पैदा हो जाती है उस स्थिति में खरबूजे का कल्प लाभ करता है। खरबूजा व दूध एक साथ कभी नहीं लिये जाते। यदि मध्यावधि में दस्त आने लगें तो बीज का छिलका घोंटकर पानी के साथ देने में तुरन्त आराम मिलता है।

खाद्य विज्ञान की दृष्टि से इस फल में ७८ प्रतिशत खाद्य भाग तथा ६५.२ प्रतिशत आर्द्रता होती है। प्रोटीन, वसा, कार्बोज क्रमशः ०.३, ०.२, ३.५ ग्राम प्रतिशत तथा विटामिन-ए ११६ यूनिट्स, विटामिन सी—२६ मिलीग्राम कैल्सियम ३२ व फास्फोरस १४ मिलीग्राम प्रतिशत होते हैं। अपनी संरचना व गुणवत्ता की दृष्टि से कल्प प्रयोजन हेतु एक श्रेष्ठ फल है। आजकल रसीले फल व अन्य फल जहाँ वासी अवस्था में 'कोल्ड स्टोरेज' से उपलब्ध होते है, वहाँ खरबूजा ताजी अवस्था में ग्रीष्म में उपलब्ध रहता है।

पपीता एक ऐसा फल है जिसमें रेचक एवं ग्राही दोनों ही गुण पाये जाते हैं। इसका कल्प आमाशय की कमजोरी, अग्निमंदता, कोष्ठबद्धता के रोगी के लिए तथा बवासीर से त्रस्त व्यक्ति के लिए बहुत लाभदायक रहता है। पके पपीते में ७५ प्रतिशत खाद्य भाग होता है। ६० प्रतिशत आर्द्रता के अतिरिक्त इसमें ०.६ ग्राम प्रोटीन, ०.१ ग्राम वसा, ०.५ ग्राम खनिज-लवण पति १०० ग्राम तथा ७.२ ग्राम प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट होता है। कैल्सियम १७ मिलीग्राम, फास्फोरस २३ मिली-ग्राम, विटामिन 'ए' ३६६ ग्राम तथा विटामिन सी ५७ ग्राम प्रतिशत होते हैं। यह अपने आप में एक समग्र टानिक फार्मूला है। इसके एन्जाइम अपने आप में चमत्कारी हैं। पाचन संस्थान को वे सबल बनाते हैं तथा बिगड़े हुए संस्थानिक कार्य को पटरी पर लाते हैं। यकृत वृद्धि में यह औषधि के समान काम करता है। कृमियों को मारने की सामर्थ्य भी इसमें है। यह एक उत्तम रक्त शोधक है। ताजा पपीता जो डाल पर पका हो, धीरे-धीरे मात्रा बढ़ाते हुए लिया जाय एवं सामान्य आहार पर आते समय कम कर दिया जाय।

अमरूद सर्वांग उपयोगी समग्र आहार है। इसे विटामिन 'सी' प्रधान फल माना जाता है। जहाँ नीबू में ३१ से ६८ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम विटामिन 'सी' होता है, वहाँ अमरूद में ३०० से ४५० मिलीग्राम तक। अधिक पका अमरूद स्वाद में तो मीठा होता है पर खाद संरचना एवं विटामिनों की मात्रा की दृष्टि से अत्यन्त कमजोर। कड़ा छिलके वाला अमरूद अर्ध पक्वता की स्थिति में ही खाना चाहिए। अमरूद के फलों में आर्द्रता ८१.७ प्रतिशत, प्रोटीन्स ०.६ ग्राम प्रतिशत, कार्बोज ११.२ ग्राम प्रतिशत तथा कैल्सियम, फास्फोरस, लोहा क्रमशः १०, २३ एवं १.५ मिलीग्राम प्रतिशत होता है। विटामिन ए इसमें नहीं होता लेकिन बी कॉम्पलैक्स, बी, सी की दृष्टि से सुसम्पन्न है। आयुर्वेद के मतानुसार यह मधुर कषाय, शीत, पित्त शामक, कफ, वात वर्धक, मूत्रल व आमाशय शोधक है। पीलिया, मूत्र कृच्छ, अश्मरी (पथरी) के लिए यह औषधि है।

इन चारों फलों के अतिरिक्त केला, जामुन, कुआरा, संतरा, शहतूत, फालसा, सेब, नाशपाती, बिल्व एवं शरीफा इत्यादि फलों का भी कल्प परिस्थिति एवं प्रकृति के अनुसार किया जा सकता है।

(५) शाकाहार कल्प

हरी तरकारियाँ हमारे शाकाहारी राष्ट्र का प्रमुख भोजन हैं। पालक, चौलाई, मैथी, बथुआ, तोरई, परवल, लौकी, टमाटर व ककड़ी ऐसी तरकारियाँ हैं, जो सर्वोपलब्ध हैं। इनमें सर्वगुण सम्पन्न हैं व इनमें से किसी एक पर बने रहना प्रत्येक के लिए सुगम है। ये सभी कैल्सियम् लोहा, कैरोटीन (विटामिन ए, विटामिन सी), राइबोफ्लेबिन एवं फौलिक अम्ल के के श्रेष्ठतम स्रोतों में गिनी जाती हैं। सामान्य स्वास्थ्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाये रखने, विकारों का शोधन करने तथा स्वास्थ्य सम्वर्धन के विविध उद्देश्यों को पूरा करने में उनकी भूमिका सर्व विदित है। मूल व केन्द्र प्रधान खाद्य कार्बोज के स्रोत होते हैं। इनका स्टार्च पचने में कठिन होता है, अतः इनका कल्प कुछ कठिन है। फिर भी गाजर एवं शकरकन्द ऐसे दो कन्द हैं, जिनका प्रयोग किया जा सकता है।

आयुर्वेद के शाक वर्ग प्रकरण के अन्तर्गत इनका वर्णन करते हुए उन्हें चिकित्सार्थ सर्वोत्तम यथार्थ माना है। चरक, सुश्रुत, बाग्भट्ट चक्रपाणि, भावनिदा प्रभृति विद्वानों ने इस वर्ग की महत्ता का आयुर्वेद में विस्तार से वर्णन किया है। मूलतः इन सभी के भीतर ६० प्रतिशत भाग जल का होता है। अमिश प्रोटीन व वसा भी उनमें कम होता है लेकिन खनिज-लवण तथा विटामिनों की दृष्टि से ये सम्पन्न माने जाते हैं। देह की कार्य क्षमता बढ़ाने, परिपाक शक्ति को तेजवान बनाने, अस्थि-दाँतों के निर्माण आदि में उनकी भूमिका असंदिग्ध है। इनके भीतर सेल्युलोज नामक पदार्थ यथेष्ट मात्रा में होता है। यह आँतों में उपस्थित मल को सूखने से कड़ा नहीं होने देता। आँतों को सदैव गतिशील बनाये रखना इसका मूल कार्य है। इससे कब्ज व उस विकृति से अन्य अनेकानेक रोगों से निवृत्ति मिलती है। अन्य प्रोटीन प्रधान खाद्य (दालें-अन्नादि) से जो रक्त में अम्लता उत्पन्न होती है, उसका भी निवारण शाक वर्ग में विद्यमान क्षारतत्व से हो जाता है। इनके पत्ते सूर्य से आहार सीधे ग्रहण करते हैं। (फोटो शिन्थेसिस् प्रक्रिया द्वारा)। अतः ये मनुष्य के लिए एक परिपूर्ण खाद्य बनाते हैं। कल्प की दृष्टि से—विशेषकर साधना क्षेत्र को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। इनकी कारण शक्ति के बलबूते ही इन्हें यह श्रेय मिला है।

इन शाकों में पालक सर्वाधिक जनप्रिय है। यह विशेष रूप से लोहा (१०.६) मिली ग्राम प्रतिशत), कैल्सियम (७३ मिली ग्राम प्रतिशत) प्रधान पत्तीदार साग है। अन्य खनिज भी इसमें प्रचुर मात्रा में होते हैं। रक्ताल्पता, रक्त पित्त एवं संग्रहणी में यह विशेष रूप से लाभकारी है। यह पथ्य में शीतल है। कौष्ठबद्धता, कब्ज, मूत्र, सम्बन्धी रोग गुर्दे के संक्रमणों को इसका क्षार भाग समाप्त कर देता है। यह पीलिया रोग में तथा अर्श में भी विशेष लाभकारी है। हर ज्वर के बाद पालक के रस को लिये जाने का शास्त्रोक्त विधान पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। यही आधार इसके कल्प का भी है।

चौलाई एक सस्ता सर्वोपलब्ध साग है। इसमें लोहा लगभग २५ मिली ग्राम प्रतिशत तथा कैरोटीन ५५०० माइकोग्राम होता है। अन्य खनिज लवण भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। प्रोटीन व बी कॉम्पलेक्स समूह के विटामिन की सन्तुलित मात्रा इसमें है। इसका सूप या पंचांग का कल्प बनाकर खाते हैं। महर्षि चरक के अनुसार यह रूक्ष, विषघ्न, कफ, पित्त शामक, रक्त पित्तहर, मूत्रमल तथा सारक है। प्रदर रक्त, वमन, अर्श में यह विशेष लाभकारी है। इसे संस्कृत ग्रन्थों में तन्दुलीय, मेघनाद, अल्हमारिष नामों से पुकारा गया है। इसका शाक अपने आप में सम्पूर्ण भोजन है। यह मल-मूत्र दोनों को साफ करने वाला श्रेष्ठ निस्सारक व रक्त शोधक है। इसकी जड़ गर्म, कफ नाशक, रजोरोधक, प्रदर निवारक है। एक ही पौधे में दो विपरीत गुण (जड़ गर्म व पत्ते ठण्डे) इसकी एक अद्भुत विशेषता है।

मेथी की मेथिका, दीपनी, मन्था कई नामों से ऋषियों ने सम्बोधित कर कहा है कि यह शाक वात-कफ शामक, ज्वर विनाशक है। यह एक प्रकार का टॉनिक है। संग्रहणी, अग्निमन्दता व वात रोगों के लिए श्रेष्ठ औषधि है। यह रुचिकारक, भूख बढ़ाने वाली, यकृत-पित्ताशय के रसों को बढ़ाने वाली, मल को बाँधने वाली औषधि है। मैथी के पत्ते पित्तशामक व शोध नाशक होते हैं तथा बीज कृमि नाशक, मधुमेह नाशक है। मैथी में मूलतः कैल्सियम (३६५ मिलीग्राम प्रतिशत), फास्फोरस (५१ मिलीग्राम प्रतिशत), लोहा (१६५ मिलीग्राम प्रतिशत) तथा कैरोटीन (२३४० माइकोग्राम प्रतिशत) होते हैं। अपनी गुणवत्ता के कारण इसे पथ्य व कल्प हेतु शाकों में उत्तम माना जाता है।

रोगों के निवारण व बल-बुद्धि हेतु मेथी की चर्चा कई स्थानों पर की गयी है। पंच कर्म से शुद्धि के उपरान्त प्रतिदिन एक या दो तोले कच्ची मैंथी, मूँग की दाल व जौ की रोटी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पथ्य रोगी का नित्य दिया जाता है। दूसरे सप्ताह ४ से ८ तोला एवं तीसरे सप्ताह आठ से बारह तोला इस प्रकार बढ़ाते हुए क्रमिक विकास में देखा जा सकता है कि रोगी की भूख खुल रही है एवं जीवनी शक्ति बढ रही है। साल भर तक इसके मोदक या सूखे भाग का सेवन भी किया जा सकता है। मेधा वृद्धि, रक्त शोधन, जरा निवारण, नवयौवन की प्राप्ति इस कल्प के अतिरिक्त लाभ हैं।

बथुआ उत्तर भारत में अधिक लोकप्रिय साग है। इसे आदि ग्रन्थों में क्षारपत्र, वास्तुक, शाकराज नाम से सम्बोधित किया गया है। सभी आयुर्वेदिक निघण्टुओं में इसका शाकराज नाम से वर्णन है। यह अग्निदीपक, रुचिवर्धक, शुक्रवर्धक, कृमिनाशक तथा त्रिदोष हर है। यह ज्वर मिटाता है, छिपे दोषों को निकाल बाहर करता है। इसमें खनिज लवण (२.६ ग्राम प्रतिशत), कैल्सियम (१५० मिलीग्राम), फास्फोरस (८० मिलीग्राम), लोहा (४.२ मिलीग्राम) तथा कैरोटीन, बी कॉम्लेक्स व सी विटामिनों की भी अच्छी मात्रा होती है। इसका क्षार अंश मल-मूत्र शोधक है। बढे यकृत, गम्भीर क्षयरोग, हृदय में रक्तावरोध, जलोदर एवं बवासीर जैसी असाध्य व्याधियों में यह औषधि एवं पथ्य दोनों ही भूमिका निभाता है।

यह सर्वविदित है कि गाजर विटामिन ए, फास्फोरस तथा कार्बोज का (क्रमशः १८६० माइक्रोग्राम, ५३० मिलीग्राम, ११ प्रति १०० ग्राम) उत्तम स्रोत है। इसी प्रकार ककड़ी (कर्कटी) कार्बोज, फास्फोरस तथा थायमिन (२.५ मिलीग्राम, ०.०३ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम) एवं पके टमाटर कैल्सियम, फास्फोरस, कैरोटीन बी कॉम्पलेस व सी समूह (४८, २०, ३५१, ०.१२ एवं २७ यूनिट्स १०० ग्राम) की दृष्टि से सुसम्पन्न हैं। प्रश्न संरचना का नहीं इनकी खाद्य की दृष्टि से गुणवत्ता, पाचन क्षमता व पाचक रसों को उत्तेजित करने की सामर्थ्य का है। इसी प्रकार परवल, तोरई, लौकी उत्तम शाक है एवं सरंचना की दृष्टि से समग्र। इनमें से किसी भी एक को अपना खाद्य चुनकर माह भर का कल्प किया जा सकता है। फलाहार से शाकाहार की महिमा अधिक मानी गयी है। वे प्रकृति के और भी समीप हैं। इनकी उपलब्धि हर मौसम में संभव है। सुविधापूर्वक इन्हें अपने ही घर-आँगन में बोकर हर व्यक्ति बिना पराश्रित हुए यथेष्ट मात्रा में बिना अधिक विकृति किये इनका कल्प कर स्वास्थ्य लाभ तथा साधना पथ्य के दोनों ही प्रयोजन पूरे कर सकता है।

(६) औषधि कल्प

एक ही अन्न के आहार कल्प की तरह औषधि कल्प का भी अपनी जगह महत्व है। काष्ठ औषधियाँ मात्र चिकित्सा हेतु नहीं दी जाती। वे कल्प-साधकों की अन्तःशक्ति को उभारती व जीवन शक्ति को बढ़ाती हैं। कल्पकाल के ये सभी उपक्रम व्यक्ति के आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक त्रिविधि पक्षों के समग्र समुच्चय को परिवर्तित करने के लिए नियोजन माने गये हैं। स्थूल औषधियाँ तो बाह्योपचार भर कर पाती हैं परन्तु दिव्य वनौषधियाँ अन्तःकरण का भाव कल्प करने में सफल होती हैं।

वनौषधि पचकर्म चिकित्सांक के विद्वान लेखक पं. हरिनारायण शर्मा वैद्यराज के अनुसार "कल्पेन विधि विशेषण कल्प चिकित्सा" अर्थात् विशेष विधि से की गई चिकित्सा। रसायन सेवन द्वारा कुटी प्रादेशिक एवं वात तापिक विधि से शरीर को नवयौवन प्रदान कर स्फूर्ति भर देने की चर्चा सभी विद्वानों ने समय-समय पर की है। उन सब का मूल उद्देश्य शरीर के शोधन-नवनिर्माण पर ही केन्द्रित रहा है। परन्तु यही कल्प का अर्थ नहीं है। कल्प एक वृहत् परिधि में शरीर मन-भाव संस्थान के परिवर्तन की स्थिति का नाम है। इस कार्य में दिव्य औषधियाँ एकाकी प्रयोग के रूप में मनःस्थिति के अनुरूप प्रयुक्त की जाती हैं एवं लाभ पहुँचाती हैं।

तुलसी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, अश्वगंधा, शतावरी, शुंण्ठी, पलाश, वाकुची, गुडूची, आँवला, हरीतकी, निर्गुण्डी, मुण्डी, चित्रक, मूसली, कुमारी, शाल्मकी, काकजंघा, बच लक्ष्मण, ब्रह्मदण्डी, ज्योतिष्मती, पुनर्नवा, त्रिफला, गोक्षुर, विधारा, वासा, मोथा, काकोली, जीवन्ती, बिल्व भृंगराज, अमलतास, चोपचीन इत्यादि अनेकानेक औषधियों की चर्चा ग्रन्थों में एकाकी अथवा न्यूनाधिक सम्मिश्रण के रूप में कल्प प्रयोजन हेतु की गई है। जितनी भिन्नतायें हैं उतनी ही तरह की फलश्रुतियाँ हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनःसंस्थान के शोधन सुसस्कारों की प्रतिष्ठापना, मेधा सम्वर्धन, प्रखरता, सम्पादन की दृष्टि से शान्तिकुन्ज की कल्पसाधना में तुलसी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी अश्वगंधा, शतावरी, आँवला, गिलोय, विधारा, वासा एवं इन दस औषधियों को ही प्रयोग में लाया जाता है।

इनमें तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। यह एक संजीवनी बूटी है, जो सीधे कारण शरीर को प्रभावित करने वाली निराली औषधि मानी जाती है। इसके नियमित सेवन से शरीर श्रुति स्वास्थ्य रक्षा का प्रमुख आधार बनता है।

वैज्ञानिक, ऋषियों, आचार्यों द्वारा गंगा, गीता, गायत्री की तरह तुलसी वृक्ष को भी भारतीय धर्म संस्कृति का आवश्यक अंग मानना इसकी उपादेयता के फलस्वरूप ही है। तुलसी के गुणों का वर्णन करते-करते शास्त्रकार थक गया तो उसे एक वाक्य में सारी गाथा समाप्त कर दी—

अमृतोऽमृतरूपासि अमृतत्वप्रदायिनी।
त्व मामुद्धर संसारात् क्षीरसागर कन्यके।।

विष्णुप्रिय ! तुम अमृत स्वरूप हो, अमृतत्व प्रदान करती हो, इस संसार से मेरा उद्धार करो।

तुलसी की पूजा-अर्चा से वस्तुतः कोई स्वर्ग लाभ होता है या नहीं, ज्ञात नहीं किन्तु रोग-शोक के नरक में फँसे हुए लोगों के लिए तुलसी सचमुच तनी उपयोगी पाई गई है कि उसे "उद्धारकर्त्री" ही कहा जा सकता है।

तुलसी के अनेक गुणों का प्रकाश उसके अनेक पर्यायवाची नामों से ही हो जाता है। तुलसी के पत्ते चबाने से मुँह में लार, जो कि अत्यन्त पाचक, अग्निवर्धक, भूख बढ़ाने वाला तत्व है, बढ़ती है इसलिए उसे सुरसा कहा है। दूषित वायु रोग और बीमारी के कीटाणु 'वायरस' रूपी भूत, राक्षस और दैत्यों के मार भगाने के कारण उसे भूतघ्नी, अपेतराक्षसी तथा दैत्याघ्नी कहते हैं। हिस्टीरिया, मृगी, कुष्ठ आदि रोग जिन्हें पूर्व जन्मों के पाप कहा जाता है, वस्तुतः जो दीर्घकालीन विकृतियों (पापों) के फलस्वरूप असाध्य रोग पैदा हो जाते हैं और जो बहुत उपचार करने पर भी अच्छे नहीं होते वह भी तुलसी से अच्छे हो जाते हैं इसीलिए उसे पापघ्नी कहा गया है। इसका नाम फूल-पत्री है। अर्थात् इसके पत्ते चबाने से शरीर शुद्ध होता है और शरीर में जीवनी शक्ति बढ़ती है। गौरी तंत्र तुलसी माहात्म्य में बताया है—

तुलसी पत्र सहितं जलं पिबति यो नरः।
सर्व पापविनिर्मुक्तो मुक्तो भवति भामिनी।।

तुलसी दल को जल में डालकर जो उस शीत-कषाय को पीते हैं, वे अनेक रोगों से छुटकारा पाते हैं। चरणामृत वस्तु एक प्रकार का शीत-कषाय ही है। राजनिघण्टु करबीरादि ५५२ में बताया है कि यह स्वाद और भोजन की रुचि बढ़ाती है, कीड़ों और छोटे कृमियों को, जो आँख से नहीं दिखाई देते (वायरसों) को मारती है। चरक ने इसे दमा, पसलियों के दर्द, खाँसी, हिचकी तथा विषों का दूषण ठीक करने में लाभदायक लिखा है। यह कफ दूर करती है, इसमें कपूर की तरह की एक सुगन्ध होती जो दुर्गन्ध मिटाती है।

चिकित्सा पक्ष के अतिरिक्त इसकी सूक्ष्म सात्विक सामर्थ्य सर्वविदित है। सामान्य कायाकल्प करने वाले ग्रन्थों में तो मात्र रसायनों की चर्चा है, परन्तु तुलसी जैसे महौषधि तो रसायन कर्म से भी अधिक श्रेष्ठ गुण रखती है यह आर्षग्रन्थों मात्र में भी वर्णित है। इसके अनेकानेक भेदों में से मात्र रामा या श्यामा तुलसी का ही कल्प हेतु प्रयोग होता है। ५० ग्राम की मात्रा में कल्प में सेवन अतीव लाभकारी सिद्ध होता है।

आधि-व्याधि निवारण शब्द में कुसंस्कार-निष्कासन, स्वास्थ्य-संवर्धन एवं सद्गुण-प्रतिष्ठापन के सिद्धान्त गूँथे हुए हैं। शास्त्रकार लिखते हैं—

त्रिकालम् विनता पुत्र पाशर्य तुलसी यदि।
विशिष्यते कायशुद्धिश्चान्द्रियाण शतं बिना।।

अर्थात्—'हे विनता पुत्र ! प्रातः मध्यान्ह तथा शाम को, जो तीनों संध्याओं में तुलसी का सेवन करता है, उसकी काया वैसी ही शुद्ध हो जाती है, जैसी कि सैकड़ों चान्द्रायण व्रतों से होती है।' वस्तुतः तुलसी एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक कायाकल्प योग है। शरीर का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाह्य-अभ्यान्तरिक शोधन कर यह सामर्थ्य बढ़ाती है, चिन्तन को सतोगुण प्रधान तथा चरित्र को निर्मल बनाती है। कल्प-चिकित्सा विधान में तुलसी पत्रदल चूर्ण को गंगाजल से संस्कारित किया जाता है तथा कल्क रूप में उसे नियमित रूप से ५० ग्राम (लगभग १० चम्मच) की मात्रा सेवन करने का विधान बनाया गया है।

तुलसी के बाद दिव्यता की वरीयता में ब्राह्मी नाम दूसरे स्थान पर है। ब्राह्मी के कुटी प्रावेशिक विधि द्वारा कायाकल्प का वर्णन शास्त्रों में आया है। मेधावर्धन, उत्तेजना शमन, निवारण, वात आदि प्रकोपों से पीड़ित काया के दोषों को नष्ट करने के लिए इससे श्रेष्ठ कोई औषधि नहीं। ब्राह्मी स्वरस को गौ दुग्ध में, ब्राह्मीपत्र का शाक, ब्राह्मी को घृत में भून अथवा मुलहटी-इलाइची के सम्मिश्रण से लेने की विभिन्न रोगों में व्यवस्था की जाती है। शुक्लपक्ष में संग्रहीत ब्राह्मीपत्र चूर्ण को गौ दुग्ध के साथ "ॐ अमृतोभवाय अमृतंकुरु" इस मंत्र से अभिमंत्रित कर ग्रहण करने का शास्त्रोक्त विधान भी है। कल्पसूत्रों में ब्राह्मी कल्प को तीस से पचास ग्राम की मात्रा में नित्य प्रातः दिया जाता है। आवश्यकतानुसार इसे दोपहर व संध्या को भी लिया जा सकता है परन्तु कुल सत्व की मात्रा भी स्थिति में दिन भर में पचास ग्राम से अधिक नहीं होनी चाहिए। बुढ़ापे का नाश, शतायु की प्राप्ति, स्मरण शक्ति में वृद्धि, मनोविकारों से मुक्ति-सभी ब्राह्मी सेवन की फलश्रुतियाँ हैं, जिन्हें साधक धीरे-धीरे अनुभव करने लगते हैं।

ब्राह्मी की कुछ विशिष्ट औषधियों यथा—तुलसी, आँवला, अर्क गुलाब, गुड़हल, शंखपुष्पी आदि की भावना देकर कल्प बनाने से विशिष्ट लाभ मिलता है। एक माह तक ब्राह्मी का निरन्तर सेवन आयु, बल को बढ़ाता ही है, वर्ण को सुन्दर वाणी को मधुर तथा बुद्धि को तीव्र करता है। कायाकल्प के लिए मात्रा को कम या बढ़ाकर वर्ष भर अनुपान भेद से व्यक्ति के लिए सेवन का शास्त्रों में विधान है। अपनी कल्प साधना पद्धति में ब्राह्मी का कल्क अभिमंत्रित पुष्पों के रस की भावना के साथ साधकों को प्रातः वन्दनीया माताजी द्वारा दिया जाता है। सरस्वती पंचक की इस महत्वपूर्ण औषधि की आध्यात्मिक सामर्थ्य के विषय में जितना लिखा जाय कम है।

शंखपुष्पी को मेधावर्धक, हृदय अवसादक, तनाव शामक माना जाता है। साधना विधि में इसके प्रयोग से एकाग्रता सम्पादन में विशेष लाभ मिलता है। इसके पंचांग का कल्क बनाकर दूध में मिलाकर प्रातः पुष्प रस के साथ देते हैं। दीर्घायुष्य आसन सिद्धि, प्रखरता सम्वर्धन तथा जीवन रसों के उत्सर्जन द्वारा प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की फलश्रुतियों का शंखपुष्पी कल्क के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाता है। यह त्रिदोष शामक, मानसिक बल बढ़ाने वाली एक विशिष्ट औषधि है। साधकों की मनःस्थिति का विस्तृत विश्लेषण कर इसके योग्य पाने पर उन्हें प्रातः शंखपुष्पी कल्क दिये जाने का विधान बनाया जाता है।

अश्वगंधा वात शामक वल्य रसायन है। नीरोग स्थिति के साधकों के लिए यह प्रकृति का अनुदान स्वरूप पुष्टिवर्धक टोनिक है। जिन साधकों ने संयम द्वारा अपने विकारों का शमन कर लिया है, उनके अन्तःबल को उछालने से अश्वगंधा विशेष रूप से सहायक होती है। शतावर भी वल्य रसायन है, जिसे सरस्वती पंचक गुणों में गिना जाता है। यह भी पुष्टिवर्धक, जीवनी शक्ति बढ़ाने वाली औषधि है। ये दोनों सीधे अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार ये चक्र उपत्यिकाओं पर प्रभाव डालकर उनमें निहित गुह्य सामर्थ्य को जगाती व आत्मिक प्रगति के सोपानों पर ऊँचा चढ़ाती हैं।

आँवले (धात्रीफल) के प्रयोगों कायाकल्प सम्बन्धी ग्रन्थों में पृष्ठ भरे पड़ें हैं। आँवले को ताजा अथवा चूर्णरूप में दोनों ही प्रकार से लिया जा सकता है। आँवले का रस शहद में मिलाकर अथवा चटनी के अवलेह के रूप में भी लिया जाता है। आँवला खट्टा होने से खटास पैदा कर सकता है। दाँत कसैले हो जाते हैं व उनमें चीस पैदा होने लगती है। किसी को वायुशूल भी होने लगता है। ऐसे में मात्रा कम करके हल्का-सा विरेचक द्रव्य तथा धारोष्ण दूध ले लेना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हितकारी होता है। आँवले के विषय में कहा जाता है कि यदि सिद्ध किया आँवला नित्य रत्तीभर मात्र भी मनुष्य ग्रहण करता है और सारे नियमों का पालन करते हुए सात्विक चिंतन में लीन बना रहता है तो उसकी काया का रूपान्तरण होने लगता है। सिद्ध किया रस सूक्ष्म से सूक्ष्म स्नायुओं में बिना किसी प्रतिबन्ध के प्रविष्ट हो विजातीय मल-द्रव्यों को निकाल बाहर करता है। सारे शरीर में समत्व स्थापित कर नवीन निर्माण में इस रसायन की प्रधान भूमिका है। कहा जाता है कि वैखानस बाल खिल्य एवं च्यवन ऋषिगण ने इसी रसायन से दीर्घायुष्य प्राप्त की।

आँवले को पिप्पली, बिड़ंग, अमृता हरीतकी, विभीतक आदि के साथ अलग-अलग विभिन्न योगों में लेने का भी कायाकल्प योग में विधान है परन्तु औषधि एकाकी औषधि ताजे कल्क के रूप में ही लाभ पहुँचाती है। कल्प साधना विधि पें निर्धारणानुसार साधकों को प्रातः ५० ग्राम के लगभग अभिमंत्रित आँवला कल्क पुष्परसों की भावना देकर शहद आदि स्निग्ध द्रव्यों के साथ दिया जाता है। एक माह की अवधि में निश्चित ही अनेकों को इससे लाभ मिलता है।

गिलोय, विधारा वासा एवं बिल्व भी इसी प्रकार व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति के आधार पर निर्धारित किये गए कल्प योग हैं। ये सभी औषधियाँ निश्चित परिमाण में नित्य लेने पर वांछित परिणाम दिखाती हैं। इन्हें आश्रम के परिसर में ही बोया उगाया गया है। वह सुसंस्कारिता तो इनमें है ही, दिव्यता का समावेश इनकी गुणवत्ता और बढ़ा देता है।

कल्प-साधना के ये सभी उपक्रम एक ही उद्देश्य के लिए हैं—व्यक्ति के पुराने चले आ रहे ढर्रे को आमूल-चूल बदल देना। इसके लिए जहाँ तप-तितिक्षा की दबाव भरी प्रक्रियाएँ अनिवार्य हैं, वहीं पर प्रज्ञायोग का साधना उपक्रम तथा औषधि आहार को सात्विक रूप में ग्रहण किया जाना भी। कृत्य के साथ भावना का समावेश कितना अनिवार्य है ? यह यहाँ आकर एक माह को कुटीवास करने वाला साधक ही समझ सकता है।

कल्प-साधना का क्रिया पक्ष

चिन्तन, आदत और विश्वास अन्तराल के यह तीन क्षेत्र हैं। इन्हें क्रमशः मन, बुद्धि चित्त कहते हैं। मनःक्षेत्र की यह तीन परतें हैं। इन्हीं को तीन शरीर स्थूल, सूक्ष्म, कारण भी कहते हैं। पंच भौतिक काया तो इन तीनों की आज्ञा एवं इच्छा का परिवहन मात्र करती रहती हैं। आत्मसत्ता तो इनसे ऊपर है।

उपरोक्त तीनों शरीरों की परीक्षा स्थिति को परिष्कृत करने के लिए योगाभ्यास में तीन साधनाएँ हैं। स्थूल को मुद्राओं से, सूक्ष्म को प्राणायाम से और कारण को योगत्रयी से परिमार्जित किया जाता है। मुद्राओं में तीनों प्रधान हैं—(१) शक्तिचालिनी मुद्रा, (२) शिथिलीकरण मुद्रा, (३) खेचरी मुद्रा। प्राणायामों में तीन की प्रमुखता दी गई है—(१) नाड़ी-शोधन प्राणायाम, (२) प्राणाकर्षण प्राणायाम, (३) सूर्य-वेधन प्राणायाम। योगाभ्यासों में तीन प्रमुख हैं—(१) नादयोग, (२) बिन्दुयोग, (३) लययोग। कल्प-साधना में इन नौ का अभ्यास कराया जाता है। दिव्य अनुदान की ध्यान धारणा इन ६ के अतिरिक्त है। क्रियायोग के यह तीन प्रयोग साधक के त्रिविधि शरीरों को परिष्कृत करने की उपयोगी, भूमिका सम्पन्न करते हैं। शरीरों के हिसाब से इनका वर्गीकरण करना हो तो स्थूल शरीर के निमित्त शक्ति-चालिनी मुद्रा, नाड़ी-शोधन प्राणायाम और नादयोग की गणना की जायेगी। सूक्ष्म शरीर के निमित्त प्राणाकर्षण प्राणायाम, शिथिलीकरण मुद्रा और बिन्दुयोग को महत्व दिया जाता है। कारण शरीर में खेचरी मुद्रा, सूर्यवेधन प्राणायाम और लययोग का अभ्यास किया जाता है।

हर साधक को उन नौ को एक साथ करना आवश्यक नहीं। त्रिविधि योग साधनाएँ तो सभी को सामान्य परिमार्जन करने की दृष्टि से आवश्यक माना गया है। वे हर स्थिति के साधक को साथ-साथ चलाने का प्रावधान है। नादयोग, बिन्दुयोग और लययोग का अभ्यास सभी कल्प-साधकों की दिनचर्या में सम्मिलित है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुद्राएँ तथा प्राणायाम तीन-तीन हैं। इनमें से साधक के अन्तराल का सूक्ष्म निरीक्षण करके एक-एक का निर्धारण करना पड़ता है। तीनों मुद्राएँ, तीनों प्राणायाम भी तीन योगों की तरह प्रतिदिन साधने पड़ें ऐसी बात नहीं है। मुद्राओं में से एक, प्राणायामों में से एक का ही चयन करना होता है। इस प्रकार तीन योग, एक मुद्रा, एक प्राणायाम का पंचविध कार्यक्रम हर एक की दिनचर्या में सम्मिलित रहता है।

इसे प्रकारान्तर से पंचकोशी साधना भी कह सकते हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश की पंचमुखी उच्चस्तरीय साधना भी इसी को कह सकते हैं। इनके प्रतिफलों की उपमा पाँच प्रमुख देवताओं के पाँच प्रमुख वरदानों से दी गई है। (१) ब्रह्मा, (२) विष्णु, (३) महेश, (४) गणेश (५) दुर्गा। उपरोक्त पाँच साधनाओं को इन पाँच देवताओं की साधना भी कह सकते हैं। पाँच कोशों के पाँच प्रकार के रत्नों का, पंचरत्नों का भण्डार माना गया है। विभूतियाँ पाँच ही हैं। इन्हीं में ऋद्धि-सिद्धियों का समावेश समझा जा सकता है। (१) संयम, (२) साहस, (३) दिव्य दृष्टि, (४) स्वर्ग, (५) बन्धन-मुक्ति—इन पाँचों के अन्तर्गत ही प्रत्यक्ष और परोक्ष जीवन की समस्त सम्पदाओं-सफलताओं का समावेश हो जाता है।

कल्प-साधना साधक यदि श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा का समुचित समावेश करते हुए इनकी साधना में संलग्न रहें तो वे अपने आश्चर्यजनक परिवर्तन का अनुभव करेंगे। काया का रूपान्तरण तो कठिन है, उसे दुर्बलता और रुग्णता से ही एक सीमा तक उबारा जा सकता है। परिवर्तन तो सदा अन्तराल का ही होता है। इसी आधार पर क्षुद्र को महान्, नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम बनने का अवसर मिलता है। कामना की भावना में, क्षुद्रता का महानता में, तृष्णा का उदारता में जिस अनुपात में परिवर्तन होता है उतना ही साधक सत्ता का स्तर ऊँचा उठता चला जाता है।

अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर करने वाली इसी पुण्य-प्रक्रिया का नाम कल्प-साधना है। उसे अध्यात्म-चिकित्सा की श्रेणी में गिना जा सकता है। काय-चिकित्सा के लिए आयुर्वेद, तिब्बी, एलोपैथी, होमियोपैथी, नेचुरोपैथी आदि पद्धतियाँ प्रचलित हैं। मानसिक चिकित्सा के लिए सामान्यतया स्कूल, शिल्प, उद्योग, कला, कौशल आदि का अभ्यास करना पड़ता है। गुरुकुल, आरण्यकों के वातावरण में रहना पड़ता है। स्वाध्याय-सत्संग भी इसी प्रयोजन के लिए है। तीसरा क्षेत्र कारण शरीर का बचता है। इसके लिए साधना ही एकमात्र आधार है। उसे तपश्चर्या और योग-साधना के आधार पर ही गलाया ढाला जाता है। शरीर नरम है। मन उससे कठोर, अन्तःकरण को अति कठोर माना गया है। उस पर जन्म-जन्मान्तरों, की मान्यताएँ, इच्छाएँ तथा आदतों की, भू-गर्भ में पाई जाने वाली चट्टानी परतों से भी कठोर सतहें जमी होती हैं। उन्हें तोड़ने, उखाड़ने के लिए डायनामाइट की सुरंगों का प्रयोग करना पड़ता है। इसी प्रयोग का नाम अध्यात्म साधना है।

अन्तःकरण के परिवर्तन में इन्हीं को अपनाना पड़ता है। अध्यात्म लक्ष्य की दिशा में बढ़ने वालों को साधना का साहस सँजोना ही पड़ता है। प्राचीनकाल में भी यही क्रम चलता रहा है और अब भी उसी मार्ग पर धीमे या तेजी से चलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

शारीरिक रुग्णता का दूर करने का दावा करने वाले चिकित्सालयों की कमी नहीं। मानसिक विकास एवं परिष्कार के प्रयासों में संलग्न शिक्षण-संस्थाएँ भी बहुत हैं। आवश्यकता एक ही ऐसी थी, जो सर्वोपरि महत्व की होते हुए भी सर्वाधिक उपेक्षित पड़ी थी। वह है—अन्तःकरण को परिमार्जित, परिष्कृत करने की अध्यात्म चिकित्सा। इस सन्दर्भ में कुछ कहने लायक कारगर व्यवस्था कहीं दीखती ही नहीं। जो चल रहा है, उसमें भ्रान्तियों एवं निहित स्वार्थों का इतना अधिक समावेश हो गया है कि होना न होने से भी अधिक भारी पड़ता है। इस सन्दर्भ में कल्प-साधना को आरम्भिक की बाल कक्षा वर्ग की तो कहा जा सकता है पर है वह ऐसी जिसमें ब्रह्मविद्या के शाश्वत सिद्धान्तों का अक्षुण्ण रखते हुए, समय के परिवर्तन और बुद्धिवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी समुचित समावेश रखा गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्यान्य अनुशासनों तथा निर्धारणों के अतिरिक्त जहाँ तक योगाभ्यासों का सम्बन्ध है, उसे उपरोक्त पंचधा प्रयोगों के रूप में समझना, समझाना चाहिए। शरीर पाँच तत्वों से बना है। चेतना भी पाँच प्राणों से विनिर्मित है। दोनों को पिछड़ेपन और पतन-प्रवाह से उबारकर भौतिक क्षेत्र में अग्रगामी और आत्मिक क्षेत्र में ऊर्ध्वगामी बनाने की आवश्यकता है। गायत्री को पंचमुखी कहा गया है। उसके पाँच ज्ञानपक्ष और पाँच क्रियापक्ष हैं। ज्ञानपक्षों में (१) ज्ञानयोग, (२) कर्मयोग, (३) भक्तियोग, (४) प्रज्ञायोग, (५) परमार्थयोग की पंचधा व्यवस्थाएँ हैं।

कल्प-साधना में जहाँ पंच ज्ञानपक्षों का उपरोक्त निर्धारण है, वहीं पंचधा क्रिया योगों का भी स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन का समर्थ तन्त्र खडा करके संचित कषाय-कल्मषों का निष्कासन एवं उच्चस्तरीय आस्थाओं का प्रतिष्ठापन किया जाता है। इस प्रकार इस आरम्भिक सोपान को भी निर्धारण की दृष्टि से पूर्णतायुक्त कहा जा सकता है।

क्रिया-कृत्यों के सही स्वरूप के निर्धारण अवलम्बन में जितनी जागरूकता एवं तत्परता की आवश्यकता पड़ती है, उससे भी अधिक इस क्षेत्र में श्रद्धा का सघन आरोपण आवश्यक होता है। इसके अभाव में सारी विधि-व्यवस्था मात्र कलेवर बनकर रह जाती है और प्राणरहित काय-कलेवर की तरह उसकी भी मात्र दुर्गति ही होती है। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से उबरकर अध्यात्म उपचार और सम्वर्धन का उभयपक्षीय प्रयोजन पूर्ण करने के लिए कल्प-साधना का उपक्रम प्रस्तुत किया गया है।

कल्पकाल की त्रिविधि अनिवार्य साधनाएँ

ब्रह्मवर्चस की कल्प तपश्चर्या में दो साधना क्रम ऐसे हैं, जिन्हें अनिवार्य रूप से किया जाता है—त्राटक-ज्योति अवतरण की बिन्दुयोग साधना तथा नादयोग अर्थात् अनाहत नाद-ब्रह्म की साधना। ये दोनों ही ध्यानपरक अन्तःउत्कर्ष की फलदायी साधनाएँ हैं। तीसरी साधना है—दर्पण के माध्यम से देवाधिदेव आत्म देव की साधना। तीनों ही साधनाएँ सभी साधक अपने कक्ष में एकाकी करते हैं। इन तीनों ही साधनाओं में जिस चिन्तन को प्रमुखता देनी है, उसका विवेचन संक्षिप्त रूप से इन पंक्तियों में है। जिन्हें विस्तार से जानना हो या कुछ अन्य शंकाएँ हों, वे मार्गदर्शक से समाधान कर सकते हैं।

(१) त्राटक-साधना

चित्र या प्रतिमा पर ध्यान की साकार उपासना से ऊँचे उठने पर प्रकाश का ध्यान करना पड़ता है, इसे त्राटक कहते हैं। इसे केन्द्रीभूत करके अन्तर्जगत में दिव्य आलोक का आविर्भाव करना। त्राटक-साधना इस योग का प्रथम पाठ है। जब इस ध्यान-धारणा का विकास उच्चतर स्थिति में होता है तो यही प्रक्रिया आत्मज्योति एवं ब्रह्मदर्शन में परिणित हो जाती है। फिर त्राटक के लिए किसी प्रकाशोत्पादक, दीपक, भौतिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं रहती।

मानवी विद्युत का सर्वाधिक प्रवाह नेत्रों से ही होता है। इसी प्रवाह को दिशाविशेष में प्रयुक्त करने के लिए नेत्रों की क्षण शक्ति को साधते हैं। त्राटक-साधना का उद्देश्य यही है। अपनी दृष्टि क्षमता में इतनी तीक्ष्णता उत्पन्न की जाय कि वह दृश्य की गहराई में उतर सके, अन्तराल में जो अति महत्वपूर्ण घटित हो रहा है, उसे पकड़ने में समर्थ हो सके। त्राटक का वास्तविक उद्देश्य दिव्य दृष्टि को ज्योतिर्मय बनाना है। इसी के आधार पर सूक्ष्म जगत की झाँकी की जा सकती है। अन्तःक्षेत्र में दबी रत्न-राशि को खोजा और पाया जा सकता है। देश, काल की सूक्ष्म सीमाओं का लाँघकर अविज्ञात अदृश्य का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

इस साधना में शरीर को ध्यान मुद्रा में शान्त एवं शिथिल करके बैठते हैं। सामने प्रकाश दीप रखा होता है। पाँच सैकिण्ड खुली आँख से प्रकाश दीप को देखना, तत्पश्चात् आँखें बन्द करके भूमध्य भाग में उसी प्रकाश आलोक को ज्योतिर्मय देखना। जब यह ध्यान आलोक शिथिल पड़ने लगता है तो फिर नेत्र खोलकर पाँच सैकिण्ड प्रकाश दीप को देखना और फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँखें बन्द कर पूर्ववत् भूमध्य भाग में उसी प्रज्वलित ज्योति का ध्यान करना। यही है त्राटक साधना का स्वरूप जो चान्द्रायण कल्प में किया जाता है। इतने समय में प्रायः स्थिति ऐसी बन जाती है, जिसके आधार पर देर तक भूमध्य भाग में प्रदीप्त किये गये प्रकाश की आभा को समस्त शरीर में विस्तृत एवं व्यापक हुआ अनुभव किया जा सके।

भूमध्य भाग में आज्ञाचक्र अवस्थित है। इसी को तृतीय नेत्र या दिव्य नेत्र कहते हैं। पौराणिक आख्यान के अनुसार इसी नेत्र को खोलकर भगवान शिव ने विध्वंसकारी मनोविकार को—कामदेव को भस्म किया था। यह नेत्र प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है। पीचुटरी-पीनियल के रूप में स्थूल रूप विराजमान इस स्थान विशेष की सूक्ष्म संरचना नेत्रों जैसी है। इससे प्रकट-अप्रकट, दृश्य-अदृश्य, भूत-भविष्य सभी कुछ देखा, जाना जा सकता है। इस नेत्र में ऐसी प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न करने की क्षमता है, जिसके आधार पर अवांछनीयताओं को अवरोधों को जलाकर भस्म किया जा सके। बिन्दुयोग की साधना त्राटक के माध्यम से की जाकर तृतीय नेत्र को ज्योर्तिमय बनाती है। इससे अग्नि-शिखा मनोविकारों को जलाकर भस्म कर डालती है। यह तो ऊपर शक्ति व्याख्या है। दार्शनिक दृष्टि से इसे विवेकशीलता-दूरदर्शिता का जागरण भी कहते हैं, जिसके आधार पर लोभ, मोह, वासना, तृष्णा जैसे अगणित विग्रहों का सहज ही शमन किया जा सकता है। इस साधना में एकाग्रता का उतना नहीं जितना प्रवाहक्रम की प्रखरता का महत्व है। ज्योति अवतरण की प्रकाश साधना करने वालों को अपने कलेवर के हर रोम-रोम में ज्योति के साथ-साथ दिव्य भावनाओं के समावेश का चिन्तन करते रहना व सतत् उल्लास से भरी प्रसन्नता अनुभव करते रहना चाहिए।

(२) नादयोग साधना

दिव्य सत्ता के साथ आदान-प्रदान का एक माध्यम है अनाहत-नादब्रह्म की साधना। अनाहत ध्वनि प्रकृति के सतत् संयोग से निनादित हो रही है। यों सुनने में सप्तस्वर और उनके आरोह-अवरोह मात्र शब्द-ध्वनि का उतार-चढ़ाव प्रतीत होते हैं और उनका उपयोग वाद्य-गायन में प्रयुक्त होता भर लगता है, पर वस्तुतः उसकी सीमा इतनी स्वल्प नहीं है। स्वर ब्रह्म अपने इन्हीं अगणित ध्वनि-प्रवाहों में न जाने कितने भाव भरे संकेतों और संदेशों को इस विश्व ब्रह्माण्ड में भरता और प्रवाहित करता रहता है।

ध्यानयोग के माध्यम से हमारा अन्तःकरण उन दिव्य-ध्वनियों को सुन सकता है। इस योग प्रक्रिया में कानों को बाहरी ध्वनि से विलग कर शान्त वातावरण में एकाग्र करके यह प्रयास किया जाता है कि अतीन्द्रिय जगत से आने वाले शब्द प्रवाह को अन्तःचेतना द्वारा सुना जा सके। यों इसमें कर्णेन्द्रिय रूपी तन्मात्रा का योगदान तो रहता है, पर वह श्रवण है उच्चस्तरीय चेतन जगत की ध्वनि-लहरियाँ सुनने के लिए। इसे कर्णेन्द्रिय और अन्तःकरण का एक सम्मिलित प्रयास भी कह सकते हैं।

चान्द्रायण सत्र में सप्ताह में ६ दिन नादयोग का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक साधक के कक्ष में तो ध्वनि-प्रवाह को एकाकी रूप में पहुँचाना सम्भव नहीं है। सभी साधक सामूहिक रूप से एक साथ बैठकर निर्देशों को जानने के उपरान्त सुमधुर ध्वनि-प्रवाह सुनते हैं। चिन्तन की प्रक्रिया क्या होनी चाहिए एवं साधक को अन्तः जागरण हेतु क्या करना चाहिए इसका उल्लेख इन पंक्तियों में है—

शांत स्थिति से ध्यान मुद्रा में और मन को साधकर साधक इस ध्वनि-प्रवाह के साथ अपनी अन्तःचेतना को भावविभोर स्थिति में बहने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार सपेरे द्वारा बीन बजायी जाने पर सर्प बिल में निकलकर स्वर लहरी पर लहराने लगते हैं, उसी प्रकार इस संगीत ध्वनि के साथ-साथ साधक अपने मन को लहराने का प्रयत्न करें। आत्मा-परमात्मा के बीच आदान-प्रदान के भाव भरे अलंकारिक चित्रण रासलीला में किये गये हैं। इसमें गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य ही है—नादयोग की व्याख्या, विवेचना ही उसमें सन्निहित है। वस्तुतः वह ईश्वरीय प्रयोजनों के लिए सांसारिक-बन्धनों को छोड़कर चल पड़ने का संकेत है।

नादयोग में कान का सूक्ष्म चेतना की दिव्य-ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। कई बार ये अति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन्द होती हैं, कई बार अति प्रखर। वंशी की ध्वनि से कई बार कुमार्गगामी मन-वासना, तृष्णा का विषपिण्ड यह मन-विषधर सर्प की तरह लहराने लगता है। सपेरा सर्प को पकड़कर पिटारे में बन्द कर देता है। ठीक उसी प्रकार मन के निग्रह में, प्राणों के निरोध में नादयोग का ध्वनि-प्रवाह बहुत सफल रहता है। सत्प्रवृत्तियों के साथ चल पड़ना और मन को कुमार्गगामी होने से रोककर निग्रहीत कर देना नादयोग की विधि साधना है। सुनाई देने वाली ध्वनियों को संगीत साधक अपने चिन्तन-क्रम में इस प्रकार बिठा सकते हैं—'भगवती सरस्वती अपनी वीणा झंकृत करते हुए ऋतम्भरा प्रज्ञा के मृदुल मनोरम तारों को झनझना रही है और अपनी अन्तःचेतना में वही दिव्य तत्व उभर रहे हैं। भगवान शंकर अपना डमरू बजा रहे हैं और उससे प्रलय और मरण के संकेत आ रहे हैं। सुझाया जा रहा है कि मृत्यु कभी भी आ सकती है। प्रमाद में न उलझा जाय। महाकाल के भैरवनाद का संदेश सुना जाय। युग पवित्तन की पुकार गूँज रही है कह रही है कि अविलम्ब जीवनोद्देश्य की दिशा में कदम बढ़ाये जायें। अब अपनी गतिविधियों का कायाकल्प होना ही चाहिए। यह ध्यान जितना पकेगा उतनी ही सूक्ष्म अनुभूतियाँ उससे करतलगत होंगी।

(३) आत्मदेव की उपासना-दर्पण साधना

इसे दर्पण में स्वय का पर्यवेक्षण कह सकते हैं। इसे साधक अपने ही कक्ष में सम्पन्न करते हैं। देवाधिदेव परब्रह्म को अद्वैत तत्वविज्ञान ने आत्मदेव के रूप में देखा है। सोऽहम् शिवोऽहम्, तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म जैसे सूत्रों में आत्मा, परमात्मा की अभिन्नता का ही प्रतिपादन किया गया है। जब तक मल-आवरण, विक्षेप कल्मष अन्तःकरण पर चढ़े है तभी तक जीव स्थिति है। जैसे-जैसे इन विकारों का शोधन होता है, आत्मा परमात्मा का रूप लेती जाती है।

दर्पण में अपने आप को दर्शन कर साधक यही चिंतन करते हैं कि ईश्वरीय महत्तायें बीज रूप में जीव में पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। यदि उन्हें विकसित किया जा सके तो नर में नारायण की झाँकी तत्काल देखी जा सकती है। जो कुछ बहिरंग जगत में पाया जाता है, उसकी ही बीज सत्ता अन्तरंग में मौजूद है। अस्तु काय-कलेवर को तुच्छ नहीं मानना चाहिए वरन् इसमें श्रेष्ठतम की झाँकी की जानी चाहिए। भौतिक सम्पदा का गर्व तो हेय है पर आत्मदेव का गौरव हर किसी को अनुभव करना चाहिए और इसी आत्मगौरव की रक्षा करने वाली, आत्मगरिमा को ज्योतिर्मय बनाने वाली रीति-नीति अपनानी चाहिए।

आत्मदेव की साधना का माहात्म्य विज्ञान में अत्यधिक है। निराकार साधना में अपने कण-कण को नीलवर्ण प्राण ज्योति से ज्योतिर्मय देखने का अभ्यास किया जाता है। भावना की जाती है कि समष्टि सत्ता की प्रकाशवान दिव्य प्रखर किरणें शरीर के रोम-रोम में प्रवेश करके बलिष्ठता बढ़ा रही हैं, मन में प्रविष्ट हो मनस्विता को प्रखर कर रही हैं। वे अन्तरात्मा के भाव संस्थान में प्रवेश करके आत्मशक्ति को ज्वलन्त बना रही हैं। अपना सब कुछ ज्योतिर्मय हो रहा है। साकार आत्म-साधना में तो स्वयं को, अपने शरीर को ही देव-स्थान पर प्रतिष्ठापित करते हैं। मानवी काया में पाँच कोष पंच आवरण के रूप में विद्यमान है। इन पाँचों को ही स्वतन्त्र चेतना के रूप में विकसित किया जा सकता है। पाँच देव यही है जो इन्हें जागृत कर सकें, वह पाँच सहायक छाया पुरुषों, सशक्त सहायकों की महत्वपूर्ण सहायता का लाभ निरन्तर उठा सकता है।

साकार आत्म साधना के लिए दर्पण का उपयोग करते हैं। दर्पण में अपना चेहरा, आधा शरीर ध्यानपूर्वक देखते हैं। उसे परिष्कृत स्तर का देवता मानकर उसका पूजन, स्तवन करते हैं। साथ ही यह आस्था भी जमाते हैं कि इस काय-कलेवर में निवास करने वाली 'दिव्य ज्योति' यदि आत्म भाव की भूमिका में जागृत हो उठे, उसे अपनी गरिमा का भान हो सके तो वह निश्चिततः देवसत्ता सम्पन्न हो सकती है। विश्वबन्धु महामानवों की पंक्ति में उसे बैठने का अवसर मिल सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्पकाल की अति फलदायी ऐच्छिक साधनायें

कल्प की अवधि में साधक को प्रायश्चित एवं तपश्चर्या के अतिरिक्त अपनी प्रकृति के अनुरूप विशिष्ट साधनायें भी करनी होती हैं। ये ऐच्छिक है एवं उस अनिवार्य साधना क्रम के अतिरिक्त हैं, जो साधक को व्यक्तिगत रूप से करनी है। कौन-सी किसे अनुकूल पड़ेगी, इसका निर्धारण मनःस्थिति का पर्यवेक्षण करने पर मार्गदर्शक ही सुझा सकते हैं। इस ऐच्छिक साधना क्रम में विभिन्न साधनायें इस प्रकार हैं—

(१) प्राणाकर्षण प्राणायाम

इस सृष्टि में सतत् विभिन्न स्तर के प्राण-प्रवाहों का स्पन्दन चल रहा है। साधक अपने पुरुषार्थ से इन्हें सहज ही प्राप्त व धारण कर सकता है। प्राणाकर्षण प्रयोग में' अन्तरिक्ष के असीम प्राण भण्डार से अनुदान प्राप्त किये जाते हैं। इनका प्रयोग इस प्रकार है—

पूर्वाभिमुख हो पालथी मारकर बैठे। दोनों हाथ घुटनों पर, मेरुदण्ड सीधा, आँखें बन्द। ध्यान करें कि अखिल आकाश प्राण तत्व से व्याप्त हैं। सूर्य के प्रकाश में चमकते बादलों की शक्ल के प्राण का उफान हमारे चारों और उमडता चला आ रहा है। नासिका के दोनों छिद्रों से साँस खींचते हुए यह भावना कीजिए कि प्राण तत्व के उफनते हुए बादलों को हम अपने अन्दर खींच रहे हैं। यह प्राण हमारे विभिन्न अवयवों में प्रवेश कर रहा है। जितनी देर आसानी से रोक सकें साँस को भीतर रोकें, भावना करें कि प्राण तत्व में सम्मिलित चैतन्य, बल, तेज, साहस, पराक्रम जैसे घटक हमारे अंग-प्रत्यंगों में स्थिर हो रहे हैं। इसके बाद साँस धीरे-धीरे बाहर निकालें, साथ ही चिन्तन कीजिए कि प्राण का सार तत्व हमारे अंग-प्रत्यंगों द्वारा पूरी तरह सोख लिया गया है। थोडी देर तक बिना साँस के रहें व भावना करें कि जो दोष बाहर निकाले गये हैं, वे हमसे बहुत दूर चले जा रहे हैं व उन्हें अब अन्दर प्रवेश नहीं होने देना है। इस पूरी प्रक्रिया को पाँच प्राणायामों तक ही सीमित रखा जाय।

(२) सूर्यवेधन प्राणायाम

ब्रह्म-प्राण को आत्म-प्राण के साथ संयुक्त करने के लिए उच्चस्तरीय प्राणयोग की आवश्यकता पड़ती है। सूर्यवेधन इसी स्तर का प्राणायाम है। इसमें ध्यान-धारणा को और भी अधिक गहरा बनाया जाता है एवं प्राण ऊर्जा को साँस से खींचकर इसे सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कराया जाता है। पद्धति इस प्रकार है—

पूर्वाभिमुख, सरल पद्मासन, मेरुदण्ड सीधा, नेत्र खुले, घुटने पर दोनों हाथ। यह ध्यान-मुद्रा है। बाँये हाथ को मोड़ें, उसकी हथेली पर दायें हाथ की कोहनी रखकर, मध्यमा-अनामिका अँगुलियाँ से बायें नथुने को बन्द कर दाहिने नथुने से गहरी साँस खीचें। साँस इतनी गहरी हो कि पेट फूल जाए, वह फेंफडे तक सीमित न रहे। ध्यान करें कि प्रकाश प्राण से मिलकर दायें नासिका छिद्र से पिंगला नाडी में होकर अपने सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर रहा है। साँस रोकें व दोनों नथुने बन्द कर यह ध्यान करें कि नाभिचक्र में प्राण द्वारा एकत्रित यह तेजपुञ्ज यहाँ अवस्थित चिरकाल से पड़े सूर्य-चक्र को प्रकाशवान् कर रहा है। यह निरन्तर प्रकाशवान् हो रहा है। अब बायें नथुने को खोल दें और ध्यान करें कि सूर्यचक्र को सतत् घेरे रहने वाले, धुंधला प्रकाश बनाने वाले कल्मष छोड़ी हुई साँस के साथ बाहर निकल रहे हैं। पीत वर्ण का मलिन प्रकाश इडा नाड़ी से बाहर निकल रहा है।

अब दोनों नथुने बन्द कर फेंफडों को बिना साँस के खाली रखें व भावना करें कि नाभिचक्र में एकत्रित प्राण तेज पुंज की तरह, अग्नि शिखा की तरह ऊपर उठ रहा है, सुषुम्ना नाड़ी से प्रस्फुटित हुआ यह प्राण तेज सारे अन्तः प्रदेश को प्रकाशवान् बना रहा है। सर्वत्र तेजस्विता व्याप्त हो रही है। यही प्रक्रिया फिर बायें नथुने से साँस खींचकर व रोककर दायें से बाहर फेंकते हुए दुहरायें व भावना उसी प्रकार करें जैसा ऊपर वर्णित है। यह पूरी प्रक्रिया एक लोम-विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम की हुई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) नाड़ी शोधन प्राणायाम

इस प्राण प्रयोग में तीन बार नासिका से साँस खीचते और छोड़ते हुए नाभिचक्र में चन्द्रमा का शीतलध्यान, तीन बार दाहिने नासिका छिद्र से साँस खींचते हुए सूर्य का उष्ण प्रकाश वाला ध्यान तथा आखिरी बार दोनों छिद्रों से साँस खींचते हुए मुख से साँस निकालने की प्रक्रिया सम्पादित की जाती है।

मुद्रा पूर्व की तरह दायीं नासिका का छिद्र बन्द करके बायें से साँस खीचें और उसे नाभि चक्र तक ले जायें, ध्यान करें कि नाभि स्थान में पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश विद्यमान है। साँस उसे स्पर्श कर स्वयं शीतल एवं प्रकाशवान् बना रही है। इसी नथुने से साँस बाहर निकालें व थोड़ी देर साँस रोककर बायीं ओर से ही इड़ा नाड़ी के इस प्रयोग को तीन बार करें। अब दायें नथुने से इसी प्रकार पूरक, अन्तः कुम्भक, रेचक व बाह्य कुम्भक करें व नाभिचक्र में चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य को छूकर लौटने वाली वायु पिंगला नाड़ी से होते हुए ऊष्मा और प्रकाश उत्पन्न कर रही है, इस क्रिया को भी तीन बार करें। अन्त में नासिका के दोनों छिद्र खोलकर साँस खींचकर व भीतर रोककर मुँह खोलकर एक बार में ही बाहर निकाल दें। प्रारम्भ में ही नाड़ी-शोधन का अभ्यास करें, पीछे धीरे-धीरे संख्या बढायी जा सकती है।

(४) कुण्डलिनी योग

शक्तिचालिनी मुद्रा—ब्रह्मशक्ति का केन्द्र है। ब्रह्मलोक और जीवशक्ति का आधार है—भूलोक। दोनों ही काया में सूक्ष्म रूप से विराजमान हैं। भूलोक-जीव-संस्थान का मूलाधार चक्र है, मूलाधार जननेन्द्रियों का मूल, मल-मूत्र छिद्रों का मध्य भाग इसी स्थान की हलचलों के कारण प्राणी जन्म लेते हैं। कुण्डलिनी शक्ति उसी केन्द्र में मुँह नीचा किये मूर्च्छित अवस्था में पड़ी रहती है। विवेकवान् उसे जगाकर अनेक गुनी प्रखर बनाते हैं और जागरण की इस प्रखरता का उपभोग व्यक्तित्व को प्रतिभा-सम्पन्न बनाने, उच्चस्तरीय कार्य सम्पादन करने में प्रयुक्त करते हैं।

कुण्डलिनी जागरण की इस साधना में मूलाधार शक्ति को जगाने, उठाने के लिए ध्यान-धारणा के साथ जिन यौगिक क्रियाओं का सहारा लिया जाता है, उसमें एक मुद्रा व एक बंध का युग्म है। शक्तिचालिनी मुद्रा व उड्डियान बन्ध अधोमुखी शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए प्रयुक्त होते हैं। शक्तिचालिनी मुद्रा वज्रासन या सुखासन में बैठकर की जाती है। इसमें मल एवं मूत्र संस्थान को संकुचित करके उन्हें ऊपर की ओर खींचा जाता है। खिंचाव पूरा हो जाने पर उसे शिथिल कर देते हैं। प्रारम्भिक स्थिति में दो मिनट व धीरे-धीरे पाँच मिनट तक बढ़ाते हुए यह क्रिया बार-बार दुहरायें। उड्डियान बन्ध में स्थिति आँतों को ऊपर की ओर खींचा जाता है। यह क्रिया स्वतः शक्तिचालिनी मुद्रा के साथ धीरे-धीरे होने लगती है। पेट को जितना ऊपर खींचा जा सके, खींचकर पीछे पीठ से चिपका देते हैं। उड्डियान का अर्थ है—उड़ना। कुण्डलिनी जागृत करने, चित्तवृत्ति को अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी करने की यह पहली सीढ़ी है। इससे सुषुम्ना नाड़ी का द्वारा खुलता है, मूलाधार चक्र में चेतना आती है। इन दोनों क्रियाओं के द्वारा समूचे कुण्डलिनी क्षेत्र पर ऐसा सूक्ष्म विद्युतीय प्रभाव पड़ता है, जिससे इस शक्ति-स्रोत के जागरण व मेरुदण्ड मार्ग से ऊर्ध्वगमन के दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं।

(५) हंसयोग—सोऽहम् साधना

प्राणयाम जहाँ संचय की प्रक्रिया है, वहाँ सोऽहम् साधना महाप्राण-ब्रह्मप्राण की प्राप्ति का साधना-विधान है। कारण शरीर के अन्तराल को स्पर्श करने के लिए जिस महाप्राण की आवश्यकता होती है, वह इसी साधना से अर्जित किया जाता है।

हंसयोग में साँस खींचने के साथ अत्यन्त गहरे सूक्ष्म पर्यवेक्षण में उतरकर यह खोजना पड़ता है कि वायु के भीतर प्रवेश करते समय सीटी बजने जैसी 'सी' की ध्वनि भी उसी के साथ घुली है। यह ध्वनि प्रकृतिगत नहीं, ब्राह्मी है। इसे कृष्ण वंशीवादन के समतुल्य समझा जाय। भावना यही की जा जाय कि जीवन-सम्पदा पर परिपूर्ण अधिकार 'सोऽहम्' परमेश्वर का है। साँस छोड़ते समय साँप की फुफकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसी 'अहम्' की ध्वनि का अनुभव अभ्यास में लाना होता है,. भावना करनी होती है कि अहंता को विसर्जित, निरस्त कर दिया गया। 'अहम्' (ईगो) के स्थान पर 'स' (उस परमेश्वर) की प्रतिष्ठापना हो गई। यह स्थिति अद्वैत वेदान्त दर्शन की है।

निरन्तर आत्मा और परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को स्मरण रखने के लिए और सम्पर्क सूत्र बनाये रखने के लिए हर साँस के साथ सोऽहम् का अजपा जाप जारी रखा जाय।

(६) लययोग-खेचरी मुद्रा

शान्त मस्तिष्क को ब्रह्मलोक और निर्मल मन को क्षीर सागर माना गया है। मनुष्य सत्ता और ब्रह्मलोक व्यापी समष्टि सत्ता का आदान-प्रदान ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से होता है। यह मस्तिष्क का मध्यबिन्दु है, जीवसत्ता का नाभिक है, यह सहस्रार कमल है। मस्तिष्क मज्जा रूपी क्षीर सागर में विराजमान विष्णु-सत्ता के सान्निध्य और अनुग्रह का लाभ देने के लिए खेचरी मुद्रा की साधना की जाती है। ध्यान मुद्रा में शांतचित्त से बैठकर जिह्वाग्र भाग को तालु मूर्धा से लगाया जाता है। सहलाने जैसे मन्द-मन्द स्पन्दन किये जाते हैं। इस उत्तेजना में सहस्रदल कमल की प्रसुप्त स्थिति जागृति में बदलती है। बन्द छिद्र खुलते हैं और आत्मिक अनुदान जैसा रसास्वादन जिह्वाग्र भाग के मध्य से अन्तःचेतना को अनुभव होता है। यह खेचरी मुद्रा है।

तालु मूर्धा को कामधेनु की उपमा दी गई है और जीभ के अगले भाग से उसे सहलाना-सोमपान, पयपान कहलाता है। इस क्रिया से आध्यात्मिक आनन्द की, उल्लास की अनुभूति होती है। यह दिव्यलोक से आत्मलोक पर होने वाली अमृत वर्षा का चिन्ह है। देवलोक से सोमरस की वर्षा होती है। अमृत कलश से प्राप्त अनुदान आत्मा को अमरता की अनुभूति देते हैं।

(७) शिथिलीकरण मुद्रा—योगनिद्रा

इस मुद्रा का अभ्यास शवासन में लेटकर अथवा आराम कुर्सी पर शरीर ढीला छोड़कर किया जाता है। यह क्रिया शरीर, मन, बुद्धि को तनाव से मुक्त करके नई चेतना से अनुप्राणित कर देती है। साधक को शरीर से भिन्न अपनी स्वयं की सत्ता की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

कोलाहल मुक्त वातावरण में लेटकर पहले शरीर शिथिलीकरण के निर्देश स्वयं को दिये जाते हैं। शरीर के निचले अंगों से आरम्भ करके शनैः-शनैः यह क्रम ऊपर तक चलाते हैं। हर अंग को एक स्वतन्त्र सत्ता मानकर उसे विश्राम का स्नेह भरा निर्देश देते हैं। कुछ देर उस स्थिति में रहकर धीरे-धीरे शारीरिक शिथिलीकरण सधने पर क्रमशः मानसिक शिथिलीकरण एवं दृश्य रूप में शरीर पड़ा रहते देखने, चेतनसत्ता के सरोवर में ईश्वर को समर्पित कर देने की भावना की जाती है।

शिथिलीकरण योगनिद्रा का प्रारम्भिक चरण है। अचेतन को विश्राम देने, नई-स्फूर्ति दिलाने तथा अन्तराल के विकास-आत्मशक्ति के उद्भव का पथ प्रशस्त करने की यह प्रारम्भिक क्रिया है। ध्यान योग की यह प्रक्रिया आध्यात्मिक दृष्टि से उपलब्धियों से भरी हुई है, शरीरगत तथा मनोगत इसके सत्परिणाम तो सर्वविदित हैं ही।

अन्तराल के मर्मस्थल का प्रभावी परिशोधन

अन्तःचेतना को परिष्कृत करने के दो उपाय हैं। इनमें से एक है—शिक्षण एवं सम्पर्क। इसका अर्थ होता है बाह्य क्षेत्र के प्रभाव-दबाव से अन्तराल को दबाना-ढालना। दूसरा उपाय है—आन्तरिक प्रसुप्ति को दूरदर्शी, विवेकशीलता और साहसिक संकल्पशीलता के सहारे जगाना-उभारना। एक में बाहरी प्रभाव की प्रधानता है, दूसरे भीतर की ऊर्जा को उछाल कर बहिरंग क्षेत्र पर आच्छादित कर देने की। एक को बादल बरसने, धूप निकलने, आँधी चलने की उपमा दी जा सकती है। दूसरे की अणु विस्फोट, ज्वालामुखी का प्रकटीकरण, जल स्रोत का जमीन से उबल पड़ना जैसी घटनाओं से तुलना की जा सकती है। दोनों ही अपने-अपने स्थान पर कारगर हैं। दोनों का ही उपयोग होता रहा है। दोनों ही अपने-अपने प्रभाव प्रकट करती रही हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक विकास बौद्धिक प्रशिक्षण, अनुभव अभ्यास से लेकर ब्रेन वाशिंग और इलेक्ट्रोडों का उपयोग कर मस्तिष्कीय संरचना में उलट-पुलट कर देने जैसे अनेकों प्रयोग पिछले दिनों चलते रहे हैं। नीति-कौशल में इसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद का तरीका चिरकाल से अपनाया जाता है। अब कूटनीति के रूप में उसका एक अपना स्वतन्त्र शास्त्र ही बन गया है। सरकारी और गैर-सरकारी प्रचार तन्त्र इस प्रयोजन के लिए अपने-अपने ढंग से काम करते रहते हैं। इस सन्दर्भ में विज्ञजनों को पहले से भी बहुत जानकारी रहती है।

इन पंक्तियों में उस उपेक्षित पक्ष पर, प्रकाश डाला जाना है, जो भीतर से उछलकर कर बाहर आने और ऊपरी सतह को सुरम्य बना देने की चमत्कारी परिणति के रूप में कभी-कभी देखा जाता है। मनुष्य सचेतन स्तर दृष्टि से संव्याप्त पदार्थ सम्पदा की तुलना में कम नहीं कुछ अधिक ही महत्व का है। अणु की संरचना और विभु की विशालता देखकर बुद्धि को हतप्रभ रह जाना पड़ता है, किन्तु यदि एक कदम और आगे बढ़कर देखा जा सके और गहराई में डुबकी लगायी जा सके तो प्रतीत होगा कि वैभव का अदृश्य भण्डार उस क्षेत्र में भी इतना है, जिसे तुलनात्मक दृष्टि से वरिष्ठ न माना जाय तो कनिष्ठ भी नहीं कहा जा सकता।

यहाँ चर्चा पैरों के नीचे दबे अदृश्य क्षेत्र की नहीं हो रही है। धरातल का उदाहरण दिया जा रहा है। ठीक यही उदाहरण मानवसत्ता पर भी लागू होता है। बहिरंग क्षेत्र को प्रकृति-सम्पदा उपयोगी भी है और आकर्षण भी। इतने पर भी अन्तरंग क्षेत्र में जो विद्यमान है, वह भी ऐसा नहीं है, जिसकी उपेक्षा और अवमानना की जा सके। सच तो यह है कि पदार्थ को इतना सुखद, आकर्षक एवं उपयुक्त बनाने में भी चेतना का ही कौशल काम करता रहा है, अन्यथा धरती भी अन्य ग्रह पिण्डों से मिलती-जुलती अनगढ़ स्थिति में ही रह रही होती और इसका वर्णन-विवेचन करने वाला तक कोई कहीं न होता।

चेतना का स्तर ही है, जिसके कारण एक ही परिस्थिति में उत्पन्न हुए व्यक्तियों में से कोई हेय, पिछड़ी, विपन्न स्थिति में दिन गुजारता और आत्म प्रताड़ना, लोक-भर्त्सना सहता है, जबकि उनमें से कुछ को अपना रास्ता आप बनाते, अवरोध हटाते, साधन सहयोग समेटते प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचते देखा जाता है। यह अन्तस् का चुम्बकत्व ही है, जो अनुकूलता को खींच बुलाता है। यह अन्तस् का आलोक ही है, जो सम्पर्क क्षेत्र को आलोक से जगमगाता है। यह अन्तस् का ऊर्जा भण्डार ही है, जिसकी पकड़ में आने वाला हर पदार्थ ईंधन की तरह जलने लगता है। कहने को तो लोग यही कहते रहते हैं कि परिस्थितियाँ मनःस्थिति को प्रभावित करती हैं, पर वस्तुतः इसमें यथार्थता अत्याल्प है। थोड़ा गम्भीर पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तथ्य कुछ और ही है। मनःस्थिति ही परिस्थिति की जन्मदात्री है। मनस्वी लोग अपने भाग्य की रचना स्वयं करते हैं, प्रतिकूलताओं को कूट-पीट कर अनुकूलता में बदलते हैं और वातावरण के घेरे को चीरते हुए अपना संसार आप बसाते हैं। जिनका मनस् मर गया उन्हीं के लिए परिस्थितियाँ सब कुछ हैं। पत्ते, तिनके और धूलिकण तो हवा के साथ-साथ ही इधर-उधर भटकते-भटकते फिरते हैं। उथले व्यक्तित्वों को ही परिस्थतियों का गुलाम, भाग्य का अनुचर एवं प्रवाह में तैरता-डूबता लक्कड़ कहा जा सकता है।

महामानवों का समूचा इतिहास इस बात का साक्षी है कि चेतना जगी है तो उनकी जीवन सम्पदा अपने लिए सौभाग्य और दूसरों के लिए वरदान रूप में प्रकट हुई है। इसके विपरीत हीनता के आच्छादन ने साधनों का ही दुरुपयोग किया है, साथियों को खिजाया है और भटकाव में पड़कर दुरुह दुःख सहा है। इसके अगणित प्रमाण हर कोई, हर कहीं, हर समय अपने इर्द-गिर्द ही प्रचुर परिमाण में बिखरे हुए तलाश कर सकता है। शिक्षित, स्वस्थ और सम्पन्नों में ऐसे कम नहीं जो स्वयं जलते और दूसरों को जलाते रहे। इसके विपरीत दुर्बल, अनपढ़ और दरिद्र समझे जाने वाले भी ऐसे अगणित हजारों किसान हैं, जिनने आत्मसन्तोष, जन सहयोग और दैवी अनुग्रह की विभूतियाँ हर घड़ी अपने ऊपर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बरसते देखी। ऋषियों को साधनों की दृष्टि से दयनीय भी कहा जा सकता है, पर वे अन्तःचेतना की विशिष्टता के कारण राजा से लेकर रंक तक के लिए अभिनन्दनीय बने रहे। उनके गौरव और सौभाग्य को शत-शत कंठों ने एक स्वर से सराहा।

इन तथ्यों पर विचार करने से चेतना की वरिष्ठता ही स्पष्ट होती है और विश्वास बँधता है कि साधनों का बाहुल्य हो तो सोना सुगन्ध, अन्यथा स्वल्प-साधनों में भी खिलता-खिलता जीवन जिया जा सकता है। अस्तु अन्तस् की गरिमा को भी समझा-समझाया जाना चाहिए और इस तथ्य के प्रति गम्भीर होना चाहिए कि वैयक्तिक एवं सामूहिक समस्याओं के समाधान में चेतना की उत्कृष्टता को वरीयता दी जाय और उसे परिष्कृत बनाने के लिए न केवल बहिरंग साधनों का वरन् अन्तस् की ऊर्जा को भी उभारकर ऊपर लाया जाय। यदि चिन्तन और प्रयास को ऐसा अभिनव उत्साह अवलम्बन मिल सके तो समझना चाहिए कि वातावरण का कायाकल्प होने में, सतयुग के—प्रज्ञायुग के अवतरण में अब न विलम्ब लगेगा, न अवरोध अड़ेगा।

सामयिक व्यापक विपन्नताओं को निरस्त करने, शालीनता, प्रसन्नता एवं सुव्यवस्था का वातावरण बनाने के लिए आवश्यक है कि मानवी चेतना को परिष्कृत करने के सम्बन्ध में बढती जा रही उपेक्षा को दूर किया जाय और उसके स्थान पर उस क्षेत्र में प्रभावी गतिशीलता का संचार किया जाय। इसके लिए जहाँ लोकमानस का बौद्धिक परिशोधन परिष्कार आवश्यक है, वहाँ आवश्यकता इस बात की भी है कि प्रसुप्त अन्तराल के उन मर्मस्थलों को भी उभारा जाय जहाँ विभूतियों के अजस्र भाण्डागार भरे पड़े हैं। ऋषिकल्प अध्यात्म विज्ञानियों के अनुभव, प्रतिपादन एवं प्रशिक्षण में उन तथ्यों का समुचित समावेश है, जिनके सहारे चेतना की गहन परतों को उभारा और इतना प्रखर किया जा सकता है कि न केवल परिस्थितियों को अनुकूल बनाया जा सके वरन् मनःस्थिति को अपने निज के पराक्रम पुरुषार्थ से उच्चस्तरीय बनाया जा सके।

कहा जा चुका है कि बाहर से भीतर को प्रशिक्षित करने की तरह ही दूसरा क्षेत्र है। भीतर की प्रखरता को प्रदीप्त करके बहिरंग को—सुशोभित कर सुसम्पन्नता से भर देना। यह अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि इसमें अपने आपे से ही उलझना-सुलझना पड़ता है। दूसरों के हाथ रहने वाली परिस्थितियों को बदलने के लिए किये गये प्रयासों पर पग-पग पर मिलने वाली खोज निराशा उपलब्ध करने जैसे कठिनाई इस क्षेत्र में नहीं है। साधना अपने हाथ की बात है। अपने शरीर को जिस प्रकार मनमर्जी से चलाया जा सकता है, उसी प्रकार मनःक्षेत्र की विचारणाओं मान्यताओं, आकांक्षाओं और आदतों के ऊपर भी यदि टूट पड़ा जाय तो उन्हें भी कुम्हार की तरह अनगढ़ मिट्टी को देव-प्रतिमाओं जैसे खिलौनों में बदला जा सकता है।

अन्तस् की विशिष्टताओं एवं विभूतियों को उभारने का एकमात्र उपाय 'साधना' है। 'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त का तात्पर्य इतना ही है कि यदि अचेतन, सुपरचेतन, ईगो क्षेत्र में कोई कारगर परिवर्तन करने हों तो उसके लिए योग परक ध्यान-धारणाएँ और तपपरक संयम-नियमन की तितीक्षाएँ करनी चाहिए। सत्संग से व्यवहार और स्वाध्याय से चिंतन को सुधारा जा सकता है। यह व्यवहार में आने वाली ऊपरी परत है। इससे मन-मस्तिष्क की विचारणाएँ भटकाव से उबरकर सही दिशा में चलने के लिए प्रशिक्षत की जाती हैं। इतने पर भी अन्तराल का आस्थापरक क्षेत्र तो बच ही जाता है। उसके लिए उन उपचारों का प्रयोग करना पड़ता है, जो चेतना के मर्मस्थल तक पहुँच सकें, वहाँ निवास करने वाली श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा को संचित कुसंस्कारों से मुक्त कर सके। प्रवृत्तियों की जड़ें बहुत गहरी होती हैं, वे समझने-समझाने पर भी अपना अंगद जैसा पैर यथास्थान जमाये रहती है। दूब की पत्तियाँ सूख जाने पर भी जड़ नहीं सूखती, तनिक-सी नमी पाते ही देखते-देखते हरी-भरी होने लगती है। यही बात प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी है। कुसंस्कार उन्हीं में पलते हैं। भ्रान्तियाँ का कोंतर वहीं है। उत्कृष्टता और निकृष्टता का शासन क्षेत्र वही है। व्यक्तित्व की जड़ें इसी क्षेत्र में जमी होती हैं। यहाँ सुधार-परिष्कार करने में जो उपचार काम देते हैं, वे तप-साधना से कम स्तर के कारगर नहीं होते। पत्थर की कठोर चट्टानें काटने में हीरे की नोंक वाला बरमा ही काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आता है। पहाड़ उड़ाने हो तो डाइनामाइट की सुरंगों से कम में काम नहीं चलता। किले को विस्मार करने में तोप के गोले ही कारगर होते हैं। टीलों को समतल करने में बुलडोजरों का प्रयोग करना पड़ता है। हल्के-फुल्के उपकरण इन बड़े प्रयोजनों के लिए आवश्यक बड़ी शक्ति के अभाव में कोई कहने लायक परिणति उत्पन्न नहीं कर पाते। यहाँ धीमे प्रयत्नों की निन्दा नहीं है। समयानुसार चींटी भी अपने नन्हें पैरों के सहारे पहाड़ पर चढ़ सकती है, किन्तु वह लम्बी बात है। शालीनता का जीवन और सत्प्रयोजनों में संलग्न क्रिया-कलाप भी कालान्तर में व्यक्तित्व मर्मस्थल को उत्कृष्ट आदर्शवादिता के ढाँचे में ढाल सकता है, किन्तु यदि समयानुसार अभीष्ट सफलता पानी हो तो बड़े कदम भी उठाने पड़ेंगे, बड़े साधन भी जुटाने पड़ेगें। यहाँ बड़े से तात्पर्य साधनात्मक पुरुषार्थ से है। पुरुषार्थ इसलिए कि उसमें अपने आप से ही जूझना पड़ता है। बाहरी क्षेत्र के बड़े-बड़े मोर्चे जीतने वाले भी भीतरी क्षेत्र का प्रसंग सामने आने पर हथियार डालते देखे गये हैं। इसलिए साधना को चरम पराक्रम कहा गया है। साथ ही उसकी परिणति को स्वर्ग एवं मुक्ति जैसी उच्चस्तरीय विभूतियों के रूप में दर्शाया गया। प्रतिभा, प्रखरता, कुशलता, सम्पन्नता, सफलता जैसी उपलब्धियाँ तो आत्मिक प्रगति की सहेलियाँ हमजोलियाँ हैं, जो दो शरीर एक मन की तरह साथ-साथ ही चलती है।

कल्प-साधना की प्रक्रिया का निर्धारण आज की मनःस्थिति और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए किया गया है। वह न तो इतना कठिन है, जिसे संकल्पवान् व्यक्ति भी पूरा न कर सके और न ही वह इतना सरल है कि विलासिता और अस्वच्छता के अनगढ़ ढर्रे को यथावत् बनाये रहकर मात्र कुछ पूजा उपचार करने भर से बन पड़े। पूजा, उपचारों साधनाकृत्यों का महत्व तभी है, जब वे श्रद्धा, विश्वास के साथ जुड़ें और संकल्पित व्रतशीलता बनकर सैन्य अनुशासन की तरह निभें। कल्प-साधना में दान और तप के सभी तत्वों का सुसन्तुलित ढंग से समावेश है, साथ ही वह सर्वथा हानिरहित भी है। जैसाकि अन्यान्य योग साधनों में प्रयत्न भ्रष्ट होने पर कई प्रकार के विग्रह उठ खड़े होते हैं, वैसी स्थिति न आने पाये इसलिये उसे नितान्त उपयोगी होने के साथ-साथ सर्वथा हानिरहित होने का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

कल्प के पूर्व कुछ अनिवार्य ज्ञातव्य

कल्प-साधना एवं चिर पुरातन कल्प चिकित्सा में कुछ अन्तर है कल्प एक साधना भी है चिकित्सा एक प्राकृतिकोपचार।

कल्प-चिकित्सा के लिए औषधि का प्रयोग करने के पहले शरीर की शुद्धि एक परमावश्यक बात है क्योंकि जब तक शरीर में मल की अधिकता रहेगी, उस पर औषधियों का ठीक प्रभाव नहीं पड़ सकता। साथ ही यह भी सम्भव है कि कल्प के प्रभाव से मल उमड़कर कोई नया उपद्रव खड़ा कर दे। इसलिए आर्युवेद के ग्रन्थों में इस बात पर बहुत जोर दिया गया है कि कल्प की औषधियाँ सेवन करने से पूर्व स्नेहन, वमन, विरेचन आदि पंच कर्मों के द्वारा शरीर में संचित दूषित मल को भलीप्रकार निकाल डालना चाहिए ताकि वह औषधियों के प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करने में समर्थ हो सके। इन पंचकर्मों में यद्यपि वमन और विरेचन को प्रधान माना गया है, पर जो मल शारीरिक अंगों में चिपटा रहता है, उसे सुगमता से निकालने के लिए स्नेहन और स्वेदन आवश्यक है जैसे साबुन लगाकर मैल को फुला दिया जाता है, उसी प्रकार स्नेहन तथा स्वेदन कर लेने से वमन-विरेचन में सहायता मिलती है।

स्नेहन-प्रक्रिया के लिए वसा प्रधान पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। स्थावर जो वनस्पतियों से मिलते हैं तथा जंगल में जो प्राणियों से घी, वसा के रूप में प्राप्त होते हैं। कल्प-चिकित्सा में घी और तेल को ही प्रधानता देते हैं। इनका प्रयोग पीने, वस्ति, शिरोवस्ति, नस्य, मालिश एवं भोजन आदि के द्वारा किया जा सकता है।

स्वेदन प्रक्रिया का अर्थ किसी प्रकार से काया को गर्मी पहुँचाकर पसीना लाना है। इसके माध्यम से शरीरगत दोषों को बाहर निकलने में सहायता मिलती है। प्राकृतिक चिकित्सा के ढंग से भाप प्रक्रिया द्वारा ऊपर कम्बल व नीचे अंगीठी रखकर पसीना लाया जा सकता है। इससे रोम कूप खुलते हैं और मल निष्कासन की प्रक्रिया तेज होती है। आजकल इस कार्य के लिए बिजली का, इन्फ्रारेड किरणों का भी प्रयोग किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वमन प्रक्रिया के पीछे सिद्धान्त—संचित मलों को आमाशय में एकत्र हो जाने पर उन्हें निकाल बाहर करना। यदि वमन प्रक्रिया ठीक प्रकार से विशेषज्ञ मार्गदर्शन में की जा सके तो शरीर वस्तुतः हल्का होकर कल्प के योग्य हो जाता है। यह संचित कफ को निकाल देने की प्रक्रिया है विरेचन इसीलिए वमन के बाद कराया जाता है ताकि ऊपर का कफ आँतों में कष्ट उत्पन्न न करे।

विरेचन में किस प्रकृति के व्यक्ति के लिए क्या श्रेष्ठ औषधि हो ? यह उसकी प्रकृति पर निर्भर है। आयुर्वेद के निष्णात इसका निर्धारण करते एवं पित्त से मृदु, वात कफ से क्रूर तथा समदोष वाले व्यक्ति के लिए विरचेन की प्रक्रिया का स्वरूप बनाते हैं।

अन्तिम प्रक्रिया है वस्ति। जहाँ वमन और विरचेन मात्र आमाशय और पित्ताशय की शुद्धि करते हैं, वहीं वस्ति से मलाशय तथा पक्वाशय के विकारों का निष्कासन किया जाता है। एनिमा इसका एक आधुनिक स्वरूप है। आयुर्वेद में इसी प्रयोग हेतु विभिन्न मन्त्रों से मूत्राशय, महिलाओं के योनि मार्ग तथा मलाशय की शुद्धि विधान है। औषधियुक्त तेल, साबुन मिश्रित जल अथवा ग्लिसरीन अन्दर पहुँचाकर संचित मल को इससे निकाल बाहर किया जाता है।

यह तो संक्षेप में उन पंचकर्मों की चर्चा हुई, जिन्हें कल्प के पूर्व किए जाने का शास्त्रोक्त विधान है। शरीर का शोधन करने के लिए इनसे श्रेष्ठ कोई उपचार नहीं। परन्तु आजकल ऐसे सुदृढ़ मनःस्थिति के व्यक्ति मिलते नहीं जो इस पूरे प्रकरण को धैर्यपूर्वक निभा सकें। आध्यात्मिक-भाव-कल्प में इसी कारण पहले मन को मजबूत बनाने के लिए प्रायश्चित-प्रक्रिया तथा आहार में सीमा-बन्धन जैसे छोटे प्रयोगों से प्रारम्भ किया जाता है। इतना बन पड़ने पर आगे वह पृष्ठभूमि बन जाती है, जिसके आधार पर और भी क्लिष्ट प्रयोग कायाकल्प के किये जा सकें।

प्रशिक्षण में समग्र उत्कर्ष के बीजांकुर

कल्प-साधना के दिनों में जिस स्तर का प्रशिक्षण दिया जाता है, उसका आभास चार भागों में विभक्त पाठ्य पद्धति से भली प्रकार मिल सकता है।

कक्षाओं में व्यक्तित्व का विकास, परिवार में स्वर्गीय परम्पराओं का संस्थापन एवं समाज के साथ सघन सद्भावों का आदान-प्रदान यह तीनों ही तत्व संक्षिप्त किन्तु समग्र रूप से जुड़े हुए हैं। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के तीनी ही प्रयोजन इस छोटी-सी किन्तु सारगर्भित पद्धति के सहारे सधते हैं। इस प्रकार जिस सद्ज्ञान की महिमा शास्त्रकारों ने समग्र कल्प सम्भव कर सकने के रूप में बताई गई है, वह इस पाठ्य-पद्धति के साथ सम्पन्न होती है। अलंकार रूप में तीन महान् सिद्धियों के तीन प्रत्यक्ष उपकरणों की चर्चा कथा-पुराणों में सुनने को मिलती है। इनमें एक है—पारस, दूसरा कल्पवृक्ष, तीसरा अमृत। यह तीनों ही प्रत्यक्षतः कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते, पर परोक्ष रूप में इनकी सत्ता और परिणति सद्ज्ञान के रूप में कहीं भी देखी जा सकती है।

पारस वह जिसे छूकर लोहा सोना हो सके। यदि ऐसा कोई पदार्थ इस संसार में रहा होता तो उसका प्रभाव यह होता कि संसार भर का लोहा येन-केन प्रकारेण सोना हो गया होता। लोहे की अपनी उपयोगिता है। वह सोने से पूरी नहीं हो सकती। फलतः सोना लोहे के भाव बिकता है और लोहे की कीमत सोने जितनी हो गयी होती। पारस का प्रत्यक्षतः कोई अस्तित्व नहीं। यदि वह है तो परोक्ष रूप से उस सद्ज्ञान में सन्निहित समझा जा सकता है, जो व्यक्तित्व को सुसंस्कारी बनाता है। पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी आदतों को उखाड़कर उनके स्थान पर सुसंस्कारी आचरणें का, सुव्यवस्थित-सुनियोजित जीवनचर्या का अभ्यास कराता है। इसी आधार पर अभावग्रस्त विपन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुए व्यक्ति भी जूझते हुए भी अवरोधों से अपना रास्ता आप बनाने और प्रगति के उच्च सोपान तक जा पहुँचने में समर्थ हुए हैं। इस आधार को पारस नहीं तो और क्या कहा जाय ?

कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर मनोकामनाएँ पूरी करा लेने के पीछे कोई आधार नहीं। यदि ऐसा रहा होता तो पात्रता, पुरुषार्थ और साधन-सहयोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जित करने की किसी को आवश्यकता ही नहीं पड़ती। कुपात्र व्यक्तित्व भी उसे पेड़ की छाया में बैठकर उन कामनाओं को पूरा करा लिया करते जो पात्रता की अगणित अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरने के उपरान्त ही खरा-उतरने पर किसी के हाथ लगती है। तर्क, प्रमाण के आधार पर इस प्रकार के पेड़ का कहीं अस्तित्व नहीं। किन्तु सद्ज्ञान की विचार सारिणी ऐसी है, जिसे अपनाने पर दृष्टिकोण निखरता है, दूरदर्शी विवेक उभरता है और हर स्थिति में सन्तुलन बनाए रहने वाला सौमनस्य सहज ही हस्तगत होता है, जिसे अपने विचार तन्त्र का सदुपयोग आता है, जो मनःस्थिति और परिस्थिति का तालमेल बिठाने का अभ्यस्त उससे आँगन में कल्पवृक्ष उगा ही समझा जाना चाहिए।

तीसरी दिव्य उपलब्धि अमृत है। उसे पीने वाले अमर होते बताए जाते हैं। प्रकृति विधान को जानने वाले समझते हैं—इस विश्व व्यवस्था में ऐसा विधान है ही नहीं कि जो वस्तु जन्मे वह मरे नहीं। एक दिन धरती, सूरज को भी मरना पड़ेगा फिर मनुष्य जैसे नगण्य प्राणियों की सत्ता को चिरस्थायी बने रहने की बात सोचना तो और भी उपहासास्पद है। तब अमृत किसे कहा जाय ? क्या वह दिवास्वप्न भर है। जहाँ तक शरीर के अमर होने की बात है, वहाँ तक उसे वैसा ही कहा माना जा सकता है। किन्तु यदि सद्ज्ञान के उस पक्ष पर दृष्टि डाली जाय तो अन्तराल के आस्था क्षेत्र को समुद्र की तरह मथ देता है तो यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आत्मबल के धनी देवता और भौतिक साधनों के दैत्य का सहयोग जुटाने वाले समुद्र मन्थन की उस पौराणिक गाथा को अपने निजी जीवन व्यवहार में भी उतार सकते हैं।

व्यक्तिगत जीवन का परिशोधन जिस तपश्चर्या के आधार पर बन पड़ता है, उसे बोलचाल की भाषा में संयम कह सकते हैं। संयम चार प्रकार के हैं—इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम। इन अनुशासनों में अपने आपको कस लेने वाले उन दिव्य विभूतियों को नष्ट-भ्रष्ट होते रहने से बचा लेते हैं, जो सृष्टा ने इस स्तर की समर्थता बनाये रहने की दृष्टि से प्रचुर परिमाण में प्रदान की है। संयम-साधना का महत्व माहात्म्य समझा-समझाया नहीं गया, इसे मनुष्य का परले सिरे का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। विलास, अपव्यय, आलस्य और कल्पनाओं में उलझे रहने से किस प्रकार विरत हुआ जा सकता है और बर्बादी को रोकने भर से किस प्रकार सुसम्पन्न बना जा सकता है इसका न बोध है न अनुभव ? इस कमी को पूरा करने के लिए कल्पसाधना में भरसक प्रयत्न किया जाता है और अनगढ़ आदतों को सुसंस्कारिता के साँचे में ढाल सकने वाले बौद्धिक प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक अनुशासन के शिकंजे में कसा जाता है। इस प्रकार का उभयपक्षीय दबाव पड़ने से सुनियोजित जीवन जी सकने योग्य कौशल उभरता है, जो इससे पूर्व उपयुक्त वातावरण न मिलने के अभाव में मात्र कथन और श्रवण की सीमा में ही अवरुद्ध होकर रह जाता था।

यह स्थूल शरीर की कर्मक्षेत्र की बात हुई। यह भूलोक था। अब इससे आगे का भुवःलोक है। भुवःलोक अर्थात् विचार क्षेत्र। इसमें आमतौर से अविवेक ही छाया रहता है। इसी को भ्रम-जंजाल, मायापाश, चक्रव्यूह, मृगतृष्णा, व्यामोह, भटकाव आदि नामों से माना जाता है। मनुष्य को विचारतन्त्र कितना सक्षम और कितना सुगठित है, यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मस्तिष्कीय क्षमता का प्रायः ७ से १३ प्रतिशत भाग ही आम आदमी के व्यवहार में आता है। यदि उसकी समग्र क्षमता का स्वरूप और उपयोग समझा जा सके तो उसकी परिणति इसी जीवन में ऐसी हो सकती है ? जिसे देव-दैत्य के समतुल्य कहा जा सके। सामान्यों को असामान्य बनने का जिन्हें अवसर मिला है, तब उसका सौभाग्य उद्भव इसी आत्म-चिन्तन और आत्म-निर्धारण के सत्साहस का समावेश करने से सम्भव हुआ है। इस प्रयोजन में सर्वप्रथम अपनी संचित मान्यताओं और आदतों से ही जूझना पड़ता है। इस धुलाई के बाद ही मनमोहक रंगाई का कार्य आरम्भ होता है। आत्मशोधन—ब्रेन वाशिंग की प्रक्रिया में संचित-भ्रान्तियों का एक बार भी निराकरण करना पड़ता है और इसके लिए यथार्थता पर अवलम्बित विवेकशीलता की कुल्हाड़ी को निर्दयता के साथ चलाना पड़ता है। पूर्वाग्रहों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊबड़-खाबड़पन समतल करने में संचित आदतों और मान्यताओं की अग्नि परीक्षा करनी पड़ती है। खरे को सँजोने और खोटे को फेंकने का न्यायाधीशों जैसा निष्पक्ष मानस बनाना पड़ता है। नीर-क्षीर विवेक की—मोती चुनने, कीड़ों से परहेज करने की राजहंस वृत्ति इसी को कहते हैं।

आमतौर से हर किसी पर तत्काल के लाभ का नशा छाया रहता है। आकर्षणों की चकाचौंध आँखों को भ्रमग्रस्त बनाये रहती है। प्रचलन ही अनुकरणीय बनने और भेड़ों जैसा अन्धानुकरण करने को बाधित करते हैं। इसी भ्रम-जंजाल की उलझन में लोग आप ही अपने लिए मकड़ी जैसा जाल बुनते और स्वयं ही उसमें उलझकर बेमौत मरते देखे जा सकते हैं। रेशम के कीड़े भी यही मूर्खता करते रहते हैं। लपट में जल मरने वाले भौंरे और चासनी में पंख लपेटकर बेमौत मरने वाली मक्खियाँ भी इसी प्रकार दुर्दशाग्रस्त होती हैं। पेट और प्रजनन की वासना प्रधान पशु-प्रवृत्तियाँ अपनाने से भी काम नहीं चलता। तृष्णा, अहंता की पूर्ति के लिए लोग अनाचार आक्रमण पर उतारू होते हैं और नर-पिशाचों की भूमिका निभाते हैं।

दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने वालों की दुर्गति देखते हुए जो आँखों में पट्टी बाँधने के लिए विवश करता है, वह हठवादी अविवेक ही है। इसके चंगुल से यदि छूटा और नये सिरे से दूरदर्शी निर्धारण किया जा सके तो समझना चाहिए कि भुवःलोक में पहुँचा देने वाला कायाकल्प हो गया। इस प्रक्रिया को सम्पन्न कर सकने वाले निश्चित रूप से महामानव बनते हैं और असंख्यों को अनन्तकाल तक अनुकरण का प्रोत्साहन देते रहने वाले पदचिन्ह छोड़ते हैं। स्वयं हँसते हैं। दूसरों को हँसाते हैं। स्वयं पार होते हैं और दूसरों को पार कराते हैं। ऐसी विवेकशीलता अपनाकर कल्प-साधना के साधक अपना बौद्धिक कायाकल्प कर सकें ऐसी प्रशिक्षण-प्रक्रिया का सारगर्भित समावेश कल्प-साधना के अन्तर्गत विवेकशीलता जगाने के रूप में किया जाता है।

तीसरा कारण शरीर है। इसे अन्तःकरण कहते हैं। इसके बुरे-भले स्तर को आस्था कहा जा सकता है। वह निकृष्ट भी होती है और उत्कृष्ट भी। इसी ध्रुव केन्द्र की प्रेरणा से पतन भी होता है और उत्थान भी। कौन किस स्तर पर उभरेगा ? किसका भविष्य कैसा है ? इसका पर्यवेक्षण किसी के आस्था-संस्थान में जमी हुई मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं का स्वरूप एवं प्रवाह देखते हुए सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इस स्तर को कैसे परिवर्तित परिष्कृत किया जाय यह पृष्ठभूमि बनाने में ब्रह्मविद्या ही सफल होती है। उस प्रयोजन का चिन्तनपक्ष स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन के आधार पर किया जाता है और प्रयोग पक्ष के लिए योगाभ्यास एवं तपश्चर्या के विधि-विधानों को आश्रय लेना पड़ता है। कल्प-साधना की प्रक्रिया में जहाँ संयम साधने, विवेक अपनाने की शिक्षा दी जाती है, वहाँ श्रद्धा उभारने वाली साधनाओं का भी समुचित समावेश रखा गया है। इन्हीं तत्वों का सुनियोजित समावेश कल्प-साधना की प्रशिक्षण-प्रक्रिया में किया गया है।

उपरोक्त तीनों तथ्य व्यक्तित्व को उभारने, सुधारने वाले हैं। इनके अतिरिक्त आत्म-कल्याण की तरह ही लोक-कल्याण का भी महत्व किसी प्रकार कम नहीं है। दोनों का समन्वित समावेश होने पर ही जीवन लक्ष्य की पूर्ति होती है। अस्तु न केवल आत्मोत्कर्ष की बात सोचनी पड़ती है वरन् विराट् की साधना वाले आत्म-विकास को भी ध्यान में रखना पड़ता है। यह कार्य वसुधैव कुटुम्बकम् के आत्मवत् सर्वभूतेषु के आदर्शों को व्यवहारिक जीवन में उतारने से ही सम्भव होता है। इसका एकमात्र अभ्यास लोकमंगल को जीवनचर्चा का अविच्छिन्न अंग बनाने से ही सम्भव होता है। अस्तु कल्प-साधना के हर साधक उस प्रक्रिया का अभ्यास कराया जाता है, जो इन दिनों इस प्रयोजन के लिए सर्वोपरि महत्व की है। सर्वविदित है कि इन दिनों आस्था संकट से जूझना ही महाविनाश की विभीषिकाओं से विश्वमानव की प्राण रक्षा करने का एकमात्र उपाय है। सर्वविदित है कि यह तथ्य किसी से छिपा नहीं कि लोकमानस का परिष्कार यदि बन पड़े तो इतने ही साधनों से, इन्हीं परिस्थितियों में धरती पर स्वर्ग के अवतरण का दृश्य देखा जा सकता है मनुष्य के दृष्टिकोण में संकीर्ण स्वार्थपरता, वितृष्णा, उद्धत अहम्मन्यता, अनाचारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्दण्डता घुस पडने से ही प्रस्तुत उपलब्धियाँ विकास में लगने के स्थान पर विनाश कृत्य में जुट पड़ी हैं। इस विपन्नता को उलटकर सीधा किया जा सके तो समझना चाहिए कि समस्त समस्याओं का हल निकल आया।

लोकमानस का परिष्कार ही विश्व व्यवस्था को बनाने और उज्जवल भविष्य को संरचना कर सकने में पूरी तरह समर्थ हो सकता है। प्रज्ञा अभियान का वही केन्द्रबिन्दु है। युग परिवर्तन के लिए विचार क्रान्ति की अनिवार्य आवश्यकता मानी गयी है। उसे कल्प-साधना के साधक अपनी वर्तमान परिस्थिति में योग्यता में भी क्या कुछ कर सकते हैं। इस नवसृजन योजना का हर पक्ष कल्प-साधना के साधकों को सिखाया जाता है। इस प्रयोजन के लिए वाणी को मुखर बनाने की आवश्यकता तो अनिवार्य रूप से पड़ती है। इसके लिए समुदाय में दिए जाने वाले भाषण, व्यक्तिगत परामर्श का सम्भाषण एवं भावनाओं को लहराने वाले संगीत की आवश्यकता पड़ती है। इसमें से कौन, किसे, किस मात्रा में अपना सकता है ? यह व्यक्तिगत अभिरुचि का विषय है, पर इन तीनों को ही सिखाने की समुचित व्यवस्था कल्प-साधना प्रशिक्षण के अन्तर्गत की गई है। इन कलाओं में अभ्यस्त व्यक्ति लोकप्रिय और सम्मानास्पद बनता है, उपयोगी सहयोग सम्पादित करता है। इस लाभ से तो सभी परिचित हैं।

तीर्थ सेवन और कल्प-साधना का सार्थक समन्वय

तीर्थ सेवन का पुण्य धर्मशास्त्रों और आप्त वचनों में असाधारण बताया गया है। उस प्रक्रिया का माहात्म्य इतना अधिक बताया गया है जिसकी तुलना में अन्य सब धर्मानुष्ठान हल्के पडते हैं। प्राचीनकाल में जीवन का पूर्वार्द्ध व्यतीत होते-होते लोग वानप्रस्थ धारण करते थे और संचित कुसंस्कारों का प्रायश्चित करने तथा धर्म प्रचार का पुण्य परमार्थ अर्जित करने की दृष्टि से लम्बी तीर्थ यात्रा पर निकलते थे। इस प्रकार का सोद्देश्य और कष्टसाध्य प्रयास तपश्चर्या में गिना जाता था। इसलिये उस प्रयास को पदयात्रा द्वारा करने का विधान है, ताकि अधिक जनसम्पर्क सध सके और रास्ते में मिलने वालो की धर्म-धारणा उत्तेजित उत्साहित करने का अधिकाधिक अवसर मिल सके। ढर्रे का जीवनक्रम एक प्रकार के कठोर बन्धन के रूप में बँध जाता है, फलतः आदर्शों के सम्बन्ध तो सोचते रहना भर ही सम्भव होता है, करते-धरते कुछ बन नहीं पडता। इस व्यवधान को रास्ते से हटाने के लिए कुछ समय घर छोड़ने की आवश्यकता पडती है, ताकि अभ्यस्त ढर्रे का चक्रव्यूह तोडा नहीं तो शिथिल तो किया ही जा सके। तीर्थयात्रा का सारभूत स्वरूप और उद्देश्य यही है।

पापों के प्रायश्चित में तीर्थयात्रा का सुनिश्चित प्रावधान है। मात्र क्षमा माँगने से दुष्कर्म का संचित भण्डार हटता नहीं, स्थान-दर्शन जैसी चिन्ह-पूजा भी इतने बड़े भार को हटाने में समर्थ नहीं हो सकती। खोदी हुई खाई पाटने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। इन कुकर्मजन्य कुसस्कारो को निरस्त करने से ही आध्यात्मिक प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है, इसलिए कुछ ऐसा साहस करना होता है, जिससे कषाय-कल्मष धुले और प्रस्तुत श्रद्धा-सद्भाव नये सिरे से उभरें। यह समूचा प्रयोजन तीर्थ-सेवन से पूरा होता है, इसलिए उसे तीन उद्देश्य पूरा करने वाला माना गया है पाप-कर्मों का प्रायश्चित—मध्यवर्ती परिवर्तन का साधना-विधान—उज्जवल भविष्य का सुनिश्चित निर्धारण और उसे कार्यान्वित करने का व्रत-धारण, यह तीनों प्रयोजन जहाँ पूरे होते हों, समझना चाहिए कि वह समग्र तीर्थ यात्रा विधिवत् सम्पन्न हुइ और शास्त्रों का पुण्यफल का अवसर बना। कल्प-साधना वस्तुतः तीर्थ-सेवन की पुरातन परम्परा का समयानुरूप सुनियोजित संस्करण है।

रास्ते में धर्म-प्रचार की पदयात्रा तो जब बन पड़े तब करनी चाहिए, किन्तु मध्यवर्ती परिवर्तन का साधना विधान कल्प-साधना के दिनों को पूरा करने का सुयोग सहज सम्मुख है। उज्जवल भविष्य का निर्धारण भी यहीं हो सकता है। उसका कार्यान्वयन बाद की बात है। यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रह सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन पुरातन तीर्थ परम्परा का तो इन दिनों लोप हो तो गया दृष्टिगोचर होता है। चिन्ह पूजा तो अभी भी होती है। स्थान भी पुराने होते हैं, उनके साथ जुड़ा इतिहास बड़े जोशीले शब्दों में व्यक्त करने वाले बकवादी भी पाये जाते हैं। फिर भी वहाँ अब जो वातावरण है, उसे देखकर समझदार व्यक्ति अपना वहाँ जाना निरर्थक ही मानता है। उस वातावरण में उथले मनोरंजन और आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। श्रद्धा बढ़ने के स्थान पर अश्रद्धा ही पनपती है। इस निराशा के वातावरण में आशा की एक किरण के रूप में ही शान्ति कुंज गायत्री तीर्थ का नवनिर्माण हुआ है। यहाँ आकर कोई भी अधिक साधक मनःस्थिति का व्यक्ति तीर्थ सेवन तथा कल्प-साधना के द्विविधि लाभ भली भाँति पा सकता है। विगत की भूलों का परिमार्जन-प्रायश्चित तथा भावी जीवन की रूपरेखा का कल्प-प्रक्रिया में अनुपम निर्धारण किया गया है। कल्प-साधना के लिये आये साधकों से सत्र के प्रारम्भिक दिन ही अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों, चिन्ताओं, समस्याओं एवं आकांक्षाओं को अनुभव करते रहते हैं कि उन्हें परोक्ष रूप से सूत्र-संचालकों का नित नया सन्देश परामर्श मिल रहा है।

इस विचार-विनिमय में एक पक्ष तो वर्तमान समस्याओं से सम्बन्धित है। दूसरा भूतकालीन ऊहापोह और तीसरा भविष्य निर्धारण सम्बन्धी निर्देश। आध्यात्मिक प्रगति में सबसे अधिक बाधक वे कुकृत्य होते हैं जो पके फोड़े पर चुभे काँटे की तरह अन्तःक्षेत्र में कुसंस्कार बनकर जमे-गढ़े और कसकते रहते हैं। इन्हें यथावत् रहने दिया जाय तो वे अन्तःचेतना को सन्मार्ग की ओर बढ़ने में भारी अवरोध उत्पन्न करते रहेंगे। कारण कि कुकृत्यों का जो दण्डविधान दुर्गति के रूप में भुगतना शेष है उसके लिए सन्मार्ग पर चलने से रोकना ही नरक व्यवस्था का निर्धारित क्रम है। इस अवरोध को हटाने के लिए प्रायश्चित ही एक मात्र उपाय उपचार है। खोदी गयी खाई को पाटना ही होगा। गवन का भुगतान करना ही होगा। क्षमा प्रार्थना नहीं प्रायश्चित साहसिकता अपनाने से ही काम चलता है। अन्यथा अध्यात्म प्रगति को तथा त्रुटिवश हुए पापकर्मों का ब्यौरा लिखवा लिया जाता है। उन्हें मात्र गुरुदेव-माताजी ही ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं तथा स्वयं निश्चय करते हैं कि किस साधक के लिये क्या निर्धारण किया जाय ? कल्प आरम्भ के पूर्व का यह आध्यात्मिक वमन-विरेचन हर किसी के समक्ष नहीं मात्र उन्हीं के समक्ष करना चाहिए, जिनके संरक्षण में अपना भावकल्प कराने के लिए साधक स्वयं को सौंपते हैं।'

किसंके लिये क्या किया जाना है—इसमें परामर्श और अनुदान दोनों ही सम्मिलित हैं। परामर्श में कुछ तो वाणी से कह दिया जाता है। शेष का उत्तर साधक के अन्तराल तक पहुँचाने के लिए मध्यमा, परा पश्यन्ती नाम से समझी जाने वाली त्रिविधि श्रवणातीत वाणियों का उपयोग होता रहता है। साधक एकान्त काल में यह कोई न कोई विघ्न उत्पन्न होते ही रहेंगे। अस्तु पापों का प्रायश्चित तो मानसिक परिमार्जन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर के संचित मलों का निष्कासन। कृत्य प्रक्रिया के ये दोनों ही अविच्छिन्न अंग हैं। अस्तु जहाँ साधकों के शरीरगत विकारों का निष्कासन और विशिष्टताओं का अभिवर्धन अभीष्ट है, वहाँ यह भी आवश्यक है कि मनःक्षेत्र में कुकृत्यों का कारण उत्पन्न कुसंस्कारों और अवरोधों का भी परिमार्जन किया जाय। इसके लिए किसे क्या करना होगा ? इसका निर्णय कराने के लिए साधक अपनी भूलों का उल्लेख करते हैं, जिसे पढ़कर उन्हें वापस कर दिया जाता है ताकि अन्य कोई उसे पढ़ न सके। इसके साथ ही यह भी बता दिया जाता है कि उन्हें प्रायश्चित की दृष्टि से और क्या कुछ करना चाहिए ?

शारीरिक, मानसिक विकृतियों के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयाँ भी सत्र प्रवेश के दिन लिखकर देनी होती हैं, पर उतने भर से काम नहीं चलता। ब्रह्मवर्चस शोध-संस्थान के कुशल चिकित्सक हर साधक का शारीरिक, मानसिक पर्यवेक्षण करते हैं, उसकी विधिवत् रिपोर्ट देते हैं। इस विश्लेषण के आधार पर भी साधकों में से प्रत्येक को जो पृथक्-पृथक् करना होता है, उन उपचारों को तभी अलग बता सिखा दिया जाता है। इन विशिष्ट साधना क्रमों में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्धारण भी होते रहते हैं। यह जाँच आखिर, मध्य और अंत में तीन बार होने से यह पता चल जाता है कि कल्प-साधना किसके लिए किस क्षेत्र, में कितनी उपयोगी, अनुपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रकार यह एक मास की तीर्थसेवन अवधि यदि ठीक प्रकार निभ सके तो भूतकाल की तुलना में भविष्य को अत्यधिक सफल समुन्नत बनाने वाली सिद्ध होती है।

भावी जीवन पंचशीलों के साथ जुड़े

कल्प-साधना के दिनों में यदि किसी प्रकार का चिन्तन तेजस्वी स्तर पर उभरा होगा और उससे पश्चात्ताप जैसा कुछ मरोड़ने वाला दर्द हुआ होगा तो फिर उसका समाधान एक ही हो सकता है—भविष्य का शानदार निर्धारण। मनन तभी सार्थक है, जब उससे विगत के प्रमाद की भरपाई करने के लिए चौगुने, सौगुने पराक्रम की उमंगें उभरें। इस एक मास की अवधि में चिन्तन तो दो-चार दिन का ही पर्याप्त हो सकता है। शेष २६ दिन एक ही योजना बनानी चाहिए कि जिन आदर्शवादी प्रेरणाओं का यहाँ माहौल है उनका अवधारण—कार्यान्वयन कैसे सम्भव हो ? उसके लिए किस क्रम में क्या कदम उठाये जाने चाहिए और उस निर्धारण में जो आन्तरिक प्रसाद तथा बाह्य व्यवधान आड़े आने वाला है, उससे कैसे निपटा जाना चाहिए ? असल में यही कल्प-साधना के दिनों की महानतम उपलब्धि। यदि इस प्रयत्न के फलस्वरूप उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण बन पड़ा तो उसका श्रेय सुअवसर सहयोग को नहीं, साधक को अपनी दूरदर्शी विवेकशीलता एवं संकल्पवान साहसिकता को ही मिलेगा।

व्यक्तित्व के विकास में आने वाले कुछ प्रमुख सूत्र हैं। उनकी उपयोगिता और फलश्रुति समझनी चाहिए तथा उनके कार्यान्वयन का क्रम बनाने से लेकर अपनाये रहने का संकल्पवान व्रत भी धारण करना चाहिए। ऐसे निर्धारणों में कुछ निम्नलिखित हैं—

व्यक्तित्व विकास

(१) प्रातः उठने से लेकर सोने तक की व्यस्त दिनचर्या निर्धारित करें। उसमें उपार्जन, विश्राम, नित्य कर्म, अन्यान्य काम-काजों के अतिरिक्त आदर्शवादी परमार्थ प्रयोजनों के लिए एक भाग निश्चित करें। साधारणतया आठ घण्टा कमाने, सात घण्टा सोने, पाँच घण्टा नित्यकर्म एवं लोक व्यवहार के लिए निर्धारित रखने के उपरान्त चार घण्टे परमार्थ प्रयोजनों के लिए निकालने चाहिए। इसमें भी कटौती करनी हो तो न्यूनतम दो घण्टे तो होने ही चाहिए। इससे कम में पुण्य परमार्थ के सेवा-साधना के सहारे बिना न सुसंस्कारिता स्वभाव का अंग बनता है और न व्यक्तित्व का उच्चस्तरीय विकास सम्भव होता है।

(२) आजीविका बढ़ानी हो तो अधिक योग्यता बढ़ायें, परिश्रम में तत्पर रहें और उसमें गहरा मनोयोग लगायें। साथ ही अपव्यय में कठोरतापूर्वक कटौती करें। सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त समझें। अपव्यय के कारण अहंकार, दुर्व्यसन, प्रमाद बढ़ने और निन्दा, ईर्ष्या, शत्रुता, पल्ले बाँधने जैसी भयावह प्रतिक्रियाओं का अनुमान लगायें। सादगी प्रकारान्तर से सज्जनता का ही दूसरा नाम है। औसत भारतीय स्तर का निर्वाह ही अभीष्ट है। अधिक कमाने वाले भी ऐसी सादगी अपनायें जो सभी के लिये अनुकरणीय हो। ठाट-बाट प्रदर्शन का खर्चीला ढकोसला समाप्त करें।

(३) अहिर्निश पशु-प्रवृत्तियों को भड़काने वाले विचार ही अन्तराल पर छाये रहते हैं। अभ्यास और समीपवर्ती प्रचलन मनुष्य को वासना, तृष्णा और अहंकार की पूर्ति में निरत रहने का ही दबाब डालता है। सम्बन्धी मित्र परिजनों के परामर्श प्रोत्साहन भी इसी स्तर के होते हैं। लोभ, मोह और विलास के कुसंस्कार निकृष्टता अपनाये रहने में ही लाभ तथा कौशल समझते हैं। ऐसी ही सफलताओं को सफलता मानते हैं। इसे एक चक्रव्यूह समझना चाहिए। भव-बन्धन के इसी घेरे से बाहर निकलने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए। कुविचारों को परास्त करने का एक ही उपाय है—प्रज्ञा साहित्य का न्यूनतम एक घण्टा अध्ययन अध्यवसाय। इतना समय एक बार न निकले तो उसे जब भी अवकाश मिले, थोड़ा-थोड़ा करके पूरा करते रहना चाहिए। स्वाध्याय को भजन से भी अधिक प्रमुखता दी गई है। इसलिए उसे नित्य कर्म सम्मिलित करना चाहिए और कभी प्रमाद न करना चाहिए सद्विचारों की यह स्वाध्याय संचित पूँजी ही मनुष्य की सच्ची आध्यात्मिक सम्पदा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(४) प्रतिदिन प्रज्ञायोग की साधना विकसित रूप से की जाय। उठते समय आत्मबोध—सोते समय तत्व बोध। नित्यकर्म से निवृत्त होकर जप ध्यान। एकान्त सुविधा का चिन्तन-मनन में उपयोग। यही है—त्रिविधि सोपानों वाला प्रज्ञायोग। यह संक्षिप्त होते हुए भी अति प्रभावशाली एवं समग्र है। अपने अस्त-व्यस्त बिखराव वाले साधना क्रम को समेटकर इसी केन्द्र बिन्दु पर एकत्रित करना चाहिए। महान् के साथ अपने क्षुद्र को जोड़ने के लिए योगाभ्यास का विधान है। प्रज्ञा परिजनों के लिये सर्वसुलभ एवं सर्वोत्तम योगाभ्यास 'प्रज्ञायोग' की साधना है। उसे भावनापूर्वक अपनाया और निष्ठापूर्वक निभाया जाय।

(५) दृष्टिकोण को निषेधात्मक न रहने देकर विधेयात्मक बनाया जाय। अभावों की सूची फाड़ फेंकनी चाहिए और जो उपलब्धियाँ हस्तगत हैं, उन्हें असख्य प्राणियों की अपेक्षा उच्चस्तरीय मानकर सन्तुष्ट भी रहना चाहिए और प्रसन्न भी। इसी मनः स्थिति में अधिक उन्नतिशील बनना और प्रस्तुत कठिनाइयों से निकलने वाला निर्धारण भी बन पड़ता है। असन्तुष्ट, खिन्न, उद्विग्न रहना तो प्रकारान्तर से एक उन्माद है, जिसके कारण समाधान और उत्थान के सारे द्वार ही बन हो जाते हैं।

कर्तृत्व पालन को सब कुछ मानें। असीम महत्वाकांक्षाओं के रंगीले महल न रचें। ईमानदारी से किये गये पराक्रम से ही परिपूर्ण सफलता मानें और उतने भर से सन्तुष्ट रहना सीखें। कुरूपता नहीं, सौन्दर्य निहारें। आशंकाग्रस्त, भयभीत निराश न रहें। उज्ज्वल भविष्य के सपने देखें। याचक नहीं दानी बनें। आत्मावलम्बन सीखें। अहंकार तो हटायें पर स्वाभिमान जीवित रखें। अपने समय, श्रम, मन और धन से दूसरों को ऊँचा उठायें। सहायता करें पर बदले की अपेक्षा न रखें। बड़प्पन की तृष्णाओं को छोड़ें और उनके स्थान पर महानता अर्जित करने की महत्वाकांक्षा सँजोयें। स्मरण रखें, हंसते-हंसाते रहना और हलकी-फुलकी जिन्दगी जीना ही सबसे बड़ी कलाकारिता है।

परिवार निर्माण

(१) परिवार को अपनी विशिष्टताओं को उभारने अभ्यास करने एवं परिपुष्ट बनाने को प्रयोगशला-पाठशाला समझें। इस उद्यान में सत्प्रवृत्तियों के पौधे लगायें। हर सदस्य को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी एवं समाजनिष्ठ बनाने का भरसक प्रयत्न करें। इसके लिए सर्वप्रथम ढालने वाले साँचे की तरह स्वयं आदर्शवान बनें ताकि कथनी और करनी की एकता का प्रभाव पड़े। स्मरण रहे साँचे के अनुसार ही खिलौने ढलते हैं। पारिवारिक उत्तरदायित्व में सर्वप्रथम है—संचालक का आदर्शवादी ढाँचे में ढलना, दूसरा है माली की तरह हर पौधे को शालीनता के क्षेत्र में विकसित करना।

(२) परिवार की संख्या न बढ़ायें। अधिक बच्चे उत्पन्न न करें। इसमें जननी का स्वास्थ्य, सन्तान का भविष्य, गृहपति का अर्थ-सन्तुलन एवं समाज में दारिद्रिय असन्तोष बढता है। दूसरों के बच्चों को अपना मानकर उनके परिपालन से वात्सल्य कहीं अधिक अच्छी तरह निभ सकता है। लड़की-लड़कों में भेद न करें। पिछली पीढ़ी और वर्तमान के साथियों के प्रति कर्तृत्व पालन तभी हो सकता है, जब नये प्रजनन को रोकें, अन्यथा प्यार और धन प्रस्तुत परिजनों का ऋण चुकाने में लगने की अपेक्षा उनके लिए बहने लगेगा, जिनका अभी अस्तित्व तक नहीं है। आज के समय में बच्चों की संख्या वृद्धि हर दृष्टि से अवांछनीय है। इसलिए उस सम्बन्ध में संयम बरतें और कड़ाई रखें। थोड़े लोगों का परिवार हो सुसंस्कारी बन सकता है। स्वावलम्बी सदस्यों को अलग होने की अपेक्षा छोटों की सहायता और बड़ों की सेवा करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

(३) संयम और सज्जनता एक तथ्य के दो नाम हैं। परिवार में ऐसी परम्परायें प्रचलित करें, जिसमें इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम का अभ्यास आरम्भ से ही करते रहने का अवसर मिले। घर में चटोरेपन का माहौल न बनाया जाय। भोजन सात्विक बने और नियत समय पर सीमित मात्रा में खाने का ही अभ्यास बने। कामुकता को उत्तेजना न मिले। सभी की दिनचर्या निर्धारित रहे। समय के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम और मनोयोग जुड़ा रहे। किसी को आलस्य प्रमाद की आदत न पड़ने दी जाय और न कोई आबारागर्दी अपनाये व कुसंग में फिरे। फैशन और जेवर को बचकाना उपहासास्पद माना जाय, केश-विन्यास और अश्लील, उत्तेजक पोशाक न पहनें और न जेबर आभूषणों से लदें। नाक, कान छेदने और उनके चित्र-विचित्र लटकन लटकाने का पिछड़ेपन का प्रतीक फैशन कोई महिला न अपनाये। विचार संयम के लिए कुविचारों का आक्रमण घर में न हो उसके लिए सद्विचारों का स्वाध्याय और कथा कहानी परस्पर विचार-विनिमय का नियमित कार्यक्रम चलता रहे। गृहपति स्वयं चतुर्विधि संयम पाले और घर के अन्य सदस्य को भी इस शालीनता की निशानी संयमशीलता का अधिकाधिक अभ्यास करायें।

(५) पारिवारिक पंचशीलों में श्रमशीलता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, शालीन-शिष्टता और उदार सहकारिता की गणना की गयी है। इन पाँच गुणों को हर सदस्य के स्वभाव में कैसे सम्मिलित किया जाय ? इसके लिए उपदेश देने से काम नहीं चलता, वरन् ऐसे व्यावहारिक कार्यक्रम बनाने पड़ते हैं, जिन्हें करते रहने के सिद्धान्त व्यवहार में उतरें। इसलिए घर के लोगों को साथ लेकर परिवार प्रमुखों को कुछ कर्त्तव्य करने होते हैं, तभी अन्यों को उनको आरम्भ करने से भविष्य में अपनाये रहने की आदत पडती है। यह क्रिया द्वारा शिक्षा देने की विधि ही आदतें डालने या सुधारने में काम आती हैं।

(६) उत्तराधिकार का लालच किसी के मस्तिष्क में नहीं जमने देना चाहिए, वरन् हर सदस्य के मन में यह सिद्धान्त जमना चाहिए कि परिवार की संयुक्त सम्पदा में उसका भरण-पोषण शिक्षण एवं स्वावलम्बन सम्भव हुआ है। इस ऋण को चुकाने में ही ईमानदारी है। बड़ों की सेवा और छोटों की सेवा के रूप में यह ऋण हर वयस्क स्वावलम्बी को चुकाना चाहिए। कमाऊ होते ही आमदनी जेब मे रखना और पत्नी को लेकर मनमाना खर्च करने के लिए अलग हो जाना प्रत्यक्ष बेईमानी है। उत्तराधिकार का कानून मात्र कमाने में असमर्थों के लिए लागू होना चाहिए न कि स्वावलम्बियों की मुफ्त की कमाई लूट लेने के लिए आध्यात्मवाद और साम्यवाद दोनों ही इस मत के हैं कि पूर्वजों को छोड़ी कमाई के असमर्थ आश्रित ही तब तक उपयोग करें, जब तक कि वे स्वावलम्बी नहीं बन जाते। परिवार में उत्तराधिकार का प्रचलन इसी आधार पर करने की पहल पहले अपने घरों से करना चाहिए। इसके लिए मिशन के सूत्र संचालक का, वाजिश्रवा का, मैत्रेयी का, महर्षि कर्वे का उदाहरण हम सबके मस्तिष्कों में घूमता रहना चाहिए।

समाज निर्माण

(१) हममें से हर व्यक्ति से अपने को समाज का एक अविच्छिन्न अंग माने। अपने को उसके साथ अविभाज्य घटक मानें। सामूहिक उत्थान और पतन पर विश्वास करें। एक नाव में बैठे लोग जिस तरह एक साथ डूबते हैं या पार होते हैं वैसी ही मान्यता अपनी रहे। स्वार्थ और परमार्थ को परस्पर गूँथ दें। परमार्थ को स्वार्थ समझें और स्वार्थ की सिद्धि की बात कभी ध्यान में आये तो वह संकीर्ण नहीं उदात्त एवं व्यापक हो। मिल-जुलकर काम करने और मिल-बाँटकर खाने की आदत डाली जाय। भगवान को विराट् विश्व के उस पक्ष के समकक्ष माना जाय, जिसमें उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समुच्चय है और मात्र सत्प्रवृत्तियों के रूप में उसकी लीलाओं का पर्यवेक्षण किया जाय। समाज निष्ठा जगे।

(२) मनुष्यों के बीच सज्जनता, सद्भावना एवं उदार सहयोग की परम्परा चले। दान विपत्ति एवं पिछड़ेपन से ग्रस्त लोगों को पैरों पर खड़े होने तक के लिये दिया जाय। इसके अतिरिक्त उसका सतत् प्रवाह सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिये ही नियोजित हो। साधारणतया मुफ्त में खाना और खिलाना अनैतिक समझा जाय। इसमें पारिवारिक या सामाजिक प्रीतिभोजों का जहाँ औचित्य हो वहाँ अपवाद रूप से छूट रहे। भिक्षा व्यवसाय पनपने न दिया जाय। दहेज, मृतक भोज, सदावर्त धर्मशाला आदि ऐसे दान जो मात्र प्रसन्न करने भर के लिये दिये जाते हैं और उस उदारता के लाभ समर्थ लोग उठाते हैं—अनुपयुक्त मानें और रोके जायें। साथ हर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षेत्र का पिछड़ापन दूर करने के लिये उदार, श्रमदान और धनदान को अधिकाधिक प्रोत्साहित भी किया जाय।

(३) किसी मान्यता या प्रचलन को शाश्वत या सत्य न माना जाय, उन्हें परिस्थितियों के कारण बना समझा जाय। उनमें जितना औचित्य न्याय और विवेक जुड़ा हो उतना ग्राह्य और जो अनुपयुक्त होते हुये भी परम्परा के नाम पर गले बँधा हो, उसे उतार फैंका जाय। समय-समय पर इस क्षेत्र का पर्यवेक्षण होते रहना चाहिए और जो असामयिक-अनुपयोगी हो उसे बदल देना चाहिये। उस दृष्टि से लिंग भेद, जाति भेद के नाम पर चलने वाली विषमता सर्वथा अग्राह्य समझी जाय। इसी प्रकार वैयक्तिक आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में संव्याप्त अनेकानेक चित्र-विचित्र परम्पराओं में से जो विवेक की कसौटी पर उपयोगी सिद्ध हो उन्हें अक्षुण्ण रखते हुए शेष को बिना बहुजन-मान्यता की परवाह किये बहुजन हिताय की बात को महत्व देना चाहिए और आवश्यक परिवर्तन प्रस्तुत करने के लिए एकाकी बढ़ चलना चाहिए।

(४) सहकारिता का प्रचलन हर क्षेत्र में किया जाय। अलग-अलग पड़ने की अपेक्षा सम्मिलित प्रयत्नों और संस्थानों को महत्व दिया जाय। संयुक्त परिवार से लेकर सयुक्त राष्ट्र विश्व को लक्ष्य बनाकर चला जाय। विश्व परिवार का आदर्श कार्यान्वित करने का ठीक समय यही है। सभी प्रकार के विलगावों को निरस्त किया जाय। व्यक्ति की सुविधा की तुलना में समाज व्यवस्था को वरिष्ठता मिले। प्रशंसा ऐसे ही प्रयत्नों की हो, जिन्हें सर्वोपयोगी कहा जाय। व्यक्तिगत समृद्धि, प्रगति एवं विशष्टता का श्रेय न मिले। उसे कौतुक-कौतूहल मात्र समझा जाय।

(५) अवांछनीयताओं, मूढ़ मान्यताओं और कुरीतियों को छूत की बीमारी समझा जाय। वे जिस पर सवार होती हैं उसे तो मारती ही हैं, अन्यान्य लोगों को भी चपेट में लेती और वातावारण बिगाड़ती हैं। इसलिए उनका असहयोग विरोध करने की मुद्रा रखी जाय और जहाँ सम्भव हो उनके साथ समर्थ संघर्ष भी किया जाय। समाज के किसी अंग पर हुआ अनीति का हमला समूचे समाज के साथ बरती गई दुष्टता माना, जाय और उसे निरस्त करने के लिए जो मीठे-कड़ुवे उपाय हो सकते हों, उन्हें अपनाया जाय। अपने ऊपर बीतेगी, तब देखेंगे इसकी प्रतीक्षा करने की अपेक्षा कहीं भी हुए अनीति के आक्रमण को अपने ऊपर हुआ हमला माना जाय और प्रतिकार के लिए दूरदर्शितापूर्ण रणनीति अपनायी जाय।

व्यक्तिगत परिवार और समाज क्षेत्र के उपरोक्त पाँच-पाँच सूत्रों को उन-उन क्षेत्रों के पचशील माना जाय और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए जो भी अवसर मिले, उन्हें हाथ से जाने न दिया जाय।

आवश्यक नहीं कि सभी का तत्काल एक साथ उपयोग करना आरम्भ कर दिया जाय। उनमें से जितने जब जिस प्रकार कार्यान्वित किये जाने सम्भव हों, तब उन्हें काम में लाने का अवसर भी हाथ से न जाने दिया जाय। किन्तु इतना काम तो तत्काल आरम्भ कर दिया जाये कि इन्हें सिद्धान्त रूप से पूरी तरह स्वीकार किया जाये। आदर्शवादी महानता से गौरवान्वित होने वाले जीवन इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर जीये जाते हैं। अनुकरणीय प्रयास करने के लिए जिन्होंने श्रेय पाया है, उनने त्रिविधि पंचशीलों में से किन्हीं सूत्रों को अपनाया और अन्यान्यों द्वारा अपनाये जाने का वातावरण बनाया है।

कल्प-साधना के साधक एक मास की अवधि में यह निश्चित करें कि उन्हें भविष्य में आदर्शवादी जीवन जीना है। जो बीत गया सो गया पर जो शेष है, उसका उपयोग इस प्रकार करना है जिससे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण के दोनों ही प्रयोजन साथ-साथ सधते रहें। जीवन सम्पदा को यदि शरीर और आत्मा की साझेदारी माना जा सके तो दोनों पक्षों को उसके उपार्जन का समान लाभ मिलना चाहिए। अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व में एक आदर्शवादिता को—प्रज्ञा अभियान का ही एक सदस्य मान लिया जाय और जिस प्रकार अन्य कुटुम्बियों के लिए समय, धन लगाया जाता है उसी प्रकार इस महान् प्रयोजन के लिए उतना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही करते रहा जाय तो इस व्रत निर्वाह से हर कल्प-साधक निकट भविष्य में महामानवों की पंक्ति में खड़ा दृष्टिगोचर हो सकता है। यही सच्चे अर्थ में काया-कल्प है।

कल्प-साधकों के भावी निर्धारण

मनुष्य के हाथ में दो सम्पदायें हैं। एक ईश्वर प्रदत्त समय दूसरी स्व-उपार्जित वैभव। इन्हीं के बदले इस संसार के बाजार में हर भली-बुरी वस्तु खरीदी जाती है। पतन, पिछड़ापन और उत्थान की तीन परिस्थितियाँ हैं। पतनोन्मुख को पिशाच, पिछड़ों को पशु और उत्थानरतों को देव कहते हैं। यही हैं मनुष्य की तीन विरादरियाँ। इनमें से किसी में भी मनुष्य अपने समय और श्रम को नियोजित करके प्रवेश पा सकता है। कितनी ही अधिक प्रगति कर सकता है ?

आमतौर से मनुष्य अपने को शरीर मानता है। फलतः समूचे श्रम, समय को वासना, तृष्णा और अहंता में, लोभ, मोह और दर्प में लगाये रहता है। शरीर को निर्वाह के उपरान्त यही तीन ऊत सूझती हैं और मन इन्हीं में रस लेता है और कोल्हू के बैल की तरह जुता रहता है। फलतः यह सुर दुर्लभ मनुष्य जीवन ऐसे ही अनर्थ और स्वार्थ की विडम्बना में खप जाता है। परमार्थ की बात सूझती ही नहीं। इस हेय स्थिति से उबरने की प्रक्रिया को "जीवन कल्प" कहते हैं। अध्यात्म का वास्तविक सत्परिणाम यही है।

मनः क्षेत्र में समझदारी, ईमानदारी और जिम्मेदारी का भाव जगते ही मनुष्य में देवत्व का उदय होता है और उसकी परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं, जिसमें धरती पर जीवन में—स्वर्ग के अवतरण जैसी अनुभूति होती रहे। इसके लिए परिवर्तन इतना ही करना होता है कि सुख-सुविधा के निमित्त सम्पदा बटोरने की ललक बदलकर आत्मसुधार का पुण्य और लोकमंगल का परमार्थ क्रम अपनाना पड़ता है। प्रलोभनों के प्रवाह को रोकने का अभ्यास तप और परमार्थ में रस लेने तथा प्रयत्नरत होने को योग कहा जाता है। लोभ और मोह से जो जितना विरत हो सका, उसके स्थान पर पुण्य, परमार्थ की सत्प्रवृत्तियों को व्यवहार में उतार सका, समझाना चाहिए कि वह उतना ही बड़ा सिद्ध पुरुष हो गया।

शास्त्रकारों का कथन है कि ऐसे ही समर्थ एवं प्राणवान साधक ही स्वयं पार होते हैं और अपनी नाव में बिठाकर, असंख्यों, को पार करते हैं। कल्प-साधना में ऐसा ही साहस उभारने वाली विधि-व्यवस्था बनाई और अपनाई जाती है। इन दिनों विगत के परिमार्जन और भविष्य के निर्धारण का ही चिन्तन, मनन अन्तर्मुखी होकर करते रहना चाहिए। महान् परिवर्तन की तैयारी इसी रूप में होती है कि चिन्तन में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता का अधिकाधिक समावेश करने का ताना-बाना बुना और ढाँचा खड़ा किया जाय। कल्प-साधकों को अपने अन्तः क्षेत्र में यही समुद्र मंथन करना चाहिए और बहुमूल्य रत्न-भंडार हस्तगत करके ही वापिस लौटाना चाहिए। इसी में तीर्थ सेवन की सार्थकता है।

स्मरण रहे साधना भीख माँगने, जेब काटने या बाजीगरी कौतुक, कौतूहल देखने की उस बिडम्बना का नाम नहीं है, जो इन दिनों इस क्षेत्र के दिग्भ्रान्तों में से अधिकांश के सिर पर सवार रहती है। यह विशुद्ध आत्म परिष्कार का तत्वज्ञान और क्रिया विधान है। जो उसे सही रूप में समझता और अपनाता है, उसके अन्तःकरण में श्रद्धा का, मनःसंस्थान में प्रज्ञा का और व्यवहार में निष्ठा का अनुपात तेजी से बढ़ता है। उसे हाथों-हाथ तृप्ति और शान्ति का लाभ मिलता है। यही है आत्म-साधना का राजमार्ग और सिद्धि-साधना का दिव्य-वरदान।

यदि ऐसा कुछ अन्तरंग में बना, जमा और पका हो तो उस अंकुर में खाद पानी देने एवं निराई, गुड़ाई और रखवाली का प्रयत्न करना चाहिए। बीजारोपण को फसल काटने तक पहुँचाने में दूरदर्शिता, तत्परता और उदारता का प्रमाण परिचय प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रयत्न पुरुषार्थ के बिना किसी भी क्षेत्र में कुछ मिलता नहीं है। कल्पना लोक में रंगीली उड़ान रहने से कुछ काम बनता नहीं। उत्कृष्टता को कार्यान्वित करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए आदर्शवादी गतिविधियाँ अपनानी चाहिए। यह कैसे किया जाय ? शुभारम्भ कहाँ से किया जाय ? अवरोध को प्रगति में कैसे बदला जाय ? नरक से विमुख होकर स्वर्ग तक कैसे उछाला जाय ?

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है। पुण्य परमार्थ का संचय, सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन। इस प्रयास के कुछ व्यवहारिक सूत्र नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं। यह सभी करने योग्य हैं। सभी के सत्परिणाम एक से एक बढकर हैं। पर जिनसे सभी एक साथ न बन पड़ें वे उनमें थोड़े-थोड़े हाथ में लें और फिर क्रमशः आगे बढ़ते चलें। कुछेक से आरम्भ करना बाल-शिक्षा की तरह उत्साहवर्धक तो हैं पर पर्याप्त नहीं। परमार्थ प्रयोजनों में अधिकाधिक रस लेने और प्रयत्नों को अधिकाधिक प्रखर करने की ललक को दिन-दिन प्रदीप्त करते चलना चाहिए। स्वल्प संतोष में आरम्भिक श्री गणेश को ही इतिश्री नहीं मान लेना चाहिए। कल्प-साधकों को महान् परिवर्तन के जिस राजमार्ग पर चलना है, उसके लिए सर्वसुलभ कदम इस क्रम से उठने चाहिए।

(१) समयदान, अंशदान में जितना अधिक उदार साहस जुटा सकें जुटायें। सभी सत्प्रवृत्तियाँ इसी आधार पर विकसित हो सकती हैं। परमार्थ प्रयोजनों के लिए जो न समय निकालते हैं और न साधनों का कोई अंश प्रस्तुत करते हैं उनका जप, ध्यान मात्र चिन्ह पूजा है। हर सच्चे साधक को समय का एक भाग और उपार्जन का एक अंश निश्चित रूप से परमार्थ के लिए निकालना चाहिए। २२ घण्टे आजीविका और निर्वाह के लिए लगाना पर्याप्त समझा जाय। न्यूनतम दो-चार घण्टे तो आत्म-कल्याण के लिए लगें ही। महीने में एक दिन की आजीविका निकालते रहने का नियम, संकल्प तो सधे ही। इससे कम में काम चलने वाला नहीं है। जो समय नहीं दे सकते किन्तु आर्थिक दृष्टि से सुखी हैं, वे समयदान के बदले धन देकर भी दूसरों का समय खरीद सकते हैं। इन दिनों प्रज्ञा अभियान में संलग्न होने के लिए हजारों प्रज्ञापुत्र मचल रहे हैं पर निर्वाह साधन न जुट पाने के कारण मन मसोसकर बैठे हैं। यदि अंशदान की सुविधा जुट सके तो युगान्तरीय चेतना को देखते-देखते गगनचुम्बी बनाया जा सकता है। इस ऐतिहासिक बेला में भावनाशीलों को अपना अनुदान बढ़ी-चढ़ी, अनुकरणीय एवं अभिनन्दीय मात्रा तक पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(२) आत्मिक प्रगति के लिए उपासनात्मक साधना की नितान्त आवश्यकता है। सर्वोत्तम एवं सर्वसुलभ साधना प्रज्ञायोग की है, इसके लिए आधा घण्टे समय नियमित रूप से निकाला जाय। गुरुवार या रविवार को उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन एवं शक्ति-संचार, विशिष्ट साधना को पूरा महत्व दिया जाय।

युग संधि की अवधि में अदृश्य वातावरण के संशोधन के लिए युग पुरुश्चरण चल रहा है। इसमें प्रातः ठीक सूर्योदय के समय पाँच मिनट मानसिक जप और सविता के प्रकाश का ध्यान करना होता है। इतने भर में इस अनुष्ठान की भागीदारी निभ जाती है। इस साधना अनुदान को वातावरण परिशोधन के लिए समर्पित करने का संकल्प करना चाहिए। सूर्योदय का समय घटता-बढ़ता रहता है। स्थान-स्थान के बीच में भी थोड़ा-बहुत अन्तर पड़ता है। फिर भी भारत में दिल्ली समय को माध्यम मानकर अपने देश में सूर्योदय काल इस प्रकार घोषित किया जा रहा है।

(१) जनवरी—६.४७(२) फरवरी— ६.३३
(३) मार्च— ६.०६(४) अप्रैल— ५.३२
(५) मई— ५.०८(६) जून— ५.०२
(७) जुलाई— ५.१५(८) अगस्त— ५.२७
(९) सितम्बर—५.४५(१०) अक्टूबर—५.५६
(११) नवम्बर—६.१६(१२) दिसम्बर—६.३७

विदेशों में अपनी-अपनी राजधानियों के सूर्योदय समय को मान्यता दी जा सकती है। प्रज्ञा परिजन ५० लाख हैं। प्रत्येक के पाँच मिनट, एक समय, एक उद्देश्य के लिए की गई वरिष्ठ साधना का स्तर भी ऊँचा रहता है और संयुक्त संख्या भी ६० करोड़ प्रतिदिन हो जाती है। इसे स्वयं तो करना ही चाहिए प्रभाव क्षेत्र के दूसरे परिजनों को भी सम्मिलित करना चाहिए। समय सूचना के लिए घण्टी, शख बजाकर उस क्षेत्र के लोगों को स्मरण दिलाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का उपक्रम चल सकता है। इस साधना में संलग्न भागीदारों के नाम पते शांतिकुन्ज भिजवा दिये जायें।

(३) परिवार में श्रमशीलता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था, शालीनता, सहकारिता की सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास स्वयं साथ रहकर करायें। स्वाध्याय के लिए घरेलू पुस्तकालय रहे। सत्संग प्रज्ञा पुराण द्वारा हो। तुलसी स्थापना, पूजा कक्ष, नमन, वंदन, सामूहिकता आरती जैसे प्रचलनों से आस्तिकता का वातवारण बने। शाक-वाटिका, पुष्पवाटिका उगे। बच्चे कम से कम उत्पन्न किये जायें। हर सदस्य को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाने का प्रयत्न चले। एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की रहे। उत्तराधिकार में सम्पदा नहीं सत्परम्परा जोड़ने की दृष्टि रहे। गृहपति का जन्मदिवसोत्सव मनाया जाय और उसे परिवार निर्माण ज्ञान गोष्ठी जैसे धर्मोत्सव का रूप दिया जाय। गृहपत्नी का जन्मदिन मनाकर सम्पर्क क्षेत्र की महिलाओं में जागृति उत्पन्न की जाय। वर्ष में यह दो पर्व त्यौहार विशेष रूप से मनाये जाया करें।

(४) जन जागरण के लिए अपने प्रभाव क्षेत्र में पंचसूत्री योजना चलाई जाय। (अ) शिक्षितों को घर बैठे बिना मूल्य प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप से पढाना (ब) स्लाइड प्रोजेक्टर टेपरिकार्डर के माध्यम से आकर्षक सत्संग क्रम चलाना। (स) दीवारों पर आदर्श वाक्य-लेखन, घरों में आदर्श वाक्य टाँगना। (द) प्रज्ञा-परिजनों के जन्मदिन मनाना, इस माध्यम से जनमानस को सत्प्रेरणायें देना। (इ) बसन्त पंचमी, गायत्री, जयन्ती, गुरुपूर्णिमा तथा दोनों नवरात्रियों के पाँच पर्व आयोजनों के सामूहिक समारोहों की व्यवस्था बनाना। जन जागरण की यह पंचसूत्री योजना व्यक्तिगत प्रयत्नों तथा सद्भाव सम्पन्नों के सहयोग से आरम्भ एवं गतिशील की जाये।

लोक मानस परिष्कार, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन इन दिनों का सबसे बड़ा, अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्य है। इसे युगधर्म समय की पुकार, महाकाल का निमन्त्रण समझा जाय और उसे भावनापूर्वक सम्पन्न किया जाय। इसके लिए हर प्राणवान को निजी पुरुषार्थ से एक स्वाध्याय मण्डल बिना इमारत का प्रज्ञा-संस्थान गठित करना चाहिए।

पंच सूत्री योजना को अधिकाधिक व्यापक बनाना भी स्वाध्याय मण्डलों का काम है। इसके अतिरिक्त जहाँ भी संभव हो स्कूली छात्रों में मुफ्त ट्यूशन पढ़ाने की बाल-संस्कार पाठशालायें चलाई जायें। व्यायामशालाओं का छोटा-बड़ा रूप खड़ा किया जाय। पाठशालाओं और व्यायामशालाओं के आधार में मानसिक एवं शरीरिक विकास की दो गतिवधियों का विस्तार करने के लिए कुछ कदम उठाने चाहिए।

(५) तीर्थ परम्परा का पुनर्जीवन किया जाय। धर्म प्रचार की पदयात्राओं को समय-समय पर नियोजन किया जाय। जन जागरण के लिए घर-घर अलख जगाने के स्थानीय कार्यक्रम भी तीर्थ यात्रा की छोटी बहिन-परिक्रमा, प्रदक्षिणा स्तर के माने जायेंगे। साईकिल को पदयात्रा का भार वाहक माना गया है।

विकृत, दिग्भ्रांत एवं निहित स्वार्थों के चंगुल में फँसी हुई तीर्थ-परम्परा को पुनर्जीवित करने की इन दिनों एक ही समर्थ स्थापना गायत्री तीर्थ—शान्तिकुञ्ज के रूप में विनिर्मित, विकसित हो सकती है। हर किसी का प्रयत्न होना चाहिए कि अधिकाधिक लोगों को उसके सम्पर्क में आने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। एक महीने के कल्प-साधना सत्र, दस दिन के मिनी कल्प सत्र, चार दिन के तीर्थ सेवन सत्र चलते हैं। इसमें आवेदन भेजकर स्वीकृति प्राप्त करने वालों को ही प्रवेश मिलता है। तीर्थ का सच्चा स्वरूप देखने की दृष्टि से कोई भी व्यक्ति प्रातः १० से ५ के बीच यहाँ पहुँच सकता है और एक ऐसी स्थापना देख सकता है, जिससे धर्म धारणा को उपयुक्त परिपोषण मिल सके। उत्तराखण्ड यात्रा के लिये जाने वाले प्रायः यहाँ नमन, वन्दन करके, आशीर्वाद लेकर ही आगे आने में यात्रा को निर्विघ्न सम्पन्न होने की बात सोचने लगे हैं। जन्म दिन मनाने, विवाह की सफलता के निमित्त प्रोत्साहन पाने, बच्चों के जन्मदिन, नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन विद्यारम्भ, दीक्षा, यज्ञोपवीत कराने के लिए जैसे तीर्थों में पहुँचने की बात सोची जाती है, उसमें शांति कुञ्ज की उपुयुक्तता सर्वोपरि है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ों के विवाह दिवसोत्सव एवं वानप्रस्थ संस्कार भी यहाँ होते हैं और पितरों के श्राद्ध तर्पण की विधि विधान भी सरल, संक्षिप्त किन्तु शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न करा दिया जाता है। बिना दहेज और बिना खर्च, प्रदर्शन के विवाहों का प्रचलन प्रज्ञा-परिवार से आरम्भ होना चाहिए। इसके लिए शान्तिकुञ्ज में इस वर्ष विशेष व्यवस्था की गई है। कम खर्च में आदर्श-विवाह किस तरह सम्पन्न हो सकते हैं तथा आदर्श गृहस्थ की स्थापना का आधार किस तरह खड़ा किया जा सकता है उसकी विधिवत् व्यवस्था इस प्रयोगशाला में सम्मिलित की गई है।

उपरोक्त प्रयोजनों के लिए तथा तीर्थ सेवन की साधना के लिए अधिकाधिक लोग शान्तिकुञ्ज गायत्री तीर्थ में पहुँचें और उस छोटे सम्पर्क से भी भाव श्रद्धा को प्रदीप्त करके लोटें। इसके लिए आवश्यक है कि अपरिचितों को परिचित कराया जाय और परिचितों को सम्पर्क लाभ लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। यह प्रश्न कल्प-साधना के तीर्थ सेवन से लौटने वाले प्रत्येक साधक को सदा-सर्वदा करते रहना चाहिए।

साधना क्रम के—प्रारम्भ, मध्य और अंत में साधकों को बिना मूल्य दुर्लभ स्वास्थ्य परीक्षण एवम् परामर्श जुड़ा होने के कारण हर कोई इन सत्रों में प्रवेश के लिए लालायित रहता है। यह कसौटी रखी जानी चाहिए कि अनगढ़ भीड़ न आये। जो लोग आयें वह विधिवत् आवेदन-पत्र भेजकर अनुमति लेकर ही यहाँ आवें।

कल्प-साधना के दिनों उपरोक्त प्रयोजन के लिए किस प्रकार क्या प्रयत्न लौटते ही अपनाना चाहिए और उस शुभारम्भ को सि क्रम से आगे बढ़ाया जाय, इसकी सुनिश्चित दिशा धारा परिपक्व करके वापिस लौटना चाहिए। निर्धारणों को साधना यज्ञ की पूर्णाहुति श्रद्धाञ्जलि के रूप में लिखित संकल्प युग देवता की झोली में प्रस्तुत करना चाहिए।

प्रत्यावर्तित जीवन की समग्र साधन-शिक्षा

आत्मकल्याण के लिये—धार्मिक प्रगति के लिये—जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए—ईश्वर दर्शन अथवा परमात्मा के लिए यही एक मात्र मार्ग है कि उपासना रूपी चिकित्सा और साधना रूपी परिचर्या को जीवनक्रम का अविछिन्न अंग बनाया जाय। इसके लिए आरम्भिक आयु में ब्रह्मचर्य विद्याध्ययन-यौवन में उपार्जन गृहस्थ पालन करते हुए भी सरलतापूर्वक ऐसी रीति-नीति अपनाई जा सकती है, जिसके आधार पर लोक और परलोक की भौतिक और आत्मिक क्षेत्र की उभय-पक्षीय प्रगति का संतुलित आधार बन सके। सामान्य जीवन क्रम में ऐसे सन्तुलन की स्थापना सम्भव तो है ही—सहज भी है।

उससे आगे एक जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण काल आता है—लगभग पचास वर्ष की ढलती आयु का अवसर, आमतौर से लोग इस समय तो गृहस्थ के उत्तरदायित्वों से निवृत्ति होने की परिधि पर होते हैं—अथवा बडे बच्चे इस योग्य हो जाते हैं कि अपने छोटे भाई-बहनों की सुव्यवस्था में पिता का उत्तरदायित्व निभा सकें। किसी ने यदि अपने बच्चे को सुसंस्कृत बनाया होगा, उन्हें पुरखों द्वारा उपार्जित हराम की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने का सब्जबाग न दिखाया होगा तो वे अवश्य ही नीति और कर्तव्य का ध्यान रखेंगे। बेहिसाब लाड-दुलार में ही तो बच्चों की आदतें बिगड़ती हैं और वे बड़े होने पर पाप के कोल्हू में पेलने का हर अवसर ढूँढ़ते हैं।

यदि ऐसी ही स्थिति पैदा कर ली हो तो बात दूसरी है, अन्यथा बड़े बच्चे अपने छोटे भाई-बहिनों की सेवा सहायता करने में माँ-बाप के ऋण से उऋण होने का अवसर चूकते नहीं वे उसे सुखद सौभाग्य मानकर पूरी ईमानदारी और भाव-भावनाशीलता के साथ भली प्रकार निवाहते हैं।

कई बार स्वार्थी नव-वधुएँ अपने पतियों पर यह दबाव डालती हैं कि वे अपने माँ-बाप या भाई-बहिनों की सहायता न करके उसी की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विलासिता के साधन जुटायें। मोहान्ध युवकों की बात दूसरी है—समझदार लड़के इस प्रकार की संकीर्णता की जड़ आरम्भ से ही काटते रहते हैं दृढ़ शब्दों में वे इससे असहमति प्रकट कर देते हैं और नाराजी तक का खतरा उठाने को तैयार रहते हैं तो स्वार्थी बहुएँ भी चुप हो जाती हैं। वे सिर पर तो तब चढ़ती हैं, जब पति उनके नीचे कान कटाते रहते हैं और हिम्मत करके स्पष्ट बात कह देने में अपने का असमर्थ अनुभव करते हैं। पर आमतौर से ऐसे बेटे-बहू किन्हीं अभागों को ही मिलते हैं। भारत में अभी भी शालीनता मौजूद है और माँ-बाप का ऋण अपने छोटे भाई-बहनों की सेवा सहायता के रूप में चुकाने की बात अभी भी मौजूद है। जब योरोप की तरह पूरी तरह माँ-बाप को तिलाञ्जलि दी जाने लगेगी, वह दिन तो भारत में भी आ सकता है पर लगता है उसका विक्रान्त कलियुग आने में अभी तो कुछ देर ही है।

जिन्हें मानवजीवन का महत्व विदित है और जिन्हें नर जन्म की सार्थकता सम्पन्न करने का ध्यान है, उन्हें यदि गृहस्थ बनाना पड़े तो इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं कि सन्तानोत्पादन तीस बर्ष की आयु पहुँचने तक बन्द कर दें। बच्चे कम से कम उत्पन्न करें। ताकि पचास वर्ष की आयु पहुँचने तक बच्चों की जिम्मेदारियों से पूरी तरह छुटकारा पालें और ढलती आयु को वानप्रस्थ की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण साधना के लिये ठीक समय पर अपने को प्रस्तुत करदें। दूरदर्शी व्यक्ति विवाह होते ही अपनी पत्नियों को स्वावलम्बी बनाने के लिये कई प्रकार के रास्ते खोजते हैं। उन्हें अधिकाधिक प्रशिक्षित बनाकर अध्यापन आदि से कुछ आजीविका उपार्जित करने योग्य बना सकें। यदि गृहस्थ की कुछ जिम्मेदारियाँ बच भी जायँ तों स्वावलम्बी महिलायें उसका निर्वाह कर लेती हैं। जिनके पास खेती बाड़ी, ब्याज भाड़ा आदि की इतनी आमदनी है कि घर का खर्च चल सके, छोटे बच्चों का निर्वाह हो सके तो उनके लिये तो ईश्वर प्रदत्त स्वर्ण सुयोग ही सामने है। परिवार के निर्वाह के योग जिनके पास साधन मौजूद हैं, फिर भी जिन्हें उपार्जन की धुन है अधिक धनी बनने, अधिक संग्रह करने की ललक जिन्हें खाये जा रही है, वे तो ढलती आयु का भी कदाचित ही कुछ महत्वपूर्ण उपयोग कर सकें।

घण्टे आध घण्टे की पूजा-पत्री ही उनके मन बहलाने के लिए बहुत हो जाती है और वे इतने भर से ही जीवन के लक्ष्य की पूर्ति हो जाने की बात मान बैठते हैं इन स्वल्प-सन्तोषी लोगों की कल्पनायें जितनी सरल और सुखद होती हैं, उतनी ही निर्मूल और निरर्थक भी। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तो जीवनक्रम का सांगोपांग निर्धारण करना पड़ता है पर पूरी जिन्दगी ही एक क्रम व्यवस्था के अनुरूप जीना पड़ता है। इससे क्रम में आत्मकल्याण जैसी महान् उपलब्धि की कोई सीधी पगडण्डी ही नहीं। श्रेय पथ परजीवन साधना के राजमार्ग पर ही चलना पड़ता है। किसी पंथ, मन्त्र देवता या गुरु का सहारा लेकर बिना कठोर प्रयास के आत्मोत्कर्ष के लक्ष्य तक पहुँच सकना सर्वथा असम्भव ही है। यह तथ्य जिनकी समझ में आ जाता है, वे ही कुछ ठोस प्रयास कर पाते हैं तदनुसार उन्हीं के हाथ कुछ भी काम की चीज लग भी पाती है। शेष तो ऐसे ही कल्पना-जल्पना की, वे पर की, उड़ानें उड़ते रहने में ही समय गँवाते हैं।

कहना न होगा कि आत्मिक साधना के लिये परम पुरुषार्थ की अवधि वही है, जो वानप्रस्थ के लिए निर्धारित है यह ठीक वह समय है, जिसमें मनुष्य की मनःस्थिति वस्तुतः कुछ ठोस वस्तु प्राप्त कर सकने की होती है। जिन्हें, भगवान अपनी ओर खींचते हैं, उनके लिए इस ढलती उम्र का श्रेष्ठतम सदुपयोग कर सकने की मनःस्थिति और परिस्थिति बना देते हैं।

बचपन में हँसी-खुशी की निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व अवधि है। इसमें विद्या प्राप्त कर मस्तिष्क बल उपलब्ध करने—खेल-कूद व्यायाम ब्रह्मचर्य से शारीरिक पुष्ट करने और अनुशासन सौजन्य आदि से सद्गुण सीखने का उपयुक्त अवसर है। युवावस्था में उत्पादन और व्यवस्था का समय है। रक्त का उभार कतिपय उमंगों के रूप में फूटता है, उसे मर्यादाओं में प्रवाहित करने की दृष्टि से यह समय इसी योग्य है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य द्वारा समृद्धि बढ़ाने और परिवार संस्था को समुन्नत बनाने में योगदान दिया जाय। व्यक्ति और समाज की एक महत्वपूर्ण कड़ी 'परिवार' है। परिवार व्यवस्था के लिए जो साधन जुटाने पड़ते हैं उनके लिए युवावस्था का सही सदुपयोग किया जाता है। इसके बाद वानप्रस्थ की अवधि आती है। इसे अमृत अवधि कहा गया है। महानता की फसल उगाने का आत्म-कल्याण का लक्ष्य पूरा करने का—मानव की सेवा साधना में संलग्न होने का परमार्थ सम्पादन कर सकने का ठीक यही समय है। इसे गँवा देने के बाद एक प्रकार से कुछ हाथ रहता ही नहीं।

वर्ण धर्म के अनुसार एक चौथाई आयु, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के लिए लगाई जानी चाहिए। अब सौ वर्ष कौन जीता है ? सत्तर पूरे कर सकना भी कठिन पड़ता है। ऐसी दशा में हर विभाग १७। वर्ष का होना चाहिए और ब्रह्मचर्य गृहस्थ में ३५ वर्ष ही पूरे करने चाहिए। किन्तु वर्तमान लोभ मोह-ग्रस्त स्थिति में ऐसा कठिन लगता है। सौ वर्ष की आयु में से आधी अर्थात् ५० वर्ष तक की ग्रहस्थ के लिये रखी जा सकती है। इसके बाद पचास से साठ-पैंसठ वर्ष तक का ही समय ऐसा रह जाता है, जबकि शरीर और मन से कुछ तप साधना करायी जा सके। पैंसठ वर्ष के बाद तो आमतौर से इन्द्रियाँ—हाथ-पैर और मस्तिष्क इतने शिथिल हो जाते हैं कि जरा-जीर्ण स्थिति में किसी प्रकार एक स्थान पर बैठकर—सहायक की सहायता से दिन ही काटे जा सकते हैं। प्राचीनकाल में यह असमर्थ स्थिति ही संन्यास की होती है। भाग-दौड़ की, सेवा-साधना तथा पंचकोशों के अनावरण की कष्टसाध्य तपश्चर्या के अयोग्य वयोवृद्ध शरीर छुट-पुट ध्यान भजन या उपदेश परामर्श के योग्य ही रह जाता है। संन्यास उसी विश्राम काल के लिए उपयुक्त माना गया है।

जिस प्रकार भौतिक उपार्जन के लिए लौकिक प्रगति के लिए यौवन काल की गृहस्थ अवधि ही सर्वोत्तम काल है, उसी प्रकार आत्मिक प्रगति के लिये ढलती आयु का वानप्रस्थ समय दैवी उपहार की तरह है। पचास से लेकर साठ-पैंसठ वर्ष की आयु तक में इस दिशा में जो प्रयास किये जा सकें उन्हीं में जीवन को धन्य बनाने वाले तत्व रहेंगे। वासनाओं और तृष्णाओं की पूर्ति यौवन के उभार के दिनों पूरी हो चुकती है। यह अनुभव कर लिया जाता है कि इन विडम्बनाओं में जो आकर्षण दीखता था उनमें सार कितना है ? इन्द्रियाँ शिथिल होने लगती हैं, तृष्णाओं का दावानल बुझने को आता है, अनुभवों में परिपक्वता होती है, बुद्धि परिमार्जित हो चलती है, मृत्यु के दिन समीप दीखते हैं। स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन और भजन में कुछ रस आने लगता है। बच्चों की जिम्मेदारियों से प्रायः छुटकारा मिल लेता है। सादगी का रहन-सहन अपनाने में कुछ विशेष कठिनाई नहीं होती है। इन सभी अनुकूलताओं की दृष्टि से ढलती आयु ही अध्यात्म साधनाओं के उपयुक्त पड़ती है। यदि वह अवधि ऐसे ही निकल जाय तो पैंसठ-सत्तर की आयु तक पहुँचते-पहुँचते शरीर का कचूमर निकल जाता है तब जरा-जीर्ण शरीर ही एक भार बन जाता है उसी लाश का वजन ढोना कठिन पड़ता है, तब आत्म-कल्याण का पुरुषार्थ कर सकने योग्य कुछ बचा ही नहीं रहता। इसके बाद तो मौत से ही कुछ आशा की जा सकती है कि वह नया शरीर देकर इस योग्य बनाये कि नई क्षमता के सहारे महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने योग्य पुरुषार्थ कर सकना सम्भव हो सके।

प्रत्येक आत्म-कल्याण प्रेमी श्रेय साधक को समय रहते यह योजना बनानी चाहिए कि वह ढलती आयु में कितनी जल्दी पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत होकर श्रेय साधन में अपनी समस्त क्षमता को झोंक सकें। पचपन वर्ष पर सरकारी नौकरी से निवृत्ति मिल जाती है। स्वेच्छया पेन्शन तो इससे पहले भी सम्भव हो जाती है। बच्चों से स्वयं निवृत्ति मिल गई हो अथवा उनके उपयुक्त विकास की व्यवस्था घर पर मौजूद हो तो फिर साहसिक छलाँग यही लगाई जानी चाहिए कि इस अमृत का श्रेष्ठतम—उपयोग जीवन-साधना के लिए समर्पित कर दिया जाय। यदि पूर्ण छुटकारे की स्थिति न हो तो भी इतना तो करना ही चाहिए कि अपने समय तथा साधनों का एक बड़ा भाग इन प्रयोजनों में नियमित रूप से नियोजित किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय जिनके लिये इस अमृत अवधि को नियत निर्धारित किया जाय।

वानप्रस्थ का मतलब किसी जमाने में सघन अरण्यकों में रहना होता था। वहाँ उस समय की स्थिति के अनुरूप क्षमताएँ बढ़ाने वाली तपश्चर्या की जाती थी। अब स्थिति दूसरी है। अस्तु सनातन लक्ष्य की रक्षा करते हुए व्यवस्था क्रम में थोड़ा हेर-फेर करना ही पड़ेगा। इन परिस्थितियों में यह उचित है कि घर परिवार में पूरी तरह घुले रहने की अपेक्षा कुछ दूरी बनाई जाय भले ही देखभाल परामर्श का आने-जाने का क्रम बना रहे पर मनः स्थिति यह होनी चाहिए कि हम इस छोटे परिवार तक सीमित न रहकर विश्व वसुधा की सम्पत्ति बन गये अब अपने उत्तरदायित्व विश्व मानव की सुख-शान्ति के लिए अथक प्रयास करने की परिधि तक बढ़ गये हैं। अब अपना प्रधान कार्य आत्मोत्कर्ष है। इसके लिए उपासनात्मक तपश्चर्या और साधनात्मक सेवा-साधना में समय और शक्ति को पूरी तरह नियोजित करना है।

प्राचीन काल में वानप्रस्थ में ब्रह्मचर्य अनिवार्य था अब उसे शिथिल करके आवश्यक रखा जाना चाहिए। पचास वर्ष की आयु के बाद सन्तानोत्पादन तो शास्त्रीय दृष्टि से अवैध ही माना गया है। पूर्वकाल में भिक्षा पर अथवा कन्द-मूल-फल आदि पर निर्वाह करते थे अब वैसी परिस्थितियाँ नहीं रहीं। भिक्षा अन्न में न तो सात्विकता है और न सम्मान। कन्द-फल अब प्राकृतिक रूप से कहीं भी नहीं मिलते। कृषि की जाय तो बात दूसरी है। इसलिए निर्वाह के लिए या तो अपने पूर्व संचय में से लेना चाहिए अथवा श्रम उपार्जन करना चाहिए। सार्वजनिक सेवा के बदले निर्वाह लेना औचित्य की सीमा में ही आता है। यदि कमाऊ लड़के पितृ-ऋण चुकाने की दृष्टि से कुछ भेजना चाहें तो उसमें भी औचित्य ही है। पेन्शन आदि का प्रबन्ध हो तो और भी उत्तम है, ऐसी कोई व्यवस्था न हो तो उपयुक्त यही है कि समाज से जितने मूल्य का निर्वाह लिया जाय उतने का श्रम करके ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे समाज का ऋण चुक सके। भार उलटा बढ़ने न लगे।

वेश की दृष्टि से पीला तौलिया या दुपट्टा कन्धे पर रहे तो इससे प्राचीन वर्णाश्रम परम्परा का प्रतीक रक्षा के साथ-साथ स्वयं के लिए भी कर्तव्यबोध का माध्यम बना रहेगा और जन-साधारण को भी उस वृत्ति का परिचय मिलने के अनुरूप उपयुक्त सेवा ले सकने का अवसर मिलता रहेगा।

अधिक उपयुक्त यही है कि पूरी तरह पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्ति पाकर पूरे समय के लिए वानप्रस्थ साधना में लगा जाय पर यदि परिस्थितियाँ वैसी छूट न दें तो भी इस अमृत अवधि का तकाजा यही स्वीकार करना चाहिए कि घर रहते हुए ही जितना अधिक समय इन साधना के लिए लगाया जा सकना सम्भव हो उतना लगाया जाय। मन मस्तिष्क पर परमार्थ उत्तरदायित्वों की सम्वेदना समुचित मात्रा में छाई रहनी चाहिये और चेष्टा यही रहनी चाहिए कि पूरा न सही अधूरा प्रयास तो होता ही रहना चाहिए।

(१) वानप्रस्थ की अमृत अवधि परमार्थ जीवन में प्रखरता उत्पन्न करने का समय है, इसमें उसी स्तर के ज्ञान की वृद्धि करने के लिए शिक्षण एवं स्वाध्याय का माध्यम अपनाना चाहिए। (२) तपश्चर्या एवं योग साधना द्वारा आत्म-शक्ति का विकास करना चाहिए और (३) लोक मंगल की सेवा-साधना द्वारा समाज का ऋण चुकाने—पुण्य संचय करने एवं ईश्वरीय स्नेह अनुदान पाने में संलग्न होना चाहिए। इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए कि आधा समय स्वाध्याय, शिक्षण एवं तप-साधना में लगे और आधा समय सेवा धर्म में लगता रहे। पूरा या अधूरा जितना भी समय वानप्रस्थ व्यवस्था में लगना हो उसका विभाजन इसी प्रकार किया जाना चाहिए।

किशोरावस्था में जो विद्याध्ययन किया जाता है वह भौतिक प्रगति एवं अर्थ उपार्जन की दृष्टि से होता है। उस समय इसी की आवश्यकता रहती है ताकि युवावस्था में गृहस्थ का उत्तरदायित्व निभा सकने की सामर्थ्य संचय हो सके। वानप्रस्थ में परमार्थ जीवन की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य ज्ञान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पादन नये सिरे से करना पड़ता है। यह अधिकारी शिक्षकों के सान्निध्य में भी पाया जा सकता है और उपयुक्त स्वाध्याय से भी सम्भव है। अपना दुर्भाग्य यह है कि आज परमार्थ जीवन की कोई समग्र पाठ्यविधि उपलब्ध नहीं। आमतौर से लोग ऐसे ही अगड़म-बगड़म बकवास, स्वाध्याय और सत्संग के नाम पर गले उतारते रहते हैं और उससे कुछ पाने के स्थान पर उल्टा गँवाते रहते हैं।

यही बात उपासना के संदर्भ में भी लागू होती है। उपासना का उद्देश्य अन्तःकरण पर चढ़े हुए कषाय-कल्मषों का निराकरण मात्र है। भगवान या किसी देवता को रिझाना नहीं। गुण, कर्म, स्वभाव में जिन विकृतियों का, दुर्भावनाओं एवं दुष्प्रवृत्तियों का समावेश हो गया है, उन्हीं का निराकरण करना यही है साधना का उद्देश्य। ऐसी साधना विधि तो कहीं कदाचित ही दीख पड़ती है। आमतौर से लोग भजन के लिए नामोच्चार की तोता रट लगाये रहते हैं। भावना विहीन क्रिया काण्ड में उलझे रहते हैं। फलस्वरूप अन्तःचेतना का विकास होने का प्रयोजन तनिक भी नहीं होता। उलटे आलस्य प्रमाद जैसी नई विकृतियाँ सिर पर चढ़ बैठती हैं। आत्मिक प्रगति का लाभ होना तो दूर और उलटी अवनति दृष्टिगोचर होती है। दुर्बुद्धि से मुक्ति पाने के नाम पर कर्तव्यनिष्ठा को ही छोड़ दिया जाता है। अकर्मण्यता और अस्त-व्यस्तता स्पष्टतः निकृष्ट कोटि के पापों में ही गिनी जा सकती है। यदि योग साधक को इसी दयनीय स्थिति में उलझना पड़े तो समझना चाहिए लक्ष्य से उलटी दिशा में ही चल पड़ा है।

सेवा-साधना तो आज विरक्त वर्ग में कहीं दीखे ही नहीं पड़ती। जबकि परमार्थ का आधार ही जनमानस को ऊँचा उठा सकने वाले प्रयत्नों में संलग्न होता है। प्राचीन काल में भारत की समग्र प्रगति को मेरुदण्ड वानप्रस्थ आश्रम ही था। नैतिक, पारिवारिक और सामाजिक प्रगति एवं स्थिरता के लिए उसी वर्ग का बहुमूल्य योगदान मिलता था। परिपक्व बुद्धि—परिष्कृत दृष्टिकोण और निःस्वार्थ सेवा का त्रिवर्ग जहाँ भी मिलेगा वहीं वह शक्ति उत्पन्न होगी जो उच्चस्तरीय श्रद्धा को आकर्षित कर सके—अपने प्रभाव से जनमानस को झकझोर सके और लोक प्रवृत्ति को महत्वपूर्ण दिशा दे सके। समाज का समग्र नेतृत्व वानप्रस्थ वर्ग ही करता है। प्राचीन भारत की सर्वतोमुखी प्रगति का लेखा-जोखा लिया जाय तो प्रतीत होगा कि उस महान् प्रगति की आधारशिला वानप्रस्थ आश्रम पर ही निर्भर रहती है। उज्जवल चरित्र और सुविकसित चिन्तन के कारण उनका व्यक्तित्व इस योग बनता था कि जनता का सफल और समर्थ मार्ग दर्शन किया जा सके। वाचालता के व्यवसायी तथाकथित नेता या धर्मोपदेशक वह प्रयोजन किसी भी प्रकार सम्पन्न नहीं कर सकते। लोक रंजन की उछल-कूद करने के अतिरिक्त थोथी वाचालता और कुछ कर भी तो नहीं सकती। प्रदर्शन के ओछे स्वाँगों में नहीं, परिष्कृत व्यक्तित्व के भीतर चलने वाली सेवा, साधना ही लोकमानस का मर्मस्पर्श करने और उसका स्तर ऊँचा उठा सकने में समर्थ हो सकती है। लोकसेवा का, जन नेतृत्व का उद्देश्य इससे घटिया स्तर के लोग पूरा कर ही नहीं सकते। इस आवश्यकता की पूर्ति वानप्रस्थ आश्रम ही कर सकता है। आज की गई-गुजरी स्थिति में जन-साधारण के लिए लोक-निर्माण के लिए वानप्रस्थ संस्था को पुनर्जीवित किया ही जाना चाहिए।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए समय की महती आवश्यकता सामने यह आती है कि वानप्रस्थ परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए प्रचण्ड आन्दोलन किया जाय और जहाँ इसके लिए उत्साह उत्पन्न हो, वहाँ उसे समुचित परिष्कृत बनाने के लिए उपयोगी शिक्षण का—मार्ग दर्शन का—व्यवस्थित क्रिया-कलाप का प्रबन्ध किया जाय। इसके बिना यह उत्पन्न हुआ उत्साह भी छितरा जायेगा अथवा अनुपयुक्त दिशा में भटककर उलटी अव्यवस्था उत्पन्न करेगा। आज यही हो भी रहा है। वानप्रस्थाश्रमों में बूढ़ों की लाशें सड़ती दीखती हैं। घर छोड़-कर वे नीरस वातावरण में पड़े दिन काटते रहते हैं। थोड़ी-बहुत नाम रट भले ही कर लेते हों बाकी सारे दिन ऐसे ही आलस में पड़े दिन काटते हैं और अपनी क्षमताओं को विकसित करने के स्थान पर जंग लगे लोहे की तरह गलाते घटाते रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैराग्य के नाम पर हराम खोरी का पनपने लगना निश्चित रूप से व्यक्ति और समाज का एक महान् दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। अपने देश में ५६ लाख धर्म ध्वजी हैं। सात लाख गाँवों को यह सँभालते तो हर गाँव को आठ प्रशिक्षित लोकसेवी मिल जाते और वे देश को समग्र प्रगति के उच्चस्तर तक कुछ ही दिनों में पहुँचा देते हैं। इतने लोक सेवकों के रहते सरकार का मुँह भी न ताकना पड़ता और देश कहाँ से कहाँ जा पहुँचता। विश्वनिर्माण में हम कितनी बड़ी भूमिका सम्पादित करते, पर उस पलायनवादी प्रवृत्ति को क्या कहा जाय जो धर्म, अध्यात्म एवं वैराग्य के नाम पर जीवित आदमी को मृतक की स्थिति में ले जाकर पटक देती है। युग की पुकार है कि वानप्रस्थ को पुनर्जीवित किया जाय और उसमें प्राचीन जैसी प्रखरता लाई जाय। नर-रत्नों के निर्माण का—देश, धर्म, समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान का यही मार्ग है। युग की पुकार है कि जन-नेतृत्व कर सकने योग्य उज्ज्वल चरित्र और परिष्कृत ज्ञान वाले सेवा-परायण व्यक्तित्व उत्पन्न किये जायें। समग्र प्रगति का प्रयोजन उन्हीं से पूरा होगा। इस प्रयास के बिना भारत जैसे छोटी देहात में बिखरे—अशिक्षित देश को ऊँचा उठा सकना और किसी प्रकार संभव न होगा। युग की ज्वलन्त समरूप और उसके समाधान को दृष्टि में रखते हुए वानप्रस्थ परम्परा को जागृत करने के लिए प्रचण्ड आन्दोलन खड़ा करने का निश्चय किया गया है। जिनकी आयुष्य और स्थिति उसके लिए उपयुक्त है, उन्हें आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण निर्माण की इस दिशा में साहसिक कदम बढ़ाने के लिए आग्रह किया जायेगा। पूरा या अधूरा जो जितना कर सके—ढलती आयु के लोगों को उसी दिशा में प्रेरित किया जाना चाहिए। लोभ-मोह की कीचड़ में से एक कदम पीछे हटाने के लिए जीवन लक्ष्य की पूर्ति की ओर एक कदम बढ़ाने के लिए वानप्रस्थ से बढ़कर व्यावहारिक और सही कदम दूसरा हो ही नहीं सकता। इस तथ्य से सर्व-साधारण को अवगत कराया ही जाना चाहिए—कराया ही जायेगा।

बहुत सोच-विचार के बाद यह निश्चय किया गया है कि वानप्रस्थ के लिए उपयुक्त शिक्षण एवं साधना का क्रिया-कलाप शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में चलाया जाय। अपने परिवार के अनेक भावनाशील परिजन बहुत दिनों से इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं और उत्सुक हैं पर कोई व्यवस्थित क्रम सामने न होने से वे घर पर ही जो कुछ उलटा-पुलटा अपनी बुद्धि, मर्जी और स्थिति के अनुरूप हो करते रहते हैं। उन्हें जब सुव्यवस्थित क्रमबद्धता का अवसर मिलेगा तो उत्साह ही मिलेगा—संतोष ही होगा। आशा की जानी चाहिए—अगले पाँच वर्षों में एक हजार ऐसे, वानप्रस्थ प्रशिक्षित किये जा सकेंगे जो ज्ञान-सम्पदा तप-साधना से सुसम्पन्न होकर आत्मकल्याण के साथ-साथ लोक मंगल का—विश्व के नव निर्माण का प्रयोजन भी पूरा कर सकें।

यों शान्तिकुञ्ज में जगह बहुत कम है। उसमें भी इन दिनों 'प्रत्यावर्तन सत्र' के साधना क्रम चल रहे हैं, फिर भी जो थोड़ी-बहुत जगह किसी प्रकार काट-छाँट कर निकाली जा सकी है उससे कुछ ही दिन में ऐसा प्रबन्ध हो जायेगा कि एक सौ वानप्रस्थों की ज्ञान-सम्पदा एवं तप-साधना के लिए समग्र प्रशिक्षण किया जा सके। यह बहुमूल्य अवसर ही है कि इन दिनों उपयुक्त शिक्षा मिलने की सुविधा भी मौजूद है। 'प्रत्यावर्तन सत्र' सम्भवतः पाँच वर्ष चलेंगे, तब तक एक साथ ही वानप्रस्थों की स्थिर शिक्षा व्यवस्था का क्रम भी चलता रहेगा।

वानप्रस्थ शिक्षण के दो वर्ग हैं। एक उन लोगों का जो भविष्य में रहेंगे तो अपने घर ही—कार्य अपने ही क्षेत्र में करेंगे। दूसरे वे जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों से पूर्णतया निवृत्ति पा चुके हैं और जिन्हें सारा देश सारा विश्व ही अपना घर-परिवार दिखाई देता है, जो किसी परिवार या क्षेत्र तक सीमित न रहकर पूर्णतया प्रभु समर्पित जीवन जीना चाहते हैं। शिक्षण दोनों का एक ही स्तर का होगा। साधनाएँ दोनों को एक ही प्रकार की कराई जायेंगी, अन्तर यह रहेगा कि घर रहने वाले लोग छः महीने प्रशिक्षण प्राप्त करके अपने यहाँ वापिस लौट जायेंगे और जिन्हें समग्र साहस करना है वे यहाँ के स्थायी निवासी माने जायेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वानप्रस्थ साधना के लिए अध्यात्म दर्शन का—साधना विज्ञान का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है। चूँकि उन्हें शिक्षा—तपश्चर्या के अतिरिक्त बहुत-सा समय सेवा साधना में भी लगाना है इसलिए व्यक्ति और समाज की आज की परिस्थितियों का जानना और प्रस्तुत समस्याओं को समझाने का मार्ग जानना भी किसी लोक-सेवा के लिए नितान्त आवश्यक है। नियमित अध्ययन में इन सभी तत्वों का गहरा समावेश रखा जायेगा। प्रत्येक शिक्षार्थी को शान्तिकुञ्ज में इस प्रकार के अध्ययन का अवसर मिलेगा।

तपश्चर्या के प्रति गायत्री साधना की उच्चस्तरीय, पंचकोशी साधना ही वानप्रस्थ के लिए सर्वोत्तम है। 'प्रत्यावर्तन सत्र' के साधकों को इसी के सूत्र रूप में सिखाया जा रहा है। उसके अभ्यास की आरम्भिक झाँकी ही चार दिनों में सम्भव हो सकती है। वानप्रस्थ साधकों को यह अनिवार्य रूप से छः महीने करनी होगी, यों हर साधक की साधना में उसकी स्थिति के अनुरूप कुछ अन्तर करना होता है पर प्रयत्न यही किया जायेगा कि जिन पाँच योगों को प्रत्यावर्तन सत्र में आधार माना गया है, उनमें से एक या कई का अभ्यास कराया जाय। उचित मार्गदर्शन एवं संरक्षण में वैसा ही लाभ मिलता है। जैसा प्राचीनकाल के गुरुकुलों में छात्रों को मिलता था। वातावरण का प्रभाव होना स्वाभाविक है हिमालय का द्वार—गंगातट—सप्तऋषियों की तपस्थली की पुण्य सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त शान्तिकुञ्ज की स्थिति का अपना अतिरिक्त महत्व है। मार्ग दर्शन और संरक्षण की सुविधा यह जिस स्तर की है वैसी कदाचित ही अन्यत्र कहीं पाई जा सके। ऐसी दशा में साधकों का छः महीने यहाँ रहना उनके ज्ञान और तप का स्तर सचमुच ही बहुत ऊँचा उठा देगा। वे एक सशक्त व्यक्तित्व अपने भीतर उभरा हुआ अनुभव करेंगे।

सेवा-साधना में हर वानप्रस्थ को अपनी उपलब्धियों का आधा भाग नियोजित करना पड़ता है। इसके लिए युग निर्माण शाखाओं का सुविस्तृत क्षेत्र खाली पड़ा है। सर्वत्र उनकी मांग है। शिक्षा और साधना की पूँजी लेकर वानप्रस्थों को उन्हीं क्षेत्रों में प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं संघर्षात्मक शत-सूत्री कार्यक्रमों को अग्रगामी बनाने के लिए भेजा जायेगा। वहाँ वे स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की सहायता करेंगे और स्वयं उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करेंगे। इस प्रकार जहाँ शिथिलिता आने लगी है, वहाँ अभिनव चेतना का विकास-विस्तार तत्काल दीखने लगेगा। मुरझाये हुए शाखा संगठन—युग निर्माण परिवार—देखते-देखते हरे-भरे—फले-फूले दृष्टिगोचर होने लगेंगे। युग परिवर्तन के क्रिया-कलाप में आवश्यक स्फूर्ति एवं सक्रियता उत्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित परिष्कृत और तपस्वी वानप्रस्थों का कितना बड़ा योगदान हो सकता है ? इसकी कल्पना मात्र से ही भावनाशीलों की आँखें चमकने लगेंगी।

जिन्हें अभी घर से पूर्ण छुटकारा नहीं मिला है, जिनकी स्थिति अपने क्षेत्र से बाहर जाने की नहीं है, वे जितना समय निकाल सकेंगे बताये गये कार्यक्रम के अनुसार अपना ज्ञानवर्धन, साधना एवं सेवा प्रयास वे जारी रखेंगे। सुविधानुसार समय-समय पर आवश्यक शक्ति प्राप्त करने के लिए हरिद्वार आते रहेंगे। जिन्हें पूरे समय का प्रभु समर्पित जीवन जीना है वे अपना स्थायी घर शान्ति कुञ्ज को मानेंगे। निर्धारित समय तक हर वर्ष शिक्षा तथा साधना के लिए आश्रम में रहेंगे और बताये गये क्षेत्र में सेवा का कार्य करने के लिए चले जाया करेंगे। इस प्रकार वानप्रस्थ जीवन की ये त्रिविधि उपलब्धियों को समग्र विधि व्यवस्था के साथ पूरा करते हुए—जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए द्रुतगति से अग्रसर हो सकेंगे।

परिजनों में से प्रत्येक को इस महान् रचनात्मक कार्य में दिलचस्पी लेनी चाहिए, जिनकी स्वयं की आयु, स्थिति इसके उपयुक्त हो उन्हें स्वयं को आगे बढ़ने धकेलने के लिए अन्तः संघर्ष आरम्भ कर देना चाहिए। देवत्व को जिताने और असुरत्व को हराने में अर्जुन को नियुक्त किया गया है अपने आन्तरिक महाभारत का सूत्रधार—बनने में अर्जुन की भूमिका निभाने में उन्हें आगे आना ही चाहिए, जिनकी स्थिति वानप्रस्थ साधना के उपयुक्त है। अपने परिचय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षेत्र में जो लोग इस उपक्रम के उपयुक्त हों उनमें अभीष्ट साहस उत्पन्न करने के लिए साधना सम्पर्क बनाना चाहिए।

यहाँ एक ही बात ध्यान रखनी है कि सड़े हुए मुर्दों का अजायबघर इस वानप्रस्थाश्रम को नहीं बनाया जायेगा। जरा-जीर्ण रोगग्रस्त, मन्दबुद्धि, दुर्गुणी, व्यसनी और आलसी लोग—गृह-कलह से बचने के लिए यहाँ जगह घेरने की बात सोचते हों तो उसकी बात नहीं बनेगी। विश्व को अभिनव नेतृत्व देखने के लिये जिनमें आवश्यक उमंगें मौजूद हैं, जिनका शरीर और मन अभी तक अध्ययन, तपश्चर्या और सेवा-साधना के उपयुक्त है, उन्हीं को हरिद्वार आने की बात सोचनी चाहिए। मरे हुए लोग यहाँ जगह घेरकर बैठ जायेंगे तो जिन्दा लोगों को लाभ लेने का रास्ता ही बन्द हो जायेगा। गंगा तट पर शान्ति के दिन काटने वालों को नहीं—अपनी प्रखर उपलब्धियों को विश्वात्मा के चरणों में समर्पित करने के लिए जिनकी स्फूर्ति, प्रतिभा और समर्थता फूट पड़ रही है, आह्वान उन्हीं का किया जा रहा है। स्थान थोड़ा-सा ही तो है उसकी पूर्ति उपयुक्त व्यक्तित्वों से ही होनी चाहिए। उन्हीं से की भी जायेगी।

प्रत्यावर्तन की पात्रता विकसित की जाय

प्रगति का मूल है—पात्रता। मात्र दूसरों के अनुदान पर कोई बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं होता। वह कथा प्रख्यात है, जिसमें किसी सिद्ध पुरुष की कुटी में रहने वाले चूहे को शत्रु के डर से बचाने के लिए उसने क्रमशः चूहे से बिल्ली, बिल्ली से कुत्ता, कुत्ते से शेर बनाया था, पर जब वह हर स्थिति में शत्रु के डर की शिकायत ही करता रहा तो सिद्ध पुरुष ने झुँझलाकर उसे फिर चूहे का चूहा बना दिया था। हर क्षेत्र में यही सिद्धान्त लागू होता है। आत्मिक प्रगति के बारे में भी—आत्मबल की महान् उपलब्धि प्राप्त करने के बारे में भी।

गायत्री मात्रा का, हिमालय पिता का और समर्थ मार्गदर्शक का—अजस्र अनुदान हमने प्राप्त किया है—उसी के आधार पर तुच्छ से महान् बने। यह अनुदान भाग्यवश, किसी के उपकार के नहीं मिले वरन् अपनी पात्रता के बलबूते पर खरीदे हैं। ईश्वरीय अनुदान प्राप्त करने वाले—दैवी वरदान से लाभान्वित होने वाले—प्रायः सभी महामानवों ने जो कुछ पाया है, वह उनकी आत्म-साधना का ही परिणाम था। भगवान को—देवताओं को—सिद्ध पुरुषों को न कोई प्रिय है—न अप्रिय। न उन्हें किसी के साथ पक्षपात होता है न द्वेष न वे प्रशंसा से प्रसन्न होते हैं न निन्दा से अप्रसन्न। उनका स्तर बहुत ऊँचा होता है। उनकी आँखें बहुत पैनी होती हैं। पात्रता का एक मात्र वह आधार होता है, जिसे पाकर उनकी अनुकम्पा सहज ही बरष पड़ती है। भगवान का प्यार और अनुग्रह पात्रता अभिवर्धन के प्रयास किये बिना आज तक कभी किसी ने प्राप्त नहीं किया है।

प्रत्यावर्तन अनुदान का क्रम भी इन्हीं तथ्यों पर आधारित है। गाय दिन भर घास चरती है और उससे बनने वाला दूध शाम को घर आकर अपने बछड़े को दस मिनट में पिला देती है। बछड़ा उसे पीकर पुष्ट और तृप्त होता है। पर यह सम्भव तभी है, जब बछड़ा उसी गाय का हो। भैंस का कटरा, कुतिया का पिल्ला यदि गाय के थनों से लगा दिया जाय तो बेकार का विग्रह ही खड़ा होगा। न दूध स्रवित होगा न पीने के इच्छुक की आकांक्षा पूरी होगी। प्रत्यावर्तन का लाभ प्राप्त करने के लिये उस प्रकार की एकता आवश्यक है, जिसमें दाता और ग्रहीता एक स्तर पर खड़े हो सकें। यदि असाधारण भिन्नता रही तो फिर कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा।

अब सारा जोर इसी तथ्य पर दिया गया है हम अब इस स्थिति में हैं कि अपने तप की एक प्रखर चिनगारी देकर अधिकारी आत्माओं को ज्योतिर्मय बना सकें। इस प्रकार का अनुदान दोनों पक्षों के लिये अति आनन्द का कारण बनता है। दाता गृहीता के और गृहीता दाता के प्रति उपकृत होता है। बछड़ा अनुग्रहीत होता है कि उसे माता का स्नेह और दूध अनायास ही मिला। गाय प्रसन्न होती है कि उसके थनों का तनाव दूर हुआ। प्रेम पात्र के आधार पर अपना आन्तरिक उल्लास विकसित कर लेता है। पुत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को पिता से लाभ है और पिता की तृप्ति पुत्र से होती है। पत्नी को पति चाहिए और पति के बिना पत्नी अधूरी रहती है।

इस पारस्परिक प्रत्यावर्तन में एक ही प्रधान अवरोध है सजातीयता का अभाव। विजातीय पदार्थ एक-दूसरे में मिलते नहीं। रक्तदान तभी सफल होता है जब गृहीता और दान का रक्त एक ही वर्ग का हो। भिन्न वर्ग के रक्त का प्रत्यावर्तन तो उलटी प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है।

रामकृष्ण परमहंस के अनेक शिष्य थे। अपने को अनुयायी—सेवक, भक्त, शिष्य कहने वालों की संख्या हजारों तक पहुँच गई थी। पर कहने भर से कुछ काम नहीं चला। परमहंस निरन्तर व्याकुल रहे कि कम से कम एक व्यक्ति तो ऐसा मिल जाय जिसे अपनी कमाई हस्तान्तरित करके जी में सन्तोष किया जा सके। बड़ी कठिनाई से वे एक विवेकानन्द ढूँढ़ सकने में सफल हुए। जब सत्पात्र मिल गया तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। शिष्य को कुछ कहने माँगने की आवश्यकता न पड़ी। गुरु का अजस्र अनुदान बरसता ही चला गया। छत्रपति शिवाजी को समर्थ गुरु रामदास ने भोलेपन में या मस्ती की लहर में ही अपना सञ्चित तप उड़ेल नहीं दिया था वरन् अपने हजारों शिष्यों में से ढूँढ़ते-ढूढ़ते इस हीरे को पाया और जब उनकी मर्जी का पत्थर मिल गया तो ऐसी प्रतिमा गढ़नी आरम्भ कर दी कि उसे देखने वाले अवाक् रह गये। शिवाजी की मूर्ति गढ़ने में रामदास को कितनी प्रसन्नता हुई होगी इसका अन्दाज अनुमान कोई विरला ही लगा सकता है।

लाटरी पाने के इच्छुक कितने ही रहते हैं, किसी अमीर के दत्तक पुत्र बनने की कितनों की ही इच्छा आकांक्षा रहती है, धनीमानी के घर जन्मने वाले बच्चे भाग्यवान माने जाते हैं, क्योंकि उन्हें सहज ही उतना बड़ा उत्तराधिकार, सम्पदा मिल जाती है, जितने का उपार्जन सम्भवतः वे कठोर श्रम करते हुए भी जिन्दगी भर में कमा न पाते। अध्यात्म क्षेत्र में भी इसी प्रकार के सुख-सुविधा भरे अनुदान की पूरी-पूरी गुञ्जायश है।

पर यह उपलब्धियाँ अनायास ही नहीं मिल जातीं। इनके लिए तप करना पड़ता है। अन्न से कोठे भर लेने में सफलता प्राप्त करने वाले किसान को एक वर्ष तक सर्दी-गर्मी, वर्षा का प्रहार, प्रकोप, सहते रहने की—रात और दिन में अन्तर न करने की—कठोर श्रम से स्वेद बिन्दु बहाने की साधना करनी पड़ती है। इस तप साधना के वरदानस्वरूप ही उसे अन्न, धन से सुसम्पन्न बनने का अवसर मिलता है। विद्यार्थी द्वारा मनोयोग समेटकर पाठ्य पुस्तकों में तन्मय हो जाता है। दस वर्ष तक उसी लक्ष्य वेध में एकाग्र रहता है, तब कहीं स्नातक बनने का सम्मान और उस आधार पर उच्च पद प्राप्त करता है। फल और फूलों से लदा बगीचा देखने में माली लम्बी अवधि तक अपने प्रयास में जुटा रहता है। वरदान प्राप्त करने वाले सौभाग्यशाली लम्बी अवधि तक तप करते हैं। इस सनातन प्रक्रिया का और कोई विकल्प नहीं है। पात्रता की परीक्षा दिये बिना विभूतियों का वरदान जो प्राप्त कर सका हो, ऐसा व्यक्ति कहीं भी—कोई भी—कभी भी नहीं हुआ।

जिस प्रत्यावर्तन अनुदान की चर्चा पिछले पृष्ठों में हुई है, वह साधारण नहीं असाधारण है। इसे महाकाल की आकांक्षा, अभिलाषाओं का सार तत्व कहना चाहिए, जो हमें वर्तमान कार्यक्षेत्र से ऊँचे उठकर अधिक व्यापक, अधिक महत्वपूर्ण—स्तर के उत्तरदायित्व वहन करने के लिये अन्यत्र घसीट लिये जा रहे हैं। जो कार्य अब तक स्वयं किया जाता रहा है, उसकी जिम्मेदारियाँ दूसरों के कन्धों पर डालना आवश्यक हो गया है, पर यह सम्भव तभी हो सकता है, जब उसी स्तर के दूसरे व्यक्ति सामने आयें, जिसके वे पात्र हैं। हाथी का हौदा हाथी ही उठा सकता है। व्यक्तित्व की उच्चस्तरीय—गरिमा के कारण ही इतने बड़े कार्य सम्भव हो सके हैं। हलके स्तर के लोग उतने बोझ से चरमरा जाते हैं। आगे जो उतना बोझ उठा सके, उसका स्तर भी तदनुरूप ही होना चाहिए। यह कैसे सम्भव हो ? ताकि वह प्रवाह और भी अधिक तीव्र गति से बह चले, जिसे भागीरथ जैसे तप करके गहन गव्हर से छोटे रूप में बहाकर यहाँ तक लाया गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस आकांक्षा की पूर्ति के लिये दो आधार हैं। एक दाता की क्षमता दूसरी गृहीता की पात्रता। बिजली के दो तार मिलने से ही शक्ति उत्पन्न होती है। एक पक्ष अधूरा है। नर-नारी को युग्म से ही दाम्पत्य-जीवन का उल्लास विकसित होता है। गाड़ी के दो पहिये ही गति उत्पन्न करते हैं। एक पंख वाला पक्षी आकाश में नहीं उड़ सकता। प्रत्यावर्तन के लिए भी दोनों पक्षों की उपयोगिता समान रूप से है।

इससे पूर्व कभी इस अनुदान पर जोर नहीं दिया गया। कारण कि सूत्र संचालक सत्ता स्वयं प्रेरित प्रयोजनों में संलग्न थे। युग-निर्माण परिवार का संगठन और जन-साधारण की बहुमुखी गतिविधियों का सञ्चालन यही जो सौंपा गया प्रधान कार्य था। उसके भेद, उपभेद, क्रिया-कलाप अनेक थे, उन्हीं को पूरा करते हुए बहुमुखी कार्यक्रमों में व्यस्त रहना पड़ा। साथियों को खड़े पाँवों रखने के लिए भौतिक सहायता भी आवश्यक होती थी, उन दिनों उसी में समूचे साधना उपासना का उपार्जित पुण्य फल खर्च हो जाता था। प्रत्यावर्तन के लिए जिस उच्चकोटि की शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, उसे प्राप्त करने में उग्र तपश्चर्या करनी पड़ती है। वह उन दिनों सम्भव नहीं थी, फिर दाता और गृहीता का अन्तरंग मर्म-स्थल जिस प्रकार एकाग्र होना चाहिए, वह उन दिनों न दाता के लिए सम्भव था न दूसरे साधकों के लिए। स्थान की अनुपयुक्तता जैसे कितने ही अभाव ऐसे थे, जिनसे वह प्रयोजन उन दिनों पूरे नहीं हो सकते थे। अस्तु कभी उस तरह का प्रयास भी नहीं किया गया। यद्यपि समर्थ उत्तराधिकारियों की आवश्यकता—तलाश—उन दिनों भी इतनी ही तत्परतापूर्वक की जाती रही पर सुयोग्य बन ही नहीं सका।

अब वह अवसर आया है जब सारी तैयारी पूरी कर ली गयी है। स्थान और वातावरण की जो उपयुक्तता आवश्यक थी वह भी बन गई। सात ऋषियों की वह तपस्थली जिसकी अक्षुण्यता बनाये रखने के लिए भगवती भागीरथी की सात धाराओं में विभक्त होना पड़ा अपनी महिमा और महत्ता अभी भी अक्षुण्य बनाये हुए है। ऐसे स्थान पर बना हुआ शान्ति कुञ्ज अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में सर्वथा समर्थ है। आवश्यकता, उपयुक्तता, समर्थता के तीन पक्ष अपने प्रखर रूप में विद्यमान हैं। कमी केवल एक ही रह गई है वह है गृहीता की पात्रता। यदि यह पक्ष पूरा हो जाय तो समझना चाहिए कि जो कमी थी, वह पूरी हो गई और सभी के लिए आनन्द भर देने वाली परिस्थितियाँ बन गईं।

प्रत्यावर्तन अनुदान के लिये जिन लोगों को आना हो—उनके लिये हरिद्वार, यात्रा भर, करने की तैयारी पर्याप्त नहीं मानी जायेगी। उन्हें अपनी मनोभूमि का ऐसा परिष्कार करना पड़ेगा, जिसमें बोये हुए बीज ठीक तरह अंकुरित हो सकें।

यह एक तथ्य है कि जिसकी जितनी भौतिक महत्वाकांक्षा होगी वह उतना ही आत्मिक प्रगति से वंचित रहेगा। लोभ-मोह के आकर्षण इतने जटिल होते हैं कि उसके बन्धन सारी मानसिक और भावनात्मक क्षमता अपने ही इर्द-गिर्द समेटे रहते हैं। उस स्थिति में आत्मिक क्रिया-कलाप—मात्र लकीर पीटने की चिन्ह पूजा बनकर रह जाते हैं। जब तक व्यक्ति इस आस्था की हठ न करे कि शरीर और मन उनके वाहन उपकरण मात्र हैं और उन्हें उतनी ही खुराक दी जानी चाहिए, जितनी उन्हें सक्रिय सक्षम बनाये रखने के लिए नितान्त आवश्यक है। यह आस्था जब गहरी हो जाती है, तभी यह आकांक्षा उदय होती है कि आत्म-कल्याण के लिए कुछ कारगर प्रयत्न किया जाय। स्पष्ट है कि शरीर के भरण-पोषण के लिए जितना श्रम, मनोयोग और साधन जुटाया जाता है, उससे कम नहीं वरन् अधिक ही आत्मिक प्रगति के लिए अभीष्ट होता है। दस-पाँच मिनट की पूजा-पत्री उस महान् प्रयोजन के लिए 'ऊँट के मुँह में जीरा' जितनी स्वल्प होती है।

यदि कोई यह सोचता है कि जप, ध्यान, प्राणायाम जैसे क्रिया-कलाप किसी का आत्मबल बढ़ा सकने के लिए—आत्मिक तथ्य प्राप्त कर सकने के लिए—पर्याप्त हैं तो यह उसकी भारी भूल है। चम्मच, तश्तरी जुटा लेना पेट भरने के लिये पर्याप्त नहीं। ये उपकरण भोजन करने में सहायक तो हैं पर पेट नहीं भर सकते। पेट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भरने के लिए तो रोटी साग चाहिए। पूजा-पाठ चम्मच तश्तरी की की बराबर है और दृष्टिकोण का परिष्कार—आन्तरिक स्तर—दाल-रोटी की तरह हम देखते हैं कि पूजा-उपासना में सब प्रकार चौकस व्यक्ति भी जब सर्वथा खाली हाथ दीखते हैं तो उसका एक मात्र कारण इतना ही होता है कि उन्होंने अन्तःकरण के परिष्कार—और दृष्टिकोण को उदात्त बनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। उस ओर कदम नहीं बढ़ाये।

जिन्हें वस्तुतः आत्मिक प्रगति की आकांक्षा है, उनसे सदा एक ही बात कही जाती रही है कि अपने को शरीर नहीं आत्मा मानें। शरीरगत तृष्णाओं की पूर्ति पर अपना सर्वस्व निछावर न करें। आत्मा की भूख और आकांक्षा को भी कुछ समझें और उसके लिये भी कम से कम उतना प्रयास तो करें ही जितना कि अपने वाहन शरीर और मन को सुखी सन्तुष्ट बनाने के लिए करते हैं। इसके लिए रोली, चन्दन, पुष्प, धूप काफी नहीं इसके लिए समय, श्रम, मनोयोग, धन आदि जो कुछ महत्वपूर्ण अपने पास है, उसका अधिक से अधिक भाग आत्म-कल्याण के लिए—आत्मिक प्रगति के लिए लगाया जाना चाहिए। शरीर और आत्मा का मूल्यांकन जिस तुलनात्मक अनुपात से किया जाय उसी अनुपात से यह निर्णय किया जाय कि शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति में जितना किया जा रहा है, उसकी अपेक्षा आत्मा की आवश्यकता पूरी करने के लिए कितना किया जाय ?

इस इसी कसौटी को लेकर अपनी जीवन यात्रा पूरी करते हैं। अपनी प्रतिभा, विद्या, शारीरिक मानसिक क्षमता, सम्पदा, आकांक्षा का जितना भाग शरीर परिवार के लिए खर्च हुआ उसकी तुलना में आत्मा की भूख बुझाने के लिए हजार गुना अनुदान अर्पित किया है। यही है—असली जीवन साधना जिसकी पृष्ठभूमि पर गायत्री महापुरश्चरणों का बीजारोपण कल्पवृक्ष की तरह उगा और फला-फूला। वही राजमार्ग सबके लिए है। भौतिक स्वार्थपरता की सड़ी कीचड़ में आकण्ठ मग्न लोग सिर पर चन्दन और गले में रुद्राक्ष धारण करके यदि आत्मिक प्रकाश का स्वप्न देखते हों तो यह उनकी मृग तृष्णा मात्र ही सिद्ध होगी।

आध्यात्मिक पात्र तत्व की कसौटी यही है कि व्यक्ति की आकांक्षाएँ—अभिलाषाएँ, योजनाएँ, गति-विधियाँ आदर्शवादी उत्कृष्टता की ओर चल रही हैं या नहीं। मनुष्य अपने पुरुषार्थ की कमाई का लाभ अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं के रूप में उठा सकता है। दैवी अनुकम्पा का प्रयोजन तो मात्र लोकमंगल होता है। व्यक्तिगत स्वार्थ साधनों के लिये यदि कोई दैवी अनुग्रह को खर्च कर डाले तो वह 'अमानत में खयानत' जैसी बात हो जायेगी। महामानव भगवान से बहुत कुछ पाते हैं पर उसकी एक-एक बूँद परमार्थ प्रयोजनों में ही खर्च करते हैं। हमने अपने गुरु के अनुदान में से ईश्वरीय वरदान में से कभी एक कण भी अपने परिवार के लिए खर्च नहीं किया। यदि उन उपलब्धियों को अपने स्वार्थ साधनों में खर्च करते तो स्पष्ट है कि दूसरों की तरह हमें भी खाली हाथ ही रहना पड़ता।

पात्रता की परिभाषा में इतना कुछ कहा गया है, उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा, समझा और मनन किया जाना चाहिए, उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और अपनाया जाना चाहिए। शब्दाडम्बर के रूप में नहीं सचाई के साथ गहरी आस्था के रूप में ऐसा आसानी से किया जा सकता है। इसमें न तो कोई कठिनाई है न अड़चन, यह आशंका भी व्यर्थ है कि आदर्शवादी जीवन कठिनाइयों से भरा है। सादगी को अपनाने भर से काम सहज ही चल जाता है और दृष्टिकोण में अन्तर आते ही सामान्य भौतिक गति-विधियाँ सरलतापूर्वक चलते हुए आत्मिक प्रगति का क्रम भली प्रकार चलता रह सकता है। मिशन के सूत्र संचालक इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जिन्होंने साधारण गृहस्थ का सामान्य जीवन जिया पर उच्च आदर्श अपनाये रहकर उच्चस्तरीय आत्मिक प्रगति का लक्ष्य भी पूरा कर लिया। यह रास्ता उन सबके लिये खुला पड़ा है, जिनमें वस्तुतः आत्मिक प्रगति की आकांक्षा जग पड़ी हो।

युग-निर्माण अभियान यों एक आन्दोलन सरीखा दीखता है, पर वस्तुतः वह युग साधना है। यदि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो उसे विशुद्ध योग साधना एवं तपश्चर्या ही कहा जा सकता है और भी अधिक गंभीरता से देखा जाय तो उसे सामान्य उपासना साधना की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षा कहीं अधिक उच्चस्तर का माना जा सकता है। प्रचलित योग साधनाओं का लक्ष्य व्यक्ति विशेष की स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि जैसी सफलताएँ प्राप्त करना रहता है और आत्म प्रयोजन के लिए काय कष्ट सहा जाता है। युग साधना में आपा भुलाया जाता है और विश्व कल्याण को लक्ष्य रखा जाता है। अस्तु उसकी परमार्थ परायण विशेषता न केवल साधक के लिए कल्याणकारी होती है। वरन् समस्त विश्व की ही साधना करती है। इस विशेषता के कारण उसका स्तर भी ऊँचा होना चाहिए।

कोई समय था जब सभी लोग उत्कृष्ट स्तर के होते थे। किसी की सेवा सहायता करने की न तो आवश्यकता पड़ती थी और न गुंजायश रहती थी। तब लोग व्यक्तिगत स्तर बढ़ाने के लिए साधनाएँ करते थे। पर आज की स्थिति सर्वथा भिन्न है। यह आपत्ति काल है। अनाचार और अज्ञान ने तूफान भूकम्प जैसी स्थिति पैदा कर रखी है। दुर्बुद्धि महामारी की तरह फैल पड़ी है, ऐसे विषम समय में व्यक्ति-वादी साधनाएँ हेय ही ठहराई जायेंगी वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसी साधना के ही उपयुक्त हो सकती हैं, जिसमें लोक मंगल जुड़ा हुआ हो। युग-निर्माण योजना की गतिविधियों को दूसरे शब्दों में आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण की समिश्रित युग साधना कह सकते हैं, इसे जिस भी कसौटी पर कसा जाय उच्च स्तरीय आत्मकल्याण की ऐसी साधना ही ठहरायी जायेगी जिसमें विश्व कल्याण भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

अपने परिजनों में से प्रत्येक से यह आशा की गई है कि उसे अपने समय, श्रम और साधनों में से एक अंश अनिवार्य रूप से लोक मानस के भावनात्मक नव निर्माण में लगाना चाहिए। यह लकीर पीटने के लिए अत्यन्त श्रद्धा भावना से किया जाना चाहिए। आरम्भ स्वल्प से भले ही किया जाय पर लक्ष्य अधिकाधिक उत्सर्ग का रहना चाहिए। निष्ठा सच्ची होगी तो परिस्थितियाँ भी बन जायेंगी और फुरसत न मिलने, अमुक अड़चन रहने जैसे बहाने ढूँढने की आवश्यकता न पड़ेगी। दैनिक भौतिक कार्यक्रमों के बीच ही युग परिवर्तन का कार्यक्रम भी सरलतापूर्वक चलाया जाता रहेगा स्वार्थों पर थोड़ा नियन्त्रण जरूर करना पड़ेगा। शरीर को ही सब कुछ मान बैठने और भौतिक आवश्यकताओं को ही सर्वोपरि महत्व देने की प्रवृत्ति पर अंकुश रखना पड़ेगा। यहीं से आत्म निग्रह शुरू हो जाता है। विवेक के जागरण की कसौटी यह है कि तथाकथित प्रियजनों की इच्छा पर कठपुतली बनकर नाचते रहा जा रहा है या स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा आत्म कल्याण और विश्व कल्याण के महान् उत्तरदायित्वों को भी अपनी गतिविधियों में सम्मिलित किया जा रहा है।

जिनके दृष्टिकोण में उपरोक्त स्तर का परिवर्तन आया हो समझना चाहिए वे सूत्र संचालक के साथी-सहचरों में गिने जाने योग्य बन गये। प्रत्यावर्तन अनुदान के लिए उनकी पात्रता विकसित हो चली। उन्हें जो पाना है भौतिक स्वार्थ के लिए नहीं परमार्थ प्रयोजन में खर्च होगा ऐसी मनःस्थिति से ही दाता और ग्रहीता कृतकृत्य होता है और दैवी अनुग्रह का सदुपयोग बन सकता है।

जिन्हें उच्चस्तरीय साधना के लिए हरिद्वार आने की इच्छा हो उन्हें उसकी पात्रता विकसित करने वाली साधना अभी से विकसित करनी आरम्भ कर देनी चाहिए। अपने परिवार के सदस्यों में एक व्यक्ति युग-निर्माण अभियान को गिन लेना चाहिए घर में पाँच सदस्य हों तो छठा मिशन को जोड़ लेना चाहिए। अपने परिवार के एक सदस्य के लिये जितना समय, मनोयोग, स्नेह, चिन्तन, धन खर्च किया जाता है कम से कम उतना तो युग साधना के लिये करना ही चाहिये। होना तो इससे भी बढ़कर चाहिये, पर बढ़े हुए काम इस स्तर के तो हों कि कुटुम्ब के एक सदस्य जितना समय, स्नेह और साधन तो उस पर लगता ही रहे। यह आग्रह यों हर सदस्य के लिये चिरकाल से किये जाते रहे हैं पर अब यह समय आ ही पहुँचा जिसमें अग्रगामी दल की उस रीति-नीति को अपनाने के लिये विवश किया जाय। हमें इसी प्रकार विवश किया गया और हमने बिना आगा-पीछा सोचे बिना बहाने बाजी किये अपने मार्गदर्शक के संकेतों पर चलना आरम्भ कर दिया। प्रत्यावर्तन की पृष्ठभूमि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही है। केवल प्राप्त करने की लालसा उग्र रहे और देने की कृपणता बनी रहे तो उससे कुछ काम चलने वाला नहीं है।

युग साधना का स्वरूप क्या हो, इसकी एक झाँकी इस खण्ड में प्रस्तुत है। इसमें उन्हीं आधारों की चर्चा है जिन्हें अपनाकर इस स्थान तक पहुँचा गया है। प्रसन्नता की बात है कि परिजन इसे ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे और गम्भीरतापूर्वक अपनायेंगे। साधना क्षेत्र में जिन्हें उतरना है, उन्हें युग साधना अपनानी चाहिये।

अब बड़े आदमी बनने की फसल चली गई। अब अमीरी के बड़प्पन के सपने देखना बेकार है। उस दिशा में जो जितना सिर खपायेगा उसे उतना ही पछताना पड़ेगा। अब समय महानता की गौरव-गरिमा बढ़ने का आ गया। विचारशील लोगों के कदम उसी दिशा में में बढने चाहिये। इसे कार्य रूप में परिणत कैसे किया जाय ? इसी का मार्ग दर्शन युग साधना करती है। प्रत्यावर्तन की पात्रता और पृष्ठभूमि यही है। चिन्तन और जीवन क्रम का स्वरूप जिस आधार पर बदला जा सके वही युगसाधना हो सकती है। जिस कर्मकाण्ड में पूजा-पत्री का तो लम्बा-चौड़ा समावेश हो पर आन्तरिक स्तर तनिक भी ऊँचा न उठे—आत्म परिष्कार और लोक-कल्याण के लिए उमंग न उठे उसे बिडम्बना मात्र ही कहना चाहिये। ऐसे जाल जंजाल में ईश्वर को फँसाकर उसे पकड़ सकना किसी के लिए भी सम्भव न हो सकेगा। प्रत्यावर्तन और कुछ नहीं श्रेष्ठमार्ग पर दूसरों को चलाने की पुनरावृत्ति है, जिस पर हम स्वयं चले हैं। जो इस दिशा में चलने का जितना साहस कर सके, उन्हें उतनी ही प्रगति एवं उपलब्धि की आशा करनी चाहिये।

प्रत्यावर्तन आयोजन के लिये जिनकी आकांक्षा हो उन्हें युग साधना में अपनी तत्परता बढ़ा देनी चाहिये ताकि समय पर वे अपनी बढ़ी हुई पात्रता के आधार पर अधिक महत्वपूर्ण अनुदान प्राप्त कर सकें। जिन्होंने इस दिशा में नहीं सोचा है, उन्हें भी मानव जीवन की सार्थकता जैसा कुछ लाभ प्राप्त करने के लिये इसी दिशा में अपने कदम बढ़ाने चाहिये। समझ में भले ही न आवे पर यह अनुपम और अभूतपूर्व अवसर है—जो यह समय ऐसे ही आलस उपेक्षा में निकाल देगें पीछे पश्चात्ताप करते रहने के अतिरिक्त उनके हाथ और कुछ न लगेगा।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व परिष्कार की अध्यात्मोपचार प्रक्रिया

समस्त व्याधियों का निराकरण- आध्यात्म उपचार से

आधि भौतिक-आदि दैविक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में उपजने वाली अनेकानेक विपत्तियाँ मनुष्य को संत्रस्त करती रहती हैं। उनके नाम-रूप अनेक होते हुए भी उद्गम एक ही होता है-अन्तःकरण पर कषाय-कल्मषों का आवरण, आच्छादन। समुद्र एक ही है किन्तु उसमें जीव-जन्तु अनेक आकार-प्रकार के उत्पन्न होते रहते हैं। अन्तराल एक है किन्तु उसमें सत्प्रवृत्तियों की सुखद-दुःखद सम्भावनाएँ चित्र-विचित्र रूप में प्रकट होती रहती हैं, उसी क्षेत्र का अवांछनीय उत्पादन मनुष्य को आधि-व्याधियों से भर देता है और प्रगति के मार्ग में पग-पग पर अवरोध उत्पन्न करता है।

बहुत समय पहले शारीरिक रोगों को बाहरी भूत-पलीतों का आक्रमण माना जाता था। पीछे वात, पित्त, कफ, ऋतु का प्रभाव उन्हें माना गया। उसके बाद रोग-कीटाणुओं के आक्रमण की बात समझी गई। रोगों का अगला चरण यह बना कि आहार की विकृति से पेट में सड़न पैदा होती है और उस विष के अनुसार ऐसे व्यक्तियों में सामान्य मनुष्य की तरह एक नहीं, अपितु दो भिन्न-भिन्न दृश्य जगतों का अनुभव होता है।

मनोविज्ञानियों ने व्यक्तित्व के अन्तर्द्वन्द्व को समस्त मनोविकारों एवं मनोरोगों की जड़ माना है। आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्तित्व की परतों के अध्ययन, विश्लेषण तक सीमित है। अन्तर्द्वन्द्वों की समाप्ति किस प्रकार हो ? इसके लिए इतना कहकर चुप हो जाता है कि परस्पर दो व्यक्तियों के रूप में विघटित मानवी सत्ता में ऐक्य स्थापित किया जाय तभी द्वन्द्वों से छुटकारा पा सकना सम्भव है। दूसरा व्यक्तित्व क्यों विकसित हो जाता है, जो मनुष्य को दुष्प्रवृत्तियों में, अनैतिक गतिविधियों में निरत करता है। इस दिव्य द्वन्द्वात्मक स्थिति से छुटकारे के लिए कोई ठोस उपाय मनोविज्ञान नहीं बताता। आध्यात्म मनोविज्ञान की मान्यताएँ इस गुत्थी को सुलझाने में सहयोग देती हैं।

आध्यात्म मनोविज्ञान का कहना है कि मानवी अन्तःकरण की संरचना दैवी तत्वों से मिलकर हुई है। अन्तःकरण अन्तरात्मा का क्रीड़ा क्षेत्र है। यहाँ से सदा सत्प्रेरणाएँ उभरती रहती हैं। अन्तःकरण की सद्प्रेरणाओं की उपेक्षा, अवहेलना करने तथा दुष्कृत्यों में निरत होने से अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती तथा मनुष्य को त्रास देती है। मनुष्य की मूलभूत सत्ता दैवी तत्वों से युक्त है तो क्यों कर कोई दुष्कर्मों की ओर आकृष्ट होता है ? आध्यात्म विज्ञानी इसका कारण कर्मों के संस्कार को मानते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के पशुवत् संस्कार ही मानवी चेतना पर छाये रहते हैं। उनके अनुसार अचेतन परतों में जड़ तक गहरी जमी यह कालिमा ही द्विविभाजित व्यक्तित्व को जन्म देती है।

अब तो मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुई शोधों से नये-नये तथ्य सामने आये हैं। उनसे पता चलता है कि शरीर की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्रियाओं पर पूरी तरह मानसिक अनुशासन ही काम करता है। अचेतन मन की छत्र-छाया में रक्ताभिसरण, आकुंचन-प्रकुंचन, श्वांस-प्रश्वांस, निमेष-उन्मेष, ग्रहण-विसर्जन, निद्रा-जाग्रति आदि की अनैच्छिक कहलाने वाली क्रियाएँ चलती रहती हैं। चेतन मन के बुद्धिपूर्वक किये जाने वाले क्रिया-कलापों और लोक-व्यवहारों से रोग उत्पन्न होते हैं। यह क्रम अधिकाधिक गहराई में प्रवेश करने का, अधिक बुद्धिमत्ता का, स्थूल से सूक्ष्म में उतरने का है। इस प्रगतिक्रम में उतरते-उतरते इन दिनों आरोग्यशास्त्र के मूर्धन्य क्षेत्र में इस तथ्य को खोज निकाला गया है कि शारीरिक रोगों के संदर्भ में आहार-विहार, विषाणु आक्रमण आदि को तो बहुत ही स्वल्प

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मात्रा में दोषी ठहराया जा सकता है, रुग्णता का असली कारण व्यक्ति की मनःस्थिति है। मनोविकारों की विषाक्तता यदि मस्तिष्क पर छाई रहे तो उसका अनुपयुक्त प्रभाव नाड़ी संस्थान के माध्यम से समूचे शरीर पर पड़ेगा। फलतः दुर्बलता और रुग्णता का कुचक्र बढ़ते-बढ़ते अकाल मृत्यु एक का झंझट खड़ा कर देगा। नये अनुसंधान जीवन शक्ति का केन्द्र हृदय को नहीं मानते हैं। रक्त की न्यूनाधिकता या विषाक्तता को रुग्णता का उतना बड़ा कारण नहीं माना जाता जितना कि मानसिक अवसाद एवं आवेश को। नवीन अनुसंधान बताते हैं कि जो भी व्यक्ति अपने पापों को छिपाता है, उसके मस्तिष्क में ग्रन्थियाँ स्वतः पनपने लगती हैं एवं वह द्विविभाजित व्यक्तित्व (डबल पर्सनलिटी) जैसे मनोविकारों का शिकार हो जाता है।

एक शरीर में दो परस्पर विरोधी व्यक्तित्व का होना शरीरशास्त्रियों के अनुसार हर दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होता है तथा अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करता है।

श्री एस. के डायमाड नामक विद्वान एवं न्यूरोसाइक्लोजी विशेषज्ञ ने एक पुस्तक लिखी है-'इन्ट्रोड्यूसिंग न्यूरोसाईक्लोजी।' पुस्तक में बताया गया है कि किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों के मस्तिष्क में व्यक्तित्व की दो परतें विकसित हो जाती हैं तथा स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग व्यक्तियों का परिचय देती हुई काम करने लगती हैं। सामान्यतया मनुष्य के दृष्टितंत्र की कार्यप्रणाली दोनों सेरिब्रल-हेमीस्फियर के संयुक्त प्रयास में काम करती है, पर किन्हीं-किन्हीं में दाहिने और बाँये सेरिब्रल हेमीस्फियर्स तालमेल नहीं बिठा पाते और वे स्वतन्त्र तथा परस्पर एक-दूसरे के विरोधी आचरण का परिचय देने लगते हैं। शरीर की परोक्ष और प्रत्यक्ष क्षमता पूरी तरह अचेतन और चेतन कहे जाने वाले मनःसंस्थान के नियंत्रण में रहती है, उसी के आदेशों का पालन करती है। शरीर का पूरा-पूरा आधिपत्य मनः मस्तिष्क के ही हाथों में रहता है। उस क्षेत्र की जैसी भी कुछ स्थिति होती है। उसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है। यदि मस्तिष्क आवेशग्रस्त होगा तो शरीर के अवयवों में उत्तेजना और बेचैनी छाई रहेगी। इस स्थिति में ऐसे रोग उत्पन्न होंगे जिनसे शरीर के उत्तेजित होने, टूटने-फूटने जैसे अवसाद का प्रभाव अंग अवयवों की दुर्बलता के रूप में देखा जा सकेगा।

यह मोटा निष्कर्ष हुआ। बारीकी में उतरने पर पता चलता है कि अमुक शारीरिक रोग, अमुक मनोविकार के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और वे तब तक बने ही रहते है, जब तक कि मानसिक स्थिति में कारगर परिवर्तन न हो जाय। इस अनुसंधान ने उस असमंजस को दूर कर दिया है, जिसके अनुसार रोगियों को चिकित्सकों के दरवाजे पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। नित नव दवाएँ बदलनी पड़ती हैं। किन्तु आशा, निराशा के झूले में झूलते हुए समय भर बीतता रहता है। रोग हटने का नाम ही नहीं लेते। तेज औषधियाँ अधिक से अधिक इतना कर पाती हैं कि बीमारी के स्वरूप और लक्षण में थोड़ा-बहुत फेर-बदल प्रस्तुत कर दें। जीर्ण रोगियों में से अधिकांश का इतिहास यही है।

शरीरशास्त्री अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आरोग्य और रुग्णता की कुंजी मनःक्षेत्र में सुरक्षित है। मानसिक असंतुलन और प्रदूषण का निराकरण किये बिना किसी को भी स्वयं शरीर का आनन्द नहीं मिल सकता। जीवनी शक्ति का पिछले दिनों बहुत गुणगान होता रहा है। उसे प्राप्त करने के लिए आकाश-पाताल के कुलावे भी मिलाये जाते रहे हैं। टॉनिकों, हारमोनों और ग्रन्थि आरोपणों जैसे प्रयोग-परीक्षण की भरमार रही है। किन्तु गरीबों की बात तो दूर कोट्याधीश, शासनाध्यक्ष एवं स्वयं चिकित्सकों तक को उस प्रयास में कुछ पल्ले न पड़ा। अब यह निष्कर्ष निकला है कि जीवनी शक्ति कोई शरीरगत स्वतन्त्र क्षमता नहीं है वरन् जिजीविषा की मानसिक प्रखरता ही अपना परिचय जीवनी शक्ति के रूप में देती रहती है। मानसिक स्थिति के उतार-चढ़ावों के अनुरूप यह जीवनी शक्ति भी घटी-बढ़ती रहती है। शरीर की बलिष्ठता, सक्रियता, स्फूर्ति ही नहीं कोमलता, सुन्दरता और कांति तक मानसिक स्थिति पर अवलम्बित हैं। विपन्नता की मनःस्थिति में भय, शोक, क्रोध आदि के अवसर आने पर तो तत्काल आकृति से लेकर शरीर की सामान्य

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ते प्रत्यक्ष देखा जाता है। यदि मनोविकार जड़ जमा लें तो समझना चाहिए कि शरीर एक प्रकार से विपन्नता में फँस ही गया और उस दलदल से निकल सकना चिकित्सा उपचार के बलबूते की बात नहीं रह गयी है।

शारीरिक रोग प्रत्यक्ष होते हैं। इसलिए उनकी जानकारी भी सहज ही मिल जाती है और दवा-दारू से इलाज होने के साधन भी मौजूद रहते हैं। मानसिक रोगों में प्रायः विक्षिप्त, अर्धविक्षिप्त स्तर के लोग गिने जाते हैं जो अपना सामान्य काम-काज चला सकने में असमर्थ हो गये हों, जिनका शरीर निर्वाह और लोक व्यवहार लड़खड़ाने और लटपटाने लगा हो, जो अपने लिए और साथी-सम्बन्धियों के लिए भार बन गये हों। ऐसे रोगियों की संख्या भी लाखों से आगे बढ़कर करोड़ की सीमा अपने ही देश में छूने लगी है। जो विचलित-विक्षिप्त हुए हैं, ऐसे लोगों की संख्या का कोई ठिकाना नहीं जो रोजी-रोटी तो कमा लेते हैं और खाते, सोते समय भी साधारण लगते हैं, पर उनका चिंतन विचित्र और विलक्षण होता है। कितने ही दुष्टता की भाषा में सोचते और हर किसी पर दोषारोपण करते हुए शत्रुता की परिधि में लपेटते हैं। कितने ही आशंकाओं, संदेहों, आक्षेपों के इतने अभ्यस्त होते हैं कि उन्हें अपनी पत्नी, बेटी, बहिन आदि तक के चरित्र पर अकारण संदेह बना रहता है। सम्बन्धियों ओर पड़ौसियों को अपने विरुद्ध कुचक्र रचते हुए देखते हैं और विपत्ति का पहाड़ अपने ऊपर टूटता ही अनुभव करते रहते हैं। शेखचिल्लियों के से मनसूबे बाँधते रहने वाले, सम्भव-असम्भव का विचार किये बिना अपने सपनों की एक अनौखी दुनिया बनाये बैठे रहते हैं। न अपनी पटरी दूसरों के साथ बिठा पाते हैं न किसी और को अपना घनिष्ठ बनने का अवसर देते हैं। परिस्थिति का मूल्यांकन कर सकना, दूसरों की मनःस्थिति और परिस्थिति समझ सकना उनके लिए सम्भव ही नहीं होता है। अटपटे अनुमान लगाते और बेतुके निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। विचार जो भी उठें वे एक पक्षीय सनक की तरह बिना किसी तर्क-वितर्क का आश्रय लिए बेलगाम के घोड़े पर चढ़कर दौड़ते चले जाते हैं। जो सोचा जा रहा है, उसका आधार क्या और उस सनक पर चढ़े रहने का अन्ततः परिणाम क्या निकलेगा इतना समझ पाना उनके क्षत-विक्षत मस्तिष्क के लिए सम्भव नहीं होगा। अकारण मुँह लटकाये बैठे रहने वाले, जिस-तिस पर दोषारोपण करने वाले को दुर्भाग्य की कुरूप तस्वीरें गढ़ने में देर नहीं लगती, दुनिया को निस्सार बताने वाले, आत्महत्या की बात सोचते रहने वालों की संख्या अपने ही इर्द-गिर्द ढेरों मिल सकती है। हँसी-खुशी से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। कहीं न कहीं से मुसीबत की कल्पना ढूँढ़ लाते हैं और स्वयं दुःख पाते, साथियों को दुःख देते, जिन्दगी की लाश ढोते रहते हैं। यह सनक कभी-कभी आक्रामक हो उठती है तो जो भी उनकी चपेट में आता है उसे सताने में कसर नहीं छोड़ते। मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र समझने में उनकी अदूरदर्शिता पग-पग पर झलकती रहती है। ठगों के आये दिन शिकार होते रहते हैं। आयु बड़ी हो जाने पर भी सोचने का तरीका बालकों जैसा ही बना रहता है। किसी महत्वपूर्ण प्रसंग में उनका परामर्श तनिक भी काम का सिद्ध नहीं होता। अपनी कार्य पद्धति को किसी उद्देश्य के साथ जोड़ सकना उनसे बन नहीं पड़ता। जैसे-तैसे समय गुजारते हुए, ज्यों-त्यों करके ही मौत के दिन पूरे कर लेते हैं। इन्हें पागल तो नहीं कह सकते, पर व्यक्तित्व की परख की दृष्टि से उससे कुछ अच्छी स्थिति का भी उन्हें नहीं समझा जा सकता।

विक्षिप्त-अर्धविक्षिप्त और विक्षिप्तता के सन्निकट सनकी लोगों से प्रायः आधा समाज भरा पड़ा है। मूढ़ मान्यताओं, कुरीतियों, अन्धविश्वासों से जकड़े हुए लोगों में तर्कशक्ति एवं विवेक बुद्धि का अभाव रहता है। उनके लिए अभ्यस्त ढर्रा ही सब कुछ होता है। उस लक्ष्मणरेखा से बाहर जाने में उन्हें भय लगता है। स्वतंत्र चिंतन का प्रकाश उनकी आँखें चौंधिया देता है और औचित्य को समझने, स्वीकार करने जैसा साहस उनके जुटाये जुट ही नहीं पाता। इस वर्ग के लोगों को मानसिक दृष्टि से अविकसित नर-पशुओं की श्रेणी में ही रखा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर से असमर्थों, दुर्बलों और रुग्णों की ही तरह मानसिक पिछड़ेपन और विकारग्रस्तता के दल-दल में धँसे हुए लोगों का ही बाहुल्य अपने समाज में दृष्टिगोचर होता है। यह विक्षिप्तता भी एक प्रकार की बीमारी ही है जिसमें प्राणियों को तिरस्कार, असंतोष, अभाव एवं चित्र-विचित्र प्रकार के दुःख सहने पड़ते हैं।

शारीरिक व्याधियाँ और मानसिक आधियाँ जिसे घेरे हुए हैं उन विकृत मस्तिष्क और अस्वस्थ शरीर वाले के द्वारा न कुछ उपयुक्त सोचते बन पड़ेगा और न उचित कर सकना सम्भव होगा। अतएव उनकी अटपटी, कानी-कुबड़ी गतिविधियाँ किसी महत्वपूर्ण सफलता तक पहुँचने ही न देंगी, सम्बन्धित व्यक्ति उस बेतुके व्यक्ति से खिंचते-खिंचते रहेंगे। फलतः सच्चे सहयोग से भी प्रायः वंचित ही रहना पड़ेगा। मतभेद बढ़ते-बढ़ते शत्रुता और विग्रह तक जा पहुँचता है और आक्रमण, प्रत्याक्रमण के 'कुचक्र में ऐसे व्यक्ति को भारी घाटा उठाना पड़ता है। प्रगति पथ तो प्रायः अवरुद्ध ही बना रहता है। यह नई विपत्ति शारीरिक और मानसिक रुग्णता की ही देन है। दो रंगों के मिलने से तीसरा एक और नया रंग प्रकट हो जाता है। आधि और व्याधि ग्रस्तों को अवरोध और असफलता का तीसरा संकट अतिरिक्त रूप से सहन करना पड़ता है।

इतना सब जान लेने के उपरान्त हमें एक ही निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि चेतना की मूल सत्ता अन्तःकरण को प्रभावित करने वाले नैतिक और अनैतिक विचार एवं कर्म ही हमारी भली और बुरी परिस्थितियों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी हैं। इसी उद्गम से हमारे उज्जवल भविष्य का आधार खड़ा होता है और यहीं से विपत्तियों के जाल गिराने वाली दुःखद सम्भावनाएँ भी विनिर्मित होती हैं। इस मूल केन्द्र का परिशोधन करना ही एक प्रकार से आंतरिक कायाकल्प जैसा प्रयास है। प्रस्तुत संकटों से छुटकारा पाने और निकट भविष्य में फलित होने वाले संचित प्रारब्धों का निराकरण करने के लिए आंतरिक परिशोधन का प्रयास इतना अधिक आवश्यक है कि उसे अनिवार्य की संज्ञा दी जा सकती है और कहा जा सकता है कि विष वृक्ष की जड़ काटने से ही काम चलेगा, पत्तियाँ तोड़ने से नहीं, इतना सब कुछ जानते हुए भी व्यक्ति असहाय-सा जीवन क्यों जीता है ? क्यों स्वयं व्याधियों को आमंत्रित करता है ? इस पर अध्यात्म विज्ञानियों का मत है कि अधिकांश व्यक्तियों को दुष्प्रवृत्तियों से उबरने की इच्छा होती है। इसके लिए वे प्रयास भी करते हैं, पर आँधी, तूफान की भाँति हठीले कुसंस्कार अपने प्रवाह में बहा ले जाते हैं और अभीष्ट इच्छा मात्र एक कल्पना, बनकर रह जाती है। दुष्प्रवृत्तियों से जकड़े जाल-जंजाल से निकलते नहीं बनता। मनःचिकित्साशास्त्र एवं आधुनिक मनोविज्ञान इस असमंजस की स्थिति से उबरने का कोई ठोस उपाय नहीं सुझाता। अध्यात्म तत्ववेत्ताओं ने इनके लिए तप-तितीक्षा की प्रायश्चित प्रक्रिया को एक समग्र और समर्थ उपचार माना है। मानसिक द्वन्द्वों से उबरने के लिए पूर्व में किये पापों का जहाँ समर्थ मार्गदर्शन के समक्ष प्रकटीकरण आवश्यक है, वहीं यह भी जरूरी है कि जो किया गया है उस भूल के लिए सहर्ष प्रायश्चित भी किया जाय। प्रायश्चित द्वारा ही दुहरे व्यक्तित्व से बन आयी मनोग्रन्थियों का उन्मूलन सम्भव है।

अन्तराल के परिशोधन में उथले उपाय कारगर नहीं होते। उसके लिए अध्यात्म चिकित्सा ही एकमात्र अवलम्बन है। इसमें न केवल विपन्नताओं के निराकरण की सामर्थ्य है वरन् प्रसुप्त श्रेष्ठता को उगाने, उठाने जैसी विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। इतना ही नहीं उस आधार को अपनाने से जीवन के परमलक्ष्य की, पूर्णता की उपलब्धि एवं ईश्वर प्राप्ति के महान् प्रयोजन को प्राप्त करने का भी पथ प्रशस्त होता है। अध्यात्म क्षेत्र में चिकित्सा परिचर्या एवं बलिष्ठता अभिवृद्धि की दृष्टि से चान्द्रायण एवं कल्प-साधना को असाधारण माना गया है एवं अत्याधिक महत्व दिया गया है।

वेदों में मानसिक चिकित्सा

सबल एवं सफल आश्वासन का नाम आदेश है। आदेश द्वारा किसी रोगी के रोग को दूर करना, विषैले जन्तु के विष को शान्त करना, किसी मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करना और अन्ध-विश्वास की दृष्टि से फैले हुए भूत प्रेतादि को दूर हटाना ही मंत्रविद्या है। भारतवर्ष में इस विद्या का प्रचार बहुत अधिक और व्यापक है। साँप, बिच्छू आदि के काटे हुए और तथाकथित भूतादि बाधाओं से पीड़ित व्यक्तियों को हम मन्त्रादि से झड़वाते—फुँकवाते प्रायः देखते हैं इस विचारधारा का क्या आधार है ? इसमें सत्यता भी है या नहीं ? इसका उत्तर हमारे विचारों में यही है कि मन्त्र विद्या मानसिक चिकित्सा है और इसका आधार अथर्ववेद के कुछ मन्त्र हैं। इस मन्त्र विद्या को ही आज का शिक्षित समाज संवशीकरण या हिप्नोटिज्म के नाम से कहता है। यह वशीकरण कोई नवीन वस्तु नहीं बल्कि भारतीय योग शास्त्र का बिल्कुल प्रारम्भिक अंग है। इसकी ६ शाखायें हैं जिनके नाम और वितरण निम्न प्रकार हैं—

(१) खेल

पात्र को क्षणिक निद्रा में ले जाकर उसे नाना प्रकार की अजनबी और अलौकिक बातें दिखाना।

(२) प्रश्नोत्तर

पात्रों को अर्ध-निद्रा एवं गम्भीर निद्रा में ले जाकर देश-देशान्तर और लोक-लोकान्तर की सैर कराना, वहाँ का हाल उसके मुख से दूसरों को सुनाना।

(३) जीवन सुधार

किसी व्यक्ति के दुर्गुणों को दूर करने के लिए उसे अर्ध-निद्रा या गम्भीर निद्रा में ले जाकर उसे आदेश द्वारा या समझा-बुझाकर सन्मार्ग की ओर चलने के लिए प्रेरित करना।

(४) दुरुपयोग

मारण, मोहन, उच्चाटन या वशीकरण द्वारा किसी व्यक्ति को विक्षिप्त व्याकुल, पीड़ित करना अथवा उसकी जीवन हानि कर देना।

(५) अपने किसी दूरस्थ व्यक्ति के यहाँ अपने यहाँ बैठे-बैठे सन्देश भेजना।

परन्तु इन पाँचों शाखाओं के विषय में हम कुछ न कहते हुये इस संवशीकरण का वैदिक रूप क्या है और इससे चिकित्सा करने की वैदिक विधि क्या है ? यही पाठकों को बतायेंगे।

किसी भी रोग के कारण जहाँ शरीर में केन्द्रित विकार होते हैं, वहाँ उससे बढ़कर वहम या मानसिक विचार कारण होते हैं। जहरीले साँप कभी ही काटा करते हैं परन्तु भय है हमें साँप ने काट लिया है अब हम बच नहीं सकते, इस विचार से सैकड़ों मौतें हर साल होती हैं। रोग बहुतों को केवल वहम से हो जाता है। ऐसी दशा में यदि हम किसी प्रकार रोगी के दिल में यह विश्वास जमा दें कि रोग कुछ नहीं है, वह तो तुम्हें है ही नहीं, तो बहुत-से रोगी बिना चिकित्सा के ठीक हो सकते हैं। इस मानसिक चिकित्सा के विषय में हम अपने अनुभव न देकर पाठकों को वैदिक प्रमाणों से इस विषय की वास्तविकता का बोध करायेंगे।

चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व मानसिक चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी में अपने प्रति विश्वास पैदा करें तथ उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करे। उसे शांतिपूर्वक सामने बैठाकर कहे कि—

यद्वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा,
तद्व आवर्तयामसि मयियो रमतां मनः।

अर्थात् मेरे प्यारे रोगी। जो तुम्हारा मन कहीं दूर गया हो या इधर-उधर व्यर्थ की बातों में फँसा हो उसे मैं अपनी ओर लाता हूँ—तुम मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो—मैं तुम्हारे रोग को अवश्य ही ठीक कर दूँगा। उसे चिकित्सक कहे कि—

"अहं गृह्णामि मनसा मनांसि ममचित्तमनु चित्तेभिरेत। मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनु वर्त्मान एत।"

मैं तुम्हारे मन को अपने मन के अनुकूल बनाता हूँ, तुम अपने चित्त को मेरे अनुकूल बनाओ और मेरी विचारधारा के अनुकल अपनी विचारधारा करो, तुम्हारे इस शरीर और मन पर तुम्हारा अधिकार है और मैं जैसा चाहूँगा वैसा तुम्हें चलाऊँगा। तुम मेरे आदेशों को सुनो और उन पर चलो—तुम्हें उन पर चलना पड़ेगा।

इस प्रकार इन दोनों मन्त्रों से पात्र को अपने वश में करके उसके रोगों की चिकित्सा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिकित्सक को आरम्भ करनी चाहिए। चिकित्सा प्रारम्भ करते हुए उसे अपनी वाणी के साथ ही साथ अभिमर्श क्रिया अर्थात् हाथ के हल्के स्पर्श का भी प्रयोग करना चाहिए। अभिमर्श क्रिया को अंग्रेजी में पास करना (Posses) कहते हैं। अभिमर्श करते हुए रोगी को कहना चाहिए कि है मेरे प्यारे रोगी।

"अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।

—अथर्व ४/१३

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवि।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिमृशामसि।।

इस अभिमर्श क्रिया में प्रयोजक के हाथ खुले और ढीले होने चाहिए और उसका स्पर्श पात्र के शरीर पर भार न डाल रहा हो। यह उसके अंगों में बिजली सी उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। इससे शरीर को तथा मन को शान्ति तथा आराम मिलता है।' इस प्रकार अभिमर्श एवं आदेश के द्वारा रोगी को अपने आधीन करने के बाद पात्र को उसके रोगों के अनुसार स्वस्थ करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस स्थिति में लाने के बाद रोगों को अभिमर्श और आदेश द्वारा दूर करने का स्पष्ट विधान वेद में पाया जाता है। उन्माद रोग के रोगी को आदेश देते हुए लिखा है:—

अग्निष्टे निशमयतु यदि ते मन उद्युतम्।
कृणोमि विद्वान् भेषजम् यथानुन्मदितोऽसि।।

—अर्थ० ६/११/२१

भावार्थ यह है कि हे मेरे प्रिय रोगी ! यदि तेरा मन किसी कारण से अव्यवस्थित अथवा विक्षिप्त हो गया है तो अग्नि उसे बिल्कुल व्यवस्थित कर देवे और मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि बिल्कुल ठीक हो जायेगा। मैं खूब सोच-समझकर तेरी चिकित्सा कर रहा हूँ—तू अवश्य ही इस रोग से मुक्ति पा जायगा—विश्वास रख। यहाँ जो अग्नि रोग को शान्त कर देगा यह कहा गया है इसका अभिशाप यह प्रतीत होता है कि उन्माद के रोगी को धुआँ आदि देने की जो आजकल प्रथाएँ प्रचलित हैं उनमें अवश्य ही कोई रहस्य विद्यमान है। भूत प्रेतादि से सताए जाते हुए रोगियों को मिर्च आदि का धुआँ देने और साथ ही कठोर शब्दों में आदेश देने से अक्सर लाभ होते देखा गया है। इसी प्रकार चुपचाप शान्त बैठे रोगी को कपूर चन्दन इत्यादि का धुआँ देकर उन्माद को दूर करने की प्रथा आज भी प्रचलित है।

यक्ष्मा रोग से पीड़ित व्यक्ति की चिकित्सा

इस रोग के रोगी को चिकित्सा के लिए शांत भाव से बैठाकर नीचे लिखा आदेश देना चाहिये—

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोयनम्।
मा बिभे न मरिस्यसि जरादिष्टं कृणोमित्वा
निरवोचमहं यक्ष्ममंगभ्यो अंगज्वरं तव।।
अंगभेदो अंग ज्वरो यश्चते हृदयामयः
यक्ष्मः श्येन इव प्राप्तस्तद् वावा साढः परस्तराम्।
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तवमनः।

अर्थात् हे मेरे प्यारे रोगी ! तू मेरे द्वारा आमन्त्रित होता हुआ, समझदार बनकर स्वास्थ्य को फिर प्राप्त कर। अरे आगे बढ़ना और उन्नत होना यही तो जीवन का प्रमाण है। तू जरा न डर, तू कभी मरेगा नहीं, मैं तुझे बुढ़ापे तक जीने वाला करता हूँ, तेरे अंगों से क्षय रोग को निकाल बाहर करता हूँ। सुन ! अंगों को तोड़ने वाले, अंत में ज्वर करने वाले हृदय का यह रोग है। यह तेरा क्षय मेरी वाणी से मारे हुये बाज की तरह शरीर के बाहर जा गिरेगा। तू स्वस्थ होगा—अवश्य होगा यह मेरी सुनियंत्रित और विद्युत् की तरंगें फेंकती हुई वाणी अंदर से कह रही है कि तुझसे प्रेरित मैं यक्ष्मा रोग को दूर कर दूँगी और रोग के सैकड़ों अंकुरों को हटा दूँगी।

इस प्रकार जब आदेश द्वारा जीवन के बीज व्यक्ति में आयेंगे तो वह अवश्य स्वस्थ होगा। इसी प्रकार सर्प विष को दूर करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मंत्रों का भी उल्लेख वेद में पाया जाता है। वहाँ लिखा है स्वः—

ददिर्हि मह्यम् वरुणो दिवसः-कविर्वचोभिः

रुग्रैनिरिणामि ते विषम्। खातमखातं सक्तम अभिरेव धन्वन्निजजास ते विषम्।

सारे जगत् के पालक, वेद वाणी के कवि परमात्मा ने मेरे अंदर ऐसी वाक शक्ति दी है कि मैं उससे तेरे उग्र विष को अवश्य ही नष्ट कर दूँगा। मैं तेरे सर्पि के दाँतों के चिन्हों को तथा सर्प के अंग से स्पर्श होने के प्रभाव को मुझ सर्प चिकित्सक ने वश में कर लिया है। अब तो तेरा विष रेत में पड़े पानी की तरह नष्ट हो जायगा। इस प्रकार रोगी को बतावे कि देखो भय मत करो साँप के काटने से कोई मरता नहीं—आदमी तो भय से मरता है और जब मैं चिकित्सा कर रहा हूँ, तब तो तुम कभी मर ही नहीं सकते। इस आश्वासन एवं हस्ताभिमर्श द्वारा सांप का विष बड़े आराम से उतारा जा सकता है।

परन्तु मन्त्र द्वारा चिकित्सा करने वाले व्यक्ति को गम्भीर, सत्यवादी, संयमी, संकल्प-प्रधान, हितचिन्तक और उदार प्रवृत्ति का होना चाहिए।

इस तरह वेदों में मानसिक चिकित्सा का वर्णन बड़े विशद् एवं स्पष्ट रूप में पाया जाता है। यह मानसिक चिकित्सा या वह आदेश जिसके उच्चारण मात्र से रोगी व्यक्ति या पात्र पर प्रभाव पड़ जावे, मंत्र-विद्या है। इस प्रकार सहसा, प्रभावकारी अनुष्ठान या प्रयोग को साधारण ग्रामीण लोग मन्त्र विद्या कहते हैं। वेदों में इसके पाँच अंग पाए जाते हैं। (१) संकल्प या आवेश (२) अभिमर्श या मार्जन, (३) आदेश, (४) मणिबंधन (जिसे आजकल लोग गंडा ताबीज आदि के रूप में चला रहे हैं) और (५) कृत्या और अभिचार है, जिसे ओज भ्रान्ति से लोगों ने टोना-टोटका का रूप दिया हुआ है।

इन पाँच बातों का उद्देश्य शारीरिक रोगों को हटाना तथा कथित भूतादि बाधाओं को दूर करना, दारिद्रय, निराशा ईर्ष्या आदि का शमन करना, दुष्ट स्वप्न के प्रभाव को मिटाना, वीरता आदि गुणों का आवेश करना है। यहाँ सबसे पूर्व संकल्प या आवेश पर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

प्रबल तथा साधिकार इच्छा का नाम 'संकल्प' है और इसका बार-बार आवर्तन आवेश कहलाता है। यही दो वस्तुएँ मनोविज्ञान का सर्व-प्रथम आधार क्षेत्र हैं। संकल्प के बिना मन की प्रगति संभव नहीं और बिना मन की प्रगति के न तो मनुष्य अपनी ही उन्नति कर सकता है और न दूसरों की ही। यह संकल्प ही मनुष्य के आंतरिक जीवन की मूर्ति एवं बाह्य जीवन की पूर्ति है।

हम जब कोई भी काम करने को प्रस्तुत होते हैं तो सबसे पूर्व हमारे मन में संकल्प उत्पन्न होता है, वह संकल्प जब बार-बार उत्पन्न होता है तो हम अपने संकल्प को क्रिया रूप में प्रेणित करने को हो जाते हैं। इसलिए वेद के अन्दर इस संकल्प को मन का सार और मनोविकास का कारण एवं आधार माना गया है। एक मन्त्र आया है—

काम स्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। स काम कामेन वृहता स योनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि।

(कामः अग्रे समवर्तत-) किसी मनुष्य के मन में संकल्प ही सर्वप्रथम उठता है (तत् यत्) वह जो कि (मनसः प्रथम रेतः आसीत्) मनका प्रथम सार है। (स काम) वह तू संकल्प। (वृहता कामेन) पुनः उठे हुए संकल्प के साथ (सयोनी) से मानस्थानी (यजमानाय) शरीर यज्ञ के याजक आत्मा या जीव के लिए (रायस्पोषं) ऐश्वर्य पुष्टि की (धेहि) धारण करो।

इस मन्त्र का भाव यह है कि संकल्प ही मन का सार हेत और मनोविकास का कारण है। जब हम कभी कोई भी काम करना चाहते हैं तो हमारे मन के अन्दर संकल्प समुद्भूत होता है और हम उस संकल्प से प्रभावित होकर कार्य करते हैं। यही संकल्प जब विद्युत् की भाँति अभीष्ट की ओर बार-बार अपनी तरंगें फेंक रहा होता है, तब यह आवेश कहलाता है और तब मनुष्य अपने कार्य में सवेष्ट हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस संकल्प द्वारा हम शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों तरह के पापों एवं दुःखों को दूर कर सकते हैं। मानसिक पाप को दूर भगाने का स्पष्ट उल्लेख निम्न वेद मन्त्र में आया है—

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि, परेहि न त्वा कामए वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः।

(मनस्पाप) ओ मन के पाप! तू (परःअपेहि) दूर हट (किम्-) क्योंकि तुझे तो (अशस्तानि शंससि) निन्दित बातें ही अच्छी लगती हैं (परेहि) दूर हट जा, (न त्वां कामये) मैं तुझे देखना तक नहीं चाहता। तू मेरे आस-पास भी कहीं न रह (वृक्षान् वनानि संचर) तू दूर जंगल में वृक्षों एवं वनों को प्राप्त हो। मैं मेरा मन (गृहेषु) स्त्री पुत्रादि में (गोषु) पशुओं में लगा रहे।

इस मन्त्र में पाप को दूर करने के लिए दो उपाय बताए हैं। इन दोनों उपायों को वेद में बोध और प्रतिबोध नाम से कहा गया है। बोध का मतलब अभी भाव में लगा रहना अर्थात् जिस अच्छे कार्य को हम करना चाहते हैं, जिस सुखद वस्तु को हम पाना चाहते हैं उस ओर मन को लगाए रखना है। अपने मन में शैतानियत विचारों को न आने देने के लिए यह आवश्यक है कि मन को हर समय किसी काम में प्रवृत्त रखा जाय। खाली मन तो शैतान का घर होता है। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी कहा करते थे कि मनुष्य को हर समय कुछ न कुछ करते रहना चाहिए यदि उसके पास कोई काम न हो तो निठल्ला बैठे रहने से यह कहीं अच्छा है कि वह अपनी धोती को फाड़े और फिर सीए। यह मन की बोध शक्ति है।

प्रतिबोध अनभीष्ट को हटाता रहता है, उसे अभीष्ट से मिलने नहीं देता। जहाँ बोध के द्वारा अभीष्ट गुणों को मनुष्य अपने में प्रकाशित करता है वहाँ प्रतिबोध द्वारा मनुष्य अपने अंदर से पाप निर्बलता और त्रुटि दूर कर सकता है तथा सद्गुण, बल, आशा और उत्साह का अपने में आवेश कर सकता है।

इस मन्त्र में भी पाप को दूर करने को उन्हीं दो उपायों को प्रयोग किया गया है। एक तो अनभीष्ट पाप की प्रवृत्ति को दूर करने के लिए, उसके प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए उसे एकान्त देश, जंगल या वन में जाकर रहने को कहा गया है और दूसरी ओर अपने मन को किसी काम में प्रवृत्त करने के विचार से घर के स्त्री, पुत्रों, बन्धुओं से प्रति अपने कर्तव्य का विचार करके उसे किसी काम में लगाए रखने का निर्देश है। इस प्रकार इन दोनों उपायों द्वारा मनुष्य में जब यह भावना आ जाती है कि मैं इस दोष को दूर करके रहूँगा, इसे दूर करना मेरे लिए कोई कठिन नहीं, मैं तो इसे हटा ही दूंगा तब वह अपने इस कार्य में सफल हो जाता है और इस संकल्प की अपने में अधिक वृद्धि होने पर वह न केवल अपने अपितु दूसरों के दोष भी दूर कर सकता है।

वेद का एक और मन्त्र है जिसमें बड़े जोरदार शब्दों में आशा उत्साह और सफलता की प्राप्ति के लिए संकल्प किया गया है। मन्त्र है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः, गोजिद भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजिद्।

इस मंत्र का भाव है कि कर्म करना तो मेरा दाएँ हाथ का खेल है और विजय तो मेरे बाएँ हाथ में रखी हुई है। मैं गौओं, इन्द्रियों, भूमि राष्ट्र, धन, आयु सम्पत्ति तथा यश का विजेता होऊँगा—इससे मुझे कोई नहीं रोक सकता।

जब हम किसी काम को इतने दृढ़ निश्चय उत्साह एवं आशा से करेंगे तो असफलता हमें मिल ही नहीं सकती।

इस प्रकार तेज, बल, वीर्य ओज, मन और सहनशीलता की प्राप्ति के लिए भी संकल्प की आवश्यकता है, बिना संकल्प के ये वस्तुएँ नहीं प्राप्त हो सकतीं। मन्त्र है—

तेजोसि तेजो मयि धेहि, वर्यमसि वीर्यमयि धेहि, बलंमसि बलं मयि धेहि, ओजोसि ओजो मयि धेहि, मन्युरसि मन्यु मयि धेहि, सहोसि सहो मयि धेहि।

इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की गई है कि कि तू तेजस्वरूप है तू मुझे तेज दे, तू बलस्वरूप है मुझे बल दे, तू पराक्रम स्वरूप है मुझे पराक्रम दे, तू ओजस्वरूप है मुझे ओज दे,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तू मन्यु है मुझे मन्यु दे, तू सहनशीलता की साक्षात् मूर्ति है इसलिए मुझे भी तू सहनशील बना। इस प्रकार इस मन्त्र में तेजादि गुणों से विशिष्ट परमात्मा की उपासना की गई है और उससे प्रार्थना की गई है कि तू मुझे तेजादि गुणों से युक्त कर। यहाँ परमेश्वर के गुणों का ध्यान करके अपने अन्दर मनुष्य उन गुणों की स्थापना के लिए निश्चय करता, संकल्प करता है और निश्चय करने के बाद उन गुणों की प्राप्ति का प्रयत्न करता है।

जिस प्रकार इस संकल्प या आदेश द्वारा मनुष्य अपने अन्दर और दूसरों के अन्दर सद्गुणों की स्थापना कर सकता है ठीक उसी प्रकार इसके द्वारा अपने तथा दूसरे के रोग भी दूर किए जा सकते हैं और स्वास्थ्य एवं बल की स्थापना की जा सकती है।

अपेहि मनसस्पते अपक्राम परश्चर परो निर्ऋत्या अवक्व बहुधा जीवतो मन।

ओ मन को पतित करने वाले दुःख देने वाले रोग, हट जा, दूर हो जा, परे भाग जा जीवन धारणा करते हुए जीते हुए के मन को दुःख से अनेक प्रकारों से (परः आचक्ष्व)-दृष्टि से परे हो जा, विलुप्त हो जा।

मन का स्थान हृदय है, हम बीमारी से जल्दी अच्छे नहीं होते, इसका कारण हमारी मानसिक शक्ति की कमी, विश्वास की कमी होती है। प्रायः क्षय आदि रोग तो लोगों को बहम से हुआ करते हैं। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि हमें अपनी मानसिक मानाओं को पुष्ट करना चाहिए, अपने संकल्पों को दृढ़ करना चाहिए और जिस समय हमारे प्राणों की गति मानसिक भावनाओं से पुष्ट होगी तो रोगों का बहिष्कार और स्वास्थ्य तथा बल का संचार शरीर में हो जाना अनिवार्य है।

इस प्रकार वेद द्वारा हमें यह मालूम हो गया कि संकल्प की अपनी कितनी ताकत है ? यदि हम अपने संकल्प को दृढ़ कर लें तो यह हो नहीं सकता कि हम कोई काम करना शुरू करें और उस कार्य में हमें सफलता न मिले। इस तरह जिस व्यक्ति ने अपना संकल्प दृढ़ कर लिया जिसने मन की पवित्रता उत्तम संकल्प एवं आत्मिक बल प्राप्त कर लिया है, वह अपनी भावनाओं और दृढ़ इच्छाओं से दूसरों को भी प्रभावित कर सकता है। अपने मन के शुद्ध विचारों एवं स्फुरणाओं से अन्य व्यक्तियों को भी प्रभावित कर सकता है और उनसे अपनी मानसिक शक्ति के प्रभाव से अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करवा सकता है। यही कारण है कि साधु पुरुषों एवं महात्माओं के साधुवाद एवं आशीर्वाद हमारा कल्याण करते हैं, सद्वैर्थों के स्वास्थ्य लाभ कराने वाले वाक्य तथा आश्वासन रोगी के रोग को दूर करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार मानसिक चिकित्सा के अभ्यास करने वाले को अपनी संकल्प शक्ति की वृद्धि सर्वप्रथम करना आवश्यक है।

जीव-कोषों के मन और मानसोपचार

ऐसा माना जाता है कि आत्मा स्वयं परिपूर्ण होने के कारण जो कुछ भी उसके सम्पर्क में आता है, उसे भी वह परिवर्तित कर देती है, बहुत उच्च आध्यात्मिक क्षमता वाले महापुरुष, योगी, महात्मा अपने आध्यात्मिक तेज या प्रभाव को रोगी मनुष्य पर इस प्रकार डाल देते हैं कि उसका सारा शरीर उससे थोड़े काल के लिये भरकर पूर्ण हो जाता है। प्राचीनकाल में गुरुकुलों में छोटे-छोटे विद्यार्थी ही नहीं वयस्क जिज्ञासु, साधक और वानप्रस्थ भी इसी आकांक्षा से जाया और साधन किया करते थे कि उन्हें वहाँ के गुरु तपोनिष्ठ आचार्य की प्राण-शक्ति का एक अंश मिल जायेगा और उससे आत्म विकास की साधना काफी सुविधाजनक और सरल हो जायेगी।

कुछ लोगों को, जिन्हें पात्र समझा जाता था और यह विश्वास कर लिया जाता था कि यह शिष्य मेरी पात की हुई शक्ति को अपने स्वार्थ और इन्द्रिय सुखों में ही व्यय नहीं करेगा, उसे गुरुजन अपनी ओर से भी शक्ति दिया करते थे, शक्ति देने का यह क्रम समीपवर्ती पर ही नहीं होता था, दूरस्थ व्यक्ति को भी मनश्चेतना के माध्यम से प्राण-शक्ति भेजने का भी विधान था। इस पद्धति से विचार व सन्देश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी उसी प्रकार प्रेषित किये जाने का प्रचलन था, जिस तरह अब वायरलेस के माध्यम से एक स्थान के सन्देश लाखों मील दूर तक पहुँचा दिये जाते थे। अभी भी यह विद्या विलुप्त नहीं हुई। हमारा निजी जीवन भी इस तरह की सम्भावनाओं से ओत-प्रोत रहा है।

अपने प्रिय-परिजनों को किन्हीं अवश्यम्भावी कष्टों से बचाने, किसी ऐसे कार्य को न करने देने, जिसमें उसकी हानि हो, हमें कई बार अपनी प्राण-शक्ति का विपुल भण्डार व्यय करना पड़ा है। बदले में हमें वह कष्ट मिले हैं। चाहते तो उस प्राण-शक्ति को बचाकर अपनी आयु दुगुनी-तिगुनी कर सकते थे, पर पूज्य गुरुदेव के विश्वास और अपनी आर्ष-परम्परा को हमने निराश न होने देने का सदैव प्रयत्न किया है।

आज चिकित्सा के इतने अच्छे साधन और प्रशिक्षित डाक्टर हैं तो भी रोगी अच्छे नहीं होते फिर किसी दवा, दारू के बिना कोई रोगी कैसे अच्छा किया जा सकता है, दूरस्थ व्यक्ति पर अपने मनोबल को किस प्रकार चरितार्थ किया जा सकता है, यह बातें लोगों को अटपटी लगती हैं। प्रत्यक्षवादी और विज्ञान को मानने वाले पाश्चात्य परायण लोग इन बातों पर विश्वास नहीं करते। उससे ऐसी कोई हानि नहीं कि इस मान्यता का अन्त ही हो जायेगा। तर्क-बुद्धि होना कोई बुरी बात नहीं उससे अन्ध विश्वास की पोल ही खुलती है। दुःखद बात यह है कि एक अत्यन्त आवश्यक और मानवोपयोगी पहलू उपेक्षित और अधूरा पड़ा है। जिस विद्या से हजारों लोग चिकित्सा का लाभ पाते, सैकड़ों आत्म-कल्याण की दिशा में अग्रसर होते, वह केवल अविश्वास के कारण ही निरर्थक हो रही है।

यह संयोग ही है कि विज्ञान भी उस स्थिति में आ गया है, जिससे इन मान्यताओं की विज्ञानसम्मत पुष्टि की जा सके। आध्यात्मिक चिकित्सा और प्राण-संचालन की प्रक्रिया को समझने के लिये शरीर के अन्तर्गत रहने वाली मन-शक्ति को समझ लेना आवश्यक है क्योंकि जिस प्रकार ध्वनि तरंगों को पकड़ने के लिये रेडियो में एक विशेष प्रकार का क्रिस्टल फिट किया जाता है, शरीर अध्यात्म का भी एक क्रिस्टल है और वह मन है। विज्ञान जानने वालों को पता है कि ईथर नामक तत्व सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। हम जो भी बोलते हैं उनका भी एक प्रवाह है पर वह बहुत हल्का होता है, किन्तु जब अपने शब्दों को विद्युत परमाणुओं में बदल देते हैं तो वह शब्द तरंगें भी विद्युत-शक्ति के अनुरूप ही प्रचण्ड रूप धारण कर लेती हैं और बड़े वेग से चारों तरफ फैलने लगती हैं। वह शब्द तरंगें सम्पूर्ण आकाश में भरी रहती हैं, रेडियो उन लहरों को पकड़ता है और विद्युत परमाणुओं को रोककर केवल शब्द तरंगों को लाउडस्पीकर तक जाने देता है, जिससे दूर बैठे व्यक्ति की ध्वनि वहाँ भी सुनाई देने लगती है। शब्द को तरंग और तरंगों को फिर शब्द में बदलने का काम विद्युत करती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक चिकित्सा और विचार प्रेषण (टेलेपैथी) का काम मन करता है।

यों मन शरीर में एक प्रथम सत्ता की भाँति दिखाई देता है पर वैज्ञानिक जानते हैं कि शरीर के प्रत्येक कोष में एक पृथक् मन होता है। कोषों के मनों का समुदाय ही अवयव स्थित मन का निर्माण करता है। प्रत्येक अवयव का क्रिया-क्षेत्र अलग-अलग है पर वह सब मन अवयव के अधीन हैं। मान लीजिये गुदा के समीपवर्ती जीवकोष (सेल्स) अपनी तरह के रासायनिक पदार्थ ढूँढ़ते और ग्रहण करते हैं। उनकी उत्तेजना काम-वासना को भड़काने का काम करती है, किन्तु अवयव मन नहीं चाहता कि इन गुदावस्थित जीव-कोषों की इच्छा को पूरा किया जाये तो यह काम-वासना पर नियन्त्रण कर लेगा। इसी प्रकार शरीर के हर अंग के मन अपनी-अपनी इच्छायें प्रकट करते हैं पर अवयव मन उन सबको काटता, छाँटता रहता है, जो इच्छा पूर्ण नहीं होने को होती, उसे दबाता रहता है और दूसरे को सहयोग देकर वैसा काम करने लगता है।

इस बात को और ठीक तरह से समझने के लिये शरीर रचना का थोड़ा ज्ञान होना आवश्यक है। यह भौतिक शरीर सूक्ष्म जीव-कोषों से बना है, प्रत्येक जीवकोष प्रोटीन की एक अण्डाकार दीवार में घिरा रहता है। उस कोष के अन्दर सैकड़ों प्रकार के यौगिक और मिश्रण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाये जाते हैं। नाइट्रोजन और न्यूक्लिक अम्लों का सबसे बड़ा समूह इस सेल के अन्दर होता है। फास्फोरस चर्बियाँ (वसायें) ओर शर्करायें भी उसमें मिलती हैं, वैसे ही बीसियों अन्य कार्बनिक पदार्थ सूक्ष्म मात्राओं में पाये जाते हैं, जैसे विटामिन और हार्मोन, उसमें बहुत-से अकार्बनिक लवण भी होते हैं। यानी प्रोटीन न्यूक्लिक अम्ल, वसायें, शर्करायें और लवण, ये सांसारिक पदार्थ जिन्हें रसायनज्ञ एक जीवित कोशिका में पाता है, निश्चय ही ऐसे पदार्थ नहीं हैं, जिनसे विचारों का निर्माण होता है, फिर भी ऐसे ही पदार्थों के ऊपर उस असम्भव विचार का भवन निर्मित होता है, जिसे हम जीवन कहते हैं, अतः उस जीवन की विचित्रता और बढ़ जाती है, यह मान्यता आधुनिक विज्ञान- वेत्ताओं की है।

इस कथन "जैसा आहार वैसा ही मन बनता है" की वैज्ञानिक पुष्टि, किसी अगले लेख में करेंगे, अभी यह समझ लेना चाहिये कि शरीर के प्रत्येक अवयव के जीवकोषों से विचार उठा करते हैं, इन्हें इन्द्रियों की इच्छा भी कह सकते हैं, वह यद्यपि मन की क्षमता के अन्दर होती है, तो भी यदि उनकी अपनी शक्ति प्रचण्ड हुई तो यह पूर्ण मन को भी झकझोरकर रख देती है। कई बार काम-वासना या कुछ अच्छी वस्तु खाने की इच्छा इतनी बलवान् हो उठती है कि साधन न होते हुए भी लोग अनुचित तरीके से उन्हें प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, यह उन अवयवों के जीव-कोषों की क्षमता का ही प्रभाव होता है।

यह जीव-कोषों के मन ही मिलकर अवयव मन का निर्माण करते हैं, इसलिये मन को एक वस्तु न मानकर अध्यात्म-शास्त्र में उसे 'मनोमय कोश' कहा गया है। एक अवस्था ऐसी होती है, जब शरीर के सब मन उसके आधीन काम करते हैं, जब यह अनुशासन स्थापित हो जाता है तो मन की क्षमता बड़ी प्रचण्ड हो जाती है और उसे जिस तरफ लगा दिया जाये उसी ओर वह तूफान की सी तीव्र हलचल पैदा कर देता है।

इन सूक्ष्म जीवों के मन निःसन्देह प्रत्युत्पन्न मति पटल (संस्कारजन्य मन) के आधीन हैं और बुद्धि की आज्ञाओं को भी मानते हैं। इन जीवों के मन में अपने विशेष कार्य के लिये विचित्र योग्यता रहती है। रक्त से आवश्यक सार का शोषण, अनावश्यक का त्याग इनकी बुद्धि का प्रमाण है। यह क्रिया शरीर के हर अंग में होती हैं, जो जीव-कोष संस्थान ज्यादा सक्रिय होता है, वह ज्यादा बलवान रहता है और अपने पास-पड़ौस वाले जीव-कोषों की शक्ति को मन्द कर देता है। जैसे गुदा वाले जीव-कोष जो काम-वासना में रुचि रखते हैं, वह सक्रिय होते हैं तो आमाशय के जीव-कोषों की शक्ति का भी अपहरण कर लेते हैं और इस तरह काम-वासना की प्रत्येक पूर्ति के साथ आमाशय की शक्ति घटती जाती है और वह व्यक्ति पेट का मरीज हो जाता है। जीव-कोषों का अनुशासित न होना ही शरीर की इन चोरियों का कारण बनता है। जो भी हो यह सत्य है कि पचन का आसात्वत, घावों का पूरना, आवश्यकतानुसार दूसरे स्थानों पर दौड़ जाना, अन्य बहुत-से कार्य कोषागत जीवन के ही मानसिक कार्य हैं। उन्हें विशृंखलित रहने देने से उनका सम्राट् मस्तिष्क में रहने वाला मन भी कमजोर और अस्त-व्यस्त हो जाता है, किन्तु जब सम्पूर्ण शरीर के मन उसके अनुशासन में आ जाते हैं तो शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

केवल कोमल स्नायु, पेशियाँ, झिल्लियाँ आदि ही नहीं हड्डियाँ, दाँत, नाखून आदि कठोर पदार्थ भी सूक्ष्म जीवों के योग से बने होते हैं, अपने कार्यों के अनुसार इनकी आकृतियाँ अलग-अलग होती हैं पर इनमें भी स्वतन्त्र और प्रत्युत्पन्न मन के आधीन काम करने की दोहरी क्षमता होती है। अर्थात् सब जीव-कोष स्थानीय कार्य भी करते रहते हैं और संगठित कार्य भी। जिस प्रकार एक गाँव के सब लोग अपना अलग-अलग काम करते रहते हैं, अपना खेत जोतना, अपना काटना, अपने लिये अलग पकाना, अपने ही परिवार के साथ बसना, अपनी बनाई कुटिया में रहना आदि केवल अपने तक ही सीमित रहते हैं पर आवश्यकता आ जाती है तो सब लोग इकट्ठे होकर कोई सार्वजनिक कुआँ-तालाब आदि भी खोदते हैं, एक आदमी दूसरे की सहायता करता है। ठीक वैसे ही जीवकोषों के मन और प्रत्युत्पन्न मन के भी दो क्षेत्र हैं और दोनों अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोष ऐसे भी होते हैं, जिन्हें शरीर में केवल सुरक्षा की दृष्टि से तैनात किया है, वे गन्दगी को दूर करने, कचरा न जमा होने देने की चौकीदारी भी करते हैं और कोई रोग का कीटाणु (वायरस) शरीर में आ जाये तो उससे युद्ध करने का काम भी वे कोष करते हैं। इस तरह शरीर के मन तो अपनी-अपनी व्यक्तिगत ड्यूटी पूरी करते हैं, दूसरे बाह्य जगत् से सम्पर्क बनाते हैं, दोनों अलग-अलग अपने काम करते रहते हैं।

शरीर के अन्दर इस तरह जीव-कोषों का मेला लगा हुआ है। अनुमानतः केवल लाल रंग के कोषों की संख्या कम-से-कम ७५,०००,०००,००० है, इनका काम फेंफड़ों से ऑक्सीजन चूसना, धमनियों और वाहिनियों के द्वारा सारे शरीर में बाँटना होता है। यह जीव-कोष अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि यह बाह्य जगत् से भी शक्ति चूसने के वैज्ञानिक कार्य को पूरा करते हैं। इसलिये मनुष्य शारीरिक शक्ति की कमी के बावजूद भी बहुत दिन तक जिन्दा रहता है, क्योंकि यह विश्वव्यापी प्राण सत्ता से शरीर का सम्बन्ध बनाये रहते हैं।

प्रत्युत्पन्न मन जब एकाग्र और संकल्पशील होता है तो सभी कोष स्थित मन जो विभिन्न गुणों और स्थानों की सुरक्षा वाले होते हैं, उसी के आधीन होकर काम करने में लग जाते हैं, फिर उस संग्रहीत शक्ति से किसी भी स्थान के जीव-कोषों को किसी दूसरे के शरीर में पहुँचाकर उस व्यक्ति की किसी रोग से रक्षा की जा सकती है, सुनने, समझने वाले मनों में हलचल पैदा करके उन्हें सन्देश दिया जा सकता है, किसी को पीड़ित या परेशान भी किया जा सकता है।

जीव-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् रिचीकाल्डर ने इस तथ्य का प्रतिपादन इस तरह किया है—इलेक्ट्रान हमारा दास है, क्योंकि वे मानवीय प्रतिक्रियाओं में अधिक तेजी से चलते हैं, ये मानवीय नेत्र से भी अधिक देख सकते हैं, मानवीय स्पर्श से अधिक हर्ष अनुभव कर सकते हैं। मानवीय कान से अधिक सुन सकते हैं, मस्तिष्क की अपेक्षा शीघ्र और ठीक गिनती कर सकते हैं। हमारे सामने दूर आस्वादन (टेलेगस्टेशन), दूर श्रवण (टेलेआडीशन) दूर घ्राण ग्रहण (टेले आल्फेक्शन) सुगन्धि पदार्थ तथा बोलते चित्र भी हैं, वह इन्हीं दास इलेक्ट्रानों का काम है। नियन्त्रण मोटरों (सर्वोमोटर) के द्वारा इलेक्ट्रान किसी रोलिंग मिल के हजारों टन इस्पात को पाव भर वजन की तरह उठा देता है, जबकि वह पदार्थगत मन है इसके सहारे यदि मानव के जीव-कोषों में अवस्थित (इलेक्ट्रान्स) की शक्ति का अनुमान करें तो वहाँ तक सम्भवतः हमारी बुद्धि न पहुँचे पर अब इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि ऐसी कोई विद्या हो सकती है, जब एक शरीर अपनी विशेष शक्ति या सन्देश किसी और शरीरधारी को दे सके।

चिकित्सक का ही नहीं पुरोहित का भी परामर्श मानें

"आज जिस व्यक्ति के पास गया था, वह नगर के बहुत प्रतिष्ठित डाक्टर हैं। उनने यह समझा था कि मुझे कोई शारीरिक तकलीफ है, क्योंकि मैंने उनसे क्लीनिक में ही भेंट का आग्रह किया था। एक-एक कर तीस रोगी डाक्टर के पास गए, उनमें से एक सर्जरी से सम्बन्धित मरीज था, एक को सर्दी लग गई थी, शेष अट्ठाइस यूरोसिस अथवा सिजोफ्रेनिया (निराशा और मानसिक बीमारी) के शिकार थे। किसी के मस्तिष्क में तनाव था, किसी के मन में अशान्ति, कुछ केवल यह जानने के लिए आये थे—डाक्टर साहब ! बताइए हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है ? डाक्टर ने उन्हें मानसिक बीमार की संज्ञा दी है, जबकि आदमी विचारवान लगता था। अब मैं पूरी तरह आश्वस्त हो चुका हूँ कि आज का आदमी पूरी तरह थक गया है। उसकी यह थकावट जितनी भौतिक है उससे अधिक आत्मिक है। यह कैसी बेवसी है कि उसे जो समाधान एक पुरोहित से चाहिए उसके लिए उसे डाक्टर के पास शरणागत होना पड़ रहा है।"

उपरोक्त पंक्तियाँ किसी महापुरुष का जीवन प्रसंग भले ही न हों, पर वह जिस व्यक्ति की डायरी के पृष्ठों का उद्धरण हैं, वह कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसुप्ति से जागृति की ओर ३.९३

सामान्य व्यक्ति भी नहीं है, जो उसका बात यों ही उपेक्षा में डाल दी जाए।

हम जिस युग में आज रह रहे हैं, उसमें पहले की अपेक्षा आध्यात्मिक चेतना की कहीं आवश्यकता है। इसके बिना उसका जीवन उद्देश्यपूर्ण नहीं बन सकता, उसे शीतल शान्ति चाहिए, जीवन का बोध चाहिए। आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान किये बिना समस्या का निराकरण हो सकेगा, यह आशा आत्म प्रतारणा ही सिद्ध होगी"—यह उद्गार वियेना विश्व विद्यालय के चिकित्सा विभाग में स्नायु-विकारों व मानसिक रोगों के प्रोफेसर तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मानसिक रोगों के चिकित्सक डा० विक्टर ई० फ्रैंकल के हैं। आधुनिक साधन सुविधाओं से भरपूर पश्चिमी देशों की सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने मानवीय अन्तःकरण को बड़े कोमल हाथों से सहलाया और बताया है कि यदि उन्हें आध्यात्मिक अभिसिंचन प्रदान न किया गया तो अपनी इसी प्यास के कारण पश्चिमी समाज अपना सर्वनाश कर लेगा। सच पूछा जाए तो न्यूनाधिक यह समस्या सारी धरती की समस्या है। आध्यात्मिक सत्ता की सजीव प्रतिमा मनुष्य ही जब पानी में रह रही मछली के व्यास के मारे तड़पने जैसी स्थिति में जिन्दगी बिता रहा हो तो विचारक कबीर की हँसी स्वाभाविक ही मानी जायेगी।

डा० फ्रैंकल ने एक जेल के दो कैदियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—एक स्त्री हमेशा यह कहा करती थी कि उसे जीवन में क्या मिला ? अपनी इसी व्यथा की ऊब सहन न कर सकने के कारण उसने आत्म-हत्या का प्रयास किया और उसे जेल में जाना पड़ा जबकि उसका बेटा विदेश में इस प्रतीक्षा में था कि मेरी माँ आती होगी, उसके साथ स्नेह आत्मीयता का जीवन मिलेगा। महिला अपने ही जीवन की शुष्कता से, अपनी ही निराशा से, थकी हुई थी, जबकि सांसारिक दृष्टि से उसे कहीं किसी तरह का भी अभाव नहीं था। डा० फ्रैंकल ने उससे जान-पहचानकर जब उसके जीवन में प्रवेश किया तो पता चला कि भौतिक आकांक्षाओं में भटकाव उसके जीवन की नीरसता का प्रमुख कारण है। उसे श्रद्धा, भाव, सम्वेदना अन्य प्राणियों के हितों में अभिरुचि जैसे संस्कार प्रसन्न रख सकते थे, किन्तु किसी ने उसको शिक्षण दिया नहीं, फलतः जीवन मरुस्थल जैसा बन गया। यही बात उस पुरुष के बारे में भी थी। वह एक अच्छा लेखक था। उसकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं, कई प्रकाशन के लिए तैयार थीं, पर जीवन में सम्वेदना का अभाव उसे निरन्तर खटकता रहा। इसी कारण उसने भी आत्महत्या का प्रयास किया जबकि वह एक ऐसी सन्तोष भरी, यश और सम्मान की जिन्दगी जी सकता था जिसमें ऊब और उत्तेजना का नाम ही न होता। सच है कि उसे डाक्टर मिले, पर धार्मिक जीवन की परिभाषा और मार्गदर्शन देने वाला कोई नहीं मिला।

मनुष्य जीवन तीन क्षेत्रों में विभक्त है। पहला है भौतिक जीवन, जिसमें उसके शरीर की आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं। उसे खान-पान से लेकर वंश-वृद्धि की सुविधाएँ चाहिए। यह उतना कठिन क्षेत्र नहीं है। सामान्य प्रयत्नों से भी भौतिक जीवन की अपेक्षाएँ पूर्ण हो जाती हैं, जिसका तात्पर्य ही यह है कि भौतिक जीवन मानवीय अस्तित्व के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जबकि ६६ प्रतिशत व्यक्तियों का जीवन उसी मृग-तृष्णा के ईद-गिर्द घूमता रहता है—अच्छा से अच्छा भोजन, विशाल भवन और इन्द्रिय सुखों की अपार साधन सामग्री। स्वल्प आवश्यकता को साधनों के अम्बार से पाट दिया जाए तो स्वाभाविक ही है कि वह आवश्यकताएँ दूषित होंगी। आज का भौतिक क्षेत्र इसी कारण अश्लील, अपवित्र और अत्यधिक उत्तेजनापूर्ण बन गया है। सामान्य बाधाएँ भी मनुष्य को आत्महत्या जैसी क्रूर स्थिति में पटक देती हैं।

ऐसा ही, इसी का एक और सगा भाई, दूसरा क्षेत्र है मन का मान-मर्यादा की, बड़प्पन की, अहंकार की रक्षा के लिए आदमी भौतिक तृष्णा से भी अधिक उतावला दिखाई देता है, जबकि इस तथ्य को जानते सब हैं कि मन की वासनाएँ क्षणिक हैं। अपना शरीर बल ही जब स्थिर नहीं है तो बाह्य परिस्थितियों में प्राप्त पद प्रतिष्ठा और सम्मान ही स्थायी कैसे रह सकते हैं। उनकी ललक सताएगी तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वाभाविक ही। जब कभी विघ्न दिखाई देगा, मनुष्य का भय सीमा को पार करेगा तो वह निराश होगा, खीजता रहेगा। उस स्थिति में डाक्टर उसे भटकायेगा, सही राह दिखाने वाला प्रशिक्षण उसे मिला ही नहीं तो वह देगा कहाँ से बाह्य चिकित्सा सम्भव हो सकती है, पर मनों के घुसे रोगों का उपचार डाक्टर नहीं कर सकते, जबकि आज हो सर्वत्र यही हो रहा है।

मनुष्य जीवन का तीसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण किन्तु अत्यन्त उपेक्षित क्षेत्र है उसका आत्म-जगत। मनुष्य जीवन का ६० प्रतिशत से अधिक भाग उसकी आध्यात्मिक सत्ता भावनाओं से विनिर्मित होती है। पर इस भाव विज्ञान की जानकारी, विकास और विस्तार के साधनों का उसे कोई प्रशिक्षण नहीं मिलता। हर व्यक्ति के अन्तःकरण से कभी न कभी ऐसी स्फुरणा उठती अवश्य है कि आखिर उसने जन्म क्यों लिया ? वह आया कहाँ से और उसका गन्तव्य क्या है ? जीवन का अर्थ ज्ञात करना मानवीय संस्कार है। कोई भी पशु उसके लिए परेशान नहीं दिखाई देता, पर मनुष्य उस अर्थ बोध के बिना सन्तोष और शान्ति पा नहीं सकता। यह बोध उसे सच्चे पुरोहित, अध्यात्मवादी ही दे पाते हैं। आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता को थोड़ी देर के लिए मनोवैज्ञानिक ही मान लें तो भी उनके फलितार्थ ऐसे हैं, जो मानवीय अन्तःकरण को सन्तोष और व्यापकता प्रदान करने में सक्षम हैं। इसका दार्शनिक आधार भी बेबुनियाद नहीं है। संसार इतना व्यवस्थित है तो उसका रचयिता होगा ही, जब मानवीय चेतना में सत्य, प्रेम, न्याय और चिरसौन्दर्य की आकांक्षा ओत-प्रोत है तो वह जिस सर्वशक्तिमान चेतना से जन्मा है उसमें इन तत्वों की पूर्णता अवश्यम्भावी है। मनुष्य जीवन ही नहीं पशुओं में भी नैतिक नियम हैं, यह भी उसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। यह जानकारी कोई अनुभव सिद्ध साधक सन्त और ब्रह्मवेत्ता पुरोहित ही अन्तःकरण की सच्चाई के साथ प्रदान कर सकता है। अतएव आज संसार के लिए सच्चा पौरोहित्य अनिवार्य हो गया है।

मनोविज्ञान केवल सुख की इच्छा और महत्वाकांक्षाओं के अध्ययन तक ही सीमित है। चेतना के इति, अन्त और मध्य का विश्लेषण अपनी दार्शनिक अनुभूति और अध्ययन के आधार पर धार्मिक व्यक्ति ही दे सकता है। मनोवैज्ञानिक मन के स्वभाव का विश्लेषण मात्र कर सकते हैं, मन के विज्ञान का नहीं। मानवीय मूल्यों तथा भावनाओं का क्षेत्र अकेला डाक्टर (विज्ञान) सुलझा नहीं सकता। यह अस्तित्वजन्य रोग है जिसका उपचार वही कर सकता है जिसने अस्तित्व का अध्ययन किया हो, पहचाना, जाना और अनुभव किया हो। ऐसा व्यक्ति मनोवेत्ता धर्मपरायण ही हो सकता है।

अमेरिका के न्यूजर्सी शहर में अपनी प्रैक्टिस करने वाले डा० नारमन बीसेण्ट पीले एक चिकित्सक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी थे। इसके साथ ही वे न्यूजर्सी के एक चर्च में प्रवचन के लिए भी जाया करते थे। एक दिन वे प्रवचन समाप्त कर चर्च की सीढ़ियों से नीचे उतर ही रहे थे कि एक बेचैन युवती उनके पास आ गयी और खड़ी होकर कहने लगी—डॉक्टर ! क्या मेरे रोग का इस संसार में कोई इलाज ही नहीं है ?"

प्रश्न, इतनी हड़बड़ाहट में किया गया था कि एक बारगी तो डा० पीले भी चौंक उठे। फिर उन्होंने पूछा-ऐसी क्या बीमारी है तुम्हें?

युवती ने कहा कि जब भी वह चर्च में आती है तो उसकी बाँहों में बड़ी तेज खुजली से वह बेहाल हो जाती है। उसने अपनी बाँहों को उघाड़कर बताया, उन पर लाल लाल चकत्ते उभरे हुए थे। उस युवती ने यह भी कहा कि—यही हालत रही तो वह चर्च में आना बन्द कर देगी।

डा० पीले ने कहा—हो सकता है तुम जिस कुर्सी पर बैठती हो उसमें कोई ऐसे रासायनिक पदार्थ प्रयुक्त किये गये हों जो तुम्हारे शरीर के अनुकूल न पड़ते हों।

अगर यही बात है तो मैं जब किसी दूसरे गिरजे में जाती हूँ अथवा दूसरी कुर्सी पर बैठती हूँ तब तो खुजली नहीं होनी चाहिए न। लेकिन तब भी ऐसा ही होता है—युवती ने अपनी समस्या का विश्लेषण किया।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डा० पीले एक सहृदय और प्रत्येक रोगी के प्रति सहानुभूति रखने वाले चिकित्सक थे। उन्होंने युवती को यह आश्वासन बँधाते हुए कि संसार में ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो, कहा—मैं तुम्हारे फैमिली डॉक्टर से बातचीत करूँगा। शायद उनसे बातचीत के दौरान ऐसा कोई सूत्र निकल आये, जिससे कि तुम्हारी समस्या का समाधान हो सके।

युवती के फैमिली डॉक्टर का पता लेकर डा० पीले ने उनसे सम्पर्क किया तो पता चला कि उस युवती को इन्टर्नल एग्जिमा था, यह खुजली किसी रोगाणु के संक्रमण से नहीं वरन् अपने आप से भीतर ही भीतर उलझते रहने के कारण उठती है। प्रायः देखा जाता है कि जब कोई बात समझ में नहीं आ रही हो या बहुत कोशिश करने पर भी कोई चीज याद नहीं आ रही हो तो हाथ अपने आप उठकर कनपटियों को खुजलाने लगते हैं। जब रुपये-पैसों की बेहद तंगी हो और उनकी सख्त आवश्यकता अनुभव हो रही हो तो हथेलियाँ खुजलाने लगती हैं। यह खुजलाहट दिमाग में होने वाली उथल-पुथल के परिणामस्वरूप ही उठती है, जब व्यक्ति मानसिक रूप से किसी द्वन्द्व या संघर्ष से गुजर रहा हो तो भी जोरों की खुजली मचती है और व्यक्ति खुजाते-खुजाते चमड़ी को लाल कर लेता है। इस तरह की खुजलाहट के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं, जिसके आधार पर डॉक्टर इन्टर्नल एग्जिमा को पहचानते हैं।

गिरजे में आकर ही उस युवती को इस तरह की खुजली क्यों परेशान करती है—यह जानने के लिए डा० पीले ने रोगिणी को कुरेदा। आत्मीयता, स्नेह और सहानुभूति से प्रभावित होकर उक्त युवती ने अपना सारा अतीत खोलकर रख दिया। वह किसी बड़ी फर्म में एकाउण्टेन्ट के पद पर कार्य करती थी और प्रायः गोलमाल कर थोड़ा धन चुराती रहती थी। उसी युवती के अनुसार चोरी की शुरूआत बहुत छोटी रकम से की गयी थी और हर बार वह यह सोचकर पैसे चुराती थी कि वह जल्द ही इन चुराये गये पैसों को वापस रख देगी परन्तु वह ऐसा नहीं कर पायी थी।

डा० पीले ने इस घटना का विश्लेषण करते हुए कहा है कि—इस प्रकार उस युवती के मन में अपराध भावना घर कर गयी। जब वह चर्च में आती तो वहाँ के पवित्र वातावरण में यह भावना और उग्र हो उठती थी। परिणाम-स्वरूप उसकी रक्त वाहनी की पेशियों में ऐंठन होने लगती और खुजली शुरू हो जाती।

मनःसंस्थान में जमी हुई इस रोग की जड़ों को पहचानकर डा० पीले ने उक्त युवती को सलाह दी कि वह फर्म के मालिक के सामने सब कुछ स्वीकार कर ले साथ ही चुरायी गयी रकम को अदा करना भी शुरू कर दे। युवती ने नौकरी छूटने का डर बताया तो डॉ० पीले ने ढाँढ़स बँधाया—हो सकता है तुम्हारी फर्म का मालिक तुम्हारी ईमानदारी और सच्चाई से प्रभावित होकर तुम्हें नौकरी से न हटाये, पर एक क्षण को यह मान भी लें कि तुम्हें नौकरी से हटा दिया तो तुम्हें अन्यत्र भी नौकरी मिल सकती है। नौकरी खो देने से उतनी क्षति नहीं होगी जितनी की अपनी आत्मा और आदर्श को खोने से हो रही है।

बात समझ में आ गयी और युवती ने अपने मालिक के पास जाकर सब कुछ कह दिया। वही हुआ जिसकी सुखद सम्भावना डॉ० पीले ने बतायी थी। अर्थात् मालिक ने उसकी सच्चाई, ईमानदारी और नैतिक मूल्यों के प्रति उदित हुई दृढ़ निष्ठा से प्रभावित होकर उसके खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की। इस क्षमा से युवती का हृदय और पश्चाताप विदग्ध हुआ तथा उसने स्वयं ही वह पद छोड़ दिया। इस पश्चात्ताप और प्रायश्चित के परिणामस्वरूप आयी भावनाओं में शुद्धि के कारण युवती को दुबारा फिर कभी खुजली नहीं उठी। इसका कारण यह था कि उसका भावना-जन्य क्षोभ समाप्त हो चुका था।

शरीर की तमाम पेशियाँ स्नायु मण्डल द्वारा संचालित होती हैं। छोटी-मोटी स्नायुओं का एक पूरा जाल मनुष्य शरीर में फैला हुआ है जिसका नियन्त्रण मस्तिष्क से होता है। कुछ स्नायु ऐच्छिक होते हैं, जिनका इच्छानुसार उपयोग होता है जैसे—चलना-फिरना या कोई वस्तु पकड़ना छोड़ना। यह कार्य यद्यपि पेशियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वारा ही होते हैं, परन्तु पेशियाँ स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क से ही निर्देश प्राप्त करती हैं। इन ऐच्छिक स्नायुओं के अतिरिक्त एक-दूसरे प्रकार के स्नायु भी होते हैं जिन्हें अनैच्छिक कहा जाता है। इन पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं होता और ये हृदय के धड़कने, नाड़ियों के फड़कने तथा आँतों के कंपने जैसा कार्य सम्पन्न करते हैं।

इन अनैच्छिक स्नायुओं का नियंत्रण मस्तिष्क के उस केन्द्र से होता है, जिसे 'हायपोथैल्मस' कहते हैं। इसी केन्द्र से एक नलिकाविहीन ग्रन्थि भी सम्बन्धित रहती है जिसे पिट्यूटरी ग्रन्थि कहते हैं। यह ग्रन्थि शरीर रक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा और मानसिक संतुलन को बनाये रखने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित करती है। पिट्यूटरी ग्रन्थि का आकार यद्यपि एक चने के दाने के बराबर होता है परन्तु यह अन्य नलिकाविहीन ग्रन्थियों का भी नियन्त्रण करती है। डा० पीले ने जिस युवती का मानसोपचार कर 'इण्टर्नल एग्जिमा' ठीक किया था वह स्नायुजन्य विकार के कारण ही उत्पन्न हुआ था और भावनाक्षोभ समाप्त होते ही स्वतः ही ठीक भी हो गया।

शरीर के स्वास्थ्य संरक्षण का दायित्व पिट्यूटरी ग्रन्थि ही मुख्य रूप से सम्हालती है डॉ० एच० सैले ने अपनी शोधों द्वारा यह पता लगाया। यह ग्रन्थि खास तौर से उस समय ज्यादा कमजोर हो जाती है, जब व्यक्ति के भीतर भावनात्मक द्वन्द्व, मानसिक उथल-पुथल मची हुई हो और ऐसी स्थिति में पेशियों की ऐंठन से लेकर, त्वचा विकार, हृदय रोग, पाचन विकार, रक्तचाप से लेकर, हमेशा बना रहने वाला सिर- दर्द तक पैदा हो सकता है। यह तो सभी जानते हैं कि शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों का संचालन मस्तिष्क द्वारा भेजे गये निर्देशों से ही होता है। भावनाओं के कारण मस्तिष्क पर अवांछनीय दबाव बना रहेगा तो यह निश्चित ही है कि उसकी प्रतिक्रिया शरीर पर भी हो। अधिकांश रोगों के मूल में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भावना क्षोभ ही पाया गया है, भले वह कोई दुराव-छुपाव का भाव हो अथवा आक्रोश क्रोध का भाव।

व्याधि निवारण के लिये धर्मानुष्ठानों का उपचार

काय चिकित्सा की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी, ऐलोपैथी, बायोकैमी, क्रोमोपैथी, नेचरोपैथी, प्राण चिकित्सा, विद्युत चिकित्सा, झाड़-फूँक आदि कितने ही प्रकार के उपचार रोग निवारण के लिए काम आते हैं। पर मनोरोगों का न तो महत्व समझा जाता है और न उनके उपचार का कोई प्रबन्ध है। जबकि उनसे हानियाँ शारीरिक रोगों से भी कहीं अधिक होती हैं। शरीर वाहन है और मन सवार। शरीर औजार है और मन कारीगर। वाहन और औजार की तुलना में उसके प्रयोक्ता का महत्व अधिक है। शरीर के रुग्ण होने से जितनी क्षति होती है, उसकी तुलना में मन के अस्वस्थ होने पर कहीं अधिक हानि उठानी पड़ती है। अस्तु मानसिक स्वास्थ्य की ओर शरीर स्वास्थ्य से भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, जबकि उस ओर प्रायः उपेक्षा ही दिखाई जाती है।

मानसिक सन्तुलन खो बैठने पर उन्मादग्रस्तों को पागलखानों में भर्ती किया जाता है। इससे कम की मानसिक रुग्णता की ओर ध्यान नहीं जाता जबकि व्यक्तित्व को गया-गुजरा बनाने, पिछड़ापन लादे रहने और प्रगति पथ में पग-पग पर अवरोध उत्पन्न करने में वे ही प्रधान कारण होते हैं। बुरी आदतों से ग्रसित, बात-बात में आपे से बाहर हो जाने वाले, दुराग्रही, उद्धत स्वभाव, कल्पना लोक में उड़ते रहने वाले, अशिष्ट, सनकी प्रकृति के लोग भी मनोरोग ग्रसित ही कहे जायेंगे। वैसे मनोरोग विज्ञान के अन्तर्गत सही चिन्तन न कर सकने वाले—अविकसित मस्तिष्क वाले भी रोगी ही माने गये हैं। किन्तु सर्वसाधारण की दृष्टि में यह स्वभाव दोष भर है और इनका समझाने-बुझाने एवं स्वयं सुधरने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। तथ्य इससे भिन्न है। बुरी आदतें भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बीमारियाँ ही हैं और उनका भी काय रोगों की तरह उपचार हो सकता है।

साइकोमेट्री जैसे आधारों पर सामान्य मानसिक रोगों की—सनकों की-चिकित्सा बहुत दिनों से चल रही है। उससे रोगी को अपने मन की बातें जी खोलकर कहने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सोचा जाता है कि जैसे पथरी से पेशाब रुक जाता है, उसी प्रकार किन्हीं मानसिक दबावों की गाँठें बन जाने से चिन्तन स्वाभाविक प्रवाह में अवरोध आता है। उसी से विक्षिप्तता आती मानी जाती है। समझा जाता है कि यदि स्वच्छन्द कथन में वे बातें मुँह से निकल जायँ जो मन पर दबाव डालती थीं तो उससे वह दिमागी पथरी निकल सकती हैं जिन्हें मानसिक ग्रन्थियाँ कहा जाता है और मनोरोगों का कारण माना जाता है। इस स्वच्छन्द कथन के अतिरिक्त रोगी को कुछ सुझाव भी दिये जाते हैं। उसके चित्त में से कुछ मान्यताएँ उखाड़ने और कुछ जमाने के लिए स्नेहयुक्त हलका-फुलका वार्तालाप किया जाता है। प्रायः इसी स्तर की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति बहुत दिनों से चल रही है। उसके कभी उत्साहवर्धक, कभी निराशाजनक परिणाम भी सामने आते रहते हैं।

विचारणीय यह है कि क्या मनःशास्त्रियों की यह मान्यता सही है कि कभी कोई मानसिक दबाव पड़ जाने से ही मनोरोग उत्पन्न होते हैं ? यदि ऐसा ही है तो जिन्हें जीवन भर भारी प्रतिकूलताओं, खिन्नताओं और विपन्नताओं के बीच निर्वाह करना पड़ता है। वे क्या विक्षिप्त नहीं हो जाते ? प्रतिकूलताओं की उत्तेजना से प्रखरता उभरती है, इस सिद्धान्त को फिर किस प्रकार मान्यता मिलेगी ? तब सदा अनुकूलता ही ढूँढनी पड़ेगी, भले ही वह किसी भी कीमत पर क्यों न मिले ? अन्यथा तनिक-सी भी प्रतिकूलता का दबाव पड़ने पर मनोरोग उत्पन्न होने का भय रहेगा। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि यह कह देने भर से मानसिक गाँठें खुल जाती हैं तो जो दुखियारे अपनी व्यथा और कठिनाई आये दिन हर किसी से कहते ही रहते हैं उनका समाधान क्यों नहीं होता ? गम्भीर प्रकृति के लोग अपनी और दूसरों की महत्वपूर्ण बातें प्रायः छिपाये ही रहते हैं। राजनीतिज्ञ, सेनाध्यक्ष, षड्यन्त्रकारी, अपराधी जैसे लोगों की सफलता तो इसी पर निर्भर रहती है कि अपने मन की बातें छिपाये रहें, उसकी गन्ध भी किसी को नहीं लगने देते। ऐसी दशा में छिपाने, न कहने से उन्हें मनोरोग क्यों नहीं होते ? लगता है मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित यह प्रक्रिया उतनी सारगर्भित नहीं है कि मानसिक दबावों से ही विक्षिप्तता आती है और जी खोलकर कह देने भर से मनोरोगों का निराकरण हो जाता है। इन सन्देहों के बावजूद यदि इसे उपयोगी एवं आवश्यक मान लिया जाय तो भी इतना तो निश्चित है कि इतना भर पर्याप्त नहीं है। इतने भर उपाय से अनेकों मानसिक रोगों का निराकरण पूरी तरह नहीं हो सकता। इससे आगे भी करने के लिए बहुत कुछ शेष रह जाता है, यह मानकर चलना होगा।

कायिक रोग प्रकृति द्वारा शरीर यात्रा के लिए निर्धारित नियमों के उल्लंघन का परिणाम हैं। इसी प्रकार मनोरोगों का कारण चिन्तन के लिए निर्धारित नीति मर्यादा का व्यतिक्रम करता है। व्यक्तिगत जीवन में हर मनुष्य को चरित्र-निष्ठ रहना चाहिए और सम्पर्क क्षेत्र में समाज-निष्ठ सद्व्यवहार का पालन करना चाहिए। आरोग्य शास्त्र की नियम मर्यादा इसलिए है कि आहार-विहार का ठीक तरह पालन किया जाय। समाजशास्त्र के अन्तर्गत शासकीय कानून और शिष्टाचार सहित नागरिक कर्त्तव्यों का निर्वाह आवश्यक है। वैयक्तिक और सामाजिक आचार संहिता का अनुशासन मानने वाले सज्जन कहलाते हैं। उनकी प्रशंसा होती है, जन-सहयोग मिलता है और उनका अस्तित्व सुखद वातावरण का निर्माण करता है। इसके साथ-साथ सबसे बड़ा और पूर्ण प्रत्यक्ष लाभ यह है कि चित्त हलका रहने से उन अन्तर्द्वन्द्वों का उद्भव नहीं होता जो मानसिक रोगों के प्रधान कारण हैं।

व्यक्तिगत जीवन की उत्कृष्टता बनाये रहने की आवश्यकता पूरी करने वाले तत्व-दर्शन का नाम अध्यात्म है। इसी को व्यवहार में मानवी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कृति कहते हैं। आत्म-परिष्कार इसका उद्देश्य है। व्यावहारिक जीवन की गतिविधियों की मर्यादा क्या हो इसका निर्धारण धर्म धारणा के अन्तर्गत किया गया है। धर्म को ही सभ्यता भी कहते हैं। धर्म प्रवृत्ति को जीवित रखने के लिए पुण्य परमार्थ के लिए की गई विविध-विधि तपश्चर्याओं का अभ्यास किया जाता है, उनमें पिछली भूलों के लिए पश्चात्ताप प्रायश्चित का भाव है और आगे के लिए सतर्कतापूर्वक श्रेष्ठ जीवन बिताने का संकल्प। धर्म-धारणा के समस्त क्रिया-कलाप इसी उद्देश्य के लिए विनिर्मित हुए हैं। अध्यात्म के अन्तर्गत कितने ही प्रकार की योगसाधनाएँ आती हैं उनमें आत्म-निरीक्षण और अन्तर परिशोधन के लिए कई तरह के अभ्यास कराये जाते हैं। इनके द्वारा अन्तः श्रद्धा का स्तर अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा उठाया जाता है। 'अहम्' को संकीर्ण सीमाबन्धन से आगे बढ़कर सुविस्तृत क्षेत्र में आत्म-भाव विस्तृत करने वाले स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन के अभ्यास' योगसाधना के अन्तर्गत ही आते हैं। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की पाँच साधनाएँ योगसाधना का अन्तःस्पर्शी अभ्यास है। इनसे पहले तीन को लोक व्यवहार का मर्यादा पालन कहना चाहिए। उनमें सामाजिक अनुशासन है। उच्छृखंलता का नियन्त्रण इन्हीं तीन में किया जाता है इसलिए उन्हें तप वर्ग में गिना गया है। आत्मोत्कर्ष का दार्शनिक पक्ष योग में और क्रियापक्ष तप में गिना जाता है। योग को संस्कृति और तप को सभ्यता कह सकते हैं। इन्हीं के दर्शन अध्यात्म और धर्म के नाम से जाने जाते हैं।

योग और तप के माध्यम से कितनी ही लौकिक और अलौकिक ऋद्धि-सिद्धियों का आकर्षक वर्णन साधना विज्ञान के अन्तर्गत किया गया है। इनमें अत्यन्त स्पष्ट सिद्धियाँ शारीरिक और मानसिक रोगों के निवारण की हैं। धर्म पालन से शरीर निरोग बनता है और अध्यात्म का अवलम्बन करने से मनोविकारों की जड़ें कटती हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में अन्यान्य लाभों की चर्चा न करते हुए इतना सोचा जा सकता है कि जीवन के सुविधा और प्रगति के उभयपक्षीय उद्देश्य पूरे करने वाले आरोग्य की रक्षा में धर्म और अध्यात्म का क्या योगदान हो सकता है और उस योगदान को किस प्रकार व्यवहार में उतारा जा सकता है ?

इस सन्दर्भ में शरीर-शास्त्र, मनःशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र के मूर्धन्य विशेषज्ञों का मत है कि जीवन-क्रम में यदि धर्म और अध्यात्म के वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश किया जा सके तो उसकी आस्थाएँ, प्रवृत्तियाँ, आकांक्षाएँ, विचारणाएँ एवं गतिविधियाँ ऐसा मोड़ ले सकती हैं, जिनमें आदर्शों को अपनाने की दिशा में प्रगति क्रम चल पड़े। इससे स्वास्थ्य रक्षा पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा। पिछले रोगों को मिटाने और भविष्य में हँसती-हँसाती हलकी-फुलकी-जिन्दगी जीने का सहज अवसर प्राप्त होगा।

प्राचीन काल में जब धार्मिकता का वातावरण था तब पुष्टाई और चिकित्सा की उतनी सुविधा न होते हुए भी जन-स्वास्थ्य की स्थिति बहुत सन्तोषजनक थी। जब से लोग निरुद्देश्य जीवन जीने लगे हैं—उच्चस्तरीय आस्थाओं की अवहेलना करने लगे हैं—विलासी, बनावटी और अहंकारी गतिविधियाँ अपनाने लगे हैं, तब से आन्तरिक तनावों और अन्तर्द्वन्द्वों में भारी वृद्धि हुई है। फलतः जन-स्वास्थ्य को भारी आघात लगा है। तथ्य को यदि ध्यान में रखा जा सके तो स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से भी धार्मिक मनोवृत्ति को वापिस लौटाने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता अनुभव होगी।

पाश्चात्य देशों में धार्मिकता को स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोग निवारण के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है और उस परीक्षण के अच्छे परिणाम सामने आ रहे हैं। विंग्स ऑफ हीलिंग—मार्च ऑफ फेथ-क्रिश्चियन साइन्स-यूनिटी जैसी संस्थाएँ धार्मिकता के उपचारों के सहारे शारीरिक और मानसिक रोगों के निराकरण का प्रयोग कर रही हैं और उसमें उन्हें आशातीत सफलता मिल रही है। इन प्रयोग-परीक्षणों में अमेरिका के नार्थ करोलिना प्रान्त के ब्लूरिज पर्वत श्रेणियों के मध्य बना हुआ हेव्रान आश्रम बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका है। इसके संस्थापक डा० डिलाई आरोग्य लाभ के लिए आने वाले रोगियों के लिए एक ही उपचार बताते हैं कि वे जब तक यहाँ रहें अपने आपको धर्म-चिन्तन में प्रभु प्रार्थना में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरत रखें। आगन्तुकों को तत्काल शान्ति मिलती है और वे अपना कष्ट भार हलका हुआ अनुभव करने लगते हैं।

क्षय से पीड़ित एक लँगड़े व्यक्ति चार्ल्स फिल्मोर को जब सब ओर से निराशा मिली और डाक्टरों ने उनके रोग को असाध्य घोषित कर दिया तो उन्होंने प्रार्थना का अवलम्बन लिया और उसी को चिकित्सा उपचार के स्थान पर काम में लाने लगे। जीवन बच गया तो उन्होंने उपासना को आरोग्य रक्षा के लिए प्रयुक्त करना आरम्भ किया। एक छोटे-से किराये के मकान में आने कार्य आरम्भ किया। रोगियों को लाभ मिला तो ख्याति भी फैली और श्रद्धा भी बढ़ी। फलतः उस आश्रम का विस्तार बढ़ता चला गया। इन दिनों उसका विस्तार १२०० एकड़ भूमि में है। हजारों की संख्या में रोगी निरन्तर निवास करते और आरोग्य लाभ लेते हैं। सात सौ कर्मचारी काम करते हैं। दो साप्ताहिकों और सात मासिक पत्रों की २० लाख प्रतियाँ यहाँ से हर महीने प्रकाशित होती हैं। प्रति दिन ६ हजार पत्र आते हैं। यहाँ से छपने वाले प्रार्थना साहित्य का अनुवाद संसार की ५४० प्रमुख भाषाओं में होता है वह 'यूनिटी' संस्था अमेरिका का ऐसा धर्म संस्थान है, जिसकी आधारशिला भर इसाई मतालवलम्बी है। लाभ पाने की दृष्टि से सभी धर्मों और वर्गों को समान सुविधा है।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में जहाँ रोगों की औषधि उपचार पद्धति का वर्णन है, वहाँ उनके मूल कारण की ओर संकेत करते हुए यह भी बताया गया है कि धर्मानुष्ठानों के माध्यम से जीवन-क्रम को अधिक पवित्र बनाने का उपक्रम भी रोग-निवारण के लिए आवश्यक है। चरक संहिता के एक प्रसंग में छात्र अग्निवेश आचार्य चरक से पूछता है—भगवन्, संसार में पाये जाने वाले अनेकों रोगों का मूल कारण क्या है ? आचार्य उत्तर देते हैं—'लोगों के दुष्कर्म जिस स्तर के होते हैं उसी के अनुरूप उन्हें पापों का प्रतिफल शारीरिक और मानसिक व्याधियों के रूप में प्राप्त होता है।'

जिस प्रकार शरीर में भरे विष द्रव्य का निष्कासन एवं मारण रोग निवारण के लिए आवश्यक है उतना ही आवश्यक यह भी है कि कुकर्मों के प्रायश्चित और कुसंस्कारों के निष्कासन के लिए धर्मानुष्ठानों की प्रक्रिया का आश्रय लिया जाय

स्विट्जरलैण्ड के डाक्टर वाल्टर हैस को नोबुल पुरस्कार उनकी अवचेतन मानसिक श्रमता सम्बन्धी खोजों के उपलक्ष्य में मिला था। अचेतन मन द्वारा शरीर की क्रिया प्रक्रियाओं के संचालन सम्बन्धी जानकारी तो पहले से भी उपलब्ध थी। पर उन्होंने संकल्प बल द्वारा अवचेतन की क्षमता को उत्तेजित करके रोग निवारण के सम्बन्ध में प्रयोग करने की एक नई शैली का विकास किया है—नाम दिया है उसका श्रद्धा चिकित्सा (फेथ हीलिंग)।

इस प्रयोग में रोगी को अपने ध्यान और विश्वास का एकीकरण करना पड़ता है और रुग्ण अवयव पर शरीर की अन्तरंग शक्तियों का प्रहार एवं समाधान किये जाने पर मानसिक क्षमता को एकाग्र करने के लिए कहा जाता है। रक्त के श्वेत कण सशस्त्र घुड़सवारों की तरह रोग-कीटाणुओं पर हमला करते हैं और उन्हें कुचल-मसलकर रख देते हैं। दूसरी कल्पना यह करनी पड़ती है कि शरीरगत विद्युत शक्ति—जीवनी शक्ति के रूप में प्रखर होती है और पीड़ित अवयव में जो क्षति हो चुकी है, उसे संजीवनी बूटी की तरह पूर्ण करती है। इस पद्धति को किसी भी रोग में कोई भी पीड़ित प्रयोग कर सकता है। लाभ का अनुपात उस क्रम से चल पड़ेगा जितनी संकल्प शक्ति निश्चयात्मक होगी और ध्यान में एकाग्रता एवं विश्वास भावना सम्मिलित रहेगा। इस प्रयोग से उनने कितने ही रोगियों को लाभान्वित किया है।

मनःचिकित्सक पेट्रिया नोरेस ने इस सिद्धान्त के आधार पर अपना एक अस्पताल ही विनिर्मित किया है। उसमें वे परामर्श देते हैं और उस विधि का अपने सामने अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कराते हैं। स्वयं उस कल्पना चित्र की रूपरेखा बताते जाते हैं और रोगी से कहते हैं कि वे पूरे विश्वास के साथ इस अनुभूति को कार्यान्वित करें। इस प्रक्रिया से श्रद्धालु स्तर के रोगी कठिन से कठिन रोगों से मुक्ति पा लेते हैं। कठिनाई उन्हें होती है जो श्रद्धा का महत्व नहीं समझते और मानसिक क्षमता का उपहास उड़ाते हैं।

इस सम्बन्ध में संसार में अन्यान्य मनःचिकित्सक अपने प्रयोगों में अधिकाधिक सफलता प्राप्त कर रहे हैं। उनका कहना है कि यह पुरातन मैस्मरेज्म हिप्नोटिज्म पद्धति का ही विकसित स्वरूप है। उस प्रक्रिया में चिकित्सक को अपने हस्त संचालक एवं नेत्रों को बेधक दृष्टि का चमत्कारी माहात्म्य समझाना पड़ता था। उन रोगियों के उदाहरण प्रस्तुत करने पड़ते थे जो इस पद्धति के आधार पर अच्छे हो चुके हैं। इस आधार पर वे रोगी में विश्वास उत्पन्न करते थे और विकसित विश्वास चिकित्सक के उपचार के सहयोग में एक समर्थ क्षमता उत्पन्न करता था। उसी आधार पर रोगी कष्ट मुक्त होते थे।

इससे पूर्व 'क्रिश्चियन हीलिंग' के नाम पर पादरी लोग महाप्रभु यीशु से प्रार्थना करने के लिए कहते थे और अभिमन्त्रित जल पिलाते थे। इस आधार पर रोगी बिना औषधि के भी अच्छे हो जाते थे। ईसाई धर्म के विस्तार में यह आधार एक अच्छी पद्धति सिद्ध हुआ था।

रोग के अस्पतालों में डाक्टरी चिकित्सा के साथ-साथ इस श्रद्धा चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। डॉक्टर जब अपने उपचार कार्य को पूरा कर चुकते हैं, तब उसके उपरान्त पादरी का आगमन होता है। उनका कहना होता है कि महाप्रभु यीशु ने अपने जीवन काल में अनेक असाध्य रोगियों को अच्छा किया था। उनका शरीर न रहने पर भी प्रार्थना करने वालों के पास उनकी आत्मा पहुँचती है और कष्ट मुक्ति में सहायता करती है।

देखा गया है कि जो रोगी इस पद्धति को भी अपनाते हैं, वे अपने साथियों की तुलना में जल्दी अच्छे होते हैं। प्रार्थना उनकी आशा को जगाती है कि उस उत्साह में उनकी जीवनी शक्ति अपेक्षाकृत अधिक काम करने लगती है। फलतः उन्हें दुहरा लाभ होता है।

शारीरिक क्षेत्र में अचेतन मन की कार्य-पद्धति क्या है ? इसका आरम्भिक विवरण समझ लेने पर यह अगली बात सहज समझ में आ जाती है कि ओटो नामस नर्ब्स सिस्टम (स्वायत्त तन्त्रिका निकाय की सिंपथेटिक ब्रांच)। अनुकम्पी शाखा किस प्रकार शरीर की स्वसंचालित प्रणाली का संचालन करती है। उदर तन्त्र को कन्ट्रोल करने वाली नेरिपाइन फ्राइन एक प्रेरक रसायन छोड़ती है। वह न्यूरोनों तक मस्तिष्कीय सन्देश ले जाता है। इसी प्रकार तन्त्रिका कोशिका तक उत्तेजना पहुँचती है और हारमोनों का प्रभाव अभीष्ट हलचलें उत्पन्न करता है।

इसके साथ ही हाइपोथैलेमस अपना काम करना आरम्भ कर देता है और अभीष्ट क्षेत्रों में आवश्यक हलचलें उत्पन्न करता है। इस कार्य में बायोफील्ड बैंक (जैव प्रति संभरण) की एक विशेष भूमिका होती है। इसी अनैच्छिक क्रिया-पद्धति में जब रोग निवारण के लिए संलग्न करने हेतु इच्छा शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया वैसी ही होती है जैसी उत्तेजक रसायनों के इन्जेक्शन लगाकर उत्पन्न की जाती है।

कल्पना सृष्टि के चमत्कार असाधारण हैं। ध्यान योग की समूची प्रक्रिया इसी आधार पर चलती है। कई योगी हृदय की धड़कन में, रक्त प्रवाह में असाधारण हेर-फेर कर लेते हैं। समाधि स्थिति में लगभग मरणासन्न स्थिति तक पहुँच जाते हैं। प्राणायामों में कई ऐसे हैं, जो श्वांस-प्रश्वांस क्रिया एवं रक्तगत उत्तेजना को असाधारण रूप में बढ़ा लेते हैं। इस आँधी-तूफान में रोगों का विजातीय द्रव्य उड़कर कहीं से कहीं चला जाता है। इस प्रवाह में बहते हुए कष्टकारक—वायरेस—बहकर कहीं से कहीं जा पहुँचते हैं और उनका समुदाय छिन्न-भिन्न होकर क्रियाहीन होने लगता है। रोग-निवारण के लिए यह स्थिति असाधारण रूप से उपयोगी मानी गई है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सम्भावना कितनी वास्तविक है। इस तत् सम्बन्धी उपकरण से भली प्रकार जाना और जाँचा जा सकता है। इस इमेजिंग पद्धति का प्रयोग वाशिंगटन विश्वविद्यालय के चिकित्सा विभाग द्वारा किया गया है और कैन्सर सरीखे ढीठ रोगों में भी लाभदायक पाया गया है।

योगी तान्त्रिक अपने प्रयोगों में देवी-देवताओं को माध्यम बनाते हैं और रोगी को विश्वास दिलाते हैं कि उन्हें किसी दिव्य शक्ति का अनुग्रह उपलब्ध हो रहा है। रोगी का विश्वास जितना गहरा और घनीभूत होता है उसी आधार पर उन्हें लाभ भी आश्चर्यजनक रीति से होने लगता है। भूत-प्रेतों के आक्रमण से लेकर उसके निवारण तक की कार्य-पद्धति में इसी विश्वास प्रक्रिया की महती भूमिका होती है। झाड़-फूँक और मारण मोहन उच्चाटन का भरत में चिरकाल से प्रयोग होता रहा है। उस क्षेत्र में अभी भी इसे जादू चमत्कार या देवी-देवता का आवेश अनुग्रह समझा जाता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि मस्तिष्कीय प्रवाहों की साधारण प्रक्रिया का उपयोग जब संकल्प शक्ति और एकाग्रता के आधार पर होता है तो वह विश्वास ही फलदायक बन जाता है। इसी तथ्य को अब वैज्ञानिक आधार पर प्रामाणित किया जा रहा है। यह अटकल न होकर यथार्थता है। इसका प्रमाण उन रोगियों से मिलता है, जो असाध्य या कष्टसाध्य समझे गये थे किन्तु उपरोक्त ध्यान धारणा के आधार पर अपने खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करके सौभाग्यशाली बने।

श्रद्धा कभी पूजा उपासना में या धार्मिक कर्मकाण्डों में प्रयुक्त होती थी और वह जितनी गहरी होती थी उतने ही चमत्कारी फलितार्थ प्रस्तुत करती थी। अब नवीन ध्यान-प्रक्रिया में श्वेत रक्त कणों को देवता मानकर ध्यान द्वारा रोग-निवारण के लिए जुटाया जाता है तो भी वैसा ही लाभ मिलता है। इस वैज्ञानिक आत्मोपचार को आश्चर्य नहीं स्वाभाविक माना जाना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण से मानसोपचार

शरीर और मन का सम्बन्ध अटूट है। मन विकृत हुआ तो शरीर भी सुखी न रहेगा। इसी प्रकार शारीरिक दुर्बलता, रोग और पीड़ा का मन पर भी प्रभाव पड़ता है। शरीर की अपेक्षा मन अधिक शक्तिशाली है। मनुष्य का सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार मन की विचार-स्थिति के अनुरूप होता है। जो सोचते हैं, वही करते हैं। मन में जैसे विचार उठते हैं, वैसी ही क्रियाएँ व्यवहार में आती हैं। बाह्य कर्म का आधार मन है, इसलिए स्वास्थ्य पर मन की असंयत प्रवृत्तियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। साधारणतया बीमारी और स्वास्थ्य की खराबी को शारीरिक विकार समझकर उपचार की व्यवस्था की जाती है किन्तु इसका प्रधान कारण मन है। अतः मानसोपचार की उपयोगिता सर्वप्रथम है।

मानसिक वृत्तियों का शारीरिक स्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है, वह अधिक अस्पष्ट नहीं है। धन और पद की अनियन्त्रित इच्छाओं के कारण आज लोगों में महामारी की तरह मानसिक बेचैनी उठ खड़ी हुई है। इसका यह प्रभाव हुआ कि लोग दिन भर आफिस में, घर के बाहर काम करते हैं। सायंकाल हारे-थके लौटते हैं तो दुकान, ट्यूशन, सभा-सोसायटी, सिनेमा-नाच-घरों की ओर भागते फिरते हैं। मन की इस असंयत स्थिति के कारण पर्याप्त विश्राम तक नहीं कर पाते। फलतः शरीर गिरने लगता है, थकावट शरीर के अंग-अंग में समा जाती है। दिल की धड़कन अनिद्रा की शिकायत प्रायः ऐसे ही लोगों को होती है, जो अत्यधिक व्यस्तता के कारण पर्याप्त विश्वास तक नहीं कर पाते।

हमारे गुर्दों के ऊपर दो ग्रन्थियाँ होती हैं इन्हें "ग्लैण्ड्स आफ फ्लाइट" कहा जाता है। यह शरीर को आने वाले भय से सावधान करती है। अत्यधिक व्यस्तता बेचैनी और श्रम के कारण इन्हें विश्राम न मिले तो शारीरिक विकार के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। नींद आनी बन्द हो जाती है, पाचन-क्रिया खराब होने लगती है। माँसपेशियाँ थोड़े से मानसिक तनाव से बुरी तरह उत्तेजित हो उठती हैं और उनकी सारी अवरोधक शक्ति समाप्त हो जाती है। यह हलचल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिए होती है कि 'ग्लैण्ड्स आफ फ्लाइट' से निकलने वाले एंक विशेष प्रकार के तत्व का स्राव बन्द हो जाता है। इससे ये सारे उपद्रव उठ खड़े होते हैं।

भय, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, कुढ़न, जलन आदि प्रत्येक मानसिक आवेश का प्रभाव शारीरिक अवयवों पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। अत्यधिक भय की अवस्था में हृदय की धड़कन की तीव्रता के फलस्वरूप रक्त-शुद्धि का कार्य शिथिल पड़ जाता है, जिससे शरीर में दूषित तत्व कारबोनिक एसिड की मात्रा बढ़ने लगती है और एकाएक दम फूल जाने से फेफड़ों में तेज धक्का लगता है, जिसका स्वास्थ्य पर अनिष्टकारी असर पड़ता है। यह उत्तेजना यदि निश्चित सीमा को पार कर गई तो लोगों की मृत्यु तक हो जाती है। भूत-व्याधा के भय से मरने वालों की मानसिक शक्ति इतनी निर्बल रही होती है कि उनका शरीर भय के कारण उठी उत्तेजना को सहन नहीं कर पाता और मृत्यु हो जाती है। इस उत्तेजना का प्रमुख कारण मानसिक तनाव की स्थिति को ही माना जाता है।

यह कार्य हमारे मस्तिष्क के आधीन होता है। वह यदि इन आवेशों, भर्यो या उत्तेजनाओं को उपेक्षित कर दे तो शरीर के स्नायु केन्द्र पर पड़ने वाली हानिकारक प्रतिक्रया से बच सकते हैं। जैसे कोई व्यक्ति यदि आपको गाली दे देता है या ऐसे अपशब्द कह देता है जिसे आप सहन नहीं कर सकते, ऐसी दशा में आपका स्नायु संस्थान भी उत्तेजित होगा ही। अतः आप उसके अपशब्दों को हँसकर टाल दीजिए। यह समझिए कि वह व्यक्ति मूर्ख है, नासमझ है, हम भी वैसे ही क्यों बनें, तो आप क्षणिक आवेश से उत्पन्न भारी दुष्परिणाम से बच जायेंगे।

यह भी देखा गया है कि आवेश के समय आहार का पौष्टिक अंश मांस-पेशियों की उत्तेजना से हुई क्षति की पूर्ति के लिए चला जाता है। यह कार्य एक झटके से सम्पन्न होता है, जिसका पाचन क्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे पाचन संयंत्र शिथिल पड़ जाते हैं। चूहों के ऊपर प्रयोग करके देखा गया है कि शान्त वातावरण में वजन बढ़ता और स्वास्थ्य स्थिर रहता है जबकि भयावह और कोलाहलपूर्ण स्थानों में शरीर गिरने लगता है और आयु कम हो जाती है।

आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति को कड़ाई से लागू करने से ही यह सम्भव है कि सही बात का पता चले। अन्यथा ऐसी स्थिति में भी हम पक्षपात कर सकते हैं। कारण यह है कि मन इतना जबर्दस्त वकील है। कि वह अपने पक्ष में अनेकों प्रमाण प्रस्तुत करके रख देता है। हम जिसे स्नेह करते हैं, उसमें हजार बुराइयाँ हैं तो भी एक भी नहीं दिखाई पड़ती किन्तु किसी से द्वेष हो तो वह अनेकों दुर्गुण उसमें दूर से ही दिखाई देने लगते हैं। अपनी प्रत्येक वस्तु को उदार दृष्टि से देखने और दूसरों के कार्यों में खामियाँ निकालने की लोगों में आम धारणा होती है। इससे वस्तु के सही दृष्टिकोण का पता नहीं लग पाता। दूसरों के अधिक धन कमाने को यह कहकर ईर्ष्या करने लगते हैं कि उसने डटकर मुनाफाखोरी, चोर-बजारी, ठगी और धोखादेही की है। वही कार्य स्वयं करें तो इसे अपनी बुद्धि का कौशल मानते हैं। इससे सच्चाई छुपती है और पक्षपात बढ़ता है। ईर्ष्या, विद्वेष, क्रोध और कलह का अधिकांश कारण यही है कि हमारा परखने का दृष्टिकोण स्वार्थपूर्ण होता है।

आत्म-निरीक्षण का यह कार्य इस दृष्टि से करें कि गलत अन्दाज लगने से उठने वाली दुर्भावनायें हमारे स्वास्थ्य को खराब करेंगी। इससे हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जायगी, लोग बुरा कहेंगे और हमसे कोई भी आत्मीयतापूर्ण व्यवहार नहीं करेंगे। इस प्रकार सोचने से आपको सही बात का समर्थन करने में किंचित हिचक व संकोच नहीं होगा। इससे आपका मनोबल बढ़ेगा, शक्ति आयेगी, प्रसन्नता होगी और स्वास्थ्य भी स्थिर बना रहेगा।

आप दूसरों से जैसे व्यवहार की अपेक्षा करते हैं वैसा ही आचरण दूसरों के साथ भी कीजिए। दुःख और चिन्ता से बचाने वाला इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं है। जो दूसरों को दुःख देगा या अभद्र व्यवहार करेगा उसे सामाजिक दण्ड—प्रतिकार, घृणा, निन्दा का पात्र बनना ही पड़ेगा। अपनी आत्मा भी उसके लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धिक्कारती ही रहेगी। इनसे बचने का सीधा रास्ता और सरल उपाय यही है कि सबके साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करें। सहयोग, सहानुभूति और सहृदयता के सद्गुणों के कारण दूसरों से भी प्रेम, स्नेह, प्रशंसा एवं सम्मान प्राप्त होता है, इससे प्रसन्नता होती है, सुख मिलता है।

निराशा मनुष्य की शारीरिक व मानसिक गिरावट का प्रबल कारण होती है। इससे सफलता का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता है, इसलिए आशावादी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। आशा आध्यात्मिक जीवन का शुभ आरम्भ है। आशावादी व्यक्ति सर्वत्र परमात्मा की सत्ता विराजमान देखता है। उसे सर्वत्र मंगलमय परमात्मा की मंगलदायक कृपा बरसती दिखाई देती है। सच्ची शान्ति, सुख और सन्तोष मनुष्य की निराशावादी प्रवृत्ति के कारण नहीं, अपने ऊपर अपनी शक्ति पर विश्वास करने से होता है। पुरुषार्थ से बड़े-बड़े प्रारब्ध भी तब किये जाते हैं। जिसमें स्फूर्ति है, शक्ति है और आलस्य जिसे छू नहीं गया वे ही आशावान् व्यक्ति जीवन में सफल होते हैं।

काम शक्ति भी इसी प्रकार जीवन शक्ति का प्रतीक है किन्तु गर्भ धारण तक ही सीमित रखने की इसकी एक सुनिश्चित मर्यादा है। अमर्यादित कामेच्छा एक प्रकार की आग है, जो आदमी को जलाया करती है। काम-लिप्सा के साथ ही शरीर की गर्मी बढ़ने लगती है। साँस की गर्मी बढ़ती और त्वचा का तापमान बढ़ जाता है। इस गर्मी के दाह से कुछ जीवन तत्व व शारीरिक धातुऐं पिघलने लगती हैं और मूत्र के साथ स्रवित होने लगती हैं। इसका शरीर और मन पर तुरन्त प्रभाव होता है। शारीरिक शिथिलता और अशक्तता के साथ ही आत्महीनता, आलस्य, निराशा और दुर्बुद्धि जागृत होने लगती है। जो लोग अधिक विषयी होते हैं, उनकी शारीरिक शक्ति का इस प्रकार पतन होता है कि सर्दी, जुकाम जैसे हल्के रोग सहन करने की शक्ति तक चली जाती है।

अपनी सम्पूर्ण चेष्टायें ब्रह्मचर्य, संयम और पवित्र जीवन जीने के विविध कार्यक्रमों में लगी रहें। नारी के प्रति अपनी भावनायें आदरपूर्ण रहें। विचारोत्तेजक नृत्य, गाने और अश्लील सिनेमा आदि से अधिक से अधिक बचने का पवित्र प्रयत्न करें तो ही यह आशा रखी जा सकती है कि व्यक्ति का शरीर बल ऊँचा होगा, आत्मबल उच्च स्तर का चढ़ा-बढ़ा होगा।

क्रोध भी शरीर और मन पर विषैला प्रभाव डालने वाली महा व्याधि है। डाक्टर आरोली और केनन का कथन है कि क्रोध के कारण अनिवार्य रूप से उत्पन्न होने वाली विषैली शर्करा पाचन-क्रिया को शिथिल कर देती है, इससे हाजमा खराब हो जाता है। "५ मिनट क्रोध से उत्पन्न शक्ति को यदि बचा लें तो इससे साढ़े सात घन्टे अनवरत् श्रम किया जा सकता है।" डाक्टर जेस्टर के इस कथन से क्रोध के भीषण परिणामों का सहज ही अन्दाज किया जा सकता है।

क्रोध का अधिकांश कारण अपना झूँठा अहंकार होता है। अतः सदैव शिष्ट, उदार, मित-भाषी और नम्र बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जो स्वयं को सबसे छोटा मानता है, उसे इस दुष्ट महारोग से बिना औषधि के छुटकारा मिल जाता है।

इसी प्रकार लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष कलह और कटुता की दुर्भावनायें भी मनुष्य को नीचे गिराती हैं। इनकी हर घड़ी आने मस्तिष्क की प्रयोगशाला में निगरानी बनाये रखना चाहिए। इन्हें असंयत, अमर्यादित छोड़ देंगे तो मानसिक शारीरिक विग्रह उत्पन्न होते देर न लगेगी। इनकी भयंकरता से जीवन का सम्पूर्ण उल्लास और आनन्द समाप्त हो जाता है।

सात्विकता की अभिवृद्धि होने से आत्मा में असाधारण शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता और प्रफुल्लता का आनन्द छाया रहता है। सदाचरण से जीवन का प्रत्येक क्षेत्र फलता-फूलता दिखाई देता है। सत्कर्म मनुष्य को ऊँचे उठाते हैं। सभी प्रकार के सुखों और सफलताओं की कुञ्जी यह आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति जिसने अपना ली, उसका कायाकल्प होते देर न लगेगी। मनुष्य शरीर में भी देवत्व के दर्शन यदि कहीं सम्भव हो सकते हैं तो वे शीलवान् पुरुष में प्रत्यक्ष देखे जो सकते हैं, इसलिए अपना प्रत्येक कार्य सतोगुणी हो। भावनाओं में लोक-कल्याण सन्निहित हो। ऐसा कर सकें तो हमारे शरीर और मन का रोग मुक्त, शांत एवं सन्तुलित रह सकना संभव हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्वास-चिकित्सा या फेथक्योर

मन का शरीर पर अद्‌भुत प्रभाव विश्वास चिकित्सा से स्पष्ट हो जाता है। मनुष्य विश्वास (Faith) का दास है। किसी तथ्य के निर्धारण में मन की तीन वृत्तियाँ कार्यशील होती हैं— विश्वास, संदेह तथा अविश्वास। मन सर्वप्रथम निर्धारित करने लगता है और जब बहुत-से वैसे ही उदाहरण पाता है, तब उस बात को सत्य मानने लगता है। मन की इस स्थिर विचार-क्रिया को विश्वास कहते हैं। पूर्ण निर्धारण के उपरान्त मन में एक ऐसा स्थायी पथ या लकीर बन जाती है जैसी ग्रामोफोन के रिकार्ड पर। कभी-कभी बाल्यावस्था के विश्वास बड़े होने के पश्चात् भी नहीं छूटते। एक बार विश्वास जम जाने के बाद मन उस विश्वास के विरुद्ध कोई भी तर्क (Reasoning) स्वीकार नहीं करता।

क्या कारण है कि साधुओं की धूनी की राख से लाभ हो जाता है ? क्या कारण है कि केवल अध्यापक द्वारा बतलाई हुई बात ही विद्यार्थी के ध्यान में बैठती है ? क्या बात है कि माता के पास ही आकर शिशु चुपचाप खेलता है ? क्या कारण है कि झाड़-फूंक, जादू टोना, नजर उतारना, गंडा, ताबीज, दाँत कीलना मेस्मेरेजम हिपनोरिज्म, संकेत इत्यादि से अद्‌भुत लाभ होता है ? यह सब कुछ उन वस्तुओं पर आदि काल से जमा हुआ विश्वास ही है। इसमें गुणकारी सिर्फ मनुष्य का अपना विश्वास ही है। ये सभी बातें मनुष्य के मन में अतुलित विश्वास उत्पन्न कर गुणकारी संकेत (Suggestions) लोगों को देती हैं। आन्तरिक सामर्थ्य उत्तेजित हो उठती है और स्वयं अपने ही अन्तर्निहित रोग निवारक सामर्थ्य से मनुष्य स्वस्थ हो उठता है।

कितने ही व्यक्तियों को यह विश्वास हो जाता है कि तम्बाकू, भाँग इत्यादि से पेट दर्द दूर होता है या चाय से ताकत आती है। कुछ दिनों के सेवन के पश्चात् न जाने कैसे वास्तव में ऐसा ही होने भी लगता है। उन्हें स्वास्थ्य विनाशनी इन मादक वस्तुओं से ही लाभ दीखने लगता है। इसका कारण हमारा स्वयं का संकेत (Suggestion) ही है और कुछ नहीं।

कितनी ही बीमारियों में किन्हीं विशेष डाक्टर, वैद्यों, चिकित्सकों या किन्हीं विशेष औषधियों में विश्वास जम जाता है और उन्हीं से लाभ होता है अन्य कोई प्रसिद्ध डाक्टर दवाई करे तो कुछ फायदा नहीं होता। किसी विशेष पुरुष के रोगी के पास आने मात्र से रोग दूर होता है। महापुरुष ईसा महान् के व्यक्तित्व की शक्ति तरंगें अनेक रोगियों को भला चंगा कर देती थीं कितने ही आध्यात्मवेत्ता, गणितज्ञ, कठिन प्रश्नों में इतने तन्मय हो जाते हैं कि ऑपरेशन तक करा लेते हैं यह उनका विश्वास ही है। मुहर्रमों के दिनों ढोल पीटने वाले भावावेष में शरीर की परवाह तक नहीं करते। बड़े वक्ताओं की वाणी का प्रभाव उनके प्रति जमे हुए विश्वास का ही फल है।

विश्वास का सम्बन्ध मानव मन की अचेतन तरंगों से है। इन अचेतन तरंगों का प्रभाव आन्तरिक सामर्थ्य पर पड़ता है और मनुष्य को अपने ही संकेत उसे प्रत्येक दिशा में लाभ भी पहुँचाता है अतः संकेतों द्वारा चिकित्सक को रोगी का अपना विश्वास ही उत्तेजित करना चाहिए। मनुष्य का अपना विश्वास-केवल अपने विषय में उत्तमता, उत्कृष्टता, स्वास्थ्य, आनन्द में विश्वास ही मनुष्य को लाभ पहुँचाता है। बाह्य उपकरण तो आत्मा श्रद्धा के क्षुद्र प्रतीक हैं। ये तो केवल नाममात्र का ही प्रस्तुत रहते हैं। जीता-जागता विश्वास ही सब कुछ है। यही महौषधि है। इसी कारण आपाधापी से भरे इस युग में निदान एवं चिकित्सा के आधुनिकतम साधन होने के बावजूद रोगों में कहीं कमी नजर आती दिखती नहीं। अधिक और अधिक पाने की होड़, वैभव, सुख-साधनों की लालसा इतनी तीव्र है कि व्याधिग्रस्त काया संक्षोभ-विक्षोभग्रस्त मस्तिष्क एवं अशांति-उद्विग्नता की कीमत पर भी वह यह दौड़ छोड़ना नहीं चाहता। आध्यात्मिक चिकित्सा के प्रतिपादनकर्त्ताओं ने एक महत्वपूर्ण तथ्य यह निकाला है कि प्रज्ञापराध ही सभी रोगों को जन्म देता है। चिन्तन एवं आस्था की विकृतियों से जन्मे रोग बाह्योपचार से ठीक नहीं हो सकते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"अन्डरस्टेण्डिंग ह्यूमन बिहेवियर" नामक विश्वकोश में रोगों के कारण व उपचार पर एक शोध अध्ययन प्रस्तुत किया गया है कि कई रोगियों पर प्रयोगों के उपरान्त पाया गया है कि उन्हें दवाओं की नहीं उनकी राम कहानी सुने जाने की आवश्यकता होती है। चिकित्सक जब रोगी का विश्वास हासिल कर लेता है तो वह जो भी देगा चाहे वह रंग-बिरंगा साधारण जल हो अथवा विटामिन बी काम्पलेक्स की या खड़िया मिट्टी की गोलियाँ, रोग मिट जाता है। वस्तुतः रोगी की सुनने के लिए आज किसी के पास समय नहीं है। निदान हेतु मूत्र, रक्त परीक्षण से लेकर एक्सरे ई० सी० जी० इत्यादि अनेक जाँचें अनावश्यक रूप से नित्य लाखों व्यक्तियों की की जाती हैं। एक बड़ा पुलिन्दा रोगी के पास इकट्ठा होता जाता है व उसे सहज ही रोग की गम्भीरता का सम्मोहन देता रहता है। जितनी ज्यादा जाँच जिस किसी भी रोगी की हुई हो, वह उतना ही गम्भीर, असाध्य एवं जाँच करवाने वाला चिकित्सक सबसे बड़ा विशेषज्ञ माना जाता है।

इस प्रकार के उच्चतम डिग्रीधारी चिकित्सकों को नीम-हकीम कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। "स्वीट नर्थिंग्स" शीर्षक से डा० ए० जे० क्रोनिन ने अपने अनुभवों के आधार पर एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि "मैं मूर्धन्य चिकित्सक इसलिए माना जाता था कि मैंने जनमानस का अध्ययन काफी गहराई से कर समय की माँग एवं रोगी की मनोवृत्ति के अनुरूप औषधियाँ दीं। ये औषधियाँ खड़िया मिट्टी की रंग-बिरंगी गोलियाँ मात्र थीं। किन्तु इन्हें देते समय रोगी को कई प्रकार के परामर्श एवं उसके दुःख में सहभागी बनकर जो विश्वास मुझे उनका अर्जित होता था वह राम बाण का काम करता था।"

वर्तमान चिकित्सा पद्धति, चिकित्सकों की कार्यप्रणाली एवं रोगियों की मानसिकता पर व्यापक सर्वेक्षण करने के उपरान्त हार्वर्ड मेडीकल स्कूल के प्रोफेसर हेनरी० के० बीचर ने लिखा है कि किसी भी रोग की निदान के बाद चिकित्सा के पूर्व यदि रोगी की मनःस्थिति को पढ़कर "प्लेसिबो" औषधियाँ दी जायँ तो काफी सीमा तक उस औषधि प्रदूषण से बचा जा सकता है, जो शरीर-संस्थान में इन घातक ड्रग्स के कारण पैदा होता है। आज व्याधियों में आएट्रोजेनिक रोगों का बाहुल्य है। ये वे रोग हैं जो चिकित्सक महोदय द्वारा रोगी पर प्रयोग हेतु दी गई विभिन्न औषधियों के शरीर रूपी समर क्षेत्र में हुए युद्ध के फलस्वरूप जन्म लेते हैं। जुकाम, दमा, पेप्टिक अल्सर, सिरदर्द, मानसिक तनाव, अनिद्रा, उच्चरक्त, चाप, अपच, इरीटेबल बॉवेल इत्यादि अनेक रोग ऐसे हैं जिन्हें मात्र "प्लेसिबो" चिकित्सा से ठीक किया जा सकता है। प्लेसिबो वे औषधियाँ हैं जो शरीर पर कोई घातक प्रभाव नहीं डालतीं व गुदा-मल मार्ग द्वारा बाहर निकाल दी जाती हैं। इनका रंग-बिरंगा होना व चिकित्सक द्वारा इनका माहात्म्य बताकर दिया जाना ही रोग को मुक्त करने में सहायक सिद्ध होता है। चुम्बक चिकित्सा, जड़ी-बूटी उपचार, क्रोमोपैथी एवं यहाँ तक कि होम्योपैथी भी एक प्रकार से "फेथ हिर्लीग" ही है।

वस्तुतः रोग-चिन्तन की अस्त-व्यस्तता के परिणामस्वरूप जन्मते हैं। यदि आत्म-निरीक्षण की आटोसजेशन पद्धति अपनायी जाय तो न केवल रोग से मुक्ति मिल सकती है अपितु विद्यमान क्षमताओं का परिपूर्ण सदुपयोग भी हो सकता है।

अध्यात्म चिकित्सा बनाम मानसोपचार

शारीरिक चिकित्सा में प्रायः औषधियों का—शल्य-चिकित्सा का उपयोग होता रहा है। मनोरोगों के सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित पद्धति हस्तगत नहीं हुई है। मस्तिष्क को शरीर का एक अवयव मात्र मानकर उसे भी सुन्न, निद्रित करने, बिजली के झटके लगाने या शल्य कृत्य करने तक ही उपाय उपचारों की खोज-बीन हुई है। व्यथाओं के निवारण में इसी स्तर की जाँच-पड़ताल या विधि-व्यवस्था का प्रयोग होता जा रहा है।

किन्तु बात इतने से भी बनती नहीं। सन्तोषजनक परिणाम स्वल्प मात्रा में हस्तगत होते हैं। शेष उपचारों में निराशा ही हाथ लगती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है क्योंकि मनोरोग वस्तुतः चिन्तन क्षेत्र के होते हैं। उनमें भावनाएँ, मान्यताएँ, आकांक्षाएँ ही प्रधान रूप से अपनी हलचलें प्रस्तुत करती हैं।

मानसोपचार के लिए उसी स्तर की क्षमता चाहिए जो विक्षुब्ध या विकृत हो चली है। शरीर पंचतत्वों का बना है इसलिए उसके लिए आहार और उपचार भी वैसा ही होना युक्ति-संगत है। पर मन तो चेतन है। उसे ठीक करने में सचेतन व्यक्ति का मानसिक प्रयोग ही काम आ सकता है। व्यक्ति के माध्यम से ही व्यक्ति की मनोभूमि बनती-बिगड़ती है। उत्थान-पतन में मानवी सम्पर्क ही प्रधान भूमिका निभाता है।

सशक्त मानसिक क्षमता का मनोरोगों के लिए प्रयोग किया जाय तो उसका प्रभाव उपयुक्त हो सकता है। होता भी है। दुर्जनों को सुधारने में सत्संग काम देता है। भलों के साथ रहकर बुरे भी सुधरते हैं। इसी आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि प्राणवानों के प्राण-प्रवाह का लाभ लेकर मानसिक रोगी भी भ्रान्तियों और विकृतियों से मुक्त हो सकते हैं। अध्यात्म चिकित्सा का वही आधार भी है।

सर 'अलेक्सिस' कैरेल ने प्रार्थना की शक्ति पर भी प्रकाश डाला है और उसके पीछे प्रयोक्ता के श्रद्धा विश्वास को काम करते हुए पाया है। वे कहते हैं "सच्चे मन से विश्वासपूर्वक की गई प्रार्थना भी किसी के व्यक्तित्व में ऐसे तत्व उभार सकती है जो व्यक्त की गई भावना में बल प्रदान करे और सफल होने की स्थिति तक पहुँचाये।"

कनाडा के डा० सी० अलबर्ट यों हैं तो शल्य-चिकित्सक और औषधि उपचारकर्त्ता, पर वे साथ ही प्रार्थना शक्ति पर भी विश्वास करते हैं। चिकित्सा के साथ-साथ वे रोगमुक्ति की प्रार्थना भी करते हैं और रोगी को भी वैसा ही करने का परामर्श देते हैं। उनका अनुभव है कि इस आधार पर रोगमुक्ति से दूनी सहायता मिली है। जिन रोगियों ने अविश्वास किया और उपेक्षा दिखाई वे अपेक्षाकृत देर में अच्छे हुए।

इन्हीं नोबुल पुरस्कार विजेता डा० अलेक्सिस कैरेल ने अपनी पुस्तक 'मैन दि अननोन' में मानवी मस्तिष्क में सन्निहित अविज्ञात एवं विलक्षण क्षमताओं पर सुविस्तृत प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि जिस प्रकार व्यायाम द्वारा शरीर को सुविस्तृत किया जा सकता है उसी प्रकार साधना व्यायामों द्वारा मस्तिष्क शक्ति का भी असाधारण विकास किया जा सकता है। क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में तभी चली जाती हैं, तब उनका प्रयोग नहीं होता है। अभ्यास से उन्हें जगाया जा सकता है और प्रयोग करने पर उन्हें असाधारण रूप से विकसित भी किया जा सकता है।

इलेक्ट्रो मैग्नेटिक पावर के आधार पर गठिया-सूजन जैसे रोगों पर पिछले दिनों प्रयोग होता रहा है और चुम्बक के प्रभाव का शरीरगत हलचलों को घटाने-बढ़ाने में काम लाया जाता रहा है, अब उसी का विकसित रूप चमत्कारी चिकित्सा के रूप में सामने आ रहा है। यह समझने और समझाने में बहुत कठिनाई नहीं पड़ रही है कि चुम्बक शक्ति यदि रोग-निवारण के लिए काम आ सकती है तो फिर मानवीय विद्युत एवं चुम्बक का भी असर होना चाहिए और उस आधार पर पीड़ितों को राहत मिलनी चाहिए। वह चुम्बकत्व मनुष्य में भी है। एक सशक्त चुम्बकत्व वाला व्यक्ति दुर्बल प्राण व्यक्ति की ऐसी ही सहायता कर सकता है जैसा कि कोई वयस्क व्यक्ति बच्चे को गोदी में उठाये फिरता है।

अमेरिका में पिछले दिनों एक चमत्कारी चिकित्सक ऑस्कर इस्टेवनी की बहुत ख्याति थी। वे रोगी के अंग विशेष पर हाथ फिराकर कष्टमुक्त करते थे। इसका कारण वे अपनी प्राण विद्युत को बढ़ाकर रोगी में प्रवेश कराते बताते थे। अच्छे होने वालों की संख्या दिन-दिन बढ़ती गई तो व्यक्तिगत अनुभव बताने वालों के आधार पर बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक भी आने लगे। वे चिकित्सा कराने नहीं वरन् यह देखने पहुँचते थे कि इसमें तथ्य कितना है और वास्तविक कारण क्या है ? मनोवैज्ञानिकों ने इसे इच्छाशक्ति का प्रयोग और रोगी की भाव-श्रद्धा का सहयोग बताया। फिर भी मानना यही पड़ा कि जिन पर प्रयोग होता है, उन्हें लाभ मिलता है। पीड़ितों को राहत मिलने की बात सच पाई गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूस के कजाकिस्तान स्टेट विश्वविद्यालय की जैव प्रयोगशाला के निर्देशक डा० ईन्यूशिन ने अपने शोधपत्र में बायो प्लाज्मा के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डाला है। उनने कीर्लियन फोटोग्राफी के आधार पर ऐसे चित्र भी लिये हैं, जो जीवित प्राणियों के इर्द-गिर्द एक विशेष आभा मण्डल घिरा रहने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यह प्रकाश, मुख-मण्डल पर उँगलियों के छोरों पर विशेष मात्रा में देखा गया। रक्त की तुलना में वह स्नायु केन्द्र में अधिक पाया गया।

डा० ईन्युशिन के अनुसार यह बायोप्लाज्मा मात्र प्रकाश नहीं है, उनमें विद्युतीय चुम्बकीय विशेषताएँ भी हैं और वे सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित भी करती हैं। इससे पदार्थ और व्यक्ति दोनों ही प्रभावित होते हैं।

जर्मनी के विज्ञान वेत्ता प्रो० विलहेम रॉख में मानवी काया में एक विशेष प्रकार की सजीव विद्युत का अस्तित्व पाया है। उसे उन्होंने आर्गोन नाम दिया है। उनका कहना है कि यह बिजली समर्थ क्षेत्र से असमर्थों की ओर दौड़ने और उनकी सहायता करने में पूरी तरह समर्थ है। प्रार्थना की शक्ति को वे प्रयोक्ता की सद्भावना, सच्चाई एवं व्यक्तित्व की उत्कृष्टता का मिश्रण मानते हैं। इन तीनों का संयोग जो प्रतिफल उत्पन्न करता है, उसी को दूसरे शब्दों में ईश्वरीय अनुकम्पा का नाम दिया जाता है। यही वस्तुतः भारतीय अध्यात्म का मूल प्रतिपादन है। किसी अदृश्य सत्ता के अनायास ही प्रसन्न होकर कुछ वरता देने की कामना करने वाले तो आत्म प्रवंचक ही कहे जाते हैं।

ब्रिटेन के मूर्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ० हैरी एडवर्ड्स ने अपनी कृति—"ट्रुथ अबाउट स्प्रिचुअल हीलिंग" में इस चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तों और विधियों का उल्लेख करते हुए बताया है कि आध्यात्मिक चिकित्सा एक निश्चयात्मक विधि है और इसका परिणाम भी तर्कसंगत है। इस उपचार पद्धति का मूलभूत आधार सिद्धान्त है—मनुष्य को उसके उद्गम स्रोत से जोड़ना-उसके और स्रष्टा के बीच उचित सम्बन्धों को पुनर्स्थापित करना। प्रायः मानवी मन असंतुलित, उद्विग्न तथा शोक-संतापों से भरा रहता है। उसमें रहने वाली दुश्चिन्ताएँ, कुंठायें, उलझनें, ग्रन्थियाँ और चिन्तन की विकृतियाँ ही चित्त पर अपना डेरा जमाये रहती हैं। परिणामस्वरूप ही शारीरिक एवं मानसिक बीमारियाँ मनुष्य को घेरे रहती हैं। साथ ही यही मनः विकृतियाँ चेतना क्षेत्र पर आवरण बनकर छा जाती हैं और व्यक्ति का अपनी आत्मा से परम चेतना से एक प्रकार का सम्बन्ध विच्छेद-सा हो जाता है। इसके मूल में मानसिक विकृतियाँ ही विद्यमान रहती हैं और वही रोगोत्पत्ति का निमित्त कारण भी बनती हैं।

प्रचलित आधुनिक चिकित्सा प्रणाली मनुष्य को कुछ रासायनिक तत्वों का योग भर मानकर चलती है और स्वास्थ्य में खराबी का कारण इन रासायनिक संतुलनों का, हार्मोनो का गड़बड़ा जाना मात्र समझती है। दवायें, परहेज, उपचार और शल्य-चिकित्सा आदि सभी उपाय इस लड़खड़ाये संतुलन को साधने के लिए किये जाते हैं। यह रासायनिक संतुलन दवा और उपचार से कुछ समय के लिए स्थापित भी हो जाते हैं, किन्तु समग्र स्वास्थ्य का मूल प्रयोजन इनसे नहीं सधता। डा० एडवर्डस के अनुसार समग्र स्वास्थ्य की सही सिद्धि अपने मूल स्रोत से जुड़ जाने पर ही पूरी होती है। वह मूल स्रोत आध्यात्मिक या परम चेतना है। यही कारण है कि जिन कई रोगों को आधुनिक चिकित्सा असाध्य अथवा दुःसाध्य मानती है, 'आध्यात्मिक चिकित्सा' द्वारा उन्हें बड़ी सरलता से थोड़े ही समय में ठीक कर दिया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति को अपनाकर वर्षों पुरानी पीड़ा दूर होती देखी गयी है। नेत्रहीनों को, जन्मजात अन्धों को पुनः नेत्र ज्योति मिलती देखी गयी है।

अपनी उक्त पुस्तक में डा० एडवर्ड्स ने ऐसे कई रोगियों के विवरण दिये हैं, जिन्हें डॉक्टरों ने लाइलाज घोषित कर दिया था किन्तु उनने उन्हें आध्यात्मिक चिकित्सा से ठीक कर दिया। लन्दन की एक महिला एलिजाबेथ विल्सन की रोग गाथा और उससे मुक्त होने की कथा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि सन् १९०६ में जब वह साढ़े तीन वर्ष की थी, तभी उसकी रीढ़ की हड्डी में दर्द हुआ। फलतः उसे वर्षों बिस्तर पर पड़े रहना और उपचार कराना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पड़ा, परन्तु रोग ठीक होने की बजाए गम्भीर ही होता चला गया। पूरे तीस वर्ष तक वह यह पीड़ा झेलती रही। चिकित्सकों ने भी हार मान ली और उसे असाध्य रोगी घोषित कर दिया। जब उसके अभिभावकों को किसी प्रकार डॉ. एडवर्ड्स के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ तो उपचार के लिए उनके पास एलिजा को लाया गया। आध्यात्मिक चिकित्सा से वह कुछ ही हफ्तों में रोगमुक्त हो गई। इसी तरह लन्दन के ही विलियन ओल्सन 'प्रोजेल्ड स्पाइनलडिस्क' नामक बीमारी से ग्रस्त थे, जिन्हें चिकित्सकों ने लाइलाज घोषित कर दिया था, किन्तु इस उपचार से वे भी पूर्णतया निरोग होकर सामान्य जीवन व्यतीत करने लगे।

डा. एडवर्ड्स का कहना है कि आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति सुनिश्चित नियमों और तर्क-संगत कारणों के आधार पर अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। इसका उद्‌गम आत्मिक जगत के अभौतिक आयाम हैं और किसी भी अभौतिक अथवा अलौकिक विषय को भौतिक और लौकिक भाषा में या शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। चूँकि हर बात का कोई न कोई कारण होता है और हर परिवर्तन के लिए किसी न किसी शक्ति का उपयोग किया जाता है, अतः अध्यात्म चिकित्सा के लिए भी एक विशेष प्रकार की समझ आवश्यक है। रोगोत्पत्ति के मूल में पहुँच कर ही उसका सफल निदान किया जा सकता है।

कनाडा के मूर्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ. जे. जैक्सन का कहना है कि संसार की वर्तमान परिस्थितियों में प्रचलित चिकित्सा प्रणाली ने स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम, उद्देश्य और परिभाषा को ही बदल दिया है। उपचारात्मक आयुर्विज्ञान पर अत्यधिक जोर देने के कारण एक ऐसी तकनीकी पद्धति का विकास हो गया है, जिसमें व्यक्ति अपने अन्दर झाँककर स्वयं के अन्तर्मन में छिपे रुग्णता के कारणों का निष्कासन न कर स्वास्थ्य की देखभाल का काम चिकित्सक को सौंपकर अपनी जिम्मेदारी से छुट्टी पा लेता है। अब ऐसा मान लिया गया है कि आरोग्य भी अन्य वस्तुओं की भाँति सुपर बाजार से खरीदा जा सकता है। अस्वस्थ व्यक्ति अपना रोग और धनराशि डाक्टरों के पास ले जाता है और बदले में वह उसे मनभावनी गोलियाँ और महँगे टॉनिक दे देता है। लोगों की अब ऐसी आम धारणा बन गई है कि डाक्टर के पास प्रत्येक रोग चिकित्सा उपलब्ध है। इस अत्युत्साह ने उस विवेकशीलता पर भी पर्दा डाल दिया है, जिसके द्वारा कभी मनुष्य रुग्णता को अपने ही संचित दुष्कर्मों प्रकृति-नियमों के उल्लंघन आदि को मानता था।

अध्यात्म मनोवेत्ताओं ने शारीरिक और मानसिक आधि-व्याधियों का कारण मानवी दुष्कर्मों संचित कुसंस्कारों को माना है और कहा है मनः संस्थान जब मनोविकारों से पाप, ताप एवं कषाय-कल्मषों से विकृत हो जाता है तो उसका प्रभाव आरोग्य पर भी पड़ता है और मनःसन्तुलन पर भी। इसकी पुष्टि नवीनतम वैज्ञानिक शोधों ने भी कर दी है कि मन गड़बड़ाता है तो शरीर का ढाँचा भी लड़खड़ाने लगता है। अतः मन का परिशोधन-परिष्कार ही समग्र स्वास्थ्य एवं आत्मोन्नति का मूल है। अध्यात्मशास्त्र में इस उपचार-प्रक्रिया को प्रायश्चित के नाम से जाना जाता है, जिसमें अपनी गतिविधियों का परिमार्जन किया और गुण, कर्म स्वभाव को सुधारा जाता है, साथ ही मन में जमा कूड़े-करकट के ढेर को साफ किया जाता है। पूर्व में बन पड़े अनीति-अन्याय की भरपाई की जाती है और जीवन के श्रेष्ठतम् सदुपयोग की रीति-नीति अपनाई जाती है।

आधुनिक मनःचिकित्सकों के भी कदम अब इस दिशा में बढ़े हैं और उनने "डाइनैटिक्स" नामक एक अभिनव चिकित्सा प्रणाली का विकास किया है, जिसे 'साइंटोलाजी' के नाम से भी जाना जाता है। इसके अन्वेषक एल-रौन हुनाई के अनुसार मनुष्य के अन्तर्मन में छिपे कषाय-कल्मष एवं अपराध भाव ही जब-तब रुग्णता के रूप में फूटते रहते हैं, जिनका उपचार न तो औषधियाँ कर सकती हैं और न जीन नियंत्रण की वर्तमान तकनीक ही। इनका निष्कासन प्रायश्चित प्रक्रिया से ही संभव है।

पापों के प्रकटीकरण और प्रायश्चित द्वारा शारीरिक-मानसिक रुग्णता से मुक्ति "क्रिश्चियन साइंस ऑफ हीलिंग" का एक मुख्य अंग मानी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है। ऐसा प्रतिपादन डॉ. नारमन विसेण्ट पीला तथा जे. सीट्रस्ट ने अपनी कृतियों में अनेक रोगियों का हवाला देकर किया है। वर्तमान प्रचलित समस्त चिकित्सा पद्धतियों में यदि इस विधा को स्थान दिया जा सके तो न केवल स्वास्थ्य संरक्षण का उद्देश्य पूरा होगा वरन् मनःपरिष्कार व आत्मिक प्रगति के दुहरे लाभ भी हस्तगत होंगे।

आध्यात्मिक चिकित्सा विज्ञान की कसौटी पर

आधी शताब्दी से भी अधिक वर्षों तक जिस देश के नागरिकों को यह समझाया जा रहा है कि धर्म अफीम की गोली है और दुनिया में ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है। साम्यवादी शासन प्रणाली अपनाए हुए देश रूस में इन दिनों एक महिला की चर्चा बहुत आम है। नाम है उसका जूना दपिताश्चलि। जूना के सम्बन्ध में विख्यात है कि वह बिना किसी औषधि और उपचार के लोगों को जटिल से जटिल रोगों से मुक्ति दिलाकर स्वस्थ बना देती है। ७३ वर्षाया इस अविवाहित महिला से जब पूछा गया कि वह किस प्रकार बिना दवा उपचार के रोगियों को ठीक कर देती है ? तो उसका उत्तर था, कुछ नहीं केवल ईश्वर विश्वास। केवल ईश्वर के प्रति विश्वास रखकर ही मैं रोगी के लिए स्वास्थ्य की प्रार्थना करती हूँ। मेरा विश्वास फलित होता है और रोगी ठीक हो जाता है।'

पिछले दिनों जूना के सम्बन्ध में कई सोवियत पत्र-पत्रिकाओं में उसकी इस चमत्कारी क्षमता के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ और यहाँ तक कि सोवियत नेता लियोनिद ब्रेजनेव ने भी पिछले दिनों अस्वस्थ होने पर इस महिला की चमत्कारी क्षमता से स्वास्थ्य लाभ किया। जहाँ भी वह जाती है लेखक, बुद्धिजीवी, कलाकार, अधिकारी और प्रतिष्ठित व्यक्ति जो किन्हीं रोगों से त्रस्त होते हैं, उसके इर्द-गिर्द भीड़ लगाए इकट्ठे हो जाते हैं, उसकी इस विशेष क्षमता से लाभ उठाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने के लिए।

जूना इन दिनों इतनी अधिक व्यस्त है कि महीनों पहले उसके पास उपचार के लिए मरीज अपने नाम भेज देते हैं ताकि उनका क्रम आने पर वे इलाज करवा सकें। रूस के अधिकारी, साम्यवादी नेता जो वहाँ की जनता को हमेशा से यह समझा रहे हैं कि इस दुनिया में चमत्कार या दैवी कृपा जैसी बातों का कोई आधार नहीं है, अब जूना की इन क्षमताओं का वैज्ञानिक अध्ययन करने की योजना बना रहे हैं। एक सोवियत पत्रिका में छपे जूना के परिचय में कहा गया है कि उसने अल्सर के एक पुराने रोगी को कुल पन्द्रह मिनट में ही ठीक कर दिया। एक क्रामिक सिरदर्द के मरीज को उसकी आँखों पर अंगुलियाँ घुमाकर रोगमुक्त करा दिया। वह मरीज को देखकर ही बता देती है कि उसका उपचार किया जा सकता है तो कितने समय में वह ठीक हो जायगा।

साम्यवादी व्यवस्था में इस तरह की मान्यताओं का कोई स्थान या महत्व न होने पर भी जूना किस आधार पर इस बात की जीता-जागता प्रमाण बन सकी है कि स्थूल कलेवर से हटकर भी मनुष्य का कोई सूक्ष्म कलेवर है, जो स्थूल की अपेक्षा अधिक समर्थ और शक्तिशाली है। इसे ईश्वर विश्वास का प्रतिफल कहा जाए अथवा चमत्कार, यह निश्चित है कि जूना उस स्तर की सिद्ध महिला है, जो प्रकृति को अपना इच्छानुवर्ती बना लेती है और उस पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर इच्छित दिशा में अभीष्ट परिणाम प्राप्त कर सकती है। योग विद्या के जानकार जानते हैं कि योग साधनाओं के परिणामस्वरूप मनुष्य में ऐसी अनेक विशिष्ट क्षमताएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिन्हें चमत्कार ही कहा जा सकता है। योगदर्शन सहित अन्याय योग ग्रन्थों में इस प्रकार की कई सिद्धियों और चमत्कारी क्षमताओं का उल्लेख आता है, जो साधारण मनुष्य को महामानव और अति मानव बना देती है।

जूना पहले एक रैस्टोरेण्ट में ग्राहकों को भोजन कराने का काम करती थी। यह काम करते हुए ही उसे दिलिस में एक ईसाई भिक्षुणी मिली और उसने जूना को कुछ साधनाएँ सिखाईं। भिक्षुणी का सम्पर्क पाकर जूना के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कार जाग उठे और वह अपना काम मुस्तैदी से करते हुए भी बताई गई। साधना के लिए समय निकालने लगी। धीरे-धीरे उसकी साधना के सत्परिणाम सामने आने लगे और उसने अपने में यह अद्भुत क्षमता जागृत होती है, अनुभव की। कुछ लोगों पर उसने प्रयोग भी किये जिसके आशाजनक परिणाम निकाले। बस, उसने आध्यात्मिक चिकित्सा को ही अपने जीवन का मिशन बना लिया और प्राण-पण से इसी काम में जुट गई। उसी का परिणाम है कि जूना पहले जिस रेस्तराँ में काम करती थी, उसी शहर में एक विशेष क्लीनिक खोलने की व्यवस्था की जा रही है ताकि वह अपना काम अधिक व्यवस्थित ढंग से कर सके और उसकी इस चमत्कारी क्षमता से अधिकाधिक लोग लाभ उठा सकें। जहाँ तक उसकी प्रामाणिकता का प्रश्न है, रूस के वे मूर्धन्य नेता भी जूना की इस असाधारण प्रतिभा का लोहा मानने लगे हैं, जो इस तरह की बातों का मखौल उड़ाया करते थे। जूना अभी भी अपने लिए कुछ नहीं चाहती उसका इतना ही कहना है कि, "लोग न तो बुरे हैं और न अच्छे, वे केवल अस्वस्थ हैं या स्वस्थ।"

इस तरह की दृष्टि का विकास आत्मिक चेतना के उच्चस्तरीय विकास का ही परिचायक है। भारतीय दर्शन ने तृष्णा-वासना, लोभ-मोह, अहंता-ममता को विकार ही माना है और विकार रोग ही उत्पन्न करते हैं। रोगी भर्त्सना या निन्दा का नहीं करुणा तथा सेवा का पात्र होता है। इसलिए इन विकारों के निष्कासन में किसी को स्वयं उसे ही लगाया जाए अथवा खुद ही प्रयत्न किये जाएँ, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

भारतीय दर्शन किसी को भी गर्हित या निंदित नहीं मानता। गर्हिता और निंदित है तो विकार है, उन्हें ही दूर किया जाना चाहिए। यही कारण है कि नारद ने रत्नाकर डाकू के मल-विकारों का शोधन कर उसे डाकू से सन्त बना दिया। भगवान बुद्ध ने दुर्दान्त दस्यु अंगुलिमाल को अहिंसा की दीक्षा दी। ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं, जिन्होंने किसी के शरीर को ही स्वस्थ और स्वच्छ नहीं बनाया, बल्कि उसके व्यक्तित्व को भी परिष्कृत कर नराधम से नर रत्न बना दिया।

जहाँ तक आस्था या आत्मिक शक्ति के बल पर किसी को स्वस्थ कर देने का प्रश्न है, भारत में ऐसे अनेकों सन्त महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपनी सहज करुणावश असंख्य जनों को लाभान्वित किया। स्वामी योगानन्द परमहंस ने अपनी आत्म-कथा 'आटोबॉयग्राफी ऑफ ए योगी' में अपने गुरु तथा उनके गुरु की इन क्षमताओं से सम्बन्धित कई घटनाओं का विवरण दिया है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है, "आश्रम में अपने प्रारम्भिक निवास के समय मैंने एक दिन देखा कि श्री युक्तेश्वर जी मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहे हैं। उन्होंने कहा- 'मुकुन्द तुम बहुत दुर्बल हो।'

'उनके इस कथन ने मन के एक अति कोमल स्थान को छू दिया। अपनी धँसी हुई आँखें और क्षीण काया मुझे स्वयं नहीं भाती थी। मेरे कमरे में टॉड़ पर टॉनिक की शीशियाँ रखी रहती थीं और मैं उनका बराबर सेवन करता था, परन्तु किसी से कोई लाभ नहीं होता। मैं दुःखित होकर अपने आपसे पूछने लगता—ऐसा अस्वस्थ शरीर लेकर जीने से क्या लाभ है ? मैं कुछ सोच ही रहा था कि मेरे गुरु ने कहा—'औषधियों की कोई सीमा नहीं है। दिव्य संजीवनी प्राणशक्ति की कोई सीमा नहीं है। उसमें विश्वास रखो, तुम स्वस्थ और मजबूत बन जाओगे।'

गुरुदेव के वचनों से मुझे तुरन्त विश्वास हो गया कि मैं उनमें निहित सत्य का अपने जीवन में सफल प्रयोग कर सकता हूँ। इसके पहले अन्य किसी भी चिकित्सक ने मेरे मन में इतना विश्वास पैदा किया था। दिन-प्रतिदिन मेरे स्वास्थ्य और शक्ति में वृद्धि होने लगी। दो सप्ताह में ही मेरे शरीर का वजन इतना बढ़ गया कि पहले अथक प्रयासों से भी उतना कभी नहीं बढ़ा था। मेरे पेट की गड़बड़ियाँ सदा के लिए दूर हो गईं। उसके बाद तो अनेक बार गुरुदेव की दैवी शक्ति के द्वारा बहुत सारे लोगों को मधुमेह, मिरगी, यक्ष्मा या पक्षाघात आदि कठिन और असाध्य समझे जाने वाले रोगों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुक्त होते हुए देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।"

रूस में ही नहीं, अन्य यूरोपीय देशों में भी इस प्रकार की चिकित्सा विधि पर खोज की जाने लगी है। पश्चिमी देशों में तो कई व्यक्ति इस विधि का इतनी क्षमता के साथ उपयोग करते हैं कि रोगी देखते-देखते चंगा हो जाता है। डॉक्टर जिस रोग को दुसाध्य बता देता है, उस रोग का सामान्य-सा उपचार इस तरह की चिकित्सा विधि जानने वाले करते हैं। कभी रुग्ण अंग पर हाथ फेरकर, कभी आँखों में आँखें डालकर, कुछ निर्देश देकर तो कभी प्रार्थना द्वारा और कभी अभिमंत्रित जल पिलाकर इस पद्धति से उपचार किये जाते हैं। सुविधा के लिए लोगों ने इस पद्धति के विभिन्न नाम रख लिए हैं। दैवी चिकित्सा, फेथ हीलिंग, थिरैप्टिक टच आदि नाम इस विद्या के प्रयोक्ता अपनाई जाने वाली पद्धति के लिए करते हैं।

इस पद्धति से किस प्रकार लाभ होता है? रोग का सही निदान होता है अथवा नहीं ? रोगी को सचमुच आराम पहुँचता है या नहीं ? आदि कई प्रश्न चिकित्सा विज्ञानियों के लिए खोज के विषय बने हुए हैं। स्वयं उस पद्धति का उपयोग करने वाले नहीं जानते कि उनके उपचारात्मक प्रयास किस प्रकार रोगी को लाभ पहुँचाते हैं ? परन्तु लाभ पहुँचता है। इस चिकित्सा विज्ञान की जितनी प्रामाणिक और सुसंगत व्याख्या भारतीय-मनीषियों ने की है, उतनी सम्भवतः दुनिया के किसी भी देश में नहीं हो सकी है। भारतीय दर्शन शरीर को गौण और प्राण को मुख्य मानता है। प्राण ऊर्जा ही शरीर को स्वस्थ रखने में समर्थ होती है। न केवल शरीर को वरन् मस्तिष्क, स्वभाव, आचरण, व्यवहार और चरित्र का स्वास्थ्य भी प्राण ऊर्जा पर अवलम्बित है। भारतीय मनीषियों की मान्यता है कि परिष्कृत और प्रखर प्राण ऊर्जा का प्रवाह व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ रखने में समर्थ होता है। उसका स्वरूप या स्तर जब गिरता है तो व्यक्ति का शारीरिक मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य भी लड़खड़ाने लगता है। तब प्राण ऊर्जा सम्पन्न व्यक्ति अपनी प्राणशक्ति का प्रक्षेपण कर रुग्ण व्यक्ति को स्वस्थ बना देता है।

न्यूयार्क विश्वविद्यालय की एक नर्स डोलोरिस क्रेगर ने भी इस प्रकार प्रभावी आध्यात्मिक चिकित्सा में सफलता प्राप्त की है तथा नाम और यश कमाया है। क्रेगर ने यह विद्या उसी विश्वविद्यालय की एक प्रोफेसर एन० अण्डेल से सीखी थी। अमेरिका में इन दिनों आध्यात्मिक चिकित्सा पर बड़ी तेजी से काम हो रहा है और किस प्रकार रोगी को जल्दी से जल्दी ठीक किया जा सके, इसके उपाय ढूँढ़े जा रहे हैं। इन शोधकर्त्ताओं में ब्राइस बौण्ड, कैथरीन कुलपैन, एमी वालिस, मारिया जेनिस, गैरी कूवर, ज्वेल वर्ली आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस चिकित्सा पद्धति की वैज्ञानिकता को अभी पूरी तरह परखा नहीं जा सका है। पर जो लोग इसे विवादास्पद बताते हैं, वे भी इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि फेथ हीलर्स के उपचार से ठीक हुए रोगी वास्तव में स्वस्थ हो गए हैं। उनमें रोग के कोई लक्षण नही पाए गए, जो उपचार से पहले विद्यमान थे। जब रोगी ठीक होता है तो विवाद का क्या आधार रह जाता है ? इसके उत्तर में यही कहना पड़ता है कि अभी इस दिशा में वैज्ञानिक शोध, परीक्षण, निरीक्षण या प्रयोग अन्तिम स्थिति में नहीं पहुँचे हैं। संशयात्मक स्थिति है। आध्यात्मिक चिकित्सा का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं मिला है तो ऐसा भी नहीं है कि निराधार सिद्ध हो गई।

इस सन्दर्भ में नोबुल पुरस्कार विजेता शरीर विज्ञानी डा० चार्ल्स राबर्ट रिशे का यह कथन उल्लेखनीय है कि आध्यात्मिक चिकित्सा को अभी तक विज्ञान के रूप में मान्यता नहीं मिली है। किन्तु शीघ्र ही विज्ञान उसे स्वीकार कर लेगा। हम अपने शरीर और मस्तिष्क द्वारा जो अनुभव करते हैं या परीक्षण और अनुभव के जो साधन हमारे पास उपलब्ध हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं। इसीलिए अभी हम इस प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाने वाली विद्या को विज्ञान के रूप में मान्यता नहीं दे पा रहे हैं। कोई सत्य दुर्लभ है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसका कोई अस्तित्व नहीं। यदि किसी विद्या का अध्ययन कठिन है तो क्या उसे केवल इसीलिए जानने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रयास नहीं करना चाहिए कि उसका अध्ययन कठिन है।"

आध्यात्मिक चिकित्सा को आज विज्ञान भी मान्यता दे रहा है। इस सम्बन्ध में "सोशल साइकिट्री ऑफ लीमा, पेरू" संस्था के डायरेक्टर डा० सी० ए० सीगुयेन का कहना है कि "वास्तविक मानवीय गौरव-गरिमा मानवीय जाति की प्राचीन परम्पराओं में ही निहित है, अतः उसी के पुनर्जागरण और पुनरुत्थान के लिए आज इस बात की आवश्यकता है कि नये सिरे से उसी की खोज की जानी चाहिए।

पैराग्वे में ट्यूपम्वेय नाम के एक विश्व ख्याति के नीम-हकीम हैं। इन्होंने अपनी घ्राण-इन्द्रिय को अपने संकल्प बल से इतना अधिक विकसित कर लिया है कि वे अपने गम्भीर से गम्भीरतम रोगियों का रोग निदान मात्र उनके पहनने के वस्त्रों को सूँघकर ही करते हैं वस्त्रों को सूँघकर ही रोग का पता लगाते हैं और पुनः उस बीमारी के निदान स्वरूप औषधियाँ निर्धारित करते हैं और परहेज कराते हैं। आधुनिक शरीरशास्त्री उनकी इस विलक्षण क्षमता का लोहा मानने लगे हैं। भौतिक विज्ञान जहाँ असफल होता है, वहाँ वे मात्र वस्त्रों की गन्ध विशेष को सूँघकर रोग-लक्षण ज्ञात कर लेते हैं। अब तक उनके पास जो भी रोगी पहुँचे हैं। शत-प्रतिशत रोग मुक्त हुए हैं।

पुरातन काल के चिकित्सक जड़ी-बूटियों के सूक्ष्म गुणों से अवगत रहते थे। साथ ही रोगी के पथ्य से साधारण परिवर्तन करते थे। अपनी बढ़ी हुई संकल्प शक्ति से रोगी को निश्चित रूप से निरोग होने का आश्वासन दिलाते हैं। यह उपचार पद्धति आधुनिक रोग कीटाणुओं को मारने के प्रयास में स्वस्थ कीटाणुओं का नाश करने की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी और हानिरहित थी।

इसी में एक उपचार श्रद्धा प्रयोग का भी जुड़ता था। दैवी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के कर्मकाण्ड कराये जाते थे। इनका भी रोगी के मनःक्षेत्र पर तथा पारिवारिक वातावरण पर प्रभाव पड़ता है।

संगीत उपचार इन्हीं अचूक प्रयोगों में ही एक है। संकीर्तन तथा दूसरे प्रकार के गायन-वादन रोगी पर अपने अतिरिक्त प्रभाव छोड़ते थे और उसे जल्दी अच्छा करने में सहायक सिद्ध होते थे।

तीसरी प्रकार की एक विचित्र चिकित्सा प्रणाली भी प्रचलित है, जिसे एनीमल मैगनेटिज्म (प्राणी की विद्युत) कहते हैं। यह शक्ति मनुष्य में जितनी अधिक मात्रा में होती है उतना ही वह प्रभावशाली, तेजस्वी, उत्साही, आत्म-विश्वासी आशावादी और कार्यकुशल होता है। उसका ओजस्, तेजस् (aura) उसके चेहरे, आँख, मुँह, नाक और मस्तिष्क द्वारा निकलता रहता है।

चेहरे के अतिरिक्त हाथों और उँगलियों से भी इसकी किरणें निकलती रहती हैं। इस प्रकार का व्यक्ति अपने किसी भी रोगी को स्पर्श मात्र से रोगमुक्त कर सकता है। महापुरुष जीसस जिनके नाम पर आज संसार फूल चढ़ाता है और जिन्हें अत्यन्त आदर से भगवान का अवतार मानकर स्मरण करता है, मात्र अपने हाथ के स्पर्श से किसी भी व्यक्ति के गम्भीर से गम्भीरतम रोग को दूर कर देते थे। महापुरुष जीसस ने रोगमुक्ति के लिए प्रायश्चित विधान भी निश्चित किया था।

इन औपचारिक प्रणालियों के अतिरिक्त एक चिकित्सा प्रणाली मैस्मेरिज्म पर आधारित है। योरोप में सबसे प्रथम आस्ट्रिया के वियाना नगर के मैस्मर नामक व्यक्ति ने सन् १७७० में यह सिद्धान्त ढूँढ निकाला था। उसी मैस्मर के नाम पर इस विद्या का नाम मैस्मेरिज्म और इसके प्रयोगकर्त्ता का नाम मैस्मेराजर प्रचलित हुआ। इस पद्धति के द्वारा रोगोपचार करने की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए "फ्रेंच एकेडेमी ऑफ साइन्सेस" ने एक "इनक्वायरी कमेटी" का गठन किया। अध्ययन के दौरान रोगियों के उपचार करने में मैस्मर की प्रणाली पूर्णरूपेण सफल होती पाई गयी। मैस्मर ने कमेटी के एक साक्षात्कार में बताया कि वह ईथर की शक्ति जो आकाश में विद्यमान है, जिस पर संकल्प की तरंगें भरी पड़ी हैं अतः आकर्षण शक्ति से उस संकल्प शक्ति, चुम्बकत्व शक्ति को आकर्षित करता है। जिससे अपने रोगियों का उपचार करता है।

"मैस्मेरिज्म" चिकित्सा प्रणाली से ही आगे चलकर "हिप्नोटिज्म" चिकित्सा प्रणाली का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास हुआ। मैनचेस्टर के एक डाक्टर, ब्रेड ने सन् १८४१ में यह अनुभव किया कि कृत्रिम निद्रा को उत्पन्न करके रोगी के रोग की सूचना [Suggestions (सुझाव)] द्वारा निवृत्त किया जा सकता है। कृत्रिम निद्रा को हिप्नोसिस कहते हैं, इसलिए इसी के नाम के आधार पर इस चिकित्सा प्रणाली का नाम हिप्नोटिज्म पड़ा और इस विधा के प्रयोगकर्त्ता का नाम हिप्नोटिस्ट प्रचलित हुआ। इस चिकित्सा प्रणाली के आधार पर एक लड़की के रोग का निवारण सफलतापूर्वक हो जाने से अत्यधिक प्रभावित हुई। अतः उस मैरी ब्रेकर एड्डी नामक लड़की ने एक नवीन चिकित्सा प्रणाली का प्रचलन किया जिसका नाम "क्रिश्चियन साइंस" रखा।

अतीन्द्रिय क्षमताओं का पाश्चात्य प्रयोग उत्साहवर्धक परिणाम उत्पन्न कर रहा है। यह शुभ लक्षण है और उस आवश्यकता का प्रतिपादन करता है कि हमें अध्यात्मपरक पुरातन चिकित्सा पद्धतियों के सभी पक्षों की गम्भीर शोध करके जनसाधारण की शारीरिक और मानसिक रोगों से मुक्त करने की उपयोगी पद्धतियाँ खोज निकालनी चाहिए।

व्यक्तित्व को प्रखर और भविष्य को उज्जवल बनाने की साधना

आरोग्यशास्त्र की दो धाराएँ हैं—(१) स्वास्थ्य संवर्धन (२) रोगोपचार। दोनों ही आवश्यक हैं। रोग-निवारण तो आवश्यक है ही, यदि शरीर को अधिक बलिष्ठ, सुन्दर और दीर्घजीवी न बनाया जा सका तो भी गई-गुजरी काया से काम चलाते भर रहने से क्या काम बने ? कष्टपीड़ित, अशक्त और दयनीय दुर्दशा में पड़ी हुई विपत्तिग्रस्त रुग्णावस्था से छुटकारा और समर्थ दीर्घजीवन प्राप्त करना, दो ही उद्देश्य पूरे कर सकने में ही आरोग्य शास्त्र की सार्थकता है।

मानसोपचार में उन्माद अर्ध-विक्षिप्तता, मूढ़ता जैसी विकृतियों का निवारण ही नहीं—मानसिक दक्षता का अभिवर्धन भी अंग है। अभिवर्धन और परिशोधन दोनों ही लाभ मनःसंस्थान को दे सकने में ही समग्र मनोविज्ञान की पूर्णता है।

सरकार भीतरी तस्करों, दुष्ट दुरात्माओं का दमन करती है, बाहरी शत्रुओं से जूझती है, साथ ही देश की समृद्धि एवं सुव्यवस्था बढ़ाने के लिए भी प्रयत्नशील रहती है। दोनों ही उसके कर्त्तव्य हैं।

ठीक इसी प्रकार अदृश्य शास्त्र का उत्तरदायित्व है कि वह मनुष्य के सामने प्रस्तुत अप्रत्याशित विपत्तियों से छुड़ाने और भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाओं का पथ-प्रशस्त करने में अपनी भूमिका निबाहें। अदृश्य शास्त्र से तात्पर्य सूक्ष्म जगत को प्रभावित करने वाले विज्ञान से है। उपासना और तपश्चर्या उसके दोनों ही पक्ष हैं। अध्यात्म विद्या में योग और तप दोनों का ही समावेश है। योग अपनी सामर्थ्यों के साथ दैवी शक्तियों का सहयोग बनाकर अधिक सक्षमता प्राप्त करता है। तप का तात्पर्य अवांछनीयताओं को हटाना और दुर्बलताओं को निरस्त करना है। दोनों क्रिया-प्रक्रियाएँ मिलकर ही समग्र अदृश्य शास्त्र एवं अध्यात्म शास्त्र का निर्माण हुआ है।

प्रत्यक्षतः तो बातें मनुष्य के हाथ में दिखाई नहीं पड़तीं किन्तु परोक्षतः होती उसी से सम्बन्धित हैं, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। स्थूल को आसानी से समझा जा सकता है और तद्नुरूप उपाय भी किया जा सकता है, पर अदृष्ट के सम्बन्ध में मोटी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। निदान समझ में आता है और न उपचार करते बनता है। इस सन्दर्भ में सूक्ष्म विश्लेषण ब्रह्म विद्या का तत्वज्ञान ही कर पाता है। विपत्तियों के अदृष्ट कारणों को हटाना और उज्ज्वल सम्भावनाओं के लिए परोक्ष ताना-बाना बुनना भी उसी का काम है। यह क्रिया-प्रक्रिया परोक्ष विद्या—अध्यात्म विद्या के अन्तर्गत ही आती है।

अध्यात्म के दो पक्ष हैं—एक ज्ञान, दूसरा विज्ञान। ज्ञान पक्ष में स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन की गणना होती है। विज्ञान पक्ष में उपासना और साधना का समावेश है। इन्हें योग और तप भी कह सकते हैं। योग धारा में मस्तिष्कीय क्षेत्र में होने वाले प्रयोगों की गणना है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के चिन्तनपरक चारों ही उपचार योग है। तप में वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी क्रियाएँ आती हैं, उनमें अभ्यस्त अवांछनीयताओं के विरुद्ध विद्रोह किया जाता है और उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष किया जाता है। शरीर पर छाई हुई अनुपयुक्त आदतों और मन पर छाई हुई मान्यताओं को उलटने में समझने-समझाने की सामान्य पद्धति अधिक कारगर सिद्ध नहीं होती। बहुत बार ऐसा होता है कि मस्तिष्क तर्क, तथ्य, प्रमाण सामने प्रस्तुत करने पर किसी बात को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लेता है; पर भीतरी मान्यताओं एवं आदतों की जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि उन्हें बदलना, उस सैद्धान्तिक सहमति से भी बन नहीं पड़ता। ऐसी दशा में तीखे उपाय और पैने प्रहार ही उस गहराई तक पहुँचने और आवश्यक परिवर्तन कर सकने में समर्थ होते हैं। इन्हीं उपचारों की क्रिया-प्रक्रिया को तपश्चर्या कहते हैं।

योग और तप के दर्शन और व्यवहार का विवेचन एवं मार्ग-दर्शन प्रस्तुत करने वाले अनेक शास्त्र एवं व्यक्ति प्रायः उपलब्ध रहते हैं। इनमें कठिनाई एक ही रहती है कि देश, काल, पात्र का ध्यान रखा जाता है। प्राचीनकाल की मनःस्थिति और परिस्थिति में आज भिन्नता है। उस भिन्नता को ध्यान में रखते हुए परम्परा और सामयिकता का समन्वय होना चाहिए। यही कौशल है।

आज के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक क्षेत्रों में छाये हुए शोक-सन्तापों और विग्रहों को निरस्त करने के बहुत कुछ प्रयत्न हो रहे हैं। इतने पर भी एक क्षेत्र अछूता ही रह जाता है—वह है अदृष्ट। इसे आधि-दैविक कहते हैं। इसकी हलचलों और प्रतिक्रियाओं को भाग्य अथवा दैव कहकर सन्तोष करना पड़ता है। इसके निवारण का प्राचीनकाल में एक व्यवस्थित शास्त्र था। आज उस व्यवस्था के स्थान पर अन्य क्षेत्रों की ही तरह विडम्बना की भरमार है।

इस क्षेत्र में अभिनव प्रयत्न ब्रह्मवर्चस् अभियान के अन्तर्गत चल रहे हैं। मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का महान् प्रयास ही युग परिवर्तन है। इतना व्यापक और विस्तृत काम करने के लिए प्रचण्ड ऊर्जा की आवश्यकता है। उसे युग शक्ति कह सकते हैं। इसका उपार्जन करने से ही वातावरण का परिशोधन और सूक्ष्म जगत की अनुकूलता सम्भव हो सकती है। ब्रह्मवर्चस् तत्वज्ञान और साधना विधान के पीछे यही प्रयास चल रहा है। इसे सामूहिक सम्भावनाओं को श्रेष्ठता की दिशा में घसीट ले चलने की महान् प्रक्रिया कह सकते हैं। धरती पर स्वर्ग के अवतरण प्रयासों की दृष्टि से इसे अदृष्ट उपचार की संज्ञा दी जा सकती है।

व्यक्ति की कठिनाईयों के निराकरण और सुविधाओं के सम्वर्धन में अदृष्ट का उपयोग करने का विज्ञान और विधान भी ब्रह्मवर्चस् अभियान के अन्तर्गत चल रही साधना में समन्वित रखा गया है। यह प्रयास समय साध्य है। इसकी पूर्ण सफलता के लिए अनवरत् और सतत् प्रयत्न जिस श्रद्धा और तत्परता के साथ चलेंगे, उसी अनुपात से सफलताओं का पथ-प्रशस्त होता चला जायगा।

आरम्भिक प्रयोग, परीक्षण एवं अभ्यास की दृष्टि से इन दिनों ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में एक-एक महीने की जो साधन-पद्धति चल रही है उसमें चान्द्रायण व्रत की तपश्चर्या और पंचकोशी उच्चस्तरीय गायत्री उपासना का समन्वय किया गया है। चान्द्रायण व्रत को तपश्चर्या का और पंचकोषों के अनावरण और कुण्डलिनी जागरण को योग साधना का इसमें समान रूप से समावेश है। फलतः उससे परिशोधन और अभिवर्धन के दोनों ही उद्देश्य पूरे होते हैं। शरीर और मन को समर्थ सुव्यवस्थित रखने में—परिस्थितियों को सुधारने में, प्रतिकूलता को अनुकूलता बनाने में, समग्र परिवर्तन परिष्कार में जो अदृश्य तथ्य काम करते हैं, उन सबका समुचित समावेश इस एक महीने के साधना-क्रम में मौजूद है, जो व्यक्तित्व को प्रखर और भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए आवश्यक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मोत्कर्ष का राजमार्ग—तप-तितीक्षा

तपश्चर्या—समृद्धियों और विभूतियों की जननी

कच्ची मिट्टी के बने घड़े में पानी भर देने से वह कुछ ही देर में गीला होकर बिखर जाता है। पर यदि आँवे में पका लिया जाय तो मजबूत होकर मुद्दतों काम देता है। यह तपाने का चमत्कार है। धातुओं का शोधन भी इसी प्रकार होता है। वे जमीन में से मिट्टी मिली हुई स्थिति में ही निकलती हैं। उस स्थिति में वे किसी काम में लाये जाने योग्य नहीं होतीं। उन्हें भट्टी में डालकर पिघलाया जाता है, तब शुद्ध धातु सामने आ पाती है। कचरा जलकर अलग हो जाता है। यदि इस प्रक्रिया से डरा या बचा जाये तो धातुओं का विशालकाय परिकर निकम्मा ही पड़ा रहेगा और उनसे कोई उपयोगी उपकरण न बन सकेगा।

कच्ची मिट्टी से बने मकान बरसात आने पर घुल या बह जाते हैं। पर यदि उन ईंटों को पकाकर इमारत बनाई जाय तो वह मुद्दतों यथावत् खड़ी रहती है। व्यंजन, मिष्ठान्न, चूल्हे की अग्नि पर चढ़ने के बाद ही बनते हैं। आयुर्वेदीय औषधियों में रस, भस्में, अग्नि संस्कार से ही बनते हैं। अर्क, अवलेह आदि का निर्माण भी अग्नि सान्निध्य से ही होता है।

सूर्य ग्रीष्म में तपता है तो समुद्र से बादल बनते हैं और घनघोर घटायें बनकर भूमि को मखमली हरीतिमा से भरते हैं। तपस्वी योग साधते हैं और तप तितीक्षा के आधार पर प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों को जाग्रत करते हैं। गुरुकुलों में छात्रों को कठोर जीवन की संयम साधना कराई जाती है। इसी के बलबूते वे प्रचंड पराक्रम करने में समर्थ नर-रत्न बनते हैं।

तप की महिमा अपार है। कष्ट-सहिष्णुता का अभ्यास जब महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है तो उसे तपस्या कहते हैं। यह भौतिक प्रयोजनों के लिये भी की जा सकती है और अध्यात्म प्रयोजनों के लिये भी। जो वृक्ष कठोर परिस्थितियों में उगते और बढ़ते हैं, वे पर्वत शिखरों पर भी हरियाते हैं। आँधी, तूफानों से टकराते हैं किन्तु बगीचों की शोभा बढ़ाने वाले फूल तनिक-सी सर्दी-गर्मी की प्रतिकूलता आते ही छुई-मुई की तरह कुम्हला जाते हैं। अमीरों की सुविधायें उन्हें निष्क्रिय दुर्व्यसनी बनाती हैं। पर जो खदानें खोदते हैं, उन श्रमिकों की कलाइयाँ मजबूत और छातियाँ तनी रहती हैं। कठिनाइयों में पलने वाले बड़े पराक्रम करते देखे जाते हैं। पर जिनका पालन फूलों के पालने में हुआ है उन्हें जमीन पर पैर रखते ही चुभन होती है। कठिनाइयों का सामना कर सकने का तो उनमें दम ही नहीं होता। हर मौसम उनके प्रतिकूल पड़ता है। मौसमी बीमारियाँ एक प्रकार से उन्हें अपना स्थायी यजमान बना लेती हैं। श्रम से दूर रहने वाली महिलाओं को प्रसव के समय प्राणलेवा कष्ट सहना पड़ता है। कई बार तो वे इस प्रसंग में अपने प्राण तक गँवा बैठती हैं। जबकि गाड़िया लुहारों की लोहा पीटने वाली महिलायें इस प्रकार बच्चे प्रजनन करती हैं मानो कुछ असाधारण जैसा हुआ ही न हो। दो-चार दिन की इस कड़े काम से छुट्टी तक नहीं लेतीं। तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि निरोगता और दीर्घ जीवन की कुंजी श्रमशीलता के साथ जुड़ी है। वनवासी कोल, भील तीर से चीते को गिरा देते हैं, जब कि उन्हें न तो पौष्टिक भोजन मिलता है और न सुविधा भरे साधनों को वे उपलब्ध कर पाते हैं।

प्रगति पथ पर अग्रसर होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने ढंग का कठोर श्रम करना पड़ता है। पहलवान, विद्वान, वैज्ञानिक, नाविक, कलाकार अनायास ही अपने विषयों में प्रवीण नहीं हो जाते। उन्हें कृषक, मजदूर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह व्यस्त रहना और कठोर श्रम करना पड़ता है।

प्रतिकूलतायें अनायास ही नहीं हट जातीं। उनसे कठोर संघर्ष करना पड़ता है। वैज्ञानिकों को मोर्चा जोड़ने में कठिनाई के साथ जूझना और प्रचंड साहस का परिचय देना पड़ता है। आत्म-शोधन के लिये अभ्यस्त अनुपयुक्त आदतों को उखाड़ फेंकने में निरत होना पड़ता है। यह प्रसंग धोबी के द्वारा कपड़े धोये जाने के सदृश है। मैला कपड़ा जब गरम भट्टी में उबलता है और डंडे की पिटाई सहता है, तभी उसे भकाभक चमकने का अवसर मिलता है। मात्र पानी निचोड़ देने पर सफाई कहाँ से आती है ? बर्तनों पर, पत्थरों पर घिसाई से ही चमक आती है। अनीति से जूझने वालों को अनेक प्रहार सहने पड़ते हैं, जिनसे निहित स्वार्थों को चोट पहुँचती है। सुधारकों में से अनेकों को शहीद होना पड़ा है। देव, दानव युद्ध में प्रथम आक्रमण करने वाले दैत्य जीतते और देव हारते रहे हैं। क्षति देवताओं को ही अधिक उठानी पड़ती रही है। भले ही अन्त में सत्य की विजय होने वाली उक्ति सार्थक हुई हो और देवत्व को जीतने का श्रेय मिला हो। आक्रमण से भयभीत होकर यदि देवताओं ने पीठ दिखाई होती तो फिर उनका कोई ठिकाना न रहता सदा-सर्वदा के लिये पराजित होकर रहना पड़ता।

भ्रूण को उदर दरी से बाहर निकलने के समय प्रचंड पुरुषार्थ करना पड़ता है। इस समय का सारा दृश्य खून-खच्चर से भरा होता है। इसके बिना स्वच्छ हवा और उन्मुक्त आकाश के नीचे विकसित होने का ही सुयोग न मिलता। भ्रूण की स्थिति में पड़ा-पड़ा ही सड़ जाता। मुर्गी के अण्डों में बन्द चूजे जब थोड़ी सामर्थ्य अर्जित करते हैं तो बाहर निकलने के लिये हलचल मचाना आरम्भ करते हैं। ऊपर के कठोर कलेवर में इसी आधार पर दरार पड़ती है और चूजा निकलकर बाहर आता है। अन्य जीवधारियों की तरह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय देता है। यह संघर्ष अध्यात्म की भाषा में तप कहा जाता है। तप का अर्थ है तपना। तपने पर हर वस्तु निखरती है। सोने को तपाये जाने पर ही उसके खरे-खोटे होने की परख होती है। चाकू को पत्थर की चरखी पर घिसते हैं तभी उसकी तेज धार निखरती है।

कीर्तिमान स्थापित करने वाले पर्वतारोही, घुड़सवार, जान की बाजी लगाते हुये कदम बढ़ाते हैं। प्रतियोगिता जीतने वाले खिलाड़ी भी अपने पौरुष का चरम परिचय देते हैं। विजयश्री का वरण कर सकना उन्हीं के लिये संभव हुआ है, जिनने अपने साहस के स्तर पर वरिष्ठता का परिचय दिया है। डरते रहने वाले, कायरता अपनाने वाले, भयभीत लोग अपेक्षाकृत अधिक हानि उठाते हैं। आक्रमणकारी उनकी मनः स्थिति तोड़कर अधिक निश्चिंततापूर्वक अधिक गहरा आक्रमण करते हैं। तनकर खड़े हो जाने वाले रीछ-वानरों ने लंका के दुर्दान्त, दैत्यों को परास्त करके रख दिया था।

यमराज ने एक बार मौत को एक क्षेत्र से पाँच हजार आदमी मारकर लाने के लिये भेजा। वह जब झोली भरकर लाई तो गिनने पर वे पन्द्रह हजार निकले। जवाब तलब हुआ कि इतने अधिक क्यों ? मौत ने सबूत समेत सिद्ध किया कि बीमारी से तो पाँच हजार ही मरे हैं। शेष तो डर के मारे बिना मौत ही मर गये और परलोक आने वाली भीड़ के साथ जुड़ गये। कहा जाता है कि साहसी जीवन में एक बार मरता है पर कायर तो भयभीत रहकर पग-पग पर पल-पल पर मरता रहता है।

हीरा एक प्रकार से कोयला ही है। खदान में जिसे अधिक तापमान सहना पड़ता है वही कोयला हीरा बन जाता है। सच्चाई और बहादुरी की यथार्थता जाँचने की एक ही कसौटी है कि प्रलोभन और दबाव के आगे झुका गया या नहीं। जो तनकर खड़ा हो जाता है, उसकी हिम्मत देखकर मुसीबत भी डरकर वापस लौट जाती है।

योगी-जन तपश्चर्या के बल पर ही ऋद्धि-सिद्धियों को वरण करते हैं। सप्तऋषि इतने ऊँचे पद पर इसी आधार पर पहुँचे थे। भगीरथ ने गंगा को भूमि पर लाने और पार्वती ने शिव से विवाह करने में सफलता पाई। देवताओं को तपस्वी दधीचि की हड्डियाँ माँगकर इन्द्र-वज्र बनाना पड़ा। तपस्वी देवताओं से बड़े होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वरदान देने के लिये लिये उन्हें ही स्वर्ग से धरती पर आना पड़ता हैं।

विशेष प्रयोजन के लिये विशिष्ट व्यक्ति विशेष प्रकार की तप साधना करते हैं पर सर्व-साधारण के लिये उसका सरल उपाय एक ही है कि उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संयम, साधना एवं परमार्थ प्रयोजनों के लिये कष्ट सहने, पुरुषार्थ करने के लिये समग्र साहसिकता के साथ प्रयत्नशील रहें। अनीति के साथ संघर्ष में आपत्ति सहने के लिये भी। तभी कुछ उच्चस्तरीय उपलब्धि किसी को मिल सकती है। श्रेयार्थी बनने के लिये कुछ कीमत चुकानी पड़ती है एवं वह है तप-साधना। जिस राजमार्ग पर चलने से ऋद्धि-सिद्धियों की उपलब्धि होती है और जीवन मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। वस्तुतः शरीर और मन की भौतिक लालसाओं एवं सुखाकांक्षाओं को विरत करके आत्मकल्याण के मार्ग में नियोजित करने का नाम ही तप है। चिर संचित अभ्यास, शरीर सुविधा एवं मन की लिप्सा तृप्त करने में निरत रहने का है, वही प्रिय लगता है। उसी में प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति का परिवर्तन ही तप है।

जिस प्रकार भोगवाद—मायाग्रस्त मनुष्य तृष्णा और वासना में निरत रहकर श्रेय साधना की उपेक्षा करते रहते हैं, उसी तरह आत्मकल्याण के लिये कटिबद्ध होने को श्रेय साधक प्रधानता देते हैं और सुख-सुविधाओं की उपेक्षा करते हैं। इसके लिये पुराने ढर्रे को बदलना पड़ता है और नया अपनाना पड़ता है। जंगली जानवरों को पालतू बनाने में बहुत श्रम करना पड़ता है। उनको पुरानी आदतें भुलानी पड़ती हैं और नये अभ्यास करने होते हैं। इस प्रशिक्षण के साथ उनके साथ कठोरता का व्यवहार भी करना पड़ता है। इसी कठोरता का नाम तप-साधना है।

भोगवादी मनःस्थिति में जो कार्य प्रिय लगते थे वे आत्मवादी स्थिति में अरुचिकर बन जाते हैं। और उन क्रिया-कलापों में रस आता है जो पहले कष्टकारक और निरर्थक प्रतीत होते थे। यह परिवर्तन कहने में सरल हो सकता है किन्तु व्यवहार में कठिन है। इस कठिनाई को स्वाभाविक और सरल बनाने के लिये विविध विधि तप साधनायें करनी पड़ती हैं।

शरीर से तप तितीक्षा और मन से स्वाध्याय, चिन्तन, मनन इन दोनों के सम्बन्ध से तप का प्रयोजन पूरा होता है। इसलिये स्वाध्याय को भी तप का अंग माना गया है।

परमार्थ के लिये सेवा-साधना में जुट जाना और अपनी प्रतिभा, बुद्धि, सम्पदा आदि को लोक मंगल के लिये नियोजित करना भी तप साधना है। इसी तप साधना से अन्तरात्मा निर्मल और शक्तिशाली होती है। उसी के द्वारा आत्म-कल्याण ब्रह्म-साक्षात्कार एवं जीवन लक्ष्य की प्राप्ति होती है। शास्त्र कहता है—

तपसा तापयेद्देहं पितृन्देवाश्च तर्पयेत्।
तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत्।।
क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः।
धनेन वैश्यः शूदस्तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः।।
अतएव तु विप्रेन्द्र तपः कुर्यात्प्रयत्नतः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापासस्तप उत्तमम्।।
शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।

देवी भागवत (पुरश्चरण प्र.)

तपस्या से देह को तपावें। तपस्या से ही स्वर्ग मिलता है। तपस्या से महान प्रयोजन की पूर्ति होती है। तपस्वी के द्वारा की हुई पूजा से ही देवता और पितरों की तृप्ति होती है।

क्षत्रिय लोक हित के लिये किये गये पराक्रम से, वैश्य धन से, शूद्र सेवा से और ब्राह्मण जप होम की सहायता से भी तपश्चर्या कर सकते हैं।

तपस्या के लिये निरन्तर प्रयत्नशील होना चाहिये। शरीर की तितीक्षा कराने से ही तपस्या होती है। उसके लिये अन्न शुद्धि और चान्द्रायण कृच्छ आदि विधान करने चाहिये।

तपस्यग्मने युक्तो भवेद्भूतानुकम्पकः।
तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत्।।
तपोयुक्ततस्य सिद्धयन्ति कर्माणि नियतात्मनः।

—देवी भागवत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाध्यायपूर्वक तपश्चर्या करें। लोक मंगल का ध्यान रखें। तपस्या में निरत, स्थिर बुद्धि व्यक्ति के समस्त सत्कर्म सफल होते हैं।

यथा रथोऽश्वहीनस्तुं यथाश्वो रथिहीनकः।
एवं तपश्च विद्या च सयुतं भैषजं भवेत्।।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
यथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्।
विद्यातपौभ्यां सम्पन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः।।

—हरीतस्मृति

जैसे बिना घोड़े का रथ और बिना रथ का घोड़ा निरर्थक है। उसी प्रकार तप और विद्या की संगति है। जैसे दो पंखों से ही पक्षी उड़ते हैं, उसी तरह ज्ञान और कर्म द्वारा ब्रह्म को प्राप्त किया जाता है। विद्या और तप के साथ योग-साधना में तत्पर होने की ही सार्थकता है।

अस्मिल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते।
ब्राह्मणानामिमे लोका ऋद्धे तपसि तिष्ठताम्।।

—महाभारत

इस लोक में जो तपस्या की जाती है, उसका फल परलोक में भोगा जाता है। इस प्रकार एक ही तपस्या शुद्ध और समृद्ध के भेद से दो प्रकार की है।

तप इति तपोनित्यः परिशिष्टि। स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको नौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः।

शिक्षावल्ली तैत्तरीय ६

पौरशिष्ठ तपोनित्य ऋषि का कथन है कि—तप ही श्रेष्ठ है। मोदगल्य नामक ऋषि ने कहा—स्वाध्याय सर्वश्रेष्ठ है। स्वाध्याय और तप एक ही है।

यः सर्वज्ञः सर्ववित्यस्य ज्ञान मय तपः।

—मुण्डक १—६

जो सर्वज्ञ-सर्ववित् है, उस ब्रह्म का तप ज्ञानमय है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम।।

—मुण्डक ३।२।४

वह आत्मा निर्बलों को प्राप्त नहीं होती है। प्रमादियों को भी नहीं। तप-रहितों को भी नहीं। केवल ज्ञानवान् और साधनारत ही उसे प्राप्त करते हैं।

एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः।
शाकमन्ये परे मूलम् फलमन्ये पयः परे।।
घृतमन्ये पर सोममपरे चरुवृत्तयः।
ऋषयः पक्षमश्नन्ति केचिद्भक्ष्याशिनोऽहति।।
हविष्यमपरेऽश्नन्तः कुर्वत्येव परं तपः।
शुद्धयै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद्द्विजः।।

—देवी भागवत

इसी प्रकार के तप से नारद आदि ने लोक जीत लिये। इनमें से कुछ ने मूल, फल और कुछ ने केवल दूध का ही आहार किया। कुछ घृत पीकर ही रहते थे, कुछ न केवल सोम-पान और कुछ ने चरुभक्षण ही किया था। कुछ ने प्रति पखवारे एक बार ही भोजन किया और कुछ नित्यप्रति भिक्षान्न का भोजन करते थे। बहुतों ने हविष्यान्न का ही भोजन किया था। इस प्रकार बहुतों ने घोर तप किया था। पापों के शोधनार्थ तीन सहस्र गायत्री का जप करना चाहिये।

कृशाश्च ये जुह्वति श्रद्दधानाः
सत्यव्रता हुतशिष्टाशिनश्च।
गवां लोक प्राप्यते पुण्यगन्ध
पश्यन्ति देव परमं चापि सत्यम्।।

—महा. वन.

जो तप से कृश हो सत्यव्रत का पालन करते हुये प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक हवन करते हैं और हवन से बचे हुये अन्न का भोजन करते हैं वे पवित्र सुगन्ध से भरे हुये गौओं के लोक में जाते हैं और वहाँ परम सत्य परमात्मा का दर्शन करते हैं।

अप्यभ्यक्तः। अलंकृतः सुहितः सुखे शयने शयानः स्वाध्यायमधीत आहैव नखाग्रेभ्यस्तप्यते।

—श. प. ११।५।७।४

भले ही मनुष्य वस्त्र, आभूषण, अलंकार, सुख-शय्या, सुस्वादु भोजन आदि से अलंकृत हो पर यदि वह स्वाध्याय निरत है तो उसे नख-शिख तक तप संलग्न ही समझना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपश्च दानञ्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वम् भतानुकम्पा।

स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तव महन्ति पुंसाम।।

सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपःप्रधानान्य भिमशकेन।

—मत्स्य

ययाति ने कहा—तप-दान-शम-दम-लज्जा आर्जव और समस्त प्राणियों पर दया—ये सात ही पुरुषों के महान् द्वार हैं, जिनको स्वर्ग लोक के भी सन्त लोग कहा करते हैं। ये सब जो भी उदित किये गये हैं वे तपः प्रधान ही होते हैं अर्थात् इन सभी में तपश्चर्या की ही प्रमुखता हुआ करती है।

तप के लिये वृद्धावस्था की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। शिथिल शरीर तो अपने आप में भार हो जाता है, उस समय कुछ बन नहीं पड़ता। इसके लिये उपयुक्त समय तो युवावस्था ही है। भगवान कृष्ण कहते हैं—

त्वया साधु समारब्धि नवे वयसि यत्तपः।

ह्रियन्ते विषयैः प्रायो वर्षीयांसोऽपि मादृशाः।।

—किरातार्जुनीयम् ११।१०

हे अर्जुन ! युवावस्था में ही तपश्चर्या प्रारम्भ करना उचित है। बुढ़ापे में तो मुझ जैसे ब्राह्मण को भी विषयों की माया सताती है।

तप के द्वारा जिसने अपने आत्म-कल्याण का प्रयोजन पूरा किया है वही दूसरों के उद्धार में समर्थ होता है। ऐसे महामानवों का सम्पर्क, सान्निध्य, अनुग्रह जिन्हें प्राप्त होता है वे भी धन्य हो जाते हैं।

संसारेऽस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतामतिमसंकटे।

भवद्विधैः समंसंगोजायतेनातपस्विनाम्।

यद्यहंअंगमासाद्यभवद्भिज्ञानिदृष्टिभिः

नस्याकृतर्त्थस्तन्नूनम्नमेऽन्यत्रकृतार्थता।

प्रवृत्तेचनिवृत्तेचभवतांज्ञानकर्मणि।

—मार्कण्डेय पुराण

इस विपत्ति भरे विश्व में जीव ऐसे ही भ्रम ग्रस्त भ्रमण करता रहता है। उनके भाग्य में ज्ञानवान तपस्वियों का सम्पर्क कहाँ है ?

हे तपस्वी ! आप जैसे ज्ञानवान तपस्वी को पाकर भी यदि मेरा कल्याण न हुआ तो अन्यत्र कहीं हो भी नहीं सकता।

तैत्तिरीय उपनिषद् वल्ली ३ के द्वितीय अनुवाक में एक प्रसंग आता है कि भृगु ने अपने पिता वरुण से ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा प्रकट करते हुये कहा—"अधीहि भगवो ब्रह्मेति।" भगवन् ! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिये।

त ँ हो वाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। सतपोऽतप्यत। सतपस्तप्त्वा आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।

तब वरुण ने कहा—तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा कर। तप ही ब्रह्म है। तब उसने पिता की आज्ञा पाकर तप द्वारा अपने को तपाया और जाना कि ब्रह्म आनन्दमय है।

मुण्डक उपनिषद् १।१।८ में भी परमात्मा की प्राप्ति का उपाय तप को ही बताया गया है।

'तपसा वीयते ब्रह्म'

अर्थात् तप से ही ब्रह्म को जाना जाता है।

तप की महिमा असाधारण है। स्वयं ब्रह्म ने जब एक से अनेक होने की इच्छा की तो उस इच्छा की पूर्ति के लिये जिस शक्ति और साधन सामग्री की आवश्यकता पड़ी, उसका जुटाया जाना तप के द्वारा ही सम्भव हो सका। सृष्टि के आदि में ब्रह्म ने स्वयं तप किया और उसके द्वारा उपलब्ध बल से अखिल ब्रह्माण्ड के रूप में अपना विस्तार किया। ब्रह्म के तप बल से ही इस सृष्टि की संचालन क्रिया भी व्यवस्थित है।

वर्णन आता है—

सोऽकामयत। बहुत्यां प्रजाययेयेति। सतपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं ँ सर्वमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवत्।

—तैत्तरीय २।६।

उस परमात्मा ने इच्छा की कि मैं प्रकट हो जाऊँ, एक से बहुत हो जाऊँ। इसके लिये उसने तप किया। तप से अपने को तपाया और इस जगत की रचना की। इसे रचकर वह उसी प्रविष्ट हो गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमात्मा की प्राप्ति के साधनों में तप का प्रमुख स्थान है क्योंकि ब्रह्म स्वयं तप रूप है। आत्मा की शुद्धि ही ब्रह्म प्राप्ति का प्रधान आधार है और यह तभी सम्भव है, जब तप की अग्नि में अपने अन्तःकरण को तप के द्वारा स्वर्ण के समान उसके मल जलाने के लिये तपाया जाये।

कहा भी है—

सत्येन लभ्य स्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः।

—मुण्डक ३।१।५

परमात्मा इस शरीर के भीतर ही शुभ्र ज्योति के रूप में विद्यमान है। वह सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और विवेक द्वारा ही प्राप्त होता है। जिनने अपने दोषों को दूर कर लिया है, वे प्रयत्नशील साधक ही उसका दर्शन करते हैं।

ब्रह्मलोक में प्रवेश के लिये सत्य, ब्रह्मचर्य आदि अन्य गुणों की भी आवश्यकता है पर साधक का तपस्वी होना तो अनिवार्य ही है।

शास्त्र कहता है—

तेषमेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो
ब्रह्मचर्य येषुं सत्यं प्रतिष्ठितम्।

यह जो ब्रह्मलोक है वह उन्हीं का है, जिनके पास तप है, ब्रह्मचर्य है और सत्य है।

ऐसा ही एक अभिवचन केन उपनिषद् में भी आता है—

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्य मायतनम्। —केन ४।८

जिस रहस्यमयी ब्रह्म विद्या का वेद वेदांगों में विस्तारपूर्वक वर्णन है तथा उस सत्य स्वरूप परमात्मा को जिसके द्वारा जाना जाता है उसके तीन ही आधार हैं—(१) तप (२) मनोनिग्रह (३) कर्त्तव्य पालन।

प्रश्नोपनिषद् में एक कथा आती है जिसमें जिज्ञासु की प्रारम्भिक योग्यता तप साधना में प्रवृत्ति निर्देशित की गई है। सच्ची ब्रह्म जिज्ञासा का लक्षण ऋषि ने यही माना है, इसमें लक्ष्य प्राप्ति के लिये कष्ट उठाने—तप करने की क्षमता है या नहीं। यदि यह क्षमता न हो तो उसे अनाधिकारी ही माना जाना निश्चित है। अनाधिकारी लोग ब्रह्म की चर्चा भले ही करते रहें पर उसे प्राप्त नहीं कर सकते। इस तथ्य का उद्घाटन उपनिषद्कर्त्ता ने इस प्रकार किया है—

सुकेशा च भारद्वाजः शैव्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कवन्धी कात्यायनस्ते ह ते ब्रह्मा पराब्रह्मनिष्ठः परं ब्रह्मन्वेषमाणा एवं हवै तत्सर्वं वक्ष्यतीति तेह समित्याणयो भगवन्त पिप्पलादमुपसन्नाः। —प्रश्नोपनिषद् १।१

भारद्वाज के पुत्र सुकेशा, शिवि के पुत्र सत्यकाम, गर्ग गोत्री सार्यायणी, कौशल देशीय आश्वलायन, विदर्भ निवासी भार्गव, कत्य ऋषि के पौत्र कवन्धी, ये छः वेद परायण ऋषि परमात्मा की खोज करते हुये, हाथ में समिधा लेकर भगवान् पिप्पलाद ऋषि के पास इस आशा से गये कि वे ब्रह्म का व्याख्यान करेंगे।

तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथा कामं प्रश्नान्पृच्छत् यदि वित्तास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति। —प्रश्नोपनिषद् १।२

उन सुकेशा आदि ऋषियों से पिप्पलाद ने कहा—आप लोग श्रद्धा ब्रह्मचर्य और तप के साथ एक वर्ष तक यहाँ सज्जनों की तरह निवास करें। इसके बाद अपने-अपने प्रश्न पूछें। यदि मैं जानता होऊँगा तो निश्चय ही वे सब बातें आप लोगों को बताऊँगा।

ऋषियों ने महर्षि पिप्पलाद के आदेशानुसार उनके आश्रम में रहकर एक वर्ष तक तप किया। इस प्रकार जब उनने अपनी प्रारम्भिक परीक्षा दे दी तब महर्षि ने उन्हें ब्रह्म का उपदेश देकर समाधान किया।

भगवान् बुद्ध जब आत्म शान्ति की खोज में गृहत्याग कर निकलते हैं और आत्मा की प्राप्ति का मार्ग विभिन्न गुरुजनों से पूछते हैं तो उनका समाधान नहीं होता। अनेक प्रकार के मार्ग अनेक विधान, अनेक सिद्धान्त उन्हें विचलित कर देते हैं। ऐसी दशा में उनकी अन्तरात्मा एक ही उपाय सुझाती है कि तप करना चाहिये। तप के द्वारा ही अपने भीतर वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाश उत्पन्न होगा, जिससे वस्तुस्थिति का स्पष्ट निरूपण हो सके।

अवश्वघोष कृत बुद्धचरितम् में यह वर्णन इस प्रकार आता है—

इहास्ति नास्तीति य एष संशयः
परस्य वाक्यैर्नम मात्र निश्चयः।
अवेत्य तत्वं तपसा शमेन च—
स्वयं ग्रहीष्यामि यदत्र निश्चयम्।

—बुद्ध-चरितम् ६।७३

क्या है, क्या नहीं है, इस सम्बन्ध में जो संशय है उसका समाधान मुझे दूसरों के वचनों से न होगा। तप और शम से मैं स्वयं ही तत्व को जानूँगा और उसे ही ग्रहण करूँगा।

बुद्ध तप करने के लिये हिमालय की ओर चलते हैं। उन्हें वह स्थान बड़ा उपयुक्त जँचता है क्योंकि अनेक तपस्वियों की तप-साधना जिस स्थान पर हो रही है या होती रही है वहाँ की भूमि में कुछ दिव्य विशेषता होनी ही चाहिये। इस पुण्य भूमि में भगवान् बुद्ध को बड़ी शान्ति मिलती है।

ब्रह्मर्षि राजर्षि सुरर्षि जुष्टः
पुण्यः समीपेहिमिवान शैलः।
तपांसि तान्येव तपोधनानां
यत्संनिकर्षाद्बहुली भवन्ति।

—बुद्धचरितम् ७।३६

ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों और देवर्षियों से सेवित परम पवित्र हिमालय पर्वत समीप ही है। इस समीपता के कारण तपस्वियों की तपस्या का प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है।

ऋषि, तपस्वी और ब्राह्मण, व्यक्तियों की संख्या मानी जाती है। अभीष्ट विशेषताओं से सम्पन्न व्यक्तियों को उनके गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ऋषि, तपस्वी एवं ब्राह्मण माना जाता है पर यह तत्व भी है। ऋषित्व ब्राह्मणत्व और तपस तत्व प्रत्येक व्यक्ति के भीतर मौजूद हैं। उन्हें जागृत, विकसित एवं समुन्नत किया जा सके तो बाहरी वेश-विन्यास एवं क्रिया-कलाप में साधारण दीखने पर भी कोई व्यक्ति ऋषि, तपस्वी एवं ब्राह्मण हो सकता है। इसके लिये शारीरिक एवं कर्मकाण्डात्मक साधन न पड़ें तो केवल मानसिक एवं भावनात्मक निष्ठा से भी काम चल सकता है।

विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि बनने का प्रयत्न किया था। उनने शारीरिक तपश्चर्यायें तो बहुत कीं—पर भावनात्मक स्तर उँचा न उठा पाने के कारण वे उस पद को प्राप्त न कर सके। जब उन्होंने वह प्रयोजन पूरा कर लिया तो राजर्षि से पदोन्नति करके ब्रह्मर्षि बन सके।

ब्राह्मणत्व के आवश्यक गुणों में मनु भगवान ने जिन्हें आवश्यक बताया है, वे यह हैं—(१) स्वाध्याय सत्संग, चिन्तन-मनन (२) सत्प्रवृत्तियों के सुदृढ़तापूर्वक अपनाने का व्रत (३) अग्निहोत्र यज्ञीय जीवन, परमार्थ में संलग्नता (४) भक्ति पूर्वक ध्यान, उपासना (५) विवेक की प्रधानता (६) आत्मीयता, करुणा एवं ममता का विकास कहा भी है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।

—मनु. २।२८

स्वाध्याय, व्रत, होम, वेदाध्ययन, इज्या, सोमपान, यज्ञ और महायज्ञों में यह शरीर ब्राह्मण बनता है।

वेद ज्ञान का मूल है। ब्रह्म विद्या की उपलब्धि उसी सद्ज्ञान से होती है। पर वह वेद ज्ञान मात्र पुस्तक पढ़ने से प्राप्त नहीं होता। उसका सार समझने और अन्तरंग में धारण करने के लिये अभीष्ट पात्रता विकसित करनी पड़ती है। उस विकसित पात्रता का नाम ही ब्राह्मणत्व है। उसे प्राप्त होते ही वेद-का—ब्रह्म का—सहज साक्षात्कार होने लगता है।

प्रत्नास ऋष्यो दीध्यानाः।
पुरो विप्रा दधिरेमन्द्र जिह्वम्।

ध्यान करते हुये ऋषि और ब्राह्मण उस मन्त्र देवता का प्रत्यक्ष करते हैं।

न ह्यदेषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेर तपसो वा निरुक्त।

वेद ऋचाओं का प्रत्यक्ष ऋषि और तपस्वी हुये बिना नहीं होता।

आचार निष्ठ उज्ज्वल चरित्र, आत्मज्ञानी-विवेकशील एवं परमार्थ-परायण व्यक्ति ब्राह्मण कहलाते हैं। जब उस स्तर के व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपश्चर्या द्वारा अपनी दिव्य शक्तियों का विकास करने में तत्पर होते हैं तो ऋषि पद प्राप्त करते हैं। ऋषियों का तप तेज-ब्राह्मण के आत्मबल से बढ़ा-चढ़ा होता है। इस सशक्तता की उपलब्धि में जो विशेष श्रम करना पड़ा अस्तु बढ़ा हुआ ब्रह्म वर्चस्व उन्हें ब्रह्ममय ही बना देता है।

ऋषी नार्षेयास्तपसोऽधिजाताः।

अथर्व ११।१।२६

ऋषी और तत्वदर्शी यह दोनों तप से उत्पन्न होते हैं

ऋषिर्दर्शनात्। निरुक्त—२।११

तत्व दर्शी को ऋषि कहते हैं।

तत्पय मानान् ब्रह्म स्वयंभु अभ्यनार्षत्।

—यास्क

ऋषियों को तप करते हुये स्वयंभु वेद का साक्षात्कार हुआ।

अपना काय-कलेवर ही सूक्ष्म तपोवन है। उसमें निवास करने वाले चेतना केन्द्र यदि परिष्कृत हो जाते हैं तो वे ऋषि बन जाते हैं। ऐसे चेतना केन्द्र साथ हैं। इसलिये उन्हें सप्त ऋषि भी कहते हैं। अपने काय-कलेवर के तपोवन में अवस्थित सात ऋषियों का वर्णन, विवरण इस प्रकार है।

सप्तऋषयः प्रतिहिता, शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम प्रमादम्। —यजु. ३४।५५

सप्त इन्द्रियाँ सप्त ऋषि हैं। यही इस कलेवर की रक्षा करती हैं।

कः सप्त स्तानि वितदर्द शीर्षाणि।
कर्णा विमौ नासिके चक्षिणी पुरवम्।

—अथर्व १०।२।६

सप्त ऋषि यह हैं—दो कान, दो नासिका छिद्र, दो नेत्र, एक मुख, इस प्रकार सात हुये।

चक्षुर्वै जमदग्नि ऋषिर्यद्वनेन जगत्पश्यति।

—शतपथ ८।१।२।३

जब यह नेत्र समस्त विश्व को देखते हैं तब वे जमदग्नि कहलाते हैं।

श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदेन सर्वतः।
श्रृणोत्यथो यदस्यै सर्वतोमित्रं भवति तस्मा-
च्छोत्रं विश्वामित्र ऋषिः।। —श. प. ८।१।२।६

कान जब दशों दिशाओं के दूर-व्यापी शब्दों को सुनते हैं सब ओर से सद्वचनों को ही ग्रहण करते हैं। तब वह विश्वामित्र कहलाते हैं।

वाक वै विश्व कर्मर्षि वर्चाहीदं सर्व कृतम्।

—शत पथ ८।१।२।६

वाणी जब उच्चारण मात्र से ही सब कुछ उत्पन्न और सम्पन्न करती है, तब वह विश्वकर्मा ऋषि बन जाती है।

शतपथ ब्राह्मण १४।५।२ में इन्द्रयों का ऋषि परक नामकरण इस प्रकार हुआ है—

"दो कान गौतम और भारद्वाज, दो नासिका छिद्र, विशिह आदि काश्यप हैं। दो आंखें विश्वामित्र और जमदाग्नि हैं। मुख अत्रि है।"

विश्वामित्रः सर्व मित्रः। —निरुक्त २।७।२४

विश्वामित्र वह जो सब का मित्र हो।

विश्वस्य ह मित्रं विश्वामित्र आस।
विश्वं हास्मै मित्रं भवति य एवं वेद।

—ए. ब्रा. ६।२०

समस्त विश्व का मित्र विश्वामित्र। उसके सभी मित्र होते हैं।

तयोरादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते।
अरुन्धत्यैव कथिता पुराविद्भि सरस्वती।।

योगकुण्डल्यूपनिषत्

सुषुम्नानाड़ी को अरुन्धती अथवा सरस्वती कहते हैं।

शरीर का स्थूल इन्द्रियों में नहीं, वरन् इन इन्द्रियों के संचालक सूक्ष्म केन्द्र जो मानसिक क्षेत्र में विद्यमान उन्हें ही ऋषि स्थापना का उद्गम मानना चाहिये इन्द्रियों का मांसल भाग जो मात्र क्रिया-कलाप सम्पन्न करता है। अनुभूतियाँ तो मस्तिष्क में ही होती हैं। इन्द्रियाँ उपभोग के पीछे दृष्टिकोण का निर्धारण और उनके संचालन का निर्देश तो मानसिक आस्था पर ही निर्भर रहता है। अस्तु उन्हीं मस्तिष्क में अवस्थित चेतना केन्द्र को ऋषि मानना चाहिये।

सप्तऋषि मस्तिष्क में निवास करने वाले सात प्रमुख चेतना केन्द्र हैं—

(१) आशा केन्द्र

(२) प्रज्ञा केन्द्र

(३) श्रवण केन्द्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(४) वाणी केन्द्र
(५) दृष्टि केन्द्र
(६) घ्राण केन्द्र
(७) स्वाद केन्द्र

इन्हें ही सप्तऋषि आश्रम कहना चाहिये। काय तपोवन में हमारा मस्तिष्क-मानसिक स्तर ही सप्त ऋषि आश्रम है। इन्द्रियाँ तो अपना आहार पदार्थों के रूप में माँगती हैं, पर यह ऋषि तो तप और ब्रह्मपरायणता के आधार पर ही पोषण प्राप्त करते हैं—जीवित रहते हैं।

तद्ब्रह्मच तपश्च सप्तऋषय उपजीवन्ति।
ब्रह्मवर्चस्युप्रजीवनीयो भवति एवं वेद।।

—अथर्व ८।१३।१६।१०।४

सप्त ऋषि तप और बल के आधार पर जीवित रहते हैं। जो इस रहस्य को जानता है वह ब्रह्मवर्चस और जीवन प्राप्त करता है।

तपश्चर्या का तत्वदर्शन

सोने को अग्नि में डालकर उसमें घुसी हुई मिलावट एवं कुरूपता को दूर किया जाता है। इस अग्नि-संस्कार से ही उसकी आभा निखरती है—प्रामाणिकता सिद्ध होती है और बाजार में उचित कीमत उठती है। यदि तपाने के झंझट से बचा जाये तो सोने और पीतल में कोई अन्तर ही सिद्ध न किया जा सकेगा।

मनुष्य की महान् विभूतियों को प्रकट एवं प्रखर बनाने के लिये यह आवश्यक है कि वह तप, साधना के अग्नि-संस्कार को सहन एवं स्वीकार करे। तप का अर्थ है—सदुद्देश्य के लिये उस हद तक बढ़ चलना, जिसमें भौतिक कष्टों की हँसते-खेलते उपेक्षा की जा सके। इस तथ्य को जीवन प्रक्रिया में उतारने के लिये कुछ प्रयोग, अभ्यास भी करने पड़ते हैं। बलिष्ठ बनने के लिये व्यायामशाला में जाने और कई तरह की कसरतें करनी पड़ती हैं। आत्मबल सम्पन्न तपस्वी जीवन की भूमिका में विकसित होने के लिये कई तरह के ऐसे उपचार, कर्मकाण्ड अपनाने पड़ते हैं, जो अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकें। इन्हीं व्यायाम साधनाओं को तपश्चर्या का बहिरंग कलेवर कह सकते हैं।

व्रत, उपवास, शीतजल स्नान, धूप आतप सहना, धूनी तपना, नंगे पावों चलना, देर तक खड़े रहना, कठोर आसन लगाकर बैठना, कम सोना, सवारी का उपयोग न करके पैदल चलना स्वल्प वस्त्रधारण, केश न कटाना, मौन रहना, भूमि शयन, नमक, शक्कर आदि के स्वादों का त्याग—ब्रह्मचर्य जैसे क्रिया-कलापों को तप साधना में गिना जाता है। जो इन उपचारों को क्रियान्वित करते है, वे तपस्वी कहलाते हैं। तप का माहात्म्य अध्यात्म शास्त्रों में भरा पड़ा है। तप के प्रताप से देव शक्तियों के द्रवित होने और अभीष्ट वरदान प्रदान करने के कितने ही पौराणिक उपाख्यान पढ़ने और सुनने को मिलते हैं। तपस्वी का सम्मान करने के लिये हमारी सहज श्रद्धा उमड़ती है जबकि दूसरे लोग सुख-सुविधाओं का तनिक भी त्याग नहीं कर सकते, तब तपस्वी इन कष्ट साध्य क्रिया-कलापों को खुशी-खुशी अपना लेता है, उसमें उसकी संकल्प शक्ति प्रखरता स्पष्ट है। दूसरे लोगों की वह स्वतन्त्र निर्णय करने और जन-सामान्य के प्रचलित ढर्रे का व्यतिक्रम करने में समर्थ है यह विशेषता तो स्पष्ट ही सिद्ध होती है। इस साहसिकता के सामने यदि मानवी श्रद्धा नत-मस्तक होती है तो उसे सर्वथा उचित ही कहा जायेगा।

तपश्चर्या का बहिरंग ढाँचा किस उद्देश्य के लिये तत्व-दर्शियों ने किस प्रयोजन की पूर्ति के लिये बनाया, इस तथ्य पर गहराई के साथ विचार करने की आवश्यकता है। यदि यह सब निरुद्देश्य रहा होता तो उसे मात्र उत्पीड़न ही कहा जाता। दूसरों की हत्या करने की तरह आत्म-हत्या भी अपराध है, ठीक इसी तरह दूसरों को उत्पीड़न देने की तरह अपने आपको सताना भी आत्म-उत्पीड़न कहा जायेगा और उसकी निन्दा की जायेगी। ऐसा हुआ भी है। पारसी धर्म में उपवास को निन्दनीय ठहराया गया है क्योंकि इससे आत्म-कष्ट होता है। एलोपैथी चिकित्सा पद्धति भी रोगी को उपवास कराने के पक्ष में नहीं है। फाइड प्रभृति मनोविज्ञानी ब्रह्मचर्य को आत्म-प्रताड़ना कहते हैं और उसकी ढेरों हानियाँ गिनाते हैं। सर्दी-गर्मी का दबाव, अंगों की तोड़-मरोड़, असुविधापूर्ण रहन-सहन अपनाकर जीवनी शक्ति का अपव्यय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसे अनेकानेक तर्क इस पक्ष में पड़ते हैं कि तप-साधना की कष्ट साधना हानिकर है। बुद्ध चरित्र में आता है कि तथागत जब कठोर उपवासों द्वारा काया को अत्यन्त दुर्बल बना चुके तो एक देव कन्या ने प्रकट होकर उन्हें मध्यम मार्ग पर चलने और इस दुराग्रही कष्ट प्रयोग का छोड़ देने के लिये सहमत किया। उसने सितार का उदाहरण देकर यह भी कहा था कि तारों को अधिक खींचने से वे टूट जाते हैं और वीणा की उपयोगिता नष्ट हो जाती है। शरीर को सताने का भी यही परिणाम होता है। इस तथ्यपूर्ण परामर्श को भगवान बुद्ध ने अंगीकार किया था और वे मध्यम मार्ग स्वयं अपनाकर दूसरों को भी "मज्झम मग्ग" (मध्यम मार्ग) पर चलने का उपदेश करने लगे थे।

शरीर को बलिष्ठ बनाना एक लक्ष्य है, उसकी प्राप्ति के लिये व्यायामों में अमुक प्रकार के अमुक सीमा तक किये जाने चाहिये। इसकी उपयोगिता से कोई इन्कार नहीं कर सकता, पर यदि अत्युत्साह के आवेश में अमुक व्यायामों को ही चमत्कारी मान बैठा जाय और सब छोड़कर उन्हीं को पकड़ बैठा जाय तो इससे लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता मिलने के स्थान पर उलटी बाधा पड़ेगी। व्यायाम के साथ-साथ उपयुक्त आहार-विहार, रहन-सहन, दिनचर्या भी आवश्यक है। इन सब बातों की उपेक्षा करके अकेले व्यायाम पर चिपट पड़ना असन्तुलित प्रयास ही कहा जायेगा। बलिष्ठता प्राप्ति के लिये व्यायाम प्रक्रिया का उपयोग एक बात है और अमुक व्यायाम को सर्वसिद्ध दाता मानकर उसी पर लट्टू हो जाना बिल्कुल दूसरी बात। तप-साधना में अक्सर ऐसी ही भूल की जाती है। यह भुला दिया जाता है कि इन प्रयोजनों का आविष्कार, आविर्भाव किस निमित्त किया गया है और उसका कितना लाभ हो सकता है ? यह समस्त पृष्ठभूमि ध्यान में रखते हुये ही यदि तप-साधना का अवलम्बन किया जाये तो ही वे लाभ मिल सकेंगे, जिनका वर्णन तप विज्ञान के माहात्म्य प्रकरण में बताया गया है।

तप साधन के समस्त व्यायाम, उपचार इसलिये बनाये गये हैं कि आदर्शवादी जीवन प्रक्रिया अपनाने में स्वभावतः कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें हँसते-खेलते, सहन करते रह सकना अपने स्वभाव का अंग बन जाये। उस तरह की कष्ट साध्य जीवन प्रणाली अभ्यास में उतरकर सहज स्वाभाविक बन जाये। स्पष्ट है कि न्यायोपार्जित आजीविका सीमित ही रहेगी। फिर उदार व्यक्ति की अन्तरात्मा भी तो निष्ठुर पाषाण जैसी न रहेगी। उसे हत्प्रयोजनों के लिये अपनी आजीविका का एक अंश अनिवार्य रूप से खर्च करते रहना पड़ेगा। सीमित आजीविका और परमार्थ प्रयोजनों का अतिरिक्त भार, इन दो कारणों से आदर्शवादी को प्रायः दूसरों की तुलना में आर्थिक तंगी में ही रहना पड़ता है। विलासी रीति-नीति बहुत ही खर्चीली होती है। उसकी पूर्ति के लिये अनीति उपार्जन एवं सत्प्रयोजनों की ओर से निष्ठुर कृपणता ही अपनानी पड़ती है। इसके बिना विलास के लिये—संग्रह के लिये प्रचुर पूँजी जुटेगी ही नहीं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये आदर्शवादी को आरम्भ से ही मितव्ययी, रीति-नीति अपनानी पड़ती है, उसे विदित रहता है कि "सादा जीवन उच्च विचार," का प्रथम अध्यात्म सिद्धान्त उसी आधार पर बना है कि जो उच्च विचारों की आदर्शवादिता अपनाना चाहता हो उसे प्रथम साधना मितव्ययता की—सादगी की—गरीबी की करनी चाहिये। इस अभ्यास से ही उसकी परिस्थितियाँ ऐसी रह सकेंगी, जिनमें अध्यात्मवादी जीवन पद्धति का निर्वाह सम्भव हो सके।

तपश्चर्या के बहिरंग उपचारों में से अधिकांश ऐसे हैं, जो आर्थिक कठिनाई की स्थिति में जो अभाव एवं कष्ट सामने आते हैं उनका पूर्वाभ्यास करके मनोभूमि एवं शरीर स्थिति को अनुकूल बना लिया जाय। जिसे अभावग्रस्त स्थिति अखरेगी नहीं वही प्रसन्नतापूर्वक सादगी भरी शालीनता के साथ जीवनयापन कर सकेगा। ऐसी स्थिति में उसे बिना अनीति उपार्जन की अपेक्षा किये—सत्कर्मों के लिये आवश्यक खर्च में बिना कृपणता बरते, बड़ी सरलता और प्रसन्नता के साथ अपना ढर्रा चलाते रह सकना सम्भव हो जायेगा। तपश्चर्या के अभ्यास इस प्रमुख प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सकने की सफलता प्रदान करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्रत, उपवास में नमक, शक्कर जैसी स्वादिष्टता को छोड़ने का प्रयोजन यह है कि स्वल्प, सस्ता एवं सादा भोजन भी यदि मिलता रहे तो वह गरीबी की स्थिति अखरे नहीं। न्यायोपार्जित आजीविका में से सत्प्रयोजनों का अंशदान निकालकर जो बच जाय, उस रूखे-सूखे को अमृत मानकर गुजर कर ली जाये। ऐसी सादगी का अभ्यस्त व्यक्ति अर्थ प्रलोभन के लिये दुष्कर्म करने से सहज ही बच जाता है और सन्मार्ग पर चल सकने योग्य मनोभूमि को अक्षुण्ण रख सकता है। गरीबी में जो कठिनाई आती है, उसमें आहार सम्बन्धी सादगी, सस्तापन एवं स्वल्प मात्रा को गिना जा सकता है। व्रत, उपवास उसी अभ्यास के लिये है। नमक, शक्कर जैसे स्वादों को छोड़कर रुखे-सूखे पर गुजर करने का अभ्यास करना आदर्शवादी मोर्चे की प्रथम लड़ाई में सफलतापूर्वक लड़ सकने की क्षमता प्रदान करता है।

आदर्शवादी को इन्द्रिय-लिप्सा पर नियन्त्रण करना पड़ता है। उनके उभार मनुष्य का मस्तिष्क उद्विग्न करते हैं और उन वासनाओं की पूर्ति के लिये चिन्तन, समय, श्रम, मनोयोग, कौशल एवं धन का बहुत बड़ा अंश नष्ट करना पड़ता है। ब्रह्मचर्य की बात इसी दृष्टि से है। कामुकता की प्रेरणा से पत्नी ढूँढ़ना—पत्नी के बच्चे होना—बच्चों से उत्तरदायित्व का गरदन तोड़कर रख देने वाला भार पड़ना, कितना जटिल और कितना कठिन होता है ? इसे प्रत्येक भुक्तभोगी भली प्रकार जानता है। राई-रत्ती जितनी वासना का विस्तार इतना अधिक होता चला जाता है कि मनुष्य अपनी शत-प्रतिशत शक्ति को उसी जंगल में झोंक देने के उपरान्त भी सन्तोषजनक स्थिति की परिवार व्यवस्था नहीं जुटा पाता और बेतरह रोता-कलपता संसार से विदा होता है। यदि कामुकता पर नियन्त्रण रखा जा सके तो जीवन की समस्त सम्पदा को कोल्हू में पेलकर उसका एक-एक बूँद तेल जो गृहस्थ में जलाना पड़ता है, उसकी बचत सहज ही हो जाये और उस बचत से आत्म-कल्याण एवं विश्व-कल्याण का उद्देश्य सहज ही पूरा किया जा सके।

आज के जमाने में जनसंख्या की वृद्धि विश्व की सबसे भयंकर विभीषिका है। अणुयुद्ध से समस्त मानव समाज के नष्ट होने की तरह ही जनसंख्या वृद्धि के कारण इस धरती पर से मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जाने का खतरा सामने है। वर्तमान गति से संतानोत्पादन जारी रहा तो अगले कुछ ही वर्षों में समस्त वायु मण्डल विषाक्त हो जायेगा। अन्न के बिना लोग तड़प-तड़प कर भूखों मरेंगे और चलने-फिरने तक को जगह न बचेगी। तब लोग मक्खी, मच्छरों की तरह जन्मते-मरते और मनुष्य स्तर को समाप्त करते दिखाई देंगे। इन आज की परिस्थितियों में सन्तान के सीमा बन्धन युग की अनिवार्य आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिये ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम उपाय है। शक्तियों को सदुद्देश्य में लगाने के लिये—जनसंख्या संकट से लड़ने के लिये—ब्रह्मचर्य को मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। इनसे न केवल शारीरिक, मानसिक समर्थता का लाभ है वरन् उपरोक्त दो लाभ ऐसे ही हैं, जिन्हें आत्मिक प्रगति एवं सामाजिक स्थिरता की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है। कामुकता पर नियन्त्रण करने की ब्रह्मचर्य प्रवृत्ति को इसलिये सम्मानास्पद स्थान प्राप्त है। अनुष्ठानों के समय अथवा ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास की अवधि में ब्रह्मचर्य को आवश्यक माना गया है। विधुरों और विधवाओं के लिये भी इसे उपयोगी माना गया है। पतिव्रत, पत्नीव्रत आदि के बन्धन इसी दृष्टि से हैं। गृहस्थ से भी अधिकाधिक संयम बरतने का निर्देश इन्हीं कारणों से है। ब्रह्मचर्य की तप साधना अकारण नहीं है। उनके पीछे जिस उद्देश्य की पूर्ति का समावेश है, उसे ध्यान में रखकर चला जाय तो अमुक समय तक ब्रह्मचर्य पालन की लकीर पीटने को ही पर्याप्त न माना जायेगा वरन् इस दृष्टिकोण के अनुसार अपना और अपने प्रभाव क्षेत्र का अमुक स्तर बनाने का प्रयत्न किया जायेगा।

वाणी का मौन तथा सीमित एवं उपयोगी शब्दों का उच्चारण, प्रतिबन्ध, मन्त्र, जप यह दोनों ही प्रयोजन वाणी पर नियन्त्रण करने की दृष्टि से हैं। आवेशग्रस्त, कटु, दुर्वचन न बोलें—छल, व्यंग, तिरस्कार एवं गिराने वाले शब्दों का उच्चारण न करें। उच्चारण का प्रत्येक शब्द श्रेयस्कर सदुद्देश्य के लिये बोला जाये, उसमें स्नेह, सौजन्य का समुचित समावेश होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिये जहाँ एक पक्ष व्यक्ति जीवन को श्रेष्ठ, संयमी, सदाचारी बनाने का है, वहाँ दूसरा पक्ष यह भी है कि अपनी विभूतियों का अधिकाधिक समर्पण लोक-मंगल के लिये किया जाय। मात्र संयमी सदाचारी तो पेड़-पत्थर भी होते हैं। वे किसी का कुछ बिगाड़ते नहीं और न अनैतिक आचरण करते हैं। मनुष्य की मर्यादा की रक्षा इसी में है कि वह पशु और पिशाच जैसे अवांछनीय आचरण न करे।

मनुष्य जीवन इसलिये मिलता है कि इस सृष्टि को सुरम्य, समुन्नत बनाने के लिये अधिकाधिक तत्परता का परिचय दिया जाय। अपनी सम्पदाओं और विभूतियों को इसी दिशा में अधिकाधिक मात्रा में नियोजित किया जाये। स्वार्थ की पशु प्रवृत्ति से ऊँचा उठकर परमार्थ की पुण्य-प्रवृत्ति में संलग्न होना ही मानव जीवन की सार्थकता का दूसरा पक्ष है। इस दिशा में जो जितना चल सका समझना चाहिये कि उसने मनुष्य जन्म के लक्ष्य को समझा और उसे पूरा करने की दूरदर्शिता का परिचय दिया। इस आदर्शवादी रीति-नीति को अपनाने के लिये जिस साहसिकता का परिचय देना पड़ता है, वह है—दुनियादारी से भिन्न प्रकार की रीति-नीति अपनाने में भय या संकोच का अनुभव न करना। अंधी भेड़ों की तरह एक के पीछे एक खड्डे में गिरते-मरते जाने का क्रिया-कलाप अपनाने से इन्कार करना और इसके बदले व्यंग उपहास सहने के लिये समुद्यत रहना।

सिर के—दाढ़ी के बाल बढ़ाना—मुण्डन कराना—पंचकेश रखना—सामान्य वेशभूषा छोड़कर लंगोटी, तहमद आदि बाँधना जैसे जन-स्तर से भिन्न प्रकार की वेशभूषा धारण करना। पत्तल पर या हाथ पर खाना में कमण्डल से पानी पीना, धातु के बर्तनों का प्रयोग न करना—जैसे उपकरणों का विनियोग तप-साधना प्रकरण में इसलिये सम्मिलित किया गया है कि समृद्ध एवं विलासी लोगों के अनुकरण के लिये मचलने वाली आन्तरिक दुर्बलता से पिण्ड छुड़ाया जा सके और जन-प्रवाह से भिन्न स्तर का अपना स्वतन्त्र निर्णय स्वतन्त्र आचरण कार्यान्वित कर सकने का साहस प्रदर्शित किया जा सके, लोगों के व्यंग, उपहास से अप्रभावित रह सकने का मनोबल विकसित किया जा सके। आदर्शवादी परम्परा अपनाने वाले में इस प्रकार का शौर्य, साहस होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

सर्दी सहना, गर्मी सहना, भूमि पर सोना, उघाड़े बदन और नंगे पैरों रहना—कठोर आसन लगाकर बैठना, खड़े रहना जैसे कठोर कर्म इस मनःस्थिति को विकसित करते हैं कि कष्ट सहिष्णुता को परमार्थी जीवन की एक अनिवार्य साधना माना जाये। स्वार्थ का परमार्थ पर उत्सर्ग करने के लिये यही करना पड़ता है। त्याग, बलिदान का परिचय दिये बिना आत्मकल्याण की साधना में एक इंच भी प्रगति नहीं हो सकती। अपनी अमीरी और महत्त्वाकांक्षाओं को जन कल्याण के लिये समर्पित किये बिना परमार्थ साधना सम्भव ही हो नहीं सकती। पहाड़ जैसे परिग्रह में से राई-रत्ती दान पुण्य करते रहने का कृपण प्रदर्शन लोगों के बहकाने और आत्म प्रवंचना करने के लिये ही उपयुक्त हो सकता है। सच्चे आत्मवादी को तो त्याग, बलिदान के अंतिम चरण तक पहुँचना पड़ता है उसकी निष्ठा एवं श्रद्धा का परिचय तो अपनी सम्पदा का किस सीमा तक विसर्जन किया जा सका, इसी कसौटी पर कसने के बाद प्राप्त होता है।

अनिवार्य निर्वाह के अतिरिक्त अपनी समस्त सुख-सुविधाओं को—सम्पत्तियों और विभूतियों को विश्व मानस के लिये समर्पित रहना है, इसी का नाम प्रभु समर्पित जीवन है। इसी को शरणागति कहते हैं। ईश्वर भक्ति इससे कम साहस से हो ही नहीं सकती। इस मनःस्थिति को विकसित करने के लिये अनेकानेक तपश्चर्याओं के अभ्यास कराये जाते हैं। कहना न होगा कि तप-साधना से निखरा हुआ व्यक्तित्व अपने आप में एक देवता होता है और उसके अपने ही चमत्कार, वरदान इतने अधिक होते हैं कि तपस्वी को देवोपम सिद्ध पुरुष की संज्ञा दी जा सके।

तप-साधना के इस उद्देश्य को समझा जा सके और इन बहिरंग क्रिया-कलापों को उसी दृष्टि से कार्यान्वित किया जा सके तो समझना चाहिये कि तपश्चर्या सार्थक हुई अन्यथा लकीर पीटने भर को निरुद्देश्य किया जा रहा हो तो उसे समझना चाहिये कि वह आत्म-प्रताड़ना की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरर्थक कष्टकर विडम्बना भर है। अतः यह जान लेना आवश्यक है कि तप गुण, कर्म और स्वभाव को गलाने और उत्कृष्ट स्तर का बनाने की एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्तित्व तपकर प्रखर बनता है।

तपश्चर्या का उद्देश्य

यों स्वाध्याय, सत्संग, कथा, कीर्तन, दान, पुण्य, होम, यज्ञ, पूजा अर्चना आदि सभी धार्मिक कृत्यों का अपना-अपना महत्त्व और लाभ है। इन सभी से आत्मिक उन्नति, पवित्रता एवं पुण्य परमार्थ की वृद्धि होती है पर "आत्म-शक्ति" की वृद्धि का प्रयोजन 'तप' के अतिरिक्त किसी मार्ग से पूरा नहीं हो सकता। घर्षण से उष्णता पैदा होती है, जहाँ अग्नि न होगी, वहाँ गर्मी भी न होगी। इसी प्रकार आत्मशक्ति वहीं मिलेगी जहाँ तपस्या का आधार होगा। विलासी मनुष्य, विद्वान और उपदेशक तो हो सकता है पर उनका अन्तस्तल खोखला होता है, इसलिये उनकी निष्प्राण विद्वता एवं वाचालता न उनके अपने लिये कुछ लाभदायक होती है और न दूसरों के लिये। पहलवान बनने के लिये कसरत करने का कष्ट सहना पड़ता है, आत्मबल प्राप्त करने के लिये भी तपस्या की अग्नि में अपने को तपाना पड़ता है।

आत्म-बल एक प्रकार की सम्पत्ति है, जिसके बदले में भौतिक और आत्मिक दोनों ही प्रकार के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। अपना या दूसरों का हित साधन किया जा सकता है। पूर्व काल में तपस्वियों में अनेक प्रकार की चमत्कारी विशेषतायें होने के प्रमाण और उदाहरण पुराणों में भरे पड़े हैं। आज तप की ओर लोगों का ध्यान नहीं है। आरामपसन्द स्वभाव हो जाने के कारण लोग कष्टसाध्य मार्ग पर चलना पसन्द नहीं करते। तत्क्षण लाभ लोगों का उद्देश्य हो रहा है। चाहे कुमार्ग से ही हो, पर तुरन्त और अधिक होना चाहिये। देर तक जिस कार्य के लिये प्रतीक्षा करनी पड़े और आरम्भ में ही, जिसके लिये कठिनाई उठनी पड़े उसे पसन्द करने की अभिरुचि लोगों में नहीं है। यही कारण है कि आज तप की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई पड़ती है। कोई साधु-सन्त एकान्त स्थान में भले ही तपस्या करते हों पर सर्व-साधारण के नित्य-प्रति के व्यवहारिक जीवन में तपश्चर्या के लिये स्थान नहीं रह गया है। उपार्जन और विलास, काँचनी और कामनी के अतिरिक्त और किसी बात की ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता।

जन-प्रवृत्ति अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल, पर सत्य तो सदा सत्य ही रहता है। आजकल बहुत कम लोग सच बोलते हैं, कोई विरले ही ब्रह्मचारी रहते हैं, अधिकांश लोग असत्यवादी और विलासी हैं फिर भी सत्य और ब्रह्मचर्य की महिमा और महानता वैसी ही है जैसी कि सदा से थी। तप से जिस प्रकार पूर्व काल के लोगों का आत्म-कल्याण होता था वैसा ही आज भी होता है और आगे हो सकता है।

हाँ, एक बात अवश्य है कि युग-परिवर्तन के प्रभाव से वस्तुओं, प्राणियों, तत्वों तथा परिस्थितियों में जो अन्तर आ गया है, उसके अनुरूप तप के बाह्य परिणामों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्राचीनकाल में तपस्वियों में जो बाह्य विशेषतायें सहज ही उत्पन्न हो जाती थीं, वे अब नहीं होतीं। सतयुग में आकाश तत्व प्रधान था अन्य तत्व बहुत ही अविकसित थे। जीवों के शरीर भी आकाश तत्वों से भरे-पूरे थे, उस जमाने में थोड़ी सी ही साधना से 'ईश्वर' तत्व पर अधिकार हो जाता था और लोग सहज ही आकाश में उड़ना, लोक-लोकान्तरों की यात्रा, दूरदृष्टि, दूर श्रवण, दूरस्थ लोगों से बात-चीत आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते थे। आकाश का गुण शब्द है। उस समय शब्द ही एक प्रचण्ड शक्ति था। मन्त्र बल से बड़े-बड़े काम होते थे। विमान, अस्त्र, शस्त्र, वर्षा, अग्निकाण्ड, शाप, वरदान, जीवन दान, मृत्यु आदि बातें शब्द की मन्त्र की शक्ति से सुगमतापूर्वक होती रहती थीं।

पीछे त्रेता युग आया। उसमें अग्नि तत्व प्रधान था। लोगों के शरीर अग्नि प्रधान होते थे। सीता जी का अग्नि में प्रवेश कर जाना, साध्वी स्त्रियों की अग्नि परीक्षा देना, महात्मा योगाग्नि में अपने आप को भस्म कर देते थे। पति का स्वर्गवास हो जाने पर स्त्रियाँ संकल्प मात्र से अग्नि उत्पन्न कर लेती थीं और बिना किसी पीड़ा के उनके अग्नि तत्व प्रधान शरीर नष्ट हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते थे। यज्ञों में भी अग्नि मन्त्र बल से ही प्रकट हो जाती थी।

द्वापर में वायु प्रधान युग था। शरीर और वस्तुयें बड़ी हलकी होती थीं। इसलिये उनकी गति बड़ी तीव्र थी। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने में देर नहीं लगती थी। भारी-भारी बोझ भी आसानी से उठा लिये जाते थे। महाभारत में ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन है जो आज असम्भव दिखाई पड़ती हैं। वायु के आधार पर मनुष्य दीर्घ-काल तक बिना अन्न, जल सेवन किये जीवित रह जाते थे। पवन पुत्र हनुमान जी जैसे अनेक व्यक्ति वायु प्रधान गुण वाले थे। त्रेता की अपेक्षा द्वापर में उनकी संख्या अधिक रही है। उड़ने वाले घोड़ों की भी एक जाति उस समय मौजूद थी।

वर्तमान युग में जल और पृथ्वी तत्व की प्रधानता है। जल में कोमलता और पृथ्वी जड़ता अधिक है। जैसे कोमल पौधे बिना जल के जल्दी ही सूख जाते हैं वैसे ही लोग थोड़ी-सी आपत्ति आने पर मुर्झा जाते हैं। जड़ता का आलस्य, प्रमाद, अदूरदर्शिता, अज्ञान का अंश देह में अधिक भरा रहता है। इसलिये जो बातें पूर्व युगों में बहुत साधारण थीं, वे आज के युग में कष्ट साध्य एवं असम्भव हैं। इसलिये पूर्वयुगों का अनुकरण इस युग में नहीं किया जाता। स्त्री को पति के साथ जलना इस युग में वर्जित है क्योंकि अब न तो संकल्प मात्र से अग्नि प्रकट होती है और न बिना पीड़ा के शरीर जल सकता है। पिछले युग में इष्टदेव के प्रत्यक्ष दर्शन करने लायक जो दिव्य दृष्टि हर किसी में आसानी से उत्पन्न हो जाती थी वह अब सुसाध्याय नहीं रही। इसलिये अब किसी को इष्टदेव की प्रत्यक्ष झांकी नहीं हो सकती। सूरदास को ग्वाल बनकर और तुलसीदास की घुड़सवार बनकर अप्रत्यक्ष दर्शन हुये थे। जब ऐसे महात्मा प्रत्यक्ष दर्शन से वंचित रहे तो साधारण साधकों की तो गणना ही क्या है ?

कई तपस्वी, अपनी तपस्या का कोई चमत्कारी परिणाम सामने आते नहीं देखते तो निराश हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि पूर्वकाल के तपस्वियों की भाँति जब उनमें कोई विलक्षण चमत्कारी विशेषतायें उत्पन्न हों तो वे अपनी साधना को सफल समझें। इस प्रकार अधिकांश प्रचण्ड साधक भी अपने को असफल समझने लगते हैं तो साधारण साधकों की निराशा के बारे में तो कोई आश्चर्य की बात है ही नहीं।

तपश्चर्या के मार्ग पर चलने वालों को युग प्रभाव उत्पन्न देश, काल, वस्तु और व्यक्ति की मर्यादाओं को समझना चाहिये। एक समय युग प्रभाव के कारण जो बातें बालकों के हँसी-खेल के समान अत्यन्त साधारण थीं और जिन्हें हर कोई थोड़ी-सी साधना से प्राप्त कर लेता था, वे आज के लिये असम्भव हैं। जो बातें आज बड़ी भारी सिद्धियाँ मालूम होती हैं, वे किसी समय साधारण और सरल थीं। अणिमा, लघिमा, महिमा और ऋद्धि-सिद्धियाँ आकाश तत्व प्रधान युग में मामूली-सी बातें थी, आज वे बातें अत्यन्त उच्च कोटि के तपस्वियों के लिये भी कठिन हैं। युग परिवर्तन के सांसारिक प्रभाव का हेर-फेर होना प्रकृति के नियमों के ऊपर निर्भर है। युग प्रभाव तो परिवर्तनशील है पर सत्य में कभी परिवर्तन नहीं होता। "तपस्या से अत्यन्त कल्याण की प्राप्ति" यह एक स्थिर तथ्य है इसमें कभी भी परिवर्तन नहीं होता।

गायत्री द्वारा तप करके मनुष्य निश्चित रूप से ऐसा आत्मबल प्राप्त कर सकता है, जिससे उसका जीवन शुद्ध, पवित्र, सात्विक, महान, सुखी एवं शान्तिमय हो। अपने प्रभाव से वह दूसरों के जीवन में भी इन महानताओं को विकसित कर सकता है। अपने कर्म-बन्धनों को काट सकता है। प्रभु की कृपा का अधिकारी बन सकता है और जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करता हुआ अक्षम्य आनन्द का उपभोग कर सकता है। उसके अन्तःकरण में से निकले हुये शाप-वरदान भी सफल हो सकते हैं।

शास्त्रों में गायत्री को परम तप कहा गया है। स्कन्द पुराण में उल्लेख है—

"गायत्र्येव तपोयोगः साधनं ध्यानमुच्यते।

सिद्धानां सामता माता नातः किंचिद् वृहत्तरम्।"

अर्थात्—गायत्री ही तप है। गायत्री ही योग है। गायत्री ही सबसे बड़ा ध्यान और साधन है। इससे बढ़कर सिद्धिदायक साधन-तप और कोई नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री को पापनाशिनी, मोक्षदायिनी और कल्याणकारी कहा गया है। इस महाशक्ति की उपासना वस्तुतः एक ऐसी तपश्चर्या है जिसे गृहस्थ, विरागी, स्त्री और पुरुष, बालक तथा वृद्ध समान सुविधा से कर सकते हैं। तप ही एक मात्र साधन है, जो नरक रूपी समुद्र में गिरते हुये मनुष्य को बचाता, पाप कर्मों से उबारता और आत्मशक्ति बढ़ाता है। यह आत्मशक्ति ही संसार की वह सर्वोपरि वस्तु है जिसके द्वारा मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थ, मनोवांछित परिस्थिति और अक्षय शान्ति प्राप्त कर सकता है। दिव्य शक्तियों की सहायता और ईश्वरीय कृपा को उपलब्ध करना भी गायत्री तप द्वारा उपार्जित आत्म-शक्ति पर ही निर्भर है।

कथा है कि—अनादि काल में जब नीलकमल में ब्रह्माजी उत्पन्न हुये तो वे अकेले थे। उनने बहुत सोचा कि मैं क्या हूँ ? क्यों हूँ ? यह सब क्या है ? पर कोई बात समझ में नहीं आती थी। जब वे कुछ भी न सोच सके और बहुत हैरान हो गये तब आकाशवाणी हुई कि "तप करो।" ब्रह्माजी ने दीर्घकालीन तप किया, तब उन्हें आत्मज्ञान हुआ और अपना उद्देश्य तथा कार्यक्रम जाना। उन्हें गायत्री प्राप्त हुई जिसकी सहायता से उन्होंने चारों वेद रचे। उन्हें सावित्री प्राप्त हुई जिसकी सहायता से उन्होंने सृष्टि की रचना की। इसी प्रकार देवताओं और दानवों द्वारा समुद्र मन्थन के घोर तप की कथा आती है जिसकी उष्णता से चौदह रत्न निकले और श्रीहीन वसुन्धरा में जीवों के जीवन धारण करने के लिये आकर्षण का केन्द्र बने। तात्पर्य यह है कि ज्ञान और विज्ञान का, चेतन और जड़ का मूल कारण तप है। तप के बिना किसी भी वस्तु, विचार तत्व या गुण का होना सम्भव न था।

गायत्री-तपश्चर्या की शक्ति असाधारण-असामान्य है। स्वयम्भू मनु और सतरूपा रानी ने इसी का आश्रय लेकर भगवान को अपनी गोदी में खिलाने की असम्भव इच्छा को सम्भव बना लिया। दशरथ और कौशल्या ने तप से ही राम की गोदी में खिलाने के सौभाग्य का रसास्वादन किया। नन्द और यशोदा, देवकी और वासुदेव न भी पूर्वजन्मों में ऐसी ही तपस्या करके भगवान के भी माता-पिता बनने का अद्भुत अवसर पाया था।

अवतारी आत्माओं को भी तप करना पड़ा है, क्योंकि बिना तप के उनका शरीर भी ब्रह्मा जी की भाँति ही अशक्त रह जाता। राम का विश्वामित्र के आश्रम में जाना और चौदह वर्ष तक वनवास में तपस्वी जीवन बिताना सर्वविदित है। लक्ष्मण की चौदह वर्ष की गायत्री-साधना प्रसिद्ध है। सीता का वनवास में अशोक वाटिका और अन्त में वाल्मीकि आश्रम में तप करना सर्वविदित है। भारत ने चौदह वर्ष तक जो तप किया था उसी का प्रताप था कि वे बाण पर बिठाकर हनुमान को लंका पहुँचा सके।

शंकर जी तो साक्षात् योगिराज ही हैं। योग और तप ही उनका प्रधान कार्य है। उनकी वेश-भूषा का अनुकरण करके योगियों की एक परम्परा बन गयी है। शिव की अनेक लम्बी समाधियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। ऐसे अवधूत को पुनर्विवाह के लिये तैयार करना कोई साधारण काम न था, परन्तु पार्वती के उग्र तप ने इस असाधारण को भी साधारण बना दिया। चौबीस अवतारों की कथायें यह बताती हैं कि उनमें से हरेक ने तप किया है। यद्यपि उनकी आत्मा पूर्ण थी, परन्तु स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में आवश्यक क्षमता उत्पन्न करने के लिये भी तप करना आवश्यक था। देवता भी तप के प्रभाव से ही देवत्व के अधिकारी रहते हैं। इन्द्र की इन्द्र पदवी उनकी तपस्या के कारण ही थी। अतः तप देवत्व को जन्म देता है, यह सत्य है।

धरती के देवदूतों में से सभी ने इसी मार्ग का अनुसरण किया है। भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, ईसामसीह, मोहम्मद साहब, जरथुस्त्र सुकरात, शंकराचार्य, माधवाचार्य, अरविन्द, महर्षि, रमण, गाँधी, बिनोवा, रामकृष्ण परमहंस, रामतीर्थ आदि ने जो तप किये हैं, वे इतिहास के पाठकों को भली प्रकार विदित हैं। इनमें से प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से आत्मशुद्धि और दिव्य शक्ति प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य व्रत, उपवास, तितीक्षा, त्याग, आराधना आदि तपश्चर्याओं का अवलम्बन लिया था। उसी के कारण उनका चरित्र, व्यक्तित्व एवं प्रभाव बढ़ा और उसी के कारण वे अपने विचारों की छाप अपने अनुयायियों पर डाल सके। संसार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्येक देश में वे ही व्यक्ति पूजनीय माने गये हैं, जिन्होंने अपनी आत्मा को तपाकर निर्मल एवं प्रकाशवान् बनाया है।

यों तो तप के अनेक मार्ग हैं। साधक अनेक पद्धतियों से अपनी साधनायें करते हैं और उनसे यथासम्भव लाभ भी उठाते हैं, परन्तु अध्यात्म विज्ञान के सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने अपने योगबल से यह देख लिया था कि गायत्री महाशक्ति की सहायता के बिना कोई भी तप अधिक फलदायी नहीं हो सकता। इसीलिये उपासना पद्धति में इस महामन्त्र को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि यहाँ इसी महाविज्ञान के आधार पर आत्मकल्याण के महान् अभियान किये जाते रहे हैं। प्रायः सभी ऋषियों ने इस राजमार्ग को अपनाया है। ऋषि-महर्षियों में जो विशेषतायें थीं, उनमें उनकी तपस्या ही एकमात्र कारण थी। विश्वामित्र, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, अत्रि, भारद्वाज, गौतम, कपिल, कणाद, पतंजलि, व्यास, वाल्मीकि, च्यवन, शुकदेव, नारद, दुर्वासा आदि ऋषियों के जीवन वृतान्त पर विहंगावलोकन किया जाय, तो सहज ही पता चल जाता है कि उनकी महानता का, उनके अद्भुत एवं महान कार्यों का कारण उनका गायत्री तप ही था।

महर्षि विश्वामित्र द्वारा अपने तपोबल की शक्ति से नयी सृष्टि का बनाया जाना और त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की कथा प्रसिद्ध है। वशिष्ठ की कामधेनु-(गायत्री) को लेने के लिये जब राजा विश्वामित्र गये थे, तब वशिष्ठ जी ने निरस्त्र होते हुये भी राजा की भारी सेना को परास्त कर दिया था। इससे प्रभावित होकर विश्वामित्र ने भी गायत्री की महान् तपश्चर्या की और अन्ततः ब्रह्मर्षि पद पर आरूढ़ हुये। भगीरथ इसी तप के आधार पर गंगाजी को स्वर्ग से धरती पर लाये थे। अम्बरीश की गायत्री साधना से अर्जित शक्ति जब दुर्वासा ऋषि के पीछे मृत्यु-चक्र बनकर दौड़ी तो अन्त में दुर्वासा को अम्बरीष की शरण लेकर ही प्राण बचाने पड़े थे। इस प्रकार की अगणित कथायें ऐसी हैं, जिनसे प्रकट है कि गायत्री तप के द्वारा दिव्य विलक्षण शक्तियाँ तपस्वी में उत्पन्न होती हैं।

तपशक्ति उत्पादन के विशुद्ध विज्ञान द्वारा ही तपस्वी को निश्चित रूप से आत्मशक्ति मिलती तथा देवताओं और ऋषियों के अनुदान-आनुदान वरदान बरसते हैं। इतिहास साक्षी है कि तपस्वियों को देवताओं-ऋषियों के वरदान से अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियाँ प्राप्त हुईं और उस कृपा के कारण वे असाधारण लाभों से लाभान्वित हुये हैं, तप के द्वारा सांसारिक सुख-सौभाग्यों से परिपूर्ण बनने वालों के उदाहरण भी कम नहीं हैं। ध्रुव ने तप करके राज्य पाया था। राजा दिलीप के संतान नहीं थी। उनने पत्नी समेत महर्षि वसिष्ठ के आदेशानुसार नन्दिनी (गायत्री) की उपासना की ओर महाप्रतापी पुत्र-रत्न पाया। योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ की भस्म विभूति के द्वारा महायोगी गोरखनाथ का जन्म हुआ था। अंजनी ने कठिन तप करके बजरंगी हनुमान का प्रसव किया था। कर्ण को गायत्री की सुविधा साधना के कारण ही नित्य सौ मन स्वर्ण प्राप्त होने का वरदान था, जिसे वह दान कर देते थे। परशुराम अकेले होते हुये भी पृथ्वी के समस्त राजाओं को सेना समेत संहार करने में सफल हुये थे। धौम्यऋषि के आशीर्वाद मात्र से आरुणि को समस्त विद्यायें प्राप्त हो गयी थीं। दधीचि ऋषि की हड्डियों में इतना प्रचण्ड तेज आ गया था कि उन्हीं के द्वारा बना हुआ वज्र वृत्रासुर को मारने में सफल हुआ।

पुरुषों के समान ही महिलायें भी तप करने की पूर्ण अधिकारिणी हैं। गायत्री माता की गोदी में उसके पुत्र और पुत्री समान रूप से क्रीड़ा कल्लोल कर सकते हैं और समान रूप से पयःपान कर सकते हैं। इतिहास-पुराणों को पढ़कर यह भली प्रकार जाना जा सकता है कि प्राचीनकाल में नारियाँ भी पुरुषों के समान ही तपश्चर्या के क्षत्र में बढ़ी हुई थीं। पार्वती जी का तप प्रसिद्ध है। गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया, अरुन्धती, अहिल्या, मदालसा, गांधारी, देवयानी, द्रौपदी, गौतमी, अपाला, दिति, अदिति, शची, सुकन्या, घोषा, लोपामुद्रा आदि अगणित महिलायें तपश्चर्या एवं आत्मशक्ति में पुरुष तपस्वियों से किसी प्रकार कम न थीं। अनसूया के तपबल ने तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक को ६-६ माह के शिशु बना दिया था। सती शाण्डिली के तपोबल ने सूर्य के रथ को रोक दिया था। सावित्री ने तपबल के आधार पर अपने पति को यमराज से छुड़ा लिया था। कुन्ती ने कुमारी अवस्था में गायत्री मन्त्र द्वारा सविता के भर्ग को आकर्षित किया था और उसी के द्वारा महाप्रतापी कर्ण का जन्म हुआ था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः तप ही सम्पूर्ण प्रगति का आधार है। देवताओं के वरदान तपस्वियों को ही सुलभ होते हैं। मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियाँ तपस्या द्वारा ही प्रकाशित होती हैं। समुद्र में भरे रत्न गोताखोर ही ढूँढ़ पाते हैं। कठोर पुरुषार्थ द्वारा समुद्र-मंथन किया गया, तभी अमूल्य चौदह रत्न प्राप्त हो सके। देवताओं को तपस्या द्वारा ही गौरवशाली पद प्राप्त हुये। भौतिक उन्नति के लिये प्रचंड पुरुषार्थ, अखंड मनोयोग, अनवरत् श्रम और असीम साहस की आवश्यकता है। आध्यात्मिक प्रगति के लिये तो और भी अधिक मूल्य चुकाना ही पड़ता है। भारतीय धर्मशास्त्र एवं पुराणों में असंख्य आख्यान तप-साधना की महत्ता के भरे पड़े हैं। ऐतिहासिक महामानवों, ऋषियों, तत्वदर्शियों, देवदूतों की प्रसिद्धि और सिद्धि का आधार तप का प्रकाश ही रहा है। विशिष्ट शक्तियों-सामर्थ्यों का स्रोत तपश्चर्या ही है। तप द्वारा ही आध्यात्मिक शक्तियाँ और सिद्धियाँ आज तक उपलब्ध होती आई हैं और भविष्य में भी वही एकमेव मार्ग रहने वाला है।

पार्वती ने शिव को पति रूप में वरण करने के लिये कठोर तप किया था। सौर-मंडलों का केन्द्रबिन्दु बनने के लिये ध्रुव द्वारा की गयी तपस्या प्रख्यात है। च्यवन पत्नी सुकन्या ने तप करके अश्विनी कुमारों को प्रसन्न किया था और उनने आकर उन्हें वृद्धावस्था तथा नेत्रान्धता से मुक्ति दिलाई थी। ऋषियों में से प्रत्येक को तपस्यारत रहना पड़ा है और उसी से उपलब्ध सामर्थ्य द्वारा लोकहित के अनेक प्रयोजनों को सफल बना सकना सम्भव किया है। इसी क्षेत्र में समुन्नत स्तर के लोग देवता बने हैं। इससे पूर्व वे भी सामान्य स्तर के मनुष्य ही थे।

दैत्यों की विकराल शक्तियों का स्रोत भी तप साधना ही रहा है। वे अपने अन्तराल को उत्कृष्ट न बना सके और भौतिक स्तर की महत्त्वाकांक्षायें सँजोये रहे। उनने तदनुरूप ही वरदान पाये और अपने पुरुषार्थों के निमित्त अभीष्ट वरदान पाये। इस वर्ग के रावण, कुम्भकरण, हिरण्यकश्यप, वृत्रासुर, महिषासुर आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। शक्तियाँ उनमें भी अकूत थीं, पर चूक दिशा निर्धारण में हुई। फलतः भस्मासुर जैसे दैत्य वरदान देने वाले शिव-पार्वती पर ही अपना जोर अजमाने लगे। दुर्वासा-तपस्वियों में अग्रणी थे, परन्तु क्रोध पर संयम न रख पाने के कारण अम्बरीष, शकुन्तला आदि को तनिक-तनिक सी बातों पर शाप देते फिरे फलतः उनकी तपस्या निरर्थक ही नहीं गयी, अपितु बदनाम भी होती रही।

मानवी सत्ता में बीज रूप से सभी उच्चस्तरीय शक्ति स्रोतों का समावेश है। तपश्चर्या द्वारा उन्हीं के बीज से वृक्ष बनने जैसी सफलतायें उपलब्ध होती हैं। विद्युत उत्पादन के यन्त्र जेनरेटर ही शक्ति का उत्पादन करते हैं। उन्हीं के द्वारा अनेक भले-बुरे प्रयोजन सिद्ध होते हैं। बिजली की शक्ति से ही ट्यूबवेल चलते और हजारों हैक्टेयर जमीन सींचते हैं। वहीं बिजली श्मशान घाटों में बने विद्युत शव-दाहों द्वारा मुर्दों का भी मिनटों में दाह-संस्कार कर देती है। तार लीक करने लगे तो अग्निकांड होने तथा छू जाने पर प्राणघातक झटका लगने का भी डर रहता है।

शक्ति स्रोत यों ब्रह्माण्डव्यापी भी हैं, पर उनका निकटतम माध्यम अपने भीतर ही है। जिस दैवी या दानवी शक्ति को बलिष्ठ बनाना होता है, उसके लिये अन्यत्र भागने की जरूरत नहीं पड़ती। अपने ही खेत में उसे उगाना पड़ता है। दूरवर्ती कहीं अन्यत्र बीज बोने पर न तो उसकी देखभाल हो पाती है और न उस पर अपना पूर्ण अधिकार ही बनता है। अपने खेत में उगाई और अपने द्वारा सींची फसल ही अपने गोदाम भरती है। तपस्या का सीधा-सा अर्थ इतना ही है कि ब्रह्माण्डव्यापी महान् क्षमताओं में से जिसे विकसित करना हो उसे अपने अन्तराल में ढूँढा, कुरेदा और जगाया जाये। अपने ही अधिकार क्षेत्र की खदानों को खोदने पर जो खनिज निकलते हैं, उन पर अपना अधिकार होता है। अन्यत्र भी वे खदानें हो सकती हैं, पर उन पर अपना अधिकार कहाँ बनता है ? अपने ही कुएँ के पानी से जिन्दगी कटती है। बाहर की प्याऊ पर तो कभी-कभी ही प्यास बुझती है।

देखने में मानवी काया हाड़-माँस का मल-मूत्र का पोटला मात्र है। उसके अवयवों का सारतत्व निकाला जाय तो कैलशियम, पोटेशियम,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोहा, फास्फोरस, चर्बी, पानी आदि का मूल्य इस महँगाई के जमाने में चार-छः रुपये बैठता है, जबकि मरे जानवरों का ढाँचा ही सौ रुपये के लगभग का मसाला दे जाता है। प्रत्यक्षतः मनुष्य कोल्हू के बैल की तरह चलता, गधे की तरह लदता हुआ रोता-रुलाता मौत के दिन पूरे करता है। पेट की भूख और प्रजनन की सनक पूरी करते रहना ही मुश्किल से बन पाता है। इतना होते हुये भी यदि गहराई में उतरा जाये तो गाँधी जी जैसे ६६ पोण्ड भारी और पाँच फुट दो इंच ऊँचे दुर्बलकाय व्यक्ति भी लाखों व्यक्ति उत्पन्न कर सकते हैं और ब्रिटिश गवर्मेन्ट जैसे शक्तिशाली से टक्कर मारकर उसे पलायन करने के लिये विवश कर सकते हैं। बिनोवा जैसे व्यक्ति भूदान से लाखों एकड़ भूमि उपलब्ध कर सकते हैं और सर्वोदय आन्दोलन को कहाँ से कहाँ पहुँचा सकते हैं। यह उनकी अन्तरंग क्षमताओं का प्रभाव है। शारीरिक या आर्थिक दृष्टि से तो वे गये-गुजरे लोगों की श्रेणी में ही आते हैं। उनने अन्तराल में समाहित अमृत निर्झरों को खोजा और चरम सीमा के प्रभावशाली बन गये।

मानवी सत्ता इतनी रहस्यमयी है कि उसे भली-भाँति समझ पाना अति कठिन है। महाभारत में महर्षि व्यास ने एक अत्यन्त गुप्त रहस्य प्रकट करते हुये लिखा है—**गुह्यंब्रूत्यातददं ब्रवीमि। नहि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित।** अर्थात् एक गुप्त रहस्य बताता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर इस संसार में और कुछ नहीं है। जिन देवताओं से मनुष्य तरह-तरह के वरदान पाने की मनुहार करता है, वे वस्तुतः ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण उसकी आत्मा के इसी देव मन्दिर में बीज रूप में विद्यमान हैं। शिव-संहिता-२१६-२ में उल्लेख है—'इसी शरीर में सप्तद्वीपों सहित सुमेरु पर्वत, नदियाँ, पर्वत शिखर, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि-मुनि, समस्त गृह-नक्षत्र, पुण्यतीर्थ, पीठ और उन पीठों के देवता सभी विद्यमान हैं। आत्म सत्ता में सन्निहित-विश्व ब्रह्मांड की इन समस्त विभूतियों को यदि योग और तप साधना द्वारा जगाया जा सके तो जीवात्मा को देवात्मा और परमात्मा बनने का अवसर मिल सकता है।

संसार के महामानवों ने अपने व्यक्तित्व का विज्ञान पक्ष विकसित किया है। प्रामाणिक और मनस्वी बने हैं और ऐसे कामों में हाथ डाला है जिनके साथ लोक-मंगल की संभावना सुनिश्चित रूप से जुड़ी हुई रही है। इन्हीं कारणों से उनकी प्रतिभा का उत्कृष्ट स्तर उभरा और अगणितजनों का विश्वास, स्नेह, सहयोग प्राप्त करके इतने महत्त्वपूर्ण कार्य कर सके, जिन्हें अति मानवी कहकर आश्चर्य किया जाता है।

यह जीवन साधना की बहिरंग और दृश्यमान तपश्चर्या हुई। इससे गहरी और अगली दूसरी है। इसमें अन्तरंग के शक्ति स्रोतों को अन्तर्मुखी होकर खोजना पड़ता है और उस क्षेत्र में दबे हुये देव-वैभव को उसी प्रकार ढूँढ़ निकाला जाता है जैसे कोयला खदानों से हीरे, गहरे समुद्र से मोती एवं गहरी बोरिंग करके खनिज तेलों को ऊपर खींच निकाला जाता है। यह अपनी अनौखी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। आत्म विज्ञान के इन स्रोतों को कोई बिरले ही जानते हैं कि अपने भीतर कितनी प्रचण्ड चेतन क्षमता भरी पड़ी है। उनकी चर्चा तो षट्चक्र बन्धन, पंचकोष, अनावरण, कुण्डलिनी, जागरण, सहस्रार-विकिरण एवं ऋषियों के रूप में विवेचन होता रहता है। अतीन्द्रिय क्षमताओं और लौकिक शाप-वरदान जैसे कृत्यों का ऊहोपोह भी उसी सन्दर्भ में होता रहता है।

तपस्या का प्रसंग इससे भी ऊँचा है। उसमें अदृश्य शक्तियों को प्रत्यक्ष देव रूप में सामने प्रकट होने के लिये बाधित किया जाता है और उनके मुँह से वरदान माँगने के लिये कहलाया जाता है। मनोरथ प्रकट करने पर तथास्तु ऐसा ही हो कहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। उन्हें उसे वरदान भी देने पड़ते हैं, जो उनकी इच्छा पर नहीं साधक की कामना के अनुरूप होते हैं। तपस्या का यह प्रभाव इतिहास पुराणों के पन्ने-पन्ने पर अंकित देखा जा सकता है।

भगवान सबसे बड़े हैं, पर स्वयंभू मनु और शतरूपा रानी ने तप करके भगवान को अपनी गोदी में खेलने वाला बच्चा देखने की इच्छा की और उसे पूर्ण करने में सफलता पायी। ब्रह्मा जी ने तप करके गायत्री और सावित्री को आत्मिकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भौतिकी को अपनी सहचरी बनाने में सफलता प्राप्त की और सृष्टि संरचना में समर्थ हुये। सूर्य तपता है और अपनी सम्पदा से प्राणी समुदाय को—सौरमण्डल के सदस्यों को चेतना एवं गति प्रदान करता है। शिव कैलाश शिखर पर बैठकर, विष्णु शेष शैया पर आसन जमाकर क्या करते रहते हैं ? इसे तत्वज्ञानी एक शब्द में कह सकते हैं कि—'तप'। इसी आधार पर सृष्टि की उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्धन की कार्यपद्धति अपने क्रम से चलती है।

विश्वामित्र आजीवन तपस्यारत रहे। उनकी तपश्चर्या का एक प्रयोजन नयी दुनिया का निर्माण भी था। हरिश्चन्द्र को उन्होंने उसी के लिये साधन जुटाने का आदेश दिया था। भगीरथ की तपस्या धरती की प्यास बुझाने और नरक में जलते पितरों का उद्धार करने के लिये थी। दधीचि ने अपने अस्थियों का वज्र बना सकने योग्य बनाने में समर्थ करने के लिये कठोर तप किया था। भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के आन्दोलनपरक कार्यक्रम ही नहीं थे, उसे सफल बनाने के लिये उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में कठोर तपश्चर्यायें भी की थीं।

तपश्चर्या निजी लाभ और ख्याति के लिये भी हो सकती है और उदात्त दृष्टिकोण को अपनाकर लोककल्याण एवं सामयिक समस्याओं के समाधान के लिये भी। इसका पुरातन इतिहास तो है ही, साथ ही आधुनिक सच्चे योगाभ्यासियों का भी एक बड़ा समुदाय अपनी इन्हीं आँखों के सामने से गुजरा है। पांडिचेरी के अरविन्द घोष की तपश्चर्या ऐसी ही थी। वे देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे। इसके लिये छात्रावस्था से लेकर राजाओं का दरवाजा खटखटाने और नेशनल कालेज में विद्यार्थी बुलाने से लेकर बम पार्टी गठित करने तक के कार्यों से जब कुछ बात बनती न दीखी तो वे एकान्त साधना में तल्लीन हो गये और वातावरण को इतना गरम कर दिया कि उन्हीं दिनों एक से एक बढ़कर महामानव प्रचण्ड चक्रवातों की तरह उत्पन्न हुये और उन्होंने वह कर दिखाया जो अद्भुत और अनुपम था। प्रसिद्ध नेताओं में अनेकों नाम हैं, पर वैसे न तो इसके पहले उत्पन्न हुये थे और न पीछे ही, विनिर्मित खड़े हो पाये हैं। अरविन्द की तरह ही महर्षि रमण की तपश्चर्या भी थी, जिसने सारे देश के जन समुदाय को और विदेशी मूर्धन्यों को भी प्रभावित किया। चाणक्य, समर्थ गुरु रामदास, कबीर जैसे महामानवों के शिष्यों की कृतियाँ या उनके जीवन की घटनायें ही लोगों को मालूम हैं। यह बात विरलों को ही ज्ञात है कि देश का कायाकल्प करने के लिये निजी जीवन में उनने क्या-क्या कठिन तपस्यायें की थीं।

निश्चय ही तप की महिमा और महत्ता विलक्षण और अद्वितीय है। यही वह आधार है जिसका आश्रय लेकर मनुष्य नर से नारायण बनता है। पुरुष से पुरुषोत्तम और आत्मा से परमात्मा बनने का यही मार्ग है।

सर्वतोमुखी सुदृढ़ता की उपलब्धि तप साधना से

गर्मी से दृढ़ता आती है यह तथ्य सर्वविदित है। कच्ची मिट्टी मुलायम होती है किन्तु उसके बने बर्तन आवे में पका दिये जाये तो वे धातु निर्मित पात्रों का काम देने लगते हैं। कच्ची ईंटों के बने मकान आये दिन टूटते-फूटते रहते हैं किन्तु भट्टे में पकी ईंटें पत्थर जैसी मजबूत हो जाती हैं। खदान से निकलते समय धातुयें मिट्टी मिली होती हैं। आग में पकाने के बाद वे शुद्ध होती है और असली रूप से प्रकट होती हैं। लोहे को फौलाद स्टेनलैस स्टील—लौहभस्म आदि बनाने के लिये बार-बार तपाना ही एकमात्र उपाय है। आभूषण, औजार आदि के रूप में परिणित होने के लिये धातुओं को गलाने जितने स्तर का तापमान सहना पड़ता है। सोने को खरा घोषित करने के लिये तपाया जाना ही प्रमुख कसौटी है।

पानी को भाप बनाने में—दो लोहे के टुकड़ों को आपस में जोड़ देने में, गर्मी की ही भूमिका रहती है। सुस्वादु और सुपाच्य भोजन का निर्माण चूल्हे पर चढ़ाये जाने पर ही होता है। मशीनों के चलाने के लिये आवश्यक ऊर्जा अग्नि के सहारे ही उत्पन्न होती है। सूरज तपता है तो पृथ्वी गृह पर हलचलें होती हैं। शरीर में अब तक गर्मी है तभी तक जीवन है। अग्नि की—गर्मी की क्षमता सर्वत्र देखी जा सकती है। वस्तुतः गर्मी ही जीवन है। अण्डा हो अथवा भ्रूण, उसे माता अपने शरीर की गर्मी देकर ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पकाती है। वनस्पतियों का उगना और फलना-फूलना गर्मी पर ही निर्भर है। ठण्डक की ऋतु में सब कुछ ठप्प हो जाता है। हरे-भरे पेड़ तक पत्ते गिरने से ठूँठ बन जाते हैं। सर्दी में दिन ही नहीं सिकुड़ता—हर प्रक्रिया पर शिथिलता छाई दीखती है।

भौतिक प्रगति में चेतना की गर्मी ही उत्पादन और विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है। उत्साह, स्फूर्ति, साहस, उमंग, जीवट, श्रमशीलता जैसे गुणों में आन्तरिक उष्णता ही काम करती है। ओजस्, तेजस् और वर्चस् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में उभरने वाली ऊर्जा ही तो है। मनस्वी, तेजस्वी और तपस्वी अपनी भीतरी प्रखरता का परिचय देते हैं। यह ऊष्मा जब कम पड़ती है तो मनुष्य आलसी, निराश, उदास, भयभीत बन जाता है। ऐसे ही साहस रहित व्यक्ति को कायर, क्लीब आदि शब्दों से परिष्कृत किया जाता है। उन्हें पिछड़ेपन की दयनीय, उपहासास्पद परिस्थितियों में दिन गुजारने पड़ते हैं।

प्रगति के लिये तपश्चर्या का पुरुषार्थ करना पड़ता है। भौतिक और आत्मिक दोनों ही क्षेत्रों में यह तथ्य एक जैसा काम करता है। भौतिक प्रगति में सफल हुये प्रत्येक व्यक्ति को अभीष्ट श्रम करना पड़ता है। किसान, मजदूर, विद्यार्थी, सैनिक, पहलवान, कलाकार, व्यवसायी, शिल्पी आदि सभी की सफलतायें उनके प्रयत्न, पुरुषार्थ, श्रम साहस पर निर्भर रहती हैं, इस प्रयत्न परायणता को एक प्रकार से भौतिक तपश्चर्या ही कहना चाहिये। जो इससे कतराते हैं वे दरिद्रता, दुर्बलता, अशिक्षा, उपेक्षा, शोषण आदि के शिकार होते और पग-पग पर आक्रमणों का अभावों का असफलताओं का दुःख भोगते हैं।

आत्मिक जीवन में भी यही बात है। उस क्षेत्र की प्रगति पूरी तरह इस तथ्य पर निर्भर है कि साधक में तपश्चर्या की साहसिकता किस मात्रा तक प्रचण्ड हो सकी। उपासना और साधना का तात्विक पर्यवेक्षण करने पर' प्रतीत होता है कि अध्यात्म विज्ञान का सारा ढाँचा ही यह प्रेरणा देता है कि प्रगति के लिये आवश्यक ऊर्जा उत्पन्न की जाये ऊपर उठने के लिये, आगे बढ़ने के लिये इस संसार में सर्वत्र ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। वायुयान या राकेट आकाश में फेंकने हों अथवा क्रेन से वजन को ऊपर उठाना हो, हर हालत में ऊर्जा की आवश्यकता पड़ेगी। पानी ऊपर से नीचे की ओर तो सहज ही गिर सकता है पर उसे कुएँ से ऊपर खींचना हो तो साधन और सामर्थ्य दोनों को ही जुटाना पड़ता है। व्यक्तित्व की—अन्तःचेतना को ऊपर उठाने के लिये भी तपश्चर्या से उत्पन्न ऊर्जा के बिना काम नहीं चल सकता है। पैदल चलने को शरीर में शक्ति चाहिये। मोटर चलानी हो तो भी शक्ति की व्यवस्था जुटानी होती है। जीवन को ऊँचा उठाना हो, आगे बढ़ाना हो तो भी समर्थता उत्पन्न करनी होगी।

सामर्थ्य आसमान से नहीं टपकती और न उधार—उपहार में किसी को मिलती है। उसे निजी प्रयत्न पुरुषार्थ से ही उपार्जित करना पड़ता है। देवताओं का अनुग्रह प्राप्त करने पर भी याचना मात्र से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होता। भिक्षुकों को भी उनकी प्रार्थना के आधार पर नहीं, पात्रता के आधार पर ही अनुदान मिलते हैं। अपंगों को देखकर दया उपजती है, और उन्हें उदारतापूर्वक दिया जाता है। सत्कर्म परायण सन्तों को भी श्रद्धापूर्वक कुछ दिया जाता है। इसके विपरीत निकम्मे लोगों की याचना प्रायः दुकरा ही दी जाती है। समर्थ भिखमंगों को जितना मिलता है, इससे कहीं अधिक भर्त्सना उन्हें सहनी पड़ती है। याचना किन शब्दों में कितनी देर की गई, दानी उस पर ध्यान नहीं देते, देने की उमंग याचक की पात्रता पर ही निर्भर रहती है। देवताओं की भी यही परम्परा है। मनोकामनायें पूरी करने के लिये जिस-जिस आडम्बर के सहारे उन्हें फुसला लेना अति दुष्कर है। इस आधार पर आत्मिक प्रगति के अपने देखने वाले, देवताओं के आगे गिड़गिड़ाते रहने वाले प्रायः निराश, असफल ही रहते देखे जाते हैं।

आत्मिक प्रगति की दिशा में अभीष्ट सफलतायें प्राप्त करने वालों का इतिहास आदि से अन्त तक एक ही तथ्य प्रमाणित करता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि उनने आवश्यक तपश्चर्या करके अपनी पात्रता विकसित की। फलतः उन्हें विभूतियों, सिद्धियों से लाभान्वित होने का अवसर मिला। महामानवों से लेकर ऋषि-महर्षियों तक की सफलतायें पूर्णतया उनकी तप साधना पर निर्भर रही हैं। मन्त्राराधन जादूगरी नहीं है। उसके पीछे प्रचण्ड तपश्चर्या की शक्ति ही चमत्कार प्रस्तुत करती है।

यथार्थता यह है कि भौतिक क्षेत्र की तरह ही आत्मिक क्षेत्र में भी आत्म-परिष्कार के लिये प्रबल पुरुषार्थ करने पड़ते हैं। उन्हीं के आधार पर वह क्षमता विकसित होती है, जो अन्तर्जगत की प्रसुप्त दिव्य क्षमताओं को जगाकर किसी को विभूतिवान् बना सके। इसी आधार पर दैवी अनुग्रह भी आकर्षित किये जाते हैं। वृक्षों का चुम्बकत्व बादलों को अपनी ओर खींचता है और उन्हें पानी बरसाने के लिये विवश करता है। धातुओं को खदानें भी इसी आधार पर बनती और बढ़ती हैं कि जमा हुआ धातु भण्डार अपनी आकर्षण क्षमता से दूर-दूर तक फैले हुये सजातीय कणों को खींचता रहता है और उनके खिंच-खिंचकर जमा होते रहने से खदान का आकार-भण्डार बढ़ता रहता है। फूल खिलता है तो भौंरे प्रशंसा करने, मधुमक्खी याचना करने और तितली शोभा बढ़ाने के लिये अनायास ही जा पहुँचती हैं। अच्छे डिवीजन से पास छात्रों को उच्च कक्षाओं में प्रवेश पाने तथा छात्रवृत्ति मिलने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। प्रतिभावानों को उनकी योग्यता के अनुरूप, पद, धन और मान अनायास ही मिलता जाता है। यही बात सिद्धान्ततः आत्मिक प्रगति की दिशा में अक्षरशः लागू होती है। साधक की पात्रता का विकास जिस अनुपात से होता है उसी क्रम में उसका वर्चस्व बढ़ता चला जाता है। इन दिव्य उपलब्धियों का उद्गम अन्तःक्षेत्र में भी है और व्यापक ब्रह्म सत्ता से भी अजस्र अनुग्रह बरसते हैं। दोनों ही क्षेत्रों की उपलब्धियों से साधक निहाल होता है। इतने पर भी मूल तत्व जहाँ का तहाँ है। जो पाना है उसका मूल्य चुकाया जाना चाहिये। कुछ में तो इस संसार में कुछ भी मिलने का नियम नहीं है। जो पाया है जो पाना है उसका मूल्य पहले या पीछे चुकाने की बात को किसी भी प्रकार झुठलाया नहीं जा सकता।

मूल्य देकर खरीदने का सिद्धान्त ही सही और सनातन है। घटिया चीजें स्वल्प मूल्य में और बढ़िया वस्तुयें महंगे दाम पर खरीदी जाती हैं। असली हीरा हजारों में और नकली थोड़े से पैसों में बिकता है। मूल्य के अनुरूप ही उनका महत्त्व और सम्मान है। जीवित दुधारू गाय बहुत दाम की आती है किन्तु मिट्टी की छोटी सी गाय कम पैसे में मिल सकती है। सस्ते और महंगे का अन्तर स्पष्ट है। जीवित गाय, दूध, बछड़ा, गोबर आदि बहुत कुछ देती है किन्तु खिलौना गाय से मात्र मनोरंजन ही हो सकता है। सस्ती पूजा-पत्री से जिन सिद्धियों की अपेक्षा की जाती है वे यदि किसी को मिल भी सकें तो नकली ही होंगी। उन से तरह-तरह के ध्यान दृश्य दीखने जैसे कौतुक कौतुहल मात्र ही सम्भव हो सकते हैं। उतने भर से आत्म-कल्याण की अथवा दूसरों की सहायता कर सकने जैसी आध्यात्म क्षमता किसी भी प्रकार उपलब्ध नहीं हो सकती।

भौतिक जगत में पुरुषार्थ और उसके प्रतिफल का—कर्म और भाग्य का सिद्धान्त पग-पग पर चरितार्थ होता है। पुरुषार्थी सफलता पाते और शेखचिल्ली कल्पनाओं के पंख लगाकर उड़ते रहते हैं। आत्मिक क्षेत्र का पुरुषार्थ तपश्चर्या है। याचना की भोंड़ी, तिरछी तरकीबें नहीं। यदि पुरुषार्थ की—पात्रता की—शर्त न रही होती तो हर याचना करने वाले की मनोकामनायें सहज ही पूरी होते रहने की परम्परा पाई जाती। तब किसी को पुरुषार्थ की कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाने की तनिक भी आवश्यकता न होती।

तथ्यों को समझा जा सके तो बहुमूल्य आत्मिक विभूतियों को प्राप्त करने के लिये उपयुक्त पुरुषार्थ करने का सिद्धान्त भी सहज ही समझ में आ जायेगा। आत्मिक पुरुषार्थ का नाम तपश्चर्या है। इसी मार्ग पर चलते हुये प्राचीनकाल के महान आत्मवेत्ता उच्चस्तरीय सफलतायें प्राप्त कर सकने में सफल हुये हैं। भागीरथ का गंगावतरण—पार्वती का शिववरण तप साधना से ही सम्भव हो सका था। तपस्वी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दधीचि की अस्थियों से ही व्यापक असुर साम्राज्य को ध्वस्त करने वाला वज्र बना। ध्रुव को परम पद तप से ही मिला। सप्त ऋषियों को उच्चस्तरीय गरिमा इसी आधार पर प्राप्त हुई। विश्वामित्र ने इसी शक्ति के आधार पर नई दुनियाँ बनाने का साहस किया था। परशुराम का तप ही उनके कुठार के रूप में संसार भर के अनाचार से लड़ सकने की क्षमता बनकर प्रकट हुआ था। शृंगी ऋषि के तप बल से ही उनकी मन्त्र शक्ति इतनी समर्थ हो सकी कि उनके आचार्यत्व में किया गया। दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ सार्थक हो सका। मध्यकाल में भी भगवान बुद्ध से लेकर योगी अरविन्द तक की परम्परा में तपश्चर्या ही प्रधान रही है।

असुर वर्ग की क्षमतायें भी तपश्चर्या के आधार पर ही उभरी थीं। पुराण साक्षी हैं कि हिरण्यकश्यप, रावण, कुम्भकरण, मेघनाद, मारीच, वृत्तासुर, भस्मासुर, सहस्रबाहु असुरों ने प्रचण्ड सामर्थ्य तप के बल पर ही प्राप्त की थीं। गृहस्थ जीवन में रहते हुये कितने ही नर-नारी तप साधना के सहारे उच्चस्तरीय आत्म-शक्ति का सम्पादन कर सके है। गान्धारी ने नेत्र शक्ति, संजय की दिव्यदृष्टि, कुन्ती की देव सन्तान, सुकन्या का पति की वृद्धता निवारण, सावित्री का यम संघर्ष, अनुसुइया द्वारा तीन देवों को बाल स्वरूप जैसे घटनाक्रमों में तप की क्षमता ही उभरती हुई दिखाई पड़ती है। लोक हित के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने वाले महामानवों में विलक्षण क्षमता का विकास साधना शक्ति के सहारे ही हो सका था। चाणक्य, समर्थ रामदास, गुरु नानक, ज्ञानेश्वर शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस आदि के द्वारा लोकहित के जो महत्त्वपूर्ण काम बन बड़े, उसमें उनके तपस्वी जीवन की गरिमा प्रकट होती है। तप साधना के स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकने पर उन सब में व्यक्तित्व को पवित्र, परिष्कृत, प्रखर बनाने वाली कष्टसाध्य जीवनयापन प्रक्रिया का समावेश तो निश्चित रूप में ही रहेगा। सरलतापूर्वक, स्वल्प श्रम में पूजा-पाठ करके ईश्वर अनुग्रह और आत्मोत्कर्ष का लाभ किसी को भी नहीं मिल सका है। जीवनयापन की रीति-नीति में आदर्शवादिता के लिये कष्ट सहन करने की नीति का समावेश किये बिना उपासना का मूल प्रयोजन पूरा ही नहीं होता। जहाँ वास्तविकता न होगी वहाँ प्रखर प्रतिफल भी कहाँ से प्राप्त होगा। सम्पन्नता, विद्वता, बलिष्ठता, प्रतिभा कलाकारिता जैसी भौतिक सम्पदायें प्राप्त करने के लिये जब प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ता है तो इन सबसे अत्यधिक मूल्यवान आत्मिक शक्ति को प्राप्त करने के लिये तप साधना से बचकर कोई सस्ती, सरल पगडंडी कैसे निकल सकती है। आत्मिक प्रगति का राजमार्ग तपश्चर्या के बलबूते पर ही पार किया जाता है।

आवश्यक नहीं कि हर किसी को घर छोड़कर वनवास में रहने या कठोर कष्टसाध्य उपचारों को ही अपनाना अनिवार्य हो। विशिष्ट उद्देश्यों के लिये—विशिष्ट उद्देश्यों के लिये—विशिष्ट व्यक्तियों के लिये वैसी कठोरता अपना सकना सम्भव होता है। इसके लिये संचित संस्कारों की और प्रचण्ड संकल्प शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। यह उच्चतम स्थिति है। आरम्भ छोटे से ही होता है। हर स्थिति का व्यक्ति अपनी वर्तमान स्थिति में भी तप साधना के सिद्धान्तों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश कर सकता है और उतने से भी अनुपातिक लाभ उठाता रह सकता है।

तप का तात्पर्य है गर्मी उत्पन्न करना। गर्मी रगड़ से उत्पन्न होती है। घर्षण ही ऊर्जा का उत्पादन स्रोत है। बिजली बनने से लेकर आग जलने तक समस्त प्रकार के ऊर्जा उत्पादनों का स्रोत घर्षण ही है। श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया की प्रतिक्रिया ही शरीर को जीवित रखने वाली गर्मी बनाये रहती है। तप का तात्पर्य है पशु-प्रवृत्तियों के विरुद्ध दैवी प्रकृति का टकराव उत्पन्न कर देना। इसी संघर्ष से अध्यात्म क्षेत्र की वह ऊर्जा उत्पन्न होती है, जिसे तप शक्ति के नाम से जाना जाता है। महान् आध्यात्मिक प्रयोजन इसी शक्ति के सहारे सम्पन्न होते हैं। समुद्र मन्थन से चौदह रत्न निकलने की कथा प्रसिद्ध है। जीवन-मन्थन से भी इसी प्रकार की विभूति का उत्पादन होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पशु-प्रवृत्तियों का निराकरण और उनके स्थान पर दैवी सत्प्रवृत्तियों का प्रतिष्ठापन। यही है उपासना का—साधना का—योग साधना का—तपश्चर्या का एकमात्र उद्देश्य। आध्यात्मिक क्षेत्र की समस्त सफलतायें एक इसी केन्द्र पर केन्द्रीभूत हैं। सिद्धियों का उद्गम स्रोत यही है। इस क्षेत्र में जागृति एवं प्रगति उत्पन्न करने के लिये तपश्चर्या की जाती है।

नरक से निकालकर स्वर्ग में पहुँचाने की क्षमता एकमात्र तपश्चर्या में ही है। इसलिये मदालसा ने अपने सभी पुत्रों को तपस्वी बनाया था। विनोबा की माता भी अपने तीनों बालकों को ब्रह्मज्ञानी बनाकर अपने परिवार को देवोपम सम्मान दिला गई। तप से स्वर्ग मिलता है। इस तथ्य के समर्थन में असंख्यों शास्त्र वचन और पौराणिक उपाख्यान उपलब्ध है। महामानवों की समूची बिरादरी वस्तुतः तपस्वियों की ही देव सेना है। उनमें से प्रत्येक ने अपनी पशु-प्रवृत्तियों के साथ—दैवी आदर्शवादिता का संघर्ष कराया है। सामान्य लोगों पर स्वार्थान्धता भोग-लालसा और वासना-तृष्णा ही छाई रहती है जबकि महामानव दैवी परम्पराओं को इस प्रखरता के साथ अपनाते हैं कि उसके सम्मुख पशुता को परास्त होते और पलायन करते ही देखा जा सके। स्वार्थ-परमार्थ के संघर्ष में कौन विजयी होता है ? पशु और देवता में से कौन जीतता है ? उसका उत्तर इस बात पर निर्भर है कि मानवी आकांक्षा और श्रमशीलता अपना समर्थन और योगदान किस पक्ष को प्रदान करती है। इस सन्दर्भ में आन्तरिक महाभारत होना निश्चित है। उस धर्मयुद्ध में जिनको जितना शौर्य, साहस एवं त्याग बलिदान प्रस्तुत करना पड़े, उसे उसी स्तर का तपस्वी कहा जा सकता है। जिसने जितनी तपशक्ति एकत्रित कर ली समझना चाहिये आत्मिक प्रगति का—अपूर्णता को पूर्णता में परिणत करने का लक्ष्य उसके उतना ही समीप आ गया। तप ही आत्मा की सबसे बड़ी शक्ति है। उसी के आधार पर ब्रह्मा जी ने सृष्टि रची। उसी के सहारे शेष जी पृथ्वी को धारण करते हैं। इसी क्षमता को जो जितना उत्पन्न उपलब्ध कर ले, समझना चाहिये कि उसकी आन्तरिक सम्पन्नता उसी स्तर तक समुन्नत हो गई।

आत्मिक प्रगति का जितने महत्त्व समझा हो उन्हें उस उपलब्धि का उचित मूल्य चुकाने का भी साहस उत्पन्न करना चाहिये। सिद्धियाँ सदा ही पुरुषार्थियों को प्राप्त रही हैं। विजयश्री शूरवीरों के ही हिस्से में आई है। आध्यात्मिक क्षेत्र का शौर्य, साहस, पौरुष, पराक्रम, तप-साधना के रूप में ही जाना जाता है। यहाँ एक बात पूरी तरह स्मरण रखी जानी चाहिये कि अकारण काय कष्ट देने को नहीं—उच्चस्तरीय आदर्शों के परिपालन में शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना आवश्यक है। इसी को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना तप साधना कहलाता है।

शक्तियों का केन्द्र—तप ही है

तप से शक्ति उत्पन्न होती है और उस शक्ति के द्वारा मनुष्य अनेक प्रकार के सांसारिक एवं आध्यात्मिक सुख-साधन प्राप्त करता है। तप के द्वारा किसी भी जड़-चेतन वस्तु का निखार एवं उत्कर्ष होता है। जड़ जगत् में, पंच भौतिक संसार में और अध्यात्म क्षेत्र में यह नियम एक समान काम कर रहा है।

जड़ जगत पर दृष्टि डालिये। सोना तपाने पर निखरता है। कच्चे लोहे को तपाने के बाद ही उससे मशीनें तथा औजार बनते हैं। मिट्टी के बर्तन जब अवे में पकते हैं तब उनमें मजबूती और सुन्दरता आती है। कढ़ाई में तपने पर अन्न से बढ़िया पकवान बनते हैं, लुहार, सुनार, हलवाई, रसायन बनाने वाले रंगरेज, धोबी, आदि की भट्टियाँ नित्य चेतती हैं, और उन पर चढ़ने वाले पदार्थ थोड़े ही समय में कुछ से कुछ बन जाते हैं।

घर्षण से भी अग्नि उत्पन्न होती है और उस आतप से अनेक वस्तुओं का परिपाक होता है। खराद एवं शान पर चढ़कर वस्तुओं में तीक्ष्णता सफाई एवं चमक पैदा होती है। हथियार, बर्तन, औजार, पुर्जे, रत्न, पत्थर आदि की घिसाई से उनके पूर्व रूप में भारी परिवर्तन होता है। बिजली, भाप, पैट्रोल, ऐटम आदि शक्ति स्रोतों का मूल उद्गम उनकी अग्नि ही है और उसी पर विज्ञान का सारा आधार निर्भर है। सूर्य की अग्नि में तपकर ही सारा जड़-चेतन संसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्म, विकास और विनाश के चक्र में चढ़ा हुआ गतिशील हो रहा है। वर्षा, बादल और वायु का संचार एक भौतिक तप का ही परिणाम है। अंडे और बच्चे, बीज और फल, जिस शक्ति के कारण पलते और पकते हैं, उसका नाम तप है। तप के तथ्य को यदि हटा दिया जाय तो शून्य-निस्तब्धता और गहन अन्धकार के अतिरिक्त इस संसार में और कुछ भी शेष न रहेगा।

सजीव प्राणिजगत पर दृष्टि डालिये तो मालूम पड़ेगा कि जिसको जो कुछ प्राप्त है वह उसके तप के कारण ही है। परिश्रम, कष्ट, सहिष्णुता, लगन, अध्यवसाय, एकाग्रता, निरन्तर, साधना प्रयत्न, पुरुषार्थ के कारण ही लोगों को तरह-तरह की शक्तियाँ, योग्यतायें, सामर्थ्य एवं सम्पदायें प्राप्त होती हैं। विद्यार्थी, व्यापारी, किसान, मजदूर, शिल्पी, संगीतज्ञ, चिकित्सक, नेता, साधु आदि सभी वर्गों के लोग अपने-अपने कार्य क्षेत्र में हमको अपने उद्देश्य के लिये अपने-अपने ढंग से तप करते हैं, जिसका तप जितना अधिक होता है, उसे उसी हिसाब से सफलता एवं सम्पन्नता मिलती-चलती है। इतिहास बताता है कि पुरुषार्थ प्रधान जातियाँ आगे बढ़ीं और ऊँची उठीं। इसके विपरीत आलसी, विलासी, भीरु, अकर्मण्य लोग व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से विनाश के गर्त में चले गये। जो वृक्ष ऋतु प्रभावों को सहते हैं वे ही दीर्घजीवी होते हैं और जिनकी सहनशक्ति निर्बल होती है, वे थोड़ी-सी सर्दी-गर्मी में ही नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार तपस्वी मनुष्य ही सफल होते देखे गये हैं।

कहीं-कहीं तप और सत्परिणाम की संगति दिखाई नहीं पड़ती, उसका कारण संचित और आगत कर्मों का विधान ही है। किन्हीं को स्वल्प प्रयत्न में या बिना प्रयत्न के ही बहुत लाभ होता देखा गया है, इसमें उसके पूर्व संचित सुकृत ही प्रधान कारण है। जब उसकी वह संचित पूँजी, समाप्त हो जायेगी तो उसे अपने वर्तमान स्वल्प प्रयत्नों के अनुकूल स्वल्प परिणाम ही उपलब्ध रहेगा। इसी प्रकार जिनके पिछले दुष्कृत, दुर्भाग्य इस समय भोगने अनिवार्य हैं, उनका वर्तमान तप असफल रहता हुआ दिखाई पड़ता है परन्तु जैसे ही वह पुराना भोग समाप्त हुआ कि नवीन सुकृत का आशाजनक सत्परिणाम तुरन्त सामने आ उपस्थिति होता है। संचित और आगत कर्मों के परोक्ष विधान के अनुसार किन्हीं के तप से न्यूनाधिक लाभ होता दिखाई दे तो भी इतना निश्चित है कि तपस्या कभी भी निष्फल नहीं जाती, उसका यथोचित परिणाम अवश्य ही प्राप्त होता है। संसार का यह अविचल और अकाट्य नियम है।

शक्ति का उद्गम स्थान तप है। तप से शक्ति उत्पन्न होती है। उस शक्ति को उचित या अनुचित मार्ग में लगाना मनुष्य की अपनी इच्छा के ऊपर निर्भर है। चोर, डाकू, लुटेरे एवं कुकर्मी लोग भी अपने ढंग से काफी तप करते हैं और अपने क्षेत्र में उसका परिणाम भी पाते हैं। यह दूसरी बात है कि शक्ति का दुरुपयोग करने एवं कुमार्ग में लगाने का पीछे चलकर उन्हें दुष्परिणम भुगतना पड़े। चाकू का काम काटना है, उससे फल काटना या उँगली काटना अपनी इच्छा पर निर्भर है। तप से शक्ति उत्पन्न होती वह शक्ति कहाँ, कब, किस प्रयोजन के लिये किस प्रकार प्रयुक्त की जाये, यह उस प्रयोक्ता की इच्छा पर निर्भर है।

यह संसार तप के आधार पर बना है, और उसी के आधार पर उसकी जीवन-चर्या एवं गतिशीलता निर्भर है। जड़-चेतन सभी पर इस दैवी विधान के नियम समान रूप से काम कर रहे हैं। यह नियम आध्यात्मिक क्षेत्र में तो और भी व्यापक रूप से काम करता है। सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक जितने भी आत्म-शक्ति-सम्पन्न महापुरुष हुये हैं उनकी महत्ता का एक ही कारण रहा है और वह था—तप।

परमात्मा ने मनुष्य के शरीर और मन में अनेक सूक्ष्म शक्तियों के अद्भुत भण्डार भर दिये हैं, उसके अणु अणु में चमत्कारी दिव्य शक्तियों के कोष छिपे हुये है। यह कोष सुषुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। जिस प्रकार रात्रि में सब जीवन जन्तु सोते रहते हैं और प्रातःकाल सूर्य की गर्मी फैलते ही निद्रा खुल जाती है उसी प्रकार तप की गर्मी से वे सुषुप्त शक्ति कोष जागृत होते हैं और मनुष्य उन ईश्वर प्रदत्त सूक्ष्म शक्तियों के बल से सुसज्जित हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है, जो चिरकाल में उसके भीतर सोई हुई पड़ी थीं। जैसे चिड़ियों की छाती की गर्मी से अण्डे पकते हैं, जैसे आम के कच्चे फलों को अनाज या भूसे में पाल लगाकर उन्हें पकाते हैं वैसे ही तप की गर्मी से गुप्त मनःशक्तियों का परिपाक होता है और सुपक्व मधुर परिणामों का आविर्भाव होता है।

स्थूल से सूक्ष्म की शक्ति सदा ही असंख्य गुनी होती है। शरीर से बुद्धि सूक्ष्म है और बुद्धि से आत्मा सूक्ष्म है। शरीर से मजदूरी करने वाला मजदूर एक दिन जितना कमाता है बुद्धि से मजदूरी करने वाला वकील उससे अधिक कमा लेता है। पहलवान की अपेक्षा विद्वान की प्रतिष्ठा होती है क्योंकि शरीर की अपेक्षा बुद्धि सूक्ष्म है और उसकी सामर्थ्य भी अधिक है। शरीर बल और बुद्धि बल, दोनों की अपेक्षा आत्म बल अधिक महान् है क्योंकि शरीर और बुद्धि दोनों की अपेक्षा आत्मा असंख्य गुनी सूक्ष्म है। तप के द्वारा आत्मा को उन शक्तियों का प्रकटीकरण एवं विकास होता है जिसके कारण मनुष्य देव श्रेणी में पहुँच जाता है, जिनके कारण हमारे पूर्वज जगद्गुरु, चक्रवर्ती शासक और स्वर्ण सम्पदाओं के स्वामी बने हुये थे।

शारीरिक और मानसिक तपश्चर्या में आज अधिकांश लोग लगे हुये हैं, वे उसका विवेक सम्मत सदुपयोग नहीं करते तो भी अपना काम चलाने लायक भोग-ऐश्वर्य उसी के आधार पर उपार्जित करते हैं। जो तप विहीन हैं आलसी, अकर्मण्य और दुर्बुद्धि हैं, वे इस संसार में भी अपनी कमजोरी के कारण दुर्दशाग्रस्त बने रहते हैं। आत्मिक तप की श्रेष्ठता का महत्त्व और माहात्म्य सर्वोपरि है। जो इस क्षेत्र में तपस्या करते हैं, वे उन सुख-सुविधाओं के स्वामी बनते हैं जिनका अन्य किसी मार्ग से प्राप्त होना सम्भव नहीं है। आत्मिक क्षेत्र की तपश्चर्या का इतिहास ही भारतीय संस्कृति का इतिहास है। भारतवासियों ने इसी क्षेत्र की सफलताओं और सम्पत्तियों को सच्ची सफलता और सम्पत्ति माना है इसीलिये ये देवपुरुष माने जाते रहे हैं और उनकी भूमि को "स्वर्गादपि गरीयसी" कहा जाता है।

प्राचीनकाल में राजा से लेकर रंक तक तप की दिशा में उत्साहपूर्वक अग्रसर होते थे। राजा अपने बालकों को गुरुकुलों में तपस्वी जीवन बिताते हुये शिक्षा प्राप्त करने के लिये वनवासी ऋषियों के सुपुर्द कर देते थे। उसी का परिणाम है कि भारतमाता की कोख से सदैव महापुरुष उत्पन्न होते रहे हैं। आज उस महानता का परित्याग करके लोग भोग और लाभ के निम्नस्तर पर उतर आये हैं, उसी का फल है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक शान्ति और उन्नति से रहित होने जा रहे हैं और चिन्ता, कलह, पाप एवं अशान्ति से सारा वातावरण प्रदूषित हो रहा है।

सच्ची शान्ति, उन्नति और सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये हमें तप का आश्रय लेना पड़ेगा। शारीरिक और बौद्धिक क्षेत्रों से ऊँचा उठकर आध्यात्मिक क्षेत्र का अपना कार्य क्षेत्र बनाना होगा। तब हम सांसारिक सुख-साधनों को सहज ही प्राप्त करते हुये उन महान लाभों के भी अधिकारी बन सकेंगे, जो सार्वभौम आनन्द के हेतु होते हैं।

मनुष्य जीवन की सच्ची सम्पत्ति तप है और तप का एकमात्र केन्द्र गायत्री है। गायत्री के अतिरिक्त तप का और कोई मार्ग नहीं। जितनी अनेक प्रकार को तपश्चर्यायें विभिन्न रूपों दिखाई पड़ती हैं उन सब का उद्गम गायत्री है। बिना गायत्री के कोई तप सफल नहीं हो सकता। जैसे बिना नींव जमाये कोई मकान खड़ा नहीं हो सकता, यदि खड़ा भी हो जाये तो ठहर नहीं सकता। इसी प्रकार गायत्री के कोई तपस्या न तो पूर्ण होती है और न उसमें सफलता ही मिलती है। तप का मूलतत्व गायत्री में सन्निहित "भर्ग" ही है।

कहा जा चुका है कि तप के घर्षण से ही शक्ति उत्पन्न होती है और उस शक्ति से ही संसार के सब कार्य चलते हैं। भौतिक संसार की भाँति आध्यात्मिक जगत् में भी यह नियम समान रूप से लागू होता है। मनुष्य की पाशविक मनोवृत्तियाँ उसे नीचे की ओर—पतन की ओर ले जाती हैं। यदि उसे ऊँचा उठना है तो विशेष तत्परतापूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है, इसे ही तप कहते हैं। पानी को कहीं भी छोड़िये वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नीचे ही रहेगा पर उसे नीचे की ओर से ऊपर की ओर ले जाना हो तो विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा। ऊपर से कोई चीज छोड़ी जाय तो यह क्षण भर में नीचे गिर पड़ेगी किन्तु यदि नीचे से कोई चीज ऊपर ले जानी हो तो उसके लिये बहुत साधन एवं उपकरण एकत्रित करने पड़ेंगे। पतनोन्मुखी मनोवृत्तियों को उर्ध्वगामी बनाने के लिये तप ही एकमात्र उपाय माना गया है।

मनुष्य के सामने दो ही मार्ग हैं—तप या पत, दोनों एक-दूसरे के उल्टे हैं। तप का अर्थ है ऊपर उठना, पत का अर्थ है पतित होना। जो तप नहीं करता उसे आध्यात्मिक पतन की ओर चलना पड़ेगा और जो आत्मिक पतन से बचना चाहता है, उसे तपन के लिये अग्रसर होना पड़ेगा। दोनों में से एक ही मार्ग को चुना जा सकता है।

यों अनेक धार्मिक प्रक्रियाएँ आत्म-कल्याण के लिए बनाई गई हैं उन सबके अपने-अपने महत्व हैं। कथा या सदुपदेश श्रवण करने से धार्मिक ज्ञान बढ़ता है तीर्थ यात्रा से पाप वासनाओं का शमन होता है, यज्ञ देव शक्तियों का पोषण होता है, पाठ पूजा से भक्ति भावना जागृत होती है, दान-पुण्य से भविष्यकालीन सुख-सौभाग्य का निर्माण होता है। यह सब कार्य अपने-अपने महत्त्व के अनुसार फल देते हैं परन्तु एक कार्य ऐसा है, जो इनमें से किसी से भी नहीं हो सकता वह है—शक्ति उत्पादन। यह कार्य केवल तप से ही हो सकता है। तप से ही आत्म-बल बढ़ता है, तप से ही ब्रह्मतेज प्रदीप्त होता है, तप से ही दिव्य शक्ति की उपलब्धि होती है।

कोई मनुष्य अनेक वस्तुों से सुसज्जित हो। उसे रेशमी कपड़े, स्वर्ण और रत्नों के बने आभूषण, पुष्प-मालायें, कस्तूरी चन्दन का सुबास, बढ़िया अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करके बहुमूल्य पालकी में बिठाया जाये परन्तु उसके शरीर में शक्ति न हो, अशक्तता में वह जकड़ा हुआ हो तो वह सब सुसज्जा किसी काम का नहीं रहेगी। इसके विपरीत यदि कोई हृष्ट-पृष्ट पहलवान यदि चिथड़े पहने हो तो भी वह अच्छी स्थिति में होगा। विविधि प्रकार की धार्मिक क्रियायें एक प्रकार की सुसज्जा हैं जिनसे जीवात्मा की शोभा बढ़ती है, परन्तु वह शोभा तभी विशेष उपयोगी हो सकती है, जब उसके पीछे तपश्चर्या द्वारा संचित ब्रह्मशक्ति का भण्डार हो। यदि वह कोष खाली है तो शोभावर्धक अन्य धार्मिक उपकरणों से विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।

साधन सम्पन्न धनी मानी लोग, अपना थोड़ा-सा समय और धन देकर आसानी से अन्य धार्मिक प्रक्रियायें पूरा कर सकते हैं। तीर्थ यात्रा, ब्रह्मभोज, यज्ञ, कथा, दान, पूजा, पाठ आदि की व्यवस्था बड़ी आसानी से कर सकते हैं। इसमें उन्हें कोई विशेष धन द्वारा अपने शारीरिक एवं मानसिक श्रम से सम्भव होते हैं। इस क्षेत्र में अमीर-गरीब का कोई भेद-भाव नहीं है। भौतिक साधनों की अधिकता या न्यूनता से किसी की तप-सामर्थ्य घटती-बढ़ती नहीं है। तपश्चर्या की ओर अग्रसर होने के लिये पवित्रता, सात्विकता, श्रद्धा, दृढ़ता एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा की आवश्यकता होती है। अन्य धार्मिक क्रियाओं से केवल मनोभूमि निर्माण का कार्य होता है परन्तु तप तो बीज बोने के समान है, जिसका पौधा उत्पन्न होना और उसका पत्र-पल्लवों, फल, फूलों से लदना अवश्यम्भावी है।

तप एक पुरुषार्थ है, जिसके द्वारा सिद्धि, शन्ति समृद्धि, स्वर्ग एवं मुक्ति जैसी सफलतायें उपार्जित की जाती हैं और पाप, ताप, विघ्न, संकट, प्रारब्ध एवं आसुरी तत्वों को परास्त करके अपने पौरुष का विजय-घोष किया जाता है। कहते हैं कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करता है। बहादुर और उद्योगी को ही पुरस्कार मिलते हैं। ईश्वरीय कृपा और विशेष सहायता का अधिकारी वही व्यक्ति होता है, जो तपश्चर्या द्वारा अपनी प्रामाणिकता सिद्ध कर देता है। अन्य धार्मिक क्रियायें करके पुण्य लाभ करने वाले व्यक्ति सीमित मर्यादा तक आत्मोन्नति कर लेते हैं परन्तु तप की शक्ति किसी भी सीमा या मर्यादा से बँधी हुई नहीं है। अष्टसिद्धि नवनिद्धि उसके कर-तल-गत हो सकती है। वह अपने को पूर्णता के अन्तिम लक्ष तक पहुँचा सकता है और अपने तेज से अन्य अनेकों को प्रकाश एवं बल प्रदान कर सकता है।

तप की सर्वोपरि महत्ता एवं उपयोगिता निर्विवाद है। इसीलिये अनादि काल से लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अद्यावधि सभी श्रेयाकांक्षी, तपश्चर्या का मार्ग अपनाते रहे हैं। तप के जितने मार्ग हैं, उनमें गायत्री से बढ़कर सुलभ, सुनिश्चित एवं शीघ्र फलदायक और कोई मार्ग नहीं है। केवल हठयोग के षट-कर्मों से स्थूल शरीर का शोधन होता है। नेति, धोति, वस्ति, न्यौलि, कपाल, भाँति, वज्रौली क्रियायें करने में खतरे बहुत और लाभ कम है। केवल नादयोग से सूक्ष्म संवादों, सन्देशों को मालूम करना ही सम्भव है, केवल दृष्टि वेध योग (मैस्मरेजम) से दूसरों पर कुछ चमत्कारी प्रभाव डाले जा सकते हैं। इसी प्रकार लय योग, ऋजु योग, अभिष्यन्द योग, पंचाग्निप योग, प्रत्यावर्तन योग आदि के द्वारा सफलता प्राप्त करने में पूर्ण कुशल गुरु की समीपता आवश्यक है। भूल होने में काफी खतरा है, इतने पर भी लाभ एकांगी है। चौरासी योगों में केवल गायत्री योग ही ऐसा है, जिसे गृही, विरागी सभी समान सुविधा से कर सकते हैं, जिसके लिये गुरु की समीपता अनिवार्य नहीं केवल उसे संरक्षक से काम चल सकता है। भूल होने में अधिक से अधिक इतनी हानि हो सकती है कि साधना निष्फल चली जाय, अन्य योगों की भाँति उल्टे अनिष्ट का तो किसी प्रकार कोई खतरा है ही नहीं। फिर इसके द्वारा जो लाभ होते हैं, वह केवल भौतिक या केवल आध्यात्मिक ही नहीं वरन् दोनों क्षेत्रों में समान लाभ होते हैं। साधक के सांसारिक जीवन को सुखी बनाता है और आत्म-शान्ति की भी निश्चित रूप से उपलब्धि होती है।

अन्य योग एकांगी हैं। उनके अनुकूल साधना करने से एक-एक देह का, एक-एक कोष एक-एक प्राण का, एकएक-चक्र का क्रमशः जागरण होता है। स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह यह तीनों देहें त्रिपदा गायत्री के तीन चरणों में साथ-साथ शुद्ध होती चलती हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्ना का त्रिकोण साथ-साथ घूमता है। सत, रज, तम का समान सन्तुलन बनता है। ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रुद्र ग्रन्थि की खुलने की व्यवस्था एक साथ बनने लगती है। अन्य कोई याग या तप ऐसा नहीं है जो अन्नमश कोश, मनोमय कोष, प्राणमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष को समान रूप से प्रस्फुटित करे या प्राण, अपान, समान उदान, व्यान इन पांचों प्राणों का प्रत्यावर्तन कर दे। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय इन पांच उपप्राणों तक को केवल किसी एक साधना से निर्बन्ध कर देना कठिन है परन्तु गायत्री योग की तपस्या में कठिनाई नहीं पड़ती, परन्तु तप के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। उसमें मन का निरोध, इन्द्रियों का संयम, कष्टसहिष्णुता, तितीक्षा, त्याग, शम, दम, व्रत उपवास, जप धारणा, ध्यान, प्रत्याहार आदि अनेक ऐसे कार्यों को अपनाना पड़ता है, जो अमीर-गरीब सभी को समान रूप से कष्ट साध्य होते हैं और वे करने पर यह सब कार्य एक साथ एक समय में और एक समान गति से होते चलते हैं। पंच तन्मात्राओं का सूक्ष्मीकरण, पंचभूतों से मुक्ति का महान् कार्य पंचमुखी गायत्री द्वारा ही होता है।

षटचक्रों का वेधन, कुण्डलिनी जागरण, खेचरी संदेह, सहस्रार कमल का प्रत्यवाय, ब्रह्मरन्ध्र का प्रतिबोध यह साधारण कार्य नहीं हैं, इन्हें अन्य योगों द्वारा कर सकना बहुत ही कठिन है, परन्तु गायत्री साधना द्वारा ऐसी सन्तुलित तपस्या होती है कि इन सभी महान् आध्यात्मिक केन्द्र बिन्दुओं का सरलतापूर्वक परिपाक होता चलता है। युग परिवर्तन के कारण वर्तमान काल को तात्विक सूक्ष्म स्थिति में जो हेर-फेर हो गया है। उसके कारण अन्य अनेक साधनाओं की उपयोगिता, संभावना एवं सफलता में भारी बाधा उत्पन्न हो गई है। किन्तु गायत्री साधना प्रत्येक युग के अनुकूल है। गायत्री के २४ अक्षरों के उच्चारण से २४ मर्म-स्थानों में छिपे हुये २४ ग्रन्थिचक्र स्वयमेव जागृत होने आरम्भ हो जाते हैं जबकि अन्य विधानों से उनमें थोड़े से शक्ति चक्रों का जागृत होना कठिन होता है।

'डायनुमा' जब तक चलता रहता है तब तक वह निरंतर बिजली बनाना रहता है। गायत्री जप के स्वसंचालित आध्यात्मिक डायनुमा है, जिससे मनुष्य में सूक्ष्म शक्ति की असाधारण बढ़ोत्तरी होती हुई प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। तप के जितने भी लक्षण, विधान और साधन हैं, वे सब गायत्री के साथ सम्बद्ध हो रहे हैं। इस महामन्त्र की शरण लेकर मनुष्य घर में तपोवन ग्रहस्थ रहते हुये वैराग्य और सादा वस्त्र पहनते हुये, महात्मा बन सकता है। तप की महिमा अपार है। गायत्री तपस्या के रहस्य ऐसे हैं, जिसका सम्पूर्ण ज्ञान तो मनुष्य बुद्धि के लिये सम्भव नहीं परन्तु इस उपासना के लाभों से लाभान्वित होना प्रत्येक श्रद्धालु एवं तपस्वी मनोवृत्ति के मनुष्य के लिये पूर्णतया सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपसाधना अतीव लाभदायक प्रक्रिया

आत्मिक प्रगति का पहला चरण योग और दूसरा तप है। योग भावात्मक और तप क्रिया परक है। एक को सूक्ष्म दूसरे को स्थूल कह सकते हैं। एक चिन्तन परक—मान्यता प्रधान और दूसरा क्रियापरक—कर्म प्रधान है। मानवी सत्ता भी चेतन आत्मा और जड़ शरीर के समन्वय से बनी है। उन दोनों को ही परिष्कृत करना पड़ता है। भावशुद्धि की तरह क्रियाशुद्धि भी आवश्यक है। भावशुद्धि को योग तथा क्रिया-शुद्धि को तप कहा जाता है।

मन, चेतन-आत्मा और जड़-शरीर का मध्यवर्ती है। इसे दोनों की सम्मिलित सत्ता कहा जाता है, उसे चेतन होते हुये भी ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है। इससे स्पष्ट है कि वह चेतन होते हुये भी जड़ की ओर आकर्षित बना रहता है। दोनों क्षेत्रों से सम्बन्धित होने के कारण मन को ही चेतना और काया के परिष्कार की भूमिका निभानी पड़ती है, आखिर गिराने का कारण भी तो वही है।

मन की दो विशेषतायें सर्वविदित हैं—(१) चंचलता (२) सुख लिप्सा। उसे आवारा लड़कों की तरह मटरगश्ती में मजा आता है। बन्दरों की तरह डाली-डाली पर उछलते रहने और चिड़ियों की तरह जहाँ-तहाँ फुदकते रहने में उसकी चंचलता को समाधान मिलता है। कल्पना के घोड़े पर सवार होकर वह आकाश-पाताल की सैर करता है। इस भटकाव में उसकी अधिकांश शक्ति नष्ट हो जाती है। इसे रोककर उपयोगी लक्ष्य पर उसे केन्द्रित करने का प्रयास योगाभ्यास कहलाता है। योग के फलस्वरूप भौतिक जीवन में दरिद्रता का समृद्धि में लय हो जाता है। पिछड़ापन प्रगतिशीलता में परिणत हुआ दीखता है। विभिन्न प्रकार की सांसारिक सफलतायें मन को लक्ष्य विशेष पर केन्द्रित करने का ही सत्परिणाम है। उसी से प्रबल पुरुषार्थ बन पड़ता है। अभीष्ट साधन जुटते जाते हैं और अनुकूल परिस्थितियाँ बनती जाती है।

आत्मिक क्षेत्र में मन को लगा देने से प्रसुप्त शक्ति-संस्थानों के जागरण का वातावरण बनता है और दिव्य क्षमतायें प्रकाश में आती हैं। यह आन्तरिक प्रगति सामान्य व्यक्ति को महामानव स्तर पर ले जाकर खड़ा कर देती है। यह सब मन के भटकाव को राकने और उसे लक्ष्य केन्द्र पर नियोजित कर सकने का ही प्रतिफल है। चंचलता की वृत्ति से छुटकारा पाकर एकाग्रता के लिये—एक धारा में बहने के लिये सधाया हुआ मन कितने चमत्कारी परिणाम उत्पन्न करता है, इसे अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। प्रगति का समूचा इतिहास तो इस तथ्य का साक्षी है ही।

मन की दूसरी प्रवृत्ति है—सुखोपभोग की लिप्सा। भौतिक सुख शरीर द्वारा वासना तृप्ति के रूप में भोगा जाता है। इन्द्रियाँ इसकी माध्यम है। शिश्नोदर परायणता में रुचि बनी रहती है। स्वाद और विषय सुख की कल्पनायें करने और साधन जुटाने के ताने-बाने बुनने में उसकी अधिकांश शक्ति लगी रहती है। मधुर देखने, सुनने, सूँघने, छूने आदि की इन्द्रिय-लिप्सायें भी इसी विलास क्षेत्र में आती हैं। अहंकार की पूर्ति के लिये दूसरों को प्रभावित करने वाले कई तरह के ठाट-बाट बनाये जाते हैं। संग्रह और स्वामित्व के लिये भी अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं। 'तृष्णा' शब्द में इन सबका समावेश है। अहंता पर चोट पहुँचने से प्रतिशोध की उत्तेजना उत्पन्न होती है यह क्रोध है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यह छः आन्तरिक शत्रु माने गये हैं। संक्षेप में यह सारा विकार परिवार भौतिक सुख प्राप्त करने की मनः लिप्सा की अनेकों रंग रूपों में दीखने वाली प्रतिक्रियायें मात्र है।

मन की इस पतानोन्मुख बहिर्मुखी-लिप्सा परायण प्रवृत्ति से जीवात्मा को असीम हानि उठानी पड़ती है। जीवन-सम्पदा उन्हीं उलझनों में नष्ट-भ्रष्ट होती चली जाती है और इस सुरदुर्लभ अवसर का समुचित लाभ उठाने से वंचित रहना पड़ता है।

मन की इस प्रवृत्ति को उलट देने के लिये किये गये प्रयास 'तप' कहलाते हैं। सुखानुभूति तो आत्मा की आकांक्षा भी है, पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह मन के स्तर से बहुत ऊँची, बहुत भिन्न है। मन की तृप्ति वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति में होती है। इसमें उपभोग लक्ष्य है। आत्मा उच्चस्तरीय आदर्शों के पालन में जो आनन्द पाता है, उसे सन्तोष या शान्ति कहते हैं। संक्षेप में मन को भौतिक सुख की आकांक्षा रहती है और आत्मा को आत्मिक सन्तोष एवं शान्ति की। सुख मन का विषय है और सन्तोष आत्मा का। रस्साकसी में एक को हारना दूसरे को जीतना पड़ता है। मन जीतता है तो आत्मा को असहाय बनकर अतृप्त स्थिति में पड़ा रहना होता है। आत्मा जीतती है तो मन को कुचलना पड़ता है। आरम्भ में उद्धत मन को संयत बनाने में काफी संघर्ष करना पड़ता है। पीछे तो उनमें समझौता हो जाता है। वन्य-पशु जब पालतू बन जाते हैं तो मालिक से झगड़ने की अपेक्षा उसी के साथ फिरने लगते हैं। यही स्थिति मन की होती है। साधना द्वारा मन को इसी तरह सधाया जाता है जिस प्रकार सरकस वाले सिंह जैसे आक्रमणकारी जन्तु को स्वामिभक्त, आज्ञाकारी एवं उत्पादक बनाने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं। सरकस के पशु शिक्षक उन जन्तुओं की अनगढ़ आदतों को छुड़ाने और नये प्रकार के अभ्यास डालने में भारी माथापच्ची करते हैं। उन्हें मार और प्यार की दुहरी भूमिका निभानी पड़ती है। तप-साधना और कुछ नहीं। मन की चंचलता और सुख-लिप्सा वाली अनगढ़ आदतों को छुड़ाने और उसे उपयोगी प्रवृत्तियों में संलग्न होने का अभ्यस्त बनाने के लिये ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिन्हें मोटे तौर से क्रूरकर्म की संज्ञा भी दी जा सकती है। तप का बाह्य स्वरूप कुछ ऐसा ही निष्ठुरतापूर्ण है, यद्यपि उसके पीछे आत्मोकर्षण का दूरगामी दुलार ही दुलार छलकता देखा जा सकता है।

सुख को गौण और सन्तोष को प्रधान मानकर चलना—मन को गौण और आत्मा को प्रधान मानना यही वह परिवर्तन है, जिसके आधार पर किसी को तपस्वी कहा जा सकता है। तप में तितीक्षा का—शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक असुविधाओं का उसकी शारीरिक सुख-सुविधाओं में की होती है तो ही मानसिक हास-परिहास का अवसर भी छिनता है, औचित्य को रखकर उपार्जन और उदार उपयोग का ध्यान रखने से समृद्धि भी बढ़ नहीं पाती। इन तीनों क्षेत्रों में कमी पड़ने को मोटेतौर से मूर्खता कह सकते हैं, पर चूँकि उसके पीछे जो उज्ज्वल सम्भावनायें विद्यमान हैं, उन्हें थोड़ी लागत में तगड़ा मुनाफा कमाने जैसी बुद्धिमत्ता ही कहा जा सकता है।

तपाने से वस्तुयें गरम होती हैं और उनका संशोधन होता है, दृढ़ता आती है तथा स्तर बढ़ता है। वस्तुओं की तरह ही व्यक्ति भी तप-साधना से परिष्कृत होता और सुदृढ़ बनता है।

कच्ची मिट्टी से बनी ईंटों द्वारा विनिर्मित मकान वर्षा में गलने लगता है, पर यदि इन्हीं ईंटों को आग में पका लिया जाय तो उनसे बनी इमारतें मुद्दतों चलती है। चूना और सीमेन्ट क्या है ? कंकड़-पत्थरों को पका हुआ चूरा। यदि इन्हें कच्चा पीसकर इमारत में लगाया जाये तो काम नहीं चलेगा। पकाये जाने पर उनमें ईंटों को पकड़ लेने और भवन को चिरस्थायी बना देने अभ्यास इसलिये करना पड़ता है कि मन की अनगढ़ कुसंस्कारिता को—चंचलता और लिप्सा को छुड़ाया जा सके। उसे पतनोन्मुख बहिरंग ललकों से विरत करके उच्चस्तरीय आध्यात्मिक आदर्शवादिता अपनाने के लिये सहमत करना ही तप-साधना का एकमात्र उद्देश्य है। इसमें जो कड़ाई बरतनी पड़ती है, उसे सुधार प्रयोजन के लिये कुछ क्षण के लिये बरती गई विवशता भर समझा जाना चाहिये। उसे प्रसव पीड़ा की उपमा दी जा सकती है। ऐसे तो सत्परिणाम प्राप्त करने के लिये किसान, विद्यार्थी, पहलवान, श्रमिक, व्यवसायी, कलाकार आदि को बाल चंचलता से विरत होने के लिये मन मारना पड़ता है और अपने रूखे, नीरस प्रयोजनों में तन्मय होना पड़ता है। मोटे तौर से इस साधना को अपने साथ बरती गई कठोरता ही कह सकते हैं। दूसरे शौक-मौज में निरत साथी इसे मूर्खता भी कह सकते हैं, पर वस्तुतः वह आरम्भ में बीज की तरह गलने के लिये और पीछे विशाल वृक्ष के रूप में विकसित करने वाली दूरगामी बुद्धिमत्ता ही है।

तपस्वी को आरम्भ में कष्ट सहना पड़ता है। शकोक्ति उत्पन्न हो जाती है। धातुयें खदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में से मिट्टी मिली—कच्ची अवस्था में निकलती हैं। उन्हें भट्टी में तपाया जाता है तब लोहा, ताँबा आदि शुद्ध बनते और काम में आते हैं। लोहे को अधिक मजबूत बनाने के लिये उसे अधिक तपाया जाता है। काटने वाले शस्त्र तथा औजारों की 'धार'' अधिक गर्मी देकर ही सुस्थिर बनाई जाती है।

आयुर्वेद के रसायनवेत्ता कई प्रकार की गुणकारी भस्में बनाते हैं। अभ्रक भस्म, वंग भस्म, प्रवाल भस्म, लौह भस्म आदि के गुण प्रख्यात हैं। यह उन साधारण-सी वस्तुओं के तपाने, गरमाने का ही प्रतिफल है। पानी गरम करने से भाप बनती है और उससे रेलगाड़ी का इंजन जैसी भारी वस्तुयें धकेली जाती हैं। बल्ब का जरा-सा 'फिलामेन्ट' जब गरम होता है तो रोशनी देता है। दीपक के बारे में भी यही बात है। गर्मी ही प्रकाश के रूप में परिवर्तित होती है, उसी को शक्ति के रूप में परिणित किया जाता है। व्यक्तित्व को तपाने से भी उसमें सर्वतोमुखी प्रखरता उत्पन्न होती है। प्राचीनकाल में विद्यार्थियों को गुरुकुलों के कठोर वातावरण में रहकर पढ़ने के लिये भेजा जाता था कि वे कष्टसाध्य जीवनयापन करते हुये अपने शरीर को सुदृढ़ और मन को सहनशील बनाने की साधना में उत्तीर्ण होकर प्रखर प्रतिभा विकसित कर सकें।

कच्चे फलों को भूसे या अनाज की गर्मी में बन्द रखकर पकाया जाता है। आम प्रायः इसी प्रकार पाल में पकता है और अपना खट्टापन हटाकर मीठा बनता है। दूध को गरम करने पर घी उपलब्ध होता है। सामान्य पानी को औषधि उपयोगी 'डिल्सिल्ड वाटर' बनाने के लिये उसे भट्टी पर चढ़ाया जाता और भाप बनकर उड़ाया जाता है। तप-साधना द्वारा कष्टसाध्य परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं और उन्हें सहन करने की तितीक्षा का सहारा लेकर अपने को परिष्कृत करना पड़ता, सोने को आग में तपाकर ही विविध प्रकार के आभूषण बनते हैं। अन्य धातुओं से भी उपकरण तभी बनते हैं, जब उन्हें आग में डालकर कोमल बनाया जाये। मनुष्य की जड़ता एवं कठोरता को सुकोमलता में बदलने और अमुक ढाँचे में ढालने के लिये तपश्चर्या की रीतिनीति अपनाना आवश्यक होता है। आराम-तलबों और सुख-सुविधा के भरे वातावरण में पलने वाले लोग अविकसित स्थिति में पड़े रहते हैं। उनकी विविध क्षमतायें विकसित होने की बात बनती ही नहीं। उस्तरे पर धार रखने से ही उनमें पैनापन बढ़ता है और चमक दीखती है। उसे ऐसे ही एक कोने में पड़ा रहने दिया जाये तो धीरे-धीरे जंग चढ़ती जायेगी और वह गलकर अपनी मौत मर जायेगा। सुविधा के अभिलाषी लोग अपना पुरुषार्थ खोते चले जाते हैं। तीक्ष्णता की वृद्धि और रक्षा के लिये रगड़ आवश्यक है। फौज के सैनिकों को यदि नित्य 'परेड' करने और दौड़ लगाने का अवसर न मिले तो वे थोड़े ही दिनों में तोंद वाले सेठ बन जायेंगे, तब उनके लिये लड़ सकना तो दूर अपनी काया का बोझ ढोना भी कठिन पड़ेगा।

इतिहास, पुराणों में ऐसे असंख्य आख्यान मौजूद हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न लोगों को विभूतियाँ उपार्जन में तप-साधना का ही आधार लेना पड़ा था। भागीरथ द्वारा तप करके गंगा को धरती पर लाया जाना, पार्वती का शिव से विवाह सम्पन्न होना, ध्रुव का तप करके ब्रह्माण्ड का केन्द्र बनना, दधीचि की अस्थियों से वज्र बनना और उससे असुरों का मारा जाना, अगस्त्य का समुद्र शोषण विश्वामित्र का नई सृष्टि का निर्माण, सात सामान्य मनुष्यों का सप्तऋषि बनना—जैसी अगणित कथायें तप की शक्ति का परिचय प्रस्तुत करती हैं।

भगवान कृष्ण को सुसंतति प्राप्त करने के लिये रुक्मिणी सहित लम्बी अवधि तक मात्र जंगली बेर खाकर उस स्थान पर तप करना पड़ा था, जहाँ आजकल बद्रीनाथ धाम है। दिलीप ने रानी सहित वशिष्ठ की गौएँ चराने का दीर्घकालीन तप करके सुसंतति प्राप्त की थी। स्वयंभू मनु और शतरूपा रानी के तप ने उन्हें राम जैसा पुत्र दिया था और काश्यप तथा अदिति के तप ने कृष्ण को गोदी में खिलाने का वरदान दिलाया था। इन प्रसंगों में यह प्रतिपादन है कि तप द्वारा मनुष्य भगवान का भी पिता बन सकता है।

आत्म-साधना में तपश्चर्या को प्रमुखता दी गई है। तप के कारण उसकी गर्मी से प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की परिस्थितियाँ बनती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपश्चर्या से प्रसुप्त शक्तियों का जागरण

प्रसुप्त स्थिति में हमारी क्षमताएँ मूर्छित पड़ती हैं और लगता है कि हम साधन हीन-दीन दरिद्र स्थिति में पड़े हुये हैं। मूर्छित स्थिति में ऐसी दुर्गति का होना स्वाभाविक है। कुम्भकरण की सामर्थ्य अकूत थी, पर वह छै महीने सोते रहने के कारण निर्जीव जैसी स्थिति में पड़ा रहता था। जिस दिन जागता था, उसी दिन इतना पुरुषार्थ करता था कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़े। हम सब एक प्रकार के कुम्भकरण ही हैं। अपनी सामर्थ्यों को न पहचान पाने और उनके जागरण एवं उपयोग पर ध्यान न देने के कारण ही हेय स्थिति में रहना पड़ रहा है। सुषुप्ति में पड़ा हुआ व्यक्ति मृतक तुल्य होता है। किन्तु जब वह जागृत होता है तो प्रबल पराक्रम का परिचय देता है।

आत्म विस्मृति की, निद्रा से ग्रसित स्थिति में हम यह नहीं समझ पा रहे कि परमेश्वर का ज्येष्ठ पुत्र शक्ति और सामर्थ्य का पुंज है, सौरमंडल की समग्र सत्ता छोटे परमाणु में विद्यमान है। पूरे मनुष्य की सत्ता छोटे-से शुक्राणु में सन्निहित रहती है। पूरे वृक्ष की सत्ता छोटे-से बीज में भरी रहती है। प्रश्न जागृति का है। अणु, परमाणुओं की नगण्य-सी सत्ता तुच्छ और उपहासास्पद है, पर जब उनमें से एक कण भी जागृत स्थिति में पहुँच सके तो उसके विस्फोट से प्रलय का छोटा रूप उपस्थित हो जाता है। जागृति और सुषुप्ति का अन्तर स्पष्ट है।

व्यक्ति की चेतना को जागृत करने के लिये उसे तपाने, गरमाने की आवश्यकता पड़ती है। सूर्य की गर्मी से पौधे बढ़ते और फलते-फूलते हैं। शीत की अधिकता से तो वृक्षों के पत्ते तक झड़ जाते हैं। जिन दिनों सूर्य की गर्मी न्यून रहती है, उन दिनों वनस्पतियों का विकास रुक जाता है। सर्दी से ठिठुरे हुये हाथ कुछ अधिक काम नहीं कर पाते। गर्मी पाते ही हाथ-पैर खुलते हैं—काम करने को जी चाहता है और कुछ करते-धरते ही बन पड़ता है। सर्दी में तो साँप, रीछ जैसे कितने ही प्राणी गहरी नींद में चले जाते हैं और निष्क्रिय स्थिति में पड़े रहते हैं।

भोजन पकाने के लिये चूल्हा गरम करना पड़ता है। उसकी सुविधा न हो तो खाद्य-पदार्थ प्रचुर परिमाण में होते हुये भी वे खाने और पचने योग्य न बन सकेंगे। कल-कारखानों की दैत्याकार मशीनें बहुमूल्य एवं प्रचुर उत्पादन करती हैं, पर उनकी कार्य क्षमता ईंधन के आधार पर ही गतिशील होती है। भाप, कोयला, तेल, बिजली जैसे ईंधन न मिलें तो मशीनें ठप्प पड़ी रहेंगी और उनसे कुछ भी लाभ न उठाया जा सकेगा। अग्नि की गर्मी की आवश्यकता हर क्षेत्र में पग-पग पर अनुभव की जाती है।

मानवी विकास के लिये तप-साधना का अत्यधिक महत्त्व है। इस गर्मी को उत्पन्न किये बिना व्यक्ति मूर्छित स्थिति में पड़ा रहता है। उसकी ईश्वर प्रदत्त क्षमता निरर्थक, निर्जीव एवं अविज्ञात रूप में पड़ी रहती है। किसी भी क्षेत्र में प्रगति की जाय, उसके लिये गतिशीलता की अनिवार्य आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिये ऊर्जा जुटानी ही पड़ेगी। उसका उत्पादन गर्मी लाने से ही सम्भव होता है। पैट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल तभी अपनी शक्ति का परिचय देते हैं, जब उनके साथ अग्नि का संयोग होता है। कोयला और पानी दोनों रहने पर भी तब तक भाप नहीं बन सकती जब तक कि आग का संयोग न हो। चूल्हा हो या दीपक उन्हें प्रज्वलित करने के लिये आग की चिन्गारी तो चाहिये ही। यही ऊर्जा उत्पादन मानवी क्षमताओं को विकसित करने के लिये भी आवश्यक होता है। शरीर और मन को इसी आधार पर सक्षम, समुन्नत बनाना पड़ता है।

लौकिक जीवन में भौतिक उपलब्धियों के लिये व्यक्ति की प्रखरता उभारनी पड़ती है। शरीर से श्रम करने पर उसकी पुष्टि अक्षुण्ण रहती है और आवश्यक उपार्जन भी सम्भव होता है। श्रमिक, कृषक आदि को शरीर का और साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि को मस्तिष्क का—श्रम करना पड़ता है। क्षमता अभिवर्धन और अभीष्ट उत्पादन के लिये परिश्रम पुरुषार्थ किये बेना काम चल ही नहीं सकता। निष्क्रिय पड़े रहने पर तो ईश्वर प्रदत्त क्षमतायें चाहे कितनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हों, वे निर्जीव स्थिति में ही पड़ी रहेंगी। संसार में जितने भी प्रगतिशील मनुष्य हुये हैं, उनमें से प्रत्येक को अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने ढंग का कठोर श्रम करना पड़ा है। जिसने इस सन्दर्भ में उपेक्षा बरती, वह अविकसित, हेय और गई-गुजरी दीन, दरिद्र स्थिति में ही जीवन गुजारता रहा है। परिश्रम ही धन है। प्रगति की प्रत्येक सम्भावना उसी के आधार पर बनती हैं। इस तथ्य को जो जानते हैं वे आरम्भ से ही अपनी अभिरुचि कठोर श्रम करने में जुटाये रहते हैं। अनिवार्य विश्राम के अतिरिक्त उन्हें आलसियों जैसा 'आराम' सचमुच ही 'हराम' लगता है। प्रगतिशीलता श्रम-निष्ठा पर निर्भर है। भौतिक सफलतायें उसी आधार पर सम्भव होती हैं। परिश्रम और पुरुषार्थ की प्रवृत्ति को सामान्य जीवन की तपश्चर्या ही कहा जाता है। जीवन देवता को परिश्रम और मनोयोग की साधना द्वारा जिनने प्रसन्न किया है, उन्होंने संसार में एक से एक बढ़ी-चढ़ी सफलतायें प्राप्त की हैं।

आध्यात्मिक जीवन में भी यही तथ्य काम करता है। मानवी अन्तराल में एक से एक बढ़ी-चढ़ी विभूतियाँ विद्यमान हैं। पर वे सभी प्रायः प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती हैं। यदि उनकी ओर ध्यान चला जाय—उनका महत्त्व समझा जाय और जीवन्त बनाने के लिये साहस जुटाया जाय तो गई-गुजरी स्थिति में पड़ी चेतन सत्ता का असाधारण विकास हो सकता है। विकसित व्यक्तित्व साधन-विहीन परिस्थितियों में भी ऊँचा उठता है। प्रतिकूलताओं को अनुकूलता में बदल लेना सुसंस्कृत लोगों के लिये कुछ भी कठिन नहीं होता। वे अपनी प्रामाणिकता एवं उत्कृष्टता के आधार पर दूसरों को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। आदर्शों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा, विश्वास रखने वाले और उसी रीति-नीति को अपनाकर जीवन जीने वाले व्यक्ति सहज ही लोक श्रद्धा का सम्पादन कर लेते हैं। उन पर सर्वत्र विश्वास किया जाता है। फलतः सहयोग की अयाचित वर्षा होने लगती है। जिनने ऐसी स्थिति प्राप्त कर ली उनके लिये प्रगति का पथ सहज ही प्रशस्त होता चला जाता है।

चेतना पर पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कारों की परतें चढ़ी रहती हैं। निम्न योनियों में से क्रमिक प्रगति करते-करते जीव को मनुष्य योनि प्राप्त होती है। फिर भी पिछली निकृष्टता की छाया चेतना पर न्यूनाधिक मात्रा में छाई ही रहती है। इसका परिष्कार किये बिना जीवन का स्वरूप नर-कीटकों, नर-पशुओं, नर-वानरों जैसा बना रहता है। स्पष्ट है कि मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं। भीतरी चुम्बकत्व ही अपने स्तर का वातावरण स्वयं ही बुनता, विनिर्मित करता है। सम्पर्क क्षेत्र अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुरूप बनता है और साधन भी प्रायः वैसे ही मिलते हैं। परामर्श और सहयोग भी वैसा ही मिलेगा जैसा कि अन्तःस्थिति ने अपना स्वरूप बना रखा है। आन्तरिक निकृष्टता ही आमतौर से हेय परिस्थितियों, दुर्गतियों और विपत्तियों का कारण होती हैं।

समुन्नत स्थिति प्राप्त करने के लिये सबसे पहला कदम अपनी भीतरी स्थिति को सुधारने से आरम्भ करना होता है। इस क्षेत्र में सुधार न किया जाय और सुखद परिस्थितियों की आकांक्षा करते हुये साधन जुटाने के लिये भाग-दौड़ की जाय तो उसमें कदाचित ही किसी को स्थायी सफलता मिलेगी। व्यक्तित्व हेय बनाये रखने वाले—निकृष्ट साधनों से धूर्ततापूर्वक सुखद परिस्थितियाँ पाने का ताना-बाना बुनते हैं। प्रपंची और अपराधी व्यक्ति प्रायः इसी नीति को अपनाते हैं। पोल न खुलने तक इन्हें कुछ लाभ भी मिल सकता है, पर वास्तविकता प्रकट होने पर वे दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंके जाते हैं और सामान्य प्रयत्न से थोड़ा लाभ प्राप्त करते रहने की स्थिति को भी गँवा बैठते हैं।

उच्चस्तरीय स्थिति प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा पूरी करने का एक ही उपाय है कि अपनी अन्तःचेतना को परिष्कृत किया जाय। उस पर चढ़े कुसंस्कारों को निरस्त किया जाय और जिन मानवोचित सत्प्रवृत्तियों की न्यूनता है उन्हें पूरा करने के लिये प्रबल प्रयत्न किया जाय। इस परिवर्तन में—उखाड़-पछाड़ में अपने आपे के साथ कठिन संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष को सफलतापूर्वक लड़ सकने योग्य आत्मबल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचण्ड संकल्प शक्ति से ही सम्पादित किया जाता है। यह संकल्प शक्ति ही वह साधना है जिसके सहारे आत्म-परिष्कार का उद्देश्य पूरा हो सकता है। इस सामर्थ्य को उपार्जित करने के लिये जो साधन काम में लाने पड़ते हैं, उन्हें 'तप' कहते हैं। आत्मिक प्रगति के लिये तप तितीक्षा की साधना करनी अनिवार्य रूप से आवश्यक होती है।

आत्मोत्कर्ष की साधना में—तप तितीक्षा का प्रमुख स्थान है। पूजा-उपासना के विधि-विधान एवं कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मान बैठना पर्याप्त नहीं। जप, ध्यान आदि के क्रिया-कलाप अति सरल हैं। उनमें न शारीरिक कष्ट उठाने पड़ते हैं और न मनोनिग्रह की आवश्यकता पड़ती है। मुख से कुछ शब्दों का उच्चारण और कर्मकाण्ड में प्रयुक्त होने वाले सस्ते उपकरणों के साथ-साथ हाथों की थोड़ी-सी हेरा-फेरी इतनी महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली नहीं हो सकती कि उतने भर से दिव्य शक्तियों का अनुदान वरदान प्राप्त कर सकना सम्भव हो सके। इसके साथ-साथ चेतना को गरम करने वाली तपश्चर्या का जुड़ा रहना नितान्त आवश्यक है। विलासी और शौक-मौज का जीवन इन्द्रियों को प्रसन्नता देता है, पर उससे अन्तरात्मा पर थकान चढ़ती है। सुविधा सम्पन्न जीवन-क्रम अपनाने वाले व्यक्ति कदाचित ही आत्मिक प्रगति के मार्ग पर कुछ दूर चल पाते हों। तर्क की दृष्टि से शरीर सुविधा का समर्थन किया जा सकता है और आराम के अधिक साधन रहने पर कम थकान चढ़ने और अधिक काम होने का प्रतिपादन किया जा सकता है। किन्तु वस्तुस्थिति दूसरी ही है—स्वेच्छापूर्वक सदुद्देश्य के लिये अपनाई गई, आमन्त्रित की गई कठिनाइयाँ अन्तःक्षेत्र में अद्भुत तेजस्विता भरती हैं। यदि ऐसा न होता तो साधु और ब्राह्मणों को अपरिग्रही, तपस्वी, कष्टसाध्य जीवन जीने की आवश्यकता न पड़ती। तब वे लोग भी अधिक सुविधा मिलने पर अधिक सेवा कार्य बन पड़ने के तर्क उपस्थित करते। ऐसी दशा में उनके सम्पन्न शिष्य अनुयायी उनकी सुविधा के लिये अपने से भी अधिक साधन जुटा देते।

तपस्वी और विलासी जीवन के अन्तर स्पष्ट है। तप साधना से आत्मिक प्रखरता उभरती है, जबकि विलासिता अपनाने पर वह दिन-दिन क्षीण और कुण्ठित होती चली जाती है। साधना अनुष्ठान की प्रखरता एवं सफलता इस बात पर निर्भर है कि साधक ने उस अवधि में अपने को कितना तपाया—कितना गरम किया। साधना औजार है और तपस्या उसे चलाने वाली शक्ति ऊर्जा। तपश्चर्या से कतराने वाले—विलासिता अपनाये रहकर ज्यों-त्यों भजन-पूजन करते रहने वाले—कुछ तो पाते भी हैं, पर वह होता अत्यन्त स्वल्प है।

कच्चा मिट्टी मिला लोहा भट्टी में तपाये जाने पर ही शुद्ध लोहा बनता है। खदान से निकली प्रायः सभी धातुयें ऐसे ही मिट्टी मिश्रित होती हैं, उन्हें शुद्ध करने का एकमात्र तरीका भट्टी में तपाना ही है। अधिक अग्नि संस्कार करने पर ही धातुओं की भस्में बनती हैं और वे बहुमूल्य रसायन का काम देती हैं। सोने के खरे-खोटे होने की परीक्षा तो अग्नि में तपाने से ही सम्भव होती है। दूध को तपाने से मलाई और घी निकलते हैं। कच्ची मिट्टी के बरतनों और ईंटों को तपाने से भी उनमें मजबूती आती है। पानी को गरम करने से भाप की शक्ति उत्पन्न होती है। सूर्य ताप से हिमाच्छादित चोटियाँ पिघलकर नदी के रूप में बहती हैं और उन नदियों से शोभा-सुविधा उपलब्ध होती है। समुद्र मन्थन में देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्र जल को गरम किया था और उसमें से १४ बहुमूल्य रत्न निकाले थे।

तपश्चर्या की उपलब्धियों का वर्णन, विवेचन करते हुये शास्त्रकारों ने कहा है कि ईश्वर भी तप के प्रभाव से ही इस सृष्टि की रचना में समर्थ हुआ है। मनुष्य के लिये तो अभीष्ट उपलब्धियों के लिये भी तप ही एकमात्र मार्ग है—

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहा प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत।।
एतद्वैतत् ।६ क. २।१।६

उस परमेश्वर ने सर्वप्रथम तप किया। उस तप के श्रम स्वेद से जल उत्पन्न हुआ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोऽकामयत्। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं ७ सर्वमसृजत यदि किं च। सत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशित्।

—तैत्तरीय ब्रह्मावल्ली ६

उस परमात्मा ने प्रकट होने की इच्छा की। इसके लिये तप किया। तप की शक्ति से जगत रचा और फिर उसी में प्रविष्ट हो गया।

अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्त्वा।

—तैत्तरीय भृगुवल्ली २

भृगु ने कहा—ब्रह्म का ज्ञान कराइये। तब वरुण बोले—तप के द्वारा ब्रह्म को जानो। तप ही ब्रह्म है। यह सुनकर भृगु तप करने चले गये।

तपश्चचार प्रथममसुराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः सांगोपांगपदक्रमाः।।

—मत्स पुराण

देवों के पितामह ने सबसे प्रथम तो तपश्चर्या की थी। इसके अनन्तर सब वेदों का आविर्भाव हुआ था, जो अपने अंग शास्त्र उपांग तथा पद एवं क्रम से संयुक्त थे।

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः।।

—महाभारत

राजन् ! तुम जिस तपस्या के विषय में मुझ से पूछ रहे हो, यह तपस्या ही सारे जगत् का मूल है, वेदवेत्ता विद्वान् इस तप से ही परम अमृत मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते।।

—स्कन्द

केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से पात्रता हुआ करती है। जहाँ पर सच्चरित्रता है और ये दोनों (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुतः पात्र कहा जाया करता है।,

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।।

—मनु

शरीर जल से शुद्ध होता है मन सत्य से आत्मा विद्या और तप से तथा बुद्धि, ज्ञान से शुद्ध होती है।

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ् नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् ह्रदबलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः। —अथर्व. ५।१८।८

देव भावनाओं से भरा ब्राह्मण का आत्म-बल ही धनुष है। उसकी वाणी प्रत्यंचा है। उसका तप बाण है। इस अचूक ब्रह्मास्त्र से सुसज्जित ब्रह्मवेत्ता असुरता को बेधकर रख देता है।

तपसा स्वर्गं भवाप्नोति। —अत्रि

तप से ही स्वर्ग मिल सकता है।

तपस्विनः पूजनीयाः। —याज्ञवल्क्य

पूजनीय केवल तपस्वी होते हैं।

अपने गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने के लिये चिन्तन एवं क्रिया-कलाप में घुसी हुई निकृष्टता का उन्मूलन करने के लिये अपने आप से हर घड़ी जूझना पड़ता है, वह निरन्तर चलने वाला तप है। आदर्शों को अपनाने में संचित कुसंस्कार भारी अवरोध उत्पन्न करते हैं, उन्हें अभ्यस्त और सहमत करने के लिये भी संकल्पपूर्वक अपने सुधार का उपक्रम बनाना पड़ता है। इन प्रयत्नों को तपश्चर्या कहा जा सकता है। इनका अभ्यास करने के लिये शरीर और मन को तितीक्षा के आधार पर प्रशिक्षित करना पड़ता है। स्वेच्छापूर्वक सदुद्देश्यों के लिये किया गया कष्ट सहन-साधना विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इसे तितीक्षा कहते हैं। तपश्चर्या के तत्व दर्शन को तितीक्षा द्वारा ही कार्य रूप में परिणित किया जाता है। तप-साधना ही शक्ति और सिद्धि का स्रोत है।

दूध को तपाने से मलाई और घी निकलता है। धातुओं को तपाने से वे बहुमूल्य भस्म और रसायन बनती हैं। सामान्य अन्न तपाये जाने पर स्वादिष्ट आहार बनता है। मिट्टी को तपाने से पत्थर बनती है। कच्चा लोहा पकाने पर ही फौलाद बनता है। स्वर्ण की आभा अग्नि संस्कार से ही निखरती है। खारी और भारी समुद्र जल तपने के उपरांत मीठा और हल्का बादल बनकर आकाशगामी होता और तृषित भूमि की तृप्ति करता है। हिमालय पर जमी बरफ तपने पर ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंगा-यमुना का सम्मान पाती है। तपता हुआ सूर्य अपनी आत्मा और ऊष्मा से समस्त विश्व में प्राण वर्षा करता है और ग्रह परिवार को अपने साथ बाँधे रहने में समर्थ है।

यदि यह सब तपने के लिये तैयार न हों, कच्चे और शिथिल ही बने रहें तो उनमें प्रखरता उत्पन्न न होगी। ऐसी ही कच्ची, कमजोर स्थिति में पड़े रहेंगे। दबी हुई समर्थता को उभारने के लिये तप एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। वह कष्टसाध्य तो है पर उसके द्वारा होने वाले लाभों को देखते हुये महत्ता इतनी बड़ी है कि उसे घाटे का सौदा नहीं कह सकते हैं। व्यायामशाला में किया हुआ तप पहलवान बनाता है। पाठशाला में तप करने वाला विद्वान बनता है। खेत का तपस्वी सुसम्पन्न कृषक बनता है। पत्थर को प्रतिमा, कागज को चित्र बना देने की क्षमता मूर्तिकार के, चित्रकार के तप में ही सन्निहित है।

लौकिक जीवन में पग-पग पर कठोर श्रम, पुरुषार्थ, साहस, मनोयोग की महत्ता स्पष्ट है। अध्यात्म क्षेत्र में भी यही तथ्य काम करता है। तपस्वी—शक्तिशाली बनते हैं और उस तप साधित शक्ति के आधार पर वे भौतिक सिद्धियों और आत्मिक ऋद्धियों से सम्पन्न बनते हैं। इतिहास के महामानवों, ऋषियों, तत्वदर्शियों, देवदूतों की महत्ता उनके तप के कारण ही प्रकाशवान हुई है। देवताओं के वरदान केवल तपस्वियों के लिये सुरक्षित रहते हैं। केवल याचना-प्रार्थना से किसी का कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है। पुराणों का प्रत्येक पृष्ठ साधना के द्वारा उपलब्ध विभूतियों की महत्ता प्रतिपादित करता है। धर्म-शास्त्रों में तपश्चर्या का माहात्म्य ही विभिन्न प्रकारों और प्रकरणों में गाया गया है।

मनुष्य के भीतर बहुत कुछ दिव्य, अलौकिक एवं अद्भुत है। उसके उत्खनन के लिये तपश्चर्या अनिवार्य है। भगवान ने विभूतियों का भण्डार मानवी कलेवर में भर दिया है, पर उससे लाभान्वित होने का अधिकार उसी को दिया है, जो तप-साधना द्वारा अपनी पात्रता सिद्ध कर सके। समुद्र में अनादि काल से अगणित रत्न भरे पड़े हैं पर उन्हें प्राप्त करने के लिये गहरे में गोता लगाने का साहस करना पड़ता है। जब समुद्र मन्थन किया गया तो उसमें से १४ रत्न निकले। यदि वह कठोर पुरुषार्थ न किया गया होता तो उन रत्नों के प्राप्त होने की आशा कैसे की जा सकती थी ? देवताओं ने गौरवशाली पद तप-साधना से ही प्राप्त किये हैं। इसके बिना वे भी अन्य प्राणियों की तरह मात्र जीवधारी ही बने रह सकते थे। जो तप की कष्टसाध्य प्रक्रिया को देखकर डरा या घबराया उसके लिये विभूतियों ने अपना द्वार बन्द ही कर दिया है। सहज ही सब कुछ प्राप्त करने का स्वप्न देखते रहने वाले व्यक्ति खाली हाथ ही रहते हैं।

हमें अभीष्ट उद्देश्य के लिये तपस्वी बनने का प्रयत्न करना चाहिये और इस मान्यता को दृढ़तापूर्वक हृदयंगम कर लेना चाहिये कि भौतिक उन्नति के लिये जिस प्रकार कठोर श्रम और प्रचण्ड साहस की, एकाग्र मनोयोग की, आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार आत्मिक विभूतियाँ प्राप्त करने के लिये तप-साधना की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। जो इस मूल्य को चुका सकते हैं, वे ही शक्तियों और सिद्धियों से सम्पन्न होते हैं।

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।।४

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः।।५ —प्रश्नोपनिषद् १।४—५

प्रजा उत्पन्न करने की कामना वाले प्रजापति ने तप किया। तप द्वारा प्राण और रयि यह दो तत्व उत्पन्न किये। संसार में जो मूर्तिमान है वह प्राण है और जो अमूर्तिमान है वह रयि है।

अथैष ज्ञानमयेन तपसा चीयमानोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति। अथैतस्मात् तप्यमानात् सत्यकामात् त्रीण्यक्षराण्यजायन्त। तिस्रो व्याहृतयस्त्रिपदागायत्री त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो वर्णास्त्रयोऽनयश्च जायन्ते।

—शाण्डिल्योपनिषद् ३।१

ब्रह्मा ने ज्ञानमय तप किया। उस तप से वृद्धि पाकर उसने इच्छा की मैं एक से अनेक हो जाऊँ इसके लिये उसने फिर तपस्या की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब तीन अक्षर, तीन आवृत्ति, त्रिपदा गायत्री, तीन वेद, तीन देव, तीन वर्ण, तीन अग्नि प्रकट हुये।

तपश्चचार प्रथममसराणां पितामहः।
आविर्भू तास्ततो वेदाः सांगोपांगपदक्रमाः।।

—मत्स पुराण

देवों के पितामह ने सबसे प्रथम तो तपश्चर्या की थी। इसके अनन्तर सब वेदों का आविर्भाव हुआ था जो अपने अंग शास्त्र उपांग तथा पद एवं क्रम से संयुक्त थे।

मानव जीवन की भौतिक और आत्मिक प्रगति के लिये तपश्चर्या अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जो साहसी उसके लिये कटिबद्ध होते हैं वे इतना प्राप्त करते हैं कि उस तप साधना का कष्ट उन उपलब्धियों की तुलना में, नगण्य ही होता है। बीज का तप वृक्ष के रूप में परिणत होता है। मनुष्य का तप उसे नर से नारायण—पुरुष से पुरुषोत्तम—आत्मा से परमात्मा बना देता है।

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः।।

—महाभारत

राजन् ! तुम जिस तपस्या के विषय में मुझ से पूछ रहे हो, यह तपस्या ही सारे जगत् का मूल है, वेदवेत्ता विद्वान् इस तप से ही परम अमृत मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

तपसा स्वर्गगमने भोगो दानेन जायते।
ज्ञानेन मोक्षो विज्ञेयस्तीर्थस्नानादघक्षयः।।

—महाभारत

तप से स्वर्गलोक में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दान से भोगों की प्राप्ति होती है। ज्ञान से मोक्ष मिलता है, यह जानना चाहिये तथा तीर्थ स्नान से पापों का क्षय हो जाता है।

न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते।।

—स्कन्द

केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से पात्रता हुआ करती है। जहाँ पर सच्चरित्रता है और ये दोनों (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुतः पात्र कहा जाया करता है।

चेत्युच्यतं एतदप्युक्त नातपस्कस्यात्मज्ञानेऽधिगमः कर्मशुद्धिर्वेत्येवं ह्याह।

तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात् संप्राप्यते मनः।
मनसा प्राप्यते त्वामा ह्यात्मापत्त्या निवर्तते।।

—मैत्रायणुपनिषद् ४।३

तपश्चर्या बिना आत्मा में ध्यान नहीं लगता। न कर्म शुद्धि होती है। तप द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान से मन का निग्रह होता है। मन स्थिर होने पर आत्मा की प्राप्ति होती है और इस उपलब्धि से बन्धन छूट जाते हैं।

आत्म-कल्याण के लिये तप सम्पदा सम्पन्न लोगों की ही शरण में जाना चाहिये। वे ही स्वयं पार होते और दूसरों को पार कर सकने में समर्थ होते हैं—

ऋषीन्तपस्वतो यमतपोजां अभिगच्छतात्।

—अथर्व. १८।२।१५

तप से उत्पन्न—तपश्चर्या करते हुये ऋषियों की शरण में जाओ। आत्मिक प्रगति और शक्ति सम्पन्नता के लिये तपस्वी बनने के लिये तत्पर होना आवश्यक है। श्रुति कहती है—

भद्रमिच्छत ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्यै देवा उपसंनमन्तु।।

—अथर्व. १९।४१।१

उन शिव संकल्पी ऋषियों ने व्रतों में दीक्षित होकर तप का अनुष्ठान किया, जिससे राष्ट्र का जन्म हुआ और तपानुष्ठान से ही उन्होंने इस राष्ट्र में बल और सामर्थ्य का विकास किया। आइये, तप के द्वारा हम सब भी इस सामर्थ्य का सम्वर्धन करें।

जीव परमात्मा से एक ही प्रार्थना करता है कि उसकी प्रवृत्ति तप-साधना की ओर मुड़े ताकि वह समस्त विभूतियाँ अनायास ही उपलब्ध कर सके।

यदग्ने तपसा तप, उपतप्यामहे तपः।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मा, ऽऽयुष्मन्तः सुमेधसः।।

—अथर्व. ७।६।१।१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे परमात्मन् ! हम आपकी कृपा से तप करेंगे, तीव्र तप करेंगे। हम विद्वान और तपस्वी होकर जियें।

अग्ने तपस्तप्यामह, उपतप्यामहे तपः।

श्रुतानि श्रण्वन्तो वयम्, आयुष्मन्तः सुमेधसः।।

—अथर्व. ७।६२।२

हे अग्नि देव ! हम तप तपते रहें। हम प्रचण्ड तप से तपते रहें। सद्बुद्धि सम्पन्न और दीर्घजीवी बनें।

तप द्वारा प्राणशक्ति का अभिवर्धन

मानवी विद्युत को अध्यात्म विज्ञान में ओजस्, तेजस् एवं ब्रह्मवर्चस कहा गया है। इसे विकसित्त करने की प्रक्रिया योग-साधना एवं तपश्चर्या के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्मविद्या में इसी "चित् शक्ति" के विकास पर जोर दिया गया है और कहा गया है कि मनुष्य शरीर में सन्निहित प्रकट और अप्रकट रहस्यमय शक्ति संस्थानों को जागृत करके मनुष्य देव स्तर की विशेषताओं से सम्पन्न हो सकता है। भौतिक जगत के विकास प्रयोजनों में बिजली का जो उपयोग है, उससे कहीं अधिक उपयोगिता व्यक्तित्व के समग्र विकास में मानवी विद्युत की है। उसका स्वरूप, आधार और उपयोग जानने के लिये हमें विशेष उत्साहपूर्वक प्रयत्न करने चाहिये।

प्रत्येक प्रौढ़ मस्तिष्क प्रायः २० वाट वैद्युत शक्ति से चलता है। कुछ कोशाणु विशेष रूप से इस बिजली को उत्पन्न करने का काम करते हैं और शेष उसका उपयोग करके अपना काम चलाते हैं, वह एक सूक्ष्म डाइनुमा है। ग्लूकोज, ऑक्सीजन का रासायनिक ईंधन जलाकर उसकी ऊर्जा को वे बिजली में परिवर्तित करते हैं। काम चलाऊ मात्रा में वह कोशाणुओं को शक्ति प्रदान करती है और यदि उसकी अनावश्यक मात्रा बन गई तो स्वयं ही विसर्जित हो जाती है। उसका चार्ज-डिस्चार्ज शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है।

इलेट्रोऐन्सी फैलोग्राफ की सहायता से यह जाना जा सकता है कि इस बिजली का उत्पादन और उपभोग कहाँ किस मात्रा में हो रहा है, इसमें घट-बढ़ हो जाने से मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगता है अथवा यों भी कहा जा सकता है कि मानसिक सन्तुलन बिगड़ने से इन विद्युत धाराओं में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है।

इस मस्तिष्कीय बिजली की विशेषता यह है कि वह चेतन है जबकि भौतिक बिजली मात्र शक्ति प्रवाह बनकर काम करती है। मस्तिष्क के चेतन संस्थान प्रसुप्त स्थिति में निरर्थक जैसे लगते हैं, पर यदि उनकी क्षमता को जागृत कर लिया जाय और महत्त्वपूर्ण दिशा में नियोजित कर लिया जाय तो फिर निश्चित रूप से उनके द्वारा वे कार्य हो सकते हैं जिन्हें दैवी अनुग्रह या वरदान कहा जा सके।

मनःशास्त्री फ्लैमैरियन का कथन है, मानवी विद्युत की एक गहरी परत ओजस् है, इसकी समुचित मात्रा उपलब्ध हो तो मनुष्य सूक्ष्म अतीन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मानवीय विद्युत पर विशेष खोज करने वाले विक्टर ई. क्रोमर का कथन है—मनःशक्ति को घनीभूत करने की कला में प्रवीणता प्राप्त करके उसे किसी दिशा विशेष में प्रयुक्त किया जा सकता है। यह इतना बड़ा शक्ति-स्रोत है कि मानवी व्यक्तित्व का कोई भी पक्ष उस प्रयोग से अधिक प्रखर और उज्ज्वल बनाया जा सके। यह प्रयोग यदि अपनी सूक्ष्म शक्तियाँ तलाश करने और उभारने पर केन्द्रित किया जा सके तो अतीन्द्रिय चेतना के क्षेत्र में आशाजनक सफलता मिल सकती है।

भौतिक जगत में अग्नि, भाप, गैस, तेल, बिजली अणु विस्फोट, लेसर आदि का जो महत्त्व है उससे कहीं अधिक उपयोगिता सजीव प्राणियों के लिये उस बिजली की है जो उनके शरीरों में पाई जाती है। मनुष्य में भी इस विद्युत शक्ति का अजस्र भण्डार भरा पड़ा है।

शरीर की संचार प्रणाली का मूल आधार क्या है ? इसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म कारण ढूँढ़ने पर वे शरीर विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पेशियों में काम करने वाली स्थिति ऊर्जा "पोटेन्शियल" का तथा उसके साथ जुड़े रहने वाले आवेश—इन्टेन्सिटी—का जीवन संचार में बहुत बड़ा हाथ है। इन विद्युत धाराओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्गीकरण तथा नामकरण—सीफेलीट्राइजेमिल न्यूरैलाजिया की व्याख्या चर्चा के साथ प्रस्तुत किया जाता है। ताप विद्युतीय संयोजन—पर्मोलैश्कि कपलिंग—के शोधकर्त्ता अब इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव शरीर का सारा क्रिया-कलाप इसी विद्युतीय संचार के माध्यम से गतिशील रहता है।

पृथ्वी के इर्द-गिर्द एक चुम्बकीय वातावरण फैला हुआ है। अकेला गुरुत्वाकर्षण कार्य ही नहीं उससे भी कितने भी प्रयोजन पूरे होते हैं। यह चुम्बकत्व आखिर आता कहाँ से है-उसका उद्गम स्रोत कहाँ है ? यह पता लगाने वाले इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह कोई बाहरी अनुदान नहीं वरन् पृथ्वी के गहन अन्तराल से निकलने वाला शक्ति प्रवाह है।

जैवसेलो का सूत्र विभाजन कार्य उसके मध्य बिन्दु में चलता है उसमें यही दिशा ज्ञान काम करता है। क्रोमोजोम की गति "सैल" के मध्यवर्ती ध्रुव की दिशा की ओर रहती है, उसे दिशाज्ञान कैसे रहता है ? इस प्रश्न का उत्तर भी यही रहता है कि पृथ्वी के चुम्बकीय प्रवाह को हमारे जीव सैल की आन्तरिक सत्ता अनुभव कर सकती है, उसी आधार पर अपनी गतिविधि का निवारण कर सकती है।

चुम्बक और विद्युत यों प्रत्यक्षतः दो पृथक्-पृथक् सत्तायें हैं पर वे परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं -और समयानुसार एक धारा का दूसरी में परिवर्तन होता रहता है। यदि किसी "सरकिट" का चुम्बकीय क्षेत्र लगातार बदलते रहा जाये तो बिजली पैदा हो जायगी। इसी प्रकार लोहे के टुकड़े पर लपेटे हुये तार में से विद्युत धारा प्रवाहित की जाय तो वह चुम्बकीय शक्ति सम्पन्न बन जायेगी।

मनुष्य शरीर में बिजली काम करती है, यह सर्वविदित है। इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी तथा इलेक्ट्रो इनसिफैलोग्राफी के द्वारा इस तथ्य को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। हमारी रक्त नलिकाओं में लौह युक्त "हीमोग्लोविन" भरा पड़ा है। लौह चूर्ण और चुम्बक जिस प्रकार परस्पर चिपके रहते हैं, उसी प्रकार हमारी जीव सत्ता सभी जीव कोषों को परस्पर सम्बद्ध किये रहती है और उनकी सम्मिश्रित चेतना से वे समस्त क्रिया-कलाप चलते हैं, जिन्हें हम जीव-संचार व्यवस्था कहते हैं।

मानवी शरीर के शोध इतिहास में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख है, जिनसे यह सिद्ध होता है कि किन्हीं-किन्हीं शरीरों में इतनी अधिक बिजली होती है कि उसे दूसरे लोग भी आसानी से अनुभव कर सकें। यों हमारा नाड़ी संस्थान पूर्णतया विद्युत धारा से ही संचालित होता है। मस्तिष्क को जादुई बिजलीघर कह सकते हैं, जहाँ से शरीर के समस्त अंग-प्रत्यंगों की गतिविधियों का नियन्त्रण एवं संचालन होता है। पर वह बिजली "जीव विद्युत" वर्ग की होती है और इस तरह अनुभव में नहीं आती, जैसी कि बत्ती जलाने का मशीनें जलाने वाली बिजली। शरीर में काम करने वाली गर्मी से विभिन्न अवयवों की सक्रिय रहती है और वे अपना अपना काम करते हैं। यह कायिक ऊष्मा वस्तुतः एक विशेष प्रकार की बिजली ही है। इसे मानवी विद्युत कह सकते हैं। इतने पर भी वह यान्त्रिक बिजली से भिन्न ही मानी जायगी। वह अपना प्रभाव शरीर-संचालन तक ही सीमित रखती है। इससे बाहर उसका प्रभाव अनुभव नहीं किया जाता, किन्तु कुछ अपवाद ऐसे भी देखने में मिले हैं, जिनमें शरीरगत ऊष्मा ने यान्त्रिक बिजली की भूमिका निबाही है और उस व्यक्ति को एक चलता-फिरता बिजलीघर सिद्ध किया है।

मनुष्य शरीर में भी यान्त्रिक बिजली की आश्चर्यजनक मात्रा हो सकती है, इसके कितने ही उदाहरण सर्वविदित हैं। कोलोराडी प्रान्त के लेडीवली नगर में के. डब्ल्यू. पी. जोन्स नाम का एक ऐसा व्यक्ति हुआ है, जो जमीन पर चलकर यह बता देता था कि जिस भूमि पर वह चल रहा है, उसके बीच किस धातु की—कितनी बड़ी खदान है। उसे जमीन में दबी भिन्न धातुओं का प्रभाव अपने शरीर पर विभिन्न प्रकार के स्पन्दनों से होता था। अनुभव ने उसे यह सिखा दिया था कि किस धातु का स्पन्दन कैसा होता है ? अपनी इस विशेषता का उसने भरपूर लाभ उठाया। कईयों को खदानें बताकर उनसे हिस्सा लिया और कुछ खदानें उसने अपने धन से खरीदीं और चलाईं। अमेरिका का यह बहुत धन-सम्पन्न व्यक्ति इसी अपनी विशेषता के कारण बना था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्येत्तर अन्य प्राणियों में भी यह विद्युत शक्ति पाई जाती है। उनके शरीर में, मस्तिष्क में ऐसे विशिष्ट अवयव पाये जाते हैं जिनमें शरीरगत् विद्युत अपना काम करती है और वे आश्चर्यजनक जीवन-पद्धति अपनाये रहते हैं। वैज्ञानिकों ने इसी अद्‌भुत संरचना को देख-परखकर उसकी नकल के सहारे कुछ ऐसे आविष्कार किये हैं, जो अपनी उपयोगिता के लिये प्रख्यात हैं।

मधुमक्खियों की नेत्र रचना देखकर विज्ञानवेत्ता पोल्लरायड ओरिसन्टेशन इण्डिकेटर नामक यन्त्र बनाने में समर्थ हुये हैं, यह ध्रुव प्रदेश में दिशा ज्ञान का सही माध्यम है। उस क्षेत्र में साधारण कुतुबनुमा अपनी उत्तर, दक्षिण दिशा बताने वाली विशेषता खो बैठते हैं, तब इसी यन्त्र के सहारे उस क्षेत्र के साथी अपना काम चलाते हैं।

कितने ही पक्षी ऋतु परिवर्तन के लिये झुण्ड बनाकर सहस्रों मील लम्बी उड़ानें भरते हैं। वे धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा पहुँचते हैं। इनकी उड़ानें प्रायः रात में ही होती हैं। उस समय प्रकाश जैसी कोई इस प्रकार की सुविधा भी नहीं मिलती, जिससे वे यात्रा लक्ष्य की दिशा जान सकें। यह कार्य उनकी अन्तःचेतना पृथ्वी के इर्द-गिर्द फैले हुये चुम्बकीय घेरे में चल रहीं हलचलों के आधार पर ही पूरा करती है। इस धारा के सहारे वे इस तरह उड़ते हैं मानो किसी सुनिश्चित सड़क पर चल रहे हों।

राजाओं, सेनापतियों के घोड़े, हाथी उनका इशारा समझते थे और सम्मान करते थे। बिगड़े हुये हाथी को राजा स्वयं जाकर सँभाल लेते थे। राणाप्रताप, नैपोलियन, झाँसी की रानी के घोड़े मालिकों के इशारे ही नहीं उनकी इच्छा को भी समझते थे और उनका पालन करते थे। यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का अल्प विकसित बुद्धि वाले घोड़े, हाथी आदि पशुओं पर पड़ा हुआ प्रत्यक्ष प्रभाव ही था।

मस्तिष्क में से एक प्रकार की गन्ध सरीखी विशेष चेतन क्षमता निरन्तर उड़ती रहती है। समीप रहने वाले लोग उस विशेषता से प्रभावित होते हैं। व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली होगा—मस्तिष्क जितना विकसित होगा, उसके सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित करने वाला चुम्बक भी उतना ही प्रभावशाली होगा। यदि तीव्र इच्छा और भावना के साथ इस शक्ति को किसी दूसरे की ओर प्रवाहित किया जाय तो उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मनस्वी लोगों की समीपता से अल्प बुद्धि वालों का मस्तिष्कीय विकास होने लगता है, भले ही वह मन्दगति से क्यों न हो रहा हो।

भारत के अध्यात्मवेत्ता किसी समय इस दिशा में बहुत बड़ी खोज करने और सफलता प्राप्त करने में कृत कार्य हो चुके हैं। बुद्ध की प्रचण्ड विचारधारा ने अपने समय में लगभग ढाई लाख व्यक्तियों को अपनी विलासी एवं भौतिक महत्वाकांक्षी गतिविधियाँ छोड़कर उस कष्टकर प्रयोजन को अपनाने के लिये खुशी-खुशी कदम बढ़ाया जो प्रचण्ड मानसिक विद्युत से सुसम्पन्न बुद्ध को अभीष्ट था। भगवान राम ने रीछ-वानरों को ऐसे कार्य में जुट जाने के लिये भावावेश में संलग्न कर दिया, जिससे किसी लाभ की आशा तो थी नहीं उल्टे जीवन संकट स्पष्ट था। भगवान कृष्ण ने महाभारत की भूमिका रची और उसके लिये मनोभूमियाँ उत्तेजित कीं। पाण्डव उस तरह की आवश्यकता अनुभव नहीं कर रहे थे और न अर्जुन की उस संग्राम में रुचि थी तो भी अभीष्ट प्रयोजन को ध्यान में रखते हुये मानसिक क्षमता के धनी कृष्ण ने उस तरह की उत्तेजनात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। गोपियों के मन में सरस भावाभिव्यंजनायें उत्पन्न करने का सूत्र संचालन कृष्ण ही कर रहे थे।

ईसा मसीह, मुहम्मद, जरथुस्त आदि धार्मिक क्षेत्र के मनस्वी ही थे जिन्होंने लोगों को अभीष्ट पथ पर चलने के लिये विवश किया। उपदेशक लोग आकर्षक प्रवचन देते रहते हैं, पर उनकी कला की प्रशंसा करने वाले भी उस उपदेश पर चलने को तैयार नहीं होते। इसमें उनके प्रतिपाद्य विषय का दोष नहीं, उस मनोबल की कमी ही कारण है, जिसके बिना सुनने वालों के मस्तिष्क में हलचल उत्पन्न किया जा सकना सम्भव न हो सका। नारद जी जैसे मनस्वी ही, अपने स्वल्प परामर्श से लोगों की जीवनधारा बदल सकते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद, सुकन्या आदि कितने ही आदर्शवादी उन्हीं की प्रेरणा भरी प्रकाश किरण पाकर आगे बढ़े थे।

समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, गुरुगोविन्द सिंह, दयानन्द, कबीर आदि मनस्वी महामानवों ने अपने समय के लोगों को उपयोगी प्रेरणायें दी हैं और अभीष्ट पथ पर चलने के लिये साहस उत्पन्न किया है। गाँधीजी की प्रेरणा से स्वतन्त्रता संग्राम में अगणित व्यक्ति त्याग बलिदान करने के लिये किस उत्साह के साथ आगे आये यह पिछले ही दिनों की घटना है।

शक्ति इसी स्तर की प्रक्रिया है, जिसमें मानुषी विद्युत से सुसम्पन्न व्यक्ति का तेजस् दूसरे अल्प तेजस् व्यक्तियों में प्रवेश करके उन्हें देखते-देखते समर्थ बनाकर रख देती है। दीपक से दीपक जलने का—पारस स्पर्श से लोहा सोना होने का उदाहरण इसी प्रकार के सन्दर्भ में दिया जाता है।

इस ओजस्, ब्रह्मवर्चस्, आत्मबल का ही एक छोटा स्वरूप मानवी विद्युत है। व्यक्तित्व की प्रखरता होने पर यह प्राण शक्ति बनकर निखरती-उभरती है। ऐसे व्यक्ति बाहर से प्रभावशाली भले ही दिखाई न पड़ें, पर उनका आन्तरिक तेजस् असाधारण होता है। इस शक्ति को धन-वैभव, विद्या, शरीर, बल, शस्त्र बल आदि भौतिक साधनों की तुलना में असंख्य गुना महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

इसी ओजस् धारा के अनेक शक्ति संस्थान सूक्ष्म शरीर में भरे पड़े हैं। वे यदि जागृत किये जा सकें तो अपने भीतर से ही देवता प्रकट होते देखे जा सकते हैं।

कुछ समय पूर्व बम्बई के एक विद्वान् बी. जे. रेले ने एक पुस्तक लिखी थी—'दी वैदिक गार्डस एस. फिगर्स ऑफ बायोलोजी' उसमें उसने सिद्ध किया था कि वेदों में वर्णित आदित्य, वरुण, अग्नि, मरुत, मित्र, अश्विन, रुद्र आदि मस्तिष्क के स्थान विशेष में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ हैं, जिन्हें जागृत करके विशिष्ट क्षमता सम्पन्न बनाया जा सकता है।

ग्रान्ट मेडीकल कालेज के अतारभी प्राध्यापक वाई. जी॰ नाडगिर और एडगर जे. टामस ने संयुक्त रूप में पुस्तक की भूमिका लिखते हुये कहा है कि वैदिक ऋषियों के शरीर शास्त्र सम्बन्धी गहन ज्ञान पर अचम्भा होता है कि उस साधनहीन समय में किस प्रकार उन्होंने इतनी गहरी जानकारियाँ प्राप्त की होंगी। आँख की सीप में ऊपर के मस्तिष्क का भाग वृहत् मस्तिष्क कहलाता है यही सेरिवेलम ब्रह्म चेतना शक्ति का केन्द्र है। इन्द्र और सविता यहीं निवास करते हैं। नाक की सीध में सिर के पीछे वाला भाग सेरिवेलम अनुमस्तिष्क, रुद्र देवता का कार्य क्षेत्र है। मस्तिष्क का ऊपरी भाग रोटसी, मध्य भाग अन्तरिक्ष और निम्न भाग पृथ्वी बतलाया गया है। रोटसी से दिव्य-चेतना का प्रवाह—अन्तरिक्ष में ग्रह-नक्षत्रों वाला ब्रह्माण्ड और पृथ्वी में अपने लोक में काम कर रही भौतिक शक्तियों का सूत्र सम्बन्ध जुड़ा रहता है। सप्तधार सोम, अग्नि, स्वर्ग द्वार, द्रोण, कलश एवं अश्विनी शक्तियों का सम्बन्ध रोटसी क्षेत्र से है।

अग्नि से नीचे वाले भाग को स्वर्ग द्वार और उससे नीचे वाले भाग को द्रौण कलश कहा गया है। जहाँ से सप्त सरितायें सात नदियाँ बहती हैं। द्रौण कलश में सोमरस भरा रहता है जिसके आधार पर स्नायु केन्द्रों को शक्ति प्राप्त होती है। मेरु रज्जाओं के साथ बँधे हुये दो ग्रन्थि गुच्छक अश्विनीकुमार बताये गये हैं। मस्तिष्क की परिधि को घेरे हुये एक विशेष द्रव सम्पूर्ण मस्तिष्क को चेतना प्रदान करता है इसी को वरुण कहते हैं, इसी केन्द्र में अग्नि देवता का ज्ञानकोष है। मस्तिष्क के पिछले भाग में अवस्थित "टेपोलर लीव" प्राचीनकाल का शंख पालि है। इसके नीचे की पीयूष ग्रन्थियाँ जिन्हें मेडुला भी कहते हैं अश्वमेघ यज्ञ की वेदी है। अश्वमेघ अर्थात् इन्द्रिय परिष्कार इसके लिये पीयूष ग्रन्थि वाला क्षेत्र ही उत्तरदायी है।

सुषुप्ति की जागृति में परिणित करने के लिये ही अपने आप को तपाना पड़ता है। तपश्चर्या के फलस्वरूप सिद्धियाँ मिलने के जो प्रमाण उदाहरण मिलते हैं। उनके पीछे आन्तरिक परिष्कार का लक्ष्य ही सन्निहित रहता है। बाहर से कोई देवता हमारी सहायता करने के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दौड़ा नहीं आता वरन् तप-साधना से उत्पन्न आन्तरिक प्रखरता ही देव शक्ति बनकर हमें आत्म-सम्पदा से ओत-प्रोत करती है। यह सम्पत्ति जिसके पास है उसे सुखी और समुन्नत रहने तथा दूसरों को महत्त्वपूर्ण अनुदान देते रहने का श्रेय मिलता है। कहा भी है—

यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्ग यच्च दुस्तरम्
सर्वं तत् तपसा साध्यं, ततो हि दुरतिक्रमम्।।

तप से कोई सुख, कोई सिद्धि, कोई पद, भव-वैभव दुर्लभ नहीं। ऋषि, मुनियों ने जो अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, उनके पीछे उनकी तपश्चर्या थी।

आत्मशुद्धि की श्रेष्ठ तपश्चर्या

आत्मशुद्धि के लिये जिन व्रतों और तपश्चर्याओं का वर्णन धर्मशास्त्रों में मिलता है, उनमें आज की स्थिति के उपयुक्त चान्द्रायण व्रत सर्वश्रेष्ठ है। पापों का प्रायश्चित करके उनके दुष्परिणामों की स्वल्प दण्ड में निवृत्ति हो सकती है। अपराधी यदि अपने अपराध को स्वीकार करते हुये सच्चे हृदय से उस भूल के लिये दुःख प्रकट करे, उसकी पुनरावृत्ति पुनः न होने देने का संकल्प करे और अपराध के दण्ड स्वरूप स्वयं ही कष्ट उठाने को तैयार हो तो उससे अपराध की गरिमा कम हो जाती है और अपराधी स्वल्प दण्ड में भी उस पाप भार से निवृत्ति हो सकता है।

पाप की निवृत्ति केवल ईश्वर से क्षमा माँगने मात्र से नहीं हो सकती और न किसी नदी-तालाब में नहाने, देव-दर्शन करने जैसे सस्ते कर्मकाण्ड से ही सम्भव हो सकती है। मन में जमे हुये जिन कुसंस्कारों के कारण पाप कर्म बनते हैं, उन्हें उखाड़ने के लिये दण्ड व्यवस्था की भी आवश्यकता रहती है। ईश्वर अथवा न्यायाधीश की किसी से शत्रुता नहीं होती, अपराधी के प्रति भी उनके मन में कोई दुर्भाव नहीं रहता वे, दण्ड व्यवस्था तो इसलिये करते हैं कि उससे मिलने वाले कष्ट का स्मरण करके मनुष्य भविष्य में उस प्रकार की पुनरावृत्ति का साहस न करें। दण्ड के अभाव में वह दुर्बुद्धि पुनः कभी भी उभर सकती है इसलिये प्रायश्चित स्वरूप अपराधियों को दण्ड भुगतने का विधान न्याय-संहिता में बनाया गया है। मनुष्य कृत न्यायालयों की भाँति ही ईश्वरीय दण्ड व्यवस्था भी सुनिश्चित है। इसी से ईश्वर को न्यायकारी और समदर्शी, निष्पक्ष कहा गया है। यदि वह अपने दण्ड विधान में शिथिलता अथवा पक्षपात की नीति बरते तो संसार की सारी व्यवस्था ही लड़खड़ाने लगे।

मनुष्य दुर्बल स्वभाव प्राणी होने से उससे कई पाप बन पड़ते हैं। उन पापों का दण्ड ईश्वर द्वारा मिले इससे पूर्व ही यदि वह अपनी भूल स्वीकार करते हुये उसका प्रायश्चित करने को तैयार हो जाये और आवश्यक दण्ड स्वयं ही स्वेच्छापूर्वक सहन कर ले तो इससे ईश्वरीय दण्ड विधान का उद्देश्य बहुत कुछ पूरा हो सकता है और मनुष्य पापों के भयानक दण्ड से अपेक्षाकृत कम यातना सहकर भी छुटकारा प्राप्त कर सकता है। इसलिये शास्त्रकारों ने प्रत्येक अपराध के लिये विभिन्न प्रकार के प्रायश्चित बताये हैं। उस सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उनमें वर्णित कितने ही प्रायश्चित तो बहुत ही कठोर है, उनमें मृत्यु तुल्य यातनायें सहने का भी उल्लेख है। आज की स्थिति में मनुष्य की सहनशक्ति, धैर्य और व्यवस्था में भारी कमी आ गई है। शरीर और मन की स्थिति भी क्षीण हो गई है। इसलिये वही प्रायश्चित व्यवहारिक हो सकते हैं, जो आज की परिस्थितियों में सर्वसाधारण की सहनशक्ति से बाहर न हों।

चान्द्रायण व्रत ऐसा ही प्रायश्चित है जो अनेक महापातकों और उपपातकों को शमन करने में ईश्वरीय दण्ड विधान की आवश्यकता को बहुत हद तक पूरा कर देता है। लिखा भी है—

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्।।

अर्थात्—जिन पापों का प्रायश्चित शास्त्रों में निश्चित न हो वहाँ सर्वत्र ही चान्द्रायण प्रायश्चित समझना चाहिये। जो आत्म-कल्याण के लिये तप स्वरूप चान्द्रायण व्रत करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है।

हेमाद्रि में चान्द्रायण व्रत की महत्ता बताते हुये कहा गया है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्रतं चान्द्रायणं राजन् सर्वसिद्धि प्रदायकम्।
यथा विष्णुर्हि देवानां द्विपदां ब्राह्मणो यथा।
नगानांच यथा मेरुः गौर्वारिहा चतुष्पदाम्।
धातूनां कांचनं चैव व्रतं चान्द्रायणं तथा।।

अर्थात्—चान्द्रायणव्रत सब सिद्धियाँ प्रदान करने वाला है। जैसे देवताओं में विष्णु, मनुष्यों में ब्राह्मण, पर्वतों में सुमेरु पशुओं में गौ और धातुओं में स्वर्ण श्रेष्ठ है। इसी प्रकार व्रतों में चान्द्रायण व्रत सर्वश्रेष्ठ है।

इस व्रत का माहात्म्य बताते हुये आगे और भी लिखा है—

एवं या कुरुते नारी नरो वा यत मानसः।
धन धान्यादि सम्पत्तिर्भवेत्तस्य गृहे सदा।।
नारी सुखवाप्नोति न वैधव्यं प्रजायते।
सौभाग्यदं पर स्त्रीणां पुत्र पौत्र सुखप्रदम्।।

अर्थात्—उस चान्द्रायण व्रत को विधिपूर्वक जो नर-नारी संयम के साथ करते हैं, उनके घर में सदा धन-धान्य सुख सम्पत्ति भरी रहती है। जो स्त्रियाँ इसे करती हैं वे सौभाग्यवती रहती हैं, विधवा नहीं होतीं और उन्हें पुत्र, पौत्रों का सुख प्राप्त होता है।

इसमें कुछ अत्युक्ति भी नहीं है। दरिद्रता, अस्वस्थता, क्लेश, विपत्ति, अभाव, अशान्ति के पीछे मनुष्य के दुष्कर्म ही होते हैं। यदि उनकी निवृत्ति हो सके तो फिर सुख सौभाग्य के मार्ग में और कोई बाधा शेष नहीं रह जाती।

परमात्मा जब मनुष्य को जन्म देता है तो पूर्व जन्मों के शुभ-अशुभ कर्मों का भला-बुरा प्रारब्ध भोग उस जन्म के लिये निश्चित कर देता है। पुण्य या पाप की वृद्धि करके, पुरुषार्थ या आलस का स्वभाव बनाकर उन भोगों को बढ़ाया-घटाया भी जा सकता है। यदि संग्रहीत भोगों को शान्त चित्त से पूरा कर लिया जाय और आगे के लिये कोई अशुभ कर्म शेष न रहने दिया जाय तो जीवन लक्ष्य की पूर्ति इसी जन्म में हो सकती है। जो पाप इस जन्म में बन पड़े हैं, उन्हें प्रायश्चित द्वारा समाप्त कर दिया जाय और जो पूर्व संचित भोग हैं उन्हें धैर्य और साहस के साथ भुगत लिया जाये तो अगले जन्म के लिये कोई बन्धन शेष नहीं रह जाते और लक्ष्य को प्राप्त कर लेना सरल हो जाता है।

आत्मबल की शुद्धि के लिये तपश्चर्या को प्रधान साधन माना गया है। यों तपश्चर्यायें अनेक प्रकार की हैं पर उनमें चान्द्रायण व्रत का असाधारण महत्त्व है।

पातंजलि योगदर्शन में सर्वसाधारण के उपयुक्त क्रियायोग माना गया है। उसके अन्तर्गत तीन बातें आती हैं। (१) तप, (२) स्वाध्याय, (३) ईश्वर उपासना। इसमें प्रथम आधार तप की विवेचना करते हुये 'व्यास भाष्य' और 'भोजवृत्ति' में कहा गया है—

"तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं कृच्छ्रचान्द्रायणादि।"

अर्थात्—"तप का अर्थ है शास्त्रों में बताते हुये चान्द्रायण आदि व्रतों का अनुष्ठान।" निश्चय ही इस महान व्रत को श्रेष्ठ तपश्चर्या में ही गिना जा सकता है। तपस्या के जितने आधार होते हैं वे सभी चान्द्रायण में मौजूद हैं।

चान्द्रायण व्रत का मोटा विधान यह है कि पूर्णिमा से अमावास्या तक भोजन का चौदहवाँ भाग कृष्णपक्ष में घटाते चलते हैं और अमावस्या प्रतिपदा को निराहार रहकर शुक्लपक्ष में दौज से लेकर एक-एक चौदहवाँ भाग बढ़ाते हुये पूर्णिमा तक उतने ही पूर्ण आहार पर पहुँच जाते हैं जितना कि व्रत आरम्भ करने के दिन था। यह तो आहार की बात हुई। पर चान्द्रायण व्रत उपवास तक ही सीमित नहीं है। उसमें पापों का प्रायश्चित करने के लिये कुछ अन्य साधनायें भी करनी पड़ती हैं जिनमें से पहली यह है कि इस एक महीने में गायत्री महामन्त्र का सवालक्ष का पुरश्चरण किया जाये। आत्मा में जो प्रकाश साधारण जप अनुष्ठान से उत्पन्न नहीं हो सकता वह इस महाव्रत के साथ किये पुरश्चरण में उत्पन्न होते हुये देखा जाता है।

दूसरा कार्य यह है कि जीवन में जितनी भूलें हुई हों, जितने पाप बने हों, उनको स्मरण करते हुये उनके लिये हार्दिक दुःख अनुभव करते हुये भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न हो ऐसा संकल्प करना चाहिये। जो हो चुका वह लौटाया नहीं जा सकता पर ठोकर लगने से जो अनुभव हुआ है उसे स्मरण रखा जा सकता है और भविष्य के लिये सतर्कतापूर्वक बचा जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है। प्रायश्चित वही कहलाता है जिसके साथ भविष्य में पुनरावृत्ति न होने देने की शर्त जुटी हुई हो। स्नान करके फिर कीचड़ में जा लौटने से स्नान का उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार चान्द्रायण व्रत से पूर्व संचित पापों का प्रायश्चित उन्हीं का होता है जो भविष्य में वह कुकर्म पुनः न करने के लिये दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं और आजीवन उसे निबाहते हैं।

इस तरह चान्द्रायण व्रत पूर्णिमा से आरम्भ होता है। जितना आहार प्रारम्भ में लिया गया हो उसे क्रमशः घटाते हुये अमावास्या और प्रतिपदा को निराहार रहते हैं। इसके बाद चन्द्रमा की कलाओं की भाँति आहार को क्रमशः बढ़ाते हुये पूर्णिमा तक गत पूर्णिमा जितने आहार तक पहुँच जाते हैं। इस मोटे नियम को सभी जानते हैं। पर साथ ही यह भी जानना चाहिये कि केवल भूखे रहना ही चान्द्रायण व्रत नहीं है। शरीर की भाँति अन्तःकरण का मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का भी उसमें शोधन करना पड़ता है। यदि यह शोधन कार्य न हो तो इस महाव्रत को तपश्चर्या न कहा जा सकेगा फिर यह लंघन करने का एक साधारण शारीरिक आरोग्य विधान मात्र रह जायेगा। ऐसी दशा में पापों का प्रायश्चित और आत्म उत्थान का जो माहात्म्य शास्त्रकारों ने वर्णन किया है वह कहाँ पूरा हो सकेगा ?

चान्द्रायण व्रत के दिनों में शरीर से मल निष्कासन करने और आन्तरिक अवयवों को विश्राम देने की भाँति मन को उसी प्रकार साधना सँभालना पड़ता है। उपवास के दिनों में शरीर को आराम एवं विश्राम देना आवश्यक है। उन दिनों यदि बहुत दौड़-धूप की जाय तो लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना रहेगी। इसी प्रकार इस तपश्चर्या के दिनों में मानसिक विश्राम मिलना आवश्यक है। चिन्तायें सबसे अधिक मानसक तनाव उत्पन्न करती हैं। उद्वेग, आवेश, उत्तेजना, द्वेष, भय, क्रोध, आशंका आदि से ग्रस्त मनुष्य के मन पर निरन्तर तनाव बना रहता है और इस कारण आत्म-चिन्तन, आत्म-शोधन, आत्म विकास, आत्म-शान्ति का जो कार्यक्रम इस तपश्चर्या के दिनों बना रहना चाहिये, वह सम्भव नहीं हो पाता। अतएव मानसिक शान्ति एवं निश्चिन्तता की स्थिति उत्पन्न करना आवश्यक है। नित्य प्रति के घरेलू काम-धन्धों से छुट्टी लेकर कहीं अन्यत्र शान्तिपूर्ण स्थान में उन दिनों रहा जा सके तो सर्वोत्तम है। शास्त्रकारों ने इसी दृष्टि से तीर्थों में, गुरुजनों के निकट एवं तपोवनों में चान्द्रायण व्रत करने का विधान किया है। यदि घर से बहुत दूर जा सकना न सम्भव हो तो भी ऐसी व्यवस्था तो करनी ही चाहिये कि उन दिनों मानसिक विश्राम एवं निश्चिन्तता की स्थिति बनी रहे।

जब पूर्ण निश्चिन्तता एवं एकान्त की स्थिति हो तो इस एक महीने में सवालक्ष गायत्री पुरश्चरण करना चाहिये। प्रतिदिन ४२ माला जप करने में लगभग चार घण्टे नित्य लगते हैं। इन दिनों त्रिकाल संध्या का नियम है। प्रातः दो घण्टे, मध्यान्ह एक घण्टा और सायंकाल एक घण्टा का कार्यक्रम बना लेने से या इसमें कुछ और हेर-फेर कर लेने से प्रतिदिन ४२ माला का क्रम बन सकता है। जिन्हें शारीरिक अशक्तता हो या चिकित्सा शिक्षा आदि का भी क्रम बनाना हो वे दस दिन में चौबीस हजार जप के हिसाब से ३० दिन में तीन लघु अनुष्ठान कर सकते हैं। इसमें २४ माला प्रतिदिन करनी पड़ती हैं, जिनमें २ घण्टा के लगभग लगता है। प्रातः, मध्यान्ह, सायं के तीन भागों में बाँटकर इसे बहुत आसानी से पूरा किया जा सकता है। इस विभाजन में प्रातः अधिक जप करते हैं। सायंकाल इससे कम रखा जाता है। मध्यान्ह के लिये और भी कम संख्या रखी जा सकती है। सवा लक्ष पुरश्चरण करना या चौबीस हजार के तीन अनुष्ठान करना, यह पहले ही निश्चय कर लेना चाहिये और उसी क्रम से साधना क्रम चलाना चाहिये।

अन्य अनुष्ठानों की भाँति ब्रह्मचर्य से रहना इन दिनों अनिवार्य है। पलंग छोड़कर भूमि या तख्त पर सोना चाहिये। हजामत, कपड़े धोना, भोजन बनाना आदि अपने शरीर की सेवायें यथा-सम्भव अपने हाथों से ही करनी चाहिये। चमड़े का उपयोग भी उन दिनों नहीं करना चाहिये क्योंकि आजकल आमतौर से हत्या किये हुये पशुओं का चमड़ा ही उपलब्ध होता है। प्राचीनकाल में अपनी मौत पर हिरनों की मृगछाला काम में लाई जाती थी पर आज तो हत्या न किये हुये जानवरों का चमड़ा मिलना कठिन है। उस हत्या का पाप माँसाहारी की भाँति चमड़ा उपयोग करने वाले को भी लगता है इसलिये इस तपश्चर्या के समय जूते, पेटी आदि कोई वस्तु चमड़े की न लेकर रबड़, कपड़ा आदि की वस्तुयें प्रयुक्त करनी चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि क्रोध, झूठ, हिंसा, छल, बेईमानी आदि कुकर्मों और विभिन्न प्रकार के कुविचारों एवं मानसिक पापों से भी बचना चाहिये। रोग की चिकित्सा के दिनों में जिस प्रकार आहार-विहार का विशेष परहेज रखना पड़ता है, इसी प्रकार चान्द्रायण व्रत के दिनों में भी शारीरिक और मानसिक पापों से बचने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिये। यह बचाव घर से दूर—अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से असम्बद्ध स्थानों में अधिक सुविधापूर्वक बन पड़ता है। वैसे मनस्वी लोगों के लिये हर बात हर जगह सम्भव हो सकती है।

प्रसन्नता, मुस्कान, सन्तोष, निश्चिन्तता और निर्भयता की सत्प्रवृत्तियों को इन दिनों स्वभाव का अंग बनाने के लिये विशेष रूप से प्रयत्न करना चाहिये। शत्रुता, प्रतिहिंसा एवं किसी को सताने की बात तो इन दिनों सोचनी भी नहीं चाहिये। अपने गुण, कर्म और स्वभाव में जो त्रुटियाँ दीखती हो उन्हें एक निष्पक्ष समीक्षक की दृष्टि से ढूँढ़ते रहना चाहिये और ऐसे उपाय सोचने चाहिये कि इन दुर्बलताओं को हटाकर अपना व्यक्तित्व किस प्रकार अधिक निर्मल अधिक उज्ज्वल एवं अधिक उत्कृष्ट बनाये जाय। गायत्री उपासना का वास्तविक उद्देश्य आत्मचिन्तन, आत्मशोधन एवं आत्म-निर्माण ही है। इस एक महीने की अवधि में विचार-प्रवाह इन्हीं कार्यों में संलग्न रहना चाहिये। ताकि व्रत समाप्त होने पर अपना जीवन-क्रम स्पष्ट रूप से परिवर्तित हुआ, परिलक्षित होने लगे।

एक महत्त्वपूर्ण कार्य इन दिनों इस जीवन में बन पड़े पापों का प्रायश्चित करना भी है। पूर्व संचित कर्मों का भोग इसी जन्म में पूरी तरह भुगत जाय इसी दृष्टि से विधाता हमारे प्रारब्ध की रचना करता है। यदि कोई पाप न किये जायें तो आगे के लिये भव-बन्धनों में पड़ने की आशंका नहीं रहती। पर यदि इस जन्म में अशुभ काम करने फिर आरम्भ कर दिये तो आगे फिर उनका परिणाम भोगने के लिये जन्म-मरण के चक्र में बँधना पड़ेगा। इस लिये बुद्धिमत्ता इसी में है कि इस जन्म में निष्पाप रहा जाये। अब तक जो पाप बने हों उनका प्रायश्चित कर लिया जाये और आगे के लिये यह व्रत लिया जाये कि दुष्कर्मों से बचे रहेंगे। प्रायश्चित करने से इस जन्म के पाप भुगते जा सकते हैं। इसलिये चान्द्रायण व्रत का एक उद्देश्य यह भी माना गया है कि इस जन्म में बन पड़े पापों के प्रति सच्चे हृदय से दुःखी होने, दण्ड भुगतने और आगे के लिये पूर्ण सतर्क रहने की त्रिविध प्रायश्चित व्यवस्था को इस अवधि में पूर्ण कर लिया जाये।

अत्यन्त विश्वस्त ऐसे उदार हृदय गुरुजनों के आगे अपने सभी पाप प्रकट कर देने चाहिये जो उन्हें सुनकर न तो घृणा करें और न दूसरों से उनकी चर्चा करके सामाजिक प्रतिष्ठा नष्ट करने की नादानी कर बैठें। पापों का प्रकटीकरण आवश्यक है पर वह होना अत्यन्त विश्वस्त गुरुजनों के सम्मुख ही चाहिये। अन्यथा उस प्रकटीकरण का दुरुपयोग हुआ तो मानसिक विक्षोभ और भी अधिक बढ़ सकता है। पापों को छिपाये रहने से मस्तिष्क में एक तरह की घुटन पैदा होती रहती है, मानसिक ग्रन्थियाँ बनती रहती हैं जिनके कारण अनेकों मानसिक एवं शारीरिक रोग उठ खड़े होते हैं। फोड़े में भरे मवाद की तरह मन में दबे हुये दुराव दुष्कर्मों को छिपाये रहने से अनेक मनोविकार उत्पन्न होते हैं। इस तथ्य को जानकर पाश्चात्य मानसिक रोगों के चिकित्सक घण्टों बात-चीत करके अपने रोगियों के मन में दबी हुई व्यथा वेदनायें, दुराव भरी अभिव्यंजनायें उसी के मुँह से उगलवा लेते हैं। रोगी यदि सब कुछ कह दे तो उसका चित्त हल्का हो जाता है और केवल इतने मात्र से भयंकर मनोविकारों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है।

चान्द्रायण व्रत को मानसिक शोधन की दृष्टि से पापों के प्रकटीकरण का विधान रखा गया है। जिन मनोविज्ञानवेत्ता गुरुजनों के सम्मुख सब कुछ कह दिया गया है, वे उस पिछली भूल का प्रायश्चित भी बताते हैं। दुष्कर्मों द्वारा समाज को जो हानि पहुँचाई गई है, उसकी क्षति-पूर्ति के लिये लोकोपयोगी सत्कर्म करने से बहुत कुछ काम चल जाता है। साबुन से मैल कट सकता है तो पुण्यों की अभिवृद्धि से पापों का शोधन भी हो सकता है। जो भूल हो गई वह लौट तो नहीं सकती पर अपनी गलती मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेने, उसे भविष्य में न करने और जो किया है उसका दण्ड भोग लेने से, पिछली भूलों का शोधन और प्रायश्चित हो सकता है। इस प्रकार अगले जन्म में मिलने वाले दण्डों का इसी जन्म में भुगतान करके आगे की त्रासदायक सम्भावनाओं से छुटकारा पाया जा सकता है। किस पाप के लिये, किस स्थिति का व्यक्ति क्या प्रायश्चित करे ? उसका एक-सा विधान नहीं बन सकता, इसके लिये देश, काल, पात्र एवं परिस्थितियों का विचार करते हुये दूरदर्शी मनीषियों के परामर्श से ही कुछ ठीक निर्णय किया जा सकता है।

स्वाध्याय एवं सत्संग के माध्यम से सद्भावनाओं की अभिवृद्धि होती है। सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है और आत्मशोधन की व्यवस्था बन पड़ती है, इसलिये यह एक महीने की अवधि को प्रधानतया इसी प्रकार के विचारोत्तेजक वातावरण से भरा-पूरा रखना चाहिये। जिस प्रकार बीज बोने के दिनों में जो फसल बोई जाती है, वह ठीक प्रकार उगती है, उसी प्रकार चान्द्रायण व्रत के दिनों में जो सद्विचार मनोभूमि में किये जाते हैं, वे मजबूती से जड़ जमा लेते हैं और आशाजनक परिणाम उत्पन्न करते हुये फलते-फूलते हैं। अन्य समयों में प्राप्त की गई शिक्षायें उतनी हृदयंगम नहीं हो पातीं, जितनी कि इस तपश्चर्या के दिनों में होती है। प्रातः, सायंकाल की संध्या उपासना अधिक सत्परिणाम उपस्थित करती हैं, औषधि सेवन का समय भी प्रायः सुबह-शाम का ही रहता है। ऋतुकाल में गर्भ-स्थापन की सम्भावना अधिक रहती है। इसी प्रकार तपश्चर्या की मनोदशा में सद्विचारों और सत्प्रेरणाओं को अन्तःकरण के गहर स्तर तक पहुँचाया जाना अधिक सम्भव होता है।

मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिये चान्द्रायण व्रत एक प्रभावशाली उपचार पद्धति सिद्ध हुई है। स्मरण शक्ति की कमी, तुनक-मिजाजी, चिड़चिड़ापन, जल्दी भावावेश में आ जाना, सहनशीलता का अभाव, छिद्रान्वेषण, पराये दोषों को ढूँढ़ते रहना, निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, कटुभाषण, अन्यमनस्कता, सूखापन, अनुत्साह, आलस्य, प्रमाद, छोटी-सी कठिनाई को बहुत बड़ी मानना, भीरुता, इन्द्रियों पर काबू न रख सकना, चित्त की चंचलता, जल्दी निराश हो जाना, चिन्तित बने रहना, भविष्य के लिये बुरी-बुरी आशंकायें करते रहना, बुरे स्वप्न, दुराग्रह, मिथ्या अहंकार, शेखीखोरी, प्रेम भावना का अभाव, लापरवाही आदि अनेक मानसिक एवं स्वभावजन्य रोग चान्द्रायण व्रत की अवधि में आसानी से दूर होते देखे गये हैं। इन दोषों की निवृत्ति के लिये जो उपचार इन दिनों किये जाते हैं, उनकी सफलता प्रायः असंदिग्ध ही रहती है।

हमारे देश में मानवीय दोष दुर्गुणों की अधिकता के कारण शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोग भी बुरी तरह फैले हुये हैं। रोगी शरीरों को लेकर कुछ महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ बन नहीं पड़ता, उसी प्रकार रोगी मस्तिष्क भी जीवन को भार ही बनाये रहते हैं। किसी दिशा में ठोस प्रगति करने की दृष्टि से वे निकम्मे ही सिद्ध होते हैं। इसलिये शारीरिक अस्वस्थता दूर करने की भाँति मानसिक दुर्बलता निवारण के लिये भी हमें कुछ सोचना और करना चाहिये। हमने पिछले तीन वर्षों से मानसिक रोगों के निवारण में चान्द्रायण व्रत के साथ जड़ी-बूटी सेवन तथा उपचारों द्वारा जो सफलता मिलते देखी है, उससे यह कहा जा सकता है कि शारीरिक कायाकल्प की तरह मानसिक कायाकल्प के लिये भी चान्द्रायण व्रत को एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बनाया जा सकता है।

नई पीढ़ियों को तेजस्वी एवं होनहार बनाने की दृष्टि से यदि माता-पिता मिलकर चान्द्रायण व्रत करें तो उनके सुसंस्कारी शरीरों से वैसी सन्तानें उत्पन्न होनी सम्भव हैं जैसी कि प्राचीन काल में महानता के जन्मजात संस्कार लेकर भारत के घर-घर में नर-रत्न जनमा करते थे। आत्मबल प्राप्त करने के लिये चान्द्रायण आवश्यक है।

धर्मशास्त्रों में भी पापनिवृत्ति और पुण्य प्रवृत्ति के दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिये उपयुक्त साधन चान्द्रायण तप बताया गया है। इस पुण्य प्रक्रिया के पाँच प्रमुख भाग यह हैं—(१) एक महीने तथा आहार के घटने-बढ़ने वाला उपवास (२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण (३) आन्तरिक परिवर्तन कर सकने वाले वातावरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में निवास और अनुशासन का प्रतिपालन (४) अन्तःकरण को परिष्कृत करने वाला योगाभ्यास युक्त तप साधन। (५) दुष्कर्मों की क्षतिपूर्ति और पुण्य-वर्धन की परमार्थ परायणता। इन्हें पूरा करने से चान्द्रायण तप सम्पन्न होता है। मात्र एक महीने का उपवास ही चान्द्रायण नहीं है।

एक महीने की निर्धारित ब्रह्मवर्चस साधना क्रम में इन पाँचों का समन्वय है।

(१) पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक महीने का उपवास रहता है। पूर्णिमा को पूर्ण आहार करके उसका चौदहवाँ अंश कृष्ण पक्ष में हर दिन घटाया जाता है। शुक्ल पक्ष में उसी क्रम से बढ़ाते रहते हैं। अनभ्यास लोगों को 'शिशु' चान्द्रायण कराया जाता है और मनस्वी लोगों को यति चान्द्रायण। यह स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिये शारीरिक कायाकल्प जैसा प्रयोग है। इससे रोगों की जड़ें कटती हैं। परम सात्विक हविष्यान्न ही पेट में जाने से विचार परिष्कार और सद्भाव सम्वर्धन का उद्देश्य बड़ी अच्छी तरह पूरा होता है। पंच गव्य सेवन, गौ मूत्र से संस्कारित हविष्यान्न का आहार आदि के माध्यम से गौ सम्पर्क भी सधता रहता है। प्यास बुझाने के लिये मात्र गंगाजल पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

(२) गुप्त पापों का प्रकटीकरण, मात्र ब्रह्मवर्चस के कुलपति के सम्मुख करके चित्त की भीतरी परतों पर जमी हुई दुराव की जटिल ग्रन्थियों को खोला जाता है। मानसिक रोगों के निराकरण का यह बहुत ही उत्तम उपचार है। जो किया जा चुका उसके परिमार्जित के लिये क्या करना चाहिये ? यह परामर्श प्राप्त करना भी इसी प्रकटीकरण का अंग है।

शीर्ष संस्कार इसी प्रयोजन के लिये हैं। पूर्ण मुण्डन तो नहीं कराया जाता, पर बाल थोड़े छोटे अवश्य हो जाते हैं। जिसका तात्पर्य है संचित दुष्ट विचारों का परित्याग। बच्चों का मुण्डन संस्कार भी जन्म-जन्मान्तरों की पशु प्रवृत्तियों को मस्तिष्क में से हटाने के उद्देश्य से ही किया जाता है। बाल छाँटने के अतिरिक्त गोमूत्र, गोमय आदि मन्त्र विधान सहित शीर्ष संस्कार किया जाता है। साधन अनुभव करता है कि इस धर्म कृत्य के साथ-साथ उसके मनः संस्थान में अति महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहा है।

(३) वातावरण का मनुष्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्तित्व के परिवर्तन प्रयास में वातावरण का परिवर्तन आवश्यक माना गया है। ब्रह्मवर्चस आरण्यक में वैसी समुचित सुविधा उपलब्ध है। परिमार्जन, संरक्षण और अभिवर्धन के तीनों उद्देश्य पूरे करने वाली त्रिवेणी यहाँ विद्यमान है। दिनचर्या में स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन के चारों तत्व गुँथे हुये हैं। शारीरिक और मानसिक संयम अनुशासन की कठोर विधि व्यवस्था का पालन करना पड़ता है। प्रवचन और परामर्श का दैनिक लाभ मिलता है। दिनचर्या इतनी अनुशासित और व्यवस्थित रहती है कि उस ढर्रे में ढल जाने वाला भविष्य में अपने आपको सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक ढाँचे में ही ढाल लेता है। वातावरण का प्रभाव अभिनव परिवर्तन के रूप में निरन्तर अनुभव होता रहता है।

(४) अन्तःकरण में दैवी संस्कारों की जड़ जमाने वाले योगाभ्यास और तप साधन चान्द्रायण के साथ-साथ ही करने होते हैं। सवा लक्ष्य गायत्री पुरश्चरण अनिवार्य रूप से आवश्यक है। गायत्री यज्ञ में नित्य ही सम्मिलित होना होता है। इसके अतिरिक्त उच्चस्तरीय पंचकोशी साधना के लिये पाँच योगाभ्यास निश्चित हैं। जप और ध्यान के अतिरिक्त (१) त्राटक (२) सूर्यवेधन प्राणायाम (३) खेचरी मुद्रा (४) सोहम् साधना एवं शक्तिचालिनी प्रक्रिया के रूप में नित्य ही करनी पड़ती है। इन साधनाओं का चेतना क्षेत्र के पाँच प्राणों का और काया क्षेत्र के पाँच तत्वों का परिष्कार होने के साथ-साथ जीवन में अभिनव प्राण संचार होता है। शास्त्रों में इसे पंचीकरण योगाभ्यास एवं पंचाग्नि तपश्चर्या कहा है। सर्व साधारण के सध सकने से जितना ही दबाव इस एक महीने के साधन क्रम में सम्मिलित किया गया है। गायत्री की पंचमुखी साधना में पंचकोशों के अनावरण को ग्रन्थि-वेधन का रहस्यमय विधान इन्हीं पाँच साधनाओं के अन्तर्गत आ जाता है। अन्तःचेतना के यह पाँच उभार पाँच देवताओं के वरदान जैसे चमत्कारी प्रतीत होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(५) पापों की क्षतिपूर्ति एवं पुण्य सम्पदा की अभिवृद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत की पूर्णाहुति के रूप में कुछ अवांछनीयताओं का परित्याग और कुछ परमार्थों को अपनाने का संकल्प करना होता है। संग्रह का अंश दान तीर्थयात्रा के रूप में धर्म प्रचार का श्रमदान, पुण्य प्रयोजनों में सहकार, सत्सृजन में योगदान जैसे कुछ कदम ऐसे उठाने के लिये परामर्श दिया जाता है, जिनके सहारे अन्तःकरण पर परिवर्तन को व्यवहार में उतारने की छाप प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगे। आन्तरिक कायाकल्प—चान्द्रायण तपश्चर्या का उद्देश्य है। यह कल्पना क्षेत्र तक ही सीमित बनकर न रह जाये वरन् व्यवहार में परिलक्षित होने लगे। इसके लिये कुछ क्रियात्मक कदम उठाने के लिये वैसा परामर्श मिलता है, जो प्रस्तुत परिस्थितियों में सरलतापूर्वक शक्य हो सके। उपलब्ध सुसंस्कार परिपक्वता के लिये—दूसरों के सम्मुख परिवर्तन का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये कुछ साहसिक कदम उठाने पड़ते हैं। यही चान्द्रायण की पूर्णाहुति है।

बीज को वृक्ष रूप में परिणित करना एक चमत्कार है। व्यक्ति को तुच्छ से महान् बनाना भी एक दैवी वरदान है। बीज अनायास ही वृक्ष नहीं बन जाता। उसे उगने से लेकर फूलने-फलने की परिपक्व स्थिति तक पहुँचने में समय और साधनों की आवश्यकता पड़ती है—(१) भूमि (२) खाद (३) पानी (४) सुरक्षा एवं (५) उत्पादक की श्रमशीलता का समन्वय आवश्यक होता है। ठीक इसी प्रकार ईश्वराधन को सफल बनाने के लिये भी पाँच परिपोषणों की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं पांचों का समन्वय ब्रह्मवर्चस साधना में है। इसका सुनियोजित तप-साधना की सामूहिक व्यवस्था से उस युग शक्ति का उद्‌भव होगा जिसकी सामर्थ्य से नये युग के सृजन की अनेकों आवश्यकतायें पूर्ण हो सकेंगी। व्यक्ति में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण के लिये जिन सृजन शक्तियों को युगान्तकारी भूमिका निभानी है, उनकी धार तेज करने के लिये यह एक महीने की चान्द्रायण तपश्चर्या अति महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी यह सुनिश्चित है। इस तपस्या को सफल बनाने के लिये हमारा आवश्यक मार्ग-दर्शन-प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सतत् प्रत्येक परिजन को मिलता रहेगा।

कल्प-साधना—तपश्चर्या का स्वरूप एवं प्रतिफल

मुक्तिपथ पर चलना कहाँ से आरम्भ किया जाय और कौन से विरामों पर ठहरते हुए लक्ष्य तक पहुँचने की मंजिल कैसे पूरी की जाय ? इसका एक सुनिश्चित मार्गदर्शन गीताकार ने इस प्रकार किया है।

विषयाविनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज रसोप्यस, परं दृष्ट्वा निवर्त्तते।।

विषय भव बन्धन है। जीवात्मा को वे ही बाँधते हैं। इन विषयों से छुटकारा प्राप्त करने की पहली मंजिल है 'उपवास'। उपवास का अर्थ यहाँ शत-प्रतिशत अन्न-जल का परित्याग नहीं वरन् आहार पर नियन्त्रण है। नियन्त्रण अर्थात् मात्रा में कमी। साथ ही स्वाद का परित्याग। सामान्य एवं सात्विक स्वाद प्रत्येक खाद्य पदार्थ में होता है। उसी में सन्तोष किया जाय। ऊपर से जो नमक-मिर्च आदि मसाले मिलाये जाते हैं और शक्कर का सम्मिश्रण किया जाता है, उन्हें छोड़ा जाय। मसाले एवं शक्कर की भरमार से भोजन स्वादिष्ट तो हो जाता है, पर जीभ के चटोरेपन का पोषण होने से वह अनावश्यक मात्रा में खा लिया जाता है। इनका सीधा परिणाम अपच होता है। अपच का अर्थ है पेट में खाद्य पदार्थ का सड़ना। सड़न विष उत्पन्न करती है जो रक्त के साथ मिलकर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करता है। तले हुए, भुने हुए, चिकनाई से सने हुए मिष्ठान्न पकवान हर कोई अधिक मात्रा में खा जाता है। एक तो मात्रा की अधिकता, दूसरे मसाले, चिकनाई, मिठाई जैसे गरिष्ठ पदार्थों का मिलना भोजन को तमोगुणी बना देता है। वे पाचन में भारी होने के कारण पाचन तन्त्र को खराब करते हैं और उनका परिणाम स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है।

आहार का मन से सीधा सम्बन्ध है। "जैसा खाये अन्न—वैसा बने मन" की उक्ति तथ्यों पर आधारित है। गरिष्ठ भोजन मन को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकारग्रस्त बनाता है। उससे अन्य इन्द्रियों की लिप्सा भड़कती है। मन विषय-विकारों से ग्रसित होता है। इसलिए साधना का प्रथम चरण आहार संयम से आरम्भ होता है। व्रतों की व्याख्या करते हुए अस्वाद को प्रथम व्रत बताया गया है। गाँधी जी ने सप्त महाव्रतों की गणना करते हुए अस्वाद को प्रथम व्रत बताया है। इसमें आहार संयम ही नहीं, इन्द्रिय निग्रह का भी समावेश है। जो स्वादेन्द्रिय पर काबू कर लेगा, उसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत की साधना सरल है। चटोरा व्यक्ति जिह्वा को अनियन्त्रित करने के उपरान्त कामुकता का भी शिकार होता है। उसके मन में कामुक अनियन्त्रण घूमता रहता है, जो समयानुसार फलित होकर ब्रह्मचर्य भंग एवं व्यभिचार जन्य क्रिया-कलापों तक जा पहुँचता है।

भारतीय धर्मशास्त्रों में व्रतों का सुविस्तृत वर्णन है। आये दिन उपवासों के विधान हैं। उनके अनेक माहात्म्य भी बताये गये हैं। उन अलंकारिक प्रतिफलों में अत्युक्ति हो सकती है किन्तु इतना सर्वथा सत्य है कि आहार संयम हर दृष्टि से उत्तम है। उससे शारीरिक और मानसिक दोनों ही स्वास्थ्य संभलते हैं।

शरीर से मन बनता है। जीभ का चटोरापन सीधे कामुकता को भड़काता है। यह मनोविकार अकेला नहीं है। इनकी एक पूरी सेना है। जहाँ एक चलता है, वहाँ साथी-संगतों की पूरी बरात चल पड़ती है। वासना-तृष्णा और अहन्ता का एक समुदाय है। लोभ, मोह, और क्रोध का एक समूह है। यह सब आपस में गुँथे हुए हैं। एक के साथ दूसरा चलता है। जहाँ वासना भड़केगी वहाँ तृष्णा भी पीछे न रहेगी। लोभ-लालच में मन भटकेगा। सम्पदा की ओर मन ललचायेगा कि उसे जैसे बने संग्रह किया जाय। उचित रीति से उपार्जन थोड़ा ही हो सकता है। बहुत संग्रह करके अहंकार की पूर्ति-कुटुम्बियों को विलासी बनाने का मोह बढ़ाती है और उस संग्रह के लिए ईमानदारी से काम नहीं चलता। बेईमानी का आश्रय लेना पड़ता है। अर्थलोभ मात्र व्यवसाय में बेईमानी करने तक सीमित नहीं रहता वरन् चोरी, ठगी, झूठ, हत्या जैसे अनेकों छोटे-बड़े कुकर्मों में रस आने लगता है। उन्हें करने में भय, लज्जा, संकोच का अनुभव नहीं होता वरन् रस आने लगता है। रस की कोई सीमा नहीं, वह अमुक सीमा तक पहुँचकर तृप्त कर सके, ऐसा भी तो नहीं होगा। जीभ से आरम्भ हुआ रसास्वादन सभी इन्द्रियों को चटोरी बनाता है और फिर मन की ललक लिप्साएँ भड़कने लगती हैं। फुलझड़ी में माचिस लगाने के उपरान्त एक के बाद दूसरी चिनगारी टूटने लगती है और फिर ऐसा तमाशा बनता है कि पूरे खेल का सफाया करने के उपरान्त ही समाप्त होता है। अवांछनीयता का रस जीभ के चटोरेपन से आरम्भ होकर जहाँ तक जगह मिलती है वहाँ तक बढ़ता ही जाता है।

व्रत, उपवास का प्रथम उपाय वह है जिससे मनुष्य अन्यान्य संयम की ओर बढ़ता है। संयम को ही तप कहते हैं। इन्द्रिय संयम के बाद अर्थ संयम, समय संयम, विचार संयम का क्रम है। संयमी तपस्वी कहलाता है। स्वल्प सीमित में अपना काम चलाने की विवेक बुद्धि जिसमें जगती है उसमें साथ ही इतनी उदारता दूरदर्शिता भी जगती है कि बचत को परमार्थ प्रयोजनों में लगाता रह सके। मनुष्य यदि आलसी, प्रमादी न हो, पराक्रम पुरुषार्थी हो तो स्वभावतः उसके पास धन ही नहीं, समय, श्रम से लेकर प्रतिभा, पराक्रम तक ढेरों साधन बच जाते हैं। तपश्चर्या के साथ में जमी हुई उदारता उसे सत्प्रयोजनों में लगाने की प्रेरणा भरती है। संयमी की विवेकशीलता, उदारता के साथ-साथ दानशीलता की ऐसी प्रेरणा भरती है जो चरितार्थ हुए बिना रुकती ही नहीं। चैन से बैठने ही नहीं देती।

यह निराहार रहने के व्रत-उपवास की साधना करने के प्रतिफल हैं। जिसने इतनी मंजिल पार कर ली उसकी "परापश्य" परा प्रज्ञा जागृत होती है और परमात्मा को देख सकने वाला तीसरा नेत्र—ज्ञानचक्षु खुलता है। फलस्वरूप वह दीख पड़ता है जिसकी ओर से विषय परायणों की आँखें बन्द रहती हैं।

व्रत उपवासों का प्रथम पाठ साधना क्षेत्र में सर्वप्रथम पढ़ाया जाता है। पूजा-पाठ, जप, तप, देव-दर्शन, नदी, सरोवर स्नान आदि की शिक्षा इसके बाद की है। संयम प्रथम, उपासना पश्चात्। संयम के बाद उपासना नहीं उदारता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का दूसरा चरण आता है। न्यूनतम में निर्वाह। सादा जीवन उच्च विचार करने वाला अपने साधनों की बचत करेगा ही और जहाँ उदारता तथा बचत का संयोग है वहाँ परमार्थ के लिए दान की उत्कण्ठा उठे बिना रह नहीं सकती। जो संयमी है, जो उदार है, जो मितव्ययी है, साथ ही जो पुरुषार्थ परायण है वह अपने साधनों का पुण्य-परमार्थ में नियोजन करता ही रहेगा।

उपरोक्त दो चरण पूरे करने के उपरान्त वह भावना जाग पड़ती है जिसके सहारे उपासना सम्भव है। ऐसे व्यक्ति थोड़ा कर्मकाण्ड करने पर भी विशालकाय पूजा-पाठ कर लेने का फल प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत जो केवल पूजन की लकीर को पीटते रहते हैं, किन्तु गुण, कर्म, स्वभाव को उत्कृष्ट बनाने वाली संयम साधना से दूर रहते हैं, असंयमी जीवन जीते हैं। काम, क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर के भूत-प्रेत साथ लिए फिरते हैं। मात्र नाम उच्चारण अथवा कर्मकाण्डों के क्रिया-कलाप से, पूजा-पत्री के उपहार, उपचार भेंट करने से परमात्मा को प्राप्त करने के स्वप्न देखते रहते हैं, उन्हें निराश ही रहना पड़ता है। हमें पहले वर्णमाला पढ़नी चाहिए। बीजगणित, रेखागणित का कार्य बाद में हाथ में लेना चाहिए। तपश्चर्या, उदारता के उपरान्त ही उपासना अपनाने की सार्थकता है। कहा जा चुका है कि आत्मिक प्रगति की साधना में कई प्रकार के कठोर नियम पालन करने पड़ते हैं। व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य जैसी तितीक्षाओं से शरीर को इस योग्य बनाया जाता है कि वह कठिनाइयाँ सहने का अभ्यस्त तथा तज्जनित गर्मी से सुदृढ़ होने का अवसर प्राप्त कर सके।

उपवास के लाभ सर्वविदित हैं। पेट को विश्राम देने से उसमें जमा अपच दूर होता है और थकान दूर होने से पाचन क्रिया में तीव्रता आती है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोग निवृत्ति का प्रधान उपाय उपवास को माना गया है। उदर शोधन के अतिरिक्त उपवास का विशेष लाभ यह है कि उससे मनोविकारों का शमन होने लगता है। जो शक्ति पालन में लगती है वह यदि बच सके, तो उसका उपयोग मन के अपच को—विचार विकृति को दूर करने में लग सकता है। भारतीय धर्म में पुण्य पर्वों एवं शुभ अवसरों पर उपवास को बहुत महत्व दिया गया है। विवाह के दिन वर-वधू को उपवास करने की प्रथा है। दैनिक उपासना पूरी न हो जाने तक कुछ न खाने-पीने का नियम कई लोग पालते हैं-यह उपवास का ही छोटा रूप है। उपवास को तप माना गया है।

अन्न का मन से घना सम्बन्ध है। दैनिक जीवन में सतोगुणी आहार ही अपनाने की बात ध्यान में रखी जाय तो उसका प्रतिफल विचार शुद्धि के रूप में भी परिलक्षित होगा। नीति उपार्जित परिश्रम की कमाई ही खाई जाय। पकाने वाले तथा परोसने वाले व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से पवित्र हों। खाते समय भगवान को मन ही मन भोग लगाने और उसे प्रसाद समझकर औषधि रूप में ग्रहण करने की भावना रखी जाय। चटोरेपन की विलासिता से बचकर केवल आहार की सात्विकता भर से संतुष्ट रहा जाय। अन्न को देवता मानकर उसका सम्मान किया जाय और जूठन के रूप में उसकी अनावश्यक बर्बादी न की जाय। यह बातें सामान्य लगती हैं, पर आत्मिक प्रगति की दृष्टि से उनका बहुत महत्त्व है। "जैसा खाये अन्न—वैसा बने मन" वाली उक्ति बहुत ही सारगर्भित है। मन को सात्विक बनाना आत्मोत्कर्ष की दृष्टि से नितांत आवश्यक है। उसके लिए आहार शुद्धि को प्रथम चरण कहा जा सकता है। मांसाहार —नशेबाजी—अशुद्ध व्यक्तियों और वातावरण में पकाया और परोसा गया मिर्च मसालों से भरा गरिष्ठ और उत्तेजक आहार मनः क्षेत्र में तमोगुण उत्पन्न करता है और उसका प्रभाव चित्त की अस्थिरता बनकर उपासना क्रम में भारी विघ्न उत्पन्न करता है।

पिप्पलाद ऋषि पीपल वृक्ष के फल खाकर निर्वाह करते थे। कणाद ऋषि शिलोञ्छ वृत्ति से जंगली धान्य खाकर गुजारा करते थे। यह अन्न शुद्धि की प्रक्रिया है। हमें स्वयं लम्बी अवधि तक मात्र जौ की रोटी और छाछ इन दो ही वस्तुओं पर रहकर पुरश्चरण क्रम चलाना पड़ा है। अभक्ष्य खाने से मन की विकृति का होना स्पष्ट है। शरशैय्या पर पड़े भीष्म पितामह जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्मोपदेश दे रहे थे तब द्रोपदी ने पूछा-देव ! जब मुझे भरी सभा में निर्वसन किया जा रहा था, तो आपने ही धर्मोपदेश कौरवों को क्यों नहीं दिये ? उत्तर में भीष्म ने इतना ही कहा—उन दिनों में कुधान्य खा रहा था, अस्तु धर्मज्ञान रहते हुए भी उसे चरितार्थ करने का साहस सम्भव न हो सका।

आहार शुद्धि के लिए हम अपने खाद्य पदार्थों में सात्विक वस्तुएँ ही स्वीकार करें। दो बार से अधिक भोजन न करने का नियम बना लें। दूध, छाछ, रस, क्वाथ जैसे पेय-पदार्थों के अतिरिक्त बीच-बीच में अन्य चीजें न लें। भूख से कम खायें। जल्दी न निगलें, चबाकर खायें। सप्ताह में एक दिन अथवा एक जून निराहार रहें अथवा फल, शाक, दूध आदि पर निर्वाह करें। साप्ताहिक उपवास की परम्परा चल पड़े तो देश की जटिल खाद्य समस्या का सहज समाधान निकल सकता है। साथ ही अपच का हल निकल आने से स्वास्थ्य संकट भी बहुत हद तक हल हो सकता है।

सप्ताह में एक दिन अस्वाद व्रत का पालन भी एक प्रकार का उपवास ही माना जा सकता है। नमक, मसाले, शक्कर जैसी वस्तुएँ मात्र स्वाद के लिए खाई जाती हैं। उपयोगी स्तर का—उपयुक्त मात्रा में नमक, शक्कर आदि तो अन्न, शाक, फल, दूध आदि में सहज ही मिल जाता है। ऊपर से इन चीजों का लिया जाना स्वास्थ्य के लिए नहीं वरन् स्वाद के लिए ही प्रयुक्त होता है। स्वाद के लोभ में आहार की अधिक मात्रा उदरस्थ होती है और अपच उत्पन्न करके तरह-तरह के रोगों को जन्म देती है। स्वाद पर काबू पाना भी एक प्रकार का तप है। बिना नमक, शक्कर, मसाले आदि का भोजन सप्ताह में एक दिन भी किया जाता रहे तो इससे स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण करने की तपश्चर्या चल पड़ेगी। गान्धी जी ने अपनी 'सप्त महाव्रत' पुस्तिका में 'अस्वाद' को प्रथम व्रत माना है और उसके फलस्वरूप ब्रह्मचर्य पालन तथा मनोनिग्रह में सफलता मिलने का प्रतिपादन किया है।

मनोनिग्रह तपश्चर्या में दूसरा व्रत ब्रह्मचर्य पालन है। स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से रतिक्रिया के अवसर न्यूनतम ही आने देने चाहिए। बहुमूल्य जीवन रस को फुलझड़ी की तरह जलाने का अत्यन्त महँगा खिलवाड़ करने से बचना चाहिए। इससे अपनी और सहयोगी की हानि ही हानि है। क्षणिक विनोद की तुच्छता और शक्ति संचय की महत्ता को समझते हुए इस दिशा में अधिकाधिक संयम बरता जाना ही दूरदर्शिता है। इस बचत का लाभ शारीरिक और मानसिक सुदृढ़ता के रूप में सामने आता है और आत्मिक प्रगति की दिशा में उस संचय से भारी सहायता मिलती है।

शारीरिक ब्रह्मचर्य से भी अधिक महत्त्व मानसिक कामुकता से बचने का है। शरीर क्षरण तो यदा-कदा ही होता है, पर कुदृष्टि एवं काम चिन्तन के फलस्वरूप मानसिक विकृति घड़ी-घड़ी उत्पन्न होती रहती है। काम सेवन से जिस प्रकार शारीरिक शक्ति घटती है उसी प्रकार काम चिन्तन से मनोबल एवं आत्मबल घटता है। इससे आत्म-शक्ति में कमी पड़ती जाती है। ऐसी दुर्बल मनःस्थिति में वे आधार नहीं बन पाते, जिनसे आत्मोत्कर्ष की दिशा में आशाजनक प्रगति सम्भव होती है। पुरुषों को नारियों के प्रति और नारियों को पुरुषों के प्रति पवित्र दृष्टि रखनी चाहिए। कामुक चिन्तन भी मानसिक व्यभिचार माना गया है और उससे होने वाली हानि को आत्मिक प्रगति के मार्ग में भारी व्यवधान माना गया है। मन को कामुक चिन्तन से बचाने के लिए उसके प्रति-पक्षी पवित्र भावों को अधिक समय तक मन में स्थान देना चाहिए। जितनी देर अशुद्ध चिन्तन के लिए मस्तिष्क को छूट दी जाती है, उतनी ही सुविधा यदि परिष्कृत चिन्तन के लिए दी जा सके तो उस परिष्कृत मनोभूमि से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, चिन्ता, निराशा, भय आदि का कोई कुविचार, मनोविकार पनप न सकेगा। सृजनात्मक शुभ चिन्तन के विचारों से मन को भरा-पूरा रखने के लिए स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन का आश्रय लेकर मनोभूमि ऐसी प्रौढ़, परिपक्व बनाई जा सकती है जिसमें कुविचारों को पैर जमाने के लिए तनिक भी गुंजायश न रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, समर्थ, विवेकानन्द आदि ब्रह्मचारियों के उज्ज्वल चरित्रों पर बार-बार विचार किया जाना चाहिए। शिवाजी ने एक अनिद्य सुन्दरी को उपभोग के लिए प्रस्तुत किये जाने पर इतना ही कहा था—"ऐसी सुन्दर मेरी माता होती तो मैं भी इतना सुन्दर होता"। अप्सरा उर्वसी ने अर्जुन से उसी जैसा पुत्र पाने के उद्देश्य से काम प्रस्ताव किया तो अर्जुन ने उत्तर दिया—"आप कुन्ती की तरह मेरी माता और मैं आपका सगे पुत्र की तरह बालक हूँ। इसी प्रकार तत्काल आपकी पुत्र प्राप्ति की मनोकामना पूर्ण हो जाती है।" ऐसी ही पवित्र दृष्टि रखने से आत्मबल संचित होता है। इस मनोनिग्रह को तप की ही संज्ञा दी गई है। स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय की स्थूल और सूक्ष्म लिप्सा पर काबू पाया जा सके तो समझना चाहिए कि इन्द्रिय निग्रह का उद्देश्य पूरा हो गया। आँख, नाक, कान आदि की चित्त को चंचल बनाने में तनिक सी भूमिका रहती है। प्रधान तो यही दो स्वादेन्द्रियाँ हैं, इनका उपभोग और चिन्तन रोकने के लिए। जो प्रयत्न किये जाते हैं, उन सभी को से आघात। यह सब कारण ऐसे हैं जिनसे उच्चस्तरीय महा मानवोचित जीवन जीने वालों को आये दिन वास्ता पड़ता है। विलासी और महत्त्वाकांक्षी रीति-नीति अपनाने वालों का न्यायोचित उपार्जन अपनी बढ़ी-चढ़ी आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर पाता फिर वे मानवता के महान् कर्तव्यों का पालन करने के लिए समय और साधन कहाँ से पायें ? यह प्रयोजन अपने साथ मितव्ययिता, कष्ट सहिष्णुता, मनोनिग्रह जैसी सख्ती बरते बिना और किसी प्रकार पूरे नहीं हो सकते।

अनीति पर उतारू लोगों को सिद्धान्तवादी सहन नहीं हो सकते। वे देखते हैं कि प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से वे उनके स्वेच्छाचार में बाधक हैं। नीति का समर्थन और अनीति का विरोध करना भी उनके स्वार्थों पर चोट पहुँचाता है। वे सोचते हैं, यह रोड़ा रास्ते से हटाकर निष्कंटक होना चाहिए। ऐसी दशा में अनीति पोषकों के आक्रमण का शिकार होना पड़ता है। फिर कई बार ऐसी विवशता आ जाती है कि अवांछनीयताओं को चुपचाप सहने के लिए अपना अन्तरात्मा तैयार नहीं होता और अन्याय से जूझने में बड़ी से बड़ी हानि उठाने के लिए भी अपना शौर्य-साहस तनकर खड़ा हो जाता है। प्रसिद्ध है कि आक्रान्ता लोग संगठित हमला करते हैं, पर बचाव पक्ष के लोग अपनी भीरुता अथवा तथाकथित शान्तिप्रियता के कारण मुँह छिपाये बैठे रहते हैं। चार गुण्डों का मुकाबला करने में चालीस सामान्य लोग हलके पड़ते हैं। ऐसी दशा में अन्याय विरोधी अकेला पड़ जाता है और उसे अपनी विरोधात्मक साहसिकता के कारण कई प्रकार के आघात सहने पड़ते हैं। इतिहास के पृष्ठों पर सन्तों, सुधारकों और शहीदों को दुष्टों द्वारा तरह-तरह से सताये जाने के अगणित घटनाक्रम मिलते हैं। इनका दोष इतना ही था कि उनने अवांछनीयताओं के साथ असहयोग, विरोध प्रकट किया था और उनका उन्मूलन करने का प्रयास कर रहे थे। विरोध न करने से अनीति को प्रोत्साहन मिलता है और वह सौ गुने उत्साह से विनाश पर उतारू होती है। ऐसी दशा में प्रतिरोध अनिवार्य हो जाता है। तब जो इतना साहस दिखायें वे चोट सहने को भी तैयार रहें। इसी की पूर्व तैयारी के लिए भी अभ्यास (३) स्वार्थरत लोगों जितना भौतिक लाभ उपार्जन करने में न्यूनता रह जाने पर भी सन्तोष (४) अनीति से संघर्ष करने में आसुरी तत्वों के आक्रमण तपश्चर्या का अंग माना गया है।

भूलों के लिए शारीरिक-मानसिक दण्ड, प्रताड़ना को प्रायश्चित कहते हैं। यह भी तप वर्ग में ही आती हैं। दैनिक भूलों को समझना और भविष्य में वैसा न होने देने की सतर्कता तीव्र करना—यदि नैतिक गलतियाँ हुई हैं तो उनके लिए भोजन में आंशिक कटौती, अमुक समय का मौन, नीद में कटौती, अतिरिक्त श्रम, उठक-बैठक जैसी प्रताड़ना, दण्ड व्यवस्था स्वयं की जा सकती है। पिछले जीवन में कोई बड़े अपराध बने हों तो उनके लिए चन्द्रायण व्रत, दाढ़ी बढ़ाना, अमुक समय तक नंगे पैर रहना, पैदल तीर्थ यात्रा, धन-दान जैसी किन्हीं विशेष प्रायश्चित्यों की व्यवस्था किसी उपयुक्त नीतिवेत्ता के परामर्श से करनी चाहिए ? इससे मन पर चढ़े हुए पाप भार से निवृत्ति मिलती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थूल शरीर को तपाने वाली कष्ट साध्य तप-तितीक्षाओं का उल्लेख किया गया है। सूक्ष्म शरीर मन को तपाने के लिए तृष्णा और वासना का लोभ और मोह का परित्याग करना पड़ता है। वैराग्य इसी का नाम है। सादा जीवन उच्च विचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूक्ष्म शरीर में उत्कृष्टता बनी रहे, इसके लिए सादगी की नम्रता एवं मितव्ययिता को अपनाया जाना आवश्यक है। खर्चीली तड़क-भड़क और उद्धत ठाटबाट से बचाया जाय और भोजन, वस्त्र, निवास आदि जीवन-चर्या के प्रत्येक क्षेत्र में औसत नागरिक जैसी सादगी बरती जाय। खर्च उतना ही किया जाय, जितना निर्वाह के लिए नितान्त आवश्यक हो। आवश्यकताएँ और भौतिक महत्वाकांक्षाएँ घटाई जायँ ताकि उनमें लगने वाला समय श्रम और मनोयोग परमार्थ प्रयोजनों में लगाने के लिए बचाया जा सके।

(१) संयम और सादगी की नीति अपनाकर शक्तियों का संचय एवं अभिवर्धन के लिए प्रयत्नशील रहने में अपने साथ कठोरता बरतना (२) लोक मंगल के पुण्य-प्रयोजनों में अपनी सामर्थ्य का बड़ा भाग लगाने के कारण स्वयं को कठिनाई में रहने की स्थिति का, कष्ट सहिष्णुता का पूर्वाभ्यास करना पड़ता है।

सुविधा भरा जीवन आलसी बनाता है और प्रतिभा को प्रसुप्त स्थिति में धकेल देता है। संघर्षमय, कठिनाई भरे जीवन में अन्य असुविधाएँ कितनी ही क्यों न हों, इतना लाभ स्पष्ट है कि उससे मनुष्य की प्रखरता निखरती है। अमीरी के वातावरण में से कदाचित् ही कभी कोई प्रतिभाएँ उभरती हैं। संसार भर के महामानवों के इतिहास में यह तथ्य स्पष्ट है कि वे या तो कठिनाइयों की परिस्थिति में जन्मे थे अथवा उनने जान-बूझकर कठिनाइयों से भरा जीवन-क्रम अपनाया था। पत्थर पर रगड़ने से ही चाकू की धार तेज होती है। मानवी प्रतिभा के तीक्ष्ण होने में भी यही तथ्य काम करता है।

कल्प-साधना के समय आमतौर से, साधकों को भोजन संयम, अस्वाद, व्रत-उपवास, ब्रह्मचर्य पालन, अपने शरीर की सेवा—कपड़े धोना, हजामत बनाना आदि कार्य स्वयं करना, कोमल शैय्या त्यागकर भूमि या तख्त पर सोना, मारे हुए पशुओं का चमड़ा प्रयोग में न लाकर करुणा का परिचय देना, कुछ समय मौन रहना जैसी तितीक्षाएँ बरतने के लिए कहा जाता है। इस निर्देश के पीछे तथ्य इतना ही है कि कष्ट सहिष्णुता का अभ्यास करते हुए हर घड़ी यह विचार करते रहा जाय कि आदर्श जीवन जीने वाले के लिए स्वेच्छापूर्वक असुविधाएँ सहन करने में उत्साह एवं सन्तोष करने का स्वभाव परिपक्व करना आवश्यक है। अभ्यास रहने से, वैसा चिन्तन चलते रहने से, अवसर आने पर वे अड़चनें अप्रत्याशित नहीं लगतीं और सोचा जाता है यह तो होना ही था, इसकी तैयारी तो पूर्वाभ्यास के रूप में देर से की जाती रही है।

तप तितीक्षा में शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कठिनाई को स्वेच्छापूर्वक आमन्त्रित किया जाता है। इसे देवता के प्रति भक्ति-भाव प्रदर्शन का प्रमाण माना जाता है। वस्तुतः यह देवता और कोई नहीं 'आत्म देव' ही है। अपने आपको परिष्कृत करके देव के स्तर तक पहुँचाने के प्रयास ही वास्तविक साधनाएँ हैं। उसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन—विधान का ढाँचा खड़ा किया गया है। यह तथ्य समझ लेने पर ही साधक को तत्व ज्ञान उपलब्ध हो गया माना जायगा।

शक्तियों, सिद्धियों और विभूतियों का उद्गम तप साधना

दूध को गर्म करने से उसका घृत वाला अंश मलाई के रूप में ऊपर तैरने लगता है। गर्मी से पिघलाकर विशेष पत्थरों के भीतर रसा हुआ शिलाजीत बाहर निकल आता है। सूर्य की गर्मी बढ़ते ही सभी प्राणी निद्रा त्यागकर जाग पड़ते और काम में लगते हैं। तप की गर्मी से मनुष्य की अन्तःचेतना जागृत, सक्रिय और सक्षम बनती है। झकझोरने से सोया व्यक्ति जाग पड़ता है। आन्तरिक मूर्छा और उदासी को दूर करने के लिए तपश्चर्या से उत्पन्न उत्तेजना अपना चमत्कार दिखाये बिना नहीं रहती। उसका प्रभाव संचित कुसंस्कारों को जलाता है और ऐसी अभिनव शक्ति प्रदान करता है जिसके सहारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति-पथ पर द्रुतगति से चलना सम्भव हो सके, आग तापने से ठंडक दूर होती है। अगति और अकर्मण्यता को निरस्त करने में तप की गर्मी से भी वैसा ही उद्देश्य पूरा होता है। चान्द्रायण कल्प में गायत्री उपासना प्रमुख है। यह गायत्री साधना पंचमुखी है। उसके प्राण रूपी प्रकरण पाँच-पाँच अध्याय सोपानों में बँटे हुए हैं। तप साधना वाला प्रकरण भी पाँच भागों में विभक्त है। पाँच तत्वों से बना हुआ काय-कलेवर, पाँच प्राणों से बने हुए चेतना संस्थान भी पाँच प्रकार की तपश्चर्याओं से प्रभावित, परिष्कृत होते हैं। गायत्री उपासना को सफल बनाने वाली पाँच तपश्चर्यायें (१) उपवास (२) ब्रह्मचर्य (३) मौन (४) तितीक्षा (५) अनुदान। इन पाँच नामों से प्रसिद्ध हैं। साधना के साथ-साथ इनका समन्वय जितना हो सकेगा, उसी अनुपात से उसकी कार्यक्षमता बढ़ती चली जायगी।

उपवास का प्रयोजन है, आहार की सयमशीलता और सात्विकता। पापों के प्रायश्चित के लिए तो चान्द्रायण, संतापन आदि कितने ही विशिष्ट व्रत हैं। अमावश्या, पूर्णिमा, एकादशी एवं साप्ताहिक उपवासों का क्रम कितने ही लोग चलाते हैं। श्रावण, कार्तिक, माघ, वैसाख महीने के पूरे व्रत साधनों का विस्तृत माहात्म्य है। रमजान में रोजे तो मुसलमान भी रखते हैं। जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, गंगादशमी, नवरात्रि आदि के पर्वों पर उपवासों की परम्परा है। आहार न करने से पेट को विश्राम मिलना और उसका नई शक्ति, नई स्फूर्ति अर्जित करना स्वास्थ्य की दृष्टि से तो हितकर है ही उसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है। शारीरिक आवश्यकता भूख के रूप में प्रकट होती और आहार माँगती है। धर्म श्रद्धा के साथ जुड़ी हुई संकल्प शक्ति उस माँग को पूरा करने से इन्कार करती है। संस्कार और संकल्प के बीच विग्रह खड़ा होता है। समझाकर या बलपूर्वक संस्कार का दमन किया जाता है और धर्मबुद्धि के सहारे शरीर को सन्तोष, समाधान कराया जाता है। इस अनुशासन स्थापना को तपश्चर्या कहा गया है। इस अभ्यास में अन्यान्य प्रकार की वासनाओं का दमन समाधान हो सकता है। इन्द्रिय निग्रह और मनोनिग्रह से इस सफलता से क्रमशः उत्साह साहस बढ़ता चलता है। मन को जीतना सब में बड़ी विजय है। जो इस क्षेत्र में पूरी तरह सफल हो सके तो जीवनमुक्त ही कहा जायगा। उपवास की तपश्चर्या के सहारे आत्मानुशासन स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध होता है।

उपवास किस-किस प्रकार, कितना करना चाहिए ? यह साधक की मनःस्थिति और परिस्थिति पर निर्भर है। पूर्ण उपवास तो वही है जो मात्र जल पर रहा जाय। आंशिक उपवास के कितने ही प्रकार हैं। (१) दूध, छाछ, फलों का रस, सागों का रस जैसे पेय पदार्थों पर रहना (२) अन्नाहार छोड़कर शाक, फल, दूध आदि पर निर्वाह करना (३) एक समय भोजन करना (४) एक अन्न एक लगावन रोटी, शाक दाल-भात आदि से पेट भरना (५) खिचड़ी दलिया जैसी एक ही भगौनी से पकाई वस्तु से काम चलाना, उपवास की इन प्रक्रियाओं में से जो जितना कठिन, सरल चुनाव कर सके वह उसे अपना सकता है।

अस्वाद व्रत इसी उपवास प्रक्रिया का एक अतिरिक्त भाग है। नमक, शक्कर, मसाले छोड़कर (बिना स्वाद का भोजन करना इन्द्रिय निग्रह का एक बड़ा कदम है।) स्वास्थ्य की दृष्टि से इसमें तनिक भी हानि नहीं। खाद्य पदार्थों में उपयोगी क्षारों की मात्रा प्रकृतितः होती है। उसमें ऊपर से नमक, शक्कर आदि मिलाने की स्वास्थ्य की दृष्टि से तनिक भी आवश्यकता नहीं है। सृष्टि का कोई प्राणी ऊपर से नमक, मसाले नहीं खाता। शरीर के लिए सभी आवश्यक तत्व सामान्य खाद्य पदार्थों में ही मिल जाते हैं। जीव को चटोरेपन की आदत डालकर भोजन को अखाद्य बनाया जाता है और उसे अनावश्यक मात्रा में खाकर पेट खराब किया जाता है। (मन में चंचलता और तामसिकता की वृद्धि भी उन मिलावटों के कारण ही उत्पन्न होती है)।

अस्वाद व्रत जिह्वा इन्द्रिय का संयम है। जीभ को चटोरेपन के दुर्गुण से छुड़ा लेने में साहसिकता का समावेश है। इसे जीत लेने पर अन्य सभी इन्द्रियों पर अनुशासन स्थापित कर सकना सरल हो जाता है। इसमें भी आत्म निग्रह का, आत्मानुशासन का संकल्प प्रखर होता है। और (इससे बढ़ा हुआ साहस अन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुसंस्कारी दुष्प्रवृत्तियों पर विजय पा सकने में समर्थ हो जाता है।) स्वाद छूटने पर जो कुछ खाया जायगा प्रायः वह सीमित और सात्विक ही रहता है। आहार का संयम मन का संयम होता है और उससे आत्मिक प्रगति में बड़ी सहायता मिलती है। इसलिए उपवास और उसकी एक महत्त्वपूर्ण शाखा अस्वाद व्रत का पालन तपश्चर्या में ही सम्मिलित है। उसका लगातार कितने समय तक पालन किया जाय, यह साधक की इच्छा पर निर्भर है। न्यूनतम सप्ताह में एक बार इस तप के पालन का अभ्यास तो करना ही चाहिए।

जप, स्तवन, कीर्तन, पठन आदि जिह्वा से किये जाते हैं। इस उपकरण की शुद्धि नितान्त आवश्यक है, जिस जीभ रूपी बन्दूक से मन्त्र रूपी कारतूस चलाया जाता है, उसकी सफाई पहले ही कर लेनी चाहिए। नली में कूड़ा करकट भरा हो, दबाने का घोड़ा तथा दूसरे पुर्जे अस्त-व्यस्त हों तो अच्छे कारतूस होने पर भी निशाना लगाना कठिन है। वंशी बजाने वाले यह देख लेते हैं कि उसके छेद साफ हैं या नहीं। मैले बर्तन में दूध दुहने या उबालने से उसके फटने की आशंका रहेगी। यही बात अशुद्ध जिह्वा के सम्बन्ध में भी है। उसके द्वारा किये गये पूजा-उपचार एवं मन्त्र साधन सफल नहीं होते। अस्तु उपासना को सार्थक बनाने के लिए जिह्वा शुद्धि की प्रक्रिया पर पूरा ध्यान देना चाहिए।

कहा जा चुका है कि अभक्ष्य आहार से जिह्वा की पवित्रता और आध्यात्मिक क्षमता नष्ट होती है। इसलिए भोजन की सात्विकता पर पूरा-पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। स्वाद को जीतना आवश्यक है। इसके बिना आहार को सात्विक रखा ही न जा सकेगा। चटोरापन न केवल पेट को स्वास्थ्य को बिगाड़ता है वरन् मानसिक चंचलता और तामसिकता का भी निमित्त होता है। भोजन पवित्र हाथों का बनाया हुआ हो। पकाने और परोसने वाले के संस्कार आहार में रहते हैं। इसलिए साधक को अपने हाथ का अथवा सुसंस्कारी हाथों का पकाया, परोसा आहार लेने की व्यवस्था करनी चाहिए और हर हालत में भूख से कम ही खाना चाहिए। बेईमानी से कमाया हुआ-युद्ध में पाया हुआ धन भी बुद्धि को भ्रष्ट करने का बड़ा कारण है। ऐसे धन से खरीदे गये खाद्य पदार्थ, वस्त्र तथा दूसरे उपकरण आध्यात्मिक प्रगति में घोर बाधा पहुँचाते हैं। इन सब बातों का ध्यान रखा जाय तो उपासना की सफलता सुनिश्चित होती है।

जिह्वा का एक कार्य है, आहार ग्रहण दूसरा है उच्चारण। उच्चारण का तात्पर्य है साधक के सम्भाषण में पवित्रता का समावेश। असत्य भाषण, छल, शेखी-खोरी, अवांछनीय परामर्श, अपमान, तिरस्कार, कटु वचन, चुगली, हिम्मत गिराना जैसे अनेक वाणी दोष हैं। इनके रहते भी वाणी की पवित्रता नहीं बन पाती। साधक को नपा-तुला बोलना चाहिए। व्यर्थ की बक-झक करते रहने की आदत पड़ गई हो तो वह दूर करनी चाहिए। अन्य वाणी दोषों को सुधारने के लिए पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। इस संदर्भ में वाणी का विश्राम, निरीक्षण, संशोधन करने के लिए मौन का अभ्यास करना चाहिए। मौन को वाणी का तप कहा गया है।

सुविधानुसार हर दिन जागृति स्थिति में एक-दो घण्टे मौन रहने का अभ्यास करने का प्रयत्न करना चाहिए। भोजन के समय, मलमूत्र विसर्जन में, उपासना के समय तो मौन रहने की परम्परा भी है। इसके लिए जिस समय कम जन सम्पर्क रहता है उस समय एक-दो घन्टे का मौन रखने का नियम बनाना चाहिए। सप्ताह में या महीने में एक दिन पूरा मौन रखना भी जिह्वा की अवांछनीय गतिविधियों पर रोक लगाने, पुरानी आदतें भुलाने का एक अच्छा उपाय है।

शक्ति संचय की दृष्टि से कम बोलना उपयोगी है। जब मनुष्य अधिक दुर्बल हो जाता है तो उसकी वाणी बन्द हो जाती है या लड़खड़ाने लगती है। यद्यपि होश-हवाश बने रहते हैं। बोलने में अन्तःशक्तियों पर बहुत जोर पड़ता है। अनेकों अवयवों की संयुक्त शक्ति के अतिरिक्त उसमें शरीर की विद्युत शक्ति का भी एक बहुत बड़ा भाग खर्च होता है। दुर्बलता की स्थिति में उतनी सामर्थ्य न रहने से ही बोलने में कठिनाई होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'वायस ऑफ साइलेन्स' ग्रन्थ में थियोसोफी के जन्मदाताओं ने यह बताया है कि मौन रहने की स्थिति में दैवी वाणी को सुनने का अवसर मिलता है। कहने और सुनने की दोनों क्रियाएँ साथ-साथ चलाने में कितनी कठिनाई होती है यह सभी जानते हैं। ईश्वर की वाणी सुनने, अदृश्य लोक के दिव्य संदेशों को पकड़ने के लिए मौन धारण का अभ्यास करना उचित ही है। गायत्री उपासकों के लिए उपवास, अस्वाद एवं मौन का अभ्यास करने के साथ में जिह्वा के माध्यम से की जाने वाली दोनों ही तपश्चर्याएँ आवश्यक हैं। आहार की तामसिकता और अनर्गल वार्ता का संयम करने से जिह्वा में वह शक्ति उत्पन्न होती है जिस से उस के द्वारा किया गया जप, आराधना सफल हो सके।

तीसरा तप है-ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का मोटा अर्थ है—वीर्य रक्षा। स्वास्थ्य सुरक्षा की दृष्टि से यह भी आवश्यक है। इस बहुमूल्य धातु का सूक्ष्म रूप ओजस् है। नेत्रों में ज्योति, वाणी में प्रभाव, मस्तिष्क में स्मृति, व्यक्तित्व में प्रतिभा, शरीर में स्फूर्ति, चेहरे पर तेजस्विता, मन में साहसिकता के रूप में यह ओजस् ही काम करता है। जीवन ज्योति का आलोक जिस तेल के आधार पर प्रकाशवान रहता है, वह वीर्य रक्षा से ही संचित होता है। आत्मिक प्रगति के लिए प्रचण्ड संकल्प शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। भौतिक आकर्षणों से लेकर कुसंस्कारों के अवरोधों से पग-पग पर जूझना होता है। इसके लिए योद्धाओं जैसे शौर्य, साहस की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अभीष्ट शक्ति संचय की दृष्टि से ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। दाम्पत्य जीवन का अर्थ आत्मघात नहीं है। पति-पत्नी भी दो भाइयों और मित्रों की तरह दो बहिनों और सहेलियों की तरह मित्रता और प्रसन्नता भरा जीवन सरलता और सफलतापूर्वक जी सकते हैं।

ब्रह्मचर्य का सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण भाग वह है जिसमें नर-नारी को और नारी-नर को कामुकता की दृष्टि से न देखकर सामान्य प्राणी की तरह देखते हैं। अश्लील विचारों की-वासनात्मक कुदृष्टि का समन्वय नहीं होने देते। यदि स्नेहपूर्वक एक दूसरे को देखना आवश्यक हो तो पुत्री, भगिनी या माता की-पुत्र भाई या पिता की पवित्र दृष्टि रखते हुए घनिष्टता एवं मित्रता का भी निर्वाह हो सकता है। मस्तिष्क को अनावश्यक रूप से उत्तेजित करने में चिन्तन को उच्चस्तरीय प्रयोजनों में संलग्न न होने देने में कामुकता के विचार ही अत्यधिक बाधक होते हैं। कल्पना शक्ति का महत्त्वपूर्ण भाग इन्हीं कुप्रसंगों का ताना-बाना बुनने में नष्ट हो जाता है। कामुक दृष्टि रहने पर नेत्रों की दिव्य दृष्टि का बुरी तरह अपव्यय होता रहता है। ऐसा चिन्तन, वीर्यपात से भी अधिक हानिकारक होता है। रति कर्म से स्थूल शरीर में जैसी हानि होती है वैसी ही कामुक चिन्तन से सूक्ष्म शरीर की प्राण-प्रतिभा को क्षति उठानी पड़ती है। इसलिए ब्रह्मचर्य की तप साधना में न केवल वीर्य रक्षा का वरन् कामुक दृष्टि को निरस्त करने का भी अनुशासन है।

गायत्री माता का चित्र युवा नारी का है। उसमें पवित्रता भरी मातृ बुद्धि की श्रद्धा जमाने का एक उद्देश्य यह भी है कि नारी यौवन पर दृष्टि जाते ही उत्कृष्ट चिन्तन, उभरने का अभ्यास होता रहे। सरस्वती, लक्ष्मी, काली आदि अन्य देवियों की प्रतिमाओं में भी यौवन के साथ भावभरी श्रद्धा संजोये रहने की मान्यता है। इसी प्रकार देवताओं को रूप-यौवन सम्पन्न बनाकर नारी को यह अभ्यास करने का अवसर दिया गया है कि वे नर यौवन से कामुक उत्तेजना ग्रहण न करें वरन् ईश्वर तुल्य पवित्र मान्यताओं का अभ्यास करें। मीरा आदि की आराधना इसी स्तर की थी। यौवन विकारों को पवित्र चिन्तन में परिणित करने की साधना ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है। इसका अभ्यास देव प्रतिमाओं के सहारे किया जा सकता है। सामान्य जीवन-क्रम में इस सम्बन्ध में अधिक अनुशासन बरतने को मर्यादाएँ बनानी चाहिए और उनका पालन करना चाहिए।

चौथी तपश्चर्या है, तितीक्षा। तितीक्षा का अर्थ है सुविधाओं का स्वेच्छापूर्वक परित्याग और कष्ट साध्य जीवन-क्रम का अभ्यास। यह कई कारणों से आवश्यक है। मितव्ययी ब्राह्मण जीवन की स्थिति अपनाने पर ही परमार्थ प्रयोजनों के लिए समय, मन और धन बच सकता है। विलासी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति की आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ इतनी बढ़ी-चढ़ी होती हैं कि उसके लिए परमार्थ, प्रयोजन के लिए कुछ कर सकना तो दूर, सोच सकना भी कठिन पड़ता है। अल्प व्यय में निर्वाह करने वाले को कई प्रकार की असुविधाएँ सहन करनी पड़ती हैं। इसका पूर्वाभ्यास तितीक्षा से ही करना पड़ता है।

लोक मंगल की सेवा-साधना ईश्वर उपासना का अविछिन्न अंग है। विराट् ब्रह्म की—विशाल विश्व की सेवा आराधना से विरत रहकर मात्र पूजा-अर्चना मात्र से कोई भी जीवन लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। सेवा-साधना में निरत व्यक्तियों को कितने ही प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं। परिव्राजक जीवन की कठिनाइयाँ तो सर्वविदित ही हैं। वानप्रस्थ, संन्यास में भी कष्ट साध्य जीवन-यापन ही करना पड़ता है। तितीक्षा इसी का पूर्वाभ्यास है ताकि समय आने पर अभ्यास प्रक्रिया अपनाने में कठिनाई अनुभव न हो।

सच्चाई और न्याय-निष्ठा अपनाने वाले को अनीति के विरुद्ध संघर्ष भी करना पड़ता है इसमें प्रतिपक्षी असुरता के प्रत्याक्रमण होने स्वाभाविक हैं। ईसा, गाँधी, सुकरात, दयानन्द, मंसूर, वन्दा वैरागी, गुरु गोविन्दसिंह के बालक जैसे असंख्यों पुरुषों को प्राणों से हाथ धोने पड़े हैं। त्रास तो असंख्यों ने सहे हैं। हिंस्र व्याघ्र आदि तो आक्रमण करने से रोकने पर प्रतिरोध करने वाले पर ही टूट पड़ते हैं। असुरता की यही नीति रही है कि वह सज्जनता को अपने अस्तित्व के लिए संकट मानती है और उस पर आक्रमण करती है। जिनके स्वार्थों को क्षति पहुँचती है, वे सब अपने विराने अध्यात्मवादी से रुष्ट रहते और उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी विपत्तियों में फँसने की जानकारी एवं तैयारी पहले से ही बनी रहे इसलिए कई प्रकार के काय कष्ट सहने को, तितीक्षा को तपश्चर्या माना गया है और साधक को उसका अभ्यास करते रहने के लिए कहा गया है।

सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास सहने का अभ्यास तितीक्षा है। भूमि शयन, बिना जूते के चलना कम वस्त्रों का उपयोग भी इसी श्रेणी में आता है। बिना दूसरों की सहायता का स्वावलम्बी जीवन, अपनी शरीर यात्रा के कार्य अपने हाथों करने का अभ्यास भी इसी प्रयोजन के लिए है। कपड़े धोना, हजामत बनाना जैसे दैनिक आवश्यकता के काम बिना दूसरों की सहायता लिए करने के नियम इसी तितीक्षा तप के अन्तर्गत आते हैं। अपनी स्थिति के अनुरूप इनमें से जिनसे जो जितनी मात्रा में बन पड़े उतना कुछ—कुछ करते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

पाँचवा तप है, अनुदान। अपने सुविधा साधनों में कमी करके उस बचत को सत्प्रयोजन में लगाते रहना, अनुदान अथवा अंशदान है। समय दान, श्रम दान, धन दान आदि इसी वर्ग में आते हैं। अपने धर्म कृत्यों में से प्रत्येक के साथ किसी न किसी रूप में दान देने का विधान जुड़ा हुआ है। विविध प्रकार के दान, पुण्य परमार्थ एवं धर्म कृत्य माने गये हैं। गायत्री-अनुष्ठानों के अन्त में यज्ञ, हवन, ब्रह्म भोज, प्रसाद वितरण की पूर्णाहुति की जाती है। यह लोक मंगल के लिए अंशदान की ही एक प्रक्रिया है। दान का अर्थ यों मोटे रूप में पैसा देना ही किया जाता है। प्रत्यक्ष दृश्यमान और अधिक स्थूल होने के कारण इसी का दृश्य आँखों से देखा और यश कानों से सुना जा सकता है। अस्तु धन दान ही त्याग, बलिदान का—अंशदान अनुदान का प्रतीक बन गया है। जिनके पास धन नहीं है वे भी किसी महादानी की भूमिका समय, श्रम बुद्धि, प्रभाव, आदि ईश्वर प्रदत्त सम्पदाओं को सत्प्रयोजनों में लगाकर निभा सकते हैं। ब्राह्मण, साधु, वानप्रस्थी तथा सेवा भावी स्वयं सेवक धन दान भले ही न कर पाते हों पर उनके पास मूल वैभव की कमी नहीं होती, और लोक हित के लिए धन और धनियों से भी अधिक कार्य कर सकते हैं।

अंशदान का अर्थ है, अपना उपार्जन तो अधिकाधिक बढ़ाना पर उसका एक न्यूनतम अंश ही अपने निर्वाह में खर्च करना शेष बचता हो तो परमार्थ प्रयोजनों में लगा देना। यह अंशदान भी तपश्चर्या का एक रूप है उसमें अपनी वासना तृष्णा पर—लोभ, मोह का अंकुश रखना पड़ता है। अपनी सुविधाओं को दूसरे उपयोगी कार्यों या व्यक्तियों के लिए निछावर करना पड़ता है। इतनी उदार साहसिकता को जो भी परमार्थ प्रयोजनों के लिए नियोजित कर सके उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपस्वी ही कहा जायगा। समय दान और धन दान का न्यूनतम अनुदान युग निर्माण परिवार के सदस्यों को ज्ञान यज्ञ के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है। ज्ञानघटों की स्थापना से इसी तपश्चर्या का शुभारम्भ होता है। अपने युग का सबसे बड़ा परमार्थ ज्ञान यज्ञ ही माना गया है। हमें प्राचीनकाल के ऋषियों, महामानवों और देव पुरुषों की तरह बढ़ा-चढ़ा अंशदान पीढ़ा और पतन का समग्र निवारण कर सकने वाले ज्ञान दान के निमित्त करते रहना चाहिए। तपश्चर्या का यह पंचम चरण है। इन पाँचों को किसी न किसी रूप में कार्यान्वित करने पर ही कल्प साधना का सत्परिणाम सामने आता है।

कल्प-साधना में संयमशीलता की अनिवार्यता

'हर दिन नया जन्म और हर रात नया मरण' मानकर चलने से जीवन सम्पदा के सदुपयोग के लिए अन्तःप्रेरणा उभरती है। इसलिए हर साधक को विशेषतया कल्प प्रक्रिया में निरत श्रेयार्थियों को, इस साधना को अनिवार्य रूप से अपनाना चाहिए। यह साधना वस्तुतः जीवन को एक नयी दिशा देने वाली साधना है। प्रातःकाल नींद खुलते ही नया जन्म होने की कल्पना जगाई जाय, भावना उभारी जाय। साथ ही यह भी सोचा जाय कि मात्र एक दिन के लिए मिले इस सुयोग—सौभाग्य का श्रेष्ठतम सदुपयोग किस प्रकार किया जाय। कुछ समय इसी सोच-विचार में लगाने के उपरान्त बिस्तर छोड़कर उठना चाहिए और नित्य कर्म से निवृत्त होने के लिए जाना चाहिए।

ठीक इसी प्रकार रात्रि को सोते समय यह विचार करना चाहिए कि निद्रा एक प्रकार की मृत्यु है। अब मरण की गोद में जाया जा रहा है। मृत्यु के उपरान्त प्राणी ईश्वर के दरबार में पहुँचता है। पहुँचते ही तत्काल पूछताछ होती है। इस पूछताछ का एक ही विषय होता है-"सुर दुर्लभ मनुष्य जीवन किस प्रयोजन के लिए दिया गया था ? उसका उपयोग किस प्रकार किया गया ? इसका विवरण दिया जाय।" इस विवरण को शानदार ढंग से सिर उठाकर दिया जा सके ताकि उससे परलोक का अधिष्ठाता संतोष व्यक्त कर सके, अगली बार कुछ बड़ा पद उत्तरदायित्त्व सौंपने का विचार कर सके। यही है वह भविष्य-चिन्तन जिसे रात्रि को सोते समय तब तक करते ही रहना चाहिए जब तक कि निद्रा स्वयं आकर अपने अंचल से ढक न ले।

उठते समय की उपरोक्त साधना को 'आत्मबोध' और सोते समय वाले चिन्तन को 'तत्वबोध' कहा गया है। यह दोनों देखने, कहने, सुनने एवं करने में अत्यन्त साधारण जैसी लगती हैं किन्तु यदि चिन्ह-पूजा की तरह उसकी लकीर न पीटी जाय और गम्भीरतापूर्वक उन विचारणाओं की परिणति एवं फलश्रुति पर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इस बीज का विकास-विस्तार विशालकाय वट वृक्ष के रूप में होता है। चिनगारी तनिक-सी होती है किन्तु उसे ईंधन की सुविधा मिल सके तो उसे प्रचण्ड दावानल बनते और योजनों लम्बा वन-प्रदेश उदरस्थ करते देर नहीं लगती। आँख से न दीख पड़ने वाला बाल की नोंक से भी कम विस्तार वाला शुक्राणु जब नौ महीने जितने स्वल्प काल में एक अच्छा खासा शिशु बनकर प्रकट होता है तो कोई कारण नहीं कि उपरोक्त विचार द्वय समुचित परिपोषण पाने पर जीवन को देवत्व से लपेट देने वाले वरदान सौभाग्य के रूप में प्रकट, विकसित न हो सकें।

जन्म के उपरान्त जीवन सम्पदा के उपयोग का अवसर मिलता है और मरण के उपरान्त ईश्वर की न्याय-दीर्घा में खड़े होकर कृत्यों का परिणाम भुगतने के लिए विवश होना पड़ता है। इन दोनों का सामना न करना पड़े, ऐसा बचाव किसी भी मनुष्य शरीरधारी के लिए सम्भव नहीं। अस्तु, उनका सामना करने के लिए मनोभूमि बनाने एवं तैयारी करने में ही बुद्धिमत्ता है। चिन्तन-चेतना के इस संदर्भ में उपेक्षा नहीं बरतनी चाहिए वरन् जो अवश्यम्भावी है उसके लिए समय रहते जागरूकता बरतने एवं तत्परता अपनाने में ही दूरदर्शिता है।

इस तथ्य को जितनी गम्भीरतापूर्वक समझा जाय उतना ही अच्छा है कि उपलब्ध मनुष्य जीवन, ईश्वर का सर्वोपरि उपहार है। उसमें आत्मोत्कर्ष की समस्त सम्भावनायें भरी पड़ी हैं। साथ ही ईश्वर को प्रसन्न करने तथा उस अनुकम्पा के आधार पर कुछ पाने का यही ठीक अवसर है। इसे महत्त्वहीन न समझा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे भार की तरह न ढोया जाय। इस अलभ्य सौभाग्य को अस्त-व्यस्त प्रयोजनों में न गँवाया जाय। बुद्धिमत्ता इसी में है कि संयोगवश आरम्भ में उगे कल्प-वृक्ष को ठीक तरह सींचा-पोसा जाय, प्रतिकूलताओं से बचाया जाय और उसे विकसित स्थिति तक पहुँचाया जाय जिससे उसकी सुखद छाया में बैठने और अभीष्ट वरदान पाने का सौभाग्य बरसने लगे। अज्ञानग्रस्त इस अलभ्य अवसर का न मूल्यांकन कर पाते हैं और न उसके सदुपयोग की कोई योजना-व्यवस्था बनाते हैं। फलतः अनाड़ी के हाथ पड़े हुए हीरक हार की तरह उसके साथ खिलवाड़ होती हैं और धागे टूटने, मनके बिखरने जैसी विडम्बना बनती रहती है। इससे बड़ी दुर्भाग्यभरी दुर्घटना और नहीं हो सकती कि जीवन का महत्त्व न समझा जा सके उसका मूल्यांकन न बन पड़े और किसी प्रकार मौत के दिन पूरे कर लेने के अतिरिक्त और कुछ पल्ले न पड़े। पेट-प्रजनन में व्यस्त रहना तो तुच्छ प्राणियों को क्रियाशील रखने वाला प्रकृति का हण्टर भर है। वह तो हर योनि में पड़ता ही रहता है, भविष्य में जन्म लेना पड़े तो उनमें भी यह सटापट बरसेगा ही। मानवी बुद्धिमत्ता की सार्थकता इसमें है कि वह इस अलभ्य अवसर का सौभाग्यमय सदुपयोग समझे। इस निष्कर्ष पर पहुँचाकर उस मार्ग पर चलायें जिसके आधार पर वर्तमान को समुन्नत और भविष्य को उज्ज्वल बनाया जा सकना सम्भव हो सकता है। इसके लिए उपयुक्त दिशाधारा का सुनिश्चित निर्धारण बन पड़े तो ही प्रस्तुत सौभाग्य से लाभान्वित हो सकना सम्भव है। देखना यही है कि प्रस्तुत कल्प-साधना को जीवन में एक महान् मोड़ दे सकने वाली प्रखरता से सम्पन्न बनाया जा सका या नहीं।

साधकों को अनुभव करना चाहिए कि वे इस अवधि में माता के गर्भ में निवास कर रहे हैं और ऐसा आवश्यक पोषण प्राप्त कर रहे हैं जिसके सहारे जन्म लेने के उपरान्त समूचे जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग कर सकने में समर्थ हो सकें। गुरु-गृह को भी माता के गर्भ के सदृश्य माना गया है। साधक की इन दिनों मान्यता ऐसी ही होनी चाहिए। ऊषाकाल, रात्रि की विदाई और दिनमान की अगवानी करता है। कल्प-साधना की अवधि में ऐसी ही अनुभूति होनी चाहिए कि नर पशु का स्तर त्यागने और देव स्तर में प्रवेश करने का यही ऊषाकाल है। इन्हीं क्षणों में महान परिवर्तन की सम्भावना बन रही है। सघन संव्याप्त तमिसा का पलायन और समूचे आकाश में प्रभात का प्रकाश वितरण सचमुच ही आश्चर्य है। इतने थोड़े क्षणों में इतना महान परिवर्तन देखते हुए लगता है ऊषाकाल की प्रभात बेला कितनी अद्भुत, कितनी सशक्त एवं कितनी सौभाग्यशाली है, इसी प्रकार चान्द्रायण तपश्चर्या की भूमिका भी ऐसी ही होनी चाहिए जिसे कर्त्ता का अभिनव भाग्योदय कहकर शेष सारा जीवन सराहा और स्मरण रखा जा सके।

पर यह सम्भव तभी है जब साधक इन दिनों अपनी भाव भूमिका को गतिशील रखे और पराक्रम की चरम सीमा तक पहुँचे। यों माता भी भ्रूण को बहुत कुछ देती है, पर उसे भ्रूण के निजी पुरुषार्थ की तुलना में नगण्य ही कहा जा सकता है। शरीरशास्त्री जानते हैं कि गर्भस्थ शिशु आत्मविकास के लिए जितना पराक्रम करता है, उतना ही वह जन्म लेने के उपरान्त भी जारी रख सके तो उसे देव-मानवों जैसी महानता उपलब्ध हो सकती है। भ्रूण जब परिपक्व हो जाता है तो उदर दरी से बाहर निकलने में उसी को चक्रव्यूह बेधने जैसा पराक्रम करना पड़ता है। प्रसव पीड़ा उसी व्याकुल प्रयत्नशीलता की परिणति है। यदि भ्रूण दुर्बल है तो उसे पेट चीरकर निकालना पड़ेगा। स्वाभाविक प्रसव सम्भव न हो सकेगा। अण्डे मुर्गी देती तो है, पर उसके भीतर भरे कलल में उसका जो निजी समुद्र मन्थन चलता है उसे देखकर चकित रह जाना पड़ता है। पका अण्डा जब फूटने को होता है, तो उसकी सारी भूमिका भीतर वाले चूजे को ही निभानी पड़ती है। फूटने के समय अण्डा थरथराता है, उसमें पतली दरार पड़ती है दरार तेजी से चौड़ी होती है और बच्चा उछलकर ऊपर आ जाता है। यह पुरुषार्थ न बन पड़े तो अण्डा सड़ेगा और उससे बच्चा निकलने की बात किसी भी प्रकार बनेगी नहीं। कल्प तपश्चर्या के साधकों को दैवी अनुग्रह की भी कमी नहीं रहने वाली, पर उड़ने भर से ही अभीष्ट प्रयोजन पूरा होने वाला नहीं है। भ्रूण एवं चूजे की तरह आवरण तो तोड़कर बाहर निकलने के लिए पराक्रम तो उसका ही प्रमुख रहेगा। उस उक्ति में परिपूर्ण सच्चाई भरी हुई है जिसमें कहा गया है कि 'ईश्वर मात्र उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन अपने आप में पूर्ण है। वह पूर्ण से उत्पन्न हुआ है और पूर्णता से परिपूर्ण है। अंगार और चिनगारी में आकार का भेद तो है पर गुण-धर्म का नहीं। परमात्मा विभु है, आत्मा लघु। यह आकार भेद हुआ। तात्विक दृष्टि से दोनों में समानता है। इसलिए 'शिवोऽहम्'-'सच्चिदानन्दोऽहम्' के रूप में उस तात्विक एकता का उद्बोधन कराया जाता है। इस तथ्य के रहते मनुष्य की दुर्गति क्यों होती है ? वह दीन, दुर्बल क्यों रहता है ? शोक-सन्ताप क्यों सहता है ? प्रगति प्रक्रिया से वंचित रहने का क्या कारण है ? इस दुर्गुण के रहते तो कुबेर का खजाना खाली हो सकता है। रावण जैसा समर्थ भी सपरिवार धराशायी हो सकता है। भस्मासुर, वृत्रासुर, हिरण्याक्ष जैसे दुर्दान्त दैत्य बेमौत मारे गये। इस विनाशलीला में उनके अपने दोष-दुर्गुणों की भूमिका ही प्रधान थी।

मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु असंयम है। सामर्थ्य का अपव्यय, दुरुपयोग ही असंयम है। शक्ति तथा सम्पन्नता का लाभ तभी मिलता है जब उसका सदुपयोग बन पड़े। दुरुपयोग होने पर तो अमृत भी विष बन जाता है। माचिस जैसी छोटी एवं उपयोगी वस्तु अपना तथा पड़ौसियों का घर-बार भस्म कर सकती है। ईश्वर प्रदत्त सामर्थ्यों का सदुपयोग कर सकने की सूझ-बूझ एवं संकल्प शक्ति को ही मर्यादा पालन एवं संयमशीलता कहते हैं। इसी का अभ्यास करने के लिए कई प्रकार की तप साधनायें करनी पड़ती हैं। कल्प से जुड़ी तप साधनाओं में भी उस प्रखरता को उभारना एक बड़ा उद्देश्य है जो मानवी शक्ति को अभ्यस्त अपव्यय से बलपूर्वक बचाती और दबाव देकर उसे सत्प्रयोजनों में निरत करती है।

संयम साधना के चार प्रमुख आधार हैं—(१) इन्द्रिय संयम, (२) अर्थ संयम, (३) समय संयम, (४) विचार संयम। वस्तुतः यही चार शक्तियाँ जीवन सत्ता के साथ जुड़ी हुई हैं। इन्हीं का संचय-सम्वर्धन करके कोई सच्चे अर्थों में सामर्थ्यवान बनता है। बाहरी शक्तियाँ तो अस्थिर भी हो सकती हैं और प्रयोक्ता की अदूरदर्शिता के कारण कई बार उसी के लिए घातक बनती हैं।

प्रगति के पथ पर अग्रसर होने वालों में से प्रत्येक को अपनी समर्थता को अपव्यय से बचाकर अभीष्ट उद्देश्यों की पूर्ति में लगाना पड़ता है। कल्प साधकों को भी साधना काल में तो उपरोक्त चारों प्रकार के संयम विवश होकर बरतने ही पड़ते हैं। किन्तु इसी अवधि में यह निर्णय भी करना होता है कि साधना काल समाप्त होने के उपरान्त संयम साधना को जीवनचर्या का अविच्छिन्न अंग बनाकर रहेंगे। वस्तुतः भावी जीवन की तैयारी का निर्धारण ही इस कल्प साधना का सही एवं एकमात्र उद्देश्य है। थोड़े दिनों तो संयमी-तपस्वी बनकर रहा जाय और कल्प सूत्र समाप्त होते ही पुरानी बेतुकी आदतों में जुट पड़ा जाय, तो स्नान करके फिर कीचड़ लपेट लेने जैसी एक बिडम्बना ही तो हुई। इस तरह कल्प साधना का महत्त्वपूर्ण पक्ष है—तपश्चर्या। तप का अर्थ है तपाना। भूमि से निकले मिट्टी मिले लोहे को भट्टी में पकाकर शुद्ध किया जाता है तब उसकी स्थिति औजार, उपकरण बनाने जैसी बनती है। अन्य धातुओं का शोधन भी अग्नि संस्कार से ही होता है। पकाई हुई ईंटें ही चिरस्थायी बनती हैं। पानी से भाप बनती और उससे रेलगाड़ी जैसा विशाल तन्त्र चल पड़ना सिद्ध करता है कि तपाने से उत्पन्न की गई गर्मी क्या-क्या चमत्कार उत्पन्न करती है। जिधर भी दृष्टि पसारकर देखते हैं, समस्त हचलचें, सामर्थ्यें ऊर्जा के माध्यम से उभरती दीखती हैं। उसके बिना न अन्न पकता है, न अण्डा फूटता है। शरीर हो या कारखाना, सभी को ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ईंधन जुटाना पड़ता है। व्यक्ति की सामर्थ्य भी तपश्चर्या के आधार पर ही उभरती है। भौतिक जगत में समस्त शारीरिक, मानसिक प्राणि प्रदत्त एवं यन्त्र-चालित पुरुषार्थ अपने-अपने क्षेत्र के 'तप' कहे जा सकते हैं। उन्हें शक्ति का पर्यायवाचक माना जा सकता है। शक्ति ही सफलता की जननी है यह खुला रहस्य हर किसी को विदित है। जो इतना जानते हैं उन्हें यह तथ्य भी जानना चाहिए कि शक्ति किसी पर बिजली की तरह आसमानों से नहीं टूटती वरन् वह प्रयत्नपूर्वक उपार्जित, अर्जित करनी पड़ती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभ्यस्त चिन्तन प्रवाह में संचित निकृष्टता भरी रहती है। धरिचितों का आग्रह और प्रचलनों का दबाव भी उसी दिशा में घसीटना है, ऐसी दिशा में अपनी चेतना को अपने बलबूते ही उछालने का प्रयत्न करना होता है। इसके लिए आत्म-निरीक्षण, आत्म-निर्माण और आत्म-सुधार के सुनिश्चित एवं कारगर कदम उठाने के लिए संकल्प युक्त व्रतशील रीति-नीति अपनानी और दूरदर्शी योजना बनानी पड़ती है। इस प्रयोजन के चार उपचार काम में आते हैं (१) स्वाध्याय (२) सत्संग (३) चिन्तन (४) मनन। यह चारों ही उद्देश्यपूर्ण एवं सुनियोजित होने चाहिए। अपने चिन्तन में जिस स्तर की निकृष्टताएँ दृष्टिगोचर हों उसके लिए उसी स्तर का प्रतिपक्ष ढूँढ़ा जाना चाहिए और अनौचित्य की टक्कर में औचित्य का पक्ष मजबूत बनाकर खड़ा कर देना चाहिए। लोहे को लोहे से काटा जाता है। काँटे से काँटा निकलता है। 'विष एवं विषमौषधम्', 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' घूँसे का जबाव लात के रूप में देने की बात साधना समर में ही समग्र रूप से प्रयुक्त होती है। गीता रहस्य का असली महाभारत यही है जो अन्तराल के धर्म-क्षेत्र कुरुक्षेत्र में लड़ा जाता है। भगवान इसी संग्राम के लिए अर्जुन को प्रोत्साहित करते हैं और युद्ध तथा योग की परस्पर संगति बिठाते हैं।

'तप' शरीरगत होता है। उस आधार पर अनगढ़ आदतों को मोड़ने-मरोड़ने और गुण, कर्म, स्वभाव की सुसंस्कारिता को स्वीकारने के लिए ही नहीं, अभ्यास में उतारने का प्रबल प्रयत्न किया जाता है। आमतौर से क्षमताएँ अस्त-व्यस्त, विशृंखलित रहती हैं। उनका अपव्यय या दुरुपयोग होता रहता है। इस बिखराव को रोका जा सके और उस संचित शक्ति स्रोतों को उच्चस्तरीय उद्देश्यों के लिए लाया जा सके तो इस बचत का लक्ष्यपूर्ति के लिए चमत्कारी उपयोग हो सकता है और मनुष्य अपनी निजी सामर्थ्य के बलबूते ही इतनी प्रगति कर सकता है मानो किसी आकाश, पाताल के देव-दानव ने उस पर आश्चर्य क्षमता का भण्डार उंडेल दिया तो। तप से शक्ति के अजस्र स्रोत हाथ लगने के आप्तवचन एवं शास्त्र प्रतिपादन इसी प्रकार साकार होते हैं।

'तप' को व्यावहारिक जीवन में "संकल्प निष्ठ संयम" भी कहा जाता है। अपनी ही विचारणा एवं क्रियाशीलता को बखेरने से रोकना और सत्प्रयोजनों में जुट पड़ना सम्भव हो सके तो इतने भर से आश्चर्यजनक विभूतियाँ देखते-देखते करतलगत होने लगती हैं। बन्दूक की नली से चली हुई बारूद गोली को निशान बेधने की शक्ति देती है। आतिशी शीशे द्वारा केन्द्रित की गई दो इंच घेरे की सूर्य किरणें अग्निकाण्ड खड़ा कर देने में समर्थ होती हैं। भाप को एक केन्द्र पर केन्द्रित करने से रेल चल पड़ती है। फायर ब्रिगेड के छोटे मुँह वाले पाइप से निकली हुई धारा कितनी तेज होती है। यह बिखराव को रोककर एक केन्द्र पर नियोजित करने के ही चमत्कार हैं। अर्जुन इसी विशेषता के कारण मत्स्य वेध और स्वयंवर विजय में सफल हुआ था। तपश्चर्या में जीवन के विविध-विधि बिखरावों को रोककर उद्देश्यपूर्ण प्रयोजन में ही उन्हें नियोजित करने का कौशल सीखना पड़ता है।

उपरोक्त—(१) इन्द्रिय संयम (२) समय संयम (३) अर्थ संयम और (४) विचार संयम। यह चार तप साधन ऐसे हैं जिन्हें अपनाने वाले प्रयत्नों के अनुरूप सत्परिणाम हाथों-हाथ उपलब्ध करते चलते हैं। अनगढ़, उच्छृंखल लोग स्वेच्छाचारियों की तरह पशु-प्रवृत्ति अपनाने और कुसंस्कारियों की तरह जीवनयापन करते हैं। किन्तु जिन्हें भावना उत्कृष्टता की अवधारणा अभीष्ट है, वे चौरासी लाख योनियों के संचित कुसंस्कारों को निरस्त करने और दैवी विशेषताओं को अभ्यास में उतारने के लिए दुस्साहसों जैसा प्रबल प्रयत्न करते हैं। यही है तपश्चर्या का सार संक्षेप।

(१) इन्द्रिय संयम—इन्द्रिय संयम में सर्वप्रथम जिह्वा पर नियन्त्रण करना पड़ता है। वह स्वाद की प्रधानता देकर ऐसे पदार्थ खाती रहती है जो अनावश्यक ही नहीं हानिकारक भी हैं। स्वाद में मात्रा बढ़ती है। फलतः पेट खराब होता है और असंख्यों रोग उठ खड़े होते हैं। "जैसा खाये अन्न वैसा बने मन" वाली उक्ति की सार्थकता अध्यात्म क्षेत्र के हर अभ्यासी को विदित होनी अथवा जाननी चाहिए। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सही सन्तुलित रखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए औषधि उपचार से भी अधिक आहार चिकित्सा की आवश्यकता है। उपवास को प्रतीक मानकर इन्द्रिय संयम के प्रथम चरण की तरह उसे अपनाया जाता है। साथ ही कटु, असत्य, पतनोन्मुख बचन बोलने से भी जिह्वा को रोका जाता है। इसके लिए मौन व्रत का अभ्यास भी स्वाद जप की तरह ही करना होता है।

जैसा खाये अन्न वैसा बने मन, की उक्ति सर्वविदित है। आहार से रक्तमाँस ही नहीं विचार संस्थान एवं अन्तःकरण भी प्रभावित होता है। चित्त की चंचलता, मनोविकार एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे कषाय-कल्मषों को उभारने, अनीति की ओर अग्रसर करने में अनुपयुक्त आहार की प्रधान भूमिका रहती है। इसके विपरीत यदि सात्विक सुसंस्कृत अन्न औषधि रूप में लिया जाय तो उसकी प्रतिक्रिया मानसिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा की तरह अनेकों आधि-व्याधियों का निराकरण करती है।

ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच और कमेन्द्रियाँ पाँच हैं। इन्द्रिय संयम में इन सभी की क्षमताओं को परिष्कृत, सुनियोजित करना होता है ताकि शरीरगत, मनोगत सामर्थ्य भण्डार के अपव्यय को रोककर उस प्रचण्ड क्षमता का संचय किया जा सके। इस संग्रह की आत्मबल सम्वर्धन के उच्चस्तरीय प्रयोजनों में नियोजित किया जा सके। उपवास का प्रभाव शरीर पर और ब्रह्मचर्य का मन पर पड़ता है, दोनों के समन्वय से शरीरबल और मनोबल की उभयपक्षीय आवश्यकता पूर्ण होती है।

जिह्वा को उपवास और मौन के अभ्यास से संयमित किया जाता है। दूसरे नम्बर की प्रबल इन्द्रिय है—जननेन्द्रिय। उसका मनोगत लिप्सा से सीधा सम्बन्ध है। काम को 'मनसिज' कहा गया है। वह सीधा मानसिक असंयम का प्रतीक है। जननेन्द्रिय के माध्यम से उस उत्तेजना का परिचय भर मिलता है। यह ब्रह्मचर्य ही है जिसमें रति कर्म को सीमाबद्ध करके शरीरगत जीवनी शक्ति के भण्डार की रक्षा करनी होती है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य का चिन्तन पक्ष भी ध्यान में रखना होता है। रूप-यौवन, हास-विलास एवं रति कर्म के कल्पना चित्र भी मानसिक उद्विग्नता उत्पन्न करने में असाधारण बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए नर को नारी के प्रति और नारी को नर के लिए अश्लील चिन्तन से रोका जाता है। दोनों के मध्य स्वाभाविक स्नेह, सहयोग को नीति मर्यादा के बन्धनों में जकड़ा जाता है। बहिन-भाई, माता-पुत्र, पुत्री-पिता का सम्बन्ध निभता रहे तो दोनों के मध्य सहज सौजन्य बना रहेगा तो शरीरगत जीवनी शक्ति तथा मनोगत प्रतिभा शक्ति का क्षरण होने से बच जायेगा। यह पूँजी व्यक्तित्व के भौतिक और आत्मिक पथ को समान रूप से सुविकसित बनाने में असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होती है।

(२) अर्थ संयम—तपश्चर्या का दूसरा चरण है—अर्थ संयम। आत्मिक प्रगति के पथिक को अपव्यय करने की तनिक भी छूट नहीं है। प्रश्न यह नहीं कि पैसा अपना है या पराया। मेहनत से कमाया या मुफ्त में मिला है। हर हालत में उसे जीवनोपयोगी—समाजोपयोगी शक्ति मानी जानी चाहिए और एक-एक पैसे का मात्र सत्प्रयोजनों में ही उपयोग होना चाहिए।

भगवान ने मनुष्य को श्रम, समय एवं मनोयोग की सूक्ष्म सम्पदाएँ दी हैं। इन्हें सुरक्षित रखने की, विनिमय की, सुविधा पैसे के माध्यम से होती है। इसलिए तथ्यतः धन को, श्रम समय का ही स्थूल रूप, प्रतीक प्रतिनिधि माना जाना चाहिए। जिस प्रकार समय का अपव्यय बुरी बात है उसी प्रकार धन की बर्बादी-फिजूल खर्ची भी अदूरदर्शिता की निशानी है।

बुद्धिमानी कमाने में मानी जाती है, पर वस्तुतः उसे परखना है तो अर्थ क्षेत्र में इस कसौटी पर जाँचा जाना चाहिए कि किस प्रकार कमाया गया और उसे किस निमित्त खर्च किया गया। सही तरीके से कमाना और सही कामों में खर्च करना ही लक्ष्मी का सम्मान है। उसका उपयोग दुष्ट प्रयोजनों के लिए नहीं होना चाहिए। दुर्व्यसनों में ही यही विलासिता के लिए अपनाई गई फिजूलखर्ची की अनैतिक अवांछनीयता में सम्मिलित है। अनैतिक इसलिए कि जिस साधन-सम्पदा का अपने लिये या दूसरों के लिए अति महत्त्वपूर्ण उपयोग हो सकता था उसे होली फूँकने या मुफ्त की लूट हड़पने के लिए जिस-तिस को दे मारने में हर दृष्टि से हानि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। जिन्हें उस सहायता की वास्तविक और अत्यधिक आवश्यकता होती है—वे वंचित रह जाते हैं और जो उसे पाकर दुरुपयोग करते, दुर्व्यसनों में निरत होते हैं, उन्हें प्रोत्साहन देने से अनाचार बढ़ते हैं। यह दुहरी हानि हुई। सम्पत्ति दुधारी तलवार की तरह है। वह आत्मरक्षा के लिए ही नहीं आत्मघात के लिए भी प्रयुक्त हो सकती है।

अर्थ सन्तुलन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है—मितव्ययता। बजट बनाकर चलना। अनावश्यक खरीद में कुछ भी खर्च न होने देना। सादा जीवन उच्च विचार, का सिद्धान्त अपनाकर औसत भारतीय स्तर का निर्वाह-क्रम अपनाना।

(३) समय संयम—मनुष्य की प्रमुख सम्पदा है—"काल बोध।" वह समय की गणना कर सकता है। साथ ही बुद्धि का उपयोग क्रमबद्ध दिनचर्या बनाने में कर सकता है। यही एकमात्र वह विशेषता है जिसके आधार पर विभिन्न प्रकार की भौतिक एवं आत्मिक विभूतियाँ, सफलताएँ, सम्पदाएँ अर्जित कर सकना सम्भव होता है। समय का निर्धारण न किया जाय, उसके साथ श्रम एवं मनायोग को जोड़े न रखा जाय तो समझना चाहिए कि यह सम्पदा ऐसे ही अवारागर्दी में अस्त-व्यस्त होती रहेगी और कहने लायक कोई सफलता हाथ न लगेगी।

मनुष्य कितने दिन जिया, इसका लेखा-जोखा इस प्रकार लेना चाहिए कि कितने समय का महत्त्वपूर्ण कार्यों में सदुपयोग किया गया। पेट प्रजनन तो शरीर के तकाजे हैं, जिन्हें हर प्राणी स्वभावतः करता रहता है। मनुष्य की दूरदर्शिता इसमें है कि वह इस सम्पदा का मूल्य समझे जिसकी हुण्डी के बदले संसार के बाजार में से कुछ भी खरीदा जा सकता है। आद्य शंकराचार्य मात्र ३२ वर्ष जिये। विवेकानन्द रामतीर्थ को तीस से कुछ ही वर्ष अधिक जीने का अवसर मिला, पर उनने उतने ही दिनों का तत्परतापूर्वक सदुपयोग करके वह लाभ अर्जित कर लिया जबकि दूसरे लोग सौ वर्ष जीकर भी कुछ न पा सकने की शिकायत करते—खीजते, खिजाते—हाथ मलते चले जाते हैं। यह अन्तर मात्र समय की महत्ता समझने न समझने का—उसे व्यवस्था बनाकर खर्च करने न करने भर का है। उस पौराणिक कथानक में सन्निहित तथ्य अक्षरशः सही है जिसमें रावण ने काल को पाटी से बाँधकर उसे असीम वैभव प्रदान करने के लिए विवश कर दिया था। इस सच्चाई को सामान्य जन नहीं समझ पाते हैं और समय को जैसे-तैसे काटकर जिन्दगी के दिन पूरे करते रहते हैं। सफल और श्रेयाधिकारी महामानवों मे से प्रत्येक ने समय का महत्त्व समझा है और क्रमबद्ध दिनचर्या पर आरूढ़ रहकर—अपने एक-एक क्षण को हीरे-मोतियों से तोलने लायक मानकर उसका सदुपयोग किया है। आलस्य प्रमाद को अपनाये रहने वाले अव्यवस्थित, अस्त-व्यस्त रीति से समय गुजारने वालों को हतभागी के अतिरिक्त और क्या कहा जाय। दुर्व्यसनों और कुकर्मों में निरत लोग तो एक प्रकार से अभिशप्त ही समझे जा सकते हैं।

(४) विचार संयम—चौथी तपश्चर्या है—विचार संयम। खाली समय में न जाने कितने अनगढ़, अनावश्यक, अनैतिक विचार मस्तिष्क की झाड़ियों में वन्य पशुओं की तरह छिपे रहते हैं और उच्छृखंल उछल-कूद मचाते रहते हैं। धन एवं श्रम, समय की तरह ही विचार शक्ति को भी उच्चस्तरीय सम्पदा माना जाय और चिन्तन की एक-एक लहर को रचनात्मक दिशाधारा में प्रवाहित करने का जी-तोड़ परिश्रम किया जाय। कुविचारों को सद्विचारों से काटने का महाभारत अहर्निश जारी रखा जाय। विचारों के लिए उपयोगी मर्यादा एवं दिशाधारा निर्धारित की जाय जिनमें अभीष्ट प्रयोजन अथवा मनोरंजन के लिए परिभ्रमण करते रहने की छूट रहे। चिड़ियाघरों में जानवरों के लिए बाड़ा होता है, उन्हें घूमने-फिरने की छूट तो रहती है, पर उस बाड़े से बाहर नहीं जाने दिया जाता। ठीक यही नीति विचार-वैभव के बारे में भी बरती जाय। उसे जहाँ-तहाँ बिखरने न दिया जाय।

एकाग्रता की—मेडीटेशन की—ध्यान धारणा की अध्यात्म क्षेत्र में बहुत चर्चा होती रहती है। अलंकारिता को छोड़ दिया जाय तो उसे विचार संयम ही कहना चाहिए। एक बिन्दु पर एकत्रित करने की समाधि-साधना का मनःसाधना का अन्तिम चरण है। उसे सिद्धावस्था कहा जा सकता है। वस्तुतः व्यावहारिक एकाग्रता इतनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भर है कि किसी उच्चस्तरीय उद्देश्य में इतनी तन्मयता सम्पादित कर ली जाय कि उस परिधि से बाहर की किसी बात की ओर ध्यान ही न जाय, मन ही न चले। वैज्ञानिक, कलाकार, आदि अपने-अपने विषय का ऐसी ही एकाग्रता का अभ्यास कर लेते हैं।

तपश्चर्या के मूलभूत सिद्धान्त दो हैं, एक अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन। दूसरा सत्प्रवृत्तियों की जीवनचर्या में समावेश करने के लिए प्रबल पराक्रम। इस मार्ग में अभ्यस्त आदतें—प्रचलन की परम्पराएँ तथा सम्पर्क क्षेत्र की प्रतिकूलताएँ एवं परिस्थितियों की विपन्नताएँ कई प्रकार की अड़चनें उत्पन्न करती हैं। उनसे जूझने और प्रगति-पथ पर अग्रसर होने का साहस जुटाने का प्रयत्न पुरुषार्थ करना पड़ता है—वही तप है। तपस्वी ही सिद्ध पुरुष बनते हैं—असामान्य सफलताओं का वरण करते हैं इसमें सन्देह नहीं।

मौनं सर्वार्थ साधनम्

मौन साधना की अध्यात्म-दर्शन में बड़ी महत्ता बतायी गयी है। कहा गया है **"मौनं सर्वार्थ साधनम्।"** मौन रहने से सभी कार्य पूर्ण होते हैं। महात्मा गाँधी कहते थे—मौन में अर्न्तशक्ति को जगाने की प्रभावशाली सामर्थ्य होती है। उनके अनुसार वह व्यक्ति, जो अपने जीवन में निरन्तर अनवरत सत्य की शोध कर रहा हो, मौन साधना का ही पथ पकड़ता है। लॉगफेलॉ के अनुसार मौन और एकान्त, आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं। दार्शनिक बेकन का मत है कि मौन निद्रा के समान है, जो विवेक को ताजगी प्रदान करती है।

वस्तुतः मौन एक तितीक्षा है, तप साधना है जो समय-समय पर महामानवों द्वारा अपने साधना पुरुषार्थ के क्रम में अपनायी जाती है। मौनावस्था एक योगी कै लिये सर्वाधिक मूल्यवान निधि एवं धरोहर है। इस अवस्था में प्रवेश कर वह परमसत्ता के और समीप जा पहुँचता है। बहिरंग से नाता तोड़कर अन्तर्क्षेत्र की गुफा प्रवेश साधना उसके लिये फलदायी सिद्ध होती है। मौनावस्था में की गयी प्रार्थना-तप, साधना कभी निष्फल नहीं होती, ऐसा विद्वजनों का मत है। किसी विद्वान ने कहा है—भय से उत्पन्न मौन जड़ता का प्रतीक है किन्तु संयमजन्य मौन साधुता है, तपस्वी का भूषण है।

इन्द्रिय संयम हेतु सबसे अच्छा प्रतीक मौन को माना गया है। जो मौन साध लेता है, वह सारी इन्द्रियों को वश में कर जितेन्द्रिय कहलाता है। महर्षि व्यास के मुख से निकले वचनों को लिपिबद्ध कर पुराण रचने का पुरुषार्थ गणेश जी द्वारा मौन साधना के बलबूते ही सम्भव हो पाया। यदि इतनी लम्बी अवधि तक यह साधना पुरुषार्थ न निभाया गया होता तो साहित्य सृजन भी सम्भव न हो पाता।

चिन्तक-मनीषी फ्रैंकलिन ने कहा है—"चींटी से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता क्योंकि वह मौन रहती है।" मौन का अर्थ है, ऊर्जा के बिखराव को समेटना एवं इसे संग्रहीत कर उच्चस्तरीय पुरुषार्थ में नियोजित करना। मौन साधना के साधक अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के समक्ष संसार के सभी प्रकार के वैभवों को तुच्छ मानते हैं। मौन साधक अतीत के अनुभवों से अर्जित ज्ञान-सम्पदा को मौन स्थिति के क्षणों में पुनः नियोजित कर एक नवीन विचारधारा को, एक कलाकार की तरह मूर्त्त रूप देता है, ऐसी विचारधारा जो युगानुकूल होती है, सर्वकल्याणकारी होती है। युग प्रवर्त्तक दृष्टा ऋषिगण इसी कारण मौन का माहात्म्य बताते रहे हैं।

वाक् शक्ति की ऊर्जा का सर्वाधिक सुनियोजन मौन साधना में होता है। संग्रहीत शक्ति द्वारा ऐसे साधक स्वयं को पूर्णता की दिशा में ले जाते हैं, जीवनमुक्त कहलाते हैं एवं अपनी इस शक्ति द्वारा बहिरंग जगत को भी प्रभावित करते हैं।

'मैं' को मिटाने की सर्वश्रेष्ठ स्थिति मौनावस्था है। जब 'मैं' (अहं) का ही लोप हो गया तो कौन सोचेगा व कौन बोलेगा ? इस साधना को समर्पण योग की साधना कहा जा सकता है। जो जितना गहरा होता है वह उतना ही मौन होता है। स्थिर जल गहरा होता है, यह उक्ति मौन के सम्बन्ध में सही सिद्ध होती है। जो वाचाल होते हैं, वे उतने ही उथले-बहिर्मुखी होते व तिरस्कार के भाजन बनते हैं। मौन बुद्धिमानी का ही दूसरा नाम है, जो मनुष्य का सर्वोत्तम आभूषण है।

घोंसला सोती हुई चिड़िया को आश्रय देता है, गुफा में हिम-समाधि प्राणियों में नयी ऊर्जा का संचार करती है, मौन मनुष्य की वाणी को शक्ति से ओत-प्रोत कर देता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मौन अवस्था एक ऐसी स्थिति है जिसमें भगवद्सत्ता व्यष्टि सत्ता के और समीप आ जाती है। मनुष्य देवस्वरूप होता व भगवत्सत्ता से एकाकार होता है। मौन एक विराम की स्थिति है, जो मनुष्य को भावी तप पुरुषार्थ हेतु पर्याप्त बल देती, ऊर्जा से ओत-प्रोत कर देती है। हर ऋषि स्तर के साधक को मौन का अवलम्बन लेना चाहिए ताकि समष्टि हित साधन सम्भव हो सके। वस्तुतः मौन, वाणी की शक्ति को संशोधित और संवर्धित करने की साधना है। वाणी के दुरुपयोग से हमारी शक्ति का एक बहुत बड़ा अंश नष्ट हो जाता है। इसीलिए जिस तरह इन्द्रिय संयम के लिये ब्रह्मचर्य आदि का विधान है, उसी तरह वाणी के संयम के लिये मौन की साधना बताई गई है। महात्मा गाँधी ने कहा है "मौन सर्वोत्तम भाषण है" अगर बोलना ही हो तो कम से कम बोलो। एक शब्द से भी काम चल जाय तो दो न बोलो। फैंकलिन के शब्दों में "चींटी से अच्छा कोई उपदेश नहीं देता और वह मौन रहती है।" कारलाइल ने कहा है "मौन में शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक्शक्ति होती है।

मौन प्रकृति का शाश्वत नियम है। चाँद, सूरज, तारे सब बिना कुछ कहे-सुने चल रहे हैं। संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मौन के साथ ही पूर्ण होता है। इसी तरह मनुष्य भी जीवन में कोई महान कार्य करना चाहे, तो उसे एक लम्बे समय तक मौन का अवलम्बन लेना पड़ेगा, क्योंकि मौन से ही शक्ति का संग्रह और उद्रेक होता है।

आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिये तो मौन बहुत आवश्यक है। योगी अरविन्द ने कहा हैं "आध्यात्मिक जीवन अपने भीतर ईश्वरीय चेतना को प्रतिष्ठित करने और उसे सहज रूप में व्यक्त होने देने की साधना है और इस साधना में सबसे बड़ी बाधा हमारी वाचालता ही है, जो विश्वात्मा की सूक्ष्म वाणी और उसके आदेशों को नहीं सुनने देती। मौन की अवस्था में ही हम आत्मा की वाणी सुन सकते हैं। कितनी ही उत्तम भाषा, बोली क्यों न हो, वाणी से आत्मा को नहीं समझा जा सकता, मौन ही आत्मा की भाषा है।"

शास्त्रकार ने कहा है, "मौन उस अवस्था को कहते हैं, जो वाक्य और विचारों से परे है। यह एक शून्य ध्यानावस्था है, जहाँ अनन्तवाणी की ध्वनि सुनी जा सकती है।" अध्यात्म जगत का साधक तो मौन के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। आत्मा से और विश्वव्यापी सूक्ष्मशक्ति से मनुष्य तब तक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता, जब तक वह बाह्य कोलाहल में उलझा रहेगा, बहिर्मुखी बना रहेगा। अंतर्मुखी होने और अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को एकाग्र और संगठित करने के लिये मौन का अवलम्बन श्रेयार्थी के लिये आवश्यक है।

व्यावहारिक जीवन में भी मौन अनर्थों को पैदा होने से रोकता है। मौन कभी भी दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकता। समाज में विग्रह, लड़ाई-झगड़े, कलह आदि की शुरूआत वाणी से ही होती है। एक दूसरे को भला-बुरा कहने पर ही लोग उत्तेजित होकर अनर्थ करते हैं। लेकिन जब मौन का अवलम्बन लिया जाय तो बुरे शब्द मुख से नहीं निकलेंगे और न विग्रह की स्थिति ही पैदा होगी। इतना ही नहीं, कोई व्यक्ति लड़ना चाहे छेड़छाड़ करे, झगड़ने लगे, ऐसी स्थिति में दूसरा पक्ष यदि मौन का अवलम्बन ले ले, तो झगड़ा कभी हो ही नहीं सकता।

मौन की स्थिति में ही हम दूसरों की अधिक सुन सकते हैं और अपने ज्ञानकोष को बढ़ा सकते हैं। लोगों को समझने, उनका अध्ययन करने के लिए भी मौन की आवश्यकता होती है। एक कहावत के अनुसार—"मौन बुद्धिमानी का चिन्ह है और अच्छे मित्र बनाता है।" सचमुच जो वाचाल होते हैं, उनसे भले आदमी दूर रहने का ही प्रयत्न करते हैं। मौन की स्थिति में हम अपने अज्ञान, मूर्खता, फूहड़पन को भी प्रकाशित होने से रोक सकते हैं। भर्तृहरि ने कहा है- "विधाता ने मौन अर्थात् चुप रहना-अज्ञानता का ढक्कन बनाया है। ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों के लिये मौन ही सर्वोत्तम आभूषण और रक्षक कवच है।" अज्ञानी आदमी यदि वाचाल होगा, तो जल्दी ही अपनी मूर्खता प्रकट कर देगा, लेकिन मौन का अवलम्बन लेकर वह अज्ञान-प्रदर्शन से अपने आप को रोक सकता है। जिस तरह गंदगी के दुष्प्रभाव और बदबू को दूर करने के लिये उसे ढक लेना आवश्यक है, उसी तरह अज्ञान, मूर्खता, फूहड़पन को छिपाये रखने के लिये मौन अपेक्षित है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शास्त्रों में तीन तरह के पाप बताए हैं—वाणी, कर्म और मन से किए गये दुष्कृत्य ही वे त्रिपाप हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मौन के अवलम्बन से हम वाणीकृत पापों से तो निश्चित रूप से बच ही सकते हैं। किसी को अप्रिय, कठोर वचन बोलना, गाली देना, झूठ बोलना, चुगलखोरी, आलोचना आदि वाचिक पापों से मौन ही हमें बचा सकता है। इस तरह मौन का अवलम्बन लेने से हम जीवन में किए जाने वाले एक तिहाई पापों से बच जाते हैं।

हम जीवन में जितना अनर्थक प्रलाप करते हैं, निरर्थक शब्द बोलते हैं, यदि उतने समय में कुछ काम किया जाय, तो उतने से एक नया हिमालय पहाड़ बन जाय। शब्दों की इस अथाह शक्ति को व्यर्थ ही नष्ट कर क्या हम दीन नहीं बन रहे ? यदि इन शब्दों का उपयोग हम किसी को सान्त्वना देने में, भगवद्भजन, प्रभु नाम स्मरण, संगीत, जप—कीर्तन आदि में करें, तो हमारा और समाज का कितना भला हो ? साथ ही हम वाचालता से उत्पन्न दोष, जिनसे लड़ाई, झगड़े, क्लेश, ईर्ष्या, द्वेष आदि का उदय होता है, उनसे बच जावें।

वाचालता, व्यर्थ प्रलाप चाहे वह किसी प्रेरणा से क्यों न हो, हानिकर है। इस सम्बन्ध में एक्रेन रिवले ने लिखा है "अण्डे देने के बाद मुर्गी यह मूर्खता करती है कि वह चहचहाने लगती है। उसकी चहचहाहट सुनकर डोम कौवा आ जाता है, वह उसके अण्डे भी छीन लेता है तथा उन वस्तुओं को भी खा जाता है जो उसने अपनी भावी सन्तान के लिये रखी थीं।" कहावत है, वह कुत्ता अच्छा नहीं होता, जो ज्यादा भौंकता है। इसी तरह वाचाल व्यक्ति को भला नहीं कहा जा सकता।

संत ईसा ने कहा था—"अपने द्वारा बोले गए प्रत्येक बुरे शब्द के लिये मनुष्य को फैसले के दिन सफाई देनी होगी। बुरे शब्दों से हम मौन के द्वारा ही बच सकते हैं।"

स्मरण रहे, सहज मौन ही हमारे ज्ञान की कसौटी है। जानने वाला बोलता नहीं और बोलने वाला जानता नहीं। इस कहावत के अनुसार जब हम सूक्ष्म रहस्यों को जान लेते हैं, तो हमारी वाणी बन्द हो जाती है। ज्ञान की सर्वोच्च भूमिका में सहज मौन स्वयमेव पैदा हो जाता है। स्थिर जल बड़ा गहरा होता है। उसी तरह मौन मनुष्य के ज्ञान की गम्भीरता का चिन्ह है।

वाचालता पाण्डित्य की कसौटी नहीं है, वरन् गहन, गम्भीर मौन ही मनुष्य के पंडित, ज्ञानी होने का प्रमाण है।

मौन ही मनुष्य की विपत्ति का सच्चा साथी है, जो अनेक कठिनाइयों से उसे बचा लेता है। अतः सप्ताह में कुछ घण्टे मौन व्रत रखना एवं दैनिक जीवन में हिल-मिल भाषण का अभ्यास डालना ही सब प्रकार से श्रेयस्कर है।

एकान्त सेवन की तपश्चर्या

दैनन्दिन जीवन की घटनाओं, सामाजिक परिवेश की कलह से उत्पन्न उद्वेगों के कारण जीवनी शक्ति बर्बाद होती है। इस बर्बादी को रोकने के लिए सत्पुरुषों ने प्रकृतितः शान्त वातावरण में निवास करने की सलाह दी है। इस बचत को उपयोगी प्रयोजनों में नियोजित कर प्रगति का पथ प्रशस्त किया जा सकता है।

व्यक्तित्व विकास की साधना में रत साधक अपने अन्तराल की प्रसुप्त शक्तियों के जागरण हेतु प्रयोग-प्रयास करते रहते हैं। उन्हें अपने इस प्रयोजन के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना पड़ता है जो मनःक्षेत्र में तनाव व उद्वेग उत्पन्न करने वाला न हो।

स्तब्धता व नीरवता यद्यपि विनोद, मनोरंजन में बाधक बनती और ऊब उत्पन्न करती है-जिससे हर कोई बचना चाहता है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से भी इसकी उपयोगिता दिन-पर-दिन अधिक साबित होती जा रही है। ध्वनि प्रदूषण, तनाव भरे वातावरण में निवास करने की शारीरिक और मानसिक हानियों को शरीरशास्त्री और मनश्चिकित्साविद् अनुभव करने लगे हैं। शान्त एकान्त स्थान प्रत्येक दृष्टि से लाभदायक है।

निस्तब्धता एक बात है, अंधकार दूसरी। दोनों के सम्मिश्रण से तीसरी स्थिति बनती है। जो सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही दृष्टि से अपने अद्भुत परिणाम प्रस्तुत करती है। आयुर्वेद शास्त्र में कायाकल्प चिकित्सा का विधान है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसमें शरीर के पुनर्गठन की, नवीनीकरण की विधा सम्पन्न की जाती है। इस विधान में भी लम्बे समय तक एकान्त और अंधेरे में रहना पड़ता है। औषधि उपचार के अतिरिक्त इस विशेष स्थिति का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उसका महत्त्व अधिक माना गया है।

वैज्ञानिक, साहित्यकार, शोधकर्त्ता योगाभ्यासी प्रायः वैसी ही स्थिति तलाश करते हैं। भीड़-भाड़ के बीच उनका काम ठीक तरह हो ही नहीं पाता। चिन्तन और मनन के लिए तो विशेष रूप से एकान्त की ही आवश्यकता पड़ती है। आत्मानुसंधान में निरत योगाभ्यासी प्रायः एकान्त स्थान में रहकर अपने प्रयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न करते थे। अभी भी वैज्ञानिक अन्वेषणों के लिए प्रयोगशालाएँ ऐसे ही स्थान और वातावरण में बनी होती हैं, जहाँ बाह्य विक्षेपों का प्रभाव कम से कम पहुँचे।

निस्तब्धता की क्षमता दोनों ही प्रकार की है। शोर के अभ्यस्त लोगों के लिए वह बहुत ही कष्टकर होती है, किन्तु जिनके अभ्यास में आ जाती है, सहन होने एवं रुचिकर लगने लगती है, उनके लिए एक वरदान का काम करती है। रात्रि के सुनसान अन्धेरे में हवा के पत्ते खड़कने, पक्षियों के बोलने के स्वर प्रारम्भिक स्थिति में डर उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु उत्पन्न हुआ डर अपने आप से आता है। जब तक व्यक्ति भीड़ में खोया रहता है, तब तक स्वयं को सुरक्षित मानता है किन्तु एकान्त में जब उसे अपना दुर्बल स्वरूप देखने का अवसर मिलता है तो झाड़ी में भूत दिखाई देने लगता है, वह डर जाता है। इस स्थिति से पीछा छुड़ाने के लिए फिर भीड़ में घुसने की कल्पना या चेष्टा करता है।

साधना में एकाकीपन रहता है। अन्तर्मुखी होने की चेष्टा चलती है। पर यह चेष्टा सामान्य मनुष्यों के लिए कष्टकर प्रतीत होती है। वे दुनिया की बहुत बातें सोच सकते हैं और सांसारिक समस्याओं पर काफी ऊहापोह कर सकते हैं, किन्तु आत्मनिरीक्षण और आन्तरिक समाधान की बात सोचना और इस दिशा में कुछ आगे तक बढ़ सकना उनके लिए सम्भव ही नहीं हो पाता। इसी प्रकार वे भीड़ के साथ रहने और गपबाजी करने में घन्टों गुजार सकते हैं, पर अकेले थोड़ी देर भी बैठे नहीं रह सकते। आत्मसम्पर्क उनसे सधता ही नहीं। इसका विश्लेषण करते हुए मनोविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऐसे व्यक्ति वे होते हैं जिनका मत अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अच्छा नहीं होता। वे उसे बुरा, पिछड़ा और घिनौना समझते हैं। फलतः अपने साथ बैठनें में उन्हें घृणा उपजती और नाराज होते हैं। जिस तरह गन्दे और अविश्वासी लोगों के पास बैठने को जी नहीं करता। आत्म-चिन्तन से ऐसे ही लोगों का जी उचटता है और एकान्त में उन्हें ही डर लगता है।

इसके विपरीत यह देखा गया है कि एकान्त की स्थिति में कई व्यक्ति आत्म-चिन्तन में तन्मय रहने लगे और अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं को हटाने तथा विशेषताओं को बढ़ाने के लिए सुनिश्चित मार्ग ढूँढ़ निकालने में भी सफल हो गए। इस प्रकार यह स्तब्धता जहाँ अनभ्यस्त होने के कारण प्रारम्भ में तो अखरी, किन्तु थोड़े ही समय में वह न केवल सहन ही हो गई वरन् उपयोगी तथा रुचिकर भी लगने लगी।

साधनात्मक प्रक्रियाओं, उपासनात्मक प्रविधियों की असफलता का एकमात्र यही कारण है कि उन्हें मात्र कर्मकाण्ड तक सीमित कर दिया है। इस तरह उनका प्रभाव कान, आँख, मस्तिष्क तक ही पहुँच पाता है। इन यन्त्रों की बनावट ही कुछ ऐसी है कि किसी प्रभाव से देर तक प्रभावित नहीं रहते। इसलिए इनकी असफलता का रोना-रोना व्यर्थ है। अन्तः परिष्कार के लिए आवश्यक है कि अन्तःचेतना की गहरी परतों का स्पर्श और परिवर्तन कर सकने योग्य उपाय ढूँढ़ा जाय। इसके लिए एकान्त सेवन का बहुत महत्त्व है।

पश्चिमी देशों में "ब्रेन वाशिंग" नामक पद्धति का उपयोग किया जाता रहा है। इसका तात्पर्य है-मस्तिष्क की धुलाई-अर्थात् पूर्व मान्यताओं का बदलाव। इसमें एकान्त अंधेरी कोठरी में रखना उत्तम सिद्ध हुआ है। यद्यपि ब्रेन वाशिंग की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि दूसरे के विचार किसी के ऊपर लादे जाते हैं।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु इसका उपयोग अपने पूर्व संचित कुसंस्कारों को धोने तथा आत्मा के दिव्यत्व से आलोकित होने के लिए किया जाय, तो इसे औचित्यपूर्ण कहा जाएगा। योगियों का गुफा गमन ऐसा ही है। अरुणाचलम् के रमण और पांडिचेरी के अरविन्द की साधनाओं को पूर्व काल का आधुनिकीकरण कहा जा सकता है। इस तरह की साधना गाजीपुर के फलहारी बाबा, वाराणसी के तेलंग स्वामी, योगी गम्भीरनाथ, महाप्रभु जगत्बन्धु ने भी सम्पन्न की है।

कनाडा के मनोवैज्ञानिकों ने इस अन्ध निस्तब्धता के समय कैसा अनुभव होता है, इसके परीक्षण किए हैं। इसके लिए ठीक ब्रेन वाशिंग में काम आने वाले जैसे कक्ष बनाए गए। उसमें बन्द किए जाने वाले लोगों ने बताया कि वहाँ भी उन्हें जोर-जोर की आवाजें सुनाई दीं। सीटी, सरसराहट जैसे शब्द उनके कानों में आते रहे। बाद में अन्वेषण करने पर ज्ञात हुआ कि शरीर में होने वाला रक्त संचार, श्वांस-प्रश्वांस जैसी हलचलों की ही प्रतिक्रिया थी। यही ध्वनि तरंगें उस कमरे में प्रतिध्वनित होती हैं। बन्दी उन्हें कहीं बाहर से आने वाली आवाजें समझता है।

इन कमरों में पहुँचने वालों ने अपने अनुभव में कहा कि पहले वह गहरी नींद में सो गए; लगभग चालीस घण्टे सो लेने के बाद उनकी आँख खुली। जागने पर पूर्व की तुलना में अधिक चेतना और ताजगी का अनुभव हुआ। कइयों ने नशेबाजी जैसी आदतों को अपनी अन्तःप्रेरणा से त्याग दिया। कई अपने प्रिय विषयों पर मनन चिन्तन कर महत्त्वपूर्ण नतीजे पर पहुँचने में सफल हो गए।

एकान्त सहन का प्राथमिक अभ्यास कठिन अवश्य है किन्तु साधनात्मक प्रयोजनों के लिए इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। गीताकार ने अठारहवें अध्याय में **"विविक्तसेवीलघ्वाशी यत्वाक्कायमानसः"** के सूत्र में एकान्त सेवन को प्रथम स्थान प्रदान किया है। इसके अभ्यास से मनोबल बढ़ता है साथ ही व्यक्ति अन्तराल की गहराइयों में उतरने योग्य हो जाता है।

पूर्ण एकान्त का लाभ अधिक समय तक न मिले तो यथासम्भव यह प्रयत्न करना चाहिए कि इसका अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जाय। इस तरह मन को भीड़-भाड़ के विचारों से हटाकर आध्यात्मिक भाव पर नियोजित करने की ध्यान-धारणा को किसी-न-किसी रूप में क्रियान्वित करते रहना चाहिए।

यों तो एकान्त अकेलेपन को कहा जाता है, जहाँ दूसरों का आवागमन न हो। कोलाहल कानों में न पहुँचे, आवागमन की उछल-फुदक जहाँ विक्षेप उत्पन्न न करे, वहाँ एकान्त समझा जाता है, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। चित्त को बढ़ाने वाली समस्याएँ जहाँ विक्षेप उत्पन्न न करें, उस मनःस्थिति एवं परिस्थिति को भी एकान्त की संज्ञा दी जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। लगाव ही दूसरों के साथ अपने सम्पर्क जोड़ता है। जिनके साथ परिचय, सम्बन्ध, सहयोग, विरोध न हो, वे अपने स्थान पर बने रहें, अपनी हलचलें करते रहें तो भी उस स्थिति को एकान्त कहा जा सकता है। भीड़-भाड़ और मेले-ठेले में अनेकों का आवागमन रहता है, पर वह दृश्य मनोरंजन के अतिरिक्त ऐसा कुछ नहीं होता, जो मन को अपने साथ बाँधे या विक्षेप उत्पन्न करे। ऐसी दशा में उस रिक्तता के कारण एकान्त जैसी स्थिति बन जाती है। विघ्न तब पड़ता है जब हलचलों में, व्यक्तियों तथा वस्तुओं में रस आने लगे या उनके कारण विक्षेप उत्पन्न हो।

इस दृष्टि से कारागार को भी एकान्त की स्थिति कहा जाता है। यों वहाँ भी अनेक कर्मचारी या बन्दी अपना-अपना काम करते रहते हैं, पक्षी उड़ते-चहकते रहते हैं पर उनके साथ सीधा लगाव न होने के कारण मनःस्थिति एकान्त जैसी ही बनी रहती है। उस स्थिति में रहते चिन्तन-मनन में भी बाधा नहीं पड़ती और आत्म-विश्लेषण, अन्तःकरण निरीक्षण में भी कोई बाधा नहीं पड़ती। परिस्थितिजन्य एकान्त वह है, जहाँ सर्वथा एकाकी रहना पड़े। मनःस्थितिजन्य एकान्त वह है, जिसमें व्यक्तियों के इर्द-गिर्द रहते हुए भी उनसे लगाव हटा लिया जाय या हट जाय।

एकान्त में भजन भी ठीक बनता है और मनन-चिन्तन भी। स्वाध्याय और लेखन भी इन परिस्थितियों में ठीक तरह संभव हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यों सर्वथा एकान्त तो समाधि स्थिति में ही भले बन पड़े, अन्यथा शारीरिक आवश्यकताएँ और मानसिक स्मृतियाँ भी किसी न किसी प्रकार के विक्षेप उत्पन्न करती रहती हैं; वैज्ञानिक शोध एवं आध्यात्मिक अवगाहन जैसे कार्यों में विक्षेप डालती हैं। सरल यही है कि प्रत्यक्ष और स्मृति-जन्य लगाव अन्यत्र बिखरने न दिया जाय। इतने से भी वह काम चल जाता है, जो एकान्त माँगता है। स्वाध्याय एवं साहित्य सृजन भी वैज्ञानिक शोध अथवा अनुसंधान स्तर के ही काम हैं। इसके लिए मन को अनिवार्य रूप से साधना पड़ता है।

उदाहरण के लिए उन मनस्वी लोगों की महान कृतियों को लिया जा सकता है जो उन्होंने जेलखानों में ही लिखीं और वैसी सुन्दर बन पड़ीं जैसी सुविधा-साधनों से घिरे रहने पर कदाचित् ही बन पड़तीं।

लोकमान्य तिलक ने अपना महान गीता रहस्य ग्रन्थ मांडले जेल में ही लिखा था। वहाँ उन्हें अनेकों असुविधाएँ थीं। नौकर ऐसा दिया गया जो उनकी भाषा नहीं समझता था और न तिलक ही उसकी भाषा समझते थे। गूँगे-बहरे की तरह इशारों से काम चलाते थे। गीता रहस्य में अनेक ग्रन्थों के सन्दर्भ बार-बार लेने पड़ते थे, पर उनकी निजी पुस्तकों में से भी उन्हें चार ही एक बार में मिलती थीं। लिखने के लिए कागज सीमित दिये जाते थे और कलम के स्थान पर पेन्सिल। उसी से बारीक अक्षर लिखकर किसी प्रकार काम चलाया और नियमित दिनचर्या एवं मानसिक संतुलन के सहारे वह कार्य पूरा किया।

विनोबा की प्रसिद्ध पुस्तक गीता प्रवचन धूलिया जेल में ही लिखी गई थी। विद्वान कुमारप्पा का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इकोनोमिक्स ऑफ परमानेन्स' जेल जीवन में ही लिखा गया था। गाँधी जी ने "मंगल प्रभात" और "आश्रमवासियों से" पुस्तकें जेल-जीवन में ही लिखी थीं। यों उनका ध्यान बँटाने के लिए कई साथी भी वहाँ रह रहे थे, पर गाँधी जी ने अपने को इतना नियमित और संयमित कर लिया कि प्रार्थना की तरह इस लेखन प्रक्रिया में भी कोई बाधा नहीं पड़ी।

इस दिशा में पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी असाधारण कार्य किया। उनने नैनी जेल में "विश्व इतिहास की झलक", "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" लिखनी शुरू की, जो देहरादून जेल में जाकर समाप्त हुई। "पिता के पत्र-पुत्री के नाम" जिनने पढ़े हैं वे जानते हैं कि उनमें अस्त-व्यस्तता या ऐसी विसंगति कहीं नहीं है जो ऐसे वातावरण में स्वभावतः होनी चाहिए।

बहादुर शाह जफर जानते थे कि जेल-जीवन के उपरान्त मरण ही उनके लिए एकमात्र विकल्प है तो भी उनने उन दिनों की भावभरी कविताएँ लिखने में अपना समय बिताया।

पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र ने जेल में ही अपना "कृष्णायन" काव्य पूरा किया। सुब्रह्मण्य भारती, माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भवानी प्रसाद मिश्र आदि की जेल जीवन में लिखी कृतियाँ ऐसी ही हैं।

सेठ गोविन्द दास का उपन्यास "इन्दुमती" जेल में ही लिखा गया। श्री जैनेन्द्र कुमार जैन ने भी बहुत कुछ जेल में लिखा। क्रान्तिकारियों में से श्री यशपाल और मन्मथ नाथ गुप्त की कृतियाँ जेल जीवन की कठिनाइयों के बीच भी असाधारण ही बन पड़ी हैं। गुरुमुख सिंह "मुसाफिर" की जेल जीवन में लिखी गई कहानियाँ पठनीय हैं।

राजगोपालाचार्य और एम० एन० राय, बाबू राजेन्द्र प्रसाद की डायरियाँ बतातीं हैं कि जेल जीवन में भी मानसिक संतुलन कितना सही और सुव्यवस्थित रखा जा सकता है। बाबू सम्पूर्णानन्द की "दर्शन और जीवन", "चिद् विलास", "आर्यों का आदि देश", "वेद मन्त्रों के प्रकाश में" आदि पुस्तकें जेल जीवन में ही लिखी गयीं। जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, मौलाना आजाद, रामवृक्ष बेनीपुरी, वीरेन्द्र कुमार घोष, कमलापति त्रिपाठी, सज्जाद जहीर, प्रिंसिपल छबीलदास आदि की कृतियाँ भी अविस्मरणीय हैं। इस संदर्भ में गाँधी की आरोग्य की कुंजी, बालपोथी, गीताबोध, गीता प्रवेशिका, अनासक्ति योग को भी नहीं भुलाया जा सकता। यह भारत के हिन्दी भाषी लेखकों का ही कुछ उल्लेख है। दक्षिण भारत के विद्वान भी इस दिशा में पीछे नहीं रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साम्यवादी साहित्य में विश्व के बहुत कम सौभाग्यशाली लेखक ऐसे हैं, जिनने लेखक की तरह किसी सुव्यवस्थित कमरे में बैठकर इस विषय की पुस्तकें लिखी हों। वे जेल के सीखचों, तथा गुप्तवास के ऐसे दिनों में लिखी गई हैं जिन दिनों कि उनके ठहरने, सोने और खाने का भी कोई प्रबन्ध नहीं था।

हिमालय में एकान्त साधना करने वाले अध्यात्म विज्ञानी भी उस अवधि में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान करते रहे हैं। मध्यकालीन सन्तों को सदा प्रचार-प्रवृज्या में ही संलग्न रहना पड़ता था। उन्होंने अपने गीत और भजन उसी भाग-दौड़ की स्थिति में रचे हैं।

एकान्त सन्तुलन बनाता है या बिगाड़ता है ? इस प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि परिस्थितियाँ मनुष्य को तभी अस्त-व्यस्त करती हैं, जब वह आत्म-संतुलन स्थिर न रखे अथवा अनेक लोगों से घिरा हुआ हो। समस्याओं में उलझा हुआ व्यक्ति भी अपने को एकाग्र किये रह सकता है और उस व्यस्त एकाग्रता के बीच भी महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकता है।

कष्ट साध्य तपश्चर्या व्यर्थ है

इस संसार में परोपकार को पुण्य माना जाता है। जिसने दूसरों के लिए जितना अधिक दान, त्याग, श्रम या प्रयत्न किया हो उसे उतना ही बड़ा परमात्मा कहते हैं। इसी तथ्य को हृदयंगम कर कर्म प्रेमी सज्जन अपने जीवन में निजी कार्यों से समय और निजी आवश्यकताओं से धन बचाकर उसे परमार्थ के कामों में लगाते हैं।

परदेश में पहुँचने पर अनजान जगह में किसी व्यक्ति को ठहरने की असुविधा होना स्वाभाविक है, क्योंकि एक तो प्रत्येक गृहस्थ के पास सीमित जगह होती है फिर अनजान आदमी का विश्वास कौन करे ? ऐसी दशा में दूर प्रदेश में जाकर ठहरने की समस्या किसी भी परदेशी के लिए सचमुच ही बहुत उलझन भरी होती है। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए अनेकों धनी मानी लोग जहाँ-तहाँ धर्मशालायें बनवाते हैं जिनमें यात्री आनन्दपूर्वक ठहर सकें। यह अवश्य ही पुण्य है। कई व्यक्ति कुएँ बनवा देते हैं जहाँ जल की आवश्यकता वाले लोग जल ही प्राप्त कर सकें। कई सज्जन प्याऊ लगवाते हैं ताकि लोटा-डोर न होने पर भी बिना श्रम किये ही तुरन्त ठंडा जल पीकर पथिक अपनी प्यास बुझा सकें। कई सज्जन तालाब खुदवाते हैं जहाँ मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी जल प्राप्त कर सकें। लोगों को स्नान की, वस्त्र धोने की, घर के लिए पानी ले जाने की तथा खेती सिंचाई की आवश्यकता भी पूर्ण हो सके। बाग-बगीचे लगवाने वालों के भी ऐसे ही उद्देश्य होते हैं। उन वृक्षों की छाया में लोग शीतलता प्राप्त करें, पशु-पक्षी भी उनका लाभ उठावें, पुष्प और फलों से लोग प्रसन्नता तथा तृप्ति अनुभव करें। लंगड़ी-लूली वृद्ध गौओं की कसाई से रक्षा करने के लिए गौशालाएँ स्थापित करते हैं, इनकी भी प्रशंसा ही की जानी चाहिए।

कितने ही पुण्यात्मा लोग भूखों को भोजन देते हैं, सदावर्त लगाते हैं, सन्तों, ब्राह्मणों एवं समाज सेवियों का भोजन वस्त्र से सत्कार करते हैं। प्राचीनकाल के सभी ब्राह्मण और साधु समाजसेवी होते थे इसलिए उनके भोजन आदि की आवश्यकताएँ पूरी करना एक प्रकार से समाजसेवा के अनेक स्रोतों को संचालित करना ही था। इसी से ब्रह्म भोज का पुण्य माना गया था। आज भी यदि सच्चे समाजसेवी साधु ब्राह्मण मिल सकें तो उनकी भोजन आदि की आवश्यकताएँ पूर्ण करना ब्रह्म भोज ही होगा और उसका शास्त्रोक्त पुण्य भी मिलेगा। कितने ही दयालु सज्जन अन्धे, अपाहिजों को, दीन-हीनों को शीत से बचाने के लिए कम्बल, रजाई, धोती, कपड़े आदि बाँटते हैं, यह भी पुण्य है। कितने ही सत्पुरुषों ने अपने धन का सदुपयोग करने के लिए औषधालय, अस्पताल, प्रसूतिगृह खुलवाये हुए हैं जहाँ पीड़ित लोग जाकर अपने कष्टों एवं रोगों से मुक्ति के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। कितने ही विद्यालय एवं पाठशालाएँ धनी-मानियों के धन या जनता के चन्दे से चलते हैं। इनसे ज्ञान वृद्धि होती है। पुस्तकालय एवं वाचनालय भी इसी श्रेणी में आते हैं। यह सब परमार्थ ही है। इनके संयोजकों के सत्प्रयत्न निश्चय ही सराहनीय हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कितने ही व्यक्ति श्रम संभव प्रयत्नों के द्वारा लोक सेवा का पुण्य-परमार्थ करते हैं। श्रम दान भी धन दान के समान ही—वरन् उससे भी कुछ बढ़कर पुण्य माना गया है। उत्साही सेवाभावी लोग मिल-जुलकर सेवा-समिति जैसे संगठन बनाते हैं और मेले-ठेलों में जहाँ जनता को विशेषकर स्त्री-बच्चों के खोने आदि की कुशंका रहती है। यह स्वयं सेवक उनकी बड़ी सहायता करते हैं। प्यासों को पानी पिलाते हैं, खोये हुओं को ढूँढ़कर यथा-स्थान पहुँचाते हैं, चोर बदमाशों से रखवाली करते हैं, नदी स्नान आदि के अवसरों पर डूबते हुओं को बचाते हैं। इस प्रकार की निस्वार्थ सेवा बुद्धि को परमार्थ ही कहा जायगा। आजकल विकास योजनाओं के अन्तर्गत श्रमदान से सड़कें, नहरें, पुल आदि बनाने का, घाट-तालाबों की सफाई का काम जहाँ-तहाँ उत्साहपूर्वक होता देखा जाता है। महामारी एवं बीमारी फैलने के दिनों में लोग घर घर जाकर रोगियों की चिकित्सा, परिचर्या, मृत-संस्कार आदि के जोखिम भरे काम करते हैं इन प्रयत्नों की कौन प्रशंसा न करेगा।

कुछ लोग ऐसी ही लगन और सेवा भावना से जनता की बौद्धिक एवं संगठनात्मक सेवाएँ करते हैं। प्रवचनकर्त्ता, व्याख्यानदाता, लेखक, ग्रन्थकार, पत्रकार, गायक लोगों में ज्ञान और सद्भाव बढ़ाने के लिए अपनी विद्या, वाणी, लेखनी का उपयोग करते हैं। इससे आवश्यक ज्ञान एवं कर्तव्यपरायणता के लिए उत्साह प्राप्त होता है। किसी समय यह कार्य साधु, ब्राह्मण समाज ने पूरी जिम्मेदारी से अपने कन्धे पर उठाया हुआ था और उसे लाखों वर्षों तक निबाहा भी भली प्रकार। आज इस काम को सार्वजनिक संस्थाओं के अन्तर्गत रहकर तथा स्वतन्त्र रूप में अनेक विचारक, विद्वान और लोक-सेवी अपने-अपने ढंग से कर रहे हैं और जानकारी, राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक चेतना को बढ़ाने में लगे हुए हैं। यह भी पुण्य ही है। कितनी संस्थाएँ विभिन्न वर्गों के संगठन बनाती और बढ़ाती हैं ताकि लोगों में एकता और प्रेम बढ़े एवं उनके अधिकारों की रक्षा हो। देश की स्वाधीनता के लिए हजारों, लाखों मनुष्यों ने जो कष्ट सहे, त्याग किये और प्राण दिये उसमें भी जनहित की ही पुण्य भावना प्रधान रूप से काम करती थी। वैज्ञानिक शोधों में लगे हुए तथा अध्यात्म, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में सदुद्देश्य के साथ प्राण-पण से जुटे हुए लोगों को पुण्यात्मा ही कहा जायगा। क्योंकि उनका उद्देश्य परहित परमार्थ है। परमार्थ को ही पुण्य का प्रधान चिन्ह माना गया है।

किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता, सज्जनता एवं महानता की परख उसके पुण्य परमार्थ भरे कार्यों को देखकर की जाती है। की भी क्यों न जावे ? जो अपने प्रयत्न, पुरुषार्थ, श्रम और त्याग से दूसरों को लाभ पहुँचाता है, अपनी जिन समय, श्रम, धन, बुद्धि आदि शक्तियों का उपयोग अपने लिए करके वह और भी अधिक सुख-साधन सामिग्री एकत्रित कर सकता था, उसे अपने दूसरों की भलाई के लिए निस्वार्थ भाव से त्याग किया तो उसकी इस उदारता की सराहना की ही जानी चाहिए। लोक में कीर्ति के साथ ऐसे लोगों को परलोक में भी सद्गति मिलनी ही चाहिए। शास्त्रों में पुण्य फल के बदले स्वर्ग आदि सुखों के प्राप्त होने की जो बात लिखी है, उसमें प्रकट है कि पुण्य परमार्थ की महत्ता मनुष्यों की भाँति परमात्मा भी स्वीकार करते हैं। उसे धर्म मानते हैं और उनके संयोजक धर्मात्मा को सद्गति एवं सुख-शान्ति प्रदान करते हैं।

इस पुण्य-परमार्थ की कसौटी पर जब हम उन व्यक्तियों को कसते हैं जो कष्टसाध्य एकान्त साधनाओं में लगे हुए हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोग केवल अपनी ही भलाई के लिए प्रवृत्त हैं। इन्हें पुण्य-परमार्थ से कोई सरोकार नहीं। इस दृष्टि से उन्हें स्वार्थी भी कहा जा सकता है और उन लोगों की अपेक्षा अनुदार एवम् संकीर्ण माना जा सकता है जो अपने समय और श्रम का एक बड़ा भाग जनता की भलाई करते हुये पुण्य परमार्थ में लगाते हैं।

यह प्रश्न सचमुच ही विचारणीय है क्योंकि साधारण रीति से यह तपस्वी लोग स्वार्थी मालूम पड़ते हैं जो अपने ही लिये ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्ग-मुक्ति प्राप्त करने में एक साधारण स्वार्थी की भाँति लगे हुए हैं। पर दूसरी ओर कई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बातों पर विचार करने से उसके दूसरे पहलू भी सामने आते हैं जो असमंजस में डाल देते हैं। सोचने की बात है कि सांसारिक जीवन में रहते हुए अपनी कमाई से खूब आनन्द के दिन काटते हुए थोड़ा सा धन या समय देकर अन्य पुण्यात्माओं की तरह पुण्य और यश लिया जा सकता था, तो इतना कष्ट साध्य मार्ग इन्होंने क्यों अपनाया ? घर-गृहस्थी को क्यों छोड़ा ? एकान्त प्रदेशों में जहाँ जीवनोपयोगी वस्तुओं का घोर अभाव और अनेक प्रकार के कष्ट-ही-कष्ट हैं ? वहाँ जाने का निश्चय क्यों किया ? खून को जमा देने वाली ठंड और तीव्र ग्रीष्म एवं प्रचण्ड वर्षा में यह नंगे-उघाड़े क्यों पड़े रहते हैं। इतनी कठोर तितीक्षा एवं कष्ट सहिष्णु बनने की मूर्खता इन्होंने क्यों की, जबकि थोड़ा सा दान करने पर ही पुण्य फल मिल सकता था। थोड़ी सी पूजा-उपासना, घर-गृहस्थी में रहते हुए भी कर लेने पर जब यह माना जाता है कि भगवान् थोड़े ही जप-तप से, पूजा-पाठ से प्रसन्न हो जाते हैं और स्वर्ग मुक्ति प्रदान कर देते हैं तो इतना कष्ट उठाने का इन्हें क्या प्रयोजन था ? और लोगों की तरह यह भी क्यों नहीं दोनों हाथों में लड्डू रखे रहे ? जिससे संसार का आनन्द भी मिलता रहता और पुण्य परलोक भी सधता रहता।

लगता है, शायद यह लोग कम पढ़े या अल्पबुद्धि होंगे। किसी ने बहकाकर इन्हें इस मार्ग पर लगा दिया होगा, पर यह बात भी सही नहीं है। इन तपस्वियों में कितने ही अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान एवं भूतकाल के प्रमुख चतुर क्रिया-कुशल, सफल, प्रभावशाली, प्रतिष्ठित, धनी, सत्ता-सम्पन्न एवं ऐसे लोग हैं जिन्हें कोई बहका नहीं सकता। जिनके बहकाने पर हजारों लोग इधर से उधर होते थे। उँगलियों के इशारे पर नाचते थे उन्हें कोई यों ही बहका देगा और यह भी ऐसे कष्टसाध्य जीवन-यापन में शेष सारे जीवन प्रदत्त रहने के लिए बहका देगा यह बात भी समझ में आने योग्य नहीं है।

फिर यह गुत्थी ज्यों-की-त्यों रह जाती है कि कुआँ बनवाने, तालाब खुदवाने, ब्रह्मभोज कराने, विद्यालय, पुस्तकालय, श्रमदान या संगठनात्मक एवं प्रचारात्मक सार्वजनिक कार्य करने की अपेक्षा इन सुविज्ञ और सुसंस्कृत व्यक्तियों ने यह तपश्चर्या का मार्ग क्यों चुना ? उनने इन्द्रियों के सारे विषय त्याग दिये, धन सम्पत्ति को तिनके की तरह ठोकर मार दी, शरीर की सामान्य सुविधाओं की भी परवाह न करके शीत, उष्णता अन्धकार की विषमता, वस्त्र और भोजन का अभाव मकान में रहने की अपेक्षा वृक्षों की छाया या गुफाओं में रहने का दुस्साहस किया, जन शून्यता का एकाकीपन कितना अखरता है इसे मानव स्वभाव का जानकार कोई भी व्यक्ति भली प्रकार समझ सकता है। बाल-बच्चों का, मान-प्रतिष्ठा का, धन ऐश्वर्य का, इन्द्रिय सुखों का मोह त्याग करना साँप, बिच्छू, सिंह, व्याघ्र आदि के बाहुल्य से जीवन को हर घड़ी संकट में डाले हुए, रोगी हो जाने पर जहाँ न कोई चिकित्सा की व्यवस्था है न परिचर्या की, ऐसे स्थान पर पड़े हुए लोगों का त्याग भी साधारण नहीं है। इतने विचारशील और इतने त्यागी व्यक्ति यदि सार्वजनिक सेवा से पुण्य-परमार्थ अर्जन करने में लगे तो वे उतने त्याग के कारण बहुत यश और पुण्य कमा सकते हैं साथ ही इतने कष्टसाध्य जीवनयापन की कठिनाई से बच सकते हैं। फिर क्यों नहीं यह लोग समाज-सेवा में लगते ? अपने जीवन को एक तरह से बरबाद क्यों कर रहे हैं ? यह प्रश्न सहज ही हर तर्कशील मस्तिष्क में उठता है और उसका समाधान चाहता है।

इन तपस्वियों की तपश्चर्या को यदि सांसारिक क्षेत्र में प्रवृत्तिमार्गी सब विचारशील लोग मूर्खता या स्वार्थपरता मानते तो भी सन्तोष होता कि भ्रान्त यह तपस्वी ही हैं, इनका विचारशील लोग तो समर्थन नहीं करते। पर बात ऐसी भी नहीं है। संसार के श्रेष्ठ मस्तिष्क इन त्यागी-तपस्वियों की प्रशंसा ही नहीं करते, उनकी आवश्यकता और उपयोगिता को भी जानते हैं। इतना ही नहीं ये उनसे प्रकाश और बल, मार्ग-दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने को भी आतुर रहते हैं। ऐसी स्थिति में तपस्वियों की महत्ता का रहस्य साधारण बुद्धि के लोगों के लिए और भी गूढ़ होता जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी की विद्वता, प्रतिभा और दूरदर्शिता को सारा देश जानता है। वे उच्चकोटि के वकील थे और भारत की राजनीति में उनने जो महत्त्वपूर्ण भाग लिया, स्वतन्त्रता संग्राम के संचालन में उनने जिस कौशल का परिचय दिया। उसका परिचय सर्व-साधारण को नहीं वरन् उस समय की गोपनीय स्थितियों के जानकार उच्चकोटि के नेताओं को ही है। मालवीय जी ने हिन्दू संस्कृति की कितनी सेवा की, अपना सारा ही जीवन सेवा-कार्यों में लगाया, इसे हर कोई जानता है। उन मालवीय जी ने जब हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव रखी तब उसका शिलान्यास कराने के लिए एक ऐसे ही तपस्वी की आवश्यकता पड़ी जो उतना ही महान हो, जितना विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य महान् था। मालवीय जी ने इसके लिए तलाश की-आध्यात्म क्षेत्र के ऊँचे क्षेत्रों से उनका निजी परिचय था। उन्होंने वर्तमान काल का कोई सर्वोच्च ऋषि इस कार्य के लिए तलाश किया। "जिन खोजा तिन पाँइया" की उक्ति के अनुसार बहुत खोज के बाद उन्हें वह तपस्वी मिल भी गया और किसी प्रकार बहुत अनुनय-विनय के बाद रजामंद करके उस अवधूत योगी को वे अत्यन्त अवरुद्ध स्थान से खोजकर बनारस लाये और विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए भूमि पर सर्वप्रथम गायत्री का एक महा पुरश्चरण कराके पवित्र किया। तत्पश्चात् उस अवधूत योगी के हाथों वास्तविक शिलान्यास कराया। पीछे अन्य रस्में और लोग करते रहे, पर उन अवधूत का आशीर्वाद मिलने पर ही मालवीय जी ने अपने प्रयत्न को सफल और भाग्य को धन्य माना।

काशी विश्वविद्यालय को स्थापित हुए बहुत काल बीत गया। बात पुरानी पड़ गई। जिन लोगों ने उन महात्मा के दर्शन किये थे उनमें से अधिकांश दिवंगत हो गये। जनता वर्तमान की बातों को ध्यान रखती है और भूतकाल को, यदि वह विशेष प्रयत्नपूर्वक लिपिबद्ध या स्मारक रूप में आबद्ध न किया जाय तो उसे भूल जाती है। उस योगी अवधूत की उन दिनों भारतवर्ष के घर-घर में चर्चा थी। मालवीय जी की खोज से सभी लोग बहुत प्रभावित थे और यह गर्व करते थे कि भारतभूमि अभी ऋषियों से रहित नहीं हुई है। पर आज तो वह बात एक अतीत की धुँधली रेखा की तरह विस्मृति के गर्त में चली गई है। उसका स्मरण सम्भवतः कुछ गिने-चुने लोगों को ही होगा।

मालवीय जी जिस .योगी को विश्वविद्यालय का शिलान्यास करने लाये थे, वह एक नग्न अवधूत थे। शरीर पर एक चिन्दी वस्त्र भी धारण नहीं करते थे और बहुत लम्बे समय से मौन थे। कहते हैं कि चिरकाल पूर्व उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ। उपनिषदादि समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया, दण्डधारी संन्यासी बने और उसके उपरान्त उन्होंने बिहंग अवधूत अवस्था धारण कर ली, सारे वस्त्र त्याग दिये, मौन धारण कर लिया, भोजन के लिए प्रयत्न छोड़ दिया, एक दिन किसी गृहस्थ ने भिक्षा माँगने पर उनकी हथेली पर गरम दाल दी, जिससे उन्हें कष्ट हुआ और उस दिन से माँगने के लिए हाथ पसारना छोड़कर मुट्ठी बाँध ली। वह मुट्ठी फिर उन्होंने कभी खोली ही नहीं। उन्होंने अपनी उग्र तपस्या हिमालय की अत्यन्त ऊँची हिमाच्छादित चोटियों पर खुले में रहकर उस स्थान में की जहाँ साधारण मनुष्यों का पहुँच सकना और जीवित रह सकना कठिन है।

उनकी आध्यात्मिक विशेषताओं को, तप से उत्पन्न आत्मबल को, जो लोग जानते थे उनके दर्शनों के लिए लालायित रहते थे। पर उन दिनों वैसा योग किसी-किसी को कभी ही मिलता था। महामना मालवीय जी, उन्हें अपने गुरु रूप में मानते थे। उन्होंने महापुरुषों के आशीर्वाद को उपलब्ध करके ही वह बड़े-बड़े कार्य किए जो वे अपनी व्यक्तित्व क्षमता से शायद ही कर पाते। सर्व-साधारण ने उस योगी के दर्शन विश्वविद्यालय की स्थापना के समय एक बार ही सर्वोच्च मंच पर किये थे। तब से किसे पता है कि वे कहाँ गये ?

पर वे अभी जीवित हैं, मरे नहीं हैं। अज्ञात स्थान पर हैं, तो भी ज्ञानी व्यक्तियों की तरह अपनी निज की तपश्चर्या ही नहीं कर रहे वरन् कई लोक-सेवी व्यक्तियों को प्रेरणा देकर उतना लोकहित कर रहे हैं जो शायद अपने अकेले शरीर से वे कदापि न कर पाते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंगा के उद्गम स्थान के समीप यह महात्मा अभी भी रहते हैं। लम्बी अवधि से प्राण को धारण किए-किए अब शरीर भी जीर्ण हो गया है फिर भी आँखों में बड़ा तेज है, अंधेरे में भी वे चमकती हैं। शीत सहते-सहते चमड़ी स्याह काली, बहुत कड़ी और मोटी हो गई है। इन दिनों एक आठ फुट लम्बी, आठ फुट चौड़ी लकड़ी से बनी जिस कुटी में वे रहते हैं, वह जाड़े के दिनों में बर्फ से ढक जाती है। कुटी में ठण्डी हवा प्रवेश न करने पावे इसलिए भीषण हिमपात आरम्भ होने पर कार्तिक से कुटी के सब छेद योग से बन्द कर दिए जाते हैं। वैसाख में जब बर्फ गलती है तभी वह स्थिति आती है कि कुटी से बाहर निकला और भली प्रकार घूमा-फिरा जा सके। किसी आवश्यकता के समय लोहे के फावड़े से बर्फ काटकर कुटी से बाहर निकल सकना जाड़ों में भी सम्भव तो हो सकता है पर ऐसा किया विशेष आवश्यकता के समय ही जाता है। साधारणतः शीत के छः महीने में कुटिया बन्द रहती है और उसी में उनकी जीवन-यात्रा चलती रहती है।

जिन एक महापुरुष का जिक्र उपरोक्त पंक्तियों में किया है, वे अकेले ही नहीं हैं वरन् भारतभूमि में ऐसे और भी अनेक महापुरुष हैं। उन्होंने तपश्चर्या को ही सार्वजनिक शिक्षा माना है, "यद्यपि यह बात लगती बड़ी अटपटी है कि कोई व्यक्ति जन-साधारण से दूर रहकर भी क्या कोई पुण्य-परमार्थ कर सकता है ?

भले ही हमें आश्चर्यजनक लगे, भले ही हमारी समझ में न आवे पर यह बात भी सत्य है कि मनुष्य एकान्त तपश्चर्या द्वारा आत्म-कल्याण ही नहीं, भारी जनहित भी, पुण्य परमार्थ भी कर सकता है।

वर्तमान की तपसाधना भविष्य निर्माण के लिए

चान्द्रायण-कल्प को अन्तर्मुखी रहने और अन्तःक्षेत्र का पुनर्निर्माण करने के लिए उपलब्ध एक असाधारण सौभाग्य माना जाना चाहिए। ऐसा सौभाग्य जैसा कि माता के गर्भकाल में निवास करने का होता है। उन दिनों समाधिस्थ होकर गुफा-सेवन जैसा सुअवसर मिलता है। एकान्त एकाग्रता को बन्दी-गृह नहीं, भविष्य निर्धारण की योजना बनाने में बरती गई वैज्ञानिकों जैसी लक्ष्यवेधी तत्परता ही समझा जाना चाहिए।

भव-बन्धनों की जकड़न भरे निरन्तर जलाने वाले नरक का और उत्कृष्टता के उन्मुक्त आकाश का आनन्द देने वाले स्वर्ग का दरवाजा बिल्कुल पास है। दोनों में से किसी में भी घुस पड़ने की मनुष्य को पूरी-पूरी छूट है। इस चुनाव में हर किसी को परिपूर्ण सुविधा है। प्रवेश के बाद तो परिस्थितियों का सामना करने की विवशता रहेगी ही, पर स्वेच्छाचार में कहीं कोई व्यवधान-अवरोध नहीं है। है तो उतना ही जितना कि प्रसव काल में बन्धन तोड़ने और उन्मुक्त आकाश का आनन्द लेने के लिए व्याकुल भ्रूण के सामने रहता है। चान्द्रायण को प्रसव काल कहा जाय तो हर्ज नहीं। उसे अन्धकार और प्रकाश का मध्यवर्ती प्रभात भी कह सकते हैं। जो ऐसा सोच सकें, उनके लिए चान्द्रायण कल्पकाल है, अन्यथा कुछ दिन के लिए जलवायु बदलने—नई परिस्थितियों में जाकर ऊब हटाने का कौतुक-कौतूहल ही उसे समझा जायेगा। प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रों में भी उपवास की प्रायः ऐसी ही विधि-व्यवस्था रहती है। वहाँ भी कितने ही लोग उपचार प्रयोजनों के लिए पहुँचते हैं। बहुत हुआ तो कुछ इस प्रकार की बात सोची जा सकती है। पाप प्रायश्चित तो पुण्य का अवलम्बन लेने से होता है, पर कई व्यक्ति छुटपुट कर्मकाण्डों से ही वह कार्य सस्ते मोल में सम्पन्न हो जाने की बात सोचते हैं। ऐसे लोगों के लिए चान्द्रायण साधना कुछ मन बहलाव उत्पन्न कर सकती है। किन्तु वास्तविक लाभ उन्हें ही मिलेगा जो इस वातावरण—तप साधना एवं परिवर्तन पर्व का लाभ उठाकर अन्तःक्षेत्र में प्रवेश करेंगे। यही है वह क्षेत्र जिसमें प्रवेश करने और खोदने-कुरेदने के उपरान्त महामानवों को विभूतियों का हस्तगत हुआ है।

उपवास, अनुष्ठान, स्वाध्याय, सत्संग, विशिष्ट साधना, उपक्रम, दिनचर्या, अनुशासन आदि की निर्धारित विधि-व्यवस्था का परिपालन करते हुए साधकों को अपना चिन्तन इस केन्द्रबिन्दु पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियोजित करना चाहिए कि अन्तःक्षेत्र को परिष्कृत करने के लिए क्या सोचना चाहिए ? क्या बदलना चाहिए और क्या कर गुजरने के लिए साहस जुटाना चाहिए ? इस निर्धारण में निश्चय ही उपवास-अनुष्ठान एवं तप-साधना के कारण बढ़ी हुई सात्विकता—सही निर्णय तक पहुँचाने में बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकती है।

इन दिनों भौतिक चिन्ताओं, आकांक्षाओं, स्मृतियों से जितना विरत रहा जा सके, उतनी ही आत्म-चिन्तन में सुविधा रहेगी। जिनका मन परिवार व्यवसाय में ही पड़ा रहेगा, वे दूर रहने के कारण कुछ कर तो सकेंगे नहीं, उल्टे चान्द्रायण काल में विकसित होने वाली पवित्रता-प्रखरता की दोनों उपलब्धियों से वंचित रखने वाले दुर्भाग्य-दुश्चिन्तन अकारण सिर पर लादे रहेंगे। इसलिए उचित यही है कि कुछ समय के लिए अपने को अभ्यस्त ढर्रे से विरक्त, वैरागी, संन्यासी बना लिया जाय। यह समय उसी स्तर का जीवनयापन करने में व्यतीत किया जाय। चान्द्रायण की सारी दिनचर्या एवं विधि व्यवस्था योगी-तपस्वी स्तर की है, फिर उसके साथ उसी स्तर का मनोयोग भी क्यों न जोड़ा जाय। शरीर कहीं मन कहीं की विसंगति बनी रही तो उस लक्ष्य की उपलब्धि कैसे हो सकेगी जिसकी आशा-अपेक्षा की गई है। भूखा रहकर भगवान से मनमर्जी पूरी करा लेने वाला 'ब्लैक-मेलिंग', तो करना नहीं—करना हो तो चलता नहीं है। ऐसी दशा में उचित—उपयुक्त यही है कि शरीर चर्या की तरह विचारणा में प्रज्ञा का और अन्तरात्मा में श्रद्धा का उच्चस्तरीय समावेश करने का प्रचण्ड पुरुषार्थ किया जाय। मन उचाटने वाली कुसंस्कारिता को तपस्वी जैसा मनोबल अपनाकर दबाया-दबोचा जाय।

जीवन का कल्प-वृक्ष, उसका दूरदर्शितापूर्ण सदुपयोग, परिवर्तनों का निर्धारण, निर्धारणों का क्रियान्वयन-क्रियान्वयनों को संकल्पपूर्वक अपनाये रहने का साहस-अवरोधों की सम्भावना और उसका निराकरण-परिवर्तन के फलस्वरूप विनिर्मित होने वाला उज्ज्वल भविष्य—यही हैं वे विषय जिन पर उलट-पुलटकर चिन्तन प्रक्रिया को इन दिनों नियोजित रखा जाना चाहिए। यह प्रयास विशुद्ध ध्यान-धारणा है। एकाग्रता तो एक छोटा मानसिक व्यायाम भर है। वास्तविक ध्यान-धारणा निर्धारित विषय पर वैज्ञानिकों की तरह तन्मय हो जाने को कहते हैं। तन्मयता अर्थात् रुचिपूर्वक अभीष्ट प्रसंग पर समूचा मनोयोग केन्द्रीभूत रखे रहना। उसी क्षेत्र की अगणित समस्याओं को समझने, समाधान करने में अत्यधिक व्यस्त रहना। ध्यान का तत्वदर्शन यही है। चान्द्रायण साधक आत्म-समीक्षा, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के चतुर्विधि उत्कर्ष प्रसंगों में निरत रहे, तो समझना चाहिए, कि योगी तपस्वियों के लिए नितान्त आवश्यक ध्यान धारणा का लाभ भी ले रहे हैं।

भावी जीवन की रूपरेखा इन्हीं दिनों बना लेनी चाहिए। साधनाकाल की छुट-पुट समस्याओं का समाधान तो सूत्र-संचालकों के परामर्श-सहयोग से सहज ही पूरा होता रह सकता है। आहार-विहार सम्बन्धी कोई असुविधा हो तो उसका हल निकलने में अनावश्यक संकोच के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। उसका अधिक महत्त्व भी नहीं है। महत्व इस बात का है कि भविष्य निर्धारण क्या हुआ—उसकी रूपरेखा क्या बनी, अवरोधों से निपटने की सूझबूझ किस स्तर तक उभरी, परिवर्तित दिव्य जीवन के लिए व्रतशील रहने का साहस किस सीमा तक परिपक्व हुआ ? इन सारे प्रसंगों पर इन दिनों जितना अधिक मन्थन किया जायेगा, उज्ज्वल भविष्य की रूप-रेखा उसी अनुपात से बनती और सुनिश्चित होती चली जायेगी।

प्रमुख प्रश्न एक ही है—जीवन सम्पदा की समस्त पूँजी लोभ-मोह और दर्प के त्रिविधि असुरों के कब्जे में पड़ी रहने दी जाय या उनसे कुछ बचाकर आत्म-कल्याण एवं ईश्वर की आशा पूरी करने में भी लगाने का मार्ग निकाला जाय ? यदि निकृष्टता ही जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गई हो तब तो बात दूसरी है अन्यथा सोचना यह पड़ेगा कि समय, श्रम, चिन्तन, प्रतिभा, सम्पदा जैसे ईश्वर प्रदत्त अनुदानों का सीमित अंश ही निर्वाह-परिवार के लिए खर्च किया जाय। अनिवार्य की पूर्ति ही दृष्टि में रहे तो उपरोक्त सम्पदाओं में से प्रत्येक को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्साहवर्धक मात्रा में बचाया जा सकता है। इस बचत को उच्चस्तरीय प्रयोजनों में लगाने पर ही ईश्वर के खेत में पुण्य-परमार्थ बोने और उससे हीरे-मोतियों की फसल उगाने का अवसर मिल सकता है। अनुपयुक्त में कटौती और उपयुक्त के लिए श्रद्धांजलि का एक ही उपक्रम है जिसे अपनाकर महानता की दिशा में बढ़ सकना किसी के लिए सम्भव हुआ है। पूजा-पाठ से देवताओं को रिझाने और उनकी टोपी, चप्पल उतार लेने का जाल बुनते रहने वाले दिग्भ्रान्तों की पंक्ति में चान्द्रायण के विवेकवान साधकों में से किसी को भी नहीं बैठना है।

कटौती की बचत ही प्रभु समर्पण के काम आती है। इसी से तप और योग का प्रयोजन पूर्ण होता है और आत्मिक प्रगति सम्भव होती है। अपनी समग्र सम्पदाओं का विभाजन-नियोजन करना ही आत्मा और परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। अध्यात्म के नाम पर प्रचलित छुट-पुट कर्मकाण्डों को हमें आकाश-पाताल जैसा महत्व नहीं देना चाहिए। वे जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने वाली विवेकशीलता एवं साहसिकता उत्पन्न करने वाले नगण्य से व्यायाम निर्देशन मात्र हैं। उन्हीं को जो साधना मान बैठेंगे, वे किसी दिन तिल का ताड़ मान बैठने वाली अपनी भूल का निश्चय पश्चात्ताप करेंगे। (१) उपासना—परमात्मा की—अर्थात् आदर्शों के लिए आत्म-समर्पण की श्रद्धा-भावना। (२) साधना-अन्तरात्मा की। जीवन देवता की। जिसमें कुसंस्कारों से जूझने और सद्गुणों को अभ्यास में उतारने वाला पराक्रम। (३) आराधना—विश्वात्मा की। सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए किया—बरता गया संयम और उदार अनुदान—यही है संक्षेप में आत्मिक प्रगति की त्रिवेणी जिसमें अवगाहन करने वाले सत्यं-शिवं-सुन्दरम्—की पग-पग पर अनुभूति करते हैं। यह सब किस प्रकार बन पड़े—इसका निर्णय महाप्रज्ञा के सहारे ही हो सकता है। अभ्यस्त संकीर्णता तो इसमें कितने ही छद्म रचने और व्यवधान उत्पन्न करने में ही निरत रहती है।

जीवन-साधना मध्यवर्ती मेरुदण्ड है। उसी के साथ उपासना, आराधना जुड़ी हुई है। पापों का प्रायश्चिव मात्र उपवास भर से नहीं होता, परिशोधन के लिए जीवन साधना और क्षतिपूर्ति के लिए उदार पारमार्थिकता का प्रमाण-परिचय देना पड़ता है। इस तथ्य को पूरी तरह ध्यान में रखे रहना चाहिए।

चान्द्रायण पूर्ण होने पर घर वापिस पहुँचने पर हर साधक को इस रूप में बदलकर जाना है मानो वहाँ पहुँचते ही सम्पर्क क्षेत्र के हर व्यक्ति को यह अनुभव विश्वास होने लगे कि जिस 'कल्प' प्रयोजन के लिए गए थे, उसे वस्तुतः उपलब्ध करके वापिस लौटा गया है।

जल्दी सोना जल्दी उठना। सूर्योदय से पूर्व नित्य कर्म से निवृत्त होना। दिनचर्या बनाकर काम करना। हाथ में आये काम को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर परिपूर्ण मनोयोग के साथ पूरा करना। आलस्य, प्रमाद को तनिक भी आश्रय न देना। स्वभाव में सज्जनता का अधिकाधिक समावेश। अपनी नम्रता और दूसरे का सम्मान प्रकट करने वाला मधुर सम्भाषण, शिष्टाचार। समय एवं धन का एक छोटा अंश भी व्यर्थ न गँवाना। कुसंग से बचना। स्वाध्याय को दिनचर्या का आवश्यक अंग बनाना। दैनिक उपासना में व्रतशील रहना। आहार में सात्विकता रखना, सादगी अपनाना। अस्वच्छता और अव्यवस्था को बदलने में तनिक भी ढील न होने देना। मिल-बाँटकर खाना। हँसते-हँसाते जीना। अपने प्रति कठोर और दूसरों के प्रति उदार रहना। सहायता करने और उदारता बरतने में सन्तोष अनुभव करना। अवांछनीयताओं के प्रति असहयोग, विरोध एवं संघर्ष की प्रवृत्ति जीवन्त रखना। धैर्य, साहस और विवेक के तीन मित्रों का कभी साथ न छोड़ना; जैसे थोड़े से ही जीवन-सूत्र हैं जिन्हें व्यवहार में उतारने पर व्यक्तित्व में प्रखरता आती है, प्रामाणिकता बढ़ती है, फलतः प्रगति पथ पर तेजी से बढ़ चलने का सुअवसर मिलता है। सफलताएँ, सहायताएँ एक के बाद एक अनायास ही खिंचती चली आती हैं। व्यावहारिक नकद धर्म है, जिसका प्रतिफल हाथोंहाथ मिलता है। जीवन साधना को ही व्यावहारिक योगाभ्यास एवं तपश्चर्या माना गया है। इसका माहात्म्य आकाश-पाताल की काल्पनिक उड़ानों की तुलना में कहीं अधिक है। इस मार्ग पर चलते हुए परिष्कृत दृष्टिकोण पर आश्रित स्वर्ग और व्यापक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मीयता की उपलब्धि जीवन-मुक्ति का आनन्द हर घड़ी मिलता है। महामानवों में से प्रत्येक को जीवन साधना तो अनिवार्यतः करनी पड़ी है। इससे बच निकलने का और कोई 'शार्टकट' है नहीं।

आत्म-कल्याण के लिए जीवन साधना और विश्व-कल्याण के लिए परमार्थ की आराधना—इन दोनों के मिश्रण से उस सच्ची भक्ति-भावना का उदय अनुभव होता है जिसके द्वारा आत्म-दर्शन और ईश्वर दर्शन के दोनों ही प्रयोजन सधते हैं। परमार्थ बातों के बताशे बनाने से नहीं सधता, उसके लिए समय-दान-अंशदान का एक महत्वपूर्ण भाग निकालना ही होता है। संचय का विभाजन करते समय उत्तराधिकारियों को ही नहीं—लोक मंगल को भी परिवार का एक सदस्य माना जाय और जिस तरह परिजनों का खर्च उठाना पड़ता है उसी प्रकार परमार्थ को भी एक सदस्य मानकर उसके लिए भी उतना ही दुलार, अनुदान दिया जाय, जितना कि परिजनों के लिए किया जाता है। चान्द्रायण काल में भावी रीति-नीति ऐसी बनाकर लौटना चाहिए जिससे उपासना, साधना एवं आराधना की सुगन्धित शोभा सुषमा के सहारे उल्लसित रहने और प्रमुदित करने की प्रक्रिया सहज ही सधती रहे।

आत्मिक प्रगति के लिये तप तितीक्षा की आवश्यकता

व्यक्तित्व को समुन्नत बनाने के लिए मुख्यतया चेतनात्मक सामर्थ्यों की आवश्यकता पड़ती है। पदार्थ तो भौतिक सुविधा बढ़ाने के ही काम आते हैं। ईंट-गारे से मकान बनते हैं। व्यक्तित्व का भवन निर्माण करने में गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता ही प्रयोग में आती है। साधनों से बड़प्पन मिल सकता है। किन्तु महानता उपार्जित करने में चेतन सम्पदा के अतिरिक्त और किसी साधन से काम नहीं चलता। यह क्षमताएँ किसी देवी-देवता या सन्त-महन्त से उपहार रूप में प्राप्त नहीं हो सकतीं, इन्हें प्रयत्नपूर्वक भीतर से ही उभारना पड़ता है। बीज रूप से महत्त्व तत्व की बड़ी मात्रा विद्यमान है। प्रश्न उसे सुषुप्ति से जागृति में परिवर्तित करने भर का है। अध्यात्म साधनाएँ उसी उद्देश्य के लिए की जाती हैं। अनुग्रह के लिए किसी के आगे गिड़गिड़ाने, मनुहार करने को नहीं, आत्म-जागरण एवं आत्म-परिष्कार को ही साधना कहते हैं।

साधना में तप तितीक्षा का स्थान मुख्य है। गरम करने से छिपी सामर्थ्यें उभरती हैं। भौतिक जगत में इसी अवलम्बन को अपनाया जाता है। मिट्टी गरम होने पर पत्थर बनती है। पानी भाप के रूप में शक्तिशाली होता है। कच्चे लोहे को फौलाद बनने का अवसर मिलता है। मामूली से धातु खण्ड भस्म रसायनें बन जाती हैं। आग के सम्पर्क से दीपक प्रकाशवान होता है। गर्मी से वनस्पतियाँ विकसित होती हैं और शरीर जीवित रहते हैं। अण्डा पकने में पक्षी की छाती की गर्मी ही काम करती है। दूध गरम करने से घी निकलता है। व्यायाम से उत्पन्न गर्मी से शरीर की माँसपेशियाँ बलिष्ठ बनती हैं। आत्म सत्ता में प्रखर प्रचण्डता उत्पन्न करने के लिए तपश्चर्या का आश्रय लेना पड़ता है। अन्नमय कोश की दबी क्षमतायें इसी आधार पर विकसित होती हैं। सूर्य की किरणें समुद्र के खारी जल को बादल बनाकर ऊपर आकाश में उड़ा ले जाती हैं और वे अपने मीठे जल से धरती की प्यास बुझाते हैं। तपश्चर्याएँ साधनाएँ जीवन समुद्र में से उच्चस्तरीय विभूतियाँ उत्पन्न करती हैं और उनकी वर्षा से सर्वत्र सुख-शान्ति एवं प्रगति का वातावरण बनता है।

उपवास, ब्रह्मचर्य, ऋतु प्रभावों का सहना, कठोर जीवन-यापन, इन्द्रिय संयम, मनोनिग्रह जैसे व्रतों का निर्वाह तितीक्षा बनकर तप साधना का उद्देश्य पूरा करता है। सुविधाजनक प्रवाहों में बहते हुए जीवन ऐसे ही निरर्थक व्यतीत हो जाता है। अवरोध उसमें शक्ति भरते हैं। पानी को बाँध में रोककर उसे छोटी धारा में गिराने से बिजलीघर बनते हैं। कितने ही कल-कारखाने चलते हैं। यह रोकथाम न की जाय तो बहते पानी की जल धारा एक सुन्दर दृश्य मात्र बनकर रह जायगी। चाकू को पत्थर पर घिसने से उसकी धार तेज होती है। बारूद को मजबूत कारतूस में बन्द करके दागते हैं तो गोली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलती है अन्यथा उसे बिखरी स्थिति में जला देने से चमक भर उत्पन्न होगी, अवरोध की शक्ति सर्वविदित है। हवा के प्रवाह से टकराकर पन-चक्कियाँ चलती हैं और पाल बँधी नावें द्रुतगति से दौड़ती दीखती हैं। सुविधाओं को कठोरता में बदलने से अन्तः शक्ति का प्रचण्ड हो उठना स्वाभाविक है। आत्मिक प्रगति के विभिन्न प्रयोजनों में तपश्चर्या से उत्पन्न शक्ति का उपयोग होता है। तपश्चर्या सुविधाओं को घटाने और उद्देश्यपूर्ण असुविधा बढ़ाने को कहते हैं। इसे तितीक्षा के रूप में भी जाना जाता है।

असुविधाएँ अवैज्ञानिक अति मात्रा में, अनावश्यक और अवांछनीय स्तर की हों तो उनसे हानि पहुँचेगी और प्रगति क्रम रुकेगा। किन्तु यदि इस प्रयोग में विवेकशीलता और सन्तुलन का ध्यान रखा जाय तो उसके चमत्कारी सत्परिणाम उत्पन्न होंगे। उपवास कष्टकारक है, उसमें क्षुधा कष्ट सहना पड़ता है। पर प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान के मर्मज्ञ जानते हैं कि इस संयम के सहारे शरीर में संचित मलों की निवृत्ति होती है और कितने ही कष्ट-साध्य रोगों से पिण्ड छूटता है। चान्द्रायण आदि व्रतों से पापों का प्रायश्चित होने और आत्म शुद्धि का लाभ मिलने का लाभ शास्त्र-सम्मत है। ब्रह्मचर्य पालन में मन की लिप्सा पर अंकुश लगाना पड़ता है। सामान्यतया यह संयम कष्टकारक ही समझा जा सकता है, पर सर्वविदित है कि इससे शारीरिक ओजस् और मानसिक तेजस् की अभिवृद्धि होती है। विद्यार्थी, किसान, माली, शिल्पी आरम्भ में कष्ट-ही-कष्ट सहते हैं। उन्हें मन मारना पड़ता है और निर्धारित कार्य में तन्मयतापूर्वक लगे रहना होता है। यह असुविधा का प्रयत्क्ष आमन्त्रण है, पर समयानुसार उनके सत्परिणाम सामने आते हैं। यदि ऐसा न होता तो विद्यालयों, व्यायाम शालाओं, कारखानों में कठिन श्रम करते एक ही व्यक्ति दिखाई न पड़ता। आज का कष्ट कल सुविधा उत्पन्न करे तो उसे अपनाने में किसी दूरदर्शी को आपत्ति नहीं होती। तपश्चर्या की साधना को इसी स्तर की बुद्धिमत्ता समझा जाना चाहिए।

सुविधाएँ मनुष्य को दुर्बल बनाती हैं और असुविधाओं से टकराते हुए मनुष्य बलवान बनता है। इसके उदाहरण सर्वत्र देखे जा सकते हैं। सर्दी-गर्मी से डरने वाले हीटर, कूलरों के सहारे वातानुकूलित कमरों में निवास करने वाले उस समय तो आराम अनुभव करते हैं पर उनकी सहन शक्ति दुर्बल पड़ जाने से तनिक सा ऋतु प्रभाव सहन नहीं होता। ऐसे लोगों को तनिक-सी सर्दी में जुकाम और तनिक-सी गर्मी में जलन की शिकायत आ दबोचती है। बहुत कपड़ों से लदे रहने वालों की अपेक्षा वे ऋतु प्रभाव से कम बीमार पड़ते हैं, जो कम कपड़े पहनते हैं और सर्दी-गर्मी सहने की आदत बनाये रहते हैं।

उत्तरी ध्रुव पर बसी 'ऐस्किमो' नामक मनुष्य जाति उस प्रदेश में चिरकाल से रहती है। वहाँ घोर शीत रहता है। सदा बर्फ जमी रहती है। कृषि तथा वनस्पतियों तक का कोई आधार नहीं। सामान्य मनुष्यों को उपलब्ध होने वाले साधन भी वहाँ नहीं हैं फिर भी वे मात्र जलचरों के माँस पर जीवित रहते हैं। जीवित ही नहीं परिपुष्ट भी हैं और सुखी भी। वन्य प्रदेशों के निवासी, आदिवासी सभ्य शहरी लोगों की तुलना में अभावग्रस्त दीखने पर भी अधिक निरोग, सुदृढ़ और दीर्घजीवी होते हैं। यह तितीक्षा के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सुरक्षा, सामर्थ्य का ही सत्परिणाम है।

सुविधा भरा जीवन आलसी बनता है। कठिनाइयों से लड़ने का अवसर ही नहीं रहता तो प्रतिभा प्रसुप्त स्थिति में चली जाती है। संघर्षमय कठिनाई भरे जीवन में अन्य असुविधाएँ कितनी ही क्यों न हों इतना लाभ तो स्पष्ट ही है कि उससे मनुष्य की प्रखरता निखरती है। अमीरी के वातावरण में कदाचित ही कभी कोई प्रतिभाएँ उभरती हैं। संसार भर के महामानवों के इतिहास में यह तथ्य स्पष्ट है कि वे या तो कठिनाइयों की परिस्थिति में जन्मे थे अथवा उनने जान-बूझकर कठिनाइयों से भरा जीवन-क्रम अपनाया था।

संयम और सादगी की नीति अपनाकर ही मितव्ययतापूर्वक गुजारा करने वाला ही न्याय निष्ठामय जीवन जी सकता है। विलासी की आवश्यकताएँ इतनी बढ़ी-चढ़ी होती हैं कि अनीति उपार्जन अपनाये बिना उसकी आकांक्षायें पूरी हो नहीं सकतीं। ऐसी दशा में सारा शारीरिक मानसिक श्रम अधिक कमाने और अधिक भोगने के कुचक्र में ही समाप्त हो जाता है। जो यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बचत कर सकेगा उसी के लिए परमार्थ प्रयोजनों में अपना चिन्तन, समय-प्रभाव एवं धन का कुछ महत्त्वपूर्ण अंश लगा सकना सम्भव होगा। धर्म स्थापना का दूसरा पक्ष है, अधर्म का विनाश। इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है और अन्याय कर्त्ताओं का आक्रमण आघात सहना पड़ता है। दोनों ही दृष्टि से धर्म और नीति के समर्थकों को पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आदर्शवादिता का निर्वाह इससे कम मूल्य चुकाये हो नहीं सकता। अस्तु, श्रेय पथ पर चलने वालों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे पहले से ही अपनी स्थिति ऐसी बना लें जिसमें पीछे शिकायतें करने या पछताने की आवश्यकता ही न रहे। यह तैयारी तितीक्षा द्वारा सहन शक्ति विकसित करने के रूप में ही करनी पड़ती है। अध्यात्म मार्ग के पथिक यह जानते हैं कि उन्हें किस कठिन मार्ग पर चलना है। इसके लिए उपयुक्त साहस का सम्पादन, कठिनाइयों से परिचित और अभ्यस्त रहना आवश्यक है। तपश्चर्या से इसी आवश्यकता की पूर्ति होती है।

तितीक्षा ही हमें सुदृढ़ बनाती है

कठिनाइयों से डरकर यदि हिम्मत हार बैठा जाय तो बात दूसरी है अन्यथा प्राणधारी की अदम्य जीवनेच्छा इतनी प्रबल है कि वह बुरी से बुरी परिस्थितियों में जीवित ही नहीं—फलता-फूलता भी रह सकता है।

उत्तरी ध्रुव पर 'ऐस्किमो' नामक मनुष्य जाति चिरकाल से रहती है। वहाँ घोर शीत रहता है। सदा बर्फ जमी रहती है। कृषि तथा वनस्पतियों की कोई सम्भावना नहीं। सामान्य मनुष्यों को उपलब्ध होने वाले साधनों में से कोई नहीं, फिर भी वे जीवित हैं। जीवित ही नहीं परिपुष्ट भी हैं। परिपुष्ट ही नहीं सुखी भी हैं। हम अपने को जितना सुखी मानते हैं वे उससे कम नहीं कुछ अधिक ही सुखी मानते हैं और सन्तोषपूर्वक जीवन-यापन करते हैं। जरा सी ठण्ड हमें परेशान कर देती है पर एक्सिमो घोर शीत में आजीवन रहकर भी शीत से प्रभावित नहीं होते।

जीवनेच्छा जब तितीक्षा के रूप में विकसित होती है और कष्टसाध्य समझी जाने वाली परिस्थितियों से भी जूझने के लिए खड़ी की जाती है तो मानसिक ढाँचे के साथ-साथ शारीरिक क्षमता भी बदल जाती है और प्रकृति में ऐसा हेर-फेर हो जाता है कि कठिन समझी जाने वाली परिस्थितियाँ सरल प्रतीत होने लगें। वन्य प्रदेशों के निवासी—सभ्य शहरी लोगों की तुलना में जितने अभावग्रस्त हैं, उतने ही सुदृढ़ भी रहते हैं। परिस्थिति को अनुकूल बनाने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए पर परिस्थिति के अनुकूल अपने को ढालने की मनस्विता एवं तितीक्षा के लिए भी तत्पर रहना चाहिए।

जीव जगत में यह प्रक्रिया जहाँ भी अपनाई गई है वहाँ दृढ़ता बढ़ी है। पौधों में भी ऐसे साहसी मौजूद हैं जिन्होंने घोर विपरीतता से जूझकर न केवल अपना अस्तित्व कायम रखा है वरन् शोभा, सौन्दर्य की सम्पदा का स्थान भी पाया है।

घोर विपरीत परिस्थितियों में स्वावलम्बी जीवन जीने वाले पौधे वहाँ पैदा होते हैं जहाँ पानी का अभाव रहता है। उनकी आत्म-निर्भरता यह सिद्ध करती है कि जीवन यदि अपनी पर उतर आये-तन कर खड़ा हो जाये तो विपरीत परिस्थितियों के आगे भी उसे पराजित नहीं होना पड़ता।

अमेरिका के मरुस्थल में और दक्षिणी अफ्रीका में पाये जाने वाले कैक्टस इसी प्रकार के हैं। वे जल के अभाव में जीवित रहते हैं। रेतीली जमीन में हरे-भरे रहते हैं और सब को सुखा, जला डालने वाली गर्मी के साथ अठखेलियाँ करते हुए अपनी हरियाली बनाये रहते हैं।

विकट परिस्थितियों के बीच रहने के कारण कुरूप भी नहीं होते वरन् बाग- उद्यानों में रहने वाले शोभा गुल्मों की अपेक्षा कुछ अधिक ही सुन्दर लगते हैं। रेशम जैसे मुलायम, ऊन के गोले जैसे दर्शनीय, गेंद, मुद्गर, सर्प, स्तम्भ, ऊँट, कछुआ, साही, तीतर, खरगोश, अखरोट, कुकरमुत्ते से मिलती-जुलती उनकी कितनी ही जातियाँ ऐसी हैं जिन्हें वनस्पति प्रेमी अपने यहाँ आरोपित करने में गर्व अनुभव करते हैं। पत्तियाँ इनमें नहीं के बराबर होती हैं, प्रायः तने ही बढ़ते हैं पर उनकी ऊपरी नोंक पर ऐसे सुन्दर फूल आते हैं कि प्रकृति के इस अनुदान पर आश्चर्य होता है जो उसने इस उपेक्षित वनस्पति को प्रदान किया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पथरीली और रेतीली भूमि में—असह्य सूर्य ताप के बीच, पानी का घोर अभाव सहते हुए भी यह पौधे जीवित रहते और हरे-भरे बने रहते हैं। इन्हें रेगिस्तान का राजा कहा जाता है। पथरीली भूमि में दूसरे पौधे जीवित नहीं रह पाते क्योंकि वहाँ मिट्टी तो होती नहीं। पौधों के लिए आवश्यक पानी कैसे ठहरे ? पानी के बिना पौधे कैसे जियें ?

कैक्टस पौधों की सचेतना ऐसी है कि वे पानी के लिए जमीन पर निर्भर नहीं रहते। जब वर्षा होती है तब सीधे इन्द्र भगवान से अपनी आवश्यकता भर का पानी माँग लेते हैं और अपनी कोशिकाओं में भर लेते हैं। प्रधानतया तो यह जल भण्डार तने में ही रहता है पर यदि उस जाति में पत्ते निकले तो उसमें भी उसी तरह की जल संग्राहक कोशिकाऐं रहेंगी। यह तने पत्तियों की आवश्यकता भी स्वयं ही पूरी कर लेते हैं। सूर्य नारायण से आवश्यक प्रकाश प्राप्त करते रहने की क्षमता भी अपने में बनाये रहते हैं। तने में भरा हुआ जल भण्डार इतना प्रचुर होता है कि यदि लगातार छः वर्षों तक पानी न बरसे, इन्द्र देव रूठे रहें तो भी उनका एक तिहाई पानी ही मुश्किल से चुक पाता है।

सूर्य का ताप उनकी तरलता को भाप बनाकर उड़ा न ले जाय, इसके लिए उनका सुरक्षा आवरण बहुत मजबूत होता है। तनों का बाह्यावरण मोटा ही नहीं मजबूत भी होता है और उसमें ऐसे एकमार्गी छेद होते हैं जो सूर्य-से प्रकाश तो ग्रहण करते हैं पर अपनी तरलता बाहर नहीं निकलने देते।

कैक्टस जानते हैं कि अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध आप किये बिना गुजारा नहीं। इस दुनिया में उनकी कमी नहीं जो दूसरों का उन्मूलन करके ही अपना काम चलाते हैं। इनके सामने नम्र, सरल बनकर रहा जाय तो वे उस सज्जनता को मूर्खता ही कहेंगे और अनुचित लाभ उठायेंगे। भोले कहे जाने वालों का शोषण इसी प्रकार होता रहा है। वे इस तथ्य से अवगत प्रतीत होते हैं। तभी तो अपनी सुरक्षा के लिए-आक्रमणकारियों के दाँत खट्टे करने के लिए उनने उचित व्यवस्था की हुई है। दूसरों पर आक्रमण भले ही न किया जाय पर अपनी सुरक्षा का इन्तजाम रखने और आक्रमणकारियों को बैरंग वापिस लौटाने की व्यवस्था तो करनी ही चाहिए। कैक्टस यह प्रबन्ध कर सकने के कारण ही इस दुरंगी दुनिया के बीच जीवित है।

कैक्टस के तनों पर नुकीले काँटे होते हैं। वनस्पति चर जाने के लालची पशु उनकी हरियाली देखकर दौड़े आते हैं पर जब काँटों की किलेबन्दी देखते हैं तो चुपचाप वापिस लौट जाते हैं।

इन पौधों की रंग-बिरंगी विभिन्न आकृति-प्रकृति की अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से फिना, मैरी गोल्ड, मिल्क वीड, ओपाईन, पर्सलेन, स्पर्ज, जिकेनियम, डंजी मुख्य हैं। इनमें से कितने ही ऐसे होते हैं जिनकी आकृति सुन्दर प्रस्तर खण्डों जैसी लगती है।

यह पौधे अब सब जगह शोभा-सज्जा के काम आते हैं। राजकीय उद्यानों में, श्रीमन्तों के राजमहलों में, कलाप्रेमियों में इनका बहुत मान है। इन्हें लगाये बिना कोई वनस्पति उद्यान अधूरा ही माना जाता है। सर्वसाधारण में भी इनकी लोकप्रियता बढ़ी है और हर जगह उन्हें मँगाया, सजाया जा रहा है।

सम्भवतः यह इनका दृढ़ता, कठोरता, स्वावलम्बता और तितीक्षा जैसी विशेषताओं का ही सम्मान है।

मनुष्य जितना नाजुक बनता जायेगा उतना ही दुर्बल बनेगा और परिस्थितियाँ उस पर हावी होंगी। किन्तु यदि दृढ़ता, तितीक्षा, कष्ट सहिष्णुता और साहसिकता अपनाये रहे तो न केवल शरीर वरन् मन भी इतना सुदृढ़ होगा, जिसके सहारे हर विपन्नता का सामना किया जा सके।

तप तितीक्षाएँ, जो व्यक्तित्व को प्रखर बनाती हैं

अभ्यस्त ढर्रा अचेतन की गहराई तक उतर कर स्वभाव का अंग बन जाता है। उसे बदलने या छोड़ने में असाधारण साहस और संकल्प के प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है। सुधार परिष्कार का प्रयोजन पूरा करने के लिए इस प्रकार का साहस अपनाये बिना काम नहीं चलता। हलके-पुलके ढंग से कोई आदर्शवादी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा पढ़ी या सुनी तो जा सकती है, पर यह आवश्यक नहीं कि उतने भर से ही परिवर्तन बन पड़े। तर्क, तथ्य और प्रमाण प्रस्तुत करने पर अनौचित्य को बौद्धिक क्षेत्र में अस्वीकार तो किया जा सकता है, पर इतने भर से यह आशा नहीं की जा सकती कि सहमत हुआ व्यक्ति उस प्रकार का आचरण भी करने लगेगा, अभ्यस्त कुसंस्कार परित्याग करने में भी तत्पर हो जायेगा।

देखा गया है कि नशेबाजी के अभ्यस्त समझदारों को समझाने-बुझाने पर निरुत्तर तो हो जाते हैं, पर जब भी संचित कुसंस्कार जोर मारते हैं, तभी उस पुरानी आदत के अनुसार कार्य करने लगते हैं। जिन्दगी भर यही ढर्रा चलता है। मुँह से लगी आदत छूटती ही नहीं। हर आदर्शवादी परिवर्तन पर यही बात लागू होती है। अनौचित्य का समर्थन कोई खुलेआम साहसपूर्वक नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि मर्यादाएँ उत्कृष्टता का ही समर्थन करेंगी। उसमें अपनी आदत और मान्यता का प्रभावशाली समर्थन करते न बन पड़ेगा। इतने पर भी बात जहाँ की तहाँ रहती है। पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियाँ बड़ी हठीली होती हैं। उनकी जड़ें भीतर तक चली जाती हैं। हलके-पुलके मन से उनकी रोकथाम करने पर भी कुछ समय में अपना प्रभाव फिर दिखाने लगती हैं। इस व्यथा से पूरी तरह छुटकारा पाने के लिए लगातार अभ्यास एवं प्रतिरोध की आवश्यकता पड़ती है। इसी को क्रमिक एवं समय-साध्य साधन कहते हैं। इसमें सुधार को लक्ष्य मानना पड़ता है और प्रयास को संकल्पयुक्त बनाना पड़ता है, भले ही वह उपक्रम धीमी गति से ही क्यों न चले।

साधना क्षेत्र में आगे बढ़ने वालों को सप्ताह में एक दिन विशेष साधना के लिए इसीलिए रखना चाहिए। आमतौर से रविवार या गुरुवार का दिन इसके लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है। रविवार प्रखरता पापनाशक वृत्ति के संवर्धन की दृष्टि से तथा गुरुवार पवित्रता संवर्धन, गुरुभक्ति के अभिवर्धन की दृष्टि से; पर यदि असुविधा हो, तो कोई अन्य दिन भी नियत किया जा सकता है। गाँधी जी के मौन का दिवस मंगलवार था। कभी अनिवार्य व्यवधान आ जाता था, तो वे मंगल से पहले या बाद का दिन इस के लिए रख लेते थे। अनिवार्य कारण होने पर दूसरे और भी दिन नियत कर सकते हैं और उस दिन विशेष कठिनाई आ जाने पर उसकी पूर्ति जल्दी ही अगले दिन कर सकते हैं।

इस साप्ताहिक विशेष व्रत में उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्वाध्याय-यह चार साधनाएँ प्रमुख मानी गई हैं। उपवास जिस स्तर का सध सके, उतना साधना चाहिए। अच्छा तो यह है कि पूरे दिन जल पीकर रहा जाय। आवश्यकतानुसार उसमें नीबू, शहद जैसा कुछ मिला लिया जाय। इतना न बन पड़ने पर दूध, छाछ, रस, रसा आदि प्रवाह पदार्थ लेकर काम लिया जा सकता है। उतना भी न बन पड़े तो अस्वाद व्रत तो रखना ही चाहिए। बिना नमक, शक्कर का आहार लिया जाय। दोनों समय भोजन न करके एक समय से काम चलाया जाय। यह साप्ताहिक व्रतशीलता का प्रथम चरण है।

जिह्वा का संयम प्रथम संयम है। स्वास्थ्य के बिगड़ने का प्रमुख कारण यही है। स्वाद लोलुपता में मनुष्य मँहगे और पकाने में बहुत झंझट वाले पदार्थ आवश्यकता से अधिक मात्रा में खाते रहते हैं और स्वास्थ्य सम्पदा पर कुल्हाड़ा चलाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त "जैसा खाए अन्न वैसा बने मन" वाली उक्ति भी अक्षरशः चरितार्थ होती है। रजोगुणी, तमोगुणी आहार चिन्तन और चरित्र को प्रभावित करता है और व्यक्तित्व के स्तर को गिराता है। इसलिए अध्यात्म मार्ग पर पदार्पण करते हुए प्रथम प्रयास यह पूरा करना होता है कि इन्द्रियों में प्रधान मानी जाने वाली जिह्वा की ललक-लिप्सा को नियोजित किया जाय। इतना बन पड़ने पर अन्य इन्द्रियाँ भी कुमार्ग अपनाना छोड़ती चली जाती हैं। सप्ताह में एक दिन निराहार रहना या पेट को आंशिक विश्राम देना स्वस्थता को सुरक्षित रखने वाला प्रथम नियम है। इससे मनोनिग्रह में भी सरलता बन पड़ती है।

जिह्वा का दूसरा संयम है-मौन। उसे सप्ताह में एक बार तो अपनाना ही चाहिए। भले ही वह अधिक समय न बन पड़ने पर न्यूनतम दो घण्टे जितनी ही क्यों न हो। उस समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संकेतों से वार्तालाप करना भी निसिद्ध है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि मौन वाला समय एकान्त में ही बीते। पूर्ण एकान्त न बन पड़ने पर साथियों को यह बता देना चाहिए कि वे उस समय छेड़खानी न करें। शोर-शराबा करके ध्यान न बटायें।

इस मौन काल में अपने वार्तालाप में बन पड़ने वाली अशिष्टता की, अनैतिकता की समीक्षा की जाय और जो दोष बन पड़ते हैं उन्हें रोकने की योजना बननी चाहिए। सार्थक सही, सद्भावों की समर्थक चर्चा ही वाणी को मधुर एवं सशक्त बनाती है। इस सम्बन्ध में जो सुधार, परिवर्तन आवश्यक हों उसके लिए इस मौन काल में ही योजना बनाते रहा जाय।

इसी अवधि में अभक्ष्य भक्षण की आदत से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों पर भी विचार करना चाहिए। साथ ही यह निश्चय भी करना चाहिए कि आहार में सात्विकता का समावेश करने के लिए किन नियमों, निर्धारणों को बनाया-अपनाया जाना चाहिए। संयम के लाभ और उच्छृंखलता के दुष्परिणामों पर विस्तृत विचार करते रहा जाय। उसके कल्पना चित्रों को चेतना के सम्मुख लाया जाता रहे तो विचारों से विचार काटने के सिद्धान्त की पूर्ति बन पड़ती है। दुश्चिन्तन और दुराचरण से छुटकारा पाने का प्रधान उपाय यह है कि उनकी प्रतिरोधी विचारधारा को चिन्तन-क्षेत्र में उभारने और संयमशीलता अपनाने के लाभों पर गम्भीरतापूर्वक देर तक विचार करते रहा जाय। इस प्रकार अनौचित्य की आदतों एवं मान्यताओं से छुटकारा पाने की पृष्ठभूमि बनती है। संयम को तप कहा गया है। सर्वप्रथम यह तपश्चर्या जिह्वा संयम से आरम्भ होनी चाहिए। भक्षण और वचन दोनों में ही सात्विकता के अधिकाधिक समावेश की योजना बनानी और चेष्टा करनी चाहिए। उपवास और मौन वाला समय इसी प्रकार के चिन्तन की बहुलता से बीतना चाहिए।

तीसरा तप है-ब्रह्मचर्य। साप्ताहिक तपश्चर्या के दिन यौनाचार से सर्वथा बिरत रहा जाय। साथ ही कामुक विचारणा और कुदृष्टि की चंचलता पर भी प्रतिबंध लगाना चाहिए। सभी जानते हैं कि ब्रह्मचर्य मानसिक सशक्तता और सद्भावना बढ़ाने के लिए अचूक उपाय है। जीवन रस को जो जितना अधिक निचोड़ता है, वह उतना ही अधिक खोखला बनता है। दाम्पत्य जीवन का अर्थ, एक-दूसरे की स्वास्थ्य संतुलन पर आक्रमण करते रहने की छूट नहीं है। स्नेह, सद्भाव और सहकार के आधार पर दाम्पत्य जीवन को सहज ही सरस, सुदृढ़ और भाव, सम्पन्न बनाया जा सकता है। इस तथ्य को गहराई तक हृदयंगम करते रहने के लिए शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। क्रिया और विचारणा के बीच समुचित तालमेल रहना चाहिए।

यहाँ कामुक चिन्तन और कुदृष्टि की भयंकरता भी समझने ही योग्य है। मानसिक पाप भी आधे पाप होते हैं। अचिन्त्य चिन्तन से भी व्यक्ति अपराधी बनता है भले ही वह सरकारी कानूनों की पकड़ से बच जाता है। इसलिए माता-पुत्र की, बहिन-भाई की, पिता-पुत्री की, धर्मपत्नी और धर्मपति की भावना ही नर-नारी एक दूसरे के प्रति विकसित करें। दृष्टि में भी इसी प्रकार की पवित्रता आती जाय तभी वास्तविक ब्रह्मचर्य सधता है, अन्यथा "मुख में राम बगल में छुरी" रहने की तरह पाखंडी प्रवंचना ही बन पड़ती है। साप्ताहिक ब्रह्मचर्य में कायिक ही नहीं, मानसिक चिन्तन की पवित्रता का भी समावेश रहना चाहिए और उस एक दिन की चिन्ह पूजा न मानकर भावी जीवन की एक सुरक्षित रीति-नीति बना लेने का प्रयास करना चाहिए। दाम्पत्य जीवन में भी यथासम्भव इस व्रतशीलता का अधिकाधिक लम्बे समय का अनुबन्ध करना चाहिए। इस वर्जना के परित्याग से दोनों ही पक्षों की असाधारण हानि है। यह तथ्य गहराई से समझ लेने पर दृष्टि की भावना और शरीर की संयमशीलता निभती रहने में सरलता पड़ती हैं। साप्ताहिक ब्रह्मचर्य वाले दिन मानसिक चिन्तन में भी अधिकाधिक सात्विकता के समावेश करने का विचार चलते रहना चाहिए।

चौथा सरल तप है-स्वाध्याय। स्वाध्याय अपने सम्बन्ध में निरीक्षण-परीक्षण करते रहने और सुधार, परिष्कार की योजनायें बनाते रहने को भी कहते हैं। वह तप निजी चिन्तन-मनन से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी बन पड़ता है। वैसे मोटे तौर से जीवन समस्याओं के आदर्शवादी समाधान का पक्षधर अध्ययन विचार-विनिमय भी इसी प्रयोजन की पूर्ति करता है। सद्ग्रन्थों का पठन और मुनि-मनीषियों के सत्संग से भी वह प्रयोजन पूरा होता है। इनमें से जो भी जिससे जिस प्रकार बन पड़े, उसके लिए समय निकालना चाहिए।

स्वाध्याय को आत्मिक आहार माना गया है। उसकी भी पेट भरने के लिए भोजन के प्रबन्ध करने की तरह ही आवश्यकता है। साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा इन चारों को आध्यात्मिक जीवन का अविछिन्न अंग माना गया है। इनमें अधिक सरल और अधिक आवश्यक है-स्वाध्याय। इसे बीजारोपण की संज्ञा दी गई है। जीवन को महामानव स्तर का कल्पवृक्ष बनाने में सफलता इसी आधार पर बनती है। इसलिए प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि स्वाध्याय को भी योगाभ्यास का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए उसे दिनचर्या का एक अंग माना जाय। कम से कम इतना तो अनिवार्य ही होना चाहिए कि सप्ताह में एक दिन इस प्रयोजन के लिए सुनिश्चित रखा जाय। उसमें जितना अधिक समय मनोयोगपूर्वक लगे, उसे लगाने के लिए अधिकाधिक समय निकालना चाहिए।

साधना प्रसंग में अनेक तप-तितीक्षाओं का वर्णन है। तपाने से धातुएँ शुद्ध होती हैं। कच्ची मिट्टी पक्की बनती है। तपाने से धातुओं की गलाई-ढलाई होती रहती है। गरम करने से ही भोजन पकता है। इन उदाहरणों की तरह जीवन सत्ता को संयम और सेवा की अग्नि में पकाया जाता है। सोने के खरे-खोटे होने की जानकारी कसौटी पर कसने और आग पर तपाने से ही संभव होती है। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति की बलिष्ठता, साहसिकता एवं उत्कृष्टता-तप तीतिक्षा का आश्रय लेने पर ही प्रखर होती है। तपस्वी ही ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी बनते हैं। इसलिए शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तपों में से जिनसे जो बन पड़े, सध सके, उन्हें उनके लिए प्रयत्नरत रहना चाहिए। साधना, स्वाध्याय, संयम इसलिए नियमित किया गया है।

ऊपर शारीरिक और मानसिक तपश्चर्याओं का ही समावेश है। पाँचवी तितीक्षा सेवा-धर्म अपनाने की उदारता का, परमार्थ-परायणता का परिचय देने की है। उसे दानशीलता भी कह सकते हैं। श्रमदान-समयदान की तरह अंशदान भी पुण्य-परमार्थ परायणों में गिने जाते हैं। होना तो यह चाहिए कि दैनिक आय का एक अंश नित्य सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए निकालने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा जाय पर इतना न बन पड़े तो इतना तो करना ही चाहिए कि सप्ताह में एक दिन की आमदनी या जितना न्यूनाधिक बन पड़े उतना धन सद्ज्ञान सम्वर्धन के लिए निकालते रहना चाहिए। संकटग्रस्तों की सामयिक सहायता भी आवश्यक होती है, पर सब से बड़ा पुण्य-परमार्थ ज्ञानयज्ञ ही माना गया है। उसका स्वरूप प्रत्यक्ष न दीख पड़ने और परिणाम तत्काल सामने न आने पर भी उसकी गरिमा हर दृष्टि से उच्चस्तरीय ही मानी जाती रही है। धनदान भी सेवा क्षेत्र में श्रमदान की तरह महत्वपूर्ण है। साप्ताहिक अंशदान को योग साधना का पाँचवा व एक प्रमुख पक्ष माना जाता है। यह शारीरिक, मानसिक के अतिरिक्त साधन क्षेत्र की पाँचवीं तपश्चर्या है। इन सभी को समान महत्व मिलना चाहिए, तभी व्यक्ति की आत्मिक प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है।

मौन साधना की महिमा

प्रकृति में सदैव मौन का साम्राज्य रहता है। पुष्प-वाटिका से हमें कोई पुकारता नहीं, पर हम अनायास ही उस ओर खिंचते चले जाते हैं। बड़े से बड़े वृक्षों से लदे सघन वन भी मौन रहकर ही अपनी सुषमा से सारी वसुधा को सुशोभित करते हैं। धरती अपनी धुरी पर शान्त-चित्त बैठी सबका भार सम्भाले हुए है। पहाड़ों की ध्वनि किसी ने सुनी नहीं, पर उन्हें अपनी महानता का परिचय देने के लिए उद्घोष नहीं करना पड़ा। पानी जहाँ गहरा होता है, वहाँ अविचल-शान्ति संव्याप्त होती है।

मौन की क्षमता वस्तुतः असीम है। महर्षि रमण के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे मूक भाषण देते थे। आश्रम पर आदमी तो क्या पशु-पक्षी भी आकर सदा उनके चारों ओर मँडराते रहते थे। हिरन और शेर एक साथ उनके सत्संग का लाभ लेकर चुपचाप चले जाते। यह मौन साधना की चरम परिणति है। एकाकी,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मौन बने रहकर बड़ी से बड़ी सृजनात्मक कल्पनाओं को मूर्त्त रूप दिया जा सकता है तथा अपार आनन्द की अनुभूति की जा सकती है। वाणी में तेज एवं ओज, शान्ति बनाये रखने पर ही आता है और यह सम्भव है मात्र मौन साधना से। संचित कमाई को अच्छे प्रयोजन में कभी-कभी खर्च करने पर काम तो सफल होता ही है, आत्मिक शान्ति भी प्राप्त होती है। ठीक वैसे ही मौन रहकर वाणी को नियन्त्रित किया जा सकता है। विद्वानों ने शान्ति को 'जीवन का हीरा' जिसे कभी नष्ट नहीं होने देना चाहिए तथा वाणी से अभिव्यक्त एक-एक शब्द को मोती की संज्ञा दी है। हमें उसी रूप में इसे खर्च करना चाहिए। वाणी मौन के अभ्यास से ही प्रखर होती तथा प्रभावोत्पादक बनती है।

साधना काल में मौन का विशेष महत्त्व बताया गया है। मौन रहकर ही आत्मोन्मुख होकर आत्मदर्शन—ईश्वर दर्शन सम्भव है। श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने के लिए मौन रहकर शक्ति अर्जित करना परम आवश्यक है। व्यर्थ की बकवाद-बहस से अपनी शक्ति नष्ट करने की अपेक्षा उसे संचित कर विशेष प्रयोजन सिद्ध किये जा सकते हैं।

व्यावहारिक जीवन में भी मौन विशेष महत्त्वपूर्ण है। जीवन मार्ग में आयी बाधाओं को मौन रहकर ही चिन्तन कर टालना सम्भव हो पाता है। "सौ वक्ताओं को एक चुप हराने" वाली बात बिल्कुल सही है। व्यर्थ की बकवाद में अपनी ही शक्ति नष्ट होती है, यह स्पष्ट जानना चाहिए।

योगीराज भर्तृहरि ने मौन को ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों का आभूषण बताया है। कबीर कहते हैं—

बाद विवादे विषर्धना, बोले बहुत उपाध।

मौन गहे सबकी सहं, सुमिरै नाम अगाध।।

एमर्सन कहते थे—"आओ ! हम मौन रहने का प्रयास करें ताकि फरिश्तों की कानाफूसी सुन सकें।"

आध्यात्मिक साधनाओं में मौन का अपना विशेष महत्त्व है क्योंकि उसके सहारे अन्तर्मुखी बनने का अवसर मिलता है। निरर्थक चर्चा में जो शक्ति का अपव्यय होता है, उससे बचने की स्थिति सहज ही बन जाती है।

पर साथ ही यह और भी समझा जाना चाहिए कि मौन के समय विचारों की सांसारिक प्रयोजनों में भगदड़ रुकनी चाहिए अन्यथा वह विडम्बना मात्र बनकर रह जायगी। यों चिन्तन का सर्वथा अभाव होना तो सहज नहीं, पर मौन काल में इतना तो सरलतापूर्वक हो सकता है कि इस अवधि में आत्म-चिन्तन ही मुख्य विषय रखा जाय। आत्मा और शरीर की भिन्नता अनुभव करने के साथ यह भी सोचना चाहिए कि मानवी शक्तियों का भण्डार अन्तःक्षेत्र में ही विद्यमान है, उसे उपलब्ध करने के लिए आत्म परिष्कार की कार्य विधि निर्धारित करने में चिन्तन को नियोजित किया जा सके तो निश्चय ही मौन साधना का समुचित प्रतिफल प्राप्त होता है।

यहाँ इतना और भी ध्यान में रखना चाहिए कि मौन को आरम्भ में थोड़े समय से शुरू किया जाय और फिर कुछ-कुछ विराम देते रह कर उसे आगे बढ़ाया जाय। एकाएक लम्बा मौन साधने से पीछे उसका निर्वाह कठिन हो जाता है।

शरीर को देव मन्दिर बनायें

शरीर क्या है ? इसकी कितनी ही व्याख्याएँ हो सकती हैं। प्रत्यक्षतः यह मल-मूत्र की गठरी है। श्वाँस स्वेद आदि के द्वारा हर घड़ी दुर्गन्ध बाहर निकलती रहती है। इसे हर घड़ी स्वच्छ न रखा जाय तो थोड़ी समय में ही इस गन्दगी के अम्बार लग जाते हैं। बीमार पड़ने की नौबत आ जाती है। दूसरों को समीप बिठाने या बैठने में घृणा लगने लगती है।

दूसरे अर्थों में इसे देखा जाय तो वह भगवान का सर्वोपरि उपहार है। इससे बहुमूल्य वस्तु जीवधारी को देने के लिये उनके पास और कोई है ही नहीं। यह स्वर्ग नसैनी है और वैतरणी की मझधार में डुबाने वाली नाव भी। सदुपयोग करने पर मनुष्य महामानव, देवता या ऋषि बन सकता है। दुरुपयोग करने पर प्रेत, पिशाच, दैत्य-दानव बन सकता है। नासमझों के लिए यह इतना भारी संकट है, जिसे घसीटना दुष्कर पड़ता है। सुयोग्यों के लिए यह पुष्पक विमान है जिस पर बैठकर लोक-लोकान्तरों की सैर करते हुए ब्रह्मलोक तक जाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य शरीर की प्रशंसा में कहा जाय तो बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसका दृश्य-कलेवर उन पाँच तत्वों से मिलकर बना है जिन्हें पाँच देवता कहते है। अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी तथा आकाश। इन देवताओं की देवपूजन के पुण्य-प्रयोजन में सर्वप्रथम पूजा होती है। इन्हीं से सारा संसार बना है। इन्हीं से प्राणियों, वनस्पतियों और पदार्थों की संरचना हुई है। इसी से इन्हें सृष्टि का कर्त्ता कहा गया है। यह पाँचों मानव शरीर में प्रत्यक्ष उपस्थित हैं। इसलिए इसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है।

मानवी चेतना की संरचना पाँच प्राणों से हुई है। इन्हें तत्व देवताओं में उच्च श्रेणी का कहा गया है। इन देवताओं के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं।

सदा भवानी दाहिनी, सम्मुख रहै गणेश।

पाँच देव रक्षा करैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भवानी और गणेश यह पाँच प्राण हैं। जीव चेतना का निर्माण, संचालन इन्हीं के द्वारा होता है। पाँच तत्व और पाँच प्राण मिलकर दस देवता हुए। इन सभी को मिलाकर दस दिग्पाल भी कहा जाता है। यह मानव काया की श्रेष्ठता हुई। सूक्ष्म शरीर में कुण्डलिनी, सहस्रार, ब्रह्मरन्ध्र, षट्चक्र, ज्ञानेन्द्रियाँ, उपत्यिकाएँ बताई गई हैं। यह शक्तियों की, सम्पदाओं विभूतियों की भाण्डागार हैं। जब तक यह प्रसुप्त स्थिति में तब तक मृतक मूर्च्छित मानी गई हैं। किन्तु जब यह जागृत हो जाती है तब इनके चमत्कार वरदान देखते ही बनते हैं। इनमें से जो जिन्हें सिद्ध कर लेता है वह उतना ही बड़ा सिद्ध पुरुष बन जाता है। साथ ही यह भी है कि जो दुर्व्यवहार द्वारा जिसे जितना क्रुद्ध कर देता है उसके देवता भी उतने ही अधिक क्रुद्ध हो जाते हैं और इस क्रोध के कारण मनुष्य स्वयं दुःख पाता है, बदनाम होता है, तथा दूसरों को दुःख देने, गिराने की दृष्टि से पशु-पिशाच एवं दैत्य-दानवों की गणना में गिना जाता है। हर हालत में मानवी सत्ता असाधारण है, यह मनुष्य के अपने हाथ की बात है कि इन्हें जिस भी प्रयोजन में चाहे व्यवहार करे। उत्थान या पतन में से जो जिसे भी चुनना चाहे, चुन सकता है। इस रूप में भगवान का वरदान इतना बड़ा मिला है कि अपने सौभाग्य और भगवान के अनुग्रह को जितना भी सराहा जाय उतना ही कम है।

काय-कलेवर में सन्निहित देवताओं में से इन पंक्तियों में एकाकी चर्चा विशेष रूप से की जा रही है। इसका नाम है 'वाक्' देवता। बोलचाल की भाषा में इसे जिह्वा कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों की गणना करते समय इसे रसना और वाणी दो की संख्या में गिना जाता है। यह इसका दुहरा उपभोग है, जबकि अन्य इन्द्रियों का एक-एक प्रयोजन ही गिना जाता है। जिह्वा अर्थात् भोजन का प्रयोजन पूरा करने वाले—स्वादेन्द्रिय-रसना। दूसरा बोलचाल में काम आने वाली वाक्-वाणी।

अध्यात्म शास्त्रों में जिव्हा को सरस्वती कहा गया है। विशुद्ध होने पर जब यह बोलती है तो अपने लिए वशीकरण मन्त्र का काम देती है। जो भी इसके परिष्कृत बचन सुनता है—वशीभूत हो जाता है। इसके स्वर सरस्वती की वीणा के समान हैं, जो अपने को भी और दूसरों को भी मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं। साथ ही ज्ञान की वर्षा भी करते हैं। सरस्वती ज्ञान के वरदान देती है। यह परिष्कृत जिव्हा का काम है कि जो भी सम्पर्क में आवे। जो भी अमृत बचनों को सुने वह श्रेय पथ पर चले, उत्कर्ष की प्रेरणा प्राप्त करे।

धन्वन्तरि का अमृत कलश जिव्हा में सन्निहित है। यह सौम्य, सात्विक, सीमित आहार करती है तो स्वास्थ्य के सुरक्षित रखने का उत्तरदायत्वि निभाती है। जिसकी जिव्हा वश में है, उसका स्वास्थ्य बिगाड़ने जैसा कोई भय नहीं है। प्रत्येक प्राणी अपना आहार ताजे हरे रूप में उदरस्थ करता है। पकाने की पाक विधा को विषवत् मानकर उससे दूर रहता है। ऐसा तो कोई भी जीवधारी इस पृथ्वी पर नहीं जो अपने आहार में मिर्च, मसाले, खटाई, मिठाई चीजें बाहर से मिलाता हो। तलता, पकाता, भूनता हो। जिव्हा को चटोरी बना देने पर ही वह नशेबाजों की तरह अभक्ष्य माँगने लगती है। उसकी टेब न बिगाड़ी जाय तो फल, शाक या अंकुरित धान्य उसके लिए समुचित पुष्टाई प्रदान करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसुप्ति से जागृति की ओर ४.८५

हैं। न पेट को खराब होने देते हैं और न अपच के कारण सड़न उत्पन्न होने--पाचन तन्त्र खराब होने और बीमारियों का सिलसिला चल पड़ने जैसा अनर्थ नियोजित करते हैं।

यदि पाश्चात्य विकासवाद को ही सही मान लिया जाय तो मनुष्य बन्दर की जाति का है। बन्दर न कभी मसालों की माँग करता है और न तलने भूनने का अनर्थ करता है। फलस्वरूप जो भी रूखा-सूखा प्राकृतिक आहार मिल जाता है उसी के बलबूते कुदकता-फुदकता फिरता है। मनुष्य की सबसे बड़ी शत्रु पाक विद्या है। यदि वह उसे भुला दे तो स्वास्थ्य की दृष्टि से नव जीवन प्राप्त करे। जिस प्रकार नशेबाज की आदत बिगाड़ देने, तरह-तरह के स्वाद माँगने का चटोरापन अपनाने के कारण ही मनुष्य दुर्बलता, बीमारी तथा अकाल मृत्यु का ग्रास बनता है। जिव्हा की आदत-बिगाड़ देना उसके साथ अत्याचार करना है।

इसी प्रकार वाणी की बात है। उससे नम्रता, विनयशीलता, सज्जनता और मिठास भरे बचन बोले जायँ तो कलह का प्रश्न ही न उठे। आये दिन के झगड़े झंझट खड़े न हों। लड़ाई झगड़े के पीछे वास्तविक कारण तो बहुत कम होते हैं। जो होते हैं, वे समझदारी भरे विचार विनिमय से आसानी के साथ सुलझाये जा सकते हैं। कलह का प्रधान कारण कटु भाषण ही है। अपना अहंकार जताना और दूसरे का सम्मान गिराना, यही वह कारण है जिसके कारण मनुष्य दूसरों की दृष्टि में गिरता है और कोप का भाजन बनता है।

कटु बचन विष वृक्ष की तरह है जिस पर बिच्छू के डंक जैसे काँटे लगते हैं। छाया में बैठने से खुजली मचती है और फल-फूल प्राण घातक ही होते हैं। निर्दोष होते हुए भी कटुवचन बोलने वाले को ही सब लोग दोषी ठहराते हैं। उसके साथ कोई सहानुभूति नहीं बरतता।

वाणी का गुण एकमात्र मिठास ही नहीं यह भी है कि जो कहा जाय सच्चाई और भलाई से जुड़ा हुआ हो। झूठे, छलयुक्त, दूसरों को गलत सलाह देने वाले और पतन के मार्ग पर धकेलने वाले बचन मीठे होते हुए भी त्याज्य हैं। वाणी को सरस्वती कहा गया है। उसकी झंकार सितार जैसी, कला मोर जैसी होनी चाहिए। साथ ही जो कहा जाय सार्थक, ऊँचा उठाने वाला और यथार्थता युक्त होना चाहिए। गपबाजी, दिल्लगीबाजी, मखौल जैसे दुर्गुण वाणी में नहीं ही मिलने चाहिए।

जिस प्रकार अन्य देवताओं की साधना करके उनसे वरदान प्राप्त किये जाते हैं उसी प्रकार सरस्वती की प्रतिनिधि जिव्हा से भी सात्विक अस्वाद भोजन की और मधुर हितकारी वचन बोलने की साधना करनी चाहिए। जो ऐसी साधना कर लेते हैं वे उसका प्रत्यक्ष वरदान प्राप्त करते हैं। यही बात शरीर में अवस्थित अन्य देवताओं की साधना के सम्बन्ध में भी है।

ऋतु प्रभाव के सहन का अभ्यास डालें

शरीर में यों प्रतिकूलताओं को सहन करने की एक सीमा तक सहन शक्ति होती है। उसी के सहारे परिवर्तित ऋतुओं का दबाव किसी प्रकार सहन किया जाता है। यह क्षमता हर किसी में पाई जाती है, पर अभ्यास से वह बढ़ भी सकती है।

कई प्राणियों की बनावट ही ऐसी होती है जो कड़े ग्रीष्म या शीत का बढ़ा-चढ़ा प्रभाव सुगमतापूर्वक सहन कर सकें। ध्रुव प्रदेशों की शीतलता सर्वविदित है। वहाँ का मौसम अधिकतः शून्य से काफी नीचे रहता है। मध्यवर्ती प्रदेशों के निवासी वहाँ सामान्य स्थिति में जीवित नहीं रह सकते हैं। विशेष वस्त्र आच्छादनों या शीत संरक्षण का ही प्रबंध करके जा सकते हैं। ऊँचे पर्वत की हिमाच्छादित चोटियों पर चढ़ने वाले दुस्साहसी अपने साथ इतनी ताम-झाम लेकर चलते हैं जो उनके शरीर से कई गुनी भारी होती है।

उत्तरी ध्रुव में चिर अतीत से रहती आई ऐस्किमो जाति बर्फ की सुरंगों में चर्बी के अलाव जला कर उसी से सहने योग्य तापमान बना लेती है। उस क्षेत्र में पाये जाने वाले रेनडियर कुत्ते, सील, ह्वेल आदि की संरचना ही ऐसी होती है कि वे गहन शीत के बीच भी क्रीड़ा कल्लोल करते रहते हैं और अपनी माँदों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकलकर गंध के सहारे भोजन भी प्राप्त कर लेते हैं। दक्षिणी ध्रुव के बिना पंख वाले पक्षी पेंगुइन तथा चींटे भी इस असह्य शीत के बीच अपना जीवनयापन कर लेते हैं।

हिमाच्छादित प्रदेशों में भालू और बकरे भी अपने घने बालों के सहारे शीत से निपट लेते हैं। चूहों के छोटे बाल होते हुए भी वे उसमें इतनी गर्मी धारण किये रहते हैं कि बर्फ पर मीलों लम्बी दौड़ लगाकर भोजन तलाश कर सकें।

अजगर और भालू अपनी संचित चर्बी के सहारे उस पूरी ऋतु को सोते हुये गुजार देते हैं। गुफाओं में अपेक्षाकृत शीत का प्रभाव कम पहुँचता है। ऐसा ही कोई उपयुक्त स्थान तलाश करके उसी में सो जाते हैं। बिना कुछ खाये पिये मौसम भर गहरी नींद सोते रहते हैं। उठते तब हैं जब ऋतु बदलकर सहन करने योग्य तापमान वाली स्थिति पर पहुँच जाती है। ठण्डक के दिनों में मनुष्यों एवं पशु पक्षियों को भी गहरी नींद आती है। उन दिनों लम्बी रातें होती भी इसी प्रयोजन के लिए है। अधिक देर सोने की सुविधा से भोजन ठीक पचता है। इतना ही नहीं कपड़े ओढ़कर जो बचाव किया जाता है, उससे उससे अभाव की पूर्ति भी हो जाती है जो शीत की कँपकँपी शरीर को पहुँचती है।

कुछ अंग घोर शीत में भी खुले रहते हैं या रखने पड़ने हैं जैसे—चेहरे का अधिकांश भाग खुला रखना पड़ता है। मुख, नाक, कान, आँखें आदि ऐसे अवयव हैं जिन्हें ढँक देने पर वे अपना काम ठीक तरह नहीं कर सकते। इसी प्रकार काम करने के लिए हाथों और चलने के लिए पैरों को भी प्रायः खुला ही रखना पड़ता है। यों पैरों में जूते और हाथों में मोजे पहनने का भी रिवाज है। फिर भी हलचलों के बीच उनके भीतर किसी न किसी अंश में हवा पहुँचती रहती है। शीत सहन के लिए विवश इन अंग 'अवयवों' की त्वचा में रक्त वाहिनियों का एक ऐसा जाल होता है कि अनुपात से अधिक सर्दी गर्मी को भीतर प्रवेश नहीं करने देतीं या उनके प्रभाव को निरस्त कर देती हैं।

ऋतु प्रभावों को सहन करने की सीमा तक पहुँचते रहने वाले व्यक्ति या प्राणी अपने भीतर इतनी जीवनी शक्ति अर्जित कर लेते हैं कि उन पर विपरीत प्रभाव पड़ने की स्थिति नहीं आ पाती। किन्तु जो लोग अपने को सर्दी-गर्मी से बचाते रहते हैं, वातानुकूलित घरों में बन्द रहते हैं, उनकी सहन शक्ति घट जाती है और वे कठोरता प्रतिकूलता सहन करने की स्थिति में नहीं रहने। उन पर मौसम के बदलाव आदि का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे ही लोगों पर जाड़े के दिनों में जुकाम, खाँसी, सिर-दर्द, निमोनिया आदि जल्दी-जल्दी आक्रमण करते हैं। उन्हें गर्मी भी सहन नहीं होती। लू मारने, सिर दर्द करने रक्त चाप बढ़ जाने की शिकायतें बढ़ जाती हैं। इतना ही नहीं ठण्डा और गरम पानी भी उन्हें प्रतिकूल पड़ता है। उन सबके प्रभाव से वे अनायास ही प्रभावित हो जाते हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो गर्मी की तुलना में सर्दी मनुष्य के लिए कहीं अधिक उपयोगी होती है। ठण्डे देशों के निवासी मजबूत भी होते हैं और बलिष्ठ, दीर्घजीवी भी, जबकि गरम क्षेत्र में जन्मे लोगों के रक्त माँस का जलीय अंश अनायास ही कम हो जाता है तथा गरम और सीलन भरे क्षेत्रों के लोग मलेरिया, फील पाँव, कुष्ठ गलगंड जैसे रोगों से बड़ी संख्या में ग्रसित पाये जाते हैं। जिन्हें स्वास्थ्य संरक्षण और दीर्घजीवन अभीष्ट हो, उन्हें आजीविका की न्यूनाधिकता को ध्यान में न रखते हुए ऐसे प्रदेश में निवास जमाने की व्यवस्था सोचनी चाहिए जहाँ वृक्ष वनस्पतियों का बाहुल्य हो, जलवायु का सन्तुलन शीतलता के पक्ष में ढलता हो। जिस प्रकार हिम-प्रदेशों के लोग बर्फ पड़ने लगने पर नीचे मैदानी क्षेत्रों में उतर आते हैं, उसी प्रकार गरम क्षेत्रों के लोगों को भी चाहिए कि वे भी कठिन दिनों की विभीषिका से बचने के लिए अपना स्थान परिवर्तित कर लें।

हिमालय क्षेत्र में अध्यात्म प्रयोजनों की पूर्ति के लिए वहाँ की शीतलता-अनुकूलता एवं सुविधा उत्पन्न करती है। चित्त की चंचलता घटती है और मन की शान्ति एवं एकाग्रता बढ़ती है। वासना और तृष्णा का दौर एक प्रकार की मानसिक उत्तेजनाओं का बाहुल्य ही है। उसकी अभिवृद्धि उपासना प्रयोजनों में विघ्न डालती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गर्म क्षेत्रों में मक्खी-मच्छर, कीड़े-मकोड़ों का ही बाहुल्य नहीं होता, सड़न भरी भाप भी उठती रहती है जो नासिका द्वार से शरीर में पहुँच कर विषाक्तता का अनुपात बढ़ाती है। ऐसी दशा में सामान्य स्तर का स्वास्थ्य बनाये रखना तक कठिन पड़ता है। उसके बढ़ने, सुधरने की तो आशा अपेक्षा की ही कैसे जाय ?

अनुकूल कार्यों में से प्रत्येक के लिए शीत ऋतु का चयन करना चाहिए। विवाह-शादियाँ भी प्रायः इन्हीं दिनों होते हैं। चुनाव, दंगल, सभा-सम्मेलन भी इन्हीं दिनों में उपयुक्त पड़ते हैं क्योंकि यह वह समय है जिसमें मानसिक सन्तुलन और विचार प्रक्रिया ठीक काम करती और उपयुक्त निष्कर्ष निकालती है। साधना उपचार हेतु भी यही ऋतु सर्वोत्तम मानी गयी है।

जिनके लिए स्थान बदलना सम्भव नहीं है, उन्हें इतना तो करना ही चाहिए कि हर मौसम के प्रभाव को एक सह्य सीमा तक अभ्यास में उतारते रहें, ग्रीष्म की अधिकता जहाँ रक्त में उबाल लाती हैं, फोड़े, फुंसी आदि उत्पन्न करती हैं, वहाँ यह भी होता है कि मन उद्विग्न, विपन्न और तनाव की स्थिति में रहने लगे। शीत ऋतु में कफ-खाँसी का प्रकोप तो होता है। जुकाम जैसी शिकायत भी बढ़ जाती है। पर हृदयाघात, रक्तचाप, पक्षाघात सरीखे भयानक आघातों से शरीर की रक्षा अनायास ही होती रहती है। विचारशीलता बढ़ती है और मस्तिष्कीय कार्यों को अधिक ऊँचे स्तर पर अच्छी तरह कर पाना सम्भव हो जाता है। ग्रीष्म की तुलना में शीत की महिमा अपेक्षाकृत कहीं अधिक है।

शीत की शक्ति समझें और उससे लाभ उठायें

ताप की शक्ति बहुत दिनों से विदित है। अग्नि के आविष्कार ने मानव जीवन को जो सुविधाऐं प्रदान कीं, वे एक-एक कदम आगे ही बढ़ती चली आ रही हैं। अग्नि के बाद बिजली, बिजली के बाद अणु शक्ति। इसके बाद अन्तिम शक्ति का स्रोत क्या होगा, इस तथ्य पर विचार करते हुए वैज्ञानिकों की दुनिया यह सोच रही है कि मानव जिस सत्ता को हाथ में लेकर सर्व सत्ता-सम्पन्न हो जायगा उसका नाम है—शीत।

शीत भी कोई शक्ति है। यह कहने और सुनने में आश्चर्यजनक लगता है पर वस्तुतः बात ऐसी ही है। जिस प्रकार अग्नि, विद्युत, अणु आदि शक्तियों का इन दिनों उपयोग करके आदिम मनुष्य की तुलना में आज का सभ्य मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच गया। उसी प्रकार आज की तुलना में भावी शीत युग का मानव प्राणी-दैवी—दानवी या न जाने किस नाम से पुकारी जाने वाली अद्‌भुत शक्ति का स्वामी बनकर रहेगा।

जब शून्य से सौ डिग्री नीचे की शीत उत्पन्न करने और उसके उपयोग करने की क्षमता विज्ञानी मनुष्य के हाथ में होगी, तब हवा को धातु पिण्ड की तरह जमाया जा सकेगा और आज जिस तरह विविध उपकरण धातुओं से बनाये जाते हैं तब जमी हुई हवा से भी वह सब वस्तुऐं विनिर्मित की जा सकेंगी।

सीसा धातु में बिजली की संवहन क्षमता अद्‌भुत है। बिजली गुजरते ही वह लाल पड़ जाता है। इसी से हीटर, टोस्टर, इस्तरी आदि यन्त्रों में सीसे के तार लपेटे जाते हैं और वे तुरन्त गरम हो जाते हैं। सामान्य तापमान में बहुत ही विद्युत शक्ति ऐसे ही बिखर जाती है। अभीष्ट शीतल वातावरण में सीसे के किसी छल्ले में जरा सा बिजली का करेन्ट लगा दिया जाय तो उसमें बिजली अपने आप अनन्त काल तक पैदा होती रहेगी। तब बिजली घर बनाने की जरूरत न रहेगी वह एक बार का करेन्ट एक स्थायी विद्युत भंडार का काम देता रहेगा।

शीत विज्ञान पर इन दिनों घोर और गहन अध्ययन चल रहे हैं। इसे "क्रियोजेनिक्स" नाम दिया गया है। इसका इन दिनों प्रधान लक्ष्य है मनुष्य को जमाकर चिरकाल के लिए सुरक्षित कर देना। अन्तर्ग्रही यात्रा के लिए जाने वाले यान वर्तमान कल्पना के अधिकतम वेग से चलने पर भी अभीष्ट ग्रह नक्षत्रों तक पहुँचने लौटने में कई सौ वर्ष लगा लिया करेंगे। इतने दिन में सामान्य आयुष्य का मनुष्य तो मर ही जायगा फिर उसके लिए भोजन आदि दैनिक उपयोग की वस्तुऐं इतनी अधिक चाहिए जो यान से ज्यादा भारी हों। यह सम्भव नहीं। ऐसी दशा में यही युक्ति काम करेगी कि मनुष्य को शीत में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जमा दिया जाय। जमा हुआ प्राणी हजारों वर्ष तक शून्य स्थिति में पड़ा रह सकता है। जब आवश्यकता होगी तब स्वसंचालित यान अभीष्ट तापमान उत्पन्न करके मनुष्य को जीवित कर लिया करेगा। निर्दिष्ट ग्रह पर अपना काम पूरा करके यात्री जब पृथ्वी की ओर लौटेगा तब उसी स्वसंचालित विधि से अपने आपको तब तक के लिए ठण्डा कर लेगा। जब तक कि पृथ्वी पर लौट न आये।

यह कल्पना असम्भव लगती भर हैं पर वस्तुतः इस सिद्धान्त की भली प्रकार पुष्टि हो चुकी है और उसे प्रमाणों और परीक्षणों की कसौटी पर सही घोषित कर दिया गया है।

तरल नाइट्रोजन में अभी भी वस्तुऐं चिरकाल तक सुरक्षित रखी जाती हैं। डिब्बों में फल, भोजन आदि बहुत दिनों तक सुरक्षित रखने में यही प्रयोग इन दिनों चलता है। अगले दिनों तरल नाइट्रोजन को पलक मारते हिमांक (फ्रीजिंग प्वाइन्ट) दिया जा सकेगा। तब चलता दौड़ता खून बिना किसी विकार के पूरी तरह जम जायगा और उसे अनिश्चित काल तक जीवित रखा जा सकेगा। इन दिनों तरल नाइट्रोजन में मेढ़क आदि को डुबाकर रख दिया जाता है तब वे सर्वथा निष्प्राण लगते हैं, पर जब उन्हें गरमी दी जाती है तो फिर तुरन्त सजीव होकर पूर्ववत् विचरण करने लगते हैं। इस सुषुप्ति काल में उनके शरीर को कोई क्षति नहीं पहुँचती।

इन दिनों एक व्यक्ति का रक्त अथवा नेत्र, हृदय आदि कोई अंग किसी दूसरे को दिया जाता है। लम्बे समय तक उन्हें सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। किन्तु भविष्य में शरीर का कोई भी अंग चिरकाल के लिए सुरक्षित रखा जाना सम्भव हो जायगा। इस विश्राम काल में शरीर अपनी खोई हुई क्षमता पुनः प्राप्त कर सकता है इसलिए हर विश्राम के बाद नई शक्ति संचय करते रहने का क्रम जारी रखकर अपना आयुष्य भी हजारों वर्षों का कर सकेगा।

चुम्बक शक्ति कल-कारखानों में बहुत काम आती है उनके बताने और क्षमता स्थिर रखने का झंझट बहुत बड़ा है। भावी शीत युग में कुछ पदार्थों को तरल हीलियम की सहायता से 'क्रियो चुम्बक' बना दिया जायगा और फिर वे चिरकाल तक अपना काम करते रहेंगे। इसके लिए टिन के मिश्रण से बनने वाली 'नोवियम' धातु अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है। यह क्रिया चुम्बक—साधारण चुम्बक की अपेक्षा बारह हजार गुने अधिक शक्तिशाली होंगे। अणु बमों से या दूसरे अणु प्रयोगों से उत्पन्न होने वाली रेडियो सक्रियता से बचने के लिए अभी बहुत दुर्बल साधन ढूँढ़े जा सके हैं; पर जब क्रियो चुम्बकों' का युग आ जायगा तब रेडियो सक्रियता से डरने की कोई आवश्यकता न रह जायगी।

एक और अति आश्चर्य से ओत-प्रोत सम्भावना 'क्रियो जेनिक्स' विज्ञान की यह होगी कि एक ४५२ डिग्री तक शीत की बनी अदृश्य 'बोतल' ऐसी बन सकेगी जो आकाश में लटकी रहकर एक ऐसा 'प्लाज्मा' उत्पन्न करेगी जो लगभग सूर्य की सतह जितना गरम होगा। इस गर्मी से वे सारे काम लिए जा सकेंगे जिन्हें अब तक आग, बिजली, भाप आदि से किया जाता रहा है। फिर अणु भट्टी बनाने की बात पुरानी और बेकार हो जायगी जितने तापमान की आवश्यकता होगी, उतना बिना किसी खर्च के उपरोक्त 'प्लाज्मा' द्वारा प्राप्त कर लिया जाया करेगा। डा. सैन फोर्ड ब्राउन ने यह प्लाज्मा प्रयोगशाला में बनाकर दिखा भी दिया है। वह समय दूर नहीं जब सर्वजनीय ताप आवश्यकता की पूर्ति इस बिना खर्च वाले माध्यम से ही होती रहा करेगी।

क्रियो जेनिक्स' विज्ञान का कार्यक्षेत्र शून्य से १५० डिग्री ठण्डक होने से आरम्भ होता है और अभी उसकी अंतिम सम्भवना ४६० डिग्री आँकी गई है। इस एब्सोल्यूट जीरो (अंतिम शून्य) से प्रभावित पदार्थों के 'माला क्यल्स' कण अपनी चिरन्तन गतिशीलता त्यागकर स्थिर हो जाया करेंगे। ऐसी दशा में उन्हें अन्य किसी पदार्थ से बदल दिया जाया करेंगे। ऐसी दशा में उन्हें अन्य किसी पदार्थ से बदल दिया जा सकना सम्भव हो सकेगा। तब लोहा सोने में भी परिवर्तित हो सकेगा और पारस पत्थर की दंत कथा प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होती रहेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शीत विज्ञान नया नहीं है। उसके प्रयोग बहुत दिनों से चल रहे हैं पर अब उसकी व्यापक सम्भावनाऐं अधिक विश्वस्त हो चली हैं। गैसों का शीतलीकरण भली प्रकार होने लगा है। ठंडक पाकर वे तरल हो जाते हैं। शून्य से २६७ डिग्री पर अमिजन, ३०२ पर आरगान, ३२० पर हाइड्रोजन और ४५२ पर हीलियम द्रव्य रूप में बदल जाती है। यह द्रव्य गैस प्रचण्ड शक्ति की निर्झरिणी है, उसका स्पर्श होते ही बर्फ की सिलली देखते-देखते उबलने लगती है। इतनी प्रचण्ड ताप उत्पादक क्षमता है इनमें। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी ने लन्दन पर बी-२ राकेट बरसाये थे। वे जहाँ गिरते थे गजब ढाते थे। वे राकेट तरल आक्सीजन, अलकोहल और दूसरे रसायन मिलाकर बनाये गये थे।

मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार में ताप का उपयोग अधिक होता रहा है। इससे खर्च अधिक हुआ और लाभ कम रहा। अब दृष्टिकोण में परिवर्तन करने का समय आ गया। हमें शीत की उपयोगिता समझनी चाहिए और उसकी शक्ति को अपने क्रिया-कलाप में सम्मिलित करना चाहिए।

स्वभाव में आमतौर से जोशीले और सक्रिय व्यक्ति आवेश, उत्तेजना और क्रोध करने के आदी देखे गये हैं। जल्दबाज लोग—इच्छानुकूल स्थिति न होने पर बेतरह झल्लाते, खीजते और उद्विग्न होते हैं। दूसरों को खिन्न, अपमानित और उत्तेजित करते हैं। साथ ही अपना सन्तुलन बिगाड़कर शरीर और मस्तिष्क में अनावश्यक ताप उत्पन्न कर लेते हैं इससे रक्त में विषैला माद्दा बढ़ता है और जीवन-शक्ति का पोषक भाग जलता है।

आवेश-ग्रस्त स्वभाव के कारण गुत्थियाँ सुलझती नहीं उलझती हैं। जो हानि हो चुकी थी उसकी पूर्ति क्रोध से किसी भी प्रकार नहीं हो सकती वरन् वह क्षति अपना और दूसरों का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाने से और भी अधिक बढ़ जाती है। यदि उस क्षति की पुनरावृत्ति रोकनी हो तो शान्त चित्त से वास्तविक कारण तलाश करना चाहिए और निवारण के लिए धैर्यपूर्वक—शान्त चित्त से जो भी उस अवरोध का कारण हो उसका निवारण करना चाहिए। यह प्रयोजन शान्ति और क्षोभरहित स्थिति में ही ठीक तरह पूरा किया जा सकता है। अपने स्वभाव में यदि ताप तत्व बढ़ा-चढ़ा हो तो उसे घटाने का अविलम्ब प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए। शीतलता की मात्रा जितनी ही बढ़ेगी अपना व्यक्तित्व उतना ही प्रभावशाली, चिन्तनशील और दूरदर्शितापूर्ण होता चला जायेगा।

आहार में से उष्णतावर्धक तत्वों को हटाना चाहिए। गरमा-गरम चाय, काफी, सिगरेट, नशे, मिर्च मसाले, स्वाद में ही भले ही अच्छे लगें, उनकी प्रतिक्रिया शरीर पर ही नहीं मन पर भी बुरी होती है। तामसिक भोजन इसीलिए हानिकारक बताया गया है कि वह ऊष्मा की अनावश्यक मात्रा बढ़ाकर अवांछनीय उत्तेजना पैदा करता है। गर्मी हर चीज को सुखाती है। आहार की उष्णता हमें सुखाती और पिघलाती है इससे पुष्टि और दृढ़ता बनाये रखने वाले तत्व घटते जाते हैं और असमय ही मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है।

ऋषि मुनियों की तपश्चर्या—तप साधनाऐं—शीत प्रधान हिमालय में होती थीं। ठण्ड से हानि नहीं, लाभ होता है। खाँसी, जुकाम, निमोनिया आदि सर्दी के प्रकोप नहीं वरन् भीतर भरे हुए विकारों को शीत द्वारा निकाल बाहर करने का प्रयोग मात्र है। जो उस वातावरण में थोड़े दिन रहने पर सहज ही ठीक हो जाता है। गरम रहन-सहन की आदत बदलते समय थोड़ी प्रतिक्रिया हो सकती है पर कुछ ही दिन में यह स्पष्ट हो जायगा कि सर्दी सहने के लिए शरीर खुशी-खुशी तैयार है। नाक के भीतरी भाग सबसे कोमल हैं। आँखें भी कम कोमल नहीं हैं। गाल, होठ आदि चेहरे का सारा कलेवर नंगा रहता है उस पर कोई ऊनी, सूती वस्त्र नहीं पहनाया जाता फिर भी चेहरे के सभी कोमल अंग पूर्णतया नंगे रहकर शीत सहन करते हैं और किसी प्रकार की असुविधा अनुभव नहीं करते। यदि सम्भव हो तो अपना निवास-स्थल शीत प्रधान क्षेत्रों में विनिर्मित करना चाहिए। बीच-बीच में कुछ समय के लिए उधर जाते रहना चाहिए। अन्यथा जहाँ भी रहना पड़े वहाँ अपेक्षाकृत शीतल वातावरण बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। सघन वृक्षों की छाया, नदी तट, कच्ची मिट्टी या फूँस से बने घर शीतल रहते हैं और लाभ पहुँचाते हैं।

उष्ण प्रदेश में रहने वालों की अपेक्षा शीत प्रकृति के देशों या क्षेत्रों में रहने वालों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वास्थ्य सौन्दर्य सदा अच्छा पाया जायगा। यह शीत का ही महात्म्य है। कपड़ों से लदे और कसे रहने से त्वचा पीली पड़ जाती है और उसकी सहन शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे लोग बार-बार और जल्दी-जल्दी बीमार पड़ते हैं। स्वस्थ रहना हो तो कम से कम कपड़े पहनने चाहिए सो भी ढीले और हवादार। भारतीय प्राचीन पोशाक में धोती दुपट्ट दोही पुरुष वस्त्र थे। शरीर को खुली हवा और रोशनी समुचित मात्रा में मिलती रहे। वायु सम्पर्क से शीतलता मिलती रहे इसी लिए अपने शरीर आच्छादन की यह विधि प्रक्रिया बनाई गई थी।

शीत छूने में ही ठण्डा लगता है। वस्तुतः उसमें वास्तविक और उपयोगी उष्णता पैदा करने की पूरी-पूरी सामर्थ्य विद्यमान है। जबकि गरम वस्तुऐं जो छूने में उत्तेजक प्रतीत होती हैं परिणाम में शिथिलता और अशक्तता ही उत्पन्न करती हैं।

इस तथ्य को समझने पर हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि शारीरिक और मानसिक क्षेत्र को अनावश्यक ताप से बचाकर उपयुक्त शीतलता के सम्पर्क में रखना ही श्रेयस्कर है।

सर्दी मनुष्य के लिए कितनी उपयोगी है, इसे बहुत कम लोग जानते हैं। आमतौर से लोग ठण्ड से बचने के लिए कपड़ों के लवादे लादे रहते हैं। ठण्ड लगने से जुकाम, निमोनिया आदि हो जाने के भय से डरते रहते हैं। वस्तुतः शीत लाभदायक है—हानिकारक नहीं। हानिकारक उनके लिए है जिन्होंने अमीरी के चोचले में फँसकर अपनी त्वचा को ऋतु अभाव से बचाते हुए उसकी सहन शक्ति को नष्ट कर दिया है। दुर्बल के लिए तो दैव भी घातक हो जाता है। सर्दी-गर्मी तो क्या रोटी, पानी भी उनके लिए विपत्ति सिद्ध हो सकती है। ऐसे अपवादों को छोड़ दें तो शीत के उपयोगी प्रभाव को ही स्वीकार करना पड़ेगा।

ठण्डे देशों के निवासी गरम प्रदेशों के निवासियों की तुलना में अधिक स्वस्थ, सुन्दर और दीर्घजीवी होते हैं। उत्तरी ध्रुव के निवासी नितान्त हिमाच्छादित प्रदेशों में स्वल्प साधनों से निर्वाह करते हैं और साधन सम्पन्नों की अपेक्षा अधिक जीवनी-शक्ति युक्त पाये जाते हैं। शीत ऋतु में अपेक्षाकृत भूख अधिक लगती है, पाचन अच्छा रहता है और गिरा हुआ स्वास्थ्य भी सँभल जाता है।

सिद्ध पुरुषों की तप-साधना सदा हिमालय में होती रही है। प्राचीनकाल में सप्त ऋषियों की तथा अन्यान्य तपस्वियों की तपश्चर्यायें वहीं होती थीं। योगेश्वर शिव का स्थान हिमाच्छादित कैलाश है। देवताओं का निवास—सुमेरु पर्वत पर बताया गया है यह सुमेरु गंगोत्री, गोमुखी से २०० मील आगे है। देव उद्यान—नन्दन वन—गंगा के उद्गम गौमुख से थोड़ा ही आगे है। पाण्डवों ने जिस स्थान पर स्वर्गारोहण किया था—व्यास जी को त्वरा लेखक बनाकर गणेश जी ने, जिस स्थान पर महाभारत लिखा था वह व्यास गुफा वसोधरा बद्रीनारायण से आगे है। श्रीकृष्ण भगवान ने रुक्मिणी सहित तपश्चर्या बद्रीनारायण तीर्थ में की थी। भगवान राम अयोध्या का राज्य लव-कुश को देकर स्वयं देव प्रयाग तप करने के लिए चले गये थे। यह सब स्थान हिमालय में ही हैं। आध्यात्मिक तपश्चर्याओं का तीन चौथाई इतिहास हिमालय की शीत प्रधान भूमि से ही सम्बन्धित है।

मन की एकाग्रता, अन्तःकरण की पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, समाधि की तन्मयता, दिव्य प्रकाश की प्रखरता जैसे लाभ हिमालय में जितनी सुविधापूर्वक सम्भव हैं उतने अन्यत्र नहीं। वहाँ अभी भी आश्चर्यजनक आयुध्य वाले सिद्ध योगी पाये जाते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व गंगोत्री में स्वामी कृष्णाश्रम जी का स्वर्गवास हुआ है। उनकी आयु के सम्बन्ध में सम्पर्क वाले व्यक्ति २०० वर्ष से अधिक बताते हैं। नग्न और मौन स्थिति में वे इस हिमाच्छादित प्रदेश में ही रहा करते थे। ऐसे विदित योगी कई हैं, अविज्ञान सिद्ध पुरुष तो कितने ही उस क्षेत्र में अत्यधिक आयुध्य वाले हैं। हिमालय की तपश्चर्या आत्म-शक्ति, दिव्य दृष्टि जैसी सिद्ध विभूतियाँ ही नहीं अक्षय स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन भी प्रदान करती हैं। हिमालय विश्व-चेतना का हृदय है। जिस प्रकार पृथ्वी का केन्द्र ध्रुव है उसी प्रकार भूलोक के इस उत्तरायण वर्ग का चेतना ध्रुव हिमालय है। यहाँ वे लाभ सहज ही मिल जाते हैं जो अन्यत्र तप साधना करने पर दीर्घकाल में भी मिल सकने कठिन हैं।

हिमालय की विशेषता अन्य सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक कारण तो है ही। प्रत्यक्ष कारणों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी शीत प्रधानता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। विज्ञान अब इस निष्कर्ष पर जा पहुँचा है कि शीत की सहायता से कायाकल्प भी सम्भव है। और शरीर सहित हजारों वर्ष तक जीवित रहा जा सकता है।

कुछ समय पूर्व नोबेल पुरस्कार उपलब्ध कर्त्ता डाक्टर कैरल ने यह प्रतिपादित किया था कि शीत की सहायता से मानवीय आयुध्य में आशातीत वृद्धि की जा सकती है। इस सन्दर्भ में प्रयोग निरन्तर चलते रहे और अब यह प्रमाणित कर दिया गया है कि प्राणियों को बर्फ की तरह जमाकर सुरक्षित रखकर न केवल उनके शरीर को वरन् प्राणों को भी सुरक्षित रखा जा सकता है।

उत्तरी ध्रुव की खोज में गये हुए अन्वेषणों से मृत शरीर सैकड़ों वर्ष बाद ज्यों के त्यों बिना किसी विकृति के इस स्थिति में पाये गये मानो अभी जल्दी ही उनकी मृत्यु हुई है। अन्य हिम प्रदेशों में मृत शरीर चिरकाल तक सुरक्षित रहने की बात तो लोगों को पहले से ही विदित थी। पर अब यह भी सम्भव हो गया है कि न केवल शरीर को वरन् प्राण को भी शीत में जमाया जा सकता है और फिर सुविधानुसार सजीव एवं सक्रिय किया जा सकता है।

शुक्राणु शीत में जमा दिये जाते हैं और तब उनकी हरकत बन्द हो जाती है पर जब गर्मी पहुँचाई जाती है तो वे सन्तानोत्पादन के उपयुक्त बन जाते हैं। यह तथ्य अब चिकित्सा शास्त्र के सभी विद्यार्थी जानते हैं। म्यूनिख विश्व विद्यालय के वे प्रयोग भी अब पुराने हो गये जिनमें चीटियों का एक समूह जमा दिया गया था और वे दस दिन बाद पिघलाये जाने पर फिर जीवित होकर सामान्य जीवन जीने लगीं।

कुछ दिन पूर्व यह घटना समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी कि मिस अंग को शीत की सहायता से नव-जीवन प्रदान किया गया। उक्त महिला ने आत्म-हत्या की। उसने विष खा लिया। डॉक्टरों ने उसके प्रधान अवयव निष्क्रिय पाये। यकृत बेकार हो चुका था। गुर्दे घुलकर बह चले थे। हृदय में नाममात्र का स्पन्दन था। इस मरणासन्न लाश को उच्च विज्ञान वेत्ता लेम्पेल ने शीत से जमा दिया और एक काँच के बर्तन में बयालीस दिन तक सुरक्षित रखा। इसके बाद गर्मी दी गई तो उनमें सजीवता के चिन्ह दीखे। उपचार के बाद उनका शरीर आत्म-हत्या से पहले की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा हो गया। उनमें नव-यौवन फूट पड़ा और उस अधेड़ महिला को अपना विवाह करने के लिए विवश होना पड़ा।

इस सफलता के बाद उपरोक्त उच्च वैज्ञानिक ने दावा किया है कि कायाकल्प का यह प्रामाणिक उपाय है। कुछ समय के लिये यदि मनुष्य को शीत में जमा दिया जाय तो उसके थके हुए अंग-प्रत्यंगों को पूर्ण विश्राम मिल सकता है और इस विश्रान्ति से शरीर नवजात बालक की तरह फिर तरोताजा एवं जीवनी शक्ति से भरपूर हो सकता है। इस प्रकार हर पचास वर्ष बाद कुछ दिन का शीत विश्राम दिया जाता रहे तो मनुष्य दो हजार वर्ष तक जीवित रह सकता है।

डाक्टर लेम्पेल का तर्क है कि सृष्टि के समस्त जीव जितना समय बचपन से लेकर युवा होने में लगाते हैं उससे प्रायः पन्द्रह गुना पूर्ण जीवन माना जाता है। गाय दो वर्ष में युवा होती है। उसकी पूर्ण आयु तीस-पैंतीस वर्ष मानी जाती है। मनुष्य यदि २५ वर्ष में तरुण होता है तो उसे स्वभावतः लगभग ४०० वर्ष जीना चाहिए। यदि इससे कम आयु में मरना पड़े तो समझना चाहिए कि जीने की विधि-व्यवस्था में कोई भारी भूल रह गई। उसी से अकाल मृत्यु का ग्राम होना पड़ा। उनकी शोधों का निष्कर्ष यह है कि शीत जीवन का मित्र है और ताप शत्रु। ताप से जितना बचा जा सके और शीत से जितना सान्निध्य रखा जा सके उतनी ही शरीर की सुरक्षा बनी रहेगी।

यह प्रयोग पशु शरीरों पर जारी हैं। साधारणतया ६८ डिग्री से तापमान घटने पर शरीर के कल-पुर्जे शिथिल होने लगते हैं पर बछड़ों के भीतरी अवयवों को एक सीरम रसायन से उत्तेजित किया गया और उस उत्तेजित स्थिति में ही उसे जमा दिया गया। इस स्थिति में आरम्भ से जीवन एक दिन तक ही रह सका पर पीछे प्रयोग करते करते वह अवधि एक महीने तक बढ़ गई है। इस प्रकार विश्राम प्राप्त जानवर न तो बीमार पड़ता है न कमजोर होता है वरन् पहले से भी अधिक स्वस्थ रहने लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्तरिक्ष अनुसंधान की सुविस्तृत योजना अमरीकी वैज्ञानिकों ने मनुष्य सहित अन्तरिक्ष यान प्लूटो ग्रह पर भेजने की बनाई है। अनुमान है कि चन्द्रयान वाली चाल के राकेट को वहाँ तक पहुँचने में २०० वर्ष लगेंगे। इतना ही समय लौटने में भी चाहिए। इतने दिन मनुष्य जीवित कैसे रहेगा। इसका समाधान इसी प्रकार ढूँढ़ा गया है कि प्लूटोयान के यात्री को शीत से जमा दिया जाय। यान के यन्त्र निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचाकर जमे हुए यात्री को गरम कर दें। वह सक्रिय होकर अपनी खोज करे और फिर वापिसी में निर्धारित यन्त्र की सहायता से स्वयं जम जाय और पृथ्वी पर अपन नींद खोले ?

योग समाधि में लगभग यही प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है। उसमें शीतल वातावरण तो सहायक होता है इसलिए इस तरह की साधनायें हिमालय में अधिक सफल होती हैं। फिर भी उसमें शीत के द्वारा शरीर को जमा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। संकल्प बल और प्राण शक्ति की सहायता से भीतरी अवयवों को बन्द या मन्द कर दिया जाता है। फलतः श्वाँस-प्रश्वाँस रक्ताभिरण, पाचन-क्रिया मल विसर्जन आदि सारे आन्तरिक क्रिया-कलाप बन्द हो जाते हैं। मस्तिष्क की बौद्धिक क्षमता अचेतन केन्द्र में लय हो जाती है। समाधि कितने समय की लेनी है इसका प्रमाण सन्देश अचेतन चित्त को दे दिया जाता है। चित्त आज्ञाकारी सेवक की तरह उस आदेश का पालन करता है और समाधि नियत अवधि पर खुल जाती है। इस समाधि क्रिया का वही लाभ होता है जो उच्च वैज्ञानिक के शीत-परीक्षण द्वारा एक मरणासन्न महिला तथा कई जानवरों पर प्रयोग करके सम्पन्न किया गया है।

मनोबल, आत्म-बल, साधना, तपश्चर्या की अपनी शक्ति है। हिमालय-चेलना उद्गम का हृदय—ध्रुव—होने से इन प्रयोग प्रयोजनों के लिए अति उपयोगी है। यह आध्यात्मिक प्रयोग हुआ। साधारणतया सामान्य जीवन में भी शीत की उपयोगिता समझी और स्वीकारी जानी चाहिए। अमीर लोग ग्रीष्म ऋतु में काश्मीर आदि शीत प्रधान स्थानों में चले जाते हैं और स्वास्थ्य लाभ करते हैं। यह अमीरी की बात हुई। हम गरीब लोग भी शीत ऋतु का लाभ उठाने के लिए—शीत वातावरण में आवास-निवास सम्भव बनाने के लिए—शीतल प्रदेशों की तीर्थ यात्रा या वहाँ कुछ समय रहने की बात सोचें, वैसी व्यवस्था बनायें तो यह स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मानसिक लाभ उठाने की साधना भी यदि उसमें जुड़ी रहे तो फिर उसे सोना और सुगन्ध की उपमा दी जा सकेगी।

प्रतिकूल मौसम से भी मोर्चा लीजिए

प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेने हेतु मनुष्य के पास जो सबसे बड़ी ताकत है—वह है जीवनी शक्ति का अकूत भाण्डागार। यही है जो उसे मानसिक तनाव से लेकर शरीर पर पड़ने वाले वातावरण के उद्दीपनों से बचाता व उसके स्वास्थ्य की रक्षा करता है। किन्तु पिछले दिनों इस सम्बन्ध में चिकित्सा विज्ञान ने जो भी शोध कार्य किया है, वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रचुर जीवनी-शक्ति होते हुए भी मनुष्य कभी-कभी प्रतिकूल मौसम या वातावरण में विद्यमान आयन्स से मात खा सकता है।

मौसम की यह प्रतिकूलता या आयन्स की यह कमी क्या होती है व कैसे शरीर व मन को प्रभावित करती है ? इस पर व्यापक वैज्ञानिक अनुसंधान हुए हैं। प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला है कि अगर वायु में ऋणात्मक आवेश वाले आयन अपेक्षाकृत अधिक हों तो मानव मन शांत रहता है, सृजनात्मकता बढ़ती है एवं वातावरण प्रफुल्लित बन जाता है। इसके विपरीत धनात्मक आवेश वाले आयनों की अधिकता व्यक्ति को चिड़चिड़ा व बेचैन बना देती है, काम करने में मन नहीं लगता तथा कभी-कभी उन्मादग्रस्त मनःस्थिति हो जाती है।

ऋण आयन अधिकतर समुद्री तटों, नदी के किनारों, पहाड़ों, पर्यटन स्थल पर स्थित होते हैं। ऐसे वातावरण में मनुष्य का मन तथा शरीर स्फूर्ति तथा ताजगी महसूस करता है। इसके विपरीत प्रदूषित वातावरण में, औद्योगीकृत स्थानों पर, भीड़ भरी जगहों पर, निर्जनीकृत स्थानों पर, वातानुकूलित कक्षों में, धन आवेश प्रधान कण अधिक होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मौसम अपने इन आयन्स के कारण किस प्रकार जन-मानस को प्रभावित करता है, इस पर "बायोमेटिऑरालॉजी" नामक विधा पिछले दिनों तेजी से विकसित हुई है। न्यूयार्क के डॉ. स्टीफन रोजेन ने एक पुस्तक लिखी—"वेदर सेन्सीटिविटी' (संवदेनशील मौसम) इस पुस्तक में वे लिखते हैं कि मानवी स्वास्थ्य के लिए मौसम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वातावरण में तापमान व नमी में अचानक हुए परिवर्तन मन के ऊपर गहरा प्रभाव डालकर शारीरिक क्रिया-पद्धति को बुरी तरह झकझोर देते हैं। कभी-कभी कोई व्यक्ति यह शिकायत करे कि मौसम में परिवर्तन के कारण उसे जल्दी थकान आने लगी है, वह चिड़चिड़ा हो उठा है व बेचैनी उसे परेशान करती है, रात्रि को नींद उसे ठीक से नहीं आती, सारा बदन टूटता-सा लगता है, स्नायविक शिथिलता अनुभव होती है, अवसाद व उत्तेजना के दौरे आने लगते हैं तो हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि वह बहानेबाजी कर रहा है। कभी-कभी यह सब वातावरण की विद्युत का चमत्कार भी हो सकता है। ये सभी लक्षण जब सामान्यतया स्वस्थ व्यक्ति में दृष्टिगोचर होने लगें तो समुचित उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए। यह बात अलग है कि अत्यधिक भावुक, संवेदनशील व्यक्तियों में ये लक्षण अधिक तीव्रता से प्रकट होते हैं व मनोबल की दृष्टि से मजबूत, संतुलित व्यक्ति में कम तीव्रता से। मौसम के मानव पर पड़ने वाले प्रभाव सम्बन्धी इस तथ्य के सम्बन्ध में चिकित्सा जगत में न केवल संदेह-शंका संव्याप्त है, यह भी कहा जाता रहा है कि यह केवल एक बहाना है अथवा मनोवैज्ञानिक अनुभूति है।

हंगरी, रूमानिया, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया, जर्मनी, रूस के चिकित्सकों की यही मान्यता है कि मानवी स्वास्थ्य सुनिश्चित रूप से वातावरण में विद्यमान घटकों से प्रभावित होता है एवं इस पर किए गए उनके शोध निष्कर्ष भी उनकी मान्यताओं के पक्ष में गए हैं। जबकि अमेरीकन्स, ब्रिटिश इन मान्यताओं, आँकड़ों से इतने सहमत नहीं हैं। जहाँ तक जन-मान्यताओं का प्रश्न है पूरे विश्व में दो-तिहाई व्यक्ति इस बात को मानते हैं कि मौसम प्रतिकूल रूप से मानवी मन को प्रभावित करता है। इसी कारण मौसम का पूर्वानुमान ज्ञात करने की जिज्ञासा बढ़ती चली जा रही है, ताकि समय रहते सावधान रहा जा सके। वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारा शरीर वातावरण से लगातार बिजली पीता रहता है। माध्यम बनते हैं, फेफड़े। ली गयी श्वाँस के माध्यम से ये आवेशित कण अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। यदि यह बिजली न हो तो शरीर जी ही न सके किन्तु हवा में तैरते ये आयन्स फेफड़ों के टीश्यूज के माध्यम से स्नायु संस्थान को व समस्त अंग-प्रत्यंगों को प्रभावित करते हैं। चूँकि ऑक्सीजन प्राण वायु के साथ फेफड़ों में स्थित सूक्ष्म रक्तवाही नलिकाओं (कैपीलरीज) द्वारा प्रवेश कर अंग-प्रत्यंग तक पहुँचती है, इसके साथ ऋणात्मक आवेश वाले कण भी पहुँच जाते हैं, यदि वे वातावरण में विद्यमान हों। यदि वातावरण प्रदूषित है, तो धन आयन्स अन्दर पहुँच जायेंगे व जीवनी-शक्ति प्रतिरोधी सामर्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे। बहुसंख्य व्यक्तियों में आज यही हो रहा है।

स्वतन्त्र इलेक्ट्रॉन से चिपके न्यूट्रल परमाणु का आवेश निगेटिव कहलाता है, जबकि इलेक्ट्रॉन रहित परमाणु पॉजीटिव आयन कहलाता है। यह विद्युत वातावरण में चारों ओर बिखरी पड़ी रहती है जिसमें हम साँस लेते हैं। कुछ आयन्स भारी होते हैं व कुछ हल्के। धूल, धुआँ और धमासे के साथ जुड़कर ये भारी, धनात्मक व घने हो जाते हैं तथा एलर्जी, दमा जैसी स्थिति पैदा कर सकते हैं।

आयन मानवी काया के सामान्य क्रिया व्यापार के लिए बहुत जरूरी हैं। जहाँ भी वृक्ष-वनस्पति, प्राकृतिक वातावरण, निर्झर, निर्मल नदी या सरोवर, समुद्री किनारा, पर्वत आदि होंगे व प्रदूषण की मात्रा कम होगी वहाँ ऋण आयन्स का वास सर्वाधिक होगा। चिकित्सक इसीलिए ऐसे वातावरण में जाने व कुछ दिन रहकर स्वास्थ्य लाभ की सलाह देते हैं। सैनिटोरियमों का प्रचलन इसी कारण बढ़ा है। जहाँ ऐसा वातावरण नहीं होता। व्यक्ति अवसाद, तनाव, सिरदर्द, उदासी से घिर जाता है, जल्दी-जल्दी उत्तेजित होने लगता है, रक्त का दबाव बढ़ जाता है व बीमारी के लक्षण विद्यमान हों तो और भी अधिक बीमार पड़ने के अवसर बढ़ जाते हैं। जबकि इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विपरीत ऋण-आवेश युक्त वातावरण रोगी को भी स्वस्थ कर देता है। यही कारण है कि आजकल पश्चिम जगत में कार्यालयों में, टैक्सियों में नेगेटिव आयन जेनरेटर खुलकर प्रयुक्त होने लगे हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि असंतुलित, प्रतिकूल मौसम जिसमें नेगेटिव आयन घट जाते हैं, छाती के दर्द, बेहोशी, दमा, खाँसी, अपच, आँखों के अन्दर तनाव में वृद्धि (ग्लाकोमा), सर्दी, जुकाम, एलर्जीक बुखार, पेट का अल्सर, न्यूराइटिस, जोड़ों में दर्द आदि रोगों के लक्षण को बढ़ा सकता है। इसमें आर्द्रता, कुहासा, ठण्डक का होना प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। वे यह भी कहते हैं कि काम में लगन, सिरदर्द, मूड, निद्रा, दुर्घटना तथा आत्मघात जैसे लक्षण इस सीमा तक प्रभावित होते हैं कि व्यक्ति की कार्यक्षमता कुण्ठित हो जाती है एवं बहुसंख्य आत्महत्या के अवसर इसी समय पर बढ़ते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि किया क्या जाय? क्या प्रतिकूल मौसम के समक्ष हाथ टेक दिये जायँ। मनश्चिकित्सक कहते हैं कि "नहीं"। व्यक्ति को जूझने का पूरा प्रयास करना चाहिए एवं प्राणायाम, ध्यान, शिथिलीकरण, प्राकृतिक साहचर्य आदि का यथासंभव अधिक अवलम्बन लेना चाहिए। इससे प्रतिरोधी सामर्थ बढ़ती है व प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेने का साहस जागता है। यदि मनोबल बनाए रहा जा सके तो मस्तिष्क रूपी चुम्बक ऋण आयन्स को आकर्षित भी करता रह सकता है। आयन्स की महिमा निराली है। उतना ही विलक्षण, क्षमता सम्पन्न है मनुष्य। उसे हार नहीं माननी चाहिए। किसी भी स्थिति में नहीं।

प्रकृति-प्रवाह के साथ तालमेल बिठाना भी साधना का एक उद्देश्य

हम अपने आप में न तो परिपूर्ण हैं और न स्वावलम्बी। समीपवर्ती और दूरवर्ती परिस्थितियाँ हमें असाधारण रूप से प्रभावित करती हैं। इसलिए सोचने और संकीर्ण परिधि से आगे बढ़ने की आवश्यकता होती है। अन्यथा न तो हम प्रतिकूल प्रभावों के दुष्परिणामों से बच सकेंगे और न अनुकूलताओं से लाभ उठा सकेंगे।

मौसम की परिस्थितियों का शरीर और मन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। सुहावने मौसम में शरीर चुस्त रहता है और मन प्रसन्न। तब काम भी अधिक मात्रा में होता है और अपेक्षाकृत अच्छा भी। इसके विपरीत जब असह्य और प्रतिकूल मौसम होता है तो न केवल कई तरह की बीमारियाँ उठ खड़ी होती हैं वरन् मन भी उदास रहता है और काम का परिमाण और स्तर दोनों ही गिर जाते हैं। अपराध अन्वेषकों का कथन है कि सुहावने मौसम में अपराधों की संख्या काफी कम हो जाती है और जैसे ही उत्तेजना उत्पन्न करने वाला अधिक ठंडा गरम मौसम आता है वैसे ही अपराधों और दुर्घटनाओं की संख्या तेजी से बढ़ने लगती है। दिल के दौरे पड़ने की न्यूनाधिकता का सम्बन्ध भी असह्य और सह्य मौसम के साथ बहुत कुछ जुड़ा रहता है।

स्विट्जरलैण्ड, दक्षिण जर्मनी विशेषतया आल्पसीय क्षेत्र में डाक्टर लोग उन दिनों महत्वपूर्ण ऑपरेशन नहीं करते जिन दिनों गर्म और सूखी हवाएँ तेजी से चलती हैं। हैम्बर्ग के डॉक्टरों का भी यही निष्कर्ष है कि अकुलाने वाले मौसम के ऑपरेशन बहुत करके असफल हो जाते हैं। कारण यह है कि उन दिनों शरीर की प्रकृति मौसम प्रतिकूलता से जूझने में लगी रहती है और ऑपरेशन को सफल बनाने में जितना उसका योगदान होना चाहिए उतना वह नहीं दे पाती। फलस्वरूप चिकित्सकों का कार्य अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।

बीमारियों की सहज स्वाभाविक घटोत्तरी-बढ़ोत्तरी को मौसम की उग्रता के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले बहुत से शोध-निष्कर्ष विज्ञान वेत्ताओं ने निकाले हैं। क्लोरिडा यूनिवर्सिटी के डॉक्टर डब्ल्यू. बी. वेव और नैवल स्कूल ऑफ ऐविएशन के प्रो. एच० एडिस ने इस सम्बन्ध में जो खोजबीन की है उसका विस्तृत विवरण अमेरिका की 'साइन्स' पत्रिका के १४३ वें अंक में विस्तारपूर्वक छपा है। इसमें दर्शाया गया है कि तापमान घटने-बढ़ने से वायु के विद्युत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आविष्ट कणों का ऋणायन और धनायन वर्ग के आवेशों में चढ़ाव-उतार होता है। मानव शरीर के लिए ऋणायन वाले कण उपयोगी पड़ते हैं और धनायन हानिकारक सिद्ध होते हैं। बिजली की कड़क अथवा तापमान के चढ़ाव-उतार का जो प्रभाव उत्पन्न होता है, उससे वायुमण्डल में प्रत्यावर्ती विद्युत क्षेत्र—"आल्टरनेटिंग इलेक्ट्रिक फील्ड" बन जाते हैं। रेडियो तरगों की तरह इस विद्युत क्षेत्र भी तेजी से विस्तार होता है और वे पहले दुर्बल शरीर वालों पर और पीछे सबल शरीर वालों पर अपना भला-बुरा प्रभाव छोड़कर बीमारियों को घटाने-बढ़ाने की भूमिका विनिर्मित करते हैं।

पक्षी इन परिवर्तनों के प्रभाव को अच्छी तरह समझते हैं। इसलिए वे अण्डे देने, घोंसले बनाने आदि का कार्य ऐसे मौसम में करते हैं जिसमें उन्हें कम से कम प्रकृतिगत अवरोध सहना पड़े। उनके शरीर दुर्बल होते हैं और मौसम का अवरोध सबल। इस लड़ाई में अपनी हार देखकर वे संकट पूर्व ही भाग खड़े होते हैं और लम्बी उड़ानें भरके ऐसे स्थानों पर चले जाते हैं, जहाँ ऋतु परिवर्तन के कारण उत्पन्न असह्य स्थिति का सामना उन्हें न करना पड़े। एक स्थान से दूसरे स्थान को पक्षी-परिव्रजन प्रायः इसी कारण होता रहता है।

विश्व चेतना के साथ अपना ताल-मेल बिठाने की प्रक्रिया का नाम ही अध्यात्म साधना है। इस आधार पर हम अपनी अन्तःचेतना को इस योग्य विकसित परिष्कृत करते हैं कि ब्रह्माण्ड-व्यापी सूक्ष्म धारा प्रवाहों की अनुकूलता प्रतिकूलता के साथ हम उपयोगी सम्बन्ध सूत्र स्थापित कर सकें।

चान्द्रायण—कल्पकाल की आहार साधना

परिस्थितियों को बदलना मनःस्थिति के हाथ में है। अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं का रोना तो भीरु, कायर, जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ व्यक्ति रोते हैं। परिस्थितियों का सम्बन्ध बाह्य व्यक्तियों तथा सुविधाओं पर जितना निर्भर माना जाता है, उससे कहीं अधिक व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर है। यदि व्यक्तित्व में बहिरंग को बदल डालने, अपने परिकर का कायाकल्प कर डालने की सामर्थ्य है तो कोई भी व्यवधान प्रगति को नहीं रोक सकता। यह तो मन का प्रमाद व अचेतन का ढर्रा है जो, "जैसा कुछ है वैसा ही चलने दो" की स्थिति के लिए विवश करता है। मनुष्य एक जीता-जागता चुम्बक है जो अपने स्तर के अनुरूप परामर्श, वातावरण सहयोग, साधन चुपके-चुपके खींचता रहता है। उसके आस-पास वैसा ही परिकर जुट जाता है जैसी कि मनःस्थिति होती है। चोर, जेबकट, सन्त, सज्जन, पराक्रमी, पुरुषार्थी, आलसी, दरिद्र, दुर्व्यसनी अपने-अपने ढंग का समाज, अपने अनुकूल परिस्थितियाँ अपने चारों ओर बना लेते हैं। परिकर व साधन के समन्वय को परिस्थिति कहते हैं"। अपवाद तो कहीं न कहीं बनते हैं। उत्थान और पतन के लिए मनुष्य स्वयं ही उत्तरदायी होता है। इस कथन को बार-बार समझना, आत्मसात कर लेना चाहिए।

इस केन्द्र स्थली मनःसंस्थान को कैसे पवित्र, परिष्कृत बनाया जाय। इसके दो उपाय पहले ही बताये गये हैं। एक-चिंतन-मनन द्वारा अन्तःप्रेरणा उभारने और तदनुरूप जीवन की दिशा को बदलने का भावनात्मक उपाय और दूसरा-साधना-तपश्चर्या के दबाव से संचित कुसंस्कारों को गलाने और उन्हें सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढालने का क्रियात्मक उपाय। चिन्तन की परिष्कृत ही योग है और चरित्र में निखार लाने वाली प्रक्रिया 'तप'। कल्प साधना में इन दोनों का समन्वय है। प्रगति पथ पर अग्रगमन इन दो पहियों पर ही सम्भव हो पाता है। प्रश्न यह उठता है कल्प साधना के इस दर्शन को व्यवहार में किस प्रकार उतारें ? दैनिक जीवन में तप तथा योग का समावेश न्यूनाधिक रूप में किस प्रकार बन पड़े ? इसके लिए आहार से अन्तःकरण पर प्रभाव तथा उसके माध्यम से आंतरिक परिशोधन की प्रक्रिया को समझना होगा।

मन शरीर का एक भाग है। उसे ग्यारहवीं इन्द्रिय भी कहा जाता है। शरीर आहार से ही बनता है। इस कारण प्रकारान्तर से आहार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तर को ही शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन का आधारभूत कारण माना गया है। अभक्ष्य को उदरस्थ करने वाला, अनावश्यक मात्रा में खाने वाला धर्मोपदेशक भले ही बन सके, साधक धर्मात्मा नहीं बन सकता। इसलिए पूजा-उपचार की तरह कल्प-प्रक्रिया में आहार साधना पर अत्यधिक ध्यान देना होता है। स्वाध्याय, सत्संग, कथा-कीर्तन एवं धर्मानुष्ठानों की तरह ही आहार में सात्विकता एवं सदाशयता का समावेश भी आत्मिक प्रगति के अनिवार्य आधारों में सम्मिलित रखा गया है। कल्पकाल की साधना को आत्मोत्कर्ष के प्रयासों में मूर्धन्य इसलिए भी कहा गया है कि इसमें धर्मानुष्ठानों से अधिक आहार नियमन पर ध्यान दिया गया है। आहार निग्रह के उपरान्त मनोनिग्रह कठिन नहीं रह जाता। मन को यदि सदाशयता की ओर मोड़ा जा सके तो दृष्टि बदलते ही आत्मिक प्रगति के मार्ग में फिर कोई बड़ी बाधा शेष नहीं बच रहती। आहार कल्प की महत्ता को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए।

आध्यात्मिक कल्प की यह प्रक्रिया वस्तुतः एक प्रकार का तप है। तप में तितीक्षा का समावेश रहता है। गीता के अनुसार **"विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः"** (२। ५६)— "उपवास करने से विषय विकारों की निवृत्ति होती है।" इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए साधकों को अनुभवी, तत्वदर्शी, सदाचारी, आहार नियमन का परामर्श देते चले आये हैं। एक ही आहार का सेवन, किसी भी प्रकार के सम्मिश्रण से बचाव तथा जहाँ तक सम्भव हो आधा पेट ही आहार लेना-एक प्रकार का उपवास है, तप है। इसे मृदु चान्द्रायण का ही एक परिवर्धित स्वरूप समझा जा सकता है। इस प्रक्रिया में प्रायश्चित्त भी जुड़ जाने से अनुशासन-अनुबन्ध और भी कठिन हो जाता है। पूर्व में मनोभूमि प्रबल होने से और भी कड़ी तपश्चर्या साधक कर पाते थे, पर उस कृच्छ कड़े चान्द्रायण की स्थिति तक न लौटकर युग धर्म के अनुरूप कल्प साधना में सरलता उत्पन्न करना ही श्रेष्ठ माना जायेगा।

उपवास की चान्द्रायण प्रक्रिया अति कठोर है। इसे लगभग एक महीने का अनुष्ठान कहना चाहिए। एक समय निर्धारित ग्रास के अतिरिक्त किसी और समय खाने का नियम नहीं है। पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास खाने और एक-एक घटाने का ही नियम है। अमावस्या से एक-एक ग्रास बढ़ाते चलकर पूर्णिमा को पूर्ण आहार की स्थिति में पहुँचते हैं। इस प्रकार लगभग बीस दिन ऐसी स्थिति रहती है, जिसे न खाने के बराबर ही समझना चाहिए। उस स्थिति में जिसमें कम-अधिक किया जाता है, मन को अत्यधिक कड़ी तपश्चर्या की अवधि से गुजरना होता है। इसको कठोर तो नहीं पर घर के नियमित अभ्यास से कुछ अलग-एक ही अन्न, एक ही शाक अथवा मात्र अमृताशन पर आधे पेट रहना, नित्य लगभग अस्वाद-उपवास की स्थिति में रहना भी एक प्रकार का तप है। कठोर तप जैसा चान्द्रायण में किया जाता है, करने वाले तो विरले मिलेंगे। एक-दो दिन भोजन मिलना तो दूर चाय जैसी वस्तु न उपलब्ध होने पर ही पैर काँपना, सिर घूमना और नींद न आना जैसी शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर में इतनी चर्बी किसी-किसी के ही होती है जो लम्बे समय तक एक प्रकार से सर्वथा निराहार स्तर का कठोर उपवास कर सके। साथ में जिस मानसिक संतुलन की आशा अपेक्षा होती है वह तो कहीं दीख ही नहीं पड़ता। उसके अभाव में आहार साधना तो दूर-सामान्य उपासना क्रम भी सम्भव नहीं हो पाता। मन भूख के कारण बेचैन हो तो एकाग्रता, स्थिरता की स्थिति कैसे रहेगी ? न रही हो तो भूखे रहना भले ही निभता रहे, वे अध्यात्म उपचार कैसे सधेंगे जिन्हें अपनाना कल्प साधना का मूलभूत उद्देश्य है। तपश्चर्या में उपासना भी एक अंग तो है, पर उतने भर से ही आत्म-परिष्कार का समग्र उद्देश्य कहाँ पूरा होता है ?

कल्प सूत्रों में आज के मानव की सभी दुर्बलताओं, परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर जो संतुलित आहार साधना-क्रम बनाया गया है, उसका बड़ा स्वरूप तो यह है कि साधक मात्र एक समय आधा पेट भोजन से काम चलायें। यह आहार भी एक ही अन्न हो, भाँति-भाँति के सम्मिश्रण न हों। इसे दो बार में बाँटना हो तो मृदु स्वरूप में कुल आहार को सुबह तथा शाम दो बार में बाँट सकते हैं। कहने का आशय यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि कुल मिलाकर आधा भोजन किया जाय एवं एक ही प्रकार के आहार द्वारा अधिक से अधिक मनःसन्तुलन का अभ्यास किया जाय।

आमतौर से लोग दो समय भोजन करते हैं। इसलिए यह मान लिया गया है कि एक समय भोजन करने से काम चलाया जाना चाहिए। यह आहार उतना ही होना चाहिए जितना कि नित्यप्रति होता है। शाम के बदले का भी दोपहर को खाने की, इसी समय दूना, ड्योढ़ा कर लेने की चतुरता करनी हो तो बात दूसरी है।

ऊँट एक दिन पानी पीकर एक सप्ताह तक रेगिस्तान में चल लेता है। उतना पानी पेट में भर लेता है कि एक सप्ताह तक फिर पीने की आवश्यकता न पड़े। मगर भेड़ के बच्चे को, साँप-मेढ़क को, व्याघ्र—हिरन को इतनी मात्रा में खा लेता है कि फिर कई दिन तक मुख खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तीर्थ-पुरोहित भी ऐसा ही करते हैं। एक समय में इतना 'छक' लेते हैं कि दूसरे समय की तो बात ही क्या-दूसरे दिन भी न मिले तो पेट कुछ माँगेगा नहीं। यह नीति कल्प साधकों को अपनानी हो तो फिर उपवास वैसा ही मखौल बन जायेगा जैसा कि एकादशी व्रत करने वाले तथाकथित फलाहारी माल-मलाई इतनी ठूँस लेते हैं कि पेट को हाहाकार करना पड़े। साधकगण भी ऐसी ही दिल्लगीबाजी उपवास में करने लगे तो यह तपश्चर्या न रहकर आत्म-प्रवंचना ही बन जायेगी।

गायत्री तीर्थ की उपवासचर्या को ऐसा संतुलित रखा गया है कि उससे न खाली पेट रहने से उत्पन्न होने वाली कठिनाई का सामना करना पड़े और न पेट को विश्राम मिलने के उद्देश्य में व्यतिरेक उत्पन्न हो। मात्रा घटाना तो हर हालत में आवश्यक ही है। दोपहर को उतनी ही मात्रा में निर्धारित आहार लिया जाय, जितना कि आमतौर से लिया जाता है। न कम, न अधिक। इसी में कल्प की तप-तितीक्षा की सार्थकता भी है।

इस साधना के साथ अस्वाद व्रत भी जुड़ा है। बिना मसाले का, नमक का भोजन खाने का सबका अभ्यास भी नहीं होता। प्रकृति में विद्यमान लौकी, तोरई, गाजर, परवल जैसे शाक, खरबूजा, आम, पपीता जैसे सस्ते फलों पर ही निर्वाह भी एक माह तक किया जा सके तो मानना चाहिए कि एक बहुत बड़ी तप साधना आज के युग में सध गयी। शाकाहार व दुग्ध आहार कल्प से भी सीधी-सादी अमृताशन अथवा एक ही आहार कल्प की साधना है। शांतिकुन्ज में अब बॉयलर व्यवस्था द्वारा भाप से अन्न, शाक या खिचड़ी को पकाकर हर साधक को वन्दनीय माताजी द्वारा अपने हाथ से दिया जाता है। अपनी खुराक को निर्धारित करने का आत्मानुशासन साधक को अपनाना होता है। पकने के पूर्व वन्दनीय माताजी अपने हाथ से संस्कारित जल तथा औषधि, सही मात्रा में हल्दी प्रत्येक के पात्र में डालती हैं। पकने पर सभी साधक अपने-अपने पात्र अपनी कोठरी में ले जाकर ग्रहण करते हैं व उसी में संतोष करते हैं। पदार्थ की कारण—शक्ति के माध्यम से अन्तः की चिकित्सा का यह निर्धारित विधान सभी को रुचता भी है। साथ में जड़ी-बूटी का कल्प भी जुड़ जाने से समग्र कायाकल्प की संभावनाएँ सुनिश्चित बन जाती हैं। आहार कल्प एवं जड़ी-बूटी कल्प के व्यवहार पक्ष को अलग से समझाया गया है। यहाँ तो मात्र उसका दर्शन एवं कायाकल्प की सुनिश्चितता का स्पष्टीकरण है। हर साधक को अध्यात्म उपचारों को उत्तरार्ध तथा आहार साधना को कल्प का पूर्वार्ध मानना चाहिए।

वैसे कल्प में दुग्ध, मट्ठा अथवा फलाहार किसी भी एक की पूरी छूट है। लेकिन फलाहार की तुलना में शाकाहार कहीं अधिक सस्ता एवं लाभदायक बैठता है। मात्रा का संतुलन भी ऐसा बँट जाता है कि कुसंस्कारी पाचन संस्थान को नये ढर्रे में ढलने में कोई कठिनाई नहीं होती, 'कल्क' अच्छा बन जाने से नित्य पेट का शोधन होता रहता है तथा उदरशूल, कब्ज, अपच जैसी कठिनाई भी नहीं रहती। वैसे गेहूँ का दलिया अथवा अमृताशन भी एक प्रकार से शाकाहार या फलाहार के समतुल्य ही है। जिसका मनोबल हो वे एक महीने शाकाहार या अमृताशन पर निभा सकते हैं। उनके लिए स्वयं पका लेने के सभी साधन शांतिकुन्ज में मौजूद हैं। जो खिचड़ी, दाल, चावल, दलिया आदि स्वयं पका सकें, उनके लिए वैसी सुविधा भी उपलब्ध करा दी जाती है। शांतिकुन्ज के भोजनालय में सबके लिए एक जैसी व्यवस्था है। शाक, कोयला, अँगीठी, बर्तन, दलिया, चावल, दाल आदि सभी वस्तुएँ हर किसी के लिए उपलब्ध हैं जिन्हें सुविधा हो वे वैसी व्यवस्था कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आहार की मात्रा पर इतना ही अंकुश रखा गया है जिससे पेट सर्वथा खाली भी न रहे और उपवास की मर्यादा के अन्तर्गत उसे सीमित मात्रा में खाली भी रखा जा सके। अमृताशन उस आहार को कहते हैं जिसे भगौने में पकाया जा सके। चावल, दाल, दलिया, दूध, खिचड़ी, शाकाहार जैसे उबालकर बनाये जाने वाले सभी पदार्थ अमृताशन की मर्यादा में आते हैं। उन्हें उपवास में सम्मिलित किया जाय और फलाहार समतुल्य माना जाय तो हर्ज नहीं।

आहार पर चढ़े हुए कुसंस्कारों का परिशोधन करने के लिए गौमूत्र की महत्ता शास्त्रकारों ने बताई है। इन दिनों जिस प्रकार खाद्य पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं उससे उनकी सात्विकता चली जाती है और ऐसे तत्व मिल जाते हैं, जिन्हें तामसिक ही कहा जा सकता है। रासायनिक खादों का, सीवर लाइनों की गन्दगी का उपयोग अधिक उपज लेने की दृष्टि से किया जाता है। कीड़े मारने की दवाएँ फल पर व गोदामों में छिड़की जाती हैं। फिर उनके बोने, उगाने वालों के भी अपने संस्कार होते हैं जो खाद्य पदार्थों में मिले होते हैं। फलतः उन पर अदृश्य कुसंस्कारिता छाई रहती है। अध्यात्मवादी का आहार कुसंस्कारिता से रहित होना चाहिये। "जैसा खाये अन्न वैसा बने मन" के प्रतिपादन में साधक की साधना का प्रथम चरण सात्विकता से आरम्भ होता है। सात्विकता का अर्थ सुपाच्य ही नहीं सुसंस्कारी भी है। पकाने-परोसने में भी इस सुसंस्कारिता का समावेश होना चाहिए। वैसी सुविधा न हो तो फिर अपने हाथ ही पकाना उत्तम है। साधक स्वपाकी रहे तो दूसरे के द्वारा पकाये आहार की तुलना में इन दिनों इस सन्दर्भ में अधिक निश्चिन्तता रह सकती है।

खाद्य पदार्थों को गौमूत्र से परिशोधन की प्रक्रिया चान्द्रायण की भोजन व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। जौ, तिल, चावल आदि खाद्य पदार्थ गौमूत्र में भिगोकर बोने, उगाने, जमा करने की अवधि में चढ़े हुए कुसंस्कारों से मुक्त किया जाता है। सफाई करने से लेकर आटा पीसने, दाल दलाने की आश्रम में निजी व्यवस्था है। बाजार की तुलना में कहीं अधिक महँगी पड़ती है पर उस पर सुसंस्कारिता फलाहार से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी हो। चान्द्रायण साधना में गौ सान्निध्य का अत्यधिक माहात्म्य बताया जाता है। गौ-मूत्र सेवन की भी चर्चा है। इसका प्रतीक रूप में परिपालन कल्प साधना में किया जाता है। पंच गव्य में गौदूध, गौदधि, गौघृत की प्रमुखता रहती है। गौमूत्र की कुछ बूँदें ही सही पर प्रायश्चित्त परम्परा के अनुसार समावेश उसका आंशिक रूप से रहता है। इसके अतिरिक्त जो भी धान्य साधक इस एक महीने की अवधि में सेवन करते हैं वह सभी गौमूत्र में भिगोया-भिगोकर गंगाजल से धोया-धोकर सुखाया और सुखाकर आश्रम में ही पीसा गया होता है। बनाने की प्रक्रिया दो ही हैं या तो माताजी के चौके में बना हो या अपने हाथों पकाया गया हो। बाजारू वस्तुएँ खाने, खरीदने पर पूरी रोक हो। चटोरेपन से लालायित होकर बाजारू चीजें खरीदना-खाना पुरानी आदत को भले ही रुचिकर लगे पर उससे तपश्चर्या की व्यवस्था बिगड़ती है। अपने कक्ष में आहार को करते समय भी यह संयम बनाये रखना अत्यन्त अनिवार्य है।

उपवास पक्ष पर विचार करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि पेट को खाली रखना ही मात्र उद्देश्य नहीं है। उसका मूलभूत प्रयोजन सात्विक, सुसंस्कारी, चटोरेपन से रहित आहार अपनाना भी है। पेट पर वजन कितना लदा, कितना हल्कापन रखा गया इस सम्बन्ध में थोड़ी रियायत समय की स्थिति को देखते हुए दी गई है। परिस्थितियों की विवशता, लोगों की स्वल्प तितीक्षा क्षमता को ध्यान में रखते हुए ही यह शिशु या चान्द्रायण जैसा उपक्रम अपनाया गया है। इतने पर भी इस आध्यात्मिक प्रयोजन के निमित्त की गई आहार चिकित्सा में सैद्धान्तिक कड़ाई यथावत् कायम रखी गई है। आहार की सात्विकता, सुसंस्कारिता, औषधि स्तर की स्थिति हर हालत में कायम रखी ही जानी चाहिए। चटोरेपन की अभ्यस्त आदत तथा पेट को ठूँस-ठूँस कर गधे की तरह लादे रहने की विद्रूपता तो हर हालत में रोकी या छोड़ी जानी है। इतनी व्रतशीलता अपना लेने पर कल्प साधना की उपवास प्रक्रिया अक्षुण्ण रखी जा सकेगी। भले ही आहार की मात्रा के सम्बन्ध में कुछ शिथिलता सुविधा जुड़ी रहे।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आयुर्वेदीय कल्प चिकित्सा में कई फल-शाकों के कल्प का उल्लेख है। खरबूजा, आम, जामुन, पपीता जैसे सस्ते फलों पर ४० दिन रहकर यह कल्प होते हैं। महँगे फलों में अनार, मौसमी आदि के रसों पर भी रहा जाता है। सेव, चीकू भी ऐसे ही उपयोगी फलों में हैं। शाकों में टमाटर, तोरई, लौकी भी उस प्रयोजन के लिए उपयोगी होती है। दूध, छाछ के कल्पों का भी विधान है। कल्प काल में कई औषधियाँ भी सेवन कराई जाती हैं पर आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए कल्पों में एक महीने की अवधि उपरोक्त फलों, शाकों में से किसी एक का चयन करके उसी पर निर्वाह किया जाय तो इससे शरीर शोधन एवं मानसिक, भावनात्मक परिष्कार का भी अतिरिक्त लाभ मिलता है।

तुलसी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, शतावरी, गिलोय, अश्वगंधा जैसी जड़ी-बूटियों का भी कल्प कराया जाता है। उनका रस, क्वाथ-कल्प या अर्क बनाकर पिलाने की प्रक्रिया है। किस-किस औषधि का कल्प कराया जाय, किस रूप में किस मात्रा में उसे दिया जाय। निर्धारण व्यक्ति की स्थिति को समझकर उसकी आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जा सकता है।

साधारणतया इस रूप में उपरोक्त औषधियों को एक दिन में सौ ग्राम तक दिया जाता है। अर्क पिलाना हो तो उस रूप में लगभग दस औंस तक औषधियों का सार तत्व पेट में पहुँचाया जा सकता है। औषधि कल्प में फलाहार ऐसा चुना जाता है जो इन औषधियों का सजातीय है। कल्प साधना में मनोबल सम्पन्न साधकों के लिए उनकी स्थिति के अनुसार इस प्रकार के अतिरिक्त कल्पों का भी निर्धारण किया जाता है।

कल्प अवधि में साधक नित्य गंगाजी जाते हैं। अपने पीने के लिए गंगाजल का पात्र स्वयं भरकर लाते हैं। जब भी पीना हो तो उसी को पीते हैं। इस प्रकार गंगा और गौ का सान्निध्य रहने के अतिरिक्त एक अध्याय गीता एवं प्रज्ञापुराण का सामूहिक पाठ भी होता है। गायत्री के २४ हजार अनुष्ठानों अथवा सवा लाख अनुष्ठान का सम्पुट तो साथ-साथ है ही। इस प्रकार गंगा, गौ, गीता और गायत्री के रूप में प्रख्यात अध्यात्म साधना के चारों चरणों को अपनाते रहकर साधक अपनी पवित्रता, प्रखरता एवं प्रगति का पथ प्रशस्त करते हैं। कायाकल्प के विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि यह मात्र पुराने अभ्यासों के ढर्रे को बदलकर नवीन जीवनक्रम आरम्भ करना है। शरीर शोधन तो अवश्य होता है पर अन्तः में कायाकल्प व शारीरिक बलिष्ठता में बड़ा अन्तर है। अपना भावी जीवन कष्ट-साध्य न हो, निरोग, दीर्घायुष्य काया का आनन्द प्राप्त हो, साथ ही आत्मिक प्रगति का प्रयोजन सधा रहे उसी का यह पूर्वाभ्यास है। आहार से श्रेष्ठ और कोई माध्यम इसके लिए नहीं हो सकता। च्यवन, ययाति की तरह यौवन प्राप्ति पुनः हो सकी कि नहीं, इसे नहीं बल्कि जीवनी-शक्ति सम्वर्धन एवं नवीन जीवन पद्धति के अभ्यास की दिशाधारा मिल जाने को ही एक माह की साधना का अनुदान, वरदान मानना चाहिए। चिन्तन, शरीर क्रिया, व्यवहार तथा अन्तः का परिपूर्ण कायाकल्प ही ही वास्तविक कल्प साधना है। अनगढ़ शरीर व मन इस एक माह में प्राकृतिक जीवन-क्रम को आगे भी अपनाने के लिए विवश हो जाय, यही इस आहार साधना का मुख्य उद्देश्य है।

साधना के उपयुक्त सतोगुणी आहार

प्रायश्चित्यों की परम्परा में पंचगव्य प्राशन और हविष्यान्न का लेने का शास्त्रीय विधान है। यों जान-बूझकर किये गये पापों के लिये भारतीय धर्म में एकमात्र प्रतिकार यही है कि दुष्कर्मों द्वारा समाज को क्षति पहुँचाई गई हो उसी स्तर के लोकोपयोगी पुण्य कार्य करके उसकी पूर्ति की जाय, साथ ही विगत दुष्कर्मों के लिए पाश्चात्ताप करते हुए ऐसे उपाय-उपचार भी किये जाते हैं जिनसे अन्तःकरण पर जमे हुए अवांछनीय कुसंस्कारों का निवारण, निराकरण भी हो सके।

इस प्रकार के शोधन, उपचारों में पंचगव्य प्राशन और हविष्यान्न सेवन की चिर परम्परा है। गौरस से समाविष्ट संस्कारों का बाहुल्य सर्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विदित है। गौदुग्ध गौदधि, गौघृत, गौमय, गौमूत्र इन पाँचों के सम्मिश्रण को पंचगव्य कहते हैं। दूध, दही और घृत की उपयोगिता सर्वविदित है। गौमूत्र की आयुर्वेद में भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है और उसे उदर रोगों तथा रक्त विकारों की अमोघ औषधि माना गया है। यह बात गोबर के सम्बन्ध में ही है। लीपने से स्थान शुद्धि और यज्ञाग्नि में प्रयुक्त होने के लिए उपलों की महत्ता बताई गई है। उसका तनिक सा रस होम्योपैथी दवाओं की तरह कितने ही प्रकार के लाभ उत्पन्न करता है। पंचगव्य में यों गाय का दूध, दही, घृत ही प्रधान होता है। गौमूत्र और गोबर के रस की मात्रा अत्यंत स्वल्प रहती है। इस सम्मिश्रण को यों आरोग्य की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी माना जा सकता है, साथ ही भावनात्मक शोध-उपचार की दृष्टि से भी उसका महत्व कम नहीं है। प्रायश्चित विधानों में पंचगव्य प्राशन का पग-पग पर निर्देश है।

हविष्यान्न में तिल, जौ, चावल इन तीनों अन्नों की गणना है। इन्हें भी परम सात्विक, सुसंस्कारों से युक्त माना गया है। यज्ञ कार्य में आहुतियाँ देने के लिए इन तीनों का उपयोग होता है। सामयिक अन्न संकट के कारण इन दिनों उनकी मात्रा घटा दी गई है पर प्रतीक रूप में उन्हें कुछ तो रखा ही जाता है। इन तीनों धान्यों को यज्ञ सामग्री में प्रयुक्त होने वाली औषधियों की तरह ही प्रतिष्ठा दी गई है।

तपस्वियों के सामान्य आहार में इन्हीं को प्राथमिकता दी जाती है। कई तो गायत्री पुरुश्चरण जैसी लम्बी तप साधनायें इनमें से किसी एक अथवा तीनों के संमिश्रण से पूर्ण करते हैं। सामान्य आहार में भी इनको आधार मान कर चला जाय तो उससे शरीर और मन में सात्विकता का अंश और बढ़ेगा साधना तपस्या में आशाजनक प्रगति होगी।

"जैसा खाये अन्न वैसा बने मन" वाला निष्कर्ष अक्षरशः सत्य है। कुधान्य खाकर—अभक्ष्य अपनाकर किसी की तप साधना, ध्यान धारणा सफल नहीं हो सकती। ऐसा अन्न पेट में जाकर ऐसे उपद्रव खड़े करता है जिनके कारण मन में न शान्ति रह पाती है और न स्थिरता। इस विग्रह के निवारण करने को साधक सबसे पहले अपने आहार में सात्विक तत्वों के समावेश का प्रथम प्रयास करते हैं। इस प्रयोजन के लिए हविष्यान्न से बढ़कर और किसी की उपयोगिता नहीं हो सकी। प्रायश्चित्य प्रक्रिया के लिए हविष्यान्न एवं पंचगव्य लेने का निर्देश धर्म-ग्रन्थों में पग-पग पर पाया जाता है इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्य की आवश्यकता न होने पर भी सात्विक आहार की दृष्टि से भी इन दोनों की उपयोगिता है। यदि आहार में इनका पूरा या अधूरा स्थान रखा जाय तो मनःक्षेत्र में शरीर में निश्चित रूप से सात्विकता बढ़ेगी। इन्द्रिय लिप्सा पर नियंत्रण होगा और मनोनिग्रह का प्रयोजन सहज ही पूरा होने लगेगा।

प्राण प्रत्यावर्तन एवं कल्प साधना सत्रों में इन दोनों को स्थान दिया गया है। प्रातःकाल जलपान में सर्वप्रथम आहार के रूप में पंचगव्य ही साधकों को दिया जाता है। इसके उपरान्त ही वे कोई अन्य जलपान ले सकते हैं। मध्यान्ह को जौ, चावल और तिल की रोटी दी जाती है। यों साथ में चावल, दाल, दलिया जैसे सात्विक आहार की भी मात्रा रहती है, पर प्रथम आहार हविष्यान्न चरु का ही करना पड़ता है। मध्यान्हकालीन और सायंकालीन भोजन में गंगाजल ही प्रयुक्त होता है और आहार के साथ गंगाजल ही पीने को दिया जाता है।

गंगा में शहरों के मलमूत्र हरिद्वार के बाद ही पड़ते हैं, इससे ऊपर के जल में अभी गन्दगी पड़ना शुरू नहीं हुआ है इसलिए स्वभावतः उसमें गंगाजल की भौतिक विशेषता बनी रहती है। फिर सात ऋषियों की तपस्थली—सप्तसरोवर—जहाँ ऋषियों के तप में विघ्न न पड़ने देने की बात को ध्यान में रखते हुए गंगा ने अपने को सात धाराओं में विभक्त कर लिया था। अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध है। शान्तिकुन्ज का आश्रम इस पवित्रता को ध्यान में रखते हुए ही बनाया गया है। यहाँ का गंगाजल हविष्यान्न, पंचगव्य के साथ प्रयुक्त किया जाय तो स्वभावतः सतोगुणी प्रभाव बढ़ेगा और इससे साधना की प्रगति में योगदान मिलेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधकों को आहार बनाने, परोसने के लिये साधनापरायण हाथों का ही उपयोग होता है। ब्रह्मचर्य से रहने वाले शरीर ही इस आहार का स्पर्श करते हैं। इससे पूर्व उसे और भी अधिक सुसंस्कारी बनाने के लिये आध्यात्मिक उपचारों से सम्पन्न किया जाता है। उस पर निरीक्षण दृष्टिपात उन आँखों का रहता है, जिन्होंने प्रत्यावर्तन सत्र शृंखला का आधार खड़ा किया है।

अन्नमय कोश का पंचकोशी साधना में प्रथम स्थान है। अन्नमय कोश के परिष्कार के लिए सात्विक आहार की व्यवस्था बनाई जाती है। भगवान का भोग, प्रसाद लगाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करने के बाद भोजन आरम्भ करने से आहार का स्तर औषधि रूप हो जाता है। नियत समय पर—भूख से कुछ कम मात्रा में प्रसन्नता और सन्तोष की मनःस्थिति के साथ यदि सामान्य भोजन किया जाय तो उसका प्रभाव शरीर की आरोग्य वृद्धि के लिये ही नहीं—मन की सात्विकता बढ़ाने की दृष्टि से भी यह अत्यन्त प्रभावशाली है।

हविष्यान्न से बनी रोटी के साथ ब्राह्मी आँवला की चटनी स्वाद और पाचन की दृष्टि से तो उपयुक्त है ही उसमें मस्तिष्क को बल देने वाले टॉनिक भी हैं। आँवला रसायन है। उसमें बुढ़ापा रोकने का गुण है। च्यवनप्राशावलेह में आँवला ही प्रधान है। वृद्ध च्यवन ऋषि इन्हीं फलों को खाकर वृद्ध से तरुण हुए थे। ब्राह्मी भारत की बुद्धिवर्धक बूटी है। सतावरि, शंखपुष्पी गोरखमुँडी, बच और ब्राह्मी इन पाँच बूटियों को सरस्वती की प्रतीक माना गया है। ये बुद्धिवर्धक हैं। ब्राह्मी इनमें सर्वोपरि है। हविष्यान्न के साथ जो चटनी दी जाती है उसमें ब्राह्मी आँवला की मात्रा अधिक रहती है पर साथ ही सरस्वती पंच बूटियों का भी अनुपात संमिश्रण रहता है। इस प्रकार इसे एक मस्तिष्कीय बलवर्धक रसायन भी कह सकते हैं। ब्राह्मी आँवला से बना हुआ तेल बालों को काला करता है, उनकी जड़े मजबूत बनाता है, इससे स्पष्ट है यह औषधि मस्तिष्क को कितना बल पहुँचाती है। स्मरण शक्ति बढ़ाने और बुद्धि की बढ़ोत्तरी करने की दृष्टि से उपयुक्त यह वनस्पति भारतभूमि की अनुपम देन है इसकी तुलना की औषधियाँ कदाचित ही अन्यत्र मिलती हों। आयुर्वेद शास्त्र में आँवले की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। उसमें जितने उच्चकोटि के विटामिन होते हैं उतने शायद ही अन्य किसी फल में पाये जाते हों।

कल्प एवं प्रत्यावर्तन सत्र में आने वाले साधकों को यों हविष्यान्न रोटी के साथ दी जाने वाली यह चटनी स्वास्थ्य की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण रसायन आहार है। पर उसका मुख्य लाभ अन्तःकरण चतुष्टय से सम्बन्धित मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का स्तर तमोगुण, रजोगुण की भूमिका से ऊँचा उठाकर सतोगुणी स्तर तक पहुँचाता है। आहार का विश्लेषण मात्र शरीर के लिए लाभदायक, हानिकारक समझकर ही नहीं करना चाहिए वरन् यह भी देखना चाहिए कि उसका मन और बुद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है। अन्न का मन से सम्बन्ध सुनिश्चित है। साधना का प्राण सात्विक आहार है, कहना न होगा कि इस तथ्य का इन सत्रों में पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। पंचगव्य, हविष्यान्न, आँवला कल्क का त्रिविधि संयोग इसी दृष्टि से है। इसके अतिरिक्त चावल, दाल, दलिया आदि के बनाने, शोधने, पकाने में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है कि यह आहार प्रक्रिया अन्नमय कोश को परिष्कृत करने में—मनःसंस्थान को उच्चस्तरीय बनाने की भूमिका ठीक तरह सम्पादित कर सके।

आहार में सात्विकता की आवश्यकता

मानव शरीरधारी के लिये स्वास्थ्य रक्षा की समस्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि अनेक अनभिज्ञ व्यक्ति धन को ही सब से बड़ी चीज बतलाते हैं और अन्य लोग बढ़िया भोज्य सामग्री, चमक-दमक की पोशाक, सुन्दर महल, गाड़ी-मोटर आदि वाहन को सुख का आधार कहते हैं, पर थोड़ा-सा ही विचार करने पर मालूम हो जाता है कि ये सब चीजें उत्तम स्वास्थ्य होने पर ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। दुनियाँ में ऐसे सैकड़ों व्यक्ति मिल सकते हैं जिनके पास लाखों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या करोड़ों की संख्या में भी धन मौजूद है और सब प्रकार की सुख-सामग्री भी जिनको प्राप्त है, पर जो सदा रोगी और दुःखी ही बने रहते हैं। ऐसे ही अनेक व्यक्ति तो यहाँ तक दुःखी होते हैं कि आत्मघात करके दुःखों से छुटकारा पाने की चेष्टा करते हैं।

अब से पचास-साठ वर्ष पहले अमरीका के मि० राकफेलर संसार के सबसे बड़े धनी व्यक्ति समझे जाते थे। उस समय उनकी सम्पत्ति का अनुमान एक अरब रु. के लगभग किया जाता था। पर धन कमाने में ही सदा संलग्न रहने थे फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य खराब हो गया था और उनके आमाशय में ऐसी खराबी पैदा हो गई थी कि वे किसी तरह का खाद्य-पदार्थ पचा नहीं सकते थे। करोड़पति से भी बढ़कर धनवान होने पर भी वे साधारण भोजन के लिये तरसते थे। अन्त में एक डॉक्टर ने उनको मक्खन निकला हुआ दूध, जिसे अनेक स्थानों में तो फेंक दिया जाता है, खाने को बताया और वह उनको किसी प्रकार हजम होने लगा।

इस दृष्टि से सही और स्थायी स्वास्थ्य मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है, जिसके आधार पर यदि मनुष्य चाहे तो अपने जीवन को हर तरह से सार्थक बना सकता है। पर इसमें भी अधिकांश मनुष्य एक भूल यह करते हैं कि वे इस विषय पर केवल शारीरिक—भौतिक दृष्टि से ही विचार करते हैं। अगर वे अच्छा आहार प्राप्त करके हृष्ट-पुष्ट बन जाते हैं और बिना किसी विशेष बीमारी के अपना नित्य का काम ठीक तरह से करते रहते हैं तो इस स्थिति को सन्तोष-जनक मान लेते हैं। वे इससे आगे बढ़ कर इस बात पर कभी विचार नहीं करते कि शरीर के साथ ही उनकी मानसिक स्थिति का ऊँचा रहना और आत्मिक शान्ति का प्राप्त करना भी आवश्यक है। वस्तुतः मानसिक और आत्मिक क्षेत्र शरीर की अपेक्षा विशेष महत्त्व के होते हैं। यदि ये दोनों ठीक दशा में न रहें तो शारीरिक स्वास्थ्य का स्थायी रह सकना भी सम्भव न होगा। इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीतिविविर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा सात्विकप्रियाः।।

अर्थात् "सात्विक आहार ही आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति की वृद्धि करने वाला होता है।" इसके विपरीत राजसिक आहार, चाहे वह अधिक स्वादिष्ट तथा चटपटा जान पड़ता है और उसके द्वारा आरम्भ में ताकत और हिम्मत की अधिकता भी जान पड़ती है, पर अन्त में वह रोग और चिन्ता का उत्पन्न करने वाला ही सिद्ध होता है—

कट्वम्ललवणात्युष्णा तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकमय प्रदाः।।

इस भेद का मुख्य कारण यही है कि जहाँ सात्विक भोजन में मनुष्य में आध्यात्मिक भावों की वृद्धि होती है, सद्प्रवृत्तियों का विकास होता है, सद्गुणों की ओर मन झुकता है, वहाँ राजसिक और तामसिक आहार से आत्मा पर अन्धकार का पर्दा पड़ने लगता है और सद्विवेक की शक्ति कुण्ठित होकर मन कुमार्ग पर जाने लगता है। ऐसी स्थिति में लोग चाहे आरम्भ में कुछ व्यसनों या शौकों की पूर्ति होने से खुशी भले ही मना लें पर इसका अन्तिम परिणाम पतन के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

आहार का सबसे पहला नियम यह है कि वह भली प्रकार पचकर शरीर के पोषणार्थ उत्तम रस और रक्त के रूप में परिणित हो सके। यही कारण है कि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों, उपनिषदों, चिकित्सा ग्रन्थों में हर जगह यह आदेश दिया गया है कि आमाशय के आधे भाग को भोजन के लिये भरे, चौथाई भाग को पानी से भरे और शेष चौथाई को वायु के संचारार्थ खाली रहने दे जिससे भोजन का परिपाक भली प्रकार हो सके। पर जैसा हम भली प्रकार जानते हैं कि सब प्रकार की मिठाइयाँ और अधिक घी वाले पदार्थ गरिष्ठ होते हैं और यदि उनको अधिक मात्रा में खाया जाय तो अनपच होकर रस और रक्त को अशुद्ध बनाते हैं। यही कारण है कि जो पण्डे, पुजारी आमतौर से मिष्ठान्न और पकवान का भोजन पाते रहते हैं, उनमें सात्विकी के बजाय राजसिक और तामसिक प्रवृत्ति ही विशेष देखने में आती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार के इस आध्यात्मिक पहलू को दृष्टिगोचर रखकर योग ग्रन्थों में सुपच खाद्य-पदार्थों का अल्प मात्रा में सेवन करने का आदेश दिया है। जो ऐसा नहीं करते, उनके लिये देर तक आसन पर बैठ सकना, प्राणायाम के द्वारा नाड़ी शुद्ध कर सकना और ध्यान में मन लगाये रख सकना कठिन हो जाता है। आरम्भिक यौगिक क्रियाओं का एक उद्देश्य यह भी होता है कि शरीर की पूरी तरह शुद्धि हो जाय और किसी तरह की व्याधि अथवा शारीरिक कष्ट का चिन्ह न रहे। क्योंकि जिसके मन की एकाग्रता तथा ध्यान शारीरिक कष्टों के कारण भंग होते रहेंगे, वह मन को वशीभूत करके चित्त की वृत्तियों को संयमित करने में कदाचित् ही समर्थ हो सकता है। इसलिये योगी को सर्वप्रथम स्वादेन्द्रिय को वश में करके अपने आहार का इस प्रकार नियमन करना पड़ता है कि उसमें साधनों को करने लायक शक्ति तो पूर्ण मात्रा में बनी रहे, पर पेट में किसी प्रकार की गन्दगी, कब्ज, वायु की अधिकता आदि दोष उत्पन्न न हों।

यदि मनुष्य पाशविकता और लम्पटता से ऊपर उठकर सचमुच आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने का इच्छुक हो तो उसके लिये अपने आहार में सुधार करना अनिवार्य है। हमारा भोजन न्यायुक्त उपायों से उपार्जित किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देकर प्राप्त किया हुआ, सात्विक गुणयुक्त तो होना ही चाहिये, पर साथ ही यह भी ध्यान रखा जाय कि यथासम्भव स्वाभाविक और प्राकृतिक अवस्था में भी हो। परम्परा और पुराने अभ्यास को देखते हुए आज हम यह तो नहीं कह सकते कि मनुष्य आग पर पकाये भोजन को पूर्णतया त्याग कर केवल फल, मूल और पत्तों का ही उपयोग करने लगे, पर हम यह अवश्य कहेंगे कि पके हुये भोजन के परिमाण में कमी करके उसके साथ में कच्चे फूल, शाक, पत्तों का व्यवहार अवश्य करना चाहिए और अपनी शारीरिक और आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए प्राकृतिक भोजन का परिमाण क्रमशः बढ़ाते चलना चाहिये।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि अन्न, दूध, फल, मूल और पत्तों का सादा भोजन आध्यात्मिकता की प्राप्ति में सहायक होता है। जबकि कृत्रिम पदार्थ, मिर्च-मसाले से युक्त उत्तेजक भोजन, घी-तेल-चीनी-मैदा आदि के बने गरिष्ठ पकवान मनुष्य में शारीरिक और मानसिक विकार उत्पन्न करके उसे पतनकारी मार्ग में ढकेलते हैं, तब प्राकृतिक भोजन का उचित परिमाण में व्यवहार करना शरीर और मन को स्वस्थ रखते हुये आत्मोत्थान के मार्ग को भी प्रशस्त करेगा। हमको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आजकल के मनुष्य जो भोजन और विषय की दृष्टि से असंयमशील हो गये हैं उसका एक कारण यह भी कि वे स्वाद और चटोरेपन के वशीभूत होकर कृत्रिम उपायों से स्वादिष्ट, चटपटे बनाये गये खाद्य पदार्थों को आवश्यकता से अधिक खाते रहते हैं। इससे उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और उनकी मनोवृत्तियाँ विकार-युक्त हो कर पाप-मार्ग की ओर प्रवृत होने लगती हैं। इसलिये आध्यात्मिकता के अभिलाषी को अन्य सत्कर्मों और सदाचरणों के साथ आहार की शुद्धता, पवित्रता और प्रकृति अनुकूल होने का भी ध्यान रखना आवश्यक है। वे लोग भूल में हैं जो चौके-चूल्हे और छूआछूत के नियमों का पालन करने को ही पवित्रता और धार्मिकता का प्रमाण समझ लेते हैं। वास्तविक महत्व अपने परिश्रम की न्यायमुक्त कमाई से प्राप्त किया भोजन का है, जिसको हिताहार और मिताहार की दृष्टि से ग्रहण किया जाय। वही मनुष्य को सात्विकता और आध्यात्मिकता की दृष्टि से उच्च बना सकता है।

अनुष्ठान में सात्विक आहार की आवश्यकता

अनुष्ठान करने वालों को अनेक समय यह दुविधा होती है कि थोड़े समय के अनुष्ठानों में फल, मेवा, दूध, मठा, आदि खाकर काम चल जाता है, पर जब लम्बा अनुष्ठान करना हो तो कौन-सा आहार लेना चाहिये ? इस प्रकार का प्रश्न सामने आने से लोगों को बड़ी कठिनाई होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुष्ठान की दो मुख्य बातें (१) ब्रह्मचर्य और (२) आहार हैं। अनेक साधक ब्रह्मचर्य के पालन में इसी कारण असफल हो जाते हैं, क्योंकि वे खाने-पीने में अ-ब्रह्मचारियों की तरह रहा करते हैं। यह प्रयत्न गर्मी की ऋतु में जाड़े की ऋतु का अनुभव करने की इच्छा के समान ही है। संयमशील और स्वच्छन्दी—भोगी और त्यागी के जीवनों में अन्तर होना चाहिये। इन दोनों प्रकार के आचरणों का परिणाम विभिन्न प्रकार का होना अनिवार्य है। आँखों का प्रयोग दोनों करते हैं, पर ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है और भोगी नाटक-चेटक में लीन रहता है। दोनों कान का उपयोग करते हैं, पर एक ईश्वर भजन सुनता है और दूसरा विलास के गीतों पर ध्यान देता है। दोनों जागरण करते हैं, पर एक जागृतावस्था में हृदय मन्दिर में बिराजने वाले राम की नियम करता है, दूसरा नाच रंग की धुन में डूबा रहता है। दोनों भोजन करते हैं—एक शरीर रूपी इंजन को चलाने के लायक कोयला पानी डाल देता है, दूसरा स्वाद की खातिर देह को अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरकर दुर्गन्धित कर देता है। इस प्रकार दोनों के आचार-विचार में अन्तर रहता है, जो निरन्तर बढ़ता ही जाता है, घटता नहीं।

अनुष्ठान के अवसर पर शास्त्रों में सात्विक और पौष्टिक आहार ग्रहण करने को लिखा है। इसमें अनेक साधकों को लम्बे उपवास के समय आहार निश्चित करने में बड़ी दिक्कत जान पड़ती है। इस सम्बन्ध में अपने निजी अनुभव के आधार पर मैं कुछ बतला सकता हूँ जिससे साधकों को कुछ सहायता मिल सकती है।

अनेक व्यक्ति अनुष्ठानों के समय छाछ और दूध आदि पर रहते हैं, पर इससे वायु, बादी, दस्त या कब्ज आदि के उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में पेट को ठीक रखने के लिये त्रिफला या तरल पैरेफीन का प्रयोग करना होता है। पैरेफीन से आतें नरम रहकर निद्रा आने की संभावना कम हो जाती है। खाली दूध बहुत से लोगों को पसन्द नहीं आता। ऐसी हालत में दूध केला और चीनी मिलाकर तथा जायफल, काली-मिर्च, आदि मसाले डालकर काम में लाया जा सकता है अथवा उसमें उबला हुआ सकरकन्द मिलाकर खाया जा सकता है। इसी प्रकार पक्के आम को भी दूध में मिलाकर खाया जा सकता है। ये सब चीजें गरम दूध में ही डालनी चाहिए। दूध ठंडा होने से वायु और बादी की संभावना रहती है।

दही का प्रयोग भी कई तरह से किया जा सकता है। उसमें केला, चीनी, इलायची, जायफल मिलाकर खाया जा सकता है अथवा हरी मिर्च, अदरक और हरा धनियाँ मिलाकर काम में लाया जा सकता है। साबूदाना को धोकर पाँच-छः घण्टे तक दही में भिगोकर और हरी मिर्च, अदरक, नीबू आदि मिलाकर खा सकते हैं।

गरमी के दिनों में नीबू का शरबत, हरे फल, मेवा, कच्चे नारियल का पानी, गुड़ तथा इमली का पानी, लस्सी आदि का सेवन अधिक हितकारी और शांतिदायक होता है अथवा गाजर, करम-कल्ला (पातगोभी) टमाटर, अनार, जामुन आदि फलों का मिश्रित कचुम्बर बनाकर और उसमें हरा धनियाँ, मिर्च, अदरक नीबू, खांड आदि मिलाकर प्रयोग में ला सकते हैं।

लम्बे अनुष्ठान के समय प्रायः कमजोरी आ जाती है। ऐसी अवस्था में खजूर को धोकर उसका बीज निकालकर, घी में तलकर खाना चाहिए अथवा मूँगफली का दाना भूनकर कूटकर उसमें गरम घी, गुड़ और अदरक मिलाकर खाया जा सकता है।

इन चीजों में नमक का मिलाना या न मिलाना अपनी इच्छा पर है। पर नमक का त्याग कर देने से साधक को सूक्ष्म तत्व में प्रवेश करने में सुविधा रहती है। इसके सिवा अन्न का आहार त्याग देने पर नमक की आवश्यकता भीं नहीं रहती।

अनेक साधकों को सात्विक भोजन करने पर भी स्वप्नदोष हो जाता हे। इसके लिये प्रतिदिन प्रातःकाल तुलसी के रस को शहद में मिलाकर खाना चाहिए। इसके सिवा टमाटर का सूप (टमाटर को पानी में उबालकर उनका रस निकालकर, काली मिर्च मिला दी जाय) पीने से पेट की बदहजमी और कोष्ठबद्धता दूर होती है और खून भी स्वच्छ होता है। ऐसी अनेक वस्तुओं का उपयोग सर्वसाधारण कर सकते हैं, जिनसे सात्विक आहार का अभ्यास हो जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार तपश्चर्या के चमत्कारी परिणाम

कल्प साधना का प्रमुख उद्देश्य है दृष्टिकोण को सुधारना एवं व्यक्तित्व को उभारना। सच्चा अध्यात्म अपने प्रयोक्ता को उसी दिशा में अग्रसर करता है। इसके समस्त विधि-विधानों का लक्ष्य बिन्दु यही है। जहाँ ध्यान धारणा आस्था क्षेत्र में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापनाओं का पथ-प्रशस्त करती है वहाँ तप साधना कुसंस्कारी आदतों के खरपतवार को उखाड़ती और उसके स्थान पर महामानवों जैसे व्यक्तित्वों का नव-निर्माण कर दिखाती है। इस महान जागरण की फलश्रुतियाँ ही स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि के रूप में हस्तगत होती हैं।

कल्पकाल में साधक द्वारा ग्रहण किये जाने वाले सात्विक आहार में इसी उद्देश्य, ज्ञानयोग और भक्तियोग का सुपाच्य सिद्ध होने वाला समन्वय किया गया है। उसे इस प्रकार के सन्तुलित आहार की तरह परोसा जाता है जिसमें काया के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों का समावेश है। कल्प प्रक्रिया में शरीर को तपाने, मन को साधने और अन्तःकरण को बन्धनमुक्त करके—विराट् के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकने योग्य व्यापक बनाया जाना है। इसे स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर और कारण शरीर का समन्वित उत्कर्ष उपक्रम भी कहते हैं।

कल्प-साधना का प्रथम चरण है आहार शुद्धि। सर्वविदित है कि अन्न से क्रमशः रस, रक्त, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य बनते-बनते अन्ततः उसी का अन्तिम परिपाक मन के रूप में होता है। मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है। नाक, कान, आँख की तरह मस्तिष्क भी एक अवयव है, भले ही वह खोपड़ी की पिटारी में बन्द ही क्यों न रहता हो। मस्तिष्क के आधार पर ही हमारा चिन्तन चलता है। उसी के निर्धारण दृष्टिकोण कहलाते हैं। बुद्धि एवं चित्त भी उसी के कुछ विशेष स्तर हैं। समूचे शरीर को तराजू के एक पलड़े पर और मात्र मस्तिष्क को दूसरे पलड़े पर रखा जाय तो मस्तिष्क ही अधिक वजनदार सिद्ध होता है।

'जैसा खाय अन्न वैसा बने मन वाली उक्ति स्वयं सिद्ध है। तमोगुणी, गरिष्ठ, दुष्पाच्य, अभक्ष्य आहार करने वाले शरीर में भी रोग-क्रान्त विकृतिग्रस्त रहते हैं—भले ही वे देखने में मोटे मजबूत दिखाई पड़ें। भुने, तले, मसाले वाले, नशीले, दूसरों को पीड़ा देकर उपलब्ध किये गये खाद्य पदार्थ पाचन क्षेत्र को खराब करते हैं। इस सड़न से विषाक्तता उत्पन्न होती है और वह रक्त के साथ घूमती-फिरती जहाँ कहीं भी टिक जाती है वहीं किसी न किसी प्रकार का रोग उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार स्वास्थ्य के बनने-बिगड़ने का प्रधान कारण आहार ही सिद्ध होता है। विहार की बात तो इसके बाद आती है।

शारीरिक स्वास्थ्य की तरह मानसिक स्वास्थ्य का प्रश्न है। उस पर भी अन्न का बुरा प्रभाव असाधारण रूप से पड़ता है। नशेबाजों के गुण, कर्म, स्वभाव में निकृष्टता भरी रहती है। अभक्ष्य भोजियों में मनोविकारों की भरमार उबलती रहती है। उनका न तो मन एकाग्र होता है और न चित्त ही शान्त रहता है। ऐसी दशा में आत्मिक प्रगति का आधार ही लड़खड़ा जाता है। जिन्हें वस्तुतः इस क्षेत्र में प्रवेश करना है, उन्हें सर्वप्रथम आहार शुद्धि पर ध्यान देना पड़ता है। यात्रा यहीं से आरम्भ होती है। ऋषियों के आहार का यदि पर्यवेक्षण किया जाय तो प्रतीत होता है कि उन्होंने इस सन्दर्भ में असाधारण सावधानी बरती और संयम अपनाया। पिप्पलाद ऋषि मात्र पीपल के फलों पर निर्वाह करते थे। कणाद का नाम ही इस आधार पर पड़ा है। वे जंगली धान्य के कण संचित करके उदर-पूर्ति करते थे। फल, दूध, शाक पर तो अभी भी कितने ही लोग निर्भर रहते हैं। कइयों ने अंकुरित, अधपके अथवा उबले अन्नों को अपना आहार बनाया है। यह साधना का प्रथम सोपान है। अनुष्ठानों में उपवास का महत्त्व भी ब्रह्मचर्य के ही समान माना जाता है। उपवास काल में जो आहार लिया जाता है वह फलाहार न सही—निश्चित रूप से सात्विक स्तर का तो होता ही है। पर इतना भर कर पाना भी आज के औसत आदमी को कठिन जान पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि मनुष्य आहार-विहार के सम्बन्ध में अन्य प्राणियों की तरह प्रकृति अनुशासन को स्वीकार करे तो उसे उन अभिशापों से मुक्ति मिल सकती है जो मर्यादा उल्लंघन के फलस्वरूप पल्ले बँधते हैं। जब अन्य जीवधारी असुविधाओं और अभावों के बीच रहते, प्रसन्न सन्तुष्ट जीवन जीते और पूर्णायुष्य प्राप्त करते हैं तो मनुष्य ही आधि-व्याधियों से ग्रसित क्यों रहे ? इसमें अन्य किसी का कोई दोष नहीं। अपनी इन्द्रिय लिप्सा और उच्छृंखलता है जो अपने लिए आप खाई खोदती और स्वयं ही गर्त्त में गिरकर अपने हाथ-पाँव आप तोड़ती है।

कल्प साधना में प्रथम पाठ आहार-विहार में प्रकृति अनुशासन का समावेश करने और खाद्य पदार्थों को कम से कम भूनने-जलाने, यथासम्भव उनके प्राकृतिक रूप में ही उपयोग करने के रूप में अभ्यास कराया जाता है। अच्छा होता साधक फलाहार पर न सही शाकाहार पर' रह लेते। पर दुर्बल संकल्प वालों के लिए ढर्रे से जूझते हुए कंपकपी छूटते देखकर काम-चलाऊ निर्धारण यही किया गया है कि कम से कम अमृताशन का व्रत तो निभाया ही जाय। यह एक महीने की प्रताड़ना नहीं है वरन् भविष्य में आहार सम्बन्धी संयमशीलता अपनाने के लिए कराया गया प्रारम्भिक अभ्यास है। साधकों से आशा की जाती है कि वे इसे बन्दी मूक की विवशता या सामयिक प्रताड़ना न समझें, वरन् भविष्य में आहार सम्बन्धी मर्यादा पालन का अभ्यास मानें और यदि वस्तुतः स्वास्थ्य का महत्व समझा गया हो तो आहार-विहार का अनुशासन शेष जीवन में नियमित रुप से निभायें।

कल्पकाल में जो भी आहार लिया जाता है, उसके बारे में शर्त है कि वह कम से कम अग्नि संस्कार वाला उबला भर होना चाहिए। साथ ही उसमें, एक समय में एक या दो से अधिक का सम्मिश्रण न हो। नवरात्रि के उपवासों में जो फलाहार, शाकाहार, दूध, छाछ आदि पर नहीं रह सकते उन्हें अमृताशन का निर्देश दिया जाता है। उपवास की न्यूनतम मर्यादा यही है। अमृताशन का अर्थ है, उबला अन्न। दाल-चावल, दलिया, दाल आदि का सम्मिश्रण इस वर्ग में आता है। दाल के स्थान पर दूध या दही भी अधिक प्रयुक्त किया जा सकता है। साधना काल में यथासम्भव ऐसे ही आहार पर रहने की विधि है। उबले शाक भी इसी श्रेणी में आते हैं।

कल्प साधना के साधकों के लिये एक महीने एक अमृताशन का एक वर्ग नियत किया जाता है और पूरे महीने उसी क्रम को निबाहते रहने का निश्चय किया जाता है। रुचि प्रकृति और स्थिति को ध्यान में रखते हुए साधक और मार्गदर्शक परस्पर विचार विनिमय करके यह निर्धारित कर लेते हैं कि कल्प अवधि में क्या आहार चलेगा। उसका परिमाण कितना होगा और खाने का समय क्या रहा करेगा। यह आहार भी दिन में दो बार से अधिक नहीं लिया जा सकता। सैंधा नमक, काली मिर्च, नीबू, जीरा, हल्दी, अदरक जैसे हानिरहित मसाले अपवाद स्वरूप थोड़ी मात्रा में ही अमृताशन में मिलाये जा सकते हैं। लाल मिर्च, हींग, आमचूर, आचार जैसी उत्तेजक वस्तुओं का इस भोजन में पूर्णतया निषेध है।

शान्ति-कुन्ज में कल्प साधना सत्रों के साधकों के लिए भाप से भोजन पकाने की एक सामूहिक प्रक्रिया विकसित की गयी है। भाप बनाने वाले दो बॉयलर लगाये गये हैं। उनके साथ दो बड़े स्टीम चैम्बर हैं। चैम्बरों में अमृताशन पकाने के छोटे-छोटे भगौने रखने के लिए सौ खाने बने हैं। प्रत्येक साधक को स्टेनलैस स्टील की भगौनी, ढक्कन, थाली, गिलास आदि सभी सामान आश्रम की ओर से मिलता है। साधक अपने लिए निर्धारित अमृताशन, निर्धारित मात्रा में खाद्यान्न डालकर माताजी के सुपुर्द कर जाते हैं। सभी पात्रों में अभिमन्त्रित गंगाजल तुलसी पत्र डाला जाता है उन्हें एक साथ भाप चैम्बर में पकाने रख दिया जाता है। एक घण्टे बाद सभी साधक लाइन में आ जाते हैं और अपने नम्बर का भगौना लेकर वापिस चले जाते हैं। यही क्रम प्रातः सायं दोनों समय चलता है। मूँग की दाल, गेहूँ का दलिया, चावल, सैंधा नमक, कालीमिर्च सभी वस्तुयें शुद्ध, स्वच्छ करके बाजार से सस्ते भाव में आश्रम के सहकारी स्टोर में उपलब्ध होती हैं। दैनिक आहार का यही क्रम है। जिसकी लागत महीने में पचास रुपये से अधिक नहीं होती। पकाने का श्रम, ईंधन आश्रम की ओर से लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार के बाद विहार का क्रम आता है। विहार अर्थात् दिनचर्या। निर्वाह क्रम में बरता जाने वाला अभ्यास। कल्प साधना का दूसरा चरण यही है। आश्रम में दिनचर्या निर्धारित है। घड़ी की सुई की तरह नियमितता बरतने, हर काम समय पर करने में जागरूकता बरतने के लिए प्रत्येक साधक को बाधित किया जाता है। आलस्य प्रमाद के लिए कहीं कोई गंजाइश नहीं। सैनिकों की तरह चुस्ती, मुस्तैदी और फुर्ती अपनानी पड़ती है। नियत समय पर निर्धारित क्रम अपनाने के लिए हर किसी पर अंकुश रखा जाता है। अस्त-व्यत रहने की आदतों से ग्रसितों को प्यार से लेकर आँखें तरेरने के दबाव दिये जाते हैं और कहा जाता है कि आपको यहाँ सरकस के कलाकार प्राणियों की तरह अपने आपको सुगठित बनना है इसलिए पिछली अनगढ़ आदतों को इच्छा या अनिच्छा से छोड़ना ही चाहिए। सरकस के मनुष्यों एव मनुष्योत्तर प्राणियों को उनके प्रशिक्षक जितनी कड़ाई के साथ सिंखाते हैं उतना दबाब ही नहीं दिया जाता किन्तु घरेलू काम-काज की सहायता करने वाले बैल घोड़ों की तरह तो सीधी राह चलने के लिए तो अभ्यस्त कराया ही जाता है। कुसंस्कारी, अनगढ़ता को गुण, कर्म, स्वभाव का अंग बनाये रहने वाला व्यक्ति शारीरिक, मानसिक आर्थिक एवं परिस्थितिजन्य सुविधाओं से भरा-पूरा रहने पर भी दुर्गतिग्रस्त ही रहेगा उसका भविष्य कभी चमकने वाला नहीं है। प्रगतिशीलों में से प्रत्येक को सर्वप्रथम अपने ढर्रे को परिष्कृत स्तर का बनाना पड़ा है, मनःस्थिति बदलनी पड़ी है। इसके उपरान्त ही परिस्थितियों ने करवट बदली है। जो परिस्थितियों को अनुकूल बनाने सुविधा सफलतायें पाने के तो सपने देखते रहे किन्तु अपनी अनगढ़ आदतों को यथावत् बनाये रहे। उन्हें जितनी बड़ी महत्त्वाकांक्षा रही, उतनी ही गहरी निराशा के कुचक्र में भ्रमण करना पड़ा है।

विहार क्रम में यहाँ की नियमित दिनचर्या के अनुसार साधकों को प्रातः ३।। बजे उठना पड़ता है। जागरण की घण्टी यहाँ छावनी में बजने वाले बिगुल की तरह मानी जाती है जिसके निर्देश पर सभी को बिस्तर छोड़ देना चाहिए। शौचालय, स्नानघर इतने हैं कि किसी की प्रतीक्षा न करनी पड़े और दो सौ शिद्यार्थी एक घण्टे में उस नित्यकर्म से निपट लें। इसके बाद प्रातःकालीन साधना का क्रम एक घण्टा चलता है। ५।। बजे सभी माताजी के पास पहुँचते हैं। अखण्ड दीपक के दर्शन, औषधि कल्प पेय की एक प्याली, प्रज्ञापेय का एक कप—इतना प्रसाद ग्रहण करने के इस कृत्य में प्रायः आधा घण्टा लग जाता है। इसके उपरान्त छः से आठ तक साधना का क्रम चलता है। इसी बीच यज्ञ में सम्मिलित होने की अपनी पारी भी निपट जाती है। इस प्रकार आठ बज जाते हैं।

आठ बजे सभी साधक अपनी भगौनी अपना अमृताशन डालकर माताजी के पास पहुँचनते और उन्हें सुपुर्द करते हैं। इसके बाद एक घण्टे का स्वाध्याय चलता है। इसमें आत्म-शोधन, आत्म-परिष्कार और भविष्य निर्माण के तत्व जुड़े रहते हैं। किसे क्या पढ़ना चाहिए? इसका क्रम भी आहार, उपचार की तरह आरम्भ से ही निर्धारित कर दिया जाता है। सभी के पास पुस्तकें पहुँचती हैं और वापिस चली जाती हैं। यह व्यवस्था आश्रम की ओर से है। जिन्हें सुविधा है वे इच्छित पुस्तकें खरीद भी सकते हैं।

नौ बजे भोजन क्रम। सभी अपने पके हुए अमृताशन की भगौनी माताजी से लेकर वापस आते हैं और अपने-अपने कमरों में उसे खाते हैं। इस प्रकार दस बज जाते हैं। दस से बारह तक यों घोषित रूप से विश्राम का समय है, पर वस्तुतः उसे चिन्तन-मनन का समय कहना चाहिए। यह बिस्तर पर पड़े-पड़े भी हो सकता है। हर साधक का निवास स्वतन्त्र कमरे में रहता है। पति-पत्नी साथ हैं तो भी उन्हें पृथक्-पृथक् कमरों में रहना पड़ता है। यह व्यवस्था इसीलिए बनी है कि साधना, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन में दूसरे के साथ रहने से किसी प्रकार का विक्षेप न हो प्रातःकाल की नादयोग साधना और अपने कमरे में मार्गदर्शक का नियमित प्रवचन—उद्बोधन सुनने का लाभ भी एकान्त में, एकाग्र होने पर ही मिलता है। इसलिए ही साधकों को एक कमरा दिया जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। भले ही वह साइज में १० × १० का हा क्यों न हो।

प्रातः जो प्रज्ञापेय मिलता है। उसे जड़ी-बूटियों की बनी स्वादिष्ट साथ ही अधिक गुणकारी चाय कहा जा सकता है। यह वस्तुतः क्वाथ है, इसमें चाय का अंश नाम-मात्र को भी नहीं है। यह सभी को प्रातः ५।३० पर उपलब्ध होती है।

प्रत्येक साधक का उसकी शारीरिक-मानसिक स्थिति के अनुरुप दिव्य औषधि में से एक का जड़ी-बूटी कल्प निर्धारण कर दिया जाता है। महीने में प्रायः प्रतिदिन ५० ग्राम निर्धारित औषधि का कल्प कराया जाता है। प्रज्ञापेय के पूर्व यह घूँटी-पिसी स्थिति में हर साधक को मिलता है। दोनों ही की व्यवस्था दैनिक यज्ञ की तरह आश्रम की ओर से हर साधक के लिये बिना मूल्य की जाती है। सायंकाल साधक गंगा दर्शन के लिये जाते हैं तो अपनी-अपनी सुराही में गंगाजल भरते आते हैं, जिसका सेवन वे २४ घण्टे करते हैं।

कल्पकाल की अवधि में प्रारम्भिक और अन्तिम दिनों में क्या-क्या शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन साधकों में होते हैं, इनका विश्लेषण ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान के निष्णात चिकित्सकों द्वारा बराबर किया जाता है। माह में लगभग चार बार उन्हें जाँच-पड़ताल के लिए गंगातट अवस्थिति शोध संस्थान जाना पड़ता है। आदि, मध्य और अन्त में हुए परिवर्तनों को देखकर यह पता चलता है कि आहार, औषधि, साधना, प्रायश्चित्त, एकान्तवास, मनन-चिन्तन, संयम तपश्चर्या आदि से किसकी शारीरिक, मानसिक स्थिति में क्या अन्तर पड़ा। पिछले साधना सत्रों में अधिकाधिक साधक सात्विक आहार की फलश्रुति अपने जीवन-क्रम में प्रत्यक्ष देखकर गए। उनकी इन्द्रिय चेतना, स्फूर्ति और मस्तिष्कीय क्षमता में असाधारण वृद्धि हुई।

शान्तिकुन्ज में गंगा की गोद, हिमालय की छाया, प्रचण्ड प्राण ऊर्जा का सान्निध्य, मर्मज्ञों का मार्गदर्शन, दिव्य चेतना से भरा-पूरा वातावरण यह सभी मिल-जुलकर ऐसा माहौल बनता है जिसमें रहकर कोई व्यक्ति बिना किसी साधना के भी अपनी अस्त-व्यस्तता से मुक्ति पा सकता है। फिर आहार-कल्प, प्रज्ञापेय और औषधिकल्प का उसमें त्रिवेणी संगम मिल जाने से सच्चे अर्थों में रामायण की वह उक्ति लागू होने लगती है जिसमें "मंजुन फल देखिये तत्काला। वाक होहिं कपि वकहुँ मराला"।। प्रकृति न बदलते हुए भी प्रकृति बदल जाने की पूरी-पूरी सम्भावना हो सकती है। कल्प-साधना के ये प्राथमिक उपचार अवलम्बन हैं, जिनके सहारे साधक की मनोभूमि में असाधारण परिवर्तन आने की सम्भावना व्यक्त की गयी है।

आहार एवं औषधिकल्प के मूल सिद्धांत एवं व्यावहारिक स्वरूप

कल्प चिकित्सा को सामान्यतः आयुर्वेद के एक उपांग के रूप में ख्याति प्राप्त है। चिर पुरातन ग्रन्थों में कल्प के सम्बन्ध में एक ही द्रव्य या औषधि के प्रयोग से रोग निवारण एवं स्वास्थ्य सम्वर्धन के विविध प्रयोजन सिद्ध करने का वर्णन मिलता है। यह भी उद्धरण मिलते हैं कि कल्प का निश्चय करने वाले व्यक्ति कमजोर मनोभूमि के न हों। जो भी व्यक्ति अपनी व्याधि निवारण अथवा जीवनी-शक्ति के सम्वर्धन हेतु इसका प्रयोग करें उनकी इच्छा-शक्ति प्रबल होनी चाहिए, भले ही शरीर से वे दुर्बल ही क्यों न हों। आजकल ऐसे व्यक्ति ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। थोड़ा-सा अधिक दबाव पड़ने पर मनोभूमि कमजोर होकर चीं बोल जाती है और बहुसंख्यक व्यक्ति कल्प अवधि पूरी भी नहीं कर पाते। रहन-सहन का, खान-पान का स्तर व आदतें इन दिनों कुछ इस प्रकार की हो गयी हैं कि पुराना ढर्रा छूटता नहीं, नया क्रम अपनाते बनता नहीं। ऐसे में च्यवन की तरह जरा के यौवन में बदल जाने की कल्पना भी कैसे की जाय ?

सारी परिस्थितियों को एवं जिस परिसर से निकलकर साधक आये हैं, दृष्टि में रखकर सुगमतम निर्धारण करते हैं तो आहार में नियमन व भाँति-भाँति के सम्मिश्रण छोड़कर एक ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार पर गुजारा करने का कल्प का एक स्वरूप माना जा सकता है। जीवनक्रम के ढर्रे को झकझोरने तथा जो भी कुछ है उसी की मरम्मत काम-चलाऊ बना लेने तक को ही कायाकल्प मान लेना चाहिए। इससे कम में वे भ्रान्तियाँ मिटेंगी नहीं जो जन-मानस में कायाकल्प, दीर्घायुष्य, नवयौवन की प्राप्ति के विषय में संव्याप्त हैं। कल्प चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है—शारीरिक क्षय की गति को रोककर आहार क्रम बदलने तथा दिव्य शक्तिदायक औषधियों को ग्रहण करने के माध्यम से नवीन शक्ति का जागरण किया जाय। सूक्ष्म स्तर की साधनायें ऐसी परिष्कृत मानवी काया को ही प्रभावित कर आध्यात्मिक कल्प की प्रमुख भूमिका बनाती हैं। इसके अभाव में तो वे सभी उपचार निरर्थक हैं जो प्रसुप्त की जागृति व अन्तः की सामर्थ्य के जागरण के निमित्त किये जाते हैं।

आहार सम्बन्धी कुछ भ्रान्तियाँ एवं उनका निवारण

आहार से ही जीवन बनता है। अन्न एवं वनस्पतियाँ हमारे बाह्य कलेवर का प्राण हैं। इनके बिना शरीर रूपी वाहन चल नहीं सकता। प्राण में प्राणशक्ति न हो, हमारा मूल ईंधन ही अपमिश्रित हो तो कलवेर में गति कहाँ से उत्पन्न हो ? आवश्यकता इस बात की है कि अन्न प्राणवान बने, संस्कार दे तथा शरीर शोधन व नव-निर्माण की दुहरी भूमिका सम्पन्न करे। खान-पान सम्बन्धी आदतों ने आज अन्न को विकृत तथा शाक-वनस्पतियों को पूरी तरह दूषित कर दिया है। तला-भुना खाने, सुस्वादु भोजन ही लेने की मान्यताओं ने बहुसंख्य व्यक्तियों को रोगी बना दिया है। कुपोषण वही नहीं जो कम आहार या कैलोरी लेने से होता है, वह भी है जो विकृत आहार लेने से होता है। जिसे भोजन के रूप में अपने प्राकृतिक स्वरूप में ग्रहण किया जाना चाहिए था, उसे ही हम अशुद्ध बनाकर अपनी पाचन क्रिया बिगाड़ते, नाना प्रकार के रोगों तथा जरा को शीघ्र आमंत्रण देते हैं। इन मान्यताओं में परिवर्तन करने के लिए एक प्रकार की विचार क्रांति का ही स्वरूप बनाना होगा।

सभी जानते हैं कि नमक एक प्रकार का विष है। जितना भी शरीर को आश्यकता है, उतना अपने सहज रूप से अन्न से लेकर वनस्पति तक सभी में यह अनिवार्य तत्व विद्यमान है। उस पर भी यदि ऊपर से लिया जाय तो वह रक्त की सान्द्रता बढ़ाकर जीव कोष की क्रियाशीलता घटाता है, जीवन शक्ति को गिराता है तथा शरीर को रोगों का घर बनाता है। नमक में सोडियम क्लोराइड होता है और बाहर से लिए गये इस अतिरिक्त रसायन से मोर्चा लेने में हृदय, रक्त-परिवहन संस्थान तथा गुर्दे को कितना संघर्ष करना पड़ता होगा, इसकी कल्पना सामान्य जन कर भी नहीं सकते। वैज्ञानिकों का कथन है कि बाहर से लिए गये नमक को आहार से हटाकर निश्चय ही उन व्याधियों की संख्या कम की जा सकती है जो व्यक्ति को मृत्यु के मुँह में धकेलती हैं। इनमें उच्च रक्तचाप, एथेरोस्क्लेरोसिस, कैन्सर जैसी व्याधियाँ प्रमुख मानी जाती हैं। जीवनकोष अपने लिए निश्चित मात्रा-अनुपात में आवश्यक तत्वों का आदान-प्रदान 'सोडियम-पोटेशियम पम्प' के माध्यम से करते हैं। इन दोनों का झिल्ली की सतह पर आगमन ही 'सेल' को विद्युतीय चार्ज से युक्त करना है। इन आवेशों के कारण ही 'सेल' सभी महत्वपूर्ण क्रियायें सम्पन्न कर पाते हैं। अतिरिक्त मात्रा में आया सोडियम जीव कोषों की झिल्ली पर विद्युत रसायन प्रक्रिया को अस्त-व्यस्त कर देता है और धीरे-धीरे इन कोषों की आयु कम होने लगती है। यदि समग्र कायाकल्प ही अभीष्ट है, काया को निरोगी बनाना है, जीवनी शक्ति को जूझने योग्य सामर्थ्यवान बनाना हो तो निश्चित ही इस कृत्रिम विष की आहार में मात्रा को या तो घटाना पड़ेगा या मनोबल दृढ़ हो तो उसे हटाना ही होगा। इससे कमजोरी आने की बात कहना तो मन को झुठलाना भर है। स्वादेन्द्रियों की दृष्टि को महत्व देने वालों की तो बात ही क्या करना ? वे तो अपने पक्ष के समर्थन में भाँति-भाँति के तर्क देते रहते हैं पर विचारशील मनीषी वर्ग यदि मन से विचार करे तो उसे प्रतीत होगा कि आहार में समुचित संशोधन अनिवार्य है। इसके बिना कायाकल्प करना तो दूर, उसका नाम भी नहीं लेना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नमक के अतिरिक्त एक अन्य पक्ष है आहार की विकृति। लोगों की मान्यता कुछ इस प्रकार की है कि जो पदार्थ स्वादिष्ट लगे, जिसका जायका बढ़िया हो, जिसमें घी, तेल, मिर्च-मसाले प्रचुर मात्रा में हों, जिसे देखते ही मुँह में पानी भर आये, वही भोजन ग्रहण करने योग्य है। ऐसे चटोरे लोग खाद्य सामग्री के सारे पोषक तत्वों को नष्ट कर मात्र कार्बन ही खाते हैं। भोजन अग्निहोत्र प्रक्रिया के समान है, जिसमें प्रदीप्त जठराग्नि में आहुति दी जाती है। जिस प्रकार यज्ञाग्नि में उपयुक्त-अनुपयुक्त, अशुद्ध और निषिद्ध किसी भी प्रकार की आहुति देने से सुफल की आशा नहीं की जा सकती वरन् हानि एवं दैवी अभिशाप की ही सम्भावना अधिक रहती है उसी प्रकार क्षुधा की ज्वाला में अखाद्य, अशुद्ध, अग्राह्य हवि निश्चित ही रोगों को दिया गया आमत्रंण है, जिसे जीवन देवता का अभिशाप भी मान सकते हैं।

इसी प्रकार भोजन का अर्थ किसी तरह पेट को भरना नहीं है। जिस वक्त जो कुछ मिल जाय उल्टा-सीधा, अच्छा-बुरा पेट में डालकर इस पापी की आग बुझाना एक प्रकार से गलत दृष्टिकोण है। भोजन की उपेक्षा करने वाले भी उतने निन्दा के पात्र हैं, जितने स्वाद के नाम पर विकृत आहार लेने वाले।

यदि पकाने में अग्नि संस्कार कम से कम लिया जाय और मात्र हल्की आग पर खाद्य वस्तुओं को उबालने तक की ही चूल्हे की भूमिका मान ली जाय तो अन्न को, वनस्पतियों को बिगड़ने से काफी कुछ बचाया जा सकता है। तलना, भूनना, एक प्रकार से खाद्य की जीवनी-शक्ति को नष्ट कर देना है। उबालने का श्रेष्ठतम तरीका भाप के सहारे पकाने का है। इसमें खाद्य पदार्थों की मूल सामर्थ्य नष्ट नहीं होती। प्रेसर कुकर-सादे कुकर की व्यवस्था से भोजन पक सके तो इससे श्रेष्ठ कोई विधि नहीं। यह पूर्णतः वैज्ञानिक है तथा महत्त्वपूर्ण घटकों से बिना छेड़छाड़ किये उन्हें परिपाक के योग्य बनाने वाली प्रक्रिया है। शांतिकुन्ज की कल्प चिकित्सा में इस प्रक्रिया से ही आहार पकाया जाता है। बॉयलर व्यवस्था से पकाया अन्न पूर्णतः सात्विक, पौष्टिक, सुस्वादु तथा हाइजिनिक होता है, यह सभी जानते हैं व अनुभव भी करते हैं।

आहार विषयक एक और त्रुटिपूर्ण मान्यता है जिसे मात्र सनक ही कहा जा सकता है। थाली में अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ हों, यह प्रदर्शन करने वाले को सुहा सकता है, आमाशय व आँतों को यह स्वीकार नहीं। कटोरियों व वस्तुओं की संख्या जितनी कम होगी, पेट को उतनी ही सुविधा रहेगी। आमाशय व आँतों का भी अपना कुछ क्रम है। वहाँ शीघ्र पचने योग्य वस्तुएँ तुरन्त अवशोषित हो जाती हैं, कई ऐसी होती हैं जो धीरे-धीरे पचती हैं। यदि ऐसी विपरीत स्वभाव वाली वस्तुओं को एक साथ ग्रहण कर लिया गया तो एक हाँड़ी में कई प्रकार के खाद्य-पदार्थ हो जायेंगे। आधी कच्ची आधी पकी प्रक्रिया से रक्त में अनिवार्य घटक भी अधूरे घुलेंगे। इतना ही नहीं शेष अधपचे आहार से आंत्र-संस्थान में जो क्रान्ति मचेगी, उनकी पीड़ा तो नित्य भुगतने वाले ही जानते हैं। अपच, खट्टी डकारें, भोजन के उपरान्त तुरन्त शौच आना, आँव सहित पतले दस्त, उदर शूल-इसी की प्रतिक्रियायें हैं। यदि भाँति-भाँति के सम्मिश्रण से बचा जा सके, एक या दो आहार तक स्वयं को सीमित कर लिया जाय तो इससे श्रेष्ठ कोई सरल साधन साधक के लिए नहीं है। साधकों के लिए आहार की चर्चा, में कुछ और भी तथ्य जानने योग्य हैं। पेट खराब करने वाली आदतें ऐसी हैं जो अचेतन के अभ्यस्त ढर्रे में ढल जाती हैं, फिर सरलता से निकलती नहीं। बिना पूरी तरह चबाये जल्दी-जल्दी ग्रास निगल जाना, साथ ही पानी का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग, बार-बार कुछ न कुछ उदरस्थ करते रहना तथा आधे मन से नाक-मुँह सिकोड़ते हुए भोजन करना; अत्यधिक हानिकारक मानी गयी चार आदतें हैं। इनके विषय में विस्तार से न लिखकर इतना बता देना भर ही पर्याप्त होगा कि जहाँ तक हो सके कल्प के साधक इनसे बचें व आहार साधना को अन्य साधना जितना ही महत्त्व दें। इतना करने पर ही आगे के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को व्यवहार में उतार पाना सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिभाएँ यह तथ्य समझें-समझायें

मौलिक या आरम्भिक रूप में हर वस्तु कच्ची या अनगढ़ होती है। इसे प्रयत्न-पूर्वक सुन्दर-समुन्नत बनाना पड़ता है। खदान में से लोहा या सोना मिट्टी मिले हुए सामान्य स्थिति में मिलता है। उन्हें धधकती भट्टी में गलाकर शुद्ध स्थिति में पहुँचाया जाता है। इस गली हुई धातु में से जो उपकरण बनाने होते हैं, उनकी तदनुरूप साँचे में डालकर ढलाई की जाती है, तभी औजारों या आभूषणों के रूप में उनकी उपयोगिता सिद्ध हो पाती है। इस प्रक्रिया में से गुजरे बिना उनका मूल्यांकन हो ही नहीं पाता। मिट्टी को गीली करके उससे जो बनाया जाय, वह कच्चा ही होता है। कुम्हार चाक पर घुमाकर उसको शक्ल तो दे सकता है, पर वह निर्माण कच्चा ही रहता है। ठोकर लगने पर टूट जाता है, पानी पड़ने पर गल जाता है। उसे यदि चिरस्थाई एवं सुदृढ़ बनाना हो, तो अवे की आग में पकाये बिना और कोई चारा नहीं। पकने वाले को इसमें असुविधा हो सकती है, पर उससे बच निकलने का और कोई विकल्प है नहीं। परिष्कृतता प्राप्त करने के लिए तपाने-तपने के अतिरिक्त और किसी तरह समर्थता विनिर्मित होती नहीं।

तप का माहात्म्य आचार्यजनों और आप्तजनों द्वारा विस्तारपूर्वक बताया गया है। तपस्वी ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं, स्वर्ण और मुक्ति जैसी समुन्नत स्थिति में पहुँचते हैं। ऋषिकल्प मनस्वियों का सुसंस्कृत इतिहास इसी आधार पर विनिर्मित हुआ। वे उत्पन्न तो सामान्यजनों जैसी परिस्थिति में ही हुए पर अपनी तप-साधना द्वारा धरती पर रहकर भी स्वर्ग लोक में निवास करने वाले देवमानवों जैसे बन गये, दिव्य सम्पदाओं, विभूतियों और शक्तियों के अधिष्ठाता बने। कहा जाता है, कि तप के बल पर ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपने सुविस्तृत दायित्व वहन करते रहने में समर्थ होते हैं। तपस्वी भागीरथ ने गंगा को धरती पर उतार कर दिखाने का श्रेय पाया था। दधीचि की अस्थियाँ इन्द्रवज्र जैसी शक्तिवान तभी सिद्ध हुईं जब वे दीर्घकालीन तप—साधन कर चुके। तपस्विनी पार्वती ने शिव को वरण कर सकने जैसे कठिन कार्य में तभी सफलता पायी, जब वे कठोर तप की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकीं। ध्रुव, प्रहलाद, की तपश्चर्या प्रसिद्ध है। सप्तऋषियों की वरिष्ठता इसी आधार पर मिली भी। अपने समय में भी महर्षि अरविंद, रमण, पौहारी बाबा आदि की साधनाओं द्वारा उत्पन्न हुए प्रतिफल का गंभीरतापूर्वक मूल्यांकन किया जाता है।

पानी को गरम करने से वह भाप बनता है और बादलों के रूप में बरसता है। वाष्पीकृत जल ही स्टीम इंजन चलाता है, प्रेशर कुकर के रूप में अपनी उपयोगिता दिखाता है। चिकित्सा के काम आने वाली बहुमूल्य रसायनें तभी बनती हैं, जब उनके अग्नि संस्कार होते हैं। तपाने, पकाने पर ही अनगढ़ खाद्य स्वादिष्ट व्यंजनों के रूप में परिणत होता है। सूर्य की ऊर्जा तप से उपजी है। प्राणियों और वनस्पतियों में प्राण संचार करने में समर्थ होती है। घोर शीत के रहते तो जीवन का किसी रूप में उदय संभव नहीं हो पाता। सौर मण्डल के दूरवर्ती ग्रह-उपग्रह इसी कारण निर्जीव हैं कि उन तक सूर्यताप अभीष्ट मात्रा में पहुँच नहीं पाता।

मनुष्य जीवन पर तो यह बात शत-प्रतिशत घटित होती है कि तप-साधना अपनाकर ही प्रगतिशीलता और वरिष्ठता का लाभ उपलब्ध होता है। शरीर का स्वाभाविक तापमान घटने पर निष्क्रियता आ दबोचती है और मृत्यु आ धमकती है। ताप आवश्यक है। विषाणु उसी के प्रभाव से मरते हैं। धूप पाकर ही उद्यान में फूल खिलने और फलने लगते हैं।

उच्च उद्देश्यों के लिए किया गया पराक्रम या कष्ट सहज ही तप है। इसका प्रतिफल प्रत्येक महान प्रयोजन में नियोजित हुआ देखा जाता है। आलसी-प्रमादी किसी प्रकार मौत के दिन पूरे करते हैं, जबकि साहस के धनी पुरुषार्थपरायण अपनी प्रचण्ड लगन और पुरुषार्थ के आधार पर तेजी से आगे बढ़ते और तूफान की तरह ऊँचे उठते हैं।

प्रतिभा परिष्कार की उपयोगिता-आवश्यकता समझने वालों को इसके लिए सहमत किया जाना चाहिए कि वे किसी प्रकार ढर्रे का जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीकर दिन गुजारते रहने की सरल प्रक्रिया अपनाये रहने तक संतुष्ट न रहेंगे, वरन् आदर्शों के परिपालन में तत्परता बरतने और कटिबद्ध होने के लिए अपनी संकल्प शक्ति का समग्र प्रयोग करेंगे।

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर एक ही तथ्य उभरकर सामने आता है कि जितने आदर्शवाद की दिशा धारा अपनाने के लिए कठोरतापूर्वक आत्मानुशासन बरता, जो अवांछनीयताओं से डटकर जूझे, जिनने नव-सृजन के लिए प्राणपण से प्रयत्न किये, वे ही ऐसा श्रेय अर्जित कर सके जिसे अभिनन्दनीय या अनुकरणीय कहा जा सके। महामानव बनने की बात इससे कम में बनती नहीं। जो इसके लिए कटिबद्ध, प्रयत्नरत है, उसे और कुछ करने की आवश्यकता नहीं।

तपश्चर्या का एक स्वरूप एकान्त साधना और कष्टसाध्य तितीक्षा का भी है, पर वह हर किसी के लिए अनिवार्य नहीं। सदुद्देश्यों के लिए प्रचंड पुरुषार्थ भी एक प्रकार का सर्वसुलभ तप है। उसे अपनाकर असंख्य लोकसेवी अपना और संसार का भला करने और हर दृष्टि से धन्य बनने में समर्थ हुए हैं। गान्धी, विनोबा, विवेकानन्द, दयानन्द जैसों की तपश्चर्या सेवा-संदर्भ से ही जुड़ी रही, उनने अपने को इतना परिष्कृत किया कि उनका व्यक्तित्व दूसरों पर गहरी छाप छोड़ सके और अपनाये हुए कठिनाइयों से भरे मार्ग पर अनेकों को चला सकने में सफल हो सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोक मंगल के लिए इतना सृजनात्मक प्रयास पुरुषार्थ किया कि उसका प्रभाव बहुमुखी अभ्युदय के रूप में सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत हुआ।

आपत्ति काल में एकान्त साधना से भी बढ़कर सेवा साधना का महत्त्व बन जाता है। अग्निकाण्ड, भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष, महामारी आदि की विपत्तियों से जन समुदाय को बचाने के लिए जो भावनापूर्वक जुटते और उदार सेवा साधना का परिचय देते हैं, उन्हें आत्म-संतोष भी मिलता है और लोक सम्मान भी। साथ ही दैवी अनुग्रह का प्रत्यक्ष रसास्वादन करने का अवसर भी हाथों-हाथ उपलब्ध होता है। तप साधना का भी अन्तिम लक्ष्य यही है। ऋषि ने देवदूत के प्रश्न का उत्तर देते हुए अपनी आन्तरिक आकांक्षा इतने भर में व्यक्त कर दी कि उन्हें स्वर्ग नहीं चाहिए, न राज्य चाहिए न मुक्ति। मात्र इतनी इच्छा है कि दुख-दैन्य से घिरे हुए प्राणियों की व्यथा-निवारण के कुछ काम आ सके। वस्तुतः ऐसे ही देवात्मा बिना कन्दराओं के खोजे, जनसाधारण के बीच रहते हुए अपनी उदारता का परिचय देते हुए उसी पद को प्राप्त करते हैं जो तपस्वियों के लिए निश्चित है, निर्धारित है।

आत्म-परिष्कार और लोक-परिष्कार की संयुक्त साधना ऐसी है, जिसे अपनाकर काम-काजी व्यक्ति भी सामान्य जनों जैसा गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी अपने साथ अनेकानेकों की प्रतिभा परिष्कार कर सकने में सफल, समर्थ हो सकता है। यह युग संधि का आपत्ति काल है। इसमें अवांछनीयताओं से जूझना आपत्तिधर्म है। साथ दो वातावरण को सुधार-परिष्कार की ऊर्जा से भर देना भी महत्त्वपूर्ण कार्य है। इन दिनों प्रक्रिया को प्रतिभा परिष्कार के लिए अपनाया जाना चाहिए।

तपश्चर्या द्वारा दिव्य सामर्थ्यों का उन्नयन

आसुरी प्रवृत्तियों की जब प्रबलता हो जाती है धर्म का पलड़ा हल्का पड़ जाता है तो संसार में कष्ट बहुत बढ़ जाते हैं। मनुष्य ही नहीं अन्य प्राणी भी दुःख पाने लगते हैं। उस विपन्न अवस्था को दूर करने के लिए दैवी शक्तियों का जो प्रादुर्भाव होता है उसे अवतार कहते हैं। अवतार के कार्य प्रत्यक्ष दीखते हैं पर इससे पूर्व उस अवतरण के लिए कोई महान धर्मानुष्ठान नियोजित होते हैं और उन आध्यात्मिक उपचारों के फलस्वरूप ही अवतारों का प्रत्यक्ष कार्य दृष्टिगोचर होना संभव हो पाता है।

संसार के पाप-ताप के लिए स्वर्ग लोक से उतरकर गंगाजी पृथ्वी पर आईं। शिवजी ने उन्हें अपनी जटाओं में धारण किया। यह प्रत्यक्ष प्रकृया लोकविदित है। पर इस गंगावतरण के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीछे भागीरथ की तपस्या ही प्रधान है। यदि भागीरथ जी तप करने खड़े न होते तो गंगावतरण का होना तथा उसके द्वारा भूतल के समस्त प्राणियों को सुख पहुँचाना संभव न हुआ होता।

दुर्गा का अवतार तथा उनके द्वारा असुरों के संहार की कथा पुराणों में विस्तारपूर्वक कही गई है। पर उसका श्रेय देवताओं की थोड़ी-थोड़ी तपस्या का एक स्थान पर एकीकरण ही है। यदि देवताओं ने वह तप और त्याग न किया होता तो दुर्गाजी कहाँ से आतीं ?

भगवान राम के द्वारा असुरों का शमन हुआ यह ठीक है। पर राम जन्म के पीछे स्वयंभू मनु और शतरूपा रानी का तप, दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ ही प्रधान है। सीता जन्म के सम्बन्ध में कथा है कि ऋषियों ने अपना थोड़ा-थोड़ा रक्त एक घड़े में जमा करके भूमि में गाढ़ा और वह रक्त ही कालान्तर में परिपक्व होकर सीता के रूप में जनक को हल जोतते समय प्राप्त हुआ। ऋषियों का रक्त ही सीता बनकर असुरों के विध्वंस का हेतु बना।

इन्द्र ने वज्र जैसा अचूक अस्त्र बनाया और उस वज्र से असुरों का संहार आसानी से कर लिया। पर वह वज्र था क्या ? तपस्वी दधीचि की हड्डियाँ ही रूपान्तर से वज्र बनी थीं। तप का समावेश हुए बिना संसार की कोई भी धातु या वस्तु इतनी शक्तिवान नहीं थी जिससे इन्द्र 'वज्र' बना सका होता। विवशता से ही इन्द्र को ऋषि की हड्डियाँ माँगनी पड़ी।

भगवान कृष्ण को जन्म देने के लिए वासुदेव देवकी ने कितनी कठोर तपस्या की थी, यह पुराणों में विस्तारपूर्वक बताया गया है।

सिद्धि-बुद्धि दाता गणेश मनुष्यों में सद्ज्ञान का, शुभ-लाभ का वरदान देते हैं, पर वह गणेश हैं क्या ? तपस्विनी पार्वती तथा योगेश्वर शंकर जी की तप साधनाओं का एकीकरण पिण्ड ही गणेश हैं।

धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने वाली अवतारी आत्माएँ यों ही अवतरित नहीं होतीं। उनके पीछे तपस्वियों की तपस्या एवं साधकों की साधनाएँ ही छिपी होती हैं। अनेक बार यह कार्य अमैथुनी प्रकृया द्वारा पूर्ण होते हैं जैसे सीता जन्म, गंगावतरण, इन्द्र वज्र निर्माण, दुर्गा अवतार आदि। कई बार ऐसी आत्माओं को जन्म देने के लिए माता या पिता का तप साधारण मानवी प्रकृया द्वारा नर तन में जन्म धारण करता है। भगवान राम और कृष्ण का जन्म उनके माता-पिता की तपस्याओं का ही सत्परिणाम है। इस प्रकार के असंख्य उदाहरण इतिहास में, पुराणों में उपलब्ध हैं कि साधुता के परित्राण और दुष्कृतों के विनाश के लिए जन्म लेने वाले महापुरुषों या महान आन्दोलनों के पीछे किन्हीं तपस्वी आत्माओं की तप साधना ही काम करती है। भारत को स्वाधीनता दिलाने वाला स्वाधीनता आन्दोलन महात्मा गाँधी जी की तपस्या का प्रतीक है। विश्व में अहिंसा की महत्ता की ध्वजा फहराने वाला महान आन्दोलन भगवान बुद्ध के तप का मूर्त रूप कहा जा सकता है।

जिन आन्दोलनों के पीछे तप नहीं होता वह कुछ समय के लिए तूफान भले ही मचा लें पर अन्त में वे असफल हो जाते हैं। जिन आत्माओं के पीछे तपस्या नहीं रहती वे कितनी ही चतुर, चालाक, गुणी, धनी क्यों न हों, महापुरुषों की श्रेणी में नहीं गिनी जा सकतीं। वे मनुष्य, जिन्होंने मानव जाति को ऊँचा उठाया है संसार की अशान्ति को दूर करके शान्ति की स्थापना की है, अपना नाम अमर किया है, युग प्रवाह को मोड़ा है, वे तप शक्ति से सम्पन्न रहे हैं। यों मनुष्य कई दृष्टियों से पशुओं से भी गया बीता है, पर वह अपने आत्मबल के आधार पर महामानव, ऋषि, देवता, अवतार एवं भगवान भी बन सकता है। मानव प्राणी की छिपी हुई महानता को प्रकट करने और उसके द्वारा अलौकिक कार्य करा लेने की क्षमता तप में ही है।

प्राचीनकाल में जब सन्तान की उपयोगिता को लोग समझते थे तब पति-पत्नी दोनों ही तपस्या में लगते थे। जिसे अपने घर में महापुरुष का जन्म अभीष्ट है, उसे तप की प्रतिष्ठापना करनी पड़ेगी। तप शक्ति विहीन नर-नारी बच्चे तो पैदा कर सकते हैं पर उनके द्वारा महापुरुषों का जन्म होना संभव नहीं। राष्ट्र की नई पीढ़ी तेजस्वी हो, महापुरुषों का जन्म

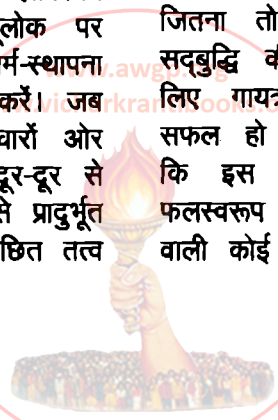
Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर-घर में हो। यदि यह आवश्यक हो तो घर-घर में तप साधना के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करनी पड़ेगी। तप शक्ति से परिपूर्ण मनुष्यों की आत्मशक्ति से ही ऐसे महान कार्य सम्पन्न हो सकते हैं जो भारत-भूमि में ही नहीं सारे भूमंडल में सुख-शान्ति की स्थापना करें।

प्रज्ञापुरश्चरण एवं आश्वमेधिक अनुष्ठान इस युग की महान तप साधना है। इतना बड़ा साधनात्मक आयोजन इस युग में अब तक नहीं हुआ। जिस साधना में लगभग एक-करोड़ नैष्ठिक साधक संकल्पपूर्वक संलग्न हों। इस साधना के फलस्वरूप विश्व शान्ति के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण होना निश्चित है।

इतने अधिक तपस्वियों द्वारा सर्वश्रेष्ठ साधना में संलग्न होना एक ऐतिहासिक घटना है। इस सामूहिक तप की शक्ति किरणें आकाश में वह सूक्ष्म तरंगें पैदा करेंगी जिनसे आकर्षित होकर ब्रह्मलोक में दिव्य आत्माऐं भूलोक पर आयें और अवतारों की जिम्मेदारी धर्म-स्थापना और अधर्म-शमन के कार्य को पूरा करें। जब पुष्प खिलते हैं और उनकी सुगन्ध चारों ओर फैलती है तो मधुमक्खियाँ तथा भौंरे दूर-दूर से खिंचकर चले आते हैं। इस अनुष्ठान से प्रादुर्भूत तपश्चर्या की दिव्य गंध में अपने मनोवांछित तत्व देखकर दैवी शक्तियों के अवतरित होने की परिस्थितियाँ बनेंगी। पूर्वकाल में भी अवतरों के आह्वान करने के लिये तप आयोजन करने पड़े हैं। किसी समय के मनुष्य इतनी प्रबल आत्मशक्ति से सम्पन्न थे कि उनके व्यक्तिगत प्रयत्न से ही बहुत कुछ कार्य हो जाता था। आज लोगों की आत्मिक दुर्बलता बढ़ गई है तो सामूहिक प्रयत्न काम देंगे। एक पहलवान तीन क्विंटल वजन उठा सकता है। पर यदि वहाँ कोई पहलवान न हो तो आठ कमजोर आदमी मिलकर भी उतना वजन उठा सकते हैं। प्राचीनकाल में भागीरथ जैसे एक तपस्वी गंगावतरण कर सकते थे। अब वैसे नैष्ठिक नहीं रहे, तो सवा करोड़ दुर्बल मानस के साधक मिलकर उस समय के एक साधक भागीरथ जैसा पुरुषार्थ तो कर ही सकते हैं। इतने साधकों का सम्मिलित बल उस समय के तपस्वी जितना तो ही ही सकता है। भारतभूमि पर सद्बुद्धि की ज्ञान गंगा का अवतरण करने के लिए गायत्री-परिवार रूपी भागीरथ बहुत कुछ सफल हो सकता है। हमें आशा करनी चाहिए कि इस अनुष्ठान की सामूहिक तपस्या के फलस्वरूप इस देश में युगान्तर उपस्थित करने वाली कोई शक्ति अवश्य उत्पन्न होगी।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्प साधना का सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार

प्रौढ़ साधकों के उपयुक्त प्रखर साधना

गायत्री महामन्त्र के अक्षरों में ब्रह्म विद्या का समस्त तत्वज्ञान बीज रूप से विद्यमान है। साधना विज्ञान की दृष्टि से विविध अनुष्ठानों, पुरश्चरणों एवं तप-साधनाओं का विशाल परिकर उसी के साथ समन्वित है। गायत्री का ज्ञान पक्ष—ब्रह्म विद्या और विज्ञान पक्ष वर्चस् कहलाता है। दोनों को मिलाकर ब्रह्मवर्चस् शब्द बनता है। यह आध्यात्मिक प्रौढ़ता और प्रखरता की पृष्ठभूमि बनाने वाली साधना है।

साधना का स्तर जैसे-जैसे ऊँचा उठता है वैसे ही वैसे उसमें अधिक तन्मयता और तत्परता का समावेश होता चलता है। सामान्य उपासना में जप और ध्यान पर्याप्त समझा जाता है। ध्यान आन्तरिक न बन पड़े तो प्रतिमा के सहारे प्रत्यक्ष दर्शन से भी वह काम किसी प्रकार चल जाता है। धीरे-धीरे जब स्तर बढ़ता है तो अनुष्ठानों और पुरश्चरणों के माध्यम से साधक को अधिक कठोर अनुशासनों में कसना आरम्भ कर दिया जाता है। सभी जानते हैं कि पुरश्चरणों में जप की संख्या का नियत होना ही पर्याप्त नहीं वरन् उनके साथ-साथ उपवास, ब्रह्मचर्य, भूमि शयन, अपनी सेवा आप करना जैसे प्रतिबन्ध लगते हैं और नियत समय, नियत, संख्या, अन्त में अग्नि-होत्र, ब्रह्म भोज आदि के कितने ही उपक्रम जुड़ जाते हैं। यदि वैसा कुछ न हो केवल अस्त-व्यस्त रीति से जप संख्या पूरी कर ली जाये तो पुरश्चरण का जो माहात्म्य बताया गया है; वह उपलब्ध न हो सकेगा। सच पूछा जाय, तो साधना के उच्चस्तरीय क्षेत्र में पहुँचने पर तपश्चर्या ही प्रमुख हो जाती है। वही बन्दूक का काम करती है। मन्त्र तो उसके साथ कारतूसों की तरह समन्वित रहते हैं।

पुनर्गठन वर्ष से युग निर्माण परिवार के समस्त साधकों को व्यक्तिगत जीवन में तपश्चर्या का समावेश करने के लिये गुरुवार को अस्वाद व्रत, ब्रह्मचर्य एवं दो घन्टे के मौन की तप साधना का समावेश अनिवार्य कर दिया गया है। ज्ञान यज्ञ के लिये जन सम्पर्क की तीर्थयात्रा को सामाजिक क्षेत्र की तपश्चर्या कहा गया है और जो जप मात्र करके अपनी साधना की पूर्णता मान लेते थे, उन्हें कहा गया है कि तपश्चर्या की दिशा में बढ़ना चाहिये। इस दिशा में ये जितनी प्रौढ़ता और प्रखरता का परिचय देंगे उसी अनुपात से वे अपने साधन; प्रयत्नों को संफल होते देखेंगे। देवता को अनुनय-विनय से फुसलाया नहीं जा सकता। भागीरथी तप द्वारा उनका अनुग्रह खरीदा जाता है। यह तथ्य क्रमशः परिजनों के सामने उजागर होता चला जा रहा है। उन्हें दबाव देकर अब अपनी परिष्कृत मनःस्थिति और आन्तरिक प्रौढ़ता के अनुरूप, साधना क्षेत्र में अधिक कठोरता अपनाने के लिये अनुरोध आग्रह किया जा रहा है। आखिर मिशन के सूत्र संचालकों ने भी अपनी विशेष स्थिति तपश्चर्या का अवलम्बन करके ही प्राप्त की है। अनुकरण कर्त्ताओं को भी इसी पुण्य-परम्परा को अपनाने और कुछ कहने लायक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिये इन दिनों विशेष रूप से इंगित किया जा रहा है।

समय साध्य और क्रमशः कठोर होती चलने वाली साधना पद्धति का महत्त्वपूर्ण, सुनियोजित, एवं सुसम्बद्ध साधनाक्रम चान्द्रायण व्रत की तपश्चर्या और पंचकोशी योग साधना पद्धति के साथ जुड़ा हुआ है। इसका परिचय प्रशिक्षण और अभ्यास कराने के लिये इन दिनों गंगा की गोद—हिमालय की छाया—सप्त ऋषियों की साधना स्थली और समर्थ संरक्षण में ब्रह्मवर्चस् साधना क्रम चल पड़ा है। आरम्भिक प्रक्रिया के रूप में यह साधना सत्र एक-एक महीने के रखे गये हैं और महीना अँग्रेजी महीने न रखकर भारतीय कलैण्डर के अनुरूप पूर्णिमा से पूर्णिमा तक का कर दिया गया है। चान्द्रायण व्रत की उसी से संगति भी है। यह एक महीने चलेगा। साथ ही इसी एक महीने में सवालक्ष गायत्री का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरश्चरण भी करना होगा। पुरश्चरण के अतिरिक्त पाँच कोशों के अनावरण के लिये पाँच साधनायें अतिरिक्त रूप से भी करनी होंगी। (१) त्राटक (२) सूर्य-भेदन प्राणायाम (३) शक्तिचालिनी मुद्रा (४) खेचरी मुद्रा (५) हंसयोग सोहम् साधना। इन पाँचों का समन्वित साधना क्रम ऐसा है, जिसमें पंचकोशों के अनावरण के अतिरिक्त कुण्डलिनी जागरण का प्रारम्भिक चरण भी इसी अवधि में पूरा हो जाता है। पीछे के लिये आत्मिक प्रगति के लक्ष्य तक ले पहुँचने वाला वह अवरुद्ध द्वार खुल जाता है, जिस पर चलते हुए पग-पग पर भौतिक सिद्धियों से लौकिक सफलता और आत्मिक विभूतियों की अतीन्द्रिय क्षमता उपलब्ध करते चलना सम्भव हो जाता है।

साधना की अवधि में मात्र गंगाजल पीना होता है। गंगा अति निकट है। वहीं से अपने पीने के लिये सभी साधक स्वयं गंगाजल लाते हैं और उसी से प्यास बुझाते हैं। युवाओं के लिये नित्य गंगा स्नान में भी कोई कठिनाई नहीं पड़ती। वृद्धों को शीत ऋतु में गंगाजल गरम करके स्नान करने की भी सुविधा रहती है। नित्य प्रातःकाल पंचगव्य पान करना होता है। इसके उपरान्त ही अन्य कोई पेय या भोजन मुख में जा सकता है। नित्य आहार में हविष्यान्न (तिल-जौ-चावल) से बनी एक रोटी और अमृत कल्क (ब्राह्मी, शतावरि, वच, शंखपुष्पी, गोरख मुण्डी, आँवला, अदरख और सेन्धा नमक) में आध्यात्मिक अष्ट वर्ग सम्मिश्रित रहता है। च्यवनप्राशावलेह में शरीर को युवा बनाने वाला अष्टवर्ग डाला जाता है। यह अमृत कल्क आध्यात्मिक अष्ट वर्ग है। हविष्यान्न की रोटी और अमृत अष्ट वर्ग की चटनी का आहार ऐसा है जिससे "जैसा खाये अन्न वैसा बने मन" की उक्ति प्रत्यक्ष चरितार्थ होती है। विचारों में उत्कृष्टता का अभिनव परिचय आहार में, इस चरु का समावेश होने से तत्काल दीखने लगता है। चान्द्रायण व्रत में यों शुक्ल पक्ष की प्रतिप्रदा से हर दिन चौदहवाँ अंश घटाया जाता है। अमावस्या को निराहार रहना पड़ता है। इसके बाद एक चौदहवाँ भाग बढ़ाते हुये पूर्णिमा को पूर्ण आहार तक पहुँचना होता है। यह कई दुर्बल मनःस्थिति के व्यक्तियों के लिये कठिन पड़ता है इसलिये इस अवधि में शाक और दूध या छाछ की मात्रा बढ़ाते रहकर सन्तुलन बनाये रहने की सुविधा रखी गई है। हविष्यान्न की एक रोटी को प्रसाद चरु माना गया है। इससे भी कुछ आधार बना रहता है। हविष्यान्न में प्रयुक्त होने वाले जौ, गौ मूत्र में भिगोकर सुखाये और संस्कारित किये जाते हैं। इस प्रकार के विशिष्ट विधि से बने हुये जौ और छाछ के ऊपर अपने चौबीस पुरश्चरण भी पूरे हुये थे। प्रायः उसी स्तर के आहार का समावेश ब्रह्मवर्चस् साधना सत्र में गायत्री की उच्चस्तरीय साधना करने वाले साधकों को मिलता रहे, इसका विशेष प्रबन्ध रखा गया है।

प्रातः ३।। बजे उठना, उठते ही सामूहिक प्रार्थना, फिर शौच-स्नान से निवृत्ति, प्रातःकाल का जप ध्यान, छै बजे पंच-गव्य-चाय। इसके उपरान्त सात से साढ़े आठ तक यज्ञ। साढ़े नौ बजे भोजन। मध्यान्ह बाहर से डेढ़ बजे प्रवचन। तीसरे प्रहर चाय। अपरान्ह विचार गोष्ठी। पाँच बजे सायं भोजन। गंगा दर्शन, गंगाजल लाना। सात से साढ़े सात सामूहिक आरती। साढ़े सात से आठ सामूहिक ध्यान। साढ़े आठ बजे सो जाना। पीत वस्त्र धारण। गुरुवार को अस्वाद व्रत। जैसे नियमोपनियमों का पालन करते हुये, परम सात्विक दिनचर्या का निर्वाह करते हुये एक महीने का योग तप विनियोग साधा जाता है। इसी अवधि में दिव्य-संरक्षण और दिव्य अनुदान का अनवरत लाभ मिलता रहता है। साधना की सफलता ऐसे ही अनेक सुयोगों का संगम मिल जाने से किस प्रकार सम्भव होती है, इसे साधक प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

अध्यात्म उपचारों की वैज्ञानिक साक्षी एवं ब्रह्मवर्चस् के प्रयास

अन्तःकरण का मनःसंस्थान पर, मनःसंस्थान का शारीरिक स्थिति पर, शारीरिक स्थिति का क्रिया-कलाप पर और क्रिया-कलापों का परिस्थिति पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। इस रहस्य को समझा जा सके तो यह स्वीकार करने में किसी को भी कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप है। मनःस्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदात्री है, इस तथ्य को भली-भाँति हृदयंगम किया जा सके तो फिर जिस-तिस पर दोषारोपण की आवश्यकता ही न रह जायेगी। फिर परिस्थितियों की प्रतिकूलता को भी उतना दोषी न ठहराया जा सकेगा जितना कि बात-बात में इन दिनों जन-साधारण द्वारा किया जा रहा है। सारी असफलताओं और कठिनाइयों के लिये इन्हीं परिस्थितियों को दोषी ठहराने वालों को फिर अभागा ही कहा जायेगा।

अध्यात्म का तात्पर्य है—अपने आपे का स्वरूप समझने, उसे बलिष्ठ, विकसित करने की विधा। यही है उसका उद्देश्य एवं प्रयोगोपचार। विडम्बना यह है कि इन दिनों उसे बाह्योपचारों—पूजा, कर्मकाण्ड आदि के माध्यम से अमुक देवी-देवता को वशवर्ती बनाकर चित्रविचित्र मनोकामनाओं की पूर्ति जादुई ढंग से करा लेने की कल्पना-जल्पना भर माना जाता है। पर इससे क्या ? भ्रान्तियाँ मात्र भटकाव उत्पन्न कर सकती हैं, उनसे कुछ प्रयोजन थोड़े ही सधता है। जिन्हें भी आत्म विज्ञान में तात्विक अभिरुचि है, उन्हें यही समझना होगा कि आत्मनिर्माण के लिये किया गया पुरुषार्थ ही उलझी हुई समस्याओं का समाधान है; इस पुरुषार्थ के लिये आत्मावलम्बन—आत्मविश्वास और आत्मभूमि की दार्शनिक पृष्ठभूमि होनी चाहिए।

आत्मबोध को मानव जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि माना गया है। इसी के आधार पर मनुष्य अपनी सत्ता, महत्ता, क्षमता एवं सम्भावना का मूल्यांकन कर सकने में समर्थ होता है। इसी अनुभूति के साथ वह पराक्रमशीलता उभरती है जिसके सहारे व्यक्ति अपने जन्म-जन्मान्तरों से संचित कुसंस्कारों को समझता, उनकी हानियों को अनुभव करता तथा उन्हें उखाड़ने के लिये कृत संकल्प हो जाता है। वस्तुतः इस उखाड़-पछाड़ने की प्रक्रिया—अपने आप से संघर्ष में जितना पराक्रम लगता है उतना ही अनगढ़ मन को उत्कृष्टता के पक्षधर अनभ्यस्त आधारों को अपनाने के लिये मनाने व स्वभाव का अंश बना लेने की मंजिल पूरी करने में नियोजित करना पड़ता है। अपने हाथों अपने आपको ढालना बहुत बड़ा काम है। दीखने में सामान्य यह पुरुषार्थ एक असाधारण आत्मबल, संकल्प शक्ति का सम्पादन चाहता है। इस आत्मबल की प्राप्ति-उसे धारण करने की, सामर्थ्य की उपलब्धि तथा तदुपरान्त अभिवर्धन करने के लिये ही विभिन्न तप-साधनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

आर्ष ग्रन्थों में वर्णित तप तितिक्षाओं, चान्द्रायण जैसी कठोर तपश्चर्याओं, ध्यानयोग-प्राणयोग की साधनाओं में उन सभी तत्वों का समावेश है, जिनसे ग्रन्थि निवारण कुसंस्कार उन्मूलन तथा सुसंस्कारिता सम्वर्धन—आत्म-परिष्कार के द्विविध प्रयोजन साथ-साथ पूरे होते रह सकें। इन्हें परम्परागत धर्मानुष्ठानों से अलग ही माना जाय। इन उपचारों के पीछे ऐसे तथ्यों का समावेश है, जिनका प्रतिफल उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में असाधारण रूप से सहायक सिद्ध हो सके। ये साधना उपक्रम मूलतः आस्थापरक हैं। इनमें श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा को प्रभावित करने वाली अन्तराल को उत्कृष्टता के साथ जोड़ देने वाली क्रिया-प्रक्रिया का समावेश अत्यन्त दूरदर्शिता एवं एक तत्वान्वेषी सूक्ष्म बुद्धि के साथ किया गया है।

आज तो परिस्थितियों को ही सब कुछ मानने वाले-साधनों को ही सौभाग्य समझने वाले लोगों को नये सिरे से अध्यात्म की वर्णमाला पढ़ानी पड़ेगी और सिद्ध करना पड़ेगा कि परिस्थितियाँ एवं सम्पन्नतायें मानवी प्रगति की आवश्यकता का एक बहुत छोटा अंश पूरा करती हैं। समस्त विभूतियों का उद्गम तो मानवी अन्तराल है। उसे सम्भाला, सुधारा जा सके तो सुखद सम्भावनाओं का स्रोत हाथ लग जायेगा और फिर किसी बात की कमी न रहेगी। पाताल-तोड़ कहे जाने वाले कुओं को चट्टान के नीचे वाली जलधारा का अवलम्बन मिलता है। फलतः निरन्तर पानी खींचते रहने पर भी उनकी सतह घटती नहीं जितना खर्च होता है उतना ही उछलकर ऊपर आ जाता है।

मनुष्य को अनेक क्षेत्रों में काम करना पड़ता है। इसके लिये अनेक प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिये एक प्रकार की, तो बौद्धिक क्षमता का विकास करने के लिये दूसरे प्रकार की। सूझ-बूझ एक बात और व्यवहार कुशलता दूसरी। विद्वता एक चीज है और एकाग्रता का स्वरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरा है। कलाकारों का ढाँचा एक प्रकार का होता है और योद्धाओं का दूसरा। इन सभी को अपने-अपने ढंग की शक्तियाँ चाहिये। उनके अभाव में सफलताओं तो दूर कुछ कदम आगे बढ़ चलना तक सम्भव नहीं हो पाता। कहना न होगा कि असंख्य सामर्थ्यों का असीम भाण्डागार मनुष्य के अन्तराल में विद्यमान है। यह चेतना क्षेत्र का एक वृहत्तर महासागर है, जिसमें हर स्तर की सामर्थ्य खोज निकाली जा सकती हैं। दृश्यमान समस्त विभूतियों—सफलताओं का उपार्जन एवं उपयोग इसी आत्मबल रूपी सामर्थ्य के सहारे सम्भव हो पाता है। उसके अभाव में तो अधिकांश पर जीवित मृतकों जैसी अशक्तता ही छायी रहती है।

ऊपर वर्णित इन तथ्यों—अध्यात्म विधा के धर्म पर सहसा विश्वास नहीं होता। इन दिनों आत्मा का अस्तित्व तक संदिग्ध माना जाता है और इस विधा में सन्निहित सामर्थ्यों के प्रभाव पर अविश्वास भी किया जाता है। ऐसी दशा में यह एक अत्यन्त दुष्कर कार्य है कि प्रत्यक्षवादी समझे जाने वाले बुद्धिजीवी वर्ग को यह विश्वास दिलाया जा सके कि वे अन्तः की सामर्थ्य का महत्त्व समझें और उसके उपार्जन का सच्चे मन से प्रयास पुरुषार्थ करें। यदि यह तथ्य इस समुदाय के गले न उतारा गया तो साधना उपचार की, अध्यात्म विज्ञान की कोई भी क्रिया-प्रक्रिया उथले मन से लकीर पीटने की तरह ही किसी प्रकार धकेली-घसीटी जाती रहेगी। श्रद्धा और विश्वास के अभाव में उत्कृष्टता के पक्षधर प्रयासों के साथ तादात्म्य जुड़ सकना कठिन है। मात्र पशु-प्रवृत्तियों में वह आकर्षण है कि वे व्यक्ति को वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति के लिये उत्तेजित करती व उससे कुकर्म कराती रहें। आज इस चिन्तन से विरत किये जाने के लिये अध्यात्म की वैज्ञानिकता सिद्ध करने की अनिवार्यता और भी बढ़ गयी है।

मूर्धन्य तत्वदर्शियों के अतिरिक्त गहराई में उतरकर कौन समझे और कौन समझाये ? ऐसी दशा में आत्मिकी प्रयोगों की परिणति का स्वरूप समझना एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। यह कठिनाई बनी ही रहेगी यदि आत्मिकी के प्रयत्नों की प्रतिक्रिया को उपयोग उत्साहवर्धक न माना गया तो फिर सर्वसाधारण के लिये यह अति कठिन होगा कि वे परिपूर्ण श्रद्धा, विश्वास के साथ उस क्षेत्र में आगे बढ़ें।

इस असंमजस के निवारण हेतु ही ब्रह्मवर्चस् शोध-संस्थान में प्रयोग-परीक्षण का क्रम बिठाया गया है, जिसमें साधकों की आस्था एवं प्रयत्नों की गम्भीरता तथा तद्जन्य प्रतिक्रिया को वैज्ञानिक उपकरणों के सहारे परखा जाता है। किस प्रयोग का शरीर एवं मन के किस क्षेत्र पर कितना, किस स्तर का प्रभाव पड़ा, इसका विवरण प्रस्तुत कर सकने वाले बहुमूल्य वैज्ञानिक उपकरण यहाँ देश-विदेश से मँगाकर लगाये गये हैं, ताकि उनकी साक्षी से यह जाना जा सके कि साधनारत व्यक्ति अपने प्रयत्नों का समुचित प्रतिफल प्राप्त कर रहे हैं या नहीं। इस व्यवस्था की आश्यकता न केवल आस्था क्षेत्र के प्रयत्नों की परिणति जानने के लिये करनी पड़ी है वरन् इसलिये भी कि साधक का शारीरिक, मानसिक व अन्तःकरण का स्तर जाँचा जा सके और तदनुसार निराकरण—उपचार सुझाया जा सके।

त्रिविध प्रशिक्षण की त्रिवेणी

आहार के तीन वर्ग हैं—(१) अन्न (२) जल (३) वायु। इन तीनों के सहारे ही मनुष्य जीवित रहता है। पौधे को बढ़ने के लिये (१) भूमि (२) खाद (३) पानी तीनों की आवश्यकता पड़ती है। व्यापार के लिये (१) पूँजी (२) उत्पादन (३) विक्रय, तीनों साधन जुटाने होते हैं। आत्मिक प्रगति भी एक उच्चस्तरीय उत्पादन एवं गरिमा सम्पन्न व्यवसाय है। इसके लिये तीन साधन चाहिए (१) भक्तियोग (२) ज्ञानयोग (३) कर्मयोग। इन तीनों की समन्वित व्यवस्था करने पर ही (१) कारण शरीर (२) सूक्ष्म शरीर (३) स्थूल शरीर, को परिष्कृत एवं प्रखर बनाने का अवसर मिलता है। उपरोक्त तीनों साधनाओं में से एक भी ऐसी नहीं है जिसे अकेले के बलबूते जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। इनमें से एक भी पक्ष ऐसा नहीं है, जिसे छोड़कर प्रगति का रथ एक कदम आगे बढ़ सके। धुरी और दो पहिये मिलने से ही उसमें गतिशीलता उत्पन्न होती है।

ब्रह्मवर्चस् सत्रों की प्रशिक्षण पद्धति में उपरोक्त तीनों तत्वों का समावेश करके उसे साधना क्षेत्र की त्रिवेणी के समतुल्य बनाने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न किया गया है। उसकी समग्रता यह विश्वास दिलाती है कि साधनों को सर्वांगपूर्ण बनाया जा रहा है तो उसका प्रतिफल भी सुनियोजित सत्प्रयत्नों की तरह सन्तोषजनक ही होना चाहिए।

एक महीने की साधना में भी उस रूपरेखा का समावेश है, जिसे अपनाकर अधिक समय टिकने वाले अधिक प्रगति कर सकते हैं। जिन्हें उतने ही समय रुकना है, वे अभ्यास कराये गये आधारों को अपनाकर आत्मिक प्रगति के राजमार्ग पर अनवरत गति से चलते हुये परम लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

प्रशिक्षण के तीन पक्ष हैं (१) साधना (२) ब्रह्मविद्या (३) लोक मंगल। नित्य कर्म से बना हुआ प्रायः सारा ही समय क्रमबद्ध रूप से इन्हीं तीन के अभ्यास में नियोजित रखा जायेगा। साधना में गायत्री और सावित्री दोनों की उपासना सम्मिलित है। ब्रह्मवर्चस् शब्द का तात्पर्य ही यह है कि उसमें परिष्कार के लिये योगाभ्यास का और प्रखरता के लिये तपश्चर्या का किया जाना है। उसमें दक्षिणमार्गी गायत्री की ध्यान धारणा और वाममार्गी सावित्री की कुण्डलिनी साधना का समन्वय रहना है। सूर्योदय से पूर्व गायत्री साधना का और सूर्यास्त के उपरान्त कुण्डलिनी जागरण का विधि-विधान हर साधक की स्थिति और आवश्यकता को ध्यान में रखकर कराया जायेगा। इस सन्दर्भ में किसे क्या सिखाया जायेगा, किससे क्या कराया जायेगा इनका पूर्व निर्धारण नहीं हो सकता। हर व्यक्ति की स्थिति और आवश्यकता भिन्न होती है। इसलिये उच्चस्तरीय साधना का निर्णय उनका तात्विक निरीक्षण करके ही किया जा सकता है।

सामान्यतया प्रातःकालीन गायत्री उपासना में वे अभ्यास कराये जाते हैं, जो ब्रह्मलोक, ब्रह्मरन्ध्र, आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र तालु, मूर्धा श्वाँस-प्रश्वाँस के केन्द्र बिन्दु मा॰ पर बने हैं और जिनका प्रभाव शीर्ष भाग । सन्निहित ब्रह्मज्योति को आत्म-चेतना को प्रभावित करता है। शीर्ष को ब्रह्मलोक माना गया है, इसमें दिव्य चेतना का आधिपत्य है। यही गायत्री लोक है। गायत्री साधना द्वारा जो कुछ पाया जाता है, वह सारा विभूति वैभव इसी परिधि में उपार्जित किया जाता है।

सायंकालीन साधना में कुण्डलिनी जागरण की क्रिया-प्रक्रियाओं का समुच्चय है। जननेन्द्रिय मूल में निवास करने वाली प्राण ऊर्जा का केन्द्र मूलाधार चक्र माना गया है। उसी के योगाग्नि, कालाग्नि, जीवनी शक्ति, काली, कुण्डलिनी आदि अनेक नाम हैं। नाभिचक्र से लेकर जननेन्द्रिय मूल और कटि प्रदेश का सारा क्षेत्र इसी महाशक्ति को ज्वलन्त करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। इस क्षेत्र तक साधक की संकल्प शक्ति को पहुँचने का एक मात्र मार्ग मेरुदंड है। उसी को साधना विज्ञान में देवयान कहा गया है। इसमें प्रवाहित होने वाली तीन दिव्य धारायें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कही जाती हैं। इन्हीं का संगम अध्यात्म क्षेत्र का त्रिवेणी संगम कहा गया है।

कुण्डलिनी जागरण की क्रिया-प्रक्रिया को समुद्र मंथन के समतुल्य बताया गया है। समुद्र मंथन से १४ दिव्य रत्न निकलने की पौराणिक गाथा का संकेत यही है कि इस कुण्डलिनी क्षेत्र का मंथन करने वाले अपने स्तर के अनुरूप उपयोगी प्रतिफल उपलब्ध कर सकते हैं। मूलाधार की साधना का विशद् विज्ञान तन्त्र के अन्तर्गत आता है। सहस्रार की क्षमताओं से लाभान्वित होने की प्रक्रिया योग कहलाती है। योग से ज्ञान की और तन्त्र से विज्ञान की उपलब्धि होती है। एक को ऋद्धियों का और दूसरे को सिद्धियों का उद्गम माना गया है। तन्त्र का अभ्यास काल, रात्रि है और योग के लिये ब्रह्ममुहूर्त सर्वोत्तम माना गया है। यों इन्हें सुविधानुसार अन्य समयों में भी किया जा सकता है।

सामान्य तथा मध्यवर्ती स्तर के साधकों को प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में एक घंटा योगाभ्यास परक गायत्री साधना कराई जाती है। रात्रि को तन्त्र प्रक्रिया के अन्तर्गत कुण्डलिनी जागरण के वे अभ्यास कराये जाते हैं, जिन्हें बंध, मुद्रा और प्राण संधान की त्रिविध तन्त्र-प्रक्रियाओं का आधार अंग माना जाता है। यह विधान भी साधक की स्थिति के अनुरूप ही बताये जाते हैं। एक महीने के समय में सब कुछ हल्का ही हल्का रखा गया है। साधना विज्ञान की विशालता और गरिमा को देखते हुये इसे बाल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कक्षा जितना ही कहा जा सकता है। अन्भ्यस्त लोगों के लिये हर नया प्रयोग भारी पड़ता है। ध्यानयोग में थोड़ा अधिक गहरा उतरने लगा जाय तो सिर भारी होने लगता है। इस कठिनाई का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है और पाठ्यक्रम इतना सरल रखा गया है कि उसे बिना किसी प्रकार का खतरा उठाये, कोई नया अभ्यासी भी सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सके। व्यायामशालाओं और पाठशालाओं में नवागन्तुकों को साहस और उत्साह बढ़ाने की दृष्टि से जो कुछ सिखाया कराया जाता है वह सरलतम ही होता है। अधिक बड़ा पराक्रम एवं दुस्साहस करने की स्थिति तो तब आती है, जब अभ्यास में परिपक्वता और प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होने लगे।

प्रातः सायं साधना के दोनों पक्ष पूरे होते रहेंगे। सबेरे से लेकर मध्यान्ह तक का समय ब्रह्म विद्या के अवगाहन के लिये है और मध्यान्ह से सायंकाल तक लोकशिक्षण में प्रवीणता प्राप्त करने के लिये। मध्यान्ह तक स्वाध्याय और सत्संग का क्रम चलेगा। मध्यान्होत्तर भाषण कला का अभ्यास एवं युग परिवर्तन के लिये आवश्यक रचनात्मक प्रवृत्तियों को क्रियान्वयन करने का व्यावहारिक ज्ञान कराया जायेगा।

एक महीने की अवधि में ब्रह्मवर्चस के प्रशिक्षण के सूत्र संचालक द्वारा प्रतिदिन एक प्रवचन किया जाता रहेगा। अध्यात्म तत्व ज्ञान और साधना विज्ञान की जीवन धारा में घुला देने का उपाय सुझाता रहेगा और बताया जायेगा कि जीवन साधना की प्रक्रिया का शुभारम्भ कितनी सरलता से कितने छोटे रूप में क्रिया जा सकता है और उसे क्रमशः बढ़ाते हुये किस प्रकार सिद्धावस्था तक पहुँचा जा सकता है। साधक के सम्मुख प्रस्तुत कठिनाइयों के समाधान के लिये आवश्यक विचार-विनिमय एवं परामर्श की प्रक्रिया भी इसी के साथ जुड़ी रहेगी।

स्वाध्याय के लिये कुछ निर्धारित साहित्य उस अवधि में पढ़ लेने के लिये कहा जायेगा। इस अध्ययन क्रम में वे चुनी हुई पुस्तकें ही रखी गई हैं, जो साधक की प्रगति में सहायक हो सकें और उसके सामने प्रस्तुत अवरोधों का निराकरण कर सकें। सामान्य प्रवचन तो सभी के लिये एक होगा पर परामर्शपरक विचार-विनिमय समय-समय पर साधक की स्थिति के अनुरूप ही होता रहेगा। इसी प्रकार कुछ पुस्तकें सभी के लिये समान रूप से स्वाध्याय में सम्मिलित रहेंगी पर सामान्यतया अधिक समय तक वे पुस्तकें पढ़ने का निर्देश दिया जायेगा जो साधक की मनःस्थिति और परिस्थिति को देखते हुये उपयुक्त आवश्यक समझी जायेगी। स्वाध्याय साहित्य का निर्धारण भी ब्रह्मवर्चस प्रशिक्षण के सूत्र संचालक करेंगे। यह स्वाध्याय भी साधना की ही तरह प्रेरणाप्रद एवं भावी जीवन के लिये मार्गदर्शक का काम कर सके इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जायेगा।

मध्यान्होत्तर की कक्षा में युग शिल्पियों के लिये आवश्यक योग्यताओं को विकसित करने तथा कार्यक्षेत्र में जन-सम्पर्क में आशाजनक सफलता उपलब्ध करने के लिये आवश्यक उपाय सुझाये जायेंगे। जो आवश्यक है उसका क्रियात्मक अभ्यास भी कराया जायेगा। इन योग्यताओं में भाषण, कला और सम्भाषण और कला संभाषण कुशलता को प्रधान माना जाता है।

युग परिवर्तन के लिये जन-मानस का परिष्कार करना होगा, ज्ञान यज्ञ का युग अनुष्ठान प्रत्यक्षतः विचार क्रान्ति अभियान के रूप में गतिशील हो रहा है। इसमें जागृत आत्माओं को प्रस्तुत लोक-मानस को जगाने में संलग्न होना होगा। यह कार्य सामूहिक रूप में प्रवचनों द्वारा और व्यक्तिगत रूप में परामर्शों द्वारा सम्पन्न करना होता है। बड़े जन सम्मेलनों, आयोजनों में भाषण करने होते हैं और थोड़े लोगों के साथ ज्ञान गोष्ठियों में विचार-विनिमय, परामर्श करना होता है। यह दोनों ही कार्य वाणी के प्रयोग उपयोग के द्वारा सम्पन्न होते हैं। कुशल वाणी ही अपने प्रभाव से अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर सकती है। जिसे दूसरों के सम्मुख अपने विचार व्यक्त करने में झिझक लगती है, उसके लिये युग सृजन में महत्त्वपूर्ण कर सकना कठिन पड़ेगा। साहित्य का प्रचार करने के लिये भी तो किसी न किसी रूप में वाणी का ही प्रयोग करना होता है। झोला पुस्तकालय, चल पुस्तकालय आदि को गतिशील बनाने में भी वाणी ही काम आती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मवर्चस् सच में समूह मंच पर भाषण देने और व्यक्तिगत संपर्क में प्रभावी संभाषण करने की कला का नियमित अभ्यास मध्यान्तर प्रशिक्षण में कराया जाता है। इसके अतिरिक्त यज्ञ कृत सहित पर्व संस्कार आदि के अवसर पर सम्पन्न होने वाले धार्मिक कर्मकाण्डों को कराने का अभ्यास भी साथ-साथ चलता रहेगा। युग निर्माण अभियान में धर्म मंच से लोक-शिक्षण की प्रक्रिया को रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बनाया गया है। समय-समय पर इस प्रयोजन के लिये होने वाले आयोजनों में किसी न किसी रूप में यज्ञ कृत्य एवं अन्य पूजा-विधानों का समावेश रहता है। युग-शिल्पियों को उसमें प्रवीण होना ही चाहिये। जन्म-दिन संस्कार, पर्व, नवरात्रि आयोजन, वार्षिकोत्सव आदि सभी छोटे-बड़े सम्मेलनों में यज्ञ कृत्य होते हैं; उन विधानों की व्याख्या करते हुये स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप लोक शिक्षण क्रम चलते हैं। इसलिये जहाँ भाषण, संभाषण शैली की कुशलता आवश्यक है, वहाँ साथ-साथ जुड़े, रहने वाले धर्मानुष्ठान को सम्पन्न कर सकने की प्रवीणता भी रहनी ही चाहिये। ब्रह्मवर्चस को मध्यान्तर शिक्षण में इन दोनों का अभ्यास कराया जाता है।

सफल जन-सम्पर्क, रचनात्मक क्रिया-कलापों का सूत्र संचालन, सामयिक समस्याओं के समाधान का सुनिश्चित दृष्टिकोण, सृजन, शिल्पियों का, प्रतिभावान व्यक्तित्व, सहयोग, सम्पादन, अवरोधों के निराकरण का दूरदर्शी व्यवहार, कौशल जैसे अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जिनसे हर लोकसेवी को परिचित होना चाहिये और इतनी पूर्व तैयारी रहनी चाहिये कि किसी भी उतार-चढ़ाव पर डगमगाने की आवश्यकता न पड़े। यह कुशलता ब्रह्मवर्चस् साधकों को तीसरे पहर के प्रशिक्षण में इसलिये उपलब्ध करायी जाती है कि यह कृत्य भी भावी जीवन में उनकी सामान्य दिनचर्या का ही एक अंग बन कर रहेगा। आत्मिक प्रगति के सेवा धर्म को अपनाये बिना प्राचीन काल के धर्म परायणों का न काम चला था और न भविष्य में किसी धर्म प्रेमी को उससे विरत रहने की इच्छा होगी। सिद्धि या मुक्ति की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा भी सेठ या शासक बनने जैसी क्षुद्र ही है। ब्रह्मवर्चस् के साधक उदात्त भूमिका में विकसित होंगे तो उन्हें युग साधना के क्षेत्र में अपनी गतिविधियों को किसी न किसी रूप में नियोजित करना ही होगा। शरीर यात्रा परिवार संरक्षण; आजीविका प्रबन्ध, लोक व्यवहार की तरह ही ब्रह्मवर्चस के छात्र युग साधना को भी अपने सामान्य जीवन क्रम में सम्मिलित करेंगे। ऐसी दशा में उस सन्दर्भ को आवश्यक ज्ञान अनुभव और अभ्यास रहना ही चाहिये। तीसरे प्रहर की शिक्षण व्यवस्था में इन सभी तत्वों का समावेश रखा गया है, जिनके आधार पर ब्रह्मवर्चस् साधना सत्र में शिक्षार्थी अपने भावी जीवन क्रम में एक महत्त्वपूर्ण अंग का सफलतापूर्वक सुसंचालन कर सकें।

हर अँग्रेजी महीने में पहली से तीस तारीख तक चलने वाले एक-एक महीने वाले ब्रह्मवर्चस् सत्रों की सुनिश्चित अभिनव श्रृंखला लगातार चलती रहेगी। इसकी विशेषता यह है कि हर शिक्षार्थी की परिस्थिति का अलग से विश्लेषण किया जायेगा और तदनुरूप उनके लिये साधना एवं शिक्षण का क्रम निर्धारित किया जायेगा। तपश्चर्याओं में आहार की सात्विकता एवं मात्रा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उस पर जिसके लिये जिस प्रकार, जितना नियन्त्रण सम्भव होगा, तदनुरूप उसे परामर्श दिया जायेगा। मन की सात्विकता एवं स्थिरता के लिये अन्न आहार तप का कोई न कोई स्वरूप हर साधक को अपनाना होगा। इन विशेषताओं के कारण इन सत्रों को विशेष आधार पर खड़ा किया गया और विशेष परिणाम उत्पन्न करने वाला ही कहा जा सकता है। त्रिपदा गायत्री की यह त्रिवेणी साधना युग साधना के अनुरूप होने के कारण नितान्त सामयिक एवं अतीव महत्त्वपूर्ण समझी जा सकती है।

यह साधनायें समय साध्य होंगी। जो लोग ज्यादा समय तक रह सकेंगे वह इनका अधिक लाभ प्राप्त करेंगे, मध्यवर्ती एक माह की साधना का उद्देश्य साधना के वह विधि-विधान न केवल समझा देना अपितु उनके अभ्यास की जानकारी भी दे देना है; ताकि वे अपने घरों पर रहकर भी वह अभ्यास कर सकें। इतनी अवधि हर व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक स्थिति को परखना भी सम्भव हो जायेगा सो उसी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुरूप उन्हें उच्चस्तरीय साधनाओं की जानकारी भी दे दी जायेगी, जो साधनायें उनके उपयुक्त न बैठती होंगी उनके अभ्यास रोक देने और शेष में समुचित सावधानियाँ बरतने को बता दिया जायेगा।

इतने पर भी ब्रह्मवर्चस् शोध साधनाओं का लाभ अत्यल्प व्यक्ति ही प्राप्त कर सकेंगे। इस कठिनाई को दूर करने के लिये १०-१० दिन के लघु संस्करण साधना सत्र चलते रहेंगे। उन शिविरों का स्वरूप १ माह के शिविरों जैसा ही होगा किन्तु उसमें कम समय में थोड़ा ही अभ्यास कराया जाना सम्भव होगा। किन्तु यहाँ के वातावरण समर्थ सान्निध्य का इतना सशक्त बीजारोपण उन अन्तःकरणों में कर दिया जायेगा, जो घरों में जाकर सामान्य साधना क्रम से भी पुष्पित, पल्लवित होता रहेगा।

अध्यात्म की वैज्ञानिक शोध और अनास्था संकट का निवारण

आज का युग प्रत्यक्ष को स्वीकारता और वैज्ञानिक प्रतिपादनों को तो महत्त्व देता है पर चेतना के अस्तित्व को हृदयंगम करते हुये उसे श्रद्धाजन्य मान्यता देने से कतराता है, इसका प्रतिफल मानवीय संवेदनाओं की उपेक्षा और उत्पीड़न के रूप में आज सर्वत्र देखा जा सकता है। यह अनास्था संकट व्यक्तिगत जीवन में अनुशासनहीनता पनपाती है, यही पारिवारिक जीवन की ममता और शुचिता भंग करती है। सामाजिक जीवन में अपराधों की वृद्धि उसी का प्रतिफल है, उसे दूर करने के लिये यह आवश्यक हो गया है कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों की पुष्टि भौतिक सिद्धान्तों और उपकरणों के माध्यम से की जाय।

अब अध्यात्म का भी वही स्वरूप मान्य होगा जो भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों की तरह सर्वत्र एक स्वर से स्वीकारा जा सके। नवीन या प्राचीन का आग्रह न करके हमें तथ्यान्वेषी होना चाहिये और सत्य की खोज का मार्ग अपनाते हुये उस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिये जो यथार्थता के अधिकाधिक निकट हो। हर प्रतिपादन को अब इसी समीक्षा के लिये तैयार होकर आना होगा। युग अध्यात्म भी इस परख पर कसा जायगा। छूट उसे भी न मिल सकेगी। प्राचीनता की दुहाई देकर मान्यता प्राप्त कर सकने की स्थिति अब किसी की भी नहीं रही, तो फिर अध्यात्म ही उसका अपवाद कैसे हो सकता है ?

भौतिक विज्ञान के विभिन्न पक्षों की साधन सम्पन्न प्रयोगशालायें समस्त संसार में अनेकों भरी पड़ी हैं। उनमें विज्ञान की अनेकों धाराओं के सम्बन्ध में शोध कार्य चलता है। अब तक विज्ञान ने जो चमत्कारी उपलब्धियाँ प्रस्तुत कीं उनका उत्पादन शोध-संस्थानों में प्रयोगशालाओं में ही हुआ है। उपलब्धियों का कार्यान्वयन भले ही विशालकाय कारखानों में होने लगा हो पर उनके बीजारोपण, अंकुर उत्पादन एवं पौध विकसित करने का कार्य तो प्रयोगशालाओं में ही हुआ है। आज समस्त मानव समाज को जिन अनेकानेक वैज्ञानिक आविष्कारों का आश्चर्यजनक लाभ मिल रहा है, उन्हें प्रयोगशालाओं की ही देन कहना चाहिये। उन उद्गम स्रोतों की उपयोगिता, गरिमा, आवश्यकता को जितना अधिक मान दिया जाय उतना ही कम है। यदि इन संस्थानों की स्थापना न हुई होती तो प्रगति की आदिम कालीन परम्परा हजारों वर्ष पूर्व की स्थिति में ही समस्त संसार को रख रही होती।

अध्यात्मवाद वस्तुतः चेतना को उच्चतर बनाने और उच्चतम की स्थिति तक पहुँचाने की सुनिश्चित प्रक्रिया है। ईश्वर, आत्मा, कर्मफल परलोक एवं परोक्ष का दर्शन न तो संदिग्ध है और न अनावश्यक। उसकी उपयोगिता इतनी ही है जितनी कि सम्पन्नता एवं बलिष्ठता की। अध्यात्म दर्शन प्राचीनकाल में जिस तरह श्रद्धा पर आधारित होते हुये भी जन-जन की अंगीकृत मान्यता का अंग था, उसी प्रकार आज के प्रत्यक्षवाद को भी आत्मवाद की गरिमा का विश्वास दिलाया जा सकता है। कठिनाई एक ही रही है कि बुद्धिवादी युग की आवश्यकता को देखते हुये अध्यात्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन इस तरह नहीं किया गया जैसा कि बदली हुई परिस्थितियों में अभीष्ट था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब सब कुछ गड़बड़ा जाय तो पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्निर्धारण के अतिरिक्त कोई और चारा नहीं रह जाता। विशेषतया बुद्धिवाद का समाधान तो तभी होता है, जब यथार्थता के प्रतिपादन में सदा से काम आती रही शोध-प्रक्रिया के सहारे तथ्यों को प्रस्तुत किया जाये।

इस कठिन कार्य को ब्रह्मवर्चस् ने युग की महती आवश्यकता समझते हुये अपने कंधे पर वहन करने का निश्चय किया है। तदनुसार उसे एक समर्थ शोध-संस्थान के रूप में विकसित किया गया है। ब्रह्मवर्चस् की प्रस्तुत अनुसंधान प्रक्रिया का स्वरूप और उद्देश्य एक ही है। आत्मवाद का विज्ञान एवं दर्शन के आधार पर प्रस्तुतीकरण। इसे युग की, मनुष्य की, सामयिक आवश्यकता कहा जा सकता है। इसी मोर्चे पर हमें सुरसा जैसा संघर्ष करते हुये आगे बढ़ना है। वही किया भी जा रहा है।

शोध-संस्थान के दो वर्ग हैं—१. तात्विक अनुसंधान २. प्रयोगात्मक अन्वेषण परीक्षण। एक का माध्यम है स्वाध्याय-सत्संग। दूसरे का यन्त्र के उपकरणों के माध्यम से वैज्ञानिक विश्लेषण। दोनों के स्थान एक-कक्ष अलग-अलग है। जिस प्रकार आगम और निगम-योग और तन्त्र मिलकर गायत्री शक्तिपीठ का स्वरूप बना है। उसी प्रकार ग्रन्थों की खोजबीन एवं मनीषियों के बीच आदान-प्रदान के आधार पर अनुसन्धान कार्य चला था। पदार्थों एवं प्राणियों पर आध्यात्मिक गतिविधियों का क्या प्रभाव पड़ता है ? इसकी जाँच-पड़ताल साधन सम्पन्न प्रयोगशाला के माध्यम से सुयोग्य विज्ञानवेत्ताओं द्वारा किया जायेगा।

स्वाध्यायपरक साहित्यक अनुसन्धान की प्रक्रिया यह है कि देश-विदेश में, अध्यात्म के सन्दर्भ में जो सोचा कहा और किया गया है उसका संकलन एक समर्थ पुस्तकालय के अन्तर्गत किया जाय। भारतीय अध्यात्म शास्त्र का इसमें बाहुल्य होना स्वाभाविक है। पर प्रयत्न यह भी किया गया है कि अन्य भाषाओं के साहित्य का देश भर के पुस्तकालयों में से ज्ञान संचय का भी क्रम चलता रहे इसके लिये एक पूरा अध्ययन दल ही काम करता है। वही इस तरह की सारी सामग्री संकलित करेगा और अध्यात्म के सिद्धान्तों की पुष्टि करने वाली सामग्री निकालता व प्रस्तुत करता रहेगा। अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से उसकी जानकारी निरन्तर दी जाती रहेगी। जिन लोगों की इस अध्ययन में अभिरुचि हो उनके निवास की व्यवस्था भी ब्रह्मवर्चस् में है। जिन नगरों में महाविद्यालय है। वहाँ के परिजन इस तरह की सामग्री की जानकारी भी देते रह सकते हैं इस शोध का प्रयोजन यह है कि अध्यात्म की मिलावटों और भ्रान्त धारणाओं को ढूँढ़ा हटाया और उसके स्थान पर बुद्धि संगत मान्यताओं को प्रतिष्ठापित किया जायें।

ब्रह्मवर्चस् शोध का दूसरा विभाग प्रयोगपरक है। इसमें इस प्रयोग परक विद्या के भी दो भाग होंगे (१) यज्ञ और उसके द्वारा मनुष्य जीवन प्राणीय जीवन वृक्ष वनस्पति और वातावरण में पड़ने वाला प्रभाव एवं प्रतिक्रिया (२) योग साधनाओं का शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास में योगदान। यज्ञ चिकित्सा के सन्दर्भ में अपनाई गई प्रक्रिया का पूर्ण विवरण इसी श्रृंखला की पुस्तक—"गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया" पुस्तक में दिया जा रहा है। दूसरे का ही उल्लेख यहाँ पर है।

अध्यात्म-विज्ञान के अनुरूप जीवन क्रम बदलने पर, मानवी शरीर पर क्या प्रतिक्रिया होती है। यह जानने के लिये शोध-संस्थान की प्रयोगशाला का सुनियोजित ढाँचा खड़ा किया गया है। जाँच-पड़ताल का आधार यह है कि किसी साधना के करने से पूर्व व्यक्ति की क्या स्थिति थी ? साधना करने के साथ-साथ उसमें क्या परिवर्तन आरम्भ हुआ ? अधिक समय तक अभ्यास करने के उपरान्त स्थिति में क्या हेर-फेर हुआ ? प्रस्तुत साधना उपक्रम उसे अपनानेवाले व्यक्ति के लिये कितना उपयोगी-अनुपयोगी सिद्ध हुआ ? अन्य उपायों से जो लाभ मिल सकता था, उसकी तुलना में साधनाक्रम अपनाने वाला नफे में रहा या घाटे में।

साधनायें किसी व्यक्ति की शारीरिक स्थिति पर क्या प्रभाव डालती हैं ? उसकी दुर्बलता अथवा रुग्णता के निराकरण में कितनी सहायक होती हैं ? मनःस्थिति पर किन्हीं साधनाओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या प्रभाव पड़ता है ? बुद्धि की तीव्रता सुझ-बूझ की प्रंखरता, सन्तुलन-स्थिरता जैसे लाभ किस साधना के आधार पर किस सीमा तक मिल सकते हैं ? साधनाओं के सहारें प्रतिभा के विकास एवं व्यक्तित्व को प्रखर बनाने में क्या कुछ सहायता मिलती है। अवसाद, आत्महीनता, निष्क्रिय चिन्तन के मनोरोगी क्या किसी साधना के सहारे अपनी स्थिति सुधार सकते हैं। क्या चंचलता को एकाग्रता में बदला जा सकता है ? आतुर आवेशग्रस्तता को क्या सहिष्णुता और धैर्य में बदला जा सकता है ? शौर्य साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ जैसी मानसिक विशेषताओं का सम्वर्धन क्या साधना के सहारे संभव हो सकता है। आत्मनियन्त्रण के आधार पर मिलने वाली उपलब्धियों का लाभ किन साधनों के आधार पर किस परिमाण में मिल सकता है ?

भौतिक पदार्थों एवं उपायों से मनुष्य जैसे लाभ उठाता है, क्या वैसे ही आत्मबल के सहारे उपार्जित किये जा सकते हैं ? क्या मनुष्य के भीतर कोई दिव्य क्षमतायें हैं ? यदि हैं तो उनका स्वरूप और उपयोग किस प्रयोग के लिये, किस प्रकार कितनी मात्रा में किया जा सकता है ? सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व के क्या प्रमाण हैं ? यदि वह होता है, उसे परिपुष्ट बनाने से क्या सामान्य और क्या असामान्य लाभ मिल सकते हैं ? चेतना के किस स्तर के प्रसुप्त और जागृत होने पर व्यक्तित्व में अपकर्म और सत्कर्म जैसा क्या कोई अन्तर आता है ? यदि आता है तो स्थिति में सुधार का क्या उपाय है ?

ओजस् के नाम से जानी जाने वाली मानवी विद्युत की सामान्य मात्रा को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है और उससे क्या लाभ उठाया जा सकता है ? तेजस् के नाम से जाने वाले मनोबल का आधार और स्वरूप क्या है ? जीवट, साहस एवं पराक्रम को बढ़ाने में किन साधनाओं का क्या प्रभाव पड़ता है ? वर्चस् नाम से जिसे जाना जाता है, वह आत्मबल, आस्थाओं के परिवर्तन में किस प्रकार सहायता दे सकता है और उसे किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ? बुरी आदतों को सुधारने में अपने को असमर्थ पाने वाले व्यक्ति क्या उपयोगी परिवर्तन अपने उस मनोबल के सहारे कर सकते हैं ? उसे कैसे पाया ? और बढ़ाया जा सकता है। श्रेष्ठता के प्रतीक सद्गुणों की उपयोगिता समझते हुये मनुष्य इन्हें स्वभाव में उतार नहीं पाता, इस कठिनाई का हल क्या किन्हीं साधनाओं के सहारे निकल सकता है ?

शरीर क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों के निराकरण के लिये जिस प्रकार औषधि, सुई, शल्यक्रिया आदि के सहारे सुधार हो सकता है, क्या उसी प्रकार किसी पदार्थ के सहारे मनुष्य की अनास्था एवं आस्थापरक विकृतियों में सुधार किया जा सकता है ? क्या कोई आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति किसी दुर्बल स्तर के व्यक्ति को अपनी क्षमता विकसित करके लाभान्वित कर सकता है ?

सूक्ष्म शरीर में बताये जाने वाले शक्ति केन्द्रों का अस्तित्व क्या प्रत्यक्ष परीक्षण से सिद्ध हो सकता है ? यदि है तो उनकी सामर्थ्य सीमा क्या है ? उन केन्द्रों को किस प्रकार शक्तिवान बनाया जा सकता है और उस सशक्तता का किस प्रयोजन के लिये क्या उपयोग हो सकता है ? मनुष्य को अनैतिक से नैतिक बनाने में क्या कोई अध्यात्म उपचार सहायक हो सकते हैं ? यदि हो सकते हैं तो उन उपचारों का स्वरूप और क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाय ? आत्मबल की अभिवृद्धि से क्या मनुष्य में अधिक सत्प्रवृत्तियाँ उभर सकती हैं ? यदि हाँ तो उनका लोकोपयोगी नियोजन किस प्रकार हो सकता है ? हेय स्तर की आकांक्षायें, आदर्तों एवं आस्थायें उलटने में जिन साधनाओं का सभीष्ट प्रतिफल हो सकता है, उसका स्वरूप क्या है ? अन्न से मन बनने वाली बात कहाँ तक सच है ? और सच है तो व्यक्तित्व में उपयोगी परिवर्तन करने के लिये आहार में क्या परिवर्तन किया जाय ? किन तपश्चर्याओं और किन संयम साधनाओं का मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है। योग विज्ञान की किस धारा का उपयोग किस कठिनाई के समाधान में किस प्रकार किया जा सकता है ? जप, ध्यान, प्राणायाम आदि साधनाओं के क्या कुछ प्रभाव होते हैं, यदि होते हैं तो उसका कारण क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है ? संकल्प-बल की सामर्थ्य कितनी है, उसे जानने का विश्वस्त उपाय क्या है ?

मानवी सत्ता अविज्ञात क्षमतायें क्या हैं और उन्हें किस प्रकार जगाया और काम में लाया जा सकता है ? विराट ब्रह्माण्ड में भरी हुई अदृश्य भौतिक शक्तियों को क्या मानवी चुम्बक अपनी ओर आकर्षित कर सकता है ? यदि कर सकता है तो कितनी मात्रा में ? और किस प्रयोजन के लिये ? क्या ब्रह्माण्ड में कोई चेतनात्मक प्रवाह भरा पड़ा है ? यदि है तो उसके साथ किस प्रकार सम्बन्ध जुड़ सकता है और उस समागम से क्या प्रत्यक्ष और क्या अप्रत्यक्ष लाभ मिल सकता है ?

क्या मनुष्य की इन्द्रिय ज्ञान सीमा तक सीमित चेतना को इतना विकसित किया जा सकता है कि वह इस सीमा से बाहर की हलचलों को जान सके ? ऐसी क्षमता प्राप्त करने के लिये व्यक्तित्व को किस प्रकार अपनी चुम्बकीय क्षमता विकसित करनी पड़ती है ? देवसत्ता क्या है ? उसके अस्तित्व का क्या कारण है ? उसका कैसा सम्पर्क, किसके लिये क्या उपयोगी हो सकता है ? एकाकी और सामूहिक साधनाओं की प्रतिक्रिया में क्या अन्तर रहता है ? आत्मवान् मनुष्य का व्यक्तित्व अपने समीपवर्ती और दूरवर्ती क्षेत्रों में क्या प्रभाव उत्पन्न करता है ? सम्पर्क और सान्निध्य का प्रभाव किस पर कितना और क्या हो सकता है ?

ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो अध्यात्म क्षेत्र से परिचय रखने वाले प्रत्येक बुद्धिजीवी के मन में उठते रहते हैं। अनास्थावानों को यह विश्वास दिला देना ही कठिन पड़ता है, पर मनुष्य चलते-फिरते पौधों से अधिक कुछ है या नहीं ? आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म, परलोक आदि धर्म प्रतिपादनों को वे कपोलकल्पना कहते हैं। ऐसे लोगों का शोध-प्रयोजनों के आधार पर उनकी शंका-कुशंकाओं का निराकरण हो सकता है। बुद्धिवाद और प्रत्यक्षवाद ही जिनके लिये सब कुछ है, उसके लिये उसी आधार पर समाधान खोजने होंगे। इस सन्दर्भ में ब्रह्मवर्चस् का शोध-संस्थान अगले दिनों महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ उपस्थित कर सकेगा ऐसा विश्वास किया जा सकता है। इन शोधों के आधार पर यदि अनास्था को आस्था में बदला जा सके तो समझना चाहिये कि प्रस्तुत आस्था संकट का हल निकल आया और परिष्कृत दृष्टिकोण को एक सुसंस्कृत जीवनक्रम अपनाये जाने का आधार बन गया। युग-परिवर्तन के लिये मानवी अन्तराल को बदलना होगा। यह कार्य लोकशिक्षण द्वारा तो होना चाहिये पर उसके पीछे तर्क, तथ्य, प्रयोग और परीक्षण का आधार रहेगा, तो ही लोकशिक्षकों को अपनी बात वजनदार ढंग से कहने का अवसर मिलेगा। शंकालु लोकमानस की स्थिति इन दिनों दूध के जले का छाछ पीने से डरना जैसी हो रही है। शास्त्र-प्रमाण और आप्तवर्चन अब समाधानकारक नहीं रहे। बुद्धिवाद और प्रत्यक्षवाद पर आधारित आज का भौतिकवाद इसी कसौटी पर कसना चाहता है। अध्यात्म मान्यताओं के साधनों को अपनाने में जो असमंजस इन दिनों उत्पन्न हो गया है। उसी का निराकरण प्रत्यक्ष प्रमाणों के अतिरिक्त और किसी प्रकार हो नहीं सकता। विश्वमानव के समक्ष उपस्थित एक भयावह अवरोध का निराकरण करने के लिये ब्रह्मवर्चस् का शोध संस्थान तत्परता के साथ कटिबद्ध हो रहा है, उसमें उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का सहज दर्शन हो सकता है।

कल्प उपचार का सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार

ब्रह्मवर्चस् शोध-संस्थान के सम्बन्ध में प्रज्ञा परिवार के लिये सभी परिजनों को सामान्य जानकारी है। उसे अध्यात्म तथ्यों को विज्ञान की कसौटी पर परखने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। अभीष्ट प्रयोजनों के लिये उसमें ऐसे बहुमूल्य यन्त्र उपकरण लगाये गये हैं, जिससे मनुष्य की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष परिस्थितियों की जानकारी हो सके। साथ ही किसी प्रयत्न, प्रयोग के आधार पर उत्पन्न होते रहने वाले उतार-चढ़ावों का लेखा-जोखा सही रूप में प्रस्तुत कर सकना सम्भव हो सके। सम्बद्ध विषयों में स्नातकोत्तर विशेषज्ञ इन यन्त्रों का प्रयोग करके यह पता चलाते हैं कि साधना से सिद्धि की दिशा में बढ़ने-बढ़ाने की प्रक्रिया किस सीमा तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किस गति से सफल या असफल रह रही है ? इस व्यवस्था से साधकों को जहाँ साधना क्रम में आवश्यक हेर-फेर करने की सुविधा रहेगी, वहीं सफलताओं का प्रत्यक्ष परिचय मिलने से अनास्था की मनोभूमि भी विश्वासी बन सकेगी। इस आधार पर अधिक श्रद्धा उत्पन्न करना और उस आधार अधिक पर सफलता प्राप्त कर सकना भी सम्भव हो सकेगा।

जैसा कि कहा जा चुका है शरीर व मन में घट रही चेतन प्रतिक्रियाओं एवं आंतरिक स्थिति में साधनावधि में प्रकट होते रहने वाले उतार-चढ़ावों का मूल्यांकन न व्यक्ति द्वारा स्वयं सम्भव है न उपकरणों द्वारा। लेकिन इन्हें अवधि विशेषों में मापकर उनका स्थायी रिकॉर्ड लेकर किसी परिणाम पर पहुँचना विज्ञान की सहायता से पूर्णतः सम्भव है। कुछ ऐसी स्थितियाँ भी विनिर्मित होती हैं, जहाँ दावे के साथ कहा जा सकता है कि घटित होने वाली प्रतिक्रिया साधना विशेष की फलश्रुति है। कल्प साधना आरम्भ की जाने के पूर्व उपकरणों के माध्यम से साधक की शारीरिक व मानसिक स्थिति का विश्लेषण तथा साधना की अवधि में समय-समय पर उस प्रगति का पुनः विश्लेषण-यही प्रक्रिया दर्शा सकती है कि प्रायश्चित-प्रक्रिया, कल्प-साधना व उसके कठोर नियमोपनियमों के पालन से क्या बदलाव आया ? इस आधार पर मार्गदर्शक द्वारा आगे समय-समय पर परिवर्तन सुझाये जाते हैं, जो प्रायश्चित से लेकर औषधि कल्प, आहार कल्प, साधना क्रम किसी भी रूप में हो सकती है।

ब्रह्मवर्चस् की शोध में शारीरिक व मानसिक स्थिति का विश्लेषण मापन करने वाले ऐसे उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, जो सूक्ष्मतम परिवर्तनों को बता सकें। एक माह की अवधि कोई इतनी विशेष नहीं है कि कोई बहुत बड़ा परिवर्तन शरीर में हो जाय। यह तो हठीले कुसंस्कारों से मुक्ति पाने वाले मनोबल को और भी शक्तिशाली बनाकर उसके द्वारा चिन्तन व व्यवहार पर नियन्त्रण करने का अभ्यास है। जो जितने अधिक समय तक कठोरता के साथ नियमों को जीवन में उतारता है, उन्हें अपनी भावी जीवन की रीति-नीति बनाता है, उसके अन्दर उतने ही अधिक प्रभावशाली परिवर्तन देखने में आते हैं।

अस्पतालों में की जाने वाली रोगों की परीक्षण-प्रक्रिया की ही तरह उसमें भी बाह्य परीक्षण की व्यवस्था है। अपने शरीर के विभिन्न पैरासीटर्स की नाप-तौल, भार, सीने का फैलाव, नाड़ी की गति, श्वांस की गति, तापमान, हृदय, फेफड़ों, लीवर, पेट की आँतों तथा स्नायु-संस्थान की विभिन्न हलचलों का शारीरिक परीक्षण इसी में आता है, जिसे फिजीकल एग्जामिनेशन (Physical Examination) कहते हैं। इसी के साथ जुड़ा है; मनः विश्लेषण एवं विभिन्न यन्त्रों द्वारा अचेतन व चेतन मन की विभिन्न गतिविधियों का परीक्षण। इसमें मनोवैज्ञानिक यन्त्रों से सुसज्जित प्रयोगशाला में साधक की विभिन्न आदतों, प्रवृत्ति, भावी रीति-नीति एवं व्यक्तित्व का सप्टीट्युड एडाप्शन, रिएक्शन टाइम इल्युजन्स, परसेप्शन आदि प्रयोग तथा प्रश्नावली के माध्यम से विश्लेषण कर साधना आरम्भ करने के पूर्व की मनःस्थिति का निर्धारण कर लिया जाता है। कल्पकाल की तपश्चर्या अचेतन के परिष्कार से जुड़ी हुई है। अचेतन को यन्त्रों द्वारा न तो मापा जा सकता है, न ही देखा जा सकता है। इसकी प्रतिक्रियायें जरूर देखी जा सकती हैं। मानसिक ग्रन्थियाँ, मन में चल रहे ऊहापोह तथा परम्परागत निर्धारण अन्दर की प्रतिक्रियाओं को एवं अन्तःस्थिति को उजागर करने वाले प्रश्न जिस स्वरूप को दर्शाते हैं, उनका वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण कर अचेतन मन की प्रारम्भिक स्थिति का स्वरूप बना लिया है। इसके बाद मध्यावधि तथा अन्त में किये जाने वाले मापन, प्रायश्चित प्रक्रिया तथा तपश्चर्या के उतार-चढ़ाव आरम्भ होने के बाद से निश्चित ही अलग प्रकार के व साधना से परिष्कार के निर्णायक होते हैं।

इन सब प्रयोगों के बाद पैथोलॉजी परीक्षण क्रम आरम्भ होता है। एक में घुले विभिन्न रस द्रव्य, रक्तकोष अलग-अलग यन्त्रों से अपनी स्थिति का आभास देते रहते हैं। लाल कणों की मात्रा अनुपात, उनका परस्पर एक-दूसरे में अलगाव-विलगाव, लौह तत्व की मात्रा, सफेद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्णों की मात्रा व भिन्नता का प्रारम्भ में हिमोग्लोविन टी. आर. बी. सी., टी. डी. एल. सी. तथा ई. एस. आर. प्लेट्लेट्स के मापन द्वारा विश्लेषण कर लेते हैं। जीवनी शक्ति को नापने के लिये प्रारम्भिक परीक्षण जरूरी है। हिमेटॉलाजी कक्ष में इन प्रयोगों के उपरान्त बायोकेमिस्ट्री कक्ष में असामान्य अवस्था वाले साधकों के लिये गये अल्प रक्त का आधुनिकतम तकनीकी से युक्त उपकरणों द्वारा पी. एच. (रक्त की अम्लता का मापन) रक्त की गैसें (ऑक्सीजन व कार्बन डाइ-ऑक्साइड), रक्त में शक्कर, यूरिया, क्रिएटनीन तथा अन्य एन्जाइम्स का मापन किया जाता है। सहायक के रूप में कई उपकरणों की मदद लेकर इन मापनों से यह अनुमान लगाया जाता है कि बाहर से स्वस्थ दृश्यमान साधक की आन्तरिक स्थिति क्या है ? एन्जाइम्स द्वारा होने वाले रस-स्रावों एवं चयापचयिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नित्य विकार-शोधन तथा मल-संचय की प्रक्रिया कालान्तर में क्या परिणाम उत्पन्न कर सकती है तथा इस निदान के उपरान्त चिकित्सा का निर्धारण किस प्रकार किया जाय ? यह परीक्षण इस दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। जैसे-जैसे संचित विकारों से निवृत्ति मिलती चली जाती है, रक्त में शुद्ध ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती व निःस्सृत होने वाली कार्बन डाई-ऑक्साइड गैस की मात्रा घटती चली जाती है, रक्त गैस विश्लेषक यन्त्र इस परीक्षण में सहायता करता है।

सूक्ष्म रसस्रावों, हारमोन्स का 'रेडियोइम्यूनोएसे' तकनीक द्वारा विश्लेषण इस साधना परीक्षण की विशेषता है। ग्रन्थियों के खुलने, शरीर को तपश्चर्या की भट्टी में गलने से तनाव उत्पन्न करने वाले हारमोन्स की रक्त में कमी तथा चक्रवेधन साधना द्वारा सूक्ष्म उपत्यिकाओं से इस न्यूरो-ह्यूमरल स्रावों का रक्त में बढ़ना साधना की प्रतिक्रिया की विभिन्न उर्ध्वगामी स्थितियाँ हैं।

कल्पकाल में विशिष्ट साधनाओं, नित्य यज्ञ एवं औषधि कल्क सेवन के फलस्वरूप प्राणशक्ति कितनी बढ़ी, फेंफड़ों की रक्तशोधन क्षमता में अभिवृद्धि किस गति क्रम से हुई, इसके लिये स्पायरोग्राम की सहायता ली जाती है। प्राणायाम प्रक्रिया से फेफड़ों के आयतन में वृद्धि तथा 'लंगफक्शन्स' में परिवर्तन प्रत्यक्षतः ग्राफ में रिकार्ड होता चला जाता है। शारीरिक विद्युत ओजस्, तेजावलय एवं ब्रह्मवर्चस् के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इन्हें मात्र देखा व इनका मूल्यांकन किया जा सकता है, यन्त्र द्वारा मापा नहीं जा सकता। फिर यह विद्युत् कुछ स्थान विशेषों पर केन्द्रीभूत होती है, जहाँ उसका इलेक्ट्रोडों द्वारा ग्राफिक अंकन कर यह बताया जा सकता है कि बिखराव को समेट लेने से कायिक विद्युत में क्या परिवर्तन आते है ? मल्टचैनेल पॉलीग्राफ की सहायता से विशेषज्ञगण मस्तिष्कीय विद्युत (इलेक्ट्रो एनसेफेलोग्राफ), हृदय की विद्युत (इलेक्ट्रो मर्डियोग्राफ) स्कीन रेजीस्टेन्स, बॉडी के पेसीटेन्स, फोनोकार्डिया प्लेथिस्मोग्राफी, नर्वक-उक्शन इत्यादि अनेक प्रकार के मापन करते हैं, जो साधना की प्रगति की दिशा बताते हैं। ध्यान-प्रक्रिया से, जप साधना से, मन्त्र योग से, आहार कल्प से एवं निर्धारित औषधि लेने से क्या-क्या परिवर्तन ई. ई. जी. तथा अन्य आकलनों में आये, भिन्न-भिन्न समय पर इसका विश्लेषण कर अध्यात्म उपचारों की वैज्ञानिकता प्रामाणिकता की जाती है। हृदय का साधना में अपना विशिष्ट स्थान है। अंगुष्ठ मात्र कारण शरीर का स्थल माना जाने वाला, अनाहत चक्र के समीपस्थ, पेसमेकर के माध्यम से सारी शरीर प्रक्रियाओं को चलाने वाला यह केन्द्र कल्प साधना से विशिष्ट रूप से किस तरह प्रभावित हुआ ? पूर्व में कुछ शारीरिक व्यापारों के बाद तथा कल्प-चिकित्सा के उपरान्त ई. सी. जी में क्या परिवर्तन आया, इसका रिकॉर्ड कॉर्डियोलोजी कक्ष में लिया जाता है।

इन सभी वैज्ञानिक जानकारियों के विस्तार जानना साधक के लिये एवं साधारण पाठक के लिये जरूरी नहीं। मात्र यह ज्ञान होना चाहिये कि अध्यात्म अनुशासन की यह साधना न केवल विज्ञान सम्मत है अपितु प्रत्यक्ष परिणाम देने वाली है। साधना क्षेत्र में भी भौतिक क्षेत्र की भाँति क्रिया की प्रतिक्रिया हाथों-हाथ दृष्टिगोचर होती है; इस तथ्य को हर साधक अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष घटते देखता है। आते समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की मनःस्थिति एवं विदा के समय की स्थिति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर दीख पड़ता है। प्रारम्भ में जहाँ एक माह की अवधि एक वर्ष के बराबर लगती थी, वाष्पसिद्ध आहार कैसे मन को रुचेगा तथा रसीले सुस्वादु व्यंजनों की अभ्यस्त जिह्वा उसे एकरसता से कैसे ग्रहण करेगी, इस प्रश्नवाचक चिन्ह का उत्तर धैर्यवान साधक चमत्कारी रूप में अपने शारीरिक, मानसिक, आत्मिक स्वास्थ्य में आमूल-चूल परिवर्तन के रूप में पाते हैं। यह बात अलग है कि मात्र कृत्य को ही महत्त्व देकर एक माह की लकीर पीटकर प्रयोग-परीक्षण का तमाशा देखने की किसी इच्छा रही हो। ऐसे व्यक्तियों में बहुधा परिवर्तन नहीं होते। जब तक मन की गाँठें न खुलें, शोधन, वमन विरेचन की प्रक्रिया पूरी नहीं हो तब तक अन्दर कुछ प्राणवान कहा जाने वाला आध्यात्मिक अनुदान प्रविष्ट कैसे हो ? वह न हो तो परिवर्तन कहाँ से उत्पन्न हो ? यह सब सूक्ष्म स्तर की परिणतियाँ हैं, जिनकी स्थूल अभिव्यक्ति मात्र प्रयोग, परीक्षणों के निष्कर्षों में दिखाई देती है।

हर साधक को जाते समय उनकी जाँच-पड़ताल का निष्कर्ष पत्रक दिया जाता है। 'इनडोर सेनिटोरियम' में भरती होते समय की स्थिति व जाते समय की स्थिति का उसमें स्पष्ट उल्लेख होता है। इन्हें देखकर हर कोई यह अन्दाज लगा सकता है कि पूर्व की तुलना में जाते समय निश्चित ही स्थिति बदली, शोधन-प्रक्रिया द्वारा पुराना ढर्रा बदला एवं चिन्तन से लेकर अन्तः की उमंगों तक, काय गतिविधियों से लेकर बहिरंगी व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन आया। यही आध्यात्मिक भाव कल्प है। यह पूर्णतः वैज्ञानिक तथ्यों, प्रमाणों पर आधारित है, इसे दर्शाने का प्रयास ही ब्रह्मवर्चस् में किया जाता है। प्रत्यक्ष को सामने देखकर किसी को स्वीकारने में न नुच करना भी नहीं चाहिये। न केवल साधक समुदाय की तुष्टि के लिये वरन् इस बुद्धिवादी युग में वैज्ञानिक समुदाय की सहमति के लिये बिना इतनी बड़ी प्रतिष्ठापना सम्भव भी नहीं है।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गायत्री-योग साधना

सर्व सुलभ गायत्री योग

योग साधना के अनेकों मार्ग हैं, पर आगे चलकर वे सभी मार्ग एक ही उद्देश्य पर जा पहुँचते हैं। योग साधन की असंख्यों विधियों में से जो बहुत प्रधान हैं वे गायत्री विद्या के अन्तर्गत आ जाती हैं। १२ प्रधान योगों की साधना गायत्री द्वारा हो सकती है। इन पृष्ठों में उन प्रधान योगों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। इन बारह योगों की सहायता से मनुष्य निस्सन्देह सच्चा योगी बन सकता है और वे सब सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है जो योगियों को प्राप्त होती हैं।

योगसाधनतो लोके नास्ति किंचिन्महत्तरम्।

गायत्रीयोगः सुलभः तासु वै साधनास्वपि।।

(लोके) संसार में (योगसाधनतः) योग साधना से (महत्तरं) अधिक बड़ा (किंचित्) कुछ भी (न अस्ति) नहीं। (तासु) उस (साधनास्वपि) साधनाओं भी (गायत्री योगः) गायत्री योग (सुलभः) आसान है।

योग का अर्थ है मिलना, जुड़ना। दो वस्तुयें जब आपस में मिलती हैं तो कहा जाता है कि इनका योग हो गया। दो और चार का योग छै है। दवाओं के नुस्खों को योग कहते हैं क्योंकि उनमें कई चीजों का सम्मिश्रण होता है। आध्यात्मिक भाषा में योग उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके आधार पर दो प्रमुख आध्यात्मिक तत्वों का मिलन होता है। मस्तिष्क और हृदय को माया और मुक्ति को, पाप और पुण्य को, मन और आत्मा को एक सूत्र में बाँध देने एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत कर देने से द्वैत मिटकर अद्वैत बन जाता है और बिछोह दूर होकर एकीकरण का ब्रह्मानन्द प्राप्त होने लगता है।

योग का कार्य है जोड़ना, मिलाना। आत्मा और परमात्मा को मिलाने वाले जितने भी साधन, उपाय, मार्ग हैं, वे सब आध्यात्मिक भाषा में योग कहे जायेंगे। योगों की संख्या असीमित है। भारतीय योगशास्त्रों में सब मिलाकर लगभग ६००० योग साधन अब तक देखे जा चुके हैं शोध करने पर उनकी संख्या अभी इससे कई गुनी अधिक निकलेगी। संसार के विविध देशों धर्मों और विज्ञानों के अनुसार योगों की संख्या इतनी बड़ी है कि उनकी गणना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। झलना होते हुये भी इन समस्त योगों का उद्देश्य एवं कार्य एक ही है। वे सभी पृथक्ता को मिटाकर एकता की स्थापना करते हैं। अभाव को भाव से, अपूर्णता से मिलाने की विद्या योग कही जाती है। जीव अपूर्ण है, अभावग्रस्त है, दुःख-द्वन्द्वों से आच्छादित हो रहा है इसको पूर्णता से साधनों से, ज्ञान से, आनन्द से, परिपूर्ण बनाने के लिये जो उपाय काम में लाये जाते हैं, वे योग कहलाते हैं।

योग साधना सबसे बड़ी, सबसे महत्वपूर्ण विद्या है क्योंकि उसके द्वारा उन वस्तुओं की प्राप्ति होती है जो मनुष्य के लिये सबसे अधिक आवश्यक, सबसे अधिक उपयोगी है। जिस उपाय से जितने बड़े लाभ की प्राप्ति होती है वह उतना ही बड़ा लाभ समझा जाता है। अन्य अनेक सांसारिक चतुरताओं, शक्ति सत्ताओं द्वारा जो लाभ प्राप्त किये जाते हैं, वे भौतिक और क्षणिक होते हैं। उनके द्वारा केवल सांसारिक वस्तुयें किसी हद तक प्राप्त की जाती हैं किन्तु योग के द्वारा जो वस्तुयें प्राप्त की जाती हैं, वे अधिक ऊँची श्रेणी की होती हैं, उनमें अधिक स्थायित्व होता है उनके द्वारा मनुष्य को सुख भी अधिक ऊँची श्रेणी का, अधिक ऊँची मात्रा में प्राप्त होता है, इसलिये योग को सर्वश्रेष्ठ विद्या माना गया है।

सांसारिक योग्यताओं तथा शक्तियों द्वारा धन, स्त्री, पुत्र, पद, वैभव, स्वास्थ्य, विद्या आदि को प्राप्त किया जा सकता है। पर इन चीजों की प्राप्ति होने पर भी न तो मनुष्य को तृप्ति मिल सकती है और न अभावजन्य दुःखों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निवृत्ति होती है क्योंकि वस्तुओं में सुख तभी तक दिखाई पड़ता है, जब तक वे प्राप्त नहीं होतीं, प्राप्त होने पर थोड़ा-बहुत रस उनमें तब तक रहता है, जब तक कि उस वस्तु के प्रति आकर्षण की मात्रा विशेष रहती है, जैसे ही वह आकर्षण घटा कि वह वस्तु भार निरर्थक, उपेक्षणीय एवं तुच्छ प्रतीत होने लगती है। फिर उसकी ओर से मन हट जाता है और नई वस्तु में सुख तलाश करने लगता है। यह क्रम चलता ही रहता है, प्राप्ति के साथ-साथ तृष्णा बढ़ती है। फलस्वरूप कितनी ही बड़ी मात्रा में, कितनी ही उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति हो जाय मनुष्य को सन्तोष नहीं हो सकता और सन्तोष के बिना शान्ति असम्भव है।

सच्ची शान्ति तब मिलती है जब वह वस्तु मिल जाय जिसके बिछुड़ने से आत्मा को बेचैनी रहती हो। वह वधू जिसका हृदयेश्वर प्राण पति बिछुड़ गया है तब तक चैन नहीं पा सकती जब तक उसको अपने बिछुड़े हुये साथी की प्राप्ति न हो जाय। वह माता जिसका बालक खो गया है तब तक चैन से न बैठेगी जब तक अपने बालक को पाकर उसे छाती से लगा न लें। वियोगिनी माता या विरहिनी वधू को उनके प्रिय जन प्राप्त न हो जाय। यदि अन्य वस्तुयें देकर उनके बिछोह को दूर करने का प्रयत्न किया जाय तो सफलता न मिलेगी। वे किसी अन्य वस्तु को लेकर सन्तुष्ट न हो सकेंगी। यही बात आत्मा की है। वह परमात्मा के वियोग में अतृप्त, बेचैन, विरहिनी बनी हुई है। हमारा मन उसके सामने तरह-तरह के प्रलोभनकारी खेल-खिलौने उपस्थित करके बहलाना चाहता है, उसके वियोग को भुलाना चाहता है पर आत्मा की बेचैनी वैसी नहीं है, जो इन खेल-खिलौनों से दूर हो सके। फलस्वरूप सुख-शान्ति के लिये कितनी श्री, समृद्धि, कीर्ति, शक्ति एकत्रित कर ली जाय, पर आत्मा का असन्तोष दूर नहीं होता। बेचैनी मिलती नहीं। अशान्त आत्मा को लोक और परलोक में कहीं भी सुख नहीं मिलता।

आत्मा की तृप्ति उस बिछोह के निवारण पर निर्भर है, जो उसे परमात्मा से बिछुड़ जाने के कारण सता रहा है। इस जुदाई को मिलन के रूप में बदल देने की प्रक्रिया का नाम योग है। योग, आत्मा को परमात्मा से मिलाता है। मस्तिष्क को हृदय से मिलाता तथा माया को विवेक से मिलाता है। इस मिलन से एक ऐसी आन्तरिक तृप्ति मिलती है, जिसकी तुलना में संसार के समस्त सुख तुच्छ हैं। इस प्रगाढ़ तृप्ति का नाम जीवन मुक्ति, परमानन्द, ब्रह्मानन्द, ब्रह्म-निर्वाण समाधि आदि नामों से पुकारा जाता है। वही वास्तविक जीवनोद्देश्य है।

योग के अनेक मार्गों में प्रत्यक्षतः काफी भिन्नता है। कोई साधना किसी प्रकार होती है तो कोई किसी प्रकार। अपनी-अपनी स्थिति, योग्यता, रुचि, अनुकूलता के अनुसार साधक लोग अपने लिये कोई एक मार्ग चुन लेते हैं और उसी पर चलते हुये अभीष्ट स्थान तक पहुँच जाते हैं। इन असंख्य मार्गों में गायत्री साधन में एक मार्ग है। यह मार्ग ऐसा है जो सबसे सीधा, सब से अधिक फलदायक, सबसे सुगम कहा जा सकता है। यह विशेषतायें अन्य योगों में नहीं देखी जातीं। इसीलिये उन सभी सत्पथगामियों के लिये जो आत्मोन्नति के इच्छुक हैं गायत्री से बढ़कर और कोई योग नहीं हो सकता।

गायत्री के द्वादश योग

ज्योतिर्मय्या अनन्ताया सावित्र्या एव संसृति।
प्रत्यक्षः सविता प्रोक्तः प्रतीको विदुषां वरैः।।१।।

(संसृति) सृष्टि में (अनन्तायाः) अनन्त (ज्योतिर्मय्याः) ज्योतिर्मयी (सावित्र्या एव) सावित्री का ही (प्रत्यक्षो प्रतीकः) प्रत्यक्ष प्रतीक (विदुषांवरैः) विद्वानों ने (सविता उक्तः) सविता को कहा है।

सवितापि तथा लोके प्रोच्यते द्वादशविधः।
गर्भेः संनिहितास्तस्य योगाः द्वादशभेदतः।।२।।

(तथा लोके) तथा संसार में (सवितापि) सविता भी (द्वादश विधः) बारह प्रकार का (प्रोच्यते) कहा है। (तस्य) उस सविता के (गर्भ) गर्भ में (द्वादश भेदतः) द्वादश भेद वाले (योगाः) योग (संनिहिताः) संनिहित हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सावित्री भुवने यास्ति विश्वत्राणसमाकुला।
योगरूपा मता सातु सद्भिर्योगविशारदैः।।
यस्यास्तु योगरूपाया उक्ताः द्वादशकाः कलाः।
प्रोच्यते द्वादशयोगास्तत्राप्यन्तर्हिता इति।।४।।

(भुवने) संसार में (विश्वत्राणसमाकुला) विश्वकल्याण में रत (या) जो (सावित्री) सावित्री है (सा तु) वह सावित्री (सद्भिः) सज्जन (योगविशारदैः) योग के पंडितों ने (योग रूपामता) योग रूप मानी है (योगरूपायाः) योग रूप (तस्याः उस सावित्री की (द्वादशकाः कलाः) बारह कला (उक्ताः) कही गई है। (तत्रापि) उसमें भी (द्वादश योगाः) बारह योग (अन्तर्हिताः) अन्तर्हित हैं (इति) यह (प्रोच्यते) कहा जाता है।

यह जो स्थूल जगत दिखाई पड़ रहा है उसका प्रधान संचालक सूर्य है। वेदों में सूर्य को संसार की आत्मा (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च) कहा है। यदि सूर्य न होता तो विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ, परमाणु और तत्वों अपने अस्तित्व को प्रकट ही न कर सकते। सुप्त प्रकृति में रासायनिक पदार्थ, परमाणु और तत्व होते हैं पर उनका जागरण प्रस्फुटन, विकास, संचालन और अभिवर्धन तभी होता है, जब सूर्य की अनन्त शक्तियों का उनके साथ सम्मिलन होता है। सविता को प्रसविता भी कहा गया है क्योंकि वह समस्त दृश्य पदार्थों का सुप्त प्रकृति के गर्भ में से प्रसव करता है। रज के द्वारा गर्भ तभी धारण होता है, जब उसके साथ वीर्य का संयोग हो, इस संयोग के अभाव में रज का कोई प्रत्यक्ष रूप सामने नहीं आता। प्रकृति रज है, सविता वीर्य है इन दोनों के संयोग से उस स्थूल सृष्टि का अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है।

सूर्य में यों तो अनन्त शक्तियाँ हैं पर सृष्टि के उत्पादन और संचालन में उसकी तीन शक्तियाँ प्रधान रूप से कार्य करती हैं। (१) गति (२) उष्णता (३) इच्छा, इन तीनों का विभिन्न परमाणुओं से विभिन्न मात्रा में संयोग होने से विभिन्न प्रकार के पदार्थों का उत्पादन, अभिवर्धन तथा विनाश होता रहता है। इस प्रकार सृष्टि में विविध प्रकार की जो परिस्थितियाँ एवं घटनायें घटित हो रही हैं। उनका कर्तृत्व सूर्य के ऊपर ही आता है। सृष्टि विज्ञान के मूल कारणों पर जब हम विचार करते हैं तो स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है कि प्राणियों की शारीरिक, मानसिक स्थिति का बहुत बड़ा सम्बन्ध सूर्य से है और सांसारिक पदार्थों को वातावरण की सूक्ष्म तत्वों की स्थिति का सम्बन्ध भी उसी से है। इन सम्बन्धों को जानने के कारण ही सूर्य का संसार की आत्मा कहा गया है।

आकाश में जो प्रतिदिन उदय और अस्त होता है, उस अग्नि पिण्ड मात्र को ही सूर्य नहीं समझना चाहिये। यह तो उसका स्थूल रूप है जो अन्य पदार्थों की भाँति स्थूल तत्वों से बना हुआ है। इस स्थूल सविता के अन्तर्गत जो सूक्ष्म शक्ति काम करती है उसका नाम है सावित्री। जैसे देह स्थूल है और उसमें रहने वाला देही (आत्मा) सूक्ष्म है, उसी प्रकार सविता स्थूल है और उसकी संचारिणी शक्ति सूक्ष्म है जिसे सावित्री कहते हैं। यही सावित्री गायत्री नाम से भी पुकारी जाती है।

गायत्री उपासना का तात्पर्य सृष्टि की उस मूल शक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, जो संसार की आत्मा कहलाने वाले सविता का भी संचालन करती है और इस प्रकार वह समस्त विश्व की प्रत्येक वस्तु के ऊपर अपना आधिपत्य रखती है। उस शक्ति को जिस हद तक अपनी ओर आकर्षित कर लिया जाता है, जितना उससे सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता है उतना ही उसके आधीन वस्तुओं पर अपना अधिकार हो जाता है। जिसकी राजा से रिश्तेदारी है, जिस पर राजा प्रसन्न है, उसके लिये राजा के वैभव को किसी हद तक उपयोग कर लेना कुछ कठिन नहीं है। गायत्री के साधक भी इसी प्रकार उस महाशक्ति के अधिकारों का उपयोग करके लाभान्वित होते हैं।

सूर्य को १२ प्रकार का कहा है। बारह मासों की सक्रान्तियाँ पृथक्-पृथक् राशियों के नाम से पुकारी जाती हैं। इस प्रकार सूर्य एक होते हुये भी उसकी गणना १२ की संख्या में होती है। ऋतुओं के अनुसार सूर्य की प्रखरता, वर्ण, गुण, देर तक का कम समय तक निकले रहने की स्थिति में भी अन्तर होता है।

सावित्री को—गायत्री को भी १२ प्रकार का बताया गया है। असंख्य शक्तियों में से १२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तियाँ ऐसी हैं जो मनुष्य की मनोभूमि पर सीधा प्रभाव डालती हैं और उन प्रभावों को ग्रहण करके मानव प्राणी उन सब लाभों को प्राप्त कर सकता है, जो उसके लिये आवश्यक हैं। इन द्वादश शक्तियों को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है किस प्रकार आकर्षित किया जा सकता है, इसका रहस्य हमारे पूर्वजों ने, योग विद्या के आचार्यों ने बड़े श्रम एवं अनुसंधान के पश्चात् जाना था और उस रहस्य को कार्यान्वित करके उन्होंने ऐसी-ऐसी अद्भुत विशेषतायें अपने अन्दर उत्पन्न की थीं, जिन्हें सुनकर आज तो उनके होने के सम्बन्ध में विश्वास करने में भी कठिनाई होती है।

योग के यों तो असंख्यों भेद हैं। चौरासी योग तो प्रसिद्ध ही हैं, इनके अतिरिक्त अनेक अप्रसिद्ध योग भी हैं। पर इन सबमें १२ योग सर्व प्रधान हैं। आत्मा से परमात्मा तक पहुँचने की यह बारह सड़कें हैं। कोई सड़क चाहे कंकड़ की, चाहे पत्थर की, चाहे सीमेन्ट की चाहे कोलतार की भले ही बनी हो पर उसका आधार जमीन ही होगी। वह जमीन के ही ऊपर बनाई गई होगी। इसी प्रकार योग की साधनायें चाहें किसी भी परिपाटी के अनुसार क्यों न हों पर उनका आधार प्रकृति की वही संचालक शक्ति होगी, जिसके माध्यम द्वारा सूक्ष्म लोकों से किन्हीं विशेष शक्तियों का आकर्षित किया जा सकता है। इस संचालक शक्ति का नाम सावित्री या गायत्री है। चाहे जिस नाम से इस शक्ति को पुकारा जाय पर आधार यही रहेगा। इसके बिना अन्य किसी आधार पर योग की सिद्धियाँ सफलतायें प्राप्त नहीं हो सकतीं।

आत्म शक्ति को प्राप्त करने के १२ राज मार्ग द्वादश योग के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन मार्गों पर बीच-बीच में जो बापी, कूप, तड़ाग, वन, उपवन पड़ते हैं वही सिद्धि के चमत्कारों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गायत्री के द्वादश योग इस प्रकार हैं—

(१) प्रणव योग (२) विश्व योग (३) ध्यान योग (४) सूर्य योग (५) शक्तियोग (६) प्राण योग (७) सहजयोग (८) भक्तियोग (९) ज्ञान योग (१०) लय योग (११) नाद योग एवं (१२) ग्रन्थि योग।

(१) प्रणव योग अथवा ब्रह्मयोग

ॐकार एव लोकेऽस्ति ब्रह्म संसृष्टिकारणम्।
व्याप्तं येन जगत्सर्व ज्ञान विज्ञानसंकुलम्।।१।।
ज्ञानामाराधनं चैव तस्यैव स्थिरचेतना।
उभयं मुक्तिदं यद्वै ब्रह्मयोगस्तदुच्यते।।२।।

(लोके) संसार में (संसृष्टिकारणं) सृष्टि का कारण (ब्रह्म) ब्रह्म, (ॐकार) ॐकार (एव) ही (अस्ति) है। (येन) जिस ओंकार ब्रह्म ने (ज्ञान विज्ञान संकुल) ज्ञान और विज्ञान से युक्त (सर्वजगत्) समस्त संसार (व्याप्तं) व्याप्त किया हुआ है।

(स्थिर चेतसा) स्थिर चित्त से (तस्यैव) उसी ओंकार ब्रह्म का (ज्ञानं) ज्ञान (चैव) और (आराधनं) आराधना (यत्) जो (उभयं) दोनों (मुक्तिदं) मुक्ति देने वाले कर्म हैं (तत्) वह (ब्रह्मयोग उच्यते) ब्रह्म योग कहलाता है।

ॐकार ईश्वर का स्वयं सिद्ध नाम है। प्रकृति के सूक्ष्म अन्तराल में प्रतिक्षण एक ध्वनि होती रहती है, जिसे सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने समाधि अवस्था में पहुँचकर देखा और सुना है जैसे घड़ियाल में हथौड़ी मार देने से कुछ देर तक एक झनझनाहट होती रहती है, उसी प्रकार प्रकृति के गर्भ में प्रतिक्षण एक आघात होता है, जिसकी कुछ देर तक प्रतिध्वनि होती रहती है। इस आघात और प्रतिध्वनि को मानव भाषा में 'ॐ' शब्द से पुकारा जाता है।

जैसे पेण्डुलम हिलते रहने से घड़ी के सारे कलपुर्जे चलते रहते हैं, जिस प्रकार इंजन के पिस्टन में आगे-पीछे आने-जाने की क्रिया होते रहने से सारा यन्त्र चलता है, उसी प्रकार प्रकृति की यह वृहत् कार्य मशीन उस ॐकार ध्वनि के कारण चलती है। परमाणुओं में जो कम्पन एवं गतिशीलता है, उसका कारण भी वह ब्रह्मध्वनि ही है। इस तरह यह ॐकार ही समस्त सृष्टि का संचालन करता है।

इस ब्रह्म ध्वनि के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेना ही ब्रह्मयोग या प्रणव योग है। गायत्री में सर्व प्रथम प्रणव का उच्चारण किया जाता है, जिसका संकेत प्रणव योग की ओर है। इस प्रणव को प्राप्त करने के लिये ही योग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ब्रह्मयोग दूसरा नाद योग। नादयोग में अन्य ध्वनियों को सुनते-सुनते ॐकार ध्वनि तक पहुँचते हैं और फिर उसका अवलम्बन करके ब्रह्म तक पहुँचते हैं। इस नाद योग का वर्णन आगे करेंगे। दूसरा मार्ग यह है कि शरीर में जो छै ग्रन्थियाँ हैं, उनको खोलकर शक्तिभण्डार कुण्डलिनी को जागृत किया जाये। प्राणी जब अपनी सुप्त शक्ति कुण्डलिनी को जागृत कर उससे सुसज्जित हो जाता है तो उसे ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार कमल में ॐकार ध्वनि सुनाई पड़ती है।

नाद योग के द्वारा ब्रह्माण्ड के अन्तराल में प्रणव-ध्वनि सुनी जाती है। ब्रह्मयोग द्वारा इस पिण्ड में, शरीर में ही सब कुछ मिल जाता है। ब्रह्माण्ड विस्तृत है पिण्ड संकुचित क्षेत्र में कार्य करने से जहाँ लाभ अधिक होता है, वहाँ परिश्रम भी अधिक करना पड़ता है। कुण्डलिनी का जागरण एक परम पुरुषार्थ माना जाता है। जबकि नाद सुगम होने पर भी देर में सिद्ध होता है, तालाब या बावड़ी खोदकर भी पानी प्राप्त किया जा सकता है और जमीन में लोहे का नल बिठाकर भी पानी निकाला जा सकता है। तालाब खोदना सर्वविदित है। उसे देर-सवेर में साधारण बुद्धि का मनुष्य भी पूरा कर सकता है पर जमीन में नल बिठाकर कम से कम जमीन घेरना और स्वच्छ, ताजा एवं अधिक मात्रा में जल प्राप्त करते रहने के लाभों को उठाना कठिन है। कुण्डलिनी जागरण नल बिठाना है और नाद योग तालाब खोदना। अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार दोनों ही योग उत्तम हैं। नीचे कुण्डलिनी शक्ति षट्चक्र और उनका वेधन करने के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जाता है। ब्रह्मयोग का ही दूसरा नाम कुण्डलिनी योग है इसे ही प्रणव योग भी कहा जाता है।

कुण्डलिनी का परिचय

शरीर में अनेक साधारण और अनेक असाधारण अंग हैं। असाधारण अंग जिन्हें 'मर्म स्थान' भी कहते हैं। केवल इसीलिये मर्म स्थान नहीं कहे जाते कि वे बहुत सुकोमल एवं उपयोगी होते हैं वरन् इसलिये भी कहे जाते हैं कि इनके भीतर गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों के महत्त्वपूर्ण केन्द्र होते हैं। इन केन्द्रों में वे बीज सुरक्षित रूप से रखे रहते हैं, जिनका उत्कर्ष, जागरण हो जाये तो मनुष्य कुछ से कुछ बन सकता है। उसमें आत्मिक शक्तियों के स्रोत उमड़ सकते हैं और उस उभार के फलस्वरूप वह ऐसी अलौकिक शक्तियों का भण्डार बन सकता है, जो साधारण लोगों के लिये "अलौकिक आश्चर्य" से कम प्रतीत नहीं होती।

ऐसे मर्म-स्थलों में मेरुदण्ड का—रीढ़ की हड्डी का प्रमुख स्थान है। यह शरीर की आधारशिला है। यह मेरुदण्ड छोटे-छोटे तेतीस अस्थिखंडों से मिलकर बना है। इस प्रत्येक खण्ड में तत्वदर्शियों को ऐसी विशेष शक्तियाँ परिलक्षित होती हैं, जिनका सम्बन्ध दैवी शक्तियों से है। देवताओं में जिन शक्तियों का केन्द्र होता है वे शक्तियाँ भिन्न-भिन्न रूप से मेरुदण्ड के इन अस्थि खण्डों में पाई जाती हैं, इसलिये वह निष्कर्ष निकाला गया है कि मेरुदण्ड तेतीस देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है। आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र और प्रजापति इन तेतीसों की शक्तियाँ उसमें बीज रूप से उपस्थित रहती हैं।

इस पोले मेरुदण्ड में शरीर विज्ञान के अनुसार अनेकों नाड़ियाँ हैं और वे विविध कार्यों में नियोजित रहती हैं। अध्यात्मक विज्ञान के अनुसार उसमें तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं—(१) इड़ा (२) पिंगला (३) सुषुम्ना। यह तीन नाड़ियाँ मेरुदण्ड को चीरने पर प्रत्यक्ष रूप में आँखों द्वारा नहीं देखी जा सकती, इनका सम्बन्ध सूक्ष्म जगत से है। यह एक प्रकार के विद्युत-प्रवाह हैं। जैसे बिजली से चलने वाले यन्त्रों में नेगेटिव और पोजेटिव ऋण और धन-धारायें दौड़ती हैं और उन दोनों का जहाँ मिलन होता है, वहीं शक्ति पैदा हो जाती है। इसी प्रकार इड़ा को नेगेटिव और पिंगला को पाजेटिव भी कहते हैं। इड़ा को चन्द्रनाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। मोटे शब्दों इन्हें ठण्डी और गरम धारायें कहा जा सकता है। दोनों के मिलने से जो तीसरी शक्ति उत्पन्न होती है, उसे सुषुम्ना कहते हैं। प्रयाग में गंगा और यमुना मिलती हैं। इस मिलन से एक तीसरी सूक्ष्म सरिता और विनिर्मित होती है, जिसे सरस्वती कहते हैं। इस प्रकार दो नदियों से त्रिवेणी बन जाती है। मेरुदण्ड के अन्तर्गत भी ऐसी आध्यात्मिक त्रिवेणी है। इड़ा पिंगला की दो धारायें मिलकर सुषुम्ना की सृष्टि करती हैं और एक पूर्ण त्रिवर्ग बन जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

६.६ प्रसुप्ति से जागृति की ओर

यह त्रिवेणी ऊपर मस्तिष्क के मध्य केन्द्र से—ब्रह्मरन्ध्र से—सहस्रार कमल से—सम्बन्धित है और नीचे मेरुदण्ड का जहाँ नुकीला अन्त है वहाँ—लिंग मूल और गुदा के बीच के 'सीघन' स्थान की सीध में पहुँचकर रुक जाती है। यह इस त्रिवेणी का आदि अन्त है।

सुषुम्ना नाड़ी के भीतर एक और त्रिवर्ग है। उसके अन्तर्गत भी तीन अत्यन्त सूक्ष्म धारायें प्रवाहित होती हैं, जिन्हें वज्रा, चित्रणी और ब्रह्मनाड़ी कहते हैं। जैसे केले के तने को काटने पर उसमें एक के भीतर एक परत दिखाई पड़ती है वैसे ही सुषुम्ना के भीतर वज्रा है, वज्रा के भीतर चित्रिणी है और चित्रणी के भीतर ब्रह्मनाड़ी है। यह ब्रह्मनाड़ी, अन्य सब नाड़ियों का मर्मस्थल केन्द्र एवं शक्ति सार है। इस. मर्म की सुरक्षा के लिये उस पर इतने परत चढ़े हुये हैं।

यह ब्रह्मनाड़ी मस्तिष्क के केन्द्र में—ब्रह्मरन्ध्र में—पहुँचकर हजारों भागों में चारों ओर फैल जाती है। इसी से उस स्थान 'को सहस्र दल कमल कहते हैं। विष्णु की शय्या शेष जी के सहस्र फलों का अलंकार भी इस सहस्रदल कमल से ही लिया गया है। भगवान बुद्ध आदि अवतारी पुरुषों के मस्तिष्क पर एक विशेष प्रकार के गुंजलक दार बालों का अस्तित्व हम उनकी मूर्तियों अथवा चित्रों में देखते हैं, यह इस प्रकार के बाल नहीं है वरन् सहस्र दल कमल का कलात्मक चित्र है। यह सहस्र दल सूक्ष्म लोकों से, विश्वव्यापी शक्तियों से सम्बन्धित हैं। रेडियो-ट्रान्समीटर के ध्वनि ग्राहक और ध्वनि विस्तारक तन्तु फैलाये जाते हैं—जिन्हें 'एरियल' कहते हैं। इन तन्तुओं के द्वारा सूक्ष्म आकाश में ध्वनि को फेंका जाता है और बढ़ती हुई तरंगों को पकड़ा जाता है। मस्तिष्क का 'ऐरियल' भी सहस्रार कमल है। उसके द्वारा परमात्म सत्ता की अनन्तों शक्तियों को सूक्ष्म लोक में से पकड़ा जाता है। जैसे भूखा अजगर जब जाग्रत होकर लम्बी साँसें खींचता है तो आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को अपनी तीव्र शक्ति से जकड़ लेता है और वे मन्त्र मुग्ध की तरह खिंचते हुए अजगर के मुँह में चले जाते हैं। उसी प्रकार जागृत हुआ, सहस्र मुखी शेष भाग-सहस्रार कमल-अनन्त प्रकार की सिद्धियों को लोक-लोकान्तरों में खींच लेता है। जैसे कोई अजगर जब क्रुद्ध होकर विषैली फुँसाकार मारता है तो एक सीमा तक वायुमण्डल को विषैला कर देता है, उसी प्रकार जागृत हुए सहस्रार कमल द्वारा शक्तिशाली भावना तरंग प्रवाहित करके साधारण जीव-जन्तुओं एवं मनुष्यों को ही नहीं वरन् सूक्ष्म लोकों की आत्माओं को भी प्रभावित और आकर्षित किया जा सकता है। शक्तिशाली ट्रान्समीटर द्वारा किया हुआ अमेरिका का ब्राडकास्ट भारत में सुना जाता है। शक्तिशाली सहस्रार द्वारा निक्षेपित साधना प्रवाह भी लोक लोकान्तरों के सूक्ष्म तत्वों को हिला देता है।

अब मेरुदण्ड के नीचे के भाग को, मूल को लीजिये। सुषुम्ना के भीतर रहने वाली तीन नाड़ियों में सबसे सूक्ष्म ब्रह्मनाड़ी मेरुदण्ड के अन्तिम भाग के समीप एक काले वर्ण के षट्कोण वाले परमाणु से लिपटकर बँध जाती है। छप्पर को मजबूत बाँधने के लिये दीवार में खूँटे गाड़ते हैं और उन खूँटों में छप्पर से सम्बन्धित रस्सी को बाँध देते हैं। इसी प्रकार उस षट्कोण कृष्ण वर्ण परमाणु से ब्रह्मनाड़ी को बाँधकर इस शरीर से प्राणों के छप्पर को जकड़ देने की व्यवस्था की गई है।

इस कृष्णवर्ण, षट्कोण परमाणु को अलंकारिक भाषा में कूर्म कहा गया है क्योंकि उसकी आकृति कछुए जैसी है। पृथ्वी कूर्म भगवान पर टिकी हुई है। इस अलंकार का तात्पर्य जीवन ग्रह के उस कूर्म आधार पर टिके हुये होने से है। शेषनाग के फन पर पृथ्वी टिकी हुई है। इस उक्ति का आधार ब्रह्मनाड़ी की वह आकृति है। जिसमें वह इस कूर्म से लिपटकर बैठी हुई है और जीवन को धारण किये हुये हैं यदि वह अपना आधार त्याग दे तो जीवन भूमि के चूर-चूर हो जाने में क्षण भर की भी देर न समझनी चाहिये।

कूर्म से ब्रह्मनाड़ी के गुन्थन-स्थल को आध्यात्मिक भाषा में 'कुंडलिनी' कहते हैं। जैसे काले रंग के आदमी का नाम 'कलुआ' भी पड़ जाता है, उसी प्रकार कुण्डलाकार बनी हुई इस आकृति को 'कुण्डलिनी' कहा जाता है। यह साढ़े तीन लपेटे इस कूर्म में लगाये हुये है और मुँह नीचे को है। विवाह संस्कारों में इसी की नकल करके 'भांवरि या फेरे' होते हैं। साड़े तीन (सुविधा की दृष्टि से चार) परिक्रमा किये जाने और मुँह नीचा रखे जाने का विधान उस कुण्डलिनी के आधार पर ही रखा गया है क्योंकि भावी जीवन निर्माण की व्यवस्थित आधार शिला, पति-पत्नी की कूर्म और ब्रह्मनाड़ी मिलन

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैसा ही महत्त्वपूर्ण है जैसा कि शरीर और प्राण को जोड़ने में कुंडलिनी का महत्त्व है।

इस कुण्डलिनी की महिमा की शक्ति और उपयोगिता इतनी अधिक है कि उसको भली प्रकार समझने में मनुष्य की बुद्धि लड़खड़ा जाती है। भौतिक विज्ञान के अन्वेषकों के लिये आज "परमाणु" एक पहेली बना हुआ है। उसके तोड़ने की एक क्रिया मालूम हो जाने का चमत्कार दुनियाँ ने प्रलयंकर 'परमाणुबम' के रूप में देख लिया है। अभी उसके अनेकों विध्वंसक और रचनात्मक पहलू बाकी हैं। सर आर्थर का कथन है कि—"यदि परमाणु शक्ति का पूरा ज्ञान और उपयोग मनुष्य को मालूम हो गया तो उसके लिये कुछ भी असम्भव न रहेगा। वह सूर्य के टुकड़े-टुकड़े करके उसे गर्द में मिला सकेगा और जो चाहेगा वह वस्तु या प्राणी मन माने ढंग से पैदा कर लिया करेगा। ऐसे-ऐसे यन्त्र उसके पास होंगे जिनमें सारी पृथ्वी एक मुहल्ले में रहने वाली आबादी की तरह हो जायेगी। कोई व्यक्ति चाहे कहीं क्षण भर में आ-जा सकेगा और चाहे जिससे चाहे जो वस्तु ले-दे सकेगा तथा देश-देशान्तरों में स्थित लोगों से ऐसे ही घुट-घुटकर वार्तालाप कर सकेगा जैसे दो मित्र आपस में बैठे-बैठे गप्पें लड़ाते रहते हैं। जड़ जगत के एक परमाणु की शक्ति इतनी कूती जा रही है कि उसकी महत्ता को देखकर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। फिर चैतन्य जगत का एक स्फुलिंग जो जड़ परमाणु की अपेक्षा अनन्त गुना शक्तिशाली है, जितना अद्भुत होगा इसकी तो कल्पना कर सकना भी कठिन है।

योगियों में अनेकों प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ होने के वर्णन और प्रमाण हमें मिलते हैं। योग की ऋद्धि-सिद्धियों की अनेकों गाथायें सुनी जाती हैं। उनसे आश्चर्य होता है और विश्वास नहीं होता कि यह सूत्र कहाँ तक ठीक है। पर जो लोग विज्ञान से परिचित हैं और जड़ परमाणु तथा चैतन्य स्फुलिंग की शक्तियों से थोड़े-बहुत परिचित हैं, उनके लिये इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। जिस प्रकार आज परमाणु की शोध में प्रत्येक देश के वैज्ञानिक व्यस्त हैं, उसी प्रकार पूर्वकाल में आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने—तत्वदर्शी ऋषियों ने—मानव शरीर के अन्तर्गत एक बीज परमाणु की अत्यधिक शोध की थी। दो परमाणुओं को तोड़ने, मिलाने या स्थानान्तरित करने का सर्वोत्तम स्थान कुण्डलिनी केन्द्र में होता है क्योंकि अन्य सब जगह ही चैतन्य परमाणु गोल और चिकने होते हैं पर कुण्डलिनी में यह मिथुन लिपटा हुआ है। जैसे—यूरेनियम और प्लेटोनियम धातु में परमाणुओं का गुन्थन कुछ ऐसे-टेड़े तिरछे ढंग से होता है कि उनका तोड़ा जाना अन्य पदार्थों के परमाणुओं की अपेक्षा अधिक सरल है, उसी प्रकार कुण्डलिनी स्थिति स्फुल्लिंग परमाणुओं की गतिविधि को इच्छानुकूल संचालित करना अधिक सुगम है। इसीलिये प्राचीनकाल में कुण्डलिनी जागरण की उतनी ही तत्परता से शोधी हुई थीं जितनी कि आजकल परमाणु विज्ञान के बारे में हो रही हैं। इन शोधों-परीक्षणों और प्रयोगों के फलस्वरूप उन्हें ऐसे कितने ही रहस्य भी करतलगत हुये थे, जिन्हें आज "योग के चमत्कार" नाम से पुकारते हैं।

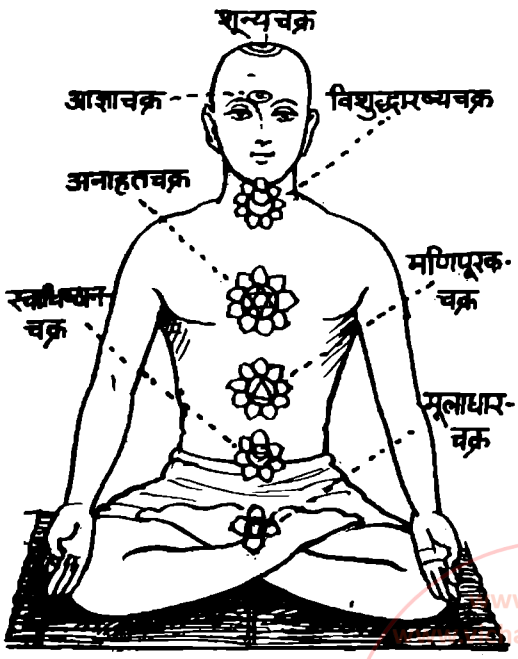
मैडम ब्लैवेटस्की ने कुण्डलिनी शक्ति के बारे में काफी खोजबीन की है। वे लिखती हैं—"कुण्डलिनी विश्वव्यापी, सूक्ष्म विद्युत शक्ति है, जो स्थूल बिजली की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली है इसकी चाल सर्प की चाल की तरह टेढ़ी है इससे इसे सर्पाकार कहते हैं। प्रकाश एक लाख पचासी हजार मील प्रति सैकिंड चलता है, पर कुण्डलिनी की गति एक सैकिण्ड में ३४५००० मील है।" पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे 'स्प्रिट फायर' (Spirit fire) अथवा सरपेन्टल पावर (Serpental Power) कहते हैं। इस सम्बन्ध में सर जान बुडरफ ने बहुत विस्तृत विवेचन किया है।

कुण्डलिनी को गुप्त शक्तियों की तिजोरी कहा जा सकता है। बहुमूल्य रत्नों को रखने के लिये किसी अज्ञात स्थान में, परिस्थितियों में तिजोरी रखी जाती है और उसमें कई ताले लगा दिये जाते हैं ताकि घर या बाहर के अनाधिकारी लोग उस खजाने में रखी हुई सम्पत्ति को न ले सकें। परमात्मा ने हमें अनन्त शक्तियों का अक्षय भण्डार देकर उसमें छै ताले लगा दिये हैं। ताले इसलिये लगा दिये हैं कि जब पात्रता आ जाय, धन के उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार समझने लगें तभी वह सब प्राप्त हो सके। उन छहों तालों की ताली मनुष्य को ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौंप दी गई है कि ताकि वह आवश्यकता के समय तालों को खोलकर उचित लाभ उठा सके।



षट्चक्र

यह छै ताले जो कुण्डलिनी पर लगे हुये हैं, छै चक्र कहलाते हैं। इन चक्रों का वेधन करके जीव कुण्डलिनी के समीप पहुँच सकता है और उसका यथोचित् उपयोग करके जीवन लाभ प्राप्त कर सकता है। सब लोगों की कुण्डलिनी साधारणतः अवस्था में पड़ी रहती है। पर जब उसे जगाया जाता है तो वह अपने स्थान पर से हट जाती है और उस लोक में प्रवेश कर जाने देती है, जिसमें परमात्म-शक्तियों की प्राप्ति हो जाती है। बड़े-बड़े गुप्त खजाने जो प्राचीन काल से भूमि में छिपे पड़े होते हैं उन पर सर्प की चौकीदारी पाई जाती है। खजाने के मुख पर कुंडलीदार सर्प बैठा रहता और चौकीदारी किया करता है। देवलोक भी ऐसा ही खजाना है जिसके मुख पर षट्कोण कूर्म की शिला रखी हुई है और शिला से लिपटी हुई भयंकर सर्पिणी कुण्डलिनी बैठी है। यह सर्पिणी अधिकारी पात्र की प्रतीक्षा में बैठी होती है। जैसे ही कोई अधिकारी उसके समीप पहुँचता है, वह उसे रोकने या हानि पहुँचाने की अपेक्षा अपने स्थान से हटकर उसको रास्ता दे देती है और उसका कार्य समाप्त हो जाता है।

मस्तिष्क के ब्रह्मरन्ध्र में बिखरे हुये सहस्र दल भी साधारणतः उसी प्रकार प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं जैसे कि कुण्डलिनी सोया करती है। इतने बहुमूल्य यन्त्रों और कोषों के होते हुये भी मनुष्य साधारणतः बड़ा दीन, दुर्बल, तुच्छ, क्षुद्र, विषय-विकारों का गुलाम बनकर कीट-पतंगों जैसा जीवन व्यतीत करता रहता है और दुःख दारिद्र की दासता में बँधा हुआ फड़फड़ाता रहता है। पर जब वह इन यन्त्रों और रत्नागारों से परिचित होकर उनके उपयोग को जान लेता है, उन पर अधिकार कर लेता है तो वह परमात्मा के सच्चे उत्तराधिकारी की समस्त योग्यताओं और शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है। कुण्डलिनी जागरण से होने वाले लाभों के सम्बन्ध में योग शास्त्रों में बड़ा, विशेष और आकर्षक वर्णन है। उस सबकी चर्चा न करके यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से इस विश्व में जो कुछ है वह सब कुछ मिल सकता है, उसके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

षट्चक्रों का जागरण

एतस्मात्तजपान्नं ध्यानमग्नेन चेतसा।

जायते क्रमशश्चैव षट्चक्राणां तु जाग्रतिः।।

(नूनं) निश्चय ही (ध्यान मग्नेन चेतसा) ध्यान में रत चित्त के द्वारा। (एतस्मात् जयात्) इस जप को करने से (क्रमशः) धीरे-धीरे (षट्चक्राणां) षट् चक्र (जाग्रतिः जायते) जागृत हो जाते हैं।

षट्चक्राणि यदैतानि जागृतानि भवन्ति हि।

षट् सिद्धायोऽभिजायन्ते चक्रैरेतैस्तदा नरम्।।

(हि) निश्चय से (यदा) जब (एतानि) ये (षट्चक्राणि) षट् चक्र (जागृतानिभवन्ति) जागृत हो जाते हैं। (तदा) तब (नरं) मनुष्य को (एतैः चक्रैः) इन चक्रों के द्वारा (षट्सिद्धयः) छै सिद्धियाँ (अभि जायन्ते) प्राप्त होती हैं।

कुण्डलिनी के शक्ति मूल तक पहुँचने के मार्ग में छै फाटक हैं अथवा यों कहना चाहिये कि छै ताले लगे हुये हैं। यह फाटक या ताले खोलकर ही कोई जीव उस शक्ति केन्द्र तक पहुँच सकता है। इन छै अवरोधों को आध्यात्मिक भाषा में 'षट्' कहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुषुम्ना के अन्तर्गत रहने वाली तीन नाड़ियों में सबसे भीतर स्थित ब्रह्म नाड़ी से यह छै चक्र संबन्धित हैं। माला के सूत्र में पिरोये हुये कमल पुष्पों से इनकी उपमा दी जाती है। अन्यत्र दिये हुये चित्र में पाठक यह देख सकेंगे कि कौन-सा चक्र किस स्थान पर है ? आधार मूलाधार चक्र योनि की सीध में स्वाधिष्ठान चक्र पेडू की सीध में, मणिपुर चक्र नाभि की सीध में, अनाहत चक्र हृदय की सीध में विशुद्धारण्य चक्र कंठ की सीध में और आज्ञा चक्र भृकुटि के मध्य से अवस्थित हैं। इनसे ऊपर सहस्रार कमल है।

सुषुम्ना तथा उसके अन्तर्गत रहने वाली चित्रिणी आदि नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म हैं कि उन्हें साधारण नेत्रों से देख सकना कठिन है फिर उनसे सम्बन्धित यह चक्र तो और भी सूक्ष्म है, किसी शरीर को चीर फाड़ करते समय इन चक्रों को नस-नाड़ियों की तरह स्पष्ट रूप से नहीं देखा जा सकता क्योंकि हमारे चर्म-चक्षुओं की वीक्षण शक्ति बहुत ही सीमित है। शब्द की तरंगें, वायु के परमाणु तथा रोगों के कीटाणु हमें आँखों से दिखाई नहीं पड़ते तो भी उनके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। इन चक्रों के योगियों ने अपनी योग दृष्टि से देखा है और उनका वैज्ञानिक परीक्षण करके महत्त्वपूर्ण लाभ उठाया है और उसके व्यवस्थित विज्ञान का निर्माण करके योग मार्ग के पथिकों के लिये उसे उपस्थित किया है।

'षटचक्र' एक प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं जो ब्रह्म नाड़ी के मार्ग में बनी हुई हैं। इन चक्र ग्रन्थियों में जब साधक अपने ध्यान को केन्द्रित करता है तो उसे वहाँ की सूक्ष्म स्थिति का बड़ा विचित्र अनुभव होता है। वे ग्रन्थियाँ गोल नहीं होतीं वरन् उनमें इस प्रकार कोण निकले होते हैं जैसे पुष्प में पंखुड़ियाँ होती हैं। इन कोण या पंखुड़ियों को 'पद्म दल' कहते हैं। यह एक प्रकार के तन्तु गुच्छक हैं।

इन चक्रों के रंग विविध प्रकार के होते हैं क्योंकि किसी ग्रन्थि में कोई और किसी में कोई तत्व प्रधान होता है। इस तत्व प्रधानता का तत् स्थानिक रक्त पर प्रभाव पड़ता है और उसका रंग बदल जाता है। पृथ्वी तत्व की प्रधानता का मिश्रण होने से रक्त का रंग पीला, जल के मिश्रण से गुलाबी, अग्नि से नीला, वायु से शुद्ध लाल और आकाश से धुमैला हो जाता है। यही मिश्रण चक्रों का रंग बदल देता है।

घुन नामक कीड़ा लकड़ी को काटता हुआ चलता है तो उसे काटे हुये स्थान की कुछ आकृतियाँ भी बन जाती हैं। इन चक्रों में होता हुआ प्राण वायु आता-जाता है। उसका मार्ग उस ग्रन्थि की स्थिति के अनुसार कुछ टेढ़ा-मेढ़ा होता है, इस गति की आकृति कई देवनागरी अक्षरों की आकृति से मिलती है, इसलिये उस वायु मार्ग को चक्रों के अक्षर कहते हैं।

द्रुतगति बहती हुई नदी में कुछ विशेष स्थानों में भंवर पड़ जाते हैं। यह पानी के भँवर कहीं उथले, कहीं गहरे, कहीं तिरछे, कहीं गोल कहीं चौकोर हो जाते हैं। प्राण वायु का सुषुम्ना प्रवाह इन चक्र में होकर जब द्रुतगति से गुजरता है तो वहाँ एक प्रकार के सूक्ष्म भ्रमर पड़ते हैं, जिनकी आकृति चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, गोलाकार, लिंगाकार तथा पूर्ण चन्द्राकार बनती है। अग्नि जब भी जलती है उसकी लौ ऊपर को उठती है, जो नीचे मोटी और ऊपर पतली होती है, इस प्रकार एक अव्यवस्थित त्रिकोण-सा बन जाता है। इसी प्रकार की विविधि आकृतियाँ वायु प्रवाह से बनती हैं। इन आकृतियों को चक्र के यन्त्र कहते हैं।

शरीर पंच तत्वों का बना हुआ है। इन तत्वों के न्यूनाधिक सम्मिश्रण से विविध अंग प्रत्यंगों का निर्माण और उनका कार्य संचालन होता है। जिस स्थान में तत्व की जितनी आवश्यकता है उससे न्यूनाधिक हो जाने पर वह अंग रोग ग्रस्त हो जाता है। तत्वों का यथास्थान, यथा मात्रा में होना ही निरोगता का चिन्ह समझा जाता है। चक्रों में भी एक-एक तत्व की प्रधानता होती है जिस चक्र में जो तत्व प्रधान होता है, वही उसका 'तत्व' कहा जाता है।

ब्रह्मनाड़ी की पोली नली में होकर जब वायु का अभिगमन होता है तो चक्रों के सूक्ष्म छिद्रों के आघात से उसमें एक वैसी ही ध्वनि होती है जैसी कि वंशी में वायु का प्रवेश होने पर छिद्रों के आघात से ध्वनि उपन्न होती है। हर चक्र में एक सूक्ष्म छिद्र है उस छिद्र की वंशी के स्वर छिद्र की सी प्रतिक्रिया होने के कारण स, रे, ग, म, जैसे स्वरों का एक विशेष ध्वनि प्रवाह होता है, जो यँ, लँ, रँ हँ, ॐ, जैसे स्वरों में सुनाई पड़ता है। इसे चक्रों का बीज कहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चक्रों में वायु की चाल में भी अन्तर होता है। जैसे वात, पित्त, कफ, की नाड़ी कपोत, मंडूक, सर्प, कुक्कुट आदि की चाल से चलती है। उस चाल को पहचान कर वैद्य लोग अपना कार्य करते हैं। तत्वों के मिश्रण, टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग, भ्रमर बीज आदि के समन्वय से प्रत्येक चक्र में रक्ताभिसरण और वायु-अभिगमन के संयोग से एक विशेष चाल वहाँ परिलक्षित होती है। यह चाल किसी चक्र में हाथी के समान मन्दगामी, किसी में मगर की तरह डुबकी मारने वाली, किसी में हिरन-सी छलाँग मारने वाली, किस में मेंढक की तरह फुदकने वाली होती है, उस चाल को चक्रों का वाहन कहते हैं।

इन चक्रों में विविधि दैवी शक्तियाँ सन्निहित हैं, उत्पादन, पोषण, संहार, ज्ञान, समृद्धि बल .आदि शक्तियों को देवता विशेषों की शक्ति माना गया है अथवा यों कहिये कि यह शक्तियाँ ही देवता हैं। प्रत्येक चक्र में एक पुरुष वर्ग की उष्णवीर्य और एक स्त्री वर्ग की शीतवीर्य शक्ति रहती है क्योंकि ऋण और धन, अग्नि और सोम दोनों तत्वों के मिले बिना गति और जीवन का प्रवाह उत्पन्न नहीं होता। यह शक्तियाँ ही चक्रों के देवी-देवता है।

पंच तत्वों के अपने-अपने गुण होते हैं। पृथ्वी का गंध, जल का रस, अग्नि का रूप, वायु का स्पर्श और आकाश का शब्द गुण होता है। चक्रों में तत्वों की प्रधानता के अनुरूप उनके गुण भी प्रधानता में होते हैं। यही चक्रों के गुण हैं।

यह चक्र अपनी सूक्ष्म शक्ति को वैसे तो समस्त शरीर में प्रवाहित करते हैं, पर एक ज्ञानेन्द्रिय और एक कर्मेन्द्रिय से उनका सम्बन्ध विशेष रूप से होता है। सम्बन्धित इन्द्रियों को वे अधिक प्रभावित करते हैं। चक्रों के जागरण के चिन्ह उन इन्द्रियों पर तुरन्त परिलक्षित होते हैं। इसी सम्बन्ध विशेष के कारण वे इन्द्रियाँ चक्रों की इन्द्रियाँ कहलाती हैं।

देवशक्तियों में डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, शाकिनी, हाकिनी आदि के विचित्र नामों को सुन कर उनके भूतिनी चुड़ैल, मसानी जैसी कोई चीज होने का भ्रम होता है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं हैं। मुख से लेकर नाभि तक चक्राकार 'अ' से लेकर 'ह' तक के समस्त अक्षरों की एक माला है, उस माला के दानों को 'मातृकायें' कहते हैं। इन मातृकाओं को योग दर्शन द्वारा ही ऋषियों ने देवानागरी वर्णमाला के अक्षरों की रचना की है। चक्रों के देव जिन मातृकाओं से झंकृत होते हैं, सम्बद्ध होते हैं, उन्हें उन देवों की देवशक्ति कहते हैं। उ, र, ल, क, श आदि आगे मातृकाओं का बोधक 'किनी' शब्द जोड़कर राकिनी, डाकिनी नाम बना दिये गये हैं। यही देव शक्तियाँ हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं को समझ लेने के उपरान्त प्रत्येक चक्र की निम्न जानकारी को ठीक प्रकार समझ लेना पाठकों के लिये सुगम होगा। अब छहों चक्रों का परिचय नीचे दिया जाता है—

मूलाधार चक्र

स्थान—योनि (गुदा के समीप) दल। वर्ण—लाल। लोक-भूलोक। दलों के अक्षर—वँ, शँ, षँ, सँ। तत्व-पृथ्वी, तत्व बीज-लँ। वाहन—ऐरावत हाथी। गुण—गंध। देव—ब्रह्मा देव शक्ति-डाकिनी। यन्त्र-चतुष्कोण। ज्ञानेन्द्रिय-नासिका। कर्मेन्द्रिय-गुदा। ध्यान का फल-वक्ता, मनुष्यों में श्रेष्ठ, सर्व विद्या विनोदी, आरोग्य, आनन्द चित्त, काव्य और लेखन की सामर्थ्य।

स्वाधिष्ठान चक्र

स्थान-पेडू (शिश्न के सामने)। दल—छै। वर्ण-सिन्दूर लोक-भुवः। दलों के अक्षर—वँ, भँ, मँ, रँ, लँ। तत्व-जल। तत्व बीज—बँ। बीज का वाहन—मगर। गुण-रस। देव-विष्णु। देव शक्ति-डाकिनी। यन्त्र-चन्द्राकार। ज्ञानेन्द्रिय-रसना। कर्मेन्द्रिय-लिंग। ध्यान का फल-अहंकारादि विकारों का नाश, श्रेष्ठ योग, मोह निवृत्ति, रचना शक्ति।

मणिपुर चक्र

स्थान—नाभि। दल-दस। वर्ण—नील। लोक—स्वः। दलों के अक्षर— उँ, ढँ, णँ, तं, थं, दं, धं नं, पं, फं। तत्व बीज-रं। बीज का वाहन—मेंढ़ा। गुण-रूप। देव-वृद्ध रुद्र। देव शक्ति-लाकिनी। यन्त्र-त्रिकोण। ज्ञानेन्द्रिय-चक्षु। कर्मेन्द्रिय-चरण। ध्यान का फल-संहार और पालन की सामर्थ्य, वचन सिद्धि।

अनाहत चक्र

स्थान-हृदय। दल-बारह। वर्ण-अरुण। लोक-महः। दलों के अक्षर— कं खं, गं, घं, ङं, चं, छं, ज, झं, टं, ठं। तत्व-वायु। तत्वबीज—यं,। वाहन-मृग। गुण-स्पर्श। देव ईश रुद्र। देव शक्ति काकिनी। यन्त्र—षट् कोण। ज्ञानेन्द्रिय—त्वचा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मेन्द्रिय-हाथ। फल-स्वामित्व, योग सिद्धि, ज्ञान जागृति, इन्द्रिय जप, परकाया प्रवेश।

विशुद्धाकार चक्र

स्थान—कंठ। दल—सोलह। वर्ण-धूम्र। लोक-जनः। दलों के अक्षर 'अ' से लेकर 'अः' तक सोलह अक्षर। तत्व-आकाश। तत्व बीज-हं। वाहन-हाथी। गुण-शब्द। देव-पंचमुखी सदा शिव। देवशक्ति—शाकिनी। यन्त्र-शून्य (गोलाकार)। ज्ञानेन्द्रिय-कर्ण। कर्मेन्द्रिय-वाक्। ध्यान फल चित्त शान्ति, त्रिकाल, दर्शित्व, दीर्घजीवन, तेजस्विता, सर्वहित परायणता।

आज्ञाचक्र

स्थान—भ्रूमध्य। दल-दो। वर्ण-श्वेत। दलों के अक्षर हं, क्षं। तत्व—मह। तत्व बीज-ॐ। बीज का वाहन-नाद। देव-ज्योतिर्लिंग। देवशक्ति-हाकिनी। यन्त्र—लिंगाकार। लोक-तपः। ध्यान फल—सर्वार्थ साधन।

षट् चक्रों में उपरोक्त छै चक्र ही आते हैं। परन्तु सहस्रार कमल या सहस्र दल को भी कोई-कोई योग सातवाँ शून्य चक्र मानते हैं। उसका भी वर्णन नीचे दिया जाता है।

शून्य चक्र

स्थान-मस्तक। दल-सहस्र। दलों के अक्षर अं से क्षं तक की पुनरावृत्तियाँ। लोक-सत्य। तत्व-तत्वों से अतीत। बीज-तत्व—(:) विसर्ग। बीज का वाहन-बिन्दु। देव परब्रह्म। देव शक्ति महाशक्ति। यन्त्र-पूर्ण चन्द्रवत् प्रकाश निराकार। ध्यान फल-भक्ति, अमरता समाधि, समस्त ऋद्धि सिद्धियों का करतलगत होना।

पाठक जानते हैं कि कुण्डलिनी शक्ति का स्रोत है। वह हमारे शरीर का सबसे अधिक समीप चैतन्य स्फुल्लिंग है, उसमें बीज रूप से इतनी रहस्यमय शक्तियाँ गर्भित हैं, जिनकी कल्पना तक नहीं हो सकती। कुण्डलिनी शक्ति के इन छै केन्द्रों में, षट्चक्रों में भी उसका काफी प्रकाश है। जैसे सौर मण्डल में नौ ग्रह हैं, सूर्य उनका केन्द्र है और चन्द्रमा, मंगल आदि उससे संबद्ध होने के कारण सूर्य की परिक्रमा करते हैं। वे सूर्य ऊष्मा, आकर्षणी, विलयिनी आदि शक्तियों से प्रभावित और ओत-प्रोत रहते हैं वैसे ही कुण्डलिनी की शक्तियाँ-चक्रों में भी प्रसारित होती रहती हैं। एक बड़ी तिजोरी में जैसे कई छोटे-छोटे दराज होते हैं, जैसे मधुमक्खी के एक बड़े छत्ते में छोटे-छोटे अनेक छिद्र होते हैं और उनमें भी कुछ अंश भरा रहता है, वैसे ही कुण्डलिनी की कुछ शक्ति का प्रकाश चक्रों में भी होता है। चक्रों के जागरण के साथ-साथ उनमें सन्निहित कितनी ही रहस्यमय शक्तियाँ भी जाग पड़ती हैं। उनका संक्षिप्त का संकेत ऊपर चक्रों के ध्यान फल में बताया गया है। इनको विस्तार करके कहा जाय तो यह शक्तियाँ भी अद्भुत आश्चर्यों से किसी प्रकार कम प्रतीत नहीं होंगी।

चक्रों का बेधन

षट्चक्रों का बेधन करते हुये कुण्डलिनी तक पहुँचना और उसे जागृत करके आत्मोन्नति के मार्ग में लगा देना यह एक महाविज्ञान है। ऐसा ही महाविज्ञान—जैसा कि परमाणु बम का निर्माण उसका विस्फोट करना एक अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। इसे यों ही अपने आप, केवल पुस्तक पढ़कर आरम्भ नहीं कर देना चाहिये, वरन् किसी अनुभवी पथ-प्रदर्शक की संरक्षकता में यह सब किया जाना चाहिये।

चक्रों का बेधन ध्यान-शक्ति के द्वारा किया जाता है। यह सब जानते हैं कि हमारा मस्तिष्क एक-प्रकार का बिजली घर है और उस बिजली-घर की प्रमुख धारा का नाम—'मन' है। मन की गति चंचल और बहुमुखी होती है। वह हर घड़ी चंचलता में मग्न और सदा उछल-कूद में व्यस्त रहता है। इस उथल-पुथल के कारण उस विद्युत पुंज का एक स्थान पर केन्द्रीकरण नहीं होता, जिससे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन हो, इस अभाव में जन-जीवन के यों ही अस्त-व्यस्त अन्न होते रहते हैं। यदि उस शक्ति का एकत्रीकरण हो जाता है उसे एक स्थान पर संचित कर लिया जाता है तो आतिशी शीशे द्वारा एकत्रित हुई किरणों द्वारा आग की लपटें उठने लगना जैसे दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। 'ध्यान' एक ऐसा सूक्ष्म विज्ञान है, जिसके द्वारा मन की बिखरी हुई बहुमुखी शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित होकर एक कार्य में लगती हैं। फलस्वरूप वहाँ असाधारण शक्ति का स्रोत प्रवाहित हो जाता है। ध्यान द्वारा मनः क्षेत्र की केन्द्रीभूत इस बिजली से साधक षट्चक्रों का बेधन कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

षट्चक्र बेधन की साधना करने के लिये अनेक ग्रन्थों में अनेक मार्ग बताये गये हैं। इसी प्रकार गुरु परम्परा से चली आने वाली साधनायें भी विविध प्रकार की है। इन सभी मार्गों से उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है, सफलता मिल सकती है पर शर्त यह है कि उसे पूर्ण विश्वास, श्रद्धा निष्ठा और उचित पथ प्रदर्शक की संरक्षकता में किया जाय।

अन्य साधनाओं की चर्चा करना और तुलना करके उनकी आलोचना, प्रत्यालोचना करना यहाँ हमें अभीष्ट नहीं हैं। इन पंक्तियों में तो हम एक ऐसी सुलभ साधना पाठकों के सामने उपस्थित करना चाहते हैं, जिसके द्वारा गायत्री शक्ति षट्चक्रों का जागरण बड़ी सुविधापूर्वक हो सकता है और अन्य साधनाओं में आने वाली असाधारण कठिनाइयों एवं खतरों से स्वतन्त्र रहा जा सकता है।

प्रातःकाल शुद्ध शरीर और स्वस्थ चित्त से सावधान होकर पद्मासन से बैठिये। पूर्व वर्णित ब्रह्म संध्या के आरम्भिक पंचकोषों की क्रिया कीजिये, आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, अघमर्षण और न्यास करने के बाद गायत्री के एक सौ आठ मन्त्रों की एक माला जपिये।

ब्रह्म संध्या कर चुकने के पश्चात् मस्तिष्क के मध्य भाग त्रिकुटी में (एक रेखा एक कान से दूसरे कान तक खींची जाये और दूसरी रेखा दोनों भ्रुवों के मध्य में से मस्तिष्क के पीछे तक खींची जाय तो दोनों का मिलन जहाँ होता है, उस स्थान को त्रिकुटी कहते हैं।) वेदमाता गायत्री का ज्योतिः स्वरूप ध्यान करना चाहिये। मन को उस ज्योतिर्लिंग के मध्य में इस प्रकार अवस्थित करना चाहिये जैसे लुहार अपने लोहे को गरम करने के लिये भट्टी में डाल देता है और जब वह लाल हो जाता है तो उसे बाहर निकालकर ठोकता-पीटता और अभीष्ट वस्तु बनाता है। त्रिकुटी स्थित गायत्री ज्योति में मन को कुछ देर अवस्थित रखने से मन स्वयं भी तेज स्वरूप हो जाता है। तब उसे आज्ञाचक्र के स्थान में लाना चाहिये। ब्रह्मनाड़ी मेरुदंड से आगे बढ़कर त्रिकुटी में होती हुई सहस्रार को गई है। इस ब्रह्मनाड़ी की पोली नली में दीप्तिमान मन को प्रवेश करके आज्ञाचक्र में ले जाया जाता है। वहाँ स्थिरता करने पर वे सब अनुभव होते हैं जो चक्र के लक्षणों में वर्णित हैं। मन को-चक्र के दलों का, अक्षरों का, तत्व का, बीज का, देव का, देव शक्ति का यन्त्र का लोक का, वाहन का, गुण का, रंग का अनुभव होता है। आरम्भ में यह अनुभव बहुत अधूरे होते हैं। चक्र के कुछ लक्षण स्पष्ट कुछ अस्पष्ट और कुछ विकृत परिलक्षित होते हैं। धीरे-धीरे वे अधिक स्पष्ट होते जाते हैं। कभी-कभी किन्हीं व्यक्तियों के चक्रों में कुछ लक्षण भेद भी होता है। उसे अपने अन्दर के चक्र की आकृति का ही अनुभव होगा।

स्वस्थ चित्त से, सावधान होकर, एक मास तक एक चक्र की साधना करने से वह प्रस्फुटित हो जाता है। ध्यान में उसके लक्षण अधिक स्पष्ट होने लगते हैं और चक्र के स्थान पर उससे सम्बन्धित मातृकाओं, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में अचानक कम्पन, रोमांच, प्रस्फुरण, उत्तेजना, दाद, खुजली जैसे अनुभव होते हैं, यह इस बात के चिन्ह हैं कि चक्रों का जागरण हो रहा है। एक मास या न्यूनाधिक काल में इस प्रकार के चिन्ह प्रकट होने लगें ध्यान में चक्र का रूप स्पष्ट होने लगे तो उससे आगे बढ़कर नीचे की ओर दूसरे चक्र में प्रवेश करना चाहिये। विधि वही है—मार्ग वही है। गायत्री ज्योति में मन को तपाकर ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करना और उसमें होकर पहले चक्र में जाना—फिर उसे पार करके दूसरे में जाना—इस प्रकार प्रत्येक चक्र में लगभग एक मास का समय लगता है। जब साधना पक जाती है तो एक चक्र से दूसरे चक्र में जाने का द्वार खुल जाता है। जब तक साधन करता रहता है—तब तक द्वार रुका रहता है। साधक का मन आगे बढ़ना चाहे तो भी उसे द्वार नहीं मिलता और वह उसी चक्र के तन्तु जाल की भूलभुलैयों में उलझा रह जाता है।

जब साधना देर तक नहीं पकती और साधक को आगे का मार्ग नहीं मिलता तो उसे अनुभवी गुरु की सहायता की आवश्यकता होती है, वह जैसा उपाय बतावे वैसे उसे करना होता है। इसी प्रकार धीरे-धीरे क्रमशः छहों चक्रों को पार करता हुआ साधक मूलाधार में स्थित

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुण्डलिनी तक पहुँचता है और वहाँ उस ज्वालामुखी, कराल काल स्वरूप, महाशक्ति सर्पिणी के विकराल रूप का दर्शन करता है। महाकाली का प्रचण्ड स्वरूप यहीं दिखाई पड़ता है। कई साधक इस सोते सिंह को जगाने का साहस करते हुये कांप जाते हैं।

कुण्डलिनी को जगाने में उसे पीड़ित करना पड़ता है, छेड़ना पड़ता है, जैसे परमाणु का विस्फोट करने के लिये उसे बीच में से तोड़ना पड़ता है, उसी प्रकार सुप्त कुंडलिनी को गतिशील बनाने के लिये उस पर आघात करना होता है। इसे आध्यात्मिक भाषा में कुण्डलिनी पीड़न कहते हैं। इससे पीड़ित होकर क्षुब्ध कुण्डलिनी फुसकारती हुई जाग पड़ती है और उसका सबसे प्रथम आक्रमण मन में लगे हुये जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों पर होता है। वह संस्कारों को चबा जाती है, मन की छाती पर अपने शस्त्रों सहित चढ़ बैठती है और उसके स्थूलता, माया परायणता को नष्ट कर ब्रह्मभाव में परिवर्तित कर देती है।

इस कुण्डलिनी को जगाने और उसका जीव पर आक्रमण होने की क्रिया का पुराणों ने बड़े ही अलंकारिक और हृदयग्राही रूप से वर्णन किया है।

महिषासुर और दुर्गा का युद्ध इसी आध्यात्मिक रहस्य का प्रतीक है। (अपनी मुक्ति की कामना करता हुआ, देवी के हाथों मरने की कामना से उत्साहित होकर—महिषासुर (महि पृथ्वी आदि पंच भूतों से बना हुआ मन) चण्डी से कुण्डलिनी से— लड़ने जाता है। उस चुपचाप बैठी हुई पर आक्रमण करता है। दैवी क्रुद्ध होकर उससे शुद्ध करती है, उस पर प्रत्याक्रमण करती है। उसके वाहन महिष को—संस्कारों के समूह को—चबा डालती है। मन के भौतिक आचरण को—महिषासुर के शरीर को—दर्सो भुजाओं से—दर्सो दिशाओं से—सब ओर से विदीर्ण कर डालती है और अन्त में महिषासुर—साधारण जीव—चण्डी की ज्योति में मिल जाता है। महाशक्ति का अंग होकर जीवन लाभ को प्राप्त कर लेता है। भक्तिमयी साधना का यह रौद्ररूप बड़ा विचित्र है। इसे 'साधन समर' कहते हैं।

जहाँ कितने ही भक्त, प्रेम और भक्ति द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, वहाँ ऐसे कितने ही भक्त हैं, जो 'साधन समर' में ब्रह्म से लड़कर उसे प्राप्त करते हैं। भगवान तो निष्ठा के भूखे हैं, वे सच्चे प्रेमी को भी मिल सकते हैं और सच्चे शत्रु को भी। भक्ति योगी भी उन्हें पा सकते हैं और साधन समर में अपने दो हाथ दिखाने वाले हठयोगी तन्त्र प्राणी भी उन्हें प्राप्त करते हैं। कुण्डलिनी जागरण ऐसा ही हठ तन्त्र है, जिसके आधार पर आत्मा तुच्छ से महान्—और अणु से विभु बनकर ईश्वरीय सर्व शक्तियों से सम्पन्न हो जाती है।

षट्-चक्र की साधना करते समय प्रति दिन ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करके चक्रों का ध्यान करते हैं। यह ध्यान पांच मिनट से आरम्भ करके बीस मिनट तक पहुँचाया जाता है। एक बार में इससे अधिक ध्यान करना हानिकारक है क्योंकि अधिक ध्यान से बढ़ी हुई अधिक ऊष्मा का सहन करना कठिन हो जाता है। ध्यान समाप्त करते समय उसी मार्ग से वापिस लौटकर मन को त्रिकुटी में लाया जाता है और फिर ध्यान को समाप्त कर दिया जाता है।

यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि साधना काल में ब्रह्मचर्य से रहना, एक बार भोजन करना, सात्विक, खाद्य पदार्थ ग्रहण करना, एकान्त सेवन करना स्वस्थ वातावरण में रहना, दिनचर्या को ठीक रखना अनिवार्य है क्योंकि यह साधनाओं की प्रारम्भिक शर्तें मानी गई हैं।

षट् चक्रों के वेधन और कुण्डलिनी के जागरण से ब्रह्मरंध्र में ईश्वरीय दिव्य ज्योति के दर्शन होते हैं, और उस प्रणव ब्रह्म का साक्षात् हो जाता है, जिसका संकेत गायत्री के प्रथम अक्षर में है। इसे ही प्रणव योग या ब्रह्म योग कहते हैं।

(२) विश्व योग

व्याहृतीनां तु तिसृणां, संततोपासनविधेः।
विश्वात्मा जायते ह्यात्म विश्वयोगाः स उच्यते।।७।।

(तिसृणां) तीनों (व्याहृतीनां) व्याहृतियों का (संततोपासनाविधेः) निरन्तर उपासना करने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(आत्मा) आत्मा (विश्वात्मा जायते) विश्वात्मा हो जाती है। (सः) उसी को (विश्व योगः) विश्व योग (उच्यते) कहते हैं।

भूर्भुवः स्वः यह तीन व्याहृतियाँ तीनों लोकों की ओर संकेत करती हैं। पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग इन तीन लोकों का नाम ही भूः भुवः स्वः है। इस तीन लोक पर्यन्त विस्तृत विश्व में अपनी आत्मा को फैला हुआ देखना, अपने को सबमें और सबको अपने में समाया हुआ देखना यही इन तीन व्याहृतियों का तात्पर्य है। इस भावना को हृदयंगम करना विश्वयोग कहलाता है। इसे ही विराट् दर्शन कहते हैं। गीता में भगवान ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाया है। वह इसी व्याहृति महा विज्ञान का फलितार्थ हैं।

प्राचीन गायत्री साहित्य में "गायत्री पंजर" नामक एक स्रोत प्राप्त होता है। उसमें भगवती गायत्री का विराट् रूप उपस्थित किया गया है। उसका श्रद्धा, भक्ति और विचारशीलता के साथ पाठ, मनन एवं ध्यान करने से वैसी ही स्थिति उत्पन्न होती है जैसी कि विराट् दर्शन करने वाले बड़भागी की होनी चाहिये। नीचे गायत्री पंजर पर कुछ विचार प्रकट करते हुये उसके मन्त्रों को अंकित किया जा रहा है।

गायत्री-पंजर

किसी वस्तु के सम्बन्ध में विचार करने के लिये यह आवश्यक है कि उसकी कोई मूर्ति हमारे मनः क्षेत्र में हो। बिना कोई प्रतिमूर्ति बनाये, मन के लिये किसी भी विषय में कुछ सोचना असम्भव है। मन की प्रक्रिया ही यह है कि पहले वह किसी वस्तु का कोई आकार निर्धारित कर लेता है, तब उसके बारे में कल्पना शक्ति काम करती है। समुद्र भले ही किसी ने देखा न हो पर जब समुद्र के बारे में कुछ सोच-विचार किया जायेगा तब एक बड़े जलाशय की प्रतिमूर्ति मनः क्षेत्र में अवश्य रहेगी। भाषा विज्ञान का भी यही आधार है। प्रत्येक शब्द के पीछ एक आकृति रहती है। कुत्ता शब्द का जानना तभी सार्थक है, जब 'कुत्ता' शब्द उच्चारण करते ही एक प्राणी विशेष की आकृति सामने आ जाये। न जानी हुई विदेशी भाषा को कोई हमारे सामने बोले तो उसके शब्द काल में पड़ते हैं पर वे शब्द चिड़ियों के चहचहाने की तरह निरर्थक जान पड़ते हैं। कोई भाव मन में उदय नहीं होता, कारण यह है कि उस शब्द के पीछे रहने वाली आकृति का हमें पता नहीं होता। जब तक आकृति सामने न आवे तब तक म के लिये यह असम्भव है कि उस सम्बन्ध में कोई सोच-विचार करें।

ईश्वर या ईश्वरीय शक्तियों के बारे में भी यही बात्त है। चाहे उन्हें सूक्ष्म माना जाये या स्थूल, निराकार माना जाय या साकार इन दार्शनिक और वैज्ञानिक झमेलों में पड़ने से मनको कोई प्रयोजन नहीं। उससे यदि इस दिशा में कोई सोच-विचार का काम लेना है तो कोई न कोई आकृति बनाकर उसके सामने उपस्थित करनी पड़ेगी। अन्यथा वह ईश्वर का उसकी शक्ति के बारे में कुछ भी न सोच सकेगा। जो लोग ईश्वर को निराकार मानते हैं वे भी उस 'निराकार' का कोई न कोई आकार बनाते हैं आकाश जैसा निराकार, प्रकाश जैसा तेजोमय, अग्नि जैसा व्यापक, परमाणुओं जैसा अदृश्य, आखिर कोई न कोई आधार उस निराकार को भी स्थापित करना ही होगा। जब तक आकार की स्थापना न होगी, मन, बुद्धि और चित्र से उसका कुछ भी सम्बन्ध स्थापित न हो सकेगा।

इस महा सत्य को ध्यान में रखते हुये निराकार, अचिन्त्य, बुद्धि से अगम्य, मन, वाणी से अतीत परमात्मा मन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भारतीय आचार्यों ने ईश्वर की आकृतियाँ स्थापित की हैं। इष्ट देवों के ध्यान के सुन्दर, दिव्य आकृति की प्रतिमायें गढ़ी हैं। उनके साथ दिव्य, आयुध, दिव्य वाहन, दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव एवं दिव्य शक्तियों को सम्बद्ध किया गया है। ऐसी आकृतियों का भक्तिपूर्वक ध्यान करने से साधक उनके साथ एकीभूत होता है, दूध और पानी की तरह साध्य और साधक का मिलन होता है। भृंग, झींगुर को पकड़ ले जाती है और उसके सामने भिन भिनाती है, झींगुर उस गुंजन को सुनता है और उसमें इतना तन्मय हो जाता है कि उसकी आकृति तक बदल जाती है आर वह झींगुर भृंग बन जाता है। दिव्य कर्म, स्वभाव वाली देवाकृति का ध्यान करते रहने से साधक में भी उन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिव्य शक्तियों का आविर्भाव होता है। जैसे रेडियो यन्त्र को माध्यम बनाकर सूक्ष्म आकाश में उड़ती फिरने वाली विविधि ध्वनियों को सुना जाता है, उसी प्रकार ध्यान में देव मूर्ति की कल्पना करना एक आध्यात्मिक रेडियो स्थापित करना है, जिसके माध्यम से सूक्ष्म जगत में विचरण करने वाले विविध ईश्वरीय शक्तियों के साधक पकड़ सकता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार अनेक इष्ट देवों को अनेक आकृतियाँ साधकों के ध्यान करने के लिये बनाई गई हैं। इन देव आकृतियों का एक स्वतन्त्र विज्ञान है। अमुक देवता की अमुक प्रकार की आकृति क्यों रखी गई है इसका एक क्रमबद्ध रहस्य है, उसकी चर्चा तो एक स्वतन्त्र पुस्तक में करेंगे, यहाँ तो इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि अमुक प्रयोजन के लिये, अमुक ईश्वरीय शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये जो आकृति उस देवता की घोषित कर दी गई है।

जहाँ अन्य प्रयोजनों के लिये अन्य देवाकृतियाँ हैं, वहाँ इस विश्व ब्रह्माण्ड को ईश्वरमय देखने के लिये विराट् रूप परमेश्वर की प्रतिमूर्ति विनिर्मित की गई है। मनुष्य की सारी आत्मोन्नति और सुख-शान्ति इस बात पर निर्भर है कि उसका आन्तरिक और बाह्य जीवन, पवित्र एवं निष्पाप हो समस्त प्रकार के क्लेश, दुःख, अभाव एवं विक्षोभों को कारण मनुष्य के शारीरिक और मानसिक पाप हैं, यदि वह इन पापों से बचता जाता है तो फिर और कोई कारण ऐसा नहीं जो उसका ईश्वर प्रदत्त अनन्त सुख-शान्ति में बाधा डाल सके। पापों से बचने के लिये ईश्वरीय भय की आवश्यकता होती है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। इस बात को जानते तो सब हैं पर अनुभव बहुत कम लोग करते हैं। जो यह अनुभव करेगा कि ईश्वर मेरे चारों ओर छाया हुआ है और वह पाप का दण्ड अवश्य देता है। जिसकी यह भावना अनुभव में आने लगेगी वह पाप न कर सकेगा। जिस चोर के चारों ओर सशस्त्र पुलिस घेरा डाले खड़ी हो और हर तरफ से उस पर आँखें गढ़ी हुई हों ऐसी दशा में वह भला किस प्रकार चोरी करने का साहस देखेगा ?

परमात्मा की आकृति चराचरमय विश्व ब्रह्माण्ड में देखना ऐसा साधना है, जिसके द्वारा सर्वत्र परमात्मा का अनुभव करने की चेतना जागृत हो जाती है। यही विश्व मानव की पूजा है, इसे ही विराट् रूप दर्शन कहते हैं। रामायण में भगवान राम ने अपने जन्म काल में कौशिल्या को विराट् रूप दिखाया है। एक बार भोजन करते समय भी राम ने माता को विराट् रूप दिखाया था। उत्तर काण्ड में काकभुषंड जी के सम्बन्ध में वर्णन है कि वे भगवान के मुख में चले गये तो उन्होंने वहाँ सारे ब्रह्माण्डों को देखा। भगवान कृष्ण ने भी इसी प्रकार कई बार अपने विराट् रूप दिखाये। मिट्टी खाने के अपराध में मुंह खुलवाते समय यशोदा को विराट् रूप दिखाया, महाभारत के उद्योग पर्व में दुर्योधन ने भी ऐसा ही रूप देखा। अर्जुन को भगवान ने युद्ध समय में विराट् रूप दिखाया जिसका गीता के ११वें अध्याय में सविस्तार वर्णन है।

इस विराट रूप को देखना हर किसी के लिये सम्भव है। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड को परमात्मा की विशालकाय मूर्ति देखना और उसके अन्तर्गत-उसके अंग-प्रत्यंगों के रूप में समस्त पदार्थों को देखने की भावना ही विराट् रूप दर्शन हैं। सर्वस्व भगवान को देखने प्रत्येक वस्तु को, प्रत्येक स्थान को ईश्वर से ओत-प्रोत देखने की भावना करने से भगवद् बुद्धि जागृत होती है और सर्वत्र प्रभु की सत्ता को व्याप्त होने का सुदृढ़ विश्वास होने से मनुष्य पाप से छूट जाता है फिर उससे पाप कर्म बन नहीं सकते। निष्पाप होना इतना बड़ा लाभ है कि उसके फलस्वरूप सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा मिल जाता है। अन्धकार के अभाव का नाम है—प्रकाश और दुःख के अभाव का नाम है—आनन्द। विराट् दर्शन के फलस्वरूप निष्पाप हुआ व्यक्ति सदा अक्षय आनन्द का उपभोग करता है।

गायत्री भी परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा की शक्ति सर्वत्र, अणु-अणु में, विश्व ब्रह्माण्डों में व्याप्त है, जो कुछ है गायत्रीमय है, गायत्री के शरीर में ही यह सब जगत् है, यह भावना "गायत्री का विराट् रूप दर्शन" कहलाती है। नीचे दिये हुये गायत्रीपंजर स्तोत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में यही विराट् दर्शन है। पंजर कहते हैं ढांचे को। गायत्री का ढांचा, विस्तार सम्पूर्ण विश्व में है यह इस स्तोत्र में बताया गया है। इस स्तोत्र का भावना सहित ध्यान करने से अन्तर्लोक और बाह्य जगत् में विराट् गायत्री के दर्शन होते हैं। उस दर्शन के फलस्वरूप पाप करने का किसी को उसी प्रकार साहस नहीं हो सकता जैसे कि पुलिस से घिरा हुआ व्यक्ति चोरी करने का प्रयत्न नहीं करता।

भुर्भुवः सुवरित्येतै निगमत्व प्रकाशिकाम्।
महर्जनस्तपः सत्य लोकोपरि संस्थिताम्।।१।।

भूः भुवः स्वः द्वारा निगम का प्रकाश करती है, महः जनः तपः, सत्य इन लोकों से ऊपर स्थित है।

कृतगान विनोदादि कथालापन तत्परम्।
तदित्य वाङ्मनो गम्य तेजो रूपधरां परम्।।२।।

गान आदि से विनोद और कथा आदि में तत्पर वह वाणी और मन से अगम्य होने पर भी जो तेजो रूप धारण किये हुये हैं।

जगतः प्रसवित्रीं तां सवितुः सृष्टिकारिणीम्।
वरेण्यमित्यन्नमयीं पुरुषार्थफलप्रदाम्।।३।।

जगत का प्रसव करने वाली को सविता कहा है, वह सृष्टि कर्तृ है। वरेण्यं का अर्थ अन्नमयी है वह पुरुषार्थ का फल देती है।

अविद्यां वर्णवर्ज्यां च तेजोवद्गर्भसंज्ञिकाम्।
देवस्य सच्चिदानन्द परब्रह्म रसात्मिकाम्।।४।।

वह अविद्या है, वर्णरहित है, तेजयुक्त है, गर्भ संज्ञावाली है तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म देव की रसमयी हैं।

धीमह्यं स वैतद्ब्रह्माद्वैतस्वरूपिणीम्।
धियो योनस्तु सविता प्रचोदयादुपासिताम्।।५।।

हम ध्यान करते हैं वह अद्वैत ब्रह्म स्वरूपिणी है, सविता हमारी बुद्धि को उपासना के लिये प्रेरणा देता है।

तादृगस्या विराट्रूप किरीटवरराजिताम्।
व्योमकोशालकाकाश रहस्यं प्रवदाम्यहम्।।६।।

इस प्रकार वह विराट् रूप वाली है, वह सुन्दर किरीट धारण करती है। व्योम केश हैं आकाश अलकें हैं, इस प्रकार इसका रहस्य कहा जाता है।

मेघ भ्रुकुटिकाक्रान्त विधिविष्णुशिवार्चिताम्।
गुरुभार्गवकर्णीतां सोमसूर्याग्निलोचनाम्।।७।।

भौहों से आक्रान्त मेघ है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से जो अर्चित है, गुरु शुक कान हैं, सोम, सूर्य, अग्नि जिसके नेत्र हैं।

इडापिंगलसूक्ष्माभ्यां वायुनासा पुटान्विताम्।
संध्याद्विरोष्ठपुटितां लसद्वाग्भूप जिह्विकाम्।।८।।

इडा, पिंगला दोनों नासापुट हैं। दोनों सन्ध्या दोनों ओष्ठ हैं, उपजिह्वा ही वाणी है।

सन्ध्यासौ द्युमणे कण्ठ लसद्बाहुसमन्विताम्।
पर्ज्जन्य हृदयासक्त वसुसुस्तनमण्डलाम्।।९।।

यह सन्ध्या द्यु है, मणि से कण्ठ शोभित है। बाहुयुक्त है तथा पर्जन्य हृदय है और स्तनमण्डल वसु है।

आकाशोदर विस्तरः नाभ्यवान्तरदेशाम्।
प्राजापत्याख्य जघनां कटींद्राणीतिसंज्ञिकाम्।।१०
ऊरु मलय मेरुभ्यां शोभमानाऽसुराद्विषाम्।
जानुनी जन्हु कुशिक वैश्वदेवसदाभुजाम्।।११।।

आकाश उदर है, अन्तर देश नाभि है। जघम प्रजापति है, कटि इन्द्राणि है।

उरू मलय मेरु है, जहाँ असुरद्वेषी देव निवास करते हैं। जानु में जन्हु कुशिक है, भुजायें वैश्व देव हैं।

अयनाह्य जंघाढ्यं खुराद्य पितृसंज्ञिकाम्।
पदांघ्रि नख रोमाद्य भूतलद्रुमलांछिताम्।।१२।।

जंघाओं के दोनों आदि स्थान अयन हैं। खुर आदि पितृ हैं। पद, अंघ्रि, नख, रोम आदि पृथिवीतल के पेड़ आदि कहे हैं।

ग्रहराश्यदेवर्षि मूर्ति च पर संज्ञिकाम्।
तिथिमासर्तुवर्षाख्य सुकेतुनिमिषात्मिकाम्।।
माया कल्पित वैचित्र्य सन्ध्याच्छादन संवृताम्।।१३।।

ग्रह, राशि, ऋक्ष, देव, ऋषि, पर संज्ञकशक्ति की मूर्तियाँ हैं। तिथि, मास, ऋतु, वर्ष तथा सुकेतु आदि निमेष हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्वलत्कालानलप्रभां तडित्कोटिसमप्रभाम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशां चन्द्रकोसेटिसुशीतलाम्।।१४।।

कालाग्नि की तरह ज्वलन है करोड़ों बिजलियों की समान प्रभा युक्त है, करोड़ों सूर्य की तरह प्रकाशवान है और करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल है।

सुधामण्डलमध्यस्थां सान्दानन्दाऽमृतात्मिकाम्।
प्रागतीतां मनोरम्यां वरदां वेद मातरम्।।१५।।

सुधा मण्डल के मध्य में आनन्द और अमृत युक्त है, पाक है अतीत है, मनोरम है, वरदा है और वेदमाता है।

ततत्स्तैरंगषंकस्यात्तैरेव व्यापकत्रयम्।
पूर्वोक्त देवतां ध्यायेत्साकारगुणसंयुताम्।।१६।।

इसके छै अंग हैं यह तीनों भुवनों में व्यापक हैं। इन पूर्वोक्त गुणों से संयुक्त देवता का ध्यान करना चाहिये।

पंचवक्त्रां दशभुजां त्रिपंचनयर्जयुताम्।
भुक्ताविदुमसौवर्णां सितशुभ्रसमाननाम्।।१७।।

पांच मुंह है, दशभुजा हैं, पन्द्रह नेत्र हैं और मुक्ता, विद्रुम, के तुल्य सुवर्ण, सफेद तथा शुभ्र आनन हैं।

आदित्यपथ गामिन्यां स्मरेद्ब्रह्मस्वरूपिणीम्।
विचित्र मन्त्रजननी स्मरेद्विद्यां सरस्वतीम्।।१८।।

वह सूर्य मार्ग से गमन करती है, उस ब्रह्म स्वरूपिणी का स्मरण करना चाहिये, उस विचित्र मन्त्रों की जननी विद्या सरस्वती का स्मरण करना चाहिये।

अन्यन्त्र भी इस प्रकार के प्रमाण पाये जाते हैं, जिनमें पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति होने की पुष्टि की गई है। देखिये—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः।।
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्य-तीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठ देवताः।।
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौशशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वन्हिश्च जलं पृथ्वी तथैव च।।
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
पैरु संवेष्टय सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते।
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः।
ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथा देशं व्यवस्थितः।।

—शिव संहिता

मनुष्य शरीर इस विशाल ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है जो शक्तियाँ इस विश्व का परिचालन करती हैं, वे सब इस मानव देह में वर्तमान हैं। कहते हैं—

इस शरीर में सप्त द्वीप सहित मेरु हैं। नदियाँ, सागर, पर्वत, खेत, किसान, ऋषि, मुनि सब नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, पीठ और पीठ देवता विद्यमान हैं। सृष्टि के संहार करने वाले चन्द्र, सूर्य, घूम रहे हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, तीनों लोकों में जितने भी भूत हैं, वे सब शरीर में हैं। मेरु की संवेष्टन कर सर्वत्र व्यवहार होता है। जो भी इनको जानता है वह योगी है इसमें संशय नहीं कि ये सब ब्रह्माण्ड नामक-देह में यथा आदेश व्यवस्थित हैं।

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भद्य निर्गतः।
सहस्रोर्वंद्विबाहक्षः सहस्राननशीर्षवान्।।
यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तर्ध्व जघनादिभिः।।
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्सां भुवर्लोकोऽस्यनाभितः।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः।
ग्रीवायां जनलोकोऽस्य तपोलोकः स्तनद्वयात्।
मूर्द्धाभिः सत्यलोकश्च ब्रह्म लोकः सनातनः।।
तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां च तलातलम्।।
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदभ्यां रसातलम्।
पातालं पाददतलत इति लोकमयः पुमान्।।

इसलिये वह ही पुरुष प्राण को भेदन कर निकल गया; जिसके हजार उरु, अंगुलि, बाहु, नेत्र और हजार ही मुख और सिर थे तथा इस संसार में विद्वान् जिसके अवयवों के द्वारा लोकों की कल्पना करते हैं। कटि से नीचे सात और नितम्ब से ऊपर सात लोक हैं। पैरों से भूलोक की कल्पना की है, नाभि से भुवः लोक की, हृदय से स्वर लोक की, वक्षस्थल से महः लोक, गर्दन से जन लोक की तथा दोनों स्तनों से तपः लोक की और मूर्द्धा से सत्य लोक की। यह ब्रह्म लोक सनातन हैं, उसकी कटि में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतल कल्पित किया है। उरुओं में वितल घुटनों, में सुतल, पिण्डलियों में तल और अतल गुल्फ में महातल, पंजों में रसातल और पाद तल में पाताल यह लोकमय पुरुष है।

इन श्लोकों का पाठ करना मात्र पर्याप्त न होगा। इन पर विचारपूर्वक, भक्ति भावना के साथ चित्त एकाग्र किया जाना चाहिये। विराट् विश्व में अपने इष्टदेव को व्याप्त देखने की अनुभूति जब प्रत्यक्ष होने लगती है तो प्रतिक्षण ईश्वर के दर्शन लाभ करने वाले स्वर्ग का साक्षात्कार इसी जीवन में होने लगता है।

(३) ध्यान योग

गायत्री मन्त्र के ह्यादौ तच्छब्दो यस्तु पठ्यते।
तस्यतारूपर्यमस्त्यत्र ध्यानयोगेन नापरम्।।१।।
यो यथा कुरुते ध्यानं गायत्र्या मग्नचेतसा।
जायते स तथा भक्तस्त्वस्याभिप्राय इत्यलम्।।

(गायत्री मन्त्र के) गायत्री मन्त्र के (आदौ) प्रारम्भ में (यः) जो (तच्छब्दः) तत् शब्द (पठ्यते) पढ़ा जाता है (तस्य) उसका (अत्र) यहाँ (ध्यानयोगेन) ध्यानयोग से (तात्पर्य) तात्पर्य (अस्ति) है, (अपरं) दूसरा तात्पर्य (न) नहीं है।

(मग्नचेतसा) मग्न चित्त से (यः) जो (यथा) जैसा (गायत्र्याः) गायत्री का (ध्यानं) ध्यान (कुरुते) करता है (सः) वह (भक्तः) भक्त (तथा) वैसा ही (जायते) हो जाता है (अस्य) इसका (इत्यलं) बस इतना ही (अभिप्राय) अभिप्राय है।

ध्यान वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके अनुसार किसी वस्तु की स्थापना अपने मनःक्षेत्र में की जाती है। मानसिक क्षेत्र में स्थापित हुई वस्तु हमारे लिये आकर्षण का प्रधान केन्द्र बनती है। उस आकर्षण की ओर अधिकांश शक्तियाँ खिंच जाती हैं फलस्वरूप मनुष्य का भीतरी तथा बाहरी ढाँचा वैसा ही बनने लगता है।

मनुष्य जैसी कल्पनायें करता है, उसी के अनुसार उसका स्वभाव बनता है वैसे ही उसके संस्कार बनते हैं, फिर वैसे ही कर्म करने लगता है। जैसे विचार और कार्य होते हैं, वही मनुष्य का व्यक्तित्व कहलाता है। कल्पना से व्यक्तित्व निर्माण होने की एक श्रृंखला है, जिसके अनुसार एक सीढ़ी पार करते हुये मानवीय चेतना एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचती है। कल्पना का महत्त्व असाधारण है। कल्पना एक साँचा है जिसमें प्राणी उसी प्रकार ढल जाता है जिस प्रकार गीली मिट्टी साँचे में ढलकर खिलौने के रूप में बदल जाती है।

कल्पना के साथ-साथ जब श्रद्धा, विश्वास, दृढ़ता, प्रेम, आशा एवं नियमित अभ्यास का सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है, तो उसे "ध्यान" कहते हैं। ध्यान एक आदर्श है—जिसके आधार पर हमारा निर्माण होता है। जब बड़ी-बड़ी इमारतें बनाई जाती हैं तो उनका मॉडल पहले से तैयार कर लिया जाता है और उसी नमूने की इमारत बनने लगती है। ध्यान में जिस प्रतिमा का आदर्श स्थापित किया जाता है वही अपने निर्माण का हेतु बनती है। वैसे ही गुण-कर्म, स्वभाव अपने अन्दर अवतीर्ण होने लगते हैं। कीट और भृंग का उदाहरण प्रसिद्ध है। भृंग कीड़े को पकड़ ले जाती है उसे अपने घर में बन्द कर देती है। उसके सामने लगातार अपना शब्द और रूप उपस्थित करती है। कीड़े की समस्त चेतना भृंग की ओर आकर्षित हो जाती है फलस्वरूप पहले उसका मन फिर उसका शरीर भृंग बन जाता है। यही प्रक्रिया ध्यान में होती है। मानव शरीर और मन, कीड़े के शरीर और मन जैसा कोमल न होने के कारण उस तरह तो नहीं बदलता पर बहुत अंशों में वे गुण उसके अन्दर प्रकट हो जाते हैं जो कि ध्यान प्रतिमा में होते हैं।

अध्यात्म विज्ञान के अनुसार ध्यान एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपाय है; जिसके आधार पर मनुष्य के अन्तःक्षेत्र में किन्हीं योग्यताओं और, शक्तियों की स्थापना की जाती है और किन्हीं को निकाल बाहर किया जाता है। यह निश्चित है कि सांसारिक सुख-संपदायें प्राप्त होना और उनके द्वारा सुख प्राप्त होना हमारी आन्तरिक स्थिति के ऊपर निर्भर है। जो जितना योग्य है वह उतना ही अधिक सफल होता है। यह योग्यता-मनुष्य की भीतरी योग्यता ही है। वरना शरीर की दृष्टि से लोगों में नाम मात्र का अन्तर होता है।

जो मनुष्य जिस वस्तु को चाहता है उसको प्राप्त करने के लिये उपयुक्त मनोभूमि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाना सबसे आवश्यक कार्य है। सांसारिक अन्य उपायों से भी वे वस्तुयें प्राप्त की जा सकती हैं पर अध्यात्म विज्ञान के अनुसार उसका तरीका यही है कि अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने योग्य मानसिक तत्व पैदा किये जायँ। यह कार्य ध्यान द्वारा हो सकता है इसलिये ध्यान की प्रधानता प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार की है।

गायत्री का 'तत्' शब्द उस ध्यान योग की ओर संकेत करता है, जिसके आधार पर हम अपने अन्दर ऐसे तत्व उत्पन्न कर सकते हैं जो अभीष्ट की प्राप्ति के लिये सहायक हो सकें। ध्यान में दो बातें प्रधान होती हैं एक—आकृति, दूसरे-गुणावली। जिसका ध्यान किया जायेगा इसकी कोई न कोई आकृति निर्धारित करनी पड़ेगी, उसका रंग-रूप, आकार, चेष्टा, वेशभूषा, मुख मुद्रा इस प्रकार की रखनी होगी जिसका अनुकरण करने वाले में वैसे ही तत्व उत्पन्न हों। इसी प्रकार उस ध्यान मूर्ति में ऐसे गुणों की स्थापना करनी पड़ेगी जिनकी छाया अपने ऊपर पड़ने से अपने अन्दर भी उन्हीं तत्वों का उत्कर्ष हो। रूप और गुण दोनों के सम्मिश्रण के एक पूर्ण प्रतिमा बनती है। विविध प्रयोजनों के लिये ऐसी विविध ध्यान प्रतिमायें बनाई जाती हैं। योग विद्या के आचार्यों ने अपने गम्भीर अनुभव के आधार पर कुछ ऐसी ध्यान प्रतिमायें विनिर्मित की हैं, जिनका ध्यान विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। उन प्रतिमाओं की आकृति का ध्यान तथा गुणावली का मनन करना ही गायत्री का ध्यान योग है।

इन ध्यान साधनाओं को दूसरे शब्दों में स्तोत्र भी कहते हैं। आगे कुछ स्तोत्र दिये जाते हैं जो साधक की विविध कामनायें पूरी करने में सहायक होते हैं। अपनी आवश्यकता एवं साथ के अनुरूप कोई स्तोत्र चुन लेना चाहिये। प्रातः काल, नित्यकर्म से निवृत्त होकर साधना के लिये आसन लगाकर बैठें। पूर्व को मुँह रखें। जल का भरा हुआ पात्र पास में रहे। स्तोत्र को अर्थ की भावना के साथ पाठ करते जावें और मन में उन गुणों वाली वेदमाता गायत्री का भक्तिपूर्वक ध्यान करते जावें। ध्यान पूर्वक स्तुति करने से गायत्री शक्ति का वह अंश साधक को प्राप्त होता है जिससे उसकी अभीष्ट अभिलाषा पूरी हो सके। आगे कुछ उपयोगी स्तोत्र दिये जाते हैं—

(४) सूर्य योग

सवितुस्तु पदं नूनं सूर्ययोगं हि प्रेरते।

ज्योतिर्मयी भवत्यन्ते योगेनानेन साधकः।।

'सवितुः यह पद सूर्य योग की ओर संकेत करता है। साधक अन्त में इस योग द्वारा ज्योतिर्मय हो जाता है।

सूर्य, तेज और प्रकाश का प्रतिनिधि है। उसे संसार की आत्मा कहा गया है, क्योंकि परमाणुओं को गति तथा विकास की प्रेरणा सूर्य से ही मिलती है। शक्तियों के केन्द्र सूर्य के साथ जब प्राण का योग होता है तो उसमें वे अनेक शक्तियाँ आविर्भूत होने लगती हैं, जो सूर्य में मौजूद हैं। अधिक सामर्थ्यवान की समीपता में आने से वैसे ही गुण अल्प सामर्थ्य वाले में भी प्रकट होने लगते हैं। अग्नि के समीप रखने से सभी पदार्थ गरम हो जाते हैं। बर्फ से जो भी वस्तु संलग्न रहेगी ठण्डी होती जावेगी। यह ठीक है कि कोई वस्तु प्रभाव को कम मात्रा में और अधिक समय में ग्रहण करती है और कोई वस्तु अधिक मात्रा में ग्रहण कर लेती है, जैसे लकड़ी जितनी जल्दी अग्नि के प्रभाव को ग्रहण करती है उतनी जल्दी पत्थर नहीं करता। इसी विषमता को दूर करने के लिये सूर्य योग की आवश्यकता होती है।

भगवान सूर्य की अनन्त महिमामयी शक्तियाँ सबके लिये खुली पड़ी हैं, पर उनका उपयोग वे ही कर पाते हैं, जो अपने आपको उस क्षमता से सम्पन्न कर लेते हैं, जिसके द्वारा कि वह शक्तियाँ अपने में आने लगें। धूप चारों ओर फैल रही है, पर अपने घर के दरवाजे बन्द हैं तो उस धूप का भीतर प्रवेश न हो सकेगा। यदि धूप को घर में भीतर लाने की इच्छा है तो दरवाजे और खिड़कियाँ खोल देनी पड़ेगी। उनके खुलते ही धूप निर्बाध गति से भीतर पहुँचने लगेगी। यही बात सूर्यशक्ति के सम्बन्ध में है। इस शक्ति की समीपता में पहुँचने का, उसके अनुकूल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनने का जितना ही हम प्रयत्न करते हैं उतना ही इन शक्तियों का प्रवेश अपने अन्दर होने लगता है। सूर्य योग का उद्देश्य अपने को इस योग्य बनाना है कि सविता की शक्तियाँ अपने भीतर निर्बाध गति से प्रवेश कर सकें।

जितनी भी भौतिक शक्तियाँ हैं, वे सब सूर्य द्वारा स्पन्दित होती हैं। वैज्ञानिक लोग जिन सूक्ष्म शक्तियों को प्रकृति के अन्तराल में से ढूँढ़कर निकाल रहे हैं, वे सभी सूर्य द्वारा आविर्भूत हुई मानी जाती हैं, इस प्रकार सृष्टि के समस्त व्यवसाय सूर्य द्वारा संचालित माने जाते हैं क्योंकि उसी की किरणें विविधि प्रक्रियाओं द्वारा उत्पादन, विकास और विनाश करती हैं। सूर्य से सम्बद्ध होने पर मनुष्य उन सब वस्तुओं पर भी अधिकार कर लेता है, जो उसके मर्यादा क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। संसार की कोई भी वस्तु सूर्य-मर्यादा से बाहर नहीं हैं, इसलिये कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो सूर्य योग द्वारा प्राप्त न हो सकती हो।

सूर्यवंशी राजा अपनी पैतृक शक्ति में सविता की शक्तियाँ सम्मिलित अनुभव करते थे। कुन्ती ने सूर्य शक्ति को आमन्त्रित कर गर्भ धारण किया था और उससे कर्ण की उत्पत्ति हुई थी। दशरथ का वह पुत्रेष्टि यज्ञ जिससे चार दिव्य गुण सम्पन्न बालकों की उत्पत्ति हुई थी, सूर्य यज्ञ ही था। यज्ञों में अग्नि को आहुति देना भी सूर्य को भोजन कराना है संतान, वृक्ष, वनस्पति, अन्न-पशु आदि का उत्पादन और आरोग्य यह दो बातें तो विशेष रूप से सूर्य शक्ति से सम्बन्धित हैं। यह दो प्रयोजन ऐसे हैं, जिनके लिये भगवान सूर्य नारायण का आश्रय ग्रहण करना, सफलता का एक प्रबल आध्यात्मिक आधार माना जाता है।

रविवार का व्रत अपनी उपयोगिता के लिये प्रसिद्ध है। मातायें अपनी सन्तान सम्बन्धी विविधि कामनाओं के लिये यह व्रत रखती हैं। गर्भ की पुष्टि एवं सुसंतति के लिये गर्भिणियाँ रविवार को व्रत रखा करती हैं। बालकों की निरोगता, उनके अनिष्ट निवारण के लिये मातायें सूर्य की आराधना करती हैं। क्षीण स्वास्थ्य वाले अपनी कमजोरी तथा बीमारी को हटाने के लिये और स्वस्थ पुरुष बलिष्ठता प्राप्त करने के लिये रविवार को व्रत रखते हैं।

रविवार का व्रत कुछ कठिन नहीं है। जो लोग पूर्ण स्वस्थ हैं वे निराहार रह सकते हैं। केवल जल पीकर रहना निराहार रहना कहा जाता है। दूध, दही, फल, शाक-सब्जी आदि पर रहना फलाहार है। जो निराहार या फलाहार पर नहीं रह सकते वे एक समय, एक अन्न का बना हुआ भोजन एक दाल, शाक या दूध-दही के साथ कर लें। नमक मीठा उस भोजन में न रहना चाहिये। इस प्रकार स्वाद रहित, सात्विक प्रकृति का भोजन एक समय करना भी अर्ध उपवास है।

उपवास के दिन या नित्य प्रति सूर्य को अर्घ्य देना—जल चढ़ाना, सूर्य का ध्यान करना, उसकी मानसिक परिक्रमा करना, नमस्कार करना, "ॐ सूर्याय नमः" मन्त्र का जप करना, सूर्योपासना के साधारण उपकर्म हैं। इन्हें हर कोई आसानी के साथ प्रतिदिन कर सकता है। उपवास के दिन तो इनका उपयोग नित्य ही करना चाहिये। सूर्य नमस्कार का व्यायाम हम अपनी "प्रत्यक्ष फलदायिनी साधना" पुस्तक में लिख चुके हैं। उस रीति से सूर्य नमस्कार का व्यायाम करते रहने से स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक प्रगति होती है।

सूर्य स्नान धूप में सिर ढककर नंगे शरीर लेटना रोगों के निवारण के लिये बहुत अच्छा उपचार है। इससे क्षय तक चला जाता है। धूप में रखकर गरम किया हुआ जल, स्नान करने के लिये एक उपयोगी औषधि के समान है। वस्त्रों को धोकर धूप में सुखाना उसकी शुद्धि का एक बहुमूल्य तरीका है। कहते हैं कि जिन घरों में धूप पहुँचती है उनमें डॉक्टर नहीं पहुँचते हैं। डॉक्टर न पहुँचने का अर्थ है रोग का न पहुँचना। भगवान भास्कर की किरणों में रोग-कीटाणुओं को नाश करने की अद्भुत शक्ति है। मनुष्य सूर्य के सम्पर्क में जितना ही रहेगा उतना ही अस्वस्थता से बचा रहेगा। प्रकृति के सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्तु अपने पिता सूर्य नारायण के सम्मुख नंगे बदन फिरते हैं, उसके समीप रहते हैं। यही कारण है कि वे रोगी नहीं होते, हमारे पूर्वज भी लज्जा निवारण के वस्त्रों के अतिरिक्त अपने दैनिक जीवन में अन्य वस्त्रों को धारण न करते थे, वे जानते थे कि त्वचा के छिद्रों द्वारा सूर्य किरणें हमारे शरीर में जितना ही अधिक प्रवेश करेंगी उतना ही हम निरोग रहेंगे। आज हमारे दैनिक जीवन में सूर्य उपासना का वह महत्त्व पूर्व भाग लुप्त प्रायः हो गया है। वस्त्रों के परत एक के ऊपर एक चढ़ाते-चढ़ाते संतोष नहीं होता। कपड़ों की मोटी तहों से शरीर को ढके रहने का परिणाम यह होता है कि त्वचा पीली पड़ जाती है। ऋतु के प्रभावों को सहन करने की शक्ति क्षीण हो जाती है और आये दिन सर्दी, जुकाम, लू लगना, दाद, खाज आदि अनेक रोग होते रहते हैं। सूर्य योग के उपासक इस रहस्य को जानते हैं और यथासम्भव शरीर को अधिकतर खुला रखते हैं और वस्त्र उतने ही पहनते हैं जितने पहनना अनिवार्य होता है।

सूर्य के रथ में सात घोड़े जुते होने की पौराणिक मान्यता प्रसिद्ध है। उन सात घोड़ों का तात्पर्य सात रंग की किरणों से है। भगवान भास्कर की जो असंख्य किरणें भूमण्डल पर आती हैं उसमें सात रंग होते हैं। वे रंग इन्द्र धनुष में दिखाई देते हैं और उन्हें बिल्लौरी काँच की तिरछी कटी हुई पट्टियों में भी देखा जा सकता है। इन रंगों के साथ कुछ विशिष्ट शक्तियाँ सम्बन्धित होती हैं, वे शक्तियाँ जिस स्थान पर जितनी न्यूनाधिक या जितनी मिश्रित मात्रा में एकत्रित हो जाती हैं, वहाँ वही रंग दिखाई देने लगते हैं। इस प्रकार विभिन्न रंगों की वस्तुओं में पृथक्-पृथक् गुण पाये जाते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने मनुष्य के मस्तिष्क से निकलकर उड़ने वाले विचारों को सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों की सहायता से देखा है, उन्होंने विभिन्न प्रकार के विचारों के रंग और स्वरूप देखे हैं। क्रोध का रंग लाल, पाप के तामसिक, विचारों का रंग काला, ज्ञान और विवेक का रंग पीला, त्याग और उपकार का रंग भगवा, शान्ति का रंग नीला, उत्साह का रंग गुलाबी, कूटनीति का रंग किशमिशी, भोगेच्छा का रंग बैंगनी, प्रसन्नता और तृप्ति का रंग हरा, लोभ का रंग बसन्ती, रचना का रंग खाकी, विकास का रंग मूँगिया, दृढ़ता का रंग हलका काला, मधुरता का रंग गेहुँआ मूँग चंचलता का रुपहला, छल का मटीला, अहंकार का भूरा और उदासीनता तथा अनुदारता का रंग शरबती होता है। रंगों में प्राप्त होने वाली यह वृत्तियाँ सूर्य की किरणों से आती हैं क्योंकि प्रत्येक किरण अपने साथ कुछ भौतिक और कुछ आध्यात्मिक प्रभाव रखती है। जहाँ जो रंग होता है वहाँ किरणों की वे दोनों प्रकार की विशेषतायें भी जमा होने लगती हैं।

जो पदार्थ जिस रंग का होता है उसमें होकर केवल उसी रंग की किरणें पार होती हैं और शेष रंगों की किरणें बाहर ही रह जाती हैं। यदि कोई कपड़ा भगवा रंग का है उसमें होते हुये त्याग और परोपकार की किरणें छन कर भीतर जायेंगी और भीतर जो शरीर है उस पर प्रभाव डालेंगी, इसलिये सूर्य योगी अपने आहार-विहार में रंगों के उपयोग का विशेष रूप से ध्यान रखता है। वह उपयोगी रंग की वस्तुओं का उचित मात्रा में प्रयोग करता है और अनुपयोगी रंग से बचता है।

'सूर्य किरण चिकित्सा' नामक अपनी पुस्तक में हम सविस्तार बता चुके हैं कि रंगीन काँच की बोतलों में पानी, दूध, तेल, शक्कर आदि भर कर धूप में रखने से किस प्रकार यह चीजें औषधि बन जाती हैं और इन चीजों की सहायता से कठिन रोगों की चिकित्सा किस प्रकार की जा सकती है जिस रंग की बोतल होती है उसी रंग की किरणें काँच में होकर भीतर जाती हैं और उनके प्रभाव से वह जल, दूध, तेल आदि पदार्थ एक विशेष प्रकार की शक्ति से संयुक्त हो जाते हैं और बीमारियों के निवारण में अपना असर जादू के समान दिखाते हैं। लाल बोतल में पानी भरकर धूप में आठ घंटे रखा हुआ पानी यदि कोई मनुष्य अधिक मात्रा में पीले तो उसे खून की उल्टी या खूनी दस्त तक हो सकते हैं।

इस रहस्य को समझ लेने पर सूर्य योगी विविध कार्यों के लिये विविध रंगों का उपयोग करने के विज्ञान को जान लेता है। वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भोजन, वस्त्र, औषधि, मकान की पुताई, पर्दे, चित्र, पात्र, सवारी, उपयोग में आने वाले पशु, औजार, प्रयोग होने वाले पदार्थ, आदि के रंगों में वैसी व्यवस्था करता है, जो अपने लिये उपयोगी पड़े। किन्हीं कठिनाइयों का निवारण और आवश्यकताओं का तुष्टीकरण करने के लिये वह इस रंग विज्ञान का बड़ा उपयोग करता है। अमुक रंग की वस्तुओं का त्याग कर देने और अमुक रंग का अधिक मात्रा में उपयोग करने से ही वह ऐसे ऐसे महत्त्वपूर्ण लाभों को उठा लेता है, जो अन्य रीतियों से मिलने कठिन थे। वर्ण विज्ञान भी सूर्य योग का एक प्रधान अंग है।

सूर्य चक्र का बेधन, जागरण और प्रस्फुरण यह योग की एक गुप्त क्रिया है। सूर्य चक्र के दो स्थान हैं, एक हृदय दूसरा आमाशय। हृदय प्रधान केन्द्र है, आमाशय उसकी शाखा है। इसलिये आमाशय में स्थित सूर्य चक्र को उपचन्द्र या चन्द्र चक्र भी कहते हैं। हृदय स्थित चक्र का वर्ण श्वेत, प्रकाश अत्यन्त तेजवान, आकार गोल और प्रकृति उष्ण है। आमाशय स्थित चक्र का वर्ण पीला, प्रकाश चन्द्रमा जैसा, आकार दीपक की लौ के समान नीचे मोटा और ऊपर पतला है, उसकी प्रकृति शीतल है। इस गुण भिन्नता के कारण ही इन्हें सूर्य चक्र तथा चन्द्र चक्र कहते हैं। वस्तुतः यह दोनों ही सूर्य चक्र है। चन्द्रमा में जो प्रकाश है वह सूर्य का ही है। जब सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर नहीं पड़ती तो उस बेचारे का अस्तित्व तक दिखाई नहीं पड़ता।

सूर्ययोगी अपनी किन्हीं शक्तियों को विकसित एवं उत्तेजित करने के लिये सूर्य चक्र का आश्रय लेता है और किन्हीं अनावश्यक वृत्तियों को शान्त एवं समाप्त करने के लिये चन्द्रचक्र का उपयोग करता है। स्वस्थ और शान्तचित्त से इन चक्रों का ध्यान करने पर शरीर और मन में उष्णता एवं शीतलता की वृद्धि होती है। जब शरीर में गर्मी की अधिकता हो तो चक्र का ध्यान करने से उसका शमन होता है और जब सर्दी का बाहुल्य हो तो सूर्य चक्र का ध्यान करते ही नाड़ियों में उष्णता दौड़ने लगती है। जिस भावना को उत्तेजित करना हो, बढ़ाना हो उस भावना को मन में धारण करते हुये सूर्य चक्र का ध्यान किया जाता है और जो वृत्ति शान्त करनी होती है उसको भावना क्षेत्र में रखते हुये आमाशय में चन्द्र चक्र का ध्यान किया जाता है तो लगातार शान्ति बढ़ती जाती है, उग्रता और उत्तेजना निरन्तर घटती चलती है। इस प्रक्रिया से सूर्य योगी अपने मानसिक संतुलन को ठीक करता रहता है और जीवन की प्रगति को अव्यवस्था से बचाकर व्यवस्था की ओर ले जाता है।

सूर्य योग की अनेकों शाखायें हैं। यह एक महान् विज्ञान है, जिसके आधार पर वस्तुओं का रूप तक बदला जा सकता है। स्वामी विशुद्धानन्द जी सूर्य शक्ति से एक फूल को दूसरे फूल की शक्ल में बदल देते थे, उनका कहना था कि इसी प्रकार संसार की समस्त वस्तुयें एक आकृति से दूसरी आकृति में बदली जा सकती हैं। अमुक तत्व के परमाणुओं की अमुक मात्रा हटा देने और उसमें अमुक तत्व अमुक मात्र मिला देने से पदार्थ का दृश्य रूप बदल जाता है। तत्वों और उनके परमाणुओं पर सूर्य की संचालक सत्ता का नियन्त्रण है इसलिये सूर्य शक्ति द्वारा प्रत्येक वस्तु में हेर-फेर हो सकता है। सूर्य योग अद्भुत योग है, वह अभ्यास, प्रयत्न और धैर्य के साथ अविचल साधना करने से सिद्ध होता है। साधना के रहस्य पुस्तकों में प्रकाशित नहीं किये जाते उनमें तो अंगुलि निर्देश मात्र ही रह सकता है। इस रहस्य को अनुभवी शिक्षक केवल अधिकारी साधकों को बताते हैं।

(५) शक्ति योग

श्रेष्ठेभ्यः शक्तयोगेभ्यो वरेण्यं गदितं ततः।

सर्वशक्तिमयो येभ्यो जपतो ह्यात्माभिजायते।।

(ततः) तदनन्तर (वरेण्यं) वरेण्यं यह पद श्रेष्ठभ्यः) श्रेष्ठ (शक्तियोगेभ्यः) शक्तियोगों के लिये (गदितं) कहा है। (येभ्यः) जिन शक्ति योगों के द्वारा (जपतः) जप करने वाले की (आत्मा) आत्मा (सर्व शक्तिमयः) सर्व शक्ति सम्पन्न (अभिजायते) हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वरेण्य कहते हैं, श्रेष्ठ को। इस संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है—शक्ति। बल के बिना आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। उपनिषदों का वचन है कि **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** यह आत्मा बल हीनों को प्राप्त नहीं होता। आत्मा की प्राप्ति तो दूर—सांसारिक वस्तुयें भी प्राप्त नहीं हो सकतीं। जो जितना शक्तिवान है, वह साधारण मनुष्यों की अपेक्षा उतना ही श्रेष्ठ है। इसलिये गायत्री के वरेण्य शब्द में शक्ति योग का निर्देश सन्निहित माना गया है।

शक्ति के उपासक शाक्त कहलाते हैं। शाक्त सिद्धान्तों का भारत में काफी सम्मान और विस्तार रहा है। किन्तु पिछले अन्धकार युग में उस महान् सिद्धान्त को भोगोन्मुख करके मद्य, माँस मैथुनपरक बना दिया था। वस्तुतः वह वस्तु वैसी नहीं है जैसी कि पिछले काल में बुरे रूप में व्यवहृत होने के कारण बदनाम हुई।

आध्यात्म विज्ञान के उपासना क्षेत्र में शक्ति को दुर्गा के रूप में पूजा जाता है। दुर्गा शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। बल की परिभाषा, उसके संचय एवं परिवर्धन का उपाय तथा बल का उपयोग किस प्रकार हो इन सब बातों का उत्तर दुर्गा के रहस्यमय स्वरूप में सन्निहित है। थोड़ी गम्भीरतापूर्वक हम दुर्गा चरित्र पर विचार करें तो हमें बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें मालूम होंगी। दुर्गा का प्रत्येक तत्व एक रहस्य से परिपूर्ण है।

शक्ति उपासना का तात्पर्य है बल का संग्रह करना; बल आठ प्रकार के हैं (१) विद्या बल (२) शरीर बल (३) धन बल (४) संगठन बल (५) गुण बल (६) प्रतिष्ठा बल (७) साहस बल (८) सत्य बल। इन आठ बलों का प्रतिनिधित्व और प्रदर्शन करने के लिये दुर्गा की आठ भुजायें हैं। अर्थात् एक ही शक्ति के आठ अंग हैं। शक्ति आठ अंगों में बटी हुई है। वे आठ भाग मिलकर एक पूर्णांग बनता है। इन सबके समन्वय से, सम्मिश्रण से, एक पूर्ण शक्ति बनती है। जिस मनुष्य में इन आठ अंगों में से जितने अंश, जितनी अधिक मात्रा में मौजूद हैं, वह उतनी ही मात्रा में शक्तिशाली कहा जायगा शक्तियोग का तात्पर्य है अपने अन्दर अधिक से अधिक मात्रा में शक्तियों को धारण करना। इस योग की साधना के लिये वे सभी काम करने होते हैं, जो सांसारिक और आध्यात्मिक दृष्टि से आवश्यक हैं।

इन आठों शक्तियों को उपार्जित करने वाले कार्य शक्ति योग की साधना के अन्तर्गत आ जाते हैं। विद्या, स्वास्थ्य, धन, संगठन, गुण, प्रतिष्ठा, शौर्य और सत्य की शक्तियों को बढ़ाने के लिये हर मनुष्य को उसी अपनी स्थिति के अनुसार अपने-अपने ढंग से काम करना होता है। सबकी स्थिति और रुचि में भिन्नता होने के कारण सब का अपना तरीका भी अलग ही निर्धारित करना होता है। यह सब उपाय उपचार शक्ति योग के अंग हैं। शक्ति योगी उन्हें यथा अवसर अपनाता है और शक्तिशाली बनता है।

शक्ति एक सम्पत्ति है। सम्पत्ति को जिस दिशा में चाहे, उधर ही लगाया जा सकता है। धन से धर्म कमा सकते हैं, परोपकार कर सकते हैं, आत्म कल्याण के साधन जुटा सकते हैं, सुख-शान्ति के साथ स्वयं रह सकते हैं और दूसरों को रख सकते हैं परन्तु यदि कोई चाहे तो धन का अपव्यय या दुर्व्यय भी कर सकता है। निरर्थक कार्यों में उसे लुटाया जा सकता है तथा ऐसे बुरे कार्य किये जा सकते हैं, जिनका परिणाम अपने लिये तथा दूसरों के लिये बड़ा ही घातक हो। मद्यपान, व्यभिचार जैसे कार्यों में धन व्यय होता है और उसका परिणाम शारीरिक, मानसिक और आर्थिक पतन ही होता है। इसी प्रकार शक्तिरूपी सम्पत्ति को चाहे जिस ओर लगाया जा सकता है। उसका सदुपयोग करके अपने जीवन तथा सब लोगों के जीवन में सुख-शान्ति की स्थापना की जा सकती है। पर यदि उसका दुरुपयोग हो तो भयंकर अनिष्ट भी उपस्थित हो सकते हैं। देवताओं के पास भी शक्ति होती है और असुरों के पास भी। देवता उसका सदुपयोग करके सब और सुख-शान्ति की उत्पत्ति करते हैं और असुर अपने उस बल के द्वारा चारों ओर अशान्ति, त्रास, पीड़ा और उन्माद पैदा कर देते हैं। इसलिये शक्ति का नियन्त्रण, और उसका सन्मार्ग में प्रयोग, यह भी शक्ति योग का प्रधान अंग है। शक्ति का अधिकाधिक मात्रा में संचय और उसका श्रेष्ठतम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्ग में उपयोग संक्षेप में यही शक्ति योग का प्रयोजन है।

शक्ति संचय के लिये यह भी आवश्यक है उन छिद्रों को रोका जाय जिनमें होकर हमारी कमाई हुई शक्ति टपककर बह जाती है। चलनी में कितना ही दूध क्यों न दुहा जाये उसमें कुछ जमा न होगा, छिद्रों में होकर वह नीचे गिर जायेगा और लाभ की सारी आशायें धूल में मिल जावेंगी इसलिये यदि कुछ संचय करने की इच्छा है तो उन छेदों को बन्द करना पड़ेगा जो हमें दिन-दिन अशक्त बनाते हैं। ऐसे छिद्र प्रधानतः तीन हैं। उनके प्रतिरोध को दुर्गा चरित्र में बड़े सुन्दर अलंकारिक रूप से वर्णन किया गया है।

दुर्गा-सप्तशति में तीन चरित्र हैं एक मधुकैटभ वध दूसरा महिषासुर वध और तीसरा शुंभ-निशुंभ वध।

मधुकैटभ का अर्थ काम। महिषासुर का अर्थ है-क्रोध। शुंभ का अर्थ हैं-लोभ। इन तीनों को भगवती ने तीन रूप धारण करके मारा है। महासरस्वती बनकर वह विष्णु को जगाती हैं और मधुकैटभ का वध कराती हैं। विष्णु का अर्थ है—ज्ञान। महासरस्वती विवेक की शक्ति है, वह सोते हुये विष्णु को-सोत हुये अन्तर्ज्ञान को जगाती है। ज्ञान की मूर्छा को दूर करती है और अन्तःकरण जागृत होकर विषय विकारों का वधकर डालता है। यही मधुकैटभ वध है। विषय विकार में शरीर का अमूल्य सार भाग वीर्य तो नष्ट होता ही है, उससे भी बड़ी हानि यह है कि आत्मा को उच्च बनाने वाले तत्वों की ओर से विमुख होकर मन काम-क्रीड़ा में रस लेने लगता है, उसके चिन्तन, अभिरंजन का वही प्रधान हेतु बन जाता है, और सारी चित्तवृत्तियाँ उसी उधेड़बुन में लगी रहती हैं। फलस्वरूप इस उथले, तुच्छ, अनीति उत्पादक, अस्वास्थ्यकर कार्य में जीवन का श्रेष्ठतम अंश खर्च हो जाता है और अन्य क्षेत्रों में उन्नति के लिये छूंछ मात्र बच रहती है। यही कारण है कि जिसकी मनोभूमि विषय-विकारों में डुबी रहती है वे कोई महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर पाते, इस गंदी कीचड़ में फँसे हुये सड़ते रहते हैं।

दूसरा शत्रु है क्रोध। क्रोध का तात्पर्य है मानसिक उत्तेजना। चिन्ता, भय, ईर्ष्या, द्वेष, शोक, मद, चिड़चिड़ापन, अहंकार दीनता, निराशा, उत्तेजना, बड़बड़ाना, चंचलता आवेश, यह सब क्रोध के बाल बच्चे हैं। हृदय और मस्तिष्क तभी कुछ काम ठीक प्रकार कर सकता है जब मन शान्त हो। उत्तेजना की अवस्था में उसके निर्णय, आयोजन, विचार कार्य सभी गलत होते हैं और गलत कार्यों का परिणाम भी गलत होता है। यही कारण है कि क्रोधी मनुष्य को ठीक रास्ता नहीं मिलता और वह अभीष्ट मार्ग पर नहीं पहुँच पाता। यह क्रोध ही महिषासुर है। शक्ति महाकाली का रूप बनाकर इस क्रोध का वध करती ह, तभी उसकी विजय का डंका बजता है।

तीसरा चरित्र है शुंभ-निशुंभ बध। यह है लोभ लालच। वस्तुओं को जोड़-जोड़कर जमा करना और उनका उपयोग न खुद करना न दूसरे को करने देना; यह लोभ कहलाता है। लालच कहते हैं, अनियन्त्रित तृष्णाओं को। लालची लोग हर घड़ी असन्तुष्ट रहते हैं, हर प्रकार के लोग ऐश्वर्यों के लिये सदा लार टपकाते रहते हैं चाहे उन्हें प्राप्त करने की आवश्यकता या योग्यता हो चाहे न हो। एसे लोभी, लालची लोग कोई संपदा प्राप्त कर भी लें तो उसका सदुपयोग नहीं कर पाते और बिना सदुपयोग के संपदा के स्वामी बनने मात्र से किसी का कोई हित नहीं हो सकता। इसलिये इन लोभ-लालचों का वध दुर्गा ने महालक्ष्मी रूप से किया है। साथ लोभ लालच के अनेक गणों का भी ऐन्द्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, आदि शक्तियों द्वारा नाश कराया है। आत्मोन्नति के लिए जिन आठ शक्तियों को आवश्यक बताया गया है जब तक कि काम, क्रोध, लोभ रूपी तीन छिद्रों का मानसिक शत्रुओं का अन्त न कर दिया जाये, जो विषय-विकारों में लिप्त है। जिस पर मानसिक उत्तेजना का उन्माद चढ़ा रहता है, वह अव्यवस्थित व्यक्ति किसी प्रकार का बल संग्रह न कर सकेगा। ओंधे-सीधे काम, अस्त-व्यस्त विचार, चंचल मन उसे किसी सही रास्ते पर न चलने देंगे। इसलिये इन तीन शत्रुओं को अपने-अपने क्षेत्र में वध करना आवश्यक होता है। जिसे धन-बल एकत्रित करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है वह निर्लोभ होकर पूँजी को व्यापार में फंसा देता है, क्रोध को तिलांजली देकर ग्राहकों से बड़ा ही नम्र और मधुर व्यवहार करता है और विषय-भोगों में मस्त पड़े रहने की इच्छा छोड़कर प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक व्यापारिक कार्यों में पसीना बहाता रहता है यदि इतना न करे तो भला धनी किस प्रकार बन सकेगा ? शरीर उन्नति के लिये भी पौष्टिक भोजन करने में निर्लोभ होना पड़ता है, ब्रह्मचर्य का लंगोट बाँधकर व्यायाम करना होता है और चिन्ताओं से दूर रहकर मस्ती के साथ अखाड़े से दोस्ती जोड़नी पड़ती है। काम, क्रोध और लोभ को जीतना उस हर एक क्षेत्र में आवश्यक है जिसमें कि उन्नति और सफलता प्राप्त करने की इच्छा है। इन कंटकों को कुचले बिना न ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है न सांसारिक सफलताओं तक, इसलिये शक्ति योगी-शक्ति चरित्र का अनुगमन करके इन तीन शत्रुओं से लड़ता है, उनको परास्त करता है और आगे बढ़ता है।

दुर्गा का जन्म देवताओं की सम्मिलित शक्ति से हुआ है। कथा इस प्रकार है कि असुरों से सन्त्रस्त होकर देवता इकट्ठे हुये और उन्होंने अपनी-अपनी दिव्य शक्तियों को एकत्रित किया और अपने-अपने हथियार देकर एक सम्मिलित केन्द्रिय शक्ति को उत्पन्न किया जो दुर्गा कहलाई और उस दुर्गा ने असुरों का संहार किया। देवता लोग पृथक्-पृथक् रह कर असुरों को परास्त नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्होंने अपनी शक्तियों को केन्द्रित किया। मनुष्य भी अकेला अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त नहीं करता। उसे दूसरों के सहयोग से एक केन्द्रीय शक्ति उत्पन्न करनी होती है। जिसके पास जितना बड़ा संगठन है, जितनी प्रबल जनशक्ति है वह उतना ही सक्षम है, समर्थ है। प्रजातन्त्र के राज्यों में तो केवल वोट पर ही सारी राजसत्ता केन्द्रित है, राजनीति के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी संघ शक्ति की अतुलित महिमा है। कलियुग में तो शास्त्रकारों ने विशेष रूप से "संघ शक्ति" को ही प्रधानता दी है।

दुर्गा कहते हैं, कठिन को। दुर्गा उसे कहते हैं जो कठिनाई को दूर करे। देवताओं की श्रेष्ठ पुरुषों की सम्मिलित शक्ति ही दुर्गा है। वह मनुष्यों की व्यक्तिगत और सामूहिक कठिनाइयों को दूर करती है। असुरों की सामूहिक शक्ति तो संसार में विपत्तियों को बढ़ाती है पर देवताओं का संगठन सदा कठिनता का निवारण करने वाला होता है। इसलिये शक्ति योगी इस बात का प्रयत्न करता है कि अपने स्वभाव के लोगों का, अच्छे उद्देश्य की पूर्ति के लिये जितना मजबूत और जितना बड़ा संगठन बन जाय उतना अच्छा। तिनका-तिनका मिलकर हाथी को बाँधने वाला रस्सा बन जाता है। छोटे-छोटे लोगों का भी गिरोह मजबूती के साथ एकत्रित हो जाय तो उसके द्वारा बड़े कठिन प्रतीत होने वाले प्रयोजन भी आसानी से सिद्ध हो जाते हैं।

देवी बलि से प्रसन्न होती है, बलि का अर्थ है, त्याग। त्याग से ताजगी, चैतन्यता, स्फूर्ति और क्रियाशीलता आती है। पेट्रोल जले बिना मोटर नहीं चलती, तेल खर्च किये बिना प्रकाश नहीं होता, पैसा खर्च किये बिना दुकानदार कोई चीज नहीं देता। इस संसार में इस हाथ दे उस हाथ ले का सीधा सा व्यौहार है। जो देना नहीं चाहता उसे लेने की आशा न करनी चाहिये। किसान पहले बीज को खेत में बखेर आता है तब बहुत दिन बाद उसे फसल काटने का अवसर मिलता है। जो जिस शक्ति को प्राप्त करना चाहता है उसे अपने ऐश, आराम, रूपी बकरे और आलस्य रूपी भैंसे को बलि देवी के आगे चढ़ानी होती है, प्रयत्न, परिश्रम, त्याग, साहस और कष्ट सहिष्णुता के बल पर विजय श्री को प्राप्त करना होता है।

शक्ति योगी-शक्तियों का अधिकाधिक संचय करता है। पर उनका अधिकाधिक अंश परमार्थ के लिये होता है। अपने लिये उनका न्यूनतम अंश खर्च करता है। जिसके पास जितनी अधिक शक्ति है वह लोग सेवा भी उतनी ही अधिक कर सकेगा जो अशक्त है वह दूसरों की सेवा तो दूर अपनी जीवन यात्रा भी ठीक प्रकार न चला सकेगा। अशक्त एक प्रकार का पापी है क्योंकि उसकी निर्बलता को देखकर अनेकों के मन में उसे सताने और शोषण करने का दुर्भाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पैदा होता है। कहते हैं कि "जालिम का बाप बुजदिल होता है। बुजदिल को देखकर जालिम की हिम्मत बढ़ती है इसलिये बुज़िदिली को कमजोरी को एक बड़ा पाप माना गया है, यही कारण है कि कमजोरों को प्रकृति और परमात्मा की ओर से भी अनेकों प्रकार के दण्ड आये दिन मिलते रहते हैं उनके ऊपर चारों ओर से कहर बरसते रहते हैं। शक्ति योगी इस रहस्य को जानता है इसलिये वह शक्ति के संचय के लिये निरन्तर साधना करता रहता है।

शास्त्र का मत है कि मनुष्य में बुद्धि देवताओं की सी और शक्ति असुरों की सी होनी चाहिये। जिसमें असुरों की सी शक्ति नहीं वह पूर्ण मनुष्य नहीं कहा जा सकता। सज्जनता यदि शक्ति युक्त हो तो वह मूर्खता का, बुजदिली का चिन्ह है। श्रेष्ठ वह है जो मन से सज्जन है पर बाहर से सर्वांगपूर्ण शक्ति से युक्त है। शक्ति योगी का आदर्श यही श्रेष्ठता है, वह देवताओं की सी बुद्धि रखता है पर असुरों की सी शक्ति से अपने को सुसज्जित बनाता है। सत्य के साथ शक्ति का होना आवश्यक हैं। अँग्रेजी की कहावत है कि—Right is might therefor might is right अर्थात् सत्य ही शक्ति है इसलिये शक्ति ही सत्य है शक्ति योगी इस आदर्श को मानता है और अपनी स्थिति के अनुसार अनेकों उपायों से शक्ति का सत्प्रयोजन के लिये संचय करता रहता है।

(६) प्राण योग

भर्गेति प्राणयोगेन जायते भर्गसाधना।
तया प्राणा वशं यान्ति ना तदा सर्वमाप्नुते।।

(भर्गेति) भर्ग पद से ज्ञात होता है कि (भर्ग साधना) भर्ग की साधना (प्राणोयोगेन) प्राणयोग से (जायते) होती है (तथा) उस भर्ग साधना से (प्राणा:) प्राण (वंश यान्ति) वश में हो जाते हैं (तदा) तब (ना) मनुष्य (सर्व) सब कुछ (आप्नुते) प्राप्त कर लेता है।

भर्ग शब्द द्वारा प्राण योग की ओर संकेत किया गया है। भर्ग तेज को कहते हैं। प्राणी का तेज—प्राकट्य उसका प्राण ही तो है। प्राण की प्रमुखता होने के कारण ही प्राणी शब्द बना है। जिस प्राणी में प्राण की जितनी अधिक मात्रा है वह उतना ही विशेषता युक्त पराक्रमी, श्रेष्ठ, उन्नत एवं महान् होता है, जिसमें प्राण की मात्रा जितनी न्यून है वह उतना ही निर्बल, निकम्मा, आलसी एवं गिरे दर्जे का होगा।

प्राण शक्ति को बढ़ाने का अर्थ है, उस दिव्य तत्व को अपने अन्दर भरना जिसके द्वारा मनुष्य की शक्तियाँ अनेक दिशाओं में विकसित होती हैं। प्राण को जीवनी और शक्ति भी कहते हैं इसके द्वारा आयु का घटना आर बढ़ना हो सकता है। मृत्यु को दूर हटाया जा सकता है, भीष्म पितामह छै मास तक मृत्यु को दूर हटाते रहे थे। प्राणवान् व्यक्तियों की संतान सुन्दर, स्वस्थ, सतेज, कर्मशील और दीर्घजीवी होती है। निर्बल प्राण वाले मनुष्यों का वीर्य अधिकतर निष्फल जाता है यदि किसी प्रकार उससे गर्भ की स्थापना हो भी जावे तो सन्तान कुरूप, अंगभंग, रोगी, आलसी, मूर्ख और अल्पजीवी होती है।

प्राणवान की प्रमुख पहचान उसकी तेजस्विता है। जिसमें प्राण की मात्रा अधिक है उसका चेहरा चमकता रहेगा, वाणी में बल, दृढ़ता और प्रभावशीलता होगी, विचारों में व्यावहारिकता और दूरदर्शिता मिलेगी, कार्य शैली में गम्भीरता होगी। धैर्य, साहस, स्थिरता और सहनशीलता की विशेष मात्रा उसके स्वभाव में पाई जायेगी। घबराहट, चंचलता, छछोरापन, कायरता, संकीर्णता, अनुदारता, स्वार्थपरता, निराशा, भय, चिन्ता, आलस्य आदि दुर्गुण उन लोगों मे अधिक मिलेंगे जिनमें लोग प्राणशक्ति की निर्बलता होगी। ऐसे लोग दिन-दिन पतन की ओर अग्रसर होते जाते हैं।

जीवन के प्रधान तत्व प्राण की अभिवृद्धि और परिपुष्टता के लिये गायत्री मन्त्र के अन्तर्गत 'भर्ग' शब्द में आदेश किया गया है। प्राण की वृद्धि के लिये प्राणायाम की साधना सर्वश्रेष्ठ है। सात्विक और नियमित आहार, व्यवस्थित दिनचर्या, निश्चिन्त मन, प्रसन्न चित्त, ब्रह्मचर्य, यह सभी बातें प्राणशक्ति को बढ़ाने वाली हैं। इनके अतिरिक्त प्राणायाम द्वारा भी प्राण शक्ति को बढ़ाया जाता है।

प्राणायाम पर अनेकों विशद् ग्रन्थ मौजूद हैं। हमारी "आसन और प्राणायाम" पुस्तक में अनेक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार के प्राणायामों का वर्णन है। वे सभी लाभदायक हैं। "प्राण चिकित्सा विज्ञान" पुस्तक में हमने सविस्तार प्राण शक्ति का संचय और उसके द्वारा अपने तथा दूसरों के रोगों का निवारण करने की विधि सविस्तार बताई है। पाठक इन दोनों पुस्तकों को पढ़कर प्राण विद्या के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। नीचे एक सरल सी प्राणाकर्षण क्रिया दी जा रही है, जो अत्यन्त सरल होते हुए भी प्राण शक्ति को बढ़ाने में बड़ी-बड़ी कठिन क्रियाओं की अपेक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। उस क्रिया को नीचे दिया जा रहा है।

कहीं एकान्त स्थान में जाओ। समतल भूमि पर नरम बिछौना बिछाकर पीठ के बल लेट जाओ। मुँह ऊपर को रहे। पैर, कमर, छाती, शिर सब एक सीध में रहे। दोनों हाथ सूर्य चक्र पर (आमाशय का वह स्थान जहाँ पसलियाँ और पेट मिलता है) रहें, मुँह बन्द रखो। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दो मानो वह कोई निर्जीव वस्तु है और उससे तुम्हारा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। कुछ देर शिथिलता की भावना करने पर शरीर बिल्कुल ढीला पड़ जायेगा। अब धीरे-धीरे नाक द्वारा साँस खींचना आरम्भ करो और दृढ़ शक्ति के साथ भावना करो कि विश्वव्यापी महान् प्राण भण्डार में से मैं स्वच्छ प्राण साँस के साथ खींच रहा हूँ और वह प्राण मेरे रक्त प्रवाह तथा समस्त नाड़ी तन्तुओं में प्रवाहित होता हुआ सूर्य चक्र में इकट्ठा हो रहा है। इस भावना को कल्पना लोक में इतनी दृढ़ता के साथ उतारो कि प्राण शक्ति की बिजली जैसी किरणें नासिका द्वारा देह में घुसती हुई चित्रवत् दीखने लगें और अपना रक्त का दौरा एवं नाड़ी समूह तस्वीर की तरह दीखें तथा उसमें प्राण प्रवाह बहता हुआ नजर आवे। भावना की जितनी अधिकता होगी उतनी ही अधिक मात्रा में तुम प्राण खींच सकोगे। फेफड़ों को वायु से अच्छी तरह भर लो और पाँच से दस सैकिण्ड तक उसे भीतर रोके रहो। आरम्भ में पाँच सैकिण्ड काफी हैं, पश्चात् अभ्यास बढ़ने पर दस सैकिण्ड तक रोक सकते हैं। साँस रोके रहने के समय अपने अन्दर प्रचुर परिणाम में प्राण भरा हुआ अनुभव करना चाहिये। अब वायु को मुँह द्वारा धीरे-धीरे बाहर निकालो। निकालते समय ऐसा अनुभव करो कि शरीर के सारे दोष, रोग और विष इसके द्वारा निकाल बाहर किये जा रहे हैं। दस सैकिण्ड तक बिना हवा के रहो और फिर पूर्ववत् प्राणाकर्षण प्राणायाम करना आरम्भ कर दो। स्मरण रखो कि प्राणाकर्षण का मूल तत्व सांस खींचने-छोड़ने में नहीं वरन् आकर्षण की उस भावना में है जिसके अनुसार अपने शरीर में प्राण का प्रवेश होता हुआ चित्रवत् दिखाई देने लगता है।

इस प्रकार की श्वांस-प्रश्वांस की क्रियायें दस मिनट से लेकर धीरे-धीरे आध घंटे तक बढ़ा लेनी चाहिये। श्वांस द्वारा खींचा हुआ प्राण सूर्य चक्र में जमा होता जा रहा है; इसकी विशेष रूप से भावना करो। यदि मुँह द्वारा सांस छोड़ते समय आकर्षित प्राण को छोड़ने की भी कल्पना करने लगे तो वह सारी क्रिया व्यर्थ हो जायेगी और कुछ भी लाभ न मिलेगा। ठीक तरह से प्राणाकर्षण करने पर सूर्य चक्र जाग्रत होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पसलियों के जोड़ का आमाशय के स्थान पर जो गड्ढा है, वहाँ सूर्य के समान एक छोटा-सा प्रकाश-बिन्दु मानस नेत्रों से दीखने लगा है। यह गोला आरम्भ में छोटा, थोड़े प्रकाश का और धुँधला मालूम देता है किन्तु जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ने लगता है वैसे-वैसे वह साफ, स्वच्छ, बड़ा और प्रकाशवान् होता जाता है। जिनका अभ्यास बढ़ा-चढ़ा है उन्हें आँखें बन्द करते ही अपना सूर्य चक्र साक्षात् सूर्य की तरह तेजपूर्ण दिखाई देने लगता है। यह प्रकाशित तत्व सचमुच प्राण शक्ति है। इसकी शक्ति से कठिन कार्यों में अद्भुत सफलता प्राप्त होती है।

अभ्यास पूरा करके उठ बैठो। तुम्हें मालूम पड़ेगा कि रक्त का दौरा तेजी से हो रहा है और सारे शरीर में एक बिजली सी दौड़ रही है। अभ्यास के उपरान्त कुछ देर शान्तिमय स्थान में बैठना चाहिये और हो सके तो किसी सात्विक वस्तु का जलपान कर लेना चाहिये। अभ्यास से उठकर एकदम किसी कठिन काम में जुट जाना, स्नान, भोजन या मैथुन करना निषिद्ध है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आठ प्राणायाम

प्राणायाम के यों तो अनेक प्रकार है पर उनमें से आठ बहुत उपयोगी हैं।

१—अनुलोम-विलोम

पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर मूलबन्ध लगाकर वाम नासापुट से थोड़ा रेचक करके पूरक करना चाहिये। पश्चात् जालन्धरबन्ध लगाकर कुम्भक करना चाहिये, अन्त में जालन्धर बन्ध को खोलकर और उड्डीयानबन्ध लगाकर दक्षिण नासापुट से शनैः शनैः रेचक करना चाहिये। पुनः एक सैकण्ड बाह्य कुम्भक करके दक्षिण पुट से पूरक करना चाहिये। फिर आन्तरिक बल के अनुसार कुम्भक करके वाम स्वर से रेचक करना चाहिये। इस प्रकार दो प्राणायाम हो जाते हैं। पुनः एक सेकण्ड बाह्य कुम्भक करके पूर्वानुसार आवृत्ति करनी चाहिये। इस प्रकार एक साथ १० प्राणायाम फिर प्रतिदिन ५-५ प्राणायाम बढ़ाकर एक सप्ताह में उसकी संख्या ४० कर देनी चाहिए। कुम्भक के समय अपने इष्टदेव के मन्त्र का जप करना चाहिये। कुम्भक कभी कम, कभी अधिक, यों अनियमित नहीं करना चाहिये। प्राणायाम के समय शरीर को शिथिल सरल और अचल रखना चाहिये। नेत्र बन्द रखने चाहिये। दक्षिण नासापुट से रेचक और पूरक करना हो तो दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका को बायें नासापुट पर रखें। उसी प्रकार वाम नासापुट से रेचक और पूरक करना हो तो दाहिने हाथ के अंगुष्ठ से दक्षिण पुट को बन्द करें।

यदि आरम्भ में १६।। सेकण्ड तक कुम्भक न हो सके तो इससे भी कम समय तक कुम्भक करना चाहिये। अधिक देर तक कुम्भक करने का हठ नहीं करना चाहिये। कुम्भक का समय सेकण्ड के हिसाब से धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार लगभग ३-४ महीने में मध्यम प्राणायाम में प्रवेश हो जायेगा और उसके बाद ३-४ महीने अभ्यास करने पर उत्तम प्राणायाम में प्रवेश हो जायेगा। तत्पश्चात् अन्य कुम्भकों का अभ्यास देश, काल और प्रकृति के अनुसार विचारकर करना चाहिये। उत्तम प्राणायाम के बाद खेचरी का अभ्यास भी हो सकता है। खेचरी के अभ्यास से कुम्भक जल्दी बढ़ता है।

कोई-कोई आचार्य चालीस प्राणायाम का अभ्यास नियमित हो जाने पर कनिष्ठ कुम्भक के समय से ही महामुद्रा, महाबन्ध और महावेध का अभ्यास कराते हैं। महावेध से प्राणतत्व का शीघ्र उर्ध्वगमन होता है, परन्तु यह बलवान शरीर वालों के लिये हितकर है, निर्बलों के लिये हानिकर है। मुद्राओं की रीति लेख वृद्धि के कारण यहाँ नहीं दी जा रही है।

प्रातः-सायं दोनों समय समान क्रिया करनी चाहिये। परन्तु थकावट हो तो रात्रि के समय कम अभ्यास करें। आसन और विपरीतकरणी मुद्रा करनी हो, तो प्राणायाम से पहले सुबह करें। सायंकाल को आसन और विपरीतकरणी का अभ्यास न करें। विपरीतकरणी रात्रि को करना हानिकर भी माना गया है।

२—सूर्यभेदी

पहले थोड़ा रेचक करके सूर्यनाड़ी (दाहिने नासापुट) से पूरक करना चाहिये। फिर कुम्भक करके चन्द्रनाड़ी (बायें नासापुट) से रेचक करना चाहिये। पूर्ववत् जालन्धरादि बन्ध इस प्राणायाम में भी लगाना आवश्यक होता है। इस प्रकार के प्राणायाम को सूर्यभेदन प्राणायाम कहते हैं। अनुलोम-विलोम में दोनों नासापुटों से पूरक और रेचक होता है, परन्तु इसमें एक ही पुट से अर्थात् दक्षिण से पूरक और वाम से रेचक होता है। यही दोनों में अन्तर है।

दक्षिण फुफ्फुस का सम्बन्ध यकृत से होने के कारण इस प्राणायाम से शरीर में पित्तवृद्धि होती है तथा उष्णता बढ़ती है, जिससे वात और कफ का प्रकोफ शान्त होता है। कपाल देश में संचित श्लेष्म, वातवहा नाड़ियों के विकार, रक्तदोष, त्वचादोष, उदर कृमि, प्रस्वेद से उत्पन्न कृमि, कुष्ठादि रोगों से उत्पन्न कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। इस प्राणायाम को गर्मी के दिनों में करना अनुकूल नहीं है तथा पित्तप्रधान प्रकृति के लोगों के लिये भी हितकर नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

३—उज्जायी

मुख को कुछ झुकाकर कण्ठ से हृदय पर्यन्त शब्द करते हुये वायु को फुप्फुस में प्रविष्ट करें। इस प्रकार दोनों नासापुट से अल्प परिमाण में वायु को खींचें। फिर पूरक करने के बाद ४-५ सेकण्ड कुम्भक करके इड़ा नाड़ी से रेचक करें। इस प्राणायाम में पूरक, कुम्भक और रेचक तीनों स्वल्प परिमाण में ही किये जाते हैं। इसमें जालान्धरादि बन्धों का लगाना उतना आवश्यक नहीं होता। बैठे, चलते, खड़े हुये या सोकर (शवासन में) इस प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। जब शारीरिक विकार के कारण दूसरे प्राणायाम न हो सकें या समय अनुकूल न हो तो एक घण्टे के लगभग उज्जायी प्राणायाम करना चाहिये।

इस प्राणायाम से कफ प्रकोप, उदर रोग, जलोदर, शोथ, मन्दाग्नि, अजीर्ण, माँस मेदादि धातुओं के विकार और मलावरोधजनित समस्त रोग दूर हो जाते हैं तथा हानि प्रदीप्त होती है।

४—सीत्कारी

दाँतों के बीच जिह्वा को बाहर ओष्ठ तक निकालकर ओष्ठों को फुलाकर मुख से सीत्कार करते हुये वायु का आकर्षण करना सीत्कारी प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम में वायु जिह्वा के सहारे भीतर प्रवेश करती है। इसमें ४-५ सेकण्ड कुम्भक करके दोनों नासापुटों से शनैः-शनैः रेचक करना चाहिये। इसमें भी बन्धों का लगाना आवश्यक नहीं होता। परन्तु यदि अधिक देर तक कुम्भक करना हो तो बन्ध का लगाना आवश्यक हो जाता है।

इस प्राणायाम से यकृत में पित्त के उत्पन्न करने की क्रिया तक हो जाती है। इससे क्षुधा, तृषा, निद्रा और आलास्यादि का त्रास क्रम हो जाता है। पित्त प्रकोप शमन होता है, शरीर तेजस्वी बनता है। पूरक के वायु से प्राणतत्व को बल मिलता है, अतः शरीर में निर्बलता नहीं आती।

५—शीतली

जिह्वा को ओष्ठ से एक अंगुल बाहर निकालकर इस प्रकार पक्षी की चोंच के समान आकृति बनाकर बाहर से वायु का आकर्षण करें। फिर कुछ कुम्भक करके दोनों नासापुटों से धीरे-धीरे रेचक करें। यह शीतली प्राणायाम कहलाता है। इससे शुल्म, प्लीहा, उदर रोग, अतिसार, पेचिश, पित्तवृद्धि, दाह, अम्लपित्त, रक्त पित्त, क्षुधा, तृषा, उन्माद आदि रोग शमन होते हैं। प्रातः-सायं आधे घंटे तक इस प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। शीतकाल में और कफ प्रकृति के मनुष्य के लिये यह प्राणायाम हितकर नहीं है।

६—भस्त्रा

पद्मासन से बैठकर बायें नासापुट से प्राणवायु का वेग से पूरक करे और बिना कुम्भक किये ही आवाज करते हुये दक्षिण नासापुट से रेचक करे। लोहार की भाथी के समान वेगपूर्वक इस विधि से आठ बार पूरक रेचक करने के बाद नवीं बार पूरक करके कुम्भक करे और दृढ़ जालन्धरबन्ध लगावे। फिर दक्षिण नासापुट से शनैः-शनैः रेचक करे। रेचक करने से पहले ही जालन्धरबन्ध खोल दें और उड्डीयनबन्ध लगा ले। पश्चात् तीन सेकण्ड बाह्य कुम्भक करके उपर्युक्त विधि से ८ बार वामपुट से रेचक करे। फिर नवीं बार दक्षिण पुट से पूरक करके कुम्भक करें। तत्पश्चात् नियमानुसार रेचक करे। ये दो प्राणायाम हुये। इस प्रकार सव्यापसव्य १२ प्राणायाम करने चाहिये।

इस प्राणायाम से कुम्भक बहुत बढ़ जाता है, परन्तु यह प्राणायाम अधिक नहीं करना चाहिये क्योंकि अधिक करने से फुप्फुस कोष पर आघात होने का पूरा भय है। इस प्राणायाम से त्रिधातु विकृति से उत्पन्न सब रोग नष्ट हो जाते हैं। अग्नि प्रदीप्त होती है। सुषुम्नास्थित सब मल नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि तीनों का भेदन होकर सुषुम्ना में से प्राणतत्व विहंगम गति से उर्ध्वगमन करने लगता है।

(७) भ्रामरी

सिद्धासन लगाकर नेत्र बन्दकर लें और भ्रू में लक्ष्य रखे तथा जालन्धर बन्ध लगा लें। इस प्राणायाम में जालन्धर बन्ध बराबर लगा रहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। फिर नासापुट से भ्रमर के नाद के समान स्वर सहित पूरक करें। पश्चात् ३ सेकण्ड कुम्भक करके शनैः-शनैः आवाज सहित रेचक करें। इस प्रकार १४४ प्राणायाम करे। सुनते हैं भ्रामरी और मूर्छा कुम्भक का बौद्ध सम्प्रदाय में अधिक प्रचार है। इस कुम्भक में पाँच अवस्थायें हैं। प्रथमावस्था में कुछ दिन पूरक करके पश्चात् कुम्भक के संमय महामुद्रा की जाती है। नियमपूर्वक तीन सेकण्ड का कुम्भक होने पर पुनः सिद्धासन लगाकर रेचक किया जाता है। पहले बायें पैर से, पीछे दाहिने पैर से, पश्चात् दोनों पैर फैलाकर महामुद्रा करके इस प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। दूसरे प्राणायामों के साथ की जाने वाली महामुद्रा में और भ्रामरी के साथ की इस महामुद्रा में कुछ अन्तर है। इस महामुद्रा को कोई-कोई साधक ४८ से ७२ तक करते हैं। इसलिये एक वर्ष के पश्चात् जानु से ६ इंच आगे और गुल्फ से १० इंच ऊपर के भाग में कपाल लग जाता है।

पहली अवस्था की सिद्धि होने के बाद दूसरी अवस्था में खेचरी करके ६ सेकण्ड का कुम्भक होता है और एक समय विधि के अनुसार मस्तिष्क को बायें से दाहिनी तरफ घुमाकर जालन्धर बन्ध लगाकर रेचक किया जाता है। इस रीति से १४४ कुम्भक में १४४ बार मस्तिष्क के घुमाने की क्रिया करनी पड़ती है। इस प्रकार तीसरी, चौथी और पाँचवीं अवस्था में कुम्भक बढ़ाया जाता है तथा मस्तिष्क भी अधिक समय तक घुमाया जाता है। मस्तिष्क घुमाने की क्रिया से मस्तिष्क में प्राण तत्व चारों ओर चक्कर लगाता हुआ प्रतीत होता है। इस प्राणायाम की क्रिया के बाद नाद बहुत जोर से उठता है; इसलिये मन की एकाग्रता शीघ्र होती है।

मूर्च्छा

भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास पूर्ण होने पर सिद्धासन में बैठकर दोनों नासापुट से पूरक करके जालन्धरबन्ध लगाना चाहिये। पश्चात् दोनों कान, नेत्र, नासिका और मुँह पर क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठका को रखकर ६ सेकण्ड कुम्भक करे। पश्चात् नासिका के छिद्र पर से अनामिका को शिथिल कर जालन्धरबन्ध रखते हुये ही शनैः-शनैः दोनों नासापुटों से रेचक करे। दूसरे प्राणायामों के साथ मूर्च्छा प्राणायाम करने से कुम्भक अधिक होता है। परन्तु रेचक दोनों नासापुटों से किया जाता है। अधिक कुम्भक के लिये उड्डीयानबन्ध लगाया जाता है तथा रेचक के समय जालन्धरबन्ध खोल दिया जाता है।

इस प्राणायाम में रेचक के समय बन्द नेत्र से भूस्थान में प्राण तत्व का श्वेत, नीला, काला और लाल प्रकाश देखने में आता है। इस प्राणायाम को एक बार कर लेने पर भ्रामरी वाले सिद्धासन से बैठकर, तथा अन्य प्राणायाम वाले शवासन में लेटकर भी नादानुसन्धान करते हैं।

(७) सहज योग

देवस्येतिपदं तस्य दिव्ययोगस्य बोधकम्।
साधकं मानवं योगो दिव्यतां प्रददाति यः।।

(देवस्येति पदं) 'देवस्य' यह पद (तस्य दिव्य योगस्य) उस दिव्य योग का (बोधकं) बोधक है,. (यः) जो (योगः) योग (साधकं) साधना करने वाले (मानवं) मनुष्य को (दिव्यतां) दिव्यता (प्रददाति) प्रदान करता है।

गायत्री मन्त्र का देवस्य शब्द मनुष्य की भावनाओं को दिव्य बनाने के लिये आदेश करता है। मनुष्य चाहे साधारण-से-साधारण प्रकार का जीवन बितावे, दुनियादारी के लोगों की तरह काम-काज करता रहे, पर यदि उसकी भावनायें दिव्य हों तो उसके साधारण काम भी यज्ञ रूप हो जाते हैं। भावनाओं के इस दिव्यीकरण को गीता में कर्म योग के नाम से पुकारा गया है। साधना मार्ग में इसे दिव्य योग कहते हैं। महात्मा कबीर ने इसका नाम सहज योग रखा है। सहज योग और दिव्य योग में नाम का ही अन्तर है तथ्य दोनों का एक है। सहज योग की महिमा वर्णन करते हुये महात्मा कबीर ने कहा है कि—

तन को जोगी जस करें मन को करे न कोय
सब सिद्धि 'सहजै' पाइये जो मन योगी होय।।

इस दोहे में उन्होंने सहज योग से सब सिद्धियाँ पाने की ओर संकेत किया है। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहज योग क्या है ? इसका कुछ परिचय भी इसी पद में मिल जाता है। 'मन को योगी' बना लेना ही सहज योग है। इस योग में तन को योगी बनाने, योगियों की सी वेष-भूषा धारण करने के सम्बन्ध में उपेक्षा की गई है और इस बात पर जोर दिया गया है कि मन को योगी बना लिया जाये। तन से कबीर की भाँति जुलाहे का काम करते हुये, रैदास की भाँति चर्मकार का काम करते हुये, तुलाधार की भाँति व्यापार करते हुये, जनक की भाँति राजदरबार करते हुये भी मनुष्य मन का योगी बना सकता है। साधारण वेशभूषा, पेशा एवं आहार-विहार रखता हुआ भी मनुष्य सहज योग की साधना कर सकता है।

यह साधना कुछ कठिन नहीं है। हर स्थिति के हर मनुष्य के लिये सहज है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये इसको 'सहज योग' कहा गया है। अस्वाभाविक, अनावश्यक, असत्य, अहितकर, अनुचित बातें हमेशा कठिन, दुष्कर और अतीव श्रम साध्य होती हैं किन्तु जो प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक सत्य एवं लाभदायक होती हैं व सहज एवं सुलभ होती हैं। जीवन की अत्यन्त आवश्यकताओं में सबसे अधिक हवा, फिर पानी, फिर अन्न, फिर वस्त्र आवश्यक हैं। यह सब चीजें आवश्यकता के अनुपात से ही समुचित मात्रा में उपलब्ध होती हैं। हवा जिसके बिना कुछ मिनट भी जीवित नहीं रह सकते हर जगह प्रचुर मात्रा में भरी हुई है, इतनी सहज रीति से प्राप्त होती है कि हमें पता भी नहीं चलता और लाखों टन हवा हर रोज शरीर में पहुँचती और निकलती रहती है। इससे कुछ छोटा दर्जा पानी का है, पानी के बिना एक-दो दिन जीवित रह सकता है, अतएव हवा की अपेक्षा पानी कुछ कठिन है। यद्यपि वह मोल नहीं बिकता तो भी उसे प्राप्त करने के लिये कुएँ, तालाब आदि पर जाना पड़ता है और लाने में कुछ कष्ट भी उठाना पड़ता है। अन्न का तीसरा नम्बर है, बिना अन्न के आदमी दस-बीस दिन जी सकता है, इसलिये वह कुछ अधिक श्रम करने पर मिलता है तो भी संसार में उत्पन्न होने वाले अन्य सभी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक उत्पन्न होता है और हर जगह मिल भी जाता है। वस्त्र का चौथा नम्बर है इसलिये वह अन्न की अपेक्षा अधिक महँगा है। इसी प्रकार जो चीज जीवन के लिये जितनी आवश्यक और सत्य है, उसकी प्राप्ति उतनी ही सहज है। जो हानिकर है, वह दुर्लभ है। गाय, भैंस, बकरी आदि दुधारू और उपयोगी पशु झुण्ड-के-झुण्ड मौजूद हैं किन्तु सिंह, सर्प आदि दुष्ट हिंसक जीव बहुत ही थोड़ी मात्रा में हैं और सुदूर गुप्त स्थानों में छिपे पड़े रहते हैं, उनके दर्शन हर किसी को नहीं होते, विरले शिकारी या सँपेरे ही उन्हें ढूँढ़ पाते हैं। चीनी, नमक, दूध, फल, शाक आदि भोज्य पदार्थ सुलभ हैं परन्तु संखिया, सिंदरफ, हलाहल, अफीम, ताड़ी आदि हानिकारक चीजें दुर्लभ हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिये बड़ा खतरा और कष्ट उठाना पड़ता है।

ईमानदारी सहज है, परन्तु चोरी करने के लिये विशेष साहस चाहिये। सत्य बोलने में कुछ झंझट नहीं, परन्तु असत्य बोलने वाले को बड़ी सावधानी से बन्धक बनना पड़ता है। सदाचार में कोई चतुराई नहीं चाहिये, हाँ व्यभिचार करने में सफलता प्राप्त करने के लिये असाधारण कुशलता की आवश्यकता है। लाभदायक सादा भोजन आसानी से बन जाता है पर गरिष्ठ, कुपाच्य पकवानों को बनाने के लिये अधिक समय पैसा और चतुरता की आवश्यकता होती है। धूप, वर्षा, शीत के सुखद परिणाम हमें सदा मिला करते हैं पर तूफान, भूकम्प, युद्ध जैसे बवंडर कभी-कभी ही आते हैं। यह एक ठोस सत्य है, उचित, आवश्यक और लाभदायक तत्वों को परमात्मा ने सहज बनाया है और अनुपयोगी तत्वों को कठिन बना दिया है, उनकी प्राप्ति दुर्लभ कर दी है।

जो योग जीवन के लिये आवश्यक है, उचित है, हितकर है वह अवश्य ही उपरोक्त नियम के अनुसार सहज होना चाहिये। जिसमें अनावश्यक पेचीदगी, गूढ़ता, रहस्य एवं क्रान्ति हो उस योग को भी अनावश्यक एवं ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध समझना चाहिये। तत्वदर्शी कबीर ने इस महासत्य का तत्व सर्वसाधारण के सम्मुख प्रकट कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि योग सहज है ! इस सहज योग के साधन से साधक सम्पूर्ण सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'मन को योगी बनाना' यही सहज योग की साधना है। योग का अर्थ है—जोड़ना, मिलाना। मन को महामन में, प्राण को महाप्राण में, आत्मा को परमात्मा में व्यष्टि को समष्टि में, स्वास्थ्य, को परमार्थ में मिलाना—जोड़ना यही योग की प्रक्रिया है। अपनी सत्‌चित्त आनन्द स्वरूप को पहचानकर जब आत्मा अपनी वास्तविक स्थिति को समझ लेता है और आध्यात्मिक भूमिका में जागृत होता है तो उसके जीवन का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। जो अपने आपको अविनाशी आत्मभाव में जाग पड़ता है, उसे अपना शरीर एक वस्त्र के समान प्रतीत होता है। जैसे हम सब कपड़े के हानि-लाभ की अपेक्षा शरीर के हानि-लाभ को अधिक महत्त्व देते हैं, उसी प्रकार आत्म-भाव में जगा हुआ मनुष्य शारीरिक हानि-लाभ, सुख-दुख, उन्नति-अवनति, सम्पत्ति विपत्ति की परवाह न करता हुआ आत्मा के हित चिन्तन में तल्लीन रहता है।

मन को हृदय से, बुद्धि को अन्तःकरण से, योग कर देने—मिला देने से मनुष्य की अन्तर्दृष्टि बदल जाती है, उसका दृष्टिकोण दूसरा हो जाता है। अयोगी मायाबद्ध, भव कूप में पड़े हुये मनुष्य शरीर के लाभ-हानि की दृष्टि से, हर बात को सोचते और कार्य करते हैं किन्तु योग बुद्धि वाला व्यक्ति आत्मा के हित अहित का ध्यान रखता हुआ अपने सम्पूर्ण विचार और कार्यों को करता है। शरीरवादी लोग इन्द्रिय भोगों की तृप्ति में सुख अनुभव करते हैं, उन्हें स्वादिष्ट भोजन, मनोरंजक दृश्य, नृत्य, गीत, वाद्य, काम, क्रीड़ा, वस्त्र-आभूषण, महल, मोटर, सेवक धन, ऐश्वर्य आदि की आकांक्षा रहती है, इन वस्तुओं की वृद्धि में सुख और कमी में दुःख अनुभव होता है। इनको प्राप्त करने में वह उचित-अनुचित के विवेक को भी भूल जाता है और जैसे भी यह चीजें मिल सकें प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। पर योगी का दृष्टिकोण दूसरा होता है, वह इन्द्रिय भोगों को भोगने में या भौतिक सम्पदायें इकट्ठी कर लेने में सुख नहीं मानता क्योंकि उसने अपना वास्तविक स्वरूप शरीर नहीं माना है। "मैं अविनाशी आत्मा हूँ" ऐसा विश्वास करने वाला योगी अपने आत्मा का हित-अहित जिसमें देखता है उसमें ही सुख-दुःख अनुभव करता है। शरीर रजोगुण में सुख पाता है आत्मा को सतोगुण में आनन्द है। आत्म-भावी व्यक्ति कर्मों में सतोगुण की प्रधानता रहती है। वह सद्‌गुण और सत्कर्म अपनाता है। प्रेम, दया, सहानुभूति, उदारता, नम्रता एवं मधुरता से उसकी हर एक बात सनी हुई होती है। सेवा उसकी कार्य-प्रणाली होती है। उसका दृष्टिकोण सेवा से परिपूर्ण रहता है। हर काम को वह सेवा वृत्ति से, कर्त्तव्य बुद्धि से, यज्ञ भावना से करता है। भावना के अनुसार ही हर काम का मूल्य निर्धारित होता है। यज्ञ भावना से जो काम किये जाते हैं, उनका रूप बाह्य दृष्टि से कैसा ही क्यों न हो पर उनका फल यज्ञ रूप होता है। सेवा भावना से किया हुआ छोटा कार्य भी महान् पुण्य फल को देने वाला होता है। इसी प्रकार दुर्भावना से किये हुये उत्तम दीखने वाले काम भी पाप रूप हो जाते हैं।

'सहज योग' सचमुच बड़ा सहज है। इसमें व्रत, उपवास, नेति, धोति, वस्ति, न्योली, कपाल भाति, आसन, प्राणायाम आदि किसी प्रकार की खटखट नहीं है। केवल अपने मन को हृदय से जोड़ देना है। कबीर साहब ने एक स्थान पर लिखा है कि जीव से परमात्मा चौबीस अंगुल दूर है। इस दूरी को पार करते ही, इस यात्रा को पूरी करते ही स्वर्ग के द्वार में पदार्पण हो जाता है। हृदय की—अन्तःकरण की जैसी पुकार हो, आज्ञा हो उसी के अनुसार मन एवं बुद्धि आचरण करे हृदय और मन की इच्छायें पृथक्-पृथक् न रहकर एक हो जायें। मनुष्य जो भी कार्य करे उसमें अन्तःकरण का, आत्मा का स्वार्थ हित, पसन्दगी का चुनाव प्रधान हो तो वह कार्य यज्ञमय होगा, ऐसे यज्ञमय कार्यों की हर एक क्रिया योग साधना के समान है। उसे करते हुये मनुष्य अभीष्ट सिद्धि को ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

इस सहज योग की प्रधान प्रक्रिया 'मन को योगी' करने की है। इसकी साधना विधि यह है कि अपने आप में जागरूक रहने का हर घड़ी प्रयत्न करना चाहिये, "मैं अविनाशी आत्मा हूँ, शरीर मेरा वस्त्र मात्र है, मैं जो कुछ करूँगा वह आत्मा की दृष्टि से करूँगा" इस भावना मन्त्र को सदा मन में दुहराते रहना चाहिये और बार-बार तीक्ष्ण दृष्टि से यह निरीक्षण करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहना चाहिये कि हमारे विचार और कार्य नियत भावना के अनुकूल हैं या नहीं। यदि उसमें त्रुटि या प्रतिकूलता प्रतीत हो तो सावधान होकर तुरन्त उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार नियमपूर्वक निरन्तर आत्म-निरीक्षण करते रहने और सद्भाव, सद्गुण एवं सद्कार्यों को अधिकाधिक मात्रा में धारण करते रहने से धीरे-धीरे कुछ ही समय में यह वृत्ति स्थायी होकर आदत में सम्मिलित हो जाती है। तब मनुष्य को अपना सहज योग ऐसा ही साधारण मालूम पड़ता है जैसा कि दुनियादार आदमी को अपने दैनिक कार्य साधारण मालूम पड़ते हैं।

सच्चे हृदय से मन को जोगी करने वाला, बुद्धि को आत्मा से जोड़ देने वाला सच्चा सहज योगी महात्मा एवं तपस्वी है। वही प्रभु को प्यारा लगता है और प्रभु को प्राप्त करता है। भले ही उसका वेश और पेशा साधारण मनुष्यों का सा बना रहे। महात्मा कबीर कहते हैं—

साँई सों साँचा रहो, साँई साँच सुहाय।
भावे लम्बे केश रखि, भावै मूँड़ मुड़ाय।।

स्थिति प्रज्ञा अवस्था

"सादा जीवन-उच्च विचार" का मन्त्र सहज योग की जड़ है। कमलपत्रवत् निर्लिप्त, अनासक्त, स्थितिप्रज्ञ, आत्मस्थित की अवस्था भी यही है। अपना दृष्टिकोण भौतिक न रखकर आध्यात्मिक बना लेना और हर बात के ऊपर आध्यात्मिक दृष्टि से सोचना, विचारना और तदनुकूल कार्य करना यही सहज योगी की स्थिति है। सदैव जागरूक रहना, अपने स्वभाव, विचार, इच्छा, आकांक्षा एवं कार्य-प्रणाली को बारीक दृष्टि से देखते रहना कि नियत दृष्टिकोण के विरुद्ध कुछ गड़बड़ी तो नहीं हो रही है। यही सहज योग का अनुष्ठान है। अपने भीतरी शत्रुओं से, कुविचारों से, दुर्भावनाओं से, कुवासनाओं से निरन्तर हर घड़ी लड़ना और सद्भाव, सद्विचार, सत्कर्मों का आश्रय लेना यही सहज योगी की साधना होती है।

"सहज योग" इस दृष्टि से सहज है कि उसमें उल्टे लटकने या धूनी रमाने या घर-बार छोड़कर विचित्र वेष बनाने या भिक्षाटन करने का झंझट नहीं है। साधारण व्यक्ति की तरह व्यवसाय, रहन-सहन एवं आहार-विहार रखता हुआ हर कोई इसे हर अवस्था में साध सकता है। पर उस दृष्टि से कठिन है कि हर घड़ी जागरूक रहना पड़ता है। दिन में आधा या एक घंटा कोई अभ्यास कर लेने मात्र से इसमें सफलता नहीं मिलती; वरन् थोड़ी-थोड़ी देर बाद आत्म-स्थित होकर यह देखना पड़ता है कि कार्य-प्रणाली एवं विचारधारा उचित दिशा में चल रही है या नहीं। जब सेनाओं में युद्ध होता है तो सेनापति के सहायक अफसर पर्यवेक्षक-किसी ऊँचे स्थान पर बैठे हुये दूरबीन लगाकर यह देखते रहते हैं कि हमारी सेना की और दुश्मन की सेना की, प्रगति किस प्रकार हो रही है ? यह पर्यवेक्षक सेनापति ही सारी हलचलों की सूचना देते रहते हैं, तदनुसार सेनापति अपनी सेना को आगे बढ़ाने तथा दुश्मन को परास्त करने के यथोचित प्रोग्राम बनाता रहता है। इसी प्रकार सहज योग के साधक की बुद्धि, सूक्ष्मदर्शी पर्यवेक्षक की भाँति पूरी जागरूकता और सावधानी के साथ यह देखती रहती है कि अपने अन्दर सात्विकी और तामसी वृत्तियों के सेनाओं का कार्य किस प्रकार हो रहा है ? इसकी सूचना वह अन्तःकरण रूपी सेनापति को देती है और सेनापति तदनुसार इस साधना समर में विजय प्राप्त करने की स्थिति को देखकर आयोजन करता रहता है और अन्त में अभीष्ट सफलता प्राप्त कर लेता है।

यह कार्य उतावली का, जल्दबाजी का या 'हथेली पर सरसों जमा लेने' का नहीं है। कर्म का परिपाक होने में समय लगता है। बोया हुआ बीज समयानुसार उगता और फल देता है। अवे में लगाये हुये घड़े उचित अग्नि पाकर नियति अवधि पर पकते हैं। विद्यार्थी बहुत समय तक शिक्षाभ्यास करने के उपरान्त स्नातक बनते हैं, बहुत समय तक कसरत करने के उपरान्त ही पहलवान का पद मिलता है। कार्य आरम्भ होने से लेकर उसके पूरा होने तक अनेकों बार नाना प्रकार के विघ्न आते हैं। अनेकों बार दुर्दिन देखना पड़ता है और निराशाजनक स्थिति का मुँह देखना पड़ता है, परन्तु धैर्यपूर्वक सतत् प्रयत्न करते रहने से समयानुसार आवश्यक सफलता प्राप्त हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरम्भ में ऐसा होता है कि 'सहज योग' का साधक अपने विचार और कार्यों को सात्विक 'उच्च' पवित्र एवं परमार्थ पूर्ण बनाने का प्रयत्न करता है पर कई झोंके ऐसे आते हैं कि उसका किया कराया सब गुड़-गोबर हो जाता है। कभी-कभी अपना चिर संचित दुःस्वभाव ही उबल पड़ता है और लालच के कारण नियत कार्यक्रम से स्खलित हो जाता है कोई प्रलोभन या अवसर आने पर सोचता है, जरा-सा एक बार थोड़ा रसास्वादन कर लें, फिर आगे न करेंगे। सामने आये हुये प्रलोभन को देखकर, परसी हुई थाली आगे रखी देखकर मुँह में पानी भर आता है। चिर अभ्यस्त स्वभाव का बवण्डर एक बार पूरे प्रबल वेग से उठ खड़ा होता है उस तूफान में साधना की विधि व्यवस्थायें शिथिल पड़ जाती हैं और साधक पथभ्रष्ट हो जाता है। लोभ के अतिरिक्त क्रोध से भी ऐसे ही तूफान उठ खड़े होते हैं। साधक सोचता है सबसे विनम्र व्यवहार करेंगे, पर कभी कोई व्यक्ति बहुत ही दुष्टतापूर्ण आचरण करके क्रोध के आवेश में लड़ पड़ने या शठ के प्रति शठता करने को उतारू होता है। इन लोभ या क्रोध के आवेगों में उतर जाने के पश्चात् साधक सोचता है मुझ से भूल हुई। वह दुःखी होता है, अपनी निर्बलता का अनुभव करता है और सोचता है कि मेरे जैसे दुर्बल मन वाले का इस साधना में सफल होना कठिन है। इस निराशाजनक स्थिति में खिन्न होकर वह अपने प्रयत्नों को छोड़ बैठता है।

कठिनाई या असफलताओं के सम्बन्ध में हर साधक को भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि उनका पूर्ण निवारण साधना आरम्भ करते ही नहीं हो सकता। जन्म-जन्मान्तरों की आदत को एक दिन में दूर नहीं किया जा सकता। वह क्रमशः और धीरे-धीरे ठीक होती हैं। साइकिल की सवारी करने वाले जानते हैं कि चढ़ना सीखते समय कई बार उन्हें पटक खानी पड़ती है। तैरने वाले जानते हैं कि पानी में पैर देते ही वे तैरना नहीं सीखने लगे थे, वरन् अनेक गोते खाने के उपरान्त वे तैराक बने हैं. विद्यार्थियों को अपनी भूल के कारण 'प्रतिदिन अध्यापक की लताड़ सहनी पड़ती है। पर क्या कोई विद्यार्थी यह सोचकर पढ़ना छोड़ देता है कि मुझसे नित्य भूलें होती हैं, नित्य अध्यापक के सम्मुख दोषी ठहरता हूँ। भूलें करते हुये भी विद्यार्थी निरन्तर अपना अध्ययन जारी रखता है। भूलों को भुला देता है और सफलताओं को स्मरण रखता है। परीक्षा में छात्र को जब ८० प्रतिशत नम्बर प्राप्त होते हैं तो वह फूला नहीं समाता, सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। इस छात्र ने यद्यपि भूल भी की है, २० प्रतिशत प्रश्न उसने बिल्कुल गलत किये हैं, जितने सवाल उसने गलत किये हैं उतने अंश में वह भोंदू, मूर्ख, बेवकूफ, लापरवाह, नालायक, दोषी या अपराधी है। पर इन दोषों की मात्रा के होते हुये भी न तो विद्यार्थी स्वयं निराश होता है और न कोई उसकी निन्दा करता है। भूल की अपेक्षा सावधानी का उसने अधिक परिचय दिया। असफलता से सफलता का पलड़ा भारी रहा, इतना होना, ऐसा होना सर्वथा प्रशंसनीय है। इसलिये आधे से अधिक नम्बर लाने वाला, पास समझा जाता है, उसकी पीठ ठोकी जाती है और प्रशंसा की जाती है।

साधकों को इन विद्यार्थियों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जब छोटे बालक असफलताओं से नहीं डरते; उनको देखकर पस्त-हिम्मत, परास्त, निराश, भयभीत, अस्थिर नहीं होते वरन् इन त्रुटियों की परवाह न करके अपना कार्यक्रम बराबर जारी रखते हैं, तब क्या साधक ऐसा नहीं कर सकते ? हर भूल से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और हर बार अधिक सावधानी से कदम उठाना चाहिये। जब गिर पड़ो तो उठ बैठो, धूल झाड़कर खड़े हो जाओ फिर अपना कार्य आरम्भ कर दो। गिरना लज्जा की बात नहीं है, हर चढ़ने वाले को गिरना पड़ता है। लज्जा की बात यह है कि गिरने से डरकर पुनः प्रयत्न न किया जाये, पुरुषार्थ को छोड़ बैठा जाये। यह सम्भव है कि आध्यात्म पथ के यात्री को नित्य कुविचारों का सामना करना पड़े और उसके कार्यों में दोष रह जाय। शत्रु संस्कार घड़ी-घड़ी पर आक्रमण करते हैं, उसे एक चुनौती समझकर उनको जड़-मूल से उखाड़ डालने का स्थिर संकल्प करना चाहिये। संकल्प की स्थिरता, गम्भीरता, सच्चाई जितनी मजबूत होगी उतनी ही सफलता प्राप्त होगी।" (१) इन समस्त कुसंस्कारों को जड़ मूल से नाश करके छोड़ूँगा।" "(२) सात्विक की बुद्धि करते-करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी पूर्णता तक जा पहुंचूँगा।" यह दो निश्चय, अडिग, अटूट होने चाहिये। इन दोनों लक्षों में पूरी आस्था, निष्ठा, श्रद्धा, दृढ़ता और सत्यता होनी चाहिये। इस निष्ठा को यदि शिथिल न होने दिया जाय तो नित्य-प्रति की भूलों को सुधारता हुआ, नित्य प्रति की असफलताओं को परास्त करता हुआ साधक अपने अभीष्ट ध्येय तक पहुँच कर रहेगा। उसे एक दिन पूर्णता, सिद्धावस्था प्राप्त होकर ही रहेगी।

जीवन का आदि से अन्त तक पवित्रता में ओत-प्रोत करने का दृढ़ निश्चय अन्तरात्मा में होना चाहिये। "मैं सत् हूँ जीवन को असत्य से छुड़ाकर सत्य से परिपूर्ण बनाऊँगा। मैं चित् हूँ, जीवन को आलस्य और प्रमाद से बचाकर चैतन्य, जागरूक क्रियाशील बनाऊँगा। मैं आनन्द हूँ, जीवन को दुःख क्लेश-पीड़ाओं से हटाकर निर्भयता, निश्चिन्तता एवं सुख-शान्ति से ओत-प्रोत करूँगा।" इस प्रकार का विश्वास अन्तःकरण में गहराई के साथ जमाना चाहिये। आत्मा को अपने आप में स्थित होने देना चाहिये। राजा तभी तक राजा है जब तक कि वह अपने राज्य सिंहासन पर है, जब वह सिंहासन च्युत हो गया तो उसका सारा गौरव नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा जब अपने आत्मभाव में स्थित है, तब मनुष्य, सन्त, महात्मा, महापुरुष, नेता, गुरु, पथ-प्रदर्शक, जीवन मुक्त, योगी, अवतार, ऋषि, तत्वदर्शी, सिद्ध और महान् है। जब वह इस स्थान से गिरकर शरीर भाव में स्थित हो जाता है, अपने को शरीर समझता हुआ, शरीर भाव से कार्य करता है, तब वह कुटिल, खल, कामी, नीच, मायाबद्ध, भव-पीड़ित, स्वार्थी, पापी, घृणित, तुच्छ है; इस स्थिति में थोड़ी और बढ़ोतरी हो जाती है तो जीव की स्थिति और भी भयंकर हो जाती है, तब वह चाण्डाल, पिशाच, राक्षस एवं असुर हो जाता है।

सुर और असुरों में, देवता और राक्षसों में प्रकृति की एक-सी ही वृत्तियाँ काम करती हैं। सभी स्वार्थ साधना करते हैं। स्वार्थ सम्पादन सभी को अभीष्ट है। आत्मभाव में स्थिति जीव अपने को आत्मा समझता हुआ आत्म-कल्याण के लिये सात्विक विचार कार्यों द्वारा अभीष्ट सिद्धि होते देखकर शुभ कर्मों में तत्पर हो जाता है शरीर सुख की परवाह न करते हुये आत्मसुख को प्रधानता देता हुआ, त्याग, तप, दान, परमार्थ, संयम, स्वाध्याय, दया, प्रेम, विनय, उदारता, सेवा, पवित्रता आदि से परिपूर्ण कार्य-प्रणाली को अपनाता है और देवता कहलाता है। इसके विपरीत जो जीव अपने को शरीर समझता है, वह इन्द्रिय सुख, मनोरंजन और शारीरिक लालसाओं का सुख भोगने की इच्छा से भौतिक सम्पदायें एकत्रित करने का उद्योग करता है। उसकी अधिकाधिक शक्तियाँ शरीर को प्रसन्नता देने वाले भौतिक साधनों को जुटाने में लगी रहती हैं। ऐसी स्थिति में श्रम, संचय, भोग और तृष्णा ही उसके प्रधान कार्य रह जाते हैं। वह शारीरिक एवं सांसारिक सुखों की अखण्ड प्राप्ति चाहता है पर यह चाहना किसी की भी आज तक पूरी नहीं हुई। असम्भव चाहना के लिये प्रयत्न करना एक भूल है, उस भूल को ही 'भ्रम' या 'माया' कहा है। शरीर स्वार्थ की दृष्टि को ही सर्वोपारि समझने वालों को मायाबद्ध जीव कहते हैं। यह माया जब प्रबल हो उठती है, तब शारीरिक वासनाओं की अति उत्कृष्ट इच्छा से अन्धा होकर धर्म मर्यादा की परवाह न करता हुआ मनुष्य भोगों का भण्डार जमा करने पर कमर कसता है तो उसके कार्य शोषण, अपहरण, छल, दम्भ, प्रपंच, असत्य, चोरी, हिंसा, बलात्कार, व्यभिचार, अहंकार, क्रूरता, निष्ठुरता से सराबोर हो जाते हैं, यह मनुष्य नर-पिशाच कहे जाते हैं।

देवता, मायाबद्ध मनुष्य और नर-पिशाच, तीनों के अन्तःकरण में एक ही वृत्ति काम कर रही है—स्वार्थ साधना। सभी को अपने सुख की अपने कल्याण की, अपनी उन्नति की अभिलाषा है। तीनों के कार्य एक ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हो रहे हैं। भेद केवल आत्मस्थिति और शरीर स्थिति का है। जो आत्मभाव में स्थिति है उसका स्वार्थ-'परमार्थ' कहकर प्रशंसित किया जाता है। जो मायाबद्ध जीव हैं—उनका स्वार्थ—'स्वार्थ' कहकर तिरष्कृत किया जाता है। जो नर-पिशाच है। उनका स्वार्थ—'अनर्थ' है, उसके लिये घोर घृणा प्रकट की जाती है। जन समाज द्वारा विरोध एवं विनाश किया जाता है। परमार्थी परमानन्द का अनुभव करते हैं, जीव-लालसा और वासना में बेचैन रहते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिशाच चिन्ता, अशान्ति एवं नाना प्रकार की पीड़ाओं में जलते रहते हैं।

निश्चय ही आत्म-स्थिति में आनन्द है और शरीर भाव की स्थिति में दुःख है। इसलिये सच्चे सुख का, सच्चे स्वार्थ का सम्पादन करने के लिये आत्मभाव में स्थिति होने का प्रयत्न करना चाहिये, यही प्रयत्न 'सहज योग' कहा जाता है। बार-बार कठिनाई और असफलता का सामना करते हुये भी इस महान् साधना को जारी रखना चाहिये। दृढ़ निश्चयी देर या सवेर में एक दिन अभीष्ट स्थान पर पहुँच ही जाता है।

सहज समाधि

महात्मा कबीर का वचन है—

साधो ! सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप भयो जा दिन से सुरति न अनत चली।।
आंखन मूँदूँ, कानन रूँदूँ, काय कष्ट न धारूँ।
खुले नयन से हँस-हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ।।
कहूँ सोइ नाम, सुनूँ सोई सुमिरन, खाऊँ सोई पूजा।
गृह उद्यान एक सम लेखूँ भाव मिटाऊँ दूजा।।
जहाँ-२ जाऊँ सोई परिकरमा जो कछु करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत, पूजूँ और न देवा।।
शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन बासना त्यागी।
बैठत उठत कबहूँ ना बिसरै, ऐसी ताड़ी लागी।।
कहैं 'कबीर' यह उन मनि रहनी सोई प्रकट कर गाई।
दुःख सुख के एक परे परम सुख, तेहि सुख रहा समाई।।

उपरोक्त पद में सद्गुरु कबीर ने सहज समाधि की स्थिति का स्पष्टीकरण किया है। यह समाधि सहज है—सर्व सुलभ है—सर्वसाधारण की साधना शक्ति के भीतर है, इसीलिये उसे 'सहज समाधि' का नाम दिया गया है। हठ योग, राज योग, लय योग, नाद योग, बिन्दु योग आदि की साधनायें कठिन हैं, उनका अभ्यास करते हुये समाधि की स्थिति तक पहुँचना असाधारण कष्ट साध्य हैं। चिरकालीन तपश्चर्या, षटकर्मों के श्रम साध्य साधन सब किसी के लिये सुलभ नहीं हैं। अनुभवी गुरु के सम्मुख रहकर विशेष सावधानी के साथ वे क्रियायें साधनी पड़ती हैं। फिर यदि उनका साधन खंडित हो जाय तो वे संकट भी सामने आ सकते हैं, जो योग भ्रष्ट लोगों के सामने कभी भयंकर रूप से आ खड़े होते हैं। कबीर जी सहज योग को प्रधानता देते हैं। सहज योग का तात्पर्य है—सिद्धान्तमय जीवन, कर्त्तव्यपूर्ण कार्यक्रम। इन्द्रिय भोगों, पाशविक वृत्तियों एवं काम-क्रोध, लोभ, मोह की तुच्छ इच्छाओं से प्रेरित होकर आमतौर से लोग अपना कार्यक्रम निर्धारित करते हैं।

(१) सम्पत्ति संचय (२) अहंकार की पूर्ति, (३) मनोरंजन, (४) काम सेवन, (५) रुचिकर आहार-विहार, (६) ममत्व का पोषण, (७) परिग्रह की तृष्णा—इन सात इच्छाओं की आधार धुरी पर घूमने वाले जीवन 'भोगी जीवन' हैं। जो इस छोटी सीमा में ही घिरे रहते हैं, इसी घेरे में अपने विचार और कार्यों को सीमित रखते हैं वे बन्धनग्रस्त हैं, माया पाश में बँधे हुये हैं। योगी लोग इस क्षुद्र सीमा का उल्लंघन करके आगे बढ़ते हैं, वे इस बचपन से ऊँचे उठकर आध्यात्मिक यौवन की सीमा में पदार्पण करते हैं भोगमयी क्षुद्रता को योगी लोग उल्लंघन करते हैं इसलिये उन्हें जीवन मुक्त कहते हैं।

योगियों का जीवन आदर्शमय होता है अथवा यों कहना चाहिये कि जिनका जीवन सिद्धान्तमय, आदर्शमय है वे योगी हैं। जो वासना एवं तृष्णा से प्रेरणा ग्रहण नहीं करते, जिन्होंने तुच्छ स्वार्थों को महत्त्व देना छोड़ दिया है और आदर्शों की, सिद्धान्तों की स्थिरता के ऊपर खड़े होकर जीवन की गतिविधि को चलाते हैं, वे योगी हैं। योग की आधारशिला यही है। आगे के साधन, अभ्यास, स्थूल एक भिन्न-भिन्न हैं। उनकी कार्य प्रणाली पृथक्-पृथक् हैं। इस पृथकता और भिन्नता के होते हुये भी मूल तथ्य सभी साधनाओं के अन्तर्गत एक ही है।

सहज योग, असंख्य प्रकार की योग साधनाओं में से एक है। इसकी विशेषता यह है कि साधारण रीति में सांसारिक कार्य करते हुये भी साधना क्रम चलता रहता है। इसी बात को यों भी कहना चाहिये कि एक दैनिक जीवन के समान सांसारिक काम ही साधनामय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन जाते हैं सहज योगी अपने दिन भर के कार्यों को कर्त्तव्य, यज्ञ, धर्म, ईश्वरीय आज्ञा पालन की दृष्टि से करता है। भोजन करने में उसकी भावना रहती है कि प्रभु की एक पवित्र धरोहर शरीर को यथावत् रखने के लिये भोजन किया जा रहा है। खाद्य पदार्थों का चुनाव करते समय शरीर की स्वस्थता उसका ध्येय रहता है, स्वादों के चटोरेपन के बारे में वह सोचता तक नहीं। कुटुम्ब का पालन-पोषण करते समय वह परमात्मा की एक सुरम्य वाटिका के माली की भाँति सिंचन, संवर्धन का ध्यान रखता है, कुटुम्बियों को अपनी सम्पत्ति नहीं मानता। जीविकोपार्जन को, ईश्वर प्रदत्त आवश्यकताओं की पूर्ति का एक पुनीत साधन-मात्र समझता है, अमीर बनने के लिये जैसे भी बने वैसे धन-संग्रह करने की तृष्णा उसे नहीं होती। बात-चीत करना, चलना-फिरना, खाना-पीना, सोना-जागना, जीविकोपार्जन, प्रेम, द्वेष आदि सभी कार्यों को करने से पूर्व परमार्थ को, कर्त्तव्य को, धर्म को, प्रधानता देते हुये करने से वे समस्त साधारण काम-काज यज्ञ रूप हो जाते हैं।

अब हर काम के मूल में कर्त्तव्य भावना की प्रधानता रहेगी तो उन कार्यों में पुण्य प्रमुख रहेगा। सद्बुद्धि से सद्भाव से किये हुये कार्यों द्वारा अपने आपको और दूसरों को सुख शान्ति ही प्राप्त होती है। ऐसे सत्कार्य मुक्तिप्रद होते हैं, बन्धन नहीं करते। सात्विकता सद्भावना और लोक सेवा की पवित्र आकांक्षा के साथ जीवन संचालन करने पर कुछ दिन में वह नीति एवं कार्य प्रणाली पूर्णतया अभ्यस्त हो जाती है और जो चीज अभ्यास में आ जाती है वह प्रिय लगने लगती है, उसमें रस आने लगता है। बुरे स्वाद की, खर्चीली, प्रत्यक्ष हानिकारक दुष्प्राप्य, नशीली, चीजें मदिरा, अफीम, तम्बाकू आदि चीजें जब कुछ दिन के बाद प्रिय लगने लगती हैं और उन्हें बहुत कष्ट उठाते हुये भी छोड़ते नहीं बनता। जब तामसी तत्व कालान्तर के अभ्यास से इतने प्राण-प्रिय हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि सात्विक तत्व उससे अधिक प्रिय न हो सकें।

सात्विक सिद्धान्तों को जीवन का आधार बना लेने से, उन्हीं के अनुसार विचार और कार्य करने से, आत्मा को सत् तत्व में रमण करने का अभ्यास पड़ जाता है। यह अभ्यास जैसे-जैसे परिपक्व होता जाता है वैसे-वैसे सहज योग का रसास्वादन होने लगता है, उसमें आनन्द आने लगता है। जब अधिक दृढ़ता, श्रद्धा, विश्वास, उत्साह एवं साहस के साथ सत् परायणता में, सिद्धान्त संचालित जीवन में परायण रहता है तो वह उसकी स्थायी वृत्ति बन जाती है, उसे उसी में तन्मयता रहती है। एक दिव्य आवेश-सा छाया रहता है, उसकी मस्ती, प्रसन्नता, सन्तुष्टता असाधारण होती है। इस स्थिति को सहज योग की समाधि या सहज समाधि कहा जाता है।

कबीर ने उसी समाधि का उपरोक्त पद में उल्लेख किया है। वे कहते हैं—"हे साधुओं ! सहज समाधि श्रेष्ठ है। जिस दिन से गुरु की कृपा हुई है यह स्थिति प्राप्त हुई है, उस दिन से सुरति दूसरी जगह नहीं गई-चित्त डामाडोल नहीं हुआ। मैं आँख मूँदकर कान रूंध कर, कोई हठयोग की काया-कष्टदायिनी साधना नहीं करता। मैं तो आँखें खोले रहता हूँ और हँस-हँसकर परमात्मा की पुनीत कृति का सुन्दर रूप देखता हूँ। जो कहता हूँ सो नाम जप है। जो सुनता हूँ सो सुमिरन है, जो खाता-पीता हूँ सो पूजा है। घर और जंगल एक-सा देखता हूँ और द्वैत का भाव मिटाता हूँ। जहाँ-जहाँ जाता हूँ, सोई परमात्मा है और जो कुछ करता हूँ सो सेवा है। जब सोता हूँ तो वही मेरा दंडवत् है। मैं एक को छोड़कर अन्य देव को नहीं पूजता। मन मलिन वासना छोड़कर निरन्तर शब्द में, अन्तःकरण की ईश्वरीय वाणी सुनने में रत रहता हूँ। ऐसी तारी लगी है—निष्ठा जमी है कि उठते-बैठते वह कभी नहीं बिसरती। कबीर कहते हैं कि मेरी यह उनमनि-हर्ष, शोक से रहित स्थिति है, जिसे प्रकट करके गाया है। दुःख-सुख से परे जो एक परम सुख है मैं उसमें समा रहा हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सहज समाधि उन्हें प्राप्त होती है जो 'शब्द में रत' रहते हैं। भोग एवं तृष्णा की क्षुद्र वृत्तियों का परित्याग करके जो अन्तःकरण में प्रतिक्षण ध्वनित होने वाले ईश्वरीय शब्दों को सुनते हैं—सत्य की दिशा में ही चलने की ओर दैवी संकेतों को देखते हैं—और उन्हीं को जीवन नीति बनाने वे 'शब्द रत' सहज योगी उस परम आनन्द को सहज समाधि से सुख को प्राप्त होते हैं। चूँकि उनका उद्देश्य ऊँचा रहता है; दैवी प्रेरणा पर निर्भरता रहती है इसलिये उनके समस्त कार्य पुण्य रूप, बन जाते हैं। जैसे खांड से बना हुआ खिलौने आकृति में कैसे ही क्यों न हों, होंगे मीठे ही। इसी प्रकार सद्भावना और उद्देश्य परायणता के साथ किये हुये काम बाह्य आकृति में कैसे ही क्यों न दिखाई देते हों, होंगे वे यज्ञरूप ही, पुण्यमय ही। सत्य-परायण व्यक्तियों के सम्पूर्ण कार्य छोटे-से-छोटे कार्य—यहाँ तक कि चलना, सोना, खाना, देखना तक ईश्वर आराधना बन जाते हैं।

स्वल्प प्रयास में समाधि का शाश्वत सुख उपलब्ध करने की इच्छा रखने वाले आध्यात्म मार्ग के पथिकों को चाहिये कि वे जीवन का दृष्टिकोण उच्च उद्देश्यों पर अवलम्बित करें। दैनिक कार्यक्रम का सैद्धान्तिक दृष्टि से निर्णय करें। भोग से ऊँचे उठकर योग में आस्था आरोपण करें। इस दिशा में जो जितनी प्रगति करेगा उसे उतने ही अंशों में समाधि के लोकोत्तर सुख का रसास्वादन होता चलेगा।

(८) भक्तियोग

या महिमावती भक्तिः सैव धीमहि प्रोच्यते।
अणवोऽपि तया नूनं विभुतामधियान्ति हि।।

(या) जो (महिमावती) महिमावती (भक्तिः) भक्ति है (सैव) वह ही (धीमहि) धीमहि (प्रोच्यते) कहलाती है। (तथा) उससे (अणवोऽपि) अणु भी (नूनं) निश्चय से (विभुतां) विभुत्व को (अधियान्ति) प्राप्त होते हैं।

गायत्री का 'यः' शब्द उस महिमामयी भक्ति साधना की ओर इंगित करता है, जो धीमहि ध्यान करने योग्य कही जाती है। भक्ति की महिमा अपार है। सच्चे ईश्वर भक्त के लिये इस संसार में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती, जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना है और उस ईश्वर प्राप्ति का उपाय है, भक्ति। इसलिये गायत्री के गर्भ में सन्निहित योगों में भक्तियोग का भी स्थान है।

'भक्ति' का अर्थ है, प्रेम। ईश्वर से प्रेम करना सच्ची भक्ति है। भजन भक्ति का प्रधान अंग है। भजन करने से भक्ति तत्व प्राप्त हो जाता है इतना तो अनेकों व्यक्ति जानते हैं पर यह ज्ञान बहुत थोड़े लोगों को है कि भक्ति भजन का वास्तविक तात्पर्य क्या है ?, आइये भक्ति और भजन की वास्तविकता पर कुछ विचार करें।

ईश्वर भक्ति की रूपरेखा

परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, इस सत्य को जानते तो अनेक लोग हैं पर उसे मानते नहीं। व्यवहार में नहीं लाते। जो परमात्मा को सर्वव्यापी, घट-घट वासी मानेगा, उसका जीवन उसी क्षण पूर्ण पवित्र, निष्पाप और कषाय-कल्मषों से रहित हो जायेगा, गीता में भगवान ने कहा है कि जो मेरी शरण में आता है, जो मुझे अनन्य भाव से भजता है वह तुरन्त ही पापों से छूट जाता है। निस्संदेह बात ऐसी ही है। भगवान की शरण में जाने वाला, उसकी सच्ची भक्ति करने वाला, उस पर पूर्ण आस्था रखने वाला, एक प्रकार से जीवन मुक्त ही हो जाता है।

ईश्वर की भक्ति और सच्चा जीवन एक ही वस्तु के दो नाम हैं। जो भगवान का भक्त है, जिसने सब कुछ छोड़कर प्रभु के चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया है, जो परमात्मा की उपासना करता है, उसे जगत्पिता की सर्व व्यापकता पर आस्था जरूर होनी चाहिये। यदि यह विश्वास दृढ़ हो जाये कि भगवान जर्रे-जर्रे में समाया हुआ है, हर जगह मौजूद है तो पाप कर्म करने का साहस ही नहीं हो सकता। ऐसा कौन-सा चोर है जो सावधान खड़ी हुई सशस्त्र पुलिस के सामने, चोरी करने का साहस करे। चोरी, व्यभिचार, ठगी, धूर्तता, दंभ, असत्य, हिंसा आदि के लिये आड़ की, पर्दे की, दुराव की जरूरत पड़ती है। जहाँ मौका होता है, इन बुरे कामों को पकड़ने वाला नहीं होता, वहीं इनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाना सम्भव है। जहाँ धूर्तता को भली प्रकार समझने वाले, देखने वाले और पकड़ने वाले लोगों की मजबूत ताकत सामने खड़ी होती है। वहाँ पाप-कर्मों का हो सकना सम्भव नहीं। इसी प्रकार जो इस बात पर सच्चे मन से विश्वास करता है कि परमात्मा सब जगह मौजूद है वह किसी भी दुष्कर्म के करने का साहस नहीं कर सकता।'

बुरा काम करने वाला पहले यह भी भली प्रकार देखता है कि मुझे देखने वाला या पकड़ने वाला तो कोई यहाँ नहीं है। जब वह भली-भाँति विश्वास कर लेता है कि उसका पाप कर्म किसी की दृष्टि या पकड़ में नहीं आ रहा है तभी वह अपने काम में हाथ डालता है। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने को परमात्मा की दृष्टि या पकड़ से बाहर मानते हैं वे ही दुष्कर्म करने को उद्यत हो सकते हैं। पाप-कर्म करने का स्पष्ट अर्थ यह है कि यह व्यक्ति ईश्वर को मानने का दंभ भले ही करता हो पर वास्तव में वह परमात्मा के अस्तित्व से इनकार करता है। उसके मन को इस बात पर भरोसा नहीं है कि परमात्मा यहाँ मौजूद है। यदि विश्वास होता तो इतने बड़े हाकिम के सामने किस प्रकार उसके कानूनों को तोड़ने का साहस करता ? जो व्यक्ति एक पुलिस के चपरासी को देखकर भय से थर-थर काँपा करते हैं, वे लोग इतने दुस्साहसी नहीं हो सकते कि परमात्मा जैसे सृष्टि के सर्वोच्च अफसर की आँखों के आगे, न करने योग्य काम करें, उसके कानून को तोड़ें, उसको क्रुद्ध बनावें, उसका अपमान करें। ऐसा दुस्साहस तो सिर्फ वही कर सकता है, जो यह समझता हो कि परमात्मा कहने-सुनने भर की चीज है। वह पोथी पत्रों में, मठो-मन्दिर में, नदी-तालाबों में या कहीं स्वर्ग-नरक में भले ही रहता होगा, पर हर जगह वह नहीं है। मैं उसकी दृष्टि और पकड़ से बाहर हूँ।

जो लोग परमात्मा की सर्व व्यापकता पर विश्वास नहीं करते, वे ही नास्तिक हैं। जो प्रकट या अप्रकट रूप से दुष्कर्म करने का साहस कर सकते हैं वे ही नास्तिक हैं। इन नास्तिकों में कुछ तो भजन-पूजा बिल्कुल नहीं करते, कुछ करते हैं। जो नहीं करते हैं वे सोचते हैं, व्यर्थ का झंझट मोल लेकर उसमें समय गँवाने से क्या फायदा ? जो पूजन-भजन करते हैं वे भीतर से तो न करने वालों के समान ही होते हैं पर व्यापार बुद्धि से रोजगार के रूप में ईश्वर की खाल ओढ़ लेते हैं। कितने ही ईश्वर के नाम के बहाने ही अपने जीविका चलाते हैं, हमारे देश में करीब ५६ लाख आदमी ऐसे हैं, जिनकी कमाई पेशा, रोजगार ईश्वर के नाम पर हैं। यदि वे यह प्रकट करें कि हम ईश्वर को नहीं मानते तो उनकी ऐश आराम देने वाली, बिना परिश्रम की कमाई हाथ से चली जायेगी। इसलिये उन्हें ईश्वर को उसी प्रकार ओढ़े रहना पड़ता है जैसे जाड़े से बचने के लिये, गर्मी देने वाले कम्बल को ओढ़े रहते हैं। जैसे ही वह जरूरत पूरी हुई वैसे ही कम्बल को एक कोने में पटक देते हैं। यह तिजारती लोग जनता के समक्ष अपनी ईश्वर भक्ति का बड़ा भारी घटाटोप बाँधते हैं क्योंकि जितना बड़ा घटाटोप बाँध सकेंगे उतनी ही अधिक कमाई होगी। तिजारती उद्देश्य पूरा होते ही अपने असली रूप में आ जाते हैं। पार्पो से खुलकर खेलते हुये एकान्त में उन्हें जरा भी झिझक नहीं होती।

एक तीसरी किस्म के नास्तिक और हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर के नाम पर रोजी नहीं चलाते बल्कि उल्टा उसके नाम पर कुछ खर्च करते हैं। ईश्वर का आडम्बर उनके द्वारा आये दिन रचा जाता रहता है। शरीर पर ईश्वर भक्ति के चिन्ह धारण किये रहते हैं, घर में ईश्वर के प्रतीक मौजूद होते हैं, ईश्वर के निमित्त कहे जाने वाले कर्मकाण्डों का आयोजन होता रहता है। ईश्वर भक्त कहलाने वालों का स्वागत-सत्कार, भेंट-पूजा होती रहती है। यह सब इसलिये होता है कि लोग उनके सम्बन्ध में अच्छे ख्याल रखें, उनका आदर करें, उन्हें धर्मात्मा समझें, उनके जीवन भर के कुकर्मों की कलई न खोलें और आज भी जो उनके दुष्कर्म चल रहे हैं, ये छिपे रहें।

चौथे प्रकार के नास्तिक और हैं वे पाप छिपाने या धन कमाने के लिये नहीं किन्तु अपने को पुजवाने के लिये, यश और श्रद्धा प्राप्त करने के लिये, ईश्वर भक्त बनते हैं। इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये कुछ त्याग और कष्ट भी उठाते हैं पर भीतर से उन्हें प्रभु की सर्वव्यापकता पर आस्था नहीं होती। कुछ लोग रिश्वत के रूप में ईश्वर भक्ति को साधते हैं, अमुक भोग-ऐश्वर्य की लालसा उन्हें उसी मार्ग पर ले जाती है जिस प्रकार आजकल घूँसखोर हाकिमों को एक मोटी रकम झुकाकर लोग मनमाना काम करवा लेते हैं और थैली खर्च करके थैला भरने में सफल हो जाते हैं। कुछ लोग तथाकथित ऋद्धि-सिद्धियों और न जाने किन-किन अप्रत्यक्ष वैभवों के मनसुबे बाँधकर उसे प्राप्त करने की फिकर में ईश्वर का दरवाजा खटखटाते रहते हैं।

इस प्रकार प्रत्यक्षतः ईश्वर भक्त दिखाई देने वालों में भी असंख्यों मनुष्य ऐसे हैं, जिनकी भीतरी, मनोभूमि परमात्मा से कोसों दूर हैं। उनका निजी जीवन, घरेलू आचरण, व्यक्तिगत व्यवहार, ऐसा नहीं होता जिससे यह प्रतीत हो कि यह ईश्वर को हाजिर-नाजिर समझकर अपने को बुराईयों से बचाते हैं। ऐसे लोगों को किस प्रकार आस्तिक कहा जाय ? जो पापों में जितना ही अधिक लिप्त है, जिसका व्यक्तिगत जीवन जितना ही दूषित है वह उतना ही बड़ा नास्तिक है। लोगों को धोखा देकर अपना स्वार्थ साधना, छल-प्रपंच, माया-दंभ, भय-अत्याचार, कपट और धूर्तता से दूसरों के अधिकारों को अपहरण कर स्वयं सम्पन्न बनना आस्तिकता का स्पष्ट प्रमाण है। जो पाप करने का दुस्साहस करता है वह आस्तिक नहीं हो सकता, भले ही वह आस्तिकता का कितना ही बड़ा प्रदर्शन क्यों न करता हो।

ईश्वर भक्ति का जितना ही अंश जिसमें होगा वह उतने ही दृढ़ विश्वास के साथ ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास करेगा, सबमें प्रभु को समाया हुआ देखेगा। आस्तिकता का दृष्टिकोण बनते ही मनुष्य भीतर और बाहर से निष्पाप होने लगता है। अपने प्रियतम को, घट-घट में बैठाकर वह सबसे नम्रता का, मधुरता का, स्नेह का, आदर का, सेवा का, सरलता, शुद्धता और निष्कपटता से भरा हुआ व्यवहार करता है। भक्त अपने भगवान् के लिये व्रत, उपवास, तप, तीर्थ-यात्रा आदि द्वारा स्वयं कष्ट उठाता है और अपने प्राणवल्लभ के लिये नैवेद्य, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, भोग, प्रसाद आदि कुछ न कुछ अर्पित करता ही करता है। "स्वयं कष्ट सहकर भगवान को कुछ समर्पण करना" पूजा की सम्पूर्ण विधि व्यवस्थाओं की यही तथ्य है। भगवान को घट-घट वासी मानने वाले भक्त अपनी पूजा-विधि को इसी आधार पर अपने व्यावहारिक जीवन में उतारते हैं। वे अपने स्वार्थों की उतनी परवाह नहीं करते, खुद कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो उठाते हैं पर जनता जनार्दन को, नरनारायण को अधिक सुखी बनाने में वे दत्त रहते हैं। लोक सेवा का व्रत लेकर वे घट-घट वासी परमात्मा की व्यावहारिक रूप से पूजा करते हैं। ऐसे भक्तों का जीवन व्यवहार बड़ा निर्मल, पवित्र, मधुर और उदार होता है आस्तिकता का यही तो प्रत्यक्ष लक्षण हैं।

पूजा के समस्त कर्मकाण्ड इसलिये हैं कि मनुष्य परमात्मा को स्मरण रखें, उसके अस्तित्व को अपने चारों ओर देखें और मनुष्योचित कर्म करे। पूजा, अर्चना, वन्दना, कथा, कीर्तन, व्रत, उपवास, तीर्थ आदि सबका प्रयोजन मनुष्य की इस चेतना को जाग्रत करना है कि परमात्मा की निकटता का स्मरण रहे और ईश्वर के प्रेम एवं श्रद्धा द्वारा लोक सेवा का व्रत रखे और ईश्वर के क्रोध से डर कर पापों से बचे। जिस पूजा उपासना से यह उद्देश्य सिद्ध न होता हो, वह व्यर्थ है। जिस उपास से भी "पाप से बचने और पुण्य में प्रवृत्त होने" का भाव जाग उठे यह उपाय ईश्वर भक्ति की साधना ही है।

ईश्वर का भजन

गरुड़ पुराण के अध्याय २३ में एक श्लोक है—

भज इत्येव वै धातुः सेवायां परिकोर्तिता।
तस्मात्सेवाबुधै प्रोक्ता भक्तिः साधन भूयसी।।

श्लोक का तात्पर्य है कि—'भज' धातु का अर्थ सेवा है (भज-सेवायां) इसलिये बुध जनों ने भक्ति का साधन सेवा कहा है। 'भजन' शब्द भज धातु से बना है, जिसका स्पष्ट अर्थ सेवा है। ईश्वर का भजन करना चाहिये। जिन शास्त्रों ने इस महामन्त्र का मनुष्य को उपदेश दिया है उनका तात्पर्य ईश्वर की सेवा में मनुष्य को प्रवृत्त करा देना था। जिस विधि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था से मनुष्य प्राणी ईश्वर की सेवा में तल्लीन हो जाय वही भजन है, इस भजन के अनेक मार्ग हैं। अध्यात्म मार्ग के आचार्यों ने देश-काल और पात्र के भेद को ध्यान में रख-कर भजन के अनेकों कार्यक्रम बनाये और बताये हैं। विश्व के इतिहास में जो, जो अमर विभूतियाँ, महान् आत्मायें, सन्त, सिद्ध, जीवन मुक्त, ऋषि एवं अवतार हुये हैं, उन सभी ने भजन किये हैं और कराये हैं पर उन सबके भजनों की प्रणाली एक-दूसरे के समान नहीं है। देश-काल और परिस्थिति के अनुसार उन्हें भेद करना पड़ा है, यह भेद होते हुये भी मूलतः भजन के आदि भूत तथ्य में किसी ने अन्तर नहीं आने दिया।

भजन (ईश्वर की सेवा) करने का तरीका ईश्वर की इच्छा और आज्ञा का पालन करना है। सेवक लोग अपने मालिकों की सेवा इसी प्रकार किया भी करते हैं। एक राजा के शासन तन्त्र में हजारों कर्मचारी काम करते हैं। इन सबके जिम्मे काम बँटे होते हैं। हर एक कर्मचारी अपना-अपना नियत काम करता है। अपने नियत कार्य को उचित रीति से करने वालों को राजा की कृपा प्राप्त होती है, उसके वेतन तथा पद में वृद्धि होती है, पुरस्कार मिलता है, खिताब आदि दिये जाते हैं। जो कर्मचारी अपने नियत कार्य में प्रमाद करता है वह राजा का कोष भाजन बनता है, जुर्माना, मुअत्तिली, तनख्वाह में तनञ्जुली, बर्खास्तगी या अन्य प्रकार की सजायें पाता है। इन नियुक्त कर्मचारियों की सेवा का उचित स्थान उन्हीं कार्यों में है, जो उनके लिये नियत है। रसोइये, महतर, पंखा झलने वाले, कहार, धोबी, चौकीदार, चारण, नाई आदि सेवक भी राजा के यहाँ रहते हैं। वे भी अपना नियत काम करते हैं। परन्तु इन छोटे कर्मचारियों में से कोई ऐसा नहीं सोचता कि राजा की सर्वोपरि कृपा हमारे ही ऊपर है। बात ठीक भी है, राजा के अभीष्ट उद्देश्य को सुव्यवस्थित रखने वाले राज मन्त्री, सेनापति, अर्थमन्त्री, व्यवस्थापक न्यायाध्यक्ष आदि उच्च कर्मचारी जितना आदर, वेतन और आत्मभाव प्राप्त करते हैं, बेचारे महतर, रसोइये आदि को वह जीवन भर स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता।

राज्य के समस्त कर्मचारी यदि अपने नियत कार्यों में अरुचि प्रकट करते हुये राजा के रसोइये, महतर, कहार, धोबी-चारण आदि बनने के लिये दौड़ पड़ें तो राजा को इससे तनिक भी प्रसन्नता और सुविधा न होगी। हजारों-लाखों रसोईयों द्वारा पकाया और परोसा हुआ भोजन अपने सामने देखकर राजा को भला क्या प्रसन्नता हो सकती है ? यद्यपि इन सभी कर्मचारियों का राजा के प्रति अगाध प्रेम है और प्रेम से प्रेरित होकर ही उन्होंने व्यक्तिगत शरीर सेवा की ओर दौड़ लगाई है, पर ऐसा विवेक रहित प्रेम करीब-करीब द्वेष जैसा ही हानिकर जान पड़ता है। राज्य के आवश्यक कार्य में हर्ज और अनावश्यक कार्य की वृद्धि, के यह कार्य प्रणाली किसी बुद्धिमान राजा को प्रिय नहीं हो सकती।

ईश्वर राजाओं का महाराज है। हम सब उसके राज्य कर्मचारी हैं, सबके लिये नियत कर्म उपस्थित हैं। अपने-अपने उत्तरदायित्व को उचित रीति से पालन करते हुये हम ईश्वर की इच्छा और आज्ञा को पूरा करते हैं और इस प्रकार सच्ची सेवा करते हुये स्वभावतः उसके प्रिय पात्र बन जाते हैं। राजाओं को व्यक्तिगत सेवा की आवश्यकता भी है, परन्तु परमात्मा को रसोइये, महतर, कहार, चारण, चौकीदार आदि की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। वह सर्वव्यापक है, वासना और विकारों से रहित है, ऐसी दशा में उसने लिये भोजन, कपड़ा पंखा, रोशनी आदि का कुछ उपयोग भी नहीं है।

ध्यान, जप, स्मरण, कीर्तन, व्रत, पूजन, अर्चन, वन्दन, यह सब आध्यात्मिक व्यायाम हैं। इनके करने से आत्मा का बल और सतोगुण बढ़ता है। आत्मोन्नति के लिये इन सबका करना आवश्यक और उपयोगी भी है, परन्तु इतना मात्र ही ईश्वर भजन या ईश्वर भक्ति नहीं है। यह भजन का एक बहुत छोटा अंश मात्र है। सच्ची ईश्वर सेवा उसकी इच्छा और आज्ञाओं को पूरा करने में है, उसकी फुलवारी को अधिक हरा-भरा फला-फूला बनाने में है। अपने नियत कर्त्तव्य करते हुये अपनी और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों की सात्विक उन्नति में लगे रहना प्रभु को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम उपाय हो सकता है।

इस्लामी धर्म पुस्तकों में एक कथा मिलती है कि एक इस्लाम प्रचारक ऋषि के आगे से देवदूत निकला। उसके हाथ में एक बहुत बड़ी पुस्तक थी। ऋषि ने पूछा–भाई देवदूत, यह पुस्तक कैसी है ? उसने उत्तर दिया–इसमें दुनियाँ भर के ईश्वर भक्तों के नाम लिखे हैं। ऋषि ने पूछा क्या इसमें मेरा भी नाम है। देवदूत ने सारी पुस्तक खोज डाली पर कहीं भी उनका नाम न मिला। इस पर ऋषि को बड़ा दुःख हुआ कि मैंने खुदा की आज्ञा पालन करने में सारा जीवन लगा दिया पर मेरा नाम भक्तों की सूची में शामिल न हो पाया। कुछ दिन बाद बाद एक दूसरा देवदूत एक छोटी पुस्तक लिये हुये उधर से निकला। ऋषि ने पूछा–इसमें क्या लिखा है ? देवदूत ने उन्हें बताया कि इसमें कुछ ऐसे आदमियों के नाम हैं जिनकी भक्ति स्वयं ईश्वर करता है। ऋषि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि—क्या ऐसे भी लोग हैं जिनकी भक्ति ईश्वर को करनी पड़ती है ? पुस्तक पढ़ी गई उसमें सबसे ऊपर उन्हीं ऋषि का नाम लिखा हुआ था। महात्मा कबीर ने भी ऐसा ही कहा है–

कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे लागे हरि फिरत, कहत कबीर कबीर।।
कबीर माला ना जपो, जिह्वास कहो न राम।
सुमिरन मेरा हरि करें मैं पावों विश्राम।।

ईश्वर को प्रसन्न करने की इच्छा से भगवद् भजन करने वालों को भजन का वास्तविक तात्पर्य समझना चाहिये। भजन सेवा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परमात्मा की सेवा उसकी चलती-फिरती प्रतिमाओं की सेवा में है उसके बगीचे को–संसार को अधिक सुन्दर, सुख-शान्तिमय बनाने का प्रयत्न करने में है, अपने कर्त्तव्य धर्म को उत्तरदायित्व को एक ईमानदार और सच्चे मनुष्य की तरह पालन करनें में है। ईश्वर की इच्छा और आज्ञा है कि 'अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना की जाय" अपने भीतर, बाहर और सर्वत्र जो इस तथ्य को ध्यान में रखकर कार्य करता है उसी का भजन सच्चा है। लोक कल्याण की दृष्टि से जो अपने और दूसरों के जीवन को उत्तम बनाने के प्रयत्न में तत्परतापूर्वक जुटे हुये हैं, वे ही सच्चे भजनानन्दी हैं, वे ही सच्चे भक्त हैं। इसी प्रकार की भक्ति और ऐसा ही भजन करना भक्तियोग का वास्तविक प्रयोजन है।

(६) ज्ञान योग

धियश्चेतिपदं नूनमित्येव करोति हि।
कुरुते ज्ञान योगोयत् धियं विज्ञानशालिनीम्।।

(धियश्चेति पदं) धियः यह पद (नूनं) निश्चय से (इत्येव) यह ही (व्याकरोति) बतलाता है कि (यत्) कि (ज्ञान योगः) ज्ञान योग (धिय) बुद्धि को (विज्ञानशालिनी) विज्ञानमय (कुरुते) बनाता है।

'धियः' शब्द से ज्ञान योग का तात्पर्य है। बुद्धि शब्द यों तो जानकारी, चतुराई आदि मस्तिष्कीय शक्तियों के लिये भी प्रयुक्त होता है, पर अध्यात्म क्षेत्र में ज्ञान के लिये–सद्ज्ञान के लिये ऋतुम्भरा प्रज्ञा के लिये ही बुद्धि शब्द का प्रयोग होता है। ज्ञान योग का तात्पर्य इसी ज्ञान योग से है। गीता में इसे बुद्धि योग और ज्ञान योग दोनों नाम से कहा गया है।

'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।' गीता के २।६३ श्लोक की इस अर्धाली में बुद्धि नाश से लक्ष्य भ्रष्ट होने की बात कही गई है। बुद्धिनाश के कारण का उल्लेख करते हुये भगवान कृष्ण ने 'स्मृति भ्रष्ट होने से बुद्धि नाश का हेतु बताया है।

लक्ष्य की स्मृति होने पर ही लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। स्मृति दो प्रकार की होती है एक तो क्षणिक स्मृति अर्थात् कभी स्मृति रहे और कभी वह विस्मृत हो जाये और दूसरी बिना टूटे-फूटे बिना भंग हुये सतत् एक-सी रहने वाली।

स्मृति का दूसरा नाम है, ज्ञान। भूली हुई बात को जानना ही ज्ञान कहलाता है। मानव को भूलने की तो कई बातें हैं पर प्रमुख रूप से जिसे वह भूला रहता है वह है अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वरूप। अपना स्वरूप-आत्मरूप भूल जाने के कारण वह अपनी शक्ति से विमुख होकर इधर-उधर भटकना आरम्भ कर देता है। जहाँ-जहाँ जाने की उसे प्रेरणा मिलती है मन उधर-इधर जाता है। लक्ष्य का स्मरण न रहने के कारण मानव एक स्थान पर नहीं टिक पाता इसलिये दिन और रात वह अपने श्रेय को छोड़ता जा रहा है।

मानव रूप धारण करने के पूर्व उसका एक सूक्ष्म रूप होता है। कारण रूप में यह आत्मा है, चैतन्यधन है, सच्चिदानन्द है। जैसे-जैसे वह चैतन्यधन स्थूल होता जाता है, उसकी दृष्टि आत्मा की ओर से हटकर स्थूल पर टिकती जाती है। स्थूल अनन्त है इसलिये दृष्टि भी अनन्त हो जाती है और किसी एक पर टिकना तब तक सम्भव नहीं होता जब तक कि मनुष्य के अन्दर किसी जगह टिके रहने की प्रेरणा न मिले और प्रेरणा के लिये लक्ष्य के ज्ञान की आवश्यकता रहती है।

चिन्मय शक्ति का सबसे पहला प्रकाश बुद्धि पर होता है इसके बाद मन पर फिर जैसे-जैसे वह नीचे उतरती जाती है वैसे-वैसे उसकी स्थूलता बढ़ती जाती है और जड़ की शक्ति अधिकार करती जाती है। गीताकार का कहना है कि–

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्यदेहिनम्।।३।४०

चिन्मय शक्ति या ज्ञान शक्ति के अवतरण क्रम में बुद्धि मन तथा इन्द्रियाँ आती हैं इन्द्रियाँ स्थूलता का केन्द्र हैं, ये विषयों का साधन हैं और इसीलिये ये अनन्त मुखी हैं। इन अनन्त मुखियों के द्वारा अनन्त विषय-भोग मन तक पहुँचते हैं, मन इन संस्कारों से विकृत होकर बुद्धि को विकारग्रस्त करता है और विकार वाले ये संस्कार ऊपर उठकर चिन्मय शक्ति की किरणों को अर्थात् ज्ञान को ढक लेते हैं। यह विकृत ज्ञान-जिसे कि अविद्या या अज्ञान कहते हैं विस्मृति का रूप धारण कर लेता है और यही विस्मृति भ्रष्टि-नाश का कारण बन जाती है।

विस्मृति होने पर या अज्ञान का साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भोग की भावना प्रबल हो जाती है और इस प्रबल भावना के सामने होता है। स्थूल जगत इसलिये उसकी तृप्ति के लिये वह स्थूल की ही ओर ताकता रहता है। सूक्ष्म को भूलकर स्थूल की ओर टकटकी लगाने से वह किसी एक पर स्थिर रहने ही नहीं पाता क्योंकि सृष्टि एकरूपा नहीं है। वह नित्य परिवर्तनशील होने के कारण बहुरूपा है। बहुत्व में अपनी दिशा को, अपनी भोगवृत्ति को लगा देने के कारण उसमें स्थिरता नहीं रहती इसलिये समता वहाँ से खिसक जाती है।

समता और विषमता की स्थिति बुद्धि पर निर्भर करती है। जो बुद्धि ज्ञान को या चित् शक्ति ग्रहण करने में असमर्थ होती है वह बहु शाखा वाली–बहुमुखी हो जाने के कारण समता स्थापित नहीं कर सकती। समता स्थापित करने के लिये बुद्धि को इस योग्य बनाना पड़ता है अर्थात् उसे व्यवसायात्मिका बनाने की आवश्यकता होती है। बुद्धि के इन दो विभेदों के सम्बन्ध में गीता का कथा स्पष्ट है–

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्तांश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।२।४१

व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही होती है और अव्यवसायियों, अज्ञानियों की बुद्धि अनेक दृष्टि वाली बहु शाखा वाली अनन्त होती है। आगे जाकर वे कहते हैं कि—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।२।।

स्थूल भोग और ऐश्वर्य में लगे हुये वे व्यक्ति आत्मस्वरूप को भूले हुये हैं इसलिये ये व्यवसायात्मिका समता वाली बुद्धि को अपने अन्तःकरण में प्रतिष्ठित नहीं कर पाते और विनाश का कारण बनते हैं। इसीलिये उनका आदेश है कि—

बुद्धि युक्तो यथा पार्थ कर्म बन्धं प्रहास्यसि।२।२९

ज्ञान साथ आत्मरूप के साथ बुद्धि को मुक्त करने पर कर्म बन्धन अर्थात् बहुमुखी वृत्तियों से मुक्ति मिल जायेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस व्यवसायात्मिका बुद्धि को प्राप्त करने के लिये उत्तर काण्ड में एक ज्ञान दीप की कल्पना की है। जैसा कि ऊपर कहा गया है ठीक उसी प्रकार उनका कहना है कि—"ईश्वर अंसजीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।" यह जीव ईश्वर का अंश है इसलिये यह भी अविनाशी है, चेतन है और अमल-निष्कलंक है, साथ ही स्वभाव से ही सुख राशि अर्थात् आनन्दस्वरूप है लेकिन—'सो माया बस भवउ गोसाईं।" वह भी स्थूल माया-भोग आदि विभिन्न वासना-ममता आदि के अधीन हो गया है और इसीलिये—'जड़ चेतनहिं ग्रन्थ परिगई।" जड़ और चेतन में गांठ लग गई है अर्थात् चित्त शक्ति जड़ में अपना विस्तार नहीं कर पा रही, दोनों के बीच में रोक लग गई है, परदा पड़ गया है। आत्म ज्ञान मन, बुद्धि और इन्द्रियों में नहीं उतरता है, जड़ता के कारण केन्द्र में घना अन्धकार छा गया है। 'जीव हृदय तम मोह विशेषी।' हृदय में जीव के चारों ओर मोह के अज्ञान का गहरा अन्धकार भरा हुआ है। इसलिये उस अन्धकार को दूर करने के लिये ज्ञान दीपक जलाने की आवश्यकता है। गोसाईं जी के इस ज्ञान दीपक की तैयारी भी बड़ी कलापूर्ण है—

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
जों हरि कृपा हृदय बस आई।
जप तप व्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धर्म अधारा।
तेइ तृन हरित चरै जब गाई।
भाव बच्छ सिसु पाय पेन्हाई।
नोई निवृत्ति पात्र विश्वासा।
निर्मल मल अहीर निज दासा।
परम धर्म मय पय दुहि भाई।
अँवटै अनल अकाम बनाई।
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावै।
धृति सम जीवनुदेह जमावै।
मुदिता मथै विचार मथानी।
दम अधार रजु सत्य सुबानी।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
विमल विराग सुभग सुपुनीता।
जोग अगिनि करि प्रकट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जन जाइ।।
तब विग्यान रूपिनी बुद्धि विसद घृत पाई।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।।
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपासतें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि।
एहि विधि लेसे दीप, तेज रासि विग्यान मय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।
सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रमनासा।
प्रबल अविद्याकर परिवारा।
मोह आदि तम मिटहिं अपारा।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा।
उर गृह बैठि ग्रंथिनिरुआरा।

गोसाईं जी के इस ज्ञानदीप का कर्त्ता-धर्त्ता भाग्य विधाता यदि कोई है तो वह है एक मात्र बुद्धि। उनका कहना है कि जप, तप, व्रत, यम, नियम, आचार द्वारा सात्विक श्रद्धा को हृदय में बढ़ाया जावे और फिर चित्त शक्ति को पाने की दृढ़ भावना उत्पन्न करनी चाहिये। भोग की ओर से अपनी वृत्तियों को समेटकर, मन को निर्मल बनाकर परम विश्वास के साथ निष्काम भाव से सन्तोष, क्षमा तथा धैर्य का सहारा लेते हुये प्रसन्नतापूर्वक दम एवं सत्य को जीवन में उतार कर वैराग्य उत्पन्न करिये फिर सम्पूर्ण शुभ-अशुभ कर्मों को भगवान के श्रीचरणों में निवेदन करते हुये बुद्धि को जगाये रखिये जिससे ममता रूपी जो मल है वह जल जावे। इस प्रकार बुद्धि के साथ ज्ञान को जोड़ कर भूत, भविष्य वर्तमान तथा बालपन, जवानी और बुढ़ापे में एक रस रहकर चित्त की साम्यावस्था रखते हुये भगवान के साथ अभेदेता की भावना को जागरूक रखने पर एकत्व का अनुभव होगा और इस अनुभव के होते ही भेद का जो भ्रम है, नानात्व की जो गति है वह दूर हो जायेगी। तब बुद्धि पथ से ज्ञान रूपिणी चित्त शक्ति का अविरल प्रवाह जारी हो जायेगा जो बुद्धि से मन तथा इन्द्रियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक में उतरकर इस जड़ देह को भी दिव्य बना देगा।

दिव्यत्व एवं जड़त्व दोनों का एक मात्र कारण बुद्धि की समता एवं विषमता है। बुद्धि की समता कायम रखने के लिये भारतीय परम्परा में बाल्यकाल से ही बुद्धि योग की शिक्षा दी जाती है। पाँच वर्ष की अवस्था में ही जबकि वह अविद्या रूपी ममता, मोह, काम आदि शास्त्रों के बारे में मुक्त रहता है गायत्री रूपी कवच पहना दिया जाता है। यह गायत्री रूपी कवच बुद्धि योग के अतिरिक्त कुछ नहीं है। चित्त शक्ति रूप बाह्य जगत के प्रतीक सविता देवता तथा अन्तर्जगत के ज्ञान देवता की साधना उपासना इसी काल से आरम्भ कर दी जाती है। श्रद्धा और विश्वास के साथ उस परम चिन्मय शक्ति को बुद्धि मार्ग से उतार लाने तथा अपने आपको भगवान का भक्त बना देने के लिये आकुल मन से वह वटु जप करता है। सतत् स्मरण ही जप है। इस जप में शब्द ही शब्द नहीं। यह केवल वाचनिक ही नहीं है। यह जप भावना मूलक होता है। मानव के समस्त मन और प्राण पुकारते हैं। वे उस वरणीय देव की उपासना करते हैं, जो दिव्य शक्ति का प्रतीक है, तेज है, भर्ग है और उनकी उपासना में एक ही कामना रहती है, एक ही इच्छा रहती है—धियो योनः प्रचोदयात्। हमारी बुद्धि को प्रेरणा कीजिये। प्रेरणा किसलिये ? उस अवतरित चिन्मय शक्ति को समतापूर्वक ग्रहण करने तथा मन और इन्द्रियों में प्रवाहित करके चिन्मय शक्ति के आवास स्थान को दिव्य कर देने के लिये। इस दिव्यता को प्राप्त कर लेने के अनन्तर मानव ब्राह्मी स्थिति में प्रतिष्ठित हो जाता है। जहाँ पूर्ण शान्ति है। पूर्ण सुख है और अभाव के दर्शन नहीं होते।

गायत्री की उपासना इसी बुद्धि योग की उपासना है, यही ज्ञान योग है और मानव के लिये एक मात्र यही शान्ति का मार्ग देता है।

(१०) लययोग

यो वात्मानं तु वै तस्मिन् मानवः कुरुते लयम्।
भवबन्धविनिर्भुक्तो लययोगं स आप्नुते।।१।।

(यः) जो (मानवः) मनुष्य (आत्मानं) अपने आपको (तस्मिन्) उसमें (लयं) (कुरुते) कर देता है, (सः) वह मनुष्य (भवबन्धविनिर्मुक्तः) सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर (लय योग) लययोग को (आप्नुते) प्राप्त करता है।

लययोगस्तु स एषो येन संधौतकल्मषः।
सच्चिदानन्दरूपेण साधकः सुखमाप्नुते।।२।।

(एषः) यह (लययोगः) लययोग (सः) वह है (येन) जिस (सच्चिदानन्दरूपेण) सच्चिदानन्द रूपयोग से (संधौतकल्मषः) जिसके पाप नष्ट हो गये हैं। इसप्रकार का (साधकः) साधक (सुखं) सुख को (आप्नुते) प्राप्त करता है।

गायत्री का 'यः' शब्द 'लययोग' के लिये है। लय का अर्थ है, लीन होना किसी में घुल जाना, विलीन हो जाना। आत्मा को परमात्मा में घुला देना, लीन कर देना लययोग का उद्देश्य है। मुक्ति या समाधि अवस्था में आत्म-विस्मृति हो जाती है, द्वैत मिट जाता है और एकता की सायुज्यता का आनन्द प्राप्त होता है।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय यद्यपि आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित है, उसी की शक्ति लेकर गतिवान है तो भी वह एक अलग इकाई के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जल में दिखाई देने वाला सूर्य का प्रतिविम्ब यद्यपि सूर्य के कारण ही है तो भी उस प्रतिविम्ब का अस्तित्व एक अलग सत्ता के रूप में भी दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार मन बुद्धि, चित्त, अहंकार का चतुष्टय-अपना एक पृथक् अस्तित्व बना लेता है जिसे "जीव" नाम से पुकारते हैं। अधिकांश मनुष्य अपने को जीव ही मानते हैं और जीव की जो इच्छा, अभिलाषा तथा रुचि होती हैं, उन्हें ही अपनी आकांक्षा समझते हैं और उसे पूरा करने में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार एक राज्य के दो राजा बन बैठते हैं, एक म्यान में दो तलवारें घुस पड़ती हैं। जैसे मनुष्य के शरीर में कोई रोग या भूत पिशाच घुस पड़ता है तो विविध प्रकार की अव्यवस्थायें फैला देता है, अड़चनें उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार आत्मा के मन्दिर में जब जीव नाम की एक कृत्रिम सत्ता अपना आधिपत्य अलग ही जमा लेती है तो उस मन्दिर में भी अव्यवस्था फैले बिना नहीं रह सकती। आज हम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में से अधिकांशों के जीवन इसी प्रकार की अव्यवस्था से परिपूर्ण हो रहे हैं।

ईश्वर का पवित्र अंश आत्मा इसलिये शरीर धारण करता है कि प्रभु की इस दिव्य वाटिका में आनन्दमयी क्रीड़ा करे, प्रेम के अमृत रस का पान करे और इस 'स्वर्गादपि गरीयसी पुण्य भूमि में सर्वत्र-चारों ओर भरने वाले आनन्दमय झरनों में किलोल करें। अपनी श्रेष्ठ सत्ता को सूक्ष्म से स्थूल बनाकर उसका चारु-चरित्र देखकर विहंसे। अपने लिये तथा दूसरों के लिये शान्ति और सुख का सन्तोषप्रद उल्लास उद्भूत करे। परन्तु हम देखते हैं कि अधिकांश मानव प्राणी इस उद्देश्य से बिल्कुल विपरीत दिशा में चल रहे हैं। उन्हें पग-पग पर दुःख, दारिद्रय और क्लेश कलहों का अनुभव हो रहा है। उनकी मनोभूमि शोक, सन्ताप, चिन्ता, भय विरह, बिछोह, आशंका, ईर्ष्या तृष्णा, घृणा, वासना, निराशा, कायरता, बेचैनी, लोलुपता आदि से मलीन हो रही है। वस्तुओं का संचय, अहंकार का पोषण, इन्द्रियों का भोग उन्हें पसन्द है। इन तीनों बातों के लिये वे अपनी समस्त शक्तियाँ निचोड़े दे रहे हैं तो भी अभीष्ट पूरा नहीं होता, सन्तोष नहीं मिलता। उल्टे अशान्ति की ही दिन-दिन बढ़ोत्तरी होती चलती है। यह चीजें जितनी मात्रा में प्राप्त होती हैं तृष्णा की जलन उससे भी अधिक बढ़ जाती है।

पाप करना—पाप का फल दुःख पाना। यह चक्र चलता है। दुःख से जल्दी छुटकारा पाने के लिये पाप करना और उस पाप के फलस्वरूप अधिक दुःख उत्पन्न होना, यह चक्रव्यूह दिन-दिन उलझता जाता है। जाल में फँसा पंछी जितना फड़फड़ाता है उतना ही वह और भी अधिक फन्दों में जकड़ता जाता है। इस उल्टी गति पर विचार करते हुये बड़ी हैरानी होती है कि आत्मा ने शरीर जिस उद्देश्य के लिये धारण किया था उससे बिल्कुल उल्टे दृश्य क्यों दिखाई पड़ते हैं ? इस गुत्थी पर गम्भीर विचार करने से यह पता चल जाता है कि मानव जीवन पर आत्मा का आधिपत्य नाम मात्र का रह गया है और वास्तविक शासक एक नकली पलीत बन बैठा है। उस पलीत के कुशासन के कारण ही मनुष्य की ऐसी दुर्दशा हो रही है, उसे बाह्य और आन्तरिक अनेकों नष्ट कर उलझनों में फँस जाना पड़ा है। इस उलझन का, इस विपन्न अवस्था का, इस भूल-भूलैया का नाम ही 'माया' है। माया में मस्त हो जाने से ही दुखों के जंजाल में गला फँसाना पड़ता है।

जिनमें थोड़ी बहुत आत्म-चेतना बाकी है वे अपनी स्थिति पर विचार करते हैं। वे सोचते हैं कि हमें न भीतर चैन है न बाहर। इस बेचैनी का कारण जीव भाव की प्रधानता है। जीव अपने को शरीर तक सीमाबद्ध मानता है और शरीर के सुखों तथा लाभों को जुटाने के लिये प्रयत्नशील रहता है, भले ही इससे आत्मा का उद्देश्य समूल नष्ट होता हो। यह जीव भाव जब तक प्रबल है, तब तक घृणा, पाप और दुःख के त्रिविधि चक्र से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं। उससे छुटकारा तभी मिल सकता है, जब जीव भाव की विस्मृति और आत्मभाव की जागृति हो जाय।

जीव-भाव को आत्म-भाव में घुला देने, द्वैत को अद्वैत बना देने, बन्धन से मुक्त होने का तरीका यही है कि अपने सीमित अहंकार को सर्वव्यापक परमात्मभाव में घुला दिया जाय। आत्म-त्याग, आत्म-दान, आत्म-प्राप्ति, आत्म-दर्शन, आत्म-कल्याण, आत्म-साक्षात्कार आदि शब्द इसी स्थिति के लिये प्रयोग किये जाते हैं, जिसमें हमारा 'अहं सीमित 'अहं' न रहकर असीमित हो जाता है। सब में अपनी आत्मा और अपनी आत्मा में सब प्राणी दिखाई देने लगते हैं। तब सबका स्वार्थ ही अपना स्वार्थ बन जाता है। इस अद्वैत स्थिति का नाम आत्म-विस्मृति या लय अवस्था भी है। इसकी साधना के लिये आत्मदर्शियों ने "लय योग" की स्थापना की है।

लय योग में अपने मन को भुलाने का अभ्यास किया जाता है। जिससे वर्तमान स्थूल स्थिति में रहते हुये भी उसका विस्मरण हो जाय और ऐसी किसी स्थिति का अनुभव होता रहे जो यद्यपि स्थूल रूप से नहीं है पर मन जिसे चाहता है। जो स्थूल स्थिति है उसका अनुभव न करना और जो बात भले ही प्रत्यक्ष रूप से नहीं है पर उसे अपनी भावना के बल पर अनुभव करना—यही कार्य प्रणाली लय योग में होती है। इस अभ्यास में प्रवीण हो जाने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य वर्तमान परिस्थितियों को सांसारिक दृष्टि से देखना भूल जाता है, फलस्वरूप वे बातें भी उसे दुखदायी प्रतीत नहीं होतीं जिनके कारण साधारण लोग बहुत भयभीत और दुःखी रहते हैं। लय योग का साधक कष्ट, पीड़ा या विपत्ति में भी आनन्द एवं कल्याण का अनुभव करता हुआ सन्तुष्ट रह सकता है।

लय योग का आरम्भ पंच इन्द्रियों की, पंच तत्वों की, तन्मात्राओं पर काबू करने से होता हैं, धीरे-धीरे यह अभ्यास बढ़कर आत्मविस्मृति की पूर्ण सफलता तक पहुँच जाता है और जीव भाव से छुटकारा पाकर आत्म भाव की दिव्य स्थिति का आनन्द लेता है।

नीचे पाँच अभ्यास लय योग के दिये जाते हैं। इनसे शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की तन्मात्राओं पर अधिकार होता है और पंच तत्वों से बने हुये स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर आत्मा का नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। तब अपने आप वह आनन्दमयी स्थिति प्राप्त होने लगती है जो आत्म-जागृति की दशा में होनी चाहिये। यह पांच साधनायें हम अपनी 'प्रत्यक्षफल दायिनी साधना' पुस्तक में भी दे चुके हैं।

शब्द साधना—'नाद योग' का शब्द साधना कहते हैं यद्यपि यह आत्मविस्मृति के लययोग के अन्तर्गत ही आता है। परन्तु वह बड़ा और विस्तृत होने के कारण है इसलिये उसे स्वतन्त्र रूप से 'नाद योग' कहा जाता है। आगे के पृष्ठों पर उसकी पृथक् विवेचना करेंगे।

रूप साधना

रूप साधना के लिये त्राटक का अभ्यास किया जाता है। त्राटक दो प्रकार के होते हैं—बाह्य और आभ्यन्तरिक। दोनों की साधना नीचे लिखी जाती है।

(१) बाह्य त्राटक किसी बिन्दु पर दृष्टि जमाने को कहते हैं। सफेद चिकने चमकदार कागज के एक चौकोर टुकड़े पर ठीक बीचों बीच एक रुपये के बराबर गहरी काली स्याही से गोला अंकित कीजिये, इस गोले के बीचो-बीच सफेद बिन्दु रहने दिया जाये।

मेरुदण्ड को सीधा रखकर स्वस्थ चित्त होकर, पद्मासन पर अथवा अर्ध आसन पर (पालथी मारकर) बैठिये। उपरोक्त काले गोले को नेत्रों की सीध में तीन फुट के फासले से दीवार पर टाँग लीजिये। काले गोले के बीच के सफेद बिन्दु पर दृष्टि जमाइये। पलक मारते रहने में कुछ हर्ज नहीं पर दृष्टि बिन्दु पर से न हटे। आँखें न तो बहुत अधिक खोली जायँ न पलक सकोड़े जायँ, दृष्टिपात न बहुत हल्का हो और न बहुत जोर लगाया जाये। मध्यम स्थिति में यह साधना करनी चाहिये। यह साधन स्वस्थ नेत्र वालों को ही करना चाहिये। जिनकी आँखों में कोई रोग हो उनके लिये त्राटक करना वर्जित है।

एकटक दृष्टि जमाने से कुछ ही देर में गोले के बीच का सफेद बिन्दु हिलता-डुलता, घटता-बढ़ता, काँपता, थरथराता तथा रंग बदलता दीखने लगता है। यह सब होने पर भी दृष्टि हटानी नहीं चाहिये। कुछ दिनों अभ्यास से बिन्दु स्थित हो जाता है। यह इस साधना की परिपक्वावस्था का चिन्ह है। साधन दो मिनट से आरम्भ करके एक-एक मिनट नित्य बढ़ाना चाहिये। आँखों में पानी भर आवे तो त्राटक अवश्य ही समाप्त कर देना चाहिये।

चन्द्रमा पर, घी के दीपक की शिखा पर, शालिग्राम या शिवलिंग के अग्रभाग पर, इष्ट देव के चरण नख या किसी अंग विशेष के बिन्दु पर भी यह साधन किया जा सकता है।

(२) आभ्यन्तरिक त्राटक के लिये नेत्र बन्द करके साधना पर बैठना चाहिये। दोनों कानों के छिद्रों के बीच में एक सीधी रेखा खींची जाय और भ्रू मध्य भाग से लेकर सिर के पीछे की ओर एक रेखा खींची जाय तो यह दोनों रेखायें आपस में जहाँ मिलती हैं, वहाँ त्रिकुटी ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रादल कमल का स्थान है। इस स्थान पर शान्त चित्त से ध्यान जमाने पर एक छोटा सा प्रकाश बिन्दु दृष्टिगोचर होता है। कुछ दिन के बाद एक के स्थान पर अनेक तथा लाल, पीले, काले, विभिन्न वर्णों के विभिन्न आकृतियों के बिन्दु मस्तक के भीतर चारों ओर उडते हुये दिखाई देते हैं। दीर्घकालीन सतत् अभ्यास से वे बिखरे हुये विभिन्न आकार-प्रकार के बिन्दु उस मूल बिन्दु में लय होने लगते हैं और अन्त में एक शुभ्र ज्योति रह जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके दर्शन से अन्तः प्रदेश में बड़ी आनन्ददायक शान्ति वर्षा होती है।

रस साधना

जो फल आपको खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ट लगता हो उसे इस साधना के लिये लीजिये। जैसे आपको कलमी आम अधिक रुचिकर हैं तो उसके पाँच छोटे टुकड़े लें। एक टुकड़ा लेकर जिह्वा के अग्रभाग पर एक मिनट तक रखे रहें और उसके स्वाद का अनुभव करें। फिर इस टुकड़े को फेंक दें और उस पूर्व स्वाद को ध्यान किये बिना आम का स्वाद जिव्हा को होता रहे। दो मिनट में वह अनुभव शिथिल होने लगेगा फिर दूसरा टुकड़ा जुवान पर रखिये और पूर्ववत् उसे फेंककर आम के स्वाद का अनुभव कीजिये इस प्रकार पांच बार करने में पन्द्रह मिनट लगते हैं।

धीरे-धीरे जिह्वा पर कोई वस्तु रखने का समय कम करना चाहिये और बिना इस वस्तु के रस अनुभव करने का समय बढ़ाना चाहिये। कुछ समय पश्चात् बिना किसी वस्तु को जीभ पर रखे भी केवल भावना मात्र से इच्छित वस्तु का पर्याप्त समय तक रसस्वादन किया जा सकता है।

गन्ध साधना

नासिका के अग्रभाग पर त्राटक करना इस साधना के लिये आवश्यक है। दोनों नेत्रों से एक साथ नासिका के अग्रभाग पर त्राटक नहीं हो सकता इसलिये एक मिनट दाहिनी ओर तथा एक मिनट बायीं ओर करना उचित है। दाहिने को प्रधानता देकर उसके नाक के दाहिने हिस्से को और फिर बायें नेत्र को प्रधानता देकर बायें हिस्से को गम्भीर दृष्टि से देखना चाहिये। आरम्भ एक-एक मिनट से करके अन्त में पाँच-पाँच मिनट तक बढ़ाया जा सकता है। इस त्राटक से नासिका की सूक्ष्म शक्तियाँ जाग्रत होती हैं।

इस त्राटक के बाद कोई सुगन्धित तथा सुन्दर पुष्प लीजिये। उसे नासिका के समीप ले जाकर एक मिनट तक धीरे-धीरे सूँघिये और उसकी गन्ध का भली प्रकार स्मरण कीजिये। इसके बाद फूल को फेंक दीजिये और बिना फूल के ही उस गन्ध को दो मिनट तक स्मरण कीजिये। इसके बाद दूसरा फूल लेकर फिर इसी क्रम की पुनरावृत्ति कीजिये। पाँच फूलों को पन्द्रह मिनट प्रयोग करना चाहिये। स्मरण रहे कम से कम एक सप्ताह एक ही फूल प्रयोग होना चाहिये। इसी प्रकार रस साधना में एक फल एक सप्ताह तक प्रयोग होना चाहिये।

स्पर्श-साधना

(१) बर्फ या कोई अन्य शीतल वस्तु, शरीर पर एक मिनट लगाकर फिर उसे हटा लें और दो मिनट तक अनुभव करें कि वह ठण्डक मिल रही है। सह्य उष्णता का गरम किया हुआ पत्थर का टुकड़ा शरीर से स्पर्श कराकर उसकी अनुभूति कायम रखने की भावना करनी चाहिये। पंखा झलकर हवा करना, चिकना कांच का गोला या रूई की गेंद त्वचा पर स्पर्श करके फिर उस स्पर्श को ध्यान रखना भी इसी प्रकार का अभ्यास है। ब्रुश से रगड़ना, लोहे का गोला उठाना जैसे अभ्यासों की भी इसी प्रकार ध्यान भावना की जा सकती है।

(२) किसी समतल भूमि पर एक बहुत ही मुलायम गद्दा बिछाकर उस पर चित लेटे रहिये कुछ देर इसकी कोमलता का स्पर्श-सुख अनुभव करते रहिये इसके बाद बिना गद्दा की कठोर जमीन या तख्त पर लेट जाइये। कठोर भूमि पर पड़े रहकर कोमल गद्दे के स्पर्श की भावना कीजिये, फिर पलट कर गद्दे पर आ जायँ और उस कठोर भूमि की कल्पना कीजिये। इस प्रकार भिन्न परिस्थिति में भिन्न वातावरण की भावना करने से तितीक्षा की सिद्धि मिलती है। स्पर्श साधना में सफलता प्राप्त करने पर शारीरिक कष्टों को हँसते-हँसते सहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त पाँचों साधनाओं को एक साथ ही किया जाय यह आवश्यक नहीं। जिनके पास साधना के लिये समय थोड़ा है, वे इनमें से किसी एक-दो साधनाओं को अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार चुन सकते हैं। उसमें सफलता मिलने पर अन्य साधनाओं को हाथ में लिया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन साधनाओं से मन वश में होता है, चित्तवृत्तियों का विरोध होता है और विचारों पर काबू होता है। योग के समस्त साधनों का यही उद्देश्य है। एकाग्रता की सफलता तथा आत्म-विजय जीवन की सबसे बड़ी सफलतायें हैं। इनके आधार पर मनुष्य अपनी इच्छानुसार जो चाहे सो बन सकता है, जो चाहे सो कर सकता है। इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्ति से अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं, वे सूक्ष्म इन्द्रियाँ वस्तुओं के आधार पर नहीं वरन् इच्छा के आधार पर संसार के समस्त सुखों को अनुभव कर लेती हैं। भोगी लोग जिन भौतिक भोगों के लिये मृग-तृष्णा में मारे-मारे फिरते हैं, वे सब योगियों के करतल गत होते हैं। संकल्प शक्ति से सब सुख उनके सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

(११) नाद योग

निरञ्जनस्य सुखधाम्नो विश्व मूर्तेः प्रभात्मनः।
नगर्यां सन्ति रुच्यायां नादा ये श्रोत्रनन्दनाः।।
जायते परमानन्दो तन्नाद श्रवणात्त यः।
तत्प्रापणं मतो पुंसां नाद योगो विचक्षणैः।।

(प्रभात्मनः) प्रभा जिसकी आत्मा है ऐसा (विश्व मूर्तेः) जो विश्वमूर्ति (सुख धाम्नः) सुख का घर (निरञ्जनस्य) निरंजन की परमात्मा की (रुच्यायां) सुन्दर (नगर्यां) नगरी में (ये) जो (श्रोत्रनन्दनाः) कानों को आनन्द देने वाले (नादाः) नाद (सन्ति) है, (तन्नाद श्रवणात्) उन नादों के श्रवण से (यः जो (परमानन्दः) अनन्त आनन्द (जायते) प्राप्त होता है (तत्प्रापणं उसके प्राप्त करने को (विचक्षणैः) विद्वानों ने (पुंसां) मनुष्यों के लिए (नादयोगों) नादयोग (मतः) माना है।

नः शब्द में नाद का संकेत है। शब्द को ब्रह्म कहा है क्योंकि ईश्वर और जीव को एक श्रृंखला में बाँधने का कार्य शब्द द्वारा ही होता है। सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ भी शब्द से हुआ है। पंच तत्वों में सबसे पहले आकाश बना आकाश की तन्मात्रा शब्द है। अन्य समस्त पदार्थों की भाँति शब्द भी दो प्रकार का है सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म शब्द को विचार कहते हैं और स्थूल शब्द को ध्यान।

ब्रह्मलोक से हमारे लिये ईश्वरीय शब्द प्रवाह सदैव प्रवाहित होता है। ईश्वर हमारे साथ वार्तालाप करना चाहता है पर हममें से बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो उसे सुनना चाहते हैं या सुनने की इच्छा करते हैं। ईश्वर निरन्तर एक ऐसी विचारधारा प्रेरित करता है, जो हमारे लिये अतीव कल्याणकारी होती है, उसको यदि सुना और समझा जा सके तथा उसके अनुसार मार्ग निर्धारित किया जा सके तो निस्सन्देह जीवनोद्देश्य की और द्रुत गति से अग्रसर हुआ जा सकता है। यह विचारधारा हमारी आत्मा से टकराती है। हमारा अन्तःकरण एक रेडियो है जिसकी और यदि अभिमुख हुआ जाये, अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाकर आत्मा में प्रस्फुटित होने वाली दिव्य विचार लहरियों को सुना जाय, तो ईश्वरीय वाणी हमें प्रत्यक्ष सुनाई पड़ सकती है। इसी को आकाश वाणी कहते हैं। हमें क्या करना चाहिये क्या नहीं ? हमारे लिये क्या उचित है क्या अनुचित ? इसका प्रत्यक्ष संदेश ईश्वर की ओर से प्राप्त होता है। अन्तःकरण की पुकार, आत्मा का आदेश, ईश्वरीय संदेश, आकाशवाणी, तत्व ज्ञान आदि नामों से इसी विचारधारा को पुकारते हैं। अपनी आत्मा के यन्त्र को स्वच्छ करके जो इस दिव्य संकेत को सुनने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं; , वे आत्मदर्शी एवं ईश्वर परायण कहलाते हैं। ईश्वर उनके लिये बिलकुल समीप होता है, वे ईश्वर की बातें सुनते हैं और अपनी उससे कहते हैं। इस दिव्य मिलन के लिये हाड़-माँस के स्थूल नेत्र या कानों का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आत्मा की समीपता में बैठा हुआ अन्तःकरण अपनी दिव्य इन्द्रियों की सहायता से इस कार्य को आसानी से पूरा कर लेता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म शब्द दिव्य विचार तब तक धुँधले रूप में सुनाई पड़ता है, जब तक कषाय-कल्मष आत्मा में बने रहते हैं जितनी-जितनी आन्तरिक पवित्रता बढ़ती जाती है उतने ही यह दिव्य संदेश बिलकुल स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। आरम्भ में अपने लिए कर्त्तव्य का बोध होता है, पाप-पुण्य का संकेत होता है, बुरा कार्य करते समय अन्तर में भय, घृणा, लज्जा, संकोच आदि का होना तथा उत्तम कार्य करते समय आत्म-संतोष, प्रसन्नता, उत्साह होना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी स्थिति का बोधक है। यह दिव्य सन्देश आगे फलकर भूत, भविष्य, वर्तमान की सभी घटनाओं को प्रगट करता है, किसके लिये उसका क्या भवतव्य बन रहा है और भविष्य में उसके लिये क्या घटना घटित होने वाली है यह सब कुछ उसे प्रकट हो जाता है और भी ऊँची स्थिति पर पहुँचने पर उसके लिये सृष्टि के सब रहस्य खुल जाते हैं, कोई ऐसी बात नहीं होती जो उससे छिपी हो, परन्तु जैसे ही इतना बड़ा ज्ञान उसे मिलता है वैसे ही वह उसका उपयोग करने में अत्यन्त सावधान हो जाता है ? बाल बुद्धि के लोगों के हाथ में यह दिव्य ज्ञान पड़ जाय तो वे उसे बाजीगरी की खिलवाड़ खड़ी करने में ही नष्ट कर दें पर अधिकारी पुरुष अपनी इस शक्ति का किसी को परिचय तक नहीं होने देते और उसे भौतिक बखेड़ों से पूर्णतया बचाकर उसे अपनी तथा दूसरों की आत्मोन्नति में लगाते हैं।

शब्द ब्रह्म का दूसरा रूप जो विचार सन्देश की अपेक्षा कुछ स्थूल हैं, वह है नाद। प्रणव योग में हम यह बता चुके हैं कि प्रकृति के अन्तराल में एक ध्वनि प्रतिक्षण उठती रहती है, जिसकी प्रेरणा से आघातों के द्वारा परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है और सृष्टि का समस्त क्रिया-कलाप चलता है। यह प्रारम्भिक शब्द—ॐ है। यह ॐ ध्वनि जैसे-जैसे अन्य तत्वों के क्षेत्रों में होकर गुजरती है वैसे ही वैसे उसकी ध्वनि में अन्तर आता जाता है। वंशी के छिद्र में हवा फूँकते हैं तो उसमें एक ध्वनि उत्पन्न होती है पर आगे के छिद्रों में से जिस छिद्र में, जितनी हवा निकाली जाती है, उसी के अनुसार भिन्न-भिन्न स्वरों की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार ॐ ध्वनि भी विभिन्न तत्वों के सम्पर्क में आकर विविध प्रकार की स्वर लहरियों में परिणत हो जाती है। इन स्वर लहरियों को सुनना ही नाद योग है।

पंच-तत्वों से प्रतिध्वनित हुई ओंकार की स्वर लहरियों को सुनने की नाद योग साधना कई दृष्टियों से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। प्रथम तो इस दिव्य संगीत को सुनने में इतना आनन्द आता है जितना किसी, मधुर से मधुर वाद्य या गायन को सुनने में नहीं आता, दूसरे इस नाद श्रवण से मानसिक शक्ति तन्तुओं का प्रस्फुटन होता है। सर्प जब संगीत सुनता है, तो उसकी नाड़ियों में एक विद्युत लहर प्रवाहित हो उठती है, मृग का मस्तिष्क मधुर संगीत सुनकर इतना उल्लसित हो जाता है कि उसे तन बदन का होश नहीं रहता, योरोप में गौएँ दुहते समय मधुर बाजे बजाये जाते हैं जिससे उनका स्नायु समूह उत्तेजित होकर अधिक मात्रा में दूध उत्पन्न करता है। नाद का दिव्य संगीत सुनकर मानव मस्तिष्क में भी ऐसी स्फुरणा होती है जिसके कारण अनेकों गुप्त मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं, इस प्रकार भौतिक और आत्मिक दोनों ही दिशाओं में प्रगति होती है।

तीसरा लाभ एकाग्रता है। एक वस्तु पर—नाद पर ध्यान एकाग्र होने से मन की बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्रित होती हैं और इस प्रकार मन को वश में करने तथा निश्चित कार्य पर उसे पूरी तरह लगा देने की साधना सफल हो जाती है। यह सफलता कितनी शानदार है, इसे प्रत्येक अध्यात्म मार्ग का जिज्ञासु भली प्रकार जानता है। आतिशी काँच द्वारा एक-दो इंच जगह की सूर्य किरणें एकत्रित कर देने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। मानव प्राणी के सुविस्तृत शरीर में बिखरी हुई अनन्त दिव्य शक्तियों का एकीकरण ऐसी महान् शक्ति उत्पन्न करता है, जिसके द्वारा इस संसार को हिलाया जा सकता है और अपने लिये आकाश में मार्ग बनाया जा सकता है।

नाद की स्वर लहरियों को पकड़ते-पकड़ते साधक ॐ की रस्सी को पकड़ता हुआ उस उद्गम ब्रह्म तक पहुँच जाता है, जो आत्मा का अभीष्ट स्थान है। ब्रह्मलोक की प्राप्ति, दूसरे शब्दों में मुक्ति, निर्वाण, परमपद आदि नामों से पुकारी जाती है। नाद के आधार पर मनोलय करता हुआ साधक योग की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचता है और अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। नाद का अभ्यास किस प्रकार करना चाहिये अब इस पर कुछ प्रकाश डालते है—

अभ्यास के लिये ऐसा स्थान तलाश कीजिये जो एकान्त हो और जहाँ बाहर की अधिक आवाजें न आती हों। तीक्ष्ण प्रकाश इस अभ्यास में बाधक है। इसलिये कोई अंधेरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोठरी ढूँढ़नी चाहिये। एक पहर रात जाने के बाद से लेकर सूर्योदय से पूर्व तक का समय इसके लिये बहुत ही अच्छा है। यदि इसं समय की व्यवस्था न हो सके तो प्रातः ६ बजे तक और शाम को दिनं छिपे बाद का कोई समय नियत किया जा सकता है। नित्य, नियमित समय-समय पर अभ्यास करना चाहिये। अपने नियत कमरे में एक आसन या आराम कुर्सी बिछाकर बैठो। यदि आसन पर बैठा तो पीठ पीछे कोई मसंद या कपड़े की गठरी आदि रख लो। यह भी न हो तो अपना आसन एक कोंने में लगाओ। जिस प्रकार शरीर को आराम मिले, उस तरह बैठ जाओ और अपने शरीर को ढीला छोड़ने का प्रयत्न करो। भावना करो कि मेरा शरीर रूई का ढेर मात्र है और मैं इस समय इसे पूरी तरह स्वतन्त्र छोड़ रहा हूँ। थोड़ी देर में शरीर बिल्कुल ढीला हो जायेगा और अपना भार अपने आप न सहकर इधर-उधर को ढुलने लगेगा। आराम कुर्सी, मसन्द या दीवार का सहारा ले लेने से शरीर ठीक प्रकार अपने स्थान पर बना रहेगा। साफ रूई की मुलायम सी दी डाटे बनाकर उन्हें कानों से इस प्रकार लगा लो कि बाहर की कोई आवाज भीतर प्रवेश न कर सके। उँगलियों से कान के छेद बन्द करके भी काम चल सकता है। अब बाहर की कोई आवाज तुम्हें सुनाई न पड़ेगी। यदि पड़े भी तो उस ओर से ध्यान हटाकर अपने मूर्धा स्थान पर ले आओ। और वहाँ जो शब्द हो रहे हैं, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनने का प्रयत्न करो। आरम्भ में शायद कुछ भी सुनाई न पड़े, पर दो चार दिन के प्रयत्न के बाद जैसे-जैसे सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय निर्मल होती जायेंगी, वैसे ही वैसे शब्दों की स्पष्टता बढ़ती जायेगी। पहले-पहले कई प्रकार के शब्द सुनाई देते हैं। शरीर में जो रक्त प्रवाह हो रहा है, उसकी आवाज रेल की तरह धक्-धक्-धक् सुनाई पड़ती है। वायु के आने-जाने की आवाज बादल गरजने जैसी होती है, रसों के पकने और उनके आगे की ओर गति करने की आवाज चटकने की-सी होती है, यह तीन प्रकार के शब्द शरीर की क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार दो प्रकार के शब्द मानसिक क्रियाओं के हैं, मन में जो चंचलता की लहरें उठती हैं, वे मानस तन्तुओं पर टकराकर ऐसे शब्द करती हैं, मानों टीन के ऊपर मेह बरस रहा हो और जब मस्तिष्क बाह्य ज्ञान को ग्रहण करके अपने में धारण करता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानो कोई प्राणी साँस ले रहा हो। यह पाँचों शब्द शरीर और मन के हैं, कुछ ही दिन के अभ्यास से साधारणतः दो-तीन सप्ताह के प्रयत्न से यह सब शब्द स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ते हैं। इन शब्दों के सुनने से सूक्ष्म इन्द्रियाँ निर्मल होती जाती हैं और गुप्त शक्तियों को ग्रहण करने की उनकी योग्यता बढ़ती जाती है।

जब नाद श्रवण करने की योग्यता बढ़ती जाती है तो वंशी या सीटी से मिलती-जुलती अनेक प्रकार की शब्दावलियाँ सुनाई पड़ती हैं, यह सूक्ष्म लोक में होने वाली क्रियाओं की परिचायक हैं। बहुत दिनों से बिछुड़े हुये बच्चे को यदि उसकी माता की गोद में पहुँचाया जाता है, तो वह आनन्द से विभोर हो जाता है, ऐसा ही आनन्द सुनने वाले को आता है, जिन सूक्ष्म शब्द ध्वनियों को आज वह सुन रहा है। वास्तव में वह उसी तत्व के निकट से आ रही हैं, जहाँ से कि आत्मा और परमात्मा का बिलगाव हुआ है और जहाँ पहुँचकर दोनों फिर एक हो सकते हैं। धीरे-धीरे यह शब्द स्पष्ट होने लगते हैं और अभ्यासी को उनके सुनने में अद्भुत आनन्द होने लगता है। कभी-कभी तो वह उन शब्दों में मस्त होकर आनन्द से विह्वल हो जाता है और अपने तन-मन की सुध भूल जाता है। अन्तिम शब्द 'ॐ का है, यह बहुत ही सूक्ष्म है। इसकी ध्वनि घण्टा-ध्वनि के समान होती है। घड़ियाल में हथौड़ी मार देने पर जैसे वह कुछ देर तक झन-झनाती रहती है, उसी प्रकार 'ॐ' का घण्टा शब्द सुनाई पड़ता है।

ॐकार ध्वनि जब सुनाई पड़ने लगती है तो निद्रा, तन्द्रा या बेहोशी जैसी दशा उत्पन्न होने लगती है। साधक तन-मन की सुध भूल जाता है और समाधि सुख का—तुरीय अवस्था का आनन्द लेने लगता है। उस स्थिति से ऊपर बढ़ने वाली आत्मा परमात्मा में प्रवेश करती जाती है और अन्ततः पूर्णतया परमात्म अवस्था को प्राप्त कर लेती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाद के अतिरिक्त विचारधारा की सूक्ष्म साधना के लिये 'रिक्त मानस' का अभ्यास किया जाता है। इसे योग के आचार्य सूक्ष्म नाद कहते हैं। सूक्ष्म नाद की साधना इस प्रकार है—

शान्त चित्त होकर पद्मासन से बैठिये। मेरुदण्ड सीधा रखिये। नेत्रों को बन्द कर लीजिये। भावना कीजिये कि आपके चारों ओर अनन्त शान्ति का साम्राज्य है चारों ओर नील आकाश के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है।

अब अपने त्रिकुटी स्थान पर ध्यान एकत्रित कीजिये। एक कान से कील ठोककर दूसरे कान में निकाली जाय और दूसरी कील दोनों भवों के बीच में ठोककर पीछे मस्तक में पार की जाय तो जिस स्थान पर दोनों कीलें मिलेंगी उसे त्रिकुटि कहेंगे। कोई विचार मन में आने दीजिये। केवल शून्य, शान्तिमय, शून्य, अनन्त शान्ति, घोर निःस्तब्धता की भावना करते रहिये। इस भावना को तोड़ने वाले भाव उत्पन्न हों तो उन्हें रोक-रोककर पुनः उसी शून्य की भावना पर मन लगाना चाहिये।

'यह रिक्त मानस' की साधना आरम्भ में तो कठिन मालूम पड़ती है पर धीरे-धीरे उस पर चित्त जमने लगता है। तब उस शून्य लोक में स्थिर एकाकी मन को ऐसा प्रतीत होता है कि कोई सूक्ष्म विचारधारा दिव्य लोक से बहती हुई आ रही है और उसे प्रवाहित कर रही है। मन अनुभव करता है कि उसके भीतर क्या संदेश आ रहे हैं और क्या दिव्य संवाद उसे सुनाई पड़ रहे हैं ? यह संदेश धीरे-धीरे अधिक स्पष्ट होते जाते हैं और आकाशवाणी द्वारा उसे संदेश, संकेत एवं प्रत्युत्तर होने लगते हैं।

इस ध्यान साधना के अतिरिक्त साधक का दैनिक व्यावहारिक जीवन अधिकाधिक पवित्र एवं संयमशील होना चाहिये क्योंकि बिना व्यावहारिक पवित्रता एवं शान्ति के आन्तरिक शान्ति स्थिर नहीं रह सकती और अशान्त अन्तःकरण में दैवी संदेश में धूमिल एवं अस्फुट ही प्राप्त होते हैं। इसलिये नाद योगी अपने आचरण और विचारों को परम सात्विक रखने के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

(१२) ग्रन्थि योग

याश्चक्रग्रन्थयो देहे गुप्तास्तिष्ठन्ति देहिनः।
प्रददाति प्रचण्डां ताः प्रेरणां शुद्धमानसे।।
तास्तु जागृत्य वै सर्वाः कुरुते साधनापरः।
साक्षात्कारं कुण्डलिन्याः ग्रन्थियोगः स उच्यते।।

(देहिनः) मनुष्य की (देहे) देह में (याः) जो (चक्र ग्रन्थयः) चक्र और ग्रन्थियाँ (गुप्ताः) गुप्त रूप से (तिष्ठन्ति) रहती हैं (ताः) वे चक्र और ग्रन्थियाँ (शुद्धमान से) मनुष्य के शुद्ध हृदय में (प्रचण्डां) प्रचण्ड (प्रेरणां) प्रेरणा को (प्रददाति) प्रदान करती हैं। (ताः सर्वाः) उन समस्त चक्र और ग्रन्थियों को (जाग्रत्य) जाग्रत करके (साधनापरः) साधना में रत मनुष्य (कुण्डलिन्याः) कुण्डलिनी का (साक्षात्कारं) साक्षात्कार (कुरुते) करता है। (सः) वह ही (ग्रन्थियोगः) ग्रन्थियोग (उच्यते) कहलाता है।

अन्तराणां तु गायत्र्या गुम्फनं ह्यस्ति तद्विधम्।
भवन्ति जागृता येन सर्वागुह्यास्तु ग्रन्थयः।।

(गायत्र्याः) गायत्री के (अक्षराणां) अक्षरों का (गुम्फनं) गुम्फन (तद्विधं) ऐसा (अस्ति) है (येन) जिससे (सर्वाः) समस्त (गुह्याः) गुह्य (ग्रन्थयः) ग्रन्थियाँ (जाग्रताः भवन्ति) जाग्रत हो जाती हैं।

जागृत ग्रन्थयस्तेताः सूक्ष्माः साधक मानसे।
दिव्य शक्ति समुद्भतिं क्षिप्रं कुर्वन्त्यसंशयम्।।

(जागृताः) जागृत हुई (एताः ये (सूक्ष्माः) सूक्ष्म (ग्रन्थियः) ग्रन्थियाँ (साधक मानसे) साधक के मन में (असंशयं) निस्सन्देह (क्षिप्रं) शीघ्र ही (दिव्य शक्ति समुद्भुतिं कुर्वन्ति) दिव्य शक्तियों को पैदा कर देती हैं।

प्रादुर्भवन्ति वै सूक्ष्माश्चतुर्शिति शक्तयः।
अक्षरेभ्यस्तु गायत्र्याः मानवानां हि मानसे।।

(मानवानां) मनुष्यों के (मानसे) अन्तःकरण में (गायत्र्याः) गायत्री के (अक्षरेभ्यः) अक्षरों से (सूक्ष्माः) सूक्ष्म भूत (चतुर्विंशति शक्तयः) चौबीस शक्तियाँ (प्रादुर्भवन्ति) प्रकट होती है।

मनुष्य शरीर में अनेकों सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं। इन ग्रन्थियों से छै प्रधान ग्रन्थियों—छै प्रधान चक्रों का वर्णन कुण्डलिनी योग में हो चुका है। उनके अतिरिक्त और भी अनेकों महत्त्वपूर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ग्रन्थियाँ हैं, जिनका जागरण होने से ऐसी शक्तियों की प्राप्ति होती है, जो जीवनोन्नति के लिये बहुत ही उपयोगी हैं।

गायत्री मन्त्र का अन्तिम पद 'प्रचोदयात्' इन ग्रंन्थियों को प्रेरणा देने के लिये है। यह प्रकट है कि प्रत्येक अक्षर का कोई उद्गम स्थान होता है और उसके उच्चारण से हमारे किसी आन्तरिक भाग के ऊपर विशेष रूप से दबाव पड़ता है। जिन्होंने संस्कृत का व्याकरण पढ़ा है, उन्हें पता है कि किस शब्द का उच्चारण मुख के किस भाग से होता है। अ, क, ख, ग, घ, ह और विसर्गों का उच्चारण कंठ से, इ, च, छ, ज, झ, य, श, का उच्चारण तालु से, ऋ, ट, ठ, ड, ढ, र, ष, का उच्चारण मूर्धा से, लृ, त, थ, द, ध, ल, स, का उच्चारण दाँतों से उ, प, फ, ब, भ, म, का ओष्ठों से, य, म, ङ, ण, न का नाक से ए ऐ का कंठ तालु से ओ औ का कण्ठ ओष्ठ से, व का दन्त ओष्ठ से उच्चारण होता है। यह तो हुई शब्दों की स्थूल-ध्वनि जो मुख के अन्तर्गत विविधि अंगों से होती है।

जिन स्थानों से इन शब्दों का मूल उद्गम है वे स्थान भिन्न हैं। शरीर के अन्तर्गत विविध स्थानों के स्नायु समूह तथा नाड़ी तन्तुओं का जब प्रस्फुरण होता है, तब उस शब्द का पूर्व रूप बनता है, जो मुख में जाकर उसके किसी विशेष भाग से प्रस्फुटित होता है। व्यंजनों के साथ स्वरों का सम्मिलन होने से शब्द का मूल उद्गम स्थान भी बदल जाता है।

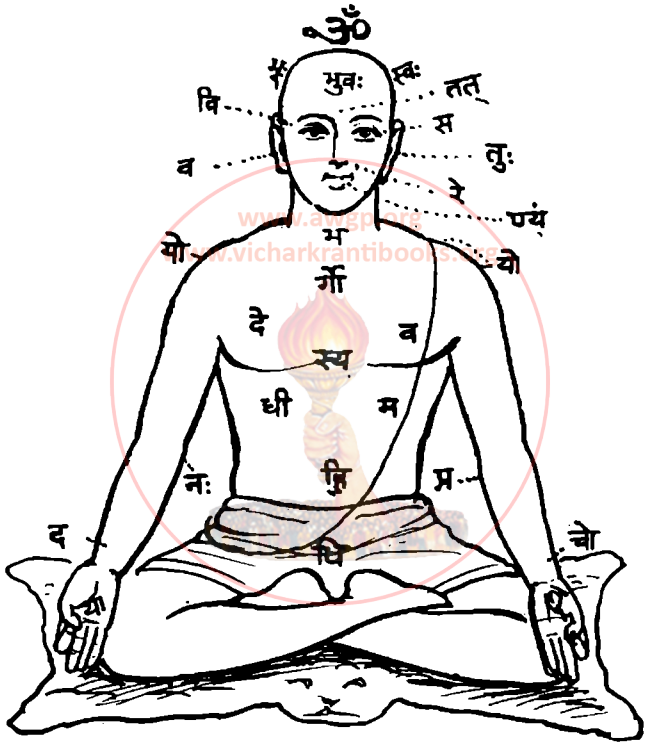
हमारे शरीर में चौबीस ग्रन्थियाँ हैं। जिनके स्थान, नाम, वर्ण, फल आदि का परिचय दिया जाता है। गायत्री के चौबीस अक्षर इसी प्रकार के हैं, जिनका उद्गम स्थान इन चौबीस ग्रन्थियों पर है। जब हम गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हैं तो क्रमशः इन सभी ग्रन्थियों पर आघात पहुँचता है और वे धीरे-धीरे सुप्त अवस्था का परित्याग करके जागृति की ओर चलती हैं। हारमोनियम बजाते समय जिस पर्दे पर हाथ रखते हैं, वह स्वर बोलने लगता है। इसी प्रकार इन चौबीस अक्षरों के उच्चारण से वे चौबीस ग्रन्थियाँ झंकृत होने लगतीं हैं। इस झंकार के साथ स्वयमेव उनमें जागृति की विद्युत दौड़ती है। फलस्वरूप धीरे-धीरे साधक में अनेकों विशेषतायें पैदा होती जाती हैं और उसे अनेकों प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक लाभ मिलने लगते हैं।

अक्षर	वर्ण	शक्ति	देवता	गुण
१-तत्	चम्पक-पीत	तापिनी	अग्नि	सफलता
२-स	अलसी पुष्प सदृश	सफला	वायु	पराक्रम
३-वि	विद्रुम	विश्वा	सूर्य	पालन
४-तु	इन्द्रनीलाभा	तुष्टिं	विष्णु	कल्याण
५-र्व	जलती अग्नि	वरदा	अर्यमा	योग
६-रे	स्फटिक	रेवती	इन्द्र	प्रेम
७-णि	विद्युत्चक्	सूक्ष्मा	विश्वेदेवः	घन
८-यं	तारकाषर्ण	नाना	पर्जन्य	तेज
९-भ	मेघवर्ण	भर्गा	यम	रक्षा
१०-र्गो	रक्तवर्ण	गौतमी	गान्धर्व	बुद्धि
११-दे	हल्का रक्तवर्ण	देविका	पूषा	दमन
१२-व	शुक्र	वरा	शिव	निष्ठा
१३-स्व	कांचन	सिंहनी	मैत्र	धारणा
१४-धी	कुन्दन	ध्याना	त्वष्ट्रा	प्राण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

१५-म	पद्मराग	मर्यादा	वसु	मर्यादा
१६-हि	शंखवर्ण	स्फुटा	मरुत	तप
१७-धि	पाण्डु	बुद्धि	सोम	जागृति
१८-यो	अरुण	योगमाता	अंगिरा	जागृति
१९-योः	हारिद्र	योगिनी	वृहस्पति	उत्पादन
२०-नः	शहद	पृथ्वी	अश्विनी कुमार	रस
२१-प्र	कुंकम	प्रभवा	प्रजापति	आदर्श
२२-चो	सूर्यकान्त	ऊष्मा	ब्रह्मा	साहस
२३-द	दुग्धवर्ण	दृश्यमाना	सविता	विवेक
२४-यात्	प्रवालवर्ण	निरंजना	रुद्र	लोकहित



यह शक्तियाँ किस स्थान पर हैं इसका दिग्दर्शन शरीर का चित्र बनाकर प्रकट किया जा रहा है। इन स्थानों पर जो ग्रथियाँ हैं उनके नाम, वर्ण, शक्ति देवता और गुण ऊपर बताये जा चुके हैं। जैसे गायत्री मन्त्र का प्रथम अक्षर तत् है। इसका स्थान दोनों भुवों के मध्य भृकुटी में है। भृकुटी में अत्यन्त सूक्ष्म ग्रन्थि होती है, जिसका रंग पीले चम्पा के पुष्प जैसा होता है। उसमें जो शक्ति निवास करती है उसे योग की भाषा में 'तापिनी' कहते हैं। यह अग्नि के देवतत्व का आधिपत्य है। यह ग्रन्थि जैसे-जैसे जागृत होती जाती है वैसे-वैसे सफलतायें प्राप्त करने का गुण बढ़ता जाता है। इसी प्रकार इस शरीर चित्र और वर्ण चक्र के आधार पर चौबीसों अक्षरों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री के चौबीसों अक्षर अपने अपने स्थान पर अवस्थित उन शक्तियों को जगाते हैं जिनके फलस्वरूप विविधि प्रकार के लाभ होते हैं। इतने महान लाभ के लिये कोई पृथक् क्रिया नहीं करनी पड़ती, केवल गायत्री के शब्दोच्चारण से स्वयमेव ग्रन्थि जागरण होता चलता है और साधक से अपने आप ग्रन्थि योग की साधना होती चलती है।

आत्म जागरण से सिद्धियाँ

सर्वा जीवनसिद्धीस्तु योगा एते हि द्वादश।
दत्वा हि साधकं लोके प्रापयन्त्यव्ययं पदम्।।

(एते) ये (द्वादश) बारह (योगाः) योग (सर्वाः) समस्त (जीवनसिद्धीः) जीवन की सिद्धियों को (दत्वा) देकर (लोके) संसार में (साधकं) साधक को (अव्ययंपदं) (प्रापयन्ति) प्राप्त कराते हैं।

एकस्य स्तोकमप्येभ्यः साधनां विदधाति यः।
सततं हि सरत्येग्रे शान्तिमार्गे स साधकः।।

(एभ्यः) इनमें से (यः) जो (एकस्य) एक का (स्तोकमपि) थोड़ी भी (साधनांविदधाति) साधना करता है (सः साधकः) वह साधक (शान्ति मार्गे) शान्ति के मार्ग में (सततं) लगातार (अग्रे) आगे (सरति) बढ़ता जाता है।

पिछले पृष्ठों पर जिन १२ योगों का थोड़ा सा दिग्दर्शन कराया गया है वे ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं कि उन से किसी की थोड़ी-सी भी साधना बन पड़े तो उससे आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होने में बड़ी मदद मिलती है। इनमें से किसी भी एक योग को यदि मनुष्य दृढ़तापूर्वक पकड़ ले और धैर्य-श्रद्धा, एकाग्रता एवं निश्चलता के साथ उस पर डटा रहे तो यह निश्चित है कि आत्म-जागरण होगा और उस जागृति के साथ-साथ, व आध्यात्मिक शक्तियाँ जो प्रसुप्त अवस्था में पड़ी हुई थीं, सचेत होकर प्रौढ़ता और परिपुष्टता को प्राप्त होती हैं।

ऐसी दशा में स्वभावतः वे सफलतायें दृष्टिगोचर होती हैं, जिन्हें ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं। ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त करने का कोई पृथक् साधन या पृथक् मार्ग है। जो ऐसा सोचते हैं कि अमुक साधन करने से ही अमुक सिद्धि मिलेगी वे भूल करते हैं। सिद्धियाँ कोई पृथक् वस्तु नहीं हैं, वह तो आत्मजागरण का एक स्वाभाविक प्रतिफल हैं। जैसे-जैसे आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित होगा वैसे ही वैसे उसके वे दिव्य गुण भी प्रकट होंगे जो ईश्वर के अंश में होने चाहिये।

जलता हुआ अंगार जब नये ईंधन से विलग कर दिया जाता है तो धीरे-धीरे उसके ऊपर का भाग ठण्डा होकर राख के रूप में परिणित होता जाता है। जब यह राख की तह मोटी हो जाती है तो बाहर से छूने पर उसमें अग्नि का गुण नहीं मालूम पड़ता। उसे छूने से न हाथ जलता है न गर्मी मालूम होती है। पर जब उस राख को हटा दिया जाता है तो भीतर से वही जलती हुई अग्नि प्रकट हो जाती है जो नया ईंधन मिलने पर प्रचण्ड दावानल का रूप धारण कर सकती है। आत्मा को जब सतोगुणी विचार और कार्यों रूपी ईंधन नहीं मिलता तो वह अंगार की तरह ठण्डी होकर राख से ढकने लगती है। तब ऐसा लगता है कि मनुष्य में कोई दैवी तत्व नहीं, यह तो विषय-विकारों का दीनता, दासता दरिद्रता से ग्रस्त पुतला मात्र है। परन्तु जब यह अज्ञान रूप राख योग साधन द्वारा हटा दी जाती है तो उसकी आत्मिक शक्ति प्रकट होती है। तब पता चलता है कि दर-दर की ठोकर खाने वाले और दुःख दरिद्र से विलखने वाले मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है ? जब साधक अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में जाग्रत होता है तो उसका आत्मिक तेज जाज्वल्यमान होकर प्रकाशवान् होता है। आत्मिक साधना रूपी ईंधन को पाकर जब यह ब्रह्माग्नि प्रचण्ड रूप धारण करती है तो उसकी ज्योति, उष्णता एवं शोभा दूर-दूर तक फैलती है। यही सिद्धियों का वास्तविक रूप है। जागृत आत्मा में ऐसी अनेकों विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं, जो साधारण लोगों में नहीं होतीं, उन्हें वे अनौखी और आश्चर्य जनक प्रतीत होती हैं जो वस्तु सबके पास नहीं किसी विरले के ही पास है वह अद्भुत मालूम पड़ती है। सिद्धियाँ यद्यपि आत्मा की स्वाभाविक स्थिति की प्रतीक है तो भी वे आश्चर्यजनक इसलिये मालूम पड़ती है क्योंकि वह विशेषतायें हर किसी में नहीं होती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा परमात्मा का अंश है। जो गुण, जो विशेषता, जो शक्ति, परमात्मा में है वही आत्मा में भी है, पर उनका प्रकटीकरण इसलिये नहीं होता क्योंकि उसका आत्म तेज माया से कषाय-कल्मषों से ढका रहता है। यह आवरण जब हटने लगता है तो मनुष्य मायाबद्ध न रहकर योग सिद्ध बन जाता है। सिद्धत्व एक उच्च कोटि का आध्यात्मिक वैभव है, जिसे प्राप्त करके आत्मा अपनी दैवी संपत्तियों से सुसज्जित होता है और उनकी सम्पदाओं के द्वारा दैवी आनन्द का उपयोग करता है।

गायत्री का मन्त्र एक महासागर है। इसके गर्भ में कितने-कितने प्रकार की कितनी असंख्य रत्न-राशियाँ छिपी पड़ी हैं, इसका पूरी तरह पता लगाना तो दूर उनकी कल्पना कर सकना भी कठिन है। भौतिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक सभी प्रकार के ज्ञान रत्न उसके गर्भ में मौजूद हैं क्योंकि इस एक ही मन्त्र से चारों वेदों का निर्माण हुआ है। वेद समस्त सत्य विद्याओं के भंडार हैं और जो विद्यायें वेदों में हैं वे सब गायत्री के अन्तर्गत मौजूद हैं। योग साधन भी उसमें अनेकों हैं पर उन अनेकों में जो प्रधान १२ योग थे, वे इस पुस्तक में वर्णन किये हैं। इन योगों से भी साधनीय हैं और एक से एक उत्तम हैं। जिसकी भी साधना की जाय वही आशाजनक फल देगा, रुचि भिन्नता और परिस्थिति की अनुकूलता की दृष्टि से इनकी संख्या इतनी है। इनमें से अपनी पसंदगी की साधना चुनी जा सकती है और इच्छानुकूल लाभ उठाया जा सकता है। एक समय में कई योगों का साथ-साथ साधन करना या एक-एक करके सभी योगों का साधना यह तरीके भी कार्य में लाये जा सकते हैं पर कार्यक्रम बनाने से पूर्व किसी अनुभवी व्यक्ति से सलाह अवश्य ले लेनी चाहिये क्योंकि किस के लिये कौन योग उपयुक्त होगा इसका ठीक निर्णय अध्यात्म मार्ग के अनुभवी व्यक्ति ही कर सकते हैं ?

गायत्री द्वारा अन्य योग साधनायें

योग का मुख्य उद्देश्य आत्मा का परमात्मा के सन्निकट होना है, इसके अनेक मार्ग ऋषियों और महर्षियों ने देश, काल और पात्र के अनुसार खोजकर निकाले हैं। किसी में शारीरिक विधियों को प्रधानता दी है, किसी में मानसिक वृत्तियों को वशीभूत करने पर जोर दिया है, किसी ने ज्ञान का साधन प्रधान माना है तो किसी ने ध्यान पर जोर दिया है। इसी प्रकार जपयोग, मन्त्र-योग, लयं-योग, नादयोग, स्वर-योग आदि कितनी ही प्रणालियाँ आत्मा को ऊँचा उठाकर परमात्मा तक पहुँचाने की निकाली गई हैं। इनका कुछ परिचय नीचे दिया जाता है।

(१) हठयोग का मुख्य उद्देश्य शारीरिक अंगों और इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त करके सांसारिक विषयों से विरत होना और इस उपाय से मन को एकाग्र करते हुये समाधि द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करना माना गया। इसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये आठ अंग बतलाये हैं। इनमें से यम और नियम तो प्रत्येक प्रकार के योग तथा साधना में अनिवार्य हैं क्योंकि जब तक शरीर और मन को निर्मल और शुद्ध नहीं बनाया जाता, तब तक किसी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति की बात सोचना ही व्यर्थ है। इसलिये हठयोग का आरम्भ आसन से समझा जाता है। हठयोग के अनेक आसन स्वास्थ्य रक्षा के उत्कृष्ट साधन माने गये हैं और आजकल अनेक शिक्षा संस्थाओं में बालकों और नवयुवकों को उनका अभ्यास कराया जाता है। आसन में स्थिरता प्राप्त होने से मनुष्य का मन भी स्थिर होने लगता है।

हठयोग के तीन 'बन्ध' भी बड़े प्रभावशाली हैं। 'मूलबन्ध' से वीर्य का अधः प्रवाह रुककर प्राणी की ऊर्द्धगति होती है और रक्त-संचार की गति ठीक रहती है। 'जालन्धरबन्ध' से पैर के अँगूठे से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक सोलह स्थानों की नाड़ियों पर प्रभाव पड़ता है और श्वांस-प्रश्वांस की क्रिया पर अधिकार होता है। "उड्डियान बन्ध' से जीवनी-शक्ति बढ़कर दीर्घायु प्राप्त होती है। सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है और स्वाधिष्ठान चक्र में चेतना आने से वह जागृत होने योग्य हो जाता है।

इसी प्रकार २५ प्रकार की मुद्राओं का वर्णन भी हठयोग में आता है। इनके द्वारा शरीर और मन में अनेक प्रकार की उपयोगी शक्तियों का निवास होता है। महामुद्रा में दाहिना और बायाँ पैर क्रमशः लम्बा करके और मस्तक को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घुटने से लगाकर प्राणायाम किया जाता है। इसके फल से अहंकार, अविद्या, भय, दोष, मोह आदि पंच क्लेशदायक विकारों का शमन होता है। भगन्दर, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं, शरीर का तेज बढ़ता है और वृद्धावस्था दूर हटती है।

खेचरी मुद्रा—जीभ को लम्बी करके उसे उलटना और तालू के गड्ढे में जिव्हा का अग्रभाग लगा देना खेचरी मुद्रा कहलाती है। इसके लिये शहद और काली आदि लगाकर जीभ को बाहर की तरफ सूँता या खींचा जाता है अथवा जीभ के नीचे के नाड़ी-तन्तुओं को क्रमशः काटकर उसे लम्बी बनाया जाता है। इसके प्रभाव से कपाल-गह्वर में होकर प्राण-शक्ति का संचार होने लगता है और सहस्रदल कमल में अवस्थित अमृत निर्झर झरने लगता है, जिससे दिव्य आनन्द की प्राप्ति होती है। प्राण की अर्द्धगति हो जाने से मृत्यु-काल में जीव ब्रह्मरन्ध्र में होकर ही प्रयाण करता है, इसलिये उसे मुक्ति या स्वर्ग की सद्गति प्राप्त होती है।

विपरीतकरणी मुद्रा—मस्तक को जमीन पर रखकर दोनों हाथों को उसके समीप रखना और पैरों को ऊपर की तरफ सीधा करना, इसको विपरीतकरणी मुद्रा कहते हैं। शीर्षासन भी इसी का नाम है। इसके साधन से मस्तिष्क को बड़ी शक्ति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार षट्मुखी, शाम्भवी, अगोचरी, भूचरी, नभो मुद्रा, शक्तिचालनी, ताड़गी, माण्डवी वैश्वानरी, वायवी, काकी, भुजंगनी आदि अनेक योग मुद्रायें हैं, जिनके द्वारा नाना प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

हठयोग के प्राणायाम में श्वांस को भीतर खींचते हुये क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक करना पड़ता है। प्राणायाम के लोम-विलोम, सूर्य-भेदन, उज्जायी, शीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, प्लावनी, ये नौ भेद हैं। इनके द्वारा श्वांस-प्रश्वांस पर नियन्त्रण होकर अनेक व्याधियों का निराकरण और शरीरस्थ शक्तियों को जागृत किया जा सकता है।

आत्मानुभूतियोग—आत्मा के सूक्ष्म अन्तराल में, अपने आपके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान मौजूद है। वह अपनी घोषणा सदैव इस प्रकार करती रहती है कि जिससे बुद्धि भ्रमित न हो और अपने स्वरूप को न भूलें। थोड़ा ध्यान देने पर आत्मा की इस वाणी को हम स्पष्ट रूप से सुन सकते हैं और उस पर निरन्तर ध्यान देने से आत्मा का साक्षात्कार भी कर सकते हैं।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व, नित्यकर्म से निबटकर पूर्व को मुख करके किसी शान्त स्थान में बैठिये। मेरुदण्ड सीधा रहे। नेत्र बन्ध रखिये और स्वाभाविक रीति से श्वांस लीजिये। जब नासिका द्वारा वायु भीतर प्रवेश करने लगे, तो सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय को सजग करके ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिये कि वायु के साथ-साथ 'सो' की सूक्ष्म ध्वनि हो रही है। जब तक वायु भीतर रहे तब तक 'अ' और जब बाहर निकलने लगे तो 'हँ' की ध्वनि का अनुभव कीजिये। साथ ही हृदय-स्थित सूर्य चक्र के प्रकाश बिन्दु में आत्मा के तेजोमयस्वरूप की भावना कीजिये। इस प्रकार 'सोऽहं' (यह मैं हूँ) का अजपाजाप होने लगेगा।

'सोऽहं' साधना की उन्नति जैसे-जैसे होती जाती है, वैसे ही वैसे विज्ञानमय कोष का परिष्कार होता जाता है। आत्मज्ञान बढ़ता है और धीरे-धीरे आत्म-साक्षात्कार की स्थिति निकट आती चलती है। आगे चलकर साँस पर ध्यान जमना छूट जाता है और केवल तब सूर्य चक्र में विशुद्ध ब्रह्मतेज के ही दर्शन होते हैं। उस समय समाधि की-सी अवस्था हो जाती है और क्रमशः साधक ब्राह्मी स्थिति का अधिकारी हो जाता है।

स्वर-योग—विज्ञानमय कोश वायु प्रधान होने के कारण, उसमें वायु-संस्थान विशेष रूप से सजग रहता है। इस वायु तत्व पर अगर अधिकार प्राप्त कर लिया जाय तो अनेक प्रकार से अपना हित सम्पादन किया जा सकता है। स्वर-शास्त्र के अनुसार श्वांस-प्रश्वांस के मार्गों को नाड़ियाँ कहते हैं, जिनकी संख्या शरीर में ७२०० हैं। इनको नसें न समझना चाहिये, स्पष्टतः यह प्राण-वायु के आवागमन के मार्ग हैं। इनमें तीन-इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रधान नाड़ियाँ हैं। इड़ा को 'चन्द्रनाड़ी' भी कहते हैं, जिसका संस्थान बायें नथुने में है। पिंगला को 'सूर्यनाड़ी' कहते हैं, जो दाहिने नथुने में हैं। जिस प्रकार संसार में सूर्य और चन्द्र नियमित रूप से अपना-अपना कार्य करते हैं, उसी प्रकार इड़ा, पिंगला भी मनुष्य जीवन में अपना-अप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्य नियमित रूप से करती हैं। जैसा सब जानते हैं चन्द्र का गुण शीतल और सूर्य का उष्ण है। यही गुण इड़ा और पिंगला नाड़ियों के हैं। इसलिये विवेकपूर्ण और स्थाई कार्य चन्द्रस्वर में करने से विशेष सफलता मिलती है। इसी प्रकार उत्तेजित, आवेश, और जोश- के साथ करने से कार्यों के लिये सूर्य-स्वर लाभदायक कहा गया है। कभी-कभी इड़ा और पिंगला दोनों नाड़ियाँ रुककर सुषुम्ना चलने लगती है, अर्थात् दोनों नथुनों से एक-सी गति से श्वांस चलता है वह समय आत्मिक चिन्तन के लिये श्रेष्ठ माना गया है। ऐसे समय में मानसिक विकार प्रायः दब जाते हैं और गहरे आत्मिक भाव का थोड़ा बहुत उदय अवश्य होता है। ऐसे समय में दिये हुये शाप या वरदान कुछ न कुछ फलीभूत अवश्य होते हैं क्योंकि उनके साथ आत्म तत्व का सम्मिश्रण होता है।

ऊपर जिन सब योग-मार्गों का वर्णन किया गया है, वे सब गायत्री-योग के अन्तर्गत ही हैं और गायत्री-साधना करने वाला व्यक्ति उन सब में सफलता प्राप्त कर सकता है। गायत्री के चौबीस अक्षरों में संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान बीजरूप से मौजूद है। इसके अतिरिक्त सद्बुद्धि को दिव्य मार्ग से अन्तःकरण में प्रतिष्ठित करने की शक्ति भी उसमें पाई जाती है। सद्बुद्धि ही मानव जीवन में सबसे बड़ी सम्पदा अथवा शक्ति है। जिसके पास यह शक्ति होगी वह कभी किसी क्षेत्र में असफल नहीं हो सकता। विशेषकर आध्यात्मिक शक्ति का तो गायत्री भंडार ही है। इसलिये जो व्यक्ति आत्मोन्नति की दृष्टि से उसकी साधना करेंगे, उन्हें कभी निराश नहीं होना पड़ेगा। ऊँची से ऊँची योग-विधियाँ और दैवी-शक्तियाँ गायत्री-साधक को सहज ही हस्तगत हो जाती हैं।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्वरयोग से दिव्यज्ञान

स्वरयोग का रहस्य

स्वरयोग भारत की अति प्राचीन और शिरोमणि विद्या है। इसका आश्चर्यजनक फल और साधन की सरलता देखते हुए किसी समय में इस विद्या का जनता के हृदय पर साम्राज्य था; किन्तु समय के प्रभाव से इसके कितने ही आवश्यक अंग लुप्त हो गए। कहीं-कहीं क्षेपक मिल गए। आलस्य और अज्ञान के कारण साधन घट गए। जिन लोगों को ज्ञान था उन्होंने छिपाया। तद्नुसार आज यह विद्या बड़े अपूर्व और विकृत रूप में दृष्टिगोचर होती है। फिर भी इसके खण्डहरों पर दृष्टिपात किया जाय तो आश्चर्य होता है कि योग के इस विशुद्ध, वैज्ञानिक और चमत्कारिक अंग की परिपूर्ण शोध क्यों नहीं हो रही है ज्योतिष के फलत शास्त्र और भविष्य कथन में कुछ अधिक मिलावट हुई है और वर्तमान ज्योतिषी उसकी तह तक नहीं पहुँच पाते, तद्नुसार उसके वचन अधिकांश में सत्य नहीं होते। स्वरयोग का बाह्य रूप कुछ-कुछ ज्योतिष से मिलता हुआ है। इसलिये लोग भ्रमवश इसे भी उसी कक्षा में पटकते हुए अनादर की दृष्टि से देखते हैं।

ज्योतिष के मुहूर्त प्रकरण पर इस युग में बड़े मार्मिक कटाक्ष किये जाते हैं और उसे उपहास एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। कहते हैं कि सोमनाथ के मन्दिर को लूटने के लिए जब लुटेरों ने चढ़ाई की और जब हिन्दू राजा उनसे लड़ने को उद्यत हुए तो ज्योतिषियों ने उस समय युद्ध का मुहूर्त ठीक नहीं बताया एवं जब तक शुभ मुहूर्त आवे तब तक के लिए उन्हें ठहरे रहने का आदेश दिया। राजा बेचारे मान गये, इसका लुटेरों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया और करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति के उस मन्दिर को लूट लिया। आज भी कोई वस्तु खरीदने, यात्रा करने आदि के स्वर्ण अवसर आते हैं, किन्तु मुहूर्त का फरसा उस अवसर को टूक-टूक कर देता है। कई बार ससुराल में पति मृत्यु-शैय्या पर पड़ा रहने पर वधू अपने पितृगृह से उसके दर्शनों के लिए छटपटाती है पर मुहूर्त का राक्षस सामने आ खड़ा होता है और नहीं जाने देता। पति की मृत्यु हो जाती है, अन्तिम दर्शनों की लालसा में वह जीवन भर जलती है और पति भी मन मसोसकर अतृप्त इच्छाएँ लिए स्वर्ग सिधारता है। रोगी मृत्यु शैय्या पर तड़फ रहा है, वैद्यजी का उसे देखने जाने का मुहूर्त ही नहीं बनता, आखिर वे नहीं जाते। बीमार असहाय मर जाता है। ऐसी घटनायें जन-समाज के मन में चोट पहुँचाती हैं और वे उस विज्ञान पर अश्रद्धा करने लगते हैं। प्रभु की इच्छा को कोई नहीं जानता। 'उन्हें जो करना होगा, वही होगा' यह तत्वज्ञान बहुत ऊँची स्थिति पर लागू होता है। सांसारिक व्यवहारिक जीवन में इसे कोई एक क्षण के लिए भी स्वीकार नहीं करता। मनुष्य को कर्तव्य करने का प्राकृतिक अधिकार है। इस अधिकार पर जब किसी प्रकार का कठोर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, तो मनुष्य अपने को पराधीन या बन्दी अनुभव करता हुआ बहुत दुःखी होता है।

ज्योतिष के मुहूर्त प्रकरण के पक्ष-विपक्ष में यहाँ हम कुछ भी विचार प्रकट नहीं कर रहे हैं क्योंकि यह विषय इस पुस्तक के बाहर का है। यहाँ तो हमें स्वर-विज्ञान की महत्ता, सर्वसुलभता और निर्दोषता सिद्ध करनी है।

इस विज्ञान में किसी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता, अतएव विरोध के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। चाहे किसी परिस्थिति, धर्म या सभ्यता के विचार रखने वाला मनुष्य हो, उसके विचार और कार्यों में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती। स्वरयोग एक विशुद्ध वैज्ञानिक तत्वज्ञान है। वह बतलाता है कि निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त भौतिक शक्तियों से मनुष्य शरीर किस प्रकार प्रभावित होता है। सूर्य, चन्द्र अथवा अन्यान्य ग्रहों की चैतन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रश्मियों द्वारा शरीर के परमाणुओं में किस प्रकार की चेतना उत्पन्न होती है। शरीर की जब जैसी स्थिति हो, तब उससे वैसा ही काम लेना चाहिए, यही स्वरयोग का गूढ़ रहस्य है। इतना होते हुए भी यह मनुष्य की सृजन शक्ति में हस्तक्षेप नहीं करता, वरन् उसे प्रोत्साहित करता है। आधुनिक विचारधारा की दृष्टि से भी इस तरह का विज्ञान किसी प्रकार का अन्धविश्वास उत्पन्न नहीं करता।

उदाहरणार्थ, नीचे शिव स्वरोदय ग्रन्थ के कुछ श्लोक दिये जाते हैं, जो बताते हैं कि स्वरयोग मनुष्य के कर्तव्य में जरा भी देर या बाधा पहुँचाना स्वीकार नहीं करता। यदि स्थिति साधारण हो तो यह अच्छा ही है कि शरीर की सामयिक स्थिति से लाभ उठाया जाय, किन्तु यदि कोई विशेष स्थिति है तो अपनी मनस्विता के आधार पर मनुष्य शरीर में स्थिति बाह्य प्रभाव को हटाकर उसे अनुकूल स्थिति में भी ला सकता है। चाहे कोई स्वर हो; नियत संख्या में पैर पटककर या चलित स्वरों के अंगों को प्रधानता देकर हर स्थिति में भी कार्य किया जा सकता है।

अत्यन्त आवश्यक अवसर को एक क्षण के लिए भी खोना यह विज्ञान स्वीकार नहीं करता—

पाठक निम्न श्लोकों को ध्यानपूर्वक पढ़ें—

कुयोगो नास्ति हे देवि भवता वा कदाचन।

प्राप्ते स्वर बले शुद्धे सर्वभेव शुभं फलम्।।

—हे पार्वती ! इस स्वरोदय में कुयोग कभी नहीं होता, क्योंकि स्वर बल को शुद्ध कर लेने पर सब कार्य शुभ होते हैं।

वामं वा दक्षिणं वाऽपि यत्र संक्रियते शिवः।

कृत्वा तत्पादमादौ च यात्रा भवति सिद्धिदा।।

यदि यात्रा करनी हो तो जो भी दाहिना या बायाँ स्वर चल रहा हो उसी चरण को आगे रखकर यात्रा करे तो वह यात्रा सिद्धि देने वाली होती है।

चन्द्रः समपदः कार्यो रविस्तु विषमः सदा।

पूर्णं पादं पुरुस्कृत्य यात्रा भवति सिद्धिदा।।

चन्द्रमा का स्वर चलता हो तो समपद (२, ४, ६ आदि) आगे रक्खे (पटके) और यदि सूर्य का स्वर चलता हो तो विषमपद् (१ ३, ५ आदि) आगे रक्खे। इस प्रकार यात्रा सिद्धि देने वाली होती है।

एक मत ऐसा भी है कि—

चन्द्र बारे चतुष्पादं पंच पादस्तु भास्करे।

एवं च गमन श्रेष्ठं साधयेद्भुवनत्रयम्।।

चन्द्र नाड़ी का स्वर चलता हो, तब बायाँ पैर चार बार आगे रखकर और स्वर चलते समय दाहिने पैर आगे रखकर जो गमन किया जाता है, वह तीनों लोकों में सिद्धि देता है।

पर दत्ते तथा ग्राह्ये गृहान्निर्गमनेऽपिच।

तदंगे वहते नाड़ी प्रायं तेन करांघ्रिणा।।

दूसरे को देने में, उससे ग्रहण करने में, घर से बाहर जाने में जिस अंग की नाड़ी चलती हो उसी हाथ व पैर को आगे करके कार्य करे तो—

न हानिः कलहो नैव कण्टकैर्नापि भिद्यते।

नितर्तते सुखी चैव सर्वोपद्रववर्जितः।।

न हानि हो, न कलह हो और न कण्टक, शत्रु से पीड़ित हो। वह सर्वथा सुखी और उपद्रवों से बचा रहे।

इन श्लोकों से श्वर-शास्त्र की अन्तरात्मा प्रकट हो जाती है। स्वरों का अमुक प्रकार चलना शुभ और अमुक प्रकार चलना अशुभ है; इस प्रकार के प्रसंग इस पुस्तक में हैं। इसमें भी अन्धविश्वास के लिए राई-रत्तीभर स्थान नहीं है। 'शुभ' और 'अशुभ' शब्दों का भावार्थ केवल इतना ही है कि यह स्थिति शारीरिक धर्म के अनुकूल नहीं है। शरीर की अन्तरंग दशा ठीक न होने पर स्वाभाविक ही है कि उसका परिणाम रोग, हानि, कलह, कष्ट अथवा असफलता के रूप में देखना पड़े, क्योंकि हर कार्य में सफलता तभी मिल सकती है, जब शरीर और मन प्रसन्न हों। 'शुभ' और 'अशुभ' एक प्रकार से हरी और लाल बत्ती के प्रतिनिधि हैं। वे मार्ग के साफ होने की सूचना मात्र देते हैं। जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'अशुभ' स्वर चलते हों तो हमारा कर्तव्य है कि अपनी खराबियों की ओर विशेष ध्यान दें। उपचारों द्वारा उसे ठीक करलें।

इन 'शुभ', 'अशुभ' शब्दों का कहीं लोग दूसरा अर्थ न लेने लगें, यह शंका शास्त्रकारों के मन में भी उठी है। यह भाग्य रूप है, अचल है, अनिवार्य है, ऐसा समझकर कोई मूर्ख 'किंकर्तव्यविमूढ़' न हो जाय और अनेक स्वाभाविक कर्तव्य धर्मों से हाथ धोकर निराश न बन जाय इस आशंका को दृष्टि में रखा गया है। जरूरत थी कि लोग सावधानी सीखें पर यदि वे भाग्यवाद पर उतर पड़े तो शास्त्र भी उनके लिए दूसरा आदर्श प्रस्तुत कर देता है।

यत्रांगे वहते वायुस्तदंगस्य करस्तलम्।
सुप्तोत्थितो मुखं तप्रष्ट्वा लभते वांछितम् फलम्।।

जिस अंग का स्वर चलता हो उसी अंग के हाथ की हथेली से शयन से उठकर मनुष्य मुख का स्पर्श करे तो वांछित फल को प्राप्त होता है। यहाँ शास्त्रकार ने निराशा की अपेक्षा अपने सारे विज्ञान का वास्ता ही समेट लिया है।

मनोविज्ञान-शास्त्र के जन आचार्यों ने इस विषय पर विशेष विचार किया है, वे कहते हैं कि मनुष्य को दृढ़-विश्वासी और कर्तव्यनिष्ठ बनने का उपाय इससे बढ़कर आज तक नहीं निकल सका है। अमुक स्वर में अमुक प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार विश्वास कर लेने के उपरान्त जब मनुष्य उसी स्वर में काम करता है, तो उसकी निष्ठा बहुत बढ़ जाती है और निष्ठा के अनुसार परिणाम उपस्थिति होना अवश्यवम्भावी है। आत्म-विश्वास को दृढ़ करने के लिए पश्चिमी मनोवैज्ञानिक एक ही लगड़ा सा उपाय ढूँढ़ सके हैं। वह यह कि शान्तचित्त होकर इस प्रकार के विचार करना कि "मैं बलवान हूँ, मेरी इच्छा-शक्ति दृढ़ है, मैं इस कार्य में सफलता प्राप्त करूँगा" आदि। किन्तु व्यवहारिक रूप में देखा जाता है, कि इन शब्दों के रटने का बहुत ही कम वास्तविक प्रभाव पड़ता है। गुप्त मन बड़ा अवोध है। बालक की तरह जब तक उसे गोलियों की सहायता से गिनती न सिखाई जाय तब तक नहीं सीखता। हिसाब का सिद्धान्त मात्र समझा देने पर बहुत ही कम विद्यार्थी उसे समझ सकेंगे, जब तक कि क्रियात्मक रूप उदाहरणों के साथ उन्हें न सिखाया जाय। तन्त्र की उपयोगिता मनोवैज्ञानिकों को इसलिये स्वीकार करनी पड़ी है कि उनमें शारीरिक क्रियाओं की सहायता से गुप्त मन को प्रभावित किया जाता है। जल में खड़े होकर या रात्रि को एकान्त वन में बैठकर मन्त्र जपने में शरीर की भी क्रियाएँ होती हैं। तद्नुसार मन पर असर पड़ता है। इस सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि जितने अधिक शारीरिक प्रयत्न और मानसिक विश्वास के साथ जो मन्त्र सिद्ध किया जायगा, वह उतना ही फल देगा। अस्तु, केवल यह विचार करते हुए कदम बढ़ाना कि हमें 'सफलता मिलेगी' निर्बल है, बजाय इसके कि शुभ स्वर चलने पर पूर्ण विश्वास और उत्साह के साथ आगे बढ़ा जाय, क्योंकि इसमें मन के साथ एक शारीरिक क्रिया का भी संमन्वय होने पर प्रभाव बहुत ही उत्तम होता है। विश्वास अधिक दृढ़ हो जाता है, सफलता की वह अधिक आशा करता है और मानव-शास्त्र के अनुसार आशा एवं इच्छा ही सफलता की जननी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वरयोग मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, खगोल विद्या और शरीर शास्त्र का सुन्दर समन्वय है। इसकी सरलता और महत्ता को देखते हुए ही भगवान शंकर ने इसे सर्वोच्च स्थान दिया है। वे कहते हैं—

सर्व शास्त्र पुराणादि स्मृति वेदांगपूर्वकम्।
स्वर ज्ञानात्परं तत्वं नास्ति किंचिद्वरानने।।

सम्पूर्ण शास्त्र, पुराणादि, स्मृति और वेदांग आदि ये सब स्वर ज्ञान से श्रेष्ठ नहीं हैं अर्थात् इनका ज्ञान भी स्वर के ही बल से होता है।

गुह्याद् गुह्यतरं सारमुपकार प्रकाशकम्।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञाननां मस्तके मणिः।।

यह स्वर ज्ञान गुप्त से भी गुप्त वस्तु है, इसमें छिपा हुआ रहस्य है उपकारों का प्रकाशक है और सब ज्ञानों में शिरोमणि है।

सूक्ष्मात्मसूक्ष्मतरं ज्ञानं संबोधं सत्य पत्ययम्।
आश्चर्यं नास्तिके लोके आधारस्त्वास्तिके जने।।

वह स्वरोदय ज्ञान सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, भली प्रकार जानने योग्य और सत्य का निश्चय कराने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाला है। जो जन नास्तिक हैं, उनको आश्चर्य दिखाता है और जो आस्तिक हैं, उनका आधार है।

स्वर सम्बन्धी कुछ आवश्यक जानकारी

स्वर शास्त्र के अनुसार श्वांस-प्रश्वांस के मार्गों को नाड़ी कहते हैं। शरीर में ऐसी नाड़ियों की संख्या ७२०० है। इनको नसें न समझना चाहिये। स्पष्टतः यह प्राण वायु के आवागमन मार्ग हैं। नाभि में इसी प्रकार की एक नाड़ी कुण्डलों के आकार में है, जिसमें से (१) इड़ा, (२) पिंगला, (३) सुषम्ना, (४) गांधारी, (५) हस्तिजिव्हा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) अलंबुषा, (९) कुह तथा (१०) शंखिनी नामक दस नाड़ियाँ निकलती हैं और यह शरीर के विभिन्न भागों की ओर चली जाती हैं। इनमें से पहली तीन प्रधान हैं—इड़ा को 'चन्द्र' कहते हैं, जो बायें नथुने में है। पिंगला को 'सूर्य' कहते हैं, यह दाहिने नथुने में है। सुषुम्ना' को वायु कहते हैं, जो दोनों नथुनों के मध्य में है। जिस प्रकार संसार में सूर्य और चन्द्र नियमित रूप से अपना-अपना कार्य करते हैं, उसी प्रकार इड़ा, पिंगला भी इस जीवन में अपना-अपना कार्य नियमित रूप से करती हैं। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य सात प्रमुख नाड़ियों के स्थान इस प्रकार हैं—गांधारी नाक में, हस्तजिव्हा—दाहिनी आँख में, पूषा—दाहिने कान में, यशस्विनी—बायें कान में, अलंबुषा—मुख में, कुहू —लिंग देश और शंखिनी—गुदा में। इस प्रकार शरीर के दसों द्वारों में दस नाड़ियाँ हैं।

हठ-योग में नाभि केन्द्र अर्थात् कुण्डलिनी का स्थान गुदा द्वार से लिंग देश की ओर दो अंगुल हटकर मूलाधार चक्र में माना गया है। स्वरयोग में वह स्थिति माननीय न होगी। स्वरयोग, शरीर शास्त्र से सम्बन्ध रखता है और शरीर की नाभि मध्य केन्द्र—गुदा मूल में नहीं वरन उदर की टुण्डी में ही हो सकती है, इसलिये यहाँ नाभि-देश का तात्पर्य उदर की टुण्डी मानना ही ठीक है। श्वांस क्रिया का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उदर से ही है।

अमेरिका के अद्वितीय योगी श्री बी० पी० एटकिनसन ने अपनी कृति 'साइज ऑफ ब्रेथ' में इस बात पर बहुत जोर दिया है कि मनुष्य को नाभि तक पूरी साँस लेनी चाहिये। वे प्राण वायु का स्थान फेफड़ों को नहीं, नाभि को मानते हैं। यद्यपि वायु के अधिक मात्रा में भरने का गोदाम फेफड़े ही हैं। फेफड़ों से छनकर ऑक्सीजन का सारा भाग नाभि के महत्वपूर्ण केन्द्र तक पहुँचता है और उसके द्वारा शरीर का वास्तविक पोषण होता है। इस युग के धुरन्धर शरीरशास्त्री श्री बरनर मेकफेडन अपने अनुसन्धान के पश्चात् इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि वायु को फेफड़ों में भर लेने से साँस का काम पूरा नहीं हो जाता। साँस लेने का उपयुक्त तरीका यह है—उससे पेडू तक पेट सिकुड़ता और फैलता रहे एवं डायफ्राम का भी संचालन होता रहे। उपरोक्त दोनों कथनों का उद्देश्य यह है कि साँस का प्रभाव नाभि तक पहुँचना आवश्यक है, इसके बिना स्वास्थ्य को भारी क्षति पहुँचती है। भारत के ऋषि, मुनि इस विज्ञान का अनुसन्धान बहुत ही प्राचीन काल में कर चुके हैं कि फेफड़ों से साँस लेना अधूरा काम है और इससे जीवन का बहुत सा विकास रुक जाता है। प्राणायाम की क्रियाओं का गुप्त रहस्य है कि नाभि की कुण्डलिनी तक पूरी साँस पहुँचे और उसमें से निकलने वाली दसों नाड़ियों में उचित मात्रा में प्राण प्रवाहित हो और वे दसों द्वारों की ठीक प्रकार रक्षा करें। कई अधूरे शरीर-शास्त्री शरीर की चीर-फाड़ में जब इन नाड़ियों को नाभि में से निकलता हुआ नहीं देखते तो स्वर-विज्ञान में वर्णन किये हुए नाड़ी विवरण पर अविश्वास करते हैं। उन्हें यह जानना चाहिए कि नाड़ी शब्द का अर्थ यहाँ खून बहाने वाली नसों से नहीं है। यह अत्यन्त ही सूक्ष्म वायु-मार्ग हैं, जो यन्त्रों की सहायता से नहीं, सूक्ष्म दृष्टि द्वारा देखे जा सकते हैं और उनके द्वारा होने वाले कार्यों की परीक्षा करके विश्वास प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान देने पर मालूम होता है कि दोनों स्वर एक साथ नहीं चलते, अर्थात् दोनों नथुनों से एक ही समय में वायु-प्रवाह नहीं होता। हाँ, स्वर बदलते समय कुछ क्षण के लिये दोनों स्वर एक साथ चलने लगते हैं, उसे सुषुम्ना का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवाह कहते हैं। जिस प्रकार समुद्र की लहरों पर सूर्य और चन्द्र का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार हमारी श्वांसों पर पड़ता है। प्रत्येक पखवारे (शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष) में श्वांस की गति बदलती है और प्रायः एक नासिका से १ घण्टा श्वांस चलकर बदल जाती है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय के समय इड़ा नाड़ी अर्थात् चन्द्र-बायाँ स्वर चलना चाहिए, उसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय समय पिंगला अर्थात् सूर्य (दाहिना) स्वर चलना चाहिये। इसी तरह नियमपूर्वक कार्य होना शारीरिक और मानसिक स्थिति के बिल्कुल ठीक होने का सूचक है। जब शरीर निर्विकार है तो सब प्रकार आनन्द रहेगा। यदि प्रकट या अप्रकट रूप से शारीरिक दशा ठीक न होगी, तो स्वभावतः कष्ट उठाना पड़ेगा। इसलिये स्वर-शास्त्र कहता है कि उपरोक्त प्रकार से नियमपूर्वक नाड़ी चलने पर मनुष्य को वह पक्ष में शुभदायक है और विपरीत दशा में अशुभ है।

यह न समझना चाहिए कि पन्द्रह दिन बिल्कुल एकसी गति से ही स्वर चलेगा। चन्द्रमा की कलाओं का सूक्ष्म परिवर्तन प्रति पक्ष में कुछ परिवर्तन भी करता है। प्रतिपदा को नाड़ी का आरम्भ होकर प्रतिदिन उपरान्त सूर्योदय पर स्वर बदलेगा। जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को इड़ा नाड़ी १, २, ३, ७, ८, ९, १४ और पूर्णिमा इन तिथियों को सूर्योदय पर (बायीं) इड़ा नाड़ी रहेगी और शेष ४, ५, ६, १०, ११, १२ तिथियों को दाहिनी सूर्य नाड़ी चलेगी। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रति तीन दिन बाद सूर्योदय पर स्वर बदलेगा, यह नैसर्गिक नियम है।

चन्द्र और सूर्य की अदृश्य रश्मियों का प्रभाव स्वरों पर पड़ता है। सब जानते हैं कि चन्द्रमा का गुण शीतल और सूर्य का उष्ण है। शीतलता से स्थिरता, गम्भीरता, विवेक प्रभृति गुण उत्पन्न होते हैं और उष्णता से तेज, शौर्य, चन्चलता, उत्साह, क्रियाशीलता, बल आदि गुणों का आविर्भाव होता है। मनुष्य को सांसारिक जीवन में शान्तिपूर्ण और अशान्तिपूर्ण दोनों ही तरह के काम करने पड़ते हैं। किसी भी काम का अन्तिम परिणाम उसके आरम्भ पर निर्भर है, इसलिए विवेकी पुरुष अपने कामों को आरम्भ करते समय यह देख लेते हैं कि हमारे शरीर और मन की स्वाभाविक स्थिति इस प्रकार के कार्य करने के अनुकूल है कि नहीं। एक विद्यार्थी को रात्रि में उस समय पाठ याद करने के लिए दिया जाय, जबकि उसकी स्वाभाविक स्थिति निद्रा चाहती है तो वह पाठ को अच्छी तरह याद न कर सकेगा। यदि वही पाठ उसे प्रातःकाल की अनुकूल स्थिति में दिया जाय तो आसानी से सफलता मिल जायगी। ध्यान, भजन, पूजा, मनन, चिन्तन के लिए एकान्त की आवश्यकता है, किन्तु उत्साह भरने और युद्ध में प्रवृत्त होने के लिए कोलाहलपूर्ण वातवारण को, बाजों की, घोर ध्वनि की। ऐसी उचित स्थितियों में किए हुए कार्य अवश्य ही फलीभूत होते हैं। इसी दृष्टिकोण के आधार पर स्वर योगियों से आदेश किया है कि विवेकपूर्ण और स्थायी कार्य चन्द्र-स्वर में किए जाने चाहिए। जैसे—विवाह, दान, मन्दिर, कुआँ, तालाब बनवाना, शान्ति के काम, पुष्टि के काम, शपथ, खाना, औषधि देना, रसायन बनाना, मैत्री, व्यापार, बीज बोना, दूर की यात्रा, विद्यारम्भ धर्म, यज्ञ, दीक्षा, मन्त्र, विद्याभ्यास, योग-क्रिया आदि यह सब कार्य ऐसे हैं, जिनमें अधिक गम्भीरता और बुद्धिपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है। इसलिए इनका आरम्भ भी ऐसे ही समय में होना चाहिए जब शरीर के सूक्ष्म-कोष चन्द्रमा की शीतलता को ग्रहण कर रहे हों।

उत्तेजना और आवेश एवं जोश के साथ करने पर जो कार्य ठीक होते हैं, उनके लिये सूर्य-स्वर उत्तम कहा गया है। जैसे—क्रूरकर्म, स्त्रीभोग, भ्रष्टकार्य, युद्ध करना, देश का ध्वंस करना, विष खिलाना, शिकार खेलना, मद्य पीना, हत्या करना, काठ, पत्थर, पृथ्वी, रत्न आदि को तोड़ना, तन्त्र-विद्या, जुआ, चोरी, व्यायाम, नदी पार करना आदि। यहाँ उपरोक्त कठोर कर्मों का समर्थन या निषेध नहीं है। शास्त्रकार ने तो एक वैज्ञानिक की तरह विश्लेषण कर दिया है कि ऐसे कार्य उस वक्त अच्छे होंगे जब सूर्य की उष्णता के प्रभाव से जीवन तत्व उत्तेजित हो रहा हो। शान्तिपूर्ण मस्तिष्क से भली प्रकार ऐसे कार्यों को कोई व्यक्ति कैसे कर सकेगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ क्षण के लिए जब दोनों नाड़ी (सुषुम्ना) चलती हैं, तब प्रायः शरीर सन्धि अवस्था में होता है। यह सन्ध्या काल है। दिन के उदय और अस्त को भी सन्ध्या काल कहते हैं, इस समय जन्म या मरण काल के समान पारलौकिक भावनाएँ मनुष्य में जागृत होती हैं और संसार की ओर से विरक्ति, उदासीनता एवं अरुचि होने लगती है। स्वर की सन्ध्या से भी मनुष्य का चित्त सांसारिक कार्यों से कुछ उदासीन हो जाता है और अपने वर्तमान अनुचित कार्यों पर पश्चात्ताप स्वरूप खिन्नता प्रकट करता हुआ, कुछ आत्म-चिन्तन की ओर झुकता है। यह क्रिया बहुत ही सूक्ष्म होती है और अल्पकाल के लिए आती है, इसलिये हम अच्छी तरह पहचान भी नहीं पाते। यदि इस समय परमार्थ-चिन्तन और ईश्वराधना का अभ्यास किया जाय तो निस्सन्देह उसमें बहुत उन्नति हो सकती है किन्तु सांसारिक कार्यों के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं है। इसलिये सुषुम्ना स्वर में आरम्भ होने वाले कार्यों का परिणाम अच्छा नहीं होता, वे अक्सर अधूरे या असफल रह जाते हैं। सुषुम्ना की दशा में मानसिक विकार दब जाते हैं और गहरे आत्मिक भाव का थोड़ा बहुत उदय होता है, इसलिए इस समय में दिये हुए शाप या वरदान अधिकांश फलीभूत होते हैं क्योंकि उन भावनाओं के साथ आत्मतत्व का बहुत कुछ सम्मिश्रण होता है।

कहते हैं कि जैसा पिण्ड में वैसा ब्रह्माण्ड में' अर्थात् यह शरीर निखिल विश्व ब्रह्माण्ड का ही एक छोटा स्वरूप है। प्रकृति के नियमों से संसार की व्यवस्था चल रही है, उन्हीं पर शरीर की क्रियाएँ भी अवलम्बित हैं। भगवान् सूर्यनारायण की उत्तरायण और दक्षिणायन दो गतियाँ हैं। उसी प्रकार शरीर में इड़ा, पिंगला श्वांस की दो गतियाँ हैं। दिन और रात्रि के दो भेद भी इसी प्रकार हैं। दिन उत्तरायण है तो रात्रि दक्षिणायन। इड़ा उत्तरायण है तो पिंगला दक्षिणायन। जिस प्रकार उत्तरायण के महीनों में शीत की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार चन्द्र नाड़ी शीतल होती है और दक्षिणायन के महीनों में जिस प्रकार गर्मी की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार सूर्य नाड़ी में उष्णता एवं उत्तेजना का प्राधान्य रहता है।

स्वर बदलना

कुछ विशेष कार्यों के सम्बन्ध में स्वर-शास्त्रज्ञों के जो अनुभव हैं, उनकी जानकारी सर्वसाधारण के लिए बहुत ही सुविधाजनक होगी। बताया गया है कि प्रस्थान करते समय चलित स्वर के शरीर भाग को हाथ से स्पर्श करके उसी चलित स्वर वाले कदम को आगे बढ़ाकर (और यदि चन्द्र नाड़ी चलती है, चार बार और सूर्य स्वर है, तो पाँच बार उसी पैर को जमीन पर पटककर) प्रस्थान करना चाहिए। यदि किसी क्रोधी पुरुष के पास जाना है तो अचलित स्वर (जो स्वर न चल रहा हो) के पैर को पहिले आगे बढ़ाकर प्रस्थान करना चाहिये और अचलित स्वर की ओर उस पुरुष को करके बातचीत करनी चाहिए। इस रीति से उसकी बढ़ी हुई उष्णता को आपका अचलित स्वर की ओर का शान्त भाग आकर्षण विद्युत से खींचकर उसे शान्त बना देगा और मनोरथ में सिद्धि प्राप्त होगी। गुरु, मित्र, अफसर, राज-दरबार से जब कि वाम स्वर चलित हो, तब वार्तालाप या कार्यारम्भ करना ठीक है।

कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब कार्य अत्यन्त ही आवश्यक हो सकता है किन्तु उस समय स्वर विपरीत चलता है। तब क्या उस कार्य को किये बिना ही बैठे रहना चाहिए ? या कोई उत्तम अवसर हो तो उसे हाथ से निकाल देना चाहिए ? नहीं, ऐसा करने की जरूरत नहीं है। जिस प्रकार जब रात को निद्रा आती है किन्तु उस समय कुछ करना आवश्यक होता है, तो चाय आदि किसी उत्तेजक पदार्थ की सहायता से शरीर को चैतन्य करते हैं, उसी प्रकार हम कुछ उपायों द्वारा स्वर को बदल भी सकते हैं। नीचे कुछ ऐसे ही नियम लिखे जाते हैं—

(१) जो स्वर नहीं चल रहा है, उसे अँगूठे से दबायें और जिस नथुने से साँस चलती है उससे हवा खींचें फिर जिससे श्वांस खींची है उसे दबाकर पहिले नथुने से यानी जिस स्वर को चलाना है उससे श्वाँस छोड़ें। इस प्रकार कुछ देर तक बार-बार करें। श्वाँस की चाल बदल जावेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) जिस नथुने से श्वाँस चल रहा हो, उसी करबट लेट जावें, तो स्वर बदल जावेगा। इस प्रयोग के साथ पहला प्रयोग करने से स्वर और भी शीघ्र बदलता है।

(३) जिस तरफ का स्वर चल रहा हो, उस ओर काँख (बगल) में कोई सख्त चीज कुछ देर दबाकर रखो तो स्वर बदल जाता है। पहिले और दूसरे प्रयोग के साथ यह प्रयोग करने से शीघ्रता होती है।

(४) घी खाने से वामस्वर और शहदखाने से दक्षिण स्वर चलना कहा जाता है।

(५) चलित स्वर में पुरानी स्वच्छ रूई का फोहा रखने से स्वर बदलता है।

तिथि और वारों के अनुसार जब नियमित स्वर का उदय नहीं होता तब भी जैसे कि बीमारी की दशा में शरीर को रोग मुक्त करने के लिए चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार स्वर को ठीक अवस्था में लाने के लिए इन उपायों को काम में लाना चाहिए।

जिस ओर सूर्य-चन्द्र हो अथवा हवा चल रही हो उस ओर मुँह करके मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए। सूर्य की ओर मुँह करके मूत्र त्याग करने से सिर रोग तथा चन्द्र या हवा की ओर त्याग करने से मूत्राशय के रोग होने की सम्भावना है। खड़े होकर पेशाब करने से रीढ़ में कमजोरी आती है। कदाचित् पाठक पाश्चात्य सभ्यता की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे किन्तु जलवायु पर भी बहुत से नियम निर्भर हैं यह नहीं भूलना चाहिए।

पूर्व की ओर से जब वायु का प्रवाह हो उस ओर से वायु जोर से नहीं खींचना चाहिए। इससे कफ का जोर बढ़ता है। सारांश, जिस ओर से वायु का प्रवाह हो उस ओर मुँह करके दीर्घ श्वाँस नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि हवा में कई प्रकार के कीटाणु उड़ा करते हैं और श्वाँस द्वारा शरीर में प्रवेश करके रोग उत्पन्न कर देते हैं।

यदि कोई विशेष प्रयोजन न हो तो भी तत्व और स्वरों की परीक्षा करते रहना चाहिए। इससे विशेष लाभ होते हैं। भगवान शंकर कहते हैं—

चन्द्र सूर्य समभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः।
अतीतानागत ज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत्।।

जो मनुष्य चन्द्र और सूर्य स्वरों का सदैव अच्छी तरह अभ्यास करते हैं, उनको परोक्ष-ज्ञान हस्तगत हो जाता है अर्थात् गुप्त बातों को जानने लगते हैं।

स्वर-संयम से दीर्घ जीवन

ऊपर बताया जा चुका है कि श्वाँस निकलने का साधारण नाप १२ अंगुल है। परीक्षा करने के लिए एक लकड़ी के सिरे पर जरा सी अच्छी धुनी रूई लगा दो और उसको बारह अंगुल दूर नाक की सीध में रखकर, साँस छोड़ें, आपको रूई के रेशे हिलते हुए मालूम पड़ेंगे। यदि श्वाँस की लम्बाई कम या अधिक होगी, तो उतनी ही दूरी पर रूई के रेशे हिलेंगे। अधिक लम्बा श्वाँस चलना हानिकर और कम लम्बाई में चलना लाभप्रद है। सोते समय यह लम्बाई ३० अंगुल हो जाती है। इसलिये ६-७ घण्टे से अधिक सोना भी अच्छा नहीं है। भोजन करते समय यह गति २० अंगुल हो जाती है। इसलिये बार-बार भोजन भी नहीं करना चाहिए। बीमारियों में श्वाँस की गति बढ़ जाती है। राजयक्ष्मा में तो रोगियों को प्रायः ७० अंगुल तक लम्बा श्वाँस चलता है उसे मृत्यु के उतने ही निकट समझना चाहिए।

प्रत्येक प्राणी का पूर्ण आयु प्राप्त करना उसकी श्वाँस-क्रिया पर अवलम्बित है। पूर्व कर्मों के अनुसार जीवित रहने के लिए परमात्मा एक नियत संख्या में श्वाँस प्रदान करता है, वह श्वाँस समाप्त होने पर प्राणान्त हो जाता है। इस खजाने को जो प्राणी जितनी होशियारी से खर्च करेगा, वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रह सकेगा और जो इन्हें जितना व्यर्थ गँवायेगा, उतनी ही शीघ्र उसकी मृत्यु हो जायगी। सामान्यतः हर एक मनुष्य दिन-रात में २१६०० श्वाँस लेता है। इससे कम श्वाँस लेने वाला दीर्घजीवी होता है, क्योंकि अपने धन का जितना कम व्यय होगा, उतने ही अधिक काल तक संचित रहेगा। हमारी श्वाँस की पूँजी की भी यही दशा है। विश्व के समस्त प्राणियों में जो जीव जितनी कम श्वाँस लेता है, वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रहता है। नीचे की तालिका से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम प्राणी	श्वांस की गति प्रति मिनट	पूर्ण आयु
खरगोश	३८ बार	८ वर्ष
बन्दर	३२ बार	१० वर्ष
कुत्ता	२६ बार	१२ वर्ष
घोड़ा	१६ बार	२५ वर्ष
मनुष्य	१३ बार	१२० वर्ष
साँप	८ बार	१००० वर्ष
कछुआ	५ बार	२००० वर्ष

साधारण काम-काज करने में १२ बार, दौड़-धूप करने में १८ बार और मैथुन करते समय छत्तीस बार प्रति मिनट के हिसाब से श्वाँस चलती है, इसलिए विषयी और लम्पट मनुष्य की आयु घट जाती है और प्राणायाम करने वाले योगाभ्यासी दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। यहाँ यह न सोचना चाहिए कि चुपचाप बैठे रहने से कम साँसें चलती हैं, इसलिए निष्क्रिय बैठे रहने से आयु बढ़ जायगी। ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि निकम्मे बैठे रहने से शरीर के अन्य अंग निर्बल, अशक्त और बीमार हो जायेंगे, तदनुसार उनकी श्वाँस का वेग बहुत बढ़ जायगा। इसलिए शारीरिक अंगों को स्वस्थ रखने के लिए परिश्रम करना आवश्यक है, किन्तु शक्ति से बाहर परिश्रम भी नहीं करना चाहिए।

चीन के पेकिंग शहर में एक वृद्ध पुरुष से, जिसकी आयु लगभग २५० वर्ष की थी, लोगों ने उसके दीर्घ जीवन का कारण पूछा तो उसने मुख्य तीन बातें बताईं। वृद्ध पुरुष ने कहा—(१) मैं अधूरा साँस नहीं छोड़ता वरन् नाभि तक पूरी वायु खींचता हूँ। (२) कभी झुककर नहीं बैठता, अपने मेरुदण्ड को सीधा रखता हूँ। (३) मस्तिष्क में उत्तेजक और दूषित विचारों को नहीं आने देता। वास्तव में यह तीनों नियम स्वरयोग के अन्तर्गत और बड़े महत्व के हैं। नाभि तक पूरा श्वांस लेने पर एक प्रकार से कुम्भक हो जाता है और श्वांस की संख्या घट जाती है। मेरुदण्ड के भीतर एक प्रकार का तरल जीवन-तत्व प्रवाहित होता रहता है, जो सुषुम्ना को बलवान बनाए रखता है, तदनुसार मस्तिष्क की पुष्टि होती रहती है। यदि मेरुदण्ड को झुका हुआ रखा जाय तो उस तरल तत्व का प्रवाह रुक जाता है और निर्बल सुषुम्ना मस्तिष्क का पोषण करने से वंचित रह जाती है। दूषित विचारों, क्रोध, शोक आदि के वेग से श्वाँस की गति तीव्र हो जाती है, जो कि आयु को क्षीण करने का प्रधान कारण है। स्वर विज्ञान मृत्यु की विवेचना करता हुआ बतलाता है कि जब हम श्वांस लेते हैं तो प्रायः दस अंगुल लम्बी होती है और जब निकलती है तो १२ अंगुल होती है; अर्थात् आने की अपेक्षा जाने में दो अंगुल अधिक होते हैं। हर आदमी जानता है कि जब आमदनी से खर्च अधिक होता है तो एक न एक दिन टाट उलट ही जायगा और दुकान फेल हो जायगी। बस, यही मृत्यु है।

स्वर विज्ञान इस बात पर बहुत जोर देता है कि श्वांस सदा नाक से ली जावे। जिसे मुँह से स्वाँस लेने की आदत हो, वह उसे छोड़ दे, तब आगे का अभ्यास करे। श्वांस लेने के अवयवों की रक्षा करने के लिए प्रकृति ने नासिका को ही प्रधान द्वार बनाया है। जो वायु हम खींचते हैं, उसमें बहुत से धूल-कण तथा रोग-कीट मिलते हैं एवं बाहरी सर्दी-गर्मी का प्रभाव भी होता है। यदि ऐसी वायु ज्यों की त्यों फेफड़ों में पहुँचे तो उस कोमल अवयव को हानि पहुँचाए बिना न रहेगी। मूँछ के बालों में धूल के बड़े-बड़े कण अटक जाते हैं और उसकी मोटी सी सफाई हो जाती है। इसके बाद नाक के बालों में हवा छनती है। नाक में एक प्रकार की श्लेष्मा रहती है। दो बार छनी हुयी वायु के बाद भी जो बारीक कण रह जाते हैं, उन्हें यह श्लेष्मा चिपका लेती है। नाक के खुरण्ट वायु का छटा हुआ मैल ही समझना चाहिए। इसके बाद वह वायु मस्तिष्क में होकर आने वाली श्वांस नलियों की यात्रा करके फेफड़ों तक पहुँचती है। इस यात्रा में सिर की गर्मी के हिसाब से उसका तापमान ठीक हो जाता है। इस प्रकार नाक द्वारा साँस लेने पर वायु निर्मल होकर फेफड़ों में पहुँचती है; किन्तु मुँह से साँस ली जाय तो छनने की व्यवस्था नहीं हो पाती। दूसरे मुँह से फेफड़े निकट होने के कारण तापमान भी ठीक नहीं होता, तदनुसार मुँह द्वारा ली गई साँस फेफड़ों को भारी हानि पहुँचाती है। यहाँ तक कि श्वांस के अवयवों में प्रायः सूजन आ जाती है और नाक के नथुनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से काम लिए जाने के कारण वे साफ नहीं रहते और नासिका सम्बन्धी अनेक रोग हो जाया करते हैं।

सोते समय चित्त होकर न लेटना चाहिए, इससे सुषुम्ना स्वर चलकर विघ्न पैदा होने की सम्भावना रहती है। ऐसी दशा में अशुभ तथा भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं, इसलिए भोजनोपरान्त प्रथम बायें, फिर दाहिने करवट लेटना चाहिए। भोजन के बाद कम से कम ५५ मिनट आराम किए बिना सफर करना भी उचित नहीं है।

शीतलता से अग्नि मन्द पड़ जाती है और उष्णता से तीव्र होती है, वह प्रभाव हमारी जठराग्नि पर भी पड़ता है। सूर्य स्वर में पाचन शक्ति की वृद्धि रहती है, अतएव उसी स्वर में भोजन करना उत्तम है। इस नियम को सब लोग जानते हैं कि भोजन के उपरान्त बायें करवट से लेटे रहना चाहिए। उद्देश्य यही है कि बायें करवट लेने से दक्षिण स्वर चलता है, जिससे पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है।

हमें चाहिए कि नींद खुलने पर जब बिस्तर से उठने लगें तो देखें कि कौन-सा स्वर चल रहा है ? चलित स्वर की हथेली अपने मुँह पर फेरकर उसके दर्शन करके पूरक श्वाँस से अर्थात् श्वांस को अन्दर लेते समय उसी चलित स्वर वाले पाँव को बिस्तर से नीचे रखकर उठें। ऐसा करने से शरीर का आलस्य चला जावेगा, फुर्ती आवेगी और दिन भर मन प्रसन्न रहेगा। चलते हुए स्वर का शरीर पर अधिकार होता है, उसे इन क्रियाओं द्वारा थोड़ा उत्तेजित कर देने पर शरीर में नव चैतन्य का उदय हो जाता है।

भोजन करके तुरन्त ही मूत्रत्याग करना चाहिए, इससे कोई बीमारी नहीं होने पावेगी। पेशाब बायें स्वर में और मल त्याग दाहिने स्वर में करना चाहिए। हाँ, शौच के समय पेशाब भी दाहिने स्वर में करने में दोष नहीं है। पाठक इसे केवल कपोलकल्पित न समझकर इसके लाभ की परीक्षा करें। दाहिने स्वर में त्यागे हुए और बायें स्वर में त्यागे हुए मूत्रों को अलग-अलग शीशियों रखकर परीक्षा कराई जाय तो मालूम होगा कि बायें स्वर का पेशाब अधिक स्वस्थ है और दाहिने स्वर वाले में अनेक दोषों का समावेश है। यह शरीर-शास्त्र का प्राकृतिक नियम है। एक वर्ष से कम आयु के बालक को देखिये, जब वह पेशाब करेगा, तो वाम स्वर चलेगा और जब पाखाना फिरेगा, तब दक्षिण स्वर चलेगा। आरम्भ में सम्भव है कुछ कठिनता प्रतीत हो, किन्तु एक-दो सप्ताह के अभ्यास से स्वभावतः ठीक समय पर ठीक स्वर चलने लगेगा।

स्वर को बदलने की सरल रीति

जब श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया में विपरीतता आ रही हो तो इसे शरीर और मन के लिए अशुभ समझते हुए प्रतिकार का उपाय ढूँढ़ना चाहिए। ऐसी दशा में आहार-विहार में अत्यन्त ही सावधान रहना जरूरी है। साथ ही श्वाँस की गति भी ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि शरीर की गर्मी-सर्दी सम मात्रा में व्यवस्थित हो जावे। स्वर बदलने के लिए पाँच उपाय इस पुस्तक में अन्यत्र बताये गये हैं, परन्तु दैनिक कामकाजों में लगे रहकर भी स्वर बदलने का एक तरीका बहुत आसान है। वह यह है कि एक नथुने में ठीक आ सकने योग्य साफ रूई की एक गोली बनावें और जरा-से स्वच्छ कपड़े में उसे रखकर सुई से सिल दें, ताकि रूई के रेशे इधर-उधर न निकले रहें। चलते हुए स्वर को बदलना है तो उसी नथुने में वह गोली लगा लेनी चाहिए, थोड़ी देर में स्वर बदल जायगा। गोली में गन्दगी आ जाती है, इसलिए इसे फेंक देना चाहिए। दूसरी बार के लिये रख छोड़ना ठीक न होगा। जिन्हें मस्तिष्क सम्बन्धी कोई रोग हो, उन्हें इन गोलियों का प्रयोग न करके अन्य उपायों से स्वर बदलना चाहिए।

स्वास्थ्य का प्राणायाम

श्री पं. भोजराज जी शुक्ल एक स्थान पर लिखते हैं, जिस आसन का अभ्यास हो, उसी आसन को सुखपूर्वक लगाकर अपनी रीढ़ को तना हुआ रखो। किसी ओर को हिले-डुले नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ठोड़ी को छाती से लगाकर दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर जमाओ तथा हाथ के अँगूठे से दाहिने नथुने को दबाकर बायें नथुने से वायु खींचकर उदर में धारण करो, पेट में थोड़ी देर वायु को रोके रहो तथा अनामिका और कनिष्ठका अँगुलियों से बायें नथुनों को भी बन्द कर लो, साथ ही प्रणव (ॐ) का जप करते रहो अथवा जो तुम्हारा इष्ट-मन्त्र हो उसे जपते रहो, इसे अन्तर कुम्भक कहते हैं। वायु को थोड़ी ही देर रोको और फिर दाहिने नथुने से अँगूठा हटाकर उदरस्थ वायु को अत्यन्त धीमी गति से बाहर निकालकर बाहर ही रोक दो, अँगूठे से दाहिने नथुने को फिर बन्द करलो, इसे बाह्य कुम्भक कहते हैं, प्रणव का जप बराबर करते रहो। थोड़ी देर बाद नथुनों को खोलकर वायु धीरे-धीरे पेट में भर लो यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम अवश्य करने चाहिये तथा धीरे-धीरे अभ्यास करके वायु के विरोध की शक्ति बढ़ानी चाहिये। अति हठ करके वायु को रोकने में कुपित हो जाने का भय रहता है, जिसके कारण हिचकी, दमा, खाँसी, कान और सिर के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। यदि प्राणायाम नियमपूर्वक, सामर्थ्यानुसार, स्वच्छ वायु के स्थान में किया जायगा, तो इससे जठराग्नि तीव्र होकर स्वास्थ्य तथा आयु की वृद्धि होगी। उपरोक्त प्राणायाम विधि के विपरीत भी रेचक पूरक क्रियाएँ करनी चाहिये अर्थात् दाहिने नथुने से वायु खींचकर बायें नथुने से निकाल देनी चाहिए। पूरक कुम्भक और रेचक करते समय प्रणव (ॐ) का जप दस बार करते रहना चाहिए। पन्द्रह दिन अभ्यास कर लेने के पश्चात् बीस बार तथा एक मास पश्चात् तीस बार जप करना चाहिए। इसी प्रकार क्रमशः जप संख्या बढ़ाते रहना चाहिए।

वीर्य रक्षक प्राणायाम

श्री सरस्वती सहोदर ने वीर्यरक्षा के लिए एक प्राणायाम का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—आसन इस प्रकार जमाकर बैठो जिसमें बायें पैर की एड़ी गुदाद्वार और अण्डकोष के बीच में रहे। उसे तुम ऐसा जानो कि यह बैठने की गद्दी ही है। दाहिने पैर की एड़ी मूत्र-नली की जड़ में ऊपर से लगाओ। ऐसे बैठने में पहले बहुत दिक्कत होगी, इसलिये तोंद के नीचे एक छोटा तकिया रखो। ऐसा करने से बराबर आसन जमेगा और पैरों की एड़ी पर दबाव भी पड़ेगा, जिसकी कि इस आसन में बड़ी आवश्यकता है। इस रीति से कुछ दिन तक अभ्यास डालने पर बिना तकिया बैठ सकोगे। आसन लगाने पर पैर का ऊपरी भाग नीचे की ओर, निचला भाग ऊपर की ओर आसानी से नहीं होता। अच्छी तरह ख्याल रक्खो कि पैरों की उँगलियों पर आसन न जमने पावे, आसन पूर्णतया जमने पर दोनों पैरों के मणिबन्ध परस्पर में मिल जाते हैं, यही बराबर आसन की पहचान है। यह भी बराबर ख्याल में रहे कि जहाँ पर एड़ी लगाई जाती है, वहाँ पर एड़ियों का अच्छी तरह से दबाव पड़ना चाहिए। इस प्रकार आसन जमने पर देखें कि कौन से नथुने से साँस निकलती है। जिस नथुने से साँस न निकलती हो, उस नथुने को हाथ के अँगूठे से बन्द कर दें और जिस नथुने से साँस बाहर निकलती हो उस नथुने से धीरे-धीरे साँस भीतर खींचें। साँस खींचने पर उसी समय गुदा-द्वार संकुचित कर लेवें, फिर प्रयोग सम्पूर्ण हुए बिना प्रसारित न करें। पहले-पहल इच्छा तो ऐसी होगी कि गुदा-द्वार ढीला और रहा भी न जायगा, पर यह पक्का ख्याल रखें कि इस क्रिया को काबू में करना है। गुदा-द्वार संकुचित कर लेने के बाद दोनों नथुने बन्द कर लें। पेट के भीतर जो श्वाँस खींच रही है, उसे बाहर न छोड़ें और पेट में गति दो अर्थात् मूत्रनली के द्वारा कोई पदार्थ पाइप की तरह पेट से खींच रहे हैं इस प्रकार पेट छोटा बड़ा करें, इस तरह क्रिया उतने समय तक करें, जितने समय तक श्वाँस भीतर रख सकें। श्वाँस छोड़ते समय पेट की गति बन्द कर दें और गुदा द्वार पहले की तरह संकुचित ही रखें। पेट में गति देते समय भी गुदा संकुचित ही रहे। गति बन्द करके जिस नथुने से साँस भीतर न ली हो उस नथुने से साँस बिल्कुल धीरे-धीरे बाहर छोड़ें।

इस रीति से एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार तीन प्राणायाम एक बैठक में करो। एक महीने के बाद ५ प्राणायाम एक बैठक में करो, फिर धीरे-धीरे १५ प्राणायाम तक एक बैठक में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने की आदत डालो। इसका असली मतलब यही है कि एक बैठक में १०-१५ प्राणायाम करने तक गुदा द्वार संकुचित रखने की शक्ति बढ़े, तब साधन सिद्ध हुआ जानना चाहिए। इस प्रयोग द्वारा आरोग्य तो प्राप्त होता ही है साथ ही वीर्य भी वश में होता है। स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह आदि के लिए यह बहुत लाभदायक है।

शीतकारी कुम्भक

शांतिपूर्वक सीधे बैठकर होठों को काक-चोंच वृत्ति बनाकर श्वाँस खींचो और फिर मुँह बन्द कर लो एवं हवा को इस प्रकार गले से नीचे उतारो, जैसे कि पानी के घूँट पीते हैं। थोड़ी देर बाद श्वाँस को धीरे-धीरे नाक द्वारा निकाल दो। इस क्रिया को प्रातः, सायं या रात्रि को करना चाहिए। एक समय में पाँच-सात बार करना पर्याप्त होगा। इससे रक्त की शुद्धि होती है, शूल तथा पेट की अन्य बीमारियों के लिए यह क्रिया लाभदायक है। सारांश, यह है कि सरल क्रिया होते हुए भी इसका लाभ बहुत अधिक है। हाँ, अशुद्ध स्थान में अथवा भोजन के तीन-चार घण्टे उपरान्त तक यह न क्रिया न की जावे।

शीतल कुम्भक

सीधे पालती मारकर (पद्मासन उत्तम) उस ओर मुँह करके बैठो, जिस ओर शुद्ध वायु का प्रवाह हो और होठों को इस प्रकार आगे बढ़ाओ जैसे सीटी बजाते समय बढ़ाया जाता है। मुँह बन्द करके नथुनों से श्वाँस खींचो। इससे रक्त शुद्ध होता है। दिन भर में तीन बार यह क्रिया की जावे, किन्तु एक बार १० मिनट से अधिक न हो।

अग्नि निवारण कौशल

प्रायः प्रतिवर्ष आग लगाकर कितनों का ही भारी नुकसान हुआ करता है। ऐसे समय स्वरयोग के एक आश्चर्यजनक प्रयोग का अनुभव किया जावे।

आग लगने पर जिस तरफ उसकी लपट जावे, उसी तरफ खड़े होकर जिस नथुने से श्वाँस निकले, उसी नथुने से हवा खींचकर नाक से पानी पीवे। उसके बाद ७ रत्ती जल निम्न मन्त्र फूँक कर आग में डाल दे तो अवश्यमेव अग्नि प्रकोप बहुत जल्द शांत हो जायगा। मन्त्र इस प्रकार है—

'उत्तरभ्याँचदिग् भागे मारीचोः नाम राक्षसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतः बन्हिः स्वाहा।'

स्वर परिवर्तन के हानि-लाभ

किस समय कौन-सा स्वर चलना चाहिए, इसकी जो मर्यादायें बाँधी गई हैं, वह चन्द्र, सूर्य की चाल के अनुसार शरीर के ऊपर जो प्रभाव पड़ता है, उसके आधार पर हैं। नियत समय पर नियत स्वर का चलना आरोग्यतासूचक है। जब इनमें गड़बड़ी होती है तो इससे विभिन्न प्रकार की हानियाँ हो सकती हैं, जिनका कुछ उल्लेख नीचे किया जाता है—

केवल पक्ष की तिथियों में ही सूर्य, चन्द्र द्वारा यह स्वर परिवर्तन नहीं होता वरन् अन्य ग्रहों का भी प्रभाव उन पर अपना असर डालता है, तदनुसार कुछ वारों में भी विशिष्ट परिवर्तन होता है। चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में और विशेषकर शुक्ल पक्ष में बायीं नाड़ी चलना शुभ है। रवि, मंगल और शनि इन वारों में और विशेषकर कृष्ण पक्ष में दक्षिण नाड़ी चलना शुभ है। रविवार को सूर्योदय पर सूर्य नाड़ी और चन्द्रवार को चन्द्र नाड़ी का चलना शुभ माना जाता है। आकाश स्थित प्रधान ग्रहों का प्रभाव उनकी, अपनी तथा पृथ्वी की चाल के अनुसार उस भूमंडल पर आता है। अपनी धुरी पर घूमने के अतिरिक्त एक निर्धारित मार्ग से पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा के लिए भी चलती रहती है। इस मार्ग में प्रधान ग्रहों की कुछ महत्त्वपूर्ण किरणें प्रायः एक के बाद एक स्पष्ट रूप से आगे आती हैं, अन्य दिनों में वे किरणें अन्य ग्रहों की आड़ में रुक जाती हैं। खगोल विद्या के इस अत्यन्त सूक्ष्म तत्वज्ञान को समझते हुए प्राचीन विद्वानों ने वारों के नाम उनके अधिपति ग्रहों की प्रमुखता के आधार पर रखे थे। सूर्य और चन्द्र नाड़ियों पर शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की ऋण-धन विद्युत एवं वारों के अधिपति ग्रहों का जो प्रभाव स्वर पर होता है, वह प्रातःकाल देखा जा सकता है। उपरोक्त वारों में स्वर नाड़ियों की भिन्नता दृष्टिगोचर होने का कारण मनुष्य शरीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर पड़ने वाले अन्य ग्रहों का सूर्य चन्द्र युक्त प्रभाव ही है जो ग्रह सूर्य से समता रखते हैं, वे सूर्य स्वर को और जो चन्द्र से समता रखते हैं, वे चन्द्र को प्रभावित करते हैं। शुभ-अशुभ शब्दों का प्रयोग इस सम्बन्ध में इसलिए किया गया है कि यदि शरीर में सजीवता होगी तो वह ग्रहों के प्रभाव को ठीक ग्रहण करेगा और यदि निर्बल, निस्तेज एवं निर्जीव होगा तो अपनी जड़ता पर कायम रहकर प्रभावित न होगा। स्पष्ट है कि शरीर का सजीव होना शुभ और शक्तिहीन होना अशुभ माना जाता है, क्योंकि उसी के ऊपर अन्य कार्यों की सफलता और असफलता निर्भर है। इसी दृष्टि से चन्द्र स्वर में सूर्योदय का होना और सूर्य-स्वर में अस्त होना श्रेष्ठ माना गया है। शुक्ल पक्ष की दौज को नवीन चन्द्र का दर्शन चन्द्रस्वर में होना भी शुभसूचक समझा जाता है।

यदि चन्द्रमा के स्वर में सूर्य का उदय हो और सूर्य के स्वर में अस्त हो तो उस विपरीत समय में कोई कार्य सिद्ध नहीं होता।

जिस समय सूर्य के उदय में सूर्य, चन्द्रमा के उदय में चन्द्रमा का स्वर हो तो दिन व रात्रि में अशुभ-शुभ सब काम सिद्ध होते हैं।

यदि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को दाहिना स्वर चले तो उस पक्ष में गर्मी का कोई रोग कलह अथवा हानि होने की आशंका रहती है। यदि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को बायाँ स्वर चले तो उस पक्ष में सर्दी-रोग अथवा अन्य प्रकार के कष्ट होने की संभावना बनी रहेगी। यदि लगातार दोनों पक्ष इसी प्रकार उल्टे स्वर चलें तो दूने कष्ट का भय होता है। यदि तीन पक्ष बराबर इस प्रकार विकृति रहे हैं तो तिगुने कष्ट का भय रहता है।

बताया जा चुका है कि प्रत्येक स्वर को एक घंटा चलकर बदल जाना चाहिए। परन्तु जब वह अधिक काल तक चलता है तो हानिकर है। यदि बायाँ स्वर लगातार १७ घड़ी चले तो शरीर को कष्ट होता है। १२ घड़ी चले तो शत्रु बढ़ते हैं। एक, दो या तीन दिन चलता रहे तो बीमारी होती है। पाँच दिन चलने पर उद्योग और एक साल चलने पर धन का नाश होता है किंतु कभी-कभी अधिक समय तक स्वर चलने पर उसके अन्तर्गत कुछ ऐसी आंतरिक प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं जिनसे हानि में भी लाभ का प्रादुर्भाव होता है। जैसे यदि वाम स्वर लगातार ४ घड़ी चले तो किसी अचिन्त्य वस्तु की प्राप्ति ८ घड़ी चले तो सुख, १४ घड़ी चले तो प्रेम, मैत्री आदि की प्राप्ति, एक दिन-रात्रि चले तो ऐश्वर्य, वैभव आदि की उपलब्धि। ४, ८, १२ या बीस दिन रात्रि-दिन चन्द्र स्वर चलता रहे तो बड़ी आयु तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

यदि दक्षिण स्वर लगातार ४ घड़ी चलता रहे तो वस्तु हानि, २१ घड़ी चलता रहे तो मित्र का विछोह और एक दिन-रात्रि चलता रहे तो आयु क्षीण होती है। चंद्र स्वर शीतल होने के कारण उसके अधिक समय चलने पर बीच-बीच में कुछ लाभदायक क्षण भी आ जाते हैं किन्तु सूर्य स्वर में ऐसी बात नहीं है। बढ़ी हुई उष्णता से जीवन-रस सूखेगे ही और अहित ही होगा। ऊपर कुछ घड़ियों तक सूर्य स्वर चलने को अनिष्ट फल बताया गया है। यदि यह घड़ियाँ बढ़ने लगें तो प्रभाव और भी अनिष्टकर होता है और शरीर को इतनी क्षति पहुँचती है कि मृत्युकाल निकट आ जाता है। लिखा है कि यदि आठ पहर तक दक्षिण स्वर चलता रहे तो ३ वर्ष बाद, १६ पहर चले तो दो वर्ष बाद और तीन दिन-रात चले तो एक वर्ष बाद मृत्यु समझनी चाहिए। बस, दिन-रात यही स्वर चलता रहे तो ३ मास में मृत्यु हो जाती है।

यहाँ मृत्यु के सिलसिले में कुछ अन्य बातें भी पाठकों को बता देना आवश्यक प्रतीत होता है। देखा जाता है कि जब मनुष्य का प्राण बिल्कुल, निर्बल हो जाता है और मृत्यु निकट आ जाती है तो उसकी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हो जाता है, उसे कुछ का कुछ दिखाई देने लगता है। नेत्र रोगों या क्षीण दृष्टि से इन बातों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं, जिसकी दृष्टि ठीक है और वे प्रत्यक्षतः अपने शरीर में कुछ त्रुटि नहीं देखते, उन पर भी जब मृत्यु के पूर्व लक्षण प्रकट होने लगते हैं तो शरीर एवं बुद्धि में कुछ सूक्ष्म भ्रांति उत्पन्न हो जाती हैं। स्थूल दृष्टि से कोई मृत्यु का संकट नहीं जान सकता, किन्तु सूक्ष्म ज्ञान से यह आभास प्राप्त किया जा सकता है कि हमारा प्राण निर्बल होकर मृत्यु की भूमिका में तो प्रवेश नहीं कर रहा है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वर विज्ञान बतलाता है कि जिनके प्राण सूक्ष्म रूप से निर्बल होकर मृत्यु के निकट स्थिति पर पहुँचते हैं तो उन्हें कुछ विशेष भ्रम होने लगते हैं—(१) दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर नाक की ठीक सीध में कपाल पर रखकर नीचे की ओर उसी हाथ को कोहनी तक देखने से हाथ बहुत ही पतला नजर आता है। इसी प्रकार देखने से जब कलाई नजर न आवे, बीच में टूटी हुई मालूम पड़े तो प्रायः छः मास में मृत्यु होती है। (२) आँख बन्द करके उँगली से आँख को एक किनारा दबाने से आँख के भीतर एक चमकता हुआ तारा नजर आता है, यदि यह दिखाई न पड़े। (३) स्नान के बाद जिसके हृदय, पैर और कपोल पहले सूख जावें। (४) दीपक की लौ कभी स्वर्ण समान और कभी काले रंग की दिखाई दे (५) घी, तेल या पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखते समय केवल अपना सिर नजर आवे। (६) बिना किसी कारण अचानक बहुत पतला, बहुत मोटा हो जाय। (७) हाथ से कान बन्द करने पर कान के भीतर एक प्रकार की सनसनाहट की आवाज सी आती है, इन आवाजों का आना बन्द हो जाय। (८) भवें (भृकुटी) दिखाई न पड़ें। (९) सरसों या अण्डी के तेल का दिया बुझने पर जो गन्ध आती है, वह न आवे। (१०) मैथुन करते समय आदि में, मध्य में या अन्त में हिचकियाँ आने लगें। (११) काँसे की थाली में पानी भरकर उसमें सूर्य की छाया देखो। यदि छाया दक्षिण दिशा में कटी हुई दिखाई दे तो छः महीने में, पश्चिम में कटी दीखे तो तीन महीने में, उत्तर में कटी दीखे तो दो महीने में, पूर्व में कटी दीखे तो एक महीने में यदि उसमें छिद्र दीखें तो दस दिन में और धुएँ से ढकी हुई दीखे तो शीघ्र ही मृत्यु समझनी चाहिए।

यहाँ जो महीनों की मर्यादा बताई गई है, वह प्राणशक्ति की निर्बलता का एक नाप है। ऐसा न समझना चाहिए कि यह कोई निश्चित व्यवस्था है, जैसे ज्वर में थर्मामीटर का पारा नियत नम्बर से ऊँचा चला जाये तो मृत्यु-सूचक है, परन्तु हजारों रोगी उससे भी अधिक उग्र ज्वर से प्रयत्नपूर्वक बचा लिये जाते हैं। उपरोक्त प्रकार के लक्षण दिखाई दें तो घबराने या भयभीत होने की जरूरत नहीं है वरन् सावधानी के साथ शारीरिक और मानसिक दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। उपरोक्त आध्यात्मिक सूचनायें एक प्रकार से खतरे की घंटी हैं, जो हमें सावधान रहने की सूचना देती हैं।

स्वाभाविक श्वाँस का प्रमाण १० अंगुल जाना और बारह अंगुल आना है। एक श्वाँसोच्छ्वास में करीब चार सैकिण्ड लगते हैं। दीर्घ जीवन तथा अन्य प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करने के इच्छुक को खींचने की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए, अन्यथा निकलने की संख्या से तो कुछ अधिक रखने का अभ्यास अवश्य करना चाहिये, जिससे आमदनी से खर्च घट जाय और कुछ पूँजी जमा होने लगे। चार सैकिण्ड समय में एक श्वाँस लेने के समय में भी कुछ वृद्धि करना हितकर है। श्वाँस छोड़ने के बारह अंगुल परिमाण को जितना ही घटाया जाय, उतना ही लाभ है। क्रमशः घटाने का फल इस प्रकार कहा गया है—बारह अंगुल से एक अंगुल घटाकर ११ अंगुल कर लेने पर प्राण स्थिर हो जाते हैं, दो अंगुल घटाकर १० अंगुल कर लेने पर महा आनन्द प्राप्त होता है, ९ अंगुल कर लेने पर कवित्व शक्ति जागृत होती है, ८ अंगुल पर वाक् सिद्धि होती है, ७ अंगुल पर दूरदृष्टि प्राप्त होती है, ६ अंगुल पर आकाश में उड़ सकता है, ५ अंगुल पर प्रचंड वेग आता है, ४ अंगुल पर सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, ३ अंगुल पर नव सिद्धियाँ मिलती हैं, २ अंगुल पर अनेक रूप धारण कर सकता है, १ अंगुल पर अदृश्य हो सकता है और प्राण की गति का प्रमाण यदि केवल नख के अग्र भाग जितना रह जावे तो उसे मृत्यु का डर नहीं रहता अर्थात् अमर हो जाता है।

तत्व ज्ञान से दिव्य दृष्टि

इस समय स्वरयोग सम्बन्धी जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें प्रश्नोत्तर या भविष्य कथन के सम्बन्ध में भी कुछ उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार रमल विद्या, या कोष्ठों पर हाथ रखवाकर अथवा नामाक्षर आदि गिनकर फलित ज्योतिष का कुछ भाग बहुत सरल बना लिया गया है, उसी प्रकार के कुछ-कुछ प्रसंग इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्या में भी पाये जाते हैं। उनमें से कुछ का सारांश इस प्रकार है—

प्रश्नकर्त्ता को प्रश्न विचारक के पास कोई पुष्प अथवा रक्त वर्ण की वस्तु लानी चाहिए, जिससे उसके आते ही विचारक यह समझले कि आगन्तुक प्रश्नकर्त्ता है और स्वर आदि के विषय में सतर्क हो जावे।

जब प्रश्न विचारने वाले का इड़ा (बायाँ) स्वर चल रहा हो और प्रश्नकर्त्ता ऊपर, सामने या बायीं ओर से प्रश्न करे अथवा प्रश्न-विचारक के सूर्य स्वर में प्रश्नकर्त्ता नीचे, पीछे अथवा दाहिनी ओर से प्रश्न करे तो कार्य की सफलता है। इसके विपरीत हो तो असफलता समझनी चाहिए।

विचारक के पूरक में प्रश्न करना शुभ है तथा रेचक में अशुभ अर्थात् जिस समय प्रश्न करे और विचारक श्वाँस भीतर खींचता हो तो शुभ और बाहर छोड़ता हो तो अशुभ।

विचारक श्वांस लेकर कुम्भक (रुकी हुई श्वाँस) से पुष्प ऊपर फेंके। यदि पुष्प चलित स्वर की ओर गिरे तो प्रश्न की सफलता समझो और यदि अचलित स्वर की ओर गिरे तो असफलता समझनी चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न पूछने के समय यदि पूर्व तथा उत्तराभिमुख होवे और चन्द्र स्वर चलता हो अथवा दक्षिण-पश्चिम की ओर उसका मुख हो और सूर्य-स्वर चलता हो तो शुभ समझो, अन्यथा अशुभ। यदि चलित स्वर की ओर प्रश्न किया जावे तो कार्य कैसा ही कठिन हो, लाभ होगा। चलित स्वर की ओर से कर्कश स्वर में प्रश्न किया जावे तो लाभ अवश्य होगा किन्तु कष्ट के साथ।

प्रश्नकर्त्ता यदि पहले अचलित स्वर से प्रश्न करे और फिर चलित स्वर की ओर आ बैठे तो कठिनाई के साथ सफलता मिलेगी। प्रश्नकर्त्ता को नीचे खड़ा होकर नम्र वचनों से प्रश्न पूछना शुभ है और ऊँचे स्थान पर कठोर शब्दों में पूछे तो अशुभ है।

अमुक स्त्री के गर्भ रहा है या नहीं ? ऐसा प्रश्न बन्द स्वर की ओर से किया जाय तो गर्भ है, ऐसा समझना चाहिये अन्यथा नहीं।

गर्भ में लड़का हो या लड़की ? इस प्रश्न के जबाव में प्रश्नकर्त्ता का यदि बायाँ स्वर चल रहा हो और अपना दाहिना तो लड़का होकर मर जायगा, ऐसा जानना चाहिए। यदि दोनों ही के दक्षिण स्वर हों तो लड़का होगा और आनंद-मंगल होगा। प्रश्नकर्त्ता का स्वर दाहिना हो उत्तरदाता का बायाँ तो लड़की होकर मर जायगी। यदि सुषुम्ना में प्रश्न किया जाय तो गर्भपात होगा या माता कष्ट भोगेगी।

इसी प्रकार के या थोड़े-बहुत हेर-फेर से युद्ध, यात्रा, परदेशी का आगमन, मित्रता, विग्रह वर्ष-फल आदि के प्रसंग आते हैं। गम्भीर दृष्टि, से विचार करने पर ऐसा मालूम होता है कि जैसे ज्योतिष विद्या के गम्भीर विचार और कठिन गणित से बचने के लिए लोगों ने सस्ते फलित मार्ग रच डाले, उसी प्रकार स्वर के चिरकालीन अभ्यास और विशेष यत्नपूर्वक प्राप्त होने वाली सिद्धि के झंझट से बचने के लिये वह सरल तरीका निकला है, किन्तु इस प्रकार के बाल प्रयत्न से परोक्ष ज्ञान की देव दुर्लभ गुत्थी नहीं सुलझ सकती। साधारणतः एक स्वर एक घण्टे चलता है। मान लीजिए कि इस स्वर का फल अशुभ होता हो और इस एक घण्टे में ५२ व्यक्ति प्रश्न पूछने आवें तो क्या उन सबको ही अशुभ फल बता दिया जावेगा ? यदि कोई महानुभाव इस प्रकार की फलित विद्या फैलावेंगे तो उन्हें अपयश ही मिलेगा और साथ ही इस महाविज्ञान के सम्मान को भी क्षति पहुँचेगी।

मनुष्य का साधारण ज्ञान बहुत ही कम है, किन्तु उसके अन्दर अप्रत्यक्ष नई गुप्त बातों को जानने की शक्ति छिपी हुई पड़ी है। संजय महाभारत का सारा दृश्य बहुत दूर रहते हुए भी अपनी दिव्य-दृष्टि से देखते थे और उसका वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। इसी प्रकार दिव्य-दर्शन, दिव्य-श्रवण, दिव्य-ज्ञान आदि के असंख्य उदाहरण हमारे प्राचीन इतिहास में मिलते हैं।

अखिल विश्व ब्रह्माण्ड आकाश तत्व (ईश्वर) से परिपूर्ण भरा हुआ है। संसार में जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष घटनाएँ होती हैं, उनके कम्पन्न उठते रहते हैं। किसी कार्य का स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होना यह तो उसकी अंतिम अवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। यथार्थ में उस कार्य का आरम्भ बहुत पहले ही हो जाता है। हम दुकान खोल लेते हैं, दुकान का उद्घाटन देखना हो तो सूक्ष्म दृष्टि से अन्तिम कार्य हुआ। उसका आरम्भ तो बहुत दिन पूर्व—तभी से हो रहा था, जब से उस प्रकार के विचार हमारे मस्तिष्क में उठने शुरू हुये थे। उन विचार-कम्पनों द्वारा दुकान खुलने तक बड़ा भारी कार्य होता रहता है। यद्यपि हम इसे नहीं जान पाते तो भी कार्यों का होता रहना निस्सन्देह है। किसी घटना के घटित होने से पूर्व ईश्वर में तत्सम्बन्धी जो हलचलें होती हैं, उनके अप्रत्यक्ष और गुप्त भाव हमारे पास तक पहुँचते रहते हैं। यदि किसी का मन इतना स्वच्छ हो कि वह इन सूक्ष्म कम्पनों के प्रवाह को समझ सके तो निस्सन्देह गुप्त और भविष्य में होने वाली घटनाओं को वह जान सकता है।

हमारी नाक, कान, आँख आदि स्थूल इन्द्रियाँ बहुत ही मामूली शक्ति रखती हैं। आँखें केवल उन्हीं पदार्थों को देख सकती हैं, जिनसे नेत्रों के ज्ञान तन्तुओं से टकराने वाली एक विशेष प्रकार की ज्योति निकलती है। इसके अतिरिक्त वायु आदि बहुत से ऐसे मामूली और मोटे पदार्थ हैं, जिनमें से नेत्रों के अनुकूल प्रकाश कम्पन्न उत्पन्न नहीं होते, अतएव उनकी उपस्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती है। कानों से एक विशेष दर्जे के धीमे शब्द सुनाई पड़ते हैं, प्रति सैकिण्ड तीन से लेकर पचास हजार एक बार जिनकी थरथराहट होती है, केवल वही शब्द हम सुन सकते हैं। इससे ऊँचे और नीचे शब्द को सुनने में यह कान असमर्थ हैं। रक्तवर्ण से लेकर ऊदे रंग तक के सात रंग और उनके मिश्रणों को ही आँखें पहचानती हैं। इनके अतिरिक्त तो हजारों प्रकार के रंग की सूक्ष्म वस्तुएँ हैं, वह पहचानने में नहीं आतीं। फिर जो मामूली इन्द्रिय शक्ति हम लोगों में होती है, वह भी सब में एक सी नहीं होती। किसी की तेज होती है तो किसी की सुस्त।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि यदि हमारी इन्द्रिय शक्ति को कुछ और सहायता मिल जाय तो वे वर्तमान ज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक बातें जान सकती हैं। रौंचन-रश्मियों की सहायता से गैस और तपोमय पदार्थों का अन्तराल देखा जा सकता है। इन किरणों की सहायता से सन्दूक में बन्द चीजों को देख सकते हैं। बन्द चिट्ठियों को पढ़ सकते हैं, दीवार की आड़ में रखी हुई चीज को देख सकते हैं। ऐक्सरेज द्वारा शरीर के अन्दर के चित्र रोज उतरते हुए हम देखते हैं।

मनुष्य का पिण्ड-देह स्थूल का सूक्ष्म भाग है और उसके अन्तर्गत है, इसलिये उसकी ज्ञानेन्द्रियों में अखिल आकाश भरा रहता है। यदि इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियों को ऐसा जागृत कर लिया जावे कि वह अपने आन्तरिक आकाश में होने वाले कम्पनों की गतिविधियों का कुछ अधिक अनुभव कर सकें, तो निश्चय ही उसे वैसा ही दिव्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जैसा कि कुछ सिद्ध योगियों में देखा जाता है।

अध्यात्म विद्या के मर्मज्ञों का कथन है कि शरीर में मूलाधार आदि चक्र हैं, यह दिव्य शक्तियों के सूक्ष्म केन्द्र हैं। इन केन्द्रों को इन्द्रिय नहीं समझा जाता, क्योंकि इनसे आँख, कान की तरह देख या सुन नहीं सकते, फिर भी यह अर्न्तजगत की इन्द्रियाँ ही हैं। यह एक प्रकार के भँवर हैं। जैसे नदी के भँवरों में बहता हुआ पानी एक परिक्रमा देकर आगे बढ़ता है, उसी प्रकार सूक्ष्म कम्पन्न अपने अनुकूल भँवरों (चक्रों) की परिक्रमा हमारे शरीर के अन्दर भी करते हैं। अद्भुत बातों का जानना असम्भव नहीं है, केवल दर्जे का भेद है। जब हम ऊँचे दर्जे में पहुँच जाते हैं तो विश्व का भूगोल पढ़कर बहुत बातें मालूम कर लेते हैं, किन्तु उन सब बातों को उस समय नहीं समझ सकते, जब छोटे दर्जे में पढ़ते हैं।

स्वरयोग का तत्व-विज्ञान केन्द्र स्थानों, चक्रों में स्थित इन्द्रियों को प्रोत्साहित, जागृत और स्वच्छ करता है, जिससे संसार की विभिन्न प्रकार की घटनाओं के सम्बन्ध में जो कम्पन्न उठ रहे हैं, उनका ज्ञान प्राप्त किया जा सके। तत्व ज्ञान का अभ्यासी अपनी सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति को उसी प्रकार उन्नत करता जाता है, जैसा छोटा बालक धीरे-धीरे अपनी स्थूल इन्द्रियों को प्रबुद्ध बनाता जाता है। योग-शास्त्र के आद्य आचार्य भगवान शंकर ने परोक्ष विज्ञान के एक मार्ग तत्व ज्ञान का उपदेश किया है। वह प्रायः

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्तमान ग्रन्थों में जिस प्रकार मिलता है, उसका कुछ सारांश आगे दिया जा रहा है—

परोक्ष ज्ञान के लिये स्वर शास्त्र के अन्तर्गत एक बहुत ही गुप्त साधना है। वह इतनी महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है कि उसका उपयुक्त नाम 'तत्वज्ञान' रखना पड़ा है। तत्व का अर्थ सार भाग, मूल वस्तु है। आध्यात्मिक विज्ञान में तत्वज्ञान शब्द का उपयोग वहाँ होता है, जहाँ आत्मा और ईश्वर के सम्बन्ध की चर्चा होती है। भौतिक शास्त्री प्रकृति विज्ञान के मूलभूत कारणों को तत्व कहते हैं। स्वरयोग में ऐसी ही अन्तरंग साधनायें हैं, जिन्हें महत्व के अनुरूप ही 'तत्वज्ञान' नाम मिला है।

षट चक्र भेदन की भाँति स्वर-विज्ञान में तत्वों की उपासना करनी पड़ती है और जानना होता है कि इसमें इस समय कौन-सा तत्व विद्यमान है ? तत्वों की कुछ जानकारी ऐसे है—

पृथ्वी-तत्व

इस तत्व का स्थान मूलाधार चक्र अर्थात् गुदा से दो अंगुल अण्डकोषों की ओर हटकर सीवन में स्थिति है। सुषुम्ना का आरम्भ इसी स्थान से होता है। प्रत्येक तत्व चक्र का आकार कमल के पुष्प जैसा है। यह 'भूलोक' का प्रतिनिधि है। पृथ्वी तत्व का ध्यान इसी मूलाधार चक्र में किया जाता है।

पृथ्वी-तत्व की आकृति चतुष्कोण, रंग पीला, गुण गन्ध है, इसलिए इसको जानने की इन्द्रिय नासिका तथा कर्मेन्द्रिय गुदा है। शरीर में पीलिया, कमलवायु आदि रोग इसी तत्व की विकृति से पैदा होते हैं। भय आदि मानसिक विकारों में इसकी प्रधानता होती है। इस तत्व के विकार मूलाधार चक्र में ध्यान स्थिति करने से अपने आप शान्त हो जाते हैं।

साधन विधि—

सबेरे जब एक पहर अँधेरा रहे, तब किसी शान्त स्थान और पवित्र आसन पर दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़कर उन पर बैठें। दोनों हाथ उल्टे करके घुटनों पर इस प्रकार रखो जिससे उँगलियों के छोर पेट की ओर रहें। फिर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्र में 'लं' बीज वाली चौकोर पीले रंग की पृथ्वी का ध्यान करें। इस प्रकार करने से नासिका सुगन्धि से भर जायगी और शरीर सोने के समान कांति वाला हो जाता है। ध्यान करते समय ऊपर कहे हुए पृथ्वी तत्व के समस्त गुणों को अच्छी तरह ध्यान में लाने का प्रयत्न करना चाहिए और 'लं' इस बीज मन्त्र का मन ही मन (शब्दरूप से नहीं वरन् ध्वनिरूप से) जप करते जाना चाहिए।

जल-तत्व

पेडू के नीचे, जननेन्द्रियों के ऊपर मूल भाग में स्वाधिष्ठान चक्र में जल-तत्व का स्थान है। यह चक्र 'भुवः' लोक का प्रतिनिधि है। रंग श्वेत, आकृति अर्ध चन्द्राकार और गुण रस है। कटु, अम्ल, तिक्त, मधुर आदि सब रसों का स्वाद इसी तत्व के कारण आता है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय जिव्हा और कर्मेन्द्रिय लिंग है। मोहादि विकार इसी तत्व की विकृति से होते हैं।

साधन विधि—

पृथ्वी तत्व का ध्यान करने के लिए बताई हुई विधि में आसन पर बैठकर 'बं' बीज वाले अर्ध चन्द्राकार चन्द्रमा की तरह कान्ति वाले जल तत्व का स्वाधिष्ठान चक्र में ध्यान करना चाहिए। इससे भूख-प्यास मिटती है और सहनशक्ति उत्पन्न होती है।

अग्नि-तत्व

नाभि स्थान में स्थित मणिपूरक चक्र में अग्नि-तत्व का निवास है। यह 'स्व' लोक का प्रतिनिधि है। इस तत्व की आकृति त्रिकोण, रंग लाल, गुण रूप है। ज्ञानेन्द्रिय नेत्र और कर्मेन्द्रिय पाँव हैं। क्रोधादि मानसिक विकार तथा सूजन आदि शारीरिक विकार इस तत्व की गड़बड़ी से होते हैं। इसके सिद्ध हो जाने पर मन्दाग्नि, अजीर्ण, आदि के विकार दूर हो जाते हैं और कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने में सहायता मिलती है।

साधन विधि—

नियत आसन पर बैठकर 'रं' बीज मंत्र वाले, त्रिकोण आकृति के और अग्नि के समान लाल प्रभा वाले अग्नि तत्व का मणिपूरक चक्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ध्यान करे। इस तत्व के सिद्ध हो जाने पर अन्न ग्रहण की शक्ति अत्यन्त, पीने की शक्ति और ध्रुव तथा अग्नि को सहन करने की शक्ति आ जाती है।

वायु-तत्व

यह तत्व हृदय देश में स्थिति अनाहत चक्र में है एवं 'महलोक' का प्रतिनिधि है। रंग हरा, आकृति षट्कोण तथा गोल दोनों तरह की है। गुण स्पर्श, ज्ञानेन्द्रिय स्वयं और कर्मेन्द्रिय हाथ हैं। वात, व्याध, दमा आदि रोग इसी की विकृति से होते हैं।

साधन विधि—

नियत विधि से स्थित होकर 'यं' बीज वाले, गोलाकार, हरी आभा वाले वायु तत्व का अनाहत चक्र में ध्यान करें। इससे आकाश गमन तथा पक्षियों की तरह उड़ना सिद्ध होता है।

आकाश-तत्व

शरीर में इसका निवास विशुद्ध चक्र में है। यह चक्र कण्ठ स्थान में 'जन लोक' का प्रतिनिधि है। इसका रंग नीला, आकृति अण्डे की तरह लम्बी-गोल, गुण शब्द, ज्ञानेन्द्रिय कान तथा कर्मेन्द्रिय वाणी है।

साधन विधि—

पूर्वोक्त आसन पर से 'हं' बीज मन्त्र का जप करते हुए चित्र-विचित्र रंग वाले आकाश तत्व का विशुद्ध चक्र में ध्यान करना चाहिये। इससे तीनों कालों का ज्ञान, ऐश्वर्य तथा अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

नित्यप्रति पाँचों तत्वों का छः मास तक अभ्यास करते रहने से तत्व सिद्ध हो जाते हैं फिर तत्व को पहचानना सरल हो जाता है।

यह बताया जा चुका है कि तत्वों को जानने के लिए किस प्रकार अभ्यास करना चाहिये। अब यह बताते हैं कि तत्व को पहचानने के स्थल उपाय क्या हैं ? पाठकों को जानना चाहिये कि स्वर के साथ-साथ स्वरों का उदय भी होता है। जब तक एक स्वर चलता है, तब तक पाँचों तत्व क्रमशः एक-एक बार उदय होते हैं और अपने समय को पूरा करके अस्त हो जाते हैं।

तत्व परीक्षा के मुख्य प्रकार ६ हैं—

(१) श्वाँस द्वारा

तत्वों के उदय के साथ नथुने में चलते हुए श्वाँस की गति बदलती है। यदि नथुनों के बिल्कुल बीच में वायु चल रही हो तो पृथ्वी तत्व, नीचे की ओर चल रही हो तो जल तत्व, तिरछी अर्थात् एक ओर चल रही हो तो वायु तत्व, ऊपर की ओर चल रही हो तो अग्नि तत्व और यदि चारों ओर घूमती हुई चल रही हो तो आकाश तत्व उदय जानना चाहिये।

(२) आकृति द्वारा

किसी स्वच्छ दर्पण के ऊपर जोर से नाक द्वारा वायु छोड़िये। इससे दर्पण के ऊपर श्वाँस की भाप से कुछ आकृति बन जावेगी, इससे तत्व की परीक्षा हो सकती है। यदि चौकोर आकृति बने तो पृथ्वी, अर्ध चन्द्राकार बने तो जल, त्रिकोण बने तो अग्नि, लम्बाई लिये गोल बने तो वायु और छोटी बिन्दियों सी बनें तो आकाश तत्व जानना चाहिये।

(३) मूल स्थान द्वारा

पीछे बताया जा चुका है कि शरीर के किस स्थान पर किस तत्व का मूल स्थान है। ध्यान करने पर जिस स्थान में विशेष चेतना मालूम पड़े और तत्व के निर्धारित रंग रूप प्रत्यक्ष प्रदर्शित होने लगें तो उसी स्वर का उदय समझना चाहिए।

(४) लम्बाई द्वारा

खूब अच्छी तरह बारीक धुनी हुई रूई या बारीक धूल हथेली पर उस नथुने के पास धीरे-धीरे ले जानी चाहिये, जिससे श्वाँस चल रही हो। जितनी दूरी पर प्रथम रूई या धूल श्वाँस की हलचल के कारण जरा भी हिलने लगे वहीं ठहर जाओ और नाक से उसकी दूरी नाप लो, यदि वह १२ अंगुल हो तो पृथ्वी, १६ अंगुल हो तो जल, ४ अंगुल हो तो अग्नि, ८ अंगुल हो तो वायु और २० अंगुल हो तो आकाश तत्व उदय जानना चाहिये।

(५) स्वाद द्वारा

ध्यानपूर्वक परीक्षा करने से मालूम होता है कि बिना कुछ खाये हुए भी जिव्हा में अलग-अलग समयों में अलग-अलग रसों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाद आते रहते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा करने पर यदि मुख में मीठा स्वाद प्रतीत हो तो पृथ्वी, कसैला हो तो जल, कड़ुआ हो तो अग्नि, खट्टा हो तो वायु और तीखा हो तो आकाश तत्व समझना चाहिये।

(६) समय द्वारा

साधारण एक स्वर एक घण्टा चलता है, जिसमें पृथ्वी तत्व २० मिनट, जल तत्व १६ मिनट, अग्नि तत्व १२ मिनट, वायु तत्व ८ मिनट और आकाश तत्व ४ मिनट रहता है।

तत्व की परीक्षा के लिये जहाँ ध्यानावस्थित होकर परीक्षा करने का उल्लेख है, वहाँ षडमुखी मुद्रा द्वारा ध्यान करना समझना चाहिये। दोनों कानों पर दोनों हाथ के अँगूठे, दोनों आँखों पर दोनों हाथों की तर्जनी और मध्यमाएँ, दोनों नथुनों पर दोनों अनामिकाएँ और दोनों होठों के बीच अर्थात् मुँह में कनिष्ठकाएँ लगाकर ध्यान करना चाहिए। स्वर सम्बन्धी ध्याम के लिये यही मुद्रा उपयुक्त बताई गई है।

किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये जब विचारक पाँच मिनट तक एकाग्रता करले, तब देखे कि मेरा किस स्वर में कौन तत्व उदय हो रहा है ? उसी के अनुसार उत्तर देना चाहिये।

यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्व हो, तब कार्य सिद्ध न होगा यदि अग्नि और पवन मिले हुए हों तो शीघ्र सिद्धि होगी, पवन हो तो कुछ विलम्ब में होगी, पृथ्वी और जल तत्व हर कार्य में शुभ सूचक हैं। सूर्य स्वर में आकाश तत्व, हो, तो भयंकर हानि की संभावना रहती है।

चन्द्र-स्वर में पृथ्वी तत्व हो तो १२ दिन में, जल और पृथ्वी तत्व हों तो १३ दिन में, केवल जल हो तो ३ दिन में, पवन हो तो ८ दिन में सिद्धि होती है। अग्नि तत्व में हानि और आकाश में अनिष्ट की आशंका रहती है।

पृथ्वी तत्व में स्थिर कार्य, जल तत्व में चलते-फिरते कार्य, अग्नि तत्व में क्रूर कर्म, पवन तत्व में हत्या, कूट-नीति आदि सफल होते हैं एवं आकाश तत्व में सब कार्यों में असफलता होती है।

पृथ्वी और जल तत्व में सिद्धि, अग्नि तत्व से मृत्यु, वायु से नाश और आकाश में निष्फलता प्राप्त होती है। पृथ्वी तत्व में देर से लाभ, जल तत्व में तत्क्षण लाभ, वायु और अग्नि में हानि तथा आकाश में निराशा होती है।

चन्द्र-स्वर में पृथ्वी और जल तत्व तथा सूर्य स्वर में अग्नि तत्व जिस समय हो, उस समय अच्छे-बुरे सब कार्यों की सिद्धि होती है। दिन में पृथ्वी तत्व से और रात्रि में जल तत्व से लाभ होता है। जीवन, जय, लाभ, कृषि, धन उपार्जन, मन्त्र सिद्धि, युद्ध, प्रश्न, गमन-आगमन में पृथ्वी तत्व श्रेष्ठ है। पृथ्वी तत्व में बहुतों के साथ गमन जल और वायु में अकेले गमन, अग्नि में दो मनुष्यों के साथ और आकाश में कहीं भी गमन न करना चाहिये। पूर्व दिशा में पृथ्वी, पश्चिम में जल, दक्षिण में अग्नि और उत्तर में वायु तत्व बलवान होते हैं। इन दिशाओं में सम्बन्धी कार्य इन्हीं तत्वों में करने पर बहुत शुभ होते हैं। वायु तत्व में युद्ध करने पर सफलता मिलती है।

सम्वत्सर जिस दिन प्रारम्भ होता हो, उस दिन कुछ समय एकाग्रता करने पर तत्व के उदय का शुभ-अशुभ फल देखते हुए आगामी वर्ष का फल जाना जा सकता है।

शुभ और अशुभ के फल तो तत्व विद्या के आरम्भिक अभ्यासियों के लिये थोड़ा सा पथ-प्रदर्शन मात्र हैं। कुछ अधिक अभ्यास होने पर तो उसे गुरु बातों का प्रत्यक्ष अनुभव अपने आप होने लगता है उस समय यह पुस्तक पीछे रह जाती है और अभ्यासी बहुत आगे बढ़ जाता है।

उसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए स्वर शास्त्र ने इस महत्त्वपूर्ण विज्ञान की प्रशंसा करते हुए कहा है—

तत्व रूप गतिः स्वादो मंडलं लक्षणान्वितम्।

स वेत्ति मानवो लोके संसर्गादपि मार्गवित्।।

जो व्यक्ति तत्वों के रूप, गति, स्वाद, मण्डल और लक्षण इन सबको जानता है, वह तत्वों के हेल-मेल में भी पृथक्-पृथक् मार्गों को जान लेता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वर ज्ञानं नरे यत्र लक्ष्मीः पाद तले भवेत्।
सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत्।।

जिस मनुष्य को स्वर ज्ञान है, लक्ष्मी उसके चरणों के नीचे रहती है और उसका शरीर भी सर्वत्र सदा सुखी रहता है।

स्वरयोग की साधना-प्राण विद्या का अभिन्न अंग

प्रकृति के अन्तराल में प्राण शक्ति का अनन्त वैभव बिखरा पड़ा है। योगी इसे अपने अन्दर प्रविष्ट कर धारण करने की क्षमता अर्जित करते हैं और इसी के माध्यम से आत्मिक ऋद्धियों और भौतिक सिद्धियों के खजाने की 'मास्टर की' पा सकने में सफल होते हैं। स्वर विज्ञान एवं प्राण विद्या का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। स्वर विज्ञान की धुरी के चारों ओर ही प्राणयोग साधना का विधान विनिर्मित है। 'स्वरयोग' की इस साधना द्वारा सूक्ष्म प्राण ऊर्जा के रूप में संव्याप्त महाप्रज्ञा की ही प्रत्यक्षतः उपासना की जाती है। प्राण शक्ति का सन्तुलन उत्कर्ष और अभिवर्धन प्रज्ञा उपासना का अनिवार्य अंग माना जाता है। जैसे-जैसे इसकी प्रखरता मानवी सत्ता के सूक्ष्म कलेवर में बढ़ती है, आनन्द व उल्लास की मात्रा बढ़ती जाती है तथा आत्मिक विभूतियों की वर्षा होने लगती है।

व्यष्टिप्राण समष्टिगत महा प्राण के प्रवाह का ही एक अंग है। यह शरीर में बहत्तर हजार नाड़ी-नाड़िकाओं के माध्यम से प्रवाहित होता है। इसका बोध भी किया जा सकता है, इसीलिये इसे बोधेन्द्रिय कहते हैं। इनसे सम्बन्धित सभी साधना विधान स्वर विधान के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि स्वर वस्तुतः प्राण प्रवाह ही है।

प्राण प्रवाहों का बोध पाँच प्रकार का होता है—इन्हें पंचप्राण भी कहते हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान। 'प्राण' वह शक्ति है जो शरीर के बाह्योद्भव बोधांशों को श्वांस, आहार आदि के रूप में धारण करती है तथा शब्दोच्चारण व शरीर में बल संचरण के रूप में व्याप्त होती है। 'अपान' मल-मूत्र, कफ, वीर्य, रज आदि विसर्जन क्रियाओं में मुख्य भाग लेने वाली शक्ति है। पाचक रसों—एन्जाइम्स आदि का उत्पादन एवं वितरण 'समान' का कार्य है। रक्त-संचार, सम्वेदना ग्रहण करने वाले तन्तुओं में प्रवाहित विद्युत आदि का बोध व धारण 'व्यान' का कार्य है तथा धातुगत बोधांशों को धारण कर शरीर को सबल-उन्नत बनाये रखना 'उदान' के हिस्से में आता है। इन पंचप्राणों के अतिरिक्त पाँच उपप्राण भी हैं—धनंजय, देवदत्त, कर्म, नाग व कृकल। इन सभी का प्राण-प्रवाह इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना इन तीन प्रधान परिपथों में, होकर बहता है। इन तीनों से जो शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं वे ही ७२ हजार नाड़ियों के रूप में पूरे शरीर में व्याप्त होती हैं। इस प्राण प्रवाह से ही तीन प्रकार के स्वरों की उत्पत्ति होती है।

इड़ा नाड़ी का प्रवाह दाहिनी ओर चलता है एवं इसे सूर्य स्वर अथवा उत्तेजक प्राण प्रवाह भी कहते हैं। पिंगला नाड़ी का प्रवाह बायीं ओर चलता है तथा इसे शामक प्राण प्रवाह भी कहते हैं। इन्हें शास्त्रों में क्रमशः गंगा और यमुना भी कहा गया है। मध्यस्था सुषुम्ना नाड़ी की संज्ञा सरस्वती से दी जाती है। यह संधि की स्थिति है जो अल्पकाल के लिये ही होती है। प्रधानतः इड़ा और पिंगला का ही कार्य-व्यापार चलता रहता है।

ये दोनों ही प्राण प्रवाह शरीर में अंग-प्रत्यंगों के विभिन्न मिलन बिन्दुओं पर, जहाँ चक्र उपत्यिकाएँ स्थित होती हैं, एक-दूसरे के प्रभावों को निरस्त कर प्राण-प्रवाह में साम्य बिठाये रखते हैं—यह सन्तुलन ही वस्तुत स्वर विज्ञान की साधना है। स्वर विज्ञान इड़ा व पिंगला की सन्धि स्थिति में सन्तुलन बिठाता है। असन्तुलन की स्थिति में इड़ा की प्रधानता से उत्तेजना, आक्रामकता बढ़ जाती है। विज्ञानवेत्ता इड़ा की संगति सिम्पेथेटिक आरोनॉमिक नर्वस सिस्टम से बिठाते हैं।

योगी विज्ञान के अनुसार दोनों स्वर सूर्य व चन्द्र नाड़ी के रूप में क्रमशः दाहिने व बायें नथुने से प्रवाहित होते हैं पर दोनों से एक ही समय में वायु प्रवाह नहीं होता। स्वर बदलते समय मात्र कुछ क्षणों के लिये दोनों स्वर एक साथ चलते हैं जिसे सुषुम्ना-मध्य नाड़ी का प्रवाह कह सकते हैं। जिस प्रकार समुद्र की लहरों पर सूर्य, चन्द्र का प्रभाव पड़ता है, इसी प्रकार हमारी श्वाँस-प्रक्रिया भी प्रभावित होती है। सूर्य स्वर के समय शरीर में दिन तथा चन्द्र स्वर के समय शरीर में रात्रि होती है। दिन-रात्रि में मनुष्य शरीर में २१६०० बार श्वाँस का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवागमन स्वाभाविकतः होता है अर्थात् १ मिनट में १५ या १६ बार। इस प्रकार प्रत्येक जीवधारी का पूर्ण आयु प्राप्त करना, दीर्घजीवी होना उसकी श्वाँस क्रिया पर आश्रित है। जो इस सम्पदा का अपव्यय करता है अर्थात् १ मिनट में अधिक बार श्वाँस लेता है वह आयु उतनी ही कम करता जाता है—व्यसनी, भोगी, रोगी इसी श्रेणी में आते हैं। जो कम श्वाँस लेता है वह अपने खजाने का दुरुपयोग कम करने से दीर्घायु होता है। प्रति मिनट श्वाँस की संख्या जैसे-जैसे घटती है, आयुष्यकाल वैसे ही गुणित क्रम में बढ़ता चला जाता है।

ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक पखवारे में श्वाँस की गति बदलती है और प्रायः एक नासिका से एक घण्टा श्वाँस चलकर बदल जाती है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय के समय इड़ा नाड़ी अर्थात् दायाँ स्वर चलना चाहिये, उसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को इसी समय पिंगला नाड़ी अर्थात् बायाँ स्वर चलना चाहिये। प्रत्येक दिन में पाँच बार स्वर का परिवर्तन होता है। श्वाँस चलने का यह नैसर्गिक नियम सब में शाश्वत है। इस क्रम को जानकर और परिस्थिति के अनुकूल साधकर स्वर विज्ञानी अपने हर कार्य को सफल बनाते हैं। योगी बताते हैं कि विवेकपूर्ण स्थायी नीति नियोजन सम्बन्धी कार्य तब किये जाने चाहिये जब चन्द्र नाड़ी का प्रवाह गतिमान हो। उत्तेजक—आवेश, जोश वाले कार्यों के लिये उचित समय वही बताया गया है जब सूर्य नाड़ी का प्राधान्य हो।

योगियों का यह निष्कर्ष पूर्णतः वैज्ञानिक है। साइन्स डायजेस्ट (जून १९८१) में प्रकाशित एक शोध लेख के अनुसार बायें व दायें मस्तिष्क की गतिविधियों का बायें व दायें नथुने से श्वाँस लेने के क्रम से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। डॉ० रेमण्डक्लीन एवं रोजीन आर्मीटेज (डलहौजी यूनिवर्सिटी—नोवास्कॉटिया) ने पाया कि प्रति ९० या १०० मिनट में दाहिना मस्तिष्क विराम चाहता है। व बायाँ मस्तिष्क गतिशील हो जाता है। ऐसे में यदि नथुने से श्वाँस द्वारा इस चक्र से जिसे वे 'नेजल सायकल" कहते हैं, संगति बिठा ली जाय तो कार्य क्षमता में उल्लेखनीय परिवर्तन हो सकता है, साथ ही कई प्रसुप्त पड़े केन्द्रों की जागृति में भी इससे सहायता मिल सकती है। 'हिमालयन इन्स्टीट्यूट, पैंसिलवानिया' ने तो इस विषय पर पूरी एक प्रयोगशाला ही स्थापित की है और इससे वे मानस रोगों सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों पर भी पहुँचे हैं।

स्वर विज्ञान बताता है कि सही ढंग से श्वाँस नाड़ी चलने की प्रक्रिया से संगति बिठाते हुए यदि अपना श्वाँस क्रम सुनियोजित कर लिया जाय तो न केवल जीवन व्यापार में सन्तुलन साधने हेतु वरन् आत्मिक प्रगति के लिये भी इस योग विद्या का उपयोग हो सकता है। प्राण प्रवाह पर नियन्त्रण कर योगी अपनी सूक्ष्म चेतना को विकसित कर लेते हैं। भविष्य के गर्भ में छिपी कई घटित होने वाली बातें वे पहले से ही जानते हैं और तद्नुसार ही अपनी गतिविधियों का निर्धारण करते हैं। इसे दिव्य दृष्टि एवं अतीन्द्रिय सामर्थ्य भी कह सकते हैं। न केवल प्राणशक्ति के संरक्षण व सम्वर्धन हेतु वरन् स्वर योग के माध्यम से दिव्य उपलब्धियों के लिये भी स्वर ज्ञान तथा श्वसन क्रिया का नियमन, सुनियोजन जरूरी है। भगवान शंकर ने स्वरयोग की महत्ता बताते हुए कहा है—

सर्वशास्त्र पुराणादि स्मृति वेदांग पूर्वकम्।
स्वर ज्ञानात्परं तत्वं नास्ति किंचिद्वरानने।।

अर्थात्—सम्पूर्ण शास्त्र, पुराणादि, स्मृति और वेदांग आदि ये सब स्वर ज्ञान से श्रेष्ठ नहीं हैं अर्थात इनका ज्ञान भी स्वर के ही बल से होता है।

गुप्तमद गुप्ततरं सारमुपकार प्रकाशकम्।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानिनां मस्तकेमणिः।।

अर्थात्—यह स्वर ज्ञान गुप्त से भी गुप्त वस्तु है। इसमें छिपा रहस्य उपकारों का प्रकाशक है और सर्व ज्ञानों में शिरोमणि है।

प्राण विद्या की इस विद्या को आज के वैज्ञानिक युग में भी पूर्णतः मान्यता मिल चुकी है। स्वर साधना की सिद्धि के लिये उत्सुक साधकों के लिए इससे सुगम प्राण योग की साधना और कोई नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रत्यक्ष फलदायिनी योग साधनायें

मन और अन्तःकरण के मिलन में, एकता में सुख है। इसी को आत्मा और परमात्मा का मिलन कहते हैं। इस मिलन का दूसरा नाम योग है। दो वस्तुओं के मिलने से एक नवीन तत्व उत्पन्न होता है। पति-पत्नी का मिलन एक मनोहर सन्तान का उपहार-उपस्थित करता है, बिजली की ऋण और धन (ठंडी और गरम) शक्ति के तार जब आपस में मिलते हैं तो एक नवीन शक्ति उत्पन्न होती है। आत्मा और परमात्मा के योग से एक ऐसे आनन्द का आविर्भाव होता है, जिसकी तुलना संसार के अन्य किसी भी सुख से नहीं की जा सकती। इस सुख को परमानन्द, जीवन मुक्ति, ब्रह्मनिर्वाण, आत्मोपलब्धि, प्रभुदर्शन आदि नामों से पुकारा जाता है।

यह योग साधना जीवन का एक नित्य कर्म होना चाहिये। संसार के वातावरण का कुप्रभाव मन पर जमता है, इसको नित्य ही साफ करने की जरूरत पड़ती है। कमरे में नित्य धूल जमती है, इसलिये नित्य झाड़ू लगानी पड़ती है। त्वचा पर, नाक, कान, आँख, दाँत, जीभ पर नित्य मैल जमता है इसलिये उनको जल से नित्य स्वच्छ करते हैं, इसी प्रकार मन पर सांसारिक दुष्प्रवृत्तियों के कुसंस्कार नित्य जमते हैं। उनको हटाने के लिये नित्य योग साधन की जरूरत पड़ती है। रोज जमने वाले मानसिक मैलों की सफाई के लिये और मन की आत्मविरोधी प्रवृत्तियों को हटाने के लिये योग साधना आवश्यक है और इतनी आवश्यक है कि उसे स्नान, शौच, भोजन, शयन की ही भाँति नित्य कर्मों में स्थान मिलना चाहिये। साधना, अन्तःकरण का शौच और आहार है इसलिये उसकी ओर तो शरीर की अपेक्षा अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। आगे कुछ ऐसी ही सरल योग साधनायें दी जा रही हैं जिन्हें अभ्यास में उतारने वाला हर कोई व्यक्ति उसके प्रत्यक्ष सत्परिणामों से लाभान्वित हुये बिना नहीं रहेगा।

आत्म जागरण योग

योग शास्त्रों के कथनानुसार साधना का प्रयोजन यह है कि "हम अपने वास्तविक स्वरूप को समझें, आत्मा का दर्शन और अनुभव करें एवं विचार और कार्यों को उस ढाँचे में ढालें जो आत्मा की रुचि के अनुरूप हो।"

हम अपनी "मैं क्या हूँ" और 'ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ?' पुस्तकों में उन साधना विधियों का उल्लेख कर चुके हैं जिनके द्वारा आत्मदर्शन की ओर कदम बढ़ाया जा सकता है। आत्म दर्शन के लिये इस प्रकार के विचार और विश्वासों को मन में स्थान देना चाहिये कि "मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ।" अपने अहम् को शरीर से भिन्न अविनाशी आत्मा और शरीर, मन, बुद्धि को अपना औजार समझने की मान्यता जब सुदृढ़ हो जाती है तो मनुष्य उसी ढांचे में ढलने लगता है जो आत्मा के स्वार्थ एवं गौरव के अनुरूप है।

आमतौर से सभी लोग यह जानते हैं कि प्राणी शरीर से भिन्न है। पर यह उनका ज्ञान मस्तिष्क के अग्रभाव तक ही सीमित होता है। वे इस तथ्य को जानते तो हैं पर मानते नहीं। व्यवहार में लोग अपने को शरीर ही अनुभव करते हैं और शरीर को जिन कार्मों में लाभ होता है, सुख मिलता है, मनोरंजन होता है, उन्हें करने के लिये दिन-रात लगे रहते हैं। धन कमाने में और इन्द्रिय भोगों में आमतौर से लोगों का समय खर्च होता है। जिन चिन्ताओं में व्यस्त रहते हैं वे शरीर के लाभ-हानि से ही सम्बंन्धित होती हैं। शरीर के लिये आत्मा की परवाह नहीं की जाती। पाप, अनीति, छल, दुराचार, असत्य को अपनाकर भी लोग स्वार्थ साधम करते हैं वह शरीर से ही सम्बन्धित होते हैं। जन साधारण का स्वार्थ शरीर स्वार्थ से ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धित होता है। मेरा स्वार्थ किसमें है ? इस प्रश्न पर विचार करते हुये लोग "मेरा" शब्द का अर्थ शरीर ही करते हैं। आत्मा के स्वार्थ को आमतौर से स्वार्थ नहीं कहा जाता, वह तो एक लोकोत्तर असाधारण पुण्य-परमार्थ कहा जाता है। उसे करने की कभी-कभी ही आवश्यकता समझी जाती है। इससे स्पष्ट है कि संसार में शरीर को ही 'मैं' समझने की आम प्रवृत्ति है। 'मैं' का अर्थ आत्मा है इसे जानते जरूर हैं पर व्यवहार में मानते यह हैं कि 'मैं' का अर्थ है—मेरा शरीर।

इस दृष्टिकोण से जीवन की गतिविधि में भारी अन्तर आ जाता है। आत्मवादी और भौतिक दृष्टिकोण में वैसे बहुत थोड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है पर उस अन्तर के कारण जो परिणाम उपस्थित होते हैं उनमें उतना ही भेद होता है जितना आकाश-पाताल में। रेल की पटरी में लाइन बदलने की कैंची जहाँ लगी होती है वहाँ कोई बहुत भारी अन्तर दिखाई नहीं देगा पर जब एक गाड़ी एक तरफ की गुजरती है और दूसरी गाड़ी दूसरी तरफ से, तो अन्त में जब चलते-चलते दोनों गाड़ियाँ जहाँ पहुँचती हैं उन स्थानों में सैकड़ों, हजारों मील का अन्तर होता है। एक पूर्व में पहुँचती है तो दूसरी पच्छिम में, कैंची के काटने में दो-चार अंगुल का फर्क होता है पर अन्त में उसका प्रतिफल बहुत ही भिन्न होता है। ठीक यही हालत आत्मिक और भौतिक दृष्टिकोणों के बीच में है। जो व्यक्ति अपने को आत्मा मानता है वह अपना स्वार्थ उसे समझता है, जिससे आत्म-कल्याण होता है। वह आत्म-कल्याण करने वाले विचार और कार्यों को अपनाता है। यदि इस मार्ग में चलते हुये उसे शरीर पर प्रभाव डालने वाली कोई भौतिक हानि होती है तो वह उसकी परवाह नहीं करता। इसके विपरीत भौतिक दृष्टिकोण का फलितार्थ हमारे सामने मौजूद है कि असंख्यों मनुष्य स्वर्ग-नरक की मुक्ति, बन्धन की चिन्ता न करके आत्म हनन करते हुये भौतिक सम्पदायें कमाते हैं जिससे उनको मनोवांछित सुख सामिग्री प्राप्त हो सके।

"मैं शरीर हूँ इसलिये शरीर सुख के लिये धर्म, अधर्म की परवाह न करता हुआ भौतिक सम्पदायें कमाऊँ, उसी के लिये जीवन का प्रत्येक क्षण लगाऊँ" आज के इस लोक व्यापी दृष्टिकोण में परिवर्तन किये बिना कोई मनुष्य, कोई समाज, कोई राष्ट्र, सुख-शान्ति से नहीं रह सकता। "मैं आत्मा हूँ, ईश्वर का अविनाशी राजकुमार हूँ, अपने औजार शरीर और मन का उपयोग केवल उन्हीं कार्य में करूँगा, जो मेरे गौरव के, धर्म के, कर्त्तव्य के अनुकूल हैं।" यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण जिन व्यक्तियों ने अपना लिया है उनका जीवनक्रम एक सतोगुणी ढाँचे में, ढल जाता है। भौतिक दृष्टिकोण मनुष्य को चिन्ता, क्रोध, शोक, द्वेष, कलह, ईर्षा, मद, मत्सर, मोह, रोग, उद्वेग, आवेश का नारकीय प्रतिफल उपस्थित करता है और आत्मिक दृष्टिकोण के कारण प्रेम, सहयोग, प्रसन्नता, साहस, अभय, सन्तोष एवं सात्विक आनन्द का उपहार प्राप्त होता है। इनमें एक को नरक और दूसरे को स्वर्ग कहा जा सकता है।

योग साधना द्वारा स्वर्गीय आनन्द की प्राप्ति की जाती है। इस साधना मन्दिर का पहला द्वार आत्मजागरण है। 'मैं आत्मा हूँ' इस भाव का अन्तःकरण में प्रत्यक्ष होना, उस पर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा तथा इस पर आस्था होना साधना का प्रयोजन है। सोते, जागते, चलते, काम करते, साधक के मन में यह गहरा विश्वास होना चाहिये कि "मैं ईश्वर का पवित्र अंश, अविनाशी आत्मा हूँ। केवल वही विचार और कार्य अपनाऊँगा जो मेरे वास्तविक आत्मिक स्वार्थ के अनुकूल हैं" यह छोटी शब्दावली एक कागज पर लिखकर उस स्थान पर टाँग लेनी चाहिये जहाँ बराबर नजर पड़ती हो। इन भावनाओं को जितनी अधिक बार हो सके, मानसिक जप की तरह हृदयंगम करना चाहिये। लगातार बहुत दिनों तक इस तथ्य पर अन्तःकरण को केन्द्रित करने से मन पर वैसे ही संस्कार जम जाते हैं और साधक अपने वास्तविक स्वरूप को समझ जाता है। इसको आत्मिक भूमिका का जागरण कहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म जागरण योग की साधना

किसी शान्त या एकान्त स्थान में जाइये। निर्जन, कोलाहल रहित स्थान इस साधना के लिये चुनना चाहिये। इस प्रकार के स्थान-घर का स्वच्छ, हवादार कमरा भी हो सकता है और नदी तट अथवा उपवन भी। हाथ-मुँह धोकर साधना के लिये बैठना चाहिये। आराम कुर्सी पर अथवा दीवार, वृक्ष या मसन्द के सहारे बैठकर भी यह साधना भली प्रकार होती है।

सुविधापूर्वक बैठ जाइये। तीन लम्बी-लम्बी साँस लीजिये, पेट में भरी हुई वायु को पूर्ण रूप से बाहर निकालना और फिर फेफड़ों में पूरी हवा भरना एक पूरी साँस कहलाता है। तीन पूरी सांस लेने से हृदय और फुफ्फुस की भी उसी प्रकार एक धार्मिक शुद्धि होती है जैसें स्नान करने हाथ-पाँव धोकर बैठने से शरीर की शुद्धि होती है।

तीन पूरी साँस लेने के बाद शरीर को शिथिल कीजिये। शरीर के हर अंग में से खिंच कर प्राणशक्ति हृदय में एकत्रित हो रही है, ऐसा ध्यान कीजिये। हाथ-पाँव आदि सभी अंग-प्रत्यंग शिथिल, ढीले, निर्जीव, निष्प्राण हो गये हैं ऐसी भावना करनी चाहिये। मस्तिष्क से सब विचार-धारायें और कल्पनायें शान्त हो गई हैं, और समस्त शरीर के अन्दर एक शान्त नील आकाश व्याप्त हो रहा है। इस शान्त शिथिला-व्यवस्था को प्राप्त करने के लिये कुछ दिन लगातार प्रयत्न करना पड़ता है। अभ्यास से कुछ दिन में अधिक शिथिलता एवं शान्ति अनुभव होती जाती है।

शरीर भली प्रकार शिथिल हो जाने पर हृदय स्थान में एकत्रित, अँगूठे की बराबर, शुभ्र श्वेत ज्योति स्वरूप प्राण शक्ति का ध्यान करना चाहिये। "अजर, अमर, शुद्ध, बुद्ध, चैतन, पवित्र ईश्वरीय अंश आत्मा मैं हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप यही है। मैं सत् चित्त आनन्द स्वरूप आत्मा हूँ।" उस ज्योति के कल्पना नेत्रों से दर्शन करते हुये उपरोक्त भावनायें मन में रखनी चाहिये।

दूसरी साधना—उपरोक्त शिथिलासन के साथ आत्म-दर्शन करने की साधना इस योग में प्रथम साधना है। जब यह साधना भली प्रकार अभ्यास में आ जाय तो आगे सीढ़ी पर पैर रखना चाहिये। दूसरी भूमिका की साधना का अभ्यास नीचे दिया जाता है।

ऊपर लिखी हुई शिथिलावस्था में अखिल आकाश में नील वर्ण आकाश का ध्यान कीजिये। उस आकाश में बहुत ऊपर सूर्य के समान ज्योति स्वरूप आत्मा को अवस्थित देखिये। "मैं ही यह प्रकाशवान् आत्मा हूँ।" ऐसा निश्चित संकल्प कीजिये। अपने शरीर को नीचे भूतल पर निष्पन्द अवस्था में पड़ा हुआ देखिये, उसके अंग-प्रत्यंगों का निरीक्षण एवं परीक्षण कीजिये। हर एक कल-पुर्जा मेरा औजार है, मेरा वस्त्र है यह यन्त्र मेरी इच्छानुसार क्रिया करने के लिये प्राप्त हुआ है। इस बात को बार-बार मन में दुहराइये। इस निष्पन्द शरीर को खोपड़ी का ढक्कन उठाकर ध्यानावस्था में मन और बुद्धि को दो सेवक शक्तियों के रूप में देखिये। वे दोनों हाथ बाँधे आपकी इच्छानुसार कार्य करने के लिये नतमस्तक खड़े हैं। इस शरीर और मन बुद्धि को देखकर प्रसन्न होइये कि इच्छानुसार कार्य करने के लिये यह मुझे प्राप्त हुये हैं। मैं उनका उपयोग सच्चे आत्मस्वार्थ के लिये ही करूँगा। यह भावनायें बराबर उस ध्यानावस्था में आपके मन में गूँजती रहनी चाहिये।

तीसरी साधना—जब दूसरी भूमिका का ध्यान भली प्रकार होने लगे तो तीसरी भूमिका का ध्यान कीजिये।

अपने को सूर्य की स्थिति में ऊपर आकाश में अवस्थित देखिये। "मैं समस्त भूमण्डल पर अपनी प्रकाश किरणें फेंक रहा हूँ। संसार मेरा कर्म-क्षेत्र और लीला-भूमि है, भूतल की वस्तुओं और शक्तियों को इच्छित प्रयोजन के लिये काम में लाता हूँ पर वे मेरे ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकतीं। पंच भूतों की गतिविधि के कारण जो हलचलें संसार में हर घड़ी होती हैं, वे मेरे लिये एक विनोद और मनोरंजक दृश्य मात्र हैं। मैं किसी भी सांसारिक हानि-लाभ से प्रभावित नहीं होता। मैं शुद्ध, चैतन्य, सत्यस्वरूप, पवित्र, निर्लिप्त, अविनाशी आत्मा हूँ। मैं आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हूँ, महान् आत्मा हूँ। महान् परमात्मा का विशुद्ध स्फुलिंग हूँ।''

तीसरी भूमिका का ध्यान जब अभ्यास के कारण पूर्ण रूप से पुष्ट हो जाये और हर घड़ी वही भावना रोम-रोम में प्रतिभाषित होने लगे तो समझना चाहिये कि इस साधना की सिद्धावस्था प्राप्त हो गई। यही जागृत समाधि या जीवन मुक्त अवस्था है।

(२) सम्यक्त्व योग

यह विश्व त्रिगुणात्मक है। स्थूल प्रकृति को हम तीन रूपों में देखते हैं। (१) ठोस (Solid) (२) तरल (Liquid) और (३) वायु (Gas)। सृष्टि की समस्त स्थूल सम्पदा इन रूपों में ही है। (१) सत् (२) रज और (३) तम। मनुष्यों के स्वभाव, चेतनायें, प्रवृत्तियाँ इन तीन विभागों में विभक्त हैं। विश्व की सूक्ष्म प्रक्रियायें, संवेदनायें इच्छा, आकांक्षायें इन तीनों के अन्तर्गत हैं। जब तक आत्मा जीवन धारण किये हुये है, जीव रूप में अवस्थित है, प्रकृति के साथ विचरण कर रही है तब तक इन तीन गुणों के साथ भी रहना पड़ता है। स्थूल शरीर में वात, पित्त, कफ प्रधान हैं और सूक्ष्म शरीर में सत, रज, तम की प्रधानता है। यह तत्व समयानुसार न्यूनाधिक होते रहते हैं, पर पूर्ण रूप से किसी का भी अस्तित्व नष्ट नहीं होता।

जैसे वात, पित्त, कफ तीनों ही शरीर के लिये आवश्यक हैं, इसी प्रकार चैतन्य जगत के लिये सत, रज, तम अनिवार्य हैं। इनमें कोई भला-बुरा नहीं केवल उनकी विषमता, अति दुःखदायी है। वात, पित्त, कफ, तीनों में से कोई भी अत्यधिक या अतिन्यून हो जाय तो वही अनिष्ट का कारण बन जाता है। जब वे अपनी अपनी मान-मर्यादा और स्थिति के अनुसार संतुलित रहते हैं तो स्वास्थ्य ठीक रहता है, इस संतुलन में गड़बड़ी पड़ते ही मनुष्य बीमारी या मृत्यु की दाढ़ों के नीचे कुचलने लगता है। हमारे अन्तर्जगत् में भी सत्, रज, तम की जिस अनुपात में आवश्यकता है। यदि वह अनुपात बिगड़ जाता है तो मानसिक स्वस्थता नष्ट होने लगती है, आत्मशान्ति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। इसलिये तीनों गुणों का समुचित समन्वय हमारे बाह्य और आन्तरिक जीवन में होना चाहिये। किसी एक ही तत्व की अति का आत्मविद्या के तत्वज्ञों ने निषेध किया है। भगवान बुद्ध ने श्रेष्ठ योग साधन 'मज्झम मज्झम' अर्थात् मध्यम मार्ग पर चलना बताया है, 'मज्झम निकाय' का भली प्रकार मनन करने से मध्यम मार्ग की श्रेष्ठता और आवश्यकता सहज ही समझ में आ जाती है।

हिन्दू धर्म में इन तीनों गुणों की समुचित उपासना करने का आदेश किया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में त्रिदेवों का अधिष्ठान सत, रज तम का ही प्रतीक है। वेद का, ज्ञान का, अधिष्ठाता ब्रह्मा सत्य का प्रतीक है। लक्ष्मी पति शासक बैकुण्ठ लोक के वासी विष्णु कहलाते हैं। रजोगुण का प्रतिनिधित्व त्रिशूल धारी, ताण्डव नृत्य करने वाले, तीसरे नेत्र से आग उगलते हुये रुद्र तमोगुण की प्रतिमा हैं। जिन साधकों ने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है उन्होंने सत, रज, तम को सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा की छवि के साथ देखा है। इन सभी को हिन्दू दार्शनिकों ने उपास्य ठहराया है। तीनों ही गुण जीवन के अभिन्न अंग हैं इसलिये उनका समुचित सदुपयोग, सम्यक् समन्वय होना चाहिये, यही त्रिदेव पूजा का आध्यात्मिक रहस्य है।

मोटी धारणा के अनुसार सत् को ग्राह्य और तम को त्याज्य माना जाता है पर यह धारणा भ्रम मूलक है। तीनों का ही अपना अपना महत्त्व है तीनों की ही अपने-अपने स्थान पर आवश्यकता है। हाँ, मात्रा में अन्तर अवश्य होना चाहिये। सत् की मात्रा सबसे अधिक, रज की उससे कम, तम की उससे कम होनी चाहिये और तीनों का यथा-स्थान, यथा अवसर, विवेक-पूर्वक उपयोग होना चाहिये। समत्व का एक अर्थ समता बराबरी है और दूसरा अर्थ सम्यकत्व (भली प्रकार यथोचित रीति से) है। गीता के समत्व योग का वास्तविक तात्पर्य सम्यकत्व ही है। सबको समान समझने का अर्थ-ब्राह्मण और कसाई को, राजा और गधे को, माता और पत्नी को, पुत्र और पिता को एक समान समझना नहीं है, वरन् यह है कि सम्यक्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रीति से भले प्रकार उन्हें समझा जाय। जो जैसा हो उसे वैसा ही समझा जाय।

सतोगुण हमारे जीवन में सब से अधिक होना चाहिये। प्रेम, करुणा, मैत्री, सेवा, सहायता, दया, निष्कपटता, उदारता, पवित्रता, त्याग एवं संयम के भाव मन में अधिक मात्रा में चाहिये। इन भावों को चरितार्थ करने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। अधिकारी व्यक्तियों के प्रति विवेक-पूर्वक उनका उचित उपयोग करना चाहिये।

रजोगुण का अर्थ है, सम्पन्नता। जीवन को चतुर्मुखी विकास के साधनों को सम्पन्नता कहते हैं। जैसे बिना कागज, स्याही के पत्र नहीं लिखा जा सकता, बिना खाण्ड के मिठाई नहीं बन सकती, इसी प्रकार बिना साधनों के जीवन का विकास नहीं हो सकता। स्वास्थ्य, विद्या, धन, प्रतिष्ठा, मित्रता, चातुर्य, साहस यह सात सम्पन्नतायें आत्मोन्नति के लिये बड़ी आवश्यक हैं। अपने आपको बलवान, सम्पन्न, समृद्ध, विकसित बनाना अपने निकटवर्ती व्यक्तियों को सम्पन्न बनाना, जीवन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि सत् की रक्षा और वृद्धि के लिये रज की जरूरत पड़ती है। जो स्वयं भूखा है, स्वयं अभावग्रस्त, दीनदुःखी है, विद्या, बल, पुरुषार्थ, आदि से रहित है, उसके मन में उठने वाली सतोगुणी भावनायें ग्रीष्म की बालू में उगने वाले अंकुरों की भाँति मुरझा जाती हैं। रजोगुण से ऊपर उठकर सतोगुण में पहुँचना सुगम है, क्योंकि उसे बहुत ही पास की मंजिल पर कदम रखना होता है।

तमोगुण क्रोध, अविश्वास, घृणा, हिंसा, दुराव जैसे कार्यों में देखा जाता है। राक्षस व पिशाच तस्कर, पापी, निर्दयी लोक कंटक, आततायी, अनीति एवं भ्रान्ति फैलाने वाले लोगों की आत्मा से प्रेम करते हुये भी उनके स्थूल शरीर एवं विकृत मन से घृणा करने की, विरोध करने की, दण्ड देने की आवश्यकता होती है। इस दुनियाँ में अनीति के अनेकों शक्तिशाली केन्द्र हैं। लोक कल्याण के लिये, उनसे आत्म-रक्षा के लिये दुराव की, गुप्त मन्त्रणा की एवं संविचार की जरूरत पड़ती है।

भगवान वामन को राजा बलि के साथ, मोहिनी रूपधारी विष्णु को भस्मासुर के साथ, राम को बालि के साथ, ऐसा ही व्यवहार करना पड़ा था। आवश्यकतानुसार इस प्रकार की नीति भी अपनानी पड़ सकती है। अशान्ति को नष्ट करने वाली अशान्ति भी शान्ति कही जाती है। बच्चे के फोड़े को डॉक्टर से चिरवाते समय माता जिस प्रकार कठोर बन जाती है वैसे अवसर जीवन में आ सकते हैं। "भय बिन होहि न प्रीति" "वक्र चन्द्रमहिं ग्रसे न राहू।" "लातों के देव बातों से नहीं मानते।" "सीधी उँगली घी नहीं निकलता।" जैसी उक्तियों से यह प्रकट है कि केवल सीधेपन से ही काम नहीं चल सकता। जैसे को तैसा—की नीति बरते जाने की जहाँ सम्भावना रहती है, वहाँ ही दुष्टों की दुष्टता पर प्रतिबन्ध लगता है। अपने आन्तरिक शत्रुओं के प्रति भी विरोध की, घृणा की, संघर्ष की प्रवृत्ति सतेज किये बिना उनसे छुटकारा नहीं मिलता। इस प्रकार तमोगुण भी समयानुसार उचित मात्रा में उपयोगी होता है।

इन तीनों गुणों में से हर एक उचित एवं आवश्यक है। केवल उनकी अति तथा दुरुपयोग में ही दोष है। अति तो सतोगुण की भी बुरी है। दुष्टों पर दया करने से, साँप को दूध पिलाने से, दुष्टता के विष की वृद्धि होती है। बिच्छू को पालना एक प्रकार से घर के बच्चों को डंक की तीव्र पीड़ा में झोंकना है। भावुकतावश किसी एक भिखारी को अपना सब कुछ दे डाला जाय तो इसका अर्थ दूसरे दिन से ही अपने बच्चों को भिखारी बना देना होगा। घृणा और द्वेष करने योग्य व्यक्तियों से प्रेम निबाहा जाय तो वह धर्म विरोधी तत्वों को एक प्रकार की सहायता देना ही होगा। ऐसे ही सतोगुण की अति भी अनुचित है। रजोगुण की अति में मनुष्य लोभी-कंजूस तथा अहंकारी बनता है। तमोगुण के दुरुपयोग से हिंसा, अनीति एवं पाप-तापों की अभिवृद्धि होती है। सम्यकत्व का तकाजा है कि हम आन्तरिक स्वास्थ्य तथा सुव्यवस्था को कायम रखने के लिये सत, रज, तम का भली प्रकार उचित रीति से उपयोग करें। इस मार्ग पर चलकर ही हम सुख, शान्ति-मय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्यकत्व योग की साधना

अपने स्वभाव पर दृष्टिपात कीजिये कि आप में किस तत्व की आवश्यकता से अधिक न्यूनता और आवश्यकता से ज्यादा अधिकता है। वह निरीक्षण पहले मोटे तत्व पर से आरम्भ कीजिये। तमोगुण उचित मात्रा में है या नहीं ? कहीं आप कायर, डरपोक आलसी तो नहीं हैं ? यदि यह बातें अधिक हों तो समझिये कि आप में तमोगुण की मात्रा न्यून है, वीरता की कमी है। तब आपको वीरता उत्पन्न करने की, तमोगुण बढ़ाने की आवश्यकता है।

यदि आप निर्धन, दरिद्र, मित्रों से रहित, बीमार, समाज में अप्रसिद्ध, साधन रहित, अशिक्षित बुद्धि स्वभाव के हैं तो आपको रजोगुण बढ़ाने की आवश्यकता है।

यदि आप तोताचश्म, प्रेम रहित अनुदार हैं। दान, सेवा, परोपकार, त्याग, संयम, उपासना आदि में रुचि नहीं, तो समझिये कि आप में सतोगुण बढ़ाने की जरूरत है।

इन तीनों में कौन तत्व आपमें अधिक कम है, यह भली प्रकार निरीक्षण कीजिये। जो तत्व सबसे कम हो, जिस कमी से जीवन यात्रा में अधिक असुविधा होती हो। उसे प्रथम हाथ में लीजिये। यदि सत तत्व कम हो तो ब्रह्मा को, रज कम हो तो विष्णु को, तम कम हो तो शिव को अपना इष्टदेव चुन लीजिये।

प्रातः-सायं नियत समय पर साधना के लिये बैठिये। यदि सत कम है तो ब्रह्म का ध्यान कीजिये। मस्तिष्क के मध्य भाग में सहस्र दल कमल ऊपर अवस्थित परम सात्विकता के पुंज, वेद ज्ञान के अक्षय भण्डार, विवेक वृद्धि ब्रह्माजी का ध्यान कीजिये, आप उनके समीप नतमस्तक श्रद्धाभाव से बैठे हैं और वे अत्यन्त सात्विकता की शुद्ध किरणें आपके ऊपर फेंक रहे हैं। दाहिना हाथ उठाकर आपको प्रचण्ड सात्विक शक्तियों की अभिवृद्धि का वरदान दे रहे हैं। इस ध्यान को एकाग्र मन से दृढ़ कल्पना और पूर्ण श्रद्धा के साथ कीजिये।

यदि आप में रजोगुण कम है तो ध्यान कीजिये कि निखिल, रजोगुण के प्रतीक श्री विष्णु भगवान् अतुलित वैभव वाले बैकुण्ठ में लोक रत्न जटित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं। आप उनके दाहिनी ओर भक्तिभाव से बैठे हैं और वे आपके मस्तक पर हाथ फेर रहे हैं। उनकी कृपा दृष्टि द्वारा प्रतुलित रजोगुणी शक्तियाँ आपके अन्तःकरण में भरी जा रही हैं।

यदि आप में तमोगुण कम है तो ध्यान कीजिये कि प्रलयंकर शंकर लाल-लाल प्रज्वलित अग्नि जैसा तीसरा नेत्र खोलकर ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। उनके नृत्य के साथ कड़कड़ाती बिजली जैसी पीत वर्ण लपटें चारों ओर उठ रही हैं। आप उस नृत्य को देख रहे हैं। डमरू ध्वनि से आपके हृदय में वीरता की संहारिणी शक्ति का संचार हो रहा है। चारों ओर उड़ने वाली बिजली की लपटें आपके शरीर में प्रवेश करके नव चेतना, नव स्फूर्ति, निरालस्यता उत्पन्न कर रही हैं। भगवान शंकर प्रसन्न होकर आपके चारों ओर डमरू बजाते हुये नृत्य कर रहे हैं और आपको अतुलित बल प्रदान कर रहे हैं।

यदि आप इष्टदेव को पुरुष वेष की अपेक्षा स्त्री वेष में दर्शन करना पसन्द करते हैं या स्वयं स्त्री हैं तो ब्रह्मा के, स्थान पर सरस्वती का, विष्णु के स्थान पर लक्ष्मी का, शिव के स्थान पर दुर्गा का ध्यान कर सकती हैं। इन ध्यानों से जो तत्व आप में कम है यह निश्चित रूप से वृद्धि को प्राप्त होगा।

(३) आत्म निरीक्षण योग

हानिकारक एवं विजातीय तत्व वहाँ एकत्रित होते हैं, जहाँ ढील-ढाल या लापरवाही रहती है, चौकसी, निगरानी देख-भाल, जांच-पड़ताल का अभाव रहता है। दाद अक्सर जंघाओं में होता है, कारण यह है कि शरीर के अन्य स्थानों की अपेक्षा जाँघों की सफाई कम होती है। स्नान करते समय भी वहाँ पूरी सफाई नहीं की जाती, धूप, हवा से भी वह स्थान वंचित रहता है, फलस्वरूप गन्दगी के कीटाणु मजे में छिपे बैठे रहते हैं, और अवसर पाकर दाद के रूप में प्रकट होते हैं। पूरी गहरी साँस न लेने के कारण फेफड़ों का कुछ हिस्सा निकम्मा पड़ा रहता है वहाँ विजातीय द्रव्य आसानी से जमा हो जाता है और क्षय सरीखे रोग उपज पड़ते हैं। घर के जिस भाग में नित्य झाड़ू नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगती वहाँ मकड़ी, मच्छर, पिस्सू, कीड़े-मकोड़े पलते रहते हैं और दुर्गन्धि आने लगती है। जो लोग दाँतों की नित्य भली प्रकार सफाई नहीं करते उनके मुख से बदबू आने लगती है और दाँत पीले पड़ जाते हैं। कहते हैं कि सुनसान, उजाड़, जन-शून्य खण्डहरों में भूत, पलीत, उल्लू, चमगादड़ छिपे रहते हैं। चोर, डाकू, लुटेरे, जुआरी प्रकृति के लोग अपना डेरा ऐसे स्थानों में जमाते हैं, जो जन-साधारण की दृष्टि से ओझल हों। हिंसक पशु दिन में एक माँद में छिपे रहते हैं, जब रात हो जाती है तब चुपके चुपके निकलते हैं और अपना काम बनाने के लिये चोट करते हैं।

यही स्थिति हमारे मनःक्षेत्र में होती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, भय, शोक, द्वेष, ईर्षा, आलस्य, प्रमाद, व्यसन, अहंकार, आदि अनेकों प्रकार के शत्रु मनःक्षेत्र में घुस बैठते हैं और चुपके-चुपके अपना बल बढ़ाते रहते हैं, क्षय, दमा, आतिशक, सुजाक, कोढ़, दाद आदि रोगों के छोटे कीटाणु प्रारम्भ में किसी प्रकार मनुष्य के शरीर में घुस जाते हैं और धीरे-धीरे अपनी वंशवृद्धि करते रहते हैं। कुछ समय में उनका अधिकार समस्त शरीर पर हो जाता है। इसी प्रकार मन में घुसे हुये यह शत्रु निधड़क होकर अपना अड्डा जमा लेते हैं और मनुष्य की जीवन-शक्तियों को चूस-चूसकर परिपुष्ट होते रहते हैं। धीरे-धीरे उनकी प्रबलता इतनी अधिक हो जाती है कि प्राणी अपने को उनके बन्धन से छूटना कठिन अनुभव करता है।

मानसिक क्षेत्र में अवांछनीय तत्वों का, शत्रुओं का इतना प्राबल्य हो जाने का कारण यह है कि इनको निधड़क बैठ जाने का अवसर मिलता है। हममें से अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने अन्तर्जगत की चौकसी नहीं करते उसकी क्षति और सुरक्षा की परवाह नहीं करते। इस प्रमाद का फायदा शत्रुओं को होता है। जिस गोदाम का कोई पहरेदार न हो उसमें चोरियों का होना निश्चित है। जिस खेत का कोई रखवाला न हो उसे पशु-पक्षी उजाड़ेंगे यह निश्चित है। जब अन्तर्जगत की चौकसी छोड़ दी जाती है तो भी यही परिणाम होता है। बाहरी काम-काज में, साज-संभार में, निर्माण-उपार्जन में, लोग बड़े परिश्रम और प्रयत्न के साथ जुटे रहते हैं पर अन्तर्जगत की ओर वे बिल्कुल उदासीन रहते हैं, इस सम्पदा की रक्षा और वृद्धि के लिये उनका तनिक भी ध्यान नहीं जाता। उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा जाता। आत्म-चिन्तन के लिये, आत्म-निरीक्षण और परीक्षण के लिये कोई बिरले ही थोड़ा समय खर्च करते हैं। इस प्रकार की उपेक्षा के कारण, मैदान खाली देखकर हानिकारक कुप्रवृत्तियाँ और वासनायें उठ खड़ी होती हैं और निरन्तर बढ़ती, फलती-फूलती तथा परिपुष्ट होती रहती हैं। जिस खेत को जुताई, सिंचाई-निराई से संस्कारित नहीं किया जाता उसमें खरपतवार और जंगली झाड़-झंखाड़ जड़ जमा लेते हैं। जिस मनोभूमि को संस्कारित नहीं किया जाता, उसमें अच्छी फसल नहीं उपजती वहाँ तो कुविचार और कुसंस्कारों का ही उत्पादन होता है।

इन सब बातों पर विचार करते हुये अध्यात्मविद्या के आचार्यों ने बताया है कि नित्य आत्म-चिन्तन, आत्म-निरीक्षण, आत्म-परीक्षण करना चाहिये। जिससे शत्रुओं की दाल न गलने पावे, मनःक्षेत्र में कुसंस्कार जड़ न जमाने पावें। जिस घर में घर का मालिक एक बच्चा भी खाँस रहा हो उसमें घुसने की बलवान चोर की भी हिम्मत नहीं पड़ती। घर में घुसे हुये चोर मालिक के जागने की आहट पाकर भाग खड़े होते हैं। क्योंकि असत्य स्वतः कमजोर होता है, कहते हैं कि 'चोर के पाँव नहीं होते।' जो सोता है सो खोता है, जो जागता है सो पाता है। अन्तर्जगत की चौकसी और बढ़ोत्तरी के लिये हमें जागृत रहना चाहिये, प्रयत्नशील रहना चाहिये ताकि उसमें से दुखदायी कुसंस्कारों की जड़ें उखड़ जायें और सच्ची शान्ति का अमर कल्पवृक्ष लहलहाने लगे। उसकी छाया में हमारा भीतरी और बाहरी जीवन अखण्ड सुख-शान्ति का रसास्वादन करे।

आत्म-चिन्तन की साधना

रात को सब कार्यों से निवृत्त होकर जब सोने का समय हो तो सीधे चित्त लेट जाइये। पैर सीधे फैला दीजिये। हाथों को मोड़कर पेट पर रख लीजिये। सिर सीधा रहे। पास में दीपक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जल रहा हो तो बुझा दीजिये या मन्द कर दीजिये। नेत्रों को अध खुले रखिये।

अनुभव कीजिये कि आपका आज का एक दिन, एक जीवन था। अब जब कि एक दिन समाप्त हो रहा है तो एक जीवन की इतिश्री हो रही है। निद्रा एक मृत्यु है। अब इस घड़ी में एक दैनिक जीवन की समाप्ति करके मृत्यु की गोद में जा रहा हूँ।

आज के जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि से समालोचना कीजिये। प्रातःकाल से लेकर सोते समय तक के कार्यों पर दृष्टिपात कीजिये, मुझ आत्मा के लिये वह कार्य उचित था या अनुचित ? यदि उचित था तो जितनी सावधानी एवं शक्ति के साथ उसे करना चाहिये था उसके अनुसार किया या नहीं ? बहुमूल्य समय का कितना भाग उचित रीति से, कितना अनुचित रीति से, कितना निरर्थक रीति से व्यतीत किया ? यह दैनिक जीवन सफल रहा या असफल ? आत्मिक पूँजी में, लाभ हुआ या घाटा ? सद्वृत्तियाँ प्रधान रहीं या असद्वृत्तियाँ ? इस प्रकार के प्रश्नों के साथ दिन भर के कामों का निरीक्षण कीजिये।

जितना अनुचित हुआ हो उसके लिये आत्म देव के सम्मुख पश्चात्ताप कीजिये। भविष्य में भूल को न दुहराने का निश्चय ही सच्चा पश्चात्ताप है। जो उचित हुआ हो उसके लिये परमात्मा को धन्यवाद दीजिये और प्रार्थना कीजिये कि आगामी जीवन में, कल के जीवन में उस दिशा में विशेष रूप से अग्रसर करें। इसके पश्चात् शुभ्र वर्ण आत्म-ज्योति का ध्यान करते हुये निद्रा देवी की गोद में सुखपूर्वक चले जाइये।

दूसरी साधना—प्रातःकाल जब नींद पूरी तरह खुल जाय तो एक अंगडाई लीजिये। तीन पूरे लम्बे साँस खींचकर सचेत हो जाइये।

भावना कीजिये कि आज नया जीवन ग्रहण कर रहा हूँ। नया जन्म धारण करता हूँ। इस जन्म को इस प्रकार खर्च करूँगा कि आत्मिक पूँजी में अभिवृद्धि हो। कल के दिन पिछले जन्म में जो भूलें हुई थी, आत्म-देव के सामने जो पश्चात्ताप किया था, उसको ध्यान में रखता हुआ आज के दिन का अधिक उत्तमता के साथ उपभोग करूँगा।

दिन भर के कार्यक्रम की योजना बनाइये। इन कार्यों में जो खतरा सामने आने को है उसे विचारिये और उससे बचने के लिये सावधान होइए। उन कार्यों में जो आत्मलाभ होने वाला है वह और अधिक हो इसके लिये तैयारी कीजिये। यह जन्म, यह दिन, पिछले की अपेक्षा अधिक सफल हो, यह चुनौती अपने आपको दीजिये और उसे साहसपूर्वक स्वीकार कर लीजिये।

परमात्मा का ध्यान कीजिये और प्रसन्न मुद्रा में, एक चैतन्यता, ताजगी, उत्साह, साहस, आशा एवं आत्मविश्वास की भावनाओं के साथ उठकर शैय्या का परित्याग कीजिये। शैय्या से नीचे पैर रखना मानो आज के नवजीवन में प्रवेश करना है।

(४) भूत साधना से आत्म विजय

कितने ही मनुष्यों की विचार प्रणाली ऐसी विकृत हो जाती है कि वे अपने मस्तिष्क में दौड़ने वाले विचार प्रवाह को रोकने में समर्थ नहीं हो पाते। किसी से झगड़ा हुआ, झगड़ा होने के बाद दोनों पक्ष अलग हो गये पर विकृत विचार-प्रणाली वाले मनुष्य का मस्तिष्क उसी में उलझा रहता है। दिमाग में भारी उत्तेजना एवं गर्मी भर जाती है जिसके कारण सिर भन्नाने लगता है। उस समय कितना ही आवश्यक कोई कार्य सामने हो, मस्तिष्क उस उत्तेजना को छोड़कर नये प्रश्न पर विचार करने के लिये तैयार ही नहीं होता। बुद्धि कहती है कि "जो होना था, हो गया, छोटी सी बात पर इतना उलझना ठीक नहीं, चलो दूसरी बात पर विचार करें।" पर वह विचार प्रवाह हटता नहीं, बराबर वही उत्तेजना सिर के भीतर गूँजती रहती है। रात की पूरी नींद नहीं आती, सिर में दर्द होने लगता है। आँखों में गर्मी छा जाती है पर उस उत्तेजना से पीछा नहीं छूटता।

इसी प्रकार कितने ही व्यक्ति चिन्ता, शोक, ईर्ष्या, अहंकार, द्वेष, लोभ आदि के कुविचारों में बुरी तरह डूबे रहते हैं। वे इन विचारों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोड़ना चाहते हैं पर वे छूटते नहीं, लौट-लौट कर वह बातें दिमाग में भर जाती हैं। यह दूषित विचार-प्रणाली का परिणाम है। यहाँ एक प्रकार का भयंकर बन्धन है। जिसमें बँधा हुआ मनुष्य विवश होकर कहीं का कहीं घिसटता फिरता है। इस विचारों की गुलामी से छुटकारा पाये बिना आन्तरिक शान्ति प्राप्त होना कठिन है।

विचारों पर हमारा आधिपत्य होना चाहिये। जब जिस विचार को हम चाहें अपने मस्तिष्क में विचरण करने दें और जब चाहें जिस विचार को निकाल बाहर करें, यह स्थिति प्राप्त करना अध्यात्म क्षेत्र के पथिकों के लिये बड़ा आवश्यक है। विचारों पर काबू पाना एकाग्रता में सफलता पाना है। विचारों पर काबू पाना एकाग्रता—मानसिक उन्नति का सर्वोपरि हथियार है। मैस्मरंजस में दूसरों को निद्रा में लाने का प्रधान साधक एकाग्रतापूर्वक तीव्र दृष्टिपात ही तो है। ध्यान में एकाग्रता ही मुख्य है। समाधि एकाग्रता की ही सिद्धावस्था है। व्यापारी, वैज्ञानिक, कवि, चित्रकार, नट, लेखक, विचारक, शिल्पकार, कलाकार सरीखे प्रतिभाशाली वर्गों के सफल व्यक्ति एकाग्रता के ही प्रभाव से अपनी प्रतिभा चमकाते हैं। जिसमें एकाग्रता नहीं वह मानसिक क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता।

बारूद को जमीन पर फैलाकर उसमें आग लगाई जाय तो वह भक् से जलकर समाप्त हो जायगी। पर उसी बारूद को बन्दूक की नली में रखकर केवल एक नियत दिशा में ही चलने दिया जाय तो वह भयंकर शब्द और प्राणघातक चोट करती है। विचार भी यदि बिखरे रहें अस्त-व्यस्त रहें, तो उनका कोई महत्त्व नहीं, पर जब वे एक स्थान पर केन्द्रित किये जाते हैं तो एकाग्रता की शक्ति के साथ गजब के परिणाम उपस्थित करते हैं। एकाग्र मन जिधर भी लग जाता है उधर ही सफलताओं का ढेर लग जाता है।

विचारों पर काबू पाना ही मन को वश में करना कहलाता है। पातञ्जलि ने चित्त-वृत्तियों के निरोध को योग कहा है। जिसने अपने मन के ऊपर विजय प्राप्त कर ली, समझिये कि उसने संसार के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। महापुरुषों में यही विशेषता होती है कि वे विचारों के प्रवाह में नहीं बहते वरन् जिधर चाहते हैं उत्तम विचारों को बहाते हैं। जब चाहते तब विचारों के प्रवाह को मोड़ देते हैं, बदल देते हैं, पलट देतें हैं एवं बन्द कर देते हैं। महात्मा गाँधी को बड़ी गम्भीर गुत्थियाँ सुलझानी पड़ती हैं, उनके आगे कभी-कभी बड़ी विकट, चिन्ताजनक समस्यायें आती हैं, उनके कन्धे पर हर घड़ी जिम्मेदारियों का भारी बोझ रहता है पर वे जब चाहते तब विचारों के प्रवाह को रोक देते हैं। गम्भीर बहस मुबाहिसे में भाग लेते हुये यदि कुछ मिनटों का समय मिल जाता है तो वे इतनी ही देर में गहरी नींद सो लेते हैं। नैपोलियन युद्ध क्षेत्र में घमासान करते समय कुछ देर के लिये घोड़े को पेड़ के सहारे लगाकर और देह को पेड़ का सहारा देकर सो लेता था। विचारों पर हमारा ऐसा ही अधिकार होना चाहिये। घुड़सवार लगाम मोड़कर अपने घोड़े को मन चाही दिशा में ले जाता है विचारों पर हमारा भी ऐसा ही आधिपत्य होना आवश्यक है।

मनोनिग्रह, विचार संयम, चित्त निरोध, एकाग्रता की साधना से एक बड़ी आध्यात्मिक समस्या का हल हो जाता है जहाँ चाहें वहाँ मन लगा देना और जहाँ चाहे वहाँ से मन हटा लेना यह एक ऐसी सिद्धि है जिसके द्वारा शोक, क्रोध, चिन्ता, भय, काम, निराशा, आवेश आदि अवांछनीय स्थिति से मन हटाकर समस्त मानसिक दुःखों का अन्त किया जा सकता है। इस संसार में तीन-चौथाई दुःख मानसिक और एक चौथाई दुख शारीरिक हैं। शारीरिक दुख को भी तब मनुष्य भूल जाता है जब उसका चित्त किसी आनन्ददायक विचारधारा में रमण कर रहा हो। जिसका मन काबू में है, जिसका आहार-विहार संयमित है उसे वैसे भी शारीरिक कष्टों में नहीं पड़ना पड़ता, पर यदि कदाचित् किसी कोई प्रारब्ध भोग का कष्ट आ भी पड़े तो उसे संतुलित चित्त वाला व्यक्ति आसानी से हँसी-हँसी में ही सहन कर लेता है। इस प्रकार सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाकर मनोनिग्रही आत्मानन्द का सुखोपभोग करता है। हर घड़ी विपरीत, परिस्थितियों में रहकर भी—उसकी आन्तरिक शान्ति नष्ट नहीं होती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोनिग्रह की साधना

मन का स्वभाव कुछ न कुछ काम करने का है। वह बेकार कभी नहीं बैठता, हर वक्त उसे कुछ न कुछ कार्य चाहिये। इसलिये मन को अन्य दिशाओं से रोककर पाँच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषयों पर लगाया जाता है। कान, आँख, जिव्हा, नाक, त्वचा यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—इनके कार्य क्रमशः शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को अनुभव करना है। यह पाँचों अनुभूतियाँ पाँच तत्वों से भी सम्बन्धित हैं। आकाश से शब्द, तेज से रूप, जल से रस, पृथ्वी से गन्ध और वायु से स्पर्श का भान होता है। मन को इन पांचों की अनुभूतियों में एक विशेष विधि से लगाने को साधना द्वारा उसका संयम हो सकता है। अब क्रमशः पाँचों साधना संक्षिप्त रूप से आगे लिखी जाती हैं।

शब्द साधना—कबीर पंथ और राधा स्वामी मत में शब्द साधना की बड़ी मान्यता है। नाद विन्दोपनिषद में इस नाद योग का विस्तृत वर्णन है।

जायफल का चूर्ण, मोम और थोड़ी कस्तूरी मिलाकर उसे लाल रेशम की दो छोटी-छोटी गोली जैसी पोटलियों में बाँध लेना चाहिये। यह पोटली इतनी बड़ी होनी चाहिये कि कान में बोतल के कॉर्क की तरह फिट हो जावे और भीतर हवा जाने को स्थान न बचे। कोई-कोई साधक इन पोटलियों की बजाय, तुलसी या चन्दन की लकड़ी, बोतलों के कॉर्क, रुई या उँगलियों का प्रयोग करते हैं। प्राचीन प्रथा तो रेशम की पोटली की है पर सुविधानुसार अन्य चीजों से भी काम लिया जा सकता है। साधना के बाद इन्हें निकालकर ठीक तरह से साफ कर लेना जरूरी है जिससे कि कान का मैल उससे चिपका रहकर गन्दगी की वृद्धि न करे।

इस साधना के लिये रात्रि का निस्तब्ध कोलाहलरहित समय अधिक उत्तम है। शुद्ध होकर शान्तिपूर्वक ऐसे सुविधाजनक आसन पर बैठिये जिसे कष्ट के कारण साधना समय के बीच में फिर न बदलना पड़े। गोली, पोटली, कार्क, रुई या उँगली लगाकर कान के छेदों को बन्द कर लीजिये ताकि बाहर के शब्द कानों के भीतर न पहुँचने पावें। नेत्रों को बन्द कर लीजिये। मेरुदण्ड सीधा रखिये।

'ओउम्' की ध्वनि लहरी पर चित्त को एकाग्र कीजिये। जैसे घड़ियाल में हथौड़ी मार देने पर कुछ देर तक उसमें से थर-थराती हुई शब्द ध्वनि निकलती रहती है। इसी प्रकार ओं . . . . ओं . . . . ओं

शब्द ध्वनि आपके मन लोक में गुंजित हो रही है। इस प्रकार की भावना एवं श्रद्धा गम्भीरता के साथ कीजिये।

कुछ समय पश्चात् कई प्रकार की शब्द ध्वनियाँ सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय द्वारा सुनाई पड़ेंगी, आँधी चलने, रेल दौड़ने, झींगुर बोलने, घंटियाँ मृदंग, शंख बजने, सितार झनझनाने, बादल गरजने एवं वंशी बजने जैसे शब्द सुनाई पड़ते हैं।

सब साधकों को एक जैसी ये शब्द ध्वनियाँ सुनाई नहीं पड़तीं। कारण यह है कि विभिन्न साधकों की मानसिक स्थिति भिन्न होती है। सतोगुणी स्वभाव वालों को मन्द, समरस, मृदुल शब्द सुनाई पड़ते हैं। रजोगुणी को तीव्र स्वर के गम्भीर शब्द सुनाई देते हैं। तमोगुणी को कर्कश, अस्थिर, भयंकर, डराने वाले शब्दों का अनुभव होता है।

इन शब्द ध्वनियों को आरम्भ में पन्द्रह मिनट तक सुनना चाहिये। फिर क्रमशः एक मिनट बढ़ाकर सुविधानुसार अधिक से अधिक दो घण्टे तक किया जा सकता है। जो ध्वनि सुनाई पड़े उसे सुनने में मन को पूरी तन्मयता के साथ लगाना चाहिये ताकि वह बीच-बीच में इधर-उधर न दौड़े।

रूप साधना—रूप साधना के लिये त्राटक का अभ्यास किया जाता है। त्राटक दो प्रकार के होते हैं—बाह्य और अभ्यन्तरिक। दोनों की साधना नीचे लिखी जाती है।

(१) बाह्य त्राटक—किसी बिन्दु पर दृष्टि जमाने को कहते हैं। सफेद चिकने चमकदार कागज के एक चौकोर टुकड़े पर ठीक बीचों-बीच एक रुपये के बराबर गहरी काली स्याही से गोला अंकित कीजिए इस गोले के बीचों-बीच सफेद बिन्दु रहने दिया जाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मेरुदण्ड को सीधा रखकर, स्वस्थचित्त होकर, पद्मासन पर अथवा अर्धपद्मासन पर (पालथी मारकर) बैठिये। उपरोक्त काले गोले को नेत्रों की सीध तीन फुट के फासले पर दीवार पर टाँग दीजिये। काले गोले के बीच के सफेद बिन्दु पर दृष्टि जमाइये। पलक मारते रहने में कुछ हर्ज नहीं पर दृष्टि बिन्दु पर से न हटे। आँखें न तो बहुत अधिक खोली जायँ न पलक सकोड़े जायँ, दृष्टिपात न बहुत हल्का हो और न बहुत जोर लगाया जाय। मध्यम स्थिति में यह साधना करनी चाहिये। यह साधना स्वस्थ नेत्र वालों को ही करनी चाहिये। जिनकी आँखों में कोई रोग है, उनके लिये त्राटक करना वर्जित है।

एकटक दृष्टि जमाने से कुछ ही देर में गोले के बीच का सफेद बिन्दु हिलता-जुलता घटता-बढ़ता काँपता थरथराता तथा रंग बदलता दीखने लगता है। यह सब होने पर भी दृष्टि हटानी न चाहिये। कुछ दिनों अभ्यास से बिन्दु स्थिति हो जाता है। यह इस साधना का परिपक्वावस्था का चिन्ह है। साधन दो मिनट से आरम्भ करके एक एक मिनट नित्य बढ़ाना चाहिये। आँखों में पानी भर आवे तो त्राटक अवश्य ही समाप्त कर देना चाहिये।

चन्द्रमा पर, घी के दीपक की शिखा पर, शालिग्राम या शिवलिंग के अग्रभाग पर, इष्ट देव के चरण नख या किसी अंग विशेष के बिन्दु पर भी यह साधन किया जा सकता है।

(२) आभ्यन्तरिक त्राटक के लिये नेत्र बन्द करके साधना पर बैठना चाहिये। दोनों कानों के छिद्रों के बीच में एक सीधी रेखा खींची जाय और भ्रू मध्य भाग से लेकर सिर के पीछे की ओर एक रेखा खींची जाय तो यह दोनों रेखायें आपस में जहाँ मिलती हैं। वहाँ त्रिकुटी ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रदल कमल का स्थान है। इस स्थान पर शान्त चित्त से ध्यान जमाने पर एक छोटा सा प्रकाशबिन्दु दृष्टिगोचर होता है। कुछ दिन के बाद एक के स्थान पर अनेक तथा लाल, पीले काले विभिन्न वर्णों के विभिन्न आकृतियों के बिन्दु मस्तक के भीतर चारों ओर उड़ते हुये दिखाई देते हैं। दीर्घकालीन सतत् अभ्यास से वे बिखरे हुये विभिन्न आकार-प्रकार के बिन्दु उस मूल बिन्दु में लय होने लगते हैं और अन्त में एक शुभ्र ब्रह्म ज्योति रह जाती है। इसके दर्शन से अन्तः प्रदेश में बड़ी आनन्ददायक शान्ति वर्षा होती है।

रस साधना

जो फल आपको खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ट लगता हो उसे इस साधना के लिये लीजिये। जैसे आपको कलमी आम अधिक रुचिकर है तो उसके पाँच छोटे टुकड़े लें। एक टुकड़ा लेकर जिव्हा के अग्रभाग पर एक मिनट तक रखे रहें और उसके स्वाद का अनुभव करें। फिर इस टुकड़े को फेंक दें और उस पूर्व स्वाद का ध्यान करें। बिना आम के आम का स्वाद जिव्हा को होता रहे। दो मिनट में वह अनुभव शिथिल होने लगेगा फिर दूसरा टुकड़ा जबान पर रखिये और पूर्ववत् उसे फेंककर आम के स्वाद का अनुभव कीजिये इस प्रकार पाँच बार करने में पन्द्रह मिनट लगते हैं।

धीरे-धीरे जिव्हा पर कोई वस्तु रखने का समय कम करना चाहिये और बिना इस वस्तु के रस अनुभव करने का समय बढ़ाना चाहिये। कुछ समय पश्चात् बिना किसी वस्तु को जीभ पर रखे भी केवल भावना मात्र से इच्छित वस्तु का पर्याप्त समय तक रसास्वादन किया जा सकता है।

गन्ध साधना

नासिका के अग्रभाग पर त्राटक करना इस साधना के लिये आवश्यक है। दोनों नेत्रों से एक साथ नासिका के अग्रभाग पर त्राटक नहीं हो सकता। इसलिये एक मिनट दाहिनी ओर तथा एक मिनट बाईं ओर करना उचित है। दाहिने को प्रधानता देकर उससे नाक के दाहिने हिस्से को और फिर बायें नेत्र को प्रधानता देकर बायें हिस्से को गम्भीर दृष्टि से देखना चाहिये आरम्भ एक-एक मिनट से करके अन्त में पाँच-पाँच मिनट तक बढ़ाया जा सकता है। इस त्राटक से नासिका की सूक्ष्म शक्तियाँ जाग्रत होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस त्राटक के बाद कोई सुगन्धित तथा सुन्दर पुष्प लीजिये। उसे नासिका के समीप ले जाकर एक मिनट तक धीरे-धीरे सूँघिये और उसकी गन्ध का भली प्रकार स्मरण कीजिये। इसके बाद फूल को फेंक दीजिये और बिना फूल के ही उस गन्ध को दो मिनट तक स्मरण कीजिये। इसके बाद दूसरा फूल लेकर फिर इसी क्रम की पुनरावृत्ति कीजिये। पाँच फूलों को पन्द्रह मिनट प्रयोग करना चाहिये। स्मरण रहे कम से कम एक सप्ताह एक ही फूल प्रयोग होना चाहिये। इसी प्रकार रस साधना में एक फल एक सप्ताह तक प्रयोग करना चाहिये।

स्पर्श साधना

(१) बर्फ या कोई अन्य शीतल वस्तु, शरीर पर एक मिनट लगाकर फिर उसे हटा लें और दो मिनट तक अनुभव करें कि वही ठण्डक मिल रही है। सह्य उष्णता का गरम किया हुआ पत्थर का टुकड़ा शरीर से स्पर्श कराकर उसकी अनुभूति कायम रखने की भावना करनी चाहिये। पंखा झालकर हवा करना, चिकना काँच का गोला या रूई की गेंद त्वचा पर स्पर्श करके फिर उस स्पर्श को ध्यान रखना भी इसी प्रकार का अभ्यास है। ब्रुस से रगड़ना, लोहे का गोला उठाना जैसे अभ्यासों की भी इसी प्रकार ध्यान भावना की जा सकती है।

(२) किसी समतल भूमि पर एक बहुत ही मुलायम गद्दा बिछाकर उस पर चित्त लेटे रहिये कुछ देर इसकी कोमलता का स्पर्श सुख अनुभव करते रहिये, इसके बाद बिना गद्दा की कठोर जमीन या तख्त पर लेट जाइये। कठोर भूमि पर पड़े रहकर कोमल गद्दे के स्पर्श की भावना कीजिए फिर पलट कर गद्दे पर आ जाइये और उस कठोर भूमि की कल्पना कीजिये। इस प्रकार भिन्न परिस्थिति में भिन्न वातावरण की भावना करने से तितीक्षा की सिद्धि मिलती है। स्पर्श साधना में सफलता प्राप्त करने पर शारीरिक कष्टों को हँसते-हँसते सहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त पाँचों साधनाओं को एक साथ ही किया जाय यह आवश्यक नहीं। जिनके पास साधना के लिये समय थोड़ा है वे इनमें से किसी एक-दो साधनाओं को अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार चुन सकते हैं। उसमें सफलता मिलने पर अन्य साधनाओं को हाथ में लिया जा सकता है।

इन साधनाओं से मन वश में होता है, चित्त-वृतियों का निरोध होता है और विचारों पर काबू होता है। योग के समस्त साधनों का यही उद्देश्य है। एकाग्रता की सफलता तथा आत्म विजय जीवन की सबसे बड़ी सफलतायें हैं। इनके आधार पर मनुष्य अपनी इच्छानुसार जो चाहे सो बन सकता है, जो चाहे सो कर सकता है। इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्ति से अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं, वे सूक्ष्म इन्द्रियाँ वस्तुओं के आधार पर नहीं वरन् इच्छा के आधार पर संसार के समस्त सुखों को अनुभव कर लेती हैं। भोगी लोग जिन भौतिक भोगों के लिये मृग तृष्णा मारे-मारे फिरते हैं, वे सब योगियों के करतल गत होते हैं। संकल्प शक्ति से वे सब सुख उनके सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

(५) उपवास—साधना

साधनाओं में उपवास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायश्चित्यों के लिये तथा आत्म-शुद्धि के लिये उपवास सर्वोत्तम साधन माना जाता है। किसी शुभ कार्य को आरम्भ करते हुये प्रायः उपवास का आश्रय लिया जाता है। कन्यादान के दिन माता-पिता उपवास रखते हैं। यज्ञोपवीत व्रतबन्ध, समावर्तन, वेदारम्भ आदि संस्कारों के दिन ब्रह्मचारी को उपवास रखना आवश्यक है। अनुष्ठान के दिन में यजमान तथा आचार्य को उपवास रखना होता है। नवदुर्गा के नौ दिन कितने ही स्त्री-पुरुष पूर्ण या आंशिक उपवास रखते हैं।

भूल, अपराध, पाप अथवा न करने योग्य कार्य हो जाने पर उपवासों द्वारा प्रायश्चित किया जाता है। आत्मबल बढ़ाने के लिये आन्तरिक पवित्रता में अभिवृद्धि करने के लिये उपवास एक अचूक अस्त्र है। विश्व विभूति, महात्मा गांधी ने जीवन में कई बार उपवास का आश्रय लिया है। उन्होंने इक्कीस-इक्कीस दिन के उपवास किये हैं। सत्याग्रह के रूप में एक महान् अस्त्र के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप में भी उपवास किया जाता है। वीर यतीन्द्रनाथ दास, देशभक्त मेक्म्बिनी जैसी आत्माओं ने निराहार रहकर आत्म विसर्जन किया था। भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने अपने जीवन में लम्बे-लम्बे उपवासं किये थे और उस तपश्चर्या के प्रताप से आत्म-दर्शन करने में सफल हुये थे।

उपवास के संकल्प के साथ-साथ सात्विकता की तरंगें अन्तःकरण में उठना आरम्भ होती हैं और रजोगुण, तमोगुण की कमी होने लगती है। गीता कहती है कि—"निराहार रहने से विषय निवृत्त होते हैं।" शुभ कर्मों के लिये सात्विकता की अधिक आवश्यकता है इसलिये प्रत्येक धर्म कृत्य के साथ उपवास को सम्बन्धित रखा है। आवेशों का उफान भूखे रहने पर घट जाता है। विषय-विकारों का बोझ हल्का पड़ता है और भवताप से पीड़ित मनुष्य को इस महौषधि द्वारा तुरन्त पवित्रता की शीतलता अनुभव होने लगती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि में उपवास का असाधारण महत्त्व है। रोगियों के लिये एक प्रकार की जीवन मूरि हो कह सकते हैं। चिकित्सा शास्त्र का रोगियों को एक दैवी उपदेश है कि "बीमारी को भूखा मारो" भूखे रहने से बीमारी मर जाती है और रोगी बच जाता है। संक्रामक कष्ट साध्य खतरनाक रोगों में साधन ही एक मात्र चिकित्सा है। मोतीझरा, निमोनिया, विशूचिका, प्लेग, सन्निपात, टाइफाइड जैसे रोगों में कोई भी चिकित्सक उपवास को व्यर्थ कहने का साहस नहीं कर सकता। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान तो समस्त पूर्ण या आंशिक उपवास को ही सर्वप्रधान उपचार बताया है। इस तथ्य को हमारे माननीय ऋषिगण भी भली प्रकार जानते थे। इसलिये उन्होंने धार्मिक-कृत्यों में इस साधना को बड़ा महत्त्व दिया है। एकादशी, रविवार, अमावस्या, पूर्णमासी, चतुर्थी, प्रभृति व्रत हर महीने निश्चित हैं। इसके अतिरिक्त हर महीने दो-चार विशेष व्रत भी होते हैं, इनके लम्बे-चौड़े महात्म्यों का उल्लेख पुराणों में मिलता है। इन महात्म्यों का इतना आकर्षक वर्णन इसलिये है कि लोगों की रुचि इस ओर आकर्षित हो और वे उपवास के द्वारा प्राप्त होने वाले शारीरिक तथा आत्मिक लाभों को उठावें।

अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिये उपवास साधना को अपनाना आवश्यक है। इससे उनके आत्मिक दोष घटते और आत्मबल बढ़ता चले। उपवास तीन प्रकार के होते हैं (१) दैनिक (२) नियत कालीन (३) विशिष्ट। इन तीनों का विवेचन नीचे किया जाता है।

(१) दैनिक उपवास—नित्य जो अन्न ग्रहण किया जाता है वह उपवास के स्वल्पाहार की तरह हो। जिस दिन उपवास होता है उस दिन बीच में कुछ स्वल्पाहार किया जाता है। उसके लिये सात्विक, नमक आदि स्वादिष्ट मिश्रणों से रहित आहार लिया जाता है। दैनिक उपवास करने वाले को दोपहर को एक बार पूर्ण आहार अन्नाहार लेना चाहिये। उसमें मिर्च-मसालों का पूर्ण रूपेण त्याग रहे। केवल नमक लिया जा सकता है। मीठा लेना हो तो बहुत थोड़ा लेना चाहिये। रोटी में कई अनाजों का मिश्रण न हो एक ही किस्म का अन्न होना चाहिये। रोटी के साथ दूध, दही, छाछ, दाल, साग में से कोई एक चीज ली जा सकती है। कई दालों का, कई सागों का मिश्रण या थाली में कई प्रकार के पदार्थों का होना ठीक नहीं। चावल, दलिया, खिचड़ी आदि के सम्बन्ध में भी यही नियम है कि दो वस्तुओं से अधिक का सम्मिश्रण न हो। भोजन अपने हाथ से बनाया जा सके तो सबसे अच्छा नहीं तो ऐसे विश्वस्त व्यक्ति द्वारा बनाया हुआ तो होना ही चाहिये जो सात्विक प्रकृति का और शुद्ध चरित्र का हो। कारण यह है कि भोजन बनाने वाले की मनोवृत्तियों का आहार पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है और उसे खाने वाले के मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न होते हैं।

शाम को अन्नाहार न लेकर फल एवं दूध लिया जा सकता है। दैनिक उपवास रखने वालों को केवल एक कालिक आहार पर रहने की आवश्यकता नहीं है। यदि साधक श्रमजीवी है तो प्रातःकाल भी दूध ले सकता है।

बासी, बुसा, घी, तेल में तला हुआ, गरिष्ठ, बहुत अधिक जलाया या भुना हुआ, मिर्च-मसाले खटाई, मिठाई से सरावोर आहार त्याज्य है। इस प्रकार विवेकपूर्वक जो सात्विकता प्रधान आहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिया जाता है यह फलाहार स्वल्पाहार के समान है। इस प्रकार आहार करता हुआ मनुष्य उपवास के फल को ही प्राप्त होता है।

(२) नियत कालीन—किसी निर्धारित समय पर जो उपवास किये जाते हैं, वे नियत कालीन कहलाते हैं। एकादशी, अमावस्या, पूर्णमासी, रविवार, शिवरात्रि, नव दुर्गा आदि नियत कालीन उपवास हैं। दैनिक की अपेक्षा नियत कालीनों में अधिक कड़ाई बरती जाती है। इनमें एक ही बार फलाहार करना चाहिये। जो लोग दैनिक उपवास करने की स्थिति में नहीं हैं, उन्हें नियत कालीनों को ही अपनाना चाहिये। समय-समय पर निराहार रहने से पेट में संचित मलों का पाचन हो जाता है तथा मनोविकारों की शुद्धि होती रहती है। महीने में कम से कम दो उपवास तो अवश्य ही करना चाहिये। इसके लिये दोनों पक्षों की एकादशियाँ या अमावस्या पूर्णमासी नियत कर लेनी चाहिये। यदि महीने में चार दिन सम्भव हो तो सप्ताह का कोई एक दिन नियत कर लें। रविवार तेज वृद्धि और प्रतिभा विकास के लिये उत्तम है।

(३) विशिष्ट—आत्म शुद्ध के लिये, अपराधों के प्रायश्चित स्वरूप अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिये जो उपवास किये जाते हैं, वे विशिष्ट कहलाते हैं। इनकी कोई मर्यादा नियत रहनी चाहिये। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उनकी अवधि नियत करनी चाहिये। बिल्कुल निराहार व्रत स्वस्थ अवस्था में एक दिन से अधिक न करना चाहिये। दूध या फलों का रस जैसी कोई चीज लेते रहना ठीक है।

उपवास सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम

१—उपवास के दिन कड़ा शारीरिक या मानसिक परिश्रम नहीं करना चाहिये। उस दिन यथासम्भव अधिक विश्राम लेना चाहिये।

२—उपवास के दिन खूब पानी पीना चाहिये बिना इच्छा के भी पीना चाहिये जिससे पेट अच्छी तरह धुल जावे। पानी के साथ नीबू या थोड़ा नमक भी मिला लिया जाय तो पेट की सफाई में और भी मदद मिलती है।

३—उपवास समाप्त करते ही गरिष्ठ चीजें अधिक मात्रा में खाने से उल्टी हानि होती है। इसलिये उपवास तोड़ते समय थोड़ी मात्रा में हल्की सुपाच्य चीजें लेनी चाहिये। जितने समय उपवास किया हो, उतने ही समय पीछे भी साधारण आहार पर धीरे-धीरे आने में लगाना चाहिये।

४—उपवास काल में आवश्यकता होने पर सुपाच्य फल, शाक या दूध ही लेना चाहिये गरिष्ठ पकवान या मिठाइयाँ खाना उपवास को व्यर्थ बना देता है।

५—उपवास काल में आत्म-चिन्तन, ईश्वराराधन, स्वाध्याय, सत्संग आदि सात्विकता बढ़ाने वाले कार्मों में विशेष रूप से समय लगाना चाहिये।

(६) आत्म नियन्त्रण के लिये—व्रत

किसी सत् कार्य को पूरा करने का संकल्प व्रत कहलाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि महाव्रत कहलाते हैं। धर्म चर्या, प्रतिज्ञा लेना, उसे निबाहना व्रत है। अनेक दिशाओं में बिखरी हुई इच्छाओं को एकत्रित करके एक कार्य में लगाने के लिये तथा उस कार्य में जागरूक रहने के लिये व्रत लिये जाते हैं। व्रत एक संकल्प है जिसे लेकर मनुष्य अपने ऊपर एक स्वेच्छा उत्तरदायित्व लेता है। यह उत्तरदायित्व व्रत की प्रतिज्ञा के आधार पर पालन होता रहता है।

मन की मूल प्रवृत्तियाँ बड़ी स्वच्छन्द हैं, वे बार-बार इधर-उधर भागती हैं। नित नये परिवर्तन, चंचलता तथा अस्थिरता में मन को बड़ा रस आता है, भौंरा एक फूल से दूसरे पर उड़ता फिरता है, मन जंगली घोड़े की तरह जहाँ-जहाँ उछल-कूद मचाना अधिक पसन्द करता है। किसी एक बात पर डटा रहना उसे रुचिकर नहीं होता। इस स्वभाव को ज्यों का त्यों रहने दिया जाय तो किसी एक विचार पर स्थिर रहना या एक कार्य में जुटा रहना कठिन है। कितने ही मनुष्य जिन्होंने अपनी प्रवृत्तियों का नियन्त्रण नहीं किया है अपने विचार और कार्य जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं, फलस्वरूप उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन क्रम सदा अस्त-व्यस्त रहता है किसी भी दिशा में उन्हें सफलता नहीं मिलती।

आत्मोन्नति के लिये जीवन क्रम को, विचार धारा को, कार्य प्रणाली को पूर्णतया नियन्त्रण में रखने की आवश्यकता है। यह नियन्त्रण ऐसा होना चाहिये कि कठिनाइयाँ आने पर भी निश्चित पथ से विचलित होने का अवसर न आवे। इस आत्म नियन्त्रण की महत्त्वपूर्ण सफलता को प्राप्त करने के लिये संकल्प का, प्रतिज्ञा का, व्रत, लेना पड़ता है। जिव्हा के चटोरेपन पर उपवास द्वारा, वाचालता पर मौन द्वारा, काम वासना पर ब्रह्मचर्य द्वारा नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। "अमुक काम न करूँगा" या "इस मर्यादा के अन्दर करूँगा" इस प्रकार की कठोर प्रतिज्ञा करने से एक निश्चित संकल्प की स्थिरता होती है। यदि धार्मिक भावनाओं के साथ, ईश्वर की साक्षी में यह प्रतिज्ञा की जाती है तो उसे "व्रत" कहा जाता है। साधारण प्रतिज्ञाओं की अपेक्षा व्रत की शक्ति बहुत प्रबल होती है क्योंकि उसका अन्तःकरण के गहरे स्तल तक प्रभाव पड़ता है। साधारण प्रतिज्ञायें तो टूटती भी रहती हैं। पर व्रतों में ईश्वर की कृपा से आमतौर से सफलता ही मिलती है। उनके टूटने के अवसर बहुत ही कम आते हैं।

व्रतों के साथ एक प्रकार की तपश्चर्या सम्बन्धित है। उनके द्वारा तितीक्षा का, कष्ट सहन का, अभ्यास पड़ता है। नियत गतिविधि से कोई धार्मिक कृत्य व्रतों के आधार पर बड़ी आसानी से चलते रहते हैं एक व्रत के सफलता-पूर्वक पूरा हो जाने पर साधक का साहस बढ़ जाता है और अगले व्रतों के लिये वह अधिक दृढ़ हो जाता है। इसलिये आरम्भ छोटे व्रतों से किया जाता है। स्त्रियों में इस प्रकार के छोटे-छोटे व्रतों का बहुत प्रचलन है। वे संक्रान्ति से कोई धार्मिक अनुष्ठान आरम्भ करती हैं। एक वर्ष पूरा हो जाने पर उस कर्मकाण्ड के सफलतापूर्वक पूर्ण हो जाने के उपलक्ष्य में कुछ दान-पुण्य करती हैं।

मार्गशीर्ष का, माघ का प्रातःकालीन शीतल जल का स्नान शीत की तितीक्षा का व्रत है। भूमि पर शयन, मौन, उपवास भोजन में से कुछ वस्तुओं का त्याग, प्रातःकालीन शीघ्र जागरण, नियत पूजन, बन्दन, क्रिया क्षेत्र का परिश्रम, आहार-विहार, दिनचर्या एवं किसी पद्धति में किन्हीं विशेष बातों सम्मिलित करना या त्याग करना सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास को सहना, एक प्रकार के तप है। इन्हें नियत समय पर धार्मिक भावनाओं के साथ आरम्भ और पूर्ण करना व्रत कहलाता है।

व्रतों के अपनाने से आत्मबल बढ़ता है। इसलिये आत्म मार्ग के पथिकों को समय-समय पर शारीरिक, मन, वाणी, व्यवहार और वस्तुओं सम्बन्धी व्रतों का पालन करते रहना चाहिये। कुछ समय तक के लिये जूता पहनना छोड़ना, भूमि पर सोना, उपवास रखना, रात्रि-जागरण, पैदल तीर्थ यात्रा, नमक छोड़ देना, सूर्य दर्शन के साथ भोजन करना, कम वस्त्रों का धारण, शीत ऋतु में प्रातः स्नान जैसे उपायों का अवलम्बन करते रहने से शरीर कष्ट सहिष्णु बनता है। मौन, पूजन, आराधना, एकान्त सेवन, दान, परोपकार, सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान जैसे कार्यों से मानसिक क्षमता एकाग्रता बढ़ती है। केवल सत्य ही बोलना, हिंसा न करना, धन का अधिक संचय न करना, काम सेवन युक्त मर्यादा से अधिक न करना। अन्यायोपार्जित धन से, कटुभाषण से बचना आदि आत्मिक व्रतों से आत्मशक्ति बलवती होती है।

आत्मशुद्धि के लिये चान्द्रायण या अर्ध चान्द्रायण जैसे व्रत बहुत उपयोगी हैं। उनसे अनेक रोगों की अपने आप चिकित्सा भी हो जाती है। चान्द्रायण व्रत एक महीने के लिये होता है। जिस आदमी का आहार एक सेर का हो वह पूर्णमासी के दिन पूर्ण आहार करके प्रति दिन एक छटांक घटाता जाय और अमावस्या को बिल्कुल निराहार रहे। फिर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से एक छटांक आरम्भ करके प्रतिदिन एक छटांक बढ़ाता जाय और पन्द्रह दिन में (अगली पूर्णमासी को) पूरे आहार पर पहुँ जावे। अर्ध चान्द्रायण इसका आधा होता है। पन्द्रह दिन में से सात दिन क्रमशः कम करे, आठवें दिन निराहार रहे फिर उसी क्रम से बढ़ाकर अगले सात दिन में पूर्ण आहार पर पहुँच जावे। नये साधकों को अर्ध चान्द्रायण ही सुगम पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्रतों से साधक की आत्म-शक्ति बढ़ती है और उस बाह्य एवं आन्तरिक अनेक लाभों की उपलब्धि होती है।

(७) सूर्य नमस्कार

स्वास्थ्य को स्थिर रखने और बढ़ाने के लिये व्यायाम की बड़ी आवश्यकता है। व्यायाम से माँस पेशियाँ, नाड़ी समूह, संधियाँ तथा अस्थियाँ मजबूत होती हैं, रक्त का संचार ठीक होता है। फेफड़े, हृदय, आमाशय, जिगर तथा आँतें अपना काम भली प्रकार करते रहते हैं। चेहरे पर तेज, गहरी निद्रा, उदर की सफाई का बहुत कुछ आधार व्यायाम पर निर्भर है। इन कारणों से व्यायाम हमारे दैनिक जीवन में उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना अन्न जल और भोजन।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये योगियों ने व्यायाम को योग विद्या में प्रमुख स्थान दिया है। अष्टांग योग साधना में यम-नियम के बाद आसन का नम्बर आता है। आसन अपने ढंग के अनोखे व्यायाम हैं, पहलवान जिन दण्ड-बैठक आदि कठोर व्यायामों को करते हैं, वे सर्व साधारण के उपयोगी नहीं बैठते। जिनके शरीर मजबूत हैं जिनके आहार में घी, दूध की पर्याप्त मात्रा रहती है, जिन्हें मानसिक संघर्ष में अधिक नहीं उलझना पड़ता उनके लिये पहलवान बनाने वाले कठोर व्यायाम ठीक हैं। पर जिनकी ऐसी स्थिति नहीं है, उनके लिये ऐसा व्यायाम होना चाहिये, जो अंग-प्रत्यंगों पर अधिक दबाव न डाले और लाभ की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण हो। ऐसे व्यायाम आसन ही हैं, शारीर में कुछ सूक्ष्म ग्रन्थियाँ होती हैं जिन पर आसनों के द्वारा विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव के कारण शारीरिक शक्ति वृद्धि होने के साथ-साथ मानसिक तथा आत्मिक बल भी बढ़ता है। आसनों का लाभ स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों को मिलता है।

सर्व साधारण के लिये जो आसन बहुत ही उपयोगी हैं, उनको क्रमबद्ध करके सूर्य नमस्कार की विशिष्ट प्रणाली का आविष्कार हुआ है। इस एक साधना के अन्तर्गत बारह आसन हो जाते हैं। इसकी नियमित साधना करने से थोड़े दिनों में स्वास्थ्य का आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है।

साधना विधि

प्रातःकाल सूर्योदय समय के आस-पास इस साधना को करने के लिये खड़े हूजिये। यदि अधिक सर्दी-गर्मी या हवा हो तो हल्का कपड़ा शरीर पर पहने रहिये अन्यथा लँगोट या नेकर के अतिरिक्त सब कपड़े उतार दीजिये। खुली हवा में या स्वच्छ खुली खिड़कियों के कमरे में कमर सीधी रखकर खड़े हूजिये। मुख पूर्व की ओर कर लीजिये। नेत्र बन्द करके हाथ जोड़कर भगवान सूर्य नारायण का ध्यान कीजिये और भावना कीजिये सूर्य की तेजस्वी आरोग्यमयी किरणें आपके शरीर में चारों ओर से प्रवेश करती हुई आपको तेज धारणा और आरोग्य प्रदान कर रही हैं अब निम्न प्रकार क्रिया आरम्भ कीजिये।

१—पैरों को सीधा रखिये। कमर पर से नीचे की ओर झुकिये, दोनों हाथों को जमीन पर लगाइये। मस्तक पर घुटनों से लगे, यह हस्त पादासन है इससे टखनों का टाँग के नीचे के भागों का जंघा का चूतड़ों का, पसलियों का कन्धों के पृष्ठ भाग तथा बाँहों नीचे के भाग का व्यायाम होता है।

२—सिर को घुटनों से हटाकर लम्बा श्वाँस लीजिये। पहले दाहिने पैर को पीछे ले जाइये और पंजे को लगाइये। बायें पैर को आगे की ओर मुड़ा रखिये। दोनों हथेलियाँ जमीन से लगी रहें। निगाह सामने और सिर कुछ ऊँचा रहे। इससे जाँघों के दोनों भागों का तथा बायें पेडू का व्यायाम होता है। इसे एकपद प्रसरणासन कहते हैं।

३—बायें पैर को भी पीछे ले जाइये। उसे दाहिने पैर से सटाकर रखिये। कमर को ऊँचा उठा दीजिये सिर और सीना कुछ नीचे झुक जायेगा।

यह द्विपाद प्रसरणासन है। इससे हथेलियों की सब नसों का भुजाओं का, पैरों की उँगलियों और पिण्डलियों का व्यायाम होता है।

४—दोनों पाँवों के घुटने, दोनों हाथ, छाती तथा मस्तक इन सब अंगों को सीधे रखकर भूमि से स्पर्श कराइये। शरीर तना रहे—कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेटने को तरह निचेष्ट न हो जाइये। पेट जमीन को न छुये।

इसे अष्टांग प्रणिपातासन कहते हैं। इससे बाहों, पसलियों, पेट, गर्दन, कन्धे तथा भुजदण्डों का व्यायाम होता है।

५—हाथों को सीधा खड़ा कर दीजिये। सीना ऊपर उठाइये। कमर को जमीन की ओर झुकाइये सिर ऊँचा कर दीजिये, आकाश को देखिये। घुटने जमीन पर न टिकने पावें। पंजे और हाथों पर शरीर सधा रहे। कमर जितनी मुड़ सके मोड़िये ताकि धड़ ऊपर को अधिक उठ सके।

यह सर्पासन है। इससे जिगर आँतों का तथा कण्ठ का अच्छा व्यायाम होता है।

६—हाथ और पैरों के पूरे तलवे जमीने से स्पर्श कराइये। घुटने और कोहनियों के टखने झुकने न पावें। कमर को जितनी हो सके ऊपर उठा दीजिये। ठोड़ी कण्ठ मूल में लगी रहे। सिर नीचा रखिये।

यह भूधरासन है। इससे गर्दन, पीठ, कमर, कूल्हे, पिंडली, पैर तथा भुजदण्डों की कसरत होती है।

७—यहाँ से अब पहले की हुई सूरतों पर वापिस जाया जायेगा। दाहिने पैर को पीछे ले जाइये। पूर्वोक्त नं. २ के अनुसार एक पाद प्रसरणासन कीजिये।

८—पूर्वोक्त नं. १ की तरह हस्त पादासन कीजिये।

९—सीधे खड़े हो जाइये। दोनों हाथों को ऊपर आकाश की ओर ले जाकर हाथ जोड़िये। सीने को जितना पीछे ले जा सकें ले जाइये। हाथ जितने पीछे जा सकें ठीक है। पर वे मुड़ने न पावें। यह ऊर्ध्व नमस्कारासन है इससे फेफड़े और हृदय का अच्छा व्यायाम होता है।

१०—अब उसी आरम्भिक स्थिति पर आजाइये। सीधे खड़े होकर हाथ जोड़िये और भगवान सूर्य नारायण का ध्यान कीजिये।

यह एक सूर्य नमस्कार हुआ। आरम्भ पाँच से करके सुविधानुसार थोड़ी-थोड़ी संख्या धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिये। व्यायाम काल में मुँह बन्द रखना चाहिये। साँस नाक से ही लेनी चाहिये।

(८) प्राणाकर्षण प्राणायाम

हृदय और मस्तिष्क शरीर के भीतर दो ऐसे प्रधान अंग है, जिन पर मनुष्य की जीवनी शक्ति एवं मानसिक स्वस्थता निर्भर रहती है। हृदय की गति में अवरोध होते ही मृत्यु निश्चित है। मस्तिष्क में विकार उत्पन्न होने पर विक्षिप्तता एवं पागलपन आ घेरता है। जिनके यह दोनों अंग स्वस्थ हैं, उनकी शारीरिक और मानसिक स्वस्थता कायम रहती है—बढ़ती है। इन दोनों अंगों के परिशोधन और परिवर्धन के लिये प्राणायाम का व्यायाम है। इस व्यायाम से फेफड़े मजबूत रहते हैं और खाँसी, श्वाँस, क्षय आदि रोगों से सुरक्षा रहती है।

इतना ही नहीं सूक्ष्म शरीर को भी प्राणायाम से बहुत लाभ पहुँचता है। उससे आत्म-शक्ति बढ़ती है। महर्षि पातंजलि ने योग दर्शन में कहा है—

"किंच धारण सुच योग्यता मनस" अर्थात् प्राणायाम से मन की एकाग्रता होती है। चंचल मन को वश में करने के लिये प्राणायाम का हथियार बहुत ही उपयुक्त सिद्ध होता है। वे और भी कहते हैं—"ततः क्षीयते प्रकाशः वरणम्" अर्थात् प्राणायाम से अन्धकार का आवरण क्षीण होता है। हृदय में अज्ञान और कुविचारों के कारण एक प्रकार का अन्धकार हो जाता है। प्राणायाम से आत्म-ज्योति का प्रकाश जगता है और इससे इस अज्ञान का नाश होता है।

प्राणायाम की सुगम क्रिया

प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर साधना के लिये किसी स्वच्छ, शान्तिदायक स्थान में आसन बिछाकर बैठिये। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखिये। मेरुदण्ड सीधा रहे। नेत्र बन्द कर लीजिये।

फेफड़ों में भरी हुई सारी हवा बाहर निकाल दीजिये। अब धीरे-धीरे नासिका द्वारा साँस लेना आरम्भ कीजिये। जितनी अधिक मात्रा में भर सकें, फेफड़ों में भर लीजिये। अब कुछ देर उसे भीतर ही रोके रहिये। इसके पश्चात् साँस को धीरे-धीरे नासिका द्वार से बाहर निकालना आरम्भ कीजिये। हवा को जितना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक खाली कर सकें कीजिये। अब कुछ देर साँस को बाहर ही रोक दीजिये, अर्थात् बिना सांस के रहिये, इसके बाद पूर्ववत् वायु खींचना आरम्भ कर दीजिये। यह एक प्राणायाम हुआ। सोस निकालने को रेचक, खींचने को पूरक और रोके रहने को कुम्भक कहते हैं। कुम्भक के दो भेद हैं। साँस को भीतर भरकर रोके रहना 'अन्तर कुम्भक' और खाली करके बिना साँस रहना 'बाह्य कुम्भक' कहलाता है। रेचक और पूरक में समय बराबर लगाना चाहिये पर कुम्भक में उसका आधा समय ही पर्याप्त है।

पूरक करते समय भावना करनी चाहिये कि "मैं जन शून्य लोक में अकेला बैठा हूँ मेरे चारों ओर चैतन्य विद्युत प्रवाह जैसी जीवनी शक्ति का समुद्र लहरें ले रहा है। साँस द्वारा वायु के साथ-साथ उस प्राण शक्ति को मैं अपने अन्दर खींच रहा हूँ।"

अन्तर कुम्भक करते समय भावना करनी चाहिये कि उस चैतन्य प्राण शक्ति को मैं अपने भीतर भरे हूँ। समस्त नस नाड़ियों में अंग-प्रत्यंगों में वह शक्ति जज्ब हो रही है। उसे सोखकर देह का रोम-रोम चैतन्य, प्रफुल्ल, सतेज एवं परिपुष्ट हो रहा है।

रेचक करते समय भावना करनी चाहिये कि शरीर में संचित मल, रक्त में मिले हुये विष, मन में धंसे हुये विकार, साँस छोड़ने पर वायु के साथ-साथ बाहर निकले जा रहे हैं।

बाह्य कुम्भक करते समय भावना करनी चाहिये कि अन्दर के दोष साँस द्वारा बाहर निकालकर भीतर का दरवाजा बन्द कर दिया गया है ताकि ये विकार वापिस लौटने न पावें।

इन भावनाओं के साथ प्राणाकर्षण प्राणायाम करने चाहिये। आरम्भ में पाँच प्राणायाम करें फिर क्रमशः सुविधानुसार बढ़ाते जायें।

(६) क्रिया योग

सम्पत्तिवान बनने के लिये यह आवश्यक है कि अधिक कमाया जाय और उस कमाई को सुरक्षित रखा जाय। आत्मिक दृष्टि से सम्पन्न बनने के लिये भी हमें यही करना पड़ता है। आत्मिक गुणों को, अध्यात्मिक तत्वों को अपने अन्दर बढ़ाना और उन तत्वों को क्रियात्मक रूप में चरितार्थ करना, यही कमाना और जमा करना है। इसी रीति से साधक आत्म सम्पत्तिशाली बनता है।

आहार-विहार की सुव्यवस्था से शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ाना, विद्या, विवेक, ज्ञान, विज्ञान, कला, चातुर्य से मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाना, धन, प्रतिष्ठा, मित्रता, लोक सेवा एवं सत्कार्यों द्वारा सामाजिक स्वस्थता बढ़ाना, हर साधक के लिये आवश्यक है। जो इनसे जितना सम्पन्न होगा, उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही मजबूत होगी। मजबूत भूमि पर ही दया, उदारता परोपकार, पवित्रता, संयम, ईश्वर परायणता के पौधे उगते हैं। जैसे ऊसर भूमि में उत्तम बीज या तो जमते ही नहीं या जमते हैं तो अल्प काल में ही सूख जाते हैं, उसी प्रकार जिनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, स्वास्थ्य ठीक नहीं वे आत्म-बल की सम्पन्नता प्राप्त नहीं कर सकते। बीमार आदमी कुछ कमाता नहीं वरन् जो मौजूद है उसे भी गँवाता रहता है। इसी प्रकार शरीर, मन और समाज क्षेत्रों में जो व्यक्ति अस्वस्थ है उसके लिये पुण्य कमाना कठिन है। निर्बलता एक पाप है—पाप से पाप की उत्पत्ति होती है। अनुचित स्थिति में पड़े हुये व्यक्ति के लिये उचित विचार और कार्य कर सकना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कष्टसाध्य अवश्य है।

आत्म सम्पदाओं से सुसज्जित बनने की आकांक्षा रखने वालों को चतुर्मुखी उन्नति करने की आवश्यकता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों एक ही पलंग के चार पाये हैं। शरीर, मन, समाज और अन्तःकरण चारों की स्वस्थता मिल कर एक पूर्ण स्वस्थता कहलाती है। इसलिये आत्मोन्नति के इच्छुकों को अपनी चतुर्विधि उन्नति के लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। ताकि आत्मोन्नति से सुरम्य पौधे उगने लायक अन्तःभूमि तैयार हो जाय।

इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि इन उपार्जित सम्पदाओं को स्थायी बनाया जाय और सुरक्षित किया जाय। इसका वैज्ञानिक तरीका 'दान' है। सत्पात्रों को देना ऐसे निमित्त के लिये देना—जिससे सात्विकता की वृद्धि हो, लोक कल्याण हो, दान कहलाता है। केवल धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ही दान नहीं होता शरीर, मन, वाणी, प्रभाव, प्रयत्न तथा धन से अपने निज के स्वार्थ के लिये कम से कम उपयोग करना चाहिये और उनका अधिकांश भाग दान कर देना चाहिये। सम्पत्ति को सुरक्षित रखने का यही सबसे अच्छा तरीका है। जो कमाता तो खूब है पर दान नहीं करता वह भूसी को कूटने के समान, पानी को विलोने के समान, निरर्थक प्रयत्न में अपनी शक्ति बराबर करता है। सोने का पहाड़ जमा कर लेना, गधे के बोझ की बराबर पुस्तकें रट लेना, भैंसे की बराबर बलवान हो जाना, हौवा की तरह प्रसिद्ध हो जाना निरर्थक है। यदि इन शक्तियों से आत्मोन्नति के मार्ग में उपयोग न हो। दान करने से ही यह शक्तियाँ आत्मा के बैंक में जमा होती हैं दान करते ही—तुरन्त, उसी क्षण, एक आन्तरिक सन्तोष प्राप्त होता है, यह उस बैंक की रसीद है। इस रसीद को देखकर वह अनुभव किया जा सकता है कि कमाई हुई पूँजी सम्राट परमात्मा के रिजर्व बैंक में जमा हो गई। यह कमाना और जमा करना क्रिया योग कहलाता है।

(१०) मौन व्रत

कितने ही व्यक्तियों को ऐसी आदत होती है कि उनसे चुप नहीं रहा जाता। हर वक्त कतरनी की तरह उनकी जीभ चलती रहती है। कोई कहने योग्य आवश्यक बात हो या न हो, उन्हें कुछ न कुछ कहे बिना चैन नहीं पड़ता। व्यर्थ की, अनर्गल, झूँठी, मनगढ़त, निष्प्रयोजन, गपशप करते हुये उन्हें बड़ा मजा आता है। वास्तव में यह एक बड़ा दुर्गुण है। वाणी हमारी पवित्र आध्यात्मिक एवं महत्त्वपूर्ण शक्ति है। इसके एक-एक अणु का सदुपयोग होना चाहिये।

लोग नहीं समझते कि शब्द के साथ हमारी कितनी विद्युत शक्ति, जीवनी-शक्ति एवं प्राण शक्ति मिली रहती है। वाणी के साथ-साथ हमारी संचित शक्तियों का क्षरण होता है। देखा जाता है कि वाणी के द्वारा शत्रुओं को मित्र और मित्र को शत्रु बनाया जा सकता है। किसी के शब्दों में रस बरसता है और अमृत झरता है किन्तु किसी की जीभ जब चलती है तो दुर्गन्ध, द्वेष, घृणा और विग्रह ही उत्पन्न करती है। इससे प्रकट होता है कि हमारे भीतरी तत्व वाणी के साथ सम्मिश्रण होते हैं। वाणी जब निकलती है तो अपने साथ हमारे शक्ति कोष को लपेट लाती है। इस कोष को यदि अकारण, अनुपयुक्त दिशा में खर्च किया जाय तो न केवल हमारी प्राण शक्ति नष्ट होगी वरन् बकवास की एक दूषित आदत भी हमारे पीछे पड़ जायेगी।

महात्मा गांधी मौन में काफी समय बिताते थे। सप्ताह में एक दिन तो मौन उनका रहता ही था। इसके अतिरिक्त वे काम करते समय चुप रहते थे। महत्त्वपूर्ण राजनैतिक वार्ताओं में भी वे उतना ही बोलते थे जितना बोले बिना काम नहीं चलता उनका कथन था कि—"मौन एक ईश्वरीय अनुकम्पा है।"

किसी वक्ता का भाषण सुनने के लिये हमें चुप होना पड़ता है। कोलाहल में हम पास के शब्द भी नहीं सुन पाते किन्तु निस्तब्ध वातावरण में दूर-दूर की शब्द-ध्वनियाँ भी आसानी से सुनी जाती हैं। दिव्य लोकों से हमारे लिये जो दिव्य आध्यात्मिक सन्देश आते हैं, उन्हें सुनने के लिये मौन होने की आवश्यकता पड़ती है। आत्मा के प्रति परमात्मा की जो सन्देश-ध्वनियाँ आती हैं, उन्हें मन और वाणी से मौन होकर ही सुना जा सकता है। यह एक दैवी रेडियो है। चुप रहकर अन्तर्मुखी होकर ही साधक परमात्मा के प्रकाश को ग्रहण कर सकता है। जो लप-लप हर घड़ी जीभ चलाता रहता है, दुनियाँ भर की अगड़म-बगड़म बकता रहता है, उसके लिये अन्तर्मुखी होना और मौन के दैवी लाभ को प्राप्त करना कठिन है।

एक बार ऋषि भाष्कलि ने अपने आचार्य से प्रश्न किया कि—"भगवान्, ब्रह्म को कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?" आचार्य ने कोई उत्तर न दिया। भाष्कलि ने सात बार यह प्रश्न पूछा पर आचार्य सातों बार चुप रहे। अन्त में उनने कहा—भद्र ! मैं बार-बार उत्तर दे रहा हूँ, पर तू समझता ही नहीं। उस ब्रह्म को वाणी से कहा, सुना नहीं जा सकता उसे तो मौन होकर ही समझा और प्राप्त किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य वीर्य संचय को ही कहते हैं सो बात नहीं, शक्तियों के क्षरण को रोकना ब्रह्मचर्य है। वाणी का संयम 'वाक् ब्रह्मचर्य, कहलाता है। जिस प्रकार वीर्य के अपव्यय से रोग, जरा और अकाल मृत्यु की गोद में जाना पड़ता है वैसे ही वाणी का दुरुपयोग, अपव्यय करने पर मानसिक शक्तियों की न्यूनता होती जाती है। कहते हैं कि—"जो गरजते हैं, सो बरसते नहीं।" कारण स्पष्ट है' बकवास में जिसकी शक्तियाँ अधिक खर्च हो जाती हैं। कार्य करते समय उसे उन शक्तियों की कमी पड़ जाती है। संसार के जितने भी रचनात्मक कार्य करने वाले, महापुरुष, वैज्ञानिक, ग्रन्थकार, सेनापति एवं महात्मा हुये हैं, वे सभी प्रायः मितभाषी थे। शक्ति के साधकों को मौन रहना चाहिये। मितभाषण को शास्त्रकारों ने मौन कहा है। जो भाषण किसी के लाभ, हित या कल्याण के उद्देश्य से किया जाता है वह मौन है। उतना ही बोलना चाहिये जितना बोलना आवश्यक है। शेष समय में चुप रहना चाहिये।

योग शास्त्रों में चार वाणी बताई हैं। (१) परावाणी (२) पश्यन्ति वाणी (३) मध्यमा वाणी (४) वैखरी वाणी। इनमें से परा और पश्यन्ति सूक्ष्म तथा मध्यमा और वैखरी स्थूल हैं। मन में जो संकल्प उठते हैं, जो सोच-विचार, ऊहापोह, तर्क-वितर्क, आयोजन-वियोजन, होते हैं उनमें सूक्ष्म वाणी का प्रयोग होता है। मध्यमा वाणी कण्ठ में और वैखरी जिव्हा में रहती है। धुस-पुस, अस्पष्ट, वाणी कण्ठ से और स्पष्ट ध्वनि वाली जिव्हा से उत्पन्न होती है। इन चारों ही वाणियों का हमें संयम एवं सदुपयोग करना चाहिये।

जिव्हा खोलने से पहले, शब्दोचार करने से पहले उतने बिस्तार से कही जा रही है या नहीं ?. वह विचार करना चाहिये कि जो बात कहने जा रहे हैं वह किसी लाभ के लिये कही जा रही है या नहीं ? कितने विस्तार से कहनी चाहिये ? इन दोनों प्रश्नों को सामने रखकर भाषण करना, इस प्रकार ध्यान रखकर जो वार्तालाप किया जाता है वह मौन है। लोक हित की, परमार्थ की दृष्टि से जो कुछ कहा जाता है वह मौन ही है। निष्प्रयोजन फिजूल बातों से बचना मौन का प्रधान उद्देश्य है।

मन में उठने वाले विचारों में विविध कल्पनायें होती हैं, उनमें दृश्य और वाणी दो अंग होते हैं। इसमें भी संयम बरता जाना चाहिये। लोक हितकारी, परमार्थिक सात्विक, वास्तविक, उचित कल्पनाओं को ही मस्तिष्क में स्थान मिलना चाहिये। व्यर्थ की चिन्तायें, तृष्णायें, मन में भरे रहने से परा एवं पश्यन्ति वाणियों का क्षरण होता है। आत्मिक शक्तियों का अपव्यय होता है।

मन और शरीर दोनों को मिलाकर ही एक पूर्ण मौन बनता है। जो एकांगी हो वह अधूरा है। जुबान से चुप रहना और मन में तूफान चलाते रहना यह तो अधूरी चीज हुई। मौनी का ही दूसरा नाम मुनि है। मुनि से जीवन शक्ति दूर नहीं होती।

मौन की साधना

मौन की अन्तिम सफलता प्राप्त करने के लिये उसकी विधिवत् साधना करनी चाहिये। सप्ताह में एक दिन या पखवाड़े में एक दिन मौन व्रत होना चाहिये। यह कम से कम ४ घण्टे लगातार का होना चाहिये। यदि प्रतिदिन घंटे दो घंटे की साधना हो सके तो और भी अच्छा। सुविधानुसार यदि समय और भी अधिक बढ़ाया जा सके तो और भी अच्छा है। मौन के समय अन्य शारीरिक कार्य न करने चाहिये। पूर्ण विश्राम लेते हुये एकान्त स्थान में रहना चाहिये। मौन काल में पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिये और न विविधि विषयों पर मन दुलाना चाहिये। इस समय चित्त को सब ओर से हटाकर इष्ट देव का या प्रकाश ज्योति का ध्यान करना चाहिये। मौन काल में भोजन नहीं करना चाहिये।

इस छोटी-सी साधना को करते रहने से मौन में सफलता मिलती है। साधक मुनि बनता है। मौनी की वाणी बड़ी प्रभावशाली होती है। उसका शाप, वरदान सफल होता है। चित्त में शान्ति रहती है और आत्मबल बढ़ता है।

सारस्वत योग

योगियों की दो श्रेणियाँ हैं। एक जनसेवा प्रधान, दूसरी आत्म शान्ति प्रधान। जनसेवा प्रधान योग फिर वह चाहे किसी तरह का हो कर्मयोग ही कहलावेगा। कर्म की विभिन्नता के कारण तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनसेवा के आवश्यक एवं अत्यन्त आवश्यक अंगों के भेद से कई प्रकार के कर्मयोगी हो सकते हैं और उपयोगिता की दृष्टि से उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट कोटियाँ भी हो सकती हैं। उसी प्रकार आत्मशान्ति की बात कही जा सकती है। जिनके जीवन में आत्मशान्ति के लिये भक्ति का समावेश हुआ रहता है, वे भक्तियोगी कहलाते हैं और जिनके जीवन में तप का समावेश हुआ रहता है, वे संन्यासयोगी कहलाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष तप अथवा भक्ति के अतिरिक्त अनुभव लेने की तथा मनोरंजन की भावना प्रबल रहती है। ऐसे लोग सारस्वत योग के साधक माने जाते हैं। सरस्वती की उपासना में संलग्न होकर आत्मसन्तोषपूर्वक सदाचारी जीवन बिताना ही वास्तव में सारस्वत योग है।

सारस्वत योग में सरस्वती का गुणकीर्तन नहीं होता बल्कि विद्याव्यसन होता है। ज्ञान का अर्जन होता है। यही ज्ञान जब जनसेवा के लिये प्राप्त किया जाता है, तो साधक उपयोगी हो जाता है पर आत्मसन्तोष के लिये किया जाता है तब वह सारस्वत योगी कहलाता है।

विद्याव्यसन कई प्रकार का होता है और उसे कई प्रकार से चरितार्थ किया जाता है जैसे देशाटन द्वारा, पुरातत्व की खोज द्वारा, अन्य लेखन या काव्य निर्माण द्वारा, चित्र, वाद्य, संगीत के अध्ययन द्वारा। विद्याव्यसन के साथ कौन-सी भावना काम करती है उस पर ही उसका श्रेणी भेद होता है। आत्म-सन्तुष्टि के लिये लिखी जाने वाली पोथी या बनाया जाने वाला चित्र या गाया जाने वाला राग या रची जाने वाली कविता सारस्वत योग के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता। पर यदि आत्म सन्तुष्टि की भावना न हो, जनहित की भावना हो और उसी के लिये विद्या का अध्ययन चल रहा हो, पुस्तक लिखी जा रही हो, प्रेरणा देने वाली कवितायें लिखी जा रही हों, राग अलापे जा रहे हों या चित्र बनाये जा रहे हों तो वह सब सारस्वत योग न रहकर कर्मयोग हो जाता है।

यह सम्भव है कि विद्याव्यसनी को कर्म-योग करते हुये भी आत्मसन्तुष्टि मिले लेकिन यदि जन हित उसका ध्येय है तो वह ध्यानयोग के तप, भक्ति और सारस्वत योग की श्रेणी में नहीं आवेगा। वह विशुद्ध कर्मयोग की श्रेणी में ही आवेगा इसी प्रकार आत्म सन्तोष के लिये की जाने वाली साधनायें जनहितकारी हों तब भी वह योगी कर्मयोगी न कहलाकर सारस्वत योगी ही कहलावेगा।

योग में मुख्य वस्तु है वृत्ति-भावना, कर्म नहीं। कर्म के मूल में जो वृत्ति होती है, साधक को उसी वृत्ति के अनुसार लाभ होता है। यों तो जो भी कार्य किया जाता है, उसका जनहित तथा आत्मसन्तोष पर अवश्य प्रभाव होता है। व्यष्टि और समष्टि को कार्य के प्रभाव से मुक्त नहीं किया जा सकता। लेकिन कार्य का साधक पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी जो वृत्ति काम करती है, योग तथा उसके फलाफल का निर्णय उसी के आधार पर किया जाता है। उसी की श्रद्धा या वृत्ति के आधार पर वह कार्य उस साधक का निर्माण करता है। गीताकार ने भी इसी की पुष्टि की है—

श्रद्धामयोऽयंपुरुषः यो यद्श्रद्धः सएवसः।

इसलिये मूल बात है वृत्ति की।

योगी होने के लिये निष्पाप जीवन, तत्वदर्शीपन और समभाव आवश्यक है। जब तक ये भाव नहीं होते तब तक योग की अवस्था प्राप्त नहीं होती। ये तो प्रत्येक प्रकार के योगी में होनी आवश्यक है। इनके होने के अनन्तर उसके कार्य जिस भावना से संचालित होते हैं उस पर योगी का श्रेणी भेद निर्भर करता है।

योगी चाहे जनहित करे चाहे आत्म तुष्टि लेकिन जन का अहित नहीं करता इसीलिये वह सर्वसाधरण की अपेक्षा कहीं उन्नत होता है। अन्यथा फिर सर्वसाधारण में और उसमें कोई अन्तर नहीं रहता।

जप-योग

ईश्वर के नाम का जप करने से उसके दिव्य गुणों का प्रभाव मनुष्य के हृदय पर पड़ता है, अधिक मात्रा में जप करने से वह गुण मनुष्य में भी आने लगते हैं। यदि मनुष्य प्राणायाम के साथ दृढ़ आसन होकर एकाग्र चित्त से नित्य प्रति ३ घंटे जप करे, तो उसका चित्त ठहरने लगता है। इसी का स्थूल रूप हरि-कीर्तन है, इससे भी मन एकाग्र होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर में प्रेम तथा भक्ति उत्पन्न होने लगती है। जप करने के लिये ईश्वर का सर्वोत्तम नाम "ओ३म्" है। यदि अर्थ सहित जप किया जावे तो विशेष लाभ होता है। जप करने से पहिले एकान्त निर्जन स्थान में बैठकर जापक को प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि "आज इतनी संख्या में जप करूँगा, पूर्ण किये बिना किसी दशा में भी उसे न छोडूँगा" इस प्रतिज्ञा को प्रातः सायं दोनों समय करनी चाहिये, अन्य समय में भी अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान रखना चाहिये। यदि इतना प्रयत्न करते हुये भी विघ्न उपस्थित हों, तो यह विचार करते हुये कि "मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर पातकी बनना चाहता हूँ" अपने को धिक्कार दे। ऐसा निरन्तर करते रहने से मन से ग्लानि उत्पन्न होकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने की मन में भावना उत्पन्न हो जाती है, जप करने में मन लगने लगता है।

जप करने में निम्नलिखित विघ्न उत्पन्न होते हैं, इनका ध्यान रखना चाहिये।

(१) व्याधि (२) स्त्यान (३) संशय (४) प्रमाद (५) आलस्य (६) अविरति (७) भ्रान्ति दर्शन (८) अलब्ध भूमिकत्व (९) अनवस्थित पन। ये चित्त के विक्षेप करने वाले विघ्न हैं, उपरोक्त विक्षेप चित्त की वृत्तियों के साथ मिलकर विघ्न करते हैं। यदि चित्त की वृत्तियाँ रोक दी जाती हैं, तो ये विघ्न बाधक नहीं होते।

"विक्षेपों की व्याख्या"

(१) व्याधि—रोगों से शरीर का वीर्य तथा रस बिगड़ने से कष्ट होना।

(२) स्त्यान—चित्त में कुकर्म करने का विचार आना अथवा कर्म छोड़ बैठना।

(३) संशय—अच्छे कर्मों के लिये चित्त में सन्देह उठना कि कर्म करूँ या न करूँ।

(४) प्रमाद—ईश्वर भजन का कभी चिन्तन भी न करना।

(५) आलस्य—शरीर अथवा चित्त की स्थूलता से शुभ कर्म न करना।

(६) अविरति—विषयों के संसर्ग से चित्त का आत्मा को मोहित कर देना।

(७) भ्रान्ति-दर्शन—कुछ का कुछ समझना, सत्य को असत्य, असत्य को सत्य जानना।

(८) अलब्ध भूमिकत्व—भजन के लिये स्वच्छ, एकान्त स्थान प्राप्त न होना।

(९) अनवस्थितपन—स्वच्छ एकान्त स्थान मिलने पर भी भजन में मन न लगना।

दृढ़प्रतिज्ञ होकर नित्यप्रति जप करने से कुछ दिनों में यह विघ्न अपने आप शान्त हो जाते हैं। इस कलिकाल में हठ-योग से समाधिस्थ हर एक मनुष्य नहीं हो सकता। प्रथम तो योगी गुरु ही नहीं मिलते, यदि खोजने पर मिल भी जावें तो मनुष्यों में श्रद्धा नहीं है, यदि किसी प्रकार श्रद्धा भी हो जावे तो अशुद्ध खाद्य पदार्थों के खाने से शरीर और मन अशुद्ध हो गये हैं, इसलिये इस समय हठयोग की सिद्धि एक प्रकार से असम्भव ही है, बस ईश्वर-प्राप्ति का सुगम मार्ग प्रतीत होता है, तो ईश्वर नाम का कीर्तन और जप, जैसे कि परमहंस स्वामी रामकृष्ण महाराज को समाधि हरिनाम कीर्तन ही से हो जाती थी। कीर्तन का सूक्ष्म तथा उत्तम जिव्हा को स्थिर रखकर केवल मन से जप करना, स्थूल दृष्टि से जप करने से जापक को सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जिससे कि मनुष्य लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लाभ उठा सकता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, प्रेम या श्रेय किसी मार्ग को ग्रहण कर ले।

सेवा धर्म एक योग साधना

मानवी काय-कलेवर अनेकानेक शक्तियों का भण्डागार है। प्रायः वे प्रसुप्त स्थित में पड़ी रहती हैं। बीज के अन्दर एक समूचा वृक्ष अपनी समस्त विशेषताओं के साथ छिपा पड़ा रहता है। पर वह प्रकट तभी होता है जब उसे भूमि, खाद, पानी का सुयोग मिले, इसी प्रकार व्यक्ति के अन्तराल में छिपी हुई विशेषताओं को उभरने के लिये कुछ विशेष प्रयत्नों की आधार, अवलम्बनों की आवश्यकता होती है। जो इस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिशा में प्रयत्नशील रहते और उभार परिष्कार में सफलता प्राप्त करते हैं, उन्हें महामानव स्तर तक पहुँचने का अवसर उपलब्ध होता है। वे ऐसे ऐतिहासिक बन सकने योग्य कार्य भी कर दिखाते हैं जो सामान्य जनों को अलौकिक, आश्चर्यजनक जैसे प्रतीत होते हैं।

प्रसुप्त को जागृत करना ही महान् पुरुषार्थ है। इसी के लिये अनेकानेक साधनाओं का आश्रय लिया जाता है। योग साधनाओं की विविध परम्पराओं का सृजन इसी निमित्त हुआ है। उनमें अनेकता विविधता देखते हुये किसी को भी भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। जिस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के आहार, पोशाक, भाषा, परम्परा एवं विनोद क्रम में अन्तर पाया जाता है, उसी प्रकार यदि आध्यात्म साधनाओं में अन्तर पाया जाता है तो इसमें किसी को भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये और भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। वे सभी उपयोगी हैं। लक्ष्य सभी का एक है—आत्म परिष्कार। वह जिस सीमा तक पूरा होता जाता है, उसी क्रम से गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश होता है। इस प्रकार परिपुष्ट हुआ व्यक्ति अपने में सामान्यजनों की अपेक्षा प्रतिभा, प्रामाणिकता सुव्यवस्था और तत्परता की मात्रा कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी देखता है। यही ऋद्धि-सिद्धियों का बीज है। इसके पल्लवित होने पर सामान्य स्थिति में जन्मे, पले लोग भी उन्नति के उच्चशिखर तक जा पहुँचते हैं, ऐसे काम कर दिखाते हैं, जिन्हें अभिवन्दनीय, अनुकरणीय कहा जा सके। इसी प्रगतिक्रम के साथ-साथ आत्म-सन्तोष और लोक सम्मान उपलब्ध होता चलता है। जन सहयोग की भी कमी नहीं रहती है। स्पष्ट है कि एकाकी व्यक्ति किसी प्रकार मनुष्यों की तरह निर्वाह भरकर सकता है। भौतिक एवं आत्मिक क्षेत्रों में प्रगति करने के लिये उस तद्नुरूप वरिष्ठ स्तर की प्रतिभाओं का सहयोग चाहिये। इसे अर्जित करने में निजी पात्रता ही सफल होती है। चुम्बक अपने स्तर के धातु खण्डों को समेट-बटोर कर अपने इर्द-गिर्द एकत्रित कर लेता है। यह बात सत्पात्रों पर भी लागू होती है। परिष्कृत और प्रामाणिक व्यक्तियों के साथ मैत्री साधने, प्रशंसा करने, सहयोग देने के लिये असंख्यों तैयार रहते हैं। प्रगति के आधारभूत तथ्य यहीं हैं। इसके लिये आत्म-शोधन की आत्म-परिष्कार की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। इस आधार का अवलम्बन ही योग साधना है। इस उपाय, उपचार की असाधारण महिमा गाई जाती है। माहात्म्य वर्णन किये जाते हैं। फलश्रुतियों के उत्साहपूर्वक बढ़े-चढ़े अम्बार लगाये जाते हैं। पर तथ्यतः बात इतनी भर है कि अपने को कषाय-कल्मषों की कीचड़ से उबारा जा सके। पवित्रता, प्रामाणिकता के शुद्ध जल से धोया जा सके तो व्यक्ति खरे सोने जैसा दृष्टिगोचर होता अपनी स्वर्णिम शोभा में दर्शकों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करता है।

यह सोचना भूल है कि देवानुग्रह आसमान से बरसता है या किसी हथकण्डे के माध्यम से उन्हें बरगलाया, फुसलाया जा सकता है। दैवी शक्तियाँ समदर्शी और न्यायनिष्ठ होती हैं। उन्हें किसी के साथ राग-द्वेष जैसे सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा नहीं होती। वे मात्र पात्रता का परिपोषण करते हैं। उर्वर भूमि पर वर्षा की बूँदें मखमली हरीतिमा उगा देती हैं पर कठोर चट्टानों पर घनघोर वर्षा होते हुये भी एक पता तक नहीं जमता है। इसमें देवता पर पक्षपात कर आरोपण नहीं किया जा सकता, वरन् निष्कर्ष यही निकाला जाना चाहिये कि पात्रता का परिष्कार ही फलदायी होता है। देवानुग्रह इसके बिना नहीं मिलता, साथ ही यह बात भी गाँठ बाँध लेने योग्य है कि इस तथ्य की उपेक्षा करके, कोई अनाचारी दैवी शक्तियों को न तो प्रसन्न कर सकता है और न अनुग्रह बरसाने के लिये बाधित। इस दिशा में विविध कर्मकाण्ड भी कुछ सहायता सिद्ध नहीं होते। अस्तु पत्तों पर भटकने की अपेक्षा विवेकवानों को आत्म-शोधन के निमित्त ही अपने आत्मिक प्रयासों को केन्द्रीभूत करना चाहिये। उन्हीं के निमित्त साधना क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये। उन उपचारों के स्वरूप विभिन्न हो सकते हैं, पर उद्देश्य में अन्तर नहीं रखा जा सकता। आत्म-परिष्कार ही वास्तविक देवाराधन है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगाभ्यासों में, तप साधनाओं में सभी उपासनापरक कर्मकाण्डों में अनुबन्धित हों ऐसी बात नहीं है। एक अति सरल और व्यावहारिक योग भी है—सेवायोग। इसे पुण्य-परमार्थ का संचय भी कह सकते हैं। इस निमित्त भी आत्मसंयम बरतना पड़ता है। शक्तियों की अनावश्यक कार्यों में क्षरित होने से रोकना पड़ता है। इतना ही नहीं समय, साधन, चिन्तन आदि की कुछ भी बचत क्यों न हो, उन्हें सत्प्रयोजनों के निमित्त अर्पित करना प्रयास है। संयम साधना में तपश्चर्या सध जाती है और दूसरों की सेवा सहायता में अपनत्व पर विराट के, विशालता के किसी घटक के साथ अपनी आत्मीयता सघन होती है। यही योग साधना की पृष्ठभूमि भी है। सेवा, धर्म को सेवायोग भी कहा जा सकता है। उसे अपनाने वाले को प्रथम चरण लोभ, मोह और अहंकार का नियमन करने के रूप में उठाना होता है। सादा जीवन और उच्च विचार का जीवनचर्या में सघन समावेश किया जाता है। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अपनाना पड़ता है। सादा जीवन उच्च विचार वाले सिद्धान्त को जीवनचर्या को अविच्छिन्न रूप से गति-विधि में सम्मिलित करना पड़ता है। इतना बन पड़ने पर आत्मिक प्रगति के मार्ग में और कोई बड़ा अवरोध आड़े नहीं आता।

सेवा धर्म अपनाने का संकल्प उत्साह मन में तब उठता है, जब संकीर्ण स्वार्थपरता के भव-बन्धनों से जैसे-जैसे छुटकारा मिलता जाता है वैसे ही जैसे कीचड़ में दबकर तली में बैठी हुई लकड़ी पानी भर चलने पर ऊपर उभरती चलती है। दबाव हटते ही ऊपर उभरना आरम्भ हो जाता है। यही बात आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। अन्तरीय क्षेत्र के कुसंस्कार और बहिरंग क्षेत्र के दुष्कर्म जैसे ही हटने-मिटने लगते हैं वैसे ही आत्मविकास का 'कमल' सद्ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें पड़ते ही सहज खिलने लगता है।

सेवा, धर्म, प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिये वही काम करता है, जो पौधे के लिये खाद पानी। इसे साबुन पानी भी कह सकते हैं जो कपड़े पर लगी मलीनता को धोकर स्वच्छ चमकीला बनाता है। सद्गुण बढ़ाने पर सेवा धर्म अपनाने की उत्कण्ठा उमँगती है। साथ ही यह भी देखा गया है कि लोकमंगल के लिये प्रवृत्त होने पर जड़ जमाये हुये दोष, दुर्गुणों की आधारशिला उखड़ती है।

सद्भावना फूल है और जन-कल्याण के निमित्त प्रयत्नशीलता उसका प्रतिफल। सेवा कृत्यों में मात्र हलचल ही नहीं होती रहती, उसके साथ सत्प्रवृत्तियों का समागम भी चलता रहता है। जो आदर्शवादी न होगा उसे अपनी लोभ-लिप्सा से ही फुरसत न मिलेगी। उसका सोचना और करना स्वार्थपरता की पूर्ति के निमित्त ही कार्यरत बना रहेगा। सस्ती वाहवाही लूटने के लिये ऐसे लोग दिखावटी आडम्बर मात्र ओढ़ पाते हैं। नाम छपने, फोटो प्रकाशित होने पदाधिकारी कहलाने भर में उनकी रुचि होती है। उस विज्ञापनबाजी के लिये ही वे थोड़ा समय और धन खर्च पाते हैं। जहाँ ऐसा अवसर न हो वहाँ से वे दूर ही रहते हैं, उदार आत्मीयता की भावनायें परिपक्व होने पर ही यह सूझता है कि दूसरों का दुःख बँटाया जाय, अपना सुख बाँटा जाय। गिरतों को उठाया जाय। उठतों को बढ़ाया जाये। यह उमंग तभी उठती है, जब अन्यों में भी अपनी ही आत्मा का प्रतिविम्ब परिलक्षित होने लगें। इस स्तर की सद्भावना, सदाशयता अनायास ही नहीं उभर आती इसके लिये लम्बे समय तक आत्मशोधन की साधना करनी पड़ती है। तुच्छता को महानता में कामना को भावना में बदलना पड़ता है। लेने की अभिलाषा देने की उत्कण्ठा में जब परिणत होती है तभी सेवा धर्म अपनाने का सुयोग संयोग बनता है।

सेवा भावना का अस्तित्व तभी प्रकाश में आता है, जब उदारता सहृदयता पनपती है। कहना न होगा कि इस प्रकार का अन्तस्तल उन्हीं में दीख पड़ता है, जो दया करुणा, ममता जैसी सत्प्रवृत्तियों से अनुप्राणित होते हैं। निष्ठुरता के रहते दूसरों का शोषण करते रहने की बात ही सूझती है। उस दशा में परमार्थ के लिये कुछ करना तो दूर सोचते भी नहीं बनता। जब सेवाभावी चिन्तन जग पड़े और उसे कार्यान्वित करने की विधा चल पड़े तो समझना चाहिये कि चिन्तन क्षेत्र में उत्कृष्टता घर बनाने लगी। जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह कार्यान्वित होने लगे तो मानना चाहिये कि श्रद्धा ने मूर्ति रूप धारण कर लिया।

सेवा धर्म अपनाने पर पग-पग पर उदारता का परिचय देना पड़ता है। स्वार्थों में कटौती करनी पड़ती है। समय और साधनों का बढ़-चढ़ कर उपभोग करने, ठाटबाट बनाने, विलासिता का रसास्वादन करने की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है। सहृदयता के बिना सेवा बन ही नहीं पड़ती। इसी तथ्य को यों भी कहा जा सकता है कि जन-कल्याण में प्रवृत्त होने वाला क्रमशः अधिकाधिक उदार बनते चलने के लाभ से वंचित नहीं रह सकता। सदाशयता और सेवा एक ही प्रक्रिया के अविच्छिन्न पक्ष हैं। एक के रहते दूसरी का भी जा पहुँचना स्वाभाविक है। प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं टिक सकता। उदारता के उभरते ही संकीर्ण स्वार्थपरता का निर्वाह हो नहीं सकता। सेवा परायण व्यक्ति दुर्जन बना नहीं रह सकता। उसे सज्जनता का पक्षधर बनना ही पड़ता है।

अन्य योग साधनाओं में विधि-विधान सही न होने पर उल्टा परिणाम भी हो सकता है। हानि भी उठानी पड़ सकती है। पर सेवायोग में ऐसा कोई खतरा नहीं है। पुण्य-परमार्थ का स्वल्प समयदान भी सत्परिणाम ही प्रस्तुत करता है। जन-कल्याण में निरत व्यक्ति सज्जन बन कर रहता है। इतना बन पड़ने पर आत्म-कल्याण की दिशा में प्रगति क्रम अनुगामी ही बनता है।

संन्यासयोग

बुढ़ापे तथा शारीरिक कमजोरी के कारण सामाजिक संघर्ष को छोड़कर और इह लौकिक कष्टों की चिन्ता किये बिना निष्पाप जीवन बिताना 'संन्यासयोग' कहलाता है।

जो लोग जवानी में ही इस योग को धारण करते हैं, वे संन्यासयोग के अधिकारी नहीं हैं। दूसरे शब्दों में या तो वे निठल्ले हैं, सांसारिक जिम्मेदारी से मुक्त होकर दूसरों की कमाई पर मौज उड़ाना चाहते हैं या फिर उनकी साधना कर्मयोग की भूमिका होती है।

संन्यासयोगी अपने आप में लीन रहता है। वह दुनियाँ को नहीं सताता और यदि दुनियाँ उसे सतावे तो वह उसकी भी परवाह नहीं करता। अपने जीवन के उत्तर काल में जबकि वह अपनी समस्त जिम्मेदारियाँ पूरी कर चुका होता है, संन्यास ग्रहण करता है। तब उसे एकान्त की आवश्यकता होती है, जहाँ वह सांसारिक जीवन को निष्पाप एवं सहिष्णु बना सके।

जीवन को निष्पाप एवं सहिष्णु बनाये बिना योग की साधना ही आरम्भ नहीं होती। इसलिये किसी के अच्छे करने पर या किसी के द्वारा बुराई करने पर उसमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होते। संन्यासयोगी जहाँ सदाचारी होता है, वहाँ वह स्वावलम्बी भी होता है, एकान्त प्रिय, तपस्वी और सहिष्णु होता है।

यह बताया जा चुका है कि युवावस्था संन्यासयोग का क्षेत्र नहीं है। वह कर्मयोग का क्षेत्र है। आगे बताया जायेगा कि कर्मयोग में अपने जीवन को समाज सेवा के लिये किस प्रकार बिताना पड़ता है और किस प्रकार समाज के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष में आना पड़ता है। लेकिन संन्यासयोग का उद्देश्य न तो समाज सेवा करना है और न समाज के संघर्ष में आना है। समाज के संघर्ष से अलग रहने के कारण ही उसे संन्यासयोग कहते हैं। रही समाज सेवा, यह कार्य तो लक्ष्य न होने पर भी स्वतः सम्पन्न हो जाता है।

जो कर्मयोगी बनना चाहते हैं, वे शक्ति संग्रह करने के लिये या जिस प्रकार ये समाज की सेवा करना चाहते हैं, उस प्रकार की सेवा करने के लिये जिस सामग्री बौद्धिक, शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक—की आवश्यकता होती है उसे प्राप्त करने के लिये समाज संघर्ष से बचकर, घर-द्वार छोड़कर, संन्यासी बनकर कहीं अलग साधना करना आरम्भ कर दे यह सम्भव है। लेकिन न तो संघर्ष से अलग रहना इनका उद्देश्य होता है और न जनसेवा से विमुख होना। बिना पूर्व तैयारी के कर्मयोगी बनना आसान भी नहीं है क्योंकि जन सेवा बिना जन संघर्ष में आये सम्भव नहीं होती और जो जन संघर्ष में आकर उससे प्रभावित हो उठते हैं, वे जन-सेवा कर भी नहीं सकते हैं। इसलिये वे कर्म-योग के उपयुक्त पात्र भी नहीं होते। उपयुक्त पात्र बनने के लिये कुछ समय पृथक् रहना उसके लिये आवश्यक हो जाता है इसलिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखने में वे भले ही संन्यास योगी दिखाई दें, पर होते हैं वे कर्मयोगी, क्योंकि कर्मयोगी बनने के लिये—जन संघर्ष में आने के लिये वे अपने को योग्य बनाते हैं।

यह भी कभी-कभी देखने में आया है कि जनसंघर्ष से अकुलाकर, शिथिल होकर कुछ व्यक्ति संन्यास ले लेते हैं। वे अपने से निराश हो चुके होते हैं यद्यपि वे युवा ही रहते हैं लेकिन जैसे-जैसे उनकी साधना बढ़ती जाती है, निराशा उन पर से अपना दबाव हटाती जाती है और वे धीरे-धीरे साधना की परिपक्वता प्राप्त करते हुये कर्मयोगी हो जाते हैं। उद्देश्य कर्मयोग न होने पर भी संन्यासयोग के अनुकूल उनका स्वभाव नहीं होता इसलिये संन्यासयोग में उतर जाने के बाद भी कर्मयोगी बन जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि दांभिकपन न हो और निठल्लेपन में रहकर जीवन बिताने की वृत्ति न हो, उनका जीवन प्रमाद से न घिर गया हो तो कोई युवा, युवात्मक शक्ति रहते हुये संन्यास योग में टिका रह ही नहीं सकता, उसे तो कर्मयोग की ओर प्रवृत्त होना ही पड़ता है। स्वामी विवेकानन्द का जीवन इस कर्मयोग से ओत-प्रोत दिखाई देता। यद्यपि वे संघर्ष से भाग कर संन्यासी नहीं हुये थे फिर भी उनकी युवात्मक वृत्तियों ने उन्हें कर्मयोग के मार्ग का ही पथिक बनाया था। महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी का जीवन भी कर्मयोगी का जीवन है।

गृह छोड़कर कर्मयोगी बना जा सकता है क्या ? यह एक प्रश्न है जिसे अक्सर लोग पूछ बैठते हैं क्योंकि उनके दिमाग में एक ही बात भरी रहती है कि गृहस्थ जीवन में रहकर ही कर्मयोग किया जा सकता है। भगवान कृष्ण और राजर्षि जनक के उदाहरण भी पेश किये जाते हैं। लेकिन गृह छोड़ना ही संन्यास नहीं है। जो गृह के संकुचित दायरे को तोड़कर उसे विस्तृत बनाते हैं, जो गाँव को, जिले को, प्रान्त को, देश को और उसी क्रम से समस्त विश्व को अपना घर बना लेते हैं, वे घर के संकुचित दायरे में बँधे भी नहीं रहते। जो बँधे हुये दिखाई देते हैं, वे भी वास्तव में उस सीमा का अतिक्रमण कर चुके होते हैं। हाँ, घर में रहकर घर के संघर्ष का मुकाबला करना, फिर समाज, जाति, देश और विश्व के संघर्ष में अपने आपको डालकर उसे पार करना सचमुच ही वीरता का काम है। इसलिये जो गृही हैं और प्रत्येक संघर्ष का वार सहते हुये कर्त्तव्य पथ पर सहिष्णुता एवं निष्पाप जीवन बनाये हुये आगे बढ़े जा रहे हैं, जनसेवा कर रहे हैं, वे महान् हैं परन्तु घर की सीमा का अतिक्रमण करके, घर को छोड़कर जिन्होंने समाज सेवा के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, वे भी कम महत्त्व के नहीं हैं। शंकराचार्य का जीवन इस दृष्टि से आदर्श है। कर्मयोग जनसेवा के उत्तरदायित्व से मुक्त होने का पाठ नहीं पढ़ाता बल्कि जनसेवा तो उसकी प्रधान पीठिका है।

युवा होते हुये भी जनसंघर्ष से बचना और आत्म शान्ति ही प्राप्त करना चाहते हैं, वे शारीरिक दृष्टि से भले युवा हों पर आत्मदृष्टया वे अवश्य वृद्ध हो चुके हैं। ऐसे युवावृद्ध हो सकते हैं कि संन्यासयोग में उपयुक्त बैठ जावें।

गृह त्याग कर कर्मयोग का अनुष्ठान करने वाले व्यक्ति से गृही होकर कर्मयोगी बनने वाले व्यक्ति की विशिष्ट महत्ता को नहीं भूला जा सकता क्योंकि गृह त्यागने के पश्चात् गृही होने की अवस्था में जिन विपत्तियों, परेशानियों और चिन्ताओं का सामना करना पड़ता, उनसे वह मुक्त रहता है। गृही इनका सामना करते हुये जनसंघर्ष में कदम उठाता है। इसलिये गृही को कर्मयोगी बनने में संन्यासी बनकर कर्मयोग की साधना करने से अधिक कठिनाई है। पर जो जितनी अधिक कठिनाइयों को सहन करते हुये अविचलित होता है, वह उतना ही महान् योगी होता है। इस दृष्टि से गृहस्थ कर्मयोगी की प्रशंसा की जाती है यहाँ तक कि उसी को कर्मयोगी कहा जाता है, जो घर में रहकर, घर की जिम्मेदारियों को पूरा करता हुआ विश्वकल्याण में दत्तचित्त होता है।

पर जो शिथिल हो गये हैं, वे सिसकते हुये जीवन यापन करें, इसकी अपेक्षा संन्यास लेकर आत्मशान्ति की साधना में तल्लीन हो जावें यह ज्यादा अच्छा है। इसीलिये वृद्धावस्था प्राप्त होने पर व्यक्तियों को सांसारिक मोह छोड़कर आत्मशान्ति के लिये संन्यासयोग की अवश्य दीक्षा लेनी चाहिये। शास्त्रों में भी अन्त्ययोग अर्थात् संन्यासयोग लेकर शरीर छोड़ने की बात का समर्थन किया है—योगेनान्ते तनुत्यजाम्।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्य योग की साधना

(प्राचीन योग विद्या का नवीन संस्करण)

सत्य धर्म का प्रचार और कुछ नहीं योग साधन का आरम्भ है। योग विद्या को सर्व-सुलभ रूप में जनसाधारण के सामने इस तरह उपस्थित किया जा रहा है। समयानुकूल थोड़ा-सा हेर-फेर करने से जनता की नवीनता प्रिय मनोवृत्ति का इस ओर झुकाव होगा, इसलिये पुरानी बात को नये रूप में सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया जा रहा है।

राजयोग के आरम्भिक साधन यम और नियम हैं। इन्हीं को सत्य, प्रेम, न्याय के साँचे में ढालकर अवतार की तरह बनाया गया है। पाठक इसकी विवेचना नीचे दिये हुये क्रम से कर सकते हैं।

यम

(१) अहिंसा—अखण्ड आत्मीयता (प्रेम)

(२) सत्य—अखण्ड जीवन (सत्य)

(३) अस्तेय—अखण्ड समता (न्याय)

(४) ब्रह्मचर्य—अखण्ड शक्ति (न्याय)

(५) अपरिग्रह—अखण्ड प्रवाह (प्रेम)

नियम

(६) शौच—मुक्ति, (परम पद) अवतार के दर्शन।

(७) संतोष—अखण्ड यज्ञ (प्रेम

(८) तप—अखण्ड शमन (न्याय)

(९) स्वाध्याय—अखण्ड जगत् (सत्य)

(१०) ईश्वर प्राणिधान—अखण्ड आत्मा (सत्य)

इस प्रकार लौट फेर का इस सत्य साधन में यम-नियमों को ही स्थान दिया गया है। समय परिवर्तन के अनुसार उनके क्रम में थोड़ा फेर और व्यवस्था में थोड़ा विस्तार कर दिया गया है।

शौच के लिये इस साधना में कोई स्थान इसलिये नहीं दिया गया है कि साधना नहीं वरन् साधन है। शौच का अर्थ, पाप-तापों को हटाकर आत्मा के निर्मल स्वरूप का दर्शन करना है। शौच रूपी ध्येय जैसे-जैसे प्राप्त होता जाता है, वैसे ही वैसे परम पद, मुक्ति, मोक्ष निकट आता जाता है। जब पूर्ण शौच प्राप्त हो जाता है, तो आत्मा बिल्कुल निर्मल और निष्पाप हो जाता है। यही तो मुक्त अवस्था है। आत्मा तो सत् चित् आनन्द स्वरूप नित्य और मुक्त है। कषाय-कल्मषों के अशौच ने उसे पवित्र कर रखा है। शौच प्राप्त होते ही आत्मा परमात्मा में मिल जाता है। इस प्रकार शौच को साधना नहीं वरन् साध्य, ध्येय, लक्ष समझकर इस नवधा भक्ति से ऊपर रखा है। यों भी कहा जा सकता है कि शौच के अन्तर्गत यह सारी साधना है।

विज्ञ पाठकों को यह बताने की जरूरत नहीं है कि जैसे शौच के अन्तर्गत सारे यम नियम हैं, वैसे ही यम-नियमों अन्तर्गत राज योग के अन्य छै अंग हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह छै अन्य अंग इसी साधना के अन्तर्गत इस प्रकार आ जावेंगे—

आसन—ब्रह्मचर्य—अखंड शक्ति (न्याय)

प्राणायाम—ब्रह्मचर्य—अखण्ड शक्ति (न्याय)

प्रत्याहार—अपरिग्रह—अखंड प्रवाह (प्रेम)

धारणा—स्वाध्याय—अखण्ड जगत् (सत्य)

ध्यान—सत्य—अखण्ड जीवन (सत्य)

समाधि—ईश्वर प्राणिधान—अखण्ड आत्मा (सत्य)

आसन और प्राणायाम शरीर को स्वस्थ रखने और उसकी शक्ति बढ़ाने के लिये हैं, इसलिये दोनों ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रत्याहार में दुर्वासनाओं को इकट्ठा करना, रोक कर उन्हें दूर रखना होता है, जो अपरिग्रह की व्याख्या में आ जाता है। धारणा में तर्क, प्रमाण, श्रद्धा आदि साधनों द्वारा तत्व ज्ञान पर सुदृढ़ निष्ठा जमानी होती है, यही कार्य स्वाध्याय का है। ध्यान में इष्टदेव के माध्यम द्वारा उच्च से उच्च आध्यात्मिक गुणों की प्रतिमा की समीपता प्राप्त की जाती है। सत्य, अखण्ड जीवन के अन्तर्गत भी आध्यात्मिक गुणों की सर्वोच्च कल्पना करते उसके सन्निकटता स्वीकार करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। संसार में वास्तविक सत्य क्या है, इसे ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं जान सकता। पर हम अपनी बुद्धि के अनुसार आध्यात्मिक गुणों की पवित्रतम कल्पना कर सकते हैं, उसे सत्य कहते हैं। इसलिये ध्यान सत्य का ही एक भाग है। समाधि, ईश्वर में तल्लीन होना आत्मा का परमानन्द उपलब्ध करना एक ही बात है। आत्मा-परमात्मा एक ही वस्तु है, केवल दो नामों से ही उसे पुकारते हैं। परमात्मा ध्यान में तल्लीन होने की समाधि ईश्वर प्राणिधन कहलाती है।

राजयोग की एकान्त साधना का कर्मयोग में परिवर्तन करने का यह सत्य योग है अथवा यों कहिये कि राज योग की आत्मा कर्मयोग के वस्त्र पहनकर सत्य योग के नवीन रूप में संसार में अवतार ले रही है।

श्रम योग की साधना

सृष्टि के साथ ही "श्रम" की भी रचना प्रजापति ने की है! सृष्टि रचना के समय—

"सहयज्ञा प्रणां सृष्टवा पुरोवाच प्रजापति

प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञायोजनों की व्यवस्था के निमित्त मनुष्य मात्र को 'कर्म' करते रहने अर्थात् "श्रम" शील बने रहने का ही अनुदेश दिया था। "यज्ञ" और कुछ नहीं, वरन् हमारे शुभ कर्म ही हैं व शुभ कर्म श्रम के ही—पर्याय हैं इससे "श्रम" का स्थान सृष्टि के अस्तित्व के लिये एक अनिवार्य तत्व के रूप में हैं।

मनुष्य शरीर ही एक ऐसा शरीर है, जिसमें कार्य करने की अद्भुत क्षमता प्रभु ने दी है। कुछ जीवों यथा—साँप, हाथी, कछुआ, कौआ आदि को छोड़कर मनुष्य सबसे अधिक दीर्घजीवी प्राणी है। औसतन १०० वर्ष की हमारी आयु होती है, इतनी बड़ी आयु के साथ ही दैवी उपहार की तरह उसे श्रम करने की क्षमता भी अद्भुत मिली है। एक मनुष्य २४ घण्टों में से ८ घण्टे आराम आदि के बाद १६ घण्टे काम करता रहता है इनमें से ८ घण्टे तो आजीविकोपार्जन की दृष्टि से व शेष ८ घण्टे व्यक्तिगत व पारिवारिक कामों में लगाता है। इस प्रकार अन्य प्राणियों की तुलना में दुगना 'श्रम' करने की क्षमता उसमें निहित है।

यह इतना सारा चमत्कार 'श्रम' का तो है परन्तु मात्र 'श्रम' को ही इसका श्रेय नहीं। उसके साथ मनोयोग भी होना चाहिये। "श्रम" तो गधे, घोड़े, बैल, मजदूर भी करते हैं परन्तु उनमें "मन" व "योग" नहीं होता वे मात्र यन्त्रवत् अपना श्रम करते रहते हैं अतः उनके श्रम को इस श्रम से भिन्न करना होगा। मानव द्वारा जो 'श्रम' किया जाता है व उसमें जो मानव मस्तिष्क लगता है, उस श्रम को हम उस प्रगति का श्रेय देते हैं। 'श्रम' में मन-मस्तिष्क के 'योग' को ही 'श्रमयोग' कहा जा सकता है।

मन-मस्तिष्क के चमत्कारी संस्थान की महिमा तो अवर्णनीय है। इसकी रचना ऐसी बुद्धिमत्ता के साथ हुई है कि जिस ओर भी मनोयोग लगा दिया जाय उधर ही चमत्कार होने लगता है। संसार में जो अनेकों विचित्रतायें, विलक्षणतायें एवं विशेषतायें लक्षित हैं उनके मूल में मानवीय आकांक्षा, अभिरुचि एवं तत्परता ही काम करती है। मानव मन के इस मनोयोगपूर्ण श्रम का ही यह प्रतिफल हम देख रहे हैं कि प्रकृति की अनेकानेक शक्तियाँ यथा-अग्नि, जल, वायु, विद्युत, अणु आदि मनुष्य ने अपने अधीन कर ली हैं व अपने आपको इतना शक्तिशाली बना लिया है कि मनुष्य को इस सृष्टि का स्वामी ही मानने को बाध्य होना पड़ता है। अब तक की हुई प्रगति व आगे की सम्भावनाओं को देखते हुये यह कहा जा सकता है, "मानवीय मस्तिष्क एक जीता जागता जादू है। "जादूगर भी अपने मनोयोग से व अपनी कला से ऐसा चमत्कार दिखाता है, जिससे ऐसा लगने लगता है कि उसका काम जादू है परन्तु वास्तव में वह है उसकी जीवन कला—उसका मनोयोग व श्रम।

हर तरह का श्रमयोग नहीं है, हमें 'श्रम' में मानव मन को नियोजित रखते हुये पूर्ण तल्लीनता, उत्साह व पूरे मनोयोग से अपने अभीष्ट की—प्राप्ति के लिये उद्योग करना होगा। तभी तो वह श्रम श्रमयोग की श्रेणी में आ सकेगा। अपने अभीष्ट की प्राप्त के लिये अपने मन बुद्धि एवं शक्ति को तथा समस्त चित्त-वृत्तियों को एक ही ओर लगा देने से जो कर्म होगा वह 'कर्मयोग' हुआ व इस कर्म में,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रम जुड़ा हुआ रहा तो वह श्रमयोग हुआ। मनुष्य के लिये पूरे मनोयोग से कर्म अथवा श्रम करना ही भगवान् ने पूजा माना है। "योगः कर्मसु कौशलम्"—में भगवान् ने श्रमयोग की ओर ही संकेत किया है कि हम अपने लिये निर्धारित कार्य अपने पूरे मनोयोग से करते जायं तो यही पूजा है, यही योग है।

एक किसान जो दिन भर गर्मी-सर्दी में अपने खेत पर श्रम करता है, एक मजदूर जो कारखाने में अपने पूरे मन व मस्तिष्क से काम करता है, एक वैज्ञानिक जो अपनी प्रयोगशाला में अपने मन व मस्तिष्क को श्रम में निगोजित करता है वह सब श्रमयोग है, कर्मयोग है, भगवान् की पूजा है, उपासना। सृष्टि संचालन, शरीर संचालन के लिये यह श्रमयोग इतना अनिवार्य तत्व है।

भगवान् भुवन भास्कर अपने श्रम व कर्म में तनिक देरी कर दें, ढिलाई कर दें तो अनर्थ हो जाय, थोड़ी देर के लिये बिजली चली जाय तो जन-जीवन ठप्प हो जाय। अतः प्रत्येक मनुष्य यदि आलस्य या प्रमादवश क्षण भर को कर्म विमुख हो, श्रम से जी चुरा ले तो पूरी व्यवस्था बिगड़ने का डर रहता है। इस सृष्टि का हर जीवधारी इसका एक आवश्यक अंग है चाहे छोटा हो या बड़ा हम सब घड़ी के पुर्जे हैं। यदि एक छोटे से पुर्जे ने भी काम करना बन्द कर दिया तो पूरी घड़ी बन्द हो जाती है।

इधर कुछ समय से 'श्रम' की गरिमा की अवहेलना सी हो रही है। 'श्रम' में 'शरम' महसूस होती है, परन्तु ऐसा आलस्य, प्रमाद सा अज्ञान अधिक घर करता गया तो हमारी प्रगति अवरुद्ध होना निश्चित है। आलस्य की बढ़ती हुई प्रवृत्ति श्रम से जी चुराने की आदत हमें ऐसी स्थिति में ले जायेगी, जहाँ जीवन जीना भी कठिन होगा। प्रगति की किसी भी दिशा में अग्रसर होने के लिये सबसे पहला साधन 'श्रम ही है। जो जितना परिश्रमी होगा, उतना ही उन्नतशील होगा। आलस्य व प्रमाद हमारे जीवन सूर्य के लिये राहू-केतु की तरह 'ग्रहण' हैं। इस ग्रहण की छाया मात्र से हमारा जीवन अंधकारमय हो जावेगा, अतः हमें श्रम के प्रति जागरूकता का भाव लिये आलस्य-प्रमाद से संघर्ष कर उन्हें दूर ही रखना होगा।

चलते रहना—श्रम की ओर गतिशील होना ही प्रगति है, बैठे रहना तो अवनति के गर्त में गिरना है। हमारी सफलता किसी मन्त्र-जाप का प्रतिफल, किसी देव की पूजा का प्रसाद व किसी भगवान् का अनुग्रह नहीं, वरन् हमारी कर्मठता, श्रमशीलता व हमारा मनोयोग ही है। हमारी भुजाओं में रहने वाला श्रमदेव व हमारे मन मस्तिष्क में रहने वाला हमारा विवेक ये दो ही देव ऐसे हैं कि इनकी आराधना से सारी समृद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। श्रम के देवता ने किसी को निराश नहीं किया है। श्रम व मनोयागे के इन दो देवताओं की पूजा व्यर्थ नहीं जाती। हम इन दो देवताओं को पूजें व दो असुरों—आलस्य व प्रमाद जो राहू-केतु हैं—को दूर रखें तो हमें अपने कर्म में सफलता अवश्य मिलेगी।

हमें जीवन विकास के मूल तत्वों की ओर ही अपने को केन्द्रित करना होगा। ईश्वर के दिये शरीर और मन को हम सुव्यवस्थित रूप से ऐसा नियोजित करें कि निरन्तर श्रम व कर्म होता रहे व एक क्षण का समय भी व्यर्थ न जाय, जो श्रम हम करें वह भी ऐसा हो कि श्रम भी निष्फल न जाय, व्यर्थ न जाय। मनोयोगपूर्वक रुचि से जो भी श्रम करें ऐसा करें कि उससे एक निराली ही छटा बिखरे। सजीव "श्रम' चाहे छोटे प्रकार का ही क्यों न हो वह श्रमिक के व्यक्तित्व व गौरव को बढ़ाने वाला होता है। सफलता की सीढ़ी चढ़ने में जो सफल हुये हैं उनका यही तरीका था, हम भी परिश्रमी बनें, काम को रुचिपूर्वक मन लगाकर, बिना आलस्य, प्रमाद के एक भी क्षण गँवायें करें कि हमारा "श्रम"—"योग" बन जाये तो अष्टसिद्धि नवनिधियाँ हमारा भी वरण करेंगी। आलस्य व प्रमाद में समय गँवाने वालों पर कृपा होगी राहू-केतु की। श्रम योगियों पर कृपा होगी—सफलता की,—उत्कर्ष की, कारण कि जहाँ भगवान् कृष्ण के रूप में 'मनोयोग" है—जहाँ अर्जुन के रूप में "श्रम" है, जहाँ अर्जुन व कृष्ण के विचारों में साम्य है, जहाँ कृष्ण सम्मत अर्जुन है—जहाँ कर्त्तव्य कर्म में, सत्कर्म में सद्भाव सम्पन्न मनोयोगमय श्रम अर्थात् श्रमयोग है, वहीं विजय है, वहीं सफलता है, वहीं भगवान् है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर्यवेक्षण योग की साधना, ध्यान धारणा

पीला और नीला रंग मिलाकर हरा रंग बनता है। हरे रंग का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं। यदि इस सम्मिश्रण को बदल दिया जाय तो स्थिति दूसरी बन जायेगी। पीला लाल से मिलकर नारंगी बन जाता है। इसी प्रकार जीव भी एक सम्मिश्रण है। वह शरीर के साथ घुला रहता है तो प्राणी या जीव कहलाता है। उस पर प्रकृति का बड़ा भाग शरीर के ऊपर आवरण आच्छादन की तरह चढ़ा होता है, इसलिये वह अपने आप को शरीर मानता रहता है और उसी की सुख-सुविधा को प्रधान रूप से ध्यान में रखता है। लिप्सा और लालसायें उसे घसीटती रहती हैं। इन्द्रियों के रस उसे ललचाते रहते हैं, मन की तरंगें गहरे नशे की तरह उस पर छाई रहती हैं। सामान्यतया यही स्थिति एवं व्याख्या है औसत जीवधारी की।

किन्तु यह सामान्य नहीं असामान्य, स्वाभाविक नहीं, अस्वाभाविक स्थिति है। वैसी जैसे नदी में बहते हुये रीछ को किसी अनजाने में तैरकर उस कम्बल को लूट लाने का प्रयास किया था और तैरते हुये समीप पहुँचने पर रीछ ने उसे पकड़ लिया था। प्रयत्न करने पर भी उसे छोड़ नहीं रहा था। दोनों गुत्थम-गुत्था हो रहे थे। किनारे पर खेड़ा साथी यह सब देख रहा था। उसने यह दृश्य देखा तो आवाज लगाई. कि कम्बल पकड़ में नहीं आता तो उसे छोड़ दो और लौटकर आ जाओ। कम्बल के साथ गुथे हुये आदमी ने कहा मजबूरी आ गई। मैं तो कम्बल को छोड़ता हूँ पर यह कम्बल ही मुझे नहीं छोड़ता। किसी ने किसी को छोड़ा नहीं आखिर दोनों ही डूब गये।

शरीर घोड़ा है और आत्मा सवार। घोड़े पर सवार बैठा हो तो यह स्वाभाविक है किन्तु जब सवार पर घोड़ा लद ले तब कैसा विचित्र लगेगा। नाव आदमियों को पार लगाती है पर यदि वही नाव आदमियों के सिर पर लदे तो कैसा अजीब लगेगा ? शरीर की प्रभुता और आत्मा की पराधीनता में ऐसी ही विलक्षणता है जिसके हम सब दर्शक ही नहीं भुक्तभोगी भी हैं। असमंजस इसी द्विविधा का रहता है। शरीर के सहारे सन्मार्ग पर चलते हुये जीवधारी को अपना लक्ष्य पूरा करना था, पर होता उल्टा है। आने के समय खाली हाथ नंगे शरीर आता है, पर जाते समय पापों का पिटारा और पश्चात्ताप लदा होता है।

स्थिति को कैसे बदला जाय ? समय रहते कैसे सँभाला जाय ? उसका उपाय एक ही है कि अपना विकृत दृष्टिकोण बदला जाय। शरीर के और प्राणी के सम्बन्धों में जो अवांछनीय भ्रान्ति लद गई है उसे मिटाया जाय। उसे मिलना परमात्मा के साथ था और जिस प्रकार लोहा पारस को छूकर सोना बनता है, उसी प्रकार लघु से विभु, तुच्छ से महान् और नर से नारायण बनना था। पर बन गया कुछ ऐसा जिसे देखकर दया भी आती है और हँसी भी।

रंगों के मिश्रण का उदाहरण आरम्भ में इसी विसंगति को देखते हुये दिया था, नारंगी रंग की शाल ओढ़नी थी तो पीले का लाल के साथ सम्मिश्रण करना था। नीले के साथ मिल जाने से सर्वथा दूसरी स्थिति हो गई।

शरीर और जीव का सम्बन्ध जिस प्रकार जुड़ गया है उसे शोचनीय ही कहना चाहिये। वह तो ऐसा ही हो गया जैसे कि किसी पुरुष का किसी स्त्री के साथ विवाह हो जाय और अपना घर छोड़कर सुसराल में जोरू का गुलाम बनकर रहे। मालिक को नौकर के यहाँ नौकर रहना पड़े और दासानुदास कहलाना पड़े।

स्थिति में परिवर्तन लाना आवश्यक है जिसके साथ जुड़ना चाहिये उसको उसी का साथी अनुयायी बनकर रहना चाहिये। आत्मा परमात्मा का अंश है। उसकी शोभा उसी के साथ रहने में है। पुष्प की शोभा देवता के चरणों में चढ़ने में ही है। कीचड़ की नाली में जा पड़ने से नहीं। मनुष्य के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या यही है कि उसका योग परमात्मा के साथ होना चाहिये न कि सुविधा के लिये मिले हुये उपकरण औजारों का गट्ठा सिर पर लादे लादे- फिरने में।

स्थिति को वास्तविक बनाने के लिये जो प्रयत्न करने होते हैं, उनमें से एक पर्यवेक्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग भी है। इसी को कहते हैं, सरसरी निगाह से देखते रहने की अपेक्षा उसे गम्भीर वैज्ञानिक दृष्टि से देखना। सामान्य मनुष्य संसार को एक मेला समझकर बाल बुद्धि से कौतुक, कोतूहल की तरह देखते रहते हैं। किन्तु जिन्हें सूक्ष्म-दृष्टि मिली है, वह उसी दृश्य में से अनेकों काम की बातें जान लेते हैं और कई उपयोगी शिक्षायें एवं प्रेरणायें साथ लेकर वापस लौटते हैं। इसी को वैज्ञानिक दृष्टि कहते हैं। वैज्ञानिक सूक्ष्म बुद्धि होते हैं। उनकी पर्यवेक्षण क्षमता पैनी और गहरी होती है। सामान्यों और असामान्यों के बीच यही अन्तर रहता है।

पर्यवेक्षण योग, इस विडम्बना से निवृत्ति पाने का अच्छा तरीका है। उसका विधान भी बहुत सरल है। शिथिलीकरण मुद्रा (शरीर और मन को पूरी तरह ढीला छोड़ देना) की स्थिति का सामान्य अभ्यास जब हो जाये तो उसे कुछ और गहरा करना चाहिये। गहराई इस भावना तक ले जानी चाहिये कि जीव अपने आपको शरीर से सर्वथा पृथक् हो जाने की स्थिति अपने को अनुभव करे। जीव को किसी बहुत ऊँचे पर उड़ने वाले वायुयान पर सवार होकर अपनी वस्तुस्थिति का, संसार के वास्तविक स्वरूप का निरीक्षण पर्यवेक्षण करना चाहिये।

ऊँचे आकाश में गरुड़ पक्षी की तरह देखना चाहिये कि अपना शरीर मृत स्थिति में पड़ा है। कुटुम्बी लोग उसकी अन्त्येष्टि की तैयारी कर रहे हैं। इस कृत्य को करते समय वे रोते, कलपते भी हैं। पर कुछ ही समय उपरान्त वे अपने-अपने ढंग से स्वावलम्बी हो जाते हैं और कुछ ही महीनों बाद ऐसी स्थिति आ जाती है, जिसमें वे एक प्रकार से भूल ही जाते हैं। यदा-कदा ही नाम लेने की जरूरत पड़ती है। मोह के बन्धनों से सभी स्वजन परिजन छुट्टी पा लेते हैं।

अब और आगे बढ़ा जाय, कितने ही जन्मों की ऐसी ही कल्पना की जाय, जिसमें अगणित बार जन्मना-मरना पड़ा। अनेक सम्बन्धी कुटुम्बियों के साथ संयोग बिछोह हुआ। जन्मते समय खुशी और मरते समय रंज मनाया गया। सम्बन्धों में कटुता एवं मिठास भी चलती रही और अन्त में सिनेमा बन्द होने की तरह घंटी बजी और चमकते-दमकते हाल में अंधेरा छा गया। अन्य योनियाँ तो मात्र भोग योनि ही हैं पर मनुष्य जीवन कर्म योनि भी है। कर्मों का अवलोकन किया गया तो प्रतीत हुआ कि सार्थक कम ही बन पड़ा, जो किया गया वह या तो निरर्थक था या अनर्थ। प्रतिफल हाथों-हाथ नहीं भुगते जाते। वे पीछे के लिये प्रारब्ध बनते रहते हैं। स्वर्ग-नरक के रूप में या पीड़ा-व्यथाओं के रूप में जो भुगतना पड़ता है। उस संचय की गठरी लेकर ही हर बार चलना पड़ा और चिरकाल तक उस कर्मफल का त्रास सहना पड़ा।

यह निषेधात्मक पक्ष हुआ अब उसी स्थिति में जीव को गरुड़ बनकर बहुत ऊँचे आकाश में उड़ते हुये यह भी देखा जाय कि शरीर की घनिष्ठता घटाकर उसे परमात्मा के साथ जोड़ दिया जाय और उनके अनुशासन में चला जाय, सान्निध्य में रहा जाय तो कितने आनन्द का रसास्वादन करने को मिलता है। महामानव, ऋषि एवं देवताओं की स्थिति में रहने अथवा और असंख्यों का भला करने का अवसर मिलता है।

दोनों स्थितियों की अच्छाई, बुराई सोचते हुये शरीर से अलग होने की भावस्थिति से ही यह निर्णय करना चाहिये कि दोनों में से कौन-सी स्थिति का चुनाव श्रेयस्कर है उपयुक्त हो उसे वरण कर लिया जाय। उसी आधार पर बिताने का प्रण करते हुये शिथिलीकरण मुद्रा समाप्त करके शरीर में लौट आया जाय और जो ज्ञान लाभ उस स्थिति में मिला, उसे शेष जीवन में कार्यान्वित किया जाय। इस पर्यवेक्षण योग को धारण नित्य नियमित रूप में करते रहने पर मनुष्य उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है जो प्रत्येक का लक्ष्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीस दीयै यदि गुरु मिले तो भी सस्ता जान

सद्गुरु की प्राप्ति—एक दिव्य वरदान

सद्गुरु की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं। मनीषियों ने निरन्तर यही कहा है कि आत्मिक प्रगति के लिये गुरु की सहायता आवश्यक है। इसके बिना आत्म-कल्याण का द्वार खुलता नहीं। साधना सफल होती नहीं। सामान्य जीवन-क्रम में माता, पिता और गुरु के देव माना गया है और उनकी अभ्यर्थना समान रूप से करते रहने का निर्देश किया गया है।

जिस सद्गुरु का माहात्म्य वर्णन शास्त्रकारों ने किया है, वह वस्तुतः मानवी अन्तःकरण ही है। निरन्तर सद्शिक्षण और उर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना इसी केन्द्र तत्व में सम्भव है। बाहर के गुरु शिष्य की वास्तविक मनःस्थिति का बहुत ही स्वल्प परिचय प्राप्त कर सकते हैं अस्तु उनके परामर्श भी अधूरे ही रहेंगे। फिर कोई बाहरी गुरु हर समय शिष्य के साथ नहीं रह सकता, जबकि उसके सामने निरूपण और निराकरण के लिये अगणित समस्यायें पग-पग पर क्षण-क्षण में प्रस्तुत होती रहती हैं। इनमें से किसका किस प्रकार समाधान किया जाये ? इसका मार्गदर्शन करने के लिये किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं रहा जा सकता भले ही वह कितना ही सुयोग्य क्यों न हो ? सुयोग्य व्यक्ति अपने गज से सबको नाप सकते हैं और ऐसी सलाह दे सकते हैं, जो उन्हीं के लिये फिट बैठती। दूसरों की स्थिति में भिन्नता रहने से परामर्श का स्तर भी बदल जाता है—यह अन्तर कौन करे ? इसे केवल अपना अन्तःकरण ही कर सकता है क्योंकि भीतरी और बाहरी परिस्थितियों की वास्तविक जानकारी जितनी अपने आपको हो सकती है, उतनी और किसी को नहीं।

अपने अन्तःकरण को निरन्तर कुचलते रहने—उसकी पुकार को अनसुनी करते रहने से आत्मा की आवाज अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाश देते रहने वालों को ही दुर्बुद्धिग्रस्त और दुष्कर्मलिप्त पाया जाता है अन्यथा सजीव आत्मा की प्रेरणा सामान्य स्थिति में इतनी प्रखर होती है कि कुमार्ग का अनुसरण कर सकना मनुष्य के लिये संभव ही नहीं होता। यह आत्मिक प्रखरता ही वस्तुतः सद्गुरु है इसी का नमन, पूजन और परिपोषण करना गुरु भक्ति का यथार्थ स्वरूप है।

गुरु-दीक्षा इस व्रत धारण का नाम है कि "हम अन्तरात्मा का अनुसरण करेंगे।" ऐसा निश्चय करने वाला व्यक्ति मानवोचित चिन्तन और कर्तृत्व से विरत नहीं हो सकता, जैसे ही अचिन्त्य चिन्तन मनःक्षेत्र में उभरता है वैसे ही प्रतिरोधी देवतत्व उसके दुष्परिणामों के सम्बन्ध में सचेत करता है और भीतर ही भीतर एक अन्तर्द्वन्द्व उभरता है। यदि मनःचेतना को कुचल-कुचल कर मूर्च्छित न बनाया गया हो तो वह इतनी प्रखर होती है कि अचिन्त्य चिन्तन के साथ विद्रोह खड़ा कर देती है और उस अवांछनीय विजातीय तत्व के पैर उखाड़कर ही दम लेती है।

शास्त्रकारों ने सद्गुरु का वन्दन करते हुये उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी है। परमानन्ददायक परब्रह्म कहा है। यह उपमा किसी व्यक्ति विशेष के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकती, भले ही वह कितना ही सुयोग क्यों न हो ? यह वर्णन विशुद्ध रूप से परिष्कृत अन्तःकरण के लिये किया गया है। गुरु को गोविन्द से बढ़कर मानने की मान्यता अन्तरात्मा को परमात्मा का उपलब्धि आधार समझने के लिये प्रतिष्ठापित की गयी है। निरन्तर सत्परामर्श देने के लिये अहर्निश साथ रहना उसी के लिये सम्भव है। अपनी वस्तुस्थिति को समझने और तदनुरूप प्रगति पथ पर आगे बढ़ने का क्रम निर्धारण कर सकना उसी के लिये सम्भव है। अस्तु सद्गुरु की उपमा ऐसी परिष्कृत और प्रखर अन्तरात्मा को ही दी गयी है, जो अवांछनीयता का डटकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिरोध खड़ा कर सके और अकर्म में उद्यत उन्मुक्त हाथी जैसे दुस्साहस को जंजीरों में जकड़कर उलटा टाँग सके।

व्यक्ति विशेष को गुरु मानने की भी आवश्यकता पड़ती है, पर उसका कार्य सद्गुरु की पहचान करा देना, उसका भक्त-उपासक बना देना भर है। इतने भर से उसकी आवश्यकता पूरी हो जाती है। यात्रा पूरी करने में टाँगों की ही प्रधान भूमिका रहती है, लाठी तो सहारा भर देती है। सद्गुरु हमें पार उतारते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिये शरीरधारी गुरु भी अपने ढंग की आरम्भिक किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करते हैं। इसलिये पूजन-वन्दन उनका भी किया जाता है।

अध्यात्म साधना के क्षेत्र में प्रगति करने के लिये प्रत्यक्ष गुरु का सहयोग नितान्त आवश्यक है। राम और लक्ष्मण का युग्म ही लंका विजय में समर्थ हुआ था। महाभारत की सफलता कृष्ण और अर्जुन के मिलन से सम्भव की थी। छात्र कितना ही परिश्रम करे, बिना शिक्षक के मौखिक या लिखित ज्ञान दान के बिना उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकने में समर्थ नहीं होता। कला, शिल्प, विज्ञान, चिकित्सा जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों के विद्यार्थी मात्र मौखिक ही नहीं क्रियात्मक व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। इसके बिना वे अपने विषय में निष्णात्-पारंगत नहीं हो सकते।

गुरु और शिष्य मिलकर यही प्रयोजन करते हैं। कान में मन्त्र फूँक देना या कर्मकाण्ड विधि-विधान बता देने से काम नहीं चल सकता। उन्हें अपनी शक्ति का एक अंश भी देना पड़ता है। इस अनुदान के बिना आत्मिक प्रगति के पथ पर बहुत दूर तक नहीं चला जा सकता। पहाड़ों की ऊँची चढ़ाई चढ़ने के लिये लाठी का सहारा लेना पड़ता है। छत पर चढ़ने के लिये सीढ़ी का अवलम्बन चाहिये। यही प्रयोजन आत्मिक प्रगति के पथ पर चलने वाले पथिक के लिये उसका मार्गदर्शक एवं साथी सहयोगी पूरा करता है। गुरु की आवश्यकता इसी प्रयोजन को पूर्ण करने के लिये पड़ती है।

माता के उदर में रखे बिना, अपना रक्त-मांस दिये बिना, दूध पिलाये बिना भ्रूण की जीवन-प्रक्रिया गतिशील नहीं हो सकती। बालक भोजन, वस्त्र आदि की सुविधायें स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता, उसे इसके लिये अभिभावकों की सहायता अभीष्ट होती है। छात्र अपने आप पढ़ तो सकता है, पर उसे पुस्तक, फीस आदि का खर्च पिता से और शिक्षण सहयोग अध्यापक से प्राप्त करना पड़ता है। इसके बिना उसका शिक्षा क्रम मात्र एकाकी पुरुषार्थ से नहीं चल सकता। माता-पिता अपनी सन्तान का पालन-पोषण करते हैं, वे बच्चे बड़े हो जाने पर अपने बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी उठाते हैं। यही क्रमानुगत परम्परा चलती रहती है। अध्यात्म मार्ग की प्रगति-प्रक्रिया भी इसी प्रकार चलती है। गुरु अपने शिष्य को अपनी तप पूँजी प्रदान करता है, तदुपरान्त शिष्य भी उसे अपने लिये दाब कर नहीं बैठ जाता वरन् उस परम्परा को अग्रगामी रखते हुये अपने छात्रों की सहायता करता है।

यों धर्म के दस लक्षणों और यम-नियमों के दस योग आधारों का पालन करते हुये कोई भी व्यक्ति सहज सरल रीति-नीति से जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। न इसमें किसी गुरु की आवश्यकता है न शिष्य की। राजमार्ग पर सही पैरों पर चल सकने वाला व्यक्ति मील के पत्थरों को देखते-गिरते यथास्थान पहुँच सकता है, पर जिसे उस यात्रा के समीपवर्ती अद्भुत स्थलों को देखना, जानना और वहाँ मिलने वाली उपलब्धियों से लाभान्वित होना हो, उसे उस क्षेत्र से परिचित और उपलब्ध हो सकने वाली वस्तुओं को देने-दिलाने में कुशल किसी अनुभवी सहयोगी की आवश्यकता पड़ती है। यदि यह सहयोग न मिल सके तो फिर यात्रा चलती रहती है, पर वह नीरस अतिरिक्त उपलब्धियों से रहित एक गतिशीलता मात्र रह जाती है। अध्यात्म पथ में प्रगति करते हुये हर्षोल्लास का आनन्द लेते चलना हो, तो फिर कुशल सहयोगी की सहायता अनिवार्य ही हो जायेगी। गुरु-शिष्य का सम्मिलन-सम्मिश्रण उसी आवश्यकता की पूर्ति करता है।

मेडीकल कालेज में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में वह सब कुछ लिखा है, जो वहाँ पढ़ाया जाता है अथवा डाक्टर बनने के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो जानना चाहिये किन्तु सर्जरी में कोई छात्र तब तक निष्णात् नहीं हो सकता, जब तक कि उसे उस तरह की व्यावहारिक शिक्षा कुशल सर्जन के तत्वावधान में न मिले। यों आपरेशन की सारी प्रणाली चित्रों सहित पुस्तकों में लिखी रहती है फिर भी प्रत्यक्ष पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता बनी ही रहती है। इन्जीनियरिंग, कला, संगीत, युद्ध विद्या, रसायन आदि के बारे में भी यही बात है। ऊँची कक्षाओं की बात छोड़िये, बाल कक्षा के बालकों के हाथ सचित्र बाल पोथी थमा देने पर भी वे अक्षर और अंक तब तक नहीं याद कर पाते, जब तक कि अध्यापक का प्रत्यक्ष सहयोग उन्हें प्राप्त न हो। फिर आत्मिक प्रगति जैसे प्रत्यक्ष अप्रचलित और दुरूह विषय का प्रशिक्षण तो एकाकी बन ही कैसे पड़ेगा ?

रामकृष्ण परमहंस बनने के लिये जन्म-जन्मान्तरों की कठोर साधना अभीष्ट है, पर विवेकानन्द बनना सरल है। समुद्र बनना कठिन है, पर उसका पानी लेकर आकाश में बादल की तरह उड़ने लगना सरल है। समर्थगुरु रामदास बनने के लिये जन्म भी कठिन गति और तलवार की धार पर चलने जैसी साधना करने का साहस सामान्य व्यक्तियों के पास नहीं होता। शिवाजी के रूप में एक नगण्य से व्यक्तित्व वाले बालक का विकसित हो जाना भी सरल है। पारसमणि बनना कठिन है, पर लोहे का उसे छूकर सोना बन जाना सरल है। चाणक्य जैसी अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व कर सकने वाली सत्ता बन सकना हर किसी का काम नहीं। पर एक दासी पुत्र का दिग्विजयी सम्राट बनना सरल है। बुद्ध जैसी प्रतिभायें कभी-कभी ईश्वरीय इच्छानुसार अवतरित होती हैं, पर उनकी छाया में अशोक, आनन्द, अंगुलिमाल, आम्रपाली आदि असंख्य व्यक्ति लघुता की परिधि लाँघते हुये महत्ता का वरण कर सकते हैं। गांधी कभी-कभी ही उत्पन्न हो सकते हैं, पर उनका अनुगमन करने वाले राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, लोकनेता और ऐतिहासिक महापुरुषों की पंक्ति में अपनी गणना सहज ही करा सकते हैं।

आत्मिक प्रगति की उपलब्धियाँ भौतिक प्रगति की तुलना में असंख्य गुनी सामर्थ्य सम्पन्न और हर्षोल्लासमय हैं। उन्हें प्राप्त कर सकना मानव जीवन की सबसे बड़ी और सबसे महान सफलता है, जो इस दिशा में बढ़ सका समझना चाहिये हर दृष्टि से कृतकृत्य हो गया।

इस मार्ग पर चलने के इच्छुक साधक को अनुभवी और सही मार्गदर्शक की आवश्यकता अनिवार्य रूप से जुटानी पड़ती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि कोई विदूषक गुरु पद का प्रहसन रचे न बैठा हो और अपने साथ-साथ अनुगमन कर्ता को भी न डुबो रहा हो। सही मार्ग दर्शन की तलाश में निकले हुये आत्मपथ के पथिक को जहाँ श्रद्धालु होना चाहिये, वहाँ सतर्क भी अन्यथा इस धूर्तता के युग में किसी अहेरी के जाल में फँसकर प्रगति तो दूर जो पास में था उसे भी गँवा बैठेगा। जिन्हें, समर्थ, आत्मबल सम्पन्न और अनुभवी गुरु का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिल गया, तो समझना चाहिये कि आत्मिक प्रगति के लिये एक सशक्त अवलम्बन प्राप्त हो गया। ऐसे गुरु न केवल शिष्य का साधनात्मक मार्गदर्शन करते हैं वरन् अपनी शक्ति का एक अंश देकर साधक को आत्मबल से अनुग्रहीत करते हैं। साधना ग्रन्थों के अलंकारिक वर्णनों में उस आदान-प्रदान की प्रक्रिया को ही 'शक्तिपात' नाम से सम्बोधित किया गया है।

गुरु द्वारा अपनी शक्ति को हस्तान्तरित करने शक्तिपात द्वारा शिष्य की क्षमताओं को विकसित करने की घटनाओं का उल्लेख योग ग्रन्थों में अनेकों स्थानों पर मिलता है। पहले योग मार्ग पर चलने, साधना पथ पर बढ़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति एवं साधक के मन में यह जिज्ञासा उठती है कि शक्तिपात का स्वरूप क्या है ? उसकी प्रक्रिया क्या है ? इस प्रक्रिया में वैज्ञानिकता का अंश कितना है ? शक्तिपात की घटनायें यदि सच हैं तो क्या प्रत्येक व्यक्ति ऐसे समर्थ व्यक्ति, व्यक्तियों महापुरुषों से यह अनुपम उपहार प्राप्त कर सकता है ? यदि ऐसा सम्भव है, तो उसका स्वरूप क्या है ? सामान्य व्यक्ति इसकी परख किस प्रकार कर सकता है ? आदि ऐसे प्रश्न हैं, जो विचारणीय हैं। साधन मार्ग की ओर उन्मुख हर साधक यह जानने का इच्छुक होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेकानन्द संचयन पुस्तक में उल्लेख मिलता है कि रामकृष्ण की अलौकिक शक्ति के संचार का अनुभव विवेकानन्द को हुआ है। उस अवधि में उन्हें दिव्य अनुभूतियाँ हुईं, जो वर्णनातीत हैं। इसी प्रकार का प्रसंग योगानन्द के जीवन चरित्र एवं आटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी को पढ़ने पर भी मिलता है। श्रीमाताजी एवं अरविन्द की पुस्तकों में भी इसी प्रकार का वर्णन आता है। यह पढ़कर प्रत्येक के मन में वास्तविकता जानने की इच्छा होती है, जो उचित है और स्वाभाविक थी।

गुरु-शिष्य परम्परा में शक्ति-पात की यथार्थता पर शक नहीं किया जा सकता। गुरु के अनुदानों को पाकर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य महापुरुषों की श्रेणी में जा पहुँचे, इन प्रसंगों से पुराण इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं, पर प्रचलित भ्रान्तियों ने शक्तिपात के स्वरूप को ऐसा बना दिया है, जिससे सामान्य व्यक्ति दिग्भ्रान्त हो जाये। शक्तिपात के नाम से तथाकथित गुरुओं ने ऐसे जाल-जंजाल खड़े किये हैं, जिन्हें देखकर कोई इसी व्यक्ति भटक सकता है, अतएव इसके वास्तविक स्वरूप को समझना आवश्यक है।

साधना पथ में गुरुवरण करना होता है। 'गु' का अर्थ है—अन्धकार, 'रु' से अभिप्राय है—प्रकाश। जो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चले उसे गुरु कहते हैं। गुरु भी दो हैं। एक तो अपने अन्तरात्मा के रूप में बैठा प्रेरणा प्रदान करता रहता है। दूसरा वह जिसे व्यक्ति के रूप में वरण करते हैं। महत्ता दोनों की ही है। मानवी दृष्टि स्थूल है। इस कारण वह सूक्ष्म आत्म प्रेरणाओं को नहीं समझ पाती। आत्मबल को जगाने का भी काम गुरु ही करता है, अपने आत्मबल द्वारा वह शिष्य में ऐसी प्रेरणायें भरता है, जिससे वह सद्मार्ग पर चल सके। साधना मार्ग के अवरोधों एवं विक्षोभों के निवारण में गुरु का असाधारण योगदान होता है। मानवी सत्ता असीम सामर्थ्यों से युक्त है। सम्भावनायें अनन्त हैं, पर जब तक यह आत्मबोध न हो जाये अन्तःशक्ति सम्पन्नता का लाभ मनुष्य को नहीं मिल पाता। गुरु की यही भूमिका होती है। यह शिष्य को अन्तःशक्ति से परिचित ही नहीं कराता वरन् उसे जागृत एवं विकसित करने के हर सम्भव उपाय भी बताता है। उसकी समर्थता का लाभ साधक को आत्मबल एवं मनोबल के रूप में मिलता है, जो साधक को अवांछनीयताओं से लड़ने अन्तःविकारों को उखाड़ने की सामर्थ्य देता है।

गुरु का यह अनुदान शिष्य अपनी आन्तरिक श्रद्धा के रूप में उठाता है। जिस शिष्य में आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति जितनी अधिक निष्ठा होगी, वह गुरु के इस अनुदान से उतना ही अधिक लाभान्वित होता है। प्रत्येक शिष्य अपनी श्रद्धा पूँजी के अनुरूप उसे प्राप्त करता है। समर्थ गुरु के अनुग्रह इसी रूप में बरसते हैं, जिनको प्राप्त कर शिष्य अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है तथा व्यक्तित्व सम्पन्न बनता जाता है। शक्तिपात का यही दर्शन है। यह एक समय साध्य एवं साधन साध्य प्रक्रिया है, जो अपनी श्रद्धा अभिपूरित साधना द्वारा साधक गुरु से प्राप्त करता है। यह एक आकस्मिक क्रिया नहीं है, जिसके द्वारा तत्काल चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। वरन् एक लम्बे समय तक चलने वाली साधना पद्धति है, जिसके अवलम्बन से शिष्य अपनी शक्तियों का विकास करता है। कुसंस्कारों का निष्कासन कर व्यक्तित्व सम्पन्न बनता है।

सद्गुरु का शक्तिपात इसी रूप में होता है। शिष्य को व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने-आत्मबल बढ़ाने के रूप में असामान्य पक्ष भी है, पर वह सर्वसुलभ नहीं। पात्रता के अभाव में संकट भी है। वह किन्हीं-किन्हीं को प्राप्त होती है। जिन्होंने अपनी क्षमता इस स्तर पर विकसित कर ली है कि शक्ति के अवतरण को धारण कर सकें ऐसे व्यक्तियों को अनुदान भी मिलते हैं, पर यह प्रक्रिया उच्चस्तरीय है। सर्वजनीन नहीं। विवेकानन्द, योगानन्द को गुरु का शक्तिपात किस रूप में हुआ था, विवादास्पद प्रश्न है। उन अनुभूतियों का वर्णन कर सकना सम्भव नहीं। पर गुरु के अनुग्रह की फलश्रुति क्या निकली, उनके जीवन में क्या परिवर्तन आया, इससे सभी परिचित हैं। लोहा जिस प्रकार पारस के सम्पर्क में आकर सोना बन जाता है, उसी प्रकार उनके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आया। जन-प्रवाह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बहते हुये ढर्रे के जीवन से मुख मोड़कर वह मार्ग अपनाया, जो कठिनाइयों से भरा था। संघर्षों का सहर्ष आह्वान किया तथा उनसे व्यक्तित्व को इतना परिष्कृत किया, जिससे सभी लोग प्रकाश एवं प्रेरणा ले सकें। विवेकानन्द में रामकृष्ण परमहंस का व्यक्तित्व झाँकता दिखाई पड़ता था। शक्तिपात से समय की क्या अनुभूति हुई ? कैसे दृश्य दिखाई पड़े ? जैसे प्रश्नों से कोई लाभ नहीं। उसकी परिणति क्या हुई महत्त्व इसका है। चरित्र की उत्कृष्टता एवं व्यक्तित्व की समग्रता ही गुरु अनुग्रह की वास्तविक उपलब्धि है। यह जिस भी साधक में जितनी अधिक मात्रा में दीख पड़े समझा जाना चाहिये गुरु का उतना ही अधिक शक्तिपात उस शिष्य में हुआ है।

यही एकांगी चलने वाली प्रक्रिया नहीं है वरन् दोहरी पद्धति है। गुरु के अनुदान बरसाने में शिष्य को अपनी सघन श्रद्धा का आरोपण करना पड़ता है। श्रद्धा की परिणति चरित्र निष्ठा के रूप में होती है। पात्रता के विकास द्वारा ही साधक अनुदानों का लाभ उठा पाते हैं।

गुरु-शिष्य के अन्तर्सम्बन्धों पर टिकी संस्कृति चेतना

आर्ष वाङ्मय में उपनिषदों को विशिष्ट स्थान प्राप्त हैं। वेदों के ही ज्ञान भाग का आख्यान ये हैं। उपनिषद् शब्द का अर्थ है निकट बैठकर दिया गया ज्ञान। तात्विक विवेचन के विषयों पर किया गया रहस्य भरा प्रतिपादन जिस समय गुरु अपने पास शिष्य को बिठाकर समझाते थे, तब वह ज्ञान उपनिषदों के रूप में क्रमबद्ध होकर आया एवं एक विलक्षण सम्पदा बन गया। गुरुसत्ता के रूप में यम एवं शिष्य के रूप में में बैठे नचिकेता का पारस्परिक संवाद कठोपनिषद् की बल्लियों में पंचाग्नि विद्या के रूप में हमारे समक्ष आता है तो आरुणि का अपने पुत्र श्वेतकेतु को दिया गया ब्रह्म विद्या सम्बन्धी वह आख्यान भी जिसमें वह "तत्व मसि श्वेतकेतोः" "तू ही वह चिदानन्द ब्रह्म है" कहकर उस पर पड़ा अज्ञान का आवरण हटाते हैं। यही औपनिषदिक परम्परा, जिसमें जिज्ञासु शिष्य की तत्वज्ञान सम्बन्धी जिज्ञासा का समाधान एक ऐसी गुरुसत्ता करती है, जिसने स्वयं उसका अपने जीवन में साक्षात्कार कर लिया हो, हमारी संस्कृति की आदि परम्परा रही है।

गुरु-शिष्य परम्परा ही आदिकाल में ज्ञान सम्पदा का संरक्षण कर उसे श्रुति के रूप में क्रमबद्ध करती आयी है। इसका वर्णन किये बिना साधना प्रसंग तथा संस्कृति का प्रकरण अधूरा रह जाता है। स्वयं भारत को जगद्गुरु की उपमा इस कारण दी जाती रही है कि उसने विश्व-मानवता का न केवल मार्गदर्शन किया ब्राह्मणत्व के आदर्शों को जीवन में उतार कर औरों के लिये वह प्रेरणा स्रोत बना। गुरु व शिष्य के परस्पर महान् सम्बन्धों एवं समर्पण भाव द्वारा अपने अहंकार को गलाकर ज्ञान प्राप्ति की महत्ता का विवरण शास्त्रों में स्थान-स्थान पर मिलता है। सुकरात व उनके शिष्य प्लेटो तथा प्लेटो के शिष्य अलक्षेन्द्र एवं गुरजिएफ व आस्पेन्स्की की परम्परायें तो बाद के विकास की हैं, जैसा कि ऊपर कहा गया। आदिकाल से ही भारतवर्ष में वह परम्परा चली आयी है कि गुरु अपने ज्ञान द्वारा उचित पात्र समझे गये शिष्य पर पड़े अविद्या-अज्ञान के पर्दे को हटायें व उसका उँगली पकड़कर मार्गदर्शन करें।

गुरु कौन व कैसा हो, इस विषय में श्रुति कहती है—**'विशारद' ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रियं गुरुकाश्रयेत्।"**

"श्रोत्रिय" अर्थात् जो ज्ञान से श्रुतियों का शब्द ब्रह्म का ज्ञाता हो, तत्व समझता हो, "ब्रह्मनिष्ठ" अर्थात् आचरण से श्रेष्ठ ब्राह्मण जैसा ब्रह्म में निवास करने वाला हो, परोक्ष साक्षात्कार जो कर चुका हो तथा 'विशारद' अर्थात् जो अपने आश्रय में शिष्य को लेकर उस पर शक्तिपात करेंगे, तो सामर्थ्य रखता हो, आद्य शंकराचार्य के शतश्लोकी के पहले श्लोक में सद्गुरु की बड़ी सुन्दर परिभाषा इस वृत्तान्त में की है।

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम्।

न स्पर्शत्वं तथापिश्रित चरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वा लौकिकोऽपि।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात् "इस त्रिभुवन में ज्ञानदाता सद्गुरु के लिये देने योग्य कोई दृष्टान्त ही नहीं दीखता। उन्हें पारसमणि की उपमा दें तो वह भी ठीक नहीं जँचती। कारण पारस लोहे को सोना तो बना देता है। पर पारस नहीं बना पाता। परन्तु सद्गुरु चरण-युगल का आश्रय करने वाले शिष्य को सद्गुरु निज साम्य ही दे डालते हैं स्वयं अपने जैसा बना देते हैं। इसलिये सद्गुरु की कोई उपमा नहीं।" संत ज्ञानेश्वर ने गीता की भावार्थ दीपिका में लिखा है कि "यह दृष्टि (गुरु की दृष्टि) जिस पर चमकती है अथवा यह करार बिन्दु जिसे स्पर्श करता है" वह होने को तो चाहे जीव हो, पर बराबरी करता है महेश्वर-श्रीशंकर की"। ज्ञानेश्वरी में उनने योगीराज श्री कृष्ण द्वारा अपने शिष्य अर्जुन पर बरसायी अनुकम्पा का वर्णन करते हुये गुरु• का स्तर स्वरूप बता दिया है। वे लिखते हैं, "तब शरणागत भक्त शिरोमणि अर्जुन को उन्होंने अपना सुवर्ण कंकण विभूषित दक्षिण बाहु फैलाकर अपने हृदय से लगा लिया। हृदय-हृदय एक हो गये इस हृदय में जो था, वह उस हृदय में डाल दिया। द्वैत का नाता तोड़े बिना अर्जुन को अपने जैसा बना लिया।"

वस्तुतः गुरु-शिष्य सम्बन्ध इसी स्तर के आध्यात्मिक होते हैं, जिनमें उच्चस्तरीय आदान-प्रदान होता है। शिष्य अपनी सत्ता को अहं को गुरु के चरणों में समर्पित करता है। गुरु शक्तिपात द्वारा—अपनी अनुकम्पा द्वारा उसे ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी बनाता व जीवन मुक्त कर देता है। सम्बन्धों में शारीरिक, मानसिक भावनात्मक, आत्मिक चार प्रकार के वर्णित किये गये हैं। लोकाचार में प्रथम तीन प्रकार के सम्बन्ध तो कहीं भी किसी से भी स्थापित हो सकते हैं किन्तु सिर्फ गुरु से ही आत्मिक स्तर के सम्बन्धों की सम्भावना है।

गुरु के विषय में ऊपर बताया गया। शिष्य के सम्बन्ध में उपनिषद्कार कहता है "समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं" हाथ में समिधा लेकर शिष्ट विनम्रभाव से श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाये। समिधा क्यों ? समिधा अग्नि पकड़ती है। गुरु ज्ञान की ज्योति के रूप में जीती-जागती ज्वाला है। यदि साधक समिधा जैसी पात्रता लेकर जायेगा व स्वयं को उस अग्नि को स्पर्श कर देगा तो ज्ञान की अग्नि में तपकर वह भी ज्ञान का प्रकाश विस्तार करने वाले तन्त्र के रूप में विकसित होगा। भीगी लकड़ी अग्नि में जाकर तो धुआँ ही देती है। ऐसा शिष्य न हो, जिसने अपनी अहंकार रूपी सीलन मिटा दी—स्वयं का तप द्वारा सुखा लिया हो, वही समिधा बन सकता है।

आध्यात्मिक प्रगति के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का यह मानना है कि बिना गुरु के अवलम्बन के यह सम्भव नहीं है। आत्मिक प्रगति का क्षेत्र एक जीवन समर-महाभारत के सदृश है। इसे एक प्रकार से प्रवाह विरुद्ध उपक्रम कहना चाहिये। जनसमुदाय की प्रवृत्तियाँ विचारणायें, इच्छायें, आदतें, गतिविधियाँ प्रायः पेट-प्रजनन में निरत स्वार्थी कुसंस्कारी जैसी ही होती हैं। इस प्रवाह में सामान्य स्तर के व्यक्तित्व नदी में बढ़ने वाले पत्ते, आँधी में उड़ने वाले तिनके सदृश होते हैं। जैसा अधिकांश सोचते व करते हैं, उसी का अनुकरण सामान्य स्तर के लोगों से भी बन पड़ता है। आत्मिक प्रगति के लिये भिन्न स्तर का चिन्तन क्रम अपनाना पड़ता है। इसके लिये कोई न कोई अवलम्बन चाहिये। बिना किसी समर्थ आदर्शवादी व्यक्तित्व के साथ घनिष्टता स्थापित किये ऊपर चढ़ पाना सम्भव नहीं। बेल अपने बलबूते पर नहीं पनपती रह सकती यूँ ही धरती पर फैलकर वह अनगढ़ बन जाती है किन्तु समर्थ वृक्ष का सहारा मिलते ही वह चढ़ती चली जाती है व आकाश चूमने लगती है। ऊँचा उठना एक बड़ा काम है। गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध जाने के लिये बड़ी ताकत की जरूरत पड़ती है। समर्थ गुरु का वरण या गुरु-दीक्षा इसी कारण जरूरी बतायी गयी है। बिना किसी अवलम्बन के अपने बलबूते पूर्व संचित संस्कारों के सहारे कोई ऊँचा उठ सके, यह असम्भव तो नहीं पर अपवाद रूप ही देखा या कहा जायेगा। सामान्यतः आत्मिक उत्कर्ष का प्रसंग आते ही यह कहा जाता है कि उसके लिये ऐसे समर्थ व्यक्ति के साथ घनिष्टता स्थापित की जाये जो उस प्रयोजन को सम्पन्न कर पाने में सक्षम हो, स्वयं उतना तप जिसने किया हो, यही गुरु-वरण है। गुरु-वरण की महिमा शास्त्रों में इतनी बतायी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गयी है कि बिना गुरु वाले व्यक्ति को निगुरा'' नामक निंदक उपाधि देकर अपमानित किया गया है।

गुरु मानवी चेतना का मर्मज्ञ माना गया है। वह शिष्य की चेतना में उलट-फेर करने में समर्थ होता है। गुरु का हर आघात शिष्य के अहंकार पर होता है तथा वह यह प्रयास करता है कि किसी भी प्रकार से डाँट से, पुचकार से, विभिन्न शिक्षणों द्वारा वह अपने समर्पित शिष्य के अहंकार को धोकर साफकर उसे निर्मल बना दें। प्रयास दोनों ओर से होता है तो यह कार्य जल्दी हो जाता है नहीं तो कई बार अधीरतावश शिष्य गुरु को समझ पाने में असमर्थ हो भाग खड़े होते हैं। हमारी आध्यात्मिक परम्परा गुरु प्रधान ही रही है। इसी परम्परा के कारण साधना-पद्धतियाँ भी सफल सिद्ध हुईं। सदा से गुरुजनों ने अपने जीवन में प्रयोग किया है तथा सफल पाने पर सुपात्र साधकों के ऊपर रिसर्च लेबोरेट्री की तरह परीक्षण किया है। उन्हें श्रेष्ठ देवमानव बनाने का प्रयास किया है। गुरु-शिष्य परम्परा ने ही इतने नर-रत्न इस देश को दिये हैं, जिससे हम सब स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

जनार्दन के शिष्य एकनाथ, गहिनीनाथ के शिष्य निवृत्तिनाथ, निवृत्तिनाथ के शिष्य ज्ञानेश्वर, स्वामी निगमानन्द के शिष्य योगी अनिर्वार्य, गोविन्द पाद के शिष्य शंकराचार्य, शंकरानन्द के शिष्य विद्यारण्य, कालूराम के शिष्य कीनाराम, भगीरथ स्वामी के शिष्य तैलंग स्वामी, ईश्वरपुरी के शिष्य महाप्रभु चैतन्य, पूर्णानन्द के शिष्य विरजानन्द, विरजानन्द के शिष्य दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विवेकानन्द व उनकी शिष्या निवेदिता, प्राणनाथ महाप्रभु के शिष्य छत्रसाल, समर्थ रामदास के शिष्य शिवाजी, चाणक्य के शिष्य चन्द्रगुप्त, कबीर के शिष्य रैदास, दादू के शिष्य रज्जब, विशुद्धानन्द के शिष्य गोपीनाथ कविराज, पतंजलि के शिष्य पुष्यमित्र तथा बन्धुदत्त के शिष्य कुमारजीव कुछ नाम हैं, जो इस परम्परा में देव-संस्कृति के पन्नों में पढ़े जा सकते हैं व जिनका जीवन उनके समर्पण भाव से लेकर गुरु के आत्मभाव के प्रसंग अपने आप में अद्‌भुत हैं। युगों-युगों तक ये प्रसंग आत्मिक प्रगति के इच्छुक साधकों को प्रेरणा देते रहेंगे, ऐसी माहात्म्य भरी यह पुनीत परम्परा रही है।

भारतीय संस्कृति में श्रद्धा, जो शिष्य में गुरु के प्रति होनी चाहिये कि बड़ी तर्क सम्मत वैज्ञानिक व्याख्या स्थान-स्थान पर की गयी है। सामान्यतया व्यक्ति का मन-बिखराव लिये होता है। चित्त वृत्तियाँ बहिरंग में रुचि लेने के कारण बिखरी होती हैं। बिखराव को समेटकर मन को समग्र बना लेना-महानता की ओर मोड़ लेना ही श्रद्धा है। इस मन को "इन्टीग्रेटेड माइण्ड'' कहा गया है। इतना होने पर संशय नहीं रहता, पूर्ण समर्पण-विसर्जन-विलय-तादात्म्य हो जाता है। समग्रता का गुरु की चेतना में गीताकार के वचनानुसार विलय कर दिया जाय तो समर्पण पूरा माना जाता है। गीताकार ने कहा है—

मय्ये व मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्वं न संशयः।। ८/१२

"हे अर्जुन ! तू मुझ में ही मन को लगा और मुझ में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरान्त तू मूझ में ही निवास करेगा, इसमें कुछ संशय नहीं है।'' किसी को गुरु से कितना मिला, किसी को अधिक किसी को कम क्यों मिला, इसके मूल में यही कारण है कि जिसने गुरुसत्ता के आदर्शों में मन व बुद्धि को लगा दिया, संशय मन से निकाल दिया, श्रेष्ठता के प्रति समर्पण कर दिया, उसका सारा जीवन ही बदल गया। श्री अरविन्द कहते थे "डू नथिंग ट्राइ टू थिंक नथिंग विह्च इज अनवर्थी टू डिवाइन'' (जो देवत्वधारी सत्ता के योग्य न हो, ऐसा न सोचो, न करो)। श्री रामकृष्ण परमहंस ने सतत् यही कहा कि कामिनी कांचन से दूर परमात्म-सत्ता में मन-बुद्धि को लगाने पर स्वयं ईश्वर गुरु के रूप में आकर मार्गदर्शन करते हैं। वे कहा करते थे कि आज की स्थिति बड़ी विषम है। चारों ओर नकली गुरु हैं। उनकी उपमा श्रीरामकृष्ण ने अपनी शैली में पनेले साँप से दी है, जो मेंढ़क को निगलने की कोशिश में मुँह में तो उसे जकड़ चुका है पर वह भी परेशान है तथा मेंढक भी। साँप छोड़ सकता नहीं, मेंढ़क निगला जा सकता नहीं। आज गुरु व शिष्य दोनों की स्थिति ऐसी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः समर्पण एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति का रूपान्तरण कर देती है व जब श्रेष्ठ गुरु के प्रति यह समर्पण होता है तो व्यक्ति तत्सम हो जाता है। तप संसिद्धि मिल सकती है, किन्तु भगवान नहीं मिल सकता, किन्तु समर्पण से गुरु व भगवान दोनों एक साथ मिल जाते हैं। श्री रामकृष्ण कहते थे—"सामान्य गुरु कान फूँकते हैं, अवतारी महापुरुष-सद्गुरु प्राण फूँकते हैं।" ऐसे सद्गुरु का स्पर्श व कृपा दृष्टि ही पर्याप्त है परम पूज्य गुरुदेव एक ऐसी ही सत्ता के रूप में हम सबके बीच आये। अनेकों व्यक्तियों ने उनका स्नेह पाया, सामीप्य पाया, पास बैठकर मार्गदर्शन पाया, अनेक प्रकार से उनकी सेवा करने का उन्हें अवसर मिला पर जो उनके दक्षिणा मूर्ति स्वरूप को समझकर उनके निर्देशों के अनुरूप चलता रहा, उसे यह सब न भी मिला हो तो भी आत्मिक प्रगति के पथ पर चल पड़ने का मार्गदर्शन मिला। ऐसे व्यक्ति साधना क्षेत्र में ऊँचाइयों को प्राप्त हुये। गुरु जो कहे बिना कोई विकल्प प्रस्तुत किये, बिना कोई तर्क किये उसे करना ही साधना है।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

गुरु के वचन प्रतीत न जेहि,
सपनेहुँ सुख सुलभ न तेहि।

वास्तविकता यही है कि समर्पण भाव से गुरु के निर्देशों का परिपालन करने वालों को जी भरकर गुरु के अनुदान मिले हैं। श्रद्धा की परिपक्वता समर्पण की पूर्णता शिष्य में अनन्त संभावनाओं के द्वार खोल देती है। उसके सामने देहधारी गुरु की चेतना की रहस्यमयी परतें खुलने लगती हैं। इनका ठीक-ठीक खुलना शास्त्रीय भाषा में उनके गुरु के दक्षिणा मूर्ति रूप का प्राकट्य है। जो यह रूप समझ सका, परावाणी को सुन सका, उसे स्थूल का अभाव भी अभाव नहीं प्रतीत होता। गुरु का यह रूप जान लेने पर मौन व्याख्या शुरू हो जाती है। हृदय में निःशब्द शक्ति का प्रस्फुटन होने लगता है। प्रश्न जन्म लेने से पूर्व ही उत्तरित हो जाते हैं। महाशून्य से उत्सर्जित चित्तशक्ति का निर्झर खुल जाता है। स्वामी विवेकानन्द की दो शिष्यायें थीं, एक नोबुल (निवेदिता), दूसरी क्रिस्टीन (कृष्ण प्रिया)। स्वामी जी से निवेदिता तो तरह तरह के सवाल पूछतीं परन्तु कृष्ण प्रिया चुप रहतीं। स्वामी जी ने उनसे पूछा—"तेरे मन में जिज्ञासायें नहीं उठतीं ?" उनने कहा—"उठती हैं पर आपके जाज्वल्यमान रूप के समक्ष वे विगलित हो जाती हैं।" (Everything melts before that eternal radiance) "मेरी जिज्ञासाओं का मुझे अन्तःकरण में समाधान मिल जाता है।"

गुरुतत्व की गरिमा एवं समर्पण की महत्ता

मानवी सत्ता असीम सामर्थ्यों से युक्त है। सम्भावनायें अनन्त हैं, पर जब तक यह आत्मबोध न हो जाय, अन्तःशक्ति सम्पन्नता का लाभ मनुष्य को नहीं मिल पाता। अन्तःक्षेत्र में प्रतिष्ठित हुई दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्ति का समन्वय कुसंस्कार ही वह परत है, जो न साधना को सिद्ध होने देती है और न उस निमित्त श्रद्धा जमने-मन लगने देती है। कुसंस्कार ही हैं जो यमदूतों की तरह पग-पग पर त्रास देते रहते हैं, व्यक्तित्व को हेय बनाते हैं। आत्मबल सम्पन्न गुरु का वरण इसलिये किया जाता है। अपने आत्मबल द्वारा वह शिष्य में ऐसी प्रेरणायें भरते हैं, जिससे वह सद्मार्ग पर चल सके। साधनामार्ग के अवरोधों एवं विक्षोभों के निवारण में गुरु का असाधारण योगदान होता है, वह शिष्य को अन्तःशक्ति से परिचित ही नहीं कराते, वरन् उसे जाग्रत एवं विकसित करने के हर सम्भव उपाय बताते और प्रयास करते हैं। उनके यह अनुदान शिष्य अपनी आन्तरिक श्रद्धा के रूप में उठाता है। जिस शिष्य में आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति जितनी अधिक निष्ठा होगी, वह गुरु के अनुदानों से उतना ही अधिक लाभान्वित होगा।

आत्मचेतना के उत्कर्ष में सहयोग देने एवं पूर्णता प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करने के कारण गुरु की महान् महिमा महत्ता से समुचा आर्षवाङ्मय भरा पड़ा है। ज्ञानेश्वरी गीता ७/२२-२५ में संत ज्ञानेश्वर ने कहा है—"जिन सद्गुरु ने मुझे इस संसार सागर से पार उतारा, वे मेरे अन्तःकरण में विराजमान हैं। इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण विवेक के प्रति मेरे मन में विशेष अति आदर है। जिस प्रकार नेत्रों में अंजन लगाने से दृष्टि को अपूर्व बल प्राप्त होता है और तब मनुष्य भूमि के अन्दर दबी पड़ी महानिधियों को देखने में सक्षम होता है अथवा जिस प्रकार चिन्तामणि हाथ में आने पर सभी प्रकार के मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं ज्ञानदेव कहता हूँ कि गुरुदेव श्री निवृत्तिनाथ जी की कृपा से मैं पूर्णकाम हो गया हूँ। इसीलिये कहता हूँ कि गुरु भक्ति करनी चाहिये क्योंकि जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी सींचने से शाखायें और पल्लव अपने आप हरे हो जाते हैं अथवा जिस प्रकार अमृत-रस का पान करने से समस्त रसों का आनन्द मिल जाता है, उसी प्रकार सद्गुरु वरण से साधक के समस्त इष्ट मनोरथ सिद्ध होते हैं।"

गुरु का अर्थ है अंधकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर ले जाने वाला मार्गदर्शक। स्कन्दपुराण-गुरुगीता प्रकरण में गुरु शब्द की व्याख्या करते हुये कहा गया है।

गुकारस्त्वन्धकारः स्याद् रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञान ग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः।।

अर्थात् 'गु' शब्द का अर्थ है—अन्धकार और 'र' का अर्थ है—तेज। अज्ञान का नाश करने वाला तेज रूप ब्रह्म गुरु ही है, इसमें संशय नहीं। उपनिषद् आदि ग्रन्थों में धर्मशास्त्रों में गुरुगरिमा का वर्णन करते हुये गुरु को अज्ञान से छुड़ाने वाला, मुक्ति प्रदाता, सन्मार्ग एवं श्रेय पथ की ओर ले जाने वाला पथ प्रदर्शक बताया गया है। गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर है। वही परब्रह्म है। गुरुकृपा के अभाव में साधना की सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी।

विभिन्न शास्त्रों में सद्गुरु की महिमा-महत्ता असाधारण बताई गई है। गुरुवरण की परम्परा वैदिककाल से लेकर अद्यावधि चलती रही है। जैन और बौद्धों ने हिन्दुओं की तरह गुरु परम्परा को भी स्वीकार किया। अद्वैतवादियों एवं बौद्ध मार्ग के अनुयायियों का कहना है कि मनुष्य को अपने आप पर निर्भर होना होगा, कोई दूसरा सहायता नहीं कर सकता। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि विशुद्ध अद्वैतवादी भी वास्तव में गुरु पर निर्भर करते हैं और बौद्धधर्म का प्रधान मन्त्र तो बुद्ध के शरणागत होने पर जोर देता है। दूसरे साधना मार्गों के लिये—विशेषकर उन मार्गों के लिये जो गीता की तरह भगवान के सनातन अंश के रूप में व्यक्तिगत जीवन के सत्य को स्वीकार करते हैं अथवा जो यह विश्वास करते हैं कि भगवान और भक्त दोनों सत्य हैं, गुरु की सहायता पर उसे एक अनिवार्य साधन समझकर निर्भर किया गया है, ऐसा महर्षि अरविन्द का मत है।

प्राचीनकाल में भारतीय परम्परा में गुरु प्रायः ब्राह्मण हुआ करते थे। मनु एवं चाणक्य ने उन्हें ही गुरु पद प्रदान किया है जो ब्राह्मण हों। ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मपरायण एक ऐसी सत्ता जो उत्कृष्टताओं का, सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय हो। जिसके पदचिन्हों पर चलकर, जिसके द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन को अपनाकर साधक या शिष्य अपना जीवन भी वैसा ही बना सके। ब्राह्मण परम्परा में इस प्रकार के सद्गुरु प्रायः गृहस्थ ही हुआ करते थे। गौतम, भरद्वाज, वशिष्ठ, अत्रि आदि सप्तऋषियों से लेकर मध्यकाल एवं आधुनिककाल तक यह परम्परा अनवरत् रूप से चली आई है। यद्यपि इस वर्ग में वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों का भी अभाव न था। जैन और बौद्ध गुरु तो सभी संन्यासी थे, जो वैदिकी की ही भाँति जाति और वर्ण से परे थे। यद्यपि बुद्ध के सभी प्रमुख शिष्य प्रव्रज्या धर्म अपनाने से पूर्व ब्राह्मण थे, जैसे—सारिपुत्र, मौदगलायन, पुष्कर, कश्यप आदि। इसी परम्परा में आगे नागार्जुन और अश्वघोष आदि हुये। मध्यकाल में गुरु को भगवान के समतुल्य माना जाता था। कारण था उनका उत्कृष्ट आदर्श चरित्र, उच्चस्तरीय व्यक्तित्व एवं परमार्थपरायण जीवन।

मनुस्मृति २/१४२ में उल्लेख है कि यह गुरु ही है जो शिष्यों में सुसंस्कार डालता और आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। उनके चरित्र और समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करता है। चेतना का स्तर ऊँचा उठाने और प्रतिभा, प्रखरता को आगे बढ़ाने की आवश्यकता गुरुवरण से ही पूरा होती है। गुरु केवल मार्गदर्शन ही नहीं करते, वरन् अपनी तपश्चर्या, पुण्य-सम्पदा एवं प्राण ऊर्जा का एक अंश देकर शिष्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पात्रता और क्षमता बढ़ाने में योगदान करते हैं। वह समय की दीर्घा को भी कम करते हैं और उसे बहुत ही कम समय में अभीष्ट लाभ की सिद्धि में सहायक होते हैं। अतः प्रज्ञा को जाग्रत करने एवं पूर्णता प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुँचाने में सद्गुरु की असाधारण भूमिका होती है। श्रेय पथ के निर्धारण के साथ ही असंमजसों का द्विविधाओं का निराकरण वही करते हैं। आत्मिक क्षेत्र का परिशोधन—परिष्कार कर सकने वाली गुरु गरिमा की जितनी महिमा गायी जाये, कम है।

महर्षि अरविन्द का कहना है कि सच्चे सद्गुरु भगवान की प्रतिमूर्ति हैं। जब भगवान को पथ प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया जाता है, तब उन्हें गुरुरूप में स्वीकार किया जाता है। श्रद्धा-विश्वास की प्रगाढ़ता ही मनुष्य का सही पथ-प्रदर्शन करती और पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाती है। अपने बारे में उल्लेख करते हुये वे लिखते हैं कि—"मैं अपने आंतरिक जीवन की ओर अपने पहले निर्णायक मोड़ के लिये ऐसे व्यक्ति का ऋणी हूँ, जो बुद्धि, शिक्षा और क्षमता में मुझ से कम थे और किसी भी प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण और श्रेष्ठ नहीं थे। परन्तु जब मैंने उनके पीछे एक शक्ति देखी और सहायता के लिये उनकी और मुड़ने का निर्णय किया तो मैंने सम्पूर्णतः अपने को उनके हाथों में छोड़ दिया और सहज स्वाभाविक निष्क्रियता के साथ उनके मार्गदर्शन का अनुसरण किया।" इस समर्पण से वे स्वयं आश्चर्यचकित थे। "इसका परिणाम हुआ कि अनेकानेक मौलिक प्रकार के रूपान्तरकारी अनुभवों का तांता बँध गया मुझ से कहा गया है कि मैं भविष्य में समर्पण भाव की उसी पूर्णता के साथ अपने आपको अन्तरस्थ गुरु के हाथों छोड़ दूँ, जिस पूर्णता के साथ मैंने मानव प्रणाली के हाथों छोड़ा था।" आत्मिक प्रगति के लिये समर्पण वस्तुतः प्रधानतत्व है।

श्रेष्ठ गुरु के प्रति समर्पण सभी प्रकार के समर्पणों से श्रेष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य केवल निराकार को ही नहीं, वरन् साकार को, केवल अपने अन्दर विद्यमान भगवान को ही नहीं, बाहर विद्यमान विराट् परमात्म चेतना को समर्पण करता है। इससे साधक को अपने आत्मा में पीछे हटकर ही नहीं जहाँ कि अहंभाव बैठा है, वरन् अपनी व्यक्तिगत प्रकृति में भी जहाँ कि वह शासन करता है, अहं का अतिक्रमण करने का सुयोग प्राप्त होता है। वह समग्र भगवान के प्रति गीतोक्त—"समग्रं माम् मानुषी तनुं आश्रितम्" के प्रति भी पूर्ण समर्पण के संकल्प का चिन्ह है। यथार्थ आध्यात्मिक समर्पण तभी सम्भव हो पाता है, जब गुरु को सर्व भावों परात्पर, निर्व्यक्तिक, सव्यक्तिक में स्वीकार किया जाये। गुरु-शिष्य का गठबन्धन वह श्रेष्ठतम गठबन्धन है, जिसके द्वारा मनुष्य भगवान से जुड़ता और सम्बन्ध स्थापित करता है। गुरु या भगवत्कृपा दोनों एक ही हैं और यह तभी चिरस्थायी बनती हैं, जब शिष्य कृपाप्राप्ति की स्थिति में हो। श्रद्धासिक्त समर्पण ही इसका मूल है। इस रहस्य को समझने के लिये शास्त्रकारों ने प्रबल प्रयत्न किये हैं। यहाँ तक कि गुरु को गोविन्द से बढ़कर बताया है। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु महेश की उपमा दी है और उनकी कृपा को मुक्ति का कारण बताया है।

बौद्धधर्म ग्रन्थ "विशुद्धि भाग" १७-११६ में कहा गया है कि—"जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति हाथ पकड़कर ले जाने वाले व्यक्ति के अभाव में कभी सही मार्ग से जाता है तो कभी कुमार्ग से। उसी प्रकार संसार में संसरण करते हुये अज्ञानी मनुष्य पथ प्रदर्शक सद्गुरु के अभाव में कभी पुण्य करता है तो कभी पाप। गुरुगरिमा से जुड़कर ही वस्तुतः मनुष्य द्विजत्व धारण करता है और सामान्य मानव में ऊँचा उठकर महामानव देवमानव बनता है।"

गुरुतत्व के सान्निध्य—अवलम्बन से कितने ही सामान्य व्यक्तियों को असाधारण महापुरुषों की श्रेणी में जा पहुँचने का अवसर मिला है, इन प्रसंगों से पुराण, इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं महात्मा बुद्ध के अनुग्रह से अनाथ पिण्डक, विशाखा, गौतमी, आनन्द, बिंबिसार, अशोक, हर्षवर्धन, कुमारजीव, नागार्जुन जैसे कितने ही महानता के उच्च शिखर पर पहुँच गये। अंगुलिमान, अंबपाली जैसे कितने ही दलित मानव कायाकल्प कर महामानव बन गये। ईसा का सान्निध्य पाकर एण्ड्रयू, पीटर, जेम्स, जॉन, मैथ्यू,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साइमन, सेंटपाल जैसे नगण्य से व्यक्तित्व ईसाई धर्म के महान् प्रकाश स्तम्भ बन गये। आद्यशंकराचार्य से जुड़ने पर पद्यपाद, हस्तामलक, भारती, मण्डनमिश्र जैसे व्यक्तित्व कहाँ से कहाँ जा पहुँचे, इतिहासवेत्ता इसे भलीभाँति जानते हैं। समर्थ एवं शिवाजी, प्राणनाथ और छत्रसाल, चाणक्य और चन्द्रगुप्त, चैतन्यदेव एवं जगाई-मधाई, रामकृष्ण-विवेकानन्द तथा बिरजानन्द एवं दयानन्द आदि की आत्मिक घनिष्ठता यदि न बन पड़ी होती, तो यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कौन-सा पक्ष घाटे में रहता ? बेल, वृक्ष से लिपटकर, नाला गंगा में मिलकर, बूँद समुद्र में घुलकर क्या से क्या हो जाती है, इस तथ्य को प्रायः सभी जानते हैं। शिष्य का गुरु के प्रति श्रद्धा व समर्पण भाव उसे आत्मिक प्रगति के पथ पर तो प्रशस्त करता ही है, दैवी अनुदानों की वर्षा भी होने लगती है।

गुरु वरण का श्रद्धासिक्त अभ्यास ही अध्यात्म क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रथम सोपान है। जो गुरुतत्व के प्रति जितनी श्रद्धा जिस मात्रा में जगा सका, समझना चाहिये उसके लिये आत्मिक विभूतियाँ उपलब्ध करने का स्वनिर्मित राजमार्ग मिल गया। मार्गदर्शक सत्ता गुरु ही है, जो साधना संग्राम में शिष्य की सहायता करते और कृष्ण की तरह अर्जुन को महाभारत लड़ने को आग्रह करते हैं। जब वह तैयार हो जाता है, समग्ररूप से समर्पण कर देता है, तो वह उसका रथ चलाने, घोड़ा हाँकने, रास्ता बताने और विजय दिलाने के लिये वचनबद्ध हो जाते हैं। इसके लिये साधक को ही अग्रगामी बनना पड़ता है। गाण्डीव उठाने और "करिष्ये वचनं तव" का संकल्प लेने के उपरान्त ही सामान्य सा पाण्डु पुत्र भगवान का अनन्य सहचर अर्जुन बनता है। यही है गुरु के अनुदानों से लाभान्वित होने और साधना से सिद्धि की पृष्ठभमि। चरित्र की उत्कृष्टता एवं व्यक्तित्व की समग्रता ही गुरु अनुग्रह की वास्तविक उपलब्धि है। यह जिस भी साधक में जितनी अधिक मात्रा में दीख पड़े, समझा जाना चाहिये गुरु की उतनी ही अधिक कृपा बरसी, अनुदान-वरदान मिला।

स्पष्ट है कि मानव जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु गुरुतत्व कितना जरूरी है ? शास्त्रों में उल्लेख है कि—"यदि कोई सद्गुरु न मिले तो आत्मबल को गुरु मानकर उसके माध्यम से अपनी समीक्षा करनी चाहिये व मार्गदर्शन लेना चाहिये।

सद्गुरु भीतर से जगायें

विकट समस्यायें तो कभी-कभी ही आती हैं और उनके समाधान का परामर्श वकील, डाक्टर विशेषज्ञों की तरह कभी-कभी ही प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। बड़े काम-काजों में भी पड़ौसियों से पूछ-ताछ कर अपने असमंजस का समाधान करते रहते हैं, किन्तु छोटी-बड़ी ऐसी द्विविधायें पग-पग पर आती रहती है। जिनके सम्बन्ध में निर्णय लेने का काम स्वयं ही सम्भालना पड़ता है।

कुछ गोपनीय बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें सहसा निकटवर्ती लोगों के सम्मुख भी विस्तारपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कारण कि ऐसे भारी भरकम पेट वाले दुर्लभ होते चले जाते हैं, जो दुर्बलताओं को सुनकर उन्हें पचा सकें। अपने तक ही सीमित रख सकें। ओछेजनों के लिये बड़ी बात को पचाना कठिन पड़ता है। बड़ी बात से तात्पर्य है दूसरों की दुर्बलता और अपनी प्रशंसा जब तक इन्हें उजागर नहीं कर लिया जाता तब तक चैन नहीं पड़ता।

पूर्ण तो केवल परमात्मा है। जन साधारण में गुणों के साथ दोष भी बहुत पाये जाते हैं। जो भूलें हुई हैं, उन्हें मन में दबाये रहने से मनःक्षेत्र में ऐसी ग्रन्थियाँ बनती हैं, जो चुभे काँटे की तरह कसकती रहती हैं, उन्हें उजागर कर देने से चित्त हल्का होता है। प्रायश्चित कर लेने पर तो यह भार और भी अधिक हल्का होता है। इसके लिये ऐसा व्यक्ति कहाँ मिले जो भरासे का हो ? गैर-भरोसे के व्यक्ति को दूसरों के छिद्र हस्तगत हो जाने पर उसकी क्षुद्रता तब तक चैन से नहीं बैठती, जब तक वह अनेकों के सामने उस गोपनीयता को प्रकट नहीं कर देती। एक का कौतुक दूसरे का संकट बनता है। गोपनीय छिद्रों के उजागर हो जाने पर वह चर्चा का विषय बनते और प्रतिष्ठा गिराते हैं, इससे अनेक प्रकार की प्रत्यक्ष और परोक्ष हानियाँ सहनी पड़ती है। इसलिये समझदार लोग अपने गोपनीय रहस्यों को अपनी जानकारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक ही सीमित रखे रहते हैं। उन्हें दूसरों के सम्मुख प्रकट नहीं करते। फिर भी वह घुटन तो बनी ही रहती है, कि इस निगले हुये कुकर्म को भयानक प्रारब्ध बनने से पूर्व ही उगल दिया जाय। वमन विरेचन जैसी क्रिया द्वारा उसे निकाल बाहर किया जाये। इतने पर भी यहाँ का स्वरूप निर्धारण स्वयं करते नहीं बन पड़ता। मूसल जैसे पाप के प्रायश्चित में सुई जितना प्रायश्चित करने की बात ही कृपणता स्वीकार करती है। बड़ा परमार्थ करके उसका निराकरण करने के लिये अभ्यस्त कृपणता बड़े कदम उठाने के लिये सहमति प्रदान नहीं करती। सत्परामर्श दे सकने योग्य कोई उदारचेत्ता मित्र बन नहीं पाया हो तो ऐसे अवसरों पर परामर्शदाता का अभाव खटकता है।

सच्चा शुभचिन्तक और सत्परामर्शदाता का न मिल सकना भी एक दुर्भाग्य है, पर इसका निवारण, समाधान कैसे किया जाये ? अपने इर्द-गिर्द तो बौने लोगों की भरमार ही रहती है। उनमें से अधिकांश ऐसे होते हैं, जो मित्र बन कर शत्रु जैसी घात लगाते हैं। सच तो यह है कि इन दिनों मित्रता बढ़ाना साँप पालने जैसा जोखिम भरा है। विश्वास का—भावुकता का शोषण करने वाले ही अधिकतर लोग पाये जाते हैं। फिर मित्र किसे कहें ? कहाँ मिले ? न मिलने पर उसकी अभाव पूर्ति कैसे हो ?

यह यदा-कदा बड़ी अड़चनें सामने आयें, पर उस समाधान की चर्चा ही जिन्हें अपनी सामान्य बुद्धि खोज नहीं पाती। कभी-कभी मनुष्य चौराहे पर खड़ा होता है। सभी दिशाओं को जाने वाली सड़कें खड़ी दीखती है, सभी में लुभावने आकर्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें से किन्हें पकड़ा, किन्हें छोड़ा जाये ? यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। जिसमें अधिक लाभ होता है, उसमें, अनीति अपनानी पड़ती है। जो सही प्रतीत होता है, उसमें बढ़-चढ़ कर वैभव बँटोरने सस्ती वाहवाही का बालू जैसा महल खड़ा होने का अवसर कम ही होता है। फिर अधिक लाभ की तरफ हाथ बढ़ाया जाय या नीति निष्ठा को अपनाकर स्वल्प संतोषी बनने का साहस जुटाया जाये ? चयन की बेला अति कठिन होती है, उसके लिये न्याय-निष्ठा जज जैसी निष्पक्षता चाहिये। चुनाव का फैसला सही रीति से लेने वाले, विवेकवान जैसी ईमानदारी, इसे कहाँ पाया जाय ? उसकी सहायता के बिना ऐसा कठोर निर्देश कहाँ से ले लें जो दल-दल में फँसने से बचा सके। सही राह दिखा सकें। भले ही वह आरम्भ में कड़ुई ही प्रतीत क्यों न होती हो ?

इसके अतिरिक्त सामान्य जीवनक्रम में भी पग-पग पर द्विविधा उत्पन्न होती रहती है। आदर्तो के प्रवाह में बहकर आगत के संकट में फँसने की अपेक्षा यह सोचना, देखना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि ऐसा कदम न उठे, जिसके लिये पीछे पछताना पड़े। उदाहरण के लिये दावत में परोसे गये व्यञ्जनों को सामने देखकर चटोरापन यह कहता है कि इसमें से प्रिय वस्तुओं की जितनी जल्दी जितनी अधिक मात्रा में सम्भव हो उन्हें उदरस्थ कर लेना चाहिये। भले ही पीछे पाचनतन्त्र की दुर्बलता के कारण स्वास्थ्य क्षेत्र में कोई बड़ा विग्रह खड़ा होता जाये। इसी बीच विवेक की एक झीनी किरण यह भी परामर्श देती है कि सामने प्रस्तुत अम्बार में से मात्र उन्हीं को उतनी मात्रा से ग्रहण किया जाय जो आसानी से पच सकें। कोई संकट खड़ा न करें। परामर्श दोनों तरह के सामने है। इनमें से स्वीकारा किसे जाता है ? इसके लिये ऐसे शुभचिन्तक की आवश्यकता है, जो उपयोगिता और औचित्य का पक्षधर परामर्श ही नहीं कठोर निर्देशने भी दे सके। उथले परामर्श आमतौर से अनसुने कर दिये जाते हैं, कान उन्हीं पर दिया जाता है जो किसी प्रभावी सहयोगी द्वारा कड़ककर दिये गये हों।

भारतीय तत्वज्ञान में किसी भी द्विविधा के उपस्थित होने पर सद्गुरु से परामर्श प्राप्त करने का विधान है। पर ऐसा गुरु कहाँ मिले ? जो घड़ी-घड़ी पग-पग पर उपेक्षित होने वाले असमंजसों का तत्काल निराकरण कर सके। कई बार इतना समय भी नहीं होता कि दूरवासी किसी गुरु नामधारी तक अपनी समस्या सही रूप में पहुँचायी जाये और उसका उत्तर पाने के लिये प्रतीक्षारत बैठे रहा जाये। दैनिक जीवन में कई-कई बार ऐसे असमंजस सामने आते हैं, जिसमें लाभ-हानि का, पुण्य-पाप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का, भावी परिणाम का सीधा सम्बन्ध जुड़ा होता है। ऐसे अवसरों पर न सच्चा मित्र उपलब्ध होता है और न गुरु मार्ग-दर्शक। तब किसका आश्रय लिया जाय ? श्रेयपथ का निर्धारण किससे कराया जाय ? जिस प्रकार शरीर और मन सदा साथ रहते हैं, उसी प्रकार सर्वदा सहचर बनकर रहने वाले एक 'सद्गुरु' की आवश्यकता भी समझी गई है। उसे भीतर से भी उगाना और परिपुष्ट करना होता है। इसे दूरदर्शी विवेक कहा जा सकता है, जो उचित अनुचित का निर्णय भी करता है। साथ ही वह अपनी दिव्य दृष्टि से यह भी बताता है कि किस कार्य का परिणाम क्या होना चाहिये। इन सम्भावनाओं पर ध्यान देने वाले व्यक्ति को सच्चे अर्थों में शिष्य या शालीन कहा जा सकता है।

गुरु शिष्य के रूप में एक प्रथा प्रचलन भी चरितार्थ होता रहता है। यह प्रतीक पूजा है, जिसके आधार पर उत्कृष्टता का अवलम्बन करने एवं लक्ष्य तक पहुँचने की बात बार-बार स्मरण कराई जाती रहती है। यों प्रतीक भी कई बार बड़े उपयोगी होते हैं, पर काम तो अपने को ही करना पड़ेगा घड़ी समय की गति का परिचय देती रहती है। उसका उद्देश्य कलाई की शोभा बढ़ाना ही नहीं, यह भी है कि समय के छोटे से छोटे घटक का निरर्थक न जाने दिया जाये। उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करते रहा जाये। यह संकेत सुनते रहने पर भी घड़ी बाँधने वालों में से कितने समय की बर्बादी से बचे रहते हैं यह ठीक से नहीं कहा जा सकता है। दूसरे सज्जनों से समय-समय पर परामर्श प्राप्त करने में हर्ज नहीं। पर सुप्रीम कोर्ट की अन्तिम अदालत तो अपने सद्गुरु को सद्विवेक को ही बताया जाना चाहिये, वही हर घड़ी साथ रह सकता है। मार्गदर्शन के साथ निर्देशन भी करता रह सकता है। जो ऐसा सद्गुरु उगा सके, उन्हीं को सौभाग्यशाली शिष्य कहना चाहिये। वस्तुतः गुरु बाहर रहते हैं और वे सद्गुरु तक पहुँचने का रास्ता बताकर है वहाँ तक पहुँचाकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर देते हैं। इसके बाद 'सद्गुरु' का कार्य आरम्भ होता है, उसका परामर्श ही परम-लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ होता है।

सद्गुरु अन्तःकरण में निवास करता है। इसे निर्मल आत्मा या प्रकाश स्वरूप परमात्मा कह सकते हैं। प्रकाश का अर्थ रोशनी नहीं—सन्मार्ग गामिनी प्रेरणा है, उसे ऋतुम्भरा प्रज्ञा भी कहते हैं। सद्गुरु का उपदेश इसी वाणी—इस भाषा और इसी परिधि में होता है। उनका परामर्श और मार्गदर्शन हमें निरन्तर उपलब्ध रहता है।

बाहर के गुरु अनेक विषयों पर बात कर सकते हैं— पर सद्गुरु की शिक्षा एक ही होती है। अन्धकार से प्रकाश की ओर-मृत्यु से अमृत की ओर—असत् से सत् की ओर चलो। बाहर के गुरु जब तक ही मिलते हैं—उनका ज्ञान सीमित होता है और उनका उपदेश भ्रान्त भी हो सकता है। पर अन्तरात्मा में विद्यमान सद्गुरु हर समय हमारे पास और साथ उपस्थित रहता है। उसका परामर्श हमें हर समय उपलब्ध रहता है।

जब कोई बुरा काम करते हैं तो हृदय काँपता है, मुँह सूखता है, पैर थरथराते हैं, भीतर ही भीतर कोई कोंचता रहता है। कोई देख तो नहीं रहा है—कोई सुन तो नहीं रहा—किसी को पता तो नहीं चल रहा—इन आशंकाओं के बीच वे दुष्कर्म किये जाते हैं। मानो सद्गुरु बराबर रोक रहा है—समझा रहा है और धिक्कार रहा है। यह नीति निर्देशक अन्तरात्मा ही सद्गुरु है।

जब कोई सत्कर्म किया जाता है तो आन्तरिक संतोष अनुभव होता है। किसी भूखे को अपनी रोटी देकर उसकी क्षुधा बुझाई जाये—किसी असहाय रोगी की चिकित्सा व्यवस्था में कुछ समय या धन लगा दिया जाये, अनीति को रोकने में स्वयम् आक्रमण सह लिया जाय तो बाहर से हर्ज और कष्ट उठाते हुये भी भीतर से इतना सन्तोष उल्लास अनुभव होता है कि उसकी तुलना में वह भौतिक क्षति नगण्य ही प्रतीत होगी। यह प्रोत्साहन समर्थन और वरदान अन्तरात्मा का है इसी को सद्गुरु का आशीर्वाद कहना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक हूक एक कसक टीस उठती रहती है कि—आगे बढ़ा जाये, ऊँचा उठा जाये। यह प्रेरणा इतनी प्रबल होती है कि रोके नहीं रुकती। जब अपना देव सोया रहता है, तब उस अमृत को दैत्य हरण कर ले जाते हैं। यहाँ इच्छा धन, ऐश्वर्य, इन्द्रिय भोग, पर सत्ता अहंता बढ़ाने के लिये मुड़ जाती है और मनुष्य इसी बड़प्पन के जंजाल में उलझकर रह जाता है। पर जब सद्गुरु समर्थ होता है तो प्रवाह को अवांछनीयता की ओर से मोड़कर वांछनीयता की दिशा में नियोजित करता है। तब प्रगति की आकांक्षा महानता के अभिवर्धन में लगती है। सद्भावनाओं और सद्प्रवृत्तियों की सम्पदा की महानता की पूँजी है। गुण, कर्म और स्वभाव की उत्कृष्टता इतनी आनन्ददायक और इतनी समर्थ है कि उसे पाकर मनुष्य को स्वर्ग में स्थित देवताओं से बढ़कर अपने आप पर सन्तोष होता है।

सद्गुरु कुमार्गगामिता से रोकता है। अनर्थमूलक चिन्तन नहीं करने देता। कुसंग में अरुचि उत्पन्न करता है। कुत्सित विचारों और भ्रष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क से अरुचि ही नहीं होती वरन् घृणा भी बढ़ती है। शक्तियों के निरर्थक कामों में अपव्यय करने वाला हास-परिहास का मनमौजी सिलसिला रुक जाता है। समय का एक-एक क्षण बहुमूल्य प्रतीत होता है और उसके सदुपयोग की निरन्तर तत्परता बनी रहती है। जब ऐसा परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे तो समझना चाहिये कि सद्गुरु के सच्चे शिष्य हम हो गये। गुरु का कार्य है—मार्ग-दर्शन। शिष्य का कर्त्तव्य है उसका परिपालन। सांसारिक गुरुओं में स्वार्थ और अज्ञान भी बहुत होता है इसलिये उनकी सब बात नहीं मानी जा सकती, पर सद्गुरु का तो हर आदेश शिरोधार्य ही होना चाहिये।

यहाँ एक शंका विचारणीय है कि गुरु स्थूल नहीं, सूक्ष्म किस तरह हो सकते हैं ? एक चलते-फिरते और जीवन व्यापार चलाने के लिये प्रायः सारे कार्य करने वाले शरीरधारी को सूक्ष्म क्यों और क्यों कब माना जा सकता है ? यह ठीक है कि शरीर रूप से गुरु एक स्थूल व्यक्ति हैं, परन्तु गुरु-शिष्य-परम्परा शरीर का सम्बन्ध नहीं हैं, आत्मा का सम्बन्ध है। साधक का जीव गुरु के जीव का शिष्य बनता है। इसीलिये गुरु के शरीर त्याग के पश्चात् भी उसको उनसे निर्बाध प्रेरणा मिलती रहती है। गुरु आत्मरूप हैं, देह रूप नहीं।

शरीरधारी किसी अदृष्ट को सहज ग्रहण एवं प्राप्त नहीं कर सकता, इसी से शरीररूपी कोष के भीतर सच्चिदानन्द स्वरूप गुरु शिष्य के सामने उपस्थित होते हैं। जिस प्रकार वर्णमाला के अक्षर नाम रूपी हीन एवं नाशरहित हैं, परन्तु स्थूल दृष्टि से बोधगम्य किया जाने के लिये उसकी लिपि तैयार की जाती है, जिसमें रूप भी है और मिटाया भी जा सकता है। 'क' का रूप भिन्न-भिन्न भारतीय भाषा में विभिन्न है, परन्तु मूलतः 'क' तो श्रुतिगम्य ध्वनि है।

क्या गुरु कहलाने वाली सभी व्यक्ति ब्रह्म पद प्राप्त ही होते हैं ? क्या उस नाम पर दम्भ या पाखण्ड नहीं फैलाया जा रहा है ? —आदि प्रश्न यहाँ अप्रासंगिक हैं। "जड़-चेतन गुण दोष मय" तो करतार ने किया ही है, कभी दोष की मात्रा अधिक होती है तो कभी गुण की। किन्तु अध्यात्मज्ञान की जिसे एक झलक मात्र भी मिल गयी होती है, उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो जाना आवश्यक है कि परमात्मा उसकी देख-रेख करने वाले हैं और जब एक सच्चे गुरु को उसके पास पहुँचा देना वे आवश्यक समझेंगे तो वैसा संयोग आप ही आप उपस्थित हो आवेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन है—

—बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं सन्ता। ····

—बिनु गुरु दोहि न ज्ञान ·····

—सो कि होइ बिनु हरि भगति। ·····

अतएव जैसे भगवद् कृपा से मगर मच्छ से भरे नालों को कोई पार कर जाता है, उसी तरह भक्त साधक पाखण्डी गुरुओं से बचता हुआ सच्चे गुरु की शरण में जा पहुँचता है। जो अनुभवगम्य है, शब्दों के विस्तार से उसको हृदयंगम कराना दुरुह है।

इसी भाव से हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में गुरु की अलौकिक महिमा गायी गयी है। संस्कृत साहित्य से भक्ति काल के हिन्दी कवियों ने अव्यक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्म के पद पर—और किन्हीं ने उनसे श्रेष्ठतर—आसीन कराया है।

जैसे—**गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।**

गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।

ध्यानमूलं गुरुर्मूर्तिम पूजा मूलं गुरुर्पदम्।

मन्त्र मूलं गुरुवाक्यम् मोक्ष मूलं गुरु कृपा।

गोस्वामी तुलसीदास जी रामायण का प्रारम्भ मात्र गुरु वन्दना से करते हैं। वन्दन भी गुरुदेव का नहीं, उनके पद पद्म परागा का। इतना साहस कहाँ कि गुरुदेव भर की पूजा करें, जब उनके चरण भी नहीं, उसके रज कण में संजीवनी बूटी की महत्ता है, बल्कि जो 'शम्भु तनु विभूति' के समान विमल है। 'मानस' में उस रज कण के अलौकिक गुणों का अवलोकन किया जा सकता है। वे गुरुजी कैसे हैं ?

"कृपा सिन्धु नर रूप हरि।" बल्कि भक्त शिष्य के दृष्टिकोण से उनमें एक विशेषता भी है कि "महा मोह तमपुञ्ज, जासु वचन रविकर निकर।" स्वयं हरि किसी साधक में अज्ञानतम दूर करने की प्रेरणा देते हैं, परन्तु गुरुदेव तो स्वयं सूर्य के समान उसका कारण बन जाते हैं। बल्कि हरि की पहचान करवाने की शक्ति अथवा कला गुरु के पास ही है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।

याम्यां बिना न पश्यन्ति योगिनः स्वान्तस्थमीश्वरम्।।

यहाँ गुरु का एवं शंकर की एक पद मर्यादा तथा एक कार्य भार हो गया है। बिना इन दोनों की कृपा के योगी अपने हृदय में स्थित ईश्वर का भी साक्षात्कार नहीं कर सकते। वस्तुस्थिति का कैसा सच्चा वर्णन है ?

इसी भाव से ओत-प्रोत होकर महात्मा कबीरदास जी ने खुला फैसला करके तर्क के साथ गुरु को गोविन्द से ऊँचा सिद्ध कर दिखाया—

गुरु गोविन्द दोऊ, खड़े काके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविन्द दियो बताय।।

गुरु और गोविन्द यदि किसी अवसर पर एक साथ मिल जाये, तो पहले किनका अभिवादन किया जाय ! अपने प्रश्न का आप ही उत्तर देते हैं कि गुरु का जय-जयकार हो जिन्होंने गोविन्द को प्रत्यक्ष करा दिया। —जिन गुरु की इतनी मर्यादा है, उनके लक्षण भी बताये हैं। ऐसे व्यक्ति गुरु नहीं कहे जा सकते जो—

हरहि शिष्य धन मोहन हरई। सो गुरु घोर नरक महंपरई।

मनीषिणी एनीबेसेन्ट के तथा उनके गुरु श्रीमती मैडम ब्लाडीवात्स्की ने गुरु शिष्य के महत्त्व पर बहुत कुछ लिखा है। भारतीय संस्कृति से परिचित होकर उनने इस महत्त्व को समझा था।

अपना विवेक यदि अनुमति दे गुरु की गरिमा समझने का माद्दा अंदर हो एवं समर्पण भाव से अपना अहं गुरुचरणों में सौंपने को जो तैयार हो, उन साधकों के लिये शास्त्रों का यही संदेश है कि गुरु बड़ी कठिनाई से मिलते हैं, मिले हैं तो उन्हें छोड़ना मत, गुरुता को नमन कर अपना सब कुछ उन्हें अर्पित कर प्रगति के पथ पर चल पड़ना। यही अपेक्षा प्रज्ञापरिकर से इस दैवी अभियान की सूत्र सत्ता करती भी है।

दत्तात्रेय के २४ गुरु

सिद्ध योगियों के अधिराज महर्षि दत्तात्रेय को बहुत बड़ी मात्रा में ज्ञान की आवश्यकता थी। वे मनोविज्ञानशास्त्र के धुरन्धर पण्डित थे, इसलिये जानते थे कि किसी भी ज्ञान को जान लेने मात्र से यह मन की गहरी भूमिका में उतरकर संस्कारों का रूप धारण नहीं कर सकता। एक-एक पैसे की बिकने वाली पोथियों में सत्य बोलो ! धर्म का आचरण करो, लिखा जाता है परन्तु इससे कौन सत्यवादी बन गया है ? किसी ने धर्मात्मा का पद पाया है ? मन को सच्ची शिक्षा देने के लिये अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, इनमें सबसे बड़ा साधन गुरु है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। दत्तात्रेय विचार करने लगे—किसे गुरु बनाना चाहिये ? वे बहुत-से योगी-संन्यासियों को जानते थे, अनेक विद्वानों से उनका परिचय था, सैंकड़ों सिद्ध उनके मित्र थे। तीनों लोकों में एक भी तत्वदर्शी ऐसा न था, जो उन्हें जानता न हो और यदि वे उससे ज्ञान सीखने जाते, तो मना कर देने की क्षमता रखता हो। इनमें से किसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पास ज्ञान सीखने जावें, इस प्रश्न पर बहुत दिनों तक ये सोचते रहे, पर कोई ठीक निर्णय न कर सके। ये सर्वगुण-सम्पन्न गुरु से दीक्षा लेना चाहते थे, पर वैसा कहीं भी कोई उन्हें दिखाई न पड़ रहा था। मनुष्य-शरीर त्रुटियों का भण्डार है। जिसे देखिये, उसमें कुछ न कुछ त्रुटि मिल जायेगी। पूर्णतः निर्दोष तो परमात्मा है। जीवित मनुष्य ऐसा नहीं देखा जाता।

दत्तात्रेय जब सर्वगुण-सम्पन्न गुरु न चुन सके तो उनके हृदयकाश में आकाशवाणी हुई। मन में आत्मा का दिव्य-सन्देश आया कि ऋषि, मूर्ख मत बनो! पूर्णतः निर्दोष और पूर्ण ज्ञानयोग व्यक्ति तुम तीनों लोकों में ढूँढ़ नहीं सकते, इसलिये अपने में सच्चा शिष्यत्व पैदा करो। जिज्ञासा, श्रद्धा और विश्वास से अपने हृदय में पात्रता उत्पन्न करो, फिर तुम्हें गुरुओं का अभाव न रहेगा।• दत्तात्रेय के नेत्र खुल गये, उनकी सारी समस्या हल हो गई। ज्ञान-लाभ करने का जो एक मात्र रहस्य है, वह उन्हें आकाशवाणी ने अनायास ही समझा दिया।

ऋषि का मस्तक श्रद्धा से नत हो गया। उन्होंने दूसरों के अवगुणों को देखना बन्द कर दिया और ज्ञान एवं पवित्रता की दृष्टि से ही संसार को देखने लगे। शिष्य की भावना उनके मानस-लोक में लहलहाने लगी। उन्हें गुरुओं के तलाश करने में जो कठिनाई प्रतीत हो रही थी, यह अब बिल्कुल न रही। अपना मनोरथ पूरा करने के लिये—ज्ञान-लाभ की इच्छा से वे उत्तर दिशा की ओर चल दिये।

घर से निकलते ही उन्होंने रास्ते में जो-जो चीजें देखी उसी से शिक्षा ग्रहण की और पूर्ण ज्ञानवान होकर वापस लौटें। वापसी पर उन परम तेजस्वी अवधूत दत्तात्रेय का दर्शन पाकर राजा यदु ने अपने को धन्य माना और विनयावनत होकर पूछा—"धृष्टता क्षमा करें तो एक जिज्ञासा उपस्थित करूँ ?" अवधूत ने कहा—'राजन् ! जो कहना हो निःसंकोच होकर कहो।"

यदु ने पूछा, "आपके शरीर, वाणी और भावनाओं से प्रचण्ड तेज टपक रहा है। इस सिद्धावस्था को पहुँचाने वाला ज्ञान आपको जिन सद्गुरु द्वारा मिला हो उनका परिचय मुझे देने का अनुग्रह कीजिये।"

अवधूत ने कहा—'राजन् ! सद्गुरु किसी व्यक्ति विशेष को नहीं मनुष्य के गुणग्राही दृष्टिकोण को कहते हैं। विचारशील लोग सामान्य वस्तुओं और घटनाओं से भी शिक्षा-ग्रहण करते और अपने जीवन में धारण करते हैं। अतएव उनका विवेक बढ़ता जाता है। यह विवेक ही सिद्धियों का मूल कारण है। अविवेकी लोग ब्रह्मा के समान गुरु को पाकर भी कुछ लाभ नहीं उठा पाते। दूसरा कोई किसी का हित साधन नहीं करता, उद्धार तो अपनी आत्मा के प्रयत्न से ही हो सकता है।"

"सो हे नर नायक ! मेरे अनेक गुरु हैं। जिनसे भी मैंने ज्ञान और विवेक ग्रहण किया है, उन सभी को गुरु मानता हूँ पर उनमें २४ गुरु प्रधान हैं।"

राजा यदु ने जिज्ञासापूर्वक कहा—"उन २४ सद्गुरुओं का वर्णन करें तो मैं अपने भाग्य को बहुत सराहूँगा।"

दत्तात्रय अवधूत बोले—"हे राजन् ! पृथ्वी, वायु, गगन, जल, यम, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंगा, मधुमक्खी, भौंरा, हाथी, हिरन, पिंगला, वेश्या, कौआ, बालक, स्त्री, लुहार, सर्प, मकड़ी और भृंग यही मेरे चौबीस गुरु हैं।"

उत्सुकतापूर्वक अधिक जानने की इच्छा करने हारे राजा यदु का समाधान करने की दृष्टि से विज्ञानी अवधूत ने और भी कहा—हे पृथ्वीपति ! धूप, शीत, वर्षा को धैर्य पूर्वक सहन करने वाली, लोगों द्वारा मलमूत्र त्यागने और पदाघात करने जैसी अभद्रता करने पर भी क्रोध न करने वाली, अपनी कक्षा और मर्यादा पर निरन्तर नियत गति से घूमने वाली पृथ्वी को मैंने गुरु माला और उसके इन सद्गुणों को सीखा।

अचल होकर न बैठना, निरन्तर गतिशील रहना, संतप्तों को सान्त्वना देना, गन्ध को वहन तो करना पर स्वयं निर्लिप्त रहना, यह विशेषता मैंने पवन में पाई और उन्हें सीखकर उसे गुरु माना।

अनन्त और विशाल होते हुये भी, अनेक ब्रह्मण्डों को अपनी गोदी में भरे रहने वाले, एश्वर्यवान् रहते हुये भी रंचभर अभिमान न करने वाले आकाश का यह गुण मुझे बहुत प्रिय लगा। वही बात स्वयं भी आचरण में लाने का प्रयत्न आरम्भ करते हुये मैंने उसे अपना गुरु वरण किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सबको शुद्ध बनाना, सदा सरल और तरल रहना, आतप को शीतलता में परिणत करना, वृक्ष, वनस्पतियों तक को जीवनदान करना, समुद्र का पुत्र होते हुये भी घर-घर आत्मदान के लिये जा पहुँचना—इतनी अनुकरणीय महानतायें जल में देखी तो उसे गुरु मानना ही उचित समझा।

अभिवृद्धि पर नियन्त्रण करके सन्तुलन स्थिर रखना, अनुपयोगी को हटा देना, मोह के बन्धनों से छुड़ाना और थके हुओं को अपनी गोद में विश्राम देने के आवश्यक कार्य में संलग्न यम को देखा तो उन्हें भी गुरु बना लिया।

निरन्तर प्रकाशवान रहने वाली, ऊष्मा को आजीवन बनाये रखने वाली, दबाव पड़ने पर भी अपनी लपटें उर्ध्वमुख ही रखने वाली, बहुत प्राप्त करके भी संग्रह से दूर रहने वाली, स्पर्श करने वाले को अपना ही रूप बना लेने वाली, समीप रहने वालों को भी प्रभावित करते रहने वाली, अग्नि मुझे आदर्श लगी, अतएव उसे गुरु धारण कर लिया।

अपने पास प्रकाश न होने पर सूर्य से याचना कर पृथ्वी को चाँदनी का दान देते रहने वाला परमार्थी चन्द्रमा मुझे सराहनीय लोकसेवक लगा। विपत्ति में सारी कलाएँ क्षीण हो जाने पर भी निराश होकर न बैठना और फिर आगे बढ़ने के साहस को बार-बार करते रहना धैर्यवान् चन्द्रमा का श्रेष्ठ गुण कितना उपयोगी है ? यह देखकर मैंने उसे गुरु बनाया।

नियत समय पर अपना नियत कार्य अविचल भाव से निरन्तर करते रहना, स्वयं प्रकाशित् होना और दूसरों को प्रकाशित करना, सूर्य का यह सद्गुण इसी योग्य था कि उन्हें गुरु माना जाये।

पेड़ के नीचे बिछे हुये जाल में पड़े दाने देखकर लालची कबूतर आलस्यवश अन्यत्र न गया और उतावली में बिना कुछ सोचे-विचारे ललचा गया और जाल में फँसकर अपने प्राण गँवा बैठा। यह देखकर मुझे ज्ञान उपजा कि लोभ से अविवेक और अविवेक से पतन होता है। जिससे यह मूल्यवान शिक्षा मिली वह कबूतर भी मेरा गुरु ही तो है।

शीतऋतु में अंग जकड़ जाने और वर्षा के कारण मार्ग अवरुद्ध रहने के कारण भूखा अजगर मिट्टी खाकर काम चला रहा था और धैर्य-पूर्वक दुर्दिन को सहन कर रहा था। उसकी इस सहनशीलता ने मुझे अपना अनुयायी और शिष्य बना लिया।

नदियों द्वारा निरन्तर असीम जल की प्राप्ति होते रहने पर भी अपनी मर्यादा से आगे न बढ़ने वाला, रत्न-राशि के भाण्डागारों का अधिपति होने पर भी न इतराने वाला, स्वयं खारी होने पर भी बादलों को मधुर जल दान करते रहने वाला समुद्र मेरे लिये इतना शिक्षण कर रहा था तो उसे गुरु कैसे न मानता ?

लक्ष की प्राप्ति के लिये प्राणों की परवा न करके अग्रसर होने वाला पतंगा जब दीपक की लौ पर जलने लगा तो आदर्श के प्रति उसकी अविचल निष्ठा ने मुझे बहुत प्रभावित किया। जलते पतंगों को जब मैंने गुरु माना तो उसकी आत्मा ने कहा—नश्वर जीवन को महत्त्व न देते हुये सच्चे आस्थावान को आदर्श के लिये उद्यत रहना चाहिये।

पुष्पों का मधुरस सञ्चय करके दूसरों के लिये समर्पण करने को जीवन साधना में लगी हुई मक्खी संसार को सिखा रही थी कि मनुष्य स्वार्थी नहीं परमार्थी बने। मैंने उसका सन्देश सुना और शिष्य भाव से ग्रहण कर लिया। इन उपदेशदात्री देवियों को गुरु ही तो मुझे मानना चाहिये था।

राग में आसक्त भौंरा अपना जीवन-मरण न सोचकर कमल पुष्प पर बैठा रहा, रात को हाथी ने वह फूल खाया तो भौंरा भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। राग में आसक्त प्राणी किस प्रकार अपने प्राण गँवाता है, यह शिक्षा अपने गुरु भौंरा से मैंने सीखी और गाँठ बाँध ली।

कामातुर हाथी मायावी हथिनियों द्वारा प्रपंच में फँसाकर बन्धन में बाँध दिया गया और फिर आजीवन त्रास भोगता रहा, यह देखकर मैंने वासना के दुष्परिणामों को समझा और उस अविवेकी प्राणी को भी अपना गुरु माना।

कानों के विषय में आसक्त मृग को वधिकों द्वारा पकड़े जाने और जिह्वा की लोलुप मछली को मछुए के जाल में तड़पते देखा तो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचा कि इन्द्रियलिप्सा के क्षणिक आकर्षण में जीव का कितना बड़ा अहित होता है। इससे बचे रहना ही बुद्धिमानी है। इस प्रकार ये दोनों प्राणी भी मेरे गुरु ही ठहरे।

पिंगला वेश्या जब तक युवा रही तब तक उसके अनेक ग्राहक रहे। वृद्ध होते ही वे सब साथ छोड़ गये। रोग और दरिद्रता ने उसे घेर लिया। लोक में निन्दा और परलोक में दुर्गति देखकर उसका चित्त निरन्तर खिन्न रहने लगा। उस दुःखिया को देखकर मैंने सोचा कि समय चूक जाने पर पछताना ही शेष रह जाता है, सो समय रहते वे सत्कर्म करने चाहिये जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। वह दुखियारी पिंगला, जिसने अपना और दूसरों का जीवन पतित बनाया, सद्गृहस्थ का आनन्द और पतिव्रता धर्म द्वारा परलोक साधन का व्यवहार गँवाकर बहुत पछता रही थी। उस पश्चाताप से दूसरों को सावधानी का सन्देश देने वाली पिंगला भी मेरे गुरु पद पर प्रतिष्ठित हुई।

काक पक्षी किसी पर विश्वास न करके और धूर्तता की नीति अपनाकर घाटे में ही रहा। उसे सबका तिरस्कार मिला और अभक्ष खाकर सन्तोष करना पड़ा। यह देखकर मैंने जाना धूर्तता और स्वार्थपरता की नीति अन्ततः हानिकारक ही होती है। यह सिखाने वाला कौआ भी मेरा गुरु है।

राग-द्वेष, चिन्ता, काम, लोभ, क्रोध आदि दुर्गुणों से रहित जीवन कितना कोमल, सौम्य और सुन्दर लगता है, कितना सुखी और शान्त रहता है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन मुझे अबोध बालक में हुआ और वैसा ही बनने के लिये बच्चे को अपना आदर्श माना उसे भी गुरु कहा।

एक स्त्री चूड़ियाँ पहने धान कूट रही थी। चूड़ियाँ आपस में खनकती थीं। स्त्री चाहती थी उसके घर आये मेहमानों को इसका पता न चले। इसलिये उसने हाथों की और चूड़ियाँ उतार दीं एक-एक ही रहने दी तो उनका खनकना भी बन्द हो गया। इस दृश्य को देखकर मैंने सोचा अनेक कामनाओं के रहते मन में संघर्ष उठते रहते थे। पर यदि एक ही लक्ष नियत कर लिया जाय तो सभी उद्वेग शान्त हो जाय। जिस स्त्री से यह प्रेरणा मिली उसे भी मैं गुरु ही मानता हूँ।

लुहार अपनी भट्टी में लोहे के टूटे-फूटे टुकड़े गरम करके हथौड़े की चोट से कई तरह के औजार, उपकरण बना रहा था। उसे देखकर समझ में आया कि निरुपयोगी और कठोर प्रतीत होने वाले मनुष्य भी यदि अपने को तपाने और चोट सहने की तैयारी कर लें तो उपयोगी उपकरण बन सकते हैं लुहार की क्रिया को देखा और उससे जो निष्कर्ष निकला, वह गुरु दीक्षा-जैसी प्रेरणा ही थी।

सर्प दूसरों को त्रास देता है और प्रत्युत्तर में सब ओर से त्रास पाता है। यह शिक्षा देने वाला वह दुर्बुद्धिग्रस्त प्राणी यही बताता है कि उद्दण्ड-क्रोधी, आक्रमक और आततायी होना किसी के लिये भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। यह शिक्षा शिरोधार्य करके सर्प को भी मैंने अपना पथ-प्रदर्शक ही गिन लिया।

मकड़ी अपने पेट में से रस निकालकर उससे जाला बुन रही थी और जब चाहती थी उसे मुँह में समेटकर फिर पेट से निकाल लेती थी। मुझे सूझा कि अपनी दुनियाँ हर मनुष्य अपनी भावना के अनुरूप ही गढ़ता है और यदि चाहे तो पुराने जाले को समेट कर पेट में रख लेना और नया वातावरण बना लेना भी उसके लिये सम्भव और सरल हो सकता है। मकड़ी अपनी क्रिया द्वारा मनुष्यों का महत्त्वपूर्ण पथ-प्रदर्शन करती है। यह देखा तो गुरु भाव से मैंने उसे भी प्रणाम किया।

भृंग कीड़ा एक झींगुर को पकड़कर लाया और अपनी भुनभुनाहट से प्रभावित कर उसे अपने समान बना लिया। यह दृश्य देखकर मैंने सोचा-एकाग्रता और तन्मयता की अर्चना कर मनुष्य अपना शारीरिक और मानसिक कायाकल्प कर डालने में सफल हो सकता है। इस प्रकार भृंग भी मेरा गुरु ही ठहरा।

चौबीस गुरुओं का वृतान्त सुनाकर अवधूत दत्तात्रेय ने राजा यदु से कहा—गुरु बनाने का उद्देश्य जीवन को प्रगति-पथ पर अग्रसर करने वाला प्रकाश प्राप्त करना ही तो है। वह कार्य अपनी गुणग्राहक विवेक बुद्धि के बिना सम्भव नहीं हो सकेगा। इसलिये सर्वप्रथम गुरु है विवेक और उसके पश्चात् वे सब जो ज्ञान प्राप्ति का आधार बनते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चौबीस गुरुओं का वर्णन महा तेजस्वी अवधूत के मुख से सुनकर राजा को बड़ा सन्तोष हुआ और उसने अपने को कृतकृत्य माना।

खोज करने से सद्गुरु भी मिलते हैं

अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर होने के लिये किसी भी साधक के ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है, जो उसे न केवल सन्मार्ग का उपदेश करे वरन् अपने व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा उसे प्रभावित, प्रोत्साहित एवं अग्रसर बनाने की क्षमता भी रखता हो। इस आवश्यकता की पूर्ति में आज अधिकांश साधक असफल ही रहते हैं। ऐसा मार्गदर्शक खोजने चलते हैं परन्तु समुद्र किनारे मोती ढूँढ़ने गये बालक के हाथ जिस प्रकार सीप और घोंघे ही लगते हैं, इसी प्रकार स्वल्प प्रयत्न से सद्गुरु प्राप्त करने के इच्छुकों को कोई नकली व्यक्ति ही उपलब्ध होता है और इसके फलस्वरूप उन्हें असफलता एवं सज्जनित निराशा ही हाथ लगती है।

विचारणीय बात यह है कि क्या सचमुच आज सच्चे मार्गदर्शकों का अभाव हो गया है ? क्या योग्य एवं अनुभवी गुरु संसार में से समाप्त हो गये हैं ? नहीं, बात ऐसी नहीं है। किसी वस्तु की किसी जमाने में कमी हो सकती है पर उसका पूर्णलोप नहीं होता। खोज और प्रयत्न करने वाले अभीष्ट वस्तु प्राप्त ही कर लेते हैं। फिर आध्यात्म मार्ग के पथिक ही अपनी आवश्यक वस्तु सच्चे मार्गदर्शक से वंचित रहें इसका कोई कारण नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि उपयुक्त और अधिकारी व्यक्ति की तलाश करते समय वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाय और भावुकता के आधार पर, चमक-दमक के आधार पर जल्दबाजी से किसी को गुरु न माना जाय वरन् उसकी आन्तरिक स्थिति के बारे में गम्भीर दृष्टि से पता लगाया जाय और वास्तविकता प्रतीत होने पर ही उसकी सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये। वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखकर जब बड़ी-बड़ी रहस्यपूर्ण खोजें हो सकती हैं तो सद्गुरु को उसी आधार पर क्यों नहीं खोज निकाला जा सकता।

विज्ञान की नई-नई खोजें हो रही हैं। ऐसे तथ्यों और सिद्धान्तों का पता चल रहा है जो अब से पहले किसी को पता न था। ग्रह-उपग्रहों तक दौड़ने के जो यन्त्र बने हैं तथा इस दिशा में जो महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं। उनके आविष्कर्ता वैज्ञानिक अपनी सफलता पर गर्व अनुभव कर रहे हैं। इससे पूर्व भी प्रकृति के अनेक ऐसे रहस्यों का पता लगाया जा चुका है, जो उस शोध से पूर्व सर्वथा अज्ञात थे और जब वे आविष्कार सामने आये तो सर्वत्र आश्चर्य प्रकट किया गया। रेल, तार टेलीफोन, बिजली रेडियो, टेलीविजन, हवाई जहाज, दुरबीन, कैमरा, एक्सरे, क्लोरोफार्म आदि अब साधारण बातें हैं। उन दिनों हर आदमी इनकी चर्चा करते हुये एक भारी कौतूहल अनुभव करता था।

जिन सिद्धान्तों, प्रकृति की जिन सूक्ष्म प्रक्रियाओं के आधार पर इन आविष्कारों का उद्घाटन हुआ वे अनादि काल से उसी प्रकार मौजूद थे, जिस प्रकार आज हैं, पर जब तक उनके बारे में जानकारी न थी तब तक अल्पज्ञ मनुष्य उसके अस्तित्व के बारे में भी कोई कल्पना नहीं कर पाता था।

मनुष्य की यह अल्पज्ञता केवल विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं सभी क्षेत्रों में फैली पड़ी है। मनुष्यों की पहचान के बारे में भी यही अल्पज्ञता बाधक होती है। दूसरों के वास्तविक स्वरूप को व उनकी आशंकित स्थिति को परखने में हम बहुधा अधिकतम रहते हैं। यह असफलता सामान्य मनुष्यों के क्षेत्र तक सीमित रहे तो उतना हर्ज नहीं, जितना कि महापुरुषों को वास्तविकता को परखने में भूल होने के कारण हर्ज होता है। समय-समय पर युग पुरुष होते रहते हैं। सन्तों, ज्ञानियों, तत्वदर्शियों और आत्मबल सम्पन्न लोगों की किसी काल में कमी नहीं रहती, उनकी महत्ता को परखने में भूल होने के कारण उस समय के लोग उससे लाभ नहीं उठा पाते।

भगवान राम और कृष्ण तक को उस युग के लोगों ने यदि पहिचाना होता तो उन्हें इस प्रकार सताया न गया होता, उनके साथ ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्व्यवहार न किये गये होते। सीता पर लांछन लगाने वाले धोबी को क्या पता था कि वह एक महाशक्ति पर लांछन लगा रहा है। शिशुपाल को क्या पता था कि जिन्हें वह इतने दुर्वचन बोल रहा है, वह कृष्ण नगण्य गोप बालक से कुछ अधिक है। तीस रुपया इनाम पाने के लालच से जिस शिष्य ने अपने गुरु ईसामसीह को फाँसी लगवाने के लिये पकड़वा दिया उसे क्या मालूम था कि यह तुच्छ-सा साधु आगे चलकर आधी से अधिक दुनियाँ का मार्गदर्शक बनेगा और इसके साथ विश्वासघात करने के फलस्वरूप मुझे इतिहास में खलनायक के रूप में याद किया जाता रहेगा। यदि उसे ऐसा पता होता तो अवश्य ही वह उन तीस रुपयों का लोभ छोड़ देता।

वाल्मीक को यह पता होता कि जिस साधु को वह लूट रहा है, वह नारद साधारण यात्री नहीं देवर्षि हैं तो यह क्यों उनको लूटकर कपड़े उतरवाता ? हिमाचल पत्नी सुनयना को पता होता कि उसकी पुत्री पार्वती साधारण लड़की नहीं है जो उसे तप करने से क्यों रोकती ? क्यों शिव को दूल्हा रूप में दरवाजे पर आया देखकर अपने दुर्भाग्य पर दुखी होती ? अशोक वाटिका में फल खाने वाले वानर को साधारण बन्दर न समझकर यदि राक्षस लोग उसे बजरंगवली हनुमान समझते तो पूँछ जलाने की धृष्टता क्यों करते ? चाणक्य की प्रचण्ड शक्ति से यदि नन्द नरेश परिचित रहे होते तो साधारण-सी बात पर उसका अपमान करके अपने वंश और राज्य का सर्वनाश क्यों कराते ?

इस प्रकार के अगणित उदाहरण इतिहास में ऐसे मौजूद हैं, जिनमें स्पष्ट है कि महापुरुषों को उनके साथियों तक ने नहीं पहचाना। गौ, चराने वाले गोप क्या जानते थे कि उनके समान ही रोज गायें चराने वाला साथी लड़का योगेश्वर भगवान कृष्ण हो सकता है। ध्रुव, प्रहलाद, शंकराचार्य, मीरा, गान्धी, तिलक, सुकरात, सूर आदि की महत्ता यदि उनके समकालीन लोगों को प्रतीत होती तो निश्चय ही उन्हें उतना तिरस्कार एवं त्रास न सहना पड़ता।

मनुष्य की स्थूल बुद्धि और चमड़े की आँखें केवल बाहरी बातों को ही देख-समझ पाती हैं। उसमें वह सूक्ष्म दृष्टि नहीं होती कि किसी की लघुता एवं महानता की अन्तःस्थिति को समझ सके। इसी कमजोरी के कारण कितने ही भोले लोग धूर्तों द्वारा ठगे जाते हैं और कितने ही जिज्ञासु किन्हीं सत्पुरुषों की सहायता से वंचित रह जाते हैं। इस कठिनाई का हल एक ही प्रकार हो सकता है कि हम अपनी तत्वदर्शी अन्वेषण बुद्धि की—ऋतुम्भरा प्रज्ञा को विकसित करें। इस अन्वेषक बुद्धि के अभाव में चिरकाल तक मानव जाति को वैज्ञानिक आविष्कारों से वंचित रहना पड़ा और जब वह महत्त्वपूर्ण क्षमता उसे प्राप्त हुई तो विज्ञान दिन पर दिन तीव्र गति से प्रकृति के महान् रहस्यों का उद्घाटन करने के लिये बढ़ रहा है।

हमें अपने जीवन की सुख शान्तिमय बनाने के लिये जिस ज्ञान तत्व और सूक्ष्म विज्ञान की आवश्यकता है, वह तथापि बहुत कुछ पुस्तकों में उपलब्ध होता है, फिर भी उसे हृदयंगम कराने और अभ्यास भूमिका में लाने के लिये किन्हीं ऐसे मार्गदर्शकों की आवश्यकता होती है जिन्होंने इस ज्ञान विज्ञान को स्वयं हृदयंगम और अभ्यस्त किया है। परन्तु भारी कठिनाई यह है कि ऐसे लोगों के परखा कैसे जाय ? इस विचित्र युग में नकली चीजें इतनी बढ़ गई हैं कि असली चीज वाले को अपने अच्छाई स्पष्ट करने में भी संकोच होता है। नकली के व्यापारी बढ़ा-चढ़ाकर अपने माल का ढिंढोरा पीटते हैं फलस्वरूप भोले आदमी उनके चंगुल में आसानी से फँस जाते हैं और पीछे बहुत कुछ गंवाकर निराश लौटते हैं। जबकि इन विपत्तियों का चारों ओर भयंकर विस्तार हो रहा हो, तब सच्चे आदमियों को अपनी बात खुली जबान से कहने तक में संकोच होना स्वाभाविक है क्योंकि दूध के जले छाछ पर विश्वास कर ही लेंगे यह आशा कैसे की जा सकती है ?

धूर्तों का स्वार्थ होता है, उन्हें बिना कुछ प्रयत्न और कष्ट का झंझट उठाये केवल अपने विज्ञापन बल पर बहुत कुछ प्राप्त हो जाता है यदि कभी कलई खुली भी तो उनकी मूल बेहया स्थिति को कोई हानि नहीं होती। उनकी हानि तो केवल इतनी ही हुई कि कलई उतर गई और वस्तुतः जैसे थे वैसे ही लोगों पर प्रकट हो गये। पर जो सच्चे हैं, उनकी स्थिति सर्वथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भिन्न है। उन्हें स्वार्थ कुछ भी साधना नहीं होता केवल परमार्थ ही करना होता है। जो कष्ट साध्य अन्तःस्थिति प्राप्त की है, उसे कोई जाने ही और उससे लाभ उठाये ही, इसमें उन्हें कुछ आग्रह भी नहीं होता, वरन् उदासीनता ही होती है क्योंकि यदि मार्गदर्शन के लिये उन्हें कोई नहीं पूछता तो इसमें उनकी हानि कुछ नहीं वरन् अपने समय को आत्मकल्याण में ही लगाते रहने का लाभ ही है। परमार्थ न करें उन्हें सेवा का अवसर न मिले तो भी उनके आत्मकल्याण का जो कार्यक्रम चल रहा था, उसके होते हुये लक्ष पूर्ति की कोई बाधा नहीं आती। निश्चय ही असली चीजों की-नकली चीजों की तरह ढिंढोरा नहीं पीटा जा सकता और न उसकी चमक दमक ही नकली जैसी बनाई जा सकती है।

इन परिस्थितियों में आत्म-निर्माण के आकांक्षी के लिये एक भारी कठिनाई यह पड़ती है कि वह श्रेय पथ पर चलने के लिये जिस मार्गदर्शक की आवश्यकता है, उसे प्राप्त कैसे करें ? नकली गुरुओं की भरमार के उलझन भरे जाल से अपने को कैसे बचायें ? अनाधिकारी लोगों की कलाबाजियों में भ्रमित होकर जो बर्बादी होती है उससे आत्मरक्षा कैसे करें ?

इस समस्या को हल करने का एक ही मार्ग है, अपनी अन्वेषण बुद्धि को वैज्ञानिक दृष्टिकोण को, जागृत करना। वैज्ञानिकों ने इसी औजार की सहायता से प्रकृति के गर्भ में छिपे हुये सूक्ष्म रहस्यों को ढूँढ़ निकाला और इतने आश्चर्यजनक आविष्कार किये। आगे भी मनुष्य की सारी महत्वाकांक्षायें इसी एक आधार पर अवलम्बित हैं कि वह अन्वेषण बुद्धि द्वारा तर्क पूर्ण वैज्ञानिक प्रवृत्ति के आधार पर अभीष्ट दिशा में अग्रसर होगा। यही आधार हमारे सच्चे गुरु की खोज में भी सहायक हो सकता है। ढूँढ़ने वालों ने सब कुछ पाया है, इस संसार में सब कुछ मौजूद है—चिरकाल से मौजूद था, अब भी मौजूद है, पर हम उसे वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में प्राप्त नहीं कर पाते। यदि उस दृष्टिकोण को अपना लिया जाय तो वैज्ञानिक शोधों तक ही वह बात सीमित न रहे, उसके द्वारा सद्गुरु प्राप्त हो सकते हैं और आगे चल कर इसी आधार पर परमात्मा की उपलब्धि भी हो सकती है।

ऐसे गुरु की महिमा का वर्णन करना भी सम्भव नहीं है। कबीर के सशक्त शब्दों में—

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुद्र को मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय।।

गुरु कैसे होते हैं, उनकी पहचान और योग्यता की परख करना भी आवश्यक होता है। अब हर व्यक्ति थोड़े-से ज्ञान का अर्जन करके कान में मन्त्र फूँकने के लिये उत्सुक रहता है और गुरु बनने का अपने को अधिकारी समझने लगता है, परन्तु शास्त्र की आज्ञा है कि गुरु का वरण पूरी जाँच करके ही करना चाहिये। जाँच के लिये शास्त्रों और सन्तों के ही आधारभूत तथ्यों का निरूपण किया है।

कबीर ने कहा है—

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट।।

अर्थात् "जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनाते समय मिट्टी को गढ़कर एक व्यवस्थित रूप देता है, उसी तरह गुरु भी शिष्य को कुपथ से हटाकर सुन्दर साँचे में ढाल देते हैं।"

वस्तुतः 'गुरु' शब्द की गरिमा एवं महत्ता को उसमें अन्तर्निहित अर्थ से समझा जा सकता है।

'कुलार्णव तन्त्र' सप्तदश उल्लास के अनुसार

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्यात् रुशदस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते।। ७।।
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः।
उकारो विष्णुरित्युक्तास्त्रितयात्मा गुरुः परः।। ८।।

"गु"—यह अन्धकार का वाचक होता है और "रु"—यह उस अन्धकार के निरोध करने के अर्थ का वाचक होता है। मनुष्य के हृदय में अज्ञान स्वरूप अन्धकार के नाश कर देने से ही 'जुरु'—यह शब्द निष्पन्न होता है। ग-कार सिद्धि देने वाला कहा गया और रेफ पापों को जला देने वाला होता है। उकार विष्णु भगवान् का वाचक कहा गया है। इन तीनों से निष्पन्न 'गुरु'—यह शब्द त्रितयात्मा सबसे परम प्रधान होता है। गुरु शब्द का महत्त्व बहुत अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसीलिये है कि यह अज्ञान को तथा पाप को नष्ट कर प्रकाश एवं ज्ञान की चमक दिया करता है।॥७-८॥

गृणाति उपदिशति धर्ममित गुरुः।

"जो धर्म का उपदेश करे उन्हें गुरु कहते हैं।"

गिरत्यज्ञान मिति गुरुः

"जो अज्ञान को दूर करे, वे गुरु हैं।

अविद्या हृदय ग्रन्थि बन्ध मोक्षो यतो भवेत्।
तयेव गुरुरित्यार्गुरु शब्देन योगिनः।

—शंकराचार्य

"जो हृदय की अज्ञान ग्रन्थि को खोलें, उन्हें गुरु कहते हैं।

" निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरु रुच्यते।

—मनु. २।१४२

"जो स्वयं कर्त्तव्य-कर्मों से संलग्न हो और दूसरों को भी वैसी ही प्रेरणा दे, ऐसे ब्राह्मण को गुरु कहते हैं।"

महेश्वर ने स्वयं गुरु के लक्षणों पर प्रकाश डाला है—

नाना विकल्प विभ्रान्ति नाशन्तु कुरुते च यः।
सद्गुरुः स तु विज्ञेयो न तु स्वंरप्रजल्पकः॥
अतएव महेशानि सद्गुरु स शिवोदितः।
सत्यवादी सत्यशीलो गुरुभक्तो दृढ़व्रतः।
स्वल्पाचाररतात्मानो दानादिनशीलसंयुक्तः।
कापट्यलो भविन्यासी महावंश समुद्भवः॥
ईदृशः सद्गुरुस्तस्य संगतो यत्नवान् भवेत्।
तदेव मनसा शान्ति प्राप्नोति परमं पदम्॥

अर्थात् "नाना विकल्प और भ्रान्तियों को नाश करने वाला ही सद्गुरु होता है। केवल शास्त्र की दुहाई देने वाला ही गुरु नहीं कहलाता। इसलिये हे महेशानि ! सद्गुरु वह है जो सत्यवादी, गुरुभक्त, दृढ़वती, सूक्ष्म आचार वाले, आत्मरत, दानादि गुणों व शील से संयुक्त उत्तम वंश में उत्पन्न, कपट-लोभ से रहित हो। ऐसे लक्षणों से युक्त गुरु की पहिचान करके वरण करना चाहिये। उनके सान्निध्य और कृपा से ही शान्ति व परम पद की उपलब्धि सम्भव है।"

प्रगति और सफलता के लिये समर्थ सहयोग की आवश्यकता

साधन की सफलता के दो कारण बताये गये हैं—एक अन्तः भूमिका का ऐसा परिमार्जन जिसमें दिव्य विभूतियों का अवतरण सम्भव हो सके तथा जहाँ वे स्थिर रूप से निवास कर सकें। दूसरा समर्थ मार्गदर्शक की उपलब्धि। इन दोनों उपलब्धियों को जो कोई भी प्राप्त कर लेगा, वह उन्हीं की तरह आत्मिक प्रगति के पथ पर सुनिश्चित गति से सरलता और सफलता-पूर्वक पहुँच सकेगा।

गुरु शिष्य की भूमिका को अध्यात्म मार्ग का सधन सहयोग और अन्ध पंगु के समन्वय से नदी पार करने जैसी स्थिति बताया गया है। जहाँ शिष्य समर्थ गुरु की सहायता से आगे बढ़ता है, वहाँ गुरु भी अपने ऋण से उऋण होता है।

पारस्परिक सहयोग की अविच्छिन्न प्रक्रिया ही विकास का ही नहीं आनन्द का भी आधार है। भौतिक जगत में पग-पग पर इस तथ्य को अनुभव किया जा सकता है। परमाणु जिसे सबसे छोटी इकाई माना जाता है, एकाकी नहीं है। वरन् न्यूट्रोन, प्रोटोन आदि अपने सहयोगियों के आधार पर ही सृष्टि का क्रियाकलाप संचालित किये रह सकने में समर्थ होता है। आकाश में ग्रह नक्षत्र पारस्परिक आकर्षण में जकड़े रहने के कारण ही आकाश में अधर लटके हुये हैं। पंच तत्वों का सम्मिश्रण यदि न हो तो इस विश्व का अस्तित्व ही प्रकाश में न आये। हर कोई जानता है कि विवाह-बन्धन के साथ कितने उत्तरदायित्व, बन्धन और कर्त्तव्य जुड़े हुये हैं। उन्हें निबाहते-निबाहते आदमी का कचूमर निकल जाता है। नारी को प्रसव की विकट पीड़ा, शिशु-पालन का कठिनतम कार्य और पति तथा सुसराल वालों को प्रसन्न रखने में लगभग आत्म समर्पण जैसी तपस्या करनी पड़ती है। नर को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी कम भार वहन नहीं करना पड़ता। इन कठिनाइयों से परिचित होते हुये भी हर कोई विवाह की आशा लगाये बैठा रहता है और वैसा अवसर आते ही हर्षोल्लास अनुभव करता है। जिन दाम्पत्य जीवन में सघन आत्मीयता विकसित होती है, उन्हें वह पारस्परिक सान्निध्य स्वर्गोपम प्रतीत होता है। अगणित कठिनाइयों को वहन करते हुये भी हर घड़ी आनन्द उमड़ता रहता है। यह सब देखते हुये इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि व्यक्तियों की आत्मिक घनिष्ठता कितनी तृप्ति और कितनी शान्ति प्रदान करती है।

पति-पत्नी का तो ऊपर उदाहरण मात्र दिया गया है। रिश्ते कुछ भी क्यों न हों ? पुरुष-पुरुष और नारी-नारी के बीच भी ऐसी आन्तरिक सघनता हो सकती है। उस मित्रता को किसी भी रिश्ते का नाम दिया जा सकता है और बिना रिश्ते के केवल आत्मीय माना जा सकता है। यही 'प्रेम' है। प्रकृति के अनुरूप व्यक्तियों से आरम्भ होकर यह मनुष्य समाज—प्राणी मात्र और तदनन्तर विश्व ब्रह्माण्ड में संव्याप्त जड़-चेतन में प्रेम फैलता विकसित होता चला जाता है। आनन्द का उद्भव और विस्तार यहीं से होता है। अन्तःकारण की कोमलता, मृदुलता, सरलता और सरसता ही वस्तुतः मानव जीवन की सबसे बड़ी सम्पदा है, जो स्नेहसिक्त हैं, जो प्रेमी हैं, जो सहृदय और उदार हैं, उन्हें ही आत्मिक विभूतियों से सुसम्पन्न सिद्ध पुरुष कहना चाहिये। ऐसा व्यक्ति ही महामानव, देवदूत और दिव्य सत्ता सम्पन्न कहलाता है। आत्मा और परमात्मा का मिलन संयोग जिसे प्राप्त हो गया, समझना चाहिये कि उसने पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त कर लिया। अभाव तो एकाकीपन में ही है।

अध्यात्म साधना के क्षेत्र में प्रगति करने के लिये भी यह सहयोग नितान्त आवश्यक है। राम और लक्ष्मण का—युग्म ही लंका विजय में समर्थ हुआ है। महाभारत की सफलता कृष्ण और अर्जुन के मिलन ने सम्भव की थी। छात्र कितना ही परिश्रम करे, बिना शिक्षक के मौखिक या लिखित ज्ञान दान के बिना उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकने में समर्थ नहीं होता। कला, शिल्प, विज्ञान, चिकित्सा जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों के विद्यार्थी मात्र मौखिक ही नहीं, क्रियात्मक व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। इसके बिना वे अपने विषय में निष्णात्, पारंगत नहीं हो सकते।

गुरु और शिष्य मिलकर यही प्रयोजन करते हैं। कान में मन्त्र फूँक देना या कर्मकाण्ड विधि-विधान बता देने से काम नहीं चल सकता। उन्हें अपनी शक्ति का एक अंश भी देना पड़ता है। इस अनुदान के बिना आत्मिक प्रगति के पथ पर बहुत दूर तक नहीं चला जा सकता। पहाड़ों की ऊँची चढ़ाई चढ़ने के लिये लाठी का सहारा लेना पड़ता है। छत पर चढ़ने के लिये सीढ़ी का अवलम्बन चाहिये। यही प्रयोजन आत्मिक प्रगति के पथ पर चलने वाले पथिक के लिये उसका मार्गदर्शक एवं साथी सहयोगी पूरी करता है। गुरु की आवश्यकता इसी प्रयोजन को पूर्ण करने के लिये पड़ती है।

माता के उदर में रखे बिना, अपना रक्त-माँस दिये बिना, दूध पिलाये और पालन किये बिना भ्रूण की जीवन प्रक्रिया प्रगतिशील नहीं हो सकती। बालक भोजन, वस्त्र, आदि की सुविधायें स्वयं उपार्जित नहीं कर सकता, उसे इसके लिये अभिभावकों की सहायता अभीष्ट होती है। छात्र अपने आप पढ़ तो सकता है पर उसे पुस्तक, फीस आदि का खर्च पिता से और शिक्षण सहयोग अध्यापक से प्राप्त करना पड़ता है। इसके बिना उसका शिक्षा क्रम मात्र एकाकी पुरुषार्थ से नहीं चल सकता। माता-पिता अपनी सन्तान का पालन-पोषण करते हैं वे बच्चे बड़े हो जाने पर अपने बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी उठाते हैं। यही क्रमानुगत परम्परा चलती रहती है। अध्यात्म मार्ग की प्रगति-प्रक्रिया भी इसी प्रकार चलती है। गुरु अपने शिष्य को अपनी तप पूँजी प्रदान करता है, तदुपरान्त शिष्य भी उसे अपने लिये दाबकर नहीं बैठ जाता वरन् उस परम्परा को अग्रगामी रखते हुये अपने छात्रों की सहायता करता है।

यों धर्म के दस लक्षणों और यम-नियम के दस योग आधारों का पालन करते हुये कोई भी व्यक्ति सहज सरल रीति-नीति से जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। न इसमें किसी गुरु की आवश्यकता है न शिष्य की। राजमार्ग पर सही पैरों से चल पड़ने वाला व्यक्ति—मील के पत्थरों को देखते गिनते यथास्थान पहुँच सकता है पर जिसे उस यात्रा के समीपवर्ती अद्भुत स्थलों को देखना, जानना और वहाँ मिलने वाली उपलब्धियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से लाभान्वित होना हो उसे उस क्षेत्र से परिचित और उपलब्ध हो सकने वाली वस्तुओं को देने, दिलाने में कुशल किसी अनुभवी सहयोगी की आवश्यकता पड़ती है। यदि यह सुयोग न मिल सके तो फिर यात्रा चलती रहती है पर वह नीरस एवं अतिरिक्त उपलब्धियों से रहित एक गतिशीलता मात्र ही रह जाती है। अध्यात्म पक्ष में प्रगति करते हुये उस यात्रा से सम्बन्धित विभूतियों को प्राप्त करते हुये हर्षोल्लास का आनन्द लेते चलना हो तो फिर कुशल सहयोगी की सहायता अनिवार्य ही हो जायेगी। गुरु शिष्य का सम्मिलन, सम्मिश्रण उसी आवश्यकता की पूर्ति करता है।

मेडीकल कालेज में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में वह सब कुछ लिखा है जो वहाँ पढ़ाया जाता है अथवा डॉक्टर बनने के लिये जानना चाहिये। किन्तु सर्जरी में कोई छात्र तब तक निष्णात नहीं हो सकता जब तक कि उसे उस तरह की व्यावहारिक शिक्षा—कुशल सर्जन के तत्वावधान में न मिले। यों ऑपरेशन की सारी प्रणाली चित्रों सहित पुस्तकों में लिखी रहती है फिर भी प्रत्यक्ष पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता बनी ही रहती है। इंजीनियरिंग, कला, संगीत, युद्ध, विद्या, रसायन आदि के बारे में भी यही बात है। ऊँची कक्षाओं की बात छोड़िये, बाल कक्षा के बालकों के हाथ सचित्र बाल पोथी थमा देने पर भी वे अक्षर और अंक तब तक नहीं याद कर पाते जब तक कि अध्यापक का प्रत्यक्ष सहयोग उन्हें प्राप्त न हो। फिर आत्मिक प्रगति जैसे अप्रत्यक्ष, अप्रचलित और दूरूह विषय का प्रशिक्षण तो एकाकी बन ही कैसे पड़ेगा ?

श्रद्धा तत्व का विकास करते हुये आत्मिक प्रगति को तीव्र बनाने की दृष्टि से शिष्य का गुरु के प्रति श्रद्धावान और विनम्र होना उचित है। इससे अनुशासन, निष्ठा बनाये और क्रमबद्धता बनाये रहने में सुविधा होती है। पर इसमें गुरु के लिये अहंकार करने, अपने को बड़ा मानने या अहसान जताने जैसी कोई बात नहीं है। यह एक क्रियागत प्रक्रिया है। अभिभावक अपनी सन्तान को सृष्टि के अनादि काल से पालते चले आ रहे हैं। प्रकृति से हर प्रजनन कर्म के साथ शिशु पालन की प्रवृत्ति भी जोड़कर रखी है। ऐसी दशा में कोई सन्तान पालन को परमार्थ क्यों माने ? वह प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है, जिसे पालन किया ही जाना चाहिये। जो उसे पतित करेगा, वह दोषी बनेगा। कोई प्रजनन में तत्पर रहे और फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सन्तान के प्रति उपेक्षा, क्रूरता बरते, उससे विमुख हो जाय तो सामाजिक, राजकीय और ईश्वरीय दण्ड का भागी बनेगा। यही बात गुरु-शिष्य के बारे में भी है। जब किसी की सहायता से गुरु को भी कुछ मिला है तो उसे उस क्रम को आगे बढ़ाने के लिये दूसरों को—अपने छात्रों की सहायता पवित्र कर्त्तव्य मानकर करनी चाहिये। इसमें न अहसान जताने की आवश्यकता है न अहंकार करने की। सच तो यह है कि यदि कोई छिपाता है और अनुदान में आनाकानी करता है तो वह अपनी महानता ही खो बैठता है। शिष्य अपनी पात्रता सिद्ध करे। श्रद्धालु और अनुशासित रहे, यह उसी के पक्ष में—उसी को लाभान्वित करने वाली अलग बात है।

रामकृष्ण परमहंस बनने के लिये जन्म-जन्मान्तरों की कठोर साधना अभीष्ट है पर विवेकानन्द बनना सरल है। समुद्र बनना कठिन है पर उसका पानी लेकर आकाश में बादल की तरह उड़ने लगना सरल है। समर्थगुरु रामदास बनने के लिये जन्म की गति कठिन और तलवार की धार पर चलने जैसी साधना करने का साहस सामान्य व्यक्तियों के पास नहीं होता। शिवाजी के रूप में एक नगण्य से व्यक्तित्व वाले बालक का विकसित हो जाना भी सरल है। पारसमणि बनना कठिन है, पर लोहे का उसे छूकर सोना बन जाना सरल है। चाणक्य जैसी अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व कर सकने वाली सत्ता बन सकना हर किसी का काम नहीं। पर एक दासी पुत्र का दिग्विजयी सम्राट बनकर सफल होना सरल है। बुद्ध जैसी प्रतिभायें कभी-कभी ही—ईश्वरीय इच्छानुसार अवतरित होती हैं पर उनकी छाया से अशोक, आनन्द, अँगुलिमाल, आम्रपाली आदि असंख्य व्यक्ति लघुता की परिधि लाँघते हुये महत्ता का वरण कर सकते हैं। गांधी कभी-कभी ही उत्पन्न हो सकते हैं पर उनका अनुगमन करने वाले व्यक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, लोक नेता और ऐतिहासिक महापुरुषों की पंक्ति में अपनी गणना सहज ही करा सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मिक प्रगति की उपलब्धियों—भौतिक प्रगति की तुलना में असंख्य गुनी सामर्थ्य सम्पन्न और हर्षोल्लासमय है। उन्हें प्राप्त कर सकना मानव जीवन की सबसे बड़ी और सबसे महान सफलता है। जो इस दिशा में बढ़ सका, समझना चाहिये हर दृष्टि से कृतकृत्य हो गया। प्रचलित और प्रत्यक्ष मान्यतायें भौतिक सफलताओं को सर्वोपरि मानती हैं, पर यदि विवेक युक्त दूरदृष्टि से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह मान्यता सही नहीं है। आत्मबल सम्पन्न महामानवों का जीवन विश्लेषण करें, उनके द्वारा उपार्जित आन्तरिक आनन्द और बाह्य अनुदानों का मूल्यांकन करें तो प्रतीत होगा कि संसार का बड़े से बड़ा सुसम्पन्न व्यक्ति भी उस तुलना में अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। सम्पन्नता के साथ जुड़े हुये मतिभ्रम और क्लेश, कलह, द्वेष, दुर्भाव को भी समझा जाय तो प्रतीत होगा कि सम्पन्नता जन्य सुख मात्र दृष्टिभ्रम और कल्पना जंजाल भर है सुखी बनने के लिये सम्पदायें नहीं—विभूतियाँ आवश्यक हैं जो आत्मिक प्रगति के पथ पर चलते हुये प्राप्त की जा सकती हैं।

इस मार्ग पर चलने के इच्छुक साधक को अनुभवी और सही मार्गदर्शक की आवश्यकता अनिवार्य रूप से जुटानी पड़ती है। साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि कोई विदूषक गुरु पद का प्रहसन रचे न बैठा हो और अपने साथ-साथ अनुगमनकर्त्ता को भी न डुबा रहा हो। सही मार्गदर्शन की तलाश में निकले हुये आत्म पथ के पथिक को, जहाँ श्रद्धालु होना चाहिये वहाँ सतर्क भी। अन्यथा इस धूर्तता के युग में किसी अहेरी के जाल में फँसकर प्रगति तो दूर जो पास में था उसे भी गँवा बैठेगा। निश्चय ही आत्मिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिये एक ऐसे जीवन साथी की आवश्यकता है, जो सामयिक आवश्यकता ही पूरी न करे वरन् अन्त तक साथ निभाने के लिये निष्ठावान और पथ-प्रदर्शन के लिये सामर्थ्यवान् हो। हमें ऐसे ही मार्गदर्शक प्राप्त हुये फलतः कठिन यात्रा इतनी सार्थक और सफल हुई कि हमारे साथी चकित रह जाते हैं।

यह सर्वविदित है कि १५ वर्ष की आयु में हमें एक समर्थ सिद्ध पुरुष का अनुग्रह प्राप्त हुआ था और वह अब तक यथावत् अनवरत एवं अविच्छिन्न रूप से यथावत् बना और बँधा चला आता है। ओछे व्यक्ति पग-पग पर मन डुलाते हैं, इसे छोड़ उधर पकड़ की उछल-कूद मचाते हैं पर स्थिर चित्त व्यक्ति किसी मार्ग को पकड़ते हैं तो बहुत सोच-विचार कर, पर जब पकड़ लेते हैं तो उसे अन्त तक निभाते हैं। जिस मार्गदर्शक ने इस नव विकसित पुरुष की गहन श्रद्धा और अटल कर्मठता की गन्ध पाई और उसे सुविकसित करने के लिये टूट पड़े। श्रेय समर्थ अनुग्रहकर्त्ता मार्गदर्शक को ही मिलना चाहिये पर प्रशंसनीय वह व्यक्तित्व भी है जिसने जन्म-जन्मान्तरों से अपनी पात्रता विकसित करने की साधना की ओर अपने को इस योग्य बनाया कि कोई समर्थ देवदूत उसे प्रसन्नता पूर्वक अपना सके।

खोट, ओछे, उथले और छछोरे व्यक्ति भी महापुरुषों के आशीर्वाद का लाभ कभी-कभी प्राप्त कर लेते हैं पर वह तो ऐसा ही है जैसे किसी विवाह, शादी के अवसर पर बच्चे कागज के खिलौने—फूल, टट्टी लूटते जाते हैं। दुलहिन के ऊपर निछावर में पैसे बखेरे जाते हैं—फूल फेंके जाते हैं, छोटे बालक उन्हें ले भागते हैं। यह कोई ठोस उपलब्धि नहीं हुई। कटी पतंग को लूट लेने में क्या पुरुषार्थ है, माँगकर तो भिखारी भी पेट भर लेते हैं पर वह प्रशंसनीय थोड़े ही है। दर्शन करके अपनी दीनता प्रकट करके—और सेवा-पूजा का प्रलोभन देकर कुछ प्राप्त करने की तरकीबें ओछे लोग निकालते रहते हैं। जो ईश्वर और आत्मा तक को देख सकता है ऐसा तत्व ज्ञानी इस बाल क्रीड़ा जैसे प्रहसन को न समझता हो ऐसी बात नहीं। फिर भी वे अपनी सहज उदारता से द्वार आये अतिथि देव का सत्कार करने की दृष्टि से उसे कुछ न कुछ देकर ही विदा करते हैं। इसमें महिमा दाता की है गृहीता की नहीं। ग्रहण करने वाला वह प्रशंसनीय है जो अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता का परिचय देकर समर्थ आत्माओं को विशिष्ट अनुकम्पा करने के लिये विवश करता है।

मात्र भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिये नहीं—आत्म-कल्याण के लिये जो लालायित है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे पात्र कहा जायेगा। जिसे अपना अन्तःकरण निर्मल, निस्पृह और उत्कृष्ट बनाने में रुचि है वह सत्पात्र है और जिसने लोकेषणा, पुत्रेषणा वित्तेषणा से विमुख होकर विश्व मानव के लिये अपने आपको समर्पित करने का संकल्प किया वह महापात्र है। पात्र को दैवी सहायता मिलती है। सत्पात्र श्रेय और स्नेह प्राप्त करने का अधिकारी है पर महापात्र पर तो देवसत्तायें अपने आपको निछावर ही कर देती हैं।

सुना है, विक्रमादित्य के पास बेताल नाम की एक सहायिका दिव्य-आत्मा थी और समय-समय पर उसके कठिन प्रयोजन पूरे करती थी। सुना है, अलादीन के पास जादुई चिराग था और उसके सहारे अनेक भूत-प्रेत उसकी सहायता करने को तैयार रहते थे। हनुमान ने शक्ति राम से पाई थी और अर्जुन ने कृष्ण से। ऐसी ही शक्ति गुरुदेव ने अपने मार्गदर्शक से प्राप्त की, अभी भी कर रहे हैं और जब तक ईश्वरीय प्रयोजन पूरा नहीं हो जाता तब तक करते भी रहेंगे। इसका कारण और कुछ नहीं केवल एक ही है, वे अपने को पात्र, सत्पात्र और महापात्र बनाने में तत्पर रहे। गुरु की खोज उन्होंने कभी नहीं की। फूल जब भौंरे और मधुमक्खी, तितली तलाश करने नहीं जाता तो शिष्य ही गुरु की तलाश करने क्यों जाय ? हम अपने जिम्मे सौंपा हुआ काम भी करते रहते हैं और अपने मार्गदर्शक के पास तब जाते हैं, उतने दिन के लिये जाते हैं—जितने समय के लिये जब पुकारा या बुलाया जाता है। वे सदा यही कहते हैं कि पात्रता का विकास ही गुरु कृपा का, ईश्वरीय अनुकम्पा का मूलभूत आधार है।

बीज में वृक्ष बनन की पूरी-पूरी सम्भावना विद्यमान रहती है। पर कुशल माली अथवा किसान का सहयोग न मिले तो उसके अंकुरित होने तथा विकसित होकर फल-फूल देने योग्य बन चलने का सुअवसर नहीं मिल पाता। किसी प्रकार अपने पुरुषार्थ से हवा आदि के झोंके के सहारे वह कहीं भूमि में पड़ ही जाय तो भी उसका वह समग्र विकास नहीं हो पाता जो माली के सहयोग से हो सकता था। जो गरिमा, उपयोगिता एवं उपादेयता सजे-सँवरे उद्यान में विकसित हुये पौधों एवं खेतों में लहलहाते पौधों को होती है, वह झाड़-झंखाड़ों में किसी तरह प्रकृति के सहयोग से उग आये पुष्प एवं खाद्यान्न उत्पादन करने वाले पौधों की नहीं होती। विकसित होने की सभी विशेषतायें अपने भीतर सन्निहित किये होने के बावजूद भी बीज को अभीष्ट सहयोग अपेक्षित होता है। वह मिलते ही बीज की सभी सम्भावनायें साकार होने लगती और पौध के रूप में बदलते देरी नहीं लगती।

मनुष्य कितना भी समर्थ क्यों न हो वह एकाकी कुछ भी नहीं कर सकता। जन्मने से लेकर मरने तक उसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहयोग किसी न किसी रूप में मिलता रहता है। जन्म के समय शरीर की सुरक्षा-पोषण एवं विकास की जिम्मेदारी माता-पिता न सँभालें तो उसे अपना अस्तित्व बनाये रखना भी कठिन होगा। हजारों वर्षों का संचित ज्ञान, विज्ञान एवं अनुभव उसे कुछ ही समय में मुफ्त में ही प्राप्त हो जाता है। लिपि बनाने, भाषा गढ़ने, विज्ञान का आविष्कार करने, अनेकानेक साधनों का निर्माण करने, साहित्य, कला, इतिहास, भूगोल कृषि जैसी अनेकानेक ज्ञान की विधाओं का नये सिरे से मनुष्य को अकेले अनुसन्धान करना पड़े तो उसे एक जीवन तो क्या हजारों जीवन समूची उपलब्धियों को करतलगत करने के लिये खपाने होंगे। पर यह सौभाग्य ही कहना चाहिये कि पूर्वजों का संचित ज्ञान और उस ज्ञान की धाराओं की व्याख्या-विवेचना करने वाले मनीषियों का सहयोग उसे अनायास ही प्राप्त है। इस सहयोग को पाकर कितने ही व्यक्ति भौतिक क्षेत्र में योग्य, प्रतिभाशाली, विद्वान बनते देखे जाते हैं।

कहा तो जाता है कि मनुष्य सर्वसमर्थ है, तथा अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ के सहारे बहुत कुछ कर सकता है। पर कब ? जबकि उसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सामाजिक सहकार मिलता रहे। मौलिक क्षमता, प्रतिभा का अपना महत्त्व तो है, पर वह उपयुक्त परिस्थितियाँ पाकर ही उभरती हैं। जन्म से कोई कितना भी प्रतिभाशाली क्यों न हो ? ज्ञानवान, विद्वान बनने के लिये अध्यवसाय करना पड़ता और अध्ययन के लिये विज्ञजनों के संचित ज्ञान एवं अनुभव का लाभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेना पड़ता है। इस तथ्य की उपेक्षा करके कोई अपने पुरुषार्थ का दम्भ भरने लगे और विकास के लिये सारे सरंजाम स्वयं जुटाने का नये सिरे से प्रयत्न करने लगे तो प्रगति क्रम में वह अत्यन्त पिछड़ जायेगा।

एकाकी पुस्तकीय ज्ञान भी पर्याप्त नहीं होता, न ही वह मनुष्य के व्यावहारिक जीवन का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। मात्र पुस्तकों के अध्ययन से कोई डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक नहीं बन सकता। ऐसा सम्भव रहा होता तो हर व्यक्ति बाजार में उपलब्ध सम्बद्ध विषयों की पुस्तकों को खरीदकर उनके अध्ययन द्वारा अभीष्ट विषय में दक्षता और प्रवीणता प्राप्त कर लेता। पुस्तकें सर्वसुलभ होते हुये मात्र उसके अध्ययन के बलबूते कोई विशेषज्ञ कहाँ बन पाता है ? आशय यह है कि पुस्तकों के साथ-साथ अध्यापक का मार्गदर्शन, शिक्षण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है। विशेष प्रकार का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने—कला, साहित्य, विज्ञान आदि क्षेत्रों में विशेषता हासिल करने के लिये अपने-अपने ढंग का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन अपेक्षित होता है। साधना क्षेत्र में भी यही सिद्धान्त लागू होता है।

भौतिक क्षेत्र की तुलना में आध्यात्मिक क्षेत्र कहीं अधिक अविज्ञात है और उतना ही रहस्यमय भी। भौतिक जगत एवं सम्बन्धित वस्तुयें तो प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं, पर अध्यात्म का क्षेत्र तो पूर्णतया परोक्ष है। प्रत्यक्ष की तुलना परोक्ष में भटकाव की अधिक गुंजाइश रहती है। इस भटकाव की सम्भावना इसलिये भी अधिक रहती है कि साधना में आन्तरिक पुरुषार्थ करना पड़ता है। सर्वप्रथम स्वयं पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव का विश्लेषण कर लेना सबसे अधिक कठिन कार्य है। उनके परिमार्जन एवं विकास के लिये साधन-उपचार ढूँढ़ लेना तो और भी कठिन पड़ता है। उँगली पर गिने जाने वाले बिरले ही होते हैं जो एकाकी अपने बलबूते, स्वयं का निरीक्षण परीक्षण कर लेने एवं आवश्यक सुधार आदि के उपक्रम में सफल हो जाते हैं। वे अपवाद हैं जो साधना क्षेत्र में अपने एकाकी पुरुषार्थ के सहारे बढ़ चलने और मंजिल तक पहुँच जाने में सफल होते हैं। उनकी सफलताओं में भी जन्म-जन्मान्तरों की साधना के संचित संस्कार एवं अनुभव ही सूक्ष्म रूप से प्रेरणा देते एवं मार्गदर्शन की भूमिका निभाते हैं। पर अपवाद तो अपवाद ही हैं वे जन-सामान्य के अनुकरण के विषय नहीं हो सकते। इन अपवादों का अन्धानुकरण करने से तो असफलता ही हाथ लगती है और साधना क्षेत्र में भटकाव ही पल्ले पड़ता है।

साधना क्षेत्र में प्रचण्ड पुरुषार्थी बुद्ध कभी-कभी प्रकट होते हैं जो बिना किसी की सहायता के ही आत्म-ज्योति को जला लेने में सफल हो जाते हैं। लगन एवं भक्ति भावना के धनी रामकृष्ण परमहंस जैसे साधक का अवतरण कभी-कभी होता है। जिनका अन्तःप्रकाश स्वतः उनके साधना का मार्गदर्शन करता है। आत्म-तत्व का अपने एकाकी पुरुषार्थ द्वारा साक्षात्कार कर लेने वाले संकल्प के धनी रामतीर्थ, रामदास तो कभी-कभी ही प्रकट होते हैं, अन्यथा साधना के रहस्यमय एवं अविज्ञात क्षेत्र में प्रविष्ट करने वाले अधिकांश साधकों को प्रत्यक्ष मार्गदर्शन एवं संरक्षण अभीष्ट होता है।

यों तो साधना के विधि-विधानों, क्रियाओं एवं उनकी परिणतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन धर्मग्रन्थों, योगशास्त्रों में मिलता है पर मात्र उन्हें पढ़कर साधना आरम्भ कर देना संकट से खाली नहीं है। शास्त्रों, धर्मग्रन्थों की उपयोगिता उतनी ही है, जितनी कि विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्र को सम्बन्धित विषयों की पुस्तकों की पड़ती है। सर्वविदित है कि एकाकी पुस्तकें किसी भी क्षेत्र का मार्गदर्शन करने में सक्षम नहीं हो सकतीं। तो फिर साधना जैसे अविज्ञात क्षेत्र का मार्गदर्शन अकेले शास्त्र कैसे कर सकते हैं ? कहना न होगा मार्गदर्शन का गुरुत्तर दायित्व समर्थ गुरु ही सम्भाल सकता है।

गुरु की महिमा का गुणगान शास्त्रकारों, मनीषियों, धर्मग्रन्थों सभी ने एक स्वर में किया है। गुरु की महत्ता का प्रतिपादन करने वाले ऋषियों ने उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे मूर्धन्य देवताओं से भी बढ़कर परब्रह्म के रूप में अभिनन्दित किया है। सद्गुरु की प्राप्ति के सन्दर्भ में एक सन्त का कहना है कि—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह तनु विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

कबीरदास जी कहते हैं—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपनौ, गोविन्द दियो बताय।।

गुरु शिष्य का किस प्रकार निर्माण करता है, इसका वर्णन करते हुये कबीरदास जी आगे कहते हैं—

"गुरु कुम्हार शिषु कुम्भ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
भीतर हाथ सहार दै, बाहर-बाहर चोट।।"

अर्थात् "जिस तरह कुम्हार घड़ा बनाते समय मिट्टी को मढ़कर एक व्यवस्थित रूप देता है—उसी तरह गुरु भी शिष्य को कुपथ से हटाकर सुन्दर साँचे में ढाल देता है।"

सद्गुरु की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं। मनीषियों ने निरन्तर यही कहा है कि आत्मिक प्रगति के लिये गुरु की सहायता आवश्यक है। इसके बिना आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। जिस गुरु तत्व की वन्दना-अभ्यर्थना शास्त्रकारों ने की है वह गुरु वस्तुतः मानवी अन्तःकरण है। निरन्तर सद्शिक्षण और उर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना इसी केन्द्र के लिये सम्भव है। अपने अन्तःकरण को निरन्तर कुचलते रहने, उसकी पुकार को अनसुनी करते रहने से आत्मा की आवाज मन्द पड़ जाती है। आत्मा की अवज्ञा करते रहने वालों को ही दुर्बुद्धि-ग्रस्त और दुष्कर्म लिप्त पाया जाता है। अन्यथा सजीव आत्मा की प्रेरणा सामान्य स्थिति में इतनी प्रखर होती है कि कुमार्ग का अनुसरण कर सकना मनुष्य के लिये सम्भव ही नहीं होता। यह आत्मिक प्रखरता ही वस्तुतः वह तात्विक गुरु है, जिसकी महिमा का गुणगान करते शास्त्र नहीं अघाते।

गुरु दीक्षा का व्रत धारण इसलिये किया जाता है कि हम अन्तरात्मा की प्रेरणा का अनुसरण करेंगे। ऐसा निश्चय करने वाला व्यक्ति मानवोचित चिन्तन और कर्त्तव्य से विरत नहीं हो सकता। जैसे ही निकृष्ट चिन्तन मनःक्षेत्र में उभरता है वैसे ही प्रतिरोधी देवतत्व उसके दुष्परिणामों के सम्बन्ध में सचेत करता है। फलस्वरूप भीतर ही भीतर एक अन्तर्द्वन्द उभरता है। रक्त के श्वेत कण शरीर में रोग के, विषाणुओं के प्रविष्ट करते ही उनसे लड़ने के लिये एकत्रित हो जाते तथा उन्हें बाहर खदेड़ने के लिये प्रबल संघर्ष करते हैं। ठीक इसी प्रकार चेतना के क्षेत्र में अन्तःकरण यही भूमिका सम्पादित करता है। अनैतिक और निकृष्ट स्तर के विचार कभी भी उस मस्तिष्क में देर तक नहीं टिकने पाते जहाँ कि अन्तःकरण रूपी सद्गुरु सजग और तत्पर है। अन्तरात्मा के मूर्च्छित, अवसादग्रस्त होने पर ही दुर्विचारों को आधिपत्य जमाने तथा निकृष्टता अपनाने का अवसर मिलता है।

शास्त्रकारों ने सद्गुरु का वन्दन करते हुये उसे परमानन्ददायक परब्रह्म कहा है। यह अन्तःकरण रूपी सद्गुरु का ही निरूपण है। गुरु को गोविन्द से भी बढ़कर मानने की मान्यता, अन्तरात्मा को परमात्मा का उपलब्धि आधार समझने के लिये ही प्रतिष्ठापित की गई है। निरन्तर परामर्श और अहर्निशि साथ दे सकना अन्तः सद्गुरु द्वारा ही सम्भव है। उसी की प्रखरता नियन्त्रण और अंकुश साधक को भटकावों से बचाता है। अवांछनीयताओं का डटकर प्रतिरोध कर सकना, प्रखर अन्तरात्मा द्वारा ही सम्भव है।

पर इस अन्तःकरण रूपी सद्गुरु की भूमिका बाद में आरम्भ होती है। सामान्यतः कषाय-कल्मषों, मल-विक्षोभों के आवरण से अन्तःकरण ढका रहता है। फलतः उसकी प्रेरणा एवं प्रकाश साधक को नहीं मिल पाता है। शरीरधारी गुरु का वरण इसलिये आवश्यक हो जाता है। उसकी कृपा-अनुकम्पा से ही अन्तःकरण का प्रकाश आलोकित होता है तथा आन्तरिक सद्गुरु भी अपनी भूमिका सम्पादित कर सकने में समर्थ बनता है। कहा जा चुका है कि विरले ही हुये हैं जो आरम्भ से ही अपने एकाकी बलबूते अन्तःप्रेरणाओं के आधार पर साधना का कंटकाकीर्ण मार्ग पार करने और मंजिल तक जा पहुँचने में समर्थ हुये हैं। अन्यथा अधिकांश प्रत्यक्ष समर्थ शरीरधारी गुरु की ही सहायता, कृपा से लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हो सके हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे बहुत सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें समर्थ गुरु का संरक्षण एवं मार्गदर्शन प्राप्त है। ऐसा गुरु—जो वशिष्ठ और विश्वामित्र की विशेषताओं से सम्पन्न हो, जिसने अपने प्रचण्ड तप द्वारा ईश्वरीय सत्ता का साक्षात्कार किया हो, जो बुद्ध की भाँति आत्मबल का धनी हो, रामकृष्ण की तरह जिसके अन्तःकरण से भक्ति रस की धारा प्रस्फुटित होती हो, जो कृष्ण की भाँति योग विभूतियों से सुसम्पन्न हो, सचमुच जिन्हें ऐसे समर्थ गुरु का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिल गया समझना चाहिये कि जीवन लक्ष्य प्राप्ति के लिये की जाने वाली साधना की आधी मंजिल पूरी हो गयी तथा उत्तरोत्तर गति से आगे बढ़ने का एक सशक्त आधार-अवलम्बन मिल गया।

जननी की भाँति अपने प्राणों का अंश पिलाते रहने तथा पग-पग पर प्रस्तुत होने वाली अनेकानेक कठिनाइयों का समाधान प्रस्तुत करने वाले प्रत्यक्ष गुरु का जिनको सम्बल मिल गया, सचमुच ही उनके भाग्य की सराहना करनी होगी।

साधना की सफलता में मार्गदर्शक की महत्ता

अध्यात्म क्षेत्र में मार्गदर्शक की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। बच्चा अपना पठन-पाठन आरम्भ करता है तो विद्यालय में शिक्षक से लेकर घर में माता-पिता तक—सभी गुरु की भूमिका निभाते हैं। लौकिक समृद्धि एवं भौतिक प्रगति के सम्बन्ध में भी यह सुविदित तथ्य है कि बिना मार्ग-दर्शन के सही मार्ग पर स्वयं चल पड़ना शक्य नहीं। पुरुषार्थ तो स्वयं को ही करना पड़ता है, पर उँगली पकड़कर चौराहे के भ्रम-जंजाल से मुक्त कर सही रास्ता दिखा देने का कार्य गुरु ही करते हैं।

सद्गुरु की महिमा गाते शास्त्रकार थकते नहीं। मनीषीगण निरन्तर यही कहते आये हैं कि आत्मिक प्रगति बिना गुरु की सहायता के सम्भव नहीं। आत्मकल्याण का द्वार इसके बिना खुलता नहीं। सारी साधनाओं की सफलता सद्गुरु के मार्गदर्शन पर निर्भर है। इसके लिये व्यक्ति विशेष को गुरु मानने की भी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु उसका कार्य एक ही है—व्यक्ति को सद्गुरु की पहचान करा देना—उपासना की सही दिशा दे देना तथा अध्यात्म-पथ का पथिक बना देना। यात्रा पूरी करने में हमें अपने पैरों का सहारा लेना होता है। लाठियाँ तो सहारा भर देती हैं। सद्गुरु हमें पार उतारते हैं, पर उन तक पहुँचने के लिये शरीरधारी गुरु की भी अपने ढंग की आरम्भिक किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सद्गुरु कैसे हों, उनकी पहचान क्या हो— इस विषय में आचार्य शंकर 'विवेक चूड़ामणि' में लिखते हैं—

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः
अहैतुकदया सिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम्
तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्व प्रश्रयसेवनैः।
प्रसन्नं नमनुप्राप्य पृच्छे ज्ञातव्यनात्मनः।

अर्थात्—जो श्रुति के ज्ञान से युक्त हों, पाप रहित हों, कामना शून्य हों, श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हों, ब्रह्मनिष्ठ हों, ईंधन रहित अहित अग्नि के समान शान्त हों, अकारण दयालु हों और शरण में आये हुये सज्जनों के हितैषी हों, उन सद्गुरु की विनम्रतापूर्वक अभ्यर्थना करके, उनको प्रसन्न होने पर अपना ज्ञातव्य पूछ।

इतनी विशेषतायें गुरु में हों और पात्रता तथा असीम श्रद्धा शिष्य में, तो वह आदान-प्रदान सम्भव है जो आत्मिक प्रगति में सहायक होता है। रामकृष्ण परमहंस बनने के लिये जन्म-जन्मान्तरों की साधना अभीष्ट है, पर विवेकानन्द बनना, पात्रता अर्जित करना सरल है। समुद्र बनना कठिन है, परन्तु उसका जल लेकर मेघ बनकर उड़ना सरल है। पारसमणि बनना कठिन है, पर लोहे का उसे छूकर सोना बन जाना सरल है। चाणक्य जैसी प्रचण्ड सत्ता-अग्निपुंज बन सकना हर किसी का काम नहीं, पर एक दासी पुत्र का चाणक्य का अनुग्रह पाकर दिग्विजयी सम्राट बनकर सफल होना सरल है। बुद्ध कभी-कभी ही ईश्वरी विधि-व्यवस्थानुसार अवतरित होते हैं, पर उनके वट वृक्ष रूपी व्यक्तित्व की छाया में अशोक, आनन्द उँगलिमाल, आम्बपाली आदि अगणित व्यक्ति संकीर्णता की परिधि लाँघकर महानता का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वरण कर सकने में सफल हो जाते हैं। समर्थगुरु रामदास बनने के लिये तलवार की धार पर चलने जैसी साधना करने का साहस सामान्य व्यक्तियों के पास नहीं होता। परन्तु शिवाजी के रूप में एक नगण्य से व्यक्तित्व वाला बालक भी छत्रपति के रूप में विकसित हो सकता है। गांधी कभी-कभी ही उत्पन्न होते हैं, पर उनका अनुगमन करने वाले व्यक्ति महान राजनेता पद पाकर इतिहास में अपना नाम अमर कर जाते हैं।

वस्तुतः आत्मिक प्रगति की उपलब्धियाँ भौतिक प्रगति की तुलना में असंख्यों गुनी सामर्थ्य से भरी पड़ी हैं। बशर्ते सही मार्गदर्शन उपलब्ध हो गया हो। जिन्हें समर्थ, आत्मबल सम्पन्न और अनुभवी गुरु का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिल गया हो, समझना चाहिये कि आत्मिक प्रगति के लिये सशक्त अवलम्बन प्राप्त हो गया। ऐसे गुरु न केवल शिष्य का साधनात्मक मार्गदर्शन करते हैं वरन् अपनी शक्ति का एक अंश देकर साधक को आत्मबल से अनुग्रहीत भी करते हैं। साधना ग्रन्थों में इस गुरु-शिष्य की आदान-प्रदान की प्रक्रिया व महत्ता के सम्बन्ध में काफी कुछ लिखा जाता है। यह सब मात्र इसलिये कि ग्रन्थों का पठन-पाठन, एकांगी तप-तितीक्षा ही नहीं—गुरु की शक्ति का अंश तथा अनुभवजन्य मार्गदर्शन अत्यन्त आवश्यक है। नहीं तो हर मोड़ पर भटकाव की सम्भावना होती है। इसके लिये भक्त को सद्गुरु का चयन करने के अतिरिक्त अपनी सघन श्रद्धा का भी आरोपण करना होता है।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में ऋषि लिखते हैं—

"जिसकी अपने अभीष्ट देव के प्रति प्रगाढ़ भक्ति होती है और उस देव के समान ही गुरु के प्रति भी प्रगाढ़ श्रद्धा होती है, उस महापुरुष को सारा ज्ञान स्वयमेव प्रकट हो जाता है।"

साथ ही यह भी ध्यान रखना होता है कि कोई विदूषक गुरुपद का स्वाँग रचे न बैठा हो और अपने साथ-साथ अनुगमनकर्त्ता को भी न डुबा रहा हो। सही एवं सफल मार्ग दर्शन की तलाश में निकले जिज्ञासु पथिक को जहाँ श्रद्धालु होना चाहिये वहाँ सतर्क भी, अन्यथा इस धूर्त्तता के युग में किसी अनाड़ी, छलिया के जाल में फँसकर प्रगति तो दूर, जो पास में था उसे भी वह गँवा बैठेगा। इसलिये शास्त्रकार लिखता है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मपरे च समाश्रयम्।।

अर्थात्—आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले जिज्ञासु को बौद्धिक ज्ञान से परे, परब्रह्म की स्थिति के अनुभवी, अध्यात्म शास्त्र में निष्णात् 'गुरु' का सान्निध्य प्राप्त करना चाहिये।

ऐसे गुरु की प्राप्ति हर साधक के जीवन का एक बहुत बड़ा सौभाग्य है। वह अपनी शक्ति में गुरु से प्राप्त शक्ति को जोड़कर स्वयं को आत्मबल सम्पन्न एवं प्रगतिपथ पर अग्रगामी होते प्रत्यक्षतः देखता है।

गुरु द्वारा अपनी शक्ति हस्तान्तरित करने, अपने तेजोबलय द्वारा चक्षु, वाणी, स्पर्श से शिष्य की क्षमताओं को विकसित करने की घटनाओं का उल्लेख योग ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर आया है। साधना पथ पर चलने वाला प्रत्येक साधक जिज्ञासु हो उठता है कि यह शक्तिपात क्या है ? किस सीमा तक वैज्ञानिक है ? उसकी प्रक्रिया क्या है एवं क्या प्रत्येक व्यक्ति ऐसे समर्थ व्यक्ति, महापुरुषों के अनुदान प्राप्त कर सकता है ? पात्रता विकसित करने के लिये क्या करना पड़ता है ? सामान्य व्यक्ति इसकी परख कैसे करे ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो साधना मार्ग की ओर उन्मुख हर साधक जानना चाहता है।

योगीराज अरविन्द एवं माताजी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द, युक्तेश्वरगिरी एवं योगानन्द इनके प्रसंगों में इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं। शैव धर्म में तो शिष्य के कल्याण का मूल कारण शक्तिपात को माना गया है।

"शक्तिपापतानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात् समासतः।।

जिस शिष्य को इसका लाभ नहीं मिल पाता उसका कारण बताते हुये कहा गया है कि—

यत्र शक्तिर्नपतिता तत्र शुद्धिर्न जायते।
न विद्या न शिवाचरो न मुक्तिर्न च सिद्धयः।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्—कषाय-कल्मषों की अशुद्धि, अविद्या, अनुचित आचरण वाला मुक्ति को नहीं प्राप्त होता, नहीं शक्तिपात का लाभ उठा पाता है अथवा प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि जिसे गुरु की शक्ति नहीं मिली, वह मुक्ति नहीं पाता तथा कषाय-कल्मषों से आच्छादित अन्तःकरण लिये अविद्या, अनाचरण युक्त जीवन बिताता है।

गुरु-शिष्य परम्परा में शक्तिपात की यथार्थता पर सन्देह नहीं किया जाना चाहिए। गुरु के सुपात्र शिष्य को प्राप्त अनुदान उसे सामान्य से असामान्य बना देते हैं, इस प्रसंगों से पुराण, इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। परन्तु कुछ भ्रान्तियाँ इस क्षेत्र में ऐसी व्याप्त हैं जिन्होंने सामान्य व्यक्ति को दिग्भ्रान्त ही नहीं किया है—शक्तिपात के नाम पर गुरु-शिष्य परम्परा को कलंकित भी किया है। तथाकथित गुरुओं ने ऐसे जाल-जंजाल खड़े कर दिये हैं जिन्हें देखकर कोई भी व्यक्ति भटक सकता है। इसलिये इसके वास्तविक स्वरूप को जानना जरूरी है।

साधना पथ में गुरु वरण किया जाता है। गुरु वह है जो अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलता है। कहा गया है—

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

"जिस गुरु ने ज्ञान के अंजन की शलाका आँखों में लगाकर अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाया, उन गुरुदेव को नमस्कार है।"

गुरु भी दो होते हैं, एक वह जो अन्तरात्मा के रूप में बैठे प्रेरणा देते रहते हैं, दूसरे वह जिन्हें विशिष्ट व्यक्ति-मार्गदर्शक के रूप में वरण किया जाता है। महत्ता दोनों की ही है।

निरन्तर सद्शिक्षण और ऊर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना अन्तःकरण में विराजमान गुरु द्वारा ही सम्भव है, बाहरी गुरु हर समय शिष्य के साथ तो है नहीं। जबकि शिष्य के समक्ष, निरूपण और निराकरण हेतु अगणित समस्यायें प्रस्तुत होती रहती हैं। इनमें से किस का किस प्रकार समाधान किया जाय, इसका मार्गदर्शन मात्र अपना परिष्कृत अन्तःकरण कर सकता है। प्रसुप्त रूप पड़ा समष्टि सत्ता का लघु रूप में हर समय साथ रहता है। यह भीतरी और बाहरी परिस्थिति की जितनी जानकारी रखता है उतनी और किसी को नहीं है।

परन्तु मानव की दृष्टि स्थूल है। इस कारण यह सूक्ष्म आत्म-प्रेरणाओं को नहीं समझ पाती। आत्मबल सम्पन्न गुरु का वरण शिष्य को इन प्रेरणाओं को समझने—आत्मसात् कर दिशा निर्धारित करने के लिये ही किया जाता है। अतः गुरु को जगाने का काम भी गुरु ही करता है। अपने आत्मबल द्वारा वह शिष्य में ऐसी शक्ति-प्रेरणायें भरता है जिससे वह सद्मार्ग पर चल सके। साधना मार्ग के विक्षोभों एवं अवरोधों के निवारण में गुरु का असाधारण योगदान होता है। मनुष्य की सामर्थ्य अनन्त है। वह शक्ति का पुंज है। पर जब तक यह आत्मबोध न हो जाय अन्तःशक्ति के वैभव का समुचित लाभ उठा पाना साधक के लिये सम्भव नहीं हो पाता। गुरु शिष्य को अन्तर्जगत का पर्यवेक्षण कराते हैं, उसकी सामर्थ्य का बोध कराते हैं। सामर्थ्य को जागृत, विकसित कर सुनियोजित करने के हर सम्भव उपाय बताते हैं। इसका लाभ साधक को आत्मबल व मनोबल के रूप में मिलता है। यही शक्ति साधक के अन्तर्जगत के देवासुर संग्राम में विकारों को उखाड़ फेंक देने में सहायक सिद्ध होती है।

गुरु का यह अनुदान शिष्य अपनी आन्तरिक श्रद्धा के रूप में उठाता है। जिस शिष्य में आदर्शों व सिद्धान्तों के प्रति जितनी अधिक निष्ठा होगी, वह गुरु के इस अनुभव से उतना ही लाभान्वित होता है। प्रत्येक शिष्य अपनी श्रद्धा-पूँजी के अनुरूप, उसी अनुपात में उसे प्राप्त करता है।

अधर्म अधर्मयोः साम्ये जाते शक्तिः पतत्यसै।

ज्ञानात्मिका पराशक्तिः शंभोर्यास्मिन्निपातित।।

—महायोग विज्ञान

अर्थात्—जब शिष्य के धर्मा-धर्म, रूप-संस्कार, सभ्यता को प्राप्त होते हैं, तब ईश्वर से प्राप्त उस ज्ञानात्मिका पराशक्ति का समर्थ गुरु द्वारा शक्तिपात किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोहा जिस प्रकार पारस के सम्पर्क में आकर सोना बन जाता है। उसी प्रकार ऐसे उच्चस्तरीय प्राण-प्रहार प्रयोगों में साधक के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। ऐसे शिष्य जन-प्रवाह के बहते ढर्रे के जीवन से मुख मोड़कर वह मार्ग अपनाते हैं जो कठिनाइयों—संघर्षों से भरा होता है। वे अपने व्यक्तित्व को गुरु की प्राणशक्ति के चुम्बकत्व से प्रभावित कर उसे भी वैसा ही प्रभावशाली—प्रबल बना सकने में समर्थ हो जाते हैं। शक्तिपात की अनुभूति नहीं—परिणति महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के जीवन में देखा जा सकता है। रामकृष्ण ने अपनी शक्ति और तपस्या का फल प्रदान करके युवक नरेन्द्र की कायापलट कर दी और उनको जगतपूज्य स्वामी विवेकानन्द बना दिया। आरम्भ में जब वे नरेन्द्र के नाम से कालेज की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और पश्चिमी विज्ञान और दर्शन के सामने भारतीय अध्यात्मवाद को महत्त्वहीन समझते थे तब परमहंस जी ने ही आग्रह पूर्वक उनको अपने पास बुलाया और कन्धे पर पैर रखकर आध्यात्मिक विद्युत का ऐसा झटका दिया, जिससे उनके विचारों में अद्भुत परिवर्तन हो गया और वे पश्चिमी शिक्षा की मृग मरीचिका को त्यागकर भारतीय संस्कृति और ज्ञान के अनुगामी बन गये। फिर जब परमहंस जी का अन्तकाल आया तो दो दिन पूर्व उन्होंने स्वामी जी को एकान्त में अपने पास बिठाकर अपनी समस्त शक्ति उनमें भर दी। जिस समय परमहंस जी ने अपने हाथ उन पर रखे तो वे स्तब्ध दशा को प्राप्त हो गये और आध घंटा तक यही अनुभव करते रहे कि जैसे किसी बिजली, डाइनमो से निकल कर विद्युत शक्ति बैटरी में समाती जाती है। अन्त में जब उनको चैतन्य दशा प्राप्त हुई तो उन्होंने परमहंस जी को रोते हुये पाया। परमहंस जी ने कहा आज मैंने अपनी जन्म भर की कमाई (शक्ति) तुमको दे डाली, अब मेरे पास कुछ नहीं रहा। आगे चलकर तुम्हारा यह कर्त्तव्य होगा कि इस शक्ति का लोकसेवा में उपयोग करो।

यही भारतीय गुरुओं का "शक्तिपात" का सिद्धान्त है। इसका आशय यह है कि केवल अध्यात्म-ज्ञान का उपदेश करने से अथवा मन्त्र दे देने से शिष्य की विशेष उन्नति नहीं हो सकती; इसके साथ ही जब गुरु शिष्य को अपनी शक्ति परिचालित करते हैं, तब उनके भीतर आत्म-शक्ति जागृत होती है और वे विशेष कार्य करके दिखला सकते हैं। इस सम्बन्ध में भी वासुदेवानन्द ने लिखा है—

शक्ति पातेन संयुक्ता विद्या वेदान्त वाक्यजा।
यदा यस्य तदा तस्य विमुक्तिर्नात्र संशयः।।

"वेदान्त वाक्य से प्राप्त विद्या जब शक्तिपात के साथ जिसमें संयुक्त होती है, तब उसी क्षण वह मुक्त हो जाता है।"

शक्तिपात विहीनोऽपि सत्यवाग् गुरुभक्तिमान।
आचार्याच्छ्रुत वेदान्तः क्रमानुच्यते बन्धवात्।।

"गुरुभक्तियुत शिष्य शक्तिपात रहित होकर भी वेदान्त वाक्य के श्रवण, मनन, निदिध्यासन से प्रतिबन्धक्षय होने पर क्रमशः बन्धन से मुक्त हो जाता है।"

"सूत संहिता" में माया के बन्धन से छूटने का साधन इस प्रकार बतलाया है—

तत्त्वज्ञानेन मायाया बाधो नान्येन कर्मणा।
ज्ञानं वेदान्त वाक्योत्थं ब्रह्मात्मैकत्व गोचरम्।।
तथ देव प्रसादेन गुरोः साक्षान्निरीक्षणत्।
जायते शक्तिपातेन वाक्यादेवाधिकारिणाम्।।

"तत्वज्ञान से माया का निरोध होता है, अन्य किसी कर्म से नहीं होता। यह तत्वज्ञान अधिकारी शिष्य को देव प्रसाद के द्वारा शक्तिपात पूर्वक ब्रह्म से ही प्राप्त होता है।"

श्रीमान् शंकराचार्य इस युग के सब से बड़े योगी और ज्ञानी हुये हैं, जिन्होंने थोड़े ही वर्षों में वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना करके धर्म प्रचार का ऐसा संगठन किया, जो डेढ़ हजार वर्ष के लगभग हो जाने पर भी आज तक प्रभावशाली बना हुआ है और जिसके द्वारा अब भी आध्यात्मिकता और आत्मज्ञान का प्रचार देश भर में हो रहा है। उन्होंने शक्तिपात पूर्वक ज्ञानदान करने वाले सद्गुरु का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवन जठरे
सद्गुरोर्ज्ञान दातुः।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति
यदहो स्वर्णतामश्य सारम्।।
न स्पर्श त्वं तथापि श्रितचरणयुगे
सद्गुरुः स्वीय शिष्ये।
स्वीयं सभ्यं विधत्ते भवति
निरुपमस्तेन वा लौकिकोऽपि।।

"इस त्रिभुवन में ज्ञानदाता सद्गुरु के लिये देने योग्य कोई दृष्टान्त ही नहीं दीखता। उन्हें पारसमणि की उपमा दें, तो यह भी ठीक नहीं जँचती। कारण पारस लोहे को सोना बना देता है, पर पारस नहीं बनाता। पर सद्गुरु के चरण युगल का आश्रय लेने वाले शिष्य को सद्गुरु निज साम्य ही दे डालते हैं। अर्थात् अपने समान ही बना देते हैं। इसलिये सद्गुरु की कोई उपमा नहीं दी जा सकती।"

ज्ञानेश्वर महाराज महाराष्ट्र के बहुत बड़े संत हुये हैं। जिनकी रचित गीता की "ज्ञानेश्वरी टीका" सैंकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी अद्वितीय मानी जाती है। उनका जन्म एक समाज-च्युत पिता के गृह में हुआ था, पर उन्होंने किसी ऐसे ही सद्गुरु की कृपा से बाल्यावस्था में ही अद्भुत शक्ति प्राप्त कर ली थी। उन्होंने गुरुद्वारा शक्तिपात का वर्णन करते हुये लिखा है—"यह दृष्टि जिस पर चमकती है अथवा यह करारविन्द जिसे स्पर्श करता है, वह होने को तो चाहे जीव ही हो, पर बराबरी करता है महेश्वर शंकर की। भक्तराज अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने इसी प्रकार शक्तिपात करके आत्मानुभव कराया था। भगवान ने अपना सुवर्ण कंकण विभूषित, दक्षिण बाहु फैलाकर शरणागत अर्जुन को हृदय से लगा लिया। हृदय-हृदय एक हो गये। जो इस हृदय में था, उसे उस हृदय में दिया। द्वैत का नाता बिना तोड़े अर्जुन को अपने जैसा बना लिया। ऐसे सद्गुरु सच्चे शिष्य को स्वयं ही मिल जाते हैं उनको ढूँढ़ना-खोजना नहीं पड़ता। जब कर्मसाम्य की अवस्था आती है तब सद्गुरु स्वयं ही आकर मिलते हैं।"

इससे विदित होता है कि "शक्तिपात" निस्सन्देह बड़ी महत्त्वपूर्ण क्रिया है और अनेक संत-महात्माओं को ऊँचे दर्जे की आध्यात्मिक स्थिति इसी उपाय से प्राप्त होती है। हम अनेक बार देखते हैं कि अनेक साधारण व्यक्ति छोटी अवस्था में ही बिना किसी विशेष प्रयत्न के आत्म-शक्ति से भर जाते हैं और अद्भुत कार्य करके दिखलाने लगते हैं, यह सब प्रभाव किसी ऐसी ही विशेष शक्ति का होता है। श्री रामकृष्ण परमहंस गाँव के रहने वाले साधारण अपढ़ बालक थे, पर १५-१६ वर्ष की अवस्था में ही वे परम भक्त बन गये और थोड़े ही समय में समस्त बंगाल प्रान्त में उनकी ख्याति फैल गई। इसी प्रकार माता आनन्दमयी साधारण गृहस्थ स्त्री थीं, जिनके पति छोटी सी क्लर्क की नौकरी करते थे, पर उनमें आत्म-शक्ति के महान् लक्षण दिखलाई पड़ने लगे और आज वे आध्यात्मिक जगत् की एक विशेष विभूति मानी जाती हैं। शास्त्रों से यह भी विदित होता है कि जब किसी अधिकारी व्यक्ति में ऐसा शक्तिपात का प्रयोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हो जाता है, तो उसे फिर साधारण व्यक्तियों की तरह छोटे-छोटे साधन क्रम से नहीं करने पड़ते, वरन् सभी तरह की सरल और कठिन क्रियायें उससे स्वयं ही होने लगती हैं, उदाहरण के लिये योग-साधन के इच्छुक सभी व्यक्तियों को यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि का साधन करके आगे की मंजिलों की तरफ अग्रसर होना पड़ता है। परन्तु जिस व्यक्ति में कोई महात्मा शक्तिपात कर देते हैं, वे इन सब क्रियाओं को बिना किसी के सिखाये स्वयमेव ठीक-ठीक ढंग से करने लगते हैं और दस-पाँच दिन में ही उनमें दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार जो लोग वर्षों तक जप करके किसी मन्त्र को सिद्ध नहीं कर सके थे, वे शक्तिपात के बाद अनायास उसमें सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये आध्यात्मिक उन्नति के लिये सद्गुरु द्वारा शक्तिपात का बड़ा महत्त्व है। पर ऐसा सुयोग्य अधिकारी शिष्य को ही मिलता है; जो पात्र नहीं है उसे इस प्रकार का शक्तिपात विपरीत परिणाम उत्पन्न करने वाला ही सिद्ध होता है।

दिव्य-शक्तियों के हस्तान्तरण की प्रक्रिया

गायत्री को गुरुमन्त्र कहा गया है। उसकी सफलता के लिये शास्त्रों ने समर्थ गुरु से दीक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेने की आवश्यकता पर जोर दिया है और कहा है कि इसका प्रावधान न हो सकने पर सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी। इस उत्तरदायित्व को हर कोई नहीं उठा सकता। समर्थ गुरु में ब्रह्मा, वशिष्ठ और विश्वामित्र के तीनों गुण होने चाहिये। ब्रह्मा का अर्थ है—वेद ज्ञान में पारंगत, नूतन संरचना में समर्थ। वशिष्ठ का अर्थ है—ब्रह्मपरायण, सदाचार सम्पन्न, विशिष्ट आत्मबल का धनी। विश्वामित्र का अर्थ है—परम तपस्वी, विश्वकल्याण के क्रिया-कलापों में निरन्तर संलग्न रहने वाला। इन तीनों गुणों से सम्पन्न गुरु को ही गायत्री मन्त्र की गुरुदीक्षा देने और अनुष्ठानकर्त्ताओं का मार्गदर्शन, संरक्षण, परिमार्जन कर सकने के लिये समर्थ अधिकारी माना गया है। ऐसे सद्गुरु का सहयोग, सान्निध्य जिसे मिल सके, समझना चाहिये उसकी साधना का समुचित सत्परिणाम उत्पन्न होकर रहेगा।

गायत्री की उच्चस्तरीय या अन्यान्य अध्यात्म साधनाओं में भी साधना मार्ग के अवरोधों, विक्षोभों एवं कुसंस्कारों के निवारण में गुरु का असाधारण योगदान होता है। वह शिष्य को अन्तः शक्तियों से परिचित ही नहीं कराते, वरन् उसे जाग्रत एवं विकसित करने, व्यक्तित्ववान बनाने के हर सम्भव उपाय भी करते हैं। वह अपनी प्रचण्ड प्राण ऊर्जा, तपश्चर्या एवं पुण्य-सम्पदा का एक अंश देकर शिष्य की पात्रता एवं क्षमता बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। गुरु द्वारा अपनी शक्ति को हस्तांतरित करने की यह प्रक्रिया 'शक्तिपात' कहलाती है। शास्त्रों में उल्लेख है—**"तत्पातः शिष्येषु"** अर्थात् उस शक्ति का पात शिष्यों में होता है। यह एक ऐसी आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से सद्गुरु अपनी दिव्य शक्ति को शिष्य में संचारित करते हैं ताकि उसकी प्रसुप्त पड़ी अन्तः शक्तियों का जागरण हो सके और बुद्धि निर्मल बन सके। गुण, कर्म, स्वभाव एवं चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में पवित्रता-प्रखरता का समावेश हो सके और वह अतीन्द्रिय विषयों की सूक्ष्मता को जान सके। तन्त्रशास्त्रों में इसे ही परम शिव का अनुग्रह कहा है। सद्गुरु उन्हीं के प्रतीक हैं जो अपनी शक्ति का हस्तान्तरण शिष्य के, साधक के कल्याण हेतु करते हैं।

अध्यात्म शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख है कि साधना पथ में गुरुवरण अनिवार्य है। गुरु-कृपा के बिना इस दिशा में प्रगति सम्भव नहीं। शिव पुराण वायवीय संहिता में कहा गया है—

शक्तिपात समायोगादृते तत्वानितत्वतः।

तद्व्याप्तिद्विशुद्धिश्च ज्ञातुमेव न शक्यते।।

अर्थात्—शक्तिपात के गुरु-अनुग्रह के समायोग के बिना तत्वतः तत्वों का ज्ञान, आत्मा की व्यापकता और शुद्ध-बुद्ध स्वरूप का ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। समर्थ गुरु ही इस धरती पर आद्यशक्ति के प्रतीक प्रतिनिधि हैं, जो अपने आत्मबल से शक्ति संचरण करते, प्रेरणा उभारते और शिष्य की प्रसुप्त क्षमतओं-प्रतिभाओं को, आध्यात्मिक शक्तियों को, जो ज्ञानमयी हैं, जगाकर समस्त विघ्नों से बचाते हुये पार ले जाते हैं। उनकी समर्थता का लाभ साधक को आत्मबल एवं मनोबल के रूप में मिलता है, जो उसे अवांछनीयताओं से लड़ने और अन्तःविकारों को उखाड़ने की सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

अन्यत्र भी कहा है—**"शक्तिपाताद्विशेषेण"** अर्थात् शक्तिपात के द्वारा विशेषता से शक्ति का जागरण होता है। इससे साधक के आत्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जाता है। उसमें परमार्थ-परायणता का, भगवद् भक्ति का, आत्मबल का विकास होता है। गुरु का यह अनुदान साधक अपनी आन्तरिक श्रद्धा के रूप में उठाता है। जिस शिष्य में श्रद्धा-समर्पण की जितनी अधिक गहनता तथा आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा होगी, वह गुरु के अनुदानों से उतना ही अधिक लाभान्वित होता है। प्रत्येक साधक अपनी श्रद्धा पूँजी के अनुरूप ही उसे प्राप्त करता और अन्तःशक्तियों को विकसित करता हुआ व्यक्तित्व सम्पन्न बनता है। शक्तिपात का यही दर्शन है। यह एक समय-साध्य एवं साधन साध्य प्रक्रिया है, जो अपनी श्रद्धा अभिपूरित साधना द्वारा साधक गुरु से प्राप्त करता है। यह कोई आकस्मिक क्रिया नहीं है जिसके द्वारा तत्काल चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त की जाती हैं, वरन् एक लम्बे समय तक चलने वाली साधना पद्धति है जिसके अवलम्बन से शिष्य अपनी दुष्प्रवृत्तियों, कषाय-कल्मषों एवं कुसंस्कारों से पीछा छुड़ाता तथा आत्मिक प्रगति करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूत संहिता में कहा गया है कि गुरु शिष्य के मायां, मोह का निराकरण करके और अज्ञानांधकार से छुड़ाकर आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करते हैं। सद्गुरु का शक्तिपात इसी रूप में होता है। शिष्य को व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने—आत्मबल बढ़ाने के रूप में इनका असामान्य पक्ष है। यह सुयोग किन्हीं विरलों को ही प्राप्त होता है। जिन्होंने अपनी क्षमता इस स्तर तक विकसित कर ली है कि शक्ति के अवतरण को धारण कर सकें। ऐसे व्यक्तियों को दिव्य अनुदान भी मिलते हैं, पर यह प्रक्रिया उच्चस्तरीय है। सार्वजनीन नहीं। इसके लिये साधक को अपने जीवन में उत्कृष्टता का समावेश करते हुये पात्रत्व का विकास करना होता है। गुरु ऐसे व्यक्तित्वों को ही शक्ति, संचरण द्वारा परमतत्व में नियोजित करते हैं।

मुण्डकोपनिषद् १/२/१३ में उल्लेख है कि इस प्रकार की दीक्षा उसी शिष्य को दी जाती है और प्रतिफलित होती है, जो श्रद्धासिक्त शान्तचित्त, तप-तितिक्षा एवं साधना निष्ठ हो, कर्त्तव्य परायण हो। ऐसा शिष्य ही अविनाशी सत्स्वरूप आत्मा को जान और गुरुकृपा का लाभ उठा सकता है। जिसमें यह गुण नहीं उस ऊसर भूमि में किसी भी गुरु का बोया गया ज्ञान बीज नहीं जम सकता। गुरु के एक पक्षीय प्रयत्न से भी काम नहीं चल सकता। दोनों ही पक्षों की श्रेष्ठता से गुरु-शिष्य संयोग का सच्चा लाभ मिलता है।

यह एकाकी चलने वाली प्रक्रिया नहीं है, वरन् दोहरी पद्धति है। गुरु के अनुदान बरसते और शिष्य को अपनी सघन श्रद्धा का आरोपण करना पड़ता है। समर्पण जितना सघन होगा, दिव्य अनुग्रह से लाभान्वित होने का उतना ही अवसर मिलेगा। श्रद्धा की परिणति चरित्र-निष्ठा एवं कर्त्तव्य-परायणता के रूप में होती है। पात्रता के विकास द्वारा ही साधक अनुदानों का लाभ उठा पाते हैं। अनेकों क्रियायें हैं, जिनके द्वारा समर्थ गुरु से शक्ति ग्रहण की जाती है, पर उनमें क्रिया का कम अन्ततः श्रद्धा का, समर्पण का ही अधिक महत्त्व होता है। गुरु दर्शन्, नमन्-चरण वन्दन, वाक्यों के श्रवण द्वारा भी शक्ति अर्जित की जा सकती है।

गुरुकृपा से ही संसार सागर को पार किया जा सकता है। सन्त तुकाराम ने अपने एक अभंग में कहा है कि—"गुरु के बिना मार्ग प्राप्त नहीं होता, अतः सर्वप्रथम उनके चरणारविन्दों को स्पर्श करो। वह शरणागतवत्सल शिष्य को अपनी तरह ही बना लेते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये संत ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी गीता में बताया है कि कृष्ण के शक्तिपात से किस तरह अर्जुन को आत्मानुभूति हुई; इसका वर्णन करते हुये वे कहते हैं, "तब भगवान ने अर्जुन को दायाँ हाथ फैलाकर अपने हृदय से लगा लिया। दोनों हृदय एक हो गये। जो कुछ एक में था वह दूसरे में डाल दिया। द्वैत भी बना रहा, परन्तु अर्जुन को भगवान ने अपने जैसा बना लिया। सच्चे समर्पण में गुरुकृपा का यही विशेष लाभ है। भगवान राम को गुरु वशिष्ठ से जब यह प्रसाद प्राप्त हुआ था तो उन्हें भौतिक जगत से वैराग्य हो गया था। राज-वैभव को उनने त्याग दिया और युगधर्म का निर्वाह करने—अधर्म का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिये चल पड़े।

गुरुदीक्षा के पश्चात् शिष्य अनेकों कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों से लद जाता है। उन सब में आवश्यक कर्त्तव्य है—गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति भावना का समर्पण होना तथा उनके कार्यों को आगे बढ़ाना। यही वह आकर्षण है जिसके बल पर शिष्य गुरु के हृदय में से आवश्यक अनुदान सहायता और कृपा प्राप्त कर सकता है। नाला गंगा में मिलकर तद्रूप हो जाता, पवित्र बन जाता है। पारस का स्पर्श पाकर लोहा सोना बन जाता है। महत्त्व इसी का है। गुरु की कृपा किस रूप में बरसी ? शक्तिपात किस रूप में हुआ ? अनुग्रह की परिणति क्या हुई ? अनुभूतियाँ क्या हुईं ? महत्ता इसकी नहीं, वरन् फलश्रुतियों की है कि साधक के जीवन में परिवर्तन क्या आया ? उसकी मनःस्थिति में आमूलचूल परिवर्तन हुआ या नहीं।

गुरु द्वारा अपनी दिव्य शक्तियों को हस्तान्तरित करने-शक्तिपात द्वारा शिष्य की क्षमताओं को विकसित करने की घटनाओं से साधना ग्रन्थों एवं इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जुन, हनुमान, शिवाजी, विवेकानन्द, दयानन्द आदि के उदाहरण यह बताते हैं कि समर्थ सत्ता से, गुरु सत्ता से, जुड़ने-समर्पित होने के पश्चात् उन्होंने जन प्रवाह के बहते हुये ढर्रे के जीवन से मुख मोड़कर वह मार्ग अपनाया जो कठिनाइयों से भरा था। उन्होंने संघर्षों का आह्वान किया तथा उनसे व्यक्तित्व को इतना परिष्कृत किया जिससे सभी लोग प्रकाश एवं प्रेरणा ले सकें। विवेकानन्द में रामकृष्ण का, श्री माँ में अरविन्द का व्यक्तित्व झाँकता दिखाई देता था। इनके जीवन में महत्ता अनुभूतियों की नहीं, फलश्रुतियों की, सौंपे गये उत्तरदायित्वों को पूरा करने की स्पष्ट देखी जाती है। चरित्र की उत्कृष्टता एवं व्यक्तित्व की समग्रता ही गुरु अनुग्रह की वास्तविक उपलब्धि है। यह जिस भी साधक में जितनी अधिक मात्रा में दीख पडे, समझा जाना चाहिये गुरु शक्ति का हस्तान्तरण उतना ही अधिक उसमें हुआ है।

शक्तिपात और उसका आधार

सत्संग और कुसंग के भले-बुरे परिणामों से सभी अवगत हैं। इसमें कुछ भाग तो कथन परामर्श का भी रहता है और कार्य पद्धति के अवलोकन का भी। किन्तु अधिक प्रभाव व्यक्तित्व का रहता है जो प्रकाश की तरह अपने सम्पर्क क्षेत्र पर अपनी छाप छोड़ता है। अग्नि के समीप जाने पर उसकी गर्मी एक परिधि तक स्वयमेव पहुँचती है।

इसके लिये यह आवश्यक नहीं कि उसका स्पर्श आवश्यक हो, पुष्पों की सुगन्ध और कूड़े-करकट की सड़न का एक दायरा बन जाता है और उसका प्रभाव सहज ही उन लोगों तक पहुँचता है जो उस परिधि में होते हैं। आग में मिर्च जलाये जाने पर उससे छींकें आने और खाँसी उठने का सिलसिला दूर-दूर तक उठता दिखाई देता है हर व्यक्ति का अपना एक प्रभाव क्षेत्र होता है और वह बिना कुछ कहे भी एक आदान-प्रदान का क्रम चला देता है। सत्संग और कुसंग का प्रभाव मात्र वातावरण से भी सम्भव है।

मनुष्य शरीर के चारों ओर एक तेजोबलय होता है। उसे यन्त्रों की सहायता से प्रकाश युक्त भाप की तरह देखा जा सकता है। इसके साथ जुड़े रहने से विद्युत कण आगे-आगे उड़ते रहते हैं और सामर्थ्य के अनुरूप समीपवर्ती व्यक्तियों पर ही नहीं पदार्थों पर भी छाप छोड़ते हैं। इस प्रसंग में निकटता का और भी अधिक महत्त्व है। कमजोर पक्ष पर समर्थ पक्ष अनायास ही छा जाता है।

बच्चों को जिन बड़े व्यक्तियों के साथ रहने—गोदी में चढ़ने या खेलने का अवसर मिलता है। उनका स्वभाव तदनुरूप ढलना प्रारम्भ हो जाता है। इसलिये उन्हें यदि सुसंस्कारी बनाना है तो अनुपयुक्त व्यक्तियों के सान्निध्य में से यथासम्भव बचाया ही जाना चाहिये।

यह प्राण ऊर्जा उन पदार्थों में भी घुस पड़ती है जो व्यक्ति विशेष के सम्पर्क में आते हैं। वस्त्र, छड़ी, कलम, माला आदि जो वस्तुयें अधिक समय तक जिस किसी के साथ रहती हैं उसका प्रभाव ग्रहण कर लेती हैं और फिर जिनके भी पास जाती हैं, उन्हें प्रभावित करती हैं।

नारी और नर में यह चुम्बकत्व विशेष रूप से काम करता है। नारी में आकर्षण और पुरुष में विकर्षण स्तर का चुम्बकत्व होता है, जो निकटता होने पर अपनी चुम्बकीय ऊर्जा का हस्तान्तरण करने लगता है।

अध्यात्म साधकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है और कहा जाता है कि वे विपरीत लिंग के साथ घनिष्ठता न बनायें। उनसे यथा-सम्भव अधिक से अधिक दूरी बनाये रहें। विशेषतया दृष्टि न मिलायें क्योंकि चुम्बकत्व की मात्रा उसके माध्यम में अपना गहरा प्रभाव छोड़ती है। यौनाचार में तो जननेन्द्रियों का ही नहीं प्राण ऊर्जा का भी पारस्परिक घुलन-मिलन और आदान-प्रदान एक सीमा तक होता है कि दोनों ही पक्ष एक-दूसरे के साथ मिलकर व्यक्तित्वों के स्तर में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन करते हैं। इतना ही नहीं बहुधा भ्रूण स्थापित होने और दोनों के संयोग का प्रतिफल एक नये व्यक्ति का जन्म होने तक भी जा पहुँचता है।

व्यभिचार का प्रतिबन्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी किया गया है क्योंकि उसमें नर पक्ष अधिक घाटे में रहता है, अपनी प्राण ऊर्जा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक अंश गँवा बैठता है। साथ ही नारी पक्ष का चुम्बकत्व अनायास ही उससे बहुत कुछ अपहरण करके स्वयं तो लाभान्वित रहता है और अपने बहुत से दोष-दुर्गुण नारी पक्ष में छोड़ देता है। ऐसे ही रहस्यमय कारणों से पतिव्रत और पत्नीव्रत मर्यादाओं के अनुशासन पालन पर अंकुश लगाया गया है। विशेषतया आत्मिक प्रगति को लक्ष्य मानकर समर्थ पक्ष अपनी अध्यात्म सम्पदा को हस्तान्तरित करते समय यह विशेष रूप से परखता है कि कहीं अपनी बहुमूल्य सम्पदा को किसी कुपात्र के कीचड़ जैसे व्यक्तित्व पर तो नहीं उड़ेला जा रहा है। इसके लिये पात्रता का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है। अन्यथा उस उपलब्धि का दुरुपयोग होने पर ग्रहणकर्त्ता को ही नहीं, देने वाले, चलने वालों को विशेष रूप में सतर्क किया गया है।

अध्यात्म क्षेत्र में इसी प्रक्रिया का आदान-प्रदान उच्चस्तरीय भूमिका पर गुरु शिष्य के बीच भी होता है। गुरु अपनी संग्रहीत प्राण ऊर्जा का एक बड़ा भाग कारण विशेष के निमित्त शिष्य के लिये भी हस्तान्तरित कर सकता है। इस प्रक्रिया को शक्तिपात कहते हैं। इसमें भी संकट उठाना पड़ता है और भस्मासुर जैसी स्थिति बन पड़ती है। विभूति, वरदान को पचा न पाने के कारण भस्मासुर तो बेमौत मरा ही। शंकर पार्वती ही नहीं, विष्णु भगवान तक को उसके कारण हैरान होना पड़ा।

विवेकानन्द, दयानन्द आदि की निज की साधना उतनी नहीं थी, उन्हें गुरु पक्ष से जो असाध्य अनुदान मिले उनके कारण वे इतना कुछ कर सके, जितना एकाकी पुरुषार्थ से कदाचित् वे न कर पाते।

प्राचीन काल के गुरुकुलों की एक विशेषता यह भी थी कि वे अध्यापन करने वाले छात्रों में से सभी की पात्रता परखते रहते थे और उनमें से जो जिस प्रकार की जितनी प्राण ऊर्जा का अनुदान प्राप्त करने का अधिकारी होता था उसे उतना देकर उन्हें निहाल करने में कृपणता नहीं बरतते थे। किन्तु साथ ही यह भी अनुशासन निर्धारित करते थे कि इस अनुदान का उपभोग लिप्सा, तृष्णा, अहन्ता की पूर्ति जैसे क्षुद्र प्रयोजनों के लिये न किया जाय। उस सामर्थ्य के सहारे कहीं कोई अनीति परक दुष्कर्म न किया जाय। ऐसी दशा में उस अनुदान देने वाले को भी दण्ड भुगतना पड़ता है कि क्यों उसने पात्रता परखे बिना—उपलब्धि का उद्देश्य जाने बिना क्यों देने में उतावली बरती। कोई अपनी बन्दूक किसी अनाड़ी के हाथ सौंप दे और उसे पाकर वह किसी को मौत के घाट उतार दे या धमाका कर लूट-पाट करे तो इस अनर्थ में वह व्यक्ति जिसने बन्दूक अनुपयुक्त प्रयोग की आशंका का अनुमान लगाये बिना देदी भी अपराधी बनता है और उसे भी आक्रमणकारी की सहायता करने का दण्ड भुगतना पड़ता है। शक्तिपात के सम्बन्ध में यह सतर्कता भी रखी जाती है। जिनके पास इस प्रकार का भण्डार है, उसे प्रायः प्रकट करने से कतराते हैं ताकि कोई धूर्त, चापलूस झूठ-मूठ भक्ति-भाव दिखाकर या झूठा आश्वासन देकर उनकी सज्जनता का अनुचित लाभ न उठा ले।

जहाँ सामर्थ्य के अभाव में कोई उच्चस्तरीय कार्य रूकता है वहाँ उस कार्य को बिगड़ने न देने के लिये बिना माँगे भी महान् आत्मायें अपनी शक्ति का एक बड़ा भाग उन सत्पात्रों को अनायास ही सौंप देते हैं। ऐसा भी होता है कि कोई महान कार्य कराने के लिये कोई उच्च आत्मा किसी सत्पात्र को आग्रहपूर्वक ही ऐसा अनुदान हस्तान्तरित करे। शिवाजी और चन्द्रगुप्त ने बिना माँगे ही किसी उच्च प्रयोजन के निमित्त ऐसा अनुदान उपलब्ध किया था।

जो लोग शक्तिपात कर सकने की क्षमता का विज्ञापन करते हैं, उनमें से कदाचित् ही कोई इस योग्य होता हो। जो कर सकते हैं वे अकारण जहाँ-तहाँ चर्चा नहीं करते अन्यथा जेब का पैसा बार-बार दिखाने वाले को कोई जेबकट सहज ही चकमा दे सकता है।

जिस प्रकार पिता अपनी सम्पदा का उत्तराधिकार अपनी प्रिय सन्तान को दे जाता है; उसी प्रकार आत्मबल के धनी योगी तपस्वी भी अपने शिष्यों को शक्ति का अनुदान देते हुये आना-कानी नहीं करते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तिपात आध्यात्मिक भी, सांसारिक भी

मनुष्य शरीर में अनेक रसायन ही नहीं, उसमें जैव विद्युत् का भी एक बड़ा भाग है। मशीनें लोहे से बनी होती हैं पर वे अपने आप नहीं चलतीं। उन्हें चलाने के लिये अतिरिक्त शक्ति चाहिये। बड़े कारखानों में बड़ी मोटरें लगी होती हैं और उन्हीं की शक्ति से सभी यन्त्र चलते हैं। बिजली फेल हो जाय तो समूचे कारखाने की गतिविधियाँ ठप्प हो जाती हैं।

मनुष्य शरीर की बिजली ही उसकी गतिविधियों का मुख्यतया सूत्र-संचालन करती हैं। भोजन से उत्पन्न रस-रक्त तो कल-पुर्जों में चिकनाई भरता रहता है ताकि वे घिसने, लड़खड़ाने न पायें।

मनुष्य का आकार उसकी विशिष्टता का आधार नहीं है। स्थूलता के आधार पर किसी को बलिष्ठ नहीं कह सकते। प्राण ऊर्जा ही जीवनी-शक्ति के रूप में काम करती है और वही शरीर में बलिष्ठता, चेहरे पर सुन्दरता एवं मस्तिष्क में प्रतिभा बनकर प्रकट होती है।

अध्यात्म क्षेत्र में इस बिजलीघर को कुण्डलिनी कहते हैं। उसका प्रभाव मनुष्य की इच्छा शक्ति एवं संकल्प शक्ति के रूप में दृष्टिगोचर होता है। महत्त्वपूर्ण साहस एवं पराक्रम भी उसी के आधार पर बन पड़ता है। पतन पराभव के लिये तो व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई जन्म-जन्मान्तरों की संग्रहीत पशुता ही पर्याप्त है; किन्तु आदर्शों की दिशा में बढ़ते और महानता के अनुरूप उठने के लिये जिस विशिष्ट बल की आवश्यकता होती है उसी को मनोबल या आत्मबल कहा जाता है। इसी को परिपक्व करने के लिये कई आध्यात्मिक साधनायें करनी पड़ती हैं।

इस अभ्युदय का एक और भी तरीका है। प्रतिभाशील व्यक्तित्वों का सान्निध्य—सम्पर्क एवं तद्नुरूप वातावरण में निवास उस क्षेत्र की गतिविधियों में रस लेना, योगदान देना और अभ्यास करना। यह भी व्यावहारिक स्तर का कुण्डलिनी जागरण है।

विद्युत् शक्ति अपने केन्द्र में समाहित तो रहती है, पर उसके अनुकूल पदार्थ या प्राणी सम्पर्क में आते हैं तो उनमें भी दौड़ने लगती है। नल में बिजली का तार बाँध दिया जाय या कहीं शार्ट सर्किट हो रहा हो तो उससे पानी तक में करेण्ट आ जाता है और झटका मारता है। एक व्यक्ति को बिजली पकड़ ले और उसे दूसरा छुड़ाने लगे तो पकड़ में वह भी आ जायेगा। दूसरे को तीसरा पकड़े तो उसकी भी यही दशा होगी।

अध्यात्म क्षेत्र में भी ऐसे ही प्रयोग होते रहते हैं। हर व्यक्ति जेनरेटर नहीं बना सकता। कठोर साधनायें लम्बे समय तक करते रहने पर ऋषि कल्प लोग ही प्रचुर परिमाण में आध्यात्मिक ऊर्जा का संचय कर पाते हैं। पर उनके सम्पर्क में आने वाले, उस प्रभाव से एक सीमित मात्रा में पात्रता के अनुरूप अनायास ही लाभ उठा लेते हैं।

सत्संग और कुसंग की परिणति की हर कहीं चर्चा होती रहती है। कुसंग के फेर में पड़कर मनुष्य अपना चरित्र, यश और भविष्य गँवा बैठते हैं पर सत्संग का परिणाम वैसा ही होता है जैसे कि इत्र के कारखाने में काम करने वाले कर्मचारियों के कपड़े अनायास ही महकने लगते हैं। राजा के पी० एम० के चपरासी तक की शान और इज्जत होती है।

प्रतिभावानों में इस प्राण ऊर्जा की अधिकता होती है। वह सम्पर्क में रहने वालों के व्यक्तित्व को अनायास ही प्रभावित करते रहते हैं। जिस मिट्टी के ढेले पर सुगन्धित फूल टूटकर गिरते रहते हैं, वह ढेला भी सुगन्धित हो जाता है। चन्दन वृक्ष के निकट उगे हुये झाड-झंखाड़ भी सुगन्धित होने लगते हैं। कोयले की खदान में काम करने वाले मजदूरों के कपड़े और, हाथ-पाँव सभी काले हो जाते हैं।

आत्मिक ऊर्जा का उपार्जन तो होता ही है। उसे योगी तपस्वी करते भी हैं। परन्तु इस कमाई का लाभ उनके निकटवर्ती लोगों को भी मिलता रहता है। आम के बगीचे की रखवाली करने वाले मजदूरों को भी वे चखने के लिये मिलते रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपार्जन की तरह अनुग्रह का भी महत्त्व है। एक व्यक्ति धन कमाता है तो उसके कुटुम्बी, सम्बन्धी, सेवक, मित्र भी किसी न किसी प्रकार उसका लाभ उठाते हैं। तपस्वी अपने विश्वस्तों को अपने उपार्जन से लाभान्वित करते रहते हैं।

रामकृष्ण परमहंस ने अपनी तप-साधना विवेकानन्द में भर दी थी। समर्थ गुरु और शिवाजी के बीच में ऐसा ही हस्तान्तरण हुआ था। ऐसे और भी अनेकों प्रमाण हैं।

दैनिक जीवन में भी ऐसा ही होता है। पति-पत्नी के बीच घनिष्ठता हो तो बलिष्ठ पक्ष की क्षमता दुर्बल पक्ष की ओर दौड़ने लगती है और उसका प्रतिफल भी असाधारण रूप में देखने को मिलता है। लक्ष्मीबाई रानी ने छोटी ही आयु में अपने पराक्रमी पति का सारा कौशल हस्तगत कर लिया था। पार्वती राजा हिमाचल की पुत्री थीं पर वे शिव के साथ विवाहे जाने पर शक्ति रूप में परिणत हो गईं। कस्तूरबा गांधी को भी अपने पति की विशिष्टता के कारण ही इतना मान-गौरव मिला था। पार्वती को गणेश और कार्तिकेय जैसे देवपुत्र शिवजी के अनुग्रह से ही प्राप्त हुये। साधारण राजाओं की लड़कियाँ तो साधारण राजकुमारों को ही जन्म देती हैं।

अध्यात्म क्षेत्र में समर्थ गुरु अपने साधारण शिष्यों को अपने जैसा महान, महत्त्वपूर्ण बना लेते हैं। लोमस ऋषि के पुत्र या शिष्य शृंगी ऋषि बचपन से ही अपने पिता के समतुल्य बन गये थे।

ऐसे प्रसंगों में आन्तरिक घनिष्ठता ही प्रधान कारण होती है। वह गहरी और गम्भीर न हो तो बात नहीं बनती। उथली चापलूसी या दिखावटी सेवा-पूजा इस क्षेत्र में काम नहीं आती। वास्तविकता और बनावट अनायास ही अपनी स्थिति स्पष्ट कर देती है। बनावट असफल ही रहती है। 'बहुरूपिये' कई तरह के मुखौटे और सज्जा-साधन धारण करके कुछ से कुछ बनते रहते हैं, पर उनकी असली हैसियत किसी से छिपी नहीं रहती। अध्यात्म एक ठोस यथार्थता है। उसमें गुरु शिष्य या मित्र की घनिष्ठता भी तभी आदान-प्रदान का द्वार खोलती है, जब वह वास्तविक हो।

यहाँ सत्संग और कुसंग को ही एक प्रभावशाली तथ्य मान लेना चाहिये। मरते समय तो मनुष्य के साथ पाप-पुण्य ही जाता है पर अपने भौतिक उपार्जन को सम्पन्न लोग अपने कुटुम्बियों और सम्बन्धियों को भी दे जाते हैं। आध्यात्मिक उपार्जन का संस्कार पक्ष तो तपस्वियों के साथ ही चला जाता है पर वे अपनी सिद्धियों वाला पक्ष उन्हें ही दे जाते हैं जो उनके शरीर तक की निकटता नहीं रखते वरन् श्रद्धा-सद्भावना के आधार पर अन्तराल की गहराई तक प्रवेश करके अपना स्थान बना लेते हैं।

ऋषि बनने के लिये तो मनुष्य को अपना अन्तरंग और बहिरंग जीवन तपोमय बनाना पड़ता है। चेतना को व्यामोह से छुड़ाकर परब्रह्म के साथ सहयोगी बनाना पड़ता है। स्वयं की साधना के बिना ऋषि तो नहीं बना जा सकता। पर उनके सान्निध्य से महानता का लाभ मिल सकता है। यदि ऐसी आकांक्षा व पवित्रता अन्दर विद्यमान है। ऐसी सम्पदा वे अनुग्रहपूर्वक सुपात्रों को देते भी रहते हैं।

प्राण-संचार और शक्तिपात

अखिल आकाश में संव्याप्त प्राण तत्व को कोई भी भावनाशील साधक अपनी श्रद्धा और निष्ठा के अनुरूप उचित मात्रा में अपने में धारण कर सकता है। और ऐसा भी हो सकता है कि प्राणवान् व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने संग्रहीत प्राण में से कुछ अंश देकर उसे अधिक तीव्रगति से आत्मिक प्रगति कर सकने की क्षमता प्रदान करे। गुरु और शिष्य का रिश्ता प्रधानतया इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाता है। साधारण शिक्षा तो कोई भी अध्यापक या उपदेशक दे सकता है। पुस्तकें पढ़कर भी बहुत-सी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इतनी-सी बात के लिये गुरु की इतनी महिमा नहीं मानी जा सकती, जितनी कि शास्त्रों के पन्ने-पन्ने पर भरी पड़ी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्गदर्शक की आवश्यकता

आध्यात्म मार्ग पर वास्तविक प्रगति करने के इच्छुक को किसी सत्पात्र मार्गदर्शक की तलाश करनी पड़ती है। इसके बिना उसका मार्ग रुका ही पड़ा रहता है। जब साधारण-सी स्कूली शिक्षा में अध्यापक की आवश्यकता रहती है, साइंस, रसायन, शिल्प, शल्यक्रिया, यन्त्र-विद्या आदि सीखने के लिये किन्हीं अनुभवियों का सक्रिय मार्गदर्शन आवश्यक होता है, तो आत्म विज्ञान के छात्रों को शिक्षक की आवश्यकता क्यों न होगी ? पर खेद की बात है कि जैसे सच्ची लगन और श्रद्धा वाले साधक दिखाई नहीं पड़ते वैसे ही सत्पात्र गुरु भी अलभ्य हैं। उतावले शिष्य और ढोंगी गुरुओं की हर जगह भरमार है पर उनसे प्रयोजन कुछ सिद्ध नहीं होता। ठोस प्रगति के लिये आधार भी ठोस ही होना चाहिये। जिन्हें सत्पात्र मार्गदर्शक मिल गये उनकी आधी मंजिल पार हो गई ऐसा ही समझना चाहिये।

गुरु अपने शिष्यों को शिक्षा तो देते ही हैं। साथ ही अपने तप, पुण्य और प्राण में से भी एक अंश उसे प्रदान करते हैं। जैसे पिता अपनी कमाई का उत्तराधिकार पुत्र को छोड़ जाता है। वैसे ही गुरु भी अपनी उपार्जित आत्म-सम्पदा का एक बड़ा भाग अपने शिष्यों को प्रदान करता है। इसी कारण गुरु को धर्म पिता का स्थान दिया जाता है। जिस प्रकार पिता से पुत्र का गोत्र या वंश बनता है उसी प्रकार प्राचीन काल में गुरु से भी शिष्य का गोत्र बनता था, यही कारण है कि एक ही ऋषि के गोत्र विभिन्न वर्णों में पाये जाते हैं। यदि शिक्षा देना मात्र ही गुरु का काम रहा होता तो कदापि उन्हें इतनी महत्ता प्रदान न की जाती। पिता अपना वीर्य, पोषण, स्नेह और उत्तराधिकार देकर ही पुत्र की श्रद्धा का भाजन बन पाता है। धर्म पिता-गुरु को इससे भी अधिक देना पड़ता है। वह अपनी आत्मा को शिष्य की आत्मा में और अपने प्राण को शिष्य के प्राण में ओत-प्रोत करता है। केवल साधना का मार्ग ही नहीं बताता, वरन् आवश्यक शक्ति भी प्रदान करता है, जिसके बल पर वह आत्मोन्नति के कठिन मार्ग पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो सके। जिन्हें इस प्रकार की सहायता से वंचित रहना पड़ा उनमें से कोई विरले ही साधक सफलता प्राप्त कर सके, अन्यथा आधार दृढ़ होते हुये भी उन्हें बीच में ही लड़खड़ा जाना पड़ा।

शक्तिपात के सत्पात्र

योग शास्त्रों में शक्तिपात की चर्चा बहुत है। समर्थ गुरु शक्तिपात के द्वारा अपने शिष्यों को स्वल्प काल में आशाजनक सामर्थ्य प्रदान कर देते हैं। सिद्ध योगी तोतापुरी जी महाराज ने श्री रामकृष्ण परमहंस को शक्तिपात करके थोड़े ही समय में समाधि अवस्था तक पहुँचा दिया था। श्री परमहंस जी ने अपने शिष्य विवेकानन्द को शक्तिपात द्वारा ही आत्म-साक्षात्कार कराया था और वे क्षण भर में नास्तिक से आस्तिक बन गये थे। योगी मछीन्द्रनाथ ने गुरु गोरखनाथ को अपनी व्यक्तिगत शक्ति देकर ही स्वल्प काल में उच्चकोटि का योगी बना दिया था। योग और अध्यात्म मार्ग में ऐसे अगणित उदाहरण मौजूद हैं जिनमें समर्थ गुरुओं के अनुग्रह से सत्पात्र शिष्यों ने बहुत कुछ पाया है।

शिष्यों द्वारा सेवा के अनेकों कष्ट-साध्य उदाहरण धर्म पुराणों में भरे पड़े हैं। इस प्रक्रिया के पीछे एक बहुत बड़ा रहस्य छिपा पड़ा है। शिष्य की श्रद्धा, कर्त्तव्य, बुद्धि, कष्ट-सहिष्णुता, उदारता एवं धैर्य की परीक्षा इसीसे हो जाती है और पात्र-कुपात्र का पता चल जाता है। जब धन दान के लिये सत्पात्र याचक तलाश किये जाते हैं तो प्राण-दान जैसा महान दान कुपात्रों को क्यों दिया जाय ? सत्पात्र ही किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु का सदुपयोग कर सकते हैं। कुपात्र उच्च तत्वों का न तो महत्त्व समझते हैं और न उन्हें ग्रहण करने में समुचित रुचि ही लेते हैं। ठेल-ठाल कर कोई कुछ दे भी दे तो उसका स्वल्प काल में ही अपव्यय कर डालते हैं ? इसलिये अध्यात्म क्षेत्र में प्रगति करने के लिये जहाँ समर्थ गुरु की नितान्त आवश्यकता रहती है, वहाँ शिष्य की श्रद्धा एवं सत्पात्रता भी अभीष्ट है। दोनों ही पक्ष स्वस्थ हों तो प्रगति पथ की एक बहुत बड़ी समस्या हल हो जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरु का योगदान

अच्छी जमीन में भी पौधे तब उगते और बढ़ते हैं जब बीज, खाद और पानी की बाहर से व्यवस्था की जाती है। गुरु का कर्त्तव्य बीज, खाद और पानी की समुचित व्यवस्था करके शिष्य की मनोभूमि को हरी-भरी बनाना होता है। माली जो प्रयत्न अपने बगीचे को हरा-भरा बनाने के लिये करता है, वही कार्य एक कर्त्तव्यनिष्ठ गुरु को भी अपने शिष्यों के लिये करना पड़ता है। आज गुरु-शिष्य परम्परा, एक विडम्बना मात्र रह गई है। लकीर पीटने की तरह जहाँ-तहाँ शिष्य-गुरु के अत्यन्त दुर्बल आधार पर टिकी हुई परम्परा चिन्ह पूजा जैसी दिखाई पड़ती है। पर पात्रता के अभाव में उसका परिणाम कुछ भी नहीं निकलता और एक व्यर्थ की सी चीज बनकर रह जाती है। सत्पात्र शिष्य समर्थ गुरु की सहायता से जो लाभ उठा सकते हैं वैसा आज कितनों को मिलता है ? कितना मिलता है ?

गाय अपना दूध बछड़ों के लिये निचोड़ देती है, उसी प्रकार गुरु भी शिष्य की श्रद्धा से द्रवित होकर अपना संग्रहीत प्राण उसके लिये निचोड़ देता है। गुरु शिष्य का पास-पास रहना इसी दृष्टि से आवश्यक माना गया है। प्राचीन काल में साधारण ब्रह्मचारी गुरुकुलों में रहकर विद्याध्ययन करते थे और साथ ही गुरु का स्नेह एवं प्राणतत्व निरन्तर उपलब्ध करते रह कर अपनी आत्मा को सब प्रकार से परिपुष्ट बनाते थे। समीपता का प्रभाव पड़ता ही है। प्रबल व्यक्तित्व और श्रेष्ठ वातावरण के सान्निध्य में रहने मात्र से जितना लाभ होता है उतना अस्त-व्यस्त स्थिति में रहने वाला व्यक्ति बहुत साधन, अध्ययन और प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकता।

शक्तिपात की क्रमिक पद्धति

क्षण भर में अपनी सारी शक्ति शिष्य को प्रदान कर देने वाले सर्वमेध यज्ञ जैसे शक्तिपात कहीं-कहीं ही और कभी-कभी ही होते हैं। उसके लिये विशेष भूमिका वाले गुरुओं की और वैसे ही उच्च स्तर के शिष्यों की आवश्यकता होती है। वह कठिन है। वैसे सौभाग्य पूर्ण सुअवसर किन्हीं विरलों को ही मिलते हैं, पर क्रमिक शक्तिपात उतना कठिन नहीं है। गुरु शिष्य के बीच में यदि सच्ची आत्मीयता और श्रद्धा हो, दोनों प्रयत्न करें तो विकसित प्राण वाले गुरु की शक्ति एक नियत गति से स्वल्प प्राण वाले शिष्य की आत्मा में संचरित होती रह सकती है। अधिक जल वाले तालाब का पानी पास के कम पानी वाले तालाब में एक छोटी नाली खोदकर पहुँचाया जा सकता है। सद्गुरु भी अपनी आत्मा के प्रकाश से शिष्य का अन्तःकरण प्रकाशित कर सकते हैं।

यह आवश्यक नहीं कि प्राण-संचार पास-पास रहने पर ही हो, दूरस्थ व्यक्ति भी परस्पर एक दूसरे में प्राण प्रवाह संचरित कर सकते हैं। मादा कछुआ अपने अण्डे बालू में देती है और अपनी संकल्प शक्ति प्रेषित करके उन्हें पकाती रहती है। यदि किसी कारणवश वह मादा कछुआ मर जाय, तो फिर अण्डे भी सड़ जाते हैं और उनमें से बच्चे नहीं निकल सकते। कछुए की भाँति प्राण शक्ति सम्पन्न गुरु भी अपने दूरस्थ शिष्यों में शक्ति संचार कर सकता है।

प्राण संचालन विद्या के आधार पर दूरस्थ रोगियों की चिकित्सा कैसे की जा सकती है और किन्हीं के कुविचारों को हटाकर उनके स्थान पर सद्भावनाओं की स्थापना कैसे की जा सकती है ? इसका वर्णन 'विचार संचालन विद्या" पुस्तक में पाठक पढ़ चुके होंगे। प्राण-संचालन के माध्यम से रेड़ियो ब्राडकास्ट की तरह एक आत्मा की शक्ति दूसरी आत्मा तक पहुँच सकती है। मूलबन्ध, भस्त्रिका, प्राणायाम और शांभवी मुद्रा की घर्षण क्रिया से उदान प्राण को क्षुभित किया जाता है और जब वह उत्तेजित होकर लोम-विलोम गति से संचरण करने लगे तो इसे सूर्य-चक्र में आबद्ध कर लिया जाता है। यहाँ से उस प्राण को किन्हीं व्यक्तियों के लिये रेडियो ब्राडकास्ट की तरह ईथर तत्व के माध्यम से प्रेषित किया जा सकता है। जिसके लिये यह प्राण प्रेषण किया जाय वह नियत निर्धारित समय ध्यानमग्न होकर बैठता है और उस प्रेषित शक्ति का आवाहन एवं अवधारण करता रहता है। इस प्रकार प्राण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचार की क्रमिक शक्तिपात विधि-व्यवस्था द्वारा दूरस्थ व्यक्ति भी किसी प्राणवान मार्गदर्शक का ओजस् अपने लिये प्राप्त कर सकते हैं।

प्राण-प्रवाह का प्रत्यक्ष अनुभव

इस प्रकार प्राण-संचार का अनुभव शिष्य को प्रत्यक्ष जैसा ही होता है। अपने चारों ओर से उसे पीत आभा वाला, शुभ्र वर्ण, भाप के बादलों जैसा प्राण प्रवाह उड़ता दिखाई पड़ता है। धुनी हुई रूई या हल्की बरफ जैसी कोई वस्तु उसे अपने चारों ओर उफनते दूध के झागों की तरह चलती-फिरती दीखती है। अवधारण करने से वह प्रवाह साधक के इन्द्रिय-छिद्रों तथा रोम-कूपों द्वारा प्रवेश करता है। इस प्राण संचार के साथ ही उसे अपने में अनेकों उच्चकोटि की अध्यात्म भावनायें भी प्रविष्ट एवं प्रतिष्ठित होती दीखती हैं। प्राण संचार का यह क्रमिक शक्तिपात किन्हीं को सुलभ हो सके तो उनका प्राणमय कोश विकसित होने में और भी अधिक सुविधा होती है और लक्ष की प्राप्ति अधिक सफल एवं सुनिश्चित बन जाती है।

ग्रहण सरल है, प्रेषण कठिन

इच्छा शक्ति, संकल्पबल, एकाग्रता, अनुशासन यह सामान्य जीवन की योग साधनायें हैं जिन्हें किसी भी माध्यम से विकसित किया जा सकता है। अपने आप को बिखराव से बचाकर एकाग्र, तन्मय कर लेना मनःक्षेत्र की साधना है। इन्हें दैनिक सामान्य क्रिया-कलापों में समन्वित रखकर भी अपने मनःसंस्थान के बिखराव को बचाया जा सकता है। इतना भर कर लेने से आध्यात्म धाराओं के प्रभाव को ग्रहण करने की पात्रता विकसित की जा सकती है। पर इतने भर से काम नहीं चलता। प्रेरक शक्ति को किसी अन्य पर प्रयोग करने के लिये विशेष स्तर की सामर्थ्य अर्जित करनी पड़ती है। उसके लिये विशिष्ट साधनायें करना आवश्यक है।

रेडियो की आवाज पकड़ने के लिये साधारण ट्रान्जिस्टर काम दे जाते हैं। पर प्रसारण करने के यन्त्र जहाँ भी लगे होते हैं वे बड़ी ताकत के भी होते हैं और बड़ी कीमत के भी। आँखों के सामने के दृश्य सहज ही दीख जाते हैं पर दूर देशों तक किसी दृश्य को भेजना या देखना हो तो टेलीविजन प्रेरणा और ग्रहण के समग्र तन्त्र पास में होना चाहिये। कान समीपवर्ती वार्तालाप को सहज ही सुन लेते हैं। पर यदि बहुत दूरी तक आवाज पहुँचानी हो तो उसके लिये टेलीफोन तार और उसके लिये अभीष्ट ताकत वाली बैटरी चाहिये। सामान्य गति से तो अपने पैर भी चल लेते हैं, पर तेजगति से दौड़ना हो तो मोटरसाइकिल चाहिये और उसमें पर्याप्त तेल, पेट्रोल भरा रहना चाहिये। यही बात अध्यात्म प्रसंगों के सम्बन्ध में भी है। ग्रहण सरल है, प्रेषण दुर्लभ। लाभ उठाना और खर्च करना सरल है पर कमाना और सम्भालना कठिन। किसी के द्वारा प्रेषित शक्ति को ग्रहण कर लेने में उतनी कठिनाई नहीं है। उसमें मनोयोग से, एकाग्रता से की साधना से काम चल जाता है। यह प्रयोग साधनाओं द्वारा तो हो ही सकता है। पर यह भी सम्भव है कि तन्मयता के आधार पर किये जाने वाले दैनिक कार्यों में तनिक अधिक अभिरुचि और जिम्मेदारी का समावेश किया जाय तो मन का बिखराव सिमट कर एक केन्द्र पर केन्द्रीभूत होने लगेगा। सरकस वाले कलाकार, अभिनेता हिसाब रखने वाले मुनीम, खिलाड़ी, बाजीगर, मदारी, आदि का सारा क्रिया-कलाप एकाग्रता के आधार पर ही चलता है। यदि वे ध्यान बटा दें। करें कुछ सोचें कुछ, देखें कहीं सुनें कहीं तो उनका मानसिक बिखराव सारा खेल बिगाड़ देता है। किसी के द्वारा प्रेषित भाव संवेदन या आध्यात्मिक क्षमता यदि एकाग्रतापूर्वक ग्रहण की जाय तो उसका समुचित लाभ मिलेगा ही।

हल्के लाभ उठाने के लिये संकल्प शक्ति, इच्छा शक्ति और एकाग्रता के समन्वय से काम चल जाता है। कहीं कोई घटना हुई है और उसका संदेश किसी तक पहुँचना या पहुँचाया जाना है तो इसमें इतनी ही बैटरी खर्च होगी जितनी कि ग्रहीत को उसे पकड़ने के लिये चाहिये।

समुद्र से भाप बनकर उठने और बादल बनने में अनेकों झंझट खड़े होते हैं किन्तु जब वे बरसते हैं तो कुछ ही समय में जल, जंगल एक कर देते हैं। कुण्डलिनी शक्ति का जागरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कठिन है। उसके लिये संयम बरतने की और साधना करने की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु यदि किसी ने वह शक्ति अर्जित, एकत्रित कर ली हो तो, उसके कुछ अंश का लाभ किसी को देने में अड़चन नहीं है। पैसा कमाने में बुद्धि भी लड़ानी पड़ती है और मेहनत भी करनी होती है। पर यदि उस पैसों को उधार या दान देना हो तो बड़ी से बड़ी सम्पत्ति कुछ ही देर में खप जायेगी। साधना उन्हें करनी पड़ती है जो किसी को कुछ देना चाहते हैं। अध्यात्म क्षेत्र में यह सिद्धान्त आदिकाल से चला आया है।

प्रत्यक्ष शरीर का कोई भी अंग काटकर किसी दूसरे के शरीर में प्रयुक्त होने के लिये दिया जा सकता है। हृदय दान, गुर्दा दान, नेत्र दान, रक्त दान आदि की शल्य क्रियायें प्रायः होती रहती हैं।

प्राण उपार्जन यों निजी सम्पदा है पर कोई उदारचेता अपनी कमाई का कुछ अंश किसी दूसरे को भी हस्तान्तरित कर सकते हैं। इसी को आध्यात्म भाषा में शक्तिपात कहा गया है। लोक व्यवहार में जिस प्रकार धनी लोग जरूरतमंदों को दान देते रहते हैं, उसी प्रकार दुर्बल प्राण व्यक्तियों को, सशक्त प्राण वाले अपनी अध्यात्म सम्पदा का उपयुक्त भाग दान करते रहते हैं। इस उपलब्धि के सहारे वे अपने कष्टों से छूटते हैं और अभीष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक कारगर सहायता प्राप्त करते हैं।

शक्तिपात के सम्बन्ध में योगचूड़ामणि, तेज बिन्दुपनिषद्, ज्ञान संकलिनी तत्व, हठयोग संहिता, कुलार्णवतन्त्र, घेरंड संहिता, रुद्र यामल तन्त्र, योग कुण्डल्युउपनिषद्, शारदा तिलक आदि ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन है। यह प्रबल प्राण वाले व्यक्ति द्वारा अपनी सामर्थ्य दूसरे के लिये हस्तान्तरित करने के सदृश है। उधार या दान में किसी को पैसा दिया जा सकता है। उसी प्रकार निकट सान्निध्य में यह शक्ति स्वयं भी अधिकारी लोगों की ओर चलने लगती है, अथवा प्रयत्नपूर्वक चलाई जा सकती है।

जलते चूल्हे के पास बैठने पर शरीर गरम होने लगता है। इसी प्रकार इस शक्ति की समीपता अपेक्षित होती है। नर और नारी के बीच यह आकर्षण-विकर्षण अनायास ही काम करने लगता है। इसीलिये योगीजन अपनी सामर्थ्य को सुरक्षित रखने के लिये स्त्री सेवन या सम्पर्क से यथासम्भव दूर रहते हैं। मित्रता की घनिष्ठता से भी यह प्रवाह बढ़ जाता है। इसलिये कुसंस्कारी के साथ रहना भी आध्यात्मिक दृष्टि से घाटे का सौदा है। किन्तु यदि स्वेच्छापूर्वक किसी को ऊँचा उठाने या आगे बढ़ाने के लिये यह अनुदान दिया जाय तो दूसरी बात है। पर उसमें भी इतना विवेक तो रखना ही पड़ता है कि उपलब्धकर्त्ता कहीं उसका उपयोग अनर्थ प्रयोजनों में न करने लगे। ऐसी दशा में जो दिया गया है, वह वापस भी लौटाया जा सकता है।

देखने में आता है कि कितने ही व्यक्तियों को दूसरों के भेजे संदेश मिल जाते हैं। स्वप्न में तथा दूसरे प्रकार से भी निर्देशन प्राप्त हो जाते हैं। इसके लिये उपलब्धिकर्त्ता को अपना चित्त एकाग्र करने का अभ्यास होना चाहिये। आकाश में बिखरी अनेकानेक तरंगों में से वह अपने काम की तरंगें पकड़ लेता है और ऐसा अभ्यास प्राप्त कर लेता है, जिसे आश्चर्यजनक कहा जा सके।

कई लोगों में भविष्य कथन की, दूसरों के विचार या क्रिया-कलाप जानने की, भूतकाल में गुजरी घटनाओं की जानकारियाँ बता देने की क्षमता होती है। उन्हें अदृश्य आत्माओं के संदेश या संकेत आते हैं। किसी की बीमारियों या कठिनाइयों का समाधान बता सकते हैं या कर सकते हैं। जमीन में या कोठे-तिजोरियों में क्या है ? इसका विवरण बता सकते हैं।

इनमें अनेक लोग ऐसे भी होते हैं, जिन्होंने कोई विशेष साधना नहीं की है। इसका कारण तलाश करने पर पता चलता है कि या तो उन्होंने पहिले जन्मों में कोई कठिन साधना की है और उसका प्रभाव अभी तक बना हुआ है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है कि किसी सामर्थ्यवान का अनुग्रह अनुदान मिला है। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि एकाग्रता इस स्तर की विकसित हो कि उसके सहारे अतीन्द्रिय क्षमतायें काम करने लगें अथवा ऐसे कल्पना चित्र उभरने लगें जो यथार्थता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समतुल्य हैं। जिनने कोई योग साधना नहीं की है, फिर भी उनमें चमत्कारी क्षमता मौजूद है तो उपरोक्त प्रसंगों में से कुछ न कुछ विलक्षण उनके साथ अवश्य घटित हुआ होता है। बिना कारण किसी में चमत्कारी क्षमताओं का उद्भव होना सम्भव नहीं।

शक्तिपात अनुदान को अपनी पात्रता से अर्जित करके कोई व्यक्ति साधारण होते हुये भी सशक्त मनुष्यों के समतुल्य बन सकता है। और उस उपलब्धि का श्रेष्ठ उपयोग करके वैसा ही लाभ उठा सकता है जैसा कि योगीजन उठाते हैं।

यह सच है कि शक्तिपात के आधार पर उच्चस्तरीय सफलतायें अर्जित की जा सकती हैं। पर न्याय और नीति का तकाजा यह है कि मुफ्त में किसी से कुछ न लिया जाय। शक्ति लेने के बदले में भक्ति तो देनी ही चाहिये।

दीक्षा की महान परम्परा

आध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करने का श्री गणेश गुरु वरण से होता है। इस द्वार को खोले बिना आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में प्रवेश करना बन ही नहीं पड़ता, ऐसा शास्त्रकारों का मत है, कारण स्पष्ट है। विद्यार्थी कितना ही मेधावी या सुसम्पन्न क्यों न हो, अध्यापक के बिना अपने बलबूते विद्याध्ययन नहीं कर सकता। शिल्प, व्यवसाय, कला जैसे महत्त्वपूर्ण प्रसंगों में प्रत्यक्ष प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। इन्जीनियर, डॉक्टर आदि बनने के लिये बिना कौशल अभ्यास के सम्पर्क में रहे बात बनती ही नहीं। मोटर अपने पैसे से खरीदने वाले भी ड्राइवरी किसी अन्य से सीखते हैं। अध्यात्म विज्ञान के रहस्यों का अपने अनुरूप निर्धारण करने के लिये भी किसी अनुभवी की आवश्यकता पड़ती है। कठिन रोगों का उपचार बिना सुयोग्य चिकित्सक की सहायता के अपने आप कर सकना कहाँ बन पड़ता है। अपने फोड़े की चीर-फाड़ कराने में सर्जन का ही सहयोग अर्जित करना पड़ता है। गुरु-वरण की आवश्यकता इसी स्तर की समझी गई है। आत्मोत्कर्ष का महान् लक्ष्य पाने के लिये इस निर्धारण को अनिवार्य मानने का परामर्श शास्त्रकारों और आप्तजनों ने दिया है।

विभिन्न विषयों के विभिन्न गुरु होते हैं। एक व्यक्ति को समयानुसार साहित्य, संगीत, मल्ल, कला, शिल्प, व्यवसाय, चिकित्सा आदि में प्रवीणता प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इन सभी कार्यों की शिक्षा एक व्यक्ति दे सके, यह कठिन है। उनके लिये अलग-अलग अध्यापकों का आश्रय लेना पड़ता है। स्कूली शिक्षा तक में एक अध्यापक से काम नहीं चलता। एक कक्षा में कई विषय पढ़ाये जाते हैं। विभिन्न विषयों के विभिन्न अध्यापक होते हैं। ऊँची कक्षाओं में प्रवेश पाने के साथ-साथ भी नये-नये योग्यता की दृष्टि से क्रमशः अधिक बढ़े-चढ़े अध्यापकों से वास्ता पड़ता है।

आत्मिक प्रगति के, आत्म-कल्याण के क्षेत्र में भी यह बात लागू होती है। आज एक प्रयोजन के लिये एक अध्यापक की जरूरत है, तो कल दूसरे के पास जाना पड़ सकता है। बाजार में सभी माल एक ही दुकान पर नहीं मिलता है। इसलिये आत्मिक प्रगति क्रम की बढ़ती या बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप, अध्यात्म क्षेत्र में अपने स्तर के अनुरूप, अध्यापन प्राप्त करने के लिये अनेकों प्रवीण, पारंगतों का आश्रय लेना पड़ सकता है। एक ही निर्धारण सदा सर्वदा बना रहे, यह आवश्यक नहीं। भगवान राम ने संस्कृति की शिक्षा वशिष्ठ से और युद्ध-कौशल विश्वामित्र से प्राप्त किया था।

चिकित्सा का निर्धारण हर रोगी की स्थिति का गम्भीर पर्यवेक्षण करने के उपरान्त ही सही रूप में बन पड़ता है। सभी मरीजों को एक ही उपचार नहीं बताया जा सकता और न सभी प्रगतिशीलों को एक लाठी से हाँका जा सकता है। व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति और परिस्थिति का गम्भीर पर्यवेक्षण कर सकने में समर्थ, अपने विषय के निष्णात व्यक्ति ही यह निर्धारण करते हैं कि किसके लिये, किस कारण, किस समय, क्या साधन करने की आवश्यकता है ? इस क्षेत्र में उतार-चढ़ाव आते और परिवर्तन होते रहते हैं तद्नुरूप चिकित्सा की तरह साधना में भी आवश्यक परिवर्तन, संशोधन करने होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कार्य प्रवीण, पारंगत स्तर के निष्णात् व्यक्ति ही कर पाते हैं। गुरु उन्हें ही कहा जाता है। विडम्बना के लिये तो सिंह की खाल ओढ़कर गधा भी वनराज बन सकता है। नाटकों में राजा का लिबास पहनकर तुच्छ व्यक्ति भी उस स्वाँग का भली प्रकार निर्वाह कर देते हैं।

गुरु और शिष्य के मध्य मात्र छात्र और अध्यापक का ही रिश्ता नहीं होता। इतना सा सामान्य क्रम ही नहीं चलता, आदान-प्रदान का पिता-पुत्र जैसा सिलसिला भी चलता है। मेधावी छात्र को भी पिता का अनुदान चाहिये। उसके बिना भोजन, वस्त्र, फीस, पुस्तक आदि का प्रबन्ध कैसे बने ? न बने तो मेधावी छात्र अल्प-वयस्क और साधन रहित होने की स्थिति में विद्या का धनी कैसे बने ?

अध्यात्म क्षेत्र में परामर्शदाता, मार्गदर्शक गुरु की दुहरी भूमिका होती है। वह मार्गदर्शन भी करता है। अनुशासन रख सकने योग्य भारी-भरकम व्यक्तित्व सम्पन्न भी होता है। साथ ही अपनी उपार्जित सम्पदा का एक अंश देकर भी शिष्य की सामयिक आवश्यकता पूरी करता है।

अलंकारिक प्रतिपादनों में गुरु को भगवान भी कहा गया है। लगता है यह अत्युक्ति है। शरीरधारी भगवान कैसे हो सकता है ? संशय सही है और उसके समाधान में प्रतिपादन की यथार्थता का वर्णन भी सही है। एक अध्यापक वह होता है, जो उँगली पकड़कर अक्षर लिखना सिखाता है। दूसरा अध्यापक वह होता है जो परीक्षा लेकर स्नातक का प्रमाण-पत्र प्रदान करता है। गुरु की शालीनता का अभ्यास कराने वाला और भगवान को उसकी प्रवीणता परखने वाला तदनुरूप प्रतिफल देने वाला उच्चस्तरीय अध्यापक कहा जा सकता है।

यहाँ एक और भी उपमा उपयुक्त है—कलम लगाने की। एक पेड़ में दूसरे की कलम लगा देने पर जो फूल या फल आते हैं वे टहनी के गुणों वाले होते हैं। जड़ें पुराने पेड़ की, विशेषता बाहर वाली टहनी की। इस प्रकार दोनों के समन्वय से पेड़ ऐसी विलक्षणताओं से भर जाता है, जो पुरानी दोनों परिस्थितियों से भिन्न थी। कलम न लगती तो पुराना पेड़ ऐसे ही गये- गुजरे फल देता रहता। इसी प्रकार टहनी भी पुराने पेड़ की ही अंग रहती तो कलम बनकर जो चमत्कार दिखा सकी वह न दिखा पाती। इस प्रयोग से दोनों ही पक्षों को लाभ मिला। गुरु वरण के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि दीक्षा गम्भीरता के वातावरण और तथ्यों के निर्धारण से सम्पन्न हुई है तो उसका प्रभाव, परिणाम इस समन्वय से चमत्कारी स्तर का होना चाहिए। दो रंगों के मिलन से एक तीसरा रंग बनता है। गुरु और शिष्य के मिलन से एक तीसरा व्यक्तित्व उभरता है। जिसमें गुरु जैसी विशेषता उत्पन्न न हो सके तो भी शिष्य का पुराना स्वल्प यथावत् स्थिर नहीं रह सकता है, वह निश्चित रूप से ऊँचा उठता है।

दीक्षा का अर्थ होता है, प्राण प्रत्यावर्तन। समर्थ रामदास की विशेषतायें शिवाजी में—चाणक्य की चन्द्रगुप्त में—रामकृष्ण परमहंस की विवेकानन्द में हस्तान्तरित हुई थीं।

गुरुदीक्षा दो आत्माओं की आध्यात्मिक क्षेत्र की घनिष्ठता है। जिसमें दुर्बल पक्ष को सबल के साथ जुड़ जाने जैसा लाभ मिलता है। टंकी का पानी नल में तब तक भरा रहता है, जब तक टंकी खाली न हो चले। बिजलीघर से जुड़े हुये तार जहाँ तक पहुँचते हैं वहाँ तक रोशनी, गर्मी, गति आदि उत्पन्न करते हैं। गुरुदीक्षा दो आत्माओं को इसी प्रकार जोड़ती है और समर्थ की प्रतिभा दुर्बल पक्ष में चमकने लगती है। सूर्य का प्रतिविम्ब पानी की लहरों पर चमकता देखा जा सकता है। किसी सम्पन्न के यहाँ गोद चले जाने पर कोई निर्धन बालक भी रातों-रात सम्पन्न बन जाता है।

दीक्षा का प्रतीक उपनयन है। पुलिस में भर्ती होने पर कमर में बाँधने की पेटी तथा कन्धे पर लगाने का वैज मिलता है। आदर्शवादी जीवन में प्रवेश करने पर शरीर ज्यों का त्यों रहते हुये भी पुनर्जन्म लेना कहा गया है। इसी को द्विजत्व भी कहते हैं। आत्मीयता एवं एकता की एक महत्त्वपूर्ण श्रृंखला का दीक्षा के आधार पर पुनर्जन्म होता है। एकात्म के लाभ सर्वविदित हैं। हिमालय से जुड़ी हुई नदियाँ कभी सूखती नहीं। बर्फ पिघलने का अनुदान उन्हें बराबर मिलता रहता है। नाले का पानी गंगा में मिलकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंगाजल बनता है। चन्दन वृक्ष के समीप उगे हुये झाड़-झंखाड़ भी सुगन्धित हो जाते हैं। पेड़ से लिपटने के बाद बेल उतनी ही ऊँची उठ जाती है जितना कि पेड़। अपने बलबूते उसे वह गौरव नहीं मिल सकता था। उड़ाने वाले के हाथ का आश्रय पाकर पतंग आकाश चूमती है। आँधी के साथ तिनके भी बिना पैर के दौड़ लगाते हैं। नदी के प्रवाह में नगण्य से पत्ते भी सैर करते हुये समुद्र तक पहुँचते हैं। युधिष्ठिर का कुत्ता भी स्वर्ग तक पहुँचा था। यह उदाहरण उस सघन एकता के हैं, जिसे प्राप्त करने के लिये गुरुदीक्षा का परम पुनीत कृत्य सम्पन्न होता है।

स्वाति और सीपों के सम्पर्क से मोती बनना, पारस स्पर्श से लोहे का सोना बनना, कल्पवृक्ष के नीचे बैठने पर कामनाओं की तृप्ति होना, अमृत-पान से अमरत्व का आनन्द मिलना अलंकारिक वर्णन हैं। व्यवहारतः ऐसा होता नहीं। पर गुरु शिष्य की घनिष्ठता में वैसे लाभ मिलते देखे गये हैं। वृहस्पति के नेतृत्व में देव समुदाय समुन्नत हुआ था और शुक्राचार्य के तत्वावधान में दैत्यों ने समर्थता पाई थी। एकलव्य का संकल्प बल गुरु-श्रद्धा के सहारे सफलता की चरम सीमा तक जा पहुँचा।

गुरुदीक्षा में दो तत्वों का समान समावेश है। इसीलिये उसे साझेदारी की दुकान कहा गया है। उसे अंधे, पंगु का संयोग भी कहते हैं। शिष्य अपनी कमी गुरु की सहायता से पूरी करता है। गुरु को भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सहायता अपेक्षित होती है। गुरु की गरिमा और शिष्य की पात्रता उच्चस्तरीय होने पर ही उसकी समुचित परिणति उत्पन्न होती है। इसलिये इस प्रयोग में जहाँ गुरु को अनुदान देने होते हैं वहाँ शिष्य को भी तद्नुरूप कर्त्तव्य निभाने होते हैं। विवेकानन्द, दयानन्द, शिवाजी, चन्द्रगुप्त आदि ने भी शिष्य के कर्त्तव्य निभाये थे और उदारतापूर्वक गुरुदक्षिणा प्रस्तुत की थी। गुरुदीक्षा और गुरुदक्षिणा दोनों अन्योन्याश्रित हैं। उन्हें परस्पर पूरक कहा गया है। दो पहियों की गाड़ी ही ठीक तरह लुढ़कती है। दोनों हाथ से ताली बजती है। गड्ढा न होने पर विपुल वर्षा का पानी भी इकट्ठा कहाँ हो पाता है ? चट्टानों पर तो पावस में भी हरियाली का एक तिनका नहीं जमता।

गुरु-दक्षिणा अनुदान का प्रतिपादन है। कलम लगाना, बीज बोना गुरुदीक्षा है और उसे खाद-पानी देना गुरु-दक्षिणा। महत्त्व दोनों का समान है। एक के अभाव में दूसरा अशक्त ही रहेगा।

गुरु दरिद्र नहीं होता और न शिष्य दानी, फिर भी पात्रता विकसित करने के लिये शिष्य की श्रद्धा को दाता के रूप में विकसित होने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। उस्ताद स्वयं गिरकर शिष्य को ऊपर लादता और दाँव-पेंच सिखाता है। इसमें प्रत्यक्षतः गुरु छोटा बनता है और शिष्य बड़ा। इस प्रक्रिया में गौरवान्वित दोनों होते हैं।

भगवान वामन ने यही किया था। वे अवतार होकर भी बलि के सामने छोटे बने थे। शबरी के दरवाजे पर राम, गोपियों के यहाँ कृष्ण, घायल कर्ण के पास अर्जुन-कृष्ण, हरिश्चन्द्र के यहाँ विश्वामित्र, इसी उद्देश्य से याचक बनकर गये थे। गुरु दाता भी होता है और विधाता भी। न उसे कोई निजी अभाव और न प्रलोभन। फिर भी वह शिष्य को गुरुदक्षिणा देने के लिये प्रोत्साहित करता है। ताकि उसकी श्रद्धा उभरे और उस बीजारोपण से उसे हजार गुना लाभ उठा सकने का अवसर मिले। गुरुदक्षिणा न टैक्स है, न जुर्माना, न खैरात, न याचना, न अहंकार का परिपोषण। मात्र गुरु के अनुशासन में अपने साधनों का नियोजन, सदुपयोग कर सकने का अभ्यास है। पहलवानी सीखने के लिये व्यायाम का, श्रम और आहार का, मालिश का खर्च करना पड़ता है। विद्यार्थी, किसान, व्यवसायी भी आरम्भ में समय भी लगाते हैं और खर्च भी करते हैं। इसके उपरान्त ही उन्हें फसल से तिजोरी भरने और विद्वान बनने का अवसर मिलता है। आत्मिक प्रगति के लिये, विभूति-सम्पदा अर्जित करने के लिये शिष्य को भी गुरुदक्षिणा देनी होती है। समयदान और अंशदान के दो पुण्य-परमार्थ प्रयोजनों को उस अवसर पर और भी अधिक बढ़ने का साहस प्रदर्शित करना होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरु की प्रशंसा—वन्दना की जाती है। प्रशंसा का तात्पर्य है, भावुकता या चापलूसी। वन्दना का अर्थ है—गुणों का स्मरण, भावनाओं का स्थापन। श्रद्धा का संवर्धन, श्रद्धांजलि समर्पण का तात्पर्य है, महानता के साथ तादात्म्य होने का संकल्प, साहस और व्रत-व्यवहार। शिष्य भी आशीर्वाद के लिये याचक भिक्षुक बनकर अपनी क्षुद्रता प्रकट नहीं करता। वरन् गुरुदक्षिणा प्रस्तुत करते हुये, स्वाभिमान अक्षुण्ण रखता है और आदान-प्रदान का उपक्रम अपनाता है, जिससे उसकी अपनी लघुता महानता में परिणित हो जाती है। शिष्यों ने गुरुदक्षिणा चुकाने में जो निष्ठा बरती उसे गुरु की ऊँचाई को स्पर्श करते देखा गया है। कर्ण का कुण्डल-कवच दान, एकलव्य की अँगूठे की गुरुदक्षिणा और गुरुदक्षिणा चुकाने में हरिश्चन्द्र का आदर्श इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं।

भारतीय संस्कृति की यह भी एक महान परम्परा है। गुरु शिष्य मिलते हैं तो दोनों ही अपने-अपने पक्ष का कर्त्तव्य पालन करते हैं। गुरु की सामर्थ्य—शिष्य की पात्रता। गुरु की सिद्धि—शिष्य की साधना। गुरु की प्रेरणा—शिष्य की सक्रियता। गुरु का स्नेह—शिष्य की श्रद्धा। गुरु का अनुशासन—शिष्य का अनुगमन। यही हैं दो पक्ष, जिनके मिलने पर, बिजली के दो तार मिलने पर करेन्ट उत्पन्न होने की तरह चमत्कारी परिणति होती है। मात्र एक में उत्साह दूसरे में उपेक्षा रहे तो प्रयास निरर्थक चला जायगा। एक हाथ से ताली कहाँ बजती है ? एक पहिये की गाड़ी कहाँ चलती है ? दीक्षा के समय मिलन का वैसा ही उत्साह एवं वातावरण रहना चाहिये जैसा कि विवाह के समय दोनों पक्षों का होता है। जले हुये दीपक बुझे को जलाते हैं। यही तथ्य गुरु-शिष्य परम्परा के साथ भी जुड़ा हुआ है। एक अपनी ज्योति का अंश देता है, दूसरा उसे अपनाकर तेल-बाती जलाना आरम्भ कर देता है और तद्रूप बनता है।

गुरु से आशीर्वाद की याचना आवश्यक नहीं। वह समय और पात्रता के अनुरूप स्वयमेव खिंचते चले आते हैं। देखा जाता है कि शिष्य की याचना होती है—कृपा कीजिये, अनुग्रह कीजिये। गुरु कहता है—साहस कीजिये, साझीदार बनिये। कोई खींचतान न करें। अपने पक्ष का निर्वाह करें इसी में दीक्षा की सार्थकता है। स्वार्थ प्रलोभन के लिये रचा हुआ जंजाल, दीक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं होने देता, वरन् उल्टा बाधक बनता है।

गुरु की भक्ति कैसी होनी चाहिये ? इस सम्बन्ध में महाराष्ट्र के महान संत ज्ञानेश्वर के विचार जानने योग्य हैं। उस समय के ब्राह्मणों ने ज्ञानेश्वर के परिवार को जाति बाहर घोषित कर दिया था, पर आज समस्त महाराष्ट्र और समस्त महाराष्ट्रीय ब्राह्मण उनको एक महान् अवतार के रूप में पूज्यनीय मानते हैं और नित्यप्रति उनके ग्रन्थों का प्रवचन किया जाता है। ज्ञानेश्वर की वर्णन शैली पुराणों के ढंग पर अत्यन्त प्रभावशाली है—

"हे चतुर श्रेष्ठ, अब मैं तेरे सम्मुख गुरु भक्ति का वर्णन करता हूँ जिसे तू ध्यान से सुन। यह गुरु सेवा सब प्रकार के सौभाग्यों की जन्म भूमि है, क्योंकि यह गृहस्थ आश्रम में संलग्न मनुष्य को भी ब्रह्म स्वरूप बना देती है। ऐसी जो गुरु-सेवा है, अब मैं उसके विषय में तुझ से कहता हूँ। जिस प्रकार गंगा अपना समस्त जल लेकर समुद्र से मिलती है, अथवा श्रुति जिस प्रकार सर्व ज्ञान सहित ब्रह्म पद में प्रविष्ट होती है, अथवा पतिव्रता स्त्री जिस प्रकार अपना जीवन और गुण-अवगुण सब कुछ अपने प्रिय पति को अर्पण करती है, उसी प्रकार शिष्य अपना सर्वस्व गुरुकुल को अर्पण करता है। जिस प्रकार विरहिनी पतिव्रता निरन्तर पति का ही चिन्तन करती है, उसी प्रकार जिस स्थान में गुरु का निवास हो, वहीं पर जिसका मन लगा रहता है, उस दिशा में से आने वाले पवन को भी जो सम्मुख खड़ा होकर नमस्कार करता है, सच्चे प्रेम से पागल बनकर जिस दिशा में गुरु रहते हों, उस दिशा से भी वार्तालाप करता है वही सच्चा शिष्य है। जिस प्रकार बछड़ा अलग खूँटे से बँधा होने के कारण ही गाय से पृथक् रहता है। पर उसका ध्यान पूर्णतया अपनी माता की तरफ लगा रहता है। उसी प्रकार सच्चा शिष्य केवल गुरु की आज्ञा के कारण ही दूरवर्ती ग्राम में रहता है, और सदा यही विचार करता है कि कब गुरु की अनुमति मिले और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैं उनसे भेंट करूँ। जिसे गुरु से दूर रहने से एक-एक क्षण युग के समान भारी जान पड़ता है, अगर गुरु के पास से कोई आया हो अथवा गुरु ने ही किसी को अपनी तरफ से भेजा हो, तो जो ऐसा प्रसन्न हो जाता है कि मानो जीवन रहित को नवीन आयुष्य मिल गया हो, अथवा सूखते हुये अंकुर पर अमृत की धार पड़ गई हो, अथवा मछली किसी गड्ढे से निकलकर समुद्र में पहुँच गई हो, अथवा किसी कंगाल मनुष्य को धन का खजाना मिल गया हो, अथवा जन्मांध को एक दृष्टि प्राप्त हो गई हो, अथवा भिखारी को इन्द्र पद मिल गया हो। गुरु के प्रति ऐसी प्रीति रखने वाला कोई मनुष्य अगर तुमको मिले तो ऐसा समझ लेना कि उसके मन में गुरु के प्रति सचमुच सेवक की भावना मौजूद है। ऐसा व्यक्ति अन्तःकरण में अत्यन्त प्रेमयुक्त होकर गुरु की मूर्ति का ध्यान करता है, अपने शुद्ध हृदय रूपी मन्दिर में गुरु की स्थापना करके भावना रूपी सामग्री से उनकी पूजा करता है, अथवा ज्ञानरूपी किले में आनन्द रूपी देवालय बनाकर उसमें श्री गुरु रूप शिवलिंग की स्थापना करके उस पर ध्यान रूपी अमृत से अभिषेक करता है।

तनिक उसके प्रेम की अगाधता तो देखो ! कभी तो वह बिना आँखों और पंख वाला पक्षी का बच्चा बन जाता है और गुरु को पक्षिणी रूपी माता बनाकर उसकी चोंच में से स्वयं चारा ग्रहण करता है. अथवा गुरु को तारने वाला मानकर उसका पल्ला पकड़ लेता है। इस प्रकार जैसे समुद्र में ज्वार आने से तरंगों पर तरंगें उत्पन्न होती जाती हैं, उसी प्रकार प्रेम के बल से गुरु के ध्यान के अनेक रूप प्रकट होते हैं। इस प्रकार गुरु की मूर्ति को अन्तर में धारण करके वह ध्यान का आनन्द प्राप्त करता है।

सारांश यही है कि जिसे इस गुरुभक्ति की इच्छा होगी, और जिसे इस गुरुभक्ति पर प्रेम होगा, उसे गुरु सेवा के सिवाय और कोई चीज कभी प्रिय न लगेगी।"

गुरु से मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करना क्यों अनिवार्य है, इस विषय में वेद-शास्त्र में लिखा है—

"गुरु से दीक्षा लिये बिना जप, पूजा वगैरह सब निष्फल हो जाता है, इसलिये साधना में सबसे, पहले दीक्षा ही लेनी चाहिये। दीक्षा का अर्थ यह है कि यह मनुष्य को दिव्य ज्ञान प्रदान कर उसके समस्त पाप-पुंज का नाश कर देती है। इसी कारण ऋषि-मुनियों ने इसका नामकरण दीक्षा किया है। ब्रह्मचर्य आदि प्रत्येक आश्रम के व्यक्ति के लिये दीक्षा ग्रहण करना आवश्यक है। इस संसार में सब कुछ दीक्षा मूलक है, बिना दीक्षा के जगत का कोई भी कार्य सुसम्पन्न नहीं हो सकता। जप, तपस्या आदि सबका आधार इसी पर है। दीक्षा प्राप्त कर लेने पर मनुष्य चाहे जिस आश्रम में रहे, तो भी उसके सब काम सिद्ध हो जाते हैं और दीक्षा प्राप्त किये बिना जो मनुष्य जप, पूजन आदि कार्य करता है वे सब कर्म पत्थर में बोये हुये बीज के समान निष्फल सिद्ध होते हैं। बिना दीक्षा वाले मनुष्य को सिद्धि अथवा सद्गति नहीं मिलती। इससे सब तरह से प्रयत्न करके सद्गुरु देव द्वारा अवश्य मन्त्र दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।"

पर यह भी अवश्य देख लेना चाहिये कि गुरु वास्तव में योग्य और शुद्ध चरित्र वाले हों और वे भी शिष्य को उसी प्रकार प्राणों के समान स्नेह करना, अपना कर्त्तव्य समझते हों। आजकल जैसे ढोंगी और स्वार्थी गुरु बनने वालों की भरमार हो गई है, उससे तो बिना गुरु के रहना ही अच्छा है। गुरु की सहायता से शिष्य को अध्यात्म मार्ग में अग्रसर होने में निस्सन्देह बड़ी सहायता मिलती है और सच्चे सद्गुरु कम योग्यता और अधिकार वाले शिष्यों को भी अपनी शक्ति द्वारा अग्रसर करा के मुक्ति का पथिक बना देते हैं। इसीलिये शास्त्र में कहा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः
गुरुसाक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

आत्मिक प्रगति का मूल आधार- 'श्रद्धा' अर्थात् श्रेष्ठता से प्यार

एक ही मन्त्र, एक ही साधना पद्धति और एक ही गुरु के मार्गदर्शन का अवलम्बन लेने पर भी विभिन्न साधकों की आत्मिक प्रगति अलग-अलग गति से होती है। कोई तेजी से आत्मिक विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई मन्थर गति से आगे बढ़ता है। इसका क्या कारण है ? मनीषियों ने इसका उत्तर एक ही वाक्य में देते हुये कहा है कि अध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है। जिस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें और गतिविधियाँ सम्पन्न होतीं तथा अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं, उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में श्रद्धा ही अपनी सघनता या विरलता के आधार पर चमत्कार प्रस्तुत करती है। श्रद्धा विहीन उपचार सर्वथा निष्प्राण रहते हैं और उनमें किया गया श्रम भी प्रायः निरर्थक चला जाता है। श्रद्धा का महत्त्व बताते हुये गीताकार ने कहा है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव सः।

—गीता १७।३

अर्थात्—यह पुरुष श्रद्धामय है। जो जिस श्रद्धा वाला है अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा है स्वयं भी वही, अर्थात् उस श्रद्धा के अनुरूप ही है।

यह श्रद्धा ही है, जो निर्जीव पाषाण प्रतिमाओं में भी प्राण भर देती है और उन्हें अलौकिक चमत्कारी क्षमता से सम्पन्न बना देती है। मीरा ने कृष्ण प्रतिमा को अपनी श्रद्धा के बल पर ही इतना सजीव बना लिया था कि वह प्रत्यक्ष कृष्ण से भी अधिक प्राणवान प्रतीत होने लगी थी। श्रद्धा-विश्वास के सम्बन्ध में रामायण में भी एक सुन्दर प्रसंग आता है। सेतुबन्ध के अवसर पर रीछ-वानरों ने राम के प्रति अपने विश्वास का आधार लेकर ही समुद्र में पत्थर तैरा दिये थे, किन्तु स्वयं राम ने अपने हाथों से जो पत्थर फेंके, वे नहीं तैर सके। इसी प्रसंग को लेकर शास्त्रकारों ने कहा है—**"राम से बड़ा राम का नाम"** पर नाम में कोई शक्ति नहीं है। शक्ति है, उस श्रद्धा में जो अलौकिक सामर्थ्य उत्पन्न करती है, साधारण स्तर के व्यक्तियों को भी असंप्रज्ञात समाधि की सिद्धि, श्रद्धा के आधार पर उपलब्ध होने का प्रतिपादन करते हुये महर्षि पातंजलि ने कहा है—

श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

—योग दर्शन १।२०

अर्थात्—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक सामान्य योगियों की जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं है, असंप्रज्ञात समाधि सिद्धि होती है।

अध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा की शक्ति ही सर्वोपरि है। इस प्रकार शक्ति के आधार पर भौतिक हलचलें गतिशील होती हैं और उनके सहारे अभीष्ट उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं। उसी प्रकार आत्मिक क्षेत्र में 'श्रद्धा' ही मूल है। उसी की सघनता चमत्कार दिखाती है। श्रद्धा विहीन उपचार सर्वथा निष्प्राण रहते हैं और उनमें किया गया श्रम प्रायः निरर्थक चला जाता है। सामान्य लोक व्यवहार में भी दृढ़ता, श्रद्धा-विश्वास के आधार पर ही आती है। आत्म-विश्वास के बल पर ही कोई बड़े कदम उठा सकना सम्भव होता है। शौर्य और साहस में आत्म-विश्वास ही काम करता है। परिवार में एक-दूसरे को स्वजन, घनिष्ठ एवं आत्मीय होने की मान्यता ही उन्हें पारस्परिक स्नेह, सहयोग के सुदृढ़ सूत्र में बाँधे रहती है। यह मात्र श्रद्धा ही है, जिसके आधार पर परिवारों में स्नेह-दुलार का अमृत बरसता है और एक-दूसरे के लिये बढ़े-चढ़े त्याग करने को तत्पर रहता है। श्रद्धा की कड़ी टूट जाय, तो फिर परिवारों का विघटन सुनिश्चित है, वे तनिक-सी बातों पर अन्तःकलह के अखाड़े बनेंगे और देखते-देखते बिखरकर अस्त-व्यस्त हो जायेंगे।

कृषि, उद्योग, शिल्प, खेल आदि सब में अपने कार्यक्रम के सही होने का विश्वास रखकर ही चला जाता है। व्यवसायी एक-दूसरे पर विश्वास करके लेन-देन करते हैं। बैंकें बड़े-बड़े जोखिम उठाती हैं। उधार का आधार ही विश्वास है। कर्मचारियों के हाथ में व्यवसाय की लगाम रहती है, रसोइया विष देकर आसानी से सारे घर को मृत्यु की गोद सुला सकता है। पत्नी सारी सम्पत्ति लेकर गायब हो सकती है। यह आशंकायें रहते हुये भी मनुष्य को विश्वास का ही सहारा लेना पड़ता है। अविश्वासी के लिये कोई कारोबार करना तो दूर आशंका ग्रस्त जीवन की भयंकरता का बोझ सँभालना भी कठिन हो जायगा और वह चैन से जीवित तक नहीं रह सकेगा। ऐसी स्थिति में कोई किसी पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने गुप्त भेद तक प्रकट न कर सकेगा और दुरावपूर्ण मनःस्थिति की घुटन में घुटता हुआ उद्विग्न, विक्षिप्त स्तर की जिन्दगी जियेगा।

श्रद्धा और विश्वास के बिना भौतिक जीवन में भी गति नहीं, फिर अध्यात्म क्षेत्र का तो उसे प्राण ही कहा गया है। आदर्शवादिता में प्रत्यक्षतः हानि ही रहती है, पर उच्चस्तरीय मान्यताओं में श्रद्धा रखने के कारण ही मनुष्य त्याग-बलिदान का कष्ट सहन करने के लिये खुशी-खुशी तैयार होता है। ईश्वर और आत्मा का अस्तित्व तक प्रयोगशालाओं की कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं होता। वह निश्चित रूप से श्रद्धा पर ही अवलम्बित है। मनुष्य का व्यक्तित्व जिसमें संस्कारों का, आदतों का गहरा पुट रहता है, वस्तुतः श्रद्धा की परिपक्वता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की आदतें और मान्यतायें अत्यन्त गहराई तक घुसी रहती हैं। और वे उन्हें छोड़ने को सहज ही तैयार नहीं होते। यह संस्कार और कुछ नहीं चिरकाल तक सोचे गये, माने गये और व्यवहार में लाये गये अभ्यासों का ही परिपाक है। तथ्यों की कसौटी पर इन संस्कारों में से अधिकांश बेतुके और अन्धविश्वास स्तर के होते हैं, पर मनुष्य उन्हें इतनी मजबूती से पकड़े होता है कि उसके लिये वे ही 'सत्य' बन जाते हैं और सत्य और तथ्य कहकर वह उन पूर्वाग्रहों के प्रति अपनी कट्टरता का परिचय देता है। उनके लिये लड़ने-मरने तक को तैयार हो जाता है। यह मान्यता परक् कट्टरता और कुछ नहीं मात्र श्रद्धा द्वारा रची गयी खिलवाड़ मात्र है।

तर्क की शक्ति का जन्म भी श्रद्धा के गर्भ से ही होता है। यों तो तर्क विचारणा को जन्म देता है और श्रद्धा—विश्वास को, पर विचारणा भी विचार के लिये आधार ढूँढ़ती है। आधार तभी बन सकता है, जब विश्वास हो। अन्यथा तर्क बुद्धि तो किसी भी केन्द्र पर चिन्तन को केन्द्रीभूत नहीं कर सकती। यह तो तभी बन पाता है, जब विश्वास के सहारे विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि श्रद्धा के अभाव में विचारणा, तर्क का प्रादुर्भाव सम्भव नहीं। किसी विषय पर आस्था ही तर्कों का सृजन करती, उस पर सोचने, सत्यता को खोज निकालने को प्रेरित करती है। श्रद्धा मानवी व्यक्तित्व के मूल में घुली-मिली है, जिसके बिना एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता। आगे बढ़ने, प्रगति करने की बात तो दूर रही। यह बात अलग है कि हम उसका अनुभव न कर सकें।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो स्पष्ट होगा कि सम्पूर्ण जीवन प्रवाह एवं उसकी उपलब्धियाँ वस्तुतः श्रद्धा की ही परिणति हैं। माँ अपना अभिन्न अंग मानकर नौ माह तक अपने गर्भ में बच्चे का सेवन करती है। अपने रक्त, माँस को काटकर शिशु को पोषण प्रदान करती है। श्रद्धा का यह उत्कृष्ट स्वरूप है, जिसका बीजारोपण माँ बच्चे में संस्कार के रूप में करती है। निस्वार्थ भाव से उसको संरक्षण देती है। अनावश्यक भारकष्टों का जंजाल समझने का कुतर्क उठे तो नव शिशु का प्रादुर्भाव ही सम्भव न हो सकेगा।

यह श्रद्धा ही है, जिसके कारण बच्चा माँ के सीने से चिपकने, स्नेह-दुलार पाने के लिये लालायित रहता, रोता-कलपता है। मूक-भाषा, वाणी से रहित नवशिशु की श्रद्धा एक मात्र माँ के ऊपर ही होती है। माता-पिता भी निश्छल हृदय से बच्चे के विकास के लिये हर सम्भव प्रयास करते हैं। खाने-पीने, स्वास्थ्य-संरक्षण से लेकर शिक्षा-दीक्षा के झंझट भरे संरंजाम जुटाते हैं। समग्र विकास ही उनका एक मात्र लक्ष्य होता है। तर्क तो हर बात को उपयोगिता की कसौटी पर कसता है। इस आधार पर कसने पर माता-पिता को हर दृष्टि से घाटा ही घाटा दिखायी पड़ेगा। बात तर्क की मान ली जाय, तो बच्चे का अस्तित्व ही शंका में पड़ जायगा। दृष्टि मात्र उपयोगितावादी हो जाय तथा यह परम्परा प्रत्येक क्षेत्र में चल पड़े, तो परिवार एवं समाज विशृंखलित हो जायगा। सभ्यता को अधिक दिनों तक जीवित नहीं रखा जा सकेगा।

श्रद्धा ही पारिवारिक जीवन को स्नेह-सूत्र में बाँधे रहती है। सहयोग करने, अन्य सदस्यों के लिये अपने स्वार्थों का उत्सर्ग करने की प्रेरणा देती है। पारिवारिक विघटनों में इसका अभाव ही कारण बनता है। पति-पत्नी के बीच

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन-मुटाव, सदस्यों के बीच टकराव का कारण अश्रद्धा है। तर्क एवं उपयोगिता की कसौटी पर कसने पर तो वृद्ध माता-पिता का महत्त्व भी समझ में नहीं आता। वे भार के रूप में ही दिखायी पड़ते हैं। किन्तु श्रद्धा दृष्टि जानती है कि उनका कितना ऋण चढ़ा है। उनके स्नेहाशीर्वाद को पाने की कामना आजीवन बनी रहती है। यह भाव दृष्टि तो श्रद्धा की ही उपलब्धि है, जो सदा एक युवक को माता-पिता के समक्ष नत-मस्तक किये रहती है।

मनुष्य के व्यक्तित्व की ढलाई श्रद्धा की भट्टी के सान्निध्य में होती है। इस श्रद्धा तत्व की गरिमा को यदि स्वीकार किया जा सके, तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसे विकसित, परिष्कृत एवं परिपक्व करने के लिये आस्तिकता की मान्यता का अवलम्बन लेना आवश्यक है। ईश्वर के अस्तित्व की आस्था और उसके साथ तादात्म्य बिठाने के प्रयास में इतना लाभ प्रत्यक्ष मिलता है कि मनुष्य की आदर्शवादी निष्ठायें परिपक्व होती हैं और उसके सहारे व्यक्ति ऐसा आदर्शवादी बनता है, जिसमें 'आत्मा' के अस्तित्व का परिचय भीतरी और बाहरी दोनों क्षेत्रों से प्राप्त किया जा सके।

श्रद्धा को मानवता का बीज कह सकते हैं। वही उगता, बढ़ता और परिपुष्ट होता है, तो जीवन वृक्ष को स्वर्गस्थ कल्प-वृक्ष के समतुल्य बना देता है। चेतना का वर्चस्व उसी से निखरता है। नर—वानर का मानव, महामानव, अतिमानव की दिशा में बढ़ चलने का साहस एवं बल श्रद्धा के सहारे ही सम्भव होता है। श्रद्धा और आस्तिकता का एक-दूसरे के साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ईश्वर का अनुग्रह श्रद्धा के रूप में ही मिलता है और जैसे ही इस तत्व की जितनी उपलब्धि हो जाती है, उसके जीवन को वन्दनीय बनने की सम्भावना उसी अनुपात से परिपुष्ट होती चली जाती है। इस स्थिति को ऋद्धियों और सिद्धियों की जननी कहा जा सकता है। आस्तिकता का यह परोक्ष प्रतिफल है, जिसमें संदेह की कोई गुंजायश नहीं है। पूजा का प्रत्यक्ष प्रतिफल मिलने में सन्देह होने पर भी इस श्रद्धा के वरदान को असाधारण वरदान की ही संज्ञा ही दी जा सकती है।

जीवन को किसी निर्दिष्ट ढाँचे में ढाल देने वाली, सबसे प्रबल एवं उच्चस्तरीय शक्ति श्रद्धा है। यह अन्तःकरण की दिव्य भूमि में उत्पन्न होकर समस्त जीवन को हरियाली से सजा देती है। श्रद्धा का अर्थ है—श्रेष्ठता के प्रति अटूट आस्था। यह आस्था जब सिद्धान्त एवं व्यवहार में उतरती है, तो उसे निष्ठा कहते हैं। यही जब आत्मा के स्वरूप, जीवन दर्शन एवं ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करती है, तो श्रद्धा कहलाती है।

आस्थायें प्रेरणा भरती हैं, गति देती हैं, बढ़ने के लिये गति और सोचने के लिये प्रकाश प्रस्तुत करती हैं। उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ सकना आस्थाओं की उपस्थिति के बिना हो ही नहीं सकता। निष्ठा से ही संकल्प उठता है और संकल्प से साहस और पराक्रम उभरकर आता है। तन्मयता और तत्परता इसी अन्तःस्थिति में किसी प्रयास से नियोजित होती हैं और मन एवं कर्म का ऐसा स्तर बन पड़ने पर ही महत्त्वपूर्ण प्रगति सम्भव होती है। सोचने से पता चलता है कि बुद्धि की अपनी उपयोगिता होते हुए भी श्रद्धा की शक्ति असीम है। इसलिये श्रद्धा को ही जीवन कहा गया है। व्यक्तित्व और कुछ नहीं—श्रद्धा का प्रतिविम्ब, परिचय भर है।

आत्म-कल्याण चाहने वाले और ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न प्रयासों के लिये इस शक्ति का उभार एवं अवलम्बन आवश्यक है। इसके बिना उस महान् लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपनी अन्तरात्मा में बैठे हुये परमात्मा को देखने, उसे प्राप्त करने का उपाय बताते हुये मनीषियों ने इसी श्रद्धा की गरिमा को प्रस्तुत किया है। रामचरितमानस में श्रद्धा को भवानी और विश्वास को शंकर बताया गया है। इन्हीं दोनों की सहायता से भगवान को प्राप्त किया जा सकता है।

मनुष्य स्थूल कम सूक्ष्म अधिक है। वह भावनाओं के सहारे पैदा होता, भावनाओं में ही जीवित रहता और भाव जगत में ही विलीन होता है। भावनाओं के प्रति सम्मान ही श्रद्धा है। यह संवेदना जहाँ भी होगी, वहीं संतोष की निर्झरिणी प्रवाहित हो रही होगी। भगवान् कृष्ण ने कहा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धा मनोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव सः।।

—गीता-१७।३

अर्थात्—हे अर्जुन ! यह सृष्टि श्रद्धा से विनिर्मित है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह पुरुष वैसा ही बन जाता है अर्थात् बुराईयों के प्रति श्रद्धा व्यक्ति को समस्याओं में कैद कर देती है, तो आदर्शों के प्रति आस्था मनुष्य जीवन को सुख-शान्ति और प्रसन्नता से भर देती है।

अन्तःकरण की उत्कृष्टता को श्रद्धा के नाम से जाना जाता है, उसका व्यावहारिक स्वरूप है-भक्ति। यों साधारण बोलचाल में दोनों का उपयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में होता है। फिर भी कुछ अन्तर तो है ही। श्रद्धा अन्तरात्मा की आस्था है। श्रेष्ठता के प्रति असीम प्यार के रूप में उसकी व्याख्या की जा सकती है। भक्ति उसका व्यावहारिक रूप है। करुणा, उदारता, सेवा, आत्मीयता के आधार पर चलने वाली विभिन्न गतिविधियों को भक्ति कहा जा सकता है। देश-भक्ति, आदर्श-भक्ति, ईश्वर-भक्ति आदि के रूपों में त्याग-बलिदान के, तप-साधना के, अनुकरणीय आदर्शवादिता के अनेकों उदाहरण इसी भक्ति भावना की प्रेरणा से बन पड़ते हैं।

आस्थायें-आकांक्षायें जब परिपक्व स्थिति में पहुँचती हैं और निश्चयपूर्वक लक्ष्य की ओर बढ़ती हैं तो उन्हें संकल्प कहते हैं। संकल्प की प्रचंड शक्ति सर्वविदित है। संकल्पों के धनी व्यक्तियों ने ही सामान्य साधनों और सामान्य अवसरों में भी चमत्कारी सफलतायें उपलब्ध की हैं। संकल्प की प्रखरता मस्तिष्क और शरीर दोनों को अभीष्ट दिशा में घसीट ले जाती हैं और असंख्य अवरोधों से टकराती हुई उस लक्ष्य तक पहुँचाती हैं, जिसे आरम्भ में असम्भव तक समझा जाता था। पुरुषार्थियों की यशगाथा से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। वस्तुतः उन्हें संकल्प शक्ति का चमत्कार ही कह सकते हैं। यहाँ इतना ही समझने की आवश्यकता है कि संकल्प उभरकर आने से पूर्व विश्वास बनकर मनःक्षेत्र में अपनी जड़ें जमाता है या उस बीज का प्रत्यक्ष पौधा संकल्प रूप में प्रकट होता है। विश्वास की प्रतिक्रिया ही संकल्प है। यही कारण है कि अन्तःकरण की उच्चस्तरीय आस्थाओं को श्रद्धा-विश्वास का रूप दिया गया है। वे उत्कृष्ट स्तर की होने पर शिव-पार्वती का युग्म बनते हैं और निकृष्ट होने पर आसुरी क्रूर-कर्मों में इस प्रकार निरत दीख पड़ते हैं, जैसा कि उपाख्यानों में दानवों एवं शैतानों का चित्रण किया जाता है।

जिसकी जैसी श्रद्धा है, वह वैसा ही है। क्रिया, विचारणा और भावना यही चेतना की तीन शक्तियाँ हैं। श्रेष्ठता की दिशा में जब वे बढ़ती हैं, तो सत्कर्म, सद्ज्ञान एवं सद्भाव के रूप में उन्हें काम करते देखते हैं। इन्हें सुविकसित करने के विज्ञान को अध्यात्म कहते हैं। ब्रह्म-विद्या का विशालकाय ढाँचा इसी के निमित्त खड़ा किया गया है। चेतना को श्रेष्ठता के साथ जोड़ देने के प्रयास को ही योग कहते हैं। योग साधना की तीन ही प्रमुख धारायें हैं—कर्म योग, ज्ञान योग और भक्ति योग। इन्हीं के सहारे जीवन लक्ष्य प्राप्त होने की स्थिति बनती है। इसी त्रिवेणी में स्नान करने से परम पद की प्राप्ति का लाभ मिलता है।

उपरोक्त विवेचना के सहारे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानव जीवन में सबसे बड़ी, सबसे ऊँची, सबसे समर्थ, शक्ति 'श्रद्धा' की ही है। मनःस्थिति को ही परिस्थितियों का सृजनकर्त्ता कहा गया है। शरीर को जन्म तो माता-पिता के प्रयत्न से मिलता है, पर आत्मा को उत्कृष्टता, श्रद्धा और विश्वास रूपी दिव्य जननी और जनक की अनुकम्पा का फल माना जा सकता है। विधाता द्वारा भाग्य लिखे जाने के अलंकार में तथ्य इतना है कि अपना अन्तःकरण अपने स्तर के अनुरूप मनुष्य की प्रगति, अवनति आदि का ताना-बाना बुनता है। अदृश्य कृपा-दैवी अनुग्रह आदि का तात्विक अर्थ समझना हो तो उन्हें अन्तःकरण से ही वरदान, अभिशाप कह सकते हैं। लोक व्यवहार में कहा जाता है कि 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।' गीता कहती है—**"आत्मैवह्यात्मन् बन्धु-आत्मैव रिपुरात्मनः"** अर्थात् मनुष्य स्वतः ही अपना मित्र और शत्रु है। उत्थान और पतन की कुंजी पूरी तरह उसके अपने हाथ में है और वह सुरक्षित एवं सुनिश्चित रूप से अन्तःकरण में रखी रहती है। इसी चाबी को शास्त्रकारों ने आस्था, निष्ठा, श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, संकल्प आदि के नामों से पुकारा है। भावनाओं और आकांक्षाओं के रूप में भी इसी तथ्य की अलग-अलग ढंग से व्याख्या की गयी है।

उल्लसित वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण पूर्णतया सत्श्रद्धा के हाथ में है। उसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का महत्त्व, मर्म, उपार्जन, अभिवर्धन सिखाने के लिये भूतकाल की कथा-गाथाओं को पुरातन उपाख्यानों में पुराण के नाम से जाना और जनाया जाता है। भूत, भविष्य और वर्तमान की सुखद सम्भावनाओं का निर्माण अन्तःकरण के जिस क्षेत्र में विनिर्मित होता है, उसका स्वरूप समझना हो तो एक 'श्रद्धा' शब्द का उपयोग करने से वह प्रयोजन पूरा हो सकता है।

बीज ही वृक्ष बनता है और श्रद्धा ही व्यक्तित्व का रूप धारण करती है, मनुष्य जो कुछ बनता है, जो कुछ पाता है, वह समूचा निर्माण 'श्रद्धा' शक्ति के चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि इस ब्रह्म-विज्ञान के, आत्म-विज्ञान के गूढ़ रहस्य को समझा जा सके, तो प्रतीत होगा कि तत्वदर्शियों के वेदान्त प्रतिपादन सनातन सत्य को परमात्मा ब्रह्म-प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्वमसि, सोहम्, शिवोहम्, सच्चिदानन्दोहम् आदि सूत्र में घोषित किया है। पतन से बचने और उत्थान अपनाने का सुनिश्चित उपाय बताते हुये शास्त्रकार इस उत्तरदायित्व को मनुष्य के कन्धे पर ही लाद देते हैं। वे कहते हैं—**"उद्धरेत् आत्मनात्मानंनात्मन अवसादयेत्"** अर्थात्-अपना उद्धार आप करो। अपने को गिराओ मत। उनका सुनिश्चित मत है कि उत्थान-पतन की मुहिम हर मनुष्य स्वतः ही सम्भालता है। परिस्थितियाँ तो उसका अनुगमन भर करती हैं। दिशा निर्धारण और प्रगति प्रयास अपना होता है—साधन और सहयोग तो उसी चुम्बकत्व के सहारे खिंचते भर चले आते हैं। उत्थान या पतन में से जो भी अपना गन्तव्य हो व्यक्तित्वों, साधनों एवं परिस्थितियों का सरंजाम भी उसी स्तर का जुटता चला जाता है। श्रद्धा की इसी गरिमा को देखते हुये अध्यात्म शास्त्र ने मानवी सत्ता में विद्यमान साक्षात् ईश्वरीय शक्ति के रूप में अभिनन्दन किया है।

श्रद्धा वह प्रकाश है जो आत्मा की, सत्य की प्रगति के लिये बनाये गये मार्ग को दिखाता है। जब भी मनुष्य एक क्षण के लिये लौकिक चमक-दमक, कामिनी और कंचन के लिये मोहग्रस्त होता है, तो माता की तरह ठण्डे जल से मुँह धोकर जगा देने वाली शक्ति यह श्रद्धा ही होती है। सत्य के सद्गुण, ऐश्वर्य स्वरूप एवं ज्ञान की थाह अपनी बुद्धि से नहीं मिलती उसके प्रति सविनय प्रेम भावना विकसित होती है, उसी को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा सत्य की सीमा तक साधक को साधे रहती है, सँभाले रहती है।

श्रद्धा के बल पर ही मलिन चित्त अशुद्ध चिन्तन का परित्याग करके बार-बार परमात्मा के चिन्तन में लगा रहता है। बुद्धि भी जड़ पदार्थों में तन्मय न रहकर परमात्म ज्ञान में अधिक से अधिक सूक्ष्मदर्शी होकर दिव्य भाव में बदल जाती है। स्वयं का ज्ञान और तार्किक शक्ति इतनी बलवान नहीं होती कि मनुष्य निरन्तर उचित-अनुचित, आवश्यक-अनावश्यक के यथार्थ और दूरवर्ती परिणामों को आत्मा के अनुकूल होने का विश्वास दे सके। तर्क प्रायः व्यर्थ से दिखाई देते हैं। ऐसे समय जब अपने कर्मों के औचित्य या अनौचित्य को परम प्रेरक शक्ति के हाथों सौंप देते हैं, तो एक प्रकार की निश्चिन्तता मन में आ जाती है। मन का बोझ हल्का हो जाता है। जिसकी जीवन पतवार परमात्मा के हाथ में हो, उसे किसका भय ? सर्वशक्तिमान से सम्बन्ध स्थापित करते ही मनुष्य निर्भय हो जाता है। उसके स्पर्श से ही मनुष्य में अजेय बल आ जाता है। व्यक्तित्व में सद्गुणों का प्रकाश और दिव्यता झरने लगती है। जीवन में आनन्द झलकने लगता है। यह सम्बन्ध और स्पर्श, जब तक सत्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती, तब तक श्रद्धा के रूप में प्रकट होता और विकसित होता है। वह एक प्रकार से पाथेय है इसलिये उसका मूल्य और महत्त्व उतना ही है जितना अपने लक्ष्य का, गन्तव्य का, अभीष्ट का, आत्मा, सत्य अथवा परमात्मा की प्राप्ति का।

परमात्मा के प्रति अत्यन्त उदारतापूर्वक आत्मभावना पैदा होती है, वही श्रद्धा है। सात्विक श्रद्धा की पूर्णता में अन्तःकरण स्वतः पवित्र हो उठता है। श्रद्धायुक्त जीवन की विशेषता से ही मनुष्य स्वभाव में ऐसी सुन्दरता बढ़ती जाती है, जिसको देखकर श्रद्धावान् स्वयं सन्तुष्ट बना रहता है। श्रद्धा सरल हृदय की ऐसी प्रीतियुक्त भावना है जो श्रेय पथ की सिद्धि कराती है इसीलिये शास्त्रकार कहते हैं—

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा-विश्वास रूपिणौ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्ध स्वान्तस्थमीश्वरम्।।

—रामायण, बालकाण्ड

"हम सर्वप्रथम भवानी और भगवान्, प्रकृति और परमात्मा को श्रद्धा और विश्वास के रूप में वन्दन करते हैं, जिसके बिना सिद्धि और ईश्वर-दर्शन की आकांक्षा पूर्ण नहीं होती।"

श्रद्धा का आविर्भाव सरलता और पवित्रता के संयोग से होता है। पार्थिव वस्तुओं से ऊपर उठने के लिये सरलता और पवित्रता इन्हीं दो गुणों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इच्छा में सरलता और प्रेम में पवित्रता का विकास जितना अधिक होगा उतना ही अधिक श्रद्धा बलवान होगी। सरलता के द्वारा परमात्मा की भावानुभूति होती है और पवित्र प्रेम के माध्यम से उसकी रसानुभूति। श्रद्धा दोनों का ही सम्मिलित स्वरूप है। उसे भावना भी है रस भी। जहाँ उसका उदय हो, वहाँ लक्ष्य प्राप्ति की कठिनाई का अधिकांश समाधान तुरन्त हो जाता है।

अज्ञान, अन्धकार में भटकते हुये लोक-जीवन को सत्य मार्ग पर अग्रसर करने का माध्यम उनके द्वारा जगाई हुई श्रद्धा ही तो रही है। शिष्यों को श्रद्धा पूर्ण पाठ साधना की स्थिरता के लिये तब भी आवश्यक था, युग और परिस्थितियाँ बदल जाने पर आज भी आवश्यक है। परमात्मा सत्य है, उसके गुण और स्वभाव अपरिवर्तनशील हैं। इसी तरह वहाँ तक पहुँचने का मार्ग और माध्यम भी अपरिवर्तित ही है। उसे आज भी पाया और अनुभव किया जा सकता है, पर उस स्थिति की परिपक्वता के बीच में जो साधनायें, परिवर्तन, हलचल, कठिनाइयाँ और दुरभिसन्धियाँ आती हैं, उनमें लक्ष्य प्राप्ति की भावना की स्थिरता के लिये श्रद्धा आवश्यक है।

यहाँ श्रद्धा की शक्ति का संक्षिप्त-सा आभास दिया गया है कि उसे मानव जीवन की सर्वोपरि सामर्थ्य के रूप में समझ सकने में सुविधा हो। देवलोक यही है। देवता इसी क्षेत्र में जन्मते, बढ़ते, परिपुष्ट होते और वरदान दे सकने के लिये सक्षम बनते हैं। उनका उदय एवं अस्त भी इसी श्रद्धा के अनन्त अन्तरिक्ष में होता रहता है। मन्त्र, देवता, गुरु, उपासना, साधना, सिद्धि आदि का सारा आधार श्रद्धा की आधार-शिला पर खड़ा है। सच तो यह है कि साधना का विशालकाय कलेवर इसलिये खड़ा किया गया है कि उन लौह शृंखलाओं में जकड़ कर श्रद्धा विश्वास रूपी महादैत्य को उपयोगी प्रयोजन उत्पन्न कर सकने के लिये प्रशिक्षित किया जा सके। श्रद्धा से व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। श्रद्धा से अनेक क्रिया-कलापों का सूत्र-संचालन और उन्हें सफलता के उच्चस्तर तक पहुँचा सकना सम्भव होता है। आत्मा का सबसे विश्वस्त और सबसे घनिष्ठ सचिव श्रद्धा ही है। उसी के सहारे आत्मिक प्रगति से लेकर सिद्धि-चमत्कार के वरदान पाने और आत्म साक्षात्कार से लेकर ईश्वर दर्शन तक के समस्त दिव्य उपहार प्राप्त होते हैं।

आत्मिक प्रगति का सर्वोपरि आधार 'श्रद्धा' को समझा जा सकता है। साधकों की सफलता-असफलता इसी पर निर्भर रहती है। अस्तु, गुरुदीक्षा शक्तिपात से लेकर अनेकों चित्र-विचित्र कष्टसाध्य तप साधना इसी प्रयोजन के लिये करायी जाती हैं कि साधक की श्रद्धा अधिकाधिक परिपुष्ट हो सके और अभीष्ट सत्परिणाम प्राप्त कर सकने का अधिकारी बन सके।

श्रद्धा की स्थापना और परिपुष्ट होने का चिरस्थायी और सर्वमान्य आधार यह है कि जिस तथ्य पर विश्वास जमाया जाना आवश्यक है, उसकी यथार्थता और वैज्ञानिकता को सघन तथ्यों और तर्कों के आधार पर समझ सकने का अवसर दिया जाय। बुद्धि का सर्वतोमुखी समाधान हो सके, तो श्रद्धा की स्थिरता सुनिश्चित मानी जा सकती है और उससे अभीष्ट परिणामों की अधिकाधिक अपेक्षा रखी जा सकती है। जिस-तिस से सुनकर जल्दी-जल्दी कुछ सुन-समझकर यदि कोई श्रद्धा बनेगी, तो उसकी जड़ें उथली बनने के कारण तनिक से आघात से उखड़ जाने की आशंका बनी रहेगी। प्रायः होता भी ऐसा ही रहता है। अमुक व्यक्ति के कहने से आवेश उमड़ा, और तत्काल वह साधना आरम्भ कर दी। कुछ ही समय बाद किसी दूसरे ने उस विधान के दोष बता दिये और किसी नये प्रयोग के माहात्म्य सुना दिये, बस इतने भर से मन शंकाशंकित हो गया और पिछला प्रयोग छोड़कर नया मार्ग अपना लिया गया। इस परिवर्तन के बीच यह नयी आशंका बनी रहती है कि पिछली साधना जिस प्रकार छोड़नी पड़ी थी उसी प्रकार यह भी न छोड़नी पड़े और उसमें भी कोई दोष वैसा ही न घुसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हो जैसा कि पहली वाली में निकल पड़ा था। कभी कोई चर्चा इस नयी साधना के विपक्ष और किसी अन्य के पक्ष में सुनाई पड़ती है, तो उसे भी छोड़ने का असंमजस खड़ा हो जाता है। संदिग्ध, शंका-शंकित मन लेकर सांसारिक प्रयोजन तक में कोई कहने लायक सफलता नहीं मिल सकती। फिर अध्यात्म क्षेत्र तो पूरी तरह श्रद्धा की शक्ति पर ही आधारित और अवलम्बित है। यदि मूल तथ्य का अभाव रहा तो फिर ज्यों-त्यों करके कर्मकाण्डों की लकीर पीटते रहने से बात बनेगी नहीं। तब असफलताओं का कारण विधि-विधानों की हेरा-फेरी में ढूँढ़ा जाने लगेगा और यह खोज की जाने लगेगी कि किसी क्रिया-कृत्य में कोई अन्तर तो नहीं रह गया जिससे असफलता मिली या उल्टा परिणाम निकला।

वस्तुतः विधि-विधानों का महत्त्व साधना विज्ञान में एक चौथाई और श्रद्धा-विश्वास का तीन-चौथाई है। सघन श्रद्धा के रहते अटपटे विधि-विधान भी चमत्कारी परिणाम उपस्थित कर सकते हैं। जबकि अविश्वासी, संदिग्ध मनःस्थिति में पण्डिताऊ ढंग से किये गये परिपूर्ण कर्मकाण्ड भी निष्प्राण होकर रह जाते हैं और उनका परिणाम निराशाजनक ही रहता है। अस्तु, साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले प्रत्येक साधक में श्रद्धा तत्व की परिपक्वता का आधार खड़ा करना आवश्यक समझा जाना चाहिये।

श्रद्धा का सहचर है—विश्वास। इसे निष्ठा भी कहते हैं। किसी तथ्य को स्वीकार करने के पूर्व उस पर परिपूर्ण विचार कर लिया जाय। तर्क, प्रमाण, परामर्श, परीक्षण आदि के आधार पर तथ्य का पता लगा लिया जाय और समुचित मन्थन के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाय। इसमें देर लगे तो लगने देनी चाहिये। उतावली में इतना अधूरा निष्कर्ष न निकाल लिया जाय, जिसे किसी तनिक से बहकावे मात्र से बदलने की बात सोची जाय। कई व्यक्ति विधि-विधानों के बारे में ऐसे ही अनिश्चित रहते हैं। एक के बाद दूसरे से पूछते फिरते हैं फिर दूसरे-तीसरे से और तीसरे का चौथे से पूछते हैं। भारतीय धर्म का दुर्भाग्य ही है कि इसमें पग-पग पर मतभेदों के पहाड़ खड़े पाये जा सकते हैं। यदि मतभेदों और कुशंकाओं के जंजाल में उलझे रहा जाय, तो उसका परिणाम भ्रम-अश्रद्धा—अनिश्चितता एवं आशंका से मनःक्षेत्र भर जाने के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा। ऐसी मनःस्थिति में किये गये धर्मानुष्ठानों के परिणाम नहीं के बराबर ही होते हैं। श्रद्धा-विश्वास का प्राण ही निकल गया, तो फिर मात्र कर्मकाण्ड की लाश लादे फिरने से कोई बड़ा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा।

विश्वास का तात्पर्य है, जिस तथ्य को मान्यता देना उस पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ रहना। इस दृढ़ता का परिचय उपासनात्मक विधि-विधानों की जो मर्यादा निश्चित कर ली गयी है, उन्हें बिना आलस, उपेक्षा बरते पूरी तत्परता के साथ अपनाये रहने में मिलता है। विधि-विधानों के पालन करने के लिये शास्त्र में बहुत जोर दिया गया है और उसकी उपेक्षा करने पर साधना के निष्फल हो जाने अथवा हानि होने, निराशा हाथ लगने का भय दिखाया गया है। उसका मूल उद्देश्य इतना ही है कि विधानों के पालन करने में दृढ़ता की नीति अपनायी जाय। हानि होने का भय दिखाने में इतना ही तथ्य है कि अभीष्ट सत्परिणाम नहीं मिलता, अन्यथा सत्प्रयोजन में कोई त्रुटि रह जाने पर भी अनर्थ की आशंका करने का तो कोई कारण है ही नहीं।

साधना मार्ग पर चलने वाले को अपनी स्थिति के अनुरूप विधि-व्यवस्था का निर्धारण आरम्भ में ही कर लेना चाहिये। जो निश्चित हो जाय उसमें आलस, उपेक्षा बरतने की ढील-पोल न दिखाई जाय। दृढ़ता न बरती जायेगी तो आस्था में शिथिलता आने लगेगी। तत्परता मन्द पड़ जायगी। फलतः मिलने वाला उत्साह और प्रकाश भी धूमिल हो जायगा।

व्यायाम प्रयोगों द्वारा शरीर का बल बढ़ता है। ज्ञान वृद्धि के लिये शिक्षा का सहारा लिया जाता है। धनी बनने के लिये उद्योग, व्यवसाय अपनाने पड़ते हैं। उनके लिये अभीष्ट उपकरणों का संग्रह एवं प्रयोग करना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार श्रद्धा और विश्वास को विकसित करने के लिये देव-प्रतिमाओं को, तीर्थ-स्थलों को, पूजा-प्रतीकों को माध्यम बनाना पड़ता है। उन पर आरोपित की गई श्रद्धा, प्रतिध्वनित और प्रतिफलित होकर साधक के पास वापस लौट आती है। गेंद को दीवार या धरती पर मारने से टकराने पर वह उसी स्थान पर लौटती है, जहाँ से उसे फेंका जाता है। शब्दवेधी बाणों के बारे में कहा जाता है कि वे लक्ष्य वेध करने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के उपरान्त लौटकर फिर तरकस में आ घुसते थे। गुम्बज में की गयी आवाज गूँजती है और उच्चरित स्थान से आ टकराती है। पृथ्वी गोल है। सीधी रेखा बनाकर यदि लगातार चलते रहा जाय, तो चलने वाला लौटकर वहीं आ जायेगा, जहाँ से उसने चलना शुरू किया था। श्रद्धा को भी पूजा-प्रतीकों पर फेंका जाता है। वे निर्जीव होने के कारण स्वयं तो कुछ नहीं कर सकते, पर प्रतिक्रिया को प्रयोगकर्त्ता के ऊपर निश्चित रूप से वापस लौटा देते हैं। गोबर के बने गणेश भी उतना ही चमत्कारी फल प्रदान कर सकते हैं, जितना कि असली गणेश कुछ कर सकने में समर्थ हो सकते थे। एकलव्य ने मिट्टी द्वारा बनी द्रोणाचार्य की प्रतिमा से उतना लाभ प्राप्त कर लिया था, जितना कि असली द्रोणाचार्य से पाण्डवों को नहीं मिल सका। यह श्रद्धा की शक्ति का ही चमत्कार है। देवता का निवास काष्ठ-पाषाण आदि में नहीं रहता। **"भावो हि विद्यते देव तस्मात् भावो हि कारणम्"** भावना में ही देवता का निवास रहता है। अस्तु, देव-दर्शन से होने वाले लाभों में भावना का स्तर ही प्रमुख कारण है। भाव रहित होकर देव-प्रतिमाओं की समीक्षा की जाय, तो वह धातु और पाषाण के सहारे प्रस्तुत की गयी कलाकृति के अतिरिक्त और कुछ भी न रह जायेगी।

श्रद्धा और विश्वास के अभिवर्धन में एक जीवित तत्त्व भी सहायक सिद्ध होता है और वह है—गुरु। आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में सदा से 'गुरु धारणा' की महत्ता को समझा और स्वीकारा जाता रहा है। उसे "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु " "अखण्ड मण्डलाकारं तस्मै श्री गुरुवे नमः" "अज्ञान तिमिरान्धस्य" आदि वन्दना स्तवनों में गुरु महिमा एवं गुरु भक्ति का बढ़ा-चढ़ा माहात्म्य प्रस्तुत किया गया है। इसमें निहित स्वार्थों का भोले लोगों की भावुकता का शोषण करने की प्रवृत्ति काम करती रही है और उससे अनर्थ मूलक अन्धविश्वास भी बहुत फैला है, पर यह कहने और मानने में भी कोई आपत्ति नहीं कि श्रद्धा तत्व की अभिवृद्धि और विश्वास की परिपुष्टि में गुरु धारण करने से अति महत्त्वपूर्ण प्रतिफल भी उपलब्ध होते हैं।

अध्यात्म दर्शन में सम्प्रदाय भेद से अगणित मान्यतायें प्रचलित हैं। वे एक-दूसरे से भिन्न ही नहीं प्रतिकूल एवं प्रतिपक्षी भी हैं। साधना विधानों के सम्बन्ध में भी यही बात है। ऐसी दशा में किसे अपनाया जाय, किसे न अपनाया जाय यह निर्णय कर सकना सामान्य बुद्धि के लिये अति कठिन होता है। संदिग्ध, शंकाशील और अनिश्चित मनःस्थिति में कोई बात न तो पूरी तरह गले उतरती है और न बताये मार्ग पर पूरे उत्साह के साथ चल सकना सम्भव होता है। आधे-अधूरे मन से प्रयोग-परीक्षण की तरह किये गये साधन, सदा निर्जीव होते हैं। उनका कोई कहने लायक परिणाम नहीं निकलता। इस असफलता से अविश्वास और भी पनपता है और अन्ततः निराशाग्रस्त होकर उस मार्ग से उदासीन होते-होते छोड़ देने की ही स्थिति आ पहुँचती है।

इस अनिश्चितता से बचने के लिये एक ऐसे प्रामाणिक अधिकारी की नियुक्ति आवश्यक होती है, जिसके निर्देशन को स्वीकारणीय माना जा सके। फौजी अनुशासन में यही होता है। अफसर आज्ञा देता है और सैनिक उसका प्राण-पण से पालन करता है। निर्देश के उचित-अनुचित होने का दायित्व अफसर पर रहता है। सैनिक के लिये इतना ही पर्याप्त है कि उसने आदेश का पूर्ण तत्परता के साथ पालन किया। साधना मार्ग में भी इसके अतिरिक्त और कोई गति नहीं। निज के समाधान के लिये किन्हीं सिद्धान्तों की उपयोगिता पर जितना कुछ तर्क, विवाद, अन्वेषण करना हो, उतना पूरी गहराई के साथ कर लेना चाहिये। इसी प्रकार इस मार्ग का पथ-प्रदर्शक चुनने से पूर्व उसके ज्ञान, अनुभव एवं चरित्र के सम्बन्ध में जितनी भी कुरेद-बीन करनी सम्भव हो, वह कर लेनी चाहिये। पर अन्ततः ऐसी स्थिति में पहुँचाना ही चाहिये कि किसी के निर्णय और निर्देश को स्वीकार्य अनुशासन की तरह ग्रहण किया जाय और पूर्ण विश्वास के साथ निर्धारित गतिविधि अपनाते हुये आगे बढ़ा-चला जाय। इतना बन पड़े तो समझना चाहिये, अनिश्चितता और आशंका की स्थिति का अन्त हो गया। अब विश्वासपूर्वक प्रयत्नशील रहकर अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त कर सकना सम्भव हो सकेगा।

सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के सम्बन्ध में गुरु के अनुशासन को स्वीकार किया जाना चाहिये। इसके लिये एक ही व्यक्ति का निर्देश प्राप्त करना पर्याप्त है। अनेकों मार्गदर्शक नियत करने पर उनके भिन्न-भिन्न अनुभव और निर्देश साधक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के मन में फिर अनिश्चितता उत्पन्न कर देंगे। इसलिये एक विषय का एक ही निर्देशक होना चाहिये। कई चिकित्सकों की कई प्रकार की दवायें एक साथ खाने या उनके परामर्श से उलट-पुलट करते रहने से लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। जीवन अनेक समस्या सूत्रों से बँधा हुआ है। उनकी विशिष्ट धाराओं के विशिष्ट मार्गदर्शक हो सकते हैं। मकान बनाने में इन्जीनियर, इलाज में डॉक्टर, मुकद्दमे में वकील को गुरु मानकर चला जा सकता है। भिन्न प्रकार के कार्यों के लिये भिन्न गुरु हो सकते हैं। पर जहाँ तक आत्मिक प्रगति के विशिष्ट मार्ग का सम्बन्ध है, वहाँ उस क्षेत्र के दक्ष व्यक्ति की ही सहायता लेनी चाहिये। गुरु एक हो या अनेक इस प्रश्न का एक ही उत्तर है—एक कार्य के लिये एक की ही नियुक्ति लाभदायक रहती है। इसमें निर्देश सम्बन्धी कोई भूल रहेगी, तो उसका दोष या दण्ड निर्देशक के पल्ले बँधेगा। साधक को अशुद्ध विधि से साधना करने पर भी अपने विश्वास के अनुरूप निश्चित रूप से सत्परिणाम ही मिल जायगा।

श्रद्धा की प्रेरणा है, श्रेष्ठता के प्रति घनिष्ठता,- तन्मयता एवं समर्पण की प्रवृत्ति। परमेश्वर के प्रति इसी भाव सम्वेदना को विकसित करने का नाम है—भक्ति। भक्त को भगवान के प्रति अनन्य प्रेम उत्पन्न करना पड़ता है और उसे इस स्तर का बनना पड़ता है कि सच्चे प्रेमी की तरह आत्मसात होने और आत्मसमर्पण के बिना चैन ही न पड़े। लौकिक जीवन में पत्नी को पति के प्रति इसी प्रकार के आत्मसमर्पण का अभ्यास करना पड़ता है। दीपक-पतंग की उपमा इसी प्रसंग में दी जाती है। आमतौर से मनुष्यों के अन्तःकरण बड़े नीरस, शुष्क और कठोर होते हैं, उनमें दया, करुणा ममता, श्रद्धा जैसी दिव्य भावनाओं का अभाव ही रहता है। अनभ्यस्त प्रक्रिया स्वभाव का अंग बने भी तो कैसे ? भजन-पूजन करने वाले कर्मकाण्डों के तो अभ्यस्त बन जाते हैं, पर उनका भी हृदय खोलकर देखा जाय तो श्रद्धा तत्व की मात्रा नहीं के बराबर ही दीख पड़ती है। मशीन की तरह कर्मकाण्डों की चर्खी घुमाते रहने से बात बनती नहीं। उपासनात्मक क्रिया-कृत्य तो आवरण मात्र हैं। उनमें प्राण संचार करने की शक्ति तो श्रद्धा में ही सन्निहित है। यदि जीवन ही न रहा, तो कठपुतली का तमाशा वह आनन्द नहीं देता जो जीवन्त अभिनय में देखा जाता है।

प्रतिमा के माध्यम से श्रद्धा उत्पन्न करने का आधार निर्दोष तो है, पर उसमें प्रत्युत्तर दे सकने की क्षमता न होने के कारण सब कुछ एकांगी ही रह जाता है। अमुक आपत्ति काल में लड़कियाँ अपने विवाह आँवले, पीपल आदि वृक्षों के साथ करके भी अपने अभिभावकों को कन्यादान से निश्चिन्त कराती रहीं हैं। इतने पर भी जीवित व्यक्ति के साथ विवाह करने पर उपलब्ध होने वाले आदान-प्रदान का लाभ उन्हें नहीं मिल सका होता। 'गुरु' रूप में जीवित प्रतिमा में श्रद्धा तत्व की प्राण-प्रतिष्ठापना की जाती है और उसके सम्पर्क में अपनी दिव्य सम्वेदनाओं को अग्रगामी बनाया जाता है। इसमें आदान-प्रदान का प्रत्यक्ष सम्पर्क का क्रम चलता है और मार्ग-दर्शन की सुविधा रहती है। यदि गुरु दिव्य तत्व से सम्पन्न है, तो उसके सान्निध्य-अनुग्रह का प्रत्यक्ष प्रभाव भी उपलब्ध होता है। इससे व्यक्ति के विकास में अधिक सुविधा और सरलता रहती है।

माता-पिता के समान ही गुरु को माना गया है। इस त्रयी को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी गयी है। हिन्दुत्व का प्रतीक यज्ञोपवीत के रूप में धारण किया जाता है। इस संस्कार के अवसर पर गुरु द्वारा गायत्री मन्त्र लेने का विधान है। अध्यापक की सहायता बिना शिक्षा प्राप्त करना कठिन पड़ता है और गुरु के बिना विद्या का व्यावहारिक स्वरूप हृदयंगम किया जाना कठिन पड़ता है। यों जानने भर की बात तो पढ़ने या सुनने भर से भी बन जाती है। आत्मोत्कर्ष की साधना में तो गुरु वरण करने की आवश्यकता एक प्रकार से अनिवार्य ही मानी गयी है। इस व्यवस्था में श्रद्धा तत्व के विकास में एक उपयोगी आधार खड़ा करना होता है। यदि इस चयन एवं नियुक्ति के लिये कोई उपयुक्त सत्पात्र मिल गया, तो समझना चाहिये कि सफलता की आधी मंजिल पार हो गयी। निष्णात् अध्यापक एवं चिकित्सक का सम्पर्क सध जाने से शिक्षा की, चिकित्सा की सफलता प्रायः असंदिग्ध ही हो जाती है, यही बात साधना के सम्बन्ध में भी है। प्रखर व्यक्तियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने पर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य बनते देखे गये हैं। फिर विधिवत् श्रद्धासिक्त,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मीयता के सूत्र में बाँधने वाली गुरु दीक्षा की प्रतिक्रिया उपयोगी परिणाम क्यों न उत्पन्न करेगी ? उपासना के विधि-विधान का मार्गदर्शन तो सरल है। उतनी आवश्यकतायें तो पुस्तकें भी पूरी कर देती हैं। जटिलता तो जीवन साधना में पड़ती हैं। आये दिन उतार-चढ़ाव और मोड़-तोड़ आते रहते हैं। उनके समाधान का दूरदर्शी निष्कर्ष अनगढ़ बुद्धि से नहीं निकल पाता, वह प्रायः भटकती और अनुपयुक्त निर्णय करती देखी गयी है। ऐसी दशा में यदि सत्परामर्श की समुचित व्यवस्था बन सके तो सर्वतोमुखी प्रगति के उपयोगी आधार खड़े होते चले जाते हैं। ऐसे ही अनेक लाभ हैं, जिनको ध्यान में रखते हुए गुरु वरण करने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। उपयुक्त व्यक्ति पर उपयुक्त मात्रा में सत् श्रद्धा का सूत्र स्थापित किया जाय, तो कठिन यात्रा में जानकर और बफादार साथी की तरह लक्ष्य प्राप्ति में बहुत ही सरलता पड़ती है। इस सम्पर्क से एक पक्ष को वात्सल्य देने का और दूसरे को उसे पाने का लाभ मिलता है। गाय और बच्चा दोनों को ही असीम सन्तोष मिलता है। गुरु और शिष्य का यदि उभय-पक्षीय आदर्शवादी सम्बन्ध बन जाय, तो फिर उस मिलन का सत्परिणाम सोना और सुगन्ध मिलने की उक्ति से भी अधिक उत्साहवर्धक होता है।

साधना का मूल है — जाग्रत भाव संवेदना

साधना-उपासना में श्रद्धा भावना का होना नितान्त आवश्यक माना गया है, अन्यथा पूर्ण लाभ की आशा-अपेक्षा नहीं की जा सकती। भावना को शास्त्रकारों ने पारसमणि कहा है। पारस-पत्थर लोहे को सोना बना देता है, भावना भी मनुष्य को तद्नरूप ही ढाल देती है। कहा भी गया है—**"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।"** अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिला करती है। भावना की महिमा-महत्ता का प्रतिपादन करते हुए 'रुद्रयामल' ग्रन्थ में कहा है—

"भावेन लभते सर्वं भावेन देव दर्शनम्।
भावेन परमं ज्ञानं तस्माभ्दा वावलम्बनम्।।

अर्थात् भाव से ही सब कुछ प्राप्त होता है, भावना की दृढ़ता से ही देव-दर्शन होते हैं, भावना से ही ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए भावना का अवलंबन अवश्य लेना चाहिए। कारण कि —

"न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मयो।
भावेहि विद्यते देवस्तस्माद्भावस्तुकारणम्।।"

तात्पर्य है, कि काष्ठ, पाषण और मिट्टी की मूर्तियों में देवता नहीं होते, वे तो मानसिक भावों से रहते हैं और वही उनका कारण है।

अध्यात्मवेत्ता मनीषियों के अनुसार भाव मन का अर्थ है। मन में ही इसकी उत्पत्ति होती है और मन में ही इसका लय होता है। अतः यह शक्तियों का भाण्डागार है। भावना से ही शक्तियों का उदय होता है। इसलिए जो जैसी भावना करता है, वह वैसी ही शक्तियों को प्राप्त करता है, वैसा ही बन जाता है। स्थूल की गति का कारण सूक्ष्म है। शरीर स्थूल है और भावनायें सूक्ष्म है। जैसी भावना-विचारणा होगी, वैसे ही कार्य में शरीर प्रवृत्त होगा। भावना का निर्मल, पवित्र, प्रबल और परमार्थमय होना ही आध्यात्मिक क्षेत्र में ऊँचा उठाने का अथवा स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करने का चिन्ह है। व्यक्तिगत रूप में ही नहीं, वरन् हर क्षेत्र, कार्य में, प्रचण्ड और पवित्र सफलता लाने में समर्थ होती है। भावना ही वह प्रमुख आधार है, जो प्रसुप्त पड़ी आंतरिक शक्तियों को जगा देती है। उनमें गति उत्पन्न करती है। भावना से साधना-उपासना के फलीभूत होने का तात्पर्य शक्तियों का गतिमान होना ही है।

अनुसंधानकर्त्ता; विज्ञानवेत्ताओं ने भी भावना की महत्ता को स्वीकार किया है और उसे आधुनिक रूप देकर अनेकों प्रकार के भौतिक प्रयोगों में सफलता प्राप्त की है। पाश्चात्य मनः चिकित्सकों ने प्रार्थना में इसका उपयोग किया है और आशाजनक लाभ उठाये हैं। इस सम्बन्ध में नोवल-पुरस्कार विजेता प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. अलेक्सिस कैरेल ने अपनी पुस्तक "मैन दी अननोन" में लिखा है—'भावना से कुछ ही क्षणों में मुँह के घाव, शरीर के अन्य घाव, कैंसर, मूत्राशय के रोग और टी० बी० आदि के रोगियों के यह रोग पूर्णतः मिटते हुए देखे गये हैं। कोढ़ एवं अन्यान्य त्वचा रोग से पीड़ित लोग स्वस्थ्य हुए हैं। कनाडा के सुप्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञानी डॉ० सी० अलवर्ट ई० विल्फ भावना के माध्यम से ही चिकित्सा करते थे। "थियालाजिया जर्मनकी" पुस्तक के अनुसार विश्वास रखकर ईश्वर से भावनापूर्वक प्रार्थना करने पर बड़ी से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बड़ी तथा भयंकर बीमारी से भी मनुष्य छूट जाता है।

भावना से ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करने, आरोग्य एवं दीर्घायु प्राप्त करने तथा अन्य प्रकार के लाभ उठाने की इस वैज्ञानिक पद्धति को भारतीय ऋषि-मनीषियों ने बहुत पहले खोज लिया था। जिसकी पुष्टि आधुनिक विज्ञानवेत्ता भी कर रहे हैं। उनका मत है कि अभाव की पूर्ति के लिये गिड़गिड़ाना उचित नहीं है। उससे आत्महीनता की भावना उत्पन्न होती है और आशाजनक लाभ भी नहीं होता है। भावना के समय अशुभ के स्थान पर शुभ के, रोग के स्थान पर निरोगता के, अभाव के स्थान पर वैभव और ऐश्वर्य के भाव संकेत मन को देना चाहिए। जिस इष्ट की पूर्ति करने की इच्छा है, उसे अपने भावना नेत्रों से पूरा होते देखना चाहिए। यह भाव-संकेत जितना तीव्र और सुदृढ़ विश्वास पर आधारित होगा, सफलता उतनी ही शीघ्रता से प्राप्त होगी।

इस सन्दर्भ में ख्याति लब्ध विद्वान अलबर्ट विल्फ ने अपनी कृति "लेसन्स इन लिविंग" में लिखा है—"परमात्मा से हमें यह कामना नहीं करनी चाहिए कि वह हमें स्वास्थ्य प्रदान करे, वरन् उसका ढंग यह होना चाहिए कि कल के लिए उन्होंने आज मुझे पूर्ण स्वस्थ कर दिया। श्री रिवैका वीयर्ड ने इस विषय का स्पष्ट प्रतिपादन करते हुए अपनी पुस्तक "एवरी मैंस सर्च" में कहा है कि—"शक्ति की धारा को विपरीत शुभ दिशा में प्रवाहित करने के लिए आवश्यक है, जिस परिणाम को हम उपस्थित देखना चाहते हैं, उस परिस्थिति को हम अपने अंतराल के भाव संस्थान में निर्मित करें और अपनी चिंता के विपरीत भाव का चिंतन करें।" उदाहरण के लिए धन के अभाव को दूर करने के लिये यह नहीं कहना चाहिए कि हे ईश्वर ! मैं अत्यन्त संकट में हूँ, उसे दूर करो, वरन् मानस नेत्रों से अपने प्रभु के सर्व समर्थ, शक्तिशाली और महान ऐश्वर्यों के रूप को निहारना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि उनके उत्तराधिकारी और ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते इन ऐश्वर्यों पर हमारा स्वाभाविक अधिकार है अतः इस अधिकार को मान्यता देते हुए भगवान स्वयं हमारे रिक्त स्थान की-अभाव की पूर्ति कर रहे हैं। हमारे भंडारों को भर रहे हैं और हम भी ऐश्वर्यशाली बन रहे हैं। इस शुभ भावना से शक्ति का प्रवाह हमारी ओर परिवर्तित होगा, यह सुनिश्चित है।

वस्तुतः भावना एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका सीधा प्रभाव हमारे अचेतन मन पर पड़ता है। अचेतन मन-जिसे गुप्त मन भी कहते हैं, ईश्वर प्रदत्त शक्ति का भाण्डागार है, दिव्य क्षमताओं का वह मूल स्रोत है। ईश्वर से उत्तराधिकार में मिली समस्त शक्तियाँ वहीं सोयी पड़ी हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए ही विविधि प्रकार की यौगिक साधनायें, उपासनायें एवं तपश्चर्या का आश्रय लेना पड़ता है। इनमें भावनाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। यही वे सूक्ष्म उपाय-उपचार हैं, जिनकी पहुँच गुप्त मन तक होती है। सही भावनायें हमारे गुप्त मन का नव निर्माण करती हैं और हमारे चारों ओर का संसार वैसा ही बनता चला जाता है। भाव प्रवणता से अचेतन मन परिष्कृत होता जाता है और प्रसुप्त पड़ी अतीन्द्रिय क्षमतायें जाग्रत होने लगती हैं। अन्दर से बाहर की ओर एक आध्यात्मिक प्रवाह चलने लगता है, परिणामस्वरूप शक्तियों का नवसृजन होता है, बिखरी शक्तियाँ एकाग्र होकर दिव्यताओं एवं महानताओं का नवनिर्माण करती हैं जिनसे इच्छानुसार भौतिक सिद्धियों एवं अध्यात्मिक विभूतियों के लाभ प्राप्त होते हैं।

इस सम्बन्ध में महर्षि वशिष्ठ का का मत है कि—"बीज की जाति का ही पौधा उगता है और संकल्पों की जाति की परिस्थितियाँ पैदा होती हैं। आत्मा जैसी-जैसी भावना करती है, वह शीघ्र वैसी ही हो जाती है और उसी प्रकार शक्ति से पूर्ण हो जाती है।" इसे प्रत्यक्ष जीवन में सर्वत्र होते हुए देखा जा सकता है कि जिसकी भावना भीतर से भलाई, सच्चाई, प्रेम, सहानुभूति, करुणाशील, वात्सल्य और सद्भावों से ओतप्रोत होती है वह सदा सुखी रहता है। क्योंकि प्रतिक्रिया से उसमें दिव्य गुणों का बाहुल्य हो जाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति सदा स्वार्थ, ईर्ष्या, धोखेबाजी, छल-छद्म, कपट, काम-क्रोध, अहंकार, दूसरों को हानि पहुँचाने का भाव रखता है, उसमें यह दुर्गुण दिनों-दिन बढ़ते जाते हैं और पाप-अत्याचार की ओर उसकी प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है, जिसके परिणामस्वरूप वह नाना प्रकार के कष्ट उठाता है। सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, बंधन-मोक्ष हमारी भावनाओं पर आधारित हैं। जो अपने को अयोग्य, असमर्थ, अभागा व अशक्त मानता है, वह वैसा ही बनता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है। इसके विपरीत जो अपने को योग्य, समर्थ, भाग्यवान और शक्तिवान समझता है, वह भी वैसा ही बनता जाता है। अपने आपको नीच या महान्, सुखी या दुःखी, साधारण या असाधारण, पवित्र या अपवित्र, सदाचारी या दुराचारी, पापी या पुण्यात्मा, चतुर या मूर्ख, निर्बल या सबल, भाग्यहीन या भाग्यवान बनाना भावना के ही खेल हैं, जो जैसी भावना करता है, वह वैसा ही बन जाता है।

महात्मा गांधी ने कहा है—"अपने को निर्बल समझने वाला ही निर्बल है।" जीवन रेखा का लिखना भावना के अधिकार में है। भाग्य को बनाना भावना शक्ति का ही खेल है। वह इसको जिधर चाहे मोड़-मरोड़ ले जाती है। होमियोपैथी के जन्मदाता डॉ. हैनीमेन. ने अपने ग्रंथ "आर्गेनन ऑफ मेडिसिन" में लिखा है कि भावनाओं से रोग उत्पन्न भी किये जा सकते हैं और अच्छे भी किये जा सकते हैं! यदि किसी को यह विश्वास दिलाया जा सके कि वह पूर्णतः स्वस्थ एवं सक्षम है तो थोड़े ही दिनों में सचमुच स्वस्थ व समर्थ बन जायेगा। पाश्चात्य मनीषी चार्ल्स डिक्सन के शब्दों में "जिस मनुष्य की जैसी आंतरिक भावनायें होंगी, उसकी वाह्य रूपरेखा वैसी ही बन जायेगी।'

भावना की शक्ति अपरमित एवं महान है। इस भावनाशक्ति ने ही मीरा को दिये हुए विष को अमृत में बदल दिया था। उसी भावना शक्ति से धन्ना भक्त ने पत्थर को भगवान बनाया था। यह भावना की ही शक्ति थी कि रामकृष्ण परमहंस को माँ काली द्वारा अपने हाथों प्रसाद खिलाते हुए देखा गया था। सुदामा के कच्चे चावलों एवं शबरी के जूठे बेरों में भावना का समावेश होने से उनमें इतनी मिठास आ गयी थी भगवान ने उनको बड़े चाव से खाया था। महर्षि रमण मौन रहते हुए भी अपनी भाव तरंगों से सम्पर्क में आने वाले हर किसी को आप्लावित कर देते थे। भावना स्वयं में एक बड़ी शक्ति है। संत, महात्मा, ऋषि, देवदूत इसी के पुंज होते हैं। उनके हृदय के अंतराल से निकलने वाली प्रचंड भाव तरंगें केवल निकटवर्ती व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रहतीं, वरन् परमात्म चेतना से ओतप्रोत व सृष्टि के समस्त प्राणि समुदाय को चमत्कारिक रूप से प्रभावित करती है। शक्ति की ज्वालायें हर किसी के अन्दर धधक रही हैं। ऊपर जमी, कषाय-कल्मष रूपी भस्म को दूर करने से हर कोई इसका अनुभव कर सकता है। आवश्यकता केवल भावनात्मक जागरण की है। साधना-उपासना की सफलता का मूल आधार भावना ही है। इसके अभाव में सारे कर्मकांड भारभूत ही सिद्ध होते हैं।

श्रद्धा जगाती है सिद्धपीठों के संस्कारों को

सिद्ध-संतों की समाधियों, कतिपय देवालयों एवं तीर्थ स्थलों के बारे में प्रायः कहा-सुना जाता है कि वहाँ जाते ही, मनौती मनाते ही बीमार और बीमारी ठीक हो गये। पहले जिनके बचने तक की उम्मीद नहीं थी, वे चमत्कारिक ढंग से स्वास्थ्य लाभ करते हुए विज्ञान को चुनौती देते प्रतीत होते हैं। इस क्रम में कितने ही स्थल, आये दिन साधारण से असाधारण और अद्भुत बनते पाये जाते हैं। कल तक जिनके बारे में कोई जानकारी तक नहीं थी, देखते-देखते उनकी प्रसिद्ध आकाश चूमने लगती है। विश्वभर में ऐसे कितने ही स्थान हैं, जिनकी अलौकिक महिमा को उजागर करने वाले अगणित प्रसंग हैं।

एक घटना सेण्ट चैपेली की है। उक्त चर्च का निर्माण पेरिस में संत लुईस ने कॉण्स्टैण्टीनोपल से प्राप्त 'क्राउन ऑफ थोन्स" के सम्मान में करवाया था। आज भी काँटों का वह ताज सेण्टी चैपेली की शोभा बढ़ा रहा है, न सिर्फ उत्कृष्टता की दृष्टि से, वरन् अद्भुतता के विचार से भी।

प्रसंग पुराना है और मारगुएराइट पेरियर से संबंधित है। यह महिला फ्रांस के विख्यात दार्शनिक और गणितज्ञ ब्लैसे पास्कल की सम्बन्धी थी। नोट्री डेम स्थित सेण्टी चैपेली में वह नन का कार्य करती थी, पर पिछले तीन वर्षों से बहुत दुःखी थी। उसे डर था कि उसके आँख का व्रण कहीं उसकी नेत्र ज्योति ने ले जाय। जब घाव में कोई सुधार होता नहीं दिखाई पड़ा, तो एक दिन वह अधीर हो उठी और जिस पीठिका पर ताज प्रतिष्ठित था, उसके निकट जाकर विषण्ण भाव से बैठ गई। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। वह आँखें मूँदे न जाने क्या बुद-बुदा रही थी। इसी समय चर्च की प्रधान नन वहाँ से गुजरी। पेरियर को इस अवस्था में देखकर अचानक उसे उसकी आँख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की गंभीर दंशा का भान हो गया। वह एक झटके से आगे बढ़ी और फोड़ेयुक्त आँख को ताज से स्पर्श करा दिया। करीब एक घण्टे बाद उसकी आँख से मवाद निकलना बन्द हो गया। धीरे-धीरे तकलीफ घटती गई और कुछ ही दिनों में घाव सूख गया। इसके साथ ही आँखें भी स्वस्थ हो गईं।

इस घटना से पास्कल इतना प्रभावित हुआ कि अपनी विशेष पोशाक में काँटों के ताज से घिरी हुई एक आँख अंकित करवा ली और लैटिन में एक वाक्य लिखवा लिया, जिसका अर्थ होता था "जिसे मैं पहले मानता था, अब भलीभाँति जान गया हूँ।"

वहाँ स्थापित 'क्राउन ऑफ थ्रोन्स" के बारे में मान्यता है कि वह ईसामसीह से सम्बद्ध है। इस घटना के बाद से अब प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग आते और स्वस्थ होकर लौटते हैं।

ईसाई समाज में जो आदर और सम्मान आरंभ के वर्षों में प्रभु को मिला था, वैसी श्रद्धा मरियम के प्रति नहीं दिखाई पड़ती थी, किंतु चौथी शताब्दी आते-आते लोग मदर मेरी को भी पूजने लगे। इस क्रम में कई बार ऐसा जान पड़ता, मानो मरियम जनश्रद्धा की दृष्टि से ईसा को भी पीछे छोड़ गईं। यही वह काल था, जब मरियम के सम्मान में विश्वभर में असंख्य चर्च विनिर्मित किये गये। इन्हीं में से एक है—स्पेन में बार्सिलोना के समीप मोण्टसिरेट में स्थापित काले पत्थरों से बनी मैडोना (मरियम) की मूर्ति, जो आज भी बीमारों और विकलांगों को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु जो सर्वाधिक प्रसिद्ध है, वह लार्डिस, फ्रांस में स्थित है।

इस सम्बन्ध में प्रथम जानकारी बर्नाडेट सोबिरस नामक एक लड़की को मिली। एक बार बर्नाडेट जब लकड़ी बीनने समीपवर्ती नदी तट पर गई, तो किनारे स्थित एक छोटी-सी गुफा में उसे एक दिव्य स्त्री दिखाई पड़ी, पर जब तक वह कुछ समझ पाती, इसके पूर्व ही वह अदृश्य हो गई। उसने इसे आँखों का भ्रम मान लिया और लकड़ी बीनकर अन्य लड़कियों के संग वह वापस लौट गई।

दूसरे दिन जब वह पुनः नदी किनारे पहुँची, तो कल की घटना भूल चुकी थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि कंदरा की ओर चली गई। उसे पुनः वही महिला दिखाई पड़ी। इस बार भी वह कुछ क्षण में ओझल हो गई।

पुनरावृत्ति कई महीनों तक चलती रही, किन्तु लड़की यह समझने में किसी भाँति सफल न हो सकी कि वह नारी आखिर है कौन, क्यों बार-बार दिखाई पड़ती है ? एक दिन उस दिव्य आकृति ने स्वयं ही अपना परिचय देते हुए बताया कि वह मरियम है। इसके बाद वह बर्नाडेट को गुफा के पीछे स्थित एक गुप्त झरने के पास ले गई। बाद में यही जल-स्रोत स्वास्थ्यकारी सिद्ध हुआ।

जैसे-जैसे इसकी ख्याति फैलती गई, आने वाली भीड़ भी तदनुसार बढ़ती गई। कुछ ही समय में यह असाधारण रूप से अधिक हो गई। इसके उपरांत वहाँ एक बड़े चर्च का निर्माण कराया गया और गुफा के अंदर बर्नाडेट को जहाँ मरियम के दर्शन हुए थे, वहाँ संगमरमर की एक मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी गई।

आज भी प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग आते हैं और ठीक होकर लौटते हैं। एक आइरिश व्यक्ति से सम्बन्धित वहाँ की एक घटना निम्न है—

चार्ल्स मैकडोनाल्ड क्षय रोग का मरीज था। पिछले एक वर्ष से उसका चलना-फिरना बिल्कुल बंद हो चुका था और बिस्तर पर पड़ा-पड़ा अपने मौत के दिन गिन रहा था। जब उसकी आयु २० वर्ष थी तभी उसे यह बीमारी हुई थी और अब जबकि वह ३१ वर्ष का हो चुका था व्याधि का आक्रमण फेफड़ों से बढ़कर कंधे, वृक्क एवं अन्य अंगों तक पहुँच चुका था। इस गंभीर और मरणासन्न स्थिति में उसे डबलिन के एक आश्रम में भर्ती कराने का निश्चय किया गया, किन्तु मैकडोनाल्ड ने वहाँ भर्ती होने से पूर्व लार्डिस की यात्रा करने की इच्छा प्रकट की।

दूसरे दिन ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर दिया गया। मैकडोनाल्ड जब वहाँ पहुँचा, तो विशेष रूप से निर्मित स्ट्रेचर में उसे बिठाकर स्नान के लिए ले जाया गया। प्रार्थनादि के उपरांत जब उसे नहलाया गया, तो बड़ी विचित्र अनुभूति हुई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो सम्पूर्ण शरीर में बिजली प्रवाहित हो गई हो। इसके पश्चात् जब दूसरे स्ट्रेचर में रखा जाने लगा; तो वह अपने वर्षों पुराने दर्द से छुटकारा पा चुका था। दूसरे दिन जब स्नान की बारी आयी, तो उस समय तक वह काफी स्वस्थ हो गया था। अब वह चल-फिर सकता था। उसने बिना किसी की सहायतार्थ के स्वयं स्नान किया और दो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिन के भीतर इतनी समर्थता अर्जित कर ली, कि वह अकेले डबलिन लौट सके।

नियमानुसार अंत में पुनः उसकी स्वास्थ्य परीक्षा की गई। चिकित्सकों को यह देखकर अचरज हुआ कि अब उसमें रोग का कोई लक्षण नहीं था। परम्परा के अनुसान पुनः जाँच के लिए उसे एक वर्ष बाद बुलाया गया। मैकडोनाल्ड बिल्कुल स्वस्थ था। चिकित्सकों ने इसे चमत्कार घोषित करते हुए कहा कि वर्तमान चिकित्सा शास्त्र घटना की व्याख्या करने में पूर्णतः असमर्थ है अतः यह उस श्रेणी में गिने जाने योग्य है, जिसकी अलौकिकता की चर्चा अक्सर होती रहती है।

लार्डिस से जुड़ा एक अन्य घटनाक्रम लुईस ओलिवरी नामक एक फ्रांसीसी व्यक्ति से सम्बद्ध है। लुईस एक बिजली मिस्त्री था। एक बार काम करते समय वह सीढ़ी से फिसलकर नीचे गिर पड़ा और उसे पक्षाघात हो गया। उसके शरीर का अर्धांग लकवाग्रस्त हो गया। अब वह हर समय बिस्तर पर ही पड़ा रहता। कई महीने बीत गये। उसकी पत्नी ने जब लार्डिस की महिमा सुनी, तो पति को वहाँ जाने के लिए राजी कर लिया।

झरने में पहली डुबकी लगाते ही वह बेहोश हो गया। उसे पकड़कर बाहर निकालना पड़ा। जब होश आया, तो उसका पक्षाघात ठीक हो चुका था। अब वह चल-फिर सकता था।

इस तरह की कितनी ही घटनाएँ अब तक वहाँ घट चुकी हैं। इनमें कितनी सच्ची और सही अर्थों में अलौकिक हैं ? इसे परखने के लिए एक चिकित्सा दल वहाँ क्रियाशील है। आगंतुकों को सबसे पहले यहाँ अपना स्वास्थ्य परीक्षण कराना पड़ता है, इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य विशेषज्ञ उन रिर्पोट का भी गहराई से अध्ययन करते हैं, जिसे रुग्ण अपने साथ लाये होते हैं। दोनों परीक्षणों के आधार पर वे एक सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इसके बाद स्नान की अनुमित मिल जाती है। व्याधि ठीक होने की स्थिति में फिर शरीर-परीक्षा होती है, जिसमें यह देखा जाता है कि मर्ज कितने प्रतिशत ठीक हुआ ? ठीक हुआ या नहीं। स्वास्थ्य-सुधार के संकेत मिलने पर बीमार को एक साल बाद फिर बुलाया जाता है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि मर्ज और मरीज की अब क्या स्थिति है ? इस बार यदि सेहत और उन्नत पायी गई एवं जाँच दल यह महसूस कर सका कि सुधार स्थायी और अलौकिक है, तो मामले को पेरिस में वरिष्ठ स्वास्थ्य अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके पश्चात् इसे चर्च पदाधिकारियों के सम्मुख रखा जाता है, जहाँ उसकी विधिवत् घोषणा होती है और अधिकारिक रूप से चमत्कारिक करार दिया जाता है।

लार्डिस के सौ वर्ष के इतिहास में मात्र ६० घटनाएँ ही ऐसी हैं, जिन्हें अधिकारियों ने अद्भुत और आश्चर्यजनक घोषित किया है, शेष ६ हजार मामले ऐसे हैं, जिनके बारे में उनका कथन है कि वह सत्य तो हैं, पर उनका आधार अभौतिक नहीं है। उनके पीछे कोई न कोई भौतिक कारण ही निमित्त है, पर वह कारण क्या है ? इसे नहीं जाना जा सका।

विश्वास यदि सुदृढ़ हो और श्रद्धा प्रगाढ़ हो, तो ऐसी घटनाएँ सर्वत्र घटती देखी जा सकती हैं, पर मानवी अंतराल की संरचना ही कुछ ऐसी है कि उसकी आस्था चाहे जहाँ, जिस किसी पर सहजता से नहीं जम पाती। जहाँ जमती है, वहीं चमत्कार पैदा करने लगती है। पवित्र स्थलों के सम्बद्ध में देखी-सुनी जाने वाली अलौकिकताएँ इसी की परिणति हैं। यों सूक्ष्म शरीरधारी दिव्य आत्माएँ भी अपनी कृपा बरसाती और ऐसा कुछ उत्पन्न करती हैं, जिसे अद्भुत कहा जा सके, पर श्रद्धा तत्व की आवश्यकता यहाँ भी अनिवार्य है। बिना इसके वैसा कुछ भी हस्तगत नहीं किया जा सकता, जिसे अनुपम-अद्वितीय के नाम से पुकारा जाता है। तीर्थों, देवस्थलों पर ये चमत्कार जो देखे जाते हैं, उसके पीछे उन संस्कारों का विशिष्ट महत्त्व है जो जनश्रद्धा ने उस स्थान के अंदर से जगा दिए हैं। हमारे यहाँ की उत्तराखण्ड के चारों धाम, वैष्णोदेवी, हरिद्वार में शांतिकुन्ज सप्तसरोवर, तिरुपति रामेश्वरम्, श्रंगेरी, पुरी, आदि स्थानों की महत्ता है। इससे किसी भी स्थिति में तर्क-तथा तथ्य की कसौटी पर नकारा नहीं जा सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधना की सफलता अभीष्ट वातावरण में

साधना की सफलता में वातावरण की महत्ता

साधना में उपयुक्त वातावरण का महत्त्व अत्यधिक माना गया है। अस्त-व्यस्त मनःस्थिति और अनुपयुक्त परिस्थिति में रहते हुए पूजा-पाठ का सुव्यवस्थित क्रम बनता ही नहीं। विक्षोभ भरे वातावरण और प्रपंची जंजाल में उलझे रहने के कारण मन को न तो एकाग्र होने का अवसर मिलता है न श्रद्धा संवर्धन के लिए आवश्यक शान्ति प्राप्त करने की सम्भावना बनती है। ऐसी दशा में चिन्ह पूजा के रूप में की गई उपासना भी ऐसे ही अस्त-व्यस्त बनी रहती है। उसका वैसा प्रतिफल मिलता नहीं जैसा कि शास्त्रकारों ने बताया और सच्चे अर्थों में साधना करने वालों ने पाया है। इस असफलता का कारण है साधना के लिए उपयुक्त वातावरण का अभाव। यदि उसकी व्यवस्था बन सके तो आज भी इन प्रतिपादनों को सही पाया जा सकता है, जो साधना से सिद्धि मिलने के रूप में जाने और माने जाते रहे हैं।

मनुष्य जहाँ भी रहता है वहाँ का वातावरण उसे प्रभावित करता है। वातावरण का अर्थ है—स्थान विशेष की परम्परा और गतिविधियों का समन्वय। वातावरण में प्रतिभाशाली व्यक्तित्वों जैसी ही क्षमता होती है। खाद-पानी के मिलने से साधना की सफलता निश्चित हो जाती है। यों भजन-भाव कहीं भी किया जा सकता है। उसके लिये रोकथाम नहीं है, पर मौसम प्रतिकूल होने पर जिस प्रकार पौधे की आवश्यक देखभाल करने के उपरान्त भी वे नहीं फूलते-फलते। उसी प्रकार साधना का विधि-विधान उपयुक्त वातावरण की अपेक्षा रखता है।

जहाँ जिस स्तर के व्यक्ति रहते हैं—जहाँ जिस प्रकार की हलचलें होती रहती हैं, वहाँ के सूक्ष्म संस्कार भी वैसे ही बन जाते हैं और वे बहुत समय तक अपना प्रभाव बनाये रहते हैं। तपस्वियों का प्राण उनके निवास-स्थान के इर्द-गिर्द छाया रहता है। सिंह और गाय एक साथ ऋषि आश्रमों में प्रेमपूर्वक रहते थे। हिरन तथा दूसरे पशु-पक्षी वहाँ निर्भयतापूर्वक पालतू बन जाते थे। ऐसे वातावरण में सहज ही मानसिक विक्षोभ शान्त होते हैं और साधना के उपयुक्त मनःस्थिति स्वतः बन जाती है।

वातावरण के प्रभाव की सशक्तता का परिचय देने वाले कितने ही कथा, प्रसंग इतिहास में मिलते हैं। महाभारत में भाई-भाई का, सम्बन्धी-सम्बन्धी का युद्ध होना था। निर्णायक स्थिति में पहुँचे बिना वे लोग पुराने सम्बन्धों की भावुकता में कोई अधूरा समझौता कर सकते थे। इस स्थिति को न आने देने के लिये कृष्ण ऐसी भूमि को रणक्षेत्र चुनना चाहते थे, जिसके वातावरण में निष्ठुरता के तत्व अधिक हों। ऐसी भूमि तलाश करने के लिये उनने अपने दूत दूर-दूर तक भेजे। एक दूत ने अपनी जानकारी का ऐसा प्रसंग सुनाया, जिससे युद्ध के लिये उपयुक्त भूमि की समस्या हल हो गयी।

दूत ने आँखों देखा वर्णन बताते हुए कहा—'वर्षा हो रही थी। बड़े भाई ने छोटे भाई को खेत की मेंड़ बाँधकर पानी रोकने के लिये कहा, इस पर छोटा उबल पड़ा। अवज्ञा भरे कटुवचन कहने लगा। सुनते ही बड़े का आवेश चरम सीमा पर जा पहुँचा। उसने तत्काल लाठी से छोटे का सिर फोड़ दिया और उसकी लाश को घसीटते हुए बहते हुए पानी को रोकने के स्थान पर गाड़ दिया।

एक और ऐसी घटना है—श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता को तीर्थयात्रा पर ले जा रहे थे। वाहन का प्रबन्ध था नहीं, सो उन्होंने 'कावर' बनाई। दोनों को दोनों ओर बिठाया और कन्धे पर लादकर यात्रा करने लगे। अधिकांश यात्रा तो प्रसन्नतापूर्वक तय कर ली, पर एक क्षेत्र में पहुँचते ही उनका विचार बदल गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कावर जमीन पर रख दी और माता-पिता से कहा—आप लोगों की आँखें खराब हैं, पैर नहीं। आप लोग अपने पैरों चलिये, मैं तो रास्ता बताने भर का काम कर सकता हूँ।

श्रवणकुमार के पिता इस परिवर्तन पर चकित रह गये। वे ऋषि थे। वस्तुस्थिति को उनने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जान लिया। उन्होंने पुत्र से सहमति प्रकट की और पैदल चलने को तैयार हो गये। साथ ही यह भी कहा कि इस क्षेत्र से जल्दी से जल्दी बाहर निकल चलना चाहिए अन्यथा कोई भयंकर अनिष्ट होने की आशंका बनी रहेगी। वैसा ही किया गया। वे लोग तेजी से उस क्षेत्र को पार करके आगे चले गये।

महाभारत की कथा के अनुसार जैसे ही वह क्षेत्र समाप्त हुआ, श्रवणकुमार की आत्मग्लानि उमड़ी और वे अपने कुकृत्य पर फूट-फूट कर रोने लगे। माता-पिता को काँवर पर बिठाकर फिर ले चलने का आग्रह करने लगे। संसार भर में माता-पिता की सेवा का अनुपम आदर्श उपस्थित करके अमर यश पाने का जो अवसर हाथ में था, उसे वे गँवाना नहीं चाहते थे।

पिता ने श्रवणकुमार को इन बुरे-भले परिवर्तनों का कारण बताते हुए कहा—"बहुत समय पूर्व इस क्षेत्र में 'मय' नामक दानव रहा करता था। वह बड़ा नृशंस था। उसने अपने माता-पिता को मार डाला था। उसी की दुष्टता इस क्षेत्र पर अभी भी किसी न किसी रूप में छाई हुई है। उसी ने तुम्हारे मन पर विद्रोह का भाव भड़काया। अब वह क्षेत्र पीछे रह गया है, तो वह प्रभाव भी समाप्त हुआ और तुम्हारी स्वाभाविक सहज बुद्धि वापिस लौट आई।

संसार के विभिन्न क्षेत्रों का पर्यवेक्षण किया जाय तो प्रतीत होगा कि क्षेत्रीय विशेषता का वहाँ के पदार्थों और प्राणियों पर कितना प्रभाव पड़ता है। ठण्डे देशों के निवासी मनुष्य गोरे रंग के सुदृढ़ और दीर्घजीवी होते हैं। जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, वहाँ स्वास्थ्य गिरे और रंग काले पाये जाते हैं। यही बात वनस्पतियों के सम्बन्ध में भी है। जड़ी-बूटियाँ वही हैं, पर विभिन्न क्षेत्रों में उगाये जाने पर उनके गुणों में न्यूनाधिकता उत्पन्न हो जाती है। हिमालय क्षेत्र में गंगातट पर उगी ब्राह्मी की तुलना में मैदानी क्षेत्रों में नहर-रजवाहों के किनारे उगी हुई ब्राह्मी के गुणों में भारी अन्तर पाया जाता है। यही बात अन्य जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में भी है।

भुसावल क्षेत्र के कले, नागपुर क्षेत्र के संतरे, लखनऊ के आस-पास के आम-खरबूजे अपनी विशेषताओं के लिए प्रख्यात हैं। काश्मीर के सेव की अपने विशेषता है। मैसूर के जंगलों में उगे हुए चन्दन वृक्षों में विशिष्ट सुगन्ध होती है। उन्हीं के बीज, पौधे यदि अन्यत्र बोये, उगाये जाते हैं तो बढ़ेंगे और फलेंगे तो अवश्य पर उनमें वैसी विशेषतायें न होंगी। अन्न-शाक के गुण-स्वभाव में भी इसी आधार पर बहुत अन्तर पाया जाता है। पंजाब का गेहूँ अन्य प्रान्तों की तुलना में अभी भी बढ़िया होता है। इसका श्रेय या दोष किसान और माली को उतना नहीं जितना कि उन क्षेत्रों की भूमि और जलवायु को है। संक्षेप में इसे वातावरण का प्रभाव कह सकते हैं। पशुओं में भी इसी प्रकार का अन्तर देखने में आता है। कच्छ, हरियाणा, नागौर आदि क्षेत्रों के गाय, बैल कितने दुधारू कितने परिश्रमी होते हैं, यह सर्वविदित है। बंगाल और बिहार में जन्मने वाले गाय, बैल अपेक्षाकृत दुर्बल होते हैं। इनमें नस्ल का उतना श्रेय-दोष नहीं जितना कि जलवायु का होता है। उपरोक्त स्थानों के इन पशुओं का निवास क्षेत्र यदि बदल जाय तो नस्ल में सहज ही अन्तर पड़ता चला जायेगा। विदेशों से मँगाये गये पशु अपने देश में रहने के उपरान्त उन विशेषताओं को खोते चले जाते हैं, जो उनके मूल स्थान में रहती थीं। ठण्डे देशों के रीछ, कुत्ते आदि गर्म क्षेत्रों के चिड़ियाघरों में मुश्किल से ही जी पाते हैं। जो रखे जाते हैं, उनके लिये वैसे ही ठण्डे वातावरण की व्यवस्था करनी पड़ती है।

वातावरण का प्रभाव पेड़-पौधों और वृक्ष-वनस्पतियों तक ही सीमित रहता हो सो बात नहीं। किसी को बताया न जाय और अज्ञात श्मशान घाट में खड़ा कर दिया जाये तो अनायास भय लगने लगता है। पशुओं को दिन भर उनके मालिक एक स्थान से दूसरे स्थान लाते-ले जाते रहते हैं, पर यदि कोई कसाई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उन्हें वध गृह की ओर ले चलने लगता है, तो पशुओं को उनके रोंगटे खड़े हो जाने जैसी स्थिति में भयभीत पाया गया है।

प्रसंग साधना में वातावरण की महत्ता का चल रहा था। विशिष्ट साधनों के लिये हिमालय एवं गंगा तट की बात सोचनी चाहिये। बाह्य शीतलता के साथ आन्तरिक शान्ति का भी तारतम्य जुड़ा रहता है। हिमालय की भूमि ही ऊँची नहीं है, उसकी भूमि संस्कारिता भी ऊँची है। अभी भी इस क्षेत्र के निवासी ईमानदारी और सज्जनता के लिये प्रसिद्ध हैं। घोर गरीबी और अशिक्षा के रहते हुए भी उनकी प्रामाणिकता का स्तर बना हुआ है। हिमालय यात्रियों में से कभी कदाचित् ही किसी पहाड़ी कुली से बेईमानी, बदमाशी की शिकायत हुई हो।

प्राचीन काल में हिमालय ही स्वर्ग क्षेत्र कहलाता था। इसके अनेकों ऐतिहासिक प्रमाण अखण्ड-ज्योति में लगातार एक लेखमाला के रूप में छप चुके हैं। देव मानवों की यह भूमि थी। थोयोसोफी वालों की मान्यता है कि अभी भी दिव्य आत्मायें वहीं निवास करती हैं। चमत्कारों और सिद्धियों की खोज करने वाले प्रत्येक शोधकर्त्ता को हिमालय की कन्दरायें छाननी पड़ी हैं।

भगवान राम को चारों भाइयों समेत अपनी विशिष्ट साधना के लिये अयोध्या छोड़कर देव प्रयाग के इर्द-गिर्द, गुरु वशिष्ठ के समीप बसना पड़ा था। कृष्ण पले गोकुल में, महाभारत रचाया कुरुक्षेत्र में, बसे द्वारिका में परन्तु साधना हेतु उन्हें भी बद्रिकाश्रम में तपस्या करनी पड़ी। पाण्डवों की अन्तिम साधना इन्द्रप्रस्थ में नहीं हिमालय में हुई थी और उन लोगों ने यहीं तप साधन करते हुए स्वर्गारोहण किया था। भागीरथ राज-काज चलाते हुए उस स्तर की तपश्चर्या नहीं कर सकते थे, जिसके आधार पर गंगोत्री में डेरा डालकर उन्होंने गंगावतरण सम्भव किया। विश्वामित्र राज-काज चलाते हुए गायत्री के दृष्टा ऋषि नहीं बन सकते थे। कण्व ऋषि के आश्रम में पले हुए भरत, वाल्मीकि की कुटी में रहने वाले लव-कुश प्रबल प्रवीण हुए थे। यह लाभ उन्हें किसी होस्टल में रहकर एवं घर की सुख-सुविधाओं को भोगते हुए सम्भव नहीं था। इन्द आदि देवताओं का निवास एवं स्वर्ग प्रदेश इसी क्षेत्र में होना सिद्ध किया गया है। कैलाश एवं सुमेरु पर्वत देवताओं के निवास-स्थल हैं। नन्दन वन इधर ही है। स्वर्ग चर्चा से सम्बन्धित अनेक प्रमाण इधर मिलते हैं। मध्य एशिया से आर्यों का भारत प्रवेश हिमालय मार्ग से होना और उनका तिब्बत से नीचे उतरकर डेरा डालना प्रायः इतिहासवेत्ताओं द्वारा कहा जाता है। इस मान्यता से देवमानवों की राजधानी इस क्षेत्र में होने की संगति बनती है। हनुमान, अश्वत्थामा आदि चिरंजीवी महामानवों का निवास स्थान इसी क्षेत्र में माना जाता है। इतिहास साक्षी है कि प्रायः सभी ऋषियों की तपश्चर्यायें इसी क्षेत्र में सम्पन्न हुई हैं।

गुरु वशिष्ठ की गुफा यहीं थी। व्यास जी और गणेश जी ने मिलकर १८ पुराण इसी क्षेत्र वसोधारा नामक स्थान पर लिखे थे। परशुराम, विश्वामित्र, दधीचि जैसे परम प्रतापी तपस्वियों की साधना हिमालय में ही सम्पन्न हुई थी।

हिमालय शिव का क्षेत्र है। उनका निवास यहीं माना जाता है। उनकी दोनों धर्म पत्नियाँ इसी भूमि में उपजीं। गंगा, यमुना सहित अनेकों पुण्य नदियों का उद्गम यहीं है। भारत की आध्यात्मिक विभूतियों की उत्पादक भूमि यदि हिमालय को माना जाय तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। इस मूर्तिमान देवता की छाया में बैठकर कितनों ने न जाने क्या-क्या पाया है ? अभी उसकी वह विशेषता अक्षुण्ण है। जलवायु की दृष्टि से आरोग्य सम्वर्धक तत्वों की विशेषता से भी यह क्षेत्र अपने देश में सर्वोत्तम है। फिर मानसिक शान्ति और आत्मिक प्रगति के लिये जैसा वातावरण चाहिये वैसा यहाँ सदा-सर्वदा उपलब्ध रहता है। ब्राह्मी, शिलाजीत, अष्टवर्ग आदि औषधियाँ अन्यत्र भी पाई, उगाई जा सकती हैं, पर हिमालय की भूमि पर जो उगता है, उसमें अत्यधिक मात्रा में उपयोगी तत्व रहते हैं।

हिमालय की छाया-गंगा की गोद और वहाँ का भाव भरा वातावरण साथ ही यदि शक्तिशाली संरक्षण मार्गदर्शन मिलता हो, तो उसे साधना का सुअवसर एवं साधक का सौभाग्य ही माना जाना चाहिये। सप्त सरोवर वह तपःस्थली है, जहाँ

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सप्त ऋषियों ने साधना की। यह स्थान आज भी उन विशेषताओं से पूर्ण है, जिनकी साधक को आवश्यकता होती है। ऐसे ही वातावरण में निवास करने का स्वर्गीय दिव्य आनन्द प्राप्त करने के लिए राजा भर्तृहरि बेचैन थे। इसके लिये उन्होंने राजपाट का सारा जंजाल त्यागा और योगी का देव जीवन अपनाकर उच्चस्तरीय मनोरथ पूरा करने में सफल हुए। जब तक यह स्थिति न आई तब तक वे उसी के मनोरम सपने देखते रहे।

भर्तृहरि शतक में उनकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मज्ञानाभ्यसनविधिना योगनिद्रांगतस्य।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्दिशंका।
कण्डूयंते जरठहरिणाः शृंगमगे मदीये।।

"जीवन का वह सौभाग्य-दिवस कब आयेगा, जब मैं गंगातट की हिमांचल-शिला पर पद्मासन लगाकर ब्रह्मानन्द में लीन समाधिस्थ बैठूँगा और वहाँ के बूढ़े हिरन मेरे अंगों को अपने सींगों से खुजलायेंगे।"

गंगा तट पर साधना का ही अपना महत्त्व है फिर चारों ओर गंगा घिरी होने के बीचों-बीच जन शून्य द्वीपों में बैठकर साधना करने का तो प्रतिफल और भी अधिक विलक्षण होगा। नित्य गंगा स्नान-मात्र गंगाजल पान, टहलना-बैठना गंगा माता की ही गोद में इन विशेषताओं के कारण ब्रह्मवर्चस् साधना के लिये उपयुक्त वातावरण की ही व्यवस्था हुई है। इसे दैवी अनुग्रह एवं सहयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। आश्रम निर्माण के लिये परम सात्विक धन भी भाव भरी श्रद्धा के लिये अपने को सार्थक बनाने के लिये मचलता आ रहा है, भले ही उसकी मात्रा कितनी ही स्वल्प क्यों न हो ? साधना की दृष्टि से गंगा सान्निध्य का महत्त्व शास्त्रकारों ने इस प्रकार बताया है—

यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम्।
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेय गंगातीरं समाश्रितम्।।

—कूर्म पुराण

जहाँ पर यह महाभाग गंगा है, वह देश उसका तपोवन होता है। उसको सिद्ध क्षेत्र जानना चाहिये।

कैलाश और मानसरोवर भारतीय हिमालय क्षेत्र में ही थे और अभी भी हैं। कैलाशवासी शंकर जी के सिर से गंगा प्रवाहित होती है। इसकी संगति तिब्बत में स्थित कैलाश पर्वत से नहीं मिलती, क्योंकि वहाँ से गंगा का गौमुख तक आना भौगोलिक स्थिति के कारण किसी प्रकार सम्भव नहीं है। गंगोत्री से जेलूखागा घाटी होकर कैलाश करीब ३०० मील है। फिर बीच में कई आड़े पहाड़ आते हैं, जिसके कारण भी कोई जलधारा या हिमधारा वहाँ तक नहीं आ सकती। असली शिव लोक इस धरती के स्वर्ग में ही हो सकता है। गंगा ग्लेशियर शिवलिंग के समीप है। स्वर्ग गंगा भी वहीं है। गौरी सरोवर वहाँ मौजूद ही है। इस प्रकार गंगा धारण करने वाले शिव का कैलाश यह हिमालय का हृदय ही हो सकता है। यदि प्राचीन कैलाश यहाँ न रहा होता, तो भागीरथ जी यहाँ तप क्यों करते ? वे तिब्बत वाले कैलाश पर ही शिव के समीप क्यों न जाते ? इस पुण्य प्रदेश में शिवलिंग, केदार शिखर और नीलकण्ठ शिखर यह तीनों ही शिवजी के निवास हैं। मानसरोवर का भी इस देवभूमि में होना स्वाभाविक है। सुरालय, हिमधारा, सत्पथ हिमधारा तथा वरुण वन नामों से भी इसी प्रदेश का देवभूमि होना सिद्ध है। अष्ट वसुओं ने जिस स्थान को अपना निवास बनाया वह वसुधारा भी अलकापुरी के पास ही है। इन सब बातों पर विचार करने से वास्तविक कैलाश और मानसरोवर इसी प्रदेश में अवस्थित सिद्ध होते हैं।

आजकल का तिब्बत प्रदेश वाला कैलाश अब विदेशी प्रतिबन्धों के कारण यात्रा की दृष्टि से दिन-दिन असुविधाजनक हो रहा है। वहाँ डाकुओं का भी भय सदा रहता है। दूरी भी बहुत है। उस प्रदेश में भारतीय वातावरण भी नहीं है, न अपनी भाषा, न संस्कृति। वहाँ जाकर विदेश-सा अनुभव होता है। जिस समय भारत की संस्कृति का वहाँ विस्तार रहा था, उस समय वह तीर्थ भी उपयुक्त रहा होगा, पर शिव का वास्तविक निवास, गंगा का वास्तविक उद्गम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और सच्ची आध्यात्मिक मानसरोवर का दर्शन करना हो तो हमें इस हिमालय के हृदय-धरती के स्वर्ग में वास्तविक कैलाश की खोज करनी होगी।

'ओटोबायो ऑफ योगी' ग्रन्थ में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख मिलता है, जिसमें हिमालय के सिद्ध योगियों के विलक्षण कर्तृत्वों का विवरण है। पाल ब्रिंटन और रम्पा जैसे शोध-कर्त्ताओं ने इस क्षेत्र में समर्थ सिद्ध पुरुषों का अस्तित्व पाया है। दो सौ वर्ष जीवित रहने वाले स्वामी कृष्णाश्रय ने हिन्दू विश्वविद्यालय की आधार शिला रखी थी। वे नग्न अवधूत की तरह हिम प्रदेश में निवास-निर्वाह करते थे। जिन लोगों को भी ऐसे शरीरधारी और अंशधारी और अशरीरी सिद्ध पुरुषों के साक्षात्कार यहाँ होते रहते हैं, जिनके उनके साथ सम्पर्क सधे हैं, उनमें इन पंक्तियों का लेखक भी था।

हिमालय में छोटे-बड़े जितने भी देवस्थान हैं, उतने अन्यत्र मिलने कठिन हैं। अमरनाथ, ज्वालामुखी, हरिद्वार, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, पशपुतिनाथ तो प्रख्यात हैं ही। इनके समीपवर्ती क्षेत्रों में छोटे-छोटे तीर्थों की तो शृंखला ही बिखरी पड़ी है। ऋषिकेश से बद्रीनाथ जाने के मार्ग में ही देव प्रयाग, रुद्र प्रयाग, कर्ण प्रयाग आदि कितने ही प्रयाग तथा उत्तर काशी, गुप्त काशी, तुंगनाथ, त्रियुगी नारायण, दिव्य काशी आदि कितने ही तीर्थ मिलते हैं। शिव और शक्ति के विभिन्न नाम रूपों के देवस्थान थोड़ी-थोड़ी दूर पर गामों के समीप एवं पर्वतीय घाटियों में सर्वत्र पाये जाते हैं। सती के आत्म-विसर्जन का, पार्वती की साधना का यही स्थान है। शिव ताण्डव भी यहीं हुआ था। उस अवसर पर प्रयुक्त हुआ त्रिशूल उत्तरकाशी के एक प्राचीन स्थान में स्थापित बताया जाता है। जमदग्नि और परशुराम की तप-साधना उत्तरकाशी में सम्पन्न हुई थी।

आयुर्वेद, रसायन विद्या, अस्त्र संचालन, साहित्य सृजन, योगानुसंधान जैसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग हिमालय क्षेत्र की सुविस्तृत प्रयोगशाला में होते रहे हैं। सप्त ऋषियों के, महामनीषी देव मानवों के कार्यक्षेत्र इसी भूमि में रहे हैं। छात्रों के लिये गुरुकुल और श्रेयार्थियों के लिये आरण्यक यहीं थे। राजतन्त्रों के सूत्र-संचालक वशिष्ठ जैसे धर्माध्यक्षों के निवास इसी भूमि में थे। प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण ऋषि कल्प-देवात्माओं की विविधि-विधि गतिविधियाँ हिमालय की सुरम्य घाटियों और कन्दराओं में सुविकसित होती रही हैं। उन प्रयोगों से लाभान्वित होकर विशाल भारत के ३३ करोड़ निवासी ३३ कोटि देवता कहलाते रहे हैं। भौतिक और आत्मिक प्रगति की उच्चस्तरीय विभूतियों से भरी-पूरी होने के कारण भारत-भूमि स्वर्गादपि गरीयसी कहलाती रही है। गरीयसी न सही स्वर्ग तो वह रही है। यह अनुदान हिमालय क्षेत्र से ही अवतरित होता रहा है। जलधारा वाली भागीरथी ही नहीं, देवलोक की ज्ञान गंगा का अवतरण एवं प्रवाह भी इसी क्षेत्र से आरम्भ होता रहा है।

जो भी हो, यहाँ कहना इतना भर है कि प्राचीन काल में देवताओं, ऋषियों, तत्ववेत्ताओं और तपस्वी साधकों का यह स्थान कर्मक्षेत्र रहा है। उनके सूक्ष्म संस्कार अभी भी इस क्षेत्र में अतिरिक्त रूप से पाये जाते हैं और साधना के लिये अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ अधिक अनुकूलता रहती है।

शान्तिकुन्ज के लिये हरिद्वार का सप्त सरोवर स्थान बहुत ही समझ-बूझकर चुना गया था। हरिद्वार हिमालय का प्रवेश द्वार है। शिव शक्ति सती का अवसान, पार्वती का जन्म और तप यहीं सम्पन्न हुआ था। सप्तपुरी प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक मायापुरी, हरिद्वार भी है। गंगा की सात धाराओं के पुण्य क्षेत्र के बारे में इतिहास यह है कि सप्त ऋषि यहाँ तप करते थे। गंगा अवतरित हुईं तो उन्होंने ऋषि आश्रमों को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये अपना रास्ता बना लिया और सात भागों में विभक्त होकर इस क्षेत्र से आगे चली गयीं। अभी भी धाराओं के विभाजन का दृश्य यहाँ विद्यमान है। शान्तिकुन्ज की भूमि जहाँ है, वहाँ अब से एक सौ वर्ष पूर्व गंगा की धारा बहती थी। भूमि को बचाने के लिये सरकारी बाँध बना, धारा का विस्तार सीमित हुआ और जिस भूमि पर शान्तिकुन्ज बना है, वह क्षेत्र कृषि योग्य बना दिया गया। प्रकारान्तर से इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि गंगावतरण के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सतयुग काल से लेकर अब से सौ वर्ष पूर्व तक शान्तिकुन्ज की भूमि पर गंगाधारा प्रवाहित होती रही है। अब भी यहाँ के कुओं का पानी गंगा के पानी के बढ़ने-उतरने के क्रम से ऊँचा-नीचा होता रहता है। बालू की एक हल्की सी परत ही गंगा की मूल धारा और इस भूमि में थोड़ा-सा अन्तर प्रस्तुत करती है। जलधारा तो सर्वथा एक ही है। गंगा की बालू और गोल पत्थरों से ही यह भूमि पटी पड़ी है। मूल धारा भी मात्र दो फर्लांग की दूरी पर है और आश्रम की भूमि से उसके दर्शन भली प्रकार किये जा सकते हैं। प्रवेश दिशा को छोड़कर तीनों ओर हिमालय के दिव्य दर्शन होते हैं। थोड़ा ऊँचे चढ़कर दुरबीन से देखा जाय तो हिमाच्छादित चोटियाँ आसानी से देखी जा सकती हैं।

गंगा का गर्भ, हिमालय का छत्र और सप्त ऋषियों का तप इन तीनों के समन्वय से यह स्थान अपने आप में श्रेष्ठ परम्पराओं से परिपूर्ण है। साधना की दृष्टि से इस क्षेत्र को परम्परागत रूप से हर दृष्टि से जीवन्त एवं प्राणवान कहा जा सकता है। अपने प्रयत्न से भी यहाँ के वातावरण में कुछ और प्रखरता लाने का प्रयत्न किया गया है। पचास वर्ष से निरन्तर जलती आ रही अखण्ड ज्योति की घृत दीप शिखा यहीं प्रतिष्ठापित है। गायत्री मन्दिर के निकट चलते रहने वाले जप, अनुष्ठानों का क्रम अनवरत् है। नित्य गायत्री यज्ञ भी सुसंचालित है। यह तीनों ही कार्य इस वातावरण में दिव्यता की सूक्ष्म चेतना का संचार करते हैं। हम भी अपना कुछ न कुछ अपनी तप साधना का क्रम चलाकर आश्रम के वातावरण में ऐसी विशेषता उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे यहाँ के रहने वालों में अनायास ही प्रखरता उत्पन्न हो सके।

आत्मिक प्रगति के लिये उपयुक्त वातावरण गंगा की गोद और हिमालय की छाया ही माना जाता है। साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि ऋषियों और साधकों का समुदाय इसी क्षेत्र में रहकर उपयुक्त प्राण-चेतना उपलब्ध करने में सफल हुआ है। ऋषियों का जन्म तो विभिन्न क्षेत्रों में हुआ है, पर वे उपयुक्त वातावरण, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से घर छोड़कर यहीं आ बसे। इससे उन्हें आरम्भिक असुविधा तो हर परिवर्तन के होने पर जैसी हुई होंगी, किन्तु जब उन्होंने इस परिवर्तन का लाभ देखा, तो कई असुविधायें रहते हुए भी यहाँ जम गये और यहीं रम गये। उनके मन में लौटने का विचार तक नहीं आया। यही कारण है कि हिमालय एवं गंगा के तट वाला भाग अनादिकाल से ऋषि भूमि रहा है। परिस्थितियाँ बदल जाने पर भी वातावरण में वह ऊर्जा अभी भी किसी सीमा तक बनी हुई है ?

ये कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं, जो हिमालय क्षेत्र एवं गंगा की आध्यात्मिक विशेषताओं का संकेत करने में समर्थ हैं। हिमालय पिता की पुण्य छाया अनादिकाल से अध्यात्म साधकों का प्रिय क्षेत्र रही है और विशिष्ट साधनाओं के निमित्त प्रायः सभी साधक महापुरुष कुछ अवधि के लिए इस वरदानी महिमामयी छाया में आते और कृतकृत्य होकर लौट रहे हैं। अवतारी पुरुषों राम, कृष्ण, परशुराम आदि के साधना स्थल इसी क्षेत्र में हैं। ऋषियों का तो यह सनातन निवास है। अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक संगठन थियोसॉफिकल सोसायटी वाले भी ऋषियों (मास्टर्स) का स्थान इसी क्षेत्र को मानते हैं।

गंगा माँ की गोद भी साधकों के लिए आकर्षक और पौराणिक मान्यता के अनुसार भागीरथ ने प्रचण्ड तप करके गंगा को इस हेतु सहमत किया कि वे स्वर्ग से उतरकर धरती पर प्रवाहित हों। तब तक इसका लाभ मात्र देव लोक निवासी ही उठाते थे। पुराण के अनुसार गंगा विष्णु के चरणों से निकलीं। स्वर्ग से धरती पर उतारते समय उनका प्रचण्ड वेग कौन कैसे धारण करे, यह विकट प्रश्न था ? भगवान शिव ने अपनी जटाओं पर उतरने का अवसर देकर उसे सहज सम्भव बनाया। इस प्रकार विष्णु के चरणों और शिव जटाओं से गंगा का प्रवाह जुड़े होने के कारण धार्मिक दृष्टि से उसका बहुत अधिक महत्त्व है। गंगाजल को विष्णु का चरणामृत कहा जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु गंगा की विशेषता शारीरिक आरोग्य से भी अधिक उसकी आध्यात्मिक, स्वास्थ्य-सम्वर्धन की सामर्थ्य. 'गंगा को हिमालय का अमृत-रस भी कह सकते हैं। रासायनिक विशेषताओं वाले इस क्षेत्र का सार-तत्व गंगाजल में घुलमिलकर प्रवाहित होता है। ब्राह्मी, अष्टवर्ग, रत्नज्योति जैसी जड़ी-बूटियाँ और शिलाजीत जैसे खनिज जो इस क्षेत्र में होते हैं, उनकी अपनी ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो अन्य क्षेत्रों में उनमें नहीं पायी जातीं। ये विशेषताएँ जल-स्रोतों के साथ घुलकर गंगा में जा पहुँचती हैं। लगभग ५०० मील तक हिमालयी क्षेत्र में ही परिभ्रमण करने के उपरान्त ही गंगा मैदानी भूमि में आती है। उसी बीच हिमालय क्षेत्र की लगभग तीस नदियाँ देर-देर से बहती आकर गंगा में विसर्जित होती चलती हैं। इस प्रक्रिया में हिमालय के अति महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का रासायनिक सार-तत्व गंगा प्रवाह में सम्मिलित होता रहता है और इस प्रकार आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से गंगाजल किसी बहुमूल्य औषधि-द्रव की ही तरह हो जाता है।

मानवी-सत्ता ही नहीं, पदार्थ-सत्ता के भी तीन स्तर होते हैं-स्थूल, सूक्ष्म और कारण। प्रत्यक्ष दृश्य को स्थूल कहते हैं। सूक्ष्म स्तर अदृश्य प्रभाव को कहते हैं। कारण स्तर वह है, जिसे स्थूल और सूक्ष्म की गहन अन्तरात्मा कहा जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्य में प्रत्यक्ष शरीर को स्थूल, मनःचेतना को सूक्ष्म और अन्तरात्मा को कारण-शरीर कहा जाता है। पदार्थों में भी यही तीन स्तर होते हैं। जैसे तुलसी का सूक्ष्म स्वरूप है, उसका रासायनिक औषधि रूप। उसका सूक्ष्म प्रभाव शान्तिदायक होता है, जबकि तुलसी का कारण-स्तर मानवी अन्तःकरण में भक्ति-भावना, श्रद्धा-पवित्रता के संचार में समर्थ होता है, इसीलिए उसे देवोपम कहा गया। इसी प्रकार वट, पीपल, आँवला जैसे वृक्षों में भी ऐसी ही कुछ दिव्य विशेषताएँ होती हैं, अतएव सूक्ष्मदर्शियों ने उन्हें वृक्ष वर्ग के देव कहा है। पशु-वर्ग में गौ को माता की मान्यता भी सूक्ष्म एवं कारण स्तरीय प्रभावों को देखकर ही प्रदान की गयी है, अन्यथा दूध का लाभ तो दूसरे पशु भी दे सकते हैं। गंगाजल की विशेषता में भी कारण स्तरीय दिव्यता ही प्रधान है। उसमें स्नान करने से अन्तःकरण में पवित्रता का सञ्चार होता है, यही महत्वपूर्ण विशिष्टता है। इसी हेतु से असंख्य भावनाशील नर-नारी उसमें स्नान के लिए दौड़े आते हैं और नहाकर अपनी धर्मभावना तृप्त करते हैं। यद्यपि इन दिनों गटरों का गन्दा पानी और शहरी कोलाहल के प्रदूषण से गंगा के कारण-स्तरीय प्रभाव में कुछ कमी आ गई है। तो भी उसकी पवित्रता अभी जहाँ विद्यमान हैं,, वहाँ उसके तट पर कुछ समय निवास करने पर आन्तरिक शान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

गंगा भारत-भूमि की सर्वप्रधान-पयस्विनी है। कोटि-कोटि भारतीय जन उसके धार्मिक-आध्यात्मिक महत्व पर विश्वास करते हैं। उसके सम्पर्क-सान्निध्य से शान्ति प्राप्त करते हैं और प्रेरणा ग्रहण करते हैं। हिन्दू धर्मावलम्बियों ने ही नहीं, अन्य धर्मावलम्बियों ने भी उसकी विशेषताओं को समझा और स्वीकारा है। इब्नबतूता एक प्रसिद्ध पर्यटक—लेखक रहा है। उसके यात्रा-संस्मरणों का गिब्स ने अँग्रेजी में अनुवाद किया है। उसमें यह उल्लेख भी है कि तत्कालीन शासक मुहम्मद तुगलक गंगाजल पीते थे और उनके लिए दौलताबाद गंगाजल पहुँचाया जाता था, जिसमें ४० दिन लग जाते थे।

अबुलफजल कृत 'आइने अकबरी' के अनुसार अकबर को गंगाजल बहुत पसन्द था। उसे नित्य गंगाजल मिल सके, इसे हेतु २० व्यक्तियों का एक दल नियुक्त था। जब वे पंजाब में रहते थे, तो हरिद्वार से गंगाजल मँगाया जाता था और जब आगरा या फतेहपुर सीकरी रहते थे, तब सोरों से। पन्द्रहवीं शताब्दी के फ्रेंच यात्री बर्नियर ने औरंगजेब तथा दाराशिकोह दोनों के गंगाजल प्रेम का उल्लेख किया है। औरंगजेब के अनेक दरबारी भी गंगाजल का सेवन करते थे। ब्रिटिश कप्तान एडवर्डमूर ने अपने संस्मरणों में कुछ मुस्लिम नवाबों द्वारा गंगाजल पीने की बात लिखी है।

अँग्रेज वैज्ञानिक हैकिन्स ने ब्रिटिश शासन की अवधि में गंगाजल पर शोध किया था। उसने देखा कि काशी के गन्दे नालों का जल, जिसमें हैजे के असंख्य कीटाणु भरे रहते थे, गंगा में मिलने पर उसके विषाणु तत्काल मर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गये। मुर्दों की सड़नशील लाश का विषाक्त प्रभाव भी गंगा में समाप्त हो गया।

रसायन विज्ञानी प्रो० एन० एन० गोडवाले ने गंगाजल की रासायनिक जाँच की और पाया कि प्रयाग तक के गंगाजल में 'प्रोटेक्टिव कर्लाइड' होते हैं, जो रोगाणुओं का विनाश करते हैं। आगे उसके गुण घटते जाते हैं, क्योंकि आगे उसमें अनेक गन्दे नाले व दूसरी बड़ी-बड़ी नदियाँ मिलती हैं। फ्रेंच वैज्ञानिक डा० हेरेल, जर्मन वैज्ञानिक जे० आलिवर आदि ने जाँच के बाद एक स्वर से गंगाजल को रोगाणुनाशक एवं विशेष स्फूर्तिप्रद पाया।

ब्रह्मवर्चस् साधना के समय गंगा-स्नान एवं गंगाजल पान से शारीरिक आरोग्य, मानसिक स्फूर्ति एवं भावनात्मक शान्ति की प्राप्ति स्वाभाविक ही है। माँ गंगा की गोद भावनाशील लोगों को भावभरी आनन्दानुभूति प्रदान करती है। सूक्ष्म दृष्टाओं के अनुसार गंगा प्रवाहमान देव-सत्ता है। हरिद्वार तक की गंगा के तट में, इस हिमालयी क्षेत्र में हजारों वर्षों तक तप-परम्परा को बनाए रखने वाले योगियों-ऋषियों-महात्माओं की प्रज्ञा के संस्कार-प्रभावों का साधक स्पष्ट अनुभव करते हैं। भगवान राम, लक्ष्मण भरत एवं शत्रुघ्न अन्तिम दिनों में तप के लिए इसी क्षेत्र में आये थे। सप्त ऋषियों ने हिमालय की छाया और गंगा की गोद में ही अपनी तपस्थली बनायी थी। ब्रह्मवर्चस् के लिए गंगा माँ की गोद, हिमालय पिता की छाया, सप्त ऋषियों की सुसंस्कारित तपोभूमि—ये ऐसी विशेषताएँ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इसके साथ ही युग-निर्माण अभियान के सूत्र-संचालक का दिव्य संरक्षण तो एक ऐसी विशिष्टता है, जो अनुपम ही है। इस दिव्य वातावरण-संस्कारवान भूमि में साधकों को दिव्य संरक्षण, मार्गदर्शन, प्रकाश और अनुदान की जो व्यवस्था सुलभ होती है, वह ब्रह्मवर्चस् की उच्चस्तरीय गायत्री-साधना में उनके लिए श्रेष्ठतम सहायक सिद्ध होती है।

ब्रह्मवर्चस् साधना में ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्मतेज दोनों की ही उपासना-साधना सम्मिलित है। चेतन ब्रह्मतेज सविता और उसकी शक्ति-ब्रह्मशक्ति-सावित्री दोनों की उपासना साधक को शक्ति-सम्पन्न, तेजस्वी, ज्ञानवान, सद्बुद्धि-सम्पन्न, ऋतम्भरा प्रज्ञायुक्त, विवेकशील, दूरदृष्टा और महान् बनाती है। इस साधना-प्रक्रिया में धुलाई और रंगाई के क्रमिक सोपान समाहित हैं। आत्मिक प्रगति के मार्ग में बाधक संचित कुसंस्कारों का प्रायश्चित-परिशोध, कषाय-कल्मषों की धुलाई, इस साधना का स्वाभाविक ही अनिवार्य अंग है। आहार-विहार सम्बन्धी संयम और तप-तितीक्षा द्वारा साधक के व्यक्तित्व को दिव्य अवतरण का दबाव सम्भाल सकने योग्य बनाया जाता है। इसीलिए उससे सम्बन्धित समस्त मर्यादाओं का साधक के द्वारा निष्ठापूर्वक निर्वाह आवश्यक है। उसके बिना तो साधक में सिद्धियों की पात्रता ही उत्पन्न न हो सकेगी।

उपवास, ब्रह्मचर्य, स्वयंसेवा, मौन और शारीरिक तितीक्षा के नियम-निर्देशों को स्वयं पर कठोरता से लागू करना-साधना पथ पर अग्रसर होने की आरम्भिक आवश्यकता है। पाप-स्वीकृति, पश्चात्ताप-प्रायश्चित एवं इष्टापूर्ति की चान्द्रायण तप-प्रक्रिया के आत्म-परिशोधन का कार्य सम्पन्न होता है। तप-तितीक्षा का अभ्यास सुदृढ़ता एवं सत्पात्रता उत्पन्न करता है। इसके आगे है योगाभ्यास-साधना, जो साधक के व्यक्तित्व के विस्तार, सामर्थ्य एवं स्तर में वृद्धि करती है और उसे परमात्मा सत्ता से जोड़ने की प्रक्रिया सिद्ध होती है। पंचमुखी गायत्री की पंचकोशी साधना पाँच कोशों का अनावरण करने में समर्थ है। उससे रहस्यमय रत्न-भण्डार, सिद्धियों-विभूतियों का अक्षय कोष प्राप्त करने की चाबी हाथ लगती है।

शरीर में संव्याप्त प्राण-ऊर्जा को तपश्चर्या परिष्कृत करती है। मनःक्षेत्र की चिन्तन-चेतना को उच्चतम शक्ति स्रोत एवं आस्था केन्द्र से जोड़ने का कार्य योग-साधना द्वारा सम्पन्न होता है।

गायत्री-जप, ध्यान, सोऽहं साधना, त्राटक, खेचरी-मुद्रा एवं शक्ति संचालन की योग-साधनाएँ साधक को दैवी सिद्धियों, दिव्य अनुभूतियों की सामर्थ्य प्रदान करती हैं। उसके साथ ही स्नान-भोजन, सूर्योपासना, दीपस्तुति, शयन एवं जागरण जैसे नित्यकर्मों में आत्मबोध-तत्वबोध आदि की धर्मभावनाएँ साधक के भावनात्मक अन्तःक्षेत्र को परिष्कृत, उदात्त, कोमल और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुभूति-क्षम बनाती हैं। यज्ञ-कर्म इन सब व्यक्तिगत सामूहिक पुरुषार्थों की समन्वित अभिव्यक्ति है। इन समस्त विधि-विधानों का समावेश साधक अपनी दिनचर्या में किस स्तर पर, किस-किस रूप में करेगा, यह निर्धारण-निर्देशन प्रत्येक साधक की स्थिति के अनुरूप किया जाता है। इस प्रकार साधकों के पुरुषार्थ, वातावरण की सुसंस्कारिता, साधना प्रक्रिया की समग्रता तथा दिव्य संरक्षण, मार्ग दर्शन एवं प्रकाश अनुदान द्वारा ब्रह्मवर्चस् साधना प्रक्रिया प्रचण्ड आध्यात्म-ऊर्जा को प्रकट करने में समर्थ है और इस अध्यात्म ऊर्जा को विकसित करने के लिए अपने कषाय-कल्मषों के निष्कासन की आवश्यकता पड़ती है, ताकि विकारों के कारण अवरुद्ध हुई आत्मिक ऊर्जा, विकारों के नष्ट होने पर तीव्रगति से उद्‌बुध हो सके। इस अध्यात्म ऊर्जा-ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति के लिए तप साधन की आवश्यकता पड़ती है। इसके समुचित विधान और मार्गदर्शन की व्यवस्था ब्रह्मवर्चस् साधना में की गयी है।

वातावरण की महिमा गायी ऋषियों और मनीषियों ने

गुरु अपने शिष्यों के साथ तीर्थ यात्रा पर चले जा रहे थे। एक शिष्य ने कहा-गुरुदेव ! चलते-चलते थकान-सी आ गई है। कुछ विश्रान्ति की आवश्यकता अनुभव होती है, भोजन का भी समय हो गया है। गुरुदेव ने चारों ओर निगाह दौड़ाई। समीप ही बरसाती नदी के किनारे एक विशाल वृक्ष खड़ा था। फलों से लदा था, छाया भी थी। सबने अपरान्ह की संध्या-वंदन कर गुरु के हाथों प्रसाद पाया, थोड़ी देर विश्राम कर थकान मिटाई व फिर "चरैवेति चरैवेति" सिद्धान्त का परिपालन करते हुए आगे बढ़ गए, प्रव्रज्या चलती रही। एक वर्ष बीत गया। संयोग से आगामी वर्ष लौटते हुए उसी स्थान पर रुके। किन्तु वहाँ वह वृक्ष नहीं था। जमीन से उखड़ी जड़ें बता रहीं थी कि कभी वहाँ वृक्ष का अस्तित्व था, कलकल करती नदी भी पास बह रही थी। एक शिष्य ने जिज्ञासापूर्वक पूछ ही लिया कि "भगवन् ! यह क्या हुआ ? इतना हरा-भरा वृक्ष देखते-देखते धराशायी हो गया जबकि छोटी-छोटी बेंतों की लताएँ यथावत् खड़ी हैं।" गुरुदेव ने गंभीरतापूर्वक कहा कि तात् ! यह वृक्ष तो विशाल था, सबको छाया व फल भी देता था पर इस बरसाती नदी के उफनते प्रवाह को इसकी खोखली जड़ें झेल नहीं पाईं। उन जड़ों के खोखलेपन के ध्वंसावशेष तो अभी भी तुम देख ही रहे हो। नदी का प्रवाह अभी भले ही शांत नजर आ रहा हो पर वर्षा ऋतु में जब बाढ़ आई तो जड़ें कमजोर होने से यह धराशायी हो गया व बह गया। खोखलेपन की ऐसी ही अभिशप्त परिणति होती है।" इसमें नदी के प्रवाह का कोई चमत्कार नहीं, वृक्षों के मूलभूत आधार जड़ों का सूख जाना ही प्रमुख कारण है।"

शिष्यों ने प्रसंग सुना व मर्म समझा कि यदि जड़ें मजबूत न हों, अंतरंग का आधार सशक्त न हो तो अस्तित्व अस्थायी ही रहता है। चाहे व्यक्ति का अंतःकरण हो अथवा समाज रूपी भवन का प्रसंग हो-यदि जड़ें कमजोर होंगी, मर्मस्थल रुग्ण होगा, नींव कमजोर होगी तो व्यक्ति समस्याओं रूपी तूफान को झेल नहीं पायेगा, समाज रूपी भवन गिरकर ही रहेगा।

महात्मा जी ने आश्रम की ओर लौटते हुए प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहा—"हे शिष्यगण ! मनुष्य को तुम एक प्रकार का भटका हुआ देवता मान सकते हो। उसके अंतराल में पड़े संस्कार जब प्रसुप्त पड़े रह जाते हैं तो वह सामान्य शिश्नोदर-परायण जीवन जीता देखा जाता है। अंतः की संवेदना सूख जाने के कारण निष्ठुर, निर्दयी, कृपण स्थिति में नर-पशु, नर-पिशाच की स्थिति में जीता देखा जाता है। यदि वह अंतःकरण की प्रसुप्त सुसंस्कारिता को जगा ले, श्रेष्ठ वातावरण के प्रभाव का लाभ उठा ले तो कोई भी प्रतिकूलता उसे हिला नहीं सकती, प्रगति पथ पर बढ़ते चरणों को कोई भी तूफान रोक नहीं सकता। व्यक्ति अपने संस्कारों को जमाकर ही देवमानव-महामानव-ऋषि, देवदूत बनता देखा जाता है।"

ऊपर आख्यान में बताई बात सही भी है। किन्तु यह सब किया कैसे जाय ? बीज यदि जमीन में पड़ा हो व उसमें घुन लगा हो तो कितना ही खाद-पानी दिया जाय उस पर कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु प्राणवान बीज परिस्थितियाँ अपने अनुकूल पाते ही भूगर्भ की नमी गर्मी से पोषण पाते ही अंकुरित-पल्लवित-पुष्पित होता व विशाल वृक्ष का आकार ग्रहण करता देखा जाता है। साधारण मानव भी इसी प्रकार अपनी सुसंस्कारिता को पोषण देते हुए तथा संस्कार युक्त वातावरण एवं महामानवों का सान्निध्य-संरक्षण पाकर आगे बढ़ते, असाधारण पुरुषार्थ करते देखे जाते हैं। यदि सब कुछ अनुकूल होते हुए भी श्रेष्ठ वातावरण का लाभ पाते हुए भी व्यक्ति अपने विकास को तत्पर न हों तो उसका दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। उससे बड़ा अभागा और कौन हो सकता है, जो तपःपूत सुसंस्कारित वातावरण पाकर, महापुरुषों का दैवी सान्निध्य, संरक्षण पाकर भी अपनी आत्मिक प्रगति न कर सके।

किसी स्थान विशेष के संस्कार जैसे होते हैं वैसा ही आभामंडल उस स्थान विशेष पर बन जाता है तथा वहाँ विद्यमान लोगों को प्रभावित करता है। भगवान श्रीकृष्ण को जब महाभारत संग्राम के लिए भूमि का चयन करना पड़ा तो सारे बृहत्तर भारत का पर्यवेक्षण करने के बाद कुरुक्षेत्र में एक स्थान ऐसा देखा जो युद्ध के लिए उपयुक्त पाया। विशिष्टता उस स्थान की यही थी कि थोड़ी-सी खेती की जमीन के लिये एक भाई ने दूसरे सगे भाई को नृशंसतापूर्वक मार डाला एवं उसे खेत की मेंड़ में दबा दिया। उनने कहा कि जिस स्थान पर संवेदना इतनी मृतप्राय हो जाय कि व्यक्ति निष्ठुरता की चरमसीमा पर पहुँच जाय, वहीं पर भाई-भाई के विरुद्ध, सगे, सम्बन्धीगण एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ सकते हैं। कौरवों-पाण्डवों के लिए वही भूमि उपयुक्त मानी गयी एवं विशाल महाभारत वहीं सम्पन्न हुआ।

श्रवणकुमार अपनी मातृ-पितृ भक्ति, सेवा के लिए युगों-युगों तक याद किये जाते रहेंगे किन्तु जब वे अपने-माता-पिता को लेकर मय दानव की क्रियास्थली हस्तिनापुर के उत्तरी क्षेत्र के समीप से गुजर रहे थे, तो वहाँ विद्यमान वातावरण के संस्कारों ने उनके चिंतन को भी प्रभावित कर दिया व उनने अपनी काँवर जमीन पर रखते हुए माता-पिता से स्वयं ही अपनी यात्रा पूरी करने को कहा। प्रज्ञा चक्षु पिता समझ गये कि इस स्थान में ही कोई ऐसी बात है कि उनका आज्ञाकारी बेटा ऐसा कह रहा है। उनने निवेदन किया कि कुछ दूरी तक उन्हें वह और पहुँचा दे, नेत्रहीन होने के कारण वे स्वयं चल नहीं पायेंगे, फिर वह चाहे अकेला उन्हें छोड़कर चला जाय। थोड़ी ही देर में वह क्षेत्र पीछे निकलते ही श्रवणकुमार को स्वयं पर इतना पश्चात्ताप हुआ कि आखिर उनसे यह हुआ कैसे ?

वस्तुतः स्थान विशेष के संस्कारों की अपनी महत्ता है। इसी कारण तन्त्र साधक अपनी शक्ति साधना हेतु मरघटों को चुनते हैं। वहाँ की भूमि में, वातावरण में ऐसी विशिष्टता होती है कि उन्हें आसुरी शक्तियों की पूरी मदद अपनी साधना की सिद्धि में मिलती है।

पानीपत की तीन लड़ाइयाँ प्रसिद्ध हैं। पहली लड़ाई बाबर व राणासांगा के बीच, दूसरी बाबर एवं इब्राहिम लोधी के बीच तथा तीसरी हुमायुँ व लोधी के बीच हुई। इन तीनों ने ही दिल्ली के तख्त का तथा भारत के भविष्य का निर्धारण कर यवन सम्राज्य की व आज के भारत के स्वरूप की स्थापना कर दी। पानीपत कुरुक्षेत्र के समीप ही स्थित हरियाणा का एक स्थल है, जहाँ के संस्कार कुछ इस प्रकार थे कि योद्धाओं में जबर्दस्त मारकाट हुई एवं तीनों ही बार जो वर्षों के अंतराल पर लड़ाईयाँ हुईं, उसी स्थान पर संघर्ष हुआ।

जहाँ तक भूमि व वातावारण के श्रेष्ठ संस्कारों का प्रश्न है—कई महत्त्वपूर्ण उदाहरण सामने हैं। समस्त ऋषियों की तपस्थलियाँ ऐसे स्थानों पर थीं, जहाँ आज तीर्थ-आरण्यक, धाम अथवा देवालय विद्यमान हैं। तीर्थों के साथ जो इतिहास जुड़ा है, वह इसी तथ्य का द्योतक है कि तपःपूत ऋषिगणों ने देवशक्तियों का आव्हान करके उस स्थान विशेष को संस्कारों से अनुप्राणित किया। उसी की महत्ता है कि आज भी उन स्थानों पर जाकर अलौकिक शांति मिलती है, दिव्य चेतना की उपस्थिति का आभास होता है।

भारत स्थित चारों धामों की, द्वादश-ज्योतिर्लिंगों की तथा सिद्धपीठों की अपनी महत्ता है किन्तु हिमालय के उत्तराखण्ड कहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाने वाले-उसका हृदय माने जाने वाले यमुनोत्री से लेकर नंदादेवी की चोटी तक के स्थान में जो विशिष्टता विद्यमान है-वह भारत ही नहीं विश्व के किसी भी हिमाच्छादित ऊँचे स्थानों पर नहीं है। यह स्थान देखने में भले ही निर्जीव, पाषाणखंड-सा प्रतीत होता है जो वर्ष में ६ माह बर्फ से ढका रहता है किन्तु तात्विक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर यह एक प्रत्यक्ष देव स्थान है। उसके कण-कण में जीवन, संस्कार चेतना विद्यमान है। श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध (अध्याय २, श्लोक ३) तथा दसवें स्कन्ध (अध्याय ८७, श्लोक ५-७) में वर्णन है कि हिमालय, दिव्य सिद्धपुरुषों का निवास है। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने अपने विराट रूप के हिमालय में अवस्थित होने की बात कही है। थियॉसॉफी की जन्मदात्री मैडम ब्लावट्स्की के अनुसार यहाँ सिद्धपुरुषों की, मास्टर्स की पार्लियामेंट है, जो अध्यात्म क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण निर्णय करती रहती है। पालब्रिण्टन, टी० लोबसंग, राम्पा एवं "आटोबायोग्राफी ऑफ योगी।" ग्रन्थ के लेखक स्वामी योगानंद परमहंस ने इस क्षेत्र को विशिष्ट दिव्य अध्यात्म शक्ति से अनुप्राणित माना है। दुर्गम हिमालय, जो शिवलिंग, नंदन वन, स्वर्गा-रोहिणी, सत्तोपंथ जैसे स्थानों के उत्तर में तिब्बत क्षेत्र से लगा हुआ है, में ऋषियों के सूक्ष्म शरीर रूप में अवस्थित होने की अध्यात्म क्षेत्र में मान्यता है। एसो कहा जाता है कि दो सौ वर्ष से अधिक वर्षों तक जीवित रहने वाले स्वामी कृष्णाश्रम जी जिनने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की आधार शिला रखी थी, को भी मालवीय जी ने इसी क्षेत्र से आमंत्रित किया था। स्वयं परम पूज्य गुरुदेव इस क्षेत्र में अपने अशरीरधारी परोक्ष सत्ता के प्रतिनिधि गुरु से साक्षात्कार करने चार बार हिमालय यात्रा करने उसी क्षेत्र में गए थे।

ऋषि जमदग्नि परशुराम की तपस्थली उत्तर काशी, वशिष्ठ मुनि की क्रियास्थली देवप्रयाग, जहाँ श्रीराम ने वानप्रस्थ काल बिताया शुकदेव जी की तपोभूमि सुकराता, आद्यशंकराचार्य की न केवल निर्वाणस्थली (केदारनाथ) अपितु जहाँ उन्हें चारों धाम की स्थापना का निर्देश मिला था--ज्योतिर्मठ भी यहीं स्थित हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी ने बद्रीवन जो हिमाच्छादित बद्रिकाश्रम के अंचल में था, में ही तप-साधना की थी। पाण्डवों ने स्वर्गारोहण इसी उत्तराखण्ड के हिमाच्छादित शिखरों पर किया था। व्यास गुफा भी बद्रिकाश्रम से आगे वसोधारा निर्झर के समीप स्थित है, जहाँ व्यास जी ने महाभारत व आर्षग्रन्थों का सृजन किया था। शिवजी की क्रीड़ास्थली कैलाश, मानसरोवर इसी क्षेत्र में अवस्थित है, गंगाधारण करने वाले कैलाशपति महाकालेश्वर ने स्वर्ग से अवतरित गंगा को जटाओं में धारण कर गौमुख के माध्यम से सारी पृथ्वी को अभिसिंचित करने का जो निर्देश दिया था, उस पौराणिक आख्यान की संगति भी शिवलिंग के समीप स्थिति स्वर्ग गंगा, गंगोत्री ग्लेशियर, गौमुख व गंगोत्री से बैठती है। भगीरथ ने यहीं इस प्रयोजन के लिए तप किया था। वास्तविक कैलाश, मानसरोवर, शिवलिंग, पर्वत शिखर, केदार शिखर, नीलकंठ शिखर तथा वहीं स्थित विशाल झील के रूप में है, यह भौगोलिक वेत्ता भी अब मान चुके हैं। अष्ट वसुओं ने जिस स्थान को अपना निवास बनाया, वह वसुधारा भी अलकापुरी (अलकनन्दा का उद्गम स्थल) के पास है। इससे धरती पर स्वर्ग के इसी क्षेत्र में होने की विवेचना भी तथ्य सम्मत प्रतीत होती है।

पाँच प्रयागों, पंचसरोवरों, गुप्तकाशी-उत्तरकाशी तथा गंगा व यमुना जैसी उत्तरांचल को अभिसिंचित करने वाली विशाल नदियों का उद्गम केन्द्र यही होने से इस स्थान का अध्यात्म साधना की दृष्टि से विशेष महत्व है। दिव्य वनौषधियों से युक्त नंदन वन, हर की दून तथा प्रायः सोलह से अधिक फूलों की घाटियाँ इस स्थान को वस्तुतः स्वर्ग की उपमा प्रदान करती हैं। यहीं देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों का क्रीड़ा प्रांगण रहा है। आर्ष-साहित्य में जो भी कुछ लिखा है, वह एक प्रकार से हिमालय की ही आत्मा की अभिव्यक्ति है। इस क्षेत्र विशेष की महत्ता के कारण ही अध्यात्मवेत्ताओं ने इसे सर्वोपरि महत्त्व सदा से ही दिया है। इसी क्षेत्र को जाने वाले द्वार पर हिमालय की छाया व गंगा की गोद में ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की तपस्थली में शांतिकुन्ज की स्थापना भी इस भूमि के सुसंस्कारों को दृष्टिगत रखकर ही की गयी है। न केवल स्थापना हुई है, अपितु सन् १९२६ से सतत् जल रहे अखण्ड दीपक की स्थापना,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुमारिकाओं द्वारा अखण्ड गायत्री जप, नित्य यज्ञ एवं करोड़ों गायत्री महामंत्र की युगसंधि महापुरश्चरण साधना द्वारा इस क्षेत्र को संस्कारित कर इसे गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित भी किया गया है। इस कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर उपासना करने वाले के प्रसुप्त संस्कार स्वयं जाग उठते हैं, दैवीसत्ता का मार्ग-दर्शन उसे मिलता है तथा लौकिक एवं अन्यान्य समस्याएँ स्वतः सुलझ जाती हैं। यदि शांतिकुन्ज को दिव्यशक्ति धारा का गौमुख कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इक्कीसवीं सदी का गंगावतरण भी यहीं हुआ है एवं उज्ज्वल भविष्य का उद्घोष भी महाकाल द्वारा यहीं से किया गया है।

अन्यान्य स्थलों का उदाहरण देखने पर हम पाते हैं कि स्वयं महर्षि अरविंद ने जब क्रान्तिकारी व समाज निर्माण के निमित्त महामानवों को मार्गदर्शन देने के बाद तप-साधना करने• का निर्णय लिया तो अगस्त्य मुनि की तपस्थली वेदपुरी का ही चयन किया। यह स्थान वहीं है, जहाँ आज पाण्डीचेरी अवस्थित है जिस स्थान पर श्री अरविंद ने अपनी जीवन के उत्तरार्ध में व बाद में श्री माँ ने साधना की। वहीं पर अगस्त्य ऋषि की कभी कुटिया थी, ऐसा अध्यात्मवेत्ताओं का मत है। इस स्थान का प्रभामंडल इतना अद्भुत देवी एवं चमत्कारी था कि स्वयं राक्षसराज रावण उस स्थान पर आने की आजीवन हिम्मत न कर सका। उसके स्पष्ट निर्देश अपने अनुचरों के लिए थे कि वे उस आश्रम से दूर ही रहें नहीं तो वे उसके प्रभाव से अपना अस्तित्व तक खो बैठेंगे। इसी स्थान पर मुनि अगस्त्य ने श्रीराम को माँ सीता की खोज के लिए जाते हुए दिव्यास्त्र प्रदान किए थे।

दक्षिण भारत में ही अरुणाचलम् नामक स्थान है जो महर्षि रमण की तपस्थली रहा है। यह शैव साधकों की तपोभूमि आदिकाल से रही है। इसी संस्कारित स्थान को जो पहाड़ियों से घिरा है, महर्षि रमण ने अपनी मौन साधना के लिए चुना व प्राण-शक्ति को घनीभूत कर इतना प्रचंड ऊर्जा सम्पन्न बना दिया कि वहाँ जाने वाला हर व्यक्ति स्वयं में परिवर्तन अनुभव करता था। कहा जाता है कि ऋषि आश्रमों में प्राचीन काल में सिंह व गाय एक ही घाट पर पानी पीते थे। यह उक्ति और कहीं सत्य हो न हो, पर महर्षि रमण के आश्रम में हिंसक जीव भी पालतू पशुओं की तरह महर्षि व उनके पास आने वाले दर्शनार्थियों के पास घूमते रहते थे। किसी को भी किसी ने कोई क्षति पहुँचाई हो, इसका एक भी उदाहरण देखने को नहीं मिला। १९वीं सदी में जन्मे महर्षि रमण एवं श्री अरविंद सहित श्री रामकृष्ण की तप-साधना, जो महाकाल व हिमालय की ऋषि सत्ता द्वारा प्रेरित थी, को ही यह श्रेय दिया जाता रहा है कि स्वंतत्रता संग्राम के लिए समुचित वातावरण इसी कारण बना व एक साथ अनेकों महामानव इस समय विशेष में जन्मे। शैव साधकों की उस तपस्थली के दिव्य-संस्कार ही थे कि महर्षि मौन रहते थे फिर भी किसी आगन्तुक को ऐसा अभास न होता था कि उसके मन की बात को पढ़कर उसे समाधान, भावी जीवन सम्बन्धी परामर्श उनकी चेहरे की मुस्कान व नेत्रों की भावभंगिमा से न मिला हो। कोई साधक किसी भूमि विशेष में पड़े प्रसुप्त बीजांकुरों को अपनी प्रखरता से जगाकर किस प्रकार उस स्थान को एक सिद्धपीठ बना सकता है, अरुणाचलम् इसका जीता जागता उदाहरण है।

इसी शृंखला में उज्जयिनी (आज का उज्जैन) का नाम भी आता है। यह ५१ शक्तिपीठों में से एक है, द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक महाकालेश्वर की स्थापना यहाँ हुई है। अनेकों शक्ति साधक इसी भूमि पर साधना कर सिद्धि को प्राप्त हुए। राजा भर्तृहरि अपनी तप-साधना द्वारा क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित इसी स्थान पर योगीराज बने। सूत-शौनक परम्परा में कुंभ के मेलों के लिए चुने गए चार दिव्य संस्कारित स्थानों में एक नाम उज्जैन का भी है। जहाँ हर बारह वर्ष में एक बार सिंहस्थ का आयोजन आदिकाल से होता आ रहा है। इसमें सारे भारतवर्ष की हस्तियाँ एकत्र होकर अध्यात्म जगत से विभिन्न लौकिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान निकाला करती थीं। हरिद्वार, प्रयाग; नासिक के साथ उज्जयिनी का नाम पवित्र स्थानों के रूप में इसी कारण लिया जाता है। संभवतः इस भूमि के संस्कार ही थे कि महर्षि सांदीपनि ने श्रीकृष्ण, बलराम, सुदामा, आदि को विद्या विस्तार का शिक्षण देने के लिए इसे ही चुना। युगों-युगों के लिए यह एक पवित्र स्थान बन गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयागराज, जहाँ छह वर्ष में एक बार अर्ध कुंभ एवं १२ वर्ष में पूर्ण कुंभ आयोजित होता है, तीर्थ राज कहलाता है। यहाँ त्रिवेणी संगम है जहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती का मिलन होता है। महर्षि भारद्वाज का गुरुकुल यहीं पर था जहाँ पूरी धारित्री पर विद्या-विस्तार हेतु सतत् दस हजार शिक्षार्थी अध्ययनरत रहते थे। इस स्थान विशेष के संस्कार इतने दिव्य हैं कि यहीं से जन्मे महापुरुषों ने स्वतन्त्रता के पूर्व एवं बाद में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं।

नासिक भी वह स्थान है, जहाँ कुम्भ का मेला गोदावरी के तट पर हर बार सम्पन्न होता है, पंचवटी भी यहीं स्थित है, जहाँ श्रीराम ने वनवास का अधिकांश समय अपनी सहधर्मिणी एवं अनुज के साथ काटा था। महर्षि गौतम की यह तपस्थली रही है तथा महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य की ८४ बैठकों में से एक है। यही वह स्थान है, जहाँ समर्थ गुरु रामदास ने तप कर अपनी व्यायामशालाओं के स्थापित करने के कार्य के शुभारम्भ का संकल्प लिया था। चौथा स्थान कुम्भ के मेले के आयोजन का वह है जहाँ शांतिकुन्ज अवस्थित है—हरिद्वार।

उपरोक्त उदाहरण स्थान विशेष की महत्ता समझाने के लिए दिये गये। शांतिकुन्ज की अपनी विशिष्ट महत्ता विशेष वातावरण के कारण है, यहाँ प्रखर प्रज्ञा रूपी महाप्राज्ञ गुरुदेव के तप की गर्मी विद्यमान है, तो सजल श्रद्धा रूपी मातृशक्ति प्रातः स्मरणीया वंदनीय माता जी के स्नेह की नमी भी है। गर्मी व नमी पाकर ही बीज अंकुरित, विकसित, पल्लवित होता है। ऐसे स्थान में की गयी थोड़ी-सी साधना भी अगणित पुण्य फलदायी होती है। सारी ऋषि सत्ताओं की संग्रहीत शक्ति जहाँ हो, वहाँ किया गया तप सिद्धिदायक ही होता है। गायत्री महाशक्ति की साधना, इक्कीसवीं सदी रूपी सतयुग के अवतरण हेतु युगसंधि महापुरश्चरण यहाँ पर न्यूनतम वर्ष में एक बार तो आकर सम्पन्न किया ही जाना चाहिए ताकि संस्कारित वातावरण का लाभ परिजनों में विद्यमान देवत्व के बीज को मिल सके, वे सुपात्र बन सकें। यह वह त्रिवेणी संगम है, जहाँ 'काक होहिं पिक बकऊँ मराला' की उक्ति सार्थक होती है।

शांतिकुन्ज सविताशक्ति का सघनभूत ऊर्जा केन्द्र है, महर्षि तपस्थली में एक नूतन सृष्टि के सृजन के रूप में आज के युग के विश्वामित्र ने इस दिव्य भूमि के संस्कारों को पहचाना, जगाया, अनुप्राणित किया व एक आश्रम परिकर तीर्थ के रूप में विनिर्मित किया है, जिसमें करोड़ों सृजन शिल्पियों को नवयुग की आधारशिला रखने हेतु तपाया, विनिर्मित किया जाना है। शांतिकुन्ज दिव्य शक्तिधारा की गंगोत्री है—गौमुख है। दुर्गम हिमालय से ऋषिसत्ता की तपचेतन यहाँ एकीकृत हो सघन रूप में प्रकट होती है। गंगा, गायत्री एवं गुरुसत्ता की अद्भुत त्रिवेणी है—गायत्री तीर्थ का यह कल्पवृक्ष।

दिव्य भूमि, दिव्य वातावरण

जमीन है तो एक, पर सब जगह एक जैसी नहीं है। खड्ड, टीले, रेगिस्तान, दलदल, ऊसर, बंजर उसमें भरे पड़े हैं। बहुत स्थानों पर वह उर्वर भी है। जलवायु में भी भारी भिन्नता पाई जाती है। गोरे, काले, पीले गेहुँए जैसी चमड़ी वाले विभिन्न प्रदेशों में पाए जाते हैं। उनके कद और स्वास्थ्य भी भिन्न प्रकार के पाए जाते हैं। अफ्रीका के कांगो क्षेत्र में बौने भरे पड़े हैं। पठानिस्तान के लोग जो साधारण रूप से लम्बे होते हैं, रूस का उजबेकिस्तान दीर्घ जीवन के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ आमतौर पर शतायुष्य वाले होते हैं। कोई-कोई तो अभी भी डेढ़ सौ वर्ष तक की आयु जीते हैं। तराई क्षेत्र के लोग मलेरिया, फाइलेरिया जैसी बीमारियों से ग्रसित और अल्पजीवी होते हैं। यह जलवायु का अन्तर है; जो पृथ्वी के विभिन्न भागों में वहाँ की स्थिति के अनुसार चलता रहता है।

कहीं के मनुष्य भी क्रूर, हिंसक, झगड़ालू, अनगढ़ प्रकृति के होते हैं। आये दिन आपस में तथा दूसरों से लड़ते-झगड़ते रहते हैं। इसके विपरीत किसी क्षेत्र के निवासी शान्त, सौम्य और अनाचार से कोसों दूर रहते पाए जाते हैं। हिमालय के उत्तराखण्ड के कुछ क्षेत्रों में अभी भी घर के दरवाजों में रस्सी की सांकल लगाकर काम करने चले जाते हैं। चोरी-उठाइगिरी की कहीं कोई दुर्घटना नहीं होती। महिलाओं का रूप-सौन्दर्य ऊँचे दर्जे का होने पर भी व्यभिचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की घटनाएँ सुनने को नहीं मिलतीं। इसके विपरीत ऐसे क्षेत्र भी हैं, जहाँ देह व्यापार ही निर्वाह का प्रमुख धंधा है। यह घटनाएँ अपवाद रूप नहीं होती वरन् किन्हीं क्षेत्रों का वातावरण ही ऐसा होता है, जहाँ स्वास्थ्य, स्वभाव, आचरण आदि की दृष्टि से जमीन-आसमान जैसे अन्तर दिखाई पड़ते हैं।

प्राचीन काल में तीर्थों की स्थापना मात्र प्रकृति-सौन्दर्य या जलाशयों की शोभा को ही आधार मान कर नहीं की गई थी। वरन् यह भी ध्यान रखा गया था कि वहाँ कोई प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक घटनाएँ ऐसी घटी हैं क्या, जो अपना प्रभाव चिरकाल तक बनाए रहें और वहाँ पहुँचने वालों को लम्बी अवधि बीत जाने पर भी विद्यमान प्रभाव से लाभान्वित होने का अवसर मिलता रहे। इससे भी महत्त्व की बात यह रही है कि वहाँ ऋषिकल्प आत्माएँ निवास करतीं, तपश्चर्या में निरत रहती रहीं और गुरुकुल आरण्यक जैसी सद्ज्ञान सम्वर्धक व्यवस्थाएँ चलती रही हैं।

वर्षा होने पर भूमि गीली हो जाती है और अनायास ही हरीतिमा से भर जाती है। गर्मी में रेत तवे-सी जलने लगती है। ऋतु प्रभाव से भूमि भी प्रभावित होती है। इसी प्रकार यह भी देखा गया है कि किसी क्षेत्र में जैसा कुछ भी भला, बुरा घटित होता रहा है, उसका प्रभाव उस भूमि में पूरी तरह अवशोषित कर लिया जाय और उसकी उपस्थिति चिरकाल तक विद्यमान देखी जाती रहे। कूड़े का ढेर उठ जाने पर भी उस भूमि में बहुत समय तक दुर्गन्ध सूँघी जा सकती है। जिन ढेलों पर गुलाब के फूल पककर गिरते रहते हैं, वहाँ मिट्टी में सुगन्ध पायी जाती है। फिनायल, मिट्टी का तेल आदि जहाँ गिरते हैं, वहाँ अपने अस्तित्व का परिय देते रहते हैं। चंदन के वन न केवल समीपवर्ती पेड़-पौधों को, वरन् उस भूमि को भी सुवासित कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि भूमि में अवशोषण की शक्ति है। वह जो कुछ पाती है, उसे देर तक सँभाल सँजोकर रखती है। इस सन्दर्भ में कृत्यों, विचारों और क्रियाओं से भी अपने-अपने क्षेत्रों में प्रभाव बने और जमे रहते देखे गए हैं।

महाभारत के लिए कुरुक्षेत्र की भूमि का चयन इसलिए किया गया था कि वहाँ प्राचीन काल में कलहजन्य दुर्व्यसनों का माहौल लम्बे समय तक बना रहा था। कहा जा चुका है कि किसी समय मयदानव का जो क्षेत्र था, उसमें पहुँचकर श्रवण कुमार ने अपने अंधे माता-पिता को काँवर से नीचे उतार दिया था। आगे बढ़ चलने पर जब यह प्रभाव क्षेत्र समाप्त हो गया तो श्रवण कुमार को अपनी भूल का आभास हुआ और अपने माता-पिता से क्षमा माँगकर उन्हें फिर कन्धे पर बिठा लिया। दण्डकारण्य में असुरों का शासन चिरकाल तक रहा। कुकृत्य होते रहे, फलतः उस क्षेत्र में बहुत समय बीत जाने पर भी ऋषि तपस्वियों ने निवास करने का साहस नहीं किया। हिमालय जैसे पुण्य-क्षेत्र को साधना के लिए अभी भी अधिक फलप्रद इसलिए माना जाता है कि वहाँ चिर पुरातन में अनेक ऋषियों ने तपस्या के उद्देश्य से अपना कार्यक्षेत्र बनाए रखा। उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व में अभी भी उन क्षेत्रों की विशिष्टता विद्यमान है। यद्यपि उस निवास को युगों की अवधि बीत गई है। भूमि की विशेषता है कि वह न केवल वर्षा, गर्मी से प्रभावित होती है वरन् वहाँ जो कुछ होता रहा है, उसका प्रभाव भी विद्यमान रहता है। तीर्थ परम्परा के पीछे ऐसे ही उत्कृष्टता से भरे घटनाक्रम अपनी छाप छोड़ते रहे हैं। वे सब निमित्त कारण जिनकी महत्ता को समझते हुए लोग तीर्थयात्रा करते और यहाँ रहकर अपनी आध्यात्म साधनाएँ सम्पन्न करते हैं श्रद्धा के अनुरूप उन्हें प्रतिफल भी प्राप्त होता है।

हरिद्वार का शांतिकुन्ज अपने समाज का एक ऐसा गायत्री तीर्थ है, जो स्थान की महिमा को अपने साथ पूरी तरह सँजोए हुए है। हिमालय का प्रवेश द्वार होने से हरिद्वार नाम पड़ा है। एक ओर शिवालिक पहाड़ियाँ, दूसरी ओर गढ़वाल हिमालय की छत्रछाया उस पर घनीभूत रहती है गंगा का तट सटा हुआ है। जब गंगा का अवतरण हुआ था तो इस तपोमय क्षेत्र में सप्त ऋषि तप करते थे। गंगा ने उनकी समाधि साधना में विघ्न डालना उचित न समझा और अपनी सात धाराएँ काटकर उन्हें अपने स्थान पर अवस्थित रहने दिया। इसीलिए इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमि का नाम सप्त सरोवर पड़ा है। जिस स्थान पर गायत्री के ऋषि, महर्षि विश्वामित्र तप करते थे उसी पर शांतिकुन्ज बना है। हिमालय की प्रतीक देवालय प्रतिमा भारतवर्ष में इसी एक स्थान पर हैं। प्रायः आधी शताब्दी से जलती आ रही अखण्ड ज्योति की यहाँ स्थापना है, जिसके आलोक में अब तक करोड़ों की संख्या में जप किया जा चुका है। गायत्री माता का देवालय तो अवस्थित है ही। नौ कुण्डों वाली यज्ञशाला में नित्य दो घण्टे तक गायत्री महामंत्र में अग्निहोत्र होता है। सप्त ऋषियों की प्राण प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमाएँ भी इसी देवालय में स्थापित हैं।

शांतिकुन्ज विगत २५ वर्षों से स्थापित है। इस अवधि में नित्य प्रति गायत्री जप अनुष्ठानों की नियमित श्रृंखला चलती रही है। दोनों नवरात्रियों में तो यहाँ इतने अधिक साधक हर वर्ष आते हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि अभी साधना, तपश्चर्या के प्रति लोक निष्ठा का अन्त नहीं हुआ है। स्थापना से लेकर अब तक जितना जप और हवन हुआ है उसे देखते हुए इसे गायत्री तीर्थ का नाम दिया जाना उचित है। इतनी नियमित साधना अन्यत्र कहीं भी कदाचित ही हुई होगी।

नित्य प्रति के आध्यात्मिक प्रवचन यहाँ की परम्परा है। प्रातः सायं आरती जिस क्रम से यहाँ होती है वह मन मोह लेती है और भावे, श्रद्धा उमगाती है। रात्रि को युग संगीत और सहगान कीर्तन इस कला में प्रवीण मंडली द्वारा सम्पन्न होता है। देश-देशान्तरों में युगान्तरीय चेतना का आलोक वितरण करने वाले धर्म प्रचारक परिव्राजकों का यहाँ अनवरत् प्रशिक्षण क्रम चलता रहता है। नौ दिवसीय साधना सत्रों का क्रम तो कभी टूटने ही नहीं पाता। इन विशेषताओं के कारण इस क्षेत्र में प्रवेश एवं निवास करने वाला यह अनुभव करता है, कि उसे दिव्य संरक्षण और सान्निध्य प्राप्त हो रहा है।

इसी केन्द्र में बारह वर्ष तक चलने वाले युगसन्धि महापुरश्चरण का संकल्प हुआ है। जिसके अन्तर्गत स्थानीय गायत्री जप और सूर्योपस्थान का अनवरत् क्रम तो चलेगा ही। हजारों स्थानों पर यही प्रक्रिया इसी संकल्प के अन्तर्गत चलने लगी है, जिसकी पूर्णाहुति सन् २००० में अभूतपूर्व स्तर पर सम्पन्न होगी, घर की अपेक्षा ऐसी दिव्य भूमि में साधना का कितना अधिक प्रतिफल हो सकता है, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

उच्चस्तरीय प्रयोजन के लिए उपयुक्त वातावरण

विशिष्ट स्तर के परिवर्तनों के लिए जहाँ उपयुक्त उपचार पद्धति, प्रयोगाधिकारी तथा आवश्यक साधन, उपकरणों की आवश्यकता होती है, वहाँ परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। स्थान और समय की बात ऐसी है, जिसें ध्यान में रखते हुए योजना में हेर-फेर करना पड़ता है। टीलों पर बाग लगाना, रेगिस्तान में खेती करना, दल-दल में नगर बसाना, इच्छा होते हुए भी नहीं बन पड़ता। इसके लिए समस्त साधन होते हुए भी स्थान बदलना पड़ता है। हर काम हर स्थान पर नहीं हो सकता। बहुत-सी दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ ऐसी हैं, जो ठण्डे या गरम प्रदेशों में ही उत्पन्न हो सकती हैं। उन्हें विपरीत वातावरण में लगाया जाय तो मेहनत और लागत बेकार चली जायेगी। अभीष्ट परिणाम की स्थिति बनेगी ही नहीं।

कल्प-साधना के लिए सर्वप्रथम उपयुक्त वातावरण देखना पड़ता है। कुछ रोगों का इलाज घर बैठे भी हो सकता है, पर कुछ ऐसे हैं जिसके लिए अस्पताल में भर्ती होने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। बड़े-बड़ों को विवशता में यही करना पड़ता है क्योंकि डॉक्टर, नर्स, परीक्षा चिकित्सा तथा शल्य-क्रिया के साधन, उपकरण किसी के निजी मकान में एकत्रित नहीं किये जा सकते। हर समय, हर सुविधा उपलब्ध कराने वाले उपयुक्त जलवायु में बने अस्पताल ही गम्भीर चिकित्सा के लिए उपयुक्त पड़ते हैं। इस तथ्य को समझने वाले बिना ननुनच किये अस्पताल में भर्ती होते हैं। घर में ही वह सब करा लेने का हठ कोई दुराग्रही ही करता होगा। कल्प-साधना में जहाँ उपचार पद्धति का सही रूप में परिपालन आवश्यक होता है, वहाँ एक आवश्यकता उपयुक्त वातावरण की भी रहती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसकी व्यवस्था बने बिना गाड़ी रुकी ही रहती है।

लंका विजय, सतयुग स्थापन के उपरान्त राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को आत्म-कल्याण की साधना आवश्यक प्रतीत हुई। गुरु वशिष्ठ ने भी इस आकांक्षा का समर्थन किया। बात आगे बढ़ी तो प्रथम प्रश्न यही उत्पन्न हुआ कि उसे किया कहाँ जाय ? यों अयोध्या में साधनों की कमी नहीं थी, उसके लिए सभी सुविधाएँ जुट सकती थीं, पर मूल प्रश्न एक ही था कि अभीष्ट वातावरण वहाँ कहाँ से आये ? जन्म भूमि और कर्म भूमि के साथ मनुष्य के अनेकानेक संस्कार जुड़े होते हैं। अपना-पराया, राग-द्वेष, स्मृति-अभ्यास सम्पर्क-स्वभाव के कुछ ऐसे प्रवाह मनुष्य के साथ जुड़े होते हैं कि बहुत रोकथाम करने पर भी मनुष्य की चिन्तन पद्धति, अभिरुचि और आदत उसी अभ्यस्त ढर्रे में अनायास ही घूमती रहती हैं। विचारों तक की रोकथाम और मोड़-मरोड़ जब कठिन पड़ती है, तब अचेतन के साथ जुड़े रहने वाले स्वभाव-अभ्यास को कैसे बदला जाय ? इसके लिए स्थान बदलने की आवश्यकता पड़ती है। परिस्थितियों का भी मनःस्थिति पर प्रभाव पड़ता है। स्थान बदलने में वहाँ के पदार्थ और व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध भी झीने पड़ते हैं। फलतः आगे न बढ़ने देने वाले संचित संस्कारों की पकड़ भी ढीली हो जाती है। साथ ही अधिक प्रभावी वातावरण का दबाब पड़ने पर भी मन का बदलना सरल हो जाता है।

भगवान कृष्ण और रुक्मिणी का विचार एक बार उच्चस्तरीय सन्तान उत्पन्न करने का हुआ। इसके लिए उन्हें विशिष्ट तप करना था। हल्की-फुल्की साधना तो घर-गाँव में रहते हुए सामान्य क्रिया-कलापों के साथ-साथ भी चलती रहती थी, किन्तु उच्चस्तरीय साधनाओं में प्रयास ही सब कुछ नहीं होता। इसके लिए वातावरण भी चाहिये। अस्तु, दोनों को सुसम्पन्न नगरियों में उपलब्ध अपने प्रस्तुत साधन छोड़ने पड़े और अभीष्ट प्राप्ति के लिए उपयुक्त स्थान 'बद्रीनाथ' ढूँढ़ना पड़ा, वहाँ उन लोगों ने बारह वर्ष तक मात्र जंगली बेर खाकर तप किया। तदुपरान्त ही अपने समान स्तर का एकमात्र पुत्र 'प्रद्युम्न' उत्पन्न कर सकने में सफल हुए।

महाभारत के उपरान्त सिंहासनारूढ़ तो हुए पर साथ ही उनकी आत्मोत्कर्ष आकांक्षा भी उमंगती रही। भगवान कृष्ण ने उनकी अभिलाषा को समझा और इसके लिए स्थान बदल लेने का परामर्श दिया, वैसा ही हुआ था। राज-काज उत्तराधिकारियों को देकर पाण्डव हिमालय चले, कृष्ण भी साथ थे। धृतराष्ट्र, गान्धरी और कुन्ती इससे पूर्व ही हिमालय निवास करते हुए आत्म-साधना में संलग्न हो चुके थे। पीछे द्रौपदी समेत पाँच पाण्डव भी चले। ब्रदीनाथ के निकट ही वे जिस स्थान पर बसे उसका नाम 'पाण्डु-केश्वर' पड़ा। भगवान ने उन्हें 'पाण्डव गीता' यहीं सुनाई थी। वह ज्ञान भी 'योगवशिष्ठ' के समतुल्य ही माना जाता है। तपस्वी जीवन बिताते हुए उच्चस्तरीय साधना करते हुए, पाण्डवों ने स्वर्ग प्रस्थान किया था, यह सभी को विदित है। यह उद्देश्य वे लोग 'इन्द्रप्रस्थ' हस्तिनापुर' रहते हुए-राज-काज चलाते हुए नहीं कर सकते थे। वातावरण व्यक्ति का तीन-चौथाई मन अपने साथ अनायास ही जकड़े रहता है। अभ्यस्त ढर्रे में स्थान के साथ, स्वजन-सम्बन्धियों के साथ—जुड़े हुए सम्बन्ध इतने सघन होते हैं, जिनका उल्लंघन करते हुए पार जा सकना दुस्तर समझकर यही उपाय अपनाया जाता है कि उपयुक्त वातावरण की दृष्टि से, पुराने सम्बन्धों में जकड़ा हुआ स्थान बदल दिया जाता है। पाण्डवों ने भी राम बान्धवों की तरह, वही किया।

स्वास्थ्य सुधार के लिए बनाये जाने वाले 'सेनेटोरियमों' की स्थापना करने वाले सर्वप्रथम उपयुक्त जलवायु वाले स्थानों का चुनाव करते हैं। भले ही लोगों को वहाँ पहुँचने में असुविधा हो। 'भुवाली' सेनेटोरियम आदि सभी प्रायः ऊँचे पर्वतीय स्थानों, स्वास्थ्य में सुधार की दृष्टि से उपयुक्त समझे गये वातावरण में बने हैं। परिणामों को देखते हुए स्पष्ट है, रोग और उपचार अन्यत्र जैसा रहने पर भी वहाँ भर्ती हुए रोगी आशातीत प्रगति करते हैं और जल्दी अच्छे होने में इन उपचारगृहों का परिणाम आश्चर्यजनक रहता है। यह सफलता रोगी अपने-अपने स्थानों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पर रहकर नहीं कर सकते। ऐसे रोगियों में हर घड़ी स्वास्थ्य सुधार ही मस्तिष्क पर छाया रहता है, जबकि घर रहने पर कुटुम्ब-व्यवसाय, सम्पर्क, समुदाय से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याएँ ध्यान बँटाती रहती हैं। पूरा मनोयोग लगना भी सफलता का बहुत बड़ा रहस्य है। कल्प-साधना में भी घर छोड़कर तद्नुरूप स्थान चयन करने की बात पर जोर दिया जाता है।

बम्बई का केला, नागपुर का सन्तरा, लखनऊ का आम, मैसूर का चन्दन प्रसिद्ध है। उन्हीं पौधों को अन्यत्र लगाया जाय, तो वे स्थान और गुण उपलब्ध न होंगे। इसमें माली का दोष नहीं, जलवायु का कारण है। सरहदी पठान और नम क्षेत्र के निवासी बंगाली का शरीर देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि आहार आदि की सुविधा में अन्तर न रहने पर भी स्वास्थ्य में इतना अन्तर क्यों रहता है ? इसमें क्षेत्रीय जलवायु की भिन्नता ही प्रमुख कारण है। जो बात भौतिक क्षेत्र में जलवायु और जमीन पर लागू होती है। वही अध्यात्म क्षेत्र के प्रयोगों और परिणामों के सम्बन्ध में उच्चस्तरीय वातावरण पर निर्भर रहती है। इसमें भूमिगत संस्कार, प्राणवान सान्निध्य तथा क्षेत्रीय वातावरण, पुरातन संचित संस्कार आदि कितने ही कारण काम करते हैं ? तीर्थों की स्थापना पुरातन काल में इन्हीं तथ्यों को समन्वित करते हुए की गई थी।

बालकों के गुरुकुल—वानप्रस्थों के आरण्यक—स्थापित करते समय सुविधा का नहीं, उच्चस्तरीय वातावरण का ध्यान रखना होता है, भले ही वह परम्परागत बनाया गया हो अथवा प्रयत्नपूर्वक बनाया गया हो। सुविधा का स्थान कौन नहीं चाहता ? पर जब वातावरण के साथ जुड़ी हुई प्रगति का प्रश्न आता है तो सुविधा छोड़ने और वातावरण अपनाने का दूरदर्शितापूर्ण निर्णय करना पड़ता है। होटल, धर्मशाला में रहकर अनुष्ठान आदि की लकीर पीट लेना एक बात है और त्रिवेणी की रेती में कुटी बनाकर माघ मास का 'कल्पवास' करना दूसरी। साधना में मात्र कृत्य ही सब कुछ नहीं होता। उसके लिए वातावरण भी, पौधे को खाद-पानी मिलने की तरह आवश्यक है। इस दृष्टि से स्थान परिवर्तन की आवश्यकता कल्प-साधना में आवश्यक मानी गयी है। मालवीय जी का काया-कल्प प्रयोग हिन्दू विश्वविद्यालय में बनी उनकी कोठी पर नहीं हुआ था। इसके लिये उन्होंने मथुरा जिले के एक छोटे से गाँव में तपसी बाबा के तपोवन में फूँस की कुटी बनाकर रहना पड़ा था।

महामानवों में से तो प्रत्येक को स्थायी रूप से अपनी जन्मभूमि छोड़कर अन्यत्र कार्यक्षेत्र बनाना पड़ा है। ऋषि वृन्द में से प्रत्येक को अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी और वे प्रधानतया हिमालय की छाया और गंगा की गोद में बसे। कुछ को अन्यत्र भी ऐसे ही पवित्र स्थान ढूँढ़ने पड़े। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नानक, कबीर, रामानुज, चैतन्य, ज्ञानेश्वर, समर्थ, रामकृष्ण परमहंस गान्धी, अरविन्द, रमण आदि में से एक भी अपने जन्म-स्थान में नहीं बसा या उन्हें साधन, सुविधा की दृष्टि से सुगमता रही। ईसा, मोहम्मद, और जरथुस्र आदि प्रमुख संस्थापकों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उन्हें जन्मभूमि से प्रेम न रहा हो, ऐसी बात नहीं है, पर परिस्थिति का, मनःस्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है और उसके कारण लक्ष्य की ओर गतिशील होने में जो व्यवधान पड़ता है, उसे देखते हुए दूरदर्शिता ने यही सुझाया कि स्थान बदलकर ही महान कार्य सम्पन्न किये जा सकने में सुविधा होती है।

कल्प-साधना की कार्यपद्धति उतनी कठिन या जटिल नहीं है, जो घर रहकर न की जा सकती हो। किन्तु कठिनाई एक ही है कि अभ्यस्त ढर्रा, आधा ध्यान अपने में ही उलझाये रहता है, जबकि कल्प-साधना या किसी भी साधना के लिए मन को आगे बढ़ाने वाले प्राणवान वातावरण की आवश्यकता पड़ती है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए बहुत समय से यह प्रयत्न चलता रहा है कि उच्चस्तरीय साधना के निमित्त उपयुक्त वातावारण वाला तीर्थ विनिर्मित किया जाय। 'विनिर्मित' शब्द का प्रयोग यहाँ इसीलिए किया जा रहा है कि परम्परागत तीर्थों को निहित स्वार्थों की दुरभिसन्धियों ने इसे बुरी तरह जकड़ लिया है कि वहाँ श्रद्धा सम्वर्धक प्रेरणा मिलना तो दूर आवश्यक शिक्षण

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और प्राणवान सान्निध्य मिलना तो दूर, उल्टे अश्रद्धा उत्पन्न करने वाला विक्षोभ ही हाथ लगता है। भीड़-भाड़ की घिचपिच और पर्यटकों जैसी बाल-चंचलता को देखते हुए वैसा अवसर ढूँढ़ निकालना कठिन है, जहाँ साधना के लिये उपयुक्त सभी आवश्यक माध्यम एक साथ उपलब्ध हो सकें। ऐसी दशा में उस लुप्त परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए नये सिरे से न्यूनतम एक तीर्थ की स्थापना तो अनिवार्य रूप में आवश्यक हो ही गयी है। इसके बिना प्रगति रथ एक कदम भी आगे बढ़ता प्रतीत नहीं हो रहा था।

शान्तिकुन्ज गायत्री तीर्थ को इसी दृष्टि से विनिर्मित किया गया है, ताकि उस शून्य की पूर्ति हो सके। कल्प-साधना सच्चे अर्थों में तीर्थ सेवन है। वातावरण, साधना, शिक्षण-साधना, अनुशासन, अध्यवसाय की दृष्टि से यहाँ निवास करने वाले साधक को यही अनुभव होता है कि उसे तीर्थ परम्परा का जीवन्त दर्शन हो रहा है। सूत्र-संचालकों ने समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये इस सन्दर्भ में प्राणपण से प्रयास किया है। अनेक स्थूल कमियों के रहते हुए भी कोई भी सूक्ष्मदर्शी यहाँ यह अनुभव कर सकता है कि व्यवस्था को उन्हीं पद चिन्हों पर चलाया जा रहा है, जिन पर देव-संस्कृति के महान् तीर्थों की स्थापना प्रचण्ड ऊर्जा केन्द्रों के रूप में की गयी थी। ऐसी प्रचण्ड जिसमें तपकर अनगढ़ धातुओं को गलने, ढलने और बहुमूल्य बनने का अवसर मिलता था तीर्थ प्रकारान्तर से महामानव ढालने के उत्पादन केन्द्र थे, जिनमें गुरुकुल बालकों का, आरण्यक वानप्रस्थों का, साधनारत व्यस्त गृहस्थों का नव निर्माण करते थे।

वातावरण की चर्चा करने के उपरान्त एक प्रश्न फिर भी शेष रह जाता है कि सत्रों में सम्मिलित होने वाले साधक उपयुक्त प्रभाव ग्रहण करने योग्य अपनी मनःस्थिति बना पाते हैं या नहीं। परिस्थितियाँ कितनी ही अनुकूल क्यों न बन गई हों, पर यदि उन्हें स्वीकारने की मनःस्थिति हो तो वह प्रयोजन सिद्ध हो नहीं सकेगा, जिसके लिये उभयपक्षी प्रयासों की अनिवार्य आवश्यकता है, जो एकांगी होने पर बनता ही नहीं, सधता ही नहीं। एक हाथ से ताली कहाँ बजती है, एक पैर से तो बिना लकड़ी के सहारे दस कदम भी चलना नहीं हो सकता। एक पहिये की गाड़ी लम्बी यात्रा पूरी कैसे करे ? सूर्य कितना ही महान् क्यों न हो उसकी किरणें किसी बन्द दरवाजे में प्रवेश नहीं कर सकतीं। हवा कितनी ही स्वच्छ क्यों न हो यदि खिड़कियाँ बन्द रहें तो वह समर्थ होते हुए भी उस घर में घुस नहीं सकेगी। दृश्य कितने ही सुन्दर क्यों न हों, पुतली के खराब हो जाने पर सर्वत्र अन्धकार ही दृष्टिगोचर होगा। कान के पर्दे काम न करें तो मधुर संगीत का आनन्द ले सकना सम्भव नहीं। पाचनतन्त्र खराब हो तो पौष्टिक भोजन की कोई उपयोगिता नहीं। वाहन-साधनों की जितनी उपयोगिता आवश्यकता है, उससे भी अधिक उनका सही उपयोग कर सकने में समर्थ विवेक और कौशल की है अन्यथा बहुमूल्य उपलब्धियाँ भी निरर्थक बनकर रह जायेगी। वर्षा में सभी जल-जंगल हरे-भरे दीखते हैं, पर चट्टानों पर न तो नमी के चिन्ह दीखते हैं और न एक तिनका जमता है। आग को ईंधन तो चाहिए ही, अन्यथा वह प्रचंड होते हुए भी बुझ जायेगी। तीर्थसेवन के सम्बन्ध में भी यही बात है। उसमें उपयुक्त परिस्थितियाँ तो होनी ही चाहिए। उनके बिना उत्तम मनःस्थिति होने पर भी बात नहीं बनती, पर साथ ही इस तथ्य को भी भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि सशक्त परिस्थितियाँ भी उपयुक्त मनःस्थिति के अभाव में अपना प्रभाव प्रस्तुत कर सकने में समर्थ नहीं हो सकतीं।

कल्प-साधना के साधकों को चाहिए कि इतना समय निकालने, इतना कष्ट सहने, इतना खर्च करने का जहाँ साहस दिखाया है, वहाँ इतना पुरुषार्थ और भी करें कि अपने मन को पकड़-जकड़कर, समेट-दबोचकर इसके लिए मनायें कि इन दिनों किसी दिव्यलोक में निवास करने, दिव्य ढाँचे में ढालने, भविष्य को देवोपम बनाने के लिए जिस चिन्तन की आवश्यकता है, उसे तत्परतापूर्वक अपनायें। मन उचटता हो तो उसके लिए छुट्टल घूमने के अभ्यस्त किसी वन्य पशु को प्रशिक्षित करने का कौशल अपनाया जाय। विचारों को भी विचारों से काटा जाय। लोहे से लोहा कटता है, विष को विष मारता है, काँटे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से काँटा निकलता है। अनगढ़ एवं अनावश्यक विचारों के अभ्यस्त मनःसंस्थान को यदि उच्चस्तरीय अनुशासन में ढालना है तो वैसा ही प्रयत्न करना होगा जैसा कि बछड़े को हल में जोतने के लिए करना होता है।

परिस्थितियाँ जितनी महत्त्वपूर्ण हैं उतनी ही साधक की मनःस्थिति भी। यदि मन पर कैद होने का, जितनी जल्दी हो सके मुक्त होकर भागने के विचारों का घटा-टोप छाया हो तो कितना भी सशक्त वातावरण हो भावना, विचारणा तथा शरीर संरचना में तनिक भी परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होगा। अनुकूल मनःस्थिति के साधकों को कल्प-प्रक्रिया के लिये जैसी परिस्थितियों की, तीर्थ के शक्ति प्रधान वातावरण की आवश्यकता थी, वैसा ही शान्तिकुन्ज को गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित किया गया है। इसके लिये इस स्थान की महत्ता तो अपने स्थान पर है ही, गत बारह वर्षों के वे प्रयास भी महत्त्वपूर्ण हैं जिनके माध्यम से इस तपःस्थली को संस्कारित किया गया है। सर्वविदित है कि यह स्थान सप्त ऋषियों की तपःस्थली सप्त सरोवर पर बनाया गया है। इमारत ठीक वहीं बनी है, जहाँ गायत्री के दृष्टा विश्वामित्र का निवास था। नौ कुण्ड की यज्ञशाला में नित्य दो घण्टे यज्ञ, १९२६ से निरन्तर जल रही अखण्ड ज्योति, नित्य का चौबीस लाख सामूहिक जप पुरश्चरण, जड़ी-बूटी उद्यान जैसी विशेषताएँ चर्म-चक्षुओं से देखी जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त वैसा भी बहुत कुछ है जिसे मात्र ज्ञान-चक्षुओं से ही देखा जा सकता है। हिमालय की दिव्य सत्ता का संरक्षण, वशिष्ठ-अरुन्धती का सान्निध्य, अनुभव पूर्व मार्ग- दर्शन तथा प्राणवान अनुदान जैसी ऐसी सुविधाएँ जो अन्यत्र मिल सकना कठिन है। ब्रह्मवर्चस् की शोध-युग शिल्पियों का प्रशिक्षण इस वातावरण को स्वर्ण सुयोग्य जैसा बना देते हैं। 'कल्प-साधना' जैसे महान् प्रयोजन के लिए इससे हल्के दर्जे का वातावरण काम भी नहीं दे सकता था। इसलिये पिछले कई वर्षों बाद तद्नुकूल स्थापना खड़ी कर देने के उपरान्त ही प्रखरता सम्पादन की कल्प साधना का सशक्त उपक्रम शान्तिकुन्ज में आरम्भ किया गया है।

व्यक्तित्व को परिष्कृत कर सकने वाला वातावरण

युग शिल्पियों में वाक्पटुता और क्रिया कुशलता का होना आवश्यक है। किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उसका परिष्कृत व्यक्तित्व। अपना परिवर्तन कर सकने वाला ही दूसरों में परिवर्तन कर पाता है। व्यक्ति निर्माण चाहे अपना हो या पराया मात्र प्रशिक्षण से सम्भव न हो सकेगा उसके लिए प्राणवान वातावरण चाहिए। इसी के अभाव में न लोक सेवा में प्रखरता उत्पन्न होती है और न उसके प्रयत्नों को सफलता मिलती है। व्यक्तित्वों को ढालना ही युग-परिवर्तन का प्रमुख आधार है। जनमानस के परिष्कार से ही नव-निर्माण का उद्देश्य पूरा होगा। इस परिष्कार में प्रशिक्षण के साथ-साथ वातावरण की व्यवस्था भी बननी चाहिए। समाज में परिवर्तन के लिए उत्साह भरा वातावरण पैदा किया जाय और युग शिक्षिकों को ऐसी परिस्थितियों में रहने का अवसर दिया जाय, जहाँ वे लोक सेवा का तत्वदर्शन एक क्रिया-कौशल ही सीखकर छुट्टी न पालें वरन् अपने व्यक्तित्व में परिपक्वता उत्पन्न करने की सफलता प्राप्त कर लें।

युग-शिल्पियों को कार्यक्षेत्र में उतरने से पहले बहुत समय तक ऐसे वातावरण में रहना चाहिए, जिससे उनके संग्रहीत कुसंस्कारों का निराकरण और अभीष्ट परिपक्वता का समुचित सम्वर्धन हो सके। ऐसे वातावरण का परिपोषण न मिलने से आदर्शवादिता कभी-कभी भावुकता की तरह सवार तो हो जाती है, पर नशा उतरते ही उसके समाप्त होने में भी देर नहीं लगती। कच्ची ईंटें देर तक भट्टे की गर्मी में पकते रहने के उपरान्त ही सुदृढ़ बनती हैं, यह कार्य तुर्त-फुर्त नहीं हो सकता। विशेषताएँ विशेष वातावरण में नियत समय तक रहने से ही पैदा होती देखी जाती हैं।

आज का चिकित्सा विज्ञान अपने आप में पर्याप्त विकसित हो चुका है, किन्तु वह भी वातावरण का महत्त्व स्वीकार करता है। क्षय रोग की चिकित्सा का प्रबन्ध यों सभी अस्पतालों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है किन्तु भुवाली जैसे उपयुक्त जलवायु में बने अस्पतालों का चिकित्सा परिणाम अन्य स्थानों की तुलना में कहीं अधिक उत्साहवर्धक रहता है। इसमें चिकित्सकों की योग्यता एवं औषधियों की विशेषता नहीं वरन् उस क्षेत्र का वातावरण ही आधारभूत कारण होता है। ऐसे स्थानों पर सहज स्वभाव रहने से भी स्वास्थ्य सुधारता रहता है, बीमारियाँ अपने आप ही अच्छी हो जाती हैं।

मनुष्यों के शरीर में ही नहीं उनके स्वभावों में भी क्षेत्रीय विशेषता के अनुरूप अन्तर रहते हैं। संस्कृतियाँ दो आधारों पर बनती हैं एक तो उस क्षेत्र के निवासियों का चिन्तन एवं रहन-सहन, दूसरे उस क्षेत्र की प्रकृतिगत भिन्नता विशेषता इन दोनों प्रभावों के कारण उस क्षेत्र के निवासियों का एक विशेष ढर्रा बन जाता है और वह गुण, कर्म, स्वभाव में गहराई तक अपनी जड़ जमा लेता है। संस्कृतियों की भिन्नताओं के यही दो प्रमुख आधार हैं। यों मनुष्य स्वतन्त्र और समर्थ है, वह अपनी संकल्प शक्ति के बल पर परम्परागत सभी दबावों को बदल सकने में सैद्धान्तिक दृष्टि से पूर्णतया सक्षम हैं पर व्यवहार में होता यही है कि वातावरण अपने प्रभाव से उस क्षेत्र के मनुष्यों को ढालता चला जाता है। व्यक्ति की मौलिक विशेषता को मान्यता देते हुए भी यह स्वीकार करना ही होगा कि जन समाज की बहुसंख्या विचारपूर्ण नहीं, वातावरण के प्रभाव से प्रभावित जीवनयापन करती है। व्यापक क्रान्तियाँ कुछ व्यक्तियों के बदलने से सम्पन्न नहीं होतीं वरन् वातावरण में ऐसा परिवर्तन लाना पड़ता है, जिसके प्रभाव से जन-साधारण को परिष्कृत ढंग से सोचने और उपयोगी क्रिया-कलाप अपनाने का साहस एवं अवसर उपलब्ध हो सके।

जातियों और वंशों में कई प्रकार की अपनी-अपनी विशेषताएँ पाई जाती हैं। ब्राह्मण में धार्मिकता, क्षत्रिय में अक्खड़ता, वैश्य में अर्थ दृष्टि, शिल्पकारों में क्रिया-कुशलता जैसी विशेषताएँ दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक मात्रा में पाई जाती हैं। कायस्थ समाज में शिक्षा का बाहुल्य रहेगा। पिछड़े वर्गों में प्रायः अस्वच्छता, अशिष्टता और अस्त-व्यस्तता सर्वत्र पायी जायेगी। कुछ में चोरी, उठाईगीरी की आदत जातीय विशेषता के रूप में मिली होती है। कुछ कायरता और बेबकूफी के लिए बदनाम हैं। इनके कारणों की खोज करने पर एक यही तथ्य सामने आता है कि अमुक वर्ग के व्यक्तियों को अमुक प्रकार के वातावरण में रहने का अवसर मिलता है, जिससे उसी के अनुरूप विशेषताएँ उनमें विकसित हो जाती हैं। वातावरण प्रयासपूर्वक बनाया गया या काल प्रभाव से संयोगवश बना, यह बात भिन्न है, किन्तु उसके प्रभाव का महत्त्व तो हर स्थिति में स्वीकार करना ही पड़ता है।

किसी नवजात बालक को अपने परम्परागत वातावरण से भिन्न प्रकार की परिस्थितियों में रखा जाय तो वह उसे बदले हुए वातावरण से ही पला हुआ होगा, उसमें पूर्वजों की विशेषताओं का वंशानुक्रम जितना थोड़ा-सा ही प्रभाव रह जायेगा। शेष सब कुछ बदला हुआ ही होगा। प्राचीन काल में जाति परिवर्तन के अनेकों उदाहरण इतिहास पुराणों से भरे पड़े हैं। इसका कारण जन्म क्षेत्र की अपेक्षा कर्म क्षेत्र में भिन्नता उत्पन्न हो जाना ही रहा है। परिस्थितियों का प्रभाव बालकपन में ही नहीं बड़ी आयु में भी पड़ता है। लोग मानसिक कायाकल्प करते—कुछ से कुछ बनते देखे गये हैं। इस परिवर्तन में वातावरण का दबाव ही प्रधान रूप से काम करता है।

उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में एक तीन वर्ष का बालक शिकारियों ने भेड़िये की माँद से बरामद किया था। भेड़िया उसे कहीं से उठा लाये थे। संयोगवश मादा ने उसे अपना बच्चा मानकर दूध पिलाना आरम्भ कर दिया और पाल लिया। शिकारियों ने भेड़ियों को मारकर जब इस मनुष्य बालक को पकड़ा तो उसमें सारी आदतें भेड़ियों जैसी थीं। चार पैर से चलना, कच्चा माँस खाना, वैसा ही बोलना तथा अन्य आदतों में भेड़ियों का अनुकरण करना उसका स्वभाव बन चुका था। इस बालक को लखनऊ मेडीकल कॉलेज में सुधारने के लिए रखा गया। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य कैसे भेड़ियों जैसी जीवनचर्या का आदी हो गया ? यह देखने भारी संख्या में देश-विदेश के व्यक्ति वहाँ पहुँचते रहे।

बनवासी जन-जातियों में चित्र-विचित्र रिवाज पाये जाते हैं। उनके स्वभाव और अभ्यास भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने ढंग के होते हैं। सुधारकों के प्रयास उनमें परिवर्तन लाने के होते हैं पर वैसा कुछ अधिक प्रभाव नहीं हो पाता क्योंकि उनके चारों ओर घिरा हुआ वातावरण उन्हें यत्किंचित सुधार स्वीकार करने की ही छूट देता है। परिवर्तन के लिए वातावरण बदलना आवश्यक है। बहुत-से अफ्रीकी नीग्रो बहुत समय से अमेरिका में बस गये हैं। उनकी और उनके अफ्रीकी वंशधरों की आकृति में थोड़ा-सा ही फर्क पड़ा है, पर प्रकृति में भारी परिवर्तन आ गया है। अमेरिका नीग्रो प्रायः अमरीकी गोरों के स्तर का ही जीवन-यापन करते हैं। उत्तरी ध्रुव के एक्सिमो लोगों में से बहुत-से कनाडा आ बसे हैं। उस वर्ग के मूल निवासियों और कनाडी एक्सिमो वर्ग में आश्चर्यजनक अन्तर आ गया है। इसी प्रकार अन्यान्य देशों में जा बसने वाले अपने मूल देश की अपेक्षा नई परिस्थितियों में नये ढंग में ढलते, बदलते देखे जाते हैं। वातावरण के प्रभाव से बचे रहना आग्रहशील लोगों के लिए सम्भव है, सामान्य लोग तो परिस्थितियों के अनुरूप ढलते, बदलते चले जाते हैं।

वातावरण का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है यह एक तथ्य है। मनुष्य में जितनी विचार क्षमता है उससे अधिक उसकी अनुकरण प्रवृत्ति प्रबल है। विचारपूर्वक जो होता है उससे अधिक क्रियाकलाप देखा-देखी चलते हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि विचारशील जिसे अनावश्यक एवं अवांछनीय समझते हैं, उसे भी इसीलिए करना पड़ता है ताकि दूसरे कर रहे हैं। कई उपयोगी कार्य इसलिए सम्भव नहीं हो पाते कि उन्हें दूसरे लोग नहीं करते तो हम क्या करें ? प्रथा-परम्पराओं में अनेकों ऐसी हैं, जिनको बुद्धिपूर्वक स्वीकार न करने वाले भी इसलिए अपनाये रहते हैं कि दूसरे लोग वैसा करते हैं तो हम उनका अनुकरण क्यों न करें ? इसे वातावरण का प्रभाव ही कहना चाहिए। नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनों को लोग बुद्धिपूर्वक किसी लाभ को पाने की सम्भावना से नहीं करते वरन् देखा-देखी ही सीखते हैं। बच्चों पर तो पूरी तरह इसी प्रवृत्ति का साम्राज्य छाया रहता है। विवेक बुद्धि का उदय तो बहुत पीछे होता है, पहले तो अनुकरण की प्रवृत्ति ही बढ़ी-चढ़ी रहती है। परिपक्व अवस्था आने पर भी उस मूल प्रवृत्ति का असर बना ही रहता है। धर्म सम्प्रदायों के प्रथा, प्रचलन—भाषा, संस्कृति आदि की कट्टरता में विवेक का दबाव नहीं, सम्बद्ध वातावरण का प्रभाव ही प्रधान रूप से काम करता है।

व्यक्ति जैसा कुछ है, उसके निर्माण में अधिकांश योग उसके वातावरण का ही रहा होता है। पिछड़े और समुन्नत वर्गों के व्यक्तित्वों का गम्भीरतापूर्वक पर्यवेक्षण करने से सहज ही यह पता चलता है कि प्रकृति सरंचना की दृष्टि से दोनों के शारीरिक, मानसिक गठन में कोई विशेष अन्तर नहीं था, उनके बीच जो जमीन-आसमान जैसी भिन्नता पैदा हो गई उसका कारण मुख्यतया वह वातावरण ही था, जिसमें इन्हें रहने का अवसर मिला। मनुष्य अपनी मौलिक क्षमताओं का उपयोग बहुधा वातावरण से प्रभावित होकर उसी के अनुरूप करने लगता है। युग निर्माण के लिए व्यक्ति निर्माण आवश्यक है। व्यक्ति निर्माण के लिए जो अनेक उपाय किये जाने हैं, उनमें प्रमुखता ऐसे वातावरण के निर्माण को भी देनी पड़ेगी जिसमें रहकर व्यक्ति अनायास ही ढलता, बदलता चला जाय। प्रशिक्षण से व्यक्ति बदलता है यह ठीक है पर यह भी निश्चित है कि इतने से ही अभीष्ट परिणाम नहीं निकलता। उस प्रशिक्षण को फलित बना सकने वाला वातावरण भी चाहिए।

सामान्य स्तर पर कोई कार्य सामान्य वातावरण में भी किया जा सकता है किन्तु विशिष्ट स्तर का अथवा बड़े पैमाने पर काम करना हो तो उपयुक्त वातावरण का सहयोग भी लेना पड़ता है। अच्छा सूत कातने के लिए वातावरण में एक निश्चित मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। सामान्य स्तर पर चर्खों से सूत कातते समय न तो उसकी उतनी आवश्यकता अनुभव की जाती है और न हर जगह वह स्थिति पैदा करना ही सम्भव है किन्तु कताई मिलों में जहाँ महीन किस्म का सूत बड़ी तेजी से काता जाता है, वहाँ वायु में निश्चित आर्द्रता पैदा करनी ही पड़ती है। जहाँ फोटोग्राफिक फिल्में बनाई जाती हैं, उस फैक्ट्री में तापमान को एक निश्चित मर्यादा में ही रखना पड़ता है। यदि इसकी उपेक्षा की जाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो सारे साधनों के होते हुए भी अच्छी फिल्में बनाना सम्भव नहीं हो सकता। विशेष औषधियों एवं रासायनिक पदार्थों के निर्माण में भी इसी प्रकार विशेष परिस्थितियाँ बनाकर रखी जाती हैं।

यह सभी उदाहरण ऐसे हैं, जिनमें चाहे जितनी तकनीकी सुविधा एवं कुशलता प्राप्त हो, फिर भी वातावरण का सहयोग लिए बिना वांछित प्रतिफल पाना सम्भव नहीं है। युग प्रवर्तक व्यक्तित्वों के निर्माण के लिए भी इस विधा को स्वीकार करना तथा अपनाना आवश्यक है। इस अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति के लिए उच्च आदर्श, दृढ़ आस्था, प्रखर प्रेरणा, स्पष्ट मार्गदर्शन, दिव्य अनुदानों आदि की तकनीकी व्यवस्था के साथ-साथ समुचित वातावरण की सुविधा जुटाना भी आवश्यक समझा गया है।

उपयुक्त वातावरण बनाने में विशेष पुरुषार्थ के साथ क्षेत्रीय विशेषताओं का तालमेल बिठाना भी लाभदायक होता है। जब किसी प्रयोगशाला, चिकित्सालय अथवा शोध-संस्थान की योजना बनती है तो उसके लिए उपयुक्त स्थल भी खोजा जाता है। क्षेत्र विशेष की अपनी विशेषताएँ होती हैं। स्वास्थ्य के लिए कुछ पर्वतीय क्षेत्र (हिल स्टेशन) बहुत उपयोगी माने जाते हैं। भुसावल क्षेत्र में केले, नागपुर क्षेत्र में सन्तरे, मैसूर में चन्दन तथा आसाम में चाय आदि के उत्पादन की विशिष्ट क्षमता से सभी परिचित हैं। बंगाल एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्र में धान तो पंजाब, हरियाणा में गेहूँ की पैदावार भरपूर होती है। तत्सम्बन्धी प्रयोग, परीक्षण बीज विकास आदि के लिए वही क्षेत्र उपयुक्त माने जाते हैं।

निश्चित रूप से आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए इस विश्व में भारत एवं भारत में हिमालय क्षेत्र को अद्वितीय गौरव प्राप्त है। अस्तु, युग निर्माण योजना के सूत्र-संचालकों ने युग सृजेताओं के व्यक्तित्वों की प्रयोगशाला, टकसाल बनाने के लिए वही क्षेत्र चुना है। समुचित वातावरण के निर्माण हेतु अपनी शक्ति सामर्थ्य का प्रयोग इसी सनातन दिव्य-संस्कार युक्त भूमि में करना उचित समझा।

हिमालय क्षेत्र ऋषि-योगियों की भूमि मानी जाती है। उच्च आध्यात्मिक प्रयोग इसी क्षेत्र में अनादि काल से होते चले आ रहे हैं, इसे ऋषि-भूमि एवं देव-भूमि की संज्ञा दी जाती है। पौराणिक मान्यताओं एवं तथ्यों, तर्कों के आधार पर भी यह क्षेत्र दिव्य स्थल सिद्ध होता है पृथ्वी पर देवभूमि के अस्तित्व की बात यदि आगे बढ़ानी हो तो उसका क्षेत्र हिमालय ही ठहरता है। कैलाश और मानसरोवर उसी में हैं। पाण्डवों के स्वर्गारोहण का स्थान बद्रीनाथ के समीप है। देवलोक के पर्वत का नाम सुमेरु है। यह सुमेरु बद्रीनाथ और गंगोत्री के बीच एक हिमाच्छादित शिखर है। स्वर्ग से गंगा का अवतरण धरती पर होने की कथा की संगति हिमालय के भूगोल के साथ ठीक प्रकार बैठ जाती है। "स्वर्ग में गंगा दूध की थी। धरती पर आई तो पहले शिवजी की जटाओं पर उतरी पीछे पानी बनकर बहने लगी।" इस वर्णन का सन्दर्भ इस प्रकार ठीक बैठ जाता है कि गौमुख से आगे शिवलिंग शिखर है। उसकी चोटी पर जमी हुई बर्फ जब पिघलती है तो गाढ़े बर्फीले पानी की धारा दूध की तरह ऊपर से नीचे उतरती दिखाई पड़ती है। चोटी के नीचे एक सरोवर है, जिसे मानसरोवर कहा जाता है। शिवलिंग चोटी का दूसरा नाम कैलाश भी है। यही पानी गंगा ग्लैशियर में होता हुआ गौमुख पर निकलता है और धरती पर गंगा का प्रथम दर्शन होता है। भगीरथ ने जिस शिला पर खड़े होकर तप किया था वह भी गंगोत्री क्षेत्र में ही है। गौमुख से ऊपर नन्दन वन है। नन्दन वन देवताओं का उद्यान कहा गया है। इस क्षेत्र में बड़े वृक्ष तो नहीं हैं पर अगणित प्रकार के चित्र-विचित्र फूलों की संख्या और भिन्नता इतनी अधिक है कि वैसा प्राकृतिक पुष्प-सौन्दर्य संसार भर में अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। फूलों की घाटी पुष्प अन्वेषियों का प्रमुख आकर्षण केन्द्र है। यह पट्टी गौमुख से ऊपर नन्दन वन के पठार तक चली गई है। इन संगतियों से भी स्वर्ग का अस्तित्व धरती पर खोजने वालों की आँखें हिमालय के ऊपरी क्षेत्र पर ही जा टिकती हैं।

हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र का पूरा दौरा कर लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों में वर्णित प्रायः सभी ऋषियों की तपो भूमि और क्रिया भूमि उत्तराखण्ड से ही सम्बन्धित रही है। उनके गुरुकुल और आरण्यक इसी क्षेत्र में थे। आत्मविज्ञान की शोध-प्रयोगशालाएँ इसी प्रदेश में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिखरी हुई थीं। तपश्चर्याएँ इसी अनुसंधान के लिए होती थीं। इसके लिए उपयुक्त स्थान और वातावरण तलाश करने पर इसी क्षेत्र को सर्वश्रेष्ठ पाया गया था। आत्म साधना के लिए शीत प्रधान क्षेत्र उपयुक्त बैठते हैं। जलवायु की दृष्टि से वही असाधारण रूप से आरोग्यवर्धक भी है। सृष्टि के आदि से लेकर अब तक इस प्रदेश में जितनी उच्चस्तरीय साधनाएँ इस क्षेत्र में की हैं, उसके कारण वहाँ के वातावरण में विशिष्ट अध्यात्म तत्वों की भरमार है।

इस गये-गुजरे जमाने में भी उस क्षेत्र में सत्युगी वातावरण के दृश्य देखे जा सकते हैं और लगता है कि संव्याप्त कलुषित वातावरण से यह क्षेत्र अभी भी उतना प्रभावित नहीं हुआ है। पहाड़ी कुली तीर्थयात्रियों का सामान ढोते हैं। बिस्तरे आदि लेकर कुली बहुत आगे निकल जाता है और यात्री घन्टों पीछे पहुँचते हैं। सारा सामान ठीक तरह पहुँचता है। चोरी, उठाईगीरी की घटनाएँ सुनने में नहीं आतीं। उस क्षेत्र में रहने वालों के घरों में अभी भी ताले नहीं लगते। कुन्डी बन्द करके सूना मकान छोड़ जाते हैं। चोरी की घटनाएँ प्रायः नहीं ही होतीं।

उत्तराखण्ड को साधना के सर्वथा उपयुक्त संस्कारवान देवभूमि समझ लेने के उपरान्त ही इसे सृजन सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त समझा गया और उसे एक छावनी के रूप में विकसित करने का निश्चय किया गया है अन्यत्र स्थानों में व्यापक परिश्रम से भी जो सत्परिणाम उपलब्ध होने असम्भव थे, वह यहाँ अल्प प्रयास से सम्भव होंगे क्योंकि यहाँ के वातावरण में चिरकाल से आच्छादित ऋषियों के विचारों के संकल्प का लाभ साधकों को मिलेगा। शान्तिकुन्ज, ब्रह्मवर्चस् और गायत्री नगर का संगम ने तो उसे तीर्थराज ही बना दिया है। स्वर्गीय वातावरण के अतिरिक्त दिव्य-चिन्तन और युगान्तर सत्ता के प्राणवान् सत्संग का लाभ जुड़ जाने से उसकी महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। जागृत आत्माओं को इस वातावरण, इस तीर्थ के पर्व स्नान की तैयारी प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

युग तीर्थ में साधना का विशेष महत्त्व

शान्तिकुन्ज एक संस्कारित तपस्थली है, जहाँ करोड़ों गायत्री मंत्र का जप-अनुष्ठान अब तक सम्पन्न हो चुका है व नित्य लक्षाधिक जप सम्पन्न होकर नौकुण्डी यज्ञशाला में साधकों द्वारा आहुतियाँ दी जाती हैं। यह ब्रह्मर्षि विश्वामित्र की तपस्थली भी है तथा परमपावनी पुण्यतोया भागीरथी के तट पर हिमालय के हृदय उत्तराखण्ड के द्वार पर यह अवस्थित है। इसी कारण उसे एक सिद्धाश्रम की, युगतीर्थ की उपमा दी जाती है, जिसके कल्पवृक्ष के तले साधना करने वाला साधक अपनी मनोवांछित कामनाएँ ही नहीं पूरी करता, यथाशक्ति मनोबल-आत्मबल भी सम्पादित कर के लौटता है।

शान्तिकुन्ज की तीर्थ गरिमा एवं स्थान की विशेषता का अनुभव करते हुए जब कभी उपासकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है और सीमित आकार के आश्रम में किसी प्रकार ठूँस-ठाँस करके इच्छुकों का तारतम्य बिठाना पड़ता है, तो अनुष्ठान को अति संक्षिप्त पाँच दिन का भी कर दिया जाता है और उतने ही दिन में मात्र 108 माला का अति संक्षिप्त अनुष्ठान करने से भी काम चला लिया जाता है। कुछ साधक ऐसे भी होते हैं, जिन्हें अत्यधिक व्यस्तता रहती है। उनके लिए भी पाँच दिन शान्तिकुन्ज में रहकर अनुष्ठान कर लेने की व्यवस्था बना दी जाती है पर यह है-आपत्तिकालीन न्यूनतम व्यवस्था ही।

जिन्हें अत्यधिक व्यस्तता नहीं है और जिन पर काम का अत्यधिक दबाव नहीं है, उनके लिए ९ दिन का २४ हजार जप वाला परम्परागत अनुष्ठान ही उपुयक्त पड़ता है। इतनी अवधि शांतिकुन्ज के वातावरण में रहकर व्यतीत की जाय, तो वह अपेक्षाकृत अधिक फलप्रद और अधिक प्रभावोत्पादक रहती है। इतनी अवधि में सत्संग के लिए प्रवचनपरक वह लाभ भी मिल जाता है, जिसे जीवन कला का शिक्षण एवं उच्चस्तरीय जीवनयापन का लक्ष्यपूर्ण मार्गदर्शन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जा सकता है। कितने ही लोगों की अभिलाषा हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला, कनखल आदि देखने की भी होती है। वह अवकाश भी तभी मिलता है, जब नौ दिन का संकल्प लेकर अनुष्ठान प्रक्रिया में प्रवेश किया जाय। जिन्हें सवालक्ष का चालीस दिन में सम्पन्न होने वाला अनुष्ठान करना हो, उन्हें अपने घर पर ही रहकर उसे करना चाहिए, क्योंकि शान्तिकुन्ज में इतनी लम्बी अवधि तक रहने की सुविधा मिल सकना हर दृष्टि से कठिन पड़ता है।

इक्कीसवीं सदी में एक लाख प्रज्ञा संगठन बनाने और एक करोड़ व्यक्तियों की भागीदारी का निश्चित निर्धारण किया गया है। उस निमित्त भी वरिष्ठ भावनाशीलों को बहुत कुछ सीखना, जानना और शक्ति-संचय की आवश्यकता पड़ेगी, वह प्रसंग अधिक विस्तार से समझने और समझाने का है। इसलिए भी नौ दिन का समय निकालकर शान्तिकुन्ज में प्रेरणा, दक्षता एवं क्षमता उपलब्ध करने की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए अच्छा हो कि जिनके पास थोड़ा अवकाश हो, वे नौ दिन का सत्र सम्पन्न करने ही शान्तिकुन्ज आवें। नौ दिन का सत्र हर महीने तारीख १ से ६, ११ से १६ तथा २१ से २६ तक के होते हैं, जो निरन्तर जारी रहते हैं। किन्तु पाँच दिन के सत्रों में ही जिन्हें आना है, उनके लिए तारीख १ से ५, ७ से ११, १३ से १७ और १६ से २३ तथा २५ से २६ तक का समय निर्धारण है। वे भी दोनों साथ-साथ ही चलते रहते हैं। जिन्हें जैसी सुविधा हो, अपने पूरे परिचय समेत आवेदन-पत्र भेजकर समय से पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। बिना स्वीकृति लिए आने वालों को स्थान मिल सके, इसकी गारन्टी नहीं दी जा सकती। अशिक्षितों, जराजीर्णों, संक्रामक रोगग्रस्तों को प्रवेश नहीं मिलता।

पुरुषों की तरह महिलाएँ भी सत्र-साधना के लिए शान्तिकुन्ज आ सकती हैं। पर उन्हें छोटे बच्चों को लेकर आने की धर्मशाला स्तर की व्यवस्था यहाँ नहीं है। साधना, प्रशिक्षण और परामर्श में प्रायः इतना समय लग जाता है कि उस व्यस्तता के बीच छोटे बालकों की साज-सँभाल बन नहीं पड़ती। अतः मात्र उन्हीं को सत्रों में आना चाहिए, जो निर्विघ्न कुछ समय रहकर साधना कर यहाँ के वातावरण का लाभ ले सकें व अनुशासित व्यवस्था में भी गड़बड़ी न आने दें।

सप्त ऋषियों की साधना भूमि में ही गायत्री नगर बसाया गया है। उसे सच्चे अर्थों में जीवन्त तीर्थ कहा जा सकता है। प्राचीन काल के आरण्यकों में जो विशेषताएँ पायी जाती थीं, प्रायः उन सभी का समावेश गायत्री नगर की ब्रह्मवर्चस् प्रक्रिया के अन्तर्गत करने का प्रयत्न किया गया है। स्थूल दृष्टि से यह क्षेत्र दूसरे भूखण्डों की तरह ही धूलि, मिट्टी, पेड़ पानी जैसी पदार्थ सम्पदा से बना भर दीखता है, पर जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि उपलब्ध है, उन्हें उस परोक्ष की झाँकी करने में कठिनाई नहीं होती कि साधना को सफल बनाने वाले आधार यहाँ अन्यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक उपलब्ध हैं।

गायत्री नगर की ब्रह्मवर्चस् प्रक्रिया ने, उच्चस्तरीय गायत्री उपासना के लिये, इस क्षेत्र को सच्चे अर्थों में साधनात्मक बना दिया है। उसमें साधना की सफलता के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। परम्परा और प्रक्रिया का समन्वय रहने से ही वह प्राण-प्रवाह उत्पन्न होता है, जिसको जीवन्त और जाग्रत कहा जा सके। ऐतिहासिक विशिष्टता का परिचय देने वाले तीर्थ तो अन्यत्र भी कितने ही हैं, पर जिनमें आरण्यकों की प्राणवान् ऊर्जा का लाभ प्रचुर परिमाण में मिल सके ऐसे आश्रम इन दिनों अन्यत्र मिलना कठिन है।

साधना के लिए, विशेषतया गायत्री उपासना के लिए शान्तिकुन्ज में वह उपक्रम सम्पन्न करना सोने और सुगंध के सम्मिश्रण जैसा काम देता है।

इस भूमि में रहकर साधना की इसलिए भी अधिक महत्ता है कि उसके साथ युग संधि महापुरश्चरण की प्रचण्ड प्रक्रिया भी अनायास ही जुड़ जाती है और प्रतिभा परिष्कार का वह प्रयोजन भी पूरा होता है, जिनके माध्यम से भावी शताब्दी में महामानवों के स्तर की भूमिका निबाहने का सुयोग बन पड़ता है। युगशक्ति गायत्री का, मिशन के संचालक को दिया गया यह आश्वासन जो है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org